श्री

गुरु ग्रन्थ साहब

हिन्दी टीका सहित

प्रथम संचय

जपुजी रहरासि कीर्तन सोहिला
सिरी रागु माझ रागु तथा गउड़ी रागु

पृष्ठ १ से २९६ तक

अनुवादक

लक्षमण चेलाराम

सुपुत्रः पूज्य दादा चेलाराम जी

प्राप्ति स्थान	दूरभाष
(१) दादा चेलाराम जी आश्रम निर्गुन बालिक, सपरून-१७३२११ (सोलन)	३२२ (सोलन)
(२) निज थाँउ ११/११ पूसा रोड, नई दिल्ली-११०००५	५८१६४३
(३) निज थाँउ रोड ९, खार, बम्बई-४०००५२	६४००१७९
(४) निज थाँउ ७१८/५ सी, भवानी पेठ, पूना-४११००२	२९४१५
(५) दादा चेलाराम मेमोरियल ट्रसट ११/२६ ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली-११०००८	५७१०९६७

मैंने इस ग्रन्थ के अधिकार सुरक्षित नहीं रखे हैं। मेरी यह उत्कृष्ट
अभिलाषा है कि मानव कल्याण की यह अमृत वाणी
देश देशान्तर के कोने-कोने तक पहुंचे।
नाम सन्देश की सर्वत्र गूंज सुनाई दे।
कोई भी प्रेमी पाठक इस अमर
ग्रन्थ के प्रचार व प्रसार
हेतु पुनः प्रकाशित
कर सकता
है।

३ मई १९८७
प्रथम संस्करण
भेंट : १०० रुपये

मेरी यह भी तीव्र आकांक्षा है कि अपने सिन्धी प्रेमियों के लिए
सिन्धी भाषा में सम्पूर्ण गुरू ग्रन्थ साहब का अनुवाद
प्रकाशित हो। मेरे इष्टदेव की कृपा
होने पर ही यह इच्छा
पूर्ण होगी।

श्रद्धावान सहयोगी सज्जन निम्न पते पर इस महान कार्य की पूर्ति के लिए
तन-मन-धन द्वारा योग प्रदान करने हेतु पत्र-व्यवहार करने की कृपा करें :

लक्ष्मण चेलाराम, ११/२६, ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली-११०००५

निवेदनार्थ

मेरी तथा मेरी धर्मपत्नी प्यारी रामी जी की यह तीव्र आकांक्षा चिरकाल से थी कि भारत में और बाहर गुरु नानक साहब एवम् उनके उत्तराधिकारियों और भारत के कुछ कीर्तिमान सन्तों वा भक्तों की दिव्य वाणी से, जो पावन गुरु ग्रन्थ साहब मे प्रविष्ट है, उन्हें भी क्यों न परिचत करवाया जाये जो अब तक ऐसी महान विभूतियों से अनभिज्ञ हैं।

प्रायः कई स्थानों पर कीर्तन यात्राओं के बीच हमने देखा कि धार्मिक, राजनैतिक, जाति-भेद आदि की खींचातानी के कारण ऐसी महत्त्वपूर्ण वाणी का प्रचार अब तक अपने देश भारत में भी नही हुआ है। जन साधारण को ज्ञात नहीं कि इस अद्वितीय ग्रन्थ के वाणीकारों ने संसार को क्या संदेश दिया है। इतनी महान आध्यात्मिक वाणी की निधि को पन्थों, मतमतान्तरों, साम्प्रदायिकता के संकीर्ण घेरों में आवृत्त करना हमारा स्वार्थ और अज्ञानता है। साहबान की ऐसी अलौकिक वाणी का भारत में प्रचार न होना अयोग्यता का परिचायक तथा मेरे विचार में एक कुकर्म है। मेरे गुरुदेव के अनन्त परिश्रम का कोई अन्य लाभ न प्राप्त कर सके यह अत्यन्त दुःखपूर्ण विषय है।

यदि हम अन्य देशों की भाषाओं तथा भारतीय विधान में स्वीकृत सभी भाषाओं में गुरु ग्रन्थ साहब का अनुवाद नही कर सकते तो कम से कम जिन जिन प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग इस पावन ग्रन्थ में हुआ है उन सभी भाषाओं मे इसका अनुवाद अवश्य होना चाहिए। निःसन्देह अंग्रेजी तथा पंजाबी भाषा में पुनीत वाणी पर अनेक टीकायें उपलब्ध हैं। किन्तु खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि हिंदी तथा सिन्धी भाषा में टीकायें नगण्य सी हैं। हमें इस युग में वैज्ञानिक साधनों का लाभ उठाते हुए गुरवाणी को केवल अंग्रेजी और पंजाबी पढ़े-लिखे लोगों तक ही सीमित रखने की संकीर्णता नही दिखानी चाहिए क्योंकि गुरु नानक साहब ने समस्त-विश्व-कल्याण की भावना से एक मुसलमान साथी भाई मरदाने को अपने भ्रमण-कार्य में सदा साथ रक्खा। गुरु रामदास साहब ने भी उस समय के प्रसिद्ध मुसलमान फकीर साँई मिआं मीर से हरि मन्दिर, (अमृतसर)की नीव का पत्थर रखवाया। गुरु अर्जुन देव ने इस अनुपम ग्रन्थ के संकलन के समय गुरु विचार धारा से समानता रखने वाली उन महापुरुषों की वाणी भी संकलित की जिनका जन्म भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों तथा भिन्न जातियों में हुआ था जो विभिन्न साधना से अपने जीवन को निर्मल बनाकर आध्यात्मिकता के उच्च शिखर तक पहुँचे थे।

गीता प्रेस गोरखपुर ने जिस प्रकार भगवद्गीता के संदेश को लाखों तक पहुँचाने में असंख्य अनूदित पुस्तिकायें कम मूल्य पर अनेकानेक स्थानों पर जनसमूह में वितरित की हैं, जब तक इस प्रकार का संगठित प्रयास नहीं किया जाता तब तक गुरुवाणी का व्यापक रूप से प्रचार होना अत्यन्त कठिन है। यदि

ऐसा नही होना तो गुरुवाणी के प्रेमियों को प्यासा रखकर धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करने के लिए नहीं कहा जा सकता। क्योंकि प्यासा व्यक्ति सुस्वादिष्ट और शीतल जल के अभाव में अपनी तृप्ति के लिए निरस्वाद जल का पान करने में भी विवश हो जाता है। इसलिए रसिक हिंदी वा सिन्धी पाठक प्रेमीजनों की प्यास को शान्त करने के लिए मैंने सन् १६८५ में अपनी धर्मपत्नी प्यारी रामी जी की द्वितीय पुण्य तिथि के अवसर पर गुरुवाणी के लगभग ४०० चुने हुए शब्दो का सरल अनुवाद करके 'गुरुवाणी' के नाम से प्रकाशित किया। यह मेरा प्रथम प्रयास अनुवाद के क्षेत्र में था जिसकी पाठकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभार प्रकट करता हूँ।

इस अमृत वाणी के ज्ञान को वितरण करने के सस्कार मुझे मेरे पूजनीय माता-पिता से मिले। मेरे माता पिता जी का सदैव यही प्रयत्न रहा कि गर्भावस्था से ही अपनी सतान को इन्ही शुभ सस्कारों से पूरित किया जाये। दीदी कमला जी के निर्मल जीवन तथा साधना द्वारा बहिन-भाईयो के निश्चय ही उत्तम विचार बने। मेरे दामपत्य जीवन में मेरी धर्म पत्नी श्रीमती रामी जी ने मुझे सुपथ की ओर बढने में सदा उत्साहित किया। ऐसा कहने मे अतियुक्ति न होगी कि वह स्वय ही एक सच्ची साधिका थी। मेरे पूज्य पिता दादा चेलाराम जी ने मुझ पर इतनी कृपा की कि वह सदा मुझे अपने साथ आश्रम निर्गुन बालक, सोलन तथा कीर्त्तन यात्राओ पर साथ ले जाते रहे। हम सब बच्चों पर उनका यह भी उपकार था कि हमें गुरुवाणी उनसे वसीयत मे मिली। वे चाहते थे कि हम सब कीर्त्तन करें।

कीर्त्तन आत्मा का आहार है। कीर्त्तन प्रभु का यशोगान है। कीर्त्तन के माध्यम से हम ऐसी ऊँचाई तक पहुँचते हैं जहाँ त्रिगुणी माया का प्रभाव नही है। इसके द्वारा हम प्रभु के घर के द्वार तक पहुँचते हैं। प्रभु का सानिध्य प्राप्त करते हैं। अतएव हम सब बच्चो की हार्दिक इच्छा यही होती है कि हम गृहस्थी होकर भी अपना अधिक से अधिक समय संकीर्त्तन में ही लगाए रखे। स्मरण रहे कलियुग में प्रभु की प्राप्ति के लिए सकीर्त्तन ही सर्वोपरि सुगम मार्ग है।

यह प्रथम सचय गुरु ग्रन्थ साहब के हिदी अनुवाद सहित नागरी लिप्यान्तर के छः संचयन के प्रकाशन की योजना के अन्तर्गत है। द्वितीय सचय अनुवाद का कार्य प्रतिदिन एक पृष्ठ पूर्ण करने के रूप मे चल रहा है। इसका प्रारम्भ गौडी राग के पृष्ठ २६६ 'थिति' वाणी से और समाप्ति वडहंस राग पृष्ठ ५६६ पर होगी। अनुवाद यथा सम्भव मूलग्रन्थ के शब्दानुसार ही किया गया है। पाठकों को सम्भवतया आभास भी नही होगा कि कोई भाव उन पर आरोपित करने की चेष्टा की गई है। उन्हें प्रत्येक शब्द की व्याख्या अपनी विचारधारा अनुभूति तथा सूझ बूझ के अनुसार करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। भाषा अत्यन्त सरल रखी गई है जिससे साधारण पाठक भी लाभ उठा सकें। यह मेरा विश्वास है कि सुहृदय पाठकगण इस प्रथम सचय का पूर्णरूपेण अवश्य लाभ उठायेंगे। इसके अतिरिक्त मेरी उनसे विनम्र प्रार्थना है कि यदि कोई अन्य जिज्ञासु भी इसके पाठ के लिए रूचि दिखाये तो उसे भी इस ज्ञान को प्रदान करने की अवश्य कृपा करे। इसे अपनी अलमारी की शोभामात्र बढाने के लिए ही प्रयोग मत करे प्रयुक्त इस भक्ति तथा ज्ञान के भण्डार से अपने जीवन को पवित्र एवम् उज्जवल बनाने का प्रयास करे।

अन्त मे मैं उन महान टीकाकारों के प्रति आभार प्रगट करता हूँ जिनके अमूल्य ग्रन्थ मेरी इस कृति को सम्पूर्ण करने मे सहायक हुए हैं। अनेक टीकाकारो मे से कुछ इस प्रकार हैं:—

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहब दर्पण—	टीकाकार	प्रो० साहब सिंह
२. श्री गुरु ग्रन्थ साहब संथया पोथी—	,,	भाई साहब डॉ० वीर सिंह
३. श्री गुरु ग्रन्थ साहब अमीर भण्डार—	,,	सन्त किरपाल सिंह
४. श्री गुरु ग्रन्थ साहब (सिन्धी)—	,,	मास्टर फतह चन्द
५. विशाल शब्द कोष—	,,	भाई कॉन सिंह
६. नित नेम (सिन्धी)	,,	पूज्य दादा चेलाराम
७. गुरु ग्रंथ रत्नावली	,,	पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला
८ आदि ग्रंथ के परंपरागत तत्वों का अध्ययन	,,	भाषा विभाग पंजाब

इसके अतिरिक्त मैं उन सब सत्संगियों का भी हार्दिक धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष वा परोक्ष रूप में मुझे इस ग्रन्थ के लेखन-कार्य को सम्पन्न करने मे पूर्णतया सहयोग प्रदान किया। मेरे गुरुदेव इन सभी ज्ञात-अज्ञात प्रेमियों को सदैव अपने चरणों की सेवा में लगाये रक्खे।

दिल्ली निवासी श्री श्यामसुन्दर जी जिन्होने निरवार्थ रूप से मुद्रण तथा प्रकाशन कार्य में अमूल्य सेवा की है उनके प्रति मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी वह इस कार्य में इसी प्रकार हाथ बँटाते रहेंगे और निश्चित ही महान अमर गुरु ग्रन्थ साहब की अन्य पाँच संचयन इनके भरसक प्रयत्न और सतत लग्न से अवश्य पूर्ण होंगे।

दिल्ली निवासी डॉ० एम० आर० सेठी की धर्मपत्नी श्रीमती शीला सेठी बहिन ने गुरुवाणी के हिंदी अनूदित कार्य तथा संशोधन कार्य में जो सहयोग दिया है वह सराहनीय है। भावो की व्यापकता में भी यदा-कदा जो परामर्श दिया वे भी महत्वपूर्ण तथा उपयोगी रहा। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि वह भविष्य में भी इसी रुझाव से शेष कार्य की सम्पन्नता मे भी सहयोग देती रहेंगी। उनके प्रति हमारी सदा मंगल कामनायें हैं।

गौतम आर्ट प्रेस के अधिकारी एवम् प्रेस कर्मचारी जिन्होंने बडो तत्परता से इस शुभ कार्य की सम्पन्नता में योगदान द्वारा पुण्य कमाया है उनको मैं बधाई का पात्र समझता हूँ।

मेरी यह हार्दिक मनोकामना है कि मेरे सभी सत्संगी प्रेमीजन तथा पाठकगण मेरे प्यारे बच्चों प्रिय जयश्री और प्रिय सदीप को आशीर्वाद दें कि वे अपने पूर्वजो द्वारा पल्लवित ज्ञान-वाटिका के सुगंधित पुष्प बनें तथा लिखित ज्ञान-कोष से अपना सुपथ प्रदर्शन करते हुए जीवन को सार्थक एवम् सफल बनायें।

निर्गुन काटेज — लक्ष्मण चेलाराम

११/२६ ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली

३ मई, १९८७

—०—

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ संख्या

विषय	पृष्ठ संख्या

विषय	पृष्ठ संख्या

वार माझ की सलोक महला १

विषय	पृष्ठ संख्या

—०—

गुरुवाणी मेरे विचार में

पाँच सौ वर्ष हुए जब मेरे गुरूदेव बाबा नानक साहब ने उत्तर में हिमशृंग, दक्षिण में लंका, पूर्व में आसाम और पश्चिम में सीमान्त प्रदेश की अन्तिम सीमाओं तक देशाटन किया। अपने देश से परे वे मक्का मदीना और बगदाद तक पहुँचे। उन्होंने मुसलमानों को हक्की मुसलमान बनने के लिए कहा, हिन्दुओं को सच्चा और योगियों को वास्तविक योगी बनने को कहा। जब वे दिवंगत हुए तो हिन्दुओं ने उन्हें अपना गुरू मानकर दाह संस्कार करना चाहा और मुसलमानो ने अपना पीर मानकर दफनाना चाहा किन्तु वह तो इस साम्प्रदायिकता से कहीं ऊँचे, कही महान थे।

मेरे गुरूदेव परमात्मा की स्तुति का गायन विमुग्ध होकर करते। वह किसी पण्डित अथवा तथाकथित ज्ञानी के वचन नही वरन उसके वचन हैं जो प्रेम रूपी मदिरा में पूर्ण रूप से डूबे हुए थे। इसलिए वे इन्हे दोहराते चले जाते और मस्ती में झूमते हुए उच्चारित करते रहते। उनका एक-एक शब्द बहुमूल्य है। उसे गभीरता पूर्वक समझना होगा। यही गुरूवाणी है। वेदो ने इसे परावाणी, कुरान ने इसे अरशीकलाम और बाईबल ने दिव्य-अमृत कहा है। मेरे गुरूदेव ने इसे धुर की वाणी(ईश्वरीय)का नाम दिया है।

"धुर की वाणी आई तिनि सगली चिंत मिटाई।" (गुरू०ग०सा० पृष्ठ ६२८) गुरुवाणी किसीके बौद्धिक विचारमात्र नही है और न ही यह मानव रचना अथवा गीति काव्य है, प्रत्युत विशुद्ध अन्त.करण द्वारा अभिव्यक्त हुआ ईश्वरीय ज्ञान है जो परमेश्वर की स्वय की वाणी है। सद्गुरू ने स्वय कहा है कि यह अमृत वाणी मेरी रचना नही है क्योंकि मैंने स्वतन्त्र रूप से कुछ नहो कहा है। "हे प्रभु ! आपकी प्रेरणा से वशीभूत होकर जो आपने मुझसे कहलवाया वही मैंने कहा। यथा—

"ता मै कहिआ कहणु जा तुझै कहाइआ" (गु० ग्र० सा० ५६६)
तथा गुरु श्रुति—"जैसी मैं आवै खसम की बाणी तैसडा करी गिआन वे लालो॥
हउ आपहु बोलि न जाणदा मै कहिआ सभु हुकमाउ जीउ॥" (गु०ग्र०सा०पृष्ठ ७२२)

इतिहास साक्षी है कि जब गुरू नानक साहब आनन्द स्वरूप परमात्मा में पूर्णतया निमग्न हो जाते तब अपने प्रिय साथी भाई मरदाना जी से कहते—रबाब बजाओ वाणी अवतरित हुई है। मरदाना रबाब बजाता और गुरूदेव स्वय गुरूवाणी का गायन करने लग जाते। इस अमृत वाणी का सकलन जो गुरू अर्जुन देव ने गुरू ग्रन्थ साहब रूप मे किया उसे आज सभी श्रद्धालु वाणी के प्रेमीजन दस गुरूओं की साक्षात प्रतिमा के रूप में पूजा करते हैं।

"गुरवाणी का सूत्र वस्तुत: मनन है"। अत: मेरा यह अटूट विश्वास है कि यदि मानव गुरूवाणी में दिए गए अमूल्य उपदेशों का अनुसरण अपने जीवन में करे तो मानव समाज में कभी कोई विकार उत्पन्न नहीं होगा। कोई युद्ध, हत्या, लूटमार, बर्बरता, घृणा तथा १९४७ की हृदय-विदारक घटनाओं की पुनरावृत्ति न होगी। चारों ओर सुख शांति का साम्राज्य होगा।

—•—

गुरू ग्रन्थ साहब की संचयन-विधि

गुरू ग्रन्थ साहब का मनन करने वाले सभी प्रेमी जन इसे अपना पवित्र इष्ट मानते हैं। जिस भाँति हिन्दुओं को वेद, पुराण, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्भगवद्गीतादि धर्मग्रन्थ, मुसलमानों को कुरान और ईसाईयों को बाईबल मान्य हैं, उसी भाँति गुरू ग्रन्थ साहब अनेकानेक श्रद्धालुओं को परम पूज्य मान्य है। आज असख्य जन इस पावन आदि ग्रन्थ का सत्कार प्रत्यक्ष गुरू तुल्य करते है।

गुरुवाणी के सकलन, सम्पादन तथा उसे गुरु ग्रन्थ साहब के रूप मे प्रस्तुत करने का श्रेय पचम पात्शाही गुरु अर्जुनदेव साहब को प्राप्त हुआ जो अपने नाना गुरु अमरदास साहब के वरदान स्वरूप गुरु-वाणी के बोहिता (जहाज) बने। तथ्य यह है कि एक बार गोइन्दवाल मे गुरु अर्जुनदेव साहब अभी तीन ही वर्ष के थे कि अपने नाना गुरू अमरदास साहब की चारपाई पर चढने लगे तो उनकी माती बीबी भानी ने देख लिया। इन्हे हाथ से झकझोर कर बोली—"बुजुर्गों के आसन पर छोटों का बैठना उचित नही।" इतने में गुरू अमरदास साहब आ गए और कहने लगे, 'बेटा अभी से इस गद्दी पर बैठने का प्रयत्न मत करो। बाद मे यही गद्दी तुम्ही से सुशोभित होगी।" मेरे गुरु अमरदास ने यह भी वरदान दिया—

"दोहिता बाणी का बोहिता।"

"ऐ दोहते ! तुम बाणी के बोहिता (जहाज) बनोगे। तुम्हारी वाणी कलियुग की तारक बनेगी और लाखो जीवो का उद्धार करेगी।" कालान्तर मे गुरु अमरदास जी के यह वचन समय की कसौटी पर खरे उतरे।

गुरू ग्रन्थ साहब की सचयन-विधि का कारण भी वही था, जो ऋग्वेद की वाणी को लिपिबद्ध करने का था। श्री ए० ए० मैकडानल अपने ग्रन्थ 'प्राचीन भारत' मे लिखते है—"ऋग्वेद का सपादन क्रम साम तथा यजुर्वेद से भिन्नता रखता हुआ एक ऐतिहासिक घटना है। क्योंकि इसके प्राचीन सपादकों का एक मात्र प्रयोजन यह था कि इस अमूल्य परमपरागत निधि को नष्ट एव प्रक्षिप्त होने से सुरक्षित रखा जाये।"

आदि गुरु बाबा नानक साहब एक महान सुधारक थे। प्रत्येक सुधारक अपनी वाणियो को सुरक्षित रखने के लिए चेष्टा करता है। अत गुरुदेव के मन मे वाणी सग्रह करने की भावना का प्रादुर्भाव हुआ। गुरू नानक साहब ने मेली टोपी के साथ अपनी वाणी भी पोथी रूप मे गुरु अगददेव साहब को गुरु गद्दी के समय दी। उस समय इस सग्रह का नाम 'पोथी' था।

'तब गुरु बाबा नानक जी गुरु अगद कउ सबद की थापना देकर समत १५९५ असु वदी १० सचे खड सिधारे - ' (बाबा मिहरबान जी दीआ गोष्टा)—तथा "तिलु महिल शब्द होआ, सो पोथी जबानी गुरु अंगद जोग मिली"—(पुरातन जन्म साखी की एक प्रति)।

इस प्रकार निश्चय ही प्रत्येक गुरु को अपने पूर्व गुरुओं की वाणियाँ गुरु-गद्दी के साथ पैतृक सम्पत्ति के रूप में उत्तराधिकारी गुरु को प्राप्त होती रही होगी। भाई सहंसरराम ने तो गुरु अमरदास साहब की देख-रेख में प्रथम तीन गुरु साहबान की वाणियो को दो खण्डों में संचित किया था। वे खण्ड बाबा मोहन की पोथियों के नाम से प्रसिद्ध थी. जो गोइन्दवाल से अमृतसर लाई गई। गुरु अर्जुनदेव जी ने इनका भी अवलोकन किया। गुरु अर्जुनदेव साहब ने बीड की तैयारी के समय स्त्रय पोथी का प्रयोग किया है। आदि बीड में सूची पत्र के आरम्भ में उन्होने जो सूचना लिखवाई थी वह इस प्रकार है :—

"सूची पत्र पोथी का ततकरा लिखिआ रागां का तथा शब्दां का जपु स्री गुरु रामदास जी किआं दसखता का नकल।"

पहले इसका नाम 'पोथी' था फिर 'ग्रन्थ साहब' और गुरु गोबिन्दसिंह साहब ने इसे 'आदिग्रंथ' का नाम दिया।

गुरु रामदास साहब नौ वर्ष की अलपायु से ही गुरु अमरदास साहब के मम्पर्क में आ गए थे। पूर्ववर्ती गुरुओं की वाणी को नित्य सुनने-पढने और गायन द्वारा स्मरण हो जाना स्वाभाविक ही था। अत उन वाणियों का प्रभाव भी गुरु रामदास द्वारा लिखित वाणी पर भी स्वभावतना पडा। संगृहीत वाणी उसी शुद्ध रूप में सुरक्षित थी जिसमें वह मूल सृष्टा के मुख से निमृत हुई थी।

इस ज्ञान-भण्डार को संकलित करके व्यवस्थित रूप देने की भावना मेरे गुरु अर्जुनदेव साहब जी में जगी। यथा—

> "एक दिवस प्रभ प्रात· काल ॥
> दइआ भरे प्रभ दीन दिआल ॥
> मन महि उपजी प्रगटइओ जग पंथ
> तिह कारन कीजे अब ग्रन्थ॥ (महिमा प्रकाश)

अमृतसर में रामसर के किनारे पर ईसवी सन् १६०१ मे गुरु ग्रन्थ साहब का प्रारम्भ करके ईसवी सन १६०४ में सम्पूर्ण किया। दिव्य वाणी के लेखक भाई गुरुदास थे।

समस्त प्राचीन धर्म ग्रन्थों के सार-तत्त्व, जो नाना वेषो, पाखण्डों, दम्भों, भ्रमों तथा अन्ध-विश्वासों के मिथ्या कर्मकाण्ड के पीछे अन्धकार में लुप्त पडा था, मेरे गुरुदेव ने इस पवित्र आदि ग्रन्थ द्वारा उसे पुनः प्रकाशित किया।

इस अमूल्य ग्रन्थ का सम्पादन कार्य करते हुए कई स्थलों पर 'सुधु' और 'सुधु कीचै' शब्दों का प्रयोग किया है। इसका अभिप्राय है कि उन्होंने स्व अवलोकन द्वारा इसका शुद्ध रूप किया है तथा भाई गुरुदास को भी सजग किया कि इस सद्वाणी का मूलरूप से भाव शुद्ध ही रखना।

सर्वप्रथम इस पावन बीड का प्रकाश हरि मन्दिर अमृतसर में किया। उस दिन प्रथम मुख्य ग्रन्थी बाबा बुड्डा साहब को नियुक्त किया। उन्ही दिनों माँगट का एक प्यारा गुरुदेव के दर्शन के लिए आया और सेवा कार्य पूछा। मेरे गुरुदेव ने तैयार की हुई बीड को लाहौर से साजिल्द करवाने के लिए उसे भेज दिया। बीच मार्ग ही में भाई बन्नो ने इस अमूल्य ग्रन्थ की एक और प्रतिलिपि तैयार करने की ठानी। यथा :

"भाई बन्नो जी करीओ, सिरी गुरु ग्रन्थ उतारा।" (गुरु बिलास ६वीं)

अपने १२ लिपिकों को भाई गुरुदास वाली बीड के खुले पत्र बाँट देते। लाहौर पहुँचने तक बीड़ की एक और प्रतिलिपि तैयार हो चुकी थी। भाई गुरुदास ने सूरदास के एक पद "छाडि मन हरि विमुखन को सगु' की प्रथम पक्ति लिखकर ही छोड दिया, किन्तु भाई बन्नो के लिपिको ने प्रतिलिपि तैयार करते समय उसे सम्पूर्ण ही लिख डाला। भाई बन्नो के लिपिको द्वारा अनपेक्षित हस्ताक्षेप से राग मारू के अन्त में मीराबाई का यह शब्द "मन हमारो बेधीक भाई।' भाई बन्नो दोनों बीडें, भाई गुरुदास द्वारा लिखित 'आदि बीड' एवम् बन्नो के लिपिकों द्वारा बनाई गई उसकी प्रतिलिपि के जिल्द बंधवा कर गुरु अर्जुन देव साहब के सम्मुख उपस्थित की। 'आदि ग्रन्थ' के गुरु साहबान, भक्त जन तथा दिव्य जीवनशाली भाट्ट परम आत्मिक अनुभव वाले रचयिता थे। अत गुरु ग्रन्थ साहब अनुभव पूर्ण ज्ञान का भडार है। इसके रचयिताओ का अनुभव स्वतत्र था एवं सीधा जीवन से सम्बन्ध रखता था। ब्रह्मकेय मे ही उनकी वाणी का भावावेश हुआ है। यह वाणी स्वतः उनके अन्तरात्मा मे स्फुटित हुई जो लौकिक जीवन का अलौकिकता से सम्बन्ध स्थापित करती है। सम्भवत इसी कारण ही 'वाणी बोहित' को तैयार कर गुरु अर्जुनदेव साहब यह घोशणा की —

'सतहु सुखु होआ सभ थाई। पारब्रह्म पूरन परमेस्वर रवि रहिआ सभनी जाई।

धुर की वाणी आई। तिनि सगली चिंत मिटाई ॥

दइआल पुरख मिहरबाना। हरि नानक साचु वखाना।" (सोरठ महला ५ पृष्ठ, ६२८)

आदि ग्रन्थ का मुख्य विषय भक्ति मार्ग की धर्म साधना है। दर्शन निरूपण उसका मुख्य विषय नही है। इसकी वाणी में भाव है, संगीत है, विचार हैं और इसके साथ लोक भाषा की सरल एव सहज शैली है, जिसने इसे यथार्थ शब्दो में "धुर की वाणी आई। तिनि सगली चिंत मिटाई।" के पद पर आसीन किया है।

गुरु तेगबहादुर साहब के जीवन में जो मूल बीड भाई गुरुदास द्वारा गुरु अर्जुनदेव साहब ने लिखवाई थी वह करतारपुर मे ही भाई धीरमल के यहाँ स्थापित थी।

गुरु ग्रन्थ साहब जिस रूप मे आज हमे उपलब्ध है आदि पावन ग्रन्थ को यह प्रतिष्ठा मेरे दसम पिता गुरु गोबिन्दसिंह साहब ने प्रदान की। ईसवी सन १७०५ मे गुरु गोबिन्दसिंह साहब ने दमदमा साहब मे भाई मणि सिंह द्वारा इसका संकलन किया जिसमें नौवी पातशाही गुरु तेगबहादुर साहब की वाणी भी विभिन्न रागो के अन्तर्गत यथास्थान सग्रहित कर दी। गुरु गोविन्द सिंह जी ने 'जोनि जोत' समाने मे पहले ईसवी सन् १७०७ में हजूर साहब (नादेडे) में इसे गुरु गद्दी पर प्रतिष्ठित कर दिया। आज गुरु ग्रन्थ साहब की सभी प्रतिया इस रूप की प्रतिलिपि हैं, जिसकी असख्य श्रद्वालु जन दस गुरु की साक्षात प्रतिमा के रूप मे पूजा करते हैं।

आदि गुरु ग्रन्थ साहब के भक्तो ने अपने सिद्धान्त को किसी धर्म अथवा जाति विशेष मे लिये सीमित नही किया। वे न हिन्दू थे न मुसलमान :—

"ना हम हिन्दू न मुसलमान। अलह राम के पिंड परान।" —(भक्त कबीर पृष्ठ ११३६)

यदि कोई व्यक्ति एक परमात्मा से प्रेम करता है और अन्य सब दुविधाओ से मुक्त हो जाता है, तो चाहे वह किसी धर्म से सम्बन्धित क्यो न हो वह जीवन-मुक्त है :—यथा :

"कबीर प्रीति इक सिउ कीए आन दुबिधा जाए ॥

भावै लावे केम करु भावै घररि मुडाए ॥ २५॥" (भक्त कबीर पृष्ठ १३६५)

दुःख की बात यह है कि आज मानव चन्द्रलोक आदि का पता करने जा रहा है, किन्तु अपनी दुनिया मे भ्रमित एव पथभ्रष्ट हुआ इसी के भेदो से अपरिचित है।

—•—

गुरू ग्रन्थ साहब के वाणीकार

निःसन्देह गुरु ग्रन्थ साहब में संगृहीत वाणी का अधिक भाग सद्‌गुरुओं की वाणी से ही निर्मित है तथापि इसकी यह एक अद्‌भुत विशेषता है कि इसमें उन संत महापुरुषों एवम् दरवेशों और फ़कीरों की भी वाणी संकलित है जिनका जन्म बारहवीं से सत्रहवीं शती के बीच भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों तथा भिन्न-भिन्न जातियों मे हुआ था। यही नहीं वे भिन्न-भिन्न साधना करके अपने जीवन को निर्मल एवम् उज्ज्वल बनाकर आध्यात्मिकता के शिखर पर पहुँचे थे। मेरे गुरुदेव ने भाट्टों के रचे गुर-स्तोत भी इस पावन ग्रन्थ मे उपसंहार रूप में सम्मिलित कर दिए ताकि पाठक गुरु प्रशस्ति से ही पाठ की इति कर सकें।

गुरु ग्रन्थ साहब में छः गुरुओं यथा :

(१) गुरु नानक साहब
(२) गुरु अंगददेव साहब
(३) गुरु अमरदास साहब
(४) गुरु रामदास साहब
(५) गुरु अर्जुनदेव साहब
(६) गुरु तेगबहादुर साहब

पन्द्रह कीर्तिमान भक्तों एवं दरवेशों यथा:

(१) भक्त कबीर
(२) भक्त त्रिलोचन
(३) भक्त बेणी
(४) भक्त रविदास
(५) भक्त नामदेव
(६) भक्त धना
(७) शेख फ़रीद
(८) भक्त जयदेव
(९) भक्त भीखन
(१०) भक्त सैण
(११) भक्त पीपा
(१२) भक्त सधना
(१३) स्वामी रामानन्द
(१४) भक्त परमानन्द
(१५) भक्त सूरदास।

गुरुओं के निकटवर्ती चार चारण भाट्टों यथा:

(१) बाबा सुन्दर (२) सत्ता डूम (३) राय बलवंड (४) भाई मरदाना।

ग्यारह दिव्य जीवनशाली श्रद्धालु भाट्टों यथा:

(१) भट्ट कलसहार
(२) भट्ट जालप
(३) भट्ट कीरत
(४) भट्ट भिखा
(५) भट्ट सल्ल
(६) भट्ट नल्ल
(७) भट्ट भल्ल
(८) भट्ट गयंद
(९) भट्ट मथुरा
(१०) भट्ट बल्ह
(११) भट्ट हरबंस।

की अमूल्य दिव्य-वाणी संगृहीत है।

गुरु ग्रन्थ साहब में दिये गए छ गुरुओं, पन्द्रह भक्तों, चार चारण-भाट्टों और ग्यारह दिव्य जीवन-शाली भाट्टों का कुल ३६ महापुरुषों की संक्षेप जीवन परिचय निम्नलिखित है:—

गुरु नानक साहब
(ई० १४६६ से ई० १५३६)

पहली पातृशाही गुरू नानक साहब का जन्म 'तलवडी' नामक ग्राम वर्त्तमान 'ननकाणा साहब' में बेदीवंश में ईसवी सन् १४६६ में हुआ था। शैशव अवस्था में इनको संस्कृत तथा फारसी की शिक्षा दी गई। इनके हृदय में बाल्यकाल से ही आध्यात्मिक अभिरुचियाँ और प्रवृतियाँ पिता को दिखाई देने लगी। पिता महिता कालू ने इनके हृदय में सासारिक कार्यों की रूचि अंकुरित करने के लिए कुछ व्यवसाओं में संलग्न करने के विफल प्रयत्न किए। निराश होकर उन्होने उनको सुलतानपुर लोधी भेज दिया जहाँ इनको नवाब के मोदी खाने में नौकरी मिल गई और लगभग १३ वर्ष तक यहाँ कार्य करते रहे।

सुलतानपुर लोधी के समीप वेई' नाम की नदी मे प्रतिदिन प्रात गुरु नानक साहब स्नान करने जाया करते थे। कहते हैं कि एक दिन जब वे नदी में स्नान के लिए गए तब इनको भगवान के दर्शन हुए और भगवान ने इन्हे 'गुरुता' के प्रकाश का दान दिया। इस घटना के शीघ्र अनन्तर यह भगवान के निर्दिष्ट उद्देश्य को पूर्ण तथा धर्म को प्रतिष्ठित करने के प्रयोजन से देश भ्रमण के लिए प्रस्थित हो गए।

गुरू नानक साहब ने धर्म का प्रचार और अज्ञानवश फैले अधर्म का नाश करने के उद्देश्य से समस्त भारत तथा कई अन्य देशो का भ्रमण भाई मरदाने को लेकर किया।

(१) हिन्दू तीर्थों की यात्रा इनकी प्रथम यात्रा थी।

(२) पजाब से सिहल द्वीप (लका) तक इनकी द्वितीय यात्रा थी।

(३) काश्मीर तथा हिमाचल के कुछ अन्य भागो की इनकी तृतीय यात्रा थी।

(४) मुसलमानो के धर्म केन्द्रो की इनकी चतुर्थ यात्रा थी।

इन चार यात्राओ के अनन्तर यह करतापुर मे रहने लगे। सैदपुर, पाकपटन, मुलतान और अचल बटाले में भी मेरे गुरु नानक साहब ने सभी धर्मों की एकता एवम् समानता का सन्देश दिया। धर्म के सम्बंध में अपने दार्शनिक तत्त्व गुरुदेव ने अपने आदि 'मूलमत्र मे भर दिया है जो इस प्रकार है—

१ ओकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभ गुर प्रसादि ॥(जपु जी पृष्ठ १)

इस मूलमंत्र में सत्य निर्माण, स्वतन्त्रता और शिष्टाचार पर बल दिया गया है। गुरुदेव ने अपनी धर्म यात्राओ के काल में 'संगतें' स्थापित की थी, वे अपने अनुयायिओ के व्यापक संघटन एवम् जत्थे बंदी के अभिलाषी थे। इस दिशा मे उन्होने निम्नलिखित विशेष कार्य किए—

(१) अपनी वाणी को संगृहित किया।

(२) करतारपुर मे एक विशेष संगत की स्थापना की।

(३) उन्होंने अपने प्रसिद्ध सिद्धान्तो को क्रियात्मक रूप दिया। यथा —

जीविका के लिए कर्म करना, भगवान का नाम जपना, और अपनी कमाई मे से अन्यों को खिला-कर स्वय खाना।

(४) उन्होने अपना उत्तराधिकारी 'भाई लहिणा' जी को घोशित किया और उसका नाम गुरू अंगददेव साहब रक्खा।

अठारह वर्ष करतारपुर में रहने के पश्चात ई० सन् १५३६ में 'ज्योति जोत' समा गए।

गुरू अंगददेव साहब
(ई० १५०४ से ई० १५५२)

दूसरी पातशाही गुरू अंगददेव साहब का जन्म 'मते दी सरां' नामक ग्राम में ईसवीय सन् १५०४ में हुआ था। यह देवी माता के अनन्य उपासक थे। इन्होंने स० १५३१ के समीप ज्वालामुखी यात्रा के बीच करतारपुर में गुरू नानक साहब के दर्शन किए। सन् १५३९ मे गुरू नानक साहब ने इन्हें अपना उत्तराधिकारी घोषित किया

इनके विचार में प्रभु प्राप्ति के प्रमुख साधन हैं गुरु भक्ति, गुरु सेवा और भगवान नाम का भजन। सेवा ही प्रभु प्राप्ति का उत्तम साधन है। धर्म और उसके आन्दोलन की परिपुष्टि के प्रयोजन से क्रियात्मक उपाय निम्न हैं :

(१) गुरू नानक साहब की वाणी को स्वरचित वाणी का योग देकर वृद्धि की।
(२) गुरू नानक साहब की जन्म साखी लिखवाई।
(३) धर्मप्रचार स्थान खडूर को बनाकर अनुयायियों का कार्य क्षेत्र विशाल कर दिया।
(४) विद्या के प्रचार के लिए एक पाठशाला स्थापित की।
(५) गुरुमुखी लिपि को पढाने का विशेष प्रबन्ध किया।
(६) गुरू नानक साहब के निर्मित तीन सिद्धान्तों को प्रमुखता दी।
(७) मानवीय एकता की पुष्टि के लिए लगर को विशेष महत्त्व दिया।
(८) ईसवीय १५५२ में 'जोति जोत' समाने से पूर्व उन्होंने अपना उत्तराधिकारी भाई अमरू' जी को घोषित किया और उसका नाम गुरू अमरदास साहब रक्खा।

गुरू अमरदास साहब
(ई० १४७९ से ई० १५७४)

तीसरी पातशाही गुरू अमरदास साहब का जन्म 'बासरके' नामक ग्राम में ईसवी सन् १४७९ में हुआ था। बीबी अमरो द्वारा गुरुवाणी के श्रवण से प्रभावित होकर गुरू अंगददेव साहब की शरण में जाकर रहने लगे। जब इनकी आयु ७२ वर्ष की थी इनकी अपूर्व श्रद्धा और सेवा के कारण गुरू अंगद देव साहब ने इन्हे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया और १५५२ से १५७४ तक इस गद्दी पर आसीन रहे।

इन्होने बतलाया कि गुरु सेवा और नाम-साधना से भ्रम का नाश होने पर सहजावस्था की प्राप्ति होते ही आनन्दावस्था में आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है।

९० वर्ष की आयु तक इन्होंने निम्न कार्य किए.—

१. गोइन्दवाल में 'बावडी' नामक तीर्थ स्थान बनाया।
२. २२ धर्म प्रचारक केन्द्रों की स्थापना की जिन्हे 'मंजी' (मंच पीठ) का नाम दिया गया।
३. गुरु भक्तों में उच्च-नीच अथवा अमीर-गरीब का भेद-भाव मिटाने के लिए इन्होने 'लंगर' की परम्परा चलाई जिसमें संगठन की भावना दृढ़ हुई।

४. उन्होने अपने पुत्रों की उपेक्षा करके विनीत जामाता 'भाई जेठा' जी को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया और उसका नाम गुरु रामदास साहब रक्खा।

पचानवें वर्ष की लम्बी आयु बिता कर सन् १५७४ में 'जोती जोत' समा गए।

गुरू रामदास साहब
(ई० १५३४ से ई० १५८१)

चौथी पातशाही गुरु रामदास साहब का जन्म लाहौर में सोढी वंश में ईसवी सन् १५३४ में हुआ। संगत के साथ यह गोइन्दवाल आए। गुरु अमरदास साहब ने इनकी निष्ठा तथा अथक सेवा से प्रभावित होने पर अपन पुत्री बीबी भानी का विवाह इनके साथ कर दिया।

इन्होने मानवीय व्यक्तित्व के समस्त पक्ष प्रभु-प्रेम के बल से गुरुवाणी को विशेष रूप से संवाछित किया। प्रभु-प्रेम विह्वल होने वाले आदर्श व्यक्ति को इन्होने 'अमृतमय नाम से समादृत किया। गुरु ग्रन्थ साहब की २२ वारो मे अत्यधिक सख्या इनकी है।

पूर्ववर्त्ती गुरुओ के कार्य की पुष्टि के लिए इन्होने निम्न कार्य किए : –

१ अकबर द्वारा बीबी भानी जी को भेंट दी हुई भूमि पर गुरुदेव ने 'गुरु का चक्क' नाम ग्राम बसाया जो कालान्तर अमृतसर नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस भूमि पर स्थापित हरि मदिर की नींव का पत्थर इन्होने मुसलमान दरवेश मियाँ मीर से रखवाया।

२ धार्मिक निर्माण सम्बधी कार्यक्रमो के लिए इन्होने 'मसद' परम्परा प्रचलित की।

३ प्रचार कार्य के लिए इन्होने भाई हिन्दाल के द्वारा जडियाले मे, भाई गुरु दास के द्वारा आगरा मे और स्वय गुरुदेव ने अमृतसर मे केन्द्र बनाये। गुरुदेव ने गुरुवाणी के प्रचार हेतु हस्तलिखित गुटके स्वयं प्रचलित किए।

गुरु रामदास जी ने अपने तीन पुत्रो मे से गुरू अर्जुनदेव को योग्यतम समझा और उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया और उसका नाम गुरु अर्जुनदेव साहब रक्खा।

ईसवी सन् १५८१ मे यह 'जोति जोत समा गए।

गुरू अर्जुनदेव साहब
(ई० १५६३ से ई० १६०६)

पाँचवी पातशाही गुरू अर्जुनदेव साहब का जन्म ई० सन् १५६३ में गोइन्दवाल में हुआ। अपने भाईयो मे मे यह सबसे अधिक ईश्वर-भक्त, गुरु-सेवक तथा मानवता प्रेमी थे। इनके पूज्य पिता जी ने प्रेम-पत्रों में विह्वलता की अपूर्व शक्ति द्वारा प्रभावित होकर इनको सन् १५८१ में गुरुपद के लिए मनोनीत किया।

धर्म कार्य को अदम्यशक्ति प्रदान करने के लिए गुरुदेव ने निम्न कार्य किए.—

१. इन्होंने अपने पूज्य पिता जी के अपूर्ण कार्य को पूर्णता दी। हरिमंदिर जो अभिरामता में विलक्षण है, चारों दिशाओं में जिसके एक-एक द्वार है जो समान रूप का द्योतक है, इन्होंने निर्मित किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने तरनतारन तथा करतारपुर दो नगर बसाये। तरनतारन में एक विशाल सरोवर का निर्माण करवाया और लाहौर में बावडी जी का।

२. इन्होंने 'दसवंध' की प्रथा चलाई जिसके अनुसार दसों नखों की कमाई का दशम अंश धर्मार्थ दिया जावे।

३. इनका प्रमुखतम कार्य यही था कि अपने पूर्ववर्ती गुरु साहबान की वाणियों, भक्तों एवम् सन्तों तथा चारण भाटों की गुरु-प्रशस्ति की वाणियों को एकत्रित करके गुरु ग्रन्थ साहब का संकलन किया।

४. गुरु ग्रन्थ साहब मे अधिकतर वाणी इन्ही गुरुदेव की है। प्रभु-भक्ति वा नाम साधना के व्यक्तित्त्व को इन्होने ब्रह्मज्ञानी कहा। निर्लेप रहना, निर्दोषरहत समदृष्टा होना, धैर्यधारी होना और सहज सम्पन्न जीवन यापन करना ब्रह्मज्ञानी के लक्षण हैं जिनमे वे स्वयं एक ज्वलत उदाहरण थे।

ईसवी सन् १६०६ मे इनके आदेशानुसार इनके सुपुत्र को उत्तराधिकारी घोषित किया गया और उनका नाम गुरु हरिगोबिन्द साहब रक्खा गया। इनके समय के मुगल सम्राट जहाँगीर ने इनकी विलक्षणता को अज्ञानतावश नही पहचाना। इन्हे मुस्लिम धर्म का विरोधी समझा। इन पर अनेक दोष आरोपित करके इन्हे बन्दी बनाया गया। सम्राट की नृशसता के कारण मरे गुरुदेव जी ने ईसवी सन् १६०६ मे शहीदी पाई।

गुरु तेगबहादुर साहब
(ई० १६२१ से ई० १६७५)

नौवी पातशाही गुरु तेगबहादुर साहब का जन्म अमृतसर मे ई० सन् १६२१ में हुआ। गुरुदेव छट्ठे गुरु हरि गोबिन्द जी के सुपुत्र थे गुरु हरगोबिन्द साहब, गुरु हरि राय साहब, गुरु हरकिशन साहब के अनतर यह गद्दी पर आसीन हुए।

इनकी वाणी में नाम स्मरण गुरु भक्ति एवम् सच्चे गुरुमुख बनने तथा ज्ञानी पद तक पहुँचने के लिए वैराग्य, तप और त्याग जैसी भावना पर बल दिया है। ज्ञानो का जीवन निर्भयता सुख-दु.ख सम भाव का है। वह बाह्य आकर्षण से दूर तथा मानव नश्वरता की भूरि-भूरि पहचान रखता है।

विश्व धर्म का सन्देश देने के लिए गुरुदेव पजाब से बाहर पूर्वी भारत मे सपरिवार पर्यटन किया। पटना में पुत्रोत्पत्ति हुई। कहिलूर के राजा से माखोवाल ग्राम लेकर आनन्दपुर बसाया। इसी स्थान को धर्म प्रचार का केन्द्र बनाया जहा इनके उपदेशों एवम् आचार व्यवहार से प्रभावित होकर कई मुसलमान इनकी शरण मे आ गए। कीश्मीरी पंडितो के लिए जब औरंगजेब के अत्याचार—जनेऊ टीका धोती धर्म चिन्हों के अवहेलना का आदेश हुआ, तब गुरुदेव के पास आनन्दपुर आए। दूरदर्शी महापुरुष गुरुदेव ने सहज ही उच्चरित किया कि इस घोर आतंक एवम् अत्याचार के निवारण के लिए किसी सन्त का

बलिदान अनिवार्य है। तत्पश्चात दिल्ली में इन्हें बंदी बनाकर लाया गया। सन १६७५ में धर्म के सिद्धान्तों की रक्षा हेतु उन्होंने अपनी बलि दे दी, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण दिल्ली में 'सीसगंज' और 'रकाबगंज' गुरुद्वारे हैं। इनकी शहीदी के कारण इनका नाम 'हिंद की चादर' से प्रसिद्ध हुआ। इनके सुपुत्र अभी नौ वर्ष के ही थे जब गुरुदेव पिता की शहीदी के पश्चात सन १६७५ मे आनन्दपुर मे उन्हे इनका उत्तराधिकारी घोषित किया गया और इनका नाम गुरु गोबिन्द सिह साहब रक्खा।

भक्त कबीर
(ई० १३९८ से ई० १४८५)

भक्त कबीर जी के जन्म के विषय में यह प्रसिद्ध है कि इनका जन्म एक जुलाहा परिवार में काशी मे हुआ। अन्धविश्वासो एवम आर्थिक रूढ़ियो के विरोधी भक्त कबीर धार्मिक क्रान्ति के जन्मदाता थे। जिस स्थिति मे वह स्वामी रामानद जी के शरण मे राम मत्र उच्चारित करके आये, उससे इनकी असीम गुरु भक्ति भावना प्रगट होती है। गुरु ज्ञान के द्वारा उन्होने परमात्मा से अभिन्नता प्राप्त कर ली। निर्भय और निशक भक्त कबीर ने पडित काजी मुल्ला योगी साधु सब पर एक समान खण्ड का खडग चलाया। बादशाह सिकन्दर लोधी ने इन्हे मुसलिम धर्म का विरोधी मानकर बदी बना लिया। गगा नदी की बाढ़ मे और मस्त हाथी के आगे डालकर इनकी हत्या करनी चाही पर उन्होने अपने जीवन के लक्ष्य की पूर्ति के लिए धैर्य का सयम नही छोड़ा। इनका महान ग्रन्थ 'कबीर बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है।

गुरु ग्रन्थ साहब मे भक्त कबीर जी द्वारा रचित सत्तरह रागो में विभक्त ५४० शब्द तथा श्लोक संग्रहित हैं। गुरु अर्जुनदेव साहब ने भक्तो की वाणी मे इनको प्रथम स्थान दिया है।

भक्त त्रिलोचन
(ई० १२६७ से ई० १३३५)

भक्त त्रिलोचन जी का जन्म सन १२६७ मे वैश्व कुल मे शोलापुर के 'बारसी' ग्राम में हुआ। यह भक्त नामदेव के समकालीन थे। यह अधिकतर महाराष्ट्र मे रहे। इनके कुल ४ पद गुरु ग्रन्थ साहब में सपादित है। इनमे एक पद ऐसा भी है जिसमे मृत्यु समय की इच्छा के फल पर विचार किया गया है। शेष तीनो शब्दो मे माया वेषाडम्बर और सासारिक असारता की ओर सकेत है। प्रभु को पहचानने पर अधिक बल दिया है।

भक्त बेणी

भक्त बेणी जी का जन्म संवत १६६० विक्रमी में असनी' नामक ग्राम में हुआ। भक्त माल ग्रन्थ के अनुसार वह जाति से ब्राह्मण थे, अति निर्धन होने के कारण इन्हें वैराग्य हो गया। अपना जीवन ईश्वर की अराधना में समर्पित कर दिया। राजा उनकी दृढ तपस्या और नाम साधना से प्रेरित होकर भक्त बेणी जी के गृहस्थ की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहे। इस प्रकार घर बार संतुष्ट और भक्त बेणी का जीवन भक्ति व शान्ति में व्यतीत हुआ।

गुरु ग्रन्थ साहब में भक्त बेणी जी के ३ पद सिरी राग, रामकली और प्रभाती रागों में प्राप्त हैं। इनमें कर्मकाण्ड के विरोध मे आत्म तत्व का दर्शन, माया के प्रभाव एवम मनमुख के कष्टों तथा निर्गुण की बडाई आदि विषयों पर सरस अभिव्यक्ति की है। रामकली राग मे योगियो की शव्दावली का मूल प्रयोग किया है। इन्होने अपने काल मे प्रचलित कर्म काण्ड, पौराणिक धर्म और योगमत की कटु आलोचना की है।

भक्त रविदास

भक्त रविदास जी का जन्म काशी में हुआ था। जन्म तिथि संदिग्ध है। चमार जाति के होते हुए भी निर्भयता पूर्वक अभिमानी पण्डितो के समक्ष प्रेम-भक्ति के बल से यश प्राप्त किया। यह भक्त कबीर के समकालीन थे और स्वामी रामानन्द के शिष्य थे।

भक्त रविदास द्वारा भेंट की गई दमडी को गगा माता ने स्वयं अपने हाथों से स्वीकार किया। किसी भक्त द्वारा इन्हें पारस पत्थर भेंट होने पर इन्होने कहा कि मेरे लिए तो भगवान का नाम ही पारस, कामधेनु और चिंतामणि हैं। अपनी ऐसी ही सत्य और अत्यन्त गहरी श्रद्धा-भक्ति के कारण काशी के विद्वान पंडित भी उन्हें प्रणाम करते थे।

मेड़ता की महारानी मीरा बाई और मेवाड की रानी झाली की इन पर अपूर्व श्रद्धा थी तो भी इन्होने अपने अकिंचन एवम् सरल जीवन को नही छोडा।

गुरु ग्रन्थ साहब मे इनके ४१ पद संगृहित हैं। इनमे तीव्र प्रेमात्मिकता उपलब्ध है। अधिकतर शब्द ईश्वर गुरु तथा नाम माया-सृष्टि से सम्बंधित है। प्रभु पर किए मीठे व्यंग्य और चुटकियों। यथा—

"जउपै हम न पाप करता अहे अनंता पतित पावन नामु कैसे हुंता।" (गु० ग्र० सा० पृष्ठ ९३) से प्रभु के साथ इनका सामीप्य प्रकट होता है।

भक्त नामदेव
(ई० १२७० से ई० १३५०)

भक्त नामदेव जी का जन्म ई० १२७० महाराष्ट्र के 'नरसी' वामनी नामक ग्राम में हुआ था। इनके धर्म गुरु बिशोभा खेचर थे और यह पंढरपुरी विट्ठल के परम भक्त थे। श्रद्धापूर्वक ठाकुर जी के चरणों में समर्पित

दूध को ठाकुर जी ने स्वीकार करके इन्हे अपने दर्शनो से कृतार्थ किया। जगन्नाथ पुरी मंदिर में जूतों के कारण इन के साथ धर्माभिमानियो के कठोर व्यवहार करके घोर अपमान किया। दुखद अवस्था में भक्त नामदेव जी ने मदिर के पीछे बैठ कर भगवान को पुकारा। जब कि वह समाधिस्थ थे, मंदिर का मुख्य द्वार उनकी ओर घूम गया। धर्म के ठेकेदार इस चमत्कार से चकाचौंध रह गए। मुगल सम्राट द्वारा बंदी बनाये जाने पर इनको सिद्ध मानते हुए कहा गया कि मृतक गौ को जीवित करें नही तो मृत्यु दण्ड पाओगे। भगवान ने अपने भक्त की रक्षा हेतु गाय को जीवित कर दिया। यह लीला देखकर मुहम्मद तुगलक काजी मुल्ला आदि विमुग्ध हो गए।

गुरु ग्रन्थ साहब मे इनके कुल ६० पद हैं और भक्त वाणी में शेख फ़रीद और भक्त कबीर के बाद इन्ही की वाणी सर्वाधिक है, जिसमें अवतारो के रूप मे आये परमात्मा का स्वस्ति गान है और निर्गुण ब्रह्म का निराकार रूप चित्रण भी प्राप्य है। भक्त नामदेव जी की मराठी तथा सन्त भाषा है। किंवदन्ति है कि पंजाब मे गुरुदास पुर जिले के 'घुमाणा' ग्राम मे ई० सन् १३५० में इनका देहान्त हुआ।

भक्त धन्ना

ईसवी सन् १४१५ में राजस्थान के 'धुआन' ग्राम में इनका जन्म हुआ। कृषि व्यवसायी(जाट) होने के कारण बडे सरल चित्त और निष्ठावान थे। अनुश्रुति है कि ब्राह्मण को ठाकुरो की पूजा करते देख इन्होंने भी पूजा का सकल्प किया। पत्थर को शालीग्राम के रूप मे सच्ची भक्ति की साग और रोट का भोग लगाने की प्रार्थना। भगवान ने इनकी सत्यनिष्ठा-सरल भक्तिभाव से प्रसन्न होकर, पत्थर से निकलकर भोग अंगीकार किया। इस दृश्य को देखकर लोग चकित रह गए। स्वामी रामानन्द की शिष्य मण्डली के विशेष शिष्य थे।

गुरु ग्रन्थ साहब मे इनके ४ पद सगृहित हैं। जिनमें सरलता, निष्कामता, पवित्रता और धीरता व्यक्त हुई है। राग धनासरी मे भक्त धन्ना का एक आरती का पद भी मिलता है। ससार तो मृदुलता के रग मे आरती प्रस्तुत करता है किन्तु इन्होने जाटशाही के अनुरूप आरती प्रस्तुत किया है। यथा·

"गोपाल तेरा आरता।
जो जन तुमरी भगति करते तिन के काज सवारता।" (गु० ग्रं० सा० पृष्ठ ६६५)

शेख फ़रीद
(ई० ११७५ से ई० १२६५)

शेख फरीद जी का जन्म ई० सन् ११७५ में मुलतान जिले मे 'कोठीवाल' ग्राम में हुआ था। दिल्ली के प्रसिद्ध ख्वाजा कुतुब बाख्तियार इनके गुरु थे। माता द्वारा दिए गए शक्कर के लोभ से यह नमाज में प्रवृत्त हो गए। इनका व्यक्तित्व मधुर था। प्रेम और संवेदना इनके विशिष्ट गुण थे। इसी हेतु यह शकरगंज (शकरी के निधि) के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके जीवन का माधुर्य ही इनकी कृतियो में है। यह महातपस्वी फ़कीर थे।

इनकी तपोनिष्ठा और आध्यात्मिक पवित्रता को दृष्टि में रखकर इनके गुरु ने इनको चिश्ती गद्दी का नेता नियत किया। यह धन द्रव्य नही रखते थे। संतोष ही इनका परम धन था। गद्दी पर जो चढ़ावा चढ़ता उन्होंने उसमें से कभी एक पैसा भी अपनी आवश्यकताओं के लिए व्यय नही किया।

अपने आठ पुत्रों की उपेक्षा करके इन्होने अपना मुसला (नमाज पढ़ते समय नीचे बिछाने की चादर) तथा तस्बीह (जप-माला) सैय्यद मुहम्मद किरमानी के हाथ निजाअमुद्दीन औलिया के समीप भेज दी।

गुरू ग्रन्थ साहब में इनके कुल १२२ पद हैं। चार शबद और शेष श्लोक। इनकी वाणी में प्रभु-प्रेम और हरि-भक्ति पर ही बल दिया गया है।

१५ अक्तूबर १२६५ को पाकपटन में इन्होंने नश्वर शरीर का त्याग कर दिया।

भक्त जयदेव

भक्त जयदेव जी का जन्म ईसवी सन् १२०१ 'केदली' ग्राम वीर भूमि जिले में हुआ। यह बंगाल के प्रसिद्ध भक्त थे। कृष्ण उपासना एवम् कृष्ण भक्ति में सदा मग्न रहते थे।

एक जनश्रुति है कि 'गीत गोविन्द' के एक गीत की रचना करते हुए अंतिम चरण को पूर्ण नहीं कर पा रहे थे। सम्भव जिस गीत के चरण को स्वयं भगवान ने पूर्णता प्रदान की। ऐसी प्रतीति पर वह आत्म-विस्मृत होते विमुग्धावस्था में वह जंगल की ओर चल पडे। वहाँ भी एक वृक्ष पर पूरे गीत गोबिन्द की पंक्तियाँ लिखित पाई। इसने तो उन्हे समाधि अवस्था में पहुँचा दिया। भक्त कबीर दास जी ने उनकी प्रशंसा में कहा है—

"जै देउ नामा बिप सुदामा तिन कउ कृपा भई है अपार।" (गु० ग्रं० सा० पृष्ठ ८५६)

गुरु अर्जुनदेव साहब ने भी लिखा है—

"जै देव तिआगिओ अमेहुव।" (गु० ग्रं० सा० पृष्ठ ११९२)

गुरु ग्रन्थ साहब में राग गूजरी और राग मारू में इनके २ शब्द संकलित हैं। राग गूजरी के अन्तर्गत पद संस्कृत निष्ट और गीत गोविन्द शैली का है। मारू का पद योगियों की शब्दावली से युक्त है। भक्त जयदेव का नाम अपने समय के बंगाल के शासक लक्ष्मण सेन के पंचरत्नों में आदर्पूर्वक लिया जाता है।

भक्त भीखन
(ई० १४८० से ई० १५७३)

भक्त भीखन जी का जन्म लखनऊ के समीप 'काकोरी' ग्राम में ईसवी सन् १४८० में हुआ। भक्त भीखन एक मुसलमान सूफी फ़क़ीर थे। चहुँदिशी छाये हुए भक्तिकाल के वातावरण से प्रभावित होकर यह शरारीयत की अमोघ औषधि मानने लग गए।

"हरि का नामु अंमृत जलु निरमलु इहि अउखदु जगि सारा ॥
गुर परसादि कहै जनु भीखनु पावउ मोख दुआरा ॥" (गु० ग्रंथ सा० पृष्ठ ६५९)
गुरु ग्रन्थ साहब में इनके २ पद विद्यमान हैं जिनमे नाम महिमा की चर्चा है।
'बेदायूनी' के लेखक के अनुसार भक्त भीखन का देहान्त ईसवी सन् १५७३ में हुआ।

भक्त सैण
(ई० १३६० से ई० १४४०)

भक्त सैण जी का जन्म तथा जन्म स्थान संदिग्ध है। यह स्वामी रामानन्द जी के शिष्य थे और बादगढ़ नरेश राजाराम के शाही नाई के रूप में सेवक थे। यह सन्त ज्ञानेश्वर के भक्त थे। भाई गुरुदास ने वार दसवी में इनके सम्बध मे कहा है कि एक दिन साधु सन्तो की सेवा में लीन भक्त सैण राजा की सेवा में उपस्थित न हो सके। स्वय प्रभु ने इनके कार्य-भार को पूर्ण किया। इस घटना से नरेश राजाराम भक्त सैण जी का श्रद्धालु बन गया। भक्त रविदास ने भक्त सैण जी का उल्लेख प्रसिद्ध भक्तों में किया है। यथा

"नामदेव कबीरु तिलोचनु सधना सैनु तरै।
कहि रविदासु सुनहु रे सतहु हरि जीउ ते सभै सरै॥ (गु० ग्र० सा० पृष्ठ ११०६)

गुरु अर्जुनदेव साहब ने लिखा है .

जैदव तिआगिओ अहमेव।
नाई उधरिओ सैनु सेव ॥ (गु० ग्र० सा० पृष्ठ ११९२)

गुरू ग्रन्थ साहब मे इनका केवल १ पद है जो राग धनासरी के अन्तर्गत आरती में प्रस्तुत है। जिसमें परमानन्द का भजन करने की प्रेरणा उपलब्ध है।

भक्त पीपा

भक्त पीपा जी का जन्म सन् १४२५ ईसवी में गुजरात की एक रियासत गजरौन गढ के राजकुल में हुआ। स्वामी रामानद जी से प्रभावित होकर इन्होंने राजपाट त्याग दिया और प्रभु भक्ति में लीन हो गए। तत्पश्चात् यह द्वारिका की यात्रा की ओर चले गए। यात्रा का स्मारक 'पीपा वट' के नाम से प्रसिद्ध एक मठ विद्यमान है। इन्होने बृन्दावन की भी यात्रा की थी।

गुरु ग्रन्थ साहब मे इनका केवल १ पद राग धनासरी मे सामाविष्ट है। जिसमें इन्होंने—

"जो ब्रह्मडे सोई पिंडे जो खोजै सो पावै ॥ (गु० ग्र० सा० पृष्ठ ६९५)

कहकर मनुष्य को अपने भीतर ही परमात्मा की खोज करने की प्रेरणा दी हैं। शर्त केवल इतनी ही है कि यदि कोई पथ-प्रदर्शक सच्चा गुरू मिल जाये तभी अन्तर की खोज सम्भव है।

यथा —"पीपा प्रणवै परम ततु है सतिगुरु होइ लखावै ॥" (गु० ग्र० सा० पृष्ठ ६९५)

भक्त सधना

भक्त सधना जी तेहरवीं सदी के उत्तरार्ध में हुए। इनका निवास स्थान सिन्ध प्रदेश मे 'सेहवान' ग्राम मे था। भक्त सधना कसाई का व्यवसाय करते थे। परन्तु कभी स्वय जीव हत्या नहीं करते थे। तराजू का तोलन भी पल्ले पर शालीग्राम का पत्थर रख करते थे। पण्डितो के क्रोधित होने पर शालीग्राम उन्हें दे दिया। तत्पश्चात उन्हे सर्व व्यापक ब्रह्म भक्त जानने पर शालीग्राम उन्हें पुन लौटा दिया गया। इसके बाद भक्त सधना गृह त्यागकर यात्रा को चल पड़े। बीच मार्ग एक सुन्दरी उनपर मुग्ध हो गई। किसी भी प्रकार वह उनका अनुराग न प्राप्त करने पर उन्हे अपने पति का घातक और अपने सतीत्व को नष्ट करने का आरोप लगा दिया। इस पर भक्त सधना बदी बना लिए गए दण्ड-स्वरूप उनके हाथ काट दिए गए। भगवद् कृपा द्वारा उन्हें अपने हाथ पुन प्राप्त हो गए। इस प्रकार वे सिद्ध भक्त प्रमाणित हुए।

गुरु ग्रन्थ साहब में इनका केवल १ पद बिलावल राग में है। जिसमें भगवान से भक्त की लज्जा रखने की प्रार्थना की गई है।

स्वामी रामानन्द

(ई० १३६६ से ई० १४६७)

रामानन्द जी का जन्म ईसवी सन् १३६६ मे 'प्रयाग'मे कान्यकुब्ज ब्राह्मण वश में हुआ। यह आचार्य राघवानन्द जी के शिष्य थे और इनको शास्त्रीय योग प्रणाली मे प्रवीण करके क्रियात्मक रूप मे योग साधना का मार्ग दिखलाया। आचार्य रामानुज द्वारा प्रचारित विशिष्टाद्वैत का उत्तर प्रदेश मे प्रचार करने में स्वामी रामानन्द प्रमुख थे। दक्षिण भक्तिधारा उत्तर मे लाने का श्रेय इन्हे ही है। काशी मे पच गगा घाट पर इनका स्मारक विद्यमान है। भक्त कबीर को शिष्य स्वीकार करने के पश्चात इन्होने जाति पाति के बंधन तोड़कर भक्त पीपा (राजा), भक्त सैण (नाई), भक्त धन्ना (जाट), भक्त रविदास (चमार) आदि को भी अपने शिष्यो मे समान स्थान दिया।

गुरु ग्रन्थ साहब मे स्वामी रामानन्द का केवल १ शब्द बसत राग मे उपलब्ध है। यथा :

"कत जाईऐ रे घरि लागो रगु॥" (गु० ग्र० सा० पृष्ठ ११६५)

इसमें भक्त ने प्रभु को साक्षातकार करने और उस से प्राप्त परमानन्द की ओर संकेत किया है।

भक्त परमानन्द

(ई० १४६३ से ई० १५६३)

भक्त परमानन्द जी का जन्म ईसवी सन् १४६३ में महाराष्ट्र के जिला शोलापुर के 'बारसी' ग्राम में हुआ। ब्रजभाषा के अष्टछाप भक्त रत्नों में से एक हैं। यह श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। इनकी रचना का संग्रह 'परमानन्द' सागर है।

गुरु ग्रन्थ साहब में इनका केवल १ शब्द सारंग राग में है जिसमें उन्होंने सदाचार नीति शुद्ध विचार धारा तथा अनन्य भक्ति का निकटतम सम्बंध बताया है। मनुष्य जब तक पाँचों विकारों और पर-निन्दा का त्याग नही करता तथा हिंसा छोडकर जीव दया का पालन नही करता तब तक वह साधु संगति में बैठ प्रभु की पुनीत कथा चलाने में अयोग्य है। ऐसा अटूट विश्वास भक्त परमानन्द जी का है।

भक्त सूरदास
(ई०१४७८ से ई०१५८५)

भक्त सूरदास जी का जन्म ईमवी १४७८ मे दिल्ली के निकट 'सीही' नामक ग्राम मे हुआ। वे निर्धन सारस्वत ब्राह्मण थे और किसी घटनावश अंधे हो गए थे। श्री वल्लभाचार्य ने इन्हे अपना शिष्य बना लिया और यह वृन्दावन मे श्री नाथ जी के मदिर मे कीर्त्तन किया करते थे।

गुरु ग्रन्थ साहब मे इनकी केवल १ तुक सारग राग मे मिलती है। यथा·

"छाडि मन हरि बिमुखन को सग।" (गु० ग्र० सा० पृष्ठ १२५३) निश्चय ही यह सूरसागर के रचयिता की पक्ति है। गुरु अर्जुनदेव साहब ने भक्त सूरदास की केवल यह पक्ति लिखवाकर छोड़ दी। स्वय इस पक्ति के उत्तर मे उन्होने "हरि के सग बसे हरि लोक।" वाला पद कहा। इस पद का स्पष्ट शीर्षक सारग महला ५ सूरदास दे रक्खा है। इस पद की भाषा गुरु अर्जुनदेव साहब की रचना की ओर सकेत करती है। इस पद मे भी—

"स्याम सुन्दर तज आन जु चाहत।" प्रज्ञाचक्षु 'सूर सागर' मे उपलब्ध है। इनका देहान्त चन्द्र सरोवर तालाब के किनारे सन् १५८५ मे हुआ।

बाबा सुन्दर

बाबा सुन्दर जी का जन्म 'भल्ला' वंश मे हुआ था। यह गुरु अमरदास के परपौत्र थे और सोलहवीं शती मे उपस्थित थे। यह उदासी प्रवृति के व्यक्ति थे और प्रभु भजन मे दत्तचित्त रहते थे। गुरु ग्रन्थ साहब में रामकली राग मे ६ पौड़ियों की रचना 'सद' शीर्षक के अन्तर्गत दी गई हैं। पंजाबी में सद बुलावे को कहते हैं। मनुष्य को ईश्वर के घर से बुलावा आना मृत्यु ही इसका विषय है। गुरु अमरदास साहब ने बाबा सुन्दर के पिता 'आनद' जी के जन्म पर 'अनदु बाणी' की रचना की। उसी के उत्तर में बाबा सुन्दर ने विषाद के अवसर पर 'सद' शीर्षक से रचना की जिसका भाव है चाहे आनंद हो या शोक जीव को प्रभु की आज्ञा को मानना चाहिए। हरि इच्छा करके नाम सिमरण में मग्न रहना चाहिए।

सत्ता डूम

भाई सत्ता राय बलवड का साथी जाति का 'डूम' और गुरु अर्जुनदेव साहब के दरबार का सारंगी वादक कीर्तनिया था। मनोमालिन्य दूर होने पर इन्होने रामकली राग में एक 'वार' राय बलवंड से मिलकर लिखी जो राय बलवड ते सत्ता डुमे से गुरु ग्रन्थ साहब में प्रसिद्ध है, इस वार में इन्होंने ८ पौडियाँ कही हैं जिनमें से ५ क्षमा याचना के भाव की हैं और शेष तीन में तीसरे, चौथे और पाँचवें गुरुओं का स्तुति गायन है। जब इन्होंने कीर्तन करने के लिए इन्कार कर दिया, तब इतिहास साक्षी है कि गुरु अर्जुनदेव साहब ने संगत द्वारा कीर्तन की परम्परा चला दी।

राय बलवंड

राय बलवड भाई सत्ता का साथी जाति का डूम और गुरु अर्जनदेव के दरबार के सारंगवादी कीर्तिनियाँ थे। रामकली की 'वार' मे ८ पौडियाँ है। विश्वास किया जाता है कि पाँच पौड़ियाँ राय बलवंड की हैं और अंतिम तीन भाई सत्ते की है। दोनो ने जब कीर्तन करने के लिए इन्कार कर दिया और अपने गुरुओं के प्रति अपशब्द कहे तो गुरू अर्जन देव साहब ने इन्हे दण्डनीय माना। दोनों चर्म रोग से पीडित हो गए किन्तु लाहौर से भाई लद्दे ने इनके अपराध गुरुदेव जी से क्षमा करवा दिए। इस अवसर पर इन्ही रबाबियो ने गुरुदेव की स्तुति मे एक वार गाई, जिसका विषय गुरु शरीरो मे प्रगट होने वाली ज्योतियों की एकता है। यद्यपि यह वार आकार मे लघु है तथापि यह अपनी ढाढियो की ही शैली और अपनी निराली भाषा मे ही लिखी गई है।

भाई मरदाना

भाई मरदाना का जन्म ईसवी सन १४५८ मे जिला शेखुपुरा के 'तलवडी' ग्राम मे हुआ था। गुरु नानक जी का जन्म स्थान भी तलवडी ही था। गुरु नानक साहब जी से आयु मे १० वर्ष बडे थे। जाति के मरासी संगीतवादन मे निपुण और बाल्यावस्था से ही गुरु नानक साहब के सहचर, वादक एवम गायक थे। इन्होने गुरुवाणी को प्रचारार्थ मधुरता तथा मनोहरता प्रदान की। लम्बे पर्यटनो के समय मे भी उनके साथ रहे। अपने कुशल संगीत भाई मरदाना को गुरु देव जी ने सुलतान पुर मे बुलाकर भाई फिरदे से रबाब लेकर दी। वह केवल गायक वादक ही नही थे प्रत्युत उनका जीवन भक्ति के गहरे रग मे रगा हुआ था तभी तो गुरुदेव इन्हे आदरपूर्वक 'भाई' कहा करते थे। सज्जन ठग नूरशाह कोडे राक्षस और वल्ली कान्धारी जैसे व्यक्तियो का उद्धार भाई मरदाने के माध्यम से गुरुदेव जी ने किया। अंतिम यात्रा के समय मे इन्होंने अपना अफगानिस्तान मे खुर्रम नदी के तीर पर नश्वर शरीर का त्याग किया। गुरु देव ने अपने हाथ

से अपने प्रिय साथी अपने विशिष्ठ गायक वादक भाई मरदाने का अंतिम संस्कार किया। शरीर त्याग के स्थान पर एक समाधि बना दी गई, जो अब भी विद्यमान है।

गुरु ग्रंथ साहब मे बिहागडे की वार मे इनके ३ श्लोक सग्रहित है जिनमे विकारजनक मदिरा के त्याग और निर्दोष आत्मिक मस्तीदायक भक्ति के ग्रहण करने का उपदेश है।

भट्ट कलसहार

उच्च जीवनशाली ग्यारह भाटो की मण्डली मे यह प्रमुख भाट्ट है जिनके गुरुग्रथ साहब में ५४ सवैये हैं। प्रथम पाँच गुरुदेवों मे से प्रत्येक की स्तुति के सवैये लिखे हैं। श्री गुरु नानक साहब की स्तुति करते हुए इन्होने लिखा है कि वे राजयोग कमाने वाले धर्म गुरु थे, आदि काल मे देवगण सिद्ध मुनि आदि उनकी आराधना करने आये है और कलियुग मे गुरु नानक साहब पतितों का उद्धारकरने हेतु प्रगट हुए। इन्होंने गुरु अगददेव साहब जी को जगत गुरु कहा, गुरु अमरदास साहब की सेवा तथा नाम स्मरण के कारण महापद मिला, गुरु रामदास साहब की बाणी को अमृत का सरोवर माना और गुरु अर्जुनदेव जी की उपमा गुरु राजा जनक और वीर अर्जुन से दी।

भट्ट जालप

गुरु ग्रन्थ साहब मे इनके ५ सवैये, गुरु अमरदेव साहब की स्तुति मे सकलित है। गुरु अमरदास जी ने नाम स्मरण के कारण ही गुरु पद प्राप्त किया। अनेक भक्तो ने इसी गुण के आधार पर उच्च पद प्राप्त किए हैं।

भट्ट कीरत

गुरु ग्रन्थ साहब मे इनके ८ सवैये हैं। चार सवैये गुरु अमरदास साहब की स्तुति मे तथा अन्य चार गुरु रामदास साहब की प्रशसा मे हैं। यह गुरु अमरदास साहब की शरण का याचक है और कहता है कि गुरु अमरदास साहब मे गुरु नानक साहब की ज्योति उसी प्रकार प्रकाशमान है जिस प्रकार गुरु नानक साहब की गुरु अगददेव साहब मे थी।

भट्ट भिक्खा

गुरु ग्रन्थ साहब में भट्ट भिक्खा के दो सवैये गुरु अमरदेव साहब की स्तुति मे रचित हैं। यह कथन प्रचलित है कि यह भट्टो के पूर्वज थे और इन्होने अपने पुत्रो एवम् भतीजो को गुरु-घर का परिचय कराया था।

भट्ट सल्ह

गुरु ग्रन्थ साहब मे भट्ट सल्ह के ३ सवैये मिलते हैं। एक तीसरे महले (गुरु अमरदास साहब) की स्तुति में तथा दो चौथे महले (गुरु रामदास साहब) की स्तुति मे। भट्ट सल्ह के कथन का तात्पर्य यह है कि गुरु स्वयं काम, क्रोध, लोभ, मोहअहंकार आदि दूतों को वश में करके गुरु पद को प्राप्त करता है।

भट्ट नल्ह

गुरु ग्रन्थ साहब में इनके १६ सवैये गु३ रामदास साहब की स्तुति में है। इनमें गुरु का इतिहास गुरु का स्वरूप, गुरु के प्रति अनुराग आदि का प्रतिपादन हैं। भट्ट नल्ह के सवैये अधिक लोकप्रिय हैं क्योंकि इन्होंने स्वय गुरु-भक्ति में निमग्न होकर इनकी रचना की थी। इनका विश्वास है कि गुरु कृपा से मनुष्य कांचे से कांचन, लोह से लाल एवम् काष्ठ मे चदन बन जाता है। वह सदा गुरु से अपनी लाज बचाने की प्रार्थना करता रहता है।

भट्ट भल्ह

गुरु ग्रन्थ साहब में इनका केवल १ सवैया गुरु अमरदास साहब की स्तुति मे हैं। इसका कथन है कि गुरु अमरदास साहब जी के गुण गुणातीत हैं तथा गुरुदेव की अपनी उपमा आप ही है।

भट्ट गयन्द

गुरु ग्रन्थ साहब मे इनके १३ सवैये गुरु रामदास साहब की स्तुति में हैं। इनमे गुरु ज्योति की महिमा और ऐतिहासिक तथ्यों का वर्णन है।

भट्ट मथुरा

गुरु ग्रन्थ साहब मे ईनके १४ सवैये गुरु रामदास साहब और गुरु अर्जुनदेव साहब की स्तुति मे हैं। यह गुरुदेव की महिमा इस बात में मानता है कि वे सतनाम करता पुरखु के उपासक हैं और उसके स्मरण में मग्न रहते हैं। वे भगवद् मानी के सरोवर हैं। जिसकी लहर सदा उनके हृदय मे तरंगित रहती है। इसने गुरु नानक साहब से गुरु अर्जनदेव साहब तक सब गुरूओ में एक ही ज्योति के दर्शन किए। इनके गुरु अर्जुन देव जी की स्तुति में लिखे गए सवैये अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

भट्ट बल्ह

गुरु ग्रन्थ साहब मे इनके ५ सवैये गुरु रामदास साहब की स्तुति मे हैं। इसमे उसने उस तात्विक रहस्य पर बल दिया है कि सब गुरुओ में एक ही ज्योति प्रकाशमान है जो जन इस ज्योति की शरण में आये उनके काम क्रोध, दु:ख, दारिद्रय आदि का नाश हो गया है।

भट्ट हरबंस

गुरु ग्रन्थ साहब में इनके २ सवैये गुरु अर्जुनदेव साहब की स्तुति में हैं। इनमे कहा गया है कि गुरु रामदास साहब जी ने 'जोति जोत' समाने के समय गुरुगद्दी गुरु अर्जुनदेव साहब को प्रदान की।

—०—

गुरू ग्रंथ साहब का आंतरिक क्रम

(क) गुरु ग्रन्थ साहब में सर्व प्रथम 'मूलमंत्र' है जो '१ ओकार से गुरु प्रसादि' तक है। इसके बाद सबसे प्रथम वाणी 'जपु' जी (१ पृष्ठ से ८ तक है) जो गुरु नानक साहब द्वारा उच्चरित है। इसमें ३८ पौडियाँ और २ श्लोक हैं। एक प्रारम्भ में और एक अन्त में। 'जपु' जी नित्य नियम की प्रातः कालीन वन्दना है।

(ख) 'जपु' जी के पश्चात् की वाणी के दो भाग हैं। पहला 'सोदरु' (८ पृष्ठ से १० तक है) जो गुरु नानक साहब, गुरु रामदास साहब और गुरु अर्जुन देव साहब द्वारा तथा दूसरा 'सो पुरखु' (१० पृष्ठ से १२ तक है) जो गुरु नानक साहब, रामदास साहब, और गुरु अर्जुन देव साहब द्वारा उच्चरित है।

'सोदरु' मे पाच शब्द हैं और 'सो पुरखु' में चार शब्द हैं।

'सोदरु' और 'सो पुरखु' की वाणियो का सयुक्त नाम 'रहिरास' है जो नित्य नियम की साध्य कालीन वन्दना है।

(ग) 'रहिरास' के पश्चात् की वाणी 'सोहिला' (१२ पृष्ठ से १३ तक है) जो गुरु नानक साहब, गुरु रामदास साहब और गुरु अर्जुनदेव साहब द्वारा उचरित है। इसमे पाच शब्द हैं। 'सोहिला' को 'कीर्तन सोहिला' भी कहते हैं जो निन्य नियम की शयनकालीन वन्दना है।

(घ) उपरोक्त नित्य-नियम वाणियो के पश्चात् राग प्रारम्भ होते हैं (१४ पृष्ठ से १३५३ तक) निम्नलिखित ३१ प्रधान राग हैं।

१ सिरी रागु।	२ रागु माझ।	३ रागु गउडी।	४. रागु आसा।
५. रागु गूजरी।	६. रागु देवगधारी।	७ रागु बिहागडा।	८. रागु वडहसु।
९ रागु सोरठि।	१०. रागु धनासरी।	११ रागु जैतसिरी।	१२. रागु टोडी।
१३ रागु बैराडी।	१४ रागु तिलग।	१५. रागु सूही।	१६. रागु बिलावलु।
१७ रागु गोंड।	१८ रागु रामकली।	१९ रागु नट नाराइन।	२०. रागु माली गउडा।
२१ रागु मारू।	२२. रागु तुखारी।	२३. रागु केदारा।	२४ रागु भैरउ।
२५ रागु बसतु।	२६ रागु सारगु	२७ रागु मलार।	२८. रागु कानडा।
२९ रागु कलिआन।	३०. रागु प्रभाती।	३१. रागु जैजावंती।	

परन्तु उपर्युक्त ३१ रागों के अतिरिक्त गुरु ग्रन्थ साहब में किसी-किसी स्थान पर किसी शब्द में दो मिले रागों का भी प्रयोग हुआ है। यथा:—

१. गउड़ी-माझ।	२ गौडी-दीपकी।	३. आसा-काफी।	४ तिलग-काफी।
५. सूही-काफी।	६ सूही ललिता।	७. बिलावलु-गौंड।	८ माझ-काफी
९. बसतु-हिंडोल।	१०. कलिआन-भोपाली।	११. प्रभाती-विभास।	१२. आसा-आसावरी।

इस प्रकार ऊपर ३१ रागो के अतिरिक्त निम्नलिखित ६ और भी रागों के प्रयोग हुए हैं। (१) ललित। (२) आसावरी। (३) हिंडोल। (४) भोपाली। (५) विभास। (६) दीपकी।

घरु—रागो के साथ गुरुवाणी में कही कही "घरु" शब्द का भी प्रयोग हुआ है। यह सगीतज्ञों के लिए गायन का सकेत है। समस्त गुरु ग्रन्थ साहब में १७ घरु के प्रयोग हैं।

(ङ) रागो की समाप्ति के पश्चात् (१३५३ पृष्ठ से १४२१ तक) भोग की बाणी प्रारम्भ होती है। भोग शब्द का अभिप्राय उपसहार है। इसमे निम्नलिखित क्रम से वाणियाँ संग्रहीत हैं —

(1) सलोक सहस-कृति (महला १) कुल ४ सलोक, (१३५३ पृष्ठ पर)।

(२) सलोक सहस-कृति (महला ५) कुल ६७ सलोक, (१३५३ पृष्ठ से १३६० तक)।

(३) गाथा (महला ५) कुल २४ बन्द, (१३६० पृष्ठ से १३६१ तक)।

(४) फुनहे (महला ५) कुल २३ बन्द, (१३६१ पृष्ठ से १३६३ तक)।

(५) चउबोले (महला ५) कुल ११ बन्द, (१३६३ पृष्ठ से १३७७ तक)।

(६) सलोक (भक्त कबीर जी के) कुल २४३ सलोक, (१३६४ पृष्ठ से १३७७ तक)।

(७) सलोक (शेख फ़रीद जी के) कुल १३० सलोक, (१३७७ पृष्ठ से १३८४ तक)।

(८) सवैये श्रीमुख वाक्य (महला ५) कुल २० सवैये, (१३८५ पृष्ठ से १३८९ तक)।

(९) भट्टों के सवैये (११ भट्टो द्वारा) कुल १२३ सवैये, (१३८९ पृष्ठ से १४०९ तक)।

(अ) गुरु नानक साहब (महला पहिले) की स्तुति मे १० सवैये।
(आ) गुरु अगददेव साहब (महला दूजे) की स्तुति मे १० सवैये।
(इ) गुरु अमरदास साहब (महला तीजे) की स्तुति मे २२ सवैये।
(ई) गुरु रामदास साहब (महला चौथे) की स्तुति मे ६० सवैये।
(उ) गुरु अर्जुनदेव साहब (महला पजवे) की स्तुति मे २१ सवैये।

इन सबका सम्पूर्ण योग १२३ सवैये है।

(१०) सलोक वारां ते वधीक कुल १५२ सलोक, (१४१० से १४२६ तक)।

ये सलोक वारो की पौडियो के साथ नही लिखे जा सके इसलिए यहाँ अलग दिये हैं।

(अ) गुरु नानक साहब (महला १) के ३३ सलोक।
(आ) गुरु अमरदेव साहब (महला ३) के ६७ सलोक।

(इ) **गुरु रामदास साहब** (महला ४) के ३० सलोक।

(ई) **गुरु अर्जनदेव** (महला ५) के २२ सलोक।

इन सबका सम्पूर्ण योग १५२ सलोक है।

(११) **सलोक** (महला ६) कुल ५७ सलोक (१४२६ पृष्ठ से १४२६ तक)।

(१२) **मुंदावणी** (महला ५) १ सलोक (१४२६ पृष्ठ पर)।

(१३) **सलोक** (महला ५) १ सलोक (१४२६ पृष्ठ पर)।

(१४) **रागमाला** प्रधान राग ६ उनकी ३० पत्निया (रागणियाँ) और ४८ पुत्र है। (१४२६ पृष्ठ से १४३० तक)।

इन सबका सम्पूर्ण योग ८४ है।

गुरू ग्रन्थ साहब के रागों में बाणी का क्रम :–

प्रत्येक राग मे साधारणतया निम्नलिखित क्रम से वाणियाँ रक्खी गई हैं।

(अ) **सबद** (शब्द)।
(आ) **असटपदीआं** (अष्टपदियाँ)।
(इ) **छंत** (छन्द)।
(ई) **वार**।
(उ) **भक्तो की वाणी** अन्त मे।

(अ) **सबद (शब्द)** इस विभाग मे प्रथम स्थान पदो (शब्दो) को प्राप्त हुआ है और वे भी (दो पदे, त्रि पदे, चार पदे, पँच पदे, छ पदे) आदि नाम से व्यवस्थित है। इनमे चार पदे नाम से व्यवहृत पदो की बहुलता है। पुन इनमे पदा की सख्या देने की व्यवस्था भी विशेष है। प्रत्येक राग का आरम्भ गुरू नानक साहब की वाणी मे होता है। तत्पश्चात् क्रमश गुरू अगद देव साहब, गुरूअमरदास साहब गुरु रामदास साहब, गुरूअर्जुनदेव साहब और गुरू तेगबहादुर साहब की वाणी लिखी गई है। सभी गुरु साहबान 'नानक' नाम से वाणी का उच्चारण करते थे इसलिए वाणी रचयिता का नाम स्पष्ट करने के लिए क्रमश "महला १" (गुरु नानक साहब) "महला २" (गुरु अगद देव साहब), "महला ३" (गुरु अमरदास साहब) "महला ४" (गुरु रामदास साहब), "महला ५" (गुरु अर्जुनदेव साहब), "महला ६" (गुरु तेगबहादुर साहब) का प्रयोग हुआ है। गुरु अगद देव साहब के शबद नही हैं केवल श्लोक हैं जो वारो की पौडियो के साथ सम्मिलित हैं।

(आ) **असटपदीआं (अष्टपदियाँ)** पदो (शब्दो) के अनन्तर 'पदी' हैं जो 'दस पदी तथा 'चौबीस पदी' तक जाती हैं। और उनमे 'अष्टपदी' सख्या मे अधिक हैं। उनका क्रम भी पदो (शब्दो) के क्रम के समान ही हैं। गुरु तेगबहादुर साहब (महला ६) की कोई भी अष्टपदी नही है।

पदियो के अनन्तर विभिन्न शीर्षको से युक्त 'वारह माह', 'थिती', 'रुती' इत्यादि वाणियाँ हैं।

(इ) **छंत (छन्द)** अष्टपदियो के पश्चात् छत हैं। इनके रखने का क्रम भी वही है जो पदो (शब्दो) एव अष्टपदियो का है।

(ई) वारां (वारें) छंत के पश्चात् वारें है। 'वार' उसको कहते हैं जिसमें किसी योद्धा के शौर्य की कोई प्रसिद्ध कथा कही जाती है। ये रचनाएं वीर रस में होती हैं। मेरे गुरुदेव ने भक्ति-प्रचार के लिए वारों का प्रयोग किया।

गुरू ग्रन्थ साहब में कुल २२ वारें हैं जो निम्नलिखित हैं :—

गुरूनानक साहब (महला १) की माझ, आसा, मलार रागो में ३ वारे।

गुरूअमरदास साहब (महला ३) की गूजरी, सूही, रामकली, मारू रागो मे ४ वारें।

गुरु रामदास साहब (महला ४) की सिरी रागु, गउडी, बिहागडा, वडहस, सोरठ, बिलावल, सारंग, कानडा रागो में ८ वारे।

गुरु अर्जुनदेव साहब (महला ५) की गउडी, गूजरी, जैतसिरी, रामकली, मारु, बसत रागो में ६ वारे।

सत्ता और बलवड की रामकली राग मे १ वार।

इन सबका सम्पूर्ण योग २२ वारें हैं।

वार की प्रत्येक पौडी के साथ साधारणतया श्लोक होते हैं। केवल दो ऐसी वारे हैं जिनके साथ कोई भी श्लोक नही है। सत्ता और बलवंड की वार मे और राग बसत की वार मे श्लोको के प्रयोग नही हुए हैं।

अक (सख्या) मेरे गुरुदेव ने न केवल वाणियो को रागानुसार विभाजित किया है प्रत्युत उनके साथ प्रत्येक महले के पदो (शब्दो) की सख्या पुन दूसरे, तीसरे, चौथे महले आदि के पदो की कुल सख्या भी दे रक्खी है। वारो की पौड़ियो के साथ 'शलोको' के बाँटने मे भी दूरदर्शिता से काम लिया गया है। स्पष्टता के लिए सर्वप्रथम सिरि राग से उदाहरण लीजिए। प्रत्येक चौपदे मे चार-चार पँक्तियाँ है, अत प्रत्येक पँक्ति के साथ १, २, ३ ४ अक दिए है। प्रत्येक ४ के बाद कुल चौपदो की सख्या दे रक्खी है। इसमे (महला १) के ३३ चौपदे है। अत प्रथमाश मे आखिरी आँकडे ४ व ३३ हैं। फिर महला ३ की वाणी मे कुछ चौपदे हैं और कुछ पच पदे अत वहाँ प्रत्येक पद मे पहले पँक्ति सख्या, फिर महला ३ की वाणी मे पद-क्रम और बाद मे ऊपर आए महला १ के चौपदो के साथ मिलाकर कुल पद-सख्या दी है। महला ३ की वाणी के ८वें पद के अत मे (यह चौपदा है) इस प्रकार सख्या दी है—४ ८ ४१ पुन जहाँ महला ३ की वाणी समाप्त होती है, वहाँ इस प्रकार आँकडे दिए है - ४ ३३ ३१ . ६४। अभिप्राय यह है कि अतिम पद कोई चौपदा है। ३३ पद महला १ के थे। ३१ पद महला ३ के हुए और अब तक के पदो की कुल सख्या हुई ६४। इसी प्रकार अन्य महलो को वाणी के चौपदे आदि चलते हैं।

(३) **भक्तों की वाणी** भक्त अथवा सन्त वाणी भी विशिष्ट क्रम मे सुसज्जित है। भक्त-वाणी मे भक्त कबीर दास की वाणी तत्पश्चात् भक्त नामदेव, भक्त रविदास तथा अन्य भक्तों की क्रमश वाणी और सर्वोन्त मे शेख फरीद की वाणी है। गुरू ग्रन्थ साहब मे ३१ रागों मे से २२ रागों में भक्तों की वाणी संगृहीत है जो निम्नलिखित हैं:—

१. सिरीरागु २. रागु गउडी ३. रागु आसा ४ रागु गूजरी ५ रागु सोरठि, ६. रागु धनासरी ७. रागु जैतसिरी ८ रागु टोडी ९.रागु तिलग १०. रागु सूही ११ रागु बिलावलु १२. रागु गौंड १३. रागु रामकली १४. रागु माली गउड़ा १५ रागु मारू १६. रागु केदारा १७. रागु भैरउ १८ रागु बसत, १९ रागु सारंग २०. रागु मलार, २१. रागु कानड़ा २२. रागु प्रभाती।

चउपदों (शब्दों) अष्टपदियो और वारो के अतिरिक्त कुछ रागो में निम्नलिखित वाणियाँ खास-खास नामों से सम्बोधित हैं। उनका क्रम इस प्रकार है:--

सिरी राग में 'पहरे' और 'वणजारा' नामक दो नई वाणियाँ हैं। 'पहरे' का क्रम शब्दों और अष्टपदियो के बाद और छन्तो के पहले है।

पहरे· 'पहरे' महला १, ४ और ५ के हैं। महला १ (गुरु नानक साहब) के २ पहरे, महला ४ (गुरु रामदास साहब) के १ पहरे और महला ५ (गुरु अर्जनदेव साहब) के १ पहरे हैं।

इन सबका कुल युग ४ पहरे हैं।

(आ) **वणजारा** केवल महला ४ (गुरु रामदास साहब) के हैं। इसका क्रम 'छन्दों' और 'वारो' के बीच में है।

(२) **माझ राग में** दो नई वाणियाँ हैं—'**बारह माहा**' (बारह मासा) और '**दिन रैणि**'।

(अ) **बारह माहा** महला ५ (गुरु अर्जनदेव साहब) की १४ पौडियाँ।

(आ) **दिन रैणि** महला ५ (गुरु अर्जुनदेव साहब)।

ये दोनो वाणियाँ क्रमश अष्टपदियो के बाद आई है।

(३) **गउड़ी राग में** '**करहले**,' '**बावन अखरी**,' '**सुखमनी**' और '**थिती** (तिथी) नामक चार अतिरिक्त वाणियाँ हैं।

(अ) **करहले** महला ४(गुरु रामदास साहब)। इसका स्थान महला ३ गुरु अमरदेव साहब)की अष्टपदियो के बाद मे है। इसकी गणना अष्टपदियो मे ही की जाती है।

(आ) **बावन अखड़ी** महला ५ (गुरु अर्जुनदेव साहब)। इसमे ५७ सलोक और ५५ पौडियाँ हैं। बावन अखरी छन्तो के बाद सग्रहीत है।

(इ) **सुखमनी** महला ५(गुरु अर्जुनदेव साहब) की इसमे २४ सलोक और २४ अष्टपदिया हैं और बावन अखरी के वाद ही रखी गई है।

(ई) **थिती** (**तिथि**) महला ५(गुरु अर्जुनदेव साहब)। इसका क्रम सुखमनी और वारों के मध्य में है अर्थात सुखमनी के पश्चात और वारो के पहले है।

(४) **आसा राग में** '**बिरहड़े**' और '**पट्टी**' ये दो पृथक वाणियाँ हैं।

(अ) **बिरहड़े** महला ५ (गुर अर्जुनदेव साहव) के ३ बिरहडे हैं। ये अष्टपदियो के बाद रखे गये हैं और अष्टपदियो मे ही इनकी गणना भी की गई है, किन्तु इनकी चाल छन्तो वाली है।

(आ) **पट्टी** महला १ (गुरु नानक साहब) की ३५ पौडियाँ।

महला ३ (गुरु अमरदास साहब) की १८ पौडियाँ।

इसका क्रम अष्टपदियो और छन्दों के मध्य मे है।

(५) **वडहंस राग में** '**घोड़िया**' और '**अलाहणीयाँ**' नाम दो पृथक वाणिया प्रयुक्त हुई हैं।

(अ) **घोड़ियाँ** महला ४ (गुरु रामदास साहब) के छन्द के पश्चात रखी हैं और इनकी गणना भी छन्दो मे की गई है।

(आ) **अलाहणीयाँ** : महला १ (गुरु नानक साहब) और महला ३ (गुरु अमरदास साहब) द्वारा रची गई हैं। इनका स्थान 'छन्दो' और 'वारो' के बीच मे है अर्थात छन्द की समाप्ति के पश्चात और वारो के प्रारम्भ के पूर्व हैं।

(६) **धनासिरी राग में** : 'आरती' ही अतिरिक्त वाणी है।

(अ) **आरती** महला १ (गुरु नानक साहब) इसकी गणना शब्दों में की जाती है।

(७) **सूही राग में** : '**कुचज्जी**', '**सुचज्जी**', '**और 'गुणवन्ती**' तीन अतिरिक्त वाणियाँ हैं।

(अ) **कुचज्जी** : महला १ (गुरु नानक साहब)।

(आ) **सुचज्जी** महला १ (गुरु नानक साहब)।

(ई) **गुणवन्ती** : महला ५ (गुर अर्जुन देव साहब)।

तीनों वाणियाँ अष्टपदियो और छन्दो के बीच संग्रहीत हैं।

(८) **बिलावल राग में** '**थिति**' (**तिथि**) और '**बारसत**' दो वाणियां संग्रहीत हैं।

(अ) **थिति (तिथि)** महला १ (गुरु नानक साहब)।

(आ) **बारसत** महला ३ (गुरु अमरदेव साहब)।

ये दोनो वाणियाँ अष्टपदियों के बाद और छन्दों के पहले रखी गई हैं।

(९) **रामकली राग में** '**अनंदु**', '**सद**', '**ओअंकार**' और '**सिध घोसटि**'(**सिद्ध गोष्ठी**)की चार वाणियाँ हैं जो नए नाम से प्रसिद्ध हैं।

(अ) अनदु महला ३ (गुरु अमरदेव साहब) कहते हैं कि यह वाणी की रचना गुरु अमरदेव साहब ने अपने पोते आनद के जन्म के अवसर पर सन १५५४ ई० में की थी। इसमें परमात्मा चिंतन के अवर्णीय आनन्द की वर्णन है इसलिए इस वाणी का नाम 'अनंदु' रखा गया। यह वाणी किसी मंगल कार्य के अवसर पर पढी जाती है। 'अनदु' में ४० पौडियाँ हैं।

(आ) **सद** वाणी बाबा सुन्दर जी की रचना है। इसमे ६ पौडियाँ है।

ये दोनो वाणियाँ क्रमश अष्टपदियो की समाप्ति के बाद रखी गई है।

(इ) **ओअंकार** महला १ (गुरु नानक साहब)। इसमे ५४ पौड़ियाँ हैं।

(ई) **सिध गोसटि (सिद्धगोष्ठी)** महला १ (गुरु नानक साहब)। इसमें ७३ पौडियाँ हैं। ये दोनो वाणियाँ क्रमश छन्दो और वारो के बीच मे रखी गई हैं।

(१०) **माझ राग में** : '**अंजुलीयां (अंजलियाँ)** और **सोलहे**' ये नामो से प्रसिद्ध दो वाणिया हैं।

(अ) **अंजुलीयाँ (अंजुलियाँ)** : महला ५ (गुरु अर्जुन देव साहब)। ये अष्टपदियो के पश्चात रखी गई हैं।

(आ) **सोलहे** · महला १ (गुरु नानक साहब) के २२ सोलहे।
महला ३ (गुरु अमरदास साहब) के २४ सोलहे।
महला ४ (गुरु रामदास साहब) के २ सोलहे।
महला ५ (गुरु अर्जुन देव साहब) के १४ सोलहे।

कुल योग सोलहे के ६२ है। 'अजुलीया' की समाप्ति के पश्चात ही ये संग्रहीत हैं।

(११) **तुखारी राग में** · '**बारह माहा**' (**बारह मासा**) की केवल एक अतिरिक्त वाणी है।

(अ) **बारह माहा (बारह मासा)** : महला १ (गुरु नानक साहब) इसकी गणना छन्दो मे की गई है।

—•—

सम्पूर्ण वाणी का विवरण

श्री गुरु ग्रन्थ साहब में सम्पूर्ण वाणी का विवरण इस प्रकार है :—

नाम		चउपदा/शब्द संख्या
गुरू नानक साहब (महला १)		९७६
गुरू अगद देव साहब (महला २)		६१ (केवल श्लोक)
गुरू अमरदेव साहब (महला ३)		९०१
गुरू रामदास साहब (महला ४)		९७९
गुरू अर्जुनदेव साहब (महला ५)		२२१६
गुरू तेगबहादुर साहब (महला ९)		११६
	योग	४९४९
भक्त कबीर जी		५४०
भक्त त्रिलोचन जी		४
भक्त बेणी जी		३
भक्त रविदास जी		४१
भक्त नामदेव जी		६०
भक्त धन्ना जी		४
शेख फरीद जी		१२२ (चार शब्द शेष श्लोक)
भक्त जयदेव जी		२
भक्त भीखन जी		२
भक्त सैण जी		१
भक्त पीपा जी		१
भक्त सधना जी		१
स्वामी रामानन्द जी		१
भक्त परमानन्द जी		१
भक्त सूरदास जी		१
	योग	७८४
बाबा सुन्दर जी		६
डूम सत्ता जी		३
राय बलवंड जी		५
भाई मरदाना जी		३
	योग	१७

भट्ट कलसहार	५४
भट्ट जालप	५
भट्ट कीरत	८
भट्ट भिक्खा	२
भट्ट सल्ह	३
भट्ट नल्ह	१६
भट्ट भल्ह	१
भट्ट गयंद	१३
भट्ट मथुरा	१४
भट्ट बल्ह	५
भट्ट हरबंस	२
योग	१२३
कुल वाणी का योग	५८७३

नोट : वस्तुतः भिन्न भिन्न टीकाकारों द्वारा उपलब्ध वाणी का विवरण एक समान नहीं है। उदाहरणार्थ भाई कान्ह सिंह नाभा के महान कोष अनुसार यह योग ५८६७ है (देखिए महान कोष, भाग २ पृष्ठ १३०७)। तथा पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला द्वारा प्रकाशित गुरु ग्रन्थ रत्नावली (पृष्ठ २१) के अनुसार यह योग ५८७१ है।

वास्तव में शब्द' सख्याओं के योगों का यह अन्तर गणना की रीति में भेद के कारण है जो नगण्य सा है।

गुरू ग्रन्थ साहब की परिसमाप्ति पर 'मुदावणी' शीर्षक के नीचे पचम पात्शाह गुरू अर्जुनदेव साहब का एक छन्त अथवा सम्पादकीय वचन है। यथा :

'थालु विचि तिनि वसतू पईओ सतु सतोखु वीचारो।
अमृत नामु ठाकुर का पइओ जिसका सभसु अधारो।
जे को खावै जे को भुचै तिसका होइ उधारो।
एहु वसतु तजी नह जाई नित नित रखु उरिधारो।
तम ससारु चरन लग तरीऐ सभु नानक ब्रह्म पसारो।
सलोक महल ५॥
तेरा कीता जातो नाही मैनो जोगु कीतोई।
मै निरगुणिआरे को गुणु नाही आपे तरसु पइओई।
तरसु पइआ मिहरामति होई सतिगुरु सजणु मिलिआ।
नानक नामु मिलै ता जीवा तनु मनु थीवै हरिआ॥ ॥

इस सम्पादकीय वचन में 'थालु' शब्द गुरू ग्रन्थ साहब का व्यंजक है जिसमें समस्त मानवता के लिए चार अमूल्य पदार्थ हैं :

(१) सत्य (२) सन्तोष (३) विचार और (४) नाम।

अतएव मेरा पूर्ण विश्वास है कि यह पावन अद्वितीय ग्रन्थ किसी एक देश, एक जाति अथवा एक सम्प्रदाय के लिए नहीं, प्रत्युत समस्त मानवता के लिए एक दिव्य 'नाम-सन्देश' है।

—•—

गुरू ग्रन्थ साहब में संख्यापरक पद्धतिनुसार आध्यात्मिक तत्वों का विवरण

गुरु ग्रन्थ साहब मे सख्यापरक पद्धति के अनुसार दिए गये आध्यात्मिक विवरण को इस संचय में संक्षेप में दे रहा हूँ। आशा करता हूँ कि आगामी सचय मे इसका पूरा ब्यौरा देने का प्रयत्न करूँगा।

एक : परमात्मा एक है, 'उसका' नाम सत्य है। 'वह' सृष्टि का रचयिता है, 'उसे' किसी का भय नही, 'उसका' किसी से बैर नही। 'वह' अकाल-मूर्त, अयोनि, स्वयभू तथा गुरु कृपा से जाना जाने वाला है। (जपु जी पृष्ठ १)

युग्म : जोडा। सूर्य-चान्द, पुरुष-स्त्री आदि।

तीन : योगियों की तीन क्रियाए रेचक, पूरक, कुभक। तीन प्रकार के ताप : आध्यात्मिक, अधि-भौतिक अधिदैविक। तीन प्रकार की पवन शीत, मद, सुगध। तीन प्रकार की व्याधियां : आधि, व्याधि, उपाधि। तीन गुण सत्गुण राजस, तामस। तीन लोक मृत्यु लोक, स्वर्ग लोक, पाताल लोक। तीन मुख्य देवता : ब्रह्मा, विष्णु, महेश। तीन काण्ड कर्म, ज्ञान, भक्ति।

चार : चार वेद . ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। चार युग : सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि। चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। चार आश्रम : ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास। चार पदार्थ : धर्म, अर्थ, काम मोक्ष। चार किल विष (पाप) ब्रह्म हत्या, सुरापान, चोरी, गुरु-स्त्री-गमन अथवा एक अन्य मत द्वारा : ब्रह्म हत्या, गौ हत्या, दुहिता हत्या, भ्रष्टाचार। चार दिशाए पूर्व, पश्चिम उत्तर, दक्षिण। चार खाणिया : अडज, जेरज, स्वेदज, उद्भिज। चार मुक्तिया . सालोक्य, सामिप्य सारूप्य, सायुज्य। सूफी मत के चार मार्ग शरीयत, तरीकत, रफीकत हकीकत।

पांच : पाँच ज्ञान इन्द्रिया : कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नाक। पाच कर्म इन्द्रिया : मुह, हाथ, पैर, लिंग, गुदा। पाँच तत्व आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी। पाँच प्राण प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान। पाँच तन्मात्र . शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध। पाँच विकार काम, क्रोध, लोभ मोह, अहकार। पाच नमाजे नमाजे-सुबह, नमाजे-पेशीन, नमाजे-शाम, नमाजे-दीगर, नमाजे-खुफ्तन।

छः : छ दर्शन : योग, साख्य, न्याय, पूर्व मीमासा, उत्तर मीमांसा वेदान्त,। छ कर्म यज्ञ करना, यज्ञ कराना, विद्या पढना विद्या पढाना, दान देना, दान लेना। छ चक्र मूलाधार, स्वाधिष्ठान मणिपूर्क, अनाहत, विशुद्ध आज्ञा। छ दिशाए उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, ऊपर तथा नीचे। छ यती जैन परंपरा में अविर्भूत छ यती। नानक प्रकाश मे छ यतियो के नाम इस प्रकार दिए है।

'अब छ जती सुणो दे काना। लक्षमण, गोरख अरु हनुमाना। भीषम, भैरव, दत्त पछाना।

छ भेष योगी, जगम, जैनी, सन्यासी, बैरागी, वैष्णव। छः राग : भैरव, मालकोस, हिंडोल, दीपक, श्रीराम, मेघ राग। छः रस मीठा, नमकीन, चटपटा, तीक्षण, खट्टा, कड़वा। छः ऋतुए : बसन्त, ग्रीष्म, पावस, शरद, हेमन्त, शिशर।

सात : सात वार : रवि, सोम, मंगल, बुद्ध, गुरु, शुक्र, शनि। सात शारीरिक धातु : चर्म, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य। आकाश-पाताल : 7-7 चौदह-लोक चउदहि के विचे जग आपई आप। सात द्वीप : जंबू, पलख (शाक) शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक, पुष्कर। सात सागर : क्षीर, दधि, घृत, ईख, मधु, मीठे जल का, खारे जल का। सात पाताल : अतल, वितल, सतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल। मुसलमानी विश्वास के अनुसार - अलकाह, अखलाह, अरका, अरकीआ, होमलता, सजीन, अजीविआ। सात पुरियां : अयोध्या, मथुरा, मया (हरिद्वार), काशी, कांची (मद्रास के चेंगलपट जिले में), अवन्तिका (उज्जैन) द्वारावती, (द्वारिका)— अयोध्या, मथुरा, मया, काशी, काँची अवन्तिका। सात स्वर : षड्ज, ऋषभ, गाँधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद।

आठ : आठ धातु : सोना, चाँदी, ताँबा, जिसत, पारा, कली, लोहा, सीसा। शारीरिक धातु : माता से— माँस, नाड़ी, त्वचा, रक्त। पिता से : अस्थि मज्जा, चर्बी, वीर्य। आठ सिद्धियाँ : अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशता, वशिता। आठ पुत्र : श्री रामों के आठ आठ पुत्र। आठ पहर : दिन रात के।

नौ : नव ग्रह : सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु, केतु। नौ द्वार : दो आँखें, दो कान, दो नासिका, एक मुंह, गुदा, मूत्रद्वार। नौ निधियां : पद्म महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद नील, खर्व। नौ प्रकार की भक्ति : श्रवण, स्मरण, कीर्तन, पादसेवन, बन्दना दास्य, सख्य, अर्चन, आत्म-निवेदन। नौ द्रव्य : पृथ्वी, पानी, तेज, वायु आकाश, काल, दिग्, आत्मा, मन। नौ खंड : कुरु, हिरण्मय, रम्यक, इला, हरि, केतुमाल, भद्राश्व, किन्नर भारत। नौ नाथ : आदि नाथ, मत्स्येंद्रनाथ, उदयनाथ, संतोषनाथ, कंथडनाथ, सत्य नाथ, अचंभनाथ, चौरंगीनाथ तथा गोरखनाथ। एक और मत के अनुसार : आदि नाथ, संतोषनाथ, कौलनाथ, अचंभनाथ, गजकंठनाथ, प्रजानाथ, मत्स्येंद्र नाथ, गोरखनाथ।

दस : दस अवतार : आदि ग्रंथ में अवतारों की संख्या दस है। सत्य युग: मत्स्य, कच्छप वाराह, नरसिंह, वामन, त्रेता : परशुराम, श्रीराम चन्द्र द्वापर : श्री कृष्ण, कलि : बुद्ध तथा कलकी। दस इन्द्रियाँ : पाँच कर्म, पाँच ज्ञान। दस दिशाएं : चार मुख्य, चार, कोने, ऊपर, तथा नीचे। दश दशाएँ : पुरुष की—दूध, माता-पिता, भाई-भाभी-बेबे, खेले, खान-पान, काम, सच्य, क्रोध, बुढ़ापा, मृत्यु। दस पर्व : हिन्दू मत के अनुसार—अष्टमी, चौदस, पूर्णिमा, संक्रांति, उतरायण, दक्षिणायण, व्यतिपात ग्रहण। एक अन्य मत : ज्येष्ठ माह, शुक्ल पक्ष, दसवीं तिथि, हस्त निक्षण, बुद्धवार, गुरुकरण, आनन्द-योग, वृतिपाव, कन्या का चाँद, वृष का सूर्य। सन्यासियों के दस पथ : तीर्थ, आश्रम, बन, आरण्यक, गिरि, पर्वत, सागर, सारस्वती, भारती, पुरी। दस वायु : प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, कूकर, देवदत्त, धनंजय।

बारह : योगियों के बारह पथ : हेतु, पाव, आई, गम्य, पागल, गोपाल, कंथड़ी बन, ध्वज, चोली राबल तथा दास पथ। बारह कान्ति अथवा, बानी का सोना बारह बार साफ किया होना सोना। यथा : सोयम सम: दुर्योधन का छत्र बारह योजन पर झूलता था। बारह महीने : चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़,

श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्ग शीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन। बारह सूर्य · विवस्वान, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शुक्र, उरुक्रम, चक्र, अनाहत चक्र, जिसमें बारह दल होते हैं।

तेरह : तेरह आगम चार वेद. छ वेदांग. समृति, पुराण तंत्र तथा शास्त्र।

चौदह : चौदह लोक सप्त लोक—भू लोक, भवलोक, स्वर्गलोक, महिलोक, जनलोक, सप्तलोक कहीं इन में सात द्वीप सम्मिलित किए गए हैं और कही सात पाताल। चौदह रत्न देवताओं ने सुमेरु पर्वत का मथना लेकर तथा बासुक नाग का नेत्रा लेकर समुद्र मथन किया था। उसमें से चौदह रत्न निकले थे। यथा धनवतरी, कामधेनु, घोडा, कमला, मणि ऐरावत हाथी अमृत, रंभा,चद्रमा, विष, कल्पतरु, सुरा, शख।

पन्द्रह . पद्रह तिथि : अमावस से लेकर पूर्णिमा तक।

सोलह . सोलह चक्र विशुद्ध चक्र जिसमे १६ दल होते हैं। सोलह शृगार १६ शृगारो का भिन्न-भिन्न ग्रन्थो मे भिन्न भिन्न प्रकार से उल्लेख है। रसिक प्रिया में केशव ने १६ शृगार इस प्रकार दिये हैं—

प्रथम सकल सुचि मज्जन अमल वास, जावक सुदेस केस पाश को सुधारबो।
अगराग भूषण बिविध मुख वास रग, कज्जल-कलित लोल लोचन निहारबो।
बोलन हसन मृदु चलन चितौन चारु, पल पल पतिव्रत प्रीत प्रतिपारबो।
केसोदास सविलास कर हो कुवरि राधे, इहि विधि सोरह सिगारन सिंगारबो।

सोलह कलाए , ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार सोलह कलाएं इस प्रकार हैं --
ज्ञान ध्यान, शुभ कर्म हटठ, सयम, धर्म, अरु दान।
विद्या, भजन, सुप्रेम जत, अध्यात्म सत मान।
दया नेम अरु चतुरता, बुद्ध शुद्ध इह जान।

सतरह । आदि ग्रथ मे १७ भाटो की वाणी सगृहीत है। बताया जाता है कि इन चारण, ने सत्य की खोज मे सारे भारत का भ्रमण किया था। अन्त मे वे गुरु अर्जुन देव के पास पास पहुँचे और वहाँ उन्हे भक्ति का सच्चा सुख प्राप्त हुआ। इनके कुल १२३ पद आदि ग्रथ मे हैं। इन्होने पाचो गुरुओ का स्तुतिगान किया है। इनके नाम इस प्रकार है कलससार, जालप, कीरत, भिखा, मल्ह, नल्ह, भल्ह, गयंद, मथुरा, बल्ह, हरिबस, कल, टल, जल, जलन, दास, सेवक।

अठारह . अठारह पुराण अठारह पुराणो का आदि ग्रन्थ मे स्थान स्थान पर उल्लेख है यथा. ब्रह्म, पद्म, विष्णु शिव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य ब्रह्मवैवंत, लिंग, वाराह, स्कंध, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़, ब्रह्मड। अठारह भार वनस्पति के १८ भार कल्पित किए गए हैं। ग्रन्थकार लिखते हैं कि

एक भार १२६० तोले का होता है। वनस्पति की प्रत्येक जाति का यदि एक पत्ता ले लिया जाए, तो उसका वजन अठारह भार होता है। गुरु नानक साहब तथा उनके अनुयायियो भक्त कबीर, भक्त नामदेव, की वाणी में स्थान स्थान पर इसका उल्लेख है।

सिद्धियाँ . योग ग्रथो में अठारह सिद्धियो अथवा चमत्कारों का उल्लेख है। अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशता, वशिता, अनूर्मि, दूरश्रवणि, दूरदर्शिनी, मनोवेग, कामरूप, पर-काया प्रवेश, स्वछन्द, मृत्यु, सुर क्रीडा, सकल्प सिद्धि, अप्रतिहत गति।

सार्पो के अठारह कुल सर्प-विज्ञान के शास्त्रो मे कई स्थानो पर आठ और कई स्थानों पर अठारह कुलो का वर्णन है। उन १८ कुलो का वर्णन इस प्रकार है· शेश, वासुक, कथल, करकोटक, पद्म, महा-पद्म शख, कुलिक, सबुद्धि, नदसार, पृथु-श्रवा, तच्छक (तक्षक) अश्वतर, हेम-मालिन, नरेंद्र, वज्रदृष्टि, वृष, कुलीर। आदि ग्रथ मे जनमेजय द्वारा सर्पो की अठारह कुलो को मारने का वर्णन है।

बीस : बीस बिसवे . एक लोकोक्ति है, जिस प्रकार सोलह आने, बीस त्रिशवासियो का एक बिसवा, तथा बीस बिसवे का एक बीघा होता है। आदि ग्रथ मे इस मुहावरे का प्रयोग मिलता है।

इक्कीस इक्कीस नाडियाँ . शरीर मे २१ मुख्य नाडियाँ, जिनमे दस प्रधान है। डा० रामकुमार वर्मा ने इनकी गणना इस प्रकार की है। इडा, पिगला, सुषुमणा, गधारी, हस्त, जिह्वा, पुष्प, यशस्विनी, अलमबुश, कुहू, शखिनी। परन्तु शब्दार्थ आदि ग्रथ (शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी द्वारा प्रकाशित) के टिप्पणीकार गज इक्कीस का भाव, पाच तत्व, पच विषय विकार, दस प्राण तथा एक मन लेते है। भाषा विभाग, पजाब द्वारा प्रकाशित डा० वर्मा द्वारा प्रस्तुत गज इक्कीस का भाव युक्ति संगत बताया है। क्योंकि गजनव (नौद्वार) गज दस (पाँच ज्ञान और पाँच कर्म इन्द्रियाँ), गज इक्कीस (नाडियाँ) पुरीआ एक तनाई (जुलाहे की शब्दावली मे शरीर का ताना बाना)।

इक्कीस कुल (गोत्र) : प्राय भक्ति ग्रथो मे वर्णन आता है कि भक्तजन ससार से स्वय पार हो जाते हैं, तथा साथ इक्कीस कुलो का भी उद्धार कर देते हैं। इन कुलो की गणना इस प्रकार है. सात पीढ़ियाँ पिता की, सात पीढियाँ ननसार की, सात पीढियाँ ससुराल की। आदि ग्रथ मे उल्लेख है कि भक्त प्रह्लाद की इक्कीस कुलो का उसके साथ ही उद्धार हो गया।

चौबीस : वर्ष भर की चौबीस एकादशियाँ (प्रत्येक मास में दो) का वर्णन भी भक्त कबीर जी की रचना में आया है।

पच्चीस . प्रकृतियाँ : पांच तत्वो मे से प्रत्येक की पाँच-पाँच प्राकृतियाँ। अभिषा सागर पुस्तक मे पृ० १८८-१९८ पर इनका सविस्तार उल्लेख है। आदि ग्रथ मे इनका कई स्थानों पर वर्णन है। डा० राम कुमार ने इनका विवरण इस प्रकार किया :—

१. आकाश : काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय।
२. वायु : दौडना, काँपना, लेटना, चलना, संकोच।
३. जल . ज्योति, स्वेद, रक्त, लार, मूत्र।
४. अग्नि : प्यास, भूख, नींद, थकावट, आलस्य।
५. पृथ्वी : त्वचा, केश, माँस, नाड़ियाँ, अस्थि।

इन प्राकृतियों के अतिरिक्त सूक्ष्म शरीर के इन तत्वों के पाँच-पाँच गुण इस प्रकार बताए जाते है :—

१ पृथ्वी . शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध (तन्मात्र)।
२ जल हाथ, पैर, मुह, गुदा, लिंग(के कर्म)।
३ वायु : प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान (प्राण)।
४ अग्नि ' आँख, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा (ज्ञानेन्द्रियाँ)।
५ आकाश ' अन्त करण, मन, चित्त, बुद्धि, अहकार (अंतरीय इन्द्रियां)

तीस मास के तीन दिन।

इक्तीस गुरु ग्रथ की राग-रागनियाँ श्री, माझ, गउडी, आसा, गूजरी, देवगधारी, बिहागड़ा, बडहस, सोरठि, धनासरी, जैतसरी, टोडी, बैराडी, तिलग, सूही, बिलावल, गौंड, रामकली, नट नाराइन, माली, गउडा, मारू, तुखारी, केदारा, भरउ, बसत, सारग, मलार, कानडा, कलिआन, प्रभाती, जैजवती।

बत्तीस स्त्री पुरुषो के शुभ लक्षणो की सख्या ३२ बताई जाती है। भाई कान्ह सिंह ने महान कोश में स्त्री पुरुषों के ३२ लक्षणो का विवरण दिया है। (पृष्ठ ६२५)आदि ग्र थ मे इस विश्वास पर उल्लेख मिलता है। *गुरमति मारतड में ज्ञानी लाल सिंह 'सगरूर' ने भी इन लक्षणों का विवरण दिया है* । सख्या कोष मे राजा के ३२ लक्षणो का उल्लेख है।

तैंतीस तैंतीस करोड देवताओ की भारतीय सस्कृति मे कल्पना की गई है। भक्त कबीर ने राजा राम की बरात मे इनको सम्मिलित होते हुए वर्णन किया है (गु० ग्र० सा० पृष्ठ ४८२)। इनकी गणना ग्रन्थो मे भिन्न-भिन्न प्रकार से की गई मिलती है। प्राय संस्कृत ग्रन्थो में आए देवगणों के ३३ भेदों के अनुसार ३३ कोटि देवता माने गए हैं। उनका विवरण इस प्रकार है . आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, इन्द्र तथा प्रजापति। रामायण मे इन्द्र तथा प्रजापति के स्थान पर अश्विनी कुमारो का उल्लेख है।

चौंतीस अक्षर वैसे तो बावन हैं। (देखिए सख्या बावन) किन्तु मुख्य चौंतीस हैं। (गु० ग्रन्थ सा० पृष्ठ ६५८)

छत्तीस छत्तीस युग प्राचीन विद्वानो की कल्पना के अनुसार प्रलय के पश्चात् ३६ युगो पर्यन्त शून्यावस्था रहती है। इन छत्तीस युगो के नौ कल्प माने गए हैं। एक कल्प मे चार युग होते हैं। आदि ग्रन्थ मे इसका वर्णन कई स्थानो पर है यथा :—

' छतीह जुग गुबारु सा आपे गणत कीनी। (म ३ पृष्ठ ९४६)
"जुग छतीह गुबारु।" मलार (म १ पृष्ठ १२८२)

छत्तीस अमृत (भोजन) कई विद्वानो ने खाद्य पदार्थों की गिनती ३६ की है। भाई कान्ह सिंह लिखते हैं यह केवल कल्पनात्मक सख्या है। भाई गुरुदास जी ने इनकी व्याख्या प्रस्तुत करते हुए लिखा है : 'खट रस मिठरस मेल कै, छतीह भोजन होन रसोईं'। छः रस जिनकी छ की संख्या के नीचे गणना की गई है, उनके छ-छ भेद हो जाने से यह गणना ३६ तक पहुच जाती हैं। इस गणना का सार्वलौकिक महत्त्व भी हो सकता है। आदि ग्रंथ इस गणना का कई स्थानो पर उल्लेख करता है'।

बावन : वर्णमाला के बावन अक्षर आदि ग्रन्थ में भक्त कबीर तथा गुरु अर्जुन देव की बावन अखरियां हैं। (पृ० ३४० वा १३७३) भक्त कबीर जी ने आदि ग्रंथ में वानरो की सेना, जिसकी सहायता से लंका गढ़ छेंका था, की संख्या बावन कोटि बताई है।

साठ : शरीर की नसें। शरीर के भीतर नसो के जाल का वर्णन करते हुए भक्त कबीर जी ने नौ इर तथा साठ नसें बताई हैं। षष्टि सवत्सर : प्रभव आदि (ज्योतिष मे माने हुए) साठ सवत। यह तीन देवताओं के बीस-बीस संवत है, तथा पुन-पुनः इनका चक्र चलता है। आदि ग्रन्थ मे संवतो को देवताओ के न मानकर उस परमात्मा के ही माना गया है। आदि ग्रन्थ के रचयिताओ की विशेषता यह है कि उन्होने परम्परागत विश्वासों को स्वीकार करते हुए, जनता के इन विश्वासों की आलोचना नहीं की, परन्तु उनकी व्याख्या अपने ही ढग से की है। संस्कृत ग्रन्थो मे प्रथम बीसी ब्रह्मा की मानी गई है। 'प्रभव नाम संवतसरे, आदि ब्रह्मा स्वामी'। यह बीसी 'प्रभव' नाम सवत से आरम्भ होती है। दूसरी बीसी विष्णु की मानी गई है। 'सर्व जनाख्यो नाम सरे, विष्णु स्वामी। यह बीसी 'जनाख्यो नाम सवत् से आरम्भ होती है। तीसरी बीसी शिवजी की है और इसका वर्णन इस प्रकार है. 'अथ रुद्र बीसी लिख्यते, पलवग, नाम सवतसरे, रुद्र स्वामी'। यह बीसी पलवंग नाम सवत से आरम्भ होती है।

चौसठ चौसठ घडिया दिन रात की पहले आठ प्रहर माने जाते थे, और आठ प्रहरों मे से प्रत्येक प्रहर की आठ ही घडिया मानी जाती थी। इस प्रकार कुल ६४ घड़ियां बनती थी। भक्त कबीर जी ने चौसठ घडियो का वर्णन किया है। अब यह गिनती साठ मानी जाती है। चौसठ कलाएं : ग्रन्थों में चौसठ कलाएं मानी गई हैं। यह गणना प्राचीन कवियो ने विद्या तथा कला के ६४ भेद मान कर की हैं। यह संख्या भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न मिलती है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में १६ बाण कबि ने ४८, 'कला विशाल' तथा 'महाभारत' आदि ग्रन्थो मे ६४, तथा 'ललित विस्तार' ग्रन्थ मे ४८ कलाएं लिखी मिलती हैं। इस पर टिप्पणी करते हुए भाई कान्ह सिंह नाभा लिखते हैं, 'यदि कलाओं की गणना करें तो सैकडों की सूची तैयार हो जाए'। सम्भवतः इसी कारण आदि ग्रन्थ के रचयिताओं ने या तो पुराण समस्त संख्या १६ दी है, या 'अनिक कला' अथवा 'सरब कला' शब्द का प्रयोग किया जाता है। क्योंकि परमात्मा की कलाओ की गणना की ही नही जा सकती।

अठसठ : तीर्थ हिन्दू धर्म के ग्रन्थों मे ६८ तीर्थों को प्रधान माना है। इन तीर्थों का बार-बार आदि ग्रन्थ मे वर्णन हुआ है। आदि ग्रन्थ तीर्थ स्नान को मोक्ष का साधन नही मानता। सबसे महान् तीर्थ हृदय शुद्धि तथा जीव दया है। ईश्वर का नाम ही ६८ तीर्थों के तुल्य है। ६८ तीर्थों के नामो के लिए देखिए (पृ० ३५, गुरमत मारतड पृ० १६०)।

सत्तर : काबा मुसलमान धर्म के अनुसार ७० काबे माने गए हैं। हिन्दू तीर्थों की भाति भक्त कबीर ने इनकी कल्पना भी हृदय के अन्तर में ही की है। सालार : भक्त कबीर जी को मुसलमानी विश्वासों का पर्याप्त ज्ञान है, और यत्र-तत्र उनका प्रयोग किया है। इन विश्वासों को सन्तमतानुकूल बनाकर अपनाया है। 'उस' परमात्मा की असीम लीला का गान करते हैं, उसके सत्तर सौ सालार हैं। आदि ग्रन्थ(शब्दार्थ) के टिप्पणीकार लिखते हैं : खुदा ने जबरयील फरिश्ते के साथ सात हजार (सत्तर सौ) अन्य फिरश्ते भेजे कि मुहंमद साहब तक 'कलाम-ए-करीम' (बड़ी आयत) पहुंचने में कोई बाधा न पहुंचे।

बहत्तर · कोष्ठ शरीर विज्ञान के अनुसार शरीर के बहत्तर कोष्ठ। इन कोष्ठों का भक्त कबीर ने स्थान-स्थान पर वर्णन किया है। इन सख्यओ का वर्णन योग परक साधना के अन्तर्गत हुआ है।

चौरासी : सिद्ध-नाथ पथ की परम्परा मे सिद्धो की सख्या। आदि ग्रन्थ के प्रधान रचयिताओं की रचनाओं में इसका उल्लेख हुआ है और परवर्ती रचयिताओ ने इन सख्याओ को वैसे ही स्वीकार किया है। डा॰ धर्मवीर भारती लिखते हैं, ये सिद्ध केवल कल्पना मात्र ही नही थे, इनका ऐतिहासिक अस्तित्व भी था। यहां तक संख्या का प्रश्न है, यह सख्या वास्तविक न होकर काल्पनिक मालूम होती है। तंत्रों में ८४ संख्या का विशेष महत्व है और इसके गूढ तान्त्रिक अभिप्राय हैं। तन्त्रो मे, योग, आसन भी ८४ माने गये हैं और वहा भी इस सख्या का साकेतिक महत्व है। टुची इस संख्या को बारह राशि तथा सात ग्रहों का गुणन-फल मानते है। यह ८४ सख्या लगभग प्रत्येक तान्त्रिक सम्प्रदाय मे स्वीकृत थी और यह विश्वास किया जाता था कि सम्प्रदाय मे ८४ सिद्धो का होना अनिवार्य है।

एक बात स्पष्ट है कि मध्य काल मे जनता उन ८४ महासिद्धो की कल्पना से प्रभावित थी। तथा भक्त कबीर साहब गुरु रामदास साहब उनका उल्लेख अपनी वाणी में करते हैं: —

गुरु रामदास साहब: "चउरासीह सिध बुध तेतीस कोटि मुनि जन" सभि चाहहि हरि जीउ तेरो नाउ॥ (पृष्ठ ६६६)

भक्त कबीर जी (१) सिध चउरासीह माइआ महि खेला।" (गु॰ ग्र॰ सा॰ पृष्ठ ११६०)
(२) "खट दरसन ससें परे अरु चउरासी सिध।" (गु॰ ग्र॰ सा॰ पृष्ठ १३७५)

भाई कान्ह सिंह ने भी ८४ सिद्धो की तालिका दी है। परन्तु उन्हे गोरख पथी लिखा है। यह नाम ऊर्मि, अमुनाथ, असुरनिवासी आदि गिने गए हैं। परन्तु यह सिद्धो की तालिका न होकर नाथो की तालिका है। ऐसा लगता है कि नाथो मे भी ८४ सख्या को मान्यता दी गई थी। सिद्धो की सूचि मे प्रथम 'सरहपा' अथवा 'लुईपा' का नाम आता है। इनके नाम कण्हपा, कर्णरिपा, कुकरिपा, कंकणपा, गुण्डरिपा आदि हैं।

नरक. चौरासी लाख नरकों की भी कल्पना की गई है। यह तो चौरासी लाख योनियों की कल्पना पर आधारित सख्या प्रतीत होती है। जन्म-मरण का बन्धन एक नरक माना गया है।

गुरु नानक साहब चउरासी नरक साकतु भोगइऐ। (गु॰ ग्र॰ सा॰ पृष्ठ १०२८)
भक्त कबीर जी - चउराही लख फिरै दिवाना। (गु॰ ग्र॰ सा॰ पृष्ठ ११६१)

—०—

दस गुरुओं की वंशावली

गुरु नानक साहब

पहली पातशाही

(१४६६ ई०—१५३९ ई०)

नाम	गुरु नानक साहब। बेदी वंश (श्री रामचन्द्र जी के पुत्र कुश की वंश से श्री कालकेत ने काशी नगरी में जाकर वेद-धर्मग्रन्थ पढ़े। इनसे बेदी वंश चला)।
अवतार धारण ग्राम	राइभोई की तलवंडी अथवा 'ननकाना साहब' (पश्चिमी पाकिस्तान)।
अवतार धारण संवत्	१५२६ विक्रमी कार्तिक शुदी पूर्णिमा, १४६६ ईसवी। नक्षत्र अनराधा।
माता पिता	माता तृप्ता। पिता मेहता कालू। बहिन बीबी नानकी जो गुरुदेव से ५ वर्ष बडी थी।
महल (स्त्री)	बीबी सुलखनी देवी (सुपुत्री श्री मूलचन्द) बटाला। यहाँ अब तक दीवार की निशानी है जो गुरुद्वारा 'कन्ध साहब' के नाम से सुप्रसिद्ध है।
सुपुत्र	(१) बाबा श्री चन्द (२) बाबा लक्ष्मी दास।
जोति जोत संवत्	१५९६ विक्रमी आसोज सुदी १०, १५३९ ईसवी—करतारपुर।
सम्पूर्ण आयु	उनहत्तर (६९) वर्ष, दस (१०) महीने, दस (१०) दिन।
शासक	बहलोल लोधी, सिकन्दर लोधी और बाबर।

नोट : प्रो० साहिब सिंह और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के अनुसार (१) जन्म—वैशाख शुदी ३ (वैशाख २०), विक्रमी १५२६ (१५ अप्रैल सन् १४६९)
(२) सम्पूर्ण आयु—सत्तर (७०) वर्ष पांच, (५) महीने, सात (७) दिन।)

गुरु अंगददेव साहब

दूसरी पातशाही

(१५०४ ई०—१५५२ ई०)

नाम	गुरु अंगददेव साहब। इनका पहला नाम 'लहणा' था। तेहण वंश (श्री लक्षमण के तक्ख नाम पुत्र से तेहण वंश चला)।

अवतार धारण ग्राम	मत्ते की सराय (जिला फीरोजपुर)।
अवतार धारण संवत्	१५६१ विक्रमी वैशाख सुदी १, ३१ मार्च १५०४ ईसवी। नक्षत्र भरणी।
माता पिता	माता दया कुवरि पिता भाई फेरुमल।
महल (स्त्री)	बीबी खीवी—(सुपुत्री श्री देवी चन्द) सघर ग्राम।
सुपुत्र	(१) बाबा दासू (२) बाबा दातू
सुपुत्रियां	(१) बीबी अमरो (२) बीबो अणोखी
जोति जोत संवत्	१६०९ विक्रमी चेत सुदी ४, २९ मार्च १५५२ ईसवी। खडूर साहब
गुरुगद्दी संवत्	१५९६ विक्रमी असू सुदी ५, सितम्बर १५३९ ईसवी। करतारपुर। (गुरु नानक साहब के जोति जोत होने से ५ दिवस पूर्व)।
गुरुगद्दी समय	बारह (१२) वर्ष, नौ (९) महीने, सत्तरह (१७) दिन।
सम्पूर्ण आयु	सैंतालीस (४७) वर्ष, ग्यारह (११) महीने, उन्नतीस (२९) दिन।
शासक	हमायुं।

गुरु अमरदास साहब

तीसरी पातशाही

(१४७९ ई०—१५७४ ई०)

नाम	गुरु अमरदास साहब भल्ले वंश (श्री रामचन्द्र जी के भाई भरत के पुत्र भलण से भल्ला वश चला)।
अवतार धारण ग्राम	बासर के ग्राम (जिला अमृतसर)।
अवतार धारण संवत्	१५३६ विक्रमी वैशाख सुदी १४, ५ मई १४७९ ईसवी। नक्षत्र कृतिका।
माता पिता	माता सुलक्षणी देवी। पिता बाबा तेज भान।
महल (स्त्री)	श्रीमती मनसा देवी
सुपुत्र	(१) बावा मोहन। (१) बाबा मोहरी।
सुपुत्रियां	(१) बीवी दानी। (२) बीबी भानी।
गुरुगद्दी संवत	विक्रमी १६०९ वैसाख ३, १५५२ ईसवी
गुरुगद्दी समय	इक्कीस (२१) वर्ष, पाँच (५) महीने, एक (१) दिन।
जोति जोत संवत्	१६३१ विक्रमी भादों शुदी पूर्णिमा १, सितम्बर १५७४ ईसवी। गोइंदवाल।
सम्पूर्ण आयु	पच्चानवे (९५) वर्ष, तीन (३) महीने, सत्ताईस (२७) दिन।
शासक	अकबर।

गुरु रामदास साहब

चौथी पातशाही

(१५३४ ई०—१५८१ ई०)

नाम	गुरु रामदास साहब । इनका पहले नाम भाई जेठा था । सोढी वंश (सूर्य वंश से कालराय के पुत्रों में से एक ने सनौढ देश के राज्य पर विजय प्राप्त करके उसकी पुत्री से विवाह किया, उससे सोढी वंश चला)।
अवतार धारण ग्राम	चूने मण्डी (लाहौर)।
अवतार धारण संवत्	१५९१ विक्रमी कार्तिक वदी २, सितम्बर १५३४ ईसवी । नक्षत्र [illegible]
माता पिता	माता दया कुमरि । पिता बाबा हरिदास ।
महल (स्त्री)	माता भानी (सुपुत्री गुरु अमरदास साहब) ।
सुपुत्र	(१) भाई पृथ्वीचन्द (२) बाबा महादेव (३) गुरु अर्जनदेव साहब ।
गुरुगद्दी संवत्	१६३१ विक्रमी १५७४ ईसवी । गोइंदवाल
गुरुगद्दी समय	सात (७) वर्ष
जोति जोत संवत्	१६३८ विक्रमी भादों सुदी १, १५८१ ईसवी । गोइंदवाल ।
सम्पूर्ण आयु	सैंतालीस (४७) वर्ष ।
शासक	अकबर ।

गुरु अर्जुनदेव साहब

पांचवीं पातशाही

(१५६३ ई०—१६०६ ई०)

नाम	गुरु अर्जुनदेव साहब । सोढी वंश ।
अवतार धारण ग्राम	गोइंदवाल ।
अवतार धारण संवत्	१६२० विक्रमी बैशाख वदी ७, १५ अप्रैल १५६३ ईसवी । रोहणी नक्षत्र ।
माता पिता	माता भानी । पिता गुरु रामदास साहब ।
महल (स्त्री)	माता गंगा (सुपुत्री श्री कृष्ण चन्द) मउ ग्राम ।
गुरुगद्दी संवत्	१६३८ विक्रमी भादरों सुदी १, १५८१ ईसवी ।
सुपुत्र	गुरु हरगोबिन्द साहब ।
जोति जोत संवत्	१६६३ विक्रमी ज्येष्ठ शुदी ४, ३० मई १६०६ ईसवी । लाहौर में रावी नदी के तट पर ।
सम्पूर्ण आयु	तैंतालीस (४३) वर्ष, एक (१) महीना, पन्द्रह (१५) दिन ।
गुरुगद्दी समय	चौबीस (२४) वर्ष, नौ (९) महीने ।
शासक	जहांगीर ।

गुरु हरिगोबिन्द साहब

छेवी पात्शाही

(१५९५ ई०—१६४४ ई०)

नाम	गुरु हरि गोबिन्द साहब। सोढी वंश।
अवतार धारण ग्राम	वडाली (अमृतसर)
अवतार धारण संवत्	१६५२ विक्रमी आषाढ वदी ६, १४ जून १५९५ ईसवी। नक्षत्र पुख।
माता पिता	माता गगा, पिता गुरु अर्जन देव साहब।
महल (स्त्री)	(१) माता दामोदरी (सुपुत्री नारायणदास) ढला निवासी। (२) माता नानकी (सुपुत्रीहरिचन्द) बकाला निवासी। (३) माता महादेवी (सुपुत्री दयाराम) मण्डयाली निवासी।
सुपुत्र	(१) बाबा गुरदित्ता, (२) (सुपुत्री) बीबी वीरो (दोनो माता दमोदरी के उदर से) (३) बाबा अणीराय (४) बाबा अटलराय (५) गुरु तेग बहादुर साहब (तीनों माता नानकी के उदर से) (६) बाबा सूरजमल (माता महादेवी के उदर से)
गुरुगद्दी संवत्	१६६३ विक्रमी ज्येष्ठ वदी १४, मई १६०६ ईसवी।
गुरुगद्दी समय	बत्तीस (३२) वर्ष, दस (१०) महीने, कुछ दिन।
जोति जोत संवत्	१७०१ विक्रमी चैत शुदी ५, मार्च १६४४ ईसवी। पातालपुरी (कीरतपुर)
सम्पूर्ण आयु	अढतालीस (४८) वर्ष, आठ (८) महीने, कुछ दिन।
शासक	जहाँगीर और औरगजेब।

गुरु हरिराय साहब

सातवी पात्शाही

(१६३० ई०—१६६१ ई०)

नाम	गुरु हरिराय साहब। सोढी वश।
अवतार धारण ग्राम	कीरतपुर।
अवतार धारण संवत्	१६८७ विक्रमी, माघ सुदी, फरवरी १६३० ईसवी। नक्षत्र भरणी।
माता पिता	माता निहाल कुवरि, पिता बाबा गुरुदित्ता (गुरु हरिगोबिन्द साहब के सुपुत्र)।
महल (स्त्री)	(१) माता कृष्ण कुवरि (२) माता कोट कल्याणी।
गुरुगद्दी संवत्	१७०१ विक्रमी, चैत्र शुदी मार्च १६४४ ईसवी। कीरतपुर।
जोति जोत संवत्	१७१८ विक्रमी कार्तिक वदी ७,६ अक्तूबर १६६१ ईसवी (पातालपुरी) कीरतपुर।

सुपुत्र	बाबा रामराय (माता कोट कल्याणी के उदर से)। गुरु हरिकृष्ण साहब (माता कृष्ण कुवरि के उदर से)।
सम्पूर्ण आयु	इकतीस (३१) वर्ष, आठ (८) महीने, कुछ दिन।
गुरुगद्दी समय	सत्रह (१७) वर्ष, सात (७) महीने, कुछ दिन।
शासक	शाहजहान और औरगजेब।

गुरु हरिकृष्ण साहब

आठवीं पातशाही

(१६५६ ई०—१६६४ ई०)

नाम	गुरु हरिकृष्ण साहब। सोढी वश।
अवतारधारण ग्राम	कीरतपुर।
अवतार धारण संवत्	१७१३ विक्रमी, श्रावण वदी १० जुलाई, १६५६ ईसवी।
माता पिता	माता कृष्ण कुवरि, पिता गुरु हरिराय साहब।
गुरुगद्दी प्राप्ति संवत	१७१८ विक्रमी कार्तिक ८ अक्तूबर, १६६१ ईसवी।
जोति जोत संवत्	१७२१ विक्रमी चैत्र शुदी, १६६४ ईसवी ३० मार्च। दिल्ली में यमुना नदी के किनारे पर बाला साहब गुरुद्वारा।
सम्पूर्ण आयु	सात (७) वर्ष, आठ (८) महीने, कुछ दिन।
गुरुगद्दी समय	दो (२) वर्ष, पाच महीने, कुछ दिन।
शासक	औरंगजेब।

गुरु तेगबहादुर साहब

नौवीं पातशाही

(१६२१ ई०—१६७५ ई०)

नाम	गुरु तेगबहादुर साहब। सोढी वश।
अवतार धारण ग्राम	अमृतसर (गुरु के महल)।
अवतार धारण संवत्	१६७८ विक्रमी, वैशाख वदी पचमी, अप्रैल १६२१ ईसवी।
माता पिता	माता नानकी। पिता हरिगोबिन्द साहब।
स्त्री	माता गूजरी कर्त्तापुर से
सुपुत्र	गुरु गोबिन्द सिंह साहब।
गुरुगद्दी समय	१७२१ विक्रमी, चैत्र शुदी चतुर्दशी, अगस्त १६६४ ईसवी। गुरुगद्दी दिल्ली से बाबा बकाला भेजी गई। बाबा बुड्ढा जी के पावन छवें

	स्थान पर जो बाबा गुरुदित्ता थे उनके द्वारा भेजी। मेरे गुरुदेव [illegible] समय गुप्त रहे किन्तु भाई मक्खन शाह लुभाणे ने उन्हें प्रगट किया।
जोति जोत संवत्	१७३२ विक्रमी मघर सुदी ५ ११ नवम्बर १६७५ ईसवी। शीश गंज (चाँदनी चौक) दिल्ली
सम्पूर्ण आयु	चौवन (५४) वर्ष, सात (७) महीने, दस (१०) दिन।
शासक	औरंगजेब।

गुरु गोविन्द सिंह साहब

दसवी पात्शाही

(१६६६ ई०—१७०८ ई०)

नाम	गुरु गोविन्द सिंह साहब। सोढी वंश।	
अवतार धारण ग्राम	पटना साहब (बिहार प्रदेश)	
अवतार धारण संवत्	१७२३ विक्रमी पौष शुदी ७, १६६६ ईसवी, दिसम्बर २२। [illegible] [illegible] [illegible]।	
माता पिता	माता गूजरी, पिता गुरु तेगबहादुर साहब।	
(स्त्री)	माता जीतो जी।	
सुपुत्र	(१) बाबा अजीत सिंह	(२) बाबा जुझार सिंह
	(3) बाबा जोरावर सिंह	(४) बाबा फतह सिंह
गुरुगद्दी संवत्	१७३२ विक्रमी मघर शुदी ५, ११ नवम्बर १६७५ ईसवी। गुरुगद्दी दिल्ली से आनन्द पुर भेजी गई।	
गुरुगद्दी समय	बतीस (३२) वर्ष, दस (१०) महीने, छबीस (२६) दिन।	
जोति जोत संवत्	१७६५ विक्रमी कार्तिक शुदी ५ ७ अक्तूबर १७०८ ईसवी। हजूर साहब नोदड (महाराष्ट्र)।	
सम्पूर्ण आयु	इकतालीस (४१) वर्ष, नौ (९) महीने, पन्द्रह (१५) दिन।	
शासक	औरंगजेब।	

सूचना १७६५ विक्रमी कार्तिक शुदी द्वितीय को गुरु गोबिन्द सिंह साहब ने हजूर साहब (नोदड़) में गुरु ग्रन्थ साहब को गुरुगद्दी पर प्रतिष्ठित किया।

—•—

जपुजी मेरे विचार में

यह वाणी पहली पातशाही, गुरु नानक साहिब की एक सूत्रमई महान् दार्शनिक रचना है। 'आदि ग्रन्थ' की दिव्य वाणी एक प्रकार से, 'जपुजी' का ही बिस्तृत भाष्य है। मेरे पिता, पूज्य दादा चेलाराम जी का यह धारणा थी कि "जपुजी' में सार्वभौमिक अथवा संसार के सभी धर्मों का दर्शन तथा सार पूंजीभूत है"। वस्तुत इसका ३८ पौडिया, दो श्लोकों और मूलमन्त्र में उपनिषदो और गीता-दर्शन का सार देखा जा सकता है। यह सत्य है कि जैसे 'गीता' हिन्दू-धर्म-दर्शन का निचोड है और New Testament ईसाई मत के बुनियादा-नियमो का विवेचन है वैसे ही 'जपुजी' सिख धर्म के नियमो-सिद्धान्तों का साराश है। विश्व-शान्ति और सर्व-प्यार (विश्व बन्धुत्व) का सन्देश भी है।

'जपुजी' 'आदि ग्रन्थ' का आधारभूत आदि स्रोत है। यद्यपि आदि ग्रन्थ में 'जपुजी' ऐसा शार्षक नही लिखा है तथापि मूलमन्त्र के पश्चात् 'जपु' शब्द का उल्लेख है और वाणी सूची (तत्तकरे) मे इसका नाम 'जपु निसाणु' लिखा हुआ है। आम प्रसिद्ध नाम 'जपुजी' है। श्रद्धालु प्रेमी सम्मान के लिए 'जपु' के साथ 'श्री' 'जी' 'साहिब' अक्षरो का प्रयोग करते हैं। इस वाणी का नाम ही बताता है कि यह मन्त्र रूप है। जाप मन्त्र का ही किया जाता है। गुरुदेव ने इस वाणी को किसी भी राग, पद या ध्वनि में नहीं लिखा है। इसलिए यह वाणी आसा दी वार की तरह कीर्तन सत्सग में गाई नही जाती। केवल पाठ ही करने की मर्यादा है—यथा 'अमृत वेले नामराह गुरुमुख जप गुरु मन्त्र जपाया' (वार २६-४) रहत नामा मे भा आता है—'कर इस्नान पडे जप जापु'(र न भ नन्दलाल)। यह वाणी कुछ कठिन है, अधिक गूढ़ और विचित्र शैली मे रची गई है जिसे प्रत्येक सिख तथा अन्य भक्तजन कण्ठस्थ करते हैं। प्रतिदिन प्रात काल की प्रार्थना के समय इसका पाठ करना अनिवार्य है। करतारपुर मे (सायकाल को) सोदर (रहिरास) आरती तथा प्रात. 'जपुजी' का पाठ होता था—'सोदर आरती गविऐ अमृत वेले जाप उचारा' (भाई गुर दास वार) स्वय गुरुदेव ने इस वाणी मे बताया है—'अमृत वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु' (जप पौडी-४)

'जपुजी' का पाठ सर्वोत्तम माना जाता है। जब भी श्रद्धालु प्रेमियों पर कष्ट और पीडा आई है इसी वाणी का उच्चारण करके उन्हे परमात्मा का हुकम सहर्ष मीठा करने और कष्ट सहन करने की शक्ति प्राप्त हुई है। कहा तक इस अद्वितीय वाणी की महिमा व महत्त्व को लिखूं। इतिहास साक्षी है कि 'जपुजी' के पावन पाठ की समाप्ति पर पहली पातशाही, गुरु नानक साहिब ज्योति ज्योति समाए। पचम पातशाही, गुरु अर्जुन देव शहीद हुए, गुरु तेग बहादुर ने सीस भेंट किया और गुरु गोविंद सिंह ने 'खालसा' जन्म के समय अमृत का बाटा तैयार करने के समय इसी 'जपुजी' का पाठ किया। भाई मतिदास ने अपना शरीर आरे से चिरवाने के समय और दो छोटे साहबजादों ने अपने आपको जिन्दा दीवार में चुनाने के समय भी 'जपुजी' का पाठ उच्चारण किया। जब पाठ की समाप्ति हुई तभी उन्होंने अपने प्राण हंसते हुए सहर्ष दिए। अनेक सिदकी और श्रद्धावान प्यारों ने इसी वाणी का पाठ उच्चारण करने के पश्चात ही खोपड़ियां उतरवाईयां, चमड़ीयां उधरवाईयां, शरीर चिरवाए, बन्द बन्द कटवाये परन्तु 'मुखों सी नही उचारी'। मुखो से उफ् तक नही निकली।

अनेक महानुभावों, विचारकों ने 'जपुजी' की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कृपया उनके गहन अध्ययन

और विश्लेषण का गम्भीरता को पढ़कर स्वयं अनुभव करें।

"It is remembered by heart by every sikh and others devoted to the Guru. Its recital is enjoy-ment for their daily morning prayer". Pujya Dada Chellaramji

2. (a) "His best knownwork is Jap Sahib or Japji, the morning prayer".

(b) "It is the pious practice of all sikhs to start each day with its recitation."

'Dr. S. Radhakrishanan'

3. (a) "The most loved of all the Gurus hymns".

(b) "This hymns contains the essense of whole teaching of the Guru". Green Less

4. "Japji is itself a Complete exposition of the sikh faith" Payne, C. H.

5. "Of all Sikh Scriptures none is more imortant than Guru Nanak's Japji".

Mcleod, Dr. W. H.

"Guru Nanak's Japji is a most outstanding devotional hymn and the reader who understands it finds himself transported to a strange world of bliss.

Nizvi, Dr S. A. A.

७. "अमृत वेले उठि कै, जाए अन्दरि दरिआइ नांवदे।
सहजि समाधि अगाधि विचि, इक मनि होइ गुर।।
भाई गुरदास-वार २, पौडी ३

८. "ठडे पाणी जो नहि नावै, बिनु 'जपु' पडे, प्रसादि जु खावै।
बिन 'रहिरास' समा जो खोवै, कीरतन पडे" बिना जो सोवै।।
चुगली कर के जो काज बिगोरै, ध्रिग तिन जन्म जो धरम विसारै।।
भाई नन्दलाल, चौपाई १५-१६

९. "जपुजी' कंठ नितप्रति रहै, जनम जनम के कलमल कटै"।
भाई सतोख सिघ
श्रो गुरु नानक प्रकाश ध्याय—५२ पौडी १०७

'जपुजी' के सम्बन्ध मे यह भी धारणा है कि सत्योपलवढी के बाद गुरुदेव के निकले प्रथम वचन हैं ये। सत्यलोक से वख्शीश का प्याला प्राप्त करने के बाद लौटकर 'जपुजी' सतगुरु की प्रथम भेंट है जगत को। स्वभावत 'जपुजी' में सग्रहीत ये वचन परमात्मा जगत् के सम्बन्ध मे गुरु नानक साहब के उद्गार हैं, जो 'वेई' नदी मे गुरुदेव को तीन दिन की गहन डुबकी से वापसी पर प्रगटे। काश! गुरुदेव के प्रत्येक श्रद्धालु प्रेमी 'शान्ति-तट' पर स्नान करे। तट की सीढिया है 'जपुजी' की ३८ पौडिया। प्रत्येक पौडी समझनी होगी, प्रत्येक पौडी पर चलना होगा जीवन मार्ग मे, ताकि हम जाकर पहुचे 'नाम नदी' मे जहा पर 'उसकी' कृपा हो, कृपादृष्टि हो, कृत्य कृत्य हो।

साधु टी० एल० वासवानी का विचार है कि सतगुरु एक परमात्मा का सन्देश देने के लिए सुमैर पर्वत पर पहुचते हैं जहा गोरखनाथ के सिद्धान्तों पर आधारित एक साधुओ की मण्डली थी उनसे गोष्ठी होती हैं जिसका परिणाम है 'जपुजी'। गुरुदेव वापस आकर गुरु अगद देव से 'जपुजी' का जिक्र करते हैं। 'जपुजी' की शिक्षा बाबा नानक ने पहले सुमैर पर्वत पर दी थी। श्री ईसामसीह ने भी पहाड़ पर शिक्षा दी थी जो "The Sermon on the mount" के नाम से प्रसिद्ध है।

काश! हम भी 'आत्मिक पर्वत' पर चढ़कर गुरुदेव की शिक्षा को पढ़े, सुनें, विचारें और अनुगमन

करें। अवश्य ही परमानन्द की अनुभूति होगी।

सारांश 'जपुजी' में परमात्मा के एकतव, स्वरूप, नाम अथवा भक्ति के महत्त्व एवं भगवान से प्रेम पर बल दिया गया है। जिसके अनुसार मनसा :, वाच., कर्मण. भगवान के हुकम को सहर्ष स्वीकार करना अनिवार्य समझा गया है।

प्रारम्भ में गुरदेव मूल मत्र में 'एक' ओंकार सतिनाम का उच्चारण करके परमात्मा के स्वरूप को बतलाकर उपदेश करते हैं कि गुरु की कृपा से एक कर्त्ता पुरुष, निर्भय, निर्वैर, अकालमूर्ति, अजूनी, सैभं प्रभु का नाम जप। जिज्ञासु का मुख्य लक्ष्य 'सत्य' की खोज तथा प्राप्ति है जिसके लिए उसको 'सचिआरा' (सत्यमयी जावन) होने की आवश्यकता है। सचिआरा वह तब हो सकता है जब झूठ की दीवार को तोड़ सके। अतः मुख्य प्रश्न है कि नाम कैसे मिले ? जो झूठ का पर्दा (हमे प्रियतम से दूर कर बैठा है) वह कैसे टूटे ? क्या शरीर की शुद्धि द्वारा ? सोच विचार द्वारा ? मौन द्वारा ? व्रत द्वारा ? गुरदेव कहते हैं नही। यह सब मानव बुद्धि की चतुराइया है। उसके बनाए हुए साधन हैं जो आध्यात्मिक मार्ग में काम नही आते। फिर, हे गुरदेव, क्या करना चाहिए ? उत्तर शाश्वत रूप से पूर्ण निर्दिष्ट सर्वशक्तिमान भगवान के हुकम पर मनसा, वाच, कर्मण. द्वारा आत्म समर्पण ही एकमात्र साधन है। सत्य बनने या प्राप्त करने के लिए 'उसकी' इच्छा के आगे नत-मस्तक होना एव 'उसका' आदेश सहर्ष स्वीकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई साधन भी नही है ॥२॥

'उसका' हुकम महान है। समस्त सृष्टि 'उसी' के हुकम की अभिव्यक्ति है। समस्त जीव ऊंचे तथा नाचे, बडे तथा छोटे, उन्नत तथा अवन्नत, सुख तथा दुख एव जीवन मुक्त और जन्म-मरण के चक्र में पडे हुए भोगी यह सब हाकिम के हुकम से हो रहा हैं। यदि मनुष्य 'उस' के हुकम के महत्त्व तथा शक्ति को अनुभव करता तो वह यह न कहता कि 'मैं' करता हू। वह कहता, 'वही करता है ॥२॥

'उस' हाकिम का 'शक्ति' 'उसकी उदारता', 'उसकी कला', 'उसकी बुद्धि', 'उसकी सर्वज्ञता', 'उसकी अद्वितीय प्रतिष्ठा, श्रेष्ठता तथा महानता' का कौन बखान कर सकता है ? कोई भी नही। वह' सबसे मुक्त रहकर शाश्वत आनन्द मे सदैव विकसित, अत्यन्त प्रसन्नचित्त एवं बेपरवाह बादशाह है ॥३॥

साहिब हमारा सत्य है, उसका नाम भी सत्य है। 'वही' एक मात्र दाता है जिसके द्वार पर ब्रह्मांड खड़ा याचना कर रहा है। हे गुरदेव ! अल्पज्ञ जीव ऐसे परमात्मा के समक्ष क्या भेंट रखे ? 'उसका' प्रेम प्राप्त करने के लिए किन शब्दो का उच्चारण करें ? उत्तर प्रभात के अमृतमयी वेला में जब प्रभु की कृपा की मन्द-मन्द फुहार पड रही होती है, परमेश्वर के ध्यान में बैठकर 'उसकी' महानता पर विचार करें। हां ! मनुष्य देही रूपी अमृत वेले की समाप्ति से पहले 'उसकी' आराधना करे। कर्मों से जन्म-मरण होता है और 'उसकी' कृपा से नाम जपकर मोक्ष प्राप्त होता है ॥४॥

जिन्होंने सचिआर (सत्य स्वरूप) प्रभु को श्रवण किया, सेवा की, ऐसे गुणीनिधान प्रभु के गुणो का गान प्रेम तथा श्रद्धा सहित मन से किया, उन्होंने ही सम्मान प्राप्त किया। उनके ही दु.ख सदैव-सदैव के लिए दूर हुए हैं और शाश्वत घर में लौटकर आनन्द और सुख प्राप्त किया है। जिज्ञासु के लिए गुरमुख बनना अर्थात अपने गुरु के पदचिन्हों पर चलना अनिवार्य है। गुरु ही सब कुछ है, गुरु ही विश्वास करायेगा कि जो समस्त सृष्टि का एक मात्र दाता है उसे कभी भी न भूलें ॥५॥

हे मनुष्य ! तुम्हारे हृदय के अन्त:स्थल मे अनमोल रत्न तथा माणिक्य दबे पड़े हैं। केवल गुरु के उपदेश को सुनकर यह रत्न तुम्हारे जीवन को आलोकित कर सकते हैं ॥६॥

मनुष्य की महानता इसी में है वह परमात्मा की कृपा दृष्टि प्राप्त करे। जिस पर 'उसकी' कृपा दृष्टि होती है, वह उत्तम मे उत्तम है अन्यथा 'उसकी' कृपा दृष्टि के बिना राजाओं के राजा भी कंगाल हैं

और नीच से नीच हैं ॥७॥ भक्तजन, संतजन के चरण कमलों में बैठकर प्रभु की महानता और उसकी पवित्र वाणी (नाम) को श्रवण करने से अनेक आध्यात्मिक तथा गुप्त विषयों का पता चलता है, फल प्राप्त होता है और अन्तत दुखों तथा पापों का नाश होता है ॥८-११॥

परमात्मा की श्रेष्ठता, 'उसका' सत्य नाम, पवित्र वाणी सुनने से मनुष्य अपनी आँखों में आँसू लेकर 'उसकी' ओर देखता है। वह भगवान की इच्छा को स्वीकार करता है। उसके मन में नाम की लहर उठती है। वह उसके' आदेश के आगे नत-मस्तक होता है और सम्पूर्ण आत्मसमर्पण करता है। अहम् भाव से मुक्त होकर अन्तत: जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है। गुरुदेव कहते हैं कि मनन करने वालो की अवस्था का वर्णन नही किया जा सकता। किन्तु खेद है ऐसे सौभाग्यशाली उपासक बहुत ही कम हैं ॥१२-१५॥

जिन्होंने प्रभु को सुना, मनन किया वे पच(सन्तजन) हैं। वे पांच विकारो से मुक्त हैं। वे पांच तत्त्वों से ऊपर उठकर केवल एक परमात्मा को अपना गुरू जानकर उसके ध्यान में रहते हैं। पवित्र सन्तजन ही परमात्मा की दरबार मे मान्य है, सम्मानित हैं और उनके मुखारविन्द दैदीव्यमान हैं। परमात्मा सृष्टा, सरक्षक और सहारक है। 'वह' अति सुन्दर और शक्तिशाली है। यह समस्त रचना 'उसी' एक के हुकम से बनी है। प्रभु की प्रकृति कितनी व्यापक है। हे बाबा! तू ऐसे प्रभु की प्रेम वेदी पर एक बार नही सहस्त्रों बार न्यौछावर हो जा ॥१६॥

परमात्मा प्रकृति का कुशल सृष्टा है। प्रकृति मे अच्छे तथा बुरे असख्य प्राणी हैं जो शुभ कर्म करते हैं लेकिन असख्य ऐसे भी प्राणी हैं जो नीच कर्मों के करने में लगे हुए हैं। हे बन्दे! याद रखना अच्छे और बुरे 'उसने' बनाए हैं अत अपने तुच्छ निर्णायक माप दण्ड से 'उसके' कृत्यो का निर्णय न करना। हे प्रभु! 'आपके' विषय मे आपकी प्रकृति के विषय में मुझे कहने का क्या अधिकार है! वस्तुत प्रत्येक जीव के मस्तिष्क पर भाग्य-लिपी लिखी है। जो कुछ हो रहा है भाग्य-विधाता के आदेश पर हो रहा है। काश! मैं अपना जीवन आपकी प्रेम-अग्नि मे आहुति के रूप मे भेंट कर दूँ! हे निरकार! आपकी प्रसन्नता मे ही हमारी प्रसन्नता है। आपकी मर्जी के बिना तो कुछ होता नही इसलिए जो कुछ होगा ठीक होगा। जो आप को भाये (अच्छा लगे) वही शुभ है अत हे प्रियतम! एक बार नही, सहस्र बार मैं आप पर न्यौछावर हो जाऊँ ॥१७-१८-१९॥

मानव मन पापों से मलिन है याद रखना पापों की मोटी, गहरी तह को किसी भी बाहरी उपक्रम से दूर नही किया जा सकता! वह केवल 'नाम-रग', 'प्रेमाभक्ति' द्वारा ही जन्म जन्मान्तरो के कर्मों की मैल को धोकर पवित्र हो सकता है। याद रहे शुभ कर्मों से भी सहस्र गुणाधिक महान नाम है। नाम के द्वारा ही मानव कर्मों से ऊपर उठता है ॥२०॥

हे प्यारे! परमात्मा के नाम का श्रवण कर, 'उसके' लिए मन में प्यार, चाहना (इच्छा) उत्पन्न कर। अपने आपको उसकी इच्छा पर समर्पित कर। वह तभी सम्भव है जब तू 'उसकी' स्तुति में सदा लिव (लीन) रहेगा। अपना अमूल्य समय विद्वत्ता प्राप्त करने में व्यतीत मत करना। स्मरण रहे कि जो मनुष्य अहंकार युक्त कर्म करता है वह आगे प्रभु की दरबार में शोभा नही प्राप्त कर सकता ॥२१॥

विधाता की उत्पत्ति असीम है, बेअन्त है। लाखों आकाश और लाखों पाताल हैं। 'वह' स्वयं और 'उसकी' रचना अन्नत है। वस्तुत. वही स्वयं जानता है। हे प्राणी! परमात्मा को सदैव महान कहो और महान कहकर 'उसे' गाओ ॥२२॥

परन्तु जब 'उसकी' स्तुति करो यह मत समझना कि 'उसका' अन्त कभी प्राप्त कर सकोगे। जैसे समुद्र मे नदिया और छोटे नाले गिर जाते हैं, अन्त नहीं प्राप्त करते वैसे तू भी अपने प्रियतम में समा जाएगा परन्तु 'उसका' पूर्ण अन्त कदाचित प्राप्त नहीं होगा। किसी ने भी अन्त नहीं प्राप्त किया और न ही प्राप्त कर सकेगा। 'वह' सदैव बेअन्त है ऊँच से ऊँच है ॥२३-२४॥

परमात्मा की अनन्त दयालुता है। वह सदा देता है। उसे लेश मात्र भी इच्छा नहीं, परवाह नही। अनेक हैं जो प्रभु का दिया नमक खाते हैं परन्तु पीठ मोड देते हैं और अनेक हैं जो अभिमान के कारण अपने आप को दातार समझते हैं परन्तु दयालु पिता उन पर भी कृपादृष्टि करते हैं। वस्तुत: वह जिस पर 'स्तुति' की वर्षा करता है वह जीव 'बेमुहताज' वादशाह हो जाता है ।।२५।।

हे बन्दे ! परमात्मा के गुण अमूल्य है, अकथनीय है। उसके समस्त कार्य निरमोलक (अमूल्य) है। उसकी महिमा वेद-शास्त्र, यती-सती, देव-देवता कथन कर करके थक गए फिर भी 'उसकी' महानता का पूर्ण वर्णन नही कर पाए ।।२६।।

हे प्रभु ! आपके दरबार में सब देवी-देवता, जीव-जन्तु, आदि आदि सारा ब्रह्माण्ड आपका यश गाकर सुशोभित हैं परन्तु जो महिमा आपके भक्तजनो की है वह सच्ची है, वे ही स्वीकृत है, उन पर ही आपकी कृपा है और वे ही आपको अच्छे लगते हैं। भक्त वे हैं जो प्रभु की स्तुति करके उसे सच करके मानते हैं और उसके हुक्म पर प्रसन्न होकर चलते हैं ।।२७।।

हे योगी ! यदि सच्चा योग कमाकर प्रभु की दरबार मे प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहते हो तो सन्तोष, त्याग (शर्म) और ध्यान धारण करो; मृत्यु को याद रखो, अपने शरीर को पवित्र रखो; जीवात्मा की युक्ति धारण करो, नाम मे विश्वास रखो, सबको एक समान देखो, मन को जीतो और उस परमात्मा के आगे सदा नमस्कार करो जो युग-युग मे एक समान है ।।२८।।

इतना ही नहीं, हे योगी आध्यात्मिक ज्ञान भी प्राप्त करने के लिए दया धारण करो। घट-घट में परमात्मा का नाद श्रवण करो और सयोग के मार्ग पर चलकर उस प्रभु के आगे सदा नमस्कार करो जो युग-युग से एक समान है ।।२९।।

हे योगी ! जिस निरजन परमात्मा को ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी नही देख पाते हैं, उस एक परमात्मा का आदेश मानो जो युग-युग से एक समान है ।।३०।।

प्रभु का आसन निहचल (अचल) है और 'उसके' भण्डारे लोक-लोक मे प्रसिद्ध है जो कभी भी कम नहीं होते। 'वह' आप सच है और जो कुछ कर रहा है वह भी सच है। ऐसे अविनाशी प्रभु के आगे सदा नमस्कार कर जो युग-युग से एक समान है ।।३१।।

हे प्यारे ! जगदीश्वर का नाम बार-बार जपो। याद रखना नाम जपने के लिए एक जिह्वा पर्याप्त नही, अनेक चाहिए। लाख, बीस लाख जिह्वा हो तो भी एक एक जिह्वा से लाख-लाख बार नाम का उच्चारण करना होगा ! यही है सत्य का रास्ता। यही है प्रतिष्ठा की पौड़ियाँ। चढ़ोगे तो ईश्वर से एक हो जाओगे ।।३१।।

हे मानव ! तुम्हारी अपनी शक्ति कुछ भी नही हैं। समस्त शक्ति उस मालिक की है जो अपने आनन्द में अपनी ही रचना को देख रहा है। यह भी याद रखना कि कोई भी यहाँ उत्तम या नीच नहीं है ।।३३।।

(मुक्ति पद अर्थात् (मोक्ष) परमेश्वर का दर्शन) प्राप्त करने के लिए पाच खण्डों अर्थात् मन की पांच अवस्थाओं में आना होगा।

धर्मखंड—कर्तव्य पालने को अवस्था। जिज्ञासु के लिए पाँचवे अन्तिम अर्थात् सत्यखंड में पदार्पण करने के लिए चार खंडो अर्थात् मानसिक अवस्थाओं को लांघकर अपने जीवन के परम लक्ष्य तक पहुंचना पड़ता है जहां से लौटकर वापस नहीं आते। धर्म खड प्रथम अवस्था है जहां जिज्ञासु इस धरती को धर्मशाला-कर्तव्य रूपी खेती मानकर जहा कहीं परमात्मा ने रखा है, कर्तव्यो की पालना इस निश्चय से करता है कि सच्चे परमात्मा के न्याय के निष्पक्ष दरबार में प्रत्येक कर्म (शुभाशुभ) पर विचार होता है और

अन्ततः कर्मानुसार ही फल प्राप्त होता है। अतः इस खंड के वासियों की यह चाहना होती है कि हम श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कर्म करें, वे ऊँच (उच्च) करणी वालो और धर्म की ओर चलने वालों की संगत में आकर यह भा जानते हैं कि उस सच्चे दरबार में केवल पच (संतजन) ही स्वीकृत तथा सम्मानित होते हैं। लेकिन दैवी कृपा 'उसकी' इच्छा से ही होती है। उन्हे यह भी स्मरण है कि यहां से जाने पर ही परमात्मा के सामने परख होती है कि कौन सच्चा है और कौन पक्का है। उन्हें यह भी ज्ञात है कि संसार घर नहीं है, धर्मशाला है जहां थोडी देर रुकना है लेकिन सदा के लिए उसे घर नहीं बना लेना है। जिसने रास्ते में ही सराय को घर समझ लिया वह असली घर से वंचित रह जाएगा, तो वह मंजिल तक कैसे पहुंचेगा ? कौन चलेगा ? इस आरम्भिक अवस्था में जिज्ञासु का मुख्य प्रयत्न कर्मों की ओर ही होता है। वे अच्छे कर्म करना चाहते हैं। वे तामस से रज और रज से सत्व गुणो की ओर निजी प्रयत्नों तथा सत्संग के प्रभाव से प्रवृत्त होते हैं ॥३४॥

ज्ञान खंड—दैवी ज्ञान की अवस्था। यह द्वितीय अवस्था है जहां जिज्ञासु शुभ कर्मों से उत्तम बनते हैं। गुरु का सान्निध्य प्राप्त करते है। गुरु का उपदेश ग्रहण करके वे अनुभव करते हैं कि सर्व शक्तिमान परमात्मा इस बेअन्त व्यापक ब्रह्माण्ड पर अपना राज्य चला रहा है। और यह धरती उसका तुच्छ भाग है। उसे ज्ञान से ज्ञात होना है कि ब्रह्माण्ड मे असंख्य तत्व, सूर्य और चांद, आकाश और भूतल, पर्वत और समुद्र, नाना प्रकार के जड और चेतन, असंख्य देवियां और देवते, तथा असंख्य राजाओं और प्रजाओं की असीम सृष्टि 'उसी' के अपरिवर्तित नियम हुकम से चल रहे हैं। ज्ञानवान होते ही वे 'उसकी' महानता पर विचार करते हैं और 'उसकी' प्रभुता का योगदान करते हैं। ज्ञान के आलोक से वे अज्ञानता और अविद्या की निद्रा से जागृत होते हैं। अब उन्हें ज्ञान है कि उनके जीवन का उद्देश्य उस अवस्था की प्राप्ति है जिसमे 'वह' साकार है। उन्हें जीवात्मा और परमात्मा के अभेद का ज्ञान होता है और माया भ्रम का पर्दा टूटने लगता है। वे संसार में पहले से कुछ विचित्र रूप से रहते हैं क्योंकि ज्ञान से उन्हें निश्चय और उत्साह से वे तब महात्माओ, ऋषियों, मुनियों आदि उच्च आत्माओ के पद-चिन्हों का अनुसरण करने के इच्छुक होते हैं। जब तक वे नाम की उच्चतम अवस्था को प्राप्त नही कर लेते तब तक चैन के साथ नही बैठते। इस द्वितीय खड में प्रवेश करने पर बुद्धि आध्यात्मिक प्रकाश से अत्यन्त देदीप्यमान होती है। वस्तुत सचेत रहकर जागृतावस्था को जान लेने का नाम ज्ञान है जो अवर्णनीय है ॥ ३५ ॥

सरम खंड—वैराग्य (लज्जा) की अवस्था। रचना की व्यापकता तथा इसके नियन्ता सर्व शक्तिमान भगवान की महानता का ज्ञान होते ही इस तृतीय अवस्था में जिज्ञासु को अपने प्रति और अपने आस-पास के वातावरण के प्रति उदासीनता एवं वैराग्य के भाव उठने लगते हैं। क्योंकि जो जान लेता है उसे ही पता चलता है कि कितना मैं अज्ञानी हूं, इसलिए लज्जा खड की रचना गुरु जी ने की। अज्ञानी को पता ही नही है कि वे कैसे अज्ञान से भरे हैं। अज्ञानी तो अपने को ज्ञानी समझकर जीता है। सिर्फ ज्ञानी ही जान पाता है कि उसमें कैसा महान अज्ञान है। सुकरात ने कहा है कि जब मैंने जाना तो एक ही बात जानी कि मैं कुछ भी नही जानता। उस अवस्था को मेरे गुरदेव लज्जा खंड कहते हैं, जहां जिज्ञासु बड़ी शर्म से भर जाता है कि मैं कुछ भी तो नही हू। अब वे रंगीली माया से विमुख होते हैं, सांसारिक स्वादों से उदासीन होते हैं। और वे स्वय से दूर हटने लगते हैं। वे सांसारिक इच्छाओं से शून्य होते हैं और मोह आदि विकारो के बन्धन उन्हें बाध्य नही करते। वे इतना ही खाते हैं और सोते हैं जिससे यह शरीर स्वस्थ और शक्तिशाली रहे ताकि वे परमात्मा की पूर्ण सेवा कर सके। वे अन्दर ही अन्दर अहं भाव को दूर करके माया के बीच मे रहकर पूर्ण समर्पण वाला जीवन व्यतीत करते हैं। वे सच्चे योगी हैं, सच्चे संन्यासी है,

सच्चे तपस्वी हैं जो माया में रहते हुए भी निर्लिप्त रहकर पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं। उनकी सब गुप्त शक्तियां—ध्यान, मन, बुद्धि आदि इस खंड में घड़-घड कर निखरती हैं जिससे वह स्वच्छता और सुन्दरता को प्राप्त होते हैं। वस्तुतः उदासीनता तथा त्याग के खंड का मर्म सौदर्य और आनन्द है जिसका वर्णन शब्द की परिधि और मानव विचार शक्ति से परे हैं ॥३६॥

कर्म खंड—कृपा-भक्ति की अवस्था। जब जिज्ञासु वैराग्य-लज्जा से भर जाता है तो 'उसकी' कृपा बरसती है, उससे पहले नहीं अर्थात् जब पुजारी मिट जाता है तभी पूजा शुरू होती है। लज्जा में जिज्ञासु मिट जाता है, वह तो बचता नहीं और तब अचानक, वहां से आनन्द की वर्षा हो रही पाता है। अतः चौथी अवस्था में जिज्ञासुओं के विचार वचन, कर्म एक प्रभु को अपार महिमा में केन्द्रित रहते हैं। उन्हें केवल एक ही अग्नि रूप आशा है कि कैसे 'उसे अधिक से अधिक प्यार देवें' और कैसे 'उसके' प्रेमरूपी हवन में अपने जीवन की आहुति डालें। उनके समस्त कर्म निष्काम भावना से होते हैं। ऐसी आत्माएँ पावन और पुनीत हैं, उनमें आत्मिक बल है। वास्तव में वे ही योद्धे, बली और शूरवीर हैं। उनमें द्वैत भाव नहीं उनमें लेश मात्र भी अहम भाव नही रहता। भगवान की कृपा-दृष्टि उन पर होती है जिसमें वे मग्न रहते हैं। इस अवस्था में जिज्ञासु को ज्ञात है कि सीता समान ऐसे उपासको, भक्तो, सन्तो के समूह हैं जिनके हृदय राम के प्रेम धागे से सिले हुए हैं जिनके हृदय मे प्रियतम प्रेम का वासा है। उन्हें न मृत्यु स्पर्श कर सकती है और न माया धोखा दे सकती है। वे काल चक्र से ऊपर उठ जाते हैं। वस्तुत ऐसे भक्तजन प्रिय परमात्मा को अपने मन के आसन पर बैठा कर उसी के हुक्म मे चलते हैं। अन्तत वे निरजन, निरंकार के अनूप महल के द्वार पर पहुँचते हैं।

सच खंड—सत्य की अवर्णनीय अवस्था। यह यात्रा के चार खड हैं। पाचवी मन्जिल है सत्य! यह खंड कृपा की पराकाष्ठा है। भक्तजन परमात्मा की कृपा से निहाल होकर अमृत मे मग्न, सर्व सौंदर्यमय, पावन और शान्तचित चोटी (शिखर) पर खड़े होते हैं। दैवी द्वार खुलता है और वे सत्य खंड मे प्रवेश करते हैं जहा निराकार परमात्मा का वास है। वे आकारहीन साकार के दर्शन करते हैं। वे आश्चर्यचकित होकर सर्वशक्तिमान सृष्टा को सृष्टि की रचना करते, सेवा करते देखते है। वे 'उसे' भक्तो पर कृपा दृष्टि करते हुए देखते हैं। वे अपने भगवान की रचना असंख्य खंडो, असख्य आकाशो, असख्य लोको को देखकर विस्मय हो जाते है। वे समस्त असीम सृष्टि को पूर्णत 'उसकी' आज्ञा मे कार्य करते देखकर हैरान होते हैं। जब वे उसकी शान उसकी रचना को साक्षात देखते हैं तो वे आन्नदमय चिन्तन मे विभोर हो उठते हैं। वे खुशी से झूम उठते हैं। वे उसकी समस्त सृष्टि के साथ शान्ति मे रहते हैं। वे सबके साझे हैं क्योकि वे 'उसको' सबमे और सबको 'उसमें' देखते हैं। वे उसकी उपस्थिति मे अपने आपको भूल जाते हैं। आनन्द और प्रसन्नता की लहरो में झूमते हुए वे अपने सुन्दर प्रियतम के साथ शाश्वत बाहुपाश मे बध जाते हैं। वे अमर पद को प्राप्त होते हैं। युगो से बिछुड़ी हुई आत्माओ का मेल हो जाता है। सुहागिनें सदैव प्रसन्न, सदैव सुरक्षित और सदैव आराम में अपने सौहाग की गोद प्राप्त करती हैं। आह! पुर्नमिलन को इस अवस्था का वर्णन करना लोहे के चना चबाने जैसा है। यह शब्दो की परिधि और मानव विचार से परे है। यह ठोस लोहे के समान सख्त है। वस्तुत. सच खड की अवस्था अवर्णनीय है ॥३७॥

नाम की सच्ची टकसाल—परमात्मा के दरबार मे स्वीकृत होने के लिए जिज्ञासु को अपना जीवन अमूल्य सिक्कों की भांति ढालना चाहिए। उसके लिए एक टकसाल को ढूढना होगा। मेरे गुरदेव अन्तिम पौड़ी में पुनः स्वर्णाकार की टकसाल के रूप में निरुपण करते हैं कि सच्ची टकसाल की आवश्यक सामग्री है—पवित्रता (यतित्व-इन्द्रिय-निग्रह), धैर्य, बुद्धि (सुमति), आध्यात्मिक ज्ञान, भय (परमात्मा और मृत्यु का) तपस्याएँ (कठिन साधनाएँ-आत्म संयम) और प्रेम एवम् अमृतमयी वचन! जैसे स्वर्णाकार सोने को अग्नि में

तपा कर द्रवीभूत करता है और उस पर हथौडे की चोट लगाता है, अन्त में किसी आभूषण के स्वरूप में निर्मित कर देता है। अत आध्यत्मिक मार्ग पर चलने वाले जिज्ञासुओं को चाहिए कि, पवित्रता की भट्ठी और धीरज को सुनार बनाएँ बुद्धि को अहरण(लोह पिंड) और आध्यात्मिक ज्ञान का हथौड़ा रखें। भय की धौंकनी बनएँ; आत्म सयम् की अग्नि और प्रेम को गलाने वाला पात्र बनएं। प्रेम के उस प्याली में अपना जीवन (मानुष्य देही) रूपी अमृत डाले। इस प्रकार आप अपने जीवन को सच्ची टकसाल मे ढाल कर शब्द का सिक्का बनाएगे। उस अमूल्य छाप के साथ जिज्ञासु पुण्यआत्माओं की पुनीत सभा (भक्त व सन्तजनों की मण्डली) मे प्रवेश करने की आज्ञा होगी और आप पावन प्रभु के पवित्र दरबार मे स्वीकृत होंगे। लेकिन संसार में रहकर इस कठिन मार्ग का कौन सा प्राणी अनुसरण करता है ? गुरदेव कहते हैं कि याद रखना कि यह तुम्हारी वजह से न होगा। वत्तुत जिनपर 'उसकी' कृपा-दृष्टि होती है वे ही यह काम कर पाते हैं अर्थात् नाम के मार्ग पर अग्रसर होते हैं और उन भाग्यशाली प्राणियो-भक्तो रर 'वह' और भी अपनी अपार कृपालता से दया दृष्टि करता है। वे आशीर्वाद से मोक्ष प्राप्त करते हैं। परमानन्द और सौंदर्य में शाश्वत सुख प्राप्त करके (निहाल) हो जाते हैं ॥३८॥

श्लोक—दैवी पिता के दैवी बालक। यह पौडी नही छ पक्तियो का श्लोक है। मानो सारे जपुजीका सार-सिद्धान्त है। 'जपुजी' का प्रारम्भ मूल मन्त्र से, फिर पौडिया आई और अब समाप्ति श्लोक से। यह श्लोक दूसरी पातशाही, गुरु अंगद देव के नाम से माझ की वार मे लिखा है, केवल दो-तीन शब्दो का ही भेद है।

सारा जगत बालक है जो खेल-घर में खेल रहा है। जहा पवन गुरु, पानी पिता और धरती माता हैं अर्थात जहा प्रकृति, प्राकृतिक नत्त्व, उत्पत्ति, पालना, शिक्षा आदि प्रफुल्लित रखने के लिए सहायक हैं। यदि मा पर ही रुक गए तो करीब करीब पशु जैसे रह गए, अगर पिता पर रुक गए तो मात्र मनुष्य रह जाओगे। जब तक गुरु तक न पहुचे, तब तक आत्मवान होने की स्थिति नही बनती। क्योकि मा शरीर का सम्बन्ध, पिता मन का सम्बन्ध तथा गुरु आत्मा का सम्बन्ध है। यह भी याद रखना है कि परमात्मा सबके एक-सा ही पास है। 'उसकी' तरफ से न तो कोई दूर है और न कोई पास है। वह सबके पास एक जैसा है। अपने-अपने कर्मो के अनुसार या तो हम उसके निकट हैं या दूर हैं। जीव के शुभ तथा अशुभ कर्मों का लेखा-जोखा न्याय अधीराज धर्मराज सर्व शक्तिमान भगवान के समक्ष रखता है और कर्मानुसार जीव पुन: जन्म लेता है। परन्तु सब कर्मों से ऊपर है नाम-प्रेमाभक्ति ! नाम जपकर ही जीव जगत के खेल से ऊपर, पाच तत्त्वो के बन्धन से ऊपर उठकर सब मे उसको' तथा 'उसमे' सबको देखता है और उसके साथ मिलकर एक हो जाना है। ऐसे जीव के लिए कर्मों का कोई महत्त्व नही। उसके कर्म स्वर्ग से ऊपर परमात्मा के प्रति होते हैं। भक्तो के कर्मो का लेखा धर्मराज के समक्ष नही रखा जा सकता। उनके लिए जन्म मरण का चक्र है ही नही। वे धन-धान्य और दु ख-दारिद्रय से मुक्त रहते हैं। वे पूर्ण आनन्द मे, अवर्णनीय सुख में रहते हैं। ऐसा जीव तत्त्वो का नही वल्कि भगवान का बालिक बन जाता है। उनका पालन-पोषण, सूर्य और चन्द्र द्वारा न होकर भगवान द्वारा होना है। वे स्वय नाम द्वारा जले हुए दीप से अनेको के बुझे हुए दीपों को जला देते हैं। रक्षित असख्य अन्य प्राणियो की रक्षा करते है उनके भाग्य के साथ सहस्र प्राणियो के भाग्य उज्वल होते हैं। उनकी सगत मे कितने ही मोक्ष प्राप्त करते हैं। नाम जपने वाले भक्तजन सदा मौजूद,(उपस्थित) हैं। कभी भी धरती भक्तजनो से खाली नही होती। ऐसा दुर्भाग्य कभी नही आता कि धरती नाम जपने वालो से खाली हो। लेकिन ऐसा दुर्भाग्य कभी-कभी आ जाता है कि पहचानने वाले बिल्कुल नहीं होते।

यह है 'जपुजी' का कुछ शब्दो मे विचार। जिन पर परमात्मा की कृपा-दृष्टि बरसती है, वे केवल हुकमी का हुकम मानकर, नाम जपकर ससार सागर से पार उतर कर परमात्मा में अभेद होकर निहाल हो जाते हैं। शेष बेचारे जीव इस जगत के खेल घर अथवा धर्मशाला मे प्रभु के नाम को भूलकर कर्मों के घेरे में पड़कर अन्तत. जन्म-मरण के चक्र मे आकर अत्यन्त दुखी होते हैं।
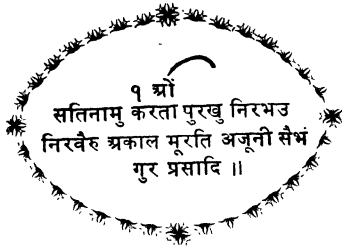
१ओं — 'वह' अद्वितीय परमात्मा जिसका वाचक ॐ है, केवल एक ओंकार स्वरूप आकार-हीन साकार है।

सतिनामु — 'उसका' नाम सदैव सत्य अर्थात् सदा रहने वाला पवित्र है।

करता पुरखु — 'वह' आदि पुरुष एक मात्र कर्त्ता, सृष्टि का रचयिता, संरक्षक तथा सहारक सर्वत्र परिपूर्ण है।

निरभउ — 'वह' निर्भय—भय से रहित है क्योंकि 'उसके' कर्म दोष-रहित (पवित्र) हैं।

निरवैरु — 'वह' निर्वैर—वैर से रहित है क्योंकि प्रेम स्वरूप है और 'उसकी' दृष्टि सब पर एक समान है।

अकाल मूरति — 'उसका' अस्तित्व काल (समय) के प्रभाव से मुक्त है अर्थात 'वह' कालातीत-मूर्ति, अपरिवर्तनशील एवम् सदैव एक सा शाश्वत है।

अजूनी — 'वह' जन्म नही लेता तथा योनियों में नही आता। जिसको किसी ने पैदा नही किया है अर्थात, जिसका कोई भी मूल कारण नही है। 'वह जन्म-मरण के चक्र से रहित है।

सैभं — वह स्वतः प्रकाश स्वयम्भू है।

गुर प्रसादि ॥ — 'वह' गुरु की कृपा से (प्राप्त होता है)।

॥ जपु ॥ — अतः आराधना करें।
विशेषः आगे आने वाली वाणी का नाम जपु (जाप) है।

आदि सचु जुगादि सचु ।।
है भी सचु नानक होसी भी सचु ।।

'जो' आदिकाल से सत्य, युग-युगान्तर से पहले सत्य था, अब भी सत्य है, तथा हे नानक ! भविष्य में भी सत्य ही रहेगा।

सोचै सोचि न होवई
जे सोची लख वार ।।

शारीरिक पवित्रता रखने से भी अन्तःकरण (मानसिक) पवित्रता प्राप्त नही होती, चाहे मैं लाखो बार पवित्र रहूँ अथवा सोच-सोच कर भी 'उसे' सोच नहीं सकता, चाहे मैं लाखों बार सोचता रहूँ।

चुपै चुप न होवई
जे लाइ रहा लिवतार ।।

चुप रहने से भी मन को सकल्प-विकल्पों से चुप्पी प्राप्त नहीं होती, चाहे मैं कितना भी गम्भीर तथा गहरे भाव से लगातार ध्यान लगाऊँ।

भुखिआ भुख न उतरी
जे बंना पुरीआ भार ।।

भूखे रहने से भी तृष्णा की भूख नहीं मरती, चाहे समस्त इन्द्र पुरियो के पदार्थों का भार मै जमा कर लूँ।

सहस सिआणपा लख होहि
त इक न चलै नालि ।।

चाहे सहस्त्रो, लाखो ससारिक चतुराइयाँ भी मेरे पास हों तो भी परमात्मा प्राप्ति मे एक भी सहायक नही होती।

किव सचिआरा होईऐ
किव कूड़ै तुटै पालि ।।

तो फिर मैं कैसे (आदि सच से) सत्य बनूँ ? कैसे झूठ के पर्दे को तोडूँ ?

हुकमि रजाई चलणा
नानक लिखिआ नालि ।।१।।

(प्रश्न कूड का पर्दा कैसे टूटे ?) जब जीव प्रभु के हुकम (आज्ञा) मे प्रसन्न होकर चले। हे नानक ! प्रारब्ध जो पहले से ही लिखी है, के आगे नत-मस्तक होना है अर्थात प्राप्त हुए दुःख-सुख मे विचलित नही होना।

हुकमी होवनि आकार
हुकमु न कहिआ जाई ।।

यह सब आकार अर्थात् जो कुछ भी हम देख सकते हैं, 'उसके' हुकम से ही उत्पन्न हुआ है। हुकम के सम्बन्ध में कुछ कहा नही जा सकता।

हुकमी होवनि जीअ
हुकमि मिलै वडिआई ।।

जीवो की उत्पत्ति 'उसके' हुकम से ही हुई है। 'उसके' हुकम से ही (जीवो) को बड़ाई मिलती है।

हुकमी उत्तमु नीचु
हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि।।

'उसके' हुकम से कोई ऊँचा (बडा) कोई नीचा (छोटा) है, और 'उसके' हुकम से लिखे हुए कर्मानुसार दुःख तथा सुख प्राप्त करते हैं।

हुकमी उतम नीचु (?)

हुकमा हुकमी बखसीस
इकि हुकमी सदा भवाईअहि ॥

'उसके' हुकम से ही कोई नाम पुरस्कार प्राप्त कर मुक्ति पाते हैं और 'उसके' हुकम से ही कोई सदा भटकाए जाते हैं।

हुकमै अंदरि सभु को
बाहरि हुकम न कोइ ॥

सभी कोई 'उसके' हुकम के अन्दर है। 'उसके' हुकम के बाहर कभी कोई नहीं।

नानक हुकमै जे बुझै
त हउमै कहै न कोइ ॥२॥

हे नानक ! यदि जीव 'उसके' हुकम को समझ ले तो वह अहकार के वचन फिर नहीं उच्चारण करेगा ॥२॥

गावै को ताणु होवै किसै ताणु ॥
गावै को दाति जाणै नीसाणु ॥

'उसके' बल को कौन गायन कर सकता है ? क्या कोई सामर्थ्य रखता है ? अथवा कोई 'उसके' बल का गान गाते हैं कि 'वह' महाशक्तिशाली है, परम सर्व शक्तिशाली है। 'उसकी' दात (दान) को कौन गा सकता है ? 'उसके' चिन्ह (प्रतीक) को कौन पहचान सकता है ?

गावै को गुण वडिआईआ चार ॥
गावै को विदिआ विखमु वीचारु ॥

'उसके' गुणों और श्रेष्ठ बडाइयो या सुन्दरता का गायन कौन कर सकता है, 'उसकी' विद्या का गायन कौन कर सकता है, जिसका विचार मात्र ही कठिन है।

गावै को साजि करे तनु खेह ॥
गावै को जीअ लै फिरि देह ॥

मिट्टी से 'उसके' इतने मन-मोहक शरीर रचने की कला का गायन कौन कर सकता है ? 'उसके' द्वारा प्राण लेने तथा जीवन देने का गायन कौन कर सकता है ?

गावै को जापै दिसै दूरि ॥
गावै को वेखै हादरा हदूरि ॥

'उसकी' दूर से जानने तथा देखने की शक्ति का गायन कौन कर सकता है ? और फिर हाजरा हजूर होकर देखने की 'उसकी' शक्ति का गायन कौन कर सकता है ?

कथना कथी न आवै तोटि ॥
कथि कथि कथी कोटी कोटि कोटि ॥

'उसकी' कथा कथन करने का अन्त नहीं आता। करोड, करोड़, करोड बार 'उसका' कोटि, कोटि कथन करने पर भी 'वह' अनकहा ही रह जाता है।

देदा दे लैदे थकि पाहि ॥
जुगा जुगंतरि खाही खाहि ॥

'वह' दाता देता ही चला जाता है, लेने वाले याचक लेते थक जाते हैं (लेकिन दाता नहीं थकता) युग-युगान्तर से जीव उसका भोग कर रहे हैं पर 'उसका' अन्त नहीं है।

हुकमी हुकमु चलाए राहु ॥
नानक विगसै वेपरवाहु ॥३॥

हुकमी ने अपने हुकम से सबके लिए रास्ता बना दिया है। जिसपर 'वह' स्वयं चला रहा है। इतनी दातें देते हुए भी, हे नानक ! 'वह' बेपरवाह है और अपने सदैव विकसित सौन्दर्य में अत्यन्त प्रसन्नचित रहता है ॥३॥

साचा साहिबु साचु नाइ
भाखिआ भाउ अपारु ॥

'वह' सच्चा मालिक है। 'उसका' नाम भी सच्चा है। असंख्य लोगो ने प्रेम, श्रद्धा तथा सन्मान के साथ ऐसा कहा है।

आखहि मंगहि देहि देहि
दाति करे दातारु ॥

वे पुकारते हैं और मागते हैं, हे स्वामी ! और दो और दो और 'वह' दाता (कर्मानुसार) देता ही चला जाता है।

फेरि कि अगै रखीऐ
जितु दिसै दरबारु ॥

फिर 'उसके' आगे क्या (भेंट) रखी जाए, कि 'उसके' दरबार के दर्शन हो ?

मुहौ कि बोलणु बोलिऐ
जितु सुणि धरे पिआरु ॥

मुख से कौन सा शब्द उच्चारण करें जिन्हे सुनकर 'वह' प्यार करे ?

अंम्रित वेला सचु नाउ
वडिआई वीचारु ॥

अमृतवेला में 'उसके' सच्चे नाम और 'उसकी' महानता पर विचार करें (यही ईश्वर के आगे भेंट चढ़ाना है)

करमी आवै कपड़ा
नदरी मोखु दुआरु ॥

कर्मों से (योनियों का) चोला मिलता है और 'उसकी' कृपा दृष्टि से मोक्ष का द्वार खुलता है (और कृपा तब होती है जब अहकार नष्ट होता है)।

नानक एवै जाणीऐ
सभु आपे सचिआरु ॥४॥

हे नानक ! इस प्रकार जानो कि सत्य ही, परमात्मा ही स्वय सभी कुछ हैं ॥४॥

थापिआ न जाइ कीता न होइ ॥
आपे आपि निरंजनु सोइ ॥

परमात्मा न तो स्थापित किया जा सकता है, न निर्मित किया जा सकता है। 'वह' निरंजन-माया से रहित आप में ही सब कुछ है (आदि सचु, जुगादि सचु।)

जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु ॥
नानक गावीऐ गुणी निधानु ॥

और जिन्होने की सेवा, उन्हें बड़ा मान मिला। हे नानक ! तू 'उस' गुणीनिधान का भजन, श्रवण, (हाँ) 'उसका' ही भाव धारण कर। अर्थात तुम जो भी करो, 'उसे' समर्पित कर दो, तभी यह हो पाएगा।

गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ ॥
दुखु परहरि सुखु घरि लै जाइ ॥

'उसको' गाओ, 'उसे' श्रवण करो, मन में 'उसका' भाव रखो। इस प्रकार तुम दुःख से छुटकर सुख लेकर आनन्द से घर लौटोगे।

गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं
गुरमुखि रहिआ समाई ॥

गुरु की वाणी ही नाद है। गुरु की वाणी ही वेद है। 'वह' परमात्मा गुरु की वाणी में ही समाया हुआ है।

गुरु ईसरु गुरु गोरखु बरमा
गुरु पारबती माई ॥

गुरु ही शिव (संहारक) है, गुरु ही विष्णु (संरक्षक) है, गुरु ही ब्रह्मा (सृष्टि) हैं और वही माता पार्वती (समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली) है।

जे हउ जाणा आखा नाही
कहणा कथनु न जाई ॥

बाबा नानक अपने सम्बन्ध में कहते हैं जो मैं जानता भी, पूरा पूरा जानता, तो भी मैं 'उसका' वर्णन नहीं कर सकता हूँ, क्योंकि 'वह' कथन द्वारा नही कहा जा सकता।

गुरा इक देहि बुझाई ॥
सभना जीआ का इकु दाता
सो मै विसरि न जाई ॥५॥

हे गुरु! आपने मुझे इस बात की अनुभूति करा दी है कि समस्त प्राणियों का 'वही' एक दाता (मालिक, निर्माता सृष्टा) है (सबमे वही छिपा है) इसे मैं भूल न जाऊँ। प्र तिपल यह मुझे याद बनी रहे।

तीरथि नावा जे तिसु भावा
विणु भाणे कि नाइ करी ॥

यदि मैं 'उसको' भा गया तो मैंने तीर्थों का स्नान कर लिया और यदि उसे नही भाया तो नहा-धोकर क्या करूँगा? अर्थात नहा धोकर तैयारी भी किसके लिए करनी है।

जेती सिरठि उपाई वेखा
विणु करमा कि मिलै लई ॥

जितनी उपाई हुई सृष्टि को मैं देखता हूँ 'उसमें' कुछ भी नहीं है। कृपा-दृष्टि के बिना किसको क्या मिला है?

मति विचि रतन जवाहर माणिक
जे इक गुर की सिख सुणी ॥

जो गुरु की एक शिक्षा को सुन लेता है उसे बुद्धि के अन्दर रतन, जवाहर और माणिक प्राप्त होते हैं अथवा 'उसकी' मति रतन, जवाहर माणिक जैसी बहुमूल्य हो जाती है।

गुरा इक देहि बुझाई ॥
सभना जीआ का इकु दाता
सो मै विसरि न जाई ॥६॥

हे गुरु! आपने मुझे इस बात की अनुभूति करा दी है कि समस्त प्राणियो का 'वही' एक दाता (मालिक, निर्माता, सृष्टा) है (सबमें 'वही' है दिव्य है) इसे मैं भूल न जाऊँ। प्रतिपल यह मुझे याद बनी रहे।

जे जुग चारे आरजा
होर दसूणी होइ ॥

यदि किसी की आयु चारों युगो के बराबर हो जाये, उससे भी दस गुणी अधिक हो जाए।

नवा खंडा विचि जाणीऐ
नालि चलै सभु कोइ ॥

और नव खण्डो के लोग उसे जानते हों और उसके साथ (अनुशासन में) चलते हों।

चंगा नाउ रखाइ कै
जसु कीरति जगि लेइ ॥

जिसको सुनाम प्राप्त हो, जिसकी प्रसिद्ध और कीर्ति सारे जगत में फैली हो।

जे तिसु नदरि न आवई
त वात न पुछै के ॥

अगर वह 'उसकी' कृपा दृष्टि में नहीं आता, तो उसे कोई भी नहीं पूछता अर्थात सम्मानित दृष्टि से कोई भी नहीं देखेगा।

कीड़ा अंदरि कीटु करि
दोसी दोसु धरे ॥

वह कीटों में भी तुच्छ कीट बना दिया जाता है, दोषी भी उस पर दोष मढ़ने लगते हैं अर्थात उसे अपने से भी अधिक दोषी समझते हैं।

नानक निरगुणि गुणु करे
गुणवंतिआ गुणु दे ॥

हे नानक ! 'वह' अपनी अपार कृपा द्वारा अवगुणियों को गुणी बना देता है और गुणवानों को और गुण देता है अर्थात् गुणवानों के गुणों में वृद्धि करता है।

तेहा कोइ न सुझई
जि तिसु गुणु कोइ करे ॥७॥

परन्तु मुझे ऐसा कोई प्रतीत नहीं होता जो उस मालिक पर उपकार कर सके अथवा प्रभु के सिवाय और कोई नहीं है, जो गुण प्रदान कर सके ॥७॥

सुणिऐ सिध पीर सुरिनाथ ॥
सुणिऐ धरति धवल आकास ॥

श्रवण से ही (साधारण व्यक्ति भी) सिद्ध, पीर, देवता और नाथ की पदवी प्राप्त कर सकते हैं। श्रवण से ही धरती (उसका आधार), श्वेत-बैल, और आकाश का असली-ज्ञान हो सकता है।

सुणिऐ दीप लोअ पाताल ॥
सुणिऐ पोहि न सकै कालु ॥

श्रवण से ही द्वीपों, लोकों और पातालों का ज्ञान हो सकता है। श्रवण से ही मृत्यु स्पर्श नहीं कर सकती।

नानक भगता सदा विगासु ॥
सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥८॥

हे नानक ! श्रवण से ही भक्तजन आनन्द के सागर में शाश्वत रूप से विकसित कमल की भांति सदैव प्रफुल्लित रहते हैं और श्रवण से ही दुःखों और पापों का नाश होता है ॥८॥

सुणिऐ ईसरु बरमा इंदु ॥
सुणिऐ मुखि सलाहणु मंदु ॥

श्रवण से ही शिव, ब्रह्मा और इन्द्र का ज्ञान हो सकता है। श्रवण से ही बुरा (पतित) भी प्रशंसा का पात्र और श्रेष्ठ बन सकता है।

सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद ॥
सुणिऐ सासत सिम्रिति वेद ॥

श्रवण से ही योग की युक्ति के साधनों, शरीर और आत्मा के रहस्य का ज्ञान होता है। श्रवण से ही शास्त्र, स्मृति तथा वेद-धर्म-ग्रन्थों का सिद्धान्त समझा जाता है।

नानक भगता सदा विगासु ॥
सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥९॥

हे नानक ! श्रवण से ही भक्तजन आनन्द के सागर में शाश्वत रूप से विकसित कमल की भाँति सदैव प्रफुल्लित रहते हैं । श्रवण से ही दुखों और पापों का नाश होता है ॥९॥

सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु ॥
सुणिऐ अठसठि का इसनानु ॥

श्रवण से ही सत्य, सतोष और ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति होती है और श्रवण से ही अठसठ तीर्थों के स्नान (का पुण्य-फल) प्राप्त होता है ।

सुणिऐ पड़ि पड़ि पावहि मानु ॥
सुणिऐ लागै सहजि धिआनु ॥

श्रवण से ही पढ़-पढ़ कर मान प्राप्त होता है । श्रवण से ही सहजावस्था का ध्यान लगता है ।

नानक भगता सदा विगासु ॥
सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥१०॥

हे नानक ! श्रवण से ही भक्तजन आनन्द के सागर में शाश्वत रूप विकसित कमल की भाति सदैव प्रफुल्लित रहते हैं । अत : श्रवण से ही दु:खों और पापो का नाश होता है ॥१०॥

सुणिऐ सरा गुणा के गाह ॥
सुणिऐ सेख पीर पातिसाह ॥

श्रवण से हा गुणो के सागर परमात्मा के अवगाहक अथवा प्रशंसक बन जाते हैं अथवा श्रेष्ठ गुणो की थाह मिलती है । श्रवण से ही शेख पीर और बादशाह बन जाते हैं ।

सुणिऐ अंधे पावहि राहु ॥
सुणिऐ हाथ होवै असगाहु ॥

श्रवण से हा अन्धे अपना रास्ता पाते हैं श्रवण से ही माया का अथाह सागर हाथ भर गहरा हो जाता है अथवा अथाह (परमात्मा) हाथ आ जाता है ।

नानक भगता सदा विगासु ॥
सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥११॥

हे नानक ! श्रवण से ही भक्तजन सदैव प्रफुल्लित और शाश्वत आनन्द से विभोर रहते हैं । अत श्रवण से ही दु:खो और पापो का नाश होता है ॥११॥

मंने की गति कही न जाइ ॥
जे को कहै पिछै पछुताइ ॥

जो मनन करता है अर्थात 'उसके' हुकम (आज्ञा) को स्वीकार करता है, उसकी अवस्था (गति) कही नही जा सकती और जो इसे कहता है बाद में पश्चात्ताप सहता है ।

कागदि कलम न लिखणहारु ॥
मंने का बहि करनि वीचारु ॥

(मनन की अवस्था को अभिव्यक्त करने के लिए) न पर्याप्त कागज हैं न कलम है, न लिखने वाला ही है जो मनन का स्थिति पर विचार कर सके ।

ऐसा नाम निरंजनु होइ ॥
जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥१२॥

भगवान का नाम ही ऐसा निष्कलंक, पवित्र, निर्दोष है कि जो कोई 'उसकी' इच्छा को स्वीकार करता है और 'उसकी' आज्ञा का पालन करता है उसका मन ही जानता हैं । किन्तु कोई विरला ही ऐसा है ॥१२॥

मंनै सुरति होवै मनि बुधि ।।
मंनै सगल भवण की सुधि ।।

मनन अर्थात 'उसकी' इच्छा पर छोड़ने से ही मन और बुद्धि में स्मृति और जागृति, प्रेम और ज्ञान का विकास होता है। मनन से ही सभी भुवनों-लोकों का ज्ञान होता है।

मंनै मुहि चोटा ना खाइ ।।
मंनै जम कै साथि न जाइ ।।

मनन से ही मुँह मे चोट नही खानी पडती। मनन से ही मृत्यु के देवता यम के साथ नही जाना पड़ता।

ऐसा नामु निरंजनु होइ ।
जे को मंनि जाणै मनि कोइ ।।१३।।

भगवान का नाम ही ऐसा निष्कलंक, पवित्र, निर्दोष है जो कोई 'उसकी' इच्छा को स्वीकार करता है और 'उसकी' आज्ञा का पालन करता है उसका मन ही जानता है। किन्तु कोई विरला ही ऐसा है ।।१३।।

मंनै मारगि ठाक न पाइ ।।
मंनै पति सिउ परगटु जाइ ।।

मनन अर्थात 'उसकी' इच्छा पर छोडने से ही मार्ग में कोई रुकावट नही आती। मनन से ही प्रतिष्ठा और यश के साथ विदा होते हैं या परमात्मा के पास जाते हैं।

मंनै मगु न चलै पंथु ।।
मंनै धरम सेती सनबंधु ।।

मनन से 'उसके' दिव्य-पथ पर अज्ञानी होकर नही चलेंगे अथवा मार्ग से नही भटकेंगे। मनन से ही धर्म के साथ निकट सम्बन्ध हो जाता है।

ऐसा नामु निरंजनु होइ ।।
जे को मंनि जाणै मनि कोइ ।।१४।।

भगवान का नाम ही ऐसा निष्कलक, पवित्र, निर्दोष है जो कोई 'उसकी' आज्ञा का पालन करता है उसका मन ही जानता है। किन्तु कोई विरला ही ऐसा है ।।१४।।

मंनै पावहि मोखु दुआरु ।।
मंनै परवारै साधारु ।।

मनन से ही मोक्ष-द्वार की प्राप्ति होती है। मनन से ही सर्व परिवार सहित उद्धार होता है अथवा अपने परिवार को सुधार लेता है।

मंनै तरै तारे गुरु सिख ।।
मंनै नानक भवहि न भिख ।।

मनन से ही गुरु स्वय तरता है और अपने शिष्य को भी तार दता है। मनन से ही, हे नानक ! भिक्षा के लिए भटकना नही पडता है।

ऐसा नामु निरंजनु होइ ।।
जे को मंनि जाणै मनि कोइ ।।१५।।

भगवान का नाम ही ऐसा निष्कलक, पवित्र, निर्दोष है जो भी 'उसकी' आज्ञा का पालन करता है उसका मन ही जानता है। किन्तु कोई विरला ही ऐसा है ।।१५।।

पंच परवाण पंच परधानु ।।
पंचे पावहि दरगहि मानु ।।

पच-सन्तजन ही (परमात्मा के यहाँ) स्वकारणीय या प्रमाणिक है और पच ही प्रधान है। पंच ही भगवान के दरबार में सम्मान पाते हैं।

पंचे सोहहि दरि राजानु ॥
पंचा का गुरु एकु धिआनु ॥

पंच ही राजाओ के दरबार में शोभनीय होते हैं। पच का गुरू एक ध्यान है अथवा पच एक भगवान को ही गुरू (बडा) मान कर 'उसी' का ध्यान लगाते हैं।

जे को कहै करै वीचारु ॥
करते कै करणै नाही सुमारु ॥

जो भी इस सम्बन्ध में कुछ कहे, वह सोच विचार कर कहे अन्यथा चुप रहे। क्योकि न तो कर्त्ता का कोई अन्त है और न 'उसके' कृत्य-कार्यों का।

धौलु धरमु दइआ का पूतु ॥
संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति ॥

धर्म ही पृथ्वी को धारण करने वाला कोई कल्पित श्वेत बैल है। वह दया का पुत्र है जिसे प्रभु ने सन्तोष के धागे से (समस्त सृष्टि रचना को) बाध कर रखा है अथवा सन्तोष की स्थापना कर मन्तुलन बना है। वस्तुत धर्म, दया और सन्तोष पर धरती स्थापित है।

जे को बुझै होवै सचिआरु ॥
धवलै उपरि केता भारु ॥

जो कोई ऐसा अनुभव करता है (इस रहस्य को जानता है), वह सत्य रूप हो जाता है और वही जानता है कि धर्म रूपी बैल के ऊपर कितना भार है।

धरती होरु परै होरु होरु ॥
तिस ते भारु तलै कवणु जोरु ॥

इस धरती के नीचे बहुत-सी अन्य धरतिया हैं और उनसे परे भी और धरतियां (अनन्त) हैं। उनके भार के नीचे कौन सी शक्ति है? (जो इनके भार को उठाए हुए है) अर्थात उस बैल का आधार कौन है?

जीअ जाति रंगा के नाव ॥
सभना लिखिआ वुड़ी कलाम ॥

(परमात्मा की सृष्टि मे) जितने जीव हैं, जातियाँ हैं, रग हैं उन सबके नाम 'उनकी' आज्ञा की निरन्तर तीव्र गति से चलने वाली कलम से लिखे गये हैं।

एहु लेखा लिखि जाणै कोइ ॥
लेखा लिखिआ केता होइ ॥

कौन यह लेखा लिखना जानता है? यदि (मनुष्य द्वारा) लेखा लिखा जाए तो वह कितना होगा? (अधूरा ही होगा)

केता ताणु सुआलिहु रूपु ॥
केती दाति जाणै कौणु कूतु ॥

कितनी उसकी' शक्ति है और कितना 'उसका' सुन्दर स्वरूप है! कितनी 'उसकी' उदारताएँ हैं, इसे कौन जान सकता है? और कौन अनुमान लगा सकता है?

कीता पसाउ एको कवाउ ॥
तिस ते होए लख दरीआउ ॥

'उसके' एक शब्द से कितना प्रसार हुआ! उसी से लाखों नद-नदियाँ निकल पडी।

कुदरति कवण कहा वीचारु ॥
वारिआ न जावा एक वार ॥

(हे परमात्मा!) आपके और आपकी कुदरत के विषय में एक भी विचार व्यक्त करने की शक्ति मुझ मे कहा है? मेरे भगवत्! एक बार नही। मैं आप पर बार-बार निछावर हो जाऊँ तो भी कम है।

जो तुधु भावै साई भली कार ॥
तू सदा सलामति निरंकार ॥१६॥

जो कुछ आपको प्रिय लगता है, वही (मेरे लिये) भला है। हे निरकार ! आप ही शाश्वत रूप से सलामत रहते हैं ॥१६॥

असंख जप असंख भाउ ॥
असंख पूजा असंख तप ताउ ॥

(दर्शन प्राप्ति के लिये) असख्य 'आपका' जप करते हैं और असख्य आपको' प्यार(भक्ति) करते हैं। असख्य 'आपकी' पूजाएँ करते हैं और असख्य तपश्चर्याएँ करते हैं।

असंख गरंथ मुखि वेद पाठ ॥
असंख जोग मनि रहहि उदास ॥

असख्य ग्रन्थ है और असख्य हैं जो मुख में वेद पाठ करते हैं। असख्य योगी हैं जो मन मे समार से विरक्त रहते हैं।

असंख भगत गुण गिआन वीचार ॥
असंख सती असंख दातार ॥

असख्य 'आपके' भक्त है जो 'आपके' गुणो और ज्ञान का विचार करते हैं और असख्य सात्विक हैं तथा असख्य दाता हैं।

असंख सूर मुह भख सार ॥
असंख मोनि लिव लाइ तार ॥

असख्य शूरवीर है जो अपने मुख पर शस्त्रो (लोहे) का प्रहार सहन करते हैं और असख्य मौनी हैं जो एकनिष्ठ होकर गहरा ध्यान लगाए बैठे हैं।

कुदरति कवण कहा वीचारु ॥
वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार ॥
तू सदा सलामति निरंकार ॥१७॥

'आपके' और 'आपको' कुदरत के विषय मे एक भी विचार अभिव्यक्त करने की शक्ति मुझ मे कहा है ? मेरे प्रियतम ! एक बार नही। मै आप पर बार-बार निछावर हो जाऊँ तो भी कम है। जो आप को अच्छा लगता है वही (मेरे लिये) भला है। हे निरकार ! आप ही शाश्वत रूप मे सलामत रहते हैं ॥१७॥

असंख मूरख अंध घोर ॥
असंख चोर हरामखोर ॥
असंख अमर करि जाहि जोर ॥

असख्य मूर्ख और अन्धे है जो घोर अन्धकार मे पडे हुए हैं। असख्य चोर और हरामखोर है। असख्य ऐसे व्यक्ति हैं जो जबरदस्ती अपना हुकम चलाकर शासन करते जाते हैं।

असंख गलवढ हतिआ कमाहि ॥
असंख पापी पापु करि जाहि ॥
असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि ॥

असख्य गला काटने वाले (हिंसक) है जो (निर्दोष जीवो की) हत्या करते है। असख्य पापी पाप ही करते चले जा रहे है और असख्य झूठे अपने झूठ मे ही फिरते रहते है।

असख मलेछ मलु भखि खाहि ॥
असंख निंदक सिरि करहि भारु ॥

असख्य मलेच्छ है जो अखाद्य वस्तुए (मलु) भक्षण करते है और असख्य निदक हैं जो अकारण ही दूसरो की निन्दा के पाप का भार अपने सिर पर ढोते है।

नानकु नीचु कहै वीचारु ॥
वारिआ न जावा एक वार ॥

(इस प्रकार बाबा) नानक नीच कर्म करने वाले अधमो का विचार करता है (वर्णन करता है) अथवा मेरे गुरदेव बाबा नानक विनम्रता से खुद को नोच कहते हुए कहते हैं कि उन्होने विचार करके ही ऐसा कहा है।

जो तुधु भावै साई भली कार ॥ तू सदा सलामति निरंकार ॥१८॥	मेरे प्रियतम! काश मैं आप पर एक बार नहीं बार-बार न्यौछावर हो जाऊं तो भी कम है। जो कुछ आपको अच्छा लगता है वही (मेरे लिए) भला है। हे निरंकार ! आप ही शाश्वत रूप से सलामत रहते हैं ॥१८॥
असंख नाव असंख थाव ॥ अगंम अगंम असंख लोअ ॥ असंख कहहि सिरि भारु होइ ॥	असख्य 'आपके' नाम है और असख्य 'आपके' स्थान हैं। असख्य अज्ञात और अगम्य 'आपके' लोक है और फिर असख्य कहना भी सिर का भार बढाना है अथवा असख्य यौगिक (क्रियाओ) शीर्षासन आदि से 'आपका' कथन करते हैं।
अखरी नामु अखरी सालाह ॥ अखरी गिआनु गीत गुण गाह ॥	विधाता के लेख (आज्ञा) के अनुसार ही मनुष्य 'आपका' नाम जपता है और लेख द्वारा ही आपकी स्तुति करना है। लेख द्वारा ही 'आपका' ज्ञान प्राप्त होना है और लेख द्वारा ही (मनुष्य) 'आपके' गीतो तथा गुणो का गायन करता है।
अखरी लिखणु बोलणु बाणि ॥ अखरा सिरि संजोगु वखाणि ॥	लेख द्वारा ही 'आपकी' वाणी लिखी और बोली जाता है। मनुष्य के मस्तिष्क पर लिखित 'आपका' लेख ही सयोग का सदेश देना है।
जिनि एहि लिखे तिसु सिरि नाहि ॥ जिव फुरमाए तिव तिव पाहि ॥	किन्तु जिस विधाता ने जीवो के मस्तिष्क पर यह लेख लिखा है 'उसके' मस्तिष्क पर लेख नही है अर्थात् 'वह' भाग्य से परे है। जैसे 'उसकी' आज्ञा होती है वैसे ही जीव प्राप्त करता है।
जेता कीता तेता नाउ ॥ विणु नावै नाही को थाउ ॥	जो कुछ 'उसने' उपाया है, उस पर 'उसी' का नाम अकित है। ऐसा कोई स्थान नही है जहा 'उसका' नाम (अस्तित्व) न हो अर्थात् परमात्मा सर्वव्यापक है।
कुदरति कवण कहा वीचारु ॥ वारिआ न जावा एक वार ॥ जो तुधु भावै साई भली कार ॥ तू सदा सलामति निरंकार ॥१९॥	'आपके' और 'आपकी' कुदरत के विषय मे एक भी विचार अभिव्यक्त करने की शक्ति मुझ मे कहा है ? मेरे प्रियतम ! एक बार नही। मैं आप पर बार-बार न्यौछावर हो जाऊँ तो भी कम है। हे निरकार। आप ही शाश्वत रूप से सलामत रहते हैं।।१९॥
भरीऐ हथु पैरु तनु देह ॥ पाणी धोतै उतरसु खेह ॥	यदि हाथ पैर और (पूर्ण) शरीर धूल से भर जाए तो पानी से धोने से मैल साफ हो जाता है।

मूत पलीती कपड़ु होइ ॥
दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ ॥

यदि कपड़े मूत्रादि से गन्दे हो जाएँ तो साबुन से धोकर साफ़ किए जा सकते है।

भरीऐ मति पापा कै संगि ॥
ओहु धोपै नावै कै रंगि ॥

वैसे ही यदि बुद्धि (या मन) पापो से भरी हो तो वह नाम के प्रेम-रग से शुद्ध की जा सकती है।

पुंनी पापी आखणु नाहि ॥
करि करि करणा लिखि लै जाहु ॥

कहने मात्र से न कोई पुण्यात्मा होता है और न कोई पापी। जो जो कर्म हम करते हैं वे लिख लिये जाते हैं। यही पुण्य और पाप का द्योतक है।

आपे बीजि आपे ही खाहु ॥
नानक हुकमी आवहु जाहु ॥२०॥

मनुष्य स्वय बोता है और स्वय ही खाता है। हे नानक! 'उसके' हुक्म से ही आवागमन होता है ॥२०॥

तीरथु तपु दइआ दतु दानु ॥
जे को पावै तिल का मानु ॥

यदि तीर्थ यात्रा, तप और दया के वश दान से किसी को कोई मान प्राप्त होता है तो यह तिल के समान है।

सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ ॥
अंतरगति तीरथि मलि नाउ ॥

जिसने 'उसके' विषय मे सुना और मन मे प्रेम भाव के साथ मनन किया, उसने अपने आन्तरिक-तीर्थ मे मल-मल कर स्नान किया है, निर्मल हुआ है।

सभि गुण तेरे मै नाही कोइ ॥
विणु गुण कीते भगति न होइ ॥

हे गुणी निधान दाता! सभी गुण आप मे हैं। मुझ मे कुछ भी नही है और जब तक आप गुणो की वृष्टि नही करते तब तक सच्ची भक्ति नही होती।

सुअसति आथि बाणी बरमाउ ॥
सति सुहाणु सदा मनि चाउ ॥

हे परम आनन्दमय प्रियतम्! प्रारम्भ में आप ही कल्याण स्वरूप निराकार थे फिर आपसे ही माया उद्भूत हुई तत्पश्चात् वाणी का उच्चारण किया जिससे ब्रह्मादि ब्रह्माण्ड अस्तित्व मे आए। आप सत्य हैं। आपका सौंदर्य शाश्वत है और मन भावन है अर्थात मेरे मन में आपके लिए सदा चाउ है।

कवणु सु वेला वखतु कवणु
कवण थिति कवणु वारु ॥

वह कौन सी वेला थी, कौन सा समय था, कौन सी तिथि थी, कौन सा दिन था।

कवणि सि रुती माहु कवणु ॥
जितु होआ आकारु ॥

कौन सी ऋतु थी और कौन सा महीना जिस था, जिस समय आकारमय सब पदार्थ प्रथम बार अस्तित्व में आए अर्थात सृष्टिरचना हुई?

वेल न पाईआ पंडती जि होवै लेखु पुराणु ।।	पंडितो को (सृष्टि-रचना के)समय का पता नही था यदि उनको ज्ञान होता तो हिन्दुओ के धर्म ग्रन्थ—पुराणो में अवश्य लिख देते।
वखतु न पाइओ कादीआ जि लिखनि लेखु कुराणु ।।	काजियों को भी (सृष्टि-रचना के वक्त का) पता नही था, यदि पता होता तो मुसलमानो के धर्म-ग्रन्थ—कुरान में अवश्य लिख देते।
थिति वारु ना जोगी जाणै रुति माहु ना कोई ।।	(इस प्रकार सृष्टि-रचना की) तिथि और दिन को योगा भी नही जानते। कोई भी (सृष्टि-रचना की) ऋतु अथवा महीना नही जानता।
जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई ।।	केवल कर्त्ता जो सृष्टि को साजता है, वही स्वय (इस रहस्य को) जानता है।
किव करि आखा किव सालाही ।। किउ वरनी किव जाणा ।।	तब मैं किन शब्दो से आपका व्याख्यान करूँ ? कैसे स्तुति करूँ ? कैसे वर्णन करूं और मैं कैसे आपको जानूँ ?
नानक आखणि सभु को आखै इकदू इकु सिआणा ।।	हे नानक ! सभी लोग तथा एक से एक चतुर व्यक्ति केवल मात्र वर्णन करने के लिए 'आपका' वर्णन करते हैं। वस्तुत असली चतुर वह है जिसने जान लिया कि 'आपका' वर्णन नही हो सकता।
वडा साहिबु वडी नाई कीता जा का होवै ।।	'वह' साहिब महान् (वडा) है। 'उसका' नाम भी महान् है। जिसकी इच्छा से सब कुछ होता है अथवा जिसका किया हुआ यह सब कुछ है।
नानक जे को आपौ जाणै अगै गइआ न सोहै ।।२१।।	हे नानक ! जो कोई अपने आपको कुछ जानता(समझता) है, वह (अहंकारी पुरुष) आगे जाकर (परलोक में) शोभा नहीं पाता ।।२१।।
पाताला पाताल लख आगासा आगास ।।	लाखो पाताल हैं और लाखों आकाश हैं अथवा पाताल ही पाताल है और आकाश ही आकाश हैं—अनतानत।
ओड़क ओड़क भालि थके वेद कहनि इक वात ।।	लाखो खोज-खोज कर अन्त में थक गए (असमर्थ रहे)। वेद भी यही एक बात कहते हैं (नेति-नेति)।

सहस अठारह कहनि कतेबा
असुलू इकु धातु ॥

कतेवा अजील, कुरान तुरेत और जंबूर-मुसलमानो और ईसाईयो के धम-ग्रन्थ अठारह हजार आलम (दुनिया) कहते है, किन्तु वास्तव मे केवल एक ही शक्ति है (जो सृष्टि का सृजन, पालन एव सहार कर रही है।)

लेखा होइ त लिखीऐ
लेखै होइ विणासु ॥

यदि 'उसका' लेखा हो तो लिखे, लेकिन लिखते हुए विनाश हो जाएगा अथवा लेखे-जोखे नश्वर ही हैं।

नानक वडा आखीऐ
आपे जाणै आपु ॥२२॥

हे नानक! 'उसे' महान कहे। 'वह' अत्यन्त महान है। 'वह' अपने आपको आप ही जानता है (अन्य कोई नही) ॥२२॥

सालाही सालाहि
ऐती सुरति न पाईआ ॥

हे प्रशसा करने योग्य प्रियतम्! स्तुति करने वाले (भक्त) आपकी स्तुति करते हैं, लेकिन उन्हे भी 'आपकी' सुरति नही मिली अर्थात उन्हो ने भी आपका अन्त नही पाया।

नदीआ अतै वाह
पवहि समुंदि न जाणीअहि ॥

नदी और छोटे नाले समुद्र मे गिरते है, लेकिन वे समुद्र को नही जान सकते कि कितना विशाल और गम्भीर है। वस्तुत कारण यह है कि समुद्र मे मिलकर वे समुद्रवत हो जाते है।

समुंद साह सुलतान
गिरहा सेती मालु धनु ॥

हे राजा! हे राजाओं के राजा! यदि कोई समुद्रो का स्वामी हो उसके पास पर्वतो सरीखी माल-धन हो।

कीड़ी तुलि न होवनी
जे तिसु मनहु न वीसरहि ॥२३॥

वे भी उस एक चीटी की बराबरी नही कर सकते जिसे 'तू' मन से नही विसारता अर्थात् जो प्रभु को मन से नही भूलते (अर्थात् तेरा अनन्य भक्त सर्वश्रेष्ठ है, उसकी समता न धनी कर सकते है, न शहशाह और न सुल्तान ही) ॥२३॥

अंतु न सिफती कहणि न अंतु ।
अंतु न करणै देणि न अंतु ॥

'उसके' गुणों का अन्त नही है, न उसके (गुणो के) कथन करने वालो का ही अन्त है। 'उसके' कामो का अन्त नही है, न 'उसकी' दी हुई वस्तुओं (सुविधाओ) का ही अन्त है।

अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु ॥
अंतु न जापै किआ मनि मंतु ॥

जो 'वह' देखता है न उसका अन्त है, और जो 'वह' सुनता है न उसका ही कोई अन्त है। 'उसके' मन मे क्या मन्तव्य है। उसका भी अन्त दखा जादा जा सकता।

अंतु न जापै कीता आकारु ॥
अंतु न जापै पारावारु ॥

'उसके' किये हुए सृष्टि-प्रसार (आकार) का अन्त नही जाना जा सकता, न ही 'उसके' आदि-अन्त का कोई अन्त जाना जा सकता है।

अंत कारणि केते बिललाहि ॥
ता के अंत न पाए जाहि ॥

'उसका' अन्त जानने के लिए न जाने कितने (खोजी) बिललाते रहते हैं तो भी 'उसका' अन्त नही पाया जाता।

एहु अंतु न जाणै कोइ ॥
बहुता कहीऐ बहुता होइ ॥

कोई भी 'उसका' अंत नही जानता। जितना 'उसके' विषय मे अधिक कथन करते जायँ, उतना ही अधिक 'वह' बढ़ता जाता है।

वडा साहिबु ऊचा थाउ ॥
ऊचे उपरि ऊचा नाउ ॥

'वह' साहिब महान है और 'उसका' स्थान ऊँचा है और उससे भी ऊँचा 'उसका' नाम है।

एवडु ऊचा होवै कोइ ॥
तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ ॥

यदि कोई उतना महान और ऊंचा हो तो वह उस ऊँचे (परमात्मा) को जान सकता है।

जेवडु आपि जाणै आपि आपि ॥
नानक नदरी करमी दाति ॥२४॥

'वह' कितना महान है, अपने आपको 'वह' स्वयं ही जानता है। हे नानक! जिस पर कृपा-निधान भगवान की अपार कृपा-दृष्टि होती है उसी पर 'उसकी' देन उतरती है ॥२४॥

बहुता करमु लिखिआ ना जाइ ॥
वडा दाता तिलु न तमाइ ॥

'उसकी' महान दयालुता (उदारता) को लिखा नही जा सकता। वह दाता इतना महान है कि उसके (बदले मे पाने की) तिल भर भी 'उसे' लालच नही है।

केते मंगहि जोध अपार ॥
केतिआ गणत नही वीचारु ॥

कितने ही बडे (अनगिनित) योद्धा 'उससे' अपार वस्तुएँ मागते ही रहते है और कितने अन्य मागने वाले है जिनका विचार भी नही किया जा सकता।

केते खपि तुटहि वेकार ॥
केते लै लै मुकरु पाहि ॥

कितने ही विकारी पुरुष विषय-विकारो मे ही खप कर 'उसमे' टूट जाते हैं और कितने ही ऐसे हैं जो (परमात्मा से) ले-लेकर मुकर जाते है अर्थात् इन्कार कर देते है।

केते मूरख खाही खाहि ॥
केतिआ दूख भूख सद मार ॥

कितने ही ऐसे मूर्ख हैं जो केवल खाते ही रहते हैं अर्थात् मागने और खाने की वृति से ऊपर नही उठते। कितने ऐसे भी हैं जिन पर सदैव ही दु:ख और भूख की मार पड़ती रहती है।

एहि भि दाति तेरी दातार ॥

और हे दाता ! यह (दुःख और भूख) भी तेरी ही देन है।

बंदि खलासी भाणै होइ ॥
होरु आखि न सकै कोइ ॥

(माया के) बन्धन से खलासी और (योनियो से) मुक्ति 'आपकी' आज्ञा से होती है। कोई दूसरा इस सम्बन्ध में कुछ भी नही कह (कर) सकता।

जे को खाइकु आखणि पाइ ॥
ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाइ ॥

यदि कोई मूर्ख 'उसके' खानपान पर भी अप-शब्दो का प्रयोग करता है तो वह जानता है कि उसके मुख पर कैसी चपत लगती है।

आपे जाणै आपे देइ ॥
आखहि सि भि केई केइ ॥

'वह' आप ही जानता है और आप ही देता है (किसे क्या, कुछ, कब, और कितना देना है वही जानता है।) पर हाय ! ऐसा कोई विरला ही मानता है।

जिसनो बखसे सिफति सालाह ॥
नानक पातिसाही पातिसाहु ॥२५॥

'वह' जिस पर भी अपनी स्तुति व सालाह की अपार बख्शीश प्रदान करता है, हे नानक! वह बादशाहो का भी बादशाह है॥ २५॥

अमुल गुण अमुल वापार ॥
अमुल वापारीए अमुल भंडार ॥

अमूल्य है 'उसके' गुण और अमूल्य हैं उन गुणो का व्यापार। अमूल्य हैं उन गुणो का व्यापार करने वाले (व्यापारी) और अमूल्य है उन गुणो के भण्डार।

अमुल आवहि अमुल लै जाहि ॥
अमुल भाइ अमुला समाहि ॥

अमूल्य है वे जो उन गुणों को लेने आते हैं और अमूल्य हैं वे खरीदार जो उन गुणो को लेकर जाते है। अमूल्य है उनका प्यार (भाव) और अमूल्य हैं वे जो 'उसके' गुण गाने मे समाये हुए है।

अमुलु धरमु अमुल दीबाणु ॥
अमुलु तुलु अमुलु परवाणु ॥

अमूल्य है 'उसका' धर्म-विधाना का विधान और अमूल्य है 'उसकी' दरबार। अमूल्य है उसके इन्साफ की तराजू और अमूल्य हैं बट्टे जिससे उनके गुण तोले जाते हैं।

अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु ॥
अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु ॥

अमूल्य है 'उसकी' उद्धारता और अमूल्य है 'उसके' चिन्ह (प्रतीक)। अमूल्य है 'उसकी' दया और अमूल्य है 'उसका' हुक्म (आदेश)।

अमुलो अमुलु आखिआ न जाइ ॥
आखि आखि रहे लिव लाइ ॥

हे अमूल्य गुण-निधान ! आप अमूल्यो मे अमूल्य हैं। आपका मूल्य वर्णन नही हो सकता। 'आपके' मूल्य के विषय मे कह-कह कर भक्तजन अन्त मे ध्यान-निमग्न हो जाते हैं।

आखहि वेद पाठ पुराण ॥
आखहि पड़े करहि वखिआण ॥

वेदो और पुराणों के पाठ द्वारा कितने हो 'आपके' गुण गाते है। विद्वान लोग (शास्त्रो को) पढ-पढ कर आपके सम्बन्ध मे व्याख्यान करते हैं।

आखहि बरमे आखहि इंद ॥
आखहि गोपी तै गोविंद ॥

ब्रह्मा और इन्द्र भी 'आपके' गुणो को कहते हैं। गोपियाँ और गोविन्द भी 'आपका' वर्णन करते हैं।

आखहि ईसर आखहि सिध ॥
आखहि केते कीते बुध ॥

शिव और सिद्ध भी कहते हैं और कितने ही बुद्ध जो आपने बनाये है, वे भी आपका वर्णन करते हैं।

आखहि दानव आखहि देव ॥
आखहि सुरि नर मुनि जन सेव ॥

कई राक्षस और देव भी 'आपका' बखान करते हैं और सुर, नर, मुनिजन और सेवकजन भी आपका वर्णन करते हैं।

केते आखहि आखणि पाहि ॥
केते कहि कहि उठि उठि जाहि ॥

कईयो ने तो 'आपका' बखान किया, कई कर रहे हैं और कई बखान करते-करते (ससार से) उठ-उठकर चले गये।

एते कीते होरि करेहि ॥
ता आखि न सकहि केई केइ ॥

यदि 'वह' इतने और जीवो की सृष्टि कर दे जितने की हो चुकी है तो भी उनमे से एक भी ('उसके' स्वरूप का) बखान नही कर सकेगा।

जेवडु भावै तेवडु होइ ॥
नानक जाणै साचा सोइ ॥

'वह' जितना बडा होना चाहे उतना ही बडा हो जाता है अर्थात् जैसा चाहता है वैसा ही हो जाता है। हे नानक ! 'वह' सच्चा निरकार ही अपनी महानता को जानता है अथवा 'उसे' जो जान ले वही सत्य है।

जे को आखै बोलुविगाडु ॥
ता लिखीऐ सिरि गावारा
गावारु ॥२६॥

पर यदि कोई मूर्ख बिगाड के बोल बोलता है अथवा 'उसके' गुणो को जानने का दावा करता है, तो उसे गवारो का गवार (महामूर्ख) समझना चाहिए ॥ २६ ॥

सो दर केहा सो घर केहा
जितु बहि सरब समाले ।।

कितना सुन्दर है वह द्वार ! कितना सुन्दर है वह घर ! जहां बैठकर परमेश्वर सब की सम्भाल करता है ।

वाजे नाद अनेक असंखा
केते वावणहारे ।।

वहां अनेक प्रकार के असख्य नाद बज रहे हैं । कितने ही हैं बजाने वाले !

केते राग परी सिउ कहीअनि
केते गावणहारे ।।

वहां कितने ही राग-रागनियो (परी) सहित गा रहे हैं । कितने ही हैं गाने वाले !

गावहि तुहनो पउणु पाणी बैसंतरु
गावै राजा धरमु दुआरे ।।

हे प्रभु ! सभी तत्व-वायु पानी, अग्निादि आपकी स्तुति मे गा रहे है और स्वय धर्मराज भी आपके द्वार पर आपका गीत गा रहा है ।

गावहि चितु गुपतु लिखि जाणहि
लिखि लिखि धरमु वीचारे ।।

चित्र और गुप्त जो जीवो के शुभाशुभ कर्मो का हिसाब लिखना जानते हैं और जिन लेखो के अनुसार धर्मराज प्रत्येक जीव के लिए न्याय विचारता है, वे भी हे, प्रभु ! आपकी स्तुति मे गा रहे हैं ।

गावहि ईसरु बरमा देवी
सोहनि सदा सवारे ।।

स्वय शिव, ब्रह्मा, विष्णु की स्त्री-देवी जिनको आपने सवारा है और जो सदा सुशोभित हैं, वे भी आपकी स्तुति मे गा रहे है ।

गावहि इंद इदासणि बैठे
देवतिआ दरि नाले ।।

इन्द्र भी अपने सिहासन पर बैठकर देवताओ सहित आपके द्वार पर, हे प्रभु ! आपकी स्तुति मे गा रहा है ।

गावहि सिध समाधी अंदरि
गावनि साध विचारे ।।

सिद्धगण समाधि के अन्तगत और साधु पुरुष भी ध्यान मे, विचार मे आपकी स्तुति गा रहे हैं ।

गावनि जति सती संतोखी
गावहि वीर करारे ।।

अनेक यती, सती और सन्तोषी आपकी स्तुति कर रहे हैं । कितने ही करारे वीर-योद्धा भी आपकी स्तुति कर रहे हैं ।

गावनि पंडित पड़नि रखीसर
जुगु जुगु वेदा नाले ।।

विद्वान पडित और ऋषिवर वेदो के अध्ययन द्वारा युग-युगानरो से 'आपकी' स्तुति कर रहे हैं ।

गावहि मोहणीआ मनु मोहनि
सुरगा मछ पइआले ॥

मन को मोहने वाली स्वर्ग और मृत्युलोक की अप्सराएं और पाताल में कच्छ-मच्छादिक स्थित भी 'आपकी' प्रशंसा मे गा रही है अर्थात् स्वर्ग से लेकर पाताल तक आपके गीत के अतिरिक्त और कोई धुन नही है।

गावनि रतन उपाए तेरे
अठसठि तीरथ नाले ॥

आपके उत्पन्न किए हुए चौदह रत्न 'आपका' यश करते हैं। साथ ही अड़सठ तीर्थ भी आपका गुणगान करते हैं।

गावहि जोध महाबल सूरा
गावहि खाणी चारे ॥

और फिर योद्धागण महाबली और शूरवीर 'आपकी' स्तुति गा रहे है। वस्तुत चारो ही खाणियों (से उत्पन्न जीव) हे राजन! 'आपकी' स्तुति मे गा रहे हैं।

गावहि खंड मंडल वरभंडा
करि करि रखे धारे ॥

और सब खण्ड, मण्डल तथा ब्रह्माण्डादिक जो आपने उपाये हैं और अपनी शक्ति से धारण किए हुए हैं वे भी 'आपकी' स्तुति मे गा रहे हैं।

सेई तुधुनो गावहि जो तुधु भावनि
रते तेरे भगत रसाले ॥

वास्तव में हे प्रभु! वे ही पूर्णत और भली भाति आपका यशगान करते हैं जो आपको अच्छे लगते हैं। वे हैं रसिक भक्त जो आपके महारस प्रेम मे मतवाले (अनुरक्त) हैं (उन्ही भक्तो पर आपकी पूर्ण कृपा है।)

होरि केते गावनि
से मै चिति न आवनि
नानकु किआ वीचारे ॥

उन भक्तो के अतिरिक्त और कितने ही है जो 'आपका' यशोगान करते हैं जो मेरे चित्त में नही आते (गणना मे) ही नही हैं क्योकि वे भक्ति पद से नीचे हैं (बाबा) नानक ऐसो का क्या विचार करे।

सोई सोई सदा सचु साहिबु
साचा साची नाई ॥

केवल 'वही' केवल 'वही' मालिक सदैव सच्चा है और 'वह' सच्चा (मालिक) सच्चे नाम वाला है।

है भी होसी जाइ न जासी
रचना जिनि रचाई ॥

जिस करतार ने सृष्टि की रचना की है 'वह' अब भी है और सदा होगा। 'वह' न जा सकता है और न जाएगा अथवा न कोई उसे निकाल सकेगा।

रंगी रंगी भाती करि करि
जिनसी माइआ जिनि उपाई ॥

जिस परमेश्वर ने भिन्न-भिन्न रगो, जातिओं तथा अनेक प्रकार से यह माया रूपी रचना रची है।

करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई ॥	'वह' अपनी उपाई हुई रचना रच-रचकर देख रहा है अर्थात् रचना की देखभाल उतनी कर रहा है जितनी 'उसकी' महानता (बड़प्पन) है।
जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई ॥	जो कुछ 'उसे' भाता है, वह उसी को करता है। 'उसे' हुक्म देने वाला कोई नही अथवा 'उसके' हुक्म मे कोई दखल नही दे सकता हैं।
सो पातिसाहु साहा पाति साहिबु नानक रहणु रजाई ॥२७॥	'वह' बादशाह है, शाहों का भी बादशाह है। (हमे तो) हे नानक ! 'उसकी' रजा में राजी रहना चाहिए ॥२७॥
मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूति ॥	हे योगी ! कानो मे सतोष की बालिया पहनो, बुरे कर्मों से शर्म (लज्जा) की झोली (भिक्षा पात्र) उठाओ जिससे तेरी प्रतिष्ठा हो और ध्यान की विभूति लगाओ।
खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति ॥	सच्चा योगी मृत्यु की याद की गोदरी उठाता है और शरीर को कुमारी (अविवाहित लडकी जैसे असग और विशुद्ध) रखता है और हाथ मे युक्ति और निश्चय (श्रद्धा) का डडा उठाता है।
आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीतु ॥	सच्चा आई पथी-योगियो मे उत्तम पदवी वाला वह है जो कहे "सारी जमात, सारी सृष्टि मेरी है।" केवल ऐसा योगी ही मन को जीत कर जगत को जीतता है।
आदेसु तिसै आदेसु ॥ आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥२८॥	'उसे' हमारा प्रणाम् है जो सबका आदि है, निष्कलक (शुद्ध) है, अनादि है, अविनाशी है और जिसका युग-युगांतर से एक ही वेश है ॥२८॥
भुगति गिआनु दइआ भंडारणि घटि घटि वाजहि नाद ॥	ऐसे योगी का भोजन है आत्म-ज्ञान, जो उसे दया के भण्डार से मिलता है अथवा दया भण्डारिन (अन्नपूर्णा देवी) है। और ऐसे प्यारे के घट-घट मे अनाहद-शब्द का सख (नाद) बजता है।
आपि नाथु नाथी सभ जा की रिधि सिधि अवरा साद ॥	सच्चा योगी समझता है कि केवल मात्र 'वही' नाथ है और समस्त सृष्टि उसकी प्रेम की डोरी में बधी हुई है। ऐसा जोगी रिद्धियो-सिद्धियो और ससार के स्वादो से दूर रहता है क्योंकि वह जानता है कि ये सभी (आकर्षण) मालिक से दूर करते हैं।

संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग ॥	'वही' संयोग और वियोग के दो मार्ग चला रहा है और भाग्य लेख (कर्मों) के अनुसार संयोग या वियोग का मार्ग प्राप्त होता है।
आदेसु तिसै आदेसु ॥ आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥२९॥	'उसे' हमारा प्रणाम् है, जो सबका आदि है, निष्कलंक (शुद्ध) है, अनादि है, अविनाशी है और जिसका युग-युगांतर से एक ही वेश है ॥२९॥
एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु ॥	इस माया ने युक्ति पूर्वक प्रभु की दैवी शक्ति से संयोग किया जिससे तीन प्रमाणिक चेले –ब्रह्मा, विष्णु और शिव उत्पन्न हुए।
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु ॥	प्रथम है संसारी-ब्रह्मा, दूसरा है भण्डारी-विष्णु और तीसरा है शिव-दीवान प्रलयकर।
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु ॥	लेकिन जैसे 'उसे' भाता है, वैसे ही अपने आदेशानुसार उन्हे चलाता है।
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु ॥	'वह' प्रभु उन्हे देखता रहता है परन्तु 'वह' उनकी दृष्टि मे नही आता। यह बहुत आश्चर्य की बात है।
आदेसु तिसै आदेसु ॥ आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥३०॥	'उसे' हमारा प्रणाम् है जो सबका आदि है, निष्कलंक (शुद्ध है, अनादि है, अविनाशी है और जिसका युग-युगांतर से एक ही वेश है ॥३०॥
आसणु लोइ लोइ भंडार ॥ जो किछु पाइआ सु एका वार ॥	'उसका' आसन और 'उसके' भण्डार लोक-लोक मे है। उसने एक बार ही (सदा के लिए) सब कुछ उसमें धर दिया है अर्थात् अखुट है 'उसके' भण्डार।
करि करि वेखै सिरजणहारु ॥ नानक सचे की साची कार ॥	'वह' सृष्टि-रचयिता रचना करके उसे देखता रहता है। हे नानक ! सच्चे परमात्मा की कारीगरी सच्ची है।

आदेसु तिसै आदेसु ॥ आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥३१॥	'उसे' हमारा प्रणाम है, जो सबका आदि है निष्कलंक (शुद्ध) है, अनादि है, अविनाशी है और जिसका युग-युगातर से एक ही वेश है ॥३१॥
इकदू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस ॥	यदि एक जीभ से लाख जीभे हो जायँ और लाख से बीस लाख हो जायँ ।
लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नाम जगदीस ॥	तो प्रत्येक जीभ से लाख लाख बार 'उस' एक जगदीश का नाम उच्चारण करो ।
एतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीऐ होइ इकीस ॥	यही है (एक) रास्ता, यही है प्रतिष्ठा की सीढियाँ । नाम की इन सीढियो पर चढकर ईश्वर से एक हो जाएँगे ।
सुणि गला आकास की कीटा आई रीस ॥	आकाश (उच्च पद) की चर्चा सुन कर कीट के समान तुच्छ लोगो को भी स्पर्द्धा हो जाती है ।
नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस ॥३२॥	हे नानक ! 'उसकी' कृपा-दृष्टि से उच्चतम् सहज पद की अथवा परमात्मा की प्राप्ति होती है । शेष झूठे लोगो की झूठी शेखी है अर्थात् नाम की प्राप्ति उसे होती है जिसने सब डींगें छोडकर अह भाव को निवृत किया है ॥३२॥
आखणि जोरु चुपै नह जोरु ॥ जोरु न मंगणि देणि न जोरु ॥	मनुष्य मे न बोलने का बल है और न चुप रहने का । मनुष्य मे न मागने का बल है और न (दान) देने का ।
जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु ॥ जोरु न राजि मालि मनि सोरु ॥	मनुष्य मे न जीवित रहने का बल है और न मरने का । मनुष्य मे न राज्य (प्राप्त) करने का बल है और न माल-धन एकत्र करने का जिससे मन मे अशान्ति होती है ।
जोरु न सुरती गिआनि वीचारि ॥ जोरु न जुगती छुटै संसारि ॥	मनुष्य मे न ध्यान (स्मरण), न ज्ञान और न ठीक विचार करने का कोई बल है और न ही उसमे ससार से छूटने का बल है ।
जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ ॥ नानक उतमु नीचु न कोइ ॥३३॥	वास्तविक शक्ति 'उस' परमात्मा के हाथ में है जो सृष्टि की रचना करके उसे देखता रहता है । हे नानक ! वहाँ न कोई ऊँच है और न कोई नीच अर्थात् वहाँ सब बराबर हैं ॥३३॥

राती रुती थिती वार ॥ पवण पानी अगनी पाताल ॥ तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल ॥	परमात्मा ने रातें, ऋतुएँ, तिथियों, दिनों, पवन, पानी अग्नि और पाताल आदि रचकर, उन सब के बीच धरती को धर्मशाला (मुसाफिर खाने) के रूप में स्थापित किया है। (अर्थात् धरती धर्म-बद्ध है।)
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग ॥ तिनके नाम अनेक अंनत ॥	उसके बीच मे (धर्म-खण्ड मे) अनेक स्वभाव वाले रंग-रंग के जीव हैं जिनके नाम अनेक और अनन्त हैं।
करमी करमी होइ वीचारु ॥ सचा आपि सचा दरबारु ॥	वहा प्रत्येक के कर्मानुसार ही विचार होता है। हे प्रभु ! आप सत्य हैं 'आपका' दरबार भी सत्य है। (अर्थात् 'उसके' दरबार मे सच्चा ही पहुच पाएगा।)
तिथै सोहनि पंच परवाणु ॥ नदरी करमि पवै नीसाणु ॥	'उसके' दरबार मे केवल प्रमाणिक सतजन ही सुशोभित होते है। (अर्थात् जो श्रेष्ठ है, पच हैं, केवल वे ही पहुच पाते हैं) और केवल उन पर ही प्रभु की कृपा-दृष्टि के निशान (चिन्ह) प्राप्त होते है।
कच पकाई ओथै पाइ ॥ नानक गइआ जापै जाइ ॥३४॥	वहाँ ही कच्चे और पक्के का निर्णय होता है। हे नानक ! वहाँ पहुँचने पर मनुष्य को परख होती है कि कौन झूठा है और कौन सच्चा (पक्का) है ॥३४॥
धरम खंड का एहो धरमु ॥ गिआन खंड का आखहु करमु ॥	धर्म-खण्ड का यहा धर्म है (जिसका वर्णन ३४वी पौडी में किया गया है) अब मैं ज्ञान-खड की दशा (करम) बताता हूँ। (सुनो !)
केते पवण पाणी वैसंतर केते कान महेस ॥ केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूप रंग के वेस ॥	ज्ञान-खड मे अनुभूति होती है कि कितने ही पवन, पानी और अग्नियां है और कितने ही कृष्ण तथा शिव है। कितने ही ब्रह्मा हैं जो विभिन्न रूप रग के वेश घडते और श्रृंगारते हैं।
केतीआ करम भूमी मेर केते केते धू उपदेस ॥ केते इंद चंद सूर केते केते मंडल देस ॥	कितनी ही कर्म-भूमियां है, कितने ही सुमेरु पर्वत हैं, कितने ही ध्रुव तथा उपदेशक हैं अथवा ध्रुव बालक को उपदेश देने वाले (नारद मुनि) कितने ही हैं। कितने ही इद्र, और कितने ही चद्र एवं सूर्य हैं तथा कितने ही तारा मण्डलऔर अन्य देश हैं।

केते सिध बुध नाथ केते
केते देवी वेस ॥
केते देव दानव मुनि केते
केते रतन समुंद ॥

कितने ही सिद्ध, बुद्ध और कितने ही नाथ हैं तथा कितने ही देवियों के वेश हैं। कितने ही देव और दानव हैं और कितने ही मुनि (जन) हैं तथा कितने ही रत्न और समुद्र हैं।

केतीआ खाणी केतीआ बाणी
केते पात नरिंद ॥

कितनी ही खानियाँ—जीवन—स्रोत हैं और कितनी ही वाणियाँ हैं। कितने ही प्रजा को पालने वाले बादशाह हैं और कितने ही राजागण हैं।

केतीआ सुरती सेवक केते
नानक अंतु न अंतु ॥३५॥

कितने ही ध्यानी अथवा श्रुतिया है और कितने ही सेवक हैं। हे नानक! (ज्ञान-खंड की सृष्टि का) अन्त नहीं है, अन्त नहीं है ॥३५॥

गिआन खंड महि गिआनु परचंडु ॥
तिथै नाद बिनोद कोड अनंदु ॥

ज्ञान-खंड में ज्ञान की प्रचंडता है। वहाँ आनन्दमय राग का अनाहद-शब्द बज रहा है जो करोड़ों गुणा अधिक आनन्द-विनोद प्रदान करता है।

सरम खंड की बाणी रूपु ॥
तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु ॥

'सरम-खंड' की विशेषता है सौन्दर्यता और पवित्रता। वहाँ (वाणी द्वारा) उपमा से रहित —अनुपम अपार घाड़त घड़ी जाती है।

ता कीआ गला कथीआ ना जाहि ॥
जे को कहै पिछै पछुताइ ॥

उस अवस्था की चर्चा शब्दों में नहीं की जा सकती और जो ऐसा करने का प्रयास करता है वह पीछे पछताता है।

तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि ॥
तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि ॥३६॥

वहाँ 'सरम-खंड' में चित्त की वृत्ति (स्मृति), मति, मन और बुद्धि की शुद्धि होती है और वहीं देवताओं वाली स्मृति घड़ी जाती है अर्थात् अलौकिक सूझ-बूझ प्राप्त होती है ॥३६॥

करम खंड की बाणी जोरु ॥
तिथै होरु न कोई होरु ॥

कर्म-खंड की विशेषता है आत्मिक शक्ति (भक्ति)। वहाँ आत्मिक-बल वालों के सिवा और कोई नहीं आ सकता।

तिथै जोध महाबल सूर ॥
तिन महि रामु रहिआ भरपूर ॥

वहाँ पर योद्धागण महाबली, और शूरवीर, हैं। उन सब में राम ही भरपूर रूप से समाया हुआ है।

तिथै सीतो सीता महिमा माहि ।।
ताके रूप न कथने जाहि ।।

वहाँ पर पुनीत भक्ति-शक्ति की प्रतीक-महिमा रूप सीताओं के समूह हैं जो अपने प्रियतम राम की महिमा से गुत्थी हुई हैं। उनकी सुन्दरता व दिव्य-रूप कथन नहीं किए जा सकते।

ना ओहि मरहि न ठागे जाहि ।।
जिन कै रामु वसै मन माहि ।।

न वे मरते हैं और न (माया द्वारा) ठगे जाते हैं जिनके मन में राम का निवास है।

तिथै भगत वसहि के लोअ ।।
करहि अनंदु सचा मनि सोइ ।।

वहाँ अनेक लोको के भक्त निवास करते हैं। सच्चे (नाम) को मन में बसाए हुए वे आनन्द (मनाते) प्राप्त करते हैं।

सच खंड वसहि निरंकारु ।।
करि करि वेखै नदरि निहाल ।।

'सच-खड' मे निराकार परमात्मा का निवास है। 'वह' सृष्टि की रचना करके उसकी देखभाल करता है और अपनी कृपा-दृष्टि से निहाल करता है।

तिथै खंड मंडल वरभंड ।।
जे को कथै त अंत न अंत ।।

वहाँ (असख्य) खड, मडल और ब्रह्माण्ड हैं। यदि कोई कथन करना चाहे तो 'उसके' अन्त का कोई अन्त नही है।

तिथै लोअ लोअ आकार ।।
जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार ।।

वहाँ असख्य लोको के लोगो का आकार है। जैसे जैसे 'उसका' हुकम होता है, उसके अनुसार ही सारा काम चलता है।

वेखै विगसै करि वीचारु ।।
नानक कथना करड़ा सारु ।।३७।।

जब वे देखते हैं तो आनन्द-विचार से प्रफुलित हो उठते हैं। हे नानक! उस अवस्था का वर्णन करना लोहे के समान ठोस और महान कठिन है। आह! पुनर्मिलन की अवस्था अवर्णनीय है।

जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु ।।
अहरणि मति वेदु हथीआरु ।।

(हे प्यारे!) अपने आपको जीतने की भट्ठी तपाओ अर्थात् इन्द्रियो और मन को विषय-वासनाओ से दूर रखो, धैर्य रूपी सुनार बनो, सुमति (बुद्धि) का लौह-पिण्ड रखो और ज्ञान का हथौड़ा हो।

भउ खला अगनि तपताउ ।।
भांडा भाउ अंम्रितु तितु ढालि ।।

भय की धौंकनी और तपस्या की अग्नि जलाओ। प्रेम-भाव की कुठाली (प्याली) हो जिसमे अमृत (मानुष देही) डालें।

घड़ीऐ सबदु सची टकसाल ।।
जिन कउ नदरि करमु तिन कार ।।

इस प्रकार सच्ची टकसाल मे आप शब्द-नाम का सिक्का घढे (बनाएँ)। (याद रहे कि) जिन पर 'उसकी' अपार कृपा-दृष्टि होती है, वे ही इस कार्य में लगते हैं।

नानक नदरी नदरि निहाल ॥३८॥

हे नानक ! वे सत् कर्त्ता की कृपा-दृष्टि से निहाल हो जाते हैं अर्थात् वे सदैव-सदैव के लिए 'उसमें' समा जाते हैं और कृतार्थ हो जाते हैं ॥३८॥

सलोकु ॥
पवणु गुरु पाणी पिता
माता धरति महतु ॥
दिवसु राति दुइ दाई दाइआ
खेलै सगल जगतु ॥
चंगिआईआ बुरिआईआ
वाचै धरमु हदूरि ॥
करमी आपोआपणी
के नेड़ै के दूरि ॥
जिनी नामु धिआइआ
गए मसकति घालि ॥
नानक ते मुख उजले
केती छुटी नालि ॥१॥

जगत का गुरू पवन है, पानी पिता है और धरती महान माता है। यह सारा जगत (बालकवत्) खेल रहा है और उसको दिन रूपी दाया खिलाता है और रात रूपी दाई सुलाती है। इस प्रकार सारे जगत का खेल चल रहा है।

अच्छे और बुरे कर्मों का वाचन धर्मराज (न्याय का राजा) भगवान की उपस्थिति में करता है। अपने-अपने कर्मों से कोई 'उसके' निकट है और कोई उससे दूर हैं (परमात्मा के लिए दूरी और समीपता का कोई प्रश्न नहीं है, वह सर्वत्र है)।

परन्तु, जिन्होंने (इस खेल-घर में) नाम का ध्यान किया है, वे सदा के लिए कठिन परिश्रम अर्थात् नाम जपकर मनुष्य-देही सफल कर गए। हे नानक ! उनके मुख वहाँ (सत्य-खंड में) उज्ज्वल होते हैं अर्थात् वे जन्म-मरण से छूट जाते हैं और कितने ही उनके साथ (मोह-माया और आवागमन से) मुक्त हो जाते हैं ॥१॥

समाप्तम् □

१ओं

ओमकार ओम् का पवित्र वाक्यांश है। ओम शब्द गहन भक्ति, प्रतिज्ञा कल्याण तथा सहमति का सूचक है—यह शब्द इतना पवित्र है कि जब इसका उच्चारण किया जाए तो यह किसी को सुनाई नहीं देना चाहिए। इस शब्द का प्रयोग प्रार्थना तथा किसी शुभ कार्य के आरम्भ करते समय किया जाता है और सामान्यत धार्मिक ग्रंथ इसी शब्द से आरम्भ की जाती हैं। यह तीन वर्णों अ, ओ तथा म का संग्रह है जो तीन मुख्य देवताओं के प्रतीक हैं। पाश्चातवर्ती काल में यह वाक्यांश "त्रिमूर्ति" का सूचक होने लगा।

मेरे गुरुदेव, गुरु नानक साहब ने ओम शब्द से पूर्व अंक १ लगा कर यह बताने के लिए साधारण सा भेद किया कि परमात्मा एक है, अनेक नहीं।

गुरु प्रसादि

गुरु, प्रकाश देने वाले शिक्षक का प्रसाद। इसका अर्थ वह पवित्र मिठाईयां अथवा खाद्य सामग्री भी है जो पहले इष्ट देव को भेंट की जाती है और फिर उपस्थित संगत में बांटी जाती है। गुरु के प्रसाद से शिष्य 'नाम'—भगवान की भक्ति प्राप्त करता है जिससे प्राणी विचारों से ऊपर उठता है और अपना समस्त जीवन प्रभु की सेवा में अर्पण करके मोक्ष प्राप्त करता है। गुरु का प्रसाद (i) मनन—(मानना) (ii) सेवन—(सेवा करना) तथा (iii) भेंटन—(भेंट करना।) द्वारा प्राप्त किया जाता है। पहली अवस्था में शिष्य अपने गुरु की महानता का बखाना करता है, इसका यशोगान करता है और जहाँ तक उसकी पहुंच है उसकी प्रशंसा करता है। दूसरी अवस्था में वह अपने गुरु की सेवा करता है। सेवा का भाव बढ़ता जाता है और अन्त में एक ऐसी अवस्था आ जाती है जबकि शिष्य अपने गुरु का मूर्धन्य उपासक बन जाता है। तीसरी अवस्था में शिष्य (i) गुरु के शब्द—'नाम' का श्रवण, पठन तथा पाठन करता है। (ii) शब्द पर ध्यान लगाता है और गुरु के आदेशों पर गहन विचार करता है और अन्त में (iii) गुरु का नेतृत्व स्वीकार करते हुए उसके प्रत्येक निर्देश को क्रियान्वित करता है।

सोदरु-रहरासि मेरे विचार में

'जपुजी' के पश्चात् फुटकल ६ शब्दों का संग्रह 'सोदरु-रहरासि' के नाम प्रसिद्ध है जिसके दो भाग हैं—'सोदरु' और 'सोपुरखु'। 'सोदरु' में ५ शब्द हैं और 'सोपुरखु' में ४ शब्द हैं जिसका पाठ प्रायः सभी सिख और अन्य श्रद्धालु गण प्रतिदिन सायकाल के समय करते हैं। 'सोदरु-रहरासि' की चौकी भी लगती है जहां गुरसिख सम्मलित होकर सुनते हैं। अत यह वाणी निजी भी है और संगति भी। सूर्यास्त के समय जब चिन्ताग्रस्त इन्सान अपने समस्त कार्य-कलाप से निवृत होकर घर लौटना है तो मेरे गुरुदेव मानो उसे अपनी गोदी में बैठाकर कुछ प्रश्न पूछते हैं कि हे मित्रवर ! जो कुछ आज तुमने कर्म किये हैं वे प्रभु के प्रति थे या माया के प्रति ? यदि कर्म हरि-नाम के कारण हैं तो तू धन्य है और तेरा जन्म भी धन्य है और तेरा सदैव जय-जयकार होगी। पर यदि नाम को भूलकर तुमने कर्म किये हैं तो याद रखना—"अवरि काज तेरं किते न काम। मिलु साध संगति भजु केवल नाम" (आसा म·५)। फिर मानो मेरे गुरुदेव भूले-भटके जीव को अति सरस, मर्मस्पर्शी एव स्पष्ट शब्दो में समझाते हैं।

यद्यपि आदि ग्रन्थ मे 'रहरासि' ऐसा शीर्षक नही लिखा है तथापि इस वाणी के चौथे शब्द मे उल्लेख है —"गुरमति नामु मेरा प्र.न सखाई हरि कीरति हमरी रहरासि" (गूजरी म ४)। वाणी-सूची (तत्करे) में इसका नाम 'सोदरु' लिखा हुआ है। आम प्रसिद्ध नाम 'रहरासि' है। 'रहरासि' का शाब्दिक अर्थ है अरदास, प्रार्थना, नमस्कार —"तिसु आगै रहरासि हमारी साचा अपर अपारो।" (सिध गोसटि म १ पृष्ठ ६३८)। 'रहरासि' शब्द दो अक्षरो से जुडा है—फारसी मे रहे रासत=सीधा रास्ता। अथवा राह रसत। संस्कृत में—रहस्य =गूढ आत्म उपदेश। तरीका =रीति अर्थात वह तरीका जिस पर चलने से आत्म लाभ होवे। कुछ प्रेमियो ने इसका अर्थ 'पूरी रहणी' भी किया है। वास्तव में प्रार्थना करना ही जीव के लिये पूरी रहणी है। मेरे पिता पूज्य दादा चेलाराम जी रहरासि का अर्थ किया करते थे—'रूह की राहत' अर्थात् 'आत्मा का आनन्द'।

प्रतिदिन सायकाल की प्रार्थना के समय रहरासि का पाठ करना अनिवार्य है। पन्चम पातशाही गुरू अर्जुन देव ने आदि ग्रन्थ को भाई गुरुदास से लिखवाया है जो आजकल कर्त्तारपुर शीशमहल में स्थापित है। उसमें रहरासि के केवल पाच शब्द ही अंकित हैं। (१) सो दरु तेरा केहा सो घरु केहा (२) सुणि वडा आखै सभु कोइ ।। (३) आखा जीवा विसरै मरि जाउ ।। (४) हरि के जन सतिगुर सतपुरखा (५) काहे रे मन चितवहि उदमु। अत पन्चम पातशाही के समय सायंकाल केवल पांच शब्दो का ही पाठ होता था। उनके पश्चात छेवीं पातशाही, गुरु हरि गोबिन्द साहब सायकाल के समय नौ शब्द पढते थे। पांच शब्द जो ऊपर लिखे हैं और चार शब्द ये हैं। (१) सो पुरखु निरजनु हरि पुरखु ।। (२) तूं करता सचिआरु मैडा साई ।। (३) तितु सरवरडै भईले निवासा ।। (४) भई परापति मानुख देहुरीआ ।। इनका अ क भी आदि ग्रन्थ मे अलग लिखा है। आगे छेवे शब्द की समाप्ति करके ६ अक लिखना चाहिए था किन्तु यहाँ पर नहीं लिखा हुआ है। छ शब्द 'सो पुरख' लिख के फिर नया अंक ।।१।। दिया हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि "सो पुरख" से आगे शब्द पढने की मर्यादा छेवीं पातशाही ने शुरू की है। गुरुदेव के बडे सुपुत्र बाबा गुरदिता का हस्त-लिखित गुटका जो कर्तारपुर शीशमहल मे है उसमें रहरासि के नौ शब्द ही लिखे हुए हैं।

दसवीं पातशाही, गुरु गोबिन्द सिह द्वारा रहरासि पढ़ने का कथन 'रहित-नामा' मे भी हुआ है —"ठंढे पाणी जो नही नावै। बिन जपु पडे प्रसाद जु खावै। बिन रहिरासि सन्धिया जो खोवहि। कीरतन पड़े बिन रैन जु सोवहि" ।।१५।। [तनखाह नामा भा : नन्दलाल]

—"प्रातःकाल गुर गीत न गावै। रहिरास बिना प्रसाद जो पावै ।। बाहर मुखी सिख तिस जानो। सब बरतन मिथिआ तिस मानो" ।।१४।। [रहित नामा भा· प्रहिलाद सिंह]

रहरासि के चार शब्द गुरु नानक साहब के उच्चरित हैं जो सारे 'आसा राग' में हैं। आदि ग्रन्थ में 'रहरासि'का प्रथम शब्द 'सोदरु' है जो इस बाणी का शीर्षक है। इसमें एक ही शब्द सम्मलित है। 'सोदरु' का शब्द जपुजी की २७ वीं पौड़ी में और 'आसा राग' (पृष्ठ३४७) में भी अंकित है। तीनों स्थानों में कुछ-२ पाठ-भेद है। किन्तु सम्पूर्ण अर्थ में कोई विशेष भेद नही है। इस शब्द की महानता और महिमा बाबा नानक की सच्च खंड फेरी से सम्बन्धित है। सन्त महापुरुषों ने इसे 'हजूरी गायन की बाणी', 'ब्रह्माडी कीर्तन' और 'कुदरत का सगीत' आदि नामो से भा सम्बोन्धित किया है। प्रथम शब्द में मेरे गुरुदेव बाबा नानक साहब, सर्वशक्तिमान परमात्मा की महानता की झलक दिखाते हैं कि समस्त कायनात—देवी-देवताए, जीव-जतु, चेतन पदार्थ, सारे ब्रह्माड के वासी 'उस' राजन के द्वार पर गाते हुए सुशोभित हो रहे है। परन्तु उनकी शोभा उन रसिक अनुरुक्त भक्तों के आगे कुछ भी नहीं जो भक्त प्रभु की कृपा से भक्ति करते हैं। "सेई तुधनो गावनि जो तुध भावनि रते तेरे भगत रसाले" ।।१।। दूसरे शब्द मे गुरुदेव परमेश्वर की कीमत के सम्बन्ध मे वर्णन करते हैं कि 'उसकी' कीमत आंकी नही जा सकनी क्योकि 'वह' अमूल्य है। किन्तु जिन पर मेरा मालिक कृपा करते हैं उनके मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट नही आनी ।।२।। तीसरे शब्द के सम्बन्ध में विचार है कि यह माता 'तृप्ता' के प्रति गुरुदेव ने उच्चारण किया है—"हे प्रभु ! जितने महान आप हैं उतनी महान आपकी देन है। यद्यपि नाम जपना कठिन है फिर भा अपने खसम दात्तार को भूल कर, हे मानव ! 'कमजात' और 'सनाति' क्यो बनते हो ? ।।३।। चौथे शब्द मे नाम की युक्ति बताते हैं। अपने गुरु के पास हरि-नाम और हरि-कीर्तन की ही प्रार्थना करो। सत्सग द्वारा ही गुणो का प्रकाश होता है और गुणीवान ही नाम जपने का अधिकारी होता है। हे प्यारे ! याद रखना कि जिनको हरि-नाम के रस का स्वाद प्राप्त नही हुआ है वे जीव भाग्य-हीन हैं। अन्त में वे यमकाल का खाद्य (भोजन) बनते है ।।४।। पाचवें शब्द मे मेरे गुरुदेव आश्वासन देते हैं कि जो जीव परमात्मा की भक्ति करने हैं उनकी और उनके परिवार की प्रतिपालना परमात्मा स्वय आकर करते हैं ।।५।। छठे शब्द मे परमात्मा की अनन्त अपार लीला का वर्णन है। मेरे गुरुदेव अपने सेवको को बताते है कि जो ऐसे सर्वोच्च भगवत् आदि पुरुष अपरम्पार कर्त्ता की सेवा करते है, वे हो जगत मे सुखी और धनी हैं तथा अन्त में वे मोक्ष प्राप्त करते हैं। ऐसे भक्तो पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देना चाहिए ।।६।। सातवें शब्द मे गुरुदेव परमात्मा के समक्ष होकर 'उसकी' महिमा और सुन्दरता का वर्णन करते हैं कि 'वह' मालिक सब कुछ है। जो जीव गुरु के ही सम्मुख रहते हैं, वे ही केवल नाम की प्राप्ति करते हैं लेकिन जो जीव अपने गुरु से विमुख रहते हैं वे अपना मनुष्य जन्म व्यर्थ गवा कर आवागमन के चक्र मे भटक कर दुखी होते रहते हैं ।।७।। आठवें शब्द मे गुरुदेव उपदेश करते हैं कि हे बाबा ! यदि हरि को भूल जाओगे तो तुम्हारे सारे श्रेष्ठ गुण नष्ट हो जाएँगे। परमात्मा की शरण में आने से ही पापी जीव भी संसार-सागर से पार उतर जाता है ।।८।। अन्तिम व नौवें शब्द में मेरे गुरुदेव बहुत ही सरल एव स्पष्ट शब्दो मे समझाते हैं कि साधु की सगति द्वारा नाम जपने के लिए ही मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है। (हाँ) यदि गोबिन्द का भजन नहीं, नाम का स्मरण नही तो जीव के सभी किए हुए कर्म, धर्म, जप, तप, संयम आदि व्यर्थ हैं। परमात्मा की शरण ही सर्वोत्तम है ।।९।।

यह है 'सोदरु-रहरासि' का कुछ शब्दों में विचार। जिन पर परमात्मा की कृपा-दृष्टि बरसती है, वे हा साधु-सन्तो के सान्निध्य से नाम जप कर इस भव-सागर से पार उतर कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। शेष बेचारे जीव हरि नाम को भूल कर बाह्य कर्मों में ही उलझे रहते हैं और अन्त में योनियों में भटक कर दुःखी होते हैं।

सो दरु रागु आसा महला १ ॥

सो दरु तेरा केहा सो घरु केहा
जितु बहि सरब समाले ॥
वाजे तेरे नाद अनेक असंखा
केते तेरे वावणहारे ॥

कितना सुन्दर है वह द्वार ! कितना सुन्दर है वह घर ! जहाँ बैठकर परमेश्वर सभी की सभाल करते है।

वहाँ अनेक प्रकार के असख्य नाद बज रहे हैं। कितने ही हैं बजाने वाले !

केते तेरे राग परी सिउ कहीअहि
केते तेरे गावणहारे ॥
गावनि तुधनो पवणु पाणी बैसंतरु
गावै राजा धरमु दुआरे ॥

वहाँ कितने ही राग रागनियो (परी)सहित गाए जा रहे हैं। कितने ही हैं गाने वाले ! हे प्रभु ! सभी तत्व—पवन, पानी अग्निादि आपकी स्तुति गा रहे हैं। स्वय धर्मराज भी आपके द्वार पर आपका यश गा रहा है।

गावनि तुधनो चितु गुपतु लिखि
जाणनि लिखि लिखि धरमु बीचारे ॥
गावनि तुधनो ईसरु ब्रहमा देवी
सोहनि तेरे सदा सवारे ॥

चित्रगुप्त जो जीवो के पाप-पुण्य कर्मों का हिसाब लिखना जानते हैं और जिन लेखो के अनुसार धर्मराज प्रत्येक जीव के लिये न्याय विचारता है, वे भी, हे प्रभु ! आप की स्तुति में गा रहे हैं। स्वय शिव, ब्रह्मा, विष्णु का स्त्री—देवी, जिन को आपने सवारा है और जो सदा सुशोभित है वे भी, आपके यश का गीत गा रहे है।

गावनि तुधनो इंद्र इंद्रासणि बैठे
देवतिआ दरि नाले ॥
गावनि तुधनो सिध समाधी अंदरि
गावनि तुधनो साध बीचारे ॥

इन्द्र भी अपने सिहासन पर बैठकर देवताओ सहित आपके द्वार पर, हे प्रभु ! आपका गुणानुवाद कर रहा है।

सिद्ध गण अपनी समाधी मे स्थित, और साधु पुरुष अपने ध्यान-विचार मे आपको गा रहे हैं।

गावनि तुधनो जती सती संतोखी
गावनि तुधनो वीर करारे ॥

यति, सत्वगुणी और सतोषी 'आपकी' स्तुति कर रहे हैं। कितने ही करारे शूरवीर आपके यश के गीत गा रहे हैं।

गावनि तुधनो पंडित पड़नि रखीसुर
जुगु जुगु वेदा नाले ॥

पंडित और ऋषिवर वेदो के अध्ययन द्वारा आपकी स्तुति युग-युगान्तरो से कर रहे हैं।

गावनि तुधनो मोहणीआ मनु मोहनि
सुरगु मछु पइआले ॥
गावनि तुधनो रतन उपाए तेरे
अठसठि तीरथ नाले ॥

स्वर्ग में सौन्दर्य की मनमोहक अप्सरायें तथा पाताल में स्थित कच्छ-मच्छादिक भी आपकी' ही प्रशसा कर रहे हैं । आपके उत्पन्न किए हुए चौदह रत्न 'आपका' यश करते हैं । साथ ही अडसठ तीर्थ भी आपका गुणगान करते हैं।

गावनि तुधनो जोध महाबल सूरा
गावन तुधनो खाणी चारे ॥
गावनि तुधनो खंड मण्डल ब्रहमंडा
करि करि रखे तेरे धारे ॥

और फिर बडे-बडे योद्धागण, महाबली और शूरवीर आपकी स्तुति मे गा रहे हैं। जीवों की उत्पत्ति की चारो ही खानियाँ, हे राजन! आपकी ही स्तुति मे आप का यश गा रही हैं और सब खण्ड-मण्डल तथा ब्रह्माण्डादिक जो आपने उपाये है और अपनी शक्ति से धारण कर रखे हैं वे भी 'आपकी' स्तुति में गा रहे हैं।

सेइ तुधनो गावनि जो तुधु भावनि
रते तेरे भगत रसाले ॥
होरि केते तुधनो गावनि से मै चिति
न आवनि नानकु किआ वीचारे ॥

वस्तुत हे प्रभु! वही पूर्णत: और भली भाति आपको गाते हैं जो आपको भाते (प्रिय) हैं, वे हैं भक्त जो आपके महारस प्रेम मे अनुरक्त हैं। उन भक्तो पर आपकी पूर्ण कृपा है। उन भक्तो के अतिरिक्त और कितने ही हैं जो आपका यशोगान करते हैं, जो मेरे चित्त मे भी नही आते (गणना मे ही नही, क्योकि वे भक्ति-पद से नीचे है) (बाबा) नानक ऐसो का क्या विचार करे।

सोई सोई सदा सचु साहिबु
साचा साची नाई ॥
है भी होसी जाइ न जासी
रचना जिनि रचाई ॥

केवल 'वही', केवल 'वही' मालिक सदैव सच्चा है और 'वह' सच्चा (मालिक) सच्चे नाम वाला है। जिस कर्त्तार ने सृष्टि की रचना रची है 'वह' अब भी है और सदैव रहेगा, न स्वय जाएगा और न कोई 'उसे' निकाल सकेगा।

रंगी रंगी भाती करि करि
जिनसी माइआ जिनि उपाई ॥
करि करि वेखै कीता आपणा
जिउ तिसदी वडिआई ॥

जिस परमेश्वर ने भिन्न-भिन्न रंगों, जातियों तथा भाँति-भाँति की माया का वस्तुएँ उत्पन्न की हैं 'वह' अपनी की हुई रचना रचकर देख रहा है, सम्भाल रहा है। रचना की देखभाल उतनी कर रहा है जितनी 'उसकी' महानता है।

जो तिसु भावै सोई करसी
फिरि हुकमु न करणा जाई ॥
सो पातिसाहु साहा पाति साहिबु
नानक रहणु रजाई ॥१॥

जो कुछ 'उसे' अच्छा लगता है 'वह' उसी को करता है। 'उसको' हुकम देने वाला कोई नही। 'वही' बादशाह है—बादशाहों की पत का भी मालिक है। हे नानक ! 'उसकी' रजा में राजी रहना चाहिए ॥१॥

आसा महला ॥१॥

सुणि वडा आखै सभु कोइ ॥
केवडु वडा डीठा होइ ॥
कीमति पाइ न कहिआ जाइ ॥
कहणै वाले तेरे रहे समाइ ॥१॥

हे परमात्मा ! सुनकर ही सभी लोग आपको बडा कहते हैं। लेकिन आप सचमुच कितने बडे हो, इसका पता देखने से ही लगता है। आपकी न कीमत पाई जा सकती है और न आपका वर्णन किया जा सकता है। परन्तु आपका यश करने वाले आप मे ही लीन हो रहे हैं अर्थात् अभेद हो रहे हैं।

वडे मेरे साहिबा
गहिर गंभीरा गुणी गहीरा ॥
कोइ न जाणै तेरा केता
केवडु चीरा ॥१॥ रहाउ ॥

हे मेरे बडे साहिबा ! हे मेरे गहरे गूढ-गम्भीर गुणों के समुद्र अगाध स्वामी ! कोई भी नही जानता कि आप कितने बड़े हो और कितनी आप की सीमा है अथवा कितना आपका विस्तार हैं ? ॥१॥ रहाउ ॥

सभि सुरती मिलि सुरति कमाई ॥
सभ कीमति मिलि कीमति पाई ॥
गिआनी धिआनी गुर गुरहाई ॥
कहणु न जाई तेरी तिलु
वडिआई ॥२॥

सब सुरत के अभ्यासियों ने मिलकर सुरत की कमाई की। सब कीमत आकने वालो ने मिलकर आपकी कीमत आंकी। ज्ञानियो ने, ध्यानियो ने, गुरुओ ने और गुरुओ के गुरु ने अथवा गुरु भाइयो द्वारा भी किन्तु आपकी बड़ाई (तिल मात्र भी) नही जा सकती।

सभि सत सभि तप सभि चंगिआईआ ॥
सिधा पुरखा कीआ वडिआईआ ॥
तुधु विणु सिधी किनै न पाईआ ॥
करमि मिलै नाही ठाकि
रहाईआ ॥३॥

सभी पुण्य-दान, सभी तप और सभी प्रकार की अच्छाइयाँ और सिद्धपुरुषो द्वारा प्राप्त की गई बड़ाईयां होते हुए भी, हे प्रभु ! आप की कृपा के बिना किसी ने भी सिद्धि (पूर्णावस्था) प्राप्त नही की। वस्तुत वह 'सिद्धि' केवल आपकी कृपादृष्टि से मिलती है जो रोकी हुई रुकती नहीं, अर्थात् रास्ते में कोई भी रुकावट नही डाल सकता ॥३॥

आखण वाला किआ बेचारा ॥
सिफती भरे तेरे भंडारा ॥
जिसु तू देहि तिसै किआ चारा ॥
नानक सचु सवारणहारा ॥४॥२॥

आपकी महिमा को कहने वाला यह अल्पज्ञ जीव बेचारा क्या है जो आपकी महिमा को पूर्ण रूप से कह सके, क्योंकि आप स्तुतियो के भरे हुए भण्डार हैं। जिसको भी आप अपनी स्तुति करने की शक्ति (दान) देते हो उसके साथ किसी का क्या बल है अर्थात् उसके साथ किसी की स्पर्धा नही हो सकती। हे नानक! प्रभु आप ही सत्य स्वरूप है और संवारने वाला है ॥४॥२॥

आसा महला १॥

आखा जीवा विसरै मरि जाउ ॥
आखणि अउखा साचा नाउ ॥
साचे नाम की लागै भूख ॥
उतु भूखै खाइ चलीअहि दूख ॥१॥

(परमेश्वर का नाम) जपता हूँ तभी जीवित हूँ यदि विसर जाए तो मर जाऊँ। परन्तु सच्चा नाम जपना अति कठिन है। काश! सच्चे नाम की तीव्र भूख (हमे) लगे जो भूख सब दुखो को खा लेती है अर्थात् वियोग ही आशिको का जीवन है। इसलिए दुख उन्हे दुखी नही करता ॥१॥

सो किउ विसरै मेरी माइ ॥
साचा साहिबु साचै नाइ॥१॥रहाउ॥

हे मेरी माता! 'वह' क्यो विस्मृत हो? क्योकि 'वह' साहब सच्चा है और 'उसका' नाम भी सच्चा है। (इसलिए जपता रहता हूँ) ॥१॥ रहाउ ॥

साचे नाम की तिलु वडिआई ॥
आखि थके कीमति नही पाई ॥
जे सभि मिलि कै आखण पाहि ॥
वडा न होवै घाटि न जाइ ॥२॥

सच्चे नाम की बडाई कह-कहकर थक गए पर तिल मात्र भी कह नही सके। 'उसके' नाम की कीमत किसी ने भी नही प्राप्त की। यदि सब आपस मे मिलकर 'उसकी' कथा करने लगें तो 'उसकी' कीमत न पहले से बढ जाएगी और न घटेगी अर्थात् जो परमात्मा की बडाई है वही है। वस्तुत किसी के कथन करने पर आधारित नही। 'उसकी' कीमत अकथनीय है ॥२॥

ना ओहु मरै न होवै सोगु ॥
देदा रहै न चूकै भोगु ॥
गुणु एहो होरु नाही कोइ ॥
ना को होआ ना को होइ ॥३॥

'वह' न कभी मरता है और न कभी शोकाकुल होता है। 'वह' सदैव देता रहता है और 'उसका' खानपान आदि कभी कम नही होता। ऐसे गुण और किसी मे भी नही है। 'उसमे' यह विशेषता है कि उसके जैसा न है, न कोई हुआ है और न आगे होगा (न भूतो न भविष्यिति) ॥३॥

जेवडु आपि तेवड तेरी दाति ॥
जिनि दिनु करि कै कीती राति ॥
खसमु विसारहि ते कमजाति ॥
नानक नावै बाझु सनाति ॥४॥३॥

हे प्रभु! जितने महान (तू) आप हैं उतनी बडी तेरी देन (बख्शिश) है। आपने ही दिन करके रात की है। ऐसे मालिक को जो भुला देते हैं, वे कमजात (कमीने) हैं। हाँ, हे नानक! वे नाम के बिना नीच अथवा अपवित्र हैं ॥४॥३॥

राग गुजरी महला ४॥

हरि के जन सतिगुर सतपुरखा
बिनउ करउ गुर पासि ॥
हम कीरे किरम सतिगुर सरणाई
करि दइआ नामु परगासि ॥१॥

हे हरि के दास ! हे सत्गुरु ! हे सत्पुरुष ! आप गुरु के पास मैं विनय करता हूँ कि हम कीट के समान तुच्छ जाव दीन-हीन, आप सत्गुरु की शरण में आए हैं। दया करके नाम का प्रकाश करो ॥१॥

मेरे मीत गुरदेव
मोकउ राम नामु परगासि ॥
गुरमति नामु मेरा प्रान सखाई
हरि कीरति हमरी रहरासि
॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मित्र गुरुदेव ! मुझे राम नाम का प्रकाश करें। गुरु उपदेश द्वारा (प्राप्त) नाम मेरे प्राणों का मित्र बने अर्थात् श्वास प्रश्वास मैं आपका नाम जपता रहूँ और हरि की कीर्ति मेरी सच्ची रहणी अथवा प्रार्थना और आत्मा का आनन्द बने ॥१॥ रहाउ॥

हरि जन के वड भाग वडेरे
जिन हरिहरिसरधा हरिपिआस ॥
हरि हरि नामु मिलै त्रिपतासहि
मिलि संगति गुण परगासि ॥२॥

हरि के दासो के बड से बड़े श्रेष्ठ भाग्य हैं जिनको हरि, नाम की श्रद्धा तथा हरि की प्यास है। उनको ही हरि, हरि का नाम मिलता है, तभी वे तृप्त होते हैं और नाम के गुणों का प्रकाश सत्सग के मिलने पर प्राप्त होता है ॥२॥

जिन हरि हरि हरि रसु
नामु न पाइआ
ते भागहीण जम पासि ॥
जो सतिगुर सरणिसंगति नहीं आए
ध्रिगु जीवे ध्रिगु जीवासि ॥३॥

जिन्होने हरि हरि हरि-नाम का रस नही प्राप्त किया है, वे भाग्यहीन हैं और यम की फासी मे फसेंगे या यम के पास जाते हैं। जो सत्गुरु की शरण और सत्सगति मे नही आए उनका जीना धिक्कार है और उनकी जीने की इच्छा भी धिक्कार है ॥३॥

जिन हरिजन सतिगुर संगति पाई
तिन धुरि मसतकि लिखिआ
लिखासि ॥
धनु धंनु सत संगति
जितु हरि रसु पाइआ ॥
मिलि जन नानक नामु- परगासि
॥४॥४॥

जिन हरि के दासों ने सत्गुरु की सगति प्राप्त की है उनके मस्तक पर (मानों) पूर्व-लिखित लेख विधाता ने लिख दिया है। धन्य है, धन्य है वह सत्संगति जहाँ हरि-रस प्राप्त होता है। इस प्रकार, हे नानक ! हरि के दासों को मिलकर नाम का प्रकाश होता है ॥४॥४॥

रागु गूजरी महला ५॥

काहे रे मन चितवहि उदमु
जा आहरि हरि जीउ परिआ ॥
सैल पथर महि जंत उपाए
ता का रिजकु आगै करि
धरिआ ॥१॥

हे मन ! आहार के लिए तुम यत्न (प्रबन्ध) की चिन्ता क्यों करते हो जबकि हरि जी सबको आहार पहुँचाने के लिए पड़े (लगे) हुए हैं चितित हैं'। (देखो) चट्टानों में और पत्थरों में, जो जीव-जन्तु उत्पन्न किए है उनका आहार भी 'उसने' बनाकर पहले ही धरा हुआ है ॥१॥

मेरे माधउ जी
सतसंगति मिले सु तरिआ ॥
गुर परसादि परमपदु पाइआ
सूके कासट हरिआ ॥१॥रहाउ ॥

हे मेरे मायापति नारायण-माधव जी ! सत्संगति को जो प्राप्त हुए, वे ही तर गए। गुरु की कृपा द्वारा ही उन्होंने परम-पद-मोक्ष प्राप्त किया है। मानो सूखे काष्ठ (लकड) भी हरे-भरे हो गए। (भाव कठोर हृदय वाले भी महा पुरुषो की संगति से प्रफुलित हो गए) ॥१॥ रहाउ ॥

जननि पिता लोक सुत बनिता
कोई न किस की धरिआ ॥
सिरि सिरि रिजकु संबाहे ठाकुरु
काहे मन भउ करिआ ॥२॥

इस ससार मे माता, पिता, लोक, पुत्र, स्त्री आदि कोई भी किसी का आश्रय नही हैं। मेरा ठाकुर प्रत्येक जीव को आहार पहुचाता है। हे मन ! फिर तू क्यो भय करता है अर्थात् आहार की चिन्ता छोडकर तू हरि-नाम की सेवा कर क्योकि जो तेरे प्रारब्ध मे लिखा है वह अवश्य तुझे मिलेगा ॥२॥

ऊडे ऊडि आवै सै कोसा
तिसु पाछै बचरे छरिआ ॥
तिन कवणु खलावै कवणु चुगावै
मन महि सिमरनु करिआ ॥३॥

सैकडो कोस कून्ज-पक्षियो का झुण्ड उड़कर आता है जिन्होने पीछे छोटे-छोटे बच्चे छोडे हुए होते हैं अथवा बच्चे अकेले हैं। (अब बताओ) उन बच्चो को कौन खिलाता है ? कौन चुगाता है ? (उत्तर) वे मन मे स्मरण करती हैं ॥३॥

सभि निधान दसअसट सिधान
ठाकुर कर तल धरिआ ॥
जन नानक बलि बलि सद बलि
जाईऐ
तेरा अंतु न पारावरिआ ॥४॥५॥

सब निधियाँ और अठारह सिद्धियाँ ठाकुर ने अपने हथेली पर रक्खी हुई हैं अर्थात् अपने श्रद्धालुओ को देने मे विलम्ब नही करते। दास नानक कहते है कि अभिलाषा है कि मैं बलिहार, बलिहार, सदा बलिहार जाऊँ (हे ठाकुर !) आपका न अंत है और न पारावार है ॥४॥५॥

रागु आसा महला ४ सो पुरखु ॥
१ओंसतिगुर प्रसादि ॥

सो पुरखु निरंजनु हरि पुरखु
निरंजनु हरि अगमाअगम अपारा ॥
सभि धिआवहि सभि धिआवहि
तुधु जी हरि सचे सिरजणहारा ॥

'वह' कर्त्ता पुरुष परमात्मा माया से रहित है। 'वह' हरि निरंजन (अकाल) पुरुष है। 'वह' हरि मन-वाणी से परे है। 'वह' अगम्य है। 'उसका' पार नही पाया जा सकता। हे जगत सृष्टा सच्चे हरि! सभी तुम्हारा ध्यान करते हैं, हां सभी तुम्हारी उपासना करते हैं॥

सभि जीअ तुमारे जी
तूं जीआ का दातारा ॥
हरि धिआवहु संतहु जी
सभि दूख विसारणहारा ॥
हरि आपे ठाकुरु हरि आपे सेवकु जी
किआ नानक जंत विचारा ॥१॥

सभी जीव तुम्हारे (अपने) हैं और तू सभी जीवों को देने वाला (पालन-पोषण करने वाला) है। हे सन्त जनों जी! हरि का ध्यान करो क्योंकि 'वह' सब दुखो को दूर करने वाला है। (वास्तव मे) हरि आप ही ठाकुर है। हरि आप ही सेवक है। हे नानक! बेचारे जीव 'उसके' समक्ष क्या हैं अर्थात् तुच्छ हैं॥१॥

तूं घटघट अंतरि सरब निरंतरि जी
हरि एको पुरखु समाणा ॥
इकि दाते इकि भिखारी जी
सभि तेरे चोज विडाणा ॥

हे हरि! तू सभी जीवो के घट-घट मे समाया हुआ है और सब के अन्दर निरन्तर एक रस परिपूर्ण है। और तू ही एक (आदि) पुरुष है। ससार में कोई दातार है और कोई भिखारी है। यह सब तुम्हारे आश्चर्यजनक कौतुक हैं।

तूं आपे दाता आपे भुगता जी
हउ तुधु बिनु अवरु न जाणा ॥
तूं पारब्रहमु बेअंतु बेअंतु जी
तेरे किआ गुण आखि वखाणा ॥
जो सेवहि जो सेवहि तुधु जी
जनु नानकु तिन कुरबाणा ॥२॥

तू आप ही दातार है और आप ही भोक्ता है। (महाराज) जी! मैं तुम्हारे बिना किसी और को नही जानता। तू पारब्रह्म है, बेअन्त है, और अनन्त है जी! किन-किन तुम्हारे गुणो को कहकर वर्णन करूँ। जो आपकी सेवा करते हैं, जो आपके नाम की सेवा करते हैं, हे (महाराज) जी! दास नानक उन पर कुर्बान (बलिहारी) जाता है॥२॥

हरि धिआवहि हरि धिआवहि तुधु जी
से जन जुग महि सुखवासी ॥
से मुकतु से मुकतु भए
जिन हरि धिआइआ जी
तिन तूटी जम की फासी ॥

हे हरि जी! जो 'आपका' ध्यान और पूजन करते हैं, वे दास कलि युग मे सुख पूर्वक निवास करते हैं। वे मुक्त हैं, वे मुक्त हो गए जिन्होंने हरि का ध्यान किया है और केवल उनकी यम की फासी टूटी है।

जिन निरभउ जिन हरि
निरभउ धिआइआ जी
तिन का भउ सभु गवासी ॥

जिन्होंने हरि निर्भय का निर्भयता से ध्यान किया है, उनके सारे भय हरि आप दूर कर देता है अर्थात् वे भयरहित हो जाते हैं।

जिनि सेविआ जिनि सेविआ
मेरा हरि जी
ते हरि हरि रूपि समासी ॥
से धंनु से धंनु
जिन हरि धिआइआ जी
जनु नानक तिन बलि जासी ॥३॥

जिन्होंने (हरि नाम) सेवा की है, जिन्होंने मेरे हरि परमात्मा की सेवा की है, वे हरि के रूप हो जाते हैं अर्थात् परमात्मा मे लीन हो जाते है। वे धन्य हैं, (हाँ) धन्य हैं जिन्होंने हरि जी का ध्यान किया है। दास नानक उन (सेवकों) पर बलिहारी है ॥३॥

तेरी भगति तेरी भगति भंडार जी
भरे बिअंत बेअंता ॥
तेरेभगत तेरेभगत सलाहनि तुधुजी
हरि अनिक अनेक अनंता ॥
तेरी अनिक तेरी अनिक
करहि हरि पूजा जी
तपु तापहि जपहि बेअंता ॥

हे अनंत हरि ! तेरी भक्ति के अखुट भंडार भरे हुए हैं। हे अनन्त हरि ! तेरे भक्त, (हाँ) तेरे अनेक भक्त अनेक विधियो से तेरी स्तुति करते हैं। हे अनन्त हरि जी ! अनेक पुजारी अनेक विधियो से तेरी पूजा करते हैं और बेअत तपी तपस्या करते हैं और नाम का जाप भी करते हैं।

तेरे अनेक तेरे अनेक
पड़हि बहु सिम्रति सासत जी
करि किरिआ खटु करम करंता ॥
सेभगत सेभगत भले जन नानक जी
जो भावहि मेरे हरि भगवंता ॥४॥

तेरे अनेक (पढने वाले) बहुत बार स्मृतियो और शास्त्रो को पढ़ते हैं और अनेक प्रकार की क्रियाए तथा छ कर्मों को करते हैं। दास नानक कहते हैं (किन्तु) वे हा भक्त श्रेष्ठ हैं जो मेरे हरि भगवन को अच्छे लगते हैं ॥४॥

तूं आदि पुरखु अपरंपरु करता जी
तुधु जेवडु अवरु न कोई ॥
तूं जुगुजुगु एको सदासदा तूं एको जी
तूं निहचलु करता सोई ॥

(अरे प्रभु जी !) तू आदि पुरुष है। परे से परे है। तू हा कर्तार है और तेरे समान और कोई नही है। तू युग युगान्तरो से एक है। तू सदा सदा से एक ही है जी। तू अपरिवर्तनशील है। तू रचनहार है (किन्तु सदा) वही का वही है (अचल है) अर्थात् कभी नहीं बदलता (शेष संसार परिवर्तनशील है)।

तुधु आपे भावै सोई वरतै जी
तूं आपे करहि सु होई ॥
तुधु आपे सिसटिसभ उपाई जी
तधु आपे सिरजि सभ गोई ॥

अरे (प्रभु जा) ! जो तुम्हारे को भाता है वही होता है। जो तू आप करता है वही होता है। तुमने सारी सृष्टि उपाई है जी तू आप ही (यह रचना)रचकर सारी रचना को फिर अपने आप में लीन कर देता है। दास नानक 'उस' कर्त्ता के गुण गाता है,

जनु नानकु गुण गावै करते के जी
जो सभसै का जाणोई ॥५॥१॥

जो सब को जानने वाला (ज्ञाता) है। (ध्यान रखने वाला है) ॥५॥१॥

आसा महला ४॥

तूं करता सचिआरु मैडा सांई ॥
जो तउ भावै सोई थीसी
जोतूं देहि सोईहउ पाई ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे स्वामी ! तू हमारा सच्चा कर्त्ता है। जो तुमको भावेगा वही होगा और जो तूँ देगा वही हमें प्राप्त होगा ॥२॥ रहाउ॥

सभ तेरी तूं सभनी धिआइआ ॥
जिसनो क्रिपा करहि
तिनि नाम रतनु पाइआ ॥
गुरमुखि लाधा मनमुखि गवाइआ
तुधु आपि विछोड़िआ
आपि मिलाइआ ॥१॥

हे भगवन् ! सृष्टि सब तेरी है और सभी तेरा ही ध्यान करते हैं। जिन पर (तू) स्वय कृपा करता है, उसी ने नाम रूपी अमूल्य रत्न पाया है। गुरमुखो ने (नाम-रत्न) को ढूंढ लिया है और मनमुखो ने (नाम-रत्न को) गंवा दिया है। आपने मनमुखों को (गुरु से विमुख करके) वियोग दे दिया है और गुरुमुखो को (गुरु से सन्मुख रखकर) मिला दिया है ॥१॥

तूं दरीआउ सभ तुझ ही माहि ॥
तुझ बिनु दूजा कोई नाहि ॥
जीअ जंत सभि तेरा खेलु ॥
विजोगि मिलि विछुड़िआ
संजोगी मेलु ॥२॥

तू (गहरे) समुद्र के समान है जिसमें सब(जीव-जन्तु) समाये हुए हैं : तुम्हारे बिना दूसरा कोई नही है। जीव-जन्तु सभी तुम्हारा खेल (कौतुक) है। इनमे से कई जीव वियोग के मार्ग पर चलकर 'उससे' बिछुड गये हैं और कई संयोग के मार्ग पर चलकर फिर आकर उससे' मिलते हैं ॥२॥

जिसनो तू जाणाइहि सोई जनु जाणै
हरि गुण सद ही आखि वखाणै ॥
जिनि हरि सेविआ तिन सुखु पाइआ
सहजे ही हरिनामि समाइआ ॥३॥

जिसको तू (अपना रास्ता) समझाता है वही दास तुम्हें जानता है। केवल वे ही हरि के गुणों का सदा बखान करते हैं। जिन्हो ने हरि की सेवा की है उन्हो ने ही 'आत्मिक' सुख पाया है और वे सहज ही हरि-नाम में लीन हुए हैं ॥३॥

तू आपे करता तेरा कीआ सभु होइ ॥
तुधु बिनु दूजा अवरु न कोइ ॥
तू करि करि वेखहि जाणहि सोइ ॥
जन नानक गुरमुखि परगटु होइ
॥४॥४॥

तू आप ही कर्त्ता है और तुम्हारे करने से ही सब कुछ (सभव) होता है। तुम्हारे बिना और कोई (कर्त्ता) नहीं है। तू आप सृष्टि की रचना रचकर देखभाल करता है और सृष्टा होने के कारण सृष्टि के रहस्यों को (भी) जानता है। दास नानक कहते हैं कि गुरु के द्वारा ही (ये रहस्य) प्रकट होते हैं अथवा तू गुरू के द्वारा दासो (के जीवन में) प्रत्यक्ष हो जाता है ॥४॥२॥

आसा महला १॥
तितु सरवरड़ै भईले निवासा
पाणी पावकु तिनहि कीआ ॥
पंकजु मोह पगु नही चालै
हम देखा तह डूबीअले ॥१॥

(हे मन !) उस संसार रूपी सरोवर में तेरा निवास हुआ है जिसमे 'उसने' पदार्थ रूपी पानी और (तृष्णा रूपी) अग्नि रखी है। ससार में मोह का कीचड़ है जिस पर चला नही जा सकता है। उस दलदल में अनेको को डूबते हुए हमने देखा है ॥१॥

मन एकु न चेतसि मूड़ मना ॥
हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ
॥१॥रहाउ॥

हे (मेरे) मन ! हे (मेरे) मूढ मन ! (जीवों को डूबते हुए देखकर भी) तू एक परमेश्वर का स्मरण क्यों नही करता ? (याद रखना) हरि को भूलने से सभी श्रेष्ठ गुण नष्ट हो जाएंगे अथवा तेरे गले में (यमकाल की) रस्सी (फाँसी) पडेगी ॥१॥रहाउ॥

ना हउ जती सती नही पड़िआ
मूरख मुगधा जनमु भइआ ॥

(हे मेरे स्वामी !) न मैं यति-इन्द्रियों को वश मे रखने वाला हू, न सत्यवादी हू और न (ही) पढ़ा हुआ विद्वान हूँ। (हाँ। मैं मूर्ख का जीवन अज्ञानता से भरा हुआ है अथवा मैं मूर्ख का जन्म व्यर्थ ही गया है।

प्रणवति नानक तिनकी सरणा
जिन तू नाही वीसरिआ ॥२॥३॥

विनय करते हैं (बाबा) नानक कि (मैं) उनकी शरण मे हू जिन्हों को आप कदापि विस्मृत नही होते अर्थात् जो सदैव आपका नाम स्मरण करते रहते हैं ॥२॥३॥

आसा महला ५ ॥
भई परापति मानुख देहुरीआ ॥
गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ॥
अवरि काज तेरै कितै न काम ॥
मिलु साध संगति
भजु केवल नाम ॥१॥

(हे मन !) यह मनुष्य देही जो तुम्हे प्राप्त हुई है यह गोविंद को मिलने का शुभ अवसर है। शेष सभी कर्म तेरे किसी काम के नही। केवल साधु-संगति में मिलकर नाम का भजन करना चाहिए ॥१॥

सरंजामि लागु भवजल तरन कै ॥
जनमु ब्रिथा जात रंगि माइआ कै
॥१॥रहाउ॥

संसार-सागर से पार उतरने के प्रबंध में (प्रयास) में लग जाओ क्योंकि माया के (प्रेम) रंग में तेरा (अमूल्य) जन्म व्यर्थ जा रहा है ॥१॥रहाउ॥

जपु तपु संजमु धरमु न कमाइआ ॥
सेवासाध न जानिआ हरिराइआ ॥
कहु नानक हम नीच करंमा ॥
सरणि परे की राखहु सरमा
॥२॥४॥

हे हरि राजा ! मनुष्य देही प्राप्त करके भी (मैंने) न तो जप तप संयम अथवा धर्म का कोई कार्य किया है और न ही साधु जनों की सेवा करके आप हरि राजा को पहचानने का प्रयास किया है। गुरु नानक कहते हैं कि हम नीच कर्मों वाले हैं। हे हरि जी ! शरण में आए हुए शरणागत की लज्जा रखो ॥२॥४॥

समाप्तम् □

कीर्तन सोहिला मेरे विचार में

सोदरु-रहरासि के पश्चात् ५ फुटकल शब्दो का संग्रह 'सोहिला' के शीर्षक से अंकित है जो सामान्यत कीर्तन सोहिले के नाम से प्रसिद्ध है। यह सांकेतिक वाणी भी नित्यनेम का हिस्सा है जिसका पाठ प्राय' सभी सिक्ख और श्रद्धालु गण शयनकाल के समय करते हैं। आदि ग्रंथ के सुखासन के समय रात्रि के सत्संग में और प्राणी के अग्नि संस्कार (शवदाह) के पश्चात् भी इस वाणी का पाठ किया जाता है। गौडी राग में इसको पूर्वी दीपिकी' करके लिखा है। इसके पहले तीन शब्द पहली पातशाही, गुरु नानक साहब के उच्चारण किए हुए हैं जो तीन भिन्न-भिन्न रागों में अंकित हैं—

१-'गौड़ी', २-'आसा' व ३-'धनासरी' और आगे जाकर 'रागो की वाणी' मे भी ये अपनी-अपनी जगह पर पुन सुशोभित होते हैं। 'सोहिला' शब्द इसके पहले शब्द में तीन बार दोहराया गया है—(१) तितु घरि गावहु 'सोहिला'—(२) तुम गावहु मेरे निरभउ का 'सोहिला' (३) हउ वारा जितु 'सोहिले'—। जैसे सुखमनी के नामकरण का आधार है—'सुखमनी सुख अमृत प्रभु नाम'। यह गुरु वचन है। वैसे हा इस वाणी के नामकरण का आधार है 'सोहिला'।

'सोहिला' शब्द आनदप्रद मगलमय गीत का वाचक है। 'सोहिला' विवाह से कुछ दिन पूर्व कुमारी के घर मे गाया जाता हैं। घर के सम्बन्धी, निकटवर्ती सज्जन और सखी-सहेलियां आदि आकर 'सोहिला' गाकर कुमारी को आर्शीवाद देते हैं कि वह अपने पति से मिलकर सुख प्राप्त करे। किन्तु यह वाणा तो आध्यात्मिक स्तुति के गीत हैं, (हाँ) पति-परमेश्वर से मिलन के उद्‌गार हैं। मेरे गुरुदेव ने इसमें गुप्त गहन गूढ़ रहस्यों को समझाने के लिए अति सुन्दर रूपक बांधे हैं।

प्रथम शब्द में गुरुदेव स्मरण कराते हैं कि जैसे लडकी के विवाह का लग्न किसी वर्ष और किसी महीने की तिथि में निश्चित होता है और उसमे सम्मिलित होने के लिए सम्बन्धियों तथा निकटवर्ती सज्जन-मित्रो को निमंत्रण-पत्र भेजे जाते हैं। घर के प्रमुख सदस्यो द्वारा मगलार्थ तेल चढाया जाता है और मगलमय गीत गाये जाते हैं। वैसे ही जीव-रूपी स्त्री को किसा न किसी वर्ष, किसी महीने व तिथि और किसी दिन संसार से अवश्य कूच करना है। कभी कोई मर गया कभी कोई। प्रतिदिन की यह सूचनाएं हम सुनते हा रहते हैं जो विवाह में सम्मिलित होने के मानो सदेश-पत्र हैं। इसलिए मरने से पहले पति-परमेश्वर के नाम का चिन्तन करना चाहिए और मृत्यु को सर्वदा याद रखना चाहिए। याद रहे, कि जो प्राणी नाम-स्मरण करते हैं उनके लिए मृत्यु विवाह है, उत्साह है और अन्तत मिलन है। क्योंकि परमात्मा स्वय ऐसे भक्त प्रेमियों से विवाह करने के लिए आते हैं और अपने साथ अपने निज महल में उन्हें ले जाते हैं। इसलिए सभी निकटवर्ती सम्बन्धियों आदि सज्जनो से नित्यप्रति आर्शीवाद लेना चाहिए ताकि मरने के पश्चात पति-परमेश्वर के साथ मिलन सभव हो और न यम के दूतों के वशीभूत हो ॥१॥

दूसरे शब्द में सूर्य को अनेक ऋतुओं, महीनों और दिन रातो का मूल कारण मानकर अनेकता में एकता के सिद्धान्त का हृदयग्राही निरूपण करके, मेरे गुरुदेव समझाते हैं कि हरिनाम की महिमा और श्रेष्ठता के बिना अन्य कोई भी सिद्धान्त (मत) स्वीकृति नहीं। जिस मत में हरि प्रभु की कीर्ति है वही

सिद्धान्त (मत) अमर रहेगा ॥२॥

तीसरे शब्द में 'ब्रह्मांडा आरती' का एक भव्य-चित्र बाबा नानक ने जगन्नाथ पुरी के मन्दिर में पंडितों के पूछने पर उत्तर रूप में अंकित किया है जिसमे सारी कुदरत को परमात्मा की आरती करते हुए बताया है। वस्तुत भक्ति मे अनुरक्त भक्तगण ही परमात्मा के समक्ष स्वय आरती रूप हैं। उनसे उत्तम कोई नहीं और भक्त वे हैं जिन्हें परमात्मा के चरण-कमलो से अति प्यार और स्नेह है। इन गभीर भावों को समझाने के लिए मेरे गुरुदेव ने रूपक अलकार द्वारा अति स्पष्ट और सरल कर दिया है ॥३॥

चौथे शब्द में चौथी पातशाही, गुरु रामदास साहब कहते हैं कि हे मित्रवर ! सुख केवल परमात्मा के नाम मे है। नाम जपने से ही सुख की प्राप्ति होगा। जब तक जीव मे अहकार, विषय-विकार, तृष्णा, मायिक पदार्थों आदि से आसक्ति है तब तक हरि प्रभु का नाम कदाचित प्राप्त नही हो सकता। अपने गुरु (साधु) के आगे नतमस्तक होने पर, (हाँ) पूर्ण समर्पण करने पर ही नाम की प्राप्ति होती है ॥४॥

अतिम व पाचवें शब्द मे पाचवी पातशाही, गुरु अर्जुन देव स्वय (हम) शिष्यो को विनय करते हैं कि मेरे मित्रवर ! जिस नाम की प्राप्ति के लिए इस ससार मे मनुष्य देही धारण करके आए हो उसे सफल करने के लिये नाम का पदार्थ गुरु (सत) से ही खरीदना है। मेरे गुरुदेव यह भी स्मरण कराते हैं कि रात-दिन मनुष्य की आयु कम हो रही है और ससार के विकार रूपी धधो को सभालते-संभालते एक दिन ये अमूल्य श्वास भी समाप्त हो जायेगें। इसलिए कूच करने से पहले अपने गुरु (सत) की सेवा द्वारा नाम प्राप्त कर ले।

यह है 'कीर्तन सोहिले' का कुछ शब्दो मे विचार। हाथ जोडकर विनय की जाता है कि हे प्रभु के प्यारे जीव ! यदि प्रभु के लिए प्यार चाहिए तो 'कीर्तन सोहिले' का पाठ प्रति-दिन करो किन्तु न समझने के बिना। एक-एक शब्द का अर्थ समझकर, एक-एक वाक्य पद का भावार्थ विचार कर, प्रेम, श्रद्धा व भावना से बैठकर अपने गुरु को सन्मुख मानकर इस माकेतिक वाणी पर गहरा अध्ययन करो। फिर देखना हृदय मे कैसी अलौकिक लहरें उत्पन्न होती हैं और यदि परमेश्वर की कृपा से इस वाणी की जीवन में कमाई होगी तो जन्म-जन्मान्तरो के पापो को काटकर पुन अपने प्रियतम से मिलन होगा ॥५॥

इस वाणी को पढने की ऐतिहासिक घटना इस प्रकार महापुरुष सुनाते थे। एक समय कर्तारपुर मे मेरे गुरुदेव, गुरु नानक साहब दोपहर को विश्राम कर रहे थे। चरणो की सेवा करते हुए गुरु अगद देव ने देखा कि बाबा जी के चरणो से रक्त निकल रहा है। कारण पूछने पर मेरे गुरुदेव ने बताया कि एक श्रद्धालु-प्रेमी जगल मे बकरियो को चरा रहा था और उनके पाछे-पीछे कटीली झाडियो मे घूमता हुआ वह 'सोहिले' का पाठ कर रहा था। सरल हृदय प्रेमी के याद करने पर मैं उसके पीछे-पीछे घूमता रहा। नग्न पाव होने के कारण काटे लग गए। रक्त निकलने का यही कारण है। इसलिय गुरु के प्यारो को शयन-काल से पहले श्रद्धा-भावना और सरलता से 'सोहिले' का पाठ करना चाहिए। गुरु नानक साहिब के समय पहले तीन ही शब्दो का पाठ होता था।

गुरु अर्जुन देव के समक्ष एक व्यापारी श्रद्धालु ने आकर प्रार्थना की गुरुदेव हमे व्यापार के लिए इधर-उधर कठिन स्थानो में जाना पडता है। विघ्न बाधाओ से रक्षा के लिए कृपया किसी मंत्र का पाठ बताए। शिष्य की प्रार्थना सुनकर मेरे गुरुदेव ने दो और शब्दों को मिलाकर पांच फुटकल शब्दों का सग्रह 'सोहिला' के नाम से रात्रि शयनकाल में पढ़ने का आज्ञा की।

सोवन समै बखानियो, कठ सोहिला जोइ ॥
अधिक खुशी बहुतो करी द्वैत रिदै ते खोइ ॥४६॥

(नानक प्रकाश, उतरार्ध अध्याय ४२)

सोहिला रागु गउड़ी दीपकी महला १॥

जै घरि कीरति आखीऐ
करते का होइ बीचारो ॥
तितु घरि गावहु सोहिला
सिवरिहु सिरजणहारो ॥१॥

जिस (सत्सग रूपी) घर मे परमेश्वर की कीर्ति होती है और कर्त्ता (के गुणो) पर विचार होता है, उसी (सत्सग रूपी) घर मे (रहकर) परमेश्वर के गुणानुवाद के मगलमय गीत को गाओ और सृष्टि के रचयिता (परमात्मा) का स्मरण करो ॥१॥

तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला ॥
हउ वारी जितु सोहिलै सदा सुखु
होइ ॥१॥रहाउ॥

तुम मेरे निर्भय (परमेश्वर) का मगलमय गीत गाओ। मैं उस सोहिले पर बलिहारी हूँ जिसको गाने से सदा सुख की प्राप्ति होती है ॥१॥रहाउ॥

नित नित जीअड़े समालीअनि
देखैगा देवणहारु ॥
तेरे दानै कीमति ना पवै
तिसु दाते कवणु सुमारु ॥२॥

(देखो उस कर्त्ता के द्वारा) प्रतिदिन जीव सम्भाले जाते हैं। 'वह' देने वाला दातार है। तुम्हारी भी देखभाल करेगा। (हे कर्त्ता!) जब तेरे दान की कीमत नही आकी जा सकती तब तुझ (दान के) दाता का कौन अन्त पा सकता है! ॥२॥

संबति साहा लिखिआ
मिलि करि पावहु तेलु ॥
देहु सजण असीसड़ीआ
जिउ होवै साहिब सिउ मेलु ॥३॥

मृत्यु के साथ हमारे विवाह का सवत् और लग्न लिखा हुआ है अर्थात् (मृत्यु) पूर्व निश्चित है। हे सज्जनों! सारे मिलकर वैराग्य व प्रेमरूपी तेल गिराए और (शुभ) आशीर्वाद दे कि मेरा अपने पति-परमेश्वर के साथ मिलन हो (वधू के अपने नए घर में प्रवेश करते समय तेल गिराते हैं) ॥३॥

घरि घरि एहो पाहुचा
सदड़े नित पवंनि ॥
सदणहारा सिमरीऐ
नानक से दिह आवंनि ॥४॥१॥

घर-घर में प्रतिदिन (विवाह) मृत्यु के निमन्त्रण लोगों को आते हैं। भाव हमारे आस पास जो मृत्यु होती है यह समझिये जीवों को घर-घर निमंत्रण मिल रहे हैं कि वे दिन आप के लिए भी आ रहे हैं। आईये! आमंत्रयिता (परमेश्वर) को याद करें ॥४॥१॥

रागु आसा महला १॥

छिअ घर छिअ गुर छिअ उपदेस ॥
गुरु गुरु एको वेस अनेक ॥१॥

छ: दर्शन-शास्त्र (साख्य, योग, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक और वेदान्त) हैं और छ ही इनके रचियता (कपिल, पतञ्जलि, जैमिनी व्यास, गौतम, और कणादि) हैं और छ ही इनके उपदेश हैं। परन्तु इन सब का शिरोमणि आधारभूत गुरुओ का गुरु— परब्रह्म परमेश्वर एक (ही) है । यह सारे सिद्धान्त 'उस' एक (प्रभु) के ही अनेक रूप है ॥१॥

बाबा जै घरि करते कीरति होइ ॥
सो घरु राखु वडाई तोइ
॥१॥रहाउ॥

हे भाई ! जिस घर (शास्त्र या मत) मे सृष्टि-कर्त्ता परमात्मा की कीर्ति होती हो, उस घर मे तुम अपने आप को रखो अर्थात् उसके सिद्धान्त के अध्ययन-मनन मे (ही) तुम्हारी भलाई है ॥१॥रहाउ॥

विसुए चसिआ घड़ीआ पहरा
थिती वारी माहु होआ ॥
सूरजु एको रुति अनेक
नानक करते के केते वेस ॥२॥२॥

जैसे विसुए (आँख का १५ बार फड़कना), चसे (१५ विसुए), पल (३० चसे), घड़ी (६० पल), पहर (आठ घड़ी), रात-दिन (८ पहर), तिथि (१५ दिन अमावस्या से पूर्णिमा तक), वार (७ दिन-रविवार से शनिवार तक) ऋतुए (छ ऋतुएँ) आदि बनती है, पर सूर्य एक ही है। इसी प्रकार हे नानक ! कर्त्ता के (ये सारे सिद्धातादि) अनेक रूप हैं ॥२॥२॥

रागु धनासरी महला १॥

गगन मै थालु रवि चंदु दीपक बने
तारिका मंडल जनक मोती ॥
धूप मलआनलो पवणु चवरो करे
सगल बनराइ फूलंत जोती ॥१॥

परमात्मा के पूजन के लिए गगन रूपी थाल मे सूर्य और चन्द्रमा दो दीपक धरे हुए है और तारागण मानो मोतियो के समान जड़े हुए है। मलयागिरी से आने वाली सुगन्धित पवन मानो 'उसकी' धूप है और पराग से परिपूर्ण पवन चवर कर रही है। हे ज्योति स्वरूप प्रभु ! सम्पूर्ण वनस्पति 'आपकी' आराधना के लिए (मानो) फूल है ॥१॥

कैसी आरती होइ ॥
भवखंडना तेरी आरती ॥
अनहता सबद वाजंत भेरी ॥१॥
रहाउ॥

हे जीवो के भय खडन करने वाले जगदीश्वर ! आपकी कैसी (अलौकिक) आरती हो रही है जिसमे समूची प्रकृति भाग ले रही है। आपकी यह (विलक्षण) आरती मनोहर है। (सब जीवों मे) बज रहा अनाहत शब्द (मानो मन्दिर की) भेरी (नगारे) है ॥१॥ रहाउ ॥

सहसतव नैन नन नैन हहि तोहि कउ
सहस मूरति नना एक तोही ॥

(विराट रूप मे) हजारो आपकी आँखे हैं (पर निर्गुण रूप मे) आपकी एक भी आँख नही। हजारो आपकी मूर्तियां हैं पर

सहस पद बिमल नन एक पद गंध
बिनु सहस तव गंध इव चलत
मोही ॥२॥

आपकी एक भी मूर्ति नही। हजारों आपके निर्मल चरण हैं पर आपका एक भी चरण नहीं। हजारों आपकी नासिकायें हैं पर आप नासिका के बिना हो। आपके इस विचित्र कौतुक को देख-कर मैं मोहित हुई हूँ अथवा मेरी बुद्धि मोहित हुई है ॥२॥

सभ महि जोति जोति है सोइ ॥
तिस दै चानणि
सभ महि चानणु होइ ॥
गुर साखी जोति परगटु होइ ॥
जो तिसु भावै सु आरती होइ ॥३॥

हे ज्योतिमय परमेश्वर ! सभी जीवो में आपकी ज्योति का वास है। उसी के आलोक से सभी आलौकित हैं। किन्तु मनुष्य स्वय नही जान सकता केवल गुरु की शिक्षा से ही ज्योति(प्रकाश) प्रकट होता है। 'उसकी' आरती यह है कि जो कुछ 'उसके' हुकम से हो रहा है वह जीव को अच्छा लगे। ज्योति स्वरूप की रजा मे रहना ही 'उसकी' आरती करनी है। अन भवत (ही) स्वयं 'उसकी' आरती है जो 'उसे' भाता है ॥३॥

हरि चरणकवल मकरंद लोभित मनो
अनदिनो मोहि आही पिआसा ॥
क्रिपा जलु देहि नानक सारिंग कउ
होइ जाते तेरै नाइ वासा ॥४॥३॥

हे हरि ! आपके चरण-कमल-मकरन्द के लिए मेरा मन लोभायमान हो रहा है। दिन-रात मुझे आपके (दर्शन की) प्यास लगी हुई है। (गुरु) नानक पपीहे रूपी प्यासी को अपनी कृपा रूपी स्वाति बूंद प्रदान करो जिससे आपके नाम में ही मेरा निवास हो जाए अर्थात् 'आपके' नाम का मेरे मन मे सदैव वास हो यही मेरे ऊपर कृपा करनी ॥४॥३॥

रागु गउड़ी पूरबी महला ४॥

कामि करोधि नगरु बहु भरिआ
मिलि साधू खंडल खंडा हे ॥
पूरबि लिखत लिखे गुरु पाइआ
मनि हरि लिव मंडल मंडा हे ॥१॥

(मनुष्य का यह शरीर रूपी)नगर काम, क्रोधादि (विकारो) से भरा हुआ है। साधु को मिलने पर ही इन विकारों को दूर किया जा सकता है, पर पूर्व-लिखित कर्मों के अनुसार जिन्हें गुरु-साधु प्राप्त होता है, उनका मन हरि की प्रीत मे मंडित हो जाता है ॥१॥

करि साधू अंजुली पुनु वडा हे ॥
करि डंडउत पुनु वडा हे ॥१॥
रहाउ॥

(हे भाई !) साधु(गुरु) वडा (महान) है। उसे प्रणाम करो। उसे साष्टाङ्ग, दण्डवत प्रणाम करो। वह महान है ॥१॥रहाउ॥

साकत हरि रस सादु न जानिआ
तिन अंतरि हउमै कंडा हे ॥
जिउ जिउ चलहि चुभै दुखु पावहि
जमकालु सहहि सिरि डंडा हे ॥२॥

माया मे आसक्त (साकत जीव) हरि के रस (आनन्द) के स्वाद को नही जानते क्योंकि उनके मन मे अहंकार का काटा है। जैसे अहंता ममता के कर्मो मे प्रवृत होते हैं, (अहंकार) काँटा उनको चुभता है और दुख देता है और अन्त समय मे उन्हे यमदूतो के डंडो को सिर पर झेलना पड़ता है ॥२॥

हरिजन हरि हरि नामि समाणे
दुखु जनम मरण भव खंडा हे ॥
अबिनासी पुरखु पाइआ परमेसरु
बहु सोभ खंड ब्रहमंडा हे ॥३॥

परन्तु जो हरि के दास हैं, वे हरि में (हाँ) हरि के नाम में मग्न रहते हैं। वे जन्म-मरण के दुखो से मुक्त हो जाते हैं। वे अविनाशी परिपूर्ण पुरुष (परमात्मा) को प्राप्त करते हैं और उनकी शोभा खंड-ब्रह्माण्डादि मे हो जाती है अर्थात् वे जहाँ-कहाँ सम्मानित होते हैं।।३॥

हम गरीब मसकीन प्रभ तेरे
हरि राखु राखु वड वडा हे ॥
जन नानकु नामु अधारु टेक है
हरिनामे ही सुखु मंडा हे ॥४॥४॥

हे प्रभु ! हम गरीब और बे-सहारे (जीव) हैं। पर तेरे हैं। महान से महान हे हरि ! हमे इन कामादिक विकारों से बचा लो। ससार-सागर से हमारी रक्षा करो। दास नानक को (हे हरि !) तेरे नाम का ही आधार और आश्रय है। हरि नाम से परम सुख मिलता है॥४॥४॥

रागु गउड़ी पूरबी महला ५॥

करउ बेनंती सुणहु मेरे मीता
संत टहल की बेला ॥
ईहा खाटि चलहु हरि लाहा
आगै बसनु सुहेला ॥१॥

हे मेरे मित्रो ! (ध्यान पूर्वक) सुनो। मैं विनती करता हूँ। यह मनुष्य शरीर सन्तो की सेवा करने का समय है। यदि सेवा करोगे तो यहाँ से हरि-नाम का लाभ लेकर (अर्थात् मनुष्य देही सफल करके) जाओगे और आगे परलोक मे भी तुम्हारा निवास सुखद होगा ॥१॥

अउध घटै दिनसु रैणा रे ॥
मन गुर मिलि काज सवारे
॥१॥रहाउ॥

(याद रखना) तेरी आयु दिन-रात घट (कम हो) रही है। इस लिये हे मन ! गुरु से मिलकर (अपने, मनुष्य-जीवन के कार्य (उद्देश्य) को सफल कर लो ॥१॥ रहाउ ॥

इहु संसारु बिकारु संसे महि
तरिउ ब्रहम गिआनी ॥
जिसहि जगाइ पीआवै इहु रसु
अकथ कथा तिनि जानी ॥२॥

यह संसार विकारो और संशयों से भरा हुआ है। कोई ब्रह्म-ज्ञानी (ब्रह्म को जानने वाला ही) इस ससार को पार कर सकता है। एक ब्रह्मज्ञानी ही विकारो मे सोये हुए व्यक्ति को जगा कर हरि रस पिलाता है। केवल वह ही प्रभु की अकथ कथा को जानता है ॥२॥

जा कउ आए सोई बिहाझउ
हरि गुर ते मनहि बसेरा ॥
निज घरि महलु पावहु सुख सहजे
बहुरि न होइगो फेरा ॥३॥

(हे मित्रो !) जिस (नाम पदार्थ को खरीदने के) लिए तुम इस ससार मे आये हो, वही खरीदो। गुरु के उपदेश द्वारा ही (हरि नाम) का) मन मे निवास होना है। (यदि गुरु की संगति में आओगे तो) अपने घर (अन्त:करण) मे निजानन्द स्वरूप के अलौकिक सुख को तुम सहज ही प्राप्त कर लोगे और फिर जन्म-मरण का चक्र नही होगा ॥३॥

अंतरजामी पुरख बिधाते
सरधा मन की पूरे ॥
नानक दासु इहै सुखु मागै
मो कउ करि संतन की धूरे ॥४॥५॥

हे अन्तर्यामिन ! हे परिपूर्ण (आदि) पुरुष ! हे विधाते ! मेरे मन की इच्छा को पूर्ण करो। दास नानक आपसे यही सुख मांगता है कि मुझे सन्तों के चरणों की धूलि बना दो ॥४॥५॥

सिरी रागु मेरे विचार में

दसवीं पातशाही, गुरु गोबिन्द सिंह ने गुरु की काशी-दमदमा साहब में १७६२ विक्रमी कार्तिक सुदी पूर्णमाशी को आदि-ग्रन्थ की पावन वाणी के अर्थ श्रद्धालु सिख-प्रेमियों को सुनाने प्रारम्भ किए। सर्वप्रथम 'जपुजी' 'सोदरु-रहरासि' ओर 'कीर्तन-सोहिला' सुनाकर तत्पश्चात् 'सिरी रागु' सुनाया। मेरे गुरुदेव ने संशय निवृति के लिए स्वयं समझा दिया कि 'राग माला' मे 'सिरी रागु' को पाचवा स्थान प्राप्त हुआ है और 'राग भैरव' को प्रथम स्थान। यथा—"प्रथम राग भैरउ वै करही पंच रागनी संगि उचरही" (राग माला १४२६)। परन्तु पांचवी पातशाही, गुरु अर्जन देव ने ३१ रागो में प्रथम राग 'सिरी राग' को ही भाई गुरदास से लिखवाया है। सगीत जगत मे 'सिरी रागु' एक उत्तम और संपूर्ण राग माना गया है। यह बहुत गम्भीर तथा गायक-प्रिय राग है। यह राग संध्या के समय गाए जाने वाले रागों से स्वतन्त्र है। यह इतना कठिन है कि सिरी रागु के गायन वादन से कोई विरला ही रग जमा सकता है। कठिन होने के कारण यह राग सुनने मे कम आता है किन्तु मेरे गुरुदेव, बाबा नानक साहब का तो यह मन पसन्द राग था। आज भी आदि ग्रन्थ के आरम्भ मे यही राग है। इससे गुरु साहबा के संगीत की प्रतिभा का पता लगता है क्योकि वे राग के प्रभाव को गहराई से समझते थे। जैसे दीपक राग को गाने से दीप स्वय जल जाते है; 'मलार राग' के गाने से वर्षा होने लगती है, 'भैरव राग' के गाने से कोल्हू स्वय चलने लगते हैं और तिलों से तेल निकल आता है, उसी प्रकार 'सिरी राग' के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध है कि मुर्दे भी जीवित हो उठते हैं।

तीसरी पातशाही, गुरु अमर दास ने 'सिरी राग' की विशेषता इस प्रकार लिखी है—

रागां विचि सिरी रागु है जे सचि धरे पिआरु ॥
सदा हरि सचु मनि वसै निहचल मति अपारु ॥

(सिरी राग की वार-पृष्ठ ८१)

अर्थात् 'सिरी राग' को अन्य रागो से 'सिरी' (श्रेष्ठ) कहलाने का अधिकार तभी हो सकता है यदि इस राग मे रचित वाणी को गा-सुनकर सच्चे परमात्मा के साथ प्यार करें और सत्य स्वरूप परमात्मा को चित्त में बसा लेवें।

भाई गुरदास ने भी 'सिरी राग' की उपमा गाते हुए लिखा है—

"रागन महि सिरी राग पारस परवान है" ॥ ३७६॥

प्रत्येक राग तथा गुरु की वाणी के आरम्भ में और भक्त कबीर एवं भक्त नामदेवादि भक्तों की वाणी के प्रारम्भ में मङ्गल के लिए, विघ्नो के निवारणार्थ मूलमन्त्र का उल्लेख किया है। यह मूलमन्त्र समस्त गुरुवाणी का आधार है, विघ्न-विनाशक है और मंगलकारी है। पहली पातशाही, गुरु नानक साहब को निरंकार (ब्रह्म) से गुरुमन्त्र के रूप में प्राप्त होने के कारण धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, रूप, लौकिक एवं पारलौकिक कामनाओ का पूरक होने के कारण गुरुमत में यह मन्त्रराज है।

आगे चलकर रागों के प्रारम्भ में बडा मूलमन्त्र है, लेकिन 'सिरी राग' के प्रारम्भ में छोटा मूल-मन्त्र लिखा है। सन्त महापुरुषों की धारणा है कि 'जपुजी', 'सोदरु-रहरासि' और 'कीर्तन-सोहिला' ये प्रथम तीन मुख्य वाणियाँ स्वयं मंगल रूप ही हैं। दूसरा कारण है कि 'सिरी राग' भी स्वयं मंगल-रूप है। इसलिए 'सिरी राग' के प्रारम्भ में छोटा मूलमन्त्र लिखा है।

रागु सिरीरागु महला १ घरु १॥

विशेष तालो या सुरो के ठिकाने के निमित्त गुरबाणी मे १ से १७ घर दिए गए हैं। ये घर संगीतज्ञों के गायन के संकेत हैं।

मोती त मंदर ऊसरहि
रतनी त होहि जड़ाउ ॥
कसतूरि कुंगू अगरि चंदनि
लीपि आवै चाउ ॥
मतु देखि भूला वीसरै
तेरा चिति न आवै नाउ ॥१॥

(यदि मेरे लिए) मोतियो के महल (मन्दिर) बनाए गए हो जो रत्नो से ज ` हुए हो और कस्तूरी, केशर, अगर चन्दन आदि (सुगन्धित पदार्थों) से लिपे हो, जिससे (मन मे) प्रसन्नता प्राप्त होती हो (तो भी यह सब कुछ व्यर्थ है। ऐ परमात्मा !) ऐसे (महलो को देखकर) मैं कही भुलावे या धोखे में न पड जाऊँ और तुझ (दाना) को भूल बैठू जिससे तेरा नाम मुझ से विस्मृत हो जाए और मेरे चित्त मे न आए ॥१॥

हरि बिनु जीउ जलि बलि जाउ ॥
मै आपणा गुरु पूछि देखिआ
अवरु नाही थाउ ॥१॥रहाउ॥

हरि (के प्रेम) के बिना यह जीव जल बल जाता है। मैंने अपने गुरु से यह भलीभाँति पूछ कर देख लिया है कि हरि के (स्मरण) के बिना कोई अन्य स्थान नही है (जहाँ जलन बुझ सके अर्थात् विश्राम प्राप्त हो) ॥१॥ रहाउ ॥

धरती त हीरे लाल जड़ती
पलघि लाल जड़ाउ ॥
मोहणी मुखि मणी सोहै
करे रंगि पसाउ ॥
मतु देखि भूला वीसरै
तेरा चिति न आवै नाउ ॥२॥

(यदि मेरे महलो के) फर्श (धरती) हीरों और लालो से जड़े हुए हो, (मेरे सोने के लिए) पलंग भी लाल से जडे हों और मन को मोहित करने वाली अति सुन्दर सुसज्जित स्त्री हो, जिसके मुख पर मणियाँ सुशोभित हो और वह आनन्द का प्रसार कर रही हो (अर्थात् प्रेम में नाना प्रकार के हाव-भाव करती हो) (तो भी यह सब कुछ व्यर्थ है। ऐ परमात्मा ! इन सब भोगों के होने पर भी) मैं कही भुलावे या धोखे मे न पड जाऊँ और तुझ (प्रियतम) को भूल बैठूं जिससे तेरा नाम मुझे विस्मृत हो जाय और मेरे चित्त मे न आए ॥२॥

सिधु होवा सिधि लाई
रिधि आखा आउ ॥
गुपतु परगटु होइ बैसा
लोकु राखै भाउ ॥
मतु देखि भूला वीसरै
तेरा चिति न आवै नाउ ॥३॥

(यदि मैं पूर्ण) सिद्ध (पुरुष) हो जाऊँ (योग-समाधि द्वारा) सिद्धियों के चमत्कार लोगों के सामने ला दूं—प्रत्यक्ष कर दूँ और साथ ही रिद्धियों को आज्ञा दू कि मेरे पास आओ (और वे मेरी आज्ञा को सुनकर उपस्थित हो जायें) और (चमत्कारिणी-शक्ति से) गुप्त होकर बैठ जाऊँ और प्रकट हो जाऊँ। (इस प्रकार यदि मेरी शक्ति को देखकर) लोग मेरी श्रद्धा करने लगे। (तो भी यह सब कुछ व्यर्थ है। ऐ प्रभु ! इन सब शक्तियों को पाकर) मैं कहीं भुलावे या धोखे में न पड़ जाऊं और तुझ (सर्वशक्तिमान) को भूल बैठू जिससे तेरा नाम मुझे विस्मृत हो जाय और मेरे चित्त में न आए ॥३॥

सुलतानु होवा मेलि लसकर
तखति राखा पाउ ॥
हुकमु हासलु करी बैठा
नानका सभ वाउ ॥
मतु देखि भूला वीसरै
तेरा चिति न आवै नाउ ॥४॥१॥

(यदि मैं) सुल्तान हो जाऊँ, लश्कर (सेना) एकत्र कर लू और राज्य सिंहासन पर टिका कर पैर रखू, (सभी पर) हुकम करूँ और महसूल वसूल करने बैठू। किन्तु, हे नानक ! यह सब पवन (के झोंके समान क्षण भगुर हैं)। (ऐ भगवन् ! इस राज-पाट को देखकर) मैं कहीं भुलावे या धोखे में न पड जाऊँ और आप (मालिक को भूल बैठूँ) जिससे तेरा नाम विस्मृत हो जाय और मेरे चित्त मे न आए ॥४॥१॥

सिरी रागु महला १॥

कोटि कोटी मेरी आरजा
पवणु पीअणु अपिआउ ॥
चंद सूरजु दुइ गुफै न देखा
सुपनै सउण न थाउ ॥
भी तेरी कीमति ना पवै
हउ केवडु आखा नाउ ॥१॥

(यदि) मेरी आयु करोड-करोड वर्ष हो जाय और (केवल) खाना-पीना पवन ही बना रहे। (मैं) ऐसी गुफा मे बैठू जहाँ चन्द्रमा और सूर्य (रात-दिन) भी न देख सकू और मुझे सोने को स्वप्न मे भी स्थान न मिले (अर्थात् निरन्तर जागता ही रहूँ) फिर भी तेरी कीमत (मुझ द्वारा) आकी नही जा सकती। 'तेरा' नाम कितना महान है, यह मैं नहीं कह सकता। मैं 'आपके' नाम की क्या महिमा गाऊँ ? ॥१॥

साचा निरंकारु निज थाइ ॥
सुणि सुणि आखणु आखणा
जे भावै करे तमाइ ॥१॥रहाउ॥

हे निरंकार ! तू सच्चा है और स्वयं ही अपने स्वरूप में स्थित है अर्थात् तेरा निवास 'निज थाँउ' पर है। लोग एक-दूसरे से परमात्मा के सम्बन्ध मे सुन-सुन कर कह देते हैं, पर यदि जीव 'उसे' भा जाय अथवा 'उसकी' इच्छा हो जाय तो कृपा कादा न कर देता है और मिलने की लालसा उत्पन्न कर देता है ॥१॥ रहाउ ॥

कुसा कटीआ वार वार
पीसणि पीसा पाइ ॥
अगी सेती जालीआ
भसम सेती रलि जाउ ॥
भी तेरी कीमति ना पवै
हउ केवडु आखा नाउ ॥२॥

(यदि मैं) बार-बार घास की तरह काटा जाऊँ और काट-काट कर टुकड़े-टुकड़े बना दिया जाऊँ (और फिर) चक्की में डालकर पीसा जाऊँ, आग से जला दिया जाऊँ और भस्म के साथ मिल जाऊँ, फिर भी तेरी कीमत (मुझ द्वारा) नहीं आंकी जा सकती। 'तेरा' नाम कितना महान है, यह मैं नहीं कह सकता। मैं 'आपके' नाम की क्या महिमा गाऊ ? ॥२॥

पंखी होइ कै जे भवा ।
सै असमानी जाउ ॥
नदरी किसै न आवऊ
ना किछु पीआ न खाउ ॥
भी तेरी कीमति ना पवै
हउ केवडु आखा नाउ ॥३॥

(यदि मैं) पक्षी होकर सैकडो आसमानो तक का भ्रमण कर आऊँ (उड आऊँ), किसी की दृष्टि मे न आऊँ और न कुछ खाऊँ न पिऊँ, फिर भी 'तेरी' कीमत (मुझ द्वारा) नही आकी जा सकती। 'तेरा' नाम कितना महान है यह मैं नही कह सकता। मैं 'आपके' नाम की क्या महिमा गाऊँ ? ॥३॥

नानक कागद लख मणा
पड़ि पड़ि कीचै भाउ ॥
मसू तोटि न आवई
लेखणि पउणु चलाउ ॥
भी तेरी कीमति ना पवै ।
हउ केवडु आखा नाउ ॥४॥२॥

हे नानक ! (यदि मेरे पास) लाखों मन कागज हों और उस पर लिखकर-पढकर विचार कर सिद्धान्त जानने की चेष्टा की जाए। लिखते-लिखते स्याही की कभी कमी न आए और कलम भी निरतर चलती रहे पवन (की गति से), फिर भी 'तेरी' कीमत (मुझ द्वारा) नही आकी जा सकती। 'तेरा' नाम कितना महान है यह मैं नही कह सकता। मैं 'आपके' नाम की क्या महिमा गाऊँ ? ॥४॥२॥

सिरी रागु महला१ ॥

लेखै बोलणु बोलणा
लेखै खाणा खाउ ॥
लेखै वाट चलाईआ
लेखै सुणि वेखाउ ॥
लेखै साहु लवाईअहि
पड़े कि पुछण जाउ ॥१॥

(इस बात को हर कोई जानता है कि हमारे) शब्दो का बोलना हिसाब (सीमा) के अन्दर है और भोजन का खाना भी हिसाब के अन्दर है। (जीवन-) यात्रा पर हम चले हुए हैं यह हिसाब के अन्दर है (अर्थात् मार्ग कितना भी लम्बा क्यों न हो एक न एक दिन यात्रा समाप्त होगी) और हमारा सुनना तथा देखना भी हिसाब के अन्दर ही है। (यह बात इतनी स्पष्ट है कि इसे)पूछ ने के लिए पढ़े-लिखे के पास क्या जाना है ? ॥१॥

बाबा माइआ रचना धोहु ॥
अंधै नामु विसारिआ
ना तिसु एह न ओहु ॥१॥रहाउ॥

हे बाबा (पिता)! माया की सारी रचना (खेल) धोखे (छल) वाली है। (चार दिनो के खेल के अन्दर) अन्धे (अज्ञानी) पुरुष ने (हरि) नाम को भुला दिया है। अब वह न यहाँ (लोक) और न वहाँ (परलोक) का रहता है (अर्थात् न माया मिली और न राम) ॥१॥ रहाउ ॥

जीवण मरणा जाइ कै
एथै खाजै कालि ॥
जिथै बहि समझाईऐ
तिथै कोइ न चलिओ नालि ॥
रोवणवाले जेतड़े।
सभि बंनहि पंड परालि ॥२॥

(ससार मे हमें) जन्म लेकर फिर मरना पडता है। इस काल मे (हम) यहाँ खाते पीते हैं। जिस स्थान पर (परमात्मा के समक्ष) बैठाकर (सारे जीवन मे किए गए कर्मों का लेखा-जोखा) समझाया जाता है, जिनके लिए हमने नाम को भुलाकर माया के पीछे दौड-भाग की, उनमे से वहाँ कोई भी साथ नही चलता। जितने भी रोने वाले (हमारे सम्बन्धी) हैं सभी पराल का गट्ठर ही बाँधते है (अर्थात् व्यर्थ काव-काव करते हैं। रोने-पीटने से मरने वाले को कोई लाभ नही पहुंचता, वे व्यर्थ ही रोते हैं) ॥२॥

सभु को आखै बहुतु बहुतु
घटि न आखै कोइ ॥
कीमति किनै न पाईआ
कहणि न वडा होइ ॥
साचा साहबु एकु तू
होरि जीआ केते लोअ ॥३॥

सभी कोई (बेअन्त परमात्मा के सम्बन्ध मे) बहुत-बहुत कहते हैं, कोई भी 'उसे' घटकर नही बतलाता। (कथन सब करते हैं, किन्तु) 'उसकी' कीमत कोई नही पाता, कहने से 'वह' न बड़ा होता है (न छोटा)। (माया को त्यागकर 'उसमे' लीन होना पडता है)। हे साहब! एक तू ही सच्चा है, (स्थिर) है, और जीवो के (न मालूम) कितने लोक हैं, (वे सब नाशवत हैं।) ॥३॥

नीचा अंदरि नीच जाति
नीची हू अति नीचु ॥
नानकु तिन कै संगि साथि
वडिआ सिउ किआ रीस ॥
जिथै नीच समालीअनि
तिथै नदरि तेरी बखसीस ॥४॥३॥

नीच जातियों मे जो नीच हैं और उन नीचो में भी जो नीच हैं, हे नानक! (मेरा) उन्ही से संग-साथ रहे। बड़ों (माया धारियो) मे क्या इच्छा करनी है? (क्योकि मुझे मालूम है कि) जहाँ पर नीच (विनम्र-गरीब) देखे भाले जाते हैं, वहाँ पर तेरी कृपा-दृष्टि होती है ॥४॥३॥

सिरी रागु महला १॥

लबु कुता कूड़ु चूहड़ा
ठगि खाधा मुरदारु ॥

हे मेरे कर्त्तार! मेरे कर्म यह हैं —लालच (मेरे अन्दर) कुत्ता है (जो हर समय माँगता और काम वासना के लिए भौंकता है),

कूड़ निवा घर मलु मुख सुधी
अगनि क्रोधु चंडालु ॥
रस कस आपु सलाहणा
ए करम मेरे करतार ॥१॥

झूठ (बोलने की आदत मेरे अन्दर) भगी है, (दूसरों को) ठग कर खाना मृत-पशु खाना है (जो स्वार्थ का दुर्गन्ध फैला रहा है)। पराई निंदा मानो मुँह मे निरी पराई मैल है। क्रोध की अग्नि ही चण्डाल है, मुझे और भी कई कसैले चस्के हैं, मैं अपनी ही प्रशसा करवाने में लगा रहता हूँ—ये ही मेरे कर्म हैं ॥१॥

बाबा बोलीऐ पति होइ ॥
ऊतम से दरि ऊतम कहीअहि
नीच करम बहि रोइ ॥१॥रहाउ॥

हे बाबा ! (वे वचन) बोलिए, जिससे प्रतिष्ठा प्राप्त हो। वे(पुरुष)उत्तम हैं जो परमात्मा के दरबार मे (कहे)माने जाते हैं। नीच (पापी) कर्म करने वाले दु.खी होकर बैठकर रोते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

रसु सुइना रसु रुपा
कामणि रसु परमल की वासु ॥
रसु घोड़े रसु सेजा मंदर
रसु मीठा रसु मासु ॥
एते रस सरीर के
कै घटि नाम निवासु ॥२॥

सोने और चाँदी (इकट्ठे करने) का रस है, स्त्री (कामवासना) का रस है, चन्दनादि की सुगन्धि (लगाने) का रस है, घोडो की (सवारी) का रस है, सेजो (मे सोने) का रस है (आलाशान) मकानो (मे रहने) का रस है, (इस प्रकार शरीर के इतने रस (भोग) हैं। मेरा मन, मेरी इन्द्रियाँ इन्ही भोगो मे अहर्निश रस लेती रहती हैं)। (भला बताओ), किस प्रकार शरीर मे नाम का निवास (टिकाउ) हो सकता है ? ॥२॥

जितु बोलिऐ पति पाईऐ
सो बोलिआ परवाणु ॥
फिका बोलि विगुचणा
सुणि मूरख मन अजाण ॥
जो तिसु भावहि से भले
होरि कि कहण वखाण ॥३॥

वही बोलना (उचित) है, जिससे (परमात्मा के दरबार मे) प्रतिष्ठा प्राप्त हो। हे मूर्ख अज्ञानी मन ! (सुनो) फोका बोलने से दु खी (ख्वार) होना पडता है। जो (जीव) उस (परमात्मा) को अच्छे लगते हैं, वे ही अच्छे (श्रेष्ठ) हैं। परमात्मा की स्तुति के बिना शेष बातें व्यर्थ हैं ॥३॥

तिन मति तिन पति तिन धनु पलै
जिन हिरदै रहिआ समाइ ॥
तिन का किआ सालाहणा
अवर सुआलिउ काइ ॥
नानक नदरी बाहरे ।
राचहि दानि न नाइ ॥४॥४॥

(वास्तव में) उन्ही के पास बुद्धि है, उन्ही की प्रतिष्ठा है, उन्ही के पास धन है, जिनके हृदय मे (परमात्मा) समाया हुआ है। उनकी क्या प्रशसा की जाय ? उनके बिना अन्य कोई कैसे सुन्दर हो सकते हैं ? हे नानक ! जो परमात्मा की कृपा से वंचित हैं, वे केवल भोग्य सामग्री (माया) मे लिप्त रहते हैं और 'उसके' नाम-स्मरण मे नही जुडते ॥४॥४॥

सिरी रागु महला १॥
अमलु गलोला कूड़ का
दिता देवणहारि ॥
मती मरणु विसारिआ
खुसी कीती दिन चारि ॥
सचु मिलिआ तिन सोफीआ
राखण कउ दरवारु ॥१॥

(मेरे) दातार(प्रभु) ने जीवों को मिथ्या (माया) रूपी अफीम (नशा) का गोला दिया है, जिस नशे के फलस्वरूप वे मृत्यु को भूल गए हैं और खुशियाँ मना रहे हैं जो अल्प है, चार दिन की हैं। (नशाहीन ज्ञानियों) सूफियों को सत्य की प्राप्ति होती है कि वे (सत्य के बल पर) दरबार रख सकें अर्थात् परमात्मा के सन्मुख रह सकें ॥१॥

नानक साचे कउ सचु जाणु ॥
जितु सेवीऐ सुखु पाईऐ
तेरी दरगह चलै माणु॥१॥रहाउ॥

हे नानक! सच्चे को सच्चा ही समझो। जिसकी सेवा करने से सुख की प्राप्ति होती है और दरबार में (जीव) सम्मान से जाता है (ऐ जीव! तू उसी परमात्मा की आराधना कर) ॥१॥ रहाउ॥

सचु सरा गुड़ बाहरा
जिसु विचि सचा नाउ ॥
सुणहि वखाणहि जेतड़े
हउ तिन बलिहारै जाउ ॥
ता मनु खीवा जाणीऐ
जा महली पाए थाउ ॥२॥

सत्य वह नशा है, जिसमें सुरा की मधुरता (गुड) नही पडती, बल्कि सच्चे नाम की मधुरता होता है। जो जीव इसे सुनते हैं, इसकी प्रशसा करते हैं, मैं उन पर बलिहारी हूँ। वास्तव में मन को मस्त तभी जानना चाहिए, जब उसे (परमात्मा के) महल मे स्थान प्राप्त हो जाए ॥२॥

नाउ नीरु चंगिआईआ
सतु परमलु तनि वासु ॥
ता मुखु होवै उजला
लख दाती इक दाति ॥
दूख तिसै पहि आखीअहि
सूख जिसै ही पासि ॥३॥

जब नाम रूपी जल में स्नान करें, शुभ कर्म और सात्त्विक-आचरण के चन्दन से शरीर सुगन्धित करें, तभी मुख उज्ज्वल होता है। यह देन लाखों देनो में एक है, (जो ग्रहण करने योग्य है)। दुःख में भी उसी (दाता) से निवेदन करना चाहिए जिसके पास सुख (देने की शक्ति) है ॥३॥

सो किउ मनहु विसारीऐ
जा के जीअ पराण ॥

'उसे' मन से कैसे भुलाया जाय, जिसके समस्त जीव और प्राण हैं ?

तिसु विणु सभु अपवितु है
जेता पैनणु खाणु ॥
होरि गलां सभि कूड़ीआ
तुधु भावै परवाणु ॥४॥५॥

उसके बिना जितना भी पहनना और खाना है, सब अपवित्र है। अन्य सभी बातें झूठा (व्यर्थ) हैं। सच और प्रामाणिक वही है जो (हे हरि !) आपको प्रिय है ॥४॥५॥

सिरी रागु महला १ ॥

जालि मोहु घसि मसु करि
मति कागदु करि सारु ॥
भाउ कलम करि चितु लेखारी
गुर पुछि लिखु बीचारु ॥
लिखु नामु सालाह लिखु
लिखु अंत न पारावार ॥१॥

मोह को जलाकर (उसे) घिस कर स्याही बना लो, मति को ही श्रेष्ठ कागज बना लो, प्रेम को कलम बना लो, चित्त को लेखक और फिर गुरु से पूछ कर विचार पूर्वक लिखो। नाम लिखो, उसकी स्तुति लिखो और साथ ही यह भी लिखो कि 'उसका' न तो अन्त है और न सीमा ॥१॥

बाबा एहु लेखा लिखि जाणु ॥
जिथै लेखा मंगीऐ
तिथै होइ सचा नीसाणु ॥१॥रहाउ॥

हे भाई (बाबा)! यही लेखा लिखने की विधि सीखो। (क्योंकि) जहाँ तुम्हारे कर्मों का लेखा मांगा जायेगा, वहाँ सही दस्तखत भी किया जायेगा, (कि तुम्हारा लेखा ठीक और प्रमाणिक है) ॥१॥ रहाउ ॥

जिथै मिलहि वडिआईआ
सद खुसीआ सद चाउ ॥
तिन मुखि टिके निकलहि
जिन मनि सचा नाउ ॥
करमि मिलै ता पाईऐ
नाही गली वाउ दुआउ ॥२॥

(लेखा ठीक होने पर) जहाँ (दरबार मे) बडाई होगी, सदैव खुशी (होगी) और शाश्वत आनन्द प्राप्त होगा। उन्ही के मुख पर (प्रमाणिकता) के तिलक लगाए जाएंगे, जिनके मन मे सच्चा नाम है। प्रभु-कृपा हो तभी नाम की प्राप्ति होती है, व्यर्थ की इधर-उधर की बातो से नही ॥२॥

इकि आवहि इकि जाहि उठि
रखीअहि नाव सलार ॥
इकि उपाए मंगते इकना वडे दरबार
अगै गइआ जाणीऐ
विणु नावै वेकार॥ ३॥

(संसार मे) कई आते हैं और कई 'सरदार' नाम रखवाकर उठ कर चल देते हैं। कई भिखारी (निर्धन) उत्पन्न हुए हैं और कई ऐसे उत्पन्न हुए हैं (जिनके) बड़-बडे दरबार (लगते) हैं। आगे जाने पर ही पता लगता है कि नाम के बिना (सरदारी, अमीरी और गरीबी) व्यर्थ है ॥३॥

मै तेरे डरु अगला
खपि खपि छिजै देह ॥
नाव जिना सुलतान खान
होदे डिठे खेह ॥
नानक उठी चलिआ।
सभि कूड़े तुटे नेह ॥४॥६॥

हे प्रभु ! तेरे भय से मुझे बहुत अधिक भय है। यहाँ तक कि मेरा शरीर दुखी हो कर टूट रहा है (कि मेरी क्या दशा होगी)। क्योंकि मैंने देखा है जिनके नाम 'सुल्तान' और 'खान' थे, वे भी राख (खेह होते) देखे गये है। हे नानक ! यहाँ से उठकर चलने पर सभी (सासारिक) प्रेम टूट जाते हैं ॥४॥६॥

सिरी रागु महला १॥

सभि रस मीठे मंनिऐ
सुणिऐ सालोणे ॥
खट तुरसी मुखि बोलणा
मारण नाद कीए ॥
छतीह अंमृत भाउ एकु
जा कउ नदरि करेइ ॥१॥

(नाम के) मनन से सभी मीठे रस (प्राप्त हो जाते हैं), श्रवण में नमकीन (सलोना रस मिल जाता है), मुख से उच्चारण करने में (सारे) खट्टे व तुर्श रस और कीर्तन करने से मसालेदार रसों की प्राप्ति हो जाती है। (परमात्मा में) एक भाव—अनन्य प्रेम—करने से छत्तीस प्रकार के अमृत सदृश व्यजनों का स्वाद प्राप्त हो जाता है। परन्तु यह उसी जीव को प्राप्त होता है जिस पर 'उसकी' कृपा-दृष्टि होती है अर्थात् उसे अन्य ससारिक रस की आवश्यकता नहीं रहती ॥१॥

बाबा होरु खाणा
खुसी खुआरु ॥
जितु खाधै तनु पीड़िऐ
मन महि चलहि विकार ॥१॥
रहाउ॥

हे भाई (बाबा) ! उन सभी भोजनो से प्राप्त खुशी बरबाद करने वाली है, जिनके खाने से शरीर पीडित (रोगी) होता है और मन मे विकार उत्पन्न होते हैं ॥१॥ रहाउ।

रता पैनणु मनु रता
सुपेदी सतु दानु ॥
नीली सिआही कदा करणी
पहिरणु पैर धिआनु ॥
कमर बंदु संतोखु का
धनु जोबनु तेरा नामु ॥२॥

परमात्मा के प्रेम-रंग में मन को अनुरक्त कर देना लाल पोशाक है, सत्य और पुण्य-दान करना सफेद पोशाक है और हरि के चरणो का सतत ध्यान करना बडा जामा है, सतोष ही कमर-बद है और (हे हरि !) तुम्हारा नाम ही धन और यौवन (मस्ती) है ॥२॥

बाबा होरु पैनणु खुसी खुआरु ॥
जितु पैधै तनु पीड़िऐ
मन में चलहि विकार ॥१॥
रहाउ॥

हे भाई (बाबा) ! उन सभी पोशाकों से प्राप्त खुशी बदनाम करने वाली है, जिनके पहनने से शरीर पीड़ित होता है और मन में विकार उत्पन्न होते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

घोड़े पाखर सुइने साखति
बूझणु तेरी वाट ॥
तरकस तीर कमाण सांग
तेगबंद गुण धातु ॥
वाजा नेजा पति सिउ परगटु
करमु तेरा मेरी जाति ॥३॥

परमात्मा के मार्ग का ज्ञान होना ही जीवन-यात्रा के लिए जीन कसे घोड़ो के समान है जिन पर स्वर्ण अंकित दुमचियाँ पडी हों, शुभ गुणो की ओर दौड़ना ही तरकस, तीर, धनुष, बरछी, और तलवार की म्यान है। सन्मान से प्रतिष्ठित होकर रहना ही बाजा और भाला है और तुम्हारी कृपा ही मेरी जाति है ॥३॥

बाबा होरु चड़णा
खुसी खुआरु ॥
जितु चड़िऐ तनु पीड़ीऐ
मन महि चलहि विकार ॥१॥
रहाउ॥

हे भाई (बाबा) ! उन सभी सवारियों से प्राप्त खुशी बरबाद करने वाली है जिन पर चढ़ने से शरीर पीड़ित (रोगी) होता है और मन मे विकार उत्पन्न होते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

घर मंदर खुसी नाम की
नदरि तेरी परवारु ॥
हुकमु सोई तुधु भावसी
होरु आखणु बहुतु अपारु ॥
नानक सचा पातिसाहु
पूछि न करे बीचारु ॥४॥

नाम की प्रसन्नता मेरा घर और महल है और 'उसकी' कृपा-दृष्टि ही परिवार की खुशी है। जो 'मुझे' अच्छा लगे उसमे खुश रहना ही मेरे लिए हुकम है। शेष सब कहना व्यर्थ है। वस्तुत यही कहना बनता है कि 'वह' अपार है। हे नानक ! वह सच्चा बादशाह किसी अन्य से पूछ कर विचार नहीं करता ॥४॥

बाबा होरु सउणा
खुसी खुआरु ॥

हे भाई (बाबा) ! अन्य प्रकार के सोने से प्राप्त खुशी बरबाद करने वाली है जिस सोने से शरीर पीड़ित (रोगी)

जितु सुतै तनु पीड़ीऐ
मन मैं चलहि विकार ॥१॥
रहाउ॥४॥७

होता है और मन में विकार उत्पन्न होते हैं ॥ १॥ रहाउ ॥४॥७॥

सिरी रागु महला १ ॥

कुंगू की कांइआ
रतना की ललिता
अगरि वासु तनि सासु ॥
अठसठि तीरथ का मुखि टिका
तितु घटि मति बिगासु ॥
ओतु मती सालाहणा
सचु नामु गुणतासु ॥१॥

(मनुष्य का) शरीर केसर की तरह सुगन्धित, ठण्डा और पवित्र हो, जिह्वा रत्नों की तरह मूल्यवान हो, साँस से चन्दन की सुगन्ध आती हो, माथे पर अडसठ तीर्थों (की पावनता का) तिलक हो, और उसमें बुद्धि का सुन्दर विकास हो। उस पवित्र और विकसित बुद्धि से गुणों के भण्डार—परमात्मा के नाम और 'उसके' गुणों की स्तुति होनी चाहिए ॥१॥

बाबा होरि मति होर होर ॥
जे सउ वेर कमाईऐ ।
कूड़ै कूड़ा जोरु ॥१॥रहाउ॥

हे भाई (बाबा)! नाम से न लगने वाली बुद्धि और ही तरह की होती है (परमात्मा से विमुख करती है)। ऐसी विकृत-बुद्धि से यदि हम सौ बार भी विचार करें, तो झूठ की प्रबलता (ही) बढ़ती है ॥१॥रहाउ॥

पूज लगै पीरु आखीऐ
सभु मिलै संसारु ॥
नाउ सदाए आपणा
होवै सिधु सुमारु ॥
जा पति लेखै ना पवै
सभा पूज खुआरु ॥२॥

यदि ससार में किसी की पूजा होती हो, पीर कहलाते हो और सारा संसार दर्शन के लिए आता हो, अपना नाम खूब प्रसिद्ध किए हो, सिद्धो मे वड़ा करामाती गिना जाता हो, (किन्तु) यदि उसकी प्रतिष्ठा परमात्मा के लेखे मे नहीं आती तो लोगों द्वारा मिला मान-सम्मान और पूजा व्यर्थ हैं ॥२॥

जिन कउ सतिगुरि थापिआ
तिन मेटि न सकै कोइ ॥
ओना अंदरि नामु निधानु है
नामो परगटु होइ ॥
नाउ पूजीऐ नाउ मंनीऐ
अखंडु सदा सचु सोइ ॥३॥

जिन्हें सत्गुरु ने स्थापित कर दिया है, उन्हें कोई भी मेट नहीं सकता। उनके अन्तर्गत नाम का खजाना है और नाम के बल से (ही) वे ससार में प्रकट होते हैं। (वास्तव में) पूजा और प्रतिष्ठा नाम की ही होती है (इन्सान की नहीं।) नाम के ही बन्दे माननीय और पूजनीय होते हैं क्योंकि नाम अखंड और सत्य होता है ॥३॥

खेहू खेह रलाईऐ
ता जीउ केहा होइ ।।
जलीआ सभि सिआणपा
उठी चलिआ रोइ ।।
नानक नाम विसारिऐ
दरि गइआ किआ होइ ।।४।।८।।

(देहान्त हो जाने पर) मिट्टी से मिट्टी मिल जाती है, (ऐसी स्थिति में नामहीन मनुष्य के) जीव की गति क्या होगी ? उसकी सारी चतुराई भस्म हो जाती है और वह रोता हुआ चला जाता है। हे नानक ! नाम के भूलने पर परमात्मा के द्वार पर जाकर क्या होगा ?।।४।।८।।

सिरी रागु महला १ ।।

गुणवंती गुण वीथरै
अउगुणवंती झूरि ।।
जे लोड़हि वरु कामणी
नह मिलीऐ पिर कूरि ।।
ना बेड़ी ना तुलहड़ा ।
ना पाईऐ पिरु दूरि ।।१।।

गुणवती (अपने) गुणो का विस्तार करती है, किन्तु अवगुणो वाली स्त्री दुखी होती है। हे जीव-स्त्री ! यदि तू पति (परमेश्वर) से मिलने की इच्छा रखती है तो 'वह' झूठे साधनो (अवगुणो से भरे जीवन) से नही मिलेगा। प्रियतम् दूर है, (हे कामिनी !) (तेरे पास) न नाव है न तुल्हा है, (अतएव तू) 'उस' तक नही पहुच सकेगी ।।१।।

मेरे ठाकुर पूरै
तखति अडोलु
गुरमुखि पूरा जे करे
पाईऐ साचु अतोलु ।।१।।रहाउ।।

मेरा पूर्ण ठाकुर अपने तख्त पर अडोल है। यदि पूर्ण गुरु ऐसे करे अर्थात् कोई युक्ति बता दे, (सहायता कर दे) तो सच्चे और अतोल परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है ।।१।।रहाउ।।

प्रभु हरि मंदरु सोहणा
तिसु महि माणक लाल ।।
मोती हीरा निरमला
कंचन कोट रीसाल ।।
बिनु पउड़ी गड़ि किउ चड़उ
गुर हरि धिआन निहाल ।।२।।

(मेरे) प्रभु का हरि-मन्दिर (बहुत) सुहावना है, उसमें (नाना प्रकार के) माणिक्य और लाल हैं। उसके सोने से सुन्दर दुर्ग मे (असख्य) मोती और निर्मल हीरे हैं। (प्रश्न.) बिना सीढी के उस किले पर किस प्रकार चढें ? (उत्तर) गुरु रूप हरि का ध्यान (करो) (इससे सीढी प्राप्त हो जायेगी) और (तू हरि को) देख लेगा और निहाल हो जायेगा ।।२।।

गुर पउड़ी बेड़ी गुरू
गुरु तुलहा हरि नाउ ।।

गुरु ही सीढी है, गुरु ही नाव है, गुरु ही पुल है, और गुरु (के पास ही) हरि-नाम है। गुरु ही सरोवर है, सागर है, जहाज

गुरु सरु सागरु बोहिथो
गुरु तीरथु दरीआउ ॥
जे तिसु भावै ऊजली
सतसरि नावण जाउ ॥३॥

है, गुरु ही तीर्थ है (और) समुद्र है। यदि 'उसकी' कृपा हो तो जीव-स्त्री इस सत्य सरिता में स्नान करके उज्जवल हो जाती है ॥३॥

पूरो पूरो आखीऐ
पूरै तखति निवास ॥
पूरै थानि सुहावणै
पूरै आस निरास ॥
नानक पूरा जे मिलै
किउ घाटै गुणतास ॥४॥६॥

'वह' पूर्ण (परमात्मा) कहा जाता है और 'उसका' निवास भी पूर्ण तख्त पर है। 'उसका' स्थान पूर्ण और सुहावना है, और 'वह' निराश (व्यक्तियों की) आशा भी पूर्ण करता है। हे नानक! यदि (किसी को) पूर्ण (परमात्मा) मिल जाता है, तो उसके गुणों के खजाने क्यों घटेंगे ? अर्थात् (उसके गुण तो नित्य-नित्य बढ़ेंगे।) ॥४॥६॥

सिरी रागु महला १॥

आवहु भैणे गलि मिलह
अंकि सहेलड़ीआह ॥
मिलि कै करह कहाणीआ
संम्रथ कंत कीआह ॥
साचे साहिब सभि गुण
अउगण सभि असाह ॥१॥

हे (मेरी) बहिनो! हे (मेरी) प्यारी सहेलियों! आओ (हम परस्पर) गले लग कर मिलें और मिलकर समर्थ कंत (पति-परमेश्वर) की कहानियाँ करें। (विरह का दोष हमारा है, पति-परमेश्वर का नहीं क्योंकि उस) सच्चे साहब में तो सारे गुण (ही गुण हैं और) हमारे में सारे अवगुण (ही अवगुण) हैं (जो अवगुण हमारे विरह का कारण बने हैं।) ॥१॥

करता सभु को तेरै जोरि
एकु सबदु बीचारीऐ
जा तू ता किआ होरि ॥१॥
रहाउ॥

हे कर्त्तार! सभी कोई (और सभी कुछ) तेरे ही जोर के कारण (कायम) है।(यही) एक (बात से) यदि शिक्षा विचार में आ जाय (कि सभी को तेरा ही जोर आश्रय है तो) फिर आपके होते हुए अन्य किसी (मनुष्य, पदार्थादि के सुख) की क्या आवश्यकता रह जाती है ॥१॥ रहाउ ॥

जाइ पुछहु सोहागणी
तुसी राविआ किनी गुणी ॥
सहजि संतोखि सीगारीआ
मिठा बोलणी ॥

जाकर उन सुहागिनो से पूछो (कि हे सुहागिनो!) तुमने किन गुणों द्वारा (पति-परमेश्वर) को रिझाया है अथवा 'उसकी' शय्या का (सुख-प्यार-रस) प्राप्त किया है ? (वे बतायेंगी कि हमने) सहज में, सन्तोष में और मीठे बचनों से (अपना) शृंगार किया

पिरु रीसालू ता मिलै
जा गुर का सबदु सुणी ॥२॥

था, (यह श्रृंगार कर लो पर वह) रसिक सुन्दर पति तो मिलता है यदि गुरु का शब्द सुनें (भाव-सहज सन्तोष और मधुर बोलना आदि शुभ गुणो के साथ गुरु के सुने हुए शब्द की कमाई करने की आवश्यकता है ॥२॥

केतीआ तेरीआ कुदरती
केवड़ा तेरी दाति ॥
केते तेरे जीअ जंत
सिफति करहि दिनु राति ॥
केते तेरे रूप रंग
केते जाति अजाति ॥३॥

(हे कर्त्तार !) अनन्त हैं तेरी ताकते (कुदरती), अनन्त है तेरी महान देन, अनन्त हैं तेरे जीव-जन्तु (किन्तु उन में भी अनन्त है जो) दिन-रात तेरी स्तुति करते रहते हैं, अनन्त हैं तेरे रूप-रंग और अनन्त है जातियो और अजातियो वाले ॥३॥

सचु मिलै सचु उपजै
सच महि साचि समाइ ॥
सुरति होवै पति उगवै
गुर बचनी भउ खाइ
नानक सचा पातिसाहु
आपे लए मिलाइ ॥४॥१०॥

(अत यह आवश्यक है कि जीव शुभ गुणो के साथ) (सत्पुरुष-सुहागिनो को) मिले, तभी (इसके हृदय मे) सच्च पैदा हो जायेगा, (और इसो) सत्य द्वारा (जीव स्त्री) सच्च (सत्यस्वरूप कर्त्तार मे) समा जायेगो। (कारण यह है कि) गुरु के वचनो द्वारा (जोव-स्त्री ईश्वर का) भय रखेगी (फिर उसके अन्दर) समझ (सोझी) (आ जायेगी) और (ईश्वर की दरबार मे) प्रतिष्ठा प्राप्त करेगी। हे नानक ! वह सच्चा बादशाह (परमात्मा जीव स्त्री को) आप (अपने साथ) मिला लेता है ॥४॥१०॥

सिरी रागु महला १॥

भली सरी जि उबरी
हउमै मुई घराहु ॥
दूत लगे फिरि चाकरी
सतिगुर का वेसाहु ॥
कलप तिआगी बादि है
सचा वेपरवाहु ॥१॥

(गुरु उपदेश की कमाई करके यह बात) भली हुई जो (मेरी बुद्धि अवगुणो से) बच गई और मन (—घर) से अहंता मर गई। सत्गुरु का विश्वास भरोसा हो गया, तो (अशुभ वासना या काम क्रोधादि माया के) दूत उलट कर मेरी चाकरी करने लगे। (हां, मेरे मन ने सारी कल्पनाओ और वाद-विवाद का परित्याग कर दिया है और अब सच्चा बेपरवाह (परमात्मा मेरे अन्दर आ गया) है ॥१॥

मन रे सचु मिलै भउ जाइ ॥
भै बिनु निरभउ किउ थीऐ ।
गुरमुखि सबदि समाइ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! सच्चे (परमात्मा) की प्राप्ति होने पर, (सारे) भय चले जाते हैं (किन्तु) 'उसके' भय के विना निर्भय (पद) कैसे प्राप्त हो सकता है ? गुरु के शब्द मे लीन होने पर ही यह सम्भव है ॥१॥ रहाउ ॥

केता आखणु आखीऐ
आखणि तोटि न होइ ॥
मगंण वाले केतडे
दाता एको सोइ ॥
जिसके जीअ पराण है
मन वसिऐ सुखु होइ ॥२॥

(प्रभु के सम्बन्ध में) कितना ही कथन क्यों न किया जाय, किंतु कथन से 'उसकी' कमी नहीं आ सकती। माँगने वाले तो कितने ही हैं (किन्तु) दाता अकेला 'वही' है जिसके (सारे) जीव और प्राण हैं। (उसी के) मन मे बसने से सुख होता है ॥२॥

जगु सुपना बाजी बनी
खिन महि खेलि खिलाइ ॥
संजोगी मिलि एक से
विजोगी उठि जाइ ॥
जो तिसु भाणा सो थीऐ
अवरु न करणा जाइ ॥३॥

जगत (ही) स्वपन का एक खेल बना हुआ है, (फिर) क्षण मे यह खेल खेला जाता है अर्थात् समाप्त हो जाता है। (इस में) सयोग से (जीव) आकर मिलते हैं और वियोग द्वारा उठकर चल पडते हैं अर्थात् बिखड जाते हैं। वस्तुत 'उसे' जो भाता है वही होता है और (उस के उलटा) कुछ किया नहीं जा सकता ॥३॥

गुरमुखि वसतु वेसाहीऐ
सचु वखरु सचि रासि ॥
जिनी सचु वणंजिआ
गुर पूरे साबासि ॥
नानक वसतु पछाणसी
सचु सउदा जिसु पासि ॥४॥११॥

(आओ) गुरु द्वारा (हम वह) वस्तु खरीदे जो सच्चा सौदा (और सच्ची) पूजी है। जिन्होंने सच्च को खरीदा है (उन को) पूर्ण गुरु की शाबाश मिलेगी। हे नानक! (यह बात भी निश्चय करके जानो कि) जिसके पास सच्च का सौदा होगा (पूर्ण गुरु उसकी सत्य) वस्तु को (आप) पहचान लेगा ॥४॥११॥

सिरी रागु महला ॥१॥

धातु मिलै फुनि धातु कउ
सिफती सिफति समाइ ॥
लालु गुलालु गहबरा
सचा रंगु चड़ाउ ॥
सचु मिलै संतोखीआ
हरि जपि एकै भाइ ॥१॥

जिस प्रकार धातु से धातु मिलकर पुनः (एक हो जाती है), उसी प्रकार स्तुति करने वाला स्तुत्य-स्तुति करने योग्य (परमात्मा) में समा जाता है—(अर्थात् अभेद हो जाता है)। (स्तुति से) (उसके ऊपर) पहले लाल फिर स्वच्छ लाल, फिर गूढ लाल सच्चा रंग चढ जाता है। केवल संतोषी पुरुष को ही सत्य की प्राप्ति होती है क्योंकि वे हरि का अनन्य भाव से जाप करते हैं ॥१॥

भाई रे संत जना की रेणु ॥
संत सभा गुरु पाईऐ
मुकति पदारथु धेणु ॥१॥रहाउ॥

(प्रश्न चरण-धूलि कैसे और किससे प्राप्त होती है ? उत्तर.) हे भाई ! (इस सत्य का दातार अर्थात) मुक्ति (रूप) पदार्थ का दातार गुरु (है जो) कामधेनु, (गऊ जैसे सब कामनाओ को पूर्ण करने वाला है वह) सत सभा मे प्राप्त होता है। (अत) सत जनो की धूलि (बन जाओ) अर्थात् संतों के आगे विनम्र हो ॥१॥ रहाउ ॥ (प्रश्न क्यो गुरु की आवश्यकता है ? उत्तर)

ऊचउ थानु सुहावणा
ऊपरि महलु मुरारि ॥
सचु करणी दे पाईऐ
दरु घरु महलु पिआरि ॥
गुरमुखि मनु समझाईऐ
आतमरामु बीचारि ॥२॥

ऊँचा है वह स्थान (किन्तु अति) सुन्दर है और उस ऊपर (उस सत्य-स्वरूप) मुरारि का महल है। प्यारे का महल और 'उसके' घर का द्वार सच्ची करनी (आचार-विचार) से प्राप्त होता है और आत्म राम का विचार करके इस मन को (इन सभी बातो का) समझाना गुरु द्वारा ही होता है ॥२॥

त्रिबिधि करम कमाईअहि
आस अंदेसा होइ ॥
किउ गुर बिनु त्रिकुटी छुटसी
सहजि मिलिऐ सुखु होइ ॥
निजघरि महलु पछाणीऐ
नदरि करे मलु धोइ ॥३॥

जब तक जीव त्रिविध (सत, रज, तम कर्मो मे प्रवृत रहेगा तब तक आशा और अदेशा से बँधा हुआ है। गुरु के बिना त्रिगुणात्मक बधनो से कैसे छुटकारा मिल सकता है ? (गुरु की कृपा से) सहजावस्था प्राप्त होने पर सुख प्राप्त होता है, तभी अपने (वास्तविक) घर, (प्रभु के) महल को पहचाना जा सकता है। किन्तु यह तभी सम्भव है जब प्रभु की हम पर कृपा हो और हमारे मन की सारी मलिनता दूर हो जाये (धुल जाये) ॥३॥

बिनु गुर मैलु न उतरै
बिनु हरि किउ घर वासु ॥
एको सबदु वीचारिऐ
अवर तिआगै आस ॥
नानक देखि दिखाईऐ
हउ सद बलिहारै जासु ॥४॥१२॥

बिना गुरु के मैल नही उतरती (पाप नही कटता), बिना हरि के (आत्म स्वरूप रूपी) घर मे किस प्रकार निवास हो सकता है ? इसलिए एक शब्द (परमात्मा) के नाम पर विचार करना चाहिये और अन्य सभी आशाओ का त्याग कर देना चाहिए। हे नानक ! मैं सदैव उस पर बलिहारी हूँ जो स्वय अपने घर अन्दर परमात्मा के दर्शन देखता (करता) है और दूसरो को भी दिखाता है ॥४॥१२॥

सिरी रागु महला १ ॥

ध्रिगु जीवणु दोहागणी मुठी दूजै भाइ ॥ कलर केरी कंध जिउ अहिनिसि किरि ढहि पाइ ॥ बिनु सबदै सुखु ना थीऐ पिर बिनु दूखु न जाइ ॥१॥	(जिस जीव-स्त्री का शहु पति के साथ प्यार नहीं है उस) दुहागिनी के जीवन को धिक्कार है, जो द्वैत-भाव के कारण ठगी गई है। वह शोरा से खाई हुई दीवार की तरह है जो भुर-भुरा कर दिन-रात दुखती रहती है और अन्त मे गिर पड़ती है। बिना शब्द (नाम) के सुख नही होता और बिना प्रियतम के दु:ख नही जाता ॥१॥
मुंधे पिर बिनु किआ सीगारु ॥ दरिघरि ढोई न लहै दरगह झूठु खुआरु ॥१॥रहाउ॥	हे मुग्धे (भ्रमित स्त्री) ! प्रियतम के बिना श्रृंगार कैसा ? तू 'उसके' घर के दरवाजे मे प्रवेश नही पा सकती, क्योंकि झूठा जीव (परमात्मा की) दरबार मे बदनाम होता ॥१॥ रहाउ ॥
आपि सुजाणु न भुलई सचा वड किरसाणु ॥ पहिला धरती साधि कै सचु नामु दे दाणु ॥ नउ निधि उपजै नामु एकु करमि पवै नीसाणु ॥२॥	'वह' (गुरु) चतुर है स्वय नही भूलता। 'वह' सच्चा महान किसान है। वह धरती को तैयार कर, सच्चे नाम का बीज बोता है। नाम के एक (बीज) से नव-निद्धिया उत्पन्न होती हैं, और 'उसकी' कृपा द्वारा स्वीकृति का चिन्ह लगता है ॥२॥
गुर कउ जाणि न जाणई किआ तिसु चजु अचारु ॥ अंधुलै नामु विसारिआ मनमुखि अंध गुबारु ॥ आवणु जाणु न चुकई मरि जनमै होइ खुआरु ॥३॥	जो जानकर भी गुरु को नहीं जानती, उसकी क्या बुद्धिमानी है और क्या आचार विचार अथवा (हार श्रृंगार) है ? उस अन्धे ने नाम भुला दिया, वह मनमुख—मन के सकेतों पर चलता है और घनघोर अन्धकार (मे है)। उसका आना जाना समाप्त नही होता और बार-बार जन्मता मरता है और इस प्रकार बदनाम होता है ॥३॥
चंदनु मोलि अणाइआ कुंगू मांग संधूरु ॥ चोआ चंदनु बहु घणा पाना नालि कपूरु ॥	यदि (जीव-स्त्री) ने चन्दन मोल मँगाया है, केसर और सिंदूर से मांग भरी है, चन्दन का इत्र भी अधिकता से लगाया है, और पान के साथ कपूर भी खाया है, (इतना सब श्रृंगार करने पर भी

जे धन कंति न भावई
त सभि अडंबर कूड़ु ॥४॥४॥

यदि स्त्री पति को प्रिय नहीं लगती, तो सारे आडम्बर युक्त शृंगार मिथ्या हैं ॥४॥

सभि रस भोगण बादि हहि
सभि सीगार विकार ॥
जब लगु सबदि न भेदीऐ
किउ सोहै गुरदुआरि ॥
नानक धंनु सुहागणी
जिन सह नाल पिआरु ॥५॥१३॥

(यह सत्य है) सभी रसों को भोगना व्यर्थ है और सभी विकार (उत्पादक) हैं जब तक वह गुरु-शब्द द्वारा बिंध नहीं जाती, तब तक वह गुरु के द्वार पर कैसे शोभा पा सकती है ? हे नानक ! वह ही सुहागिन धन्य है, जिसका पति-परमेश्वर के साथ प्रेम है ॥५॥१३॥

सिरी रागु महला १॥

सुंञी देह डरावणी
जा जीउ विचहु जाइ ॥
भाहि बलंदी विझवी
धूउ न निकसिओ काइ ॥
पंचे रुंने दुखि भरे
बिनसे दूजै भाइ ॥१॥

जब जीव शरीर से निकल जाता है तो सूनी देही डरावनी हो जाती है। जलती हुई अग्नि बुझ (जीव-सत्ता निकल) गई, अब कुछ भी स्वास रूपी धुँआ नहीं आता-जाता। पंच ज्ञानेन्द्रियाँ (आंख, कान, नाक, त्वचा एवं रसना अथवा शरीर के पांच तत्व (आकाश, वायु, अग्नि जल एवं पृथ्वी) दुःख से भरे हुए रोने लगे। पंच सम्बन्धी ये हैं (माता, पिता, भाई, स्त्री, एव पुत्र) वे द्वैत-भाव में ही खप गए ॥१॥

मूड़े रामु जपहु गुण सारि ॥
हउमै ममता मोहणी
सभ मुठी अहंकारि ॥१॥रहाउ॥

हे मूर्ख जीव ! (इस दशा को देखकर) 'उसके' गुणो को सम्भालते हुए, राम जपो ! सारी सृष्टि हउमै, मोहनी माया की ममता और अहकार से ठगी जा रही है ॥१॥ रहाउ ॥

जिनी नामु विसारिआ
दूजी कारै लगि ॥
दुबिधा लागे पचि मुए
अंतरि त्रिसना अगि ॥
गुरि राखे से उबरे
होरि मुठी धंधै ठगि ॥२॥

जिन्होंने दूसरे कार्यों में लगकर नाम भुला दिया है, वे द्वैत भाव में खपकर मर जाते हैं (उनके) अन्तर्गत तृष्णा की अग्नि (जलती रहती है)। (जिनकी) गुरु रक्षा करता है, वे ही बचते हैं और ठग लिये जाते हैं ॥२॥

मुई परीति पिआरु गइआ मुआ वैर विरोधु ॥ धंधा थका हउ मुई ममता माइआ क्रोधु ॥ करमि मिलै सचु पाईऐ गुरमुखि सदा निरोधु ॥३॥	हे (जीव) जो गुरु के उपदेश द्वारा सदा (विषयो से मन को) विरोध करके रखता है, उसको (परमात्मा की) कृपादृष्टि से सत्य को प्राप्ति होती है जिससे (सांसारिक प्रीत मर जाती है, सांसारिक प्यार भी समाप्त हो जाता है, वैर विरोध भी मर जाते हैं, (सासारिक) धन्धे रुक जाते हैं, अहंता मर जाती है, और ममता, माया, क्रोध भी (दूर हो जाते हैं) ॥३॥
सची कारै सचु मिलै गुरमति पलै पाइ ॥ सो नरु जंमै ना मरै ना आवै ना जाइ ॥ नानक दरि परधानु सो दरगहि पैधा जाइ ॥४॥१४॥	जो जीव गुरु की शिक्षा को अन्त.करण रूपी पल्ले बांधकर रखता है, वह सच्चे कर्मों से सत्य परमात्मा को जाकर मिलता है। ऐसा जीव जन्म नही लेता है। (वह अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है)। हे नानक! वह परमात्मा के दरवाजे पर प्रधान हो जाता है और उसे दरबार मे प्रतिष्ठा के वस्त्र पहनाये जाते हैं ॥४॥१४॥

सिरी रागु महला १॥

तनु जलि बलि माटी भइआ मनु माइआ मोहि मनूरु ॥ अउगुण फिरि लागू भए कूरि वजावै तूरु ॥ बिनु सबदै भरमाईऐ दुबिधा डोबे पूरु ॥१॥	(जिसने हरि-नाम का स्मरण नही किया उसका) शरीर (विकारो की अग्नि में) जल-बल कर मिट्टी हो गया है, और मन माया में मोहित होकर नि सार हो गया है। अवगुण फिर पीछे से पा गये हैं और झूठ तुरही (वाद्य विशेष) बजाने लगा है भाव प्रधान होकर फिरता है। बिना गुरु के शब्द के वह भटकता-फिरता है इस प्रकार द्वैत भाव पूरो के पूर (असख्य जीवो को) डुबो डालता है ॥१॥
मन रे सबदि तरहु चितु लाइ ॥ जिनि गुरमुखि नामु न बूझिआ मरि जनमै आवै जाइ ॥१॥ रहाउ॥	हे मन! (गुरु के) शब्द मे चित्त लगाकर (भवसागर के विकारो से) तर जाओ। जिन्होने गुरु के मुख द्वारा नाम के महत्व को नहीं समझा (वे बारम्बार) मरते और जन्मते हैं तथा आते और जाते हैं ॥२॥ रहाउ ॥
तनु सूचा सो आखीऐ जिसु महि साचा नाउ ॥	वही पवित्र शरीर कहलाता है जिसमें सच्चा नाम (रहता) है। ऐसा शरीर परमात्मा के भय और सत्य में अनुरक्त रहता है,

मै सचि राती देहुरी
जिहवा सचु सुआउ ॥
सची नदरि निहालिऐ
बहुड़ि न पावै ताउ ॥२॥

और जाभ को सच्चा स्वाद आता है। ऐसा जीव सच्ची कृपा दृष्टि से देखा जाता है (और वह) फिर ताव नही पाता ॥२॥

साचे ते पवना भइआ
पवनै ते जलु होइ ॥
जल ते त्रिभवणु साजिआ
घटि घटि जोति समोइ ॥
निरमलु मैला ना थीऐ
सबदि रते पति होइ ॥३॥

सच्चे परमात्मा से पवन उत्पन्न हुआ है, और पवन से जल की उत्पत्ति हुई है। जल से त्रिलोक (आकाश,पाताल, मृत्युलोक) का निर्माण किया गया। (इस प्रकार) प्रत्येक घर में (उसी सत्यस्वरूप परमात्मा) की ज्योति व्याप्त है। निर्मल (व्यक्ति) (कभी) अपवित्र नही होता, शब्द मे रते रहने से प्रतिष्ठा होती है ॥३॥

इहु मनु साचि संतोखिआ
नदरि करे तिसु माहि ॥
पंच भूत भै रते
जोति सची मन माहि ॥
नानक अउगण वीसरे
गुरि राखे पति ताहि ॥४॥१५॥

यदि परमात्मा की कृपा दृष्टि हो जाए तो जीव का मन सत्य मे सन्तुष्ट हो जाता है, उसका पच भूत (निर्मित शरीर) सत्य और 'उसके' भय मे अनुरक्त रहता है, और मन मे सच्ची ज्योति का प्रकाश हो जाता है और हे नानक ! उसके सारे अवगुण दूर हो जाते हैं और गुरु भी उसकी रक्षा करता है, इस प्रकार ऐसे जीव को प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥४॥ १५॥

सिरी रागु महला १ ॥

नानक बेडी सच की
तरीए गुरु वीचारि ॥
इकि आवहि इकि जावहि
पूरि भरे अंहकारि ॥
मनहठि मती बूडीऐ
गुरमुखि सचु सुतारि ॥१॥

हे नानक ! सत्य की नाव पर (बैठकर) गुरु के विचार (शिक्षा) रूप (चप्पू) द्वारा (भवसागर के) पार हो जाओ ! (इस नाव और चप्पू के बिना) पूर्ण अहकार से भरे हुए कुछ जीव (इस ससार मे) आते हैं कुछ चले जाते है।

मनमानी बुद्धि से जीव डूब जाते हैं और गुरु के उपदेशानुसार सत्य की नाव प्राप्त करके तर जाते हैं ॥१॥

गुर बिनु किउ तरीए सुखु होइ ॥
जिउ भावै तिउ राखु तू
मै अवरु न दूजा कोइ ॥१॥रहाउ॥

गुरु के बिना कैसे (संसार सागर से) तरा जाय ? और इसलिए (हे हरि) ! जैसा तुझे अच्छा लगे, वैसा रख। मेरे लिये (तुझे) छोडकर और दूसरा आश्रय नही है ॥१॥ रहाउ ॥

आगै देखउ डउ जलै
पाछै हरिओ अंगूरु ॥
जिस ते उपजै तिस ते बिनसै
घटि घटि सचु भरपूरि ॥
आपे मेलि मिलावही
साचै महलि हदूरि ॥२॥

आगे देखता हूँ तो (श्मशान भूमि) दावाग्नि जल रही है (कई जीव मर रहे हैं) और पीछे (देखता हूँ) तो कोपलें निकल रही हैं (जीव जन्मते हैं)। जिससे उत्पन्न होते हैं, उसी मे विलीन हो रहे हैं, घट-घट में सत्य परिपूर्ण हैं। (फिर जब 'उसे' अच्छा लगता है तो) आप ही (सत्पुरुषों से) मेल मिलाता है जिसमे सत्य नाम प्राप्त करके सच्चे महल (परमात्मा) को प्रत्यक्ष देख लेते हैं ॥२॥

साहि साहि तुझु संमला
कदे न विसारेउ ॥
जिउ जिउ साहिबु मनि वसै
गुरमुखि अंम्रितु पेउ ॥
मनु तनु तेरा तू धणी
गरबु निवारि समेउ ॥३॥

सांस-सांस मे मैं तुम्हे स्मरण करूँ और कभी न भूलूं। जैसे-जैसे साहब मन मे बसता है, वैसे-वैसे गुरुमुख ब्रह्मानन्द रूपी अमृत पीता है। तू स्वामी है, (यह) मन, तन तेरा है (विनय है) मेरे गर्व को नष्ट करके अपने मे ही लीन कर दे ॥३॥

जिनि एहु जगतु उपाइआ
त्रिभुवणु करि आकारु ॥
गुरमुखि चानणु जाणीऐ
मनमुखि मुगधु गुबारु ॥
घटि घटि जोति निरंतरी
बूझै गुरमति सारु ॥४॥

जिस प्रभु ने जगत को उत्पन्न किया है उसी ने तीनों लोको को आकार दिया है। गुरु के उपदेश द्वारा गुरुमुख बनकर प्रकाश (ज्ञान) होता है, किन्तु मूर्ख मनमुखो को घोर अन्धकार ही रहता है। घट-घट मे एक रस ज्योति प्रकाशित हो रही है। किन्तु इस तत्व (ज्ञान) को गुरु की शिक्षा द्वारा ही समझ सकते है ॥४॥

गुरमुखि जिनी जाणिआ
तिन कीचै साबासि ॥
सचे सेती रलि मिले
सचे गुण परगासि ॥
नानक नामि संतोखीआ
जीउ पिंडु प्रभ पासि ॥५॥१६॥

जिन गुरमुखों ने गुरु द्वारा 'उसको' जान लिया है, उनकी प्रशंसा करनी चाहिए। वे सच्चे परमात्मा के साथ मिलकर एक हो गए है और वे सच्चे गुणो का ही प्रकाश करते हैं। हे नानक ! वे जीव और शरीर प्रभु के पास अर्पित करके नाम से सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥५॥१६॥

सिरी रागु महला १॥

सुणि मन मित्र पिआरिआ
मिलु वेला है एह ॥
जब लगु जोबनि सासु है
तब लगु इहु तनु देह ॥
बिनु गुण कामि न आवई
ढहि ढेरी तनु खेह ॥१॥

हे प्यारे मित्र मन ! सुनो। (प्रियतम प्रभु से) मिलो, (प्रभु को) मिलने की यही वेला है। जब तक यौवन है, श्वास (जीवन) है, जब तक यह शरीर है, (सभी कुछ प्यारे को) समर्पित कर दो। बिना (शुभ) गुणो के (यह शरीर) काम नही आता, यह तन ढह-ढह कर खाक की ढेरी हो जाता है ॥१॥

मेरे मन लै लाहा घरि जाहि ॥
गुरमुखि नामु सलाहीऐ
हउमै निवरी भाहि ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! (सत्सग रूपी) घर में जाकर (मनुष्य देही का) लाभ लो। (याद रहे) वहाँ गुरु के उपदेश द्वारा (हरि) नाम की स्तुति से अहंकार की अग्नि निवृत हो जाती है ॥१॥ रहाउ ॥

सुणि सुणि गंढणु गंढीऐ
लिखि पड़ि बुझहि भारु ॥
त्रिसना अहिनिसि अगली
हउमै रोगु विकारु ॥
ओहु वेपरवाहु अतोलवा
गुरमति कीमति सारु ॥२॥

(सासारिक प्राणी) सुन-सुनकर उधेड-बुन मे लगा रहता है वह लिख-लिखकर, पढ-पढकर, और समझ-समझकर भी (किताबो का) भार लादता है। किन्तु फिर भी तृष्णा रात-दिन बढती ही रहती है और अहकार का रोग, दोष (विकार) उत्पन्न करता रहता है। 'वह' बेपरवाह (परमात्मा) अतोल है, (हाँ) गुरु की मति द्वारा 'उसकी' वास्तविक कीमत का सार (ज्ञान) पता लगता है ॥२॥

लख सिआणप जे करी
लख सिउ प्रीति मिलापु ॥
बिनु संगति साध न ध्रापीआ
बिनु नावै दूख संतापु ॥
हरि जपि जीअरे छुटीऐ
गुरमुखि चीनै आपु ॥३॥

चाहे मैं लाखो चतुराइयाँ करूँ और लाखो (मनुष्यो) से प्रीत तथा मेल करूँ, (तथापि) बिना साधु-सगति के (मन) सन्तुष्ट नही होता और बिना नाम के दुःख और सताप (बने रहते हैं)। गुरु की शिक्षा द्वारा हरि जपकर जीव का छुटकारा होता है—मुक्ति होती है और अपने स्वरूप को पहचानता है ॥३॥

तनु मनु गुर पहि वेचिआ
मनु दीआ सिरु नालि ॥
त्रिभवणु खोजि ढंढोलिआ
गुरमुखि खोजि निहालि ॥
सतगुरि मेलि मिलाइआ
नानक सो प्रभु नालि ॥४॥१७॥

(यह बात विचार करके मैंने) तन और मन गुरु के पास बेच दिया है, मन के साथ सिर भी अपने गुरु को दे दिया है। (जिसे मैं) तीन भवनो मे ढूढ-ढूढ कर खोजता था, (मैंने) गुरु के द्वारा खोज-खोज कर प्रत्यक्ष देखकर निहाल हुआ हूँ। हे नानक ! उस प्रभु के साथ सत्गुरु ने ही मिलाप कराया है ॥४॥१७॥

सिरी रागु महला १ ॥
मरणै की चिंता नही
जीवण की नही आस ॥
तू सरब जीआ प्रतिपालही
लेखै सास गिरास ॥
अंतरि गुरमुखि तू वसहि
जिउ भावै तिउ निरजासि ॥१॥

(गुरु से ज्ञान प्राप्त होते ही गुरमुख की अवस्था है, हे प्रभु !) (मुझे) न मरने की चिन्ता है और न जीने की आशा। अब निश्चय हो गया है कि हे परमात्मा ! तू ही सभी जीवों का भरण-पोषण कर रहे हो और उनके सास और ग्रास का लेखा भी तेरे पास है। गुरु द्वारा तू आकर हमारे अन्तर्गत निवास करता है, जिस प्रकार तुझे अच्छा लगता है, उसी प्रकार निर्णय लेता है ॥१॥

जीअरे राम जपत मनु मानु ॥
अंतरि लागी जलि बुझी
पाइआ गुरमुखि गिआनु ॥१॥रहाउ॥

हे जीव ! राम जपने से ही मन मानता है—निश्चय होता है। गुरु ज्ञान प्राप्त होते ही अन्दर में लगी हुई जलन (तृष्णा) बुझ जाती है ॥१॥ रहाउ॥

अंतर की गति जाणीऐ
गुर मिलीऐ संक उतारि ॥
मुइआ जितु घरि जाईऐ
तितु जीवदिआ मरु मारि ॥
अनहद सबदि सुहावणे
पाईऐ गुर वीचारि ॥२॥

जीव अदर की गति जान सकता है, जब गुरु से शका रहित होकर (विश्वास रखकर) जाकर मिलता है। जिस घर (अवस्था) में मर कर पहुँचना होता है, (उस अवस्था की प्राप्ति के लिए) जीवित ही (मंद-वासनाओ को) मार कर मरो। सुहावने अनहद शब्द की प्राप्ति गुरु की कृपा से (हाँ) उस पर विचार करने से होती है ॥२॥

अनहद बाणी पाईऐ
तह हउमै होइ बिनासु ॥
सतगुरु सेवे आपणा
हउ सद कुरबाणै तासु ॥
खड़ि दरगह पैनाईऐ
मुखि हरिनाम निवासु ॥३॥

अनहद वाणी (शब्द) प्राप्त होने पर हउमै (अहकार) का नाश हो जाता है। (जो अपने) सतगुरु की सेवा करते हैं, मैं उनके ऊपर सदा कुरबान जाता हूँ। जिनके मुख मे हरिनाम का निवास है, (उन्हें) परमात्मा के दरबार में खडा करके प्रतिष्ठा की पोशाक पहनाई जाती है ॥३॥

जह देखा तह रवि रहे
सिव सकती का मेलु ॥

जहाँ देखता हूँ, वही शिव-शक्ति (पुरुष-प्रकृति) का मेल है, (अतएव उस मेल से रची हुई सृष्टि के अन्तर्गत) परमात्मा व्याप्त

त्रिहु गुण बंधी देहुरी
जो आइआ जगि सो खेलु ॥
बिजोगी दुखि विछुड़े
मनमुखि लहहि न मेलु ॥४॥

है। (सभी) शरीर सत्, तम्, रज्—तीनों गुणों से बंधे हुए हैं और जो भी इस खेल-जगत मे आता है वह (इसी सीमा में) खेलता है। जो मनमुख है, वे वियोग के मार्ग पर चलकर परमात्मा से बिछुड़े रहते हैं और दुखी होते है, उन्हे सयोग (मिलाप) का मार्ग मिलता ही नही ॥४॥

मनु बैरागी घरि वसै
सच भै राता होइ ॥
गिआन महारसु भोगवै
बाहुड़ि भूख न होइ ॥
नानक इहु मनु मारि मिलु
भी फिरि दुखु न होइ ॥५॥१८॥

यदि इधर-उधर भटकने वाला मन वैरागी (विरक्त) होकर सत्य और 'उसके' भय मे अनुरक्त होकर अपने घर (स्वरूप) में स्थित हो जाय, तो वह (ब्रह्मज्ञान) के महारस को भोगता है और उसे फिर सासारिक भूख नही लगती। हे नानक! इस मन को मारो (नियत्रण मे करो) और 'उससे' मिलो, फिर कभी तुम्हे दुःख न होगा ॥५॥१८॥

सिरी रागु महला १ ॥

एहु मनो मूरखु लोभीआ
लोभे लगा लोभानु ॥
सबदि न भीजै साकता
दुरमति आवनु जानु ॥
साधू सतगुरु जे मिलै
ता पाईऐ गुणी निधानु ॥१॥

यह मन ही लोभी है जो (मायिक पदार्थों के) लोभ मे लुभायमान हो रहा है (इसलिए यह मन) मूर्ख है (जो नही समझता)। वह शाक्त (शक्ति-माया का उपासक) (गुरु के) शब्द मे नही भीगता (अनुरक्त होता)। इसी दुरमति के कारण वह आता जाता है—आवागमन के चक्कर मे पडा रहता है। यदि साधु-सत्गुरु मिल जाय तो गुणो के भण्डार (परमात्मा) की प्राप्ति होती है ॥१॥

मन रे हउमै छोडि गुमानु ॥
हरिगुरु सरवरु सेवि तू
पावहि दरगह मानु ॥१॥रहाउ॥

हे मन! हउमै और गर्व को छोड दो। हरि गुरु (रूपी) सरोवर की सेवा (उपासना) करो, (जिससे) तुम्हे (हरि की) दरबार मे सम्मान मिलेगा ॥१॥ रहाउ ॥

रामनामु जपि दिनसु राति
गुरमुखि हरि धनु जानु ॥
सभि सुख हरि रस भोगणे
संत सभा मिलि गिआनु ॥
निति अहिनिसि हरि प्रभु सेविआ
सतगुरि दीआ नामु ॥२॥

गुरु की शिक्षानुसार रात-दिन राम नाम जपकर हरि रूपी धन को पहचानो। हरि रस के आस्वादन में सारे सुखो की प्राप्ति होती है और सन्तो की सभा में ही ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) की उपलब्धि। जिसे सत्गुरु ने (कृपा करके) (परमात्मा का) नाम दे दिया है, (वह) नित्य अहर्निश हरि प्रभु की सेवा करता है ॥२॥

कूकर कूड़ु कमाईऐ
गुरनिंदा पचै पचानु ॥
भरमे भूला दुखु घणो
जमु मारि करै खुलहानु ॥
मनमुखि सुखु न पाईऐ
गुरमुखि सुखु सुभानु ॥३॥

(जो मनुष्य अपने लोभी मन के पीछे चलता है वह) कुत्ते की तरह झूठ ही कमाता है अर्थात् भक्ष्याभक्ष्य मुह मे खाता रहता है। (यहाँ तक कि) गुरनिन्दा उसका भोजन बन जाता है जिससे वह स्वय जलता है और दूसरो को जलाता है। वह भ्रम मे भूला हुआ बहुत दु ख प्राप्त करता है और अन्त में यम उसे मारकर भूसा (खलिहान) कर देता है। मनमुख को कभी सुख नही प्राप्त होता है, केवल गुरमुख को ही सूर्यवत् प्रकाशमय सुख मिलता है ॥३॥

ऐथै धंधु पिटाईऐ
सचु लिखतु परवानु ॥
हरि सजणु गुरु सेवदा
गुर करणी परधानु ॥
नानक नामु न वीसरै
करमि सचै नीसाणु ॥४॥१६॥

(मनमुख) यहाँ (इस ससार मे) तो धंधे में लगा रहता है (परेशान रहता है), किन्तु वहाँ (सच्ची दरबार मे) सच्ची करणी की लिखावट ही प्रमाणिक समझी जाती है। (गुरमुख) हरि के मित्र-गुरु की सेवा करता है, उसके लिए गुरु ही सबसे प्रधान (कर्त्तव्य) है। हे नानक ! जिसे कभी परमात्मा का नाम नही भूलता है, (उसके अन्दर) परमात्मा की कृपा से सच्चा निशान लगता है। (अर्थात् वह प्रमाणिक समझा जाता है) ॥४॥१६॥

सिरी रागु महला १॥

इकु तिलु पिआरा वीसरै
रोगु वडा मन माहि ॥
किउ दरगह पति पाईऐ
जा हरि न वसै मन माहि ॥
गुरि मिलिऐ सुखु पाईऐ
अगनि मरै गुण माहि ॥१॥

(यदि) एक पल (क्षण) के लिए भी प्यारा (प्रियतम्) विस्मृत हो जाता है, तो मन मे (एक) बडी बीमारी (उत्पन्न हो जाती) है। जिसके मन मे हरि नही निवास करता उसे (परमात्मा के) दरबार मे किस प्रकार प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकती है ? (प्रश्न) यह दुख निवृत्त कैसे हो ? (उत्तर :) गुरु को मिलने पर ही सुख की प्राप्ति होती है और (प्रियतम् के) गुणानुवाद (करने) से (तृष्णा की) अग्नि शान्त हो जाती है ॥१॥

मन रे अहिनिसि हरिगुण सारि ॥
जिन खिनु पलु नामु न वीसरै
ते जन विरले संसारि ॥१॥रहाउ॥

हे मन ! दिन रात हरि के गुणो का स्मरण (चिन्तन) करो। जिन्हे क्षण और पल भर के लिए भी नाम नही विस्मृत होता, ऐसे (जीव) संसार मे विरले (दुर्लभ) ही हैं ॥१॥रहाउ॥

जोती जोति मिलाईऐ
सुरती सुरति संजोगु ॥

यदि (जीवात्मा की) ज्योति (परमात्मा की) ज्योति में मिला दी जाय और अपनी चित्त-वृत्तियों (सुरति) को (गुरु की) सुरति

हिंसा हउमै गतु गए
नाही सहसा सोगु ॥
गुरमुखि जिसु हरि मनि वसै
तिसु मेलै गुरु संजोगु ॥२॥

से संयुक्त कर दी जायें, तो हिंसा और अहंकार (अन्दर) नष्ट हो जाते हैं और (अब वहां, संशय भी नही रहते। गुरु के उपदेशानुसार जिसके मन मे हरि (निरन्तर) बस जाता है, गुरु उसे (फिर) (परमात्मा से) मिलन (सजोग) करा देता है ॥२॥

काइआ कामणि जे करी
भोगे भोगणहारु ॥
तिसु सिउ नेहु न कीजई
जो दीसै चलणहारु ॥
गुरमुखि रवहि सोहागणी
सो प्रभु सेज भतारु ॥३॥

(यदि मैं अपनी) काया को (पति-प्रेमिका) स्त्री के समान कर दूं (तो भक्ति के रसिया प्रभु) भोगने वाला (मेरे प्यार का रस भी) भोगेगा। (भाव यह है कि अनन्य प्रेम करने से प्रभु मुझे प्रेम करेगा, इसलिए) जो चलने वाली वस्तु दिखलाई पडती है, उससे मैं स्नेह न करूँ। (मैं देख रही हूँ कि) प्रभु स्वामी जो शैय्या का मालिक है, गुरुमुख रूप सुहागिनो को 'वह' स्वय प्यार करता है अथवा गुरुमुख रूपी सुहागिन (ही पति-परमेश्वर से) रमण करती है जो शैय्या का भर्त्ता है ॥३॥

चारे अगनि निवारि मरु
गुरमुखि हरि जलु पाइ ॥
अंतरि कमलु प्रगासिआ
अंम्रितु भरिआ अघाइ ।
नानक सतगुरु मीतु करि
सचु पावहि दरगह जाइ ॥४॥२०॥

(अत. हे प्यारो!) गुरु की शिक्षा द्वारा हरि रूपी जल डालकर चारो अग्नियो (हिंसा, मोह, लोभ और क्रोध) का निवारण करके (जीवित ही) मर जाओ। (फिर तुम्हारे) अन्त करण मे कमल प्रफुल्लित हो जाएगा और तुम अमृत से भरकर तृप्त हो जाओगे हे नानक! सतगुरु को मित्र बनाओ। (परमात्मा के) दरबार मे जाकर सत्य (सुख) को पाओगे या प्राप्त करोगे ॥४॥२०॥

सिरी रागु महला १॥

हरि हरि जपहु पिआरिआ
गुरमति ले हरि बोलि ।
मनु सच कसवटी लाईऐ
तुलीऐ पूरै तोलि ।
कीमति किनै न पाईऐ
रिद माणक मोलि अमोलि ॥१॥

हे प्यारे! 'हरि-हरि' (परमात्मा का) जाप करो (हाँ) पर गुरु से (जपने की) मति लेकर 'हरि' बोलना। मन को सच की कसवटी पर कसो और (विचार की तराजू पर) पूरी तोल में तोलो अथवा तोल में पूर्ण तुलेगा। ऐसे जीव का हृदय मूल्य मे अमूल्य है और उसकी कीमत कोई भी नहीं आंक सकता ॥१॥

भाई रे हरि हीरा गुर माहि
सतसंगति सतगुरु पाईऐ
अहिनिसि सबदि सलाहि ॥१॥
रहाउ॥

हे भाई! हरि रूपी हीरा गुरु में (बसता) है (और 'वह' हीरा) सत्गुरु द्वारा प्राप्त होता है, जब दिन-रात नाम (शब्द) की स्तुति करेंगे ॥१॥रहाउ॥

सचु वखरु धनु रासि लै
पाईऐ गुर परगासि ।।
जिउ अगनि मरै जलि पाइऐ
तिउ त्रिसना दासनिदासि ।।
जम जंदारु न लगई
इउ भउजलु तरै तरासि ।।२।।

गुरु के प्रकाश द्वारा (फिर) सच का सौदा और (नाम) धन की राशि प्राप्त की जाती है। जिस प्रकार जल डालने से अग्नि शान्त हो जाती है, उसी प्रकार तृष्णा दासनुदास हो जाती है अथवा दासनुदास (बनने की भावना से) तृष्णा शान्त हो जाती है। ऐसे जीव को यम के दूत अथवा चाण्डाल नही लगते, इस प्रकार (साधक पुरुष गुरमुख ही) ससार-सागर से तर जाता है, और (दूसरों को भी) तार लेता है ।।२।।

गुरमुखि कूड़ु न भावई
सचि रते सच भाइ ।।
साकत सचु न भावई
कूड़ै कूड़ी पांइ ।।
सचि रते गुरि मेलिऐ सचे सचि
समाइ ।।३।।

गुरु के उपदेश को ग्रहण करने वाले (साधक) को झूठ अच्छा नही लगता क्योंकि वह सत्य मे अनुरक्त रहता है। उसे सत्य ही भाता है। (पर) शाक्त (माया के उपासको) को सत्य नही भाता, (वे) झूठे हैं (उनकी) बुनियाद (पाइ) झूठी है (झूठ की नीव पर महल झूठा बनता है। वे झूठ मे ही बसते हैं किन्तु) जो गुरु के मिलाप से सत्य मे अनुरक्त होते हैं वे (सत्यवादी) सत्यस्वरूप में समाहित हो जाते हैं ।।३।।

मन महि माणकु लालु
नामु रतनु पदारथु हीरु ।।
सचु वखरु धनु नामु है
घटि घटि गहिर गंभीरु ।।
नानक गुरमुखि पाईऐ
दइआ करे हरि हीरु ।।४।।२१।।

(प्रत्येक) मन में ही माणिक्य और लाल है। नाम ही रत्न है और (वही) हीरा है। सच्चा सौदा और सच्चा धन नाम ही है। 'वह' अथाह और गम्भीर (प्रभु) घट-घट में (रम रहा) है। हे नानक! (यदि) परमात्मा दया करे तो गुरु के उपदेश से हरि की अथवा नाम रूपी हीरे की प्राप्ति होती है ।।४।।२१।।

सिरी रागु महला १।।

भरमे भाहि न विझवै
जे भवै दिसंतर देसु ।।
अंतरि मैलु न उतरै
ध्रिगु जीवणु ध्रिगु वेसु ।।
होरु कितै भगति न होवई
बिनु सतिगुर के उपदेस ।।१।।

दिशा-दिशान्तरो और (अनेक) देशो मे (कोई भी) वेश धारण करके कितना ही भ्रमण करता रहे (तृष्णा की) अग्नि नही बुझती। यदि आन्तरिक मैल (पाप और हउमै) नही उतरी तो उस (फकीरी) जीव को और (फकीरी) वेश को भी धिक्कार है। (यह निश्चय कर लो कि) बिना सत्गुरु के उपदेश अन्य किसी (उपाय से) भक्ति नही (प्राप्त) हो सकती है। (और भक्ति के बिना आन्तरिक मैल नही उतरती) ।।१।।

मन रे गुरमुखि अगनि निवारि ।।
गुर का कहिआ मनि वसै
हउमै त्रिसना मारि ।।१।।रहाउ।।

(अत:) हे मेरे मन! गुरु के उपदेश द्वारा (आन्तरिक) अग्नि का निवारण करो। (यदि) गुरु का उपदेश मन मे बस जाए तो तृष्णा और (उसका मूल) अहकार मारा जाएगा ।।१।। रहाउ।।

मनु माणकु निरमोलु है
राम नामि पति पाइ ॥
मिलि सतसंगति हरि पाईऐ
गुरमुखि हरि लिव लाइ ॥
आपु गइआ सुखु पाइआ
मिलि सललै सलल समाइ ॥२॥

(हे भाई ! मानव --) मन रूपी माण्क्य अमूल्य (रत्न है, यदि) राम नाम (उस मन मे) आकर बसे (जिससे अहकार और तृष्णा दूर हो जाते हैं और जीव) प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है। सत्संगत मे मिलकर ही हरि (नाम) को पाया जाता है, (हरि नाम पाकर गुरमुख बनते हैं और) गुरमुख हरि में लिव लगाए रखता है। (लिव लग जाने से) आपाभाव (अहकार) दूर होता है (अहकार दूर होने से तृष्णा दूर होती है, दोनों के दूर हो जाने से) सुख प्राप्त होता है। (इस प्रकार सुख, जो) पानी को पानी में मिल कर समायित होने पर प्राप्त होता है ॥२॥

जिनि हरि हरि नामु न चेतिओ
सु अवगुणि आवै जाइ ॥
जिसु सतगुरु पुरखु न भेटिओ
सु भउजलि पचै पचाइ ॥
इहु माणकु जीउ निरमोलु है
इउ कउडी बदलै जाइ ॥३॥

जिसने हरि, हरि नाम का चितन नही किया, वह अवगुणो मे ही जन्मता-मरता है और जिसने सत्गुरु पुरुष के साथ भेंट (सगति) नही की, वह ससार-सागर मे खपता और कुढता रहता है (भाव डूबता रहता है)। (इस प्रकार यह) जीवन जो माण्क्य (तुल्य) अमूल्य है, कौडी के भाव बिक जाता है ॥३॥

जिना सतगुरु रसि मिलै
से पूरे पुरख सुजाण ॥
गुर मिलि भउजलु लंघीऐ
दरगह पति परवाणु ॥
नानक ते मुख उजले
धुनि उपजै सबदु नीसाणु ॥४॥२२॥

जिन्होने (गुरु के साथ प्रेम किया है) सत्गुरु प्रसन्न होकर उनको मिल गया है, वे ही पूर्ण पुरुष और ज्ञानवान है। (अत) गुरु को मिले हुए ही ससार-सागर से पार उतरते हैं और (परमात्मा की) दरबार में (वे ही) प्रतिष्ठा और प्रमाणिकता प्राप्त करते हैं। हे नानक ! केवल उनके मुख (वहाँ) उज्जवल होते हैं जिनके अन्त करण में शब्द रूपी नगारा बज रहा होता है और (नाम की) ध्वनि उठती रहती है ॥४॥२२॥

सिरी रागु महला १॥
वणजु करहु वणजारिहो
वखरु लेहु समालि ॥
तैसी वसतु विसाहीऐ
जैसी निबहै नालि ॥
अगै साहु सुजाणु है
लैसी वसतु समालि ॥१॥

हे व्यापारियो ! (जब) व्यापार करो (तो) सौदा सम्भाल कर (सावधानी से) लो। ऐसी वस्तु खरीदनी चाहिए जो साथ निभ सके (अर्थात् जो परलोक मे जीव के साथ चले और कामआवे)। आगे (वह) शाह (जिसने तुम्हें सौदा लेने भेजा था, बडा) सयाना है, (वह) तुमसे वस्तु को परख कर बहुत सम्भाल कर (तसल्ली करके) लेगा (भाव यह है कि परमात्मा तुमसे पूछेगा कि श्वास रूपी पूंजी लेकर मृत्यु-लोक में गुरु से शुभ वस्तु (नाम) खरीदने गए थे अब क्या वस्तु खरीदकर वापिस आए हो ॥१॥

भाई रे राम कहहु चितु लाइ ॥
हरिजसु वखरु लै चलहु
सहु देखै पतीआइ ॥१॥रहाउ॥

हे भाई ! चित्त लगाकर राम कहो। हरि यश रूपी सौदे को लेकर (यहाँ से) चलो, (जिससे) शाह (परमात्मा उस सौदे को) देखकर प्रसन्न होगा अथवा तुम्हारा विश्वास करेगा ॥१॥ रहाउ ॥

जिना रासि न सचु है
किउ तिना सुखु होइ
खोटै वणजि वणंजिऐ
मनु तनु खोटा होइ ॥
फाही फाथे मिरग जिउ
दूखु घणो नित रोइ ॥२॥

जिसके पास सत्य की पूँजी नही है, उसको कैसे सुख होगा ? (क्योंकि) खोटे सौदे को खरीदने से तन और मन (दोनों ही) खोटे होते हैं। (आगे जाकर खोटे सौदे वाले व्यापारी को) जाल में फसे हुए मृग की भांति अत्यधिक दुख होता है और (वह) सदैव रोता रहता है ॥२॥

खोटे पोतै ना पवहि
तिन हरिगुर दरसु न होइ ॥
खोटे जाति न पति है
खोटि न सीझसि कोइ ॥
खोटे खोटु कमावणा
आइ गइआ पति खोइ ॥३॥

(जैसे) खोटे (सिक्के) खजाने मे डाले नही जाते, (तैसे खोट के व्यापारी, अवगुण करने वाले, परमात्मा के खजाने में दाखिल नही किए जाते) उन्हें हरि रूपी गुरु का दर्शन नही होता। खोटों की न जाति होती है और न उनका सम्मान ही होता है। खोटी कमाई से कौन सफल हुआ है अथवा किसका कार्य सिद्ध हुआ है ? खोटे ने तो केवल खोट ही कमाना है, इसलिए उसने अपमानित होकर आवागमन मे अपनी प्रतिष्ठा ही खराब करनी है ॥३॥

नानक मनु समझाईऐ
गुर कै सबदि सालाह ॥
रामनाम रंगि रतिआ
भारु न भरमु तिनाह ॥
हरि जपि लाहा अगला
निरभउ हरि मन माह ॥४॥२३॥

हे नानक ! गुरु के शब्द से और प्रभु की प्रशंसा द्वारा (उनके) मन को समझाओ। (इस प्रकार) राम नाम के (प्रेम) रंग में रंगकर उन्हे न (पाप का) बोझा होगा और न ही कोई भ्रम (रहेगा)। हरि के जपने से उन्हें (फिर) लाभ ही लाभ होगा और भय से रहित हरि उनके मन मे आकर बस जाएगा (भाव निर्भय हरि की प्राप्ति हो जाएगी जो परम सर्वोत्तम अवस्था है) ॥४॥२३॥

सिरी रागु महला १घरु२॥

धनु जोबनु अरु फुलड़ा
नाठीअड़े दिन चारि ॥
पबणि केरे पत जिउ
ढलि ढुलि जुंमणहार ॥१॥

धन, यौवन और फूल चार दिनो के मेहमान है (ये तो) पद्मिनी (चौपती फूल) के पत्ते के समान (पानी के) अभाव होने पर (ढलि-ढुलि) मुरझाकर, सूखकर नाश हो जाते हैं ॥१॥

रंगि माणि लै पिआरिआ
जा जोबनु नउहुला ॥
दिन थोड़ड़े थके
भइआ पुराणा चोला ॥१॥रहाउ॥

हे प्यारे ! जब तक (तुम्हे) नवीन यौवन का उल्लास है, तब तक प्रभु-प्यारे से प्यार का आनन्द उठा लो, अन्यथा (जवानी के) दिन थोड़ हैं (यह शीघ्र ही समाप्त हो जाएंगे), थकान (भी होगी) और अन्तत शरीर रूपी चोले ने पुराना (बुड्ढा) हो ही जाना। है ॥१॥ रहाउ ॥

सजण मेरे रंगुले
जाइ सुते जीराणि ॥
हंभी वंञा डुंमणी
रोवा झीणी बाणि ।२॥

मेरे (प्रिय) मित्र जो रग-रलिया करने वाले थे, वे (अन्ततः) कब्रिस्तान मे जाकर सो गए है। मैं दुचित्त (दो मन-चित वाली) भी वही जा रही हूँ, लेकिन (मेरी जीवात्मा अन्दर ही अन्दर) धीमी आवाज में रो रही है ॥२॥

की न सुणेही गोरीए
आपण कंनी सोइ ॥
लगी आवहि साहुरै
नित न पेईआ होइ ॥३॥

(उपदेश तू कितनी देर सोएगी ?) हे गोरी (सुन्दरी स्त्री) तू अपने कानो से क्यो नही यह बात सुनती कि जब (तू) पीहर (घर) मे आई थी, तो तेरे मस्तक पर ससुराल (घर) लिखा हुआ था (अर्थात् ससुराल घर अवश्य जाना है)। (कन्या के लिए तो) पीहर (घर) नित्य नही होता (यह बात अब तक अपने कानो से नही सुनती) ॥३॥

नानक सुती पेईऐ
जाणु विरती संनि ॥
गुणा गवाई गंठड़ी
अवगण चली बंनि ॥४॥२४॥

हे नानक ! (देखो) जो लडकी अपने पीहर (मायके घर) मे (बेवक्त गोधुलि मे) सोई रहती है समझ लो (उसको वृत्तियो पर या घर पर दिन दिहाडे) सेंध लग रहा है (और अन्तत ऐसी लडकी) गुणो की गठरी गवा कर और अवगुणो (गठ्ठर) को बाधकर अथवा (अपने) अवगुणो से बधी (हुई जीवात्मा आगे) चलती है ॥४॥२४॥

सिरी रागु महला १ घरु २॥

आपे रसीआ आपि रसु
आपे रावणहारु ॥
आपे होवै चोलड़ा
आपे सेज भतारु ॥१॥

(परमात्मा) स्वयं ही रसिक है, स्वय ही रस है और स्वय ही (उस रस को भोगने वाला) भोगी है। स्वय ही स्त्री (रूप) है और स्वय ही पति (रूप) बनकर स्वय ही (हो जाता है) शैया ॥१॥

रंगि रता मेरा साहिबु
रवि रहिआ भरपूरि ॥१॥रहाउ॥

मेरा साहब (प्यारा) रंग (आनन्द) में अनुरक्त है और 'वह' पूर्ण रूप से (सर्वत्र) रम रहा है (अर्थात्) खेल कर रहा है ॥१॥ रहाउ ॥

आपे माछी मछुली
आपे पाणी जालु ॥
आपे जाल मणकड़ा
आपे अंदरि लालु ॥२॥

(मेरा साहब) स्वय ही मछयोरा है, स्वयं ही मछली है, स्वयं ही पानी है और (स्वय ही) जाली है। (वह) स्वयं ही जाल का मणका है (जाल को भारी करने के लिए उसमें लोहे के 'मणके' बांध दिए जाते हैं ताकि जाल जल मे डूबा रहे) और 'वह' स्वयं भीतर का (पुरानी मछली के भीतर पाया जाने वाला) लाल है, अथवा (खीचने वाली) रस्सी हैं ॥२॥

आपे बहुबिधि रंगुला
सखीए मेरा लालु ॥
नित रवै सोहागणी
वेखु हमारा हालु ॥३॥

हे सखियो ! मेरा (प्यारा) लाल स्वयं ही विविध भाति के रग (कौतुक) करने वाला (कौतुकी) है। 'वह' सुहागिन स्त्रियों, प्रेम दिवानियो को नित्य प्रेम करके (आत्मिक) आनन्द देता है, (किन्तु) मुझ (दोहागिनी की) दशा तो देखो (वह मेरे निकट भी नही आता) ॥३॥

प्रणवै नानकु बेनती
तू सरवरु तू हंसु ॥
कउलु तू है कवीआ तू है
आपे वेखि विगसु ॥४॥२५॥

(गुरु) नानक श्रद्धा व नम्रता सहित बेनती करते हैं कि हे मेरे स्वामी! तू ही स्वय सरोवर है और वहा कलोल करने वाला हस भी तू ही है। कमल (फूल) भी तू (स्वय) ही है और कुमुदनि भी तू (स्वय) तथा इनको विकसित करने वाला सूर्य चांद भी तू स्वय ही है अथवा प्रफुल्लित देखने वाला (सदा विकसित भी तू) स्वय ही है ॥४॥२५॥

सिरी रागु महला १ घरु ३॥

इहु तनु धरती बीजु करमा करो
सलिल आपाउ सारिंगपाणी ॥
मनु किरसाणु हरि रिदै जंमाइ लै
इउ पावसि पदु निरबाणी ॥१॥

(हे जिज्ञासु !) इस शरीर को धरती (बना लो), बीज बना लो (शुभ कर्मों को) और सारिंगपाणि परमात्मा को सीचने के लिए जल (बना लो)। मन को (बना लो) किसान (खेती करने वाला)। इस प्रकार हृदय में हरि (रूपी खेती) जमा लो, इस तरह तू निर्वाण पद (हृदय कमल का विकसित होना और आत्मिक आनन्द) को प्राप्त होगा ॥१॥

काहे गरबसि मूड़े माइआ ॥
पित सुतो सगल कालत्र माता
तेरे होहि न अंति सखाइआ
॥१॥रहाउ॥

हे मूर्ख ! तू (झूठी) माया का अभिमान क्यो करता है ? (और साक-सम्बन्धियो का भी क्यों अहंकार करता है) क्योकि तेरे (पिता, पुत्र, स्त्री, माता इन) सब में से कोई भी अन्त में सहायक नही होंगे ॥१॥ रहाउ ॥

बिखै बिकार दुसट किरखा करे
इन तजि आतमै होइ धिआई ॥
जपु तपु संजमु होहि जब राखे
कमलु बिगसै मधु आस्रमाई ॥२॥

(जिज्ञासु को चाहिए कि हृदय रूपी खेती मे गोडी करके बिगाड़ने वाले) दुष्ट विषय-विकारो को (बलपूर्वक) उखाड फैंक दे– त्याग देना चाहिए और समाहित चित्त होकर (निज) आत्म स्वरूप का ध्यान करें और (फिर इस खेती के) रक्षक जप, तप, संयम् (इन्द्रिय निग्रह) को बना दे। तभी तेरा हृदय कमल विकसित हो उठेगा और (उसमे से) मधु भाव अमृत रस पीएगा ॥२॥

बीस सपताहरो बासरो संग्रहै
तीनि खोड़ा नित कालु सारै ।।
दस अठार मै अपरंपरो चीनै
कहै नानकु इव एकु तारै ।।३।।२६।।

(जिज्ञासु) बीस (५ महाभूत, ५ तन्मात्राएं, ५ ज्ञानेन्द्रिय और ५ कर्मेन्द्रिय) और सात (५ प्राण मन और बुद्धि) के निवास स्थान (बासरो) अर्थात शरीर को वशीभूत करे और तीनों (बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था अथवा जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, मे नित्य (ही) काल का स्मरण करे (भाव याद रखे), और दस (६ शास्त्र और ४ वेद) और अठारह (पुराणो) मे अपरपार ब्रह्म परमात्मा को ही पहचाने। हे नानक ! इस प्रकार (ऐसे जिज्ञासु को) एक (परमात्मा) तार देगा ।।३।।२६।।

सिरी रागु महला १ घरु ३।।

अमलु करि धरती
बीजु सबदो करि
सच की आब नित देहि पाणी ।।
होइ किरसाणु ईमानु जंमाइ लै
भिसतु दोजकु मूड़े एव जाणी ।।१।।

(हे काजी ! अपने शरीर को शुभ) कर्मों की धरती बना और (उसमे गुरु से लिए हुए शब्द को) बीज बना कर (डाल दे) और उसकी सिचाई के लिए 'सत्य' की नदी को नित्य पानी दो। (इस प्रकार का आध्यात्मिक) किसान बनकर ईमान (रूपी खेती) को अकुरित कर लो। हे मूर्ख ! बिहिश्त (स्वर्ग का मार्ग) और दोजक (नरक का मार्ग)। इस प्रकार समझो ।।१।।

मतु जाणसहि गली पाइआ
माल कै माणै रूप की सोभा
इतु बिधी जनमु गवाइआ ।।१।।
रहाउ।।

यह मत समझो कि प्रभु (रब) की प्राप्ति केवल बातो से हो जाती है। (समझना तुम जैसो ने तो धन, माल, रूप और सौन्दर्य के अभिमान मे (मनुष्य) जन्म गवा दिया है ।।१।। रहाउ।।

ऐब तनि चिकड़ो
इहु मनु मीडको
कमल की सार नही मूलि पाई ।।
भउरु उसतादु नित भाखिआ बोले
किउ बूझै जा नह बुझाई ।।२।।

(हा, तुम जैसो की यह स्थिति है कि मानो एक तालाब है उसमे पानी है, चिक्कड है, कमल है। उसमे मेढक को तालाब मे उग रहे कमल की समझ नही, भवर गुजार कर रहे हैं। तालाब मे कमल मकरद रस मे रसयुक्त विकसित है, किन्तु मेंढक को फिर भी समझ नही आती) तैसे तुम्हारे शरीर के अवगुण कीचड़ जैसे हैं जिसमे यह मन मेंढक सदृश्य है (जिसको कीचड का तो पता है किन्तु) कमल की तनिक भी समझ नही है (चाहे) भवरा रूपी उस्ताद (मुन्शी गुरु) नित्य आवाज (उपदेश) दे रहा है (पर मेंढक रूपी मन नही समझता), कैसे जाने ? जब तक 'वह' (कर्त्ता-पुरुष स्वय उसको) समझ नही देता ।।२।।

आखणु सुनणा पउण की बाणी
इहु मनु रता माइआ ।।

(प्रश्न मन क्यो नही भवरे सदृश्य बोल रहे गुरु के शब्द को सुनता ? उत्तर . जब यह मन माया में अनुरक्त रहता है तो (गुरु का) कहना और (इसका) सुनना वायु की ध्वनि (की तरह अर्थ-रहित कानों से निकल जाती है) ! (किन्तु) जिन्होंने (माया

खसम की नदरि दिलहि पसिंदे
जिनी करि एक धिआइआ ॥३॥

की जगह खुदा को ही) एक निष्ठ होकर प्रियतम की आराधना की है (वे हो उस) मालिक की नज़र (कृपा दृष्टि) में हैं और (वे ही उसके) दिल को पसन्द है (भाव उसको प्रिय हैं।) ॥३॥

तीह करि रखे पंज करि साथी
नाउ सैतानु मतु कटि जाई ॥
नानक आखै राहि पै चलणा
मालु धनु कितकू संजिआही
॥४॥२७॥

(चाहे तुमने) तीस (रोजे) रखे है, पाच (नमाजो को) साथी बनाकर रखा है, (पर इतना सावधान हो जाओ कि) जिसका नाम शैतान तुमने रखा है वह) कही (नमाजो और रोजो को) काट (निष्फल) बना दे। (भाव) इनके फल से कही तुम्हे वचित न कर दें क्योंकि तू माया के प्रेम मे है और साइ के प्रेम मे नही) इसलिए वह तुम्हारे सहायक नही है (जब तक आन्तरिक बुराई नही छुटेगी तब तक रोजा नमाज मे कुछ नही होगा) बाबा नानक (पूछते हैं कि तूने) माल-धन किस लिए जमा किया है जब कि तुमने तो अन्त मे मृत्यु के मार्ग पर चलना है (भाव यह कि माल-धन यही छोड जाने है, तुम्हारे साथ नही चलेंगे, भला फिर क्यो इकट्ठा करते जा रहे हो। दिल तो उस माल-धन इकठे करने मे लगा हुआ है जिसने तुम्हारे साथ नही जाना। बताओ तो ? (केवल नमाज, रोजे, वगैरह से क्या बनेगा ?) ॥४॥२७॥

सिरी रागु महला १ घरु ४॥

सोई मउला जिनि जगु मउलिआ
हरिआ कीआ संसारो ॥
आब खाकु जिनि बंधि रहाई
धंनु सिरजणहारो ॥१॥

वही (केवल) मौयला है, जिसने (सारा) जगत प्रफुल्लित किया है और ससार को हरा-भरा बनाया है, जिसने जल और पृथ्वी आदि (विरोधा तत्वो को भी नियम में) बांधकर रखे हुए हैं। धन्य है (इनका) 'वह' रचयिता ॥१॥

मरणा मुला मरणा ॥
भी करतारहु डरणा ॥१॥रहाउ॥

(किन्तु यह रचना चलायमान है इसमें सभी ने) मरना है, (हाँ) मुल्ला (ने भी) मरना है। (यदि कहे कि मरना ही है तो डरने से क्या लाभ ? सुनो मुल्ला मरने से चाहे न डरो किन्तु) कर्त्तार से (अवश्य) डरना चाहिए क्योकि न मालूम 'वह' जीवन में कब, क्या, कैसी, कितनी सजा दे देवें ॥१॥ रहाउ॥

ता तू मुला ता तू काजी
जाणहि नामु खुदाई ॥
जे बहुतेरा पड़िआ होवहि
को रहै न भरीऐ पाई ॥२॥

(सच्चा) मुल्ला (और सच्चा) काजी तभी हो सकते हो यदि खुदा के नाम को जान लो। चाहे (कोई कितना) पढ़ा (लिखा) क्यो न हो किन्तु मरने से नही बच सकता (जैसे पनघडी के भर जाने से कोई पाई (डुबने से) नही बच सकती। (पाई-पनगडी जिसके नाचे छेद होता है, जब उसमे पानी भर जाता है, वह स्वयं जल में डूब जाती है) ॥२॥

सोई काजी जिनि आपु तजिआ
इकु नामु कीआ आधारो ॥
है भी होसी जाइ न जासी
सचा सिरजणहारो ॥३॥

(फिर सच्चा काजी भी तू नहीं, क्योंकि सच्चा) काजी वह है जिसने आपा भाव (अहंकार) का त्याग कर दिया है और (जिसने) एक सृष्टि का (एक मात्र) आधार ही अनुभव कर लिया है। जो सृष्टा (अब भी वर्तमान) है, (भूत काल में) भी था और (भविष्यत काल में) भी होगा, जो न जन्मता है न मरता है, जो कभी नाश नहीं होता, न ही विनाश होगा ॥३॥

पंज वखत निवाज गुजारहि
पड़हि कतेब कुराण ॥
नानकु आखै गोर सदेई
रहिओ पीणा खाणा ॥४॥२८॥

(चाहे तू) पांच वक्त नमाज पड़ता है, कुराण व अन्य किताबें (भी) पढ़ता रहता है (किन्तु तू अहंकार से नहीं छूटा, न नाम का आधार लिया और न सृष्टा का अनुभव किया, तुमको तो) हे नानक! कब्र बुला रही है (और कह रही है कि) तेरा खाना-पीना (यहीं) हो चुका (भाव तेरी मृत्यु निकट है) ॥४॥२८॥

सिरी रागु महला १ घरु ४॥

एकु सुआनु दुइ सुआनी नालि ॥
भलके भउकहि सदा बइआलि ॥
कूड़ु छुरा मुठा मुरदारु ॥
धाणक रूपि रहा करतार ॥१॥

(जब मैं अपने आन्तरिक दोषों को देखता हूँ, तो मेरे समक्ष एक भयानक स्वरूप खडा हो जाता है क्योंकि) मेरे साथ एक (लोभ रूपी) कुत्ता (और) दो (आशा और तृष्णा रूपी) कुत्तियाँ है (जो बइआलि हवा के चलने पर वृक्षों के पत्तों से उत्पन्न हुई आवाज से) सदा सवेरे (उठते ही) (हिंसक पशुओं की तरह) भौंकते हैं। (फिर मेरे पास) झूठ रूपी छुरा है और ठगी से लिया हुआ माल मुरदारु शववत् भी) (मेरे पास है)। हे कर्तार! (सचमुच) मैं तो भीलों (साँसी) के बिगड़े हुए भयानक रूप में रहता हूँ ॥१॥

मै पति की पंदि न करणी की कार ॥
हउ बिगड़ै रूपि रहा बिकराल ॥
तेरा एकु नामु तारे संसारु ॥
मै एहा आस एहो आधारु ॥१॥ रहाउ॥

मैंने न कोई (प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाली) शिक्षा (ग्रहण की) है, न (मैंने कोई) करने योग्य कार्य ही किया है। (हे कर्तार!) मैं तो भयानक बिगड़े रूप में रहता हूँ। किन्तु इस निराशा में भी, हे कर्तार! मुझे केवल एक आशा की किरण दिखती है कि) एक तेरा नाम है जो सारे संसार को तार देता है। यही मेरी आशा है और यही मेरा आश्रय है कि तू मुझे तारेगा ॥१॥ रहाउ ॥

मुखि निंदा आखा दिनु राति ॥
पर घरु जोही नीच सनाति ॥
कामु क्रोधु तनि वसहि चंडाल ॥
धाणक रूपि रहा करतार ॥२॥

मुख से (मैं) दिन रात (दूसरों की) निन्दा ही करता रहता हूँ। मैं नीच साँसियों की तरह नित्य पराया घर ही (चोरी करने के लिए) जोहता रहता हूँ। इसलिए मैं (कर्म से) नीच हूँ और चण्डाल हूँ। (मेरे) शरीर में काम और क्रोध रूपी चण्डाल बसते हैं (इसलिए) हे मेरे कर्तार! सचमुच मैं भीलों (साँसी) के बिगड़े हुए भयानक रूप में रहता हूँ ॥२॥

काही सुरति मलूकी वेसु ॥
हउ ठगवाड़ा ठगी देसु ॥
खरा सिआणा बहुता भारु ॥
धाणक रूपि रहा करतार ॥३॥

ध्यान तो (मेरा दूसरों को फँसाने) जाली डालने मे (रहता है किन्तु) वेश मेरा शरीफों (सज्जन-पुरुषो) वाला है। (अत) मैं एक वडा ठगने वाला (ठग) हूँ और एक आध को नही बल्कि सारे देश को ही ठगता रहता हूँ। (मैं) सयाना (तो) सच-मुच हूँ (किन्तु सयानप मेरी यह है कि उससे मैं पापो का) भार बहुत उठा रहा हूँ। (इसलिए) हे कर्तार ! (सचमुच) मैं तो भीलों (सांसो) के बिगडे भयानक रूप में रहता हूँ ॥३॥

मै कीता न जाता हरामखोरु ॥
हउ किआ मुहु देसा दुसटु चोरु ॥
नानक नीचु कहै बीचारु ॥
धाणक रूपि रहा करतार ॥४॥२९॥

(हे कर्तार !) मैं आपके किए हुए (उपकार) को भी नही जानता, (इसलिए) मैं हरामखोर हूँ ! मैं (तुम्हारी दरबार मे आकर) क्या मुख दिखाऊँगा ? (क्योंकि मैं) दुष्ट हूँ और चोर भी हूँ इसलिए मैं तुच्छ (नीच) नानक (आपके पास) एक (यही) विचार प्रकट करता हूँ कि हे मेरे कर्तार ! (सचमुच) मैं तो भीलो (सांसो) के बिगडे हुए भयानक रूप मे रहता हूँ ॥४॥२९॥

सिरी रागु महला १ घर ४॥

एका सुरति जेते है जीअ ॥
सुरति विहूणा कोइ न कीअ ॥
जेही सुरति तेहा तिन राहु ॥
लेखा इको आवहु जाहु ॥१॥

जितने जीव (जगत मे) है, (सभी की समझ के लिए, एक ही समझ (सुरति) सभी को दी गई है। समझ के बिना कोई भी (जीव) नही बनाया गया है। (किन्तु समझ की अवस्थाएँ भिन्न-भिन्न हैं)। जैसी जिसको समझ होती है वैसा ही उसका (काम करने का) मार्ग होता है। (जीवन के इस मार्ग के आधार पर ही) आने-जाने (जीने मरने) का हिसाब रखा जाता है ॥१॥

काहे जीअ करहि चतुराई ॥
लेवै देवै ढिल न पाई ॥१॥रहाउ॥

(तो फिर) हे जीव ! तू अपनी चतुराई क्यो करता है? (जब कि ऊपर कथित नियम) लेने देने मे (रत्ती भर) ढील नही दिखाता अत (हे जीव ! तू चतुराइओ को छोडकर प्रार्थना ही कर) ॥१॥ रहाउ ॥

तेरे जीअ जीआ का तोहि ॥
कित कउ साहिब आवहि रोहि ॥
जे तू साहिब आवहि रोहि ॥
तू ओना का तेरे ओहि ॥२॥

(हे परमात्मा !) (यह) जीव तेरे (किए हुए) हैं और तेरे (अपने बच्चे) हैं। तू उन जीवो का अपना पिता है फिर तू (इन जीवो के कुकर्म को देखकर) गुस्से मे क्यो आता है ? यदि (सचमुच) तू गुस्से में आ ही जाता है (तो भी) तू उनका (पिता) है और तेरे (बच्चे) हैं। (भाव तेरा गुस्सा पिता वाला रहम से भरा है) ॥२॥

असी बोलविगाड़ विगाड़ह बोल ॥
तू नदरी अंदरि तोलहि तोल ॥

(हे साहब !) हम मूर्ख हैं और कुत्सित बोल बोल कर बात को और बिगाड़ देते हैं, (किन्तु) फिर भी तू पितावत्

जह करणी तह पूरी मति ॥
करणी बाझहु घटे घटि ॥३॥

अपनी कृपा से (सभी को) तोलता है। जहाँ शुद्ध व्यवहार है वही पूर्ण बुद्धि है। (इस) शुद्ध व्यवहार के बिना बुद्धि (मति भी) (घट हो जाती है, और भी) घटती जाती है ॥३॥

प्रणवति नानक गिआनी कैसा होइ ॥
आपु पछाणै बूझै सोइ ॥
गुर परसादि करे बीचारु ॥
सो गिआनी दरगह परवाणु ॥४॥३०॥

(जिसको पूर्ण मति है वह ज्ञानी है अब गुरुदेव कल्यण मार्ग समझाते हैं)। (बाबा) नानक की विनती है कि (ब्रह्म) ज्ञानी कैसे हो ? (उत्तर) जो आप (हउमै को निवृत करके) आत्मस्वरूप को पहचानता है और वह फिर उस (साहब को) भी जान लेगा (प्रश्न यह पहचान और बूझ कैसे प्राप्त हो ?) (उत्तर) गुरु की कृपा (प्राप्त करें और उस द्वारा) विचार (चिन्तन, मनन) करता रहे। इस प्रकार ज्ञानी (परमात्मा के) दरबार में प्रामाणिक (स्वीकृत) होगा ॥४॥३०॥

सिरी रागु महला १ घरु ४॥

तू दरीआउ दाना बीना
मै मछुली कैसे अंतु लहा ॥
जह जह देखा तह तह तू है
तुझ ते निकसी फूटि मरा ॥१॥

(हे मेरे साहब !) तू समुद्र (सदृश्य अथाह) है, अनन्त है, (सब कुछ) जानने वाला (ज्ञाता), और देखने वाला बीना है, (भला) मैं मछली (अल्पज्ञ जीव तेरा) अन्त कैसे पा सकती हूँ ? (मुझे केवल इतना मालूम है कि तू सर्वव्यापक भी है क्योंकि) जहाँ-जहाँ (मैं) देखती हूँ, वहाँ-वहाँ तू ही (व्यापक हो रहा) है। (मैं मछली) तुझसे निकलने पर फूट (तड़प-तड़प कर) मर जाती हूँ ॥१॥

न जाणा मेउ न जाणा जाली ॥
जा दुखु लागै ता तुझै समाली ॥१॥ रहाउ॥

न तो मै मछिआरे को जानती हूँ और न (ही उसके) जाल को। मुझे जब दुःख लगता है तो सहायता के लिए मैं तुझे ही याद करती हूँ ॥१॥ रहाउ॥

तू भरपूरि जानिआ मै दूरि ॥
जो कछु करी सु तेरै हदूरि ॥
तू देखहि हउ मुकरि पाउ ॥
तेरै कमि न तेरै नाइ ॥२॥

(हे स्वामी !) तू तो पूर्ण रूप से व्यापत है, (किन्तु) मैं तुझे (कुकर्म करने के समय) दूर जान लेती हूँ। (इसलिए मैं) जो कुछ करती हूँ (वह) तेरे ही ही प्रत्यक्ष होता है (तेरे से कुछ छिपा नही होता है)। (हाँ) तू (मेरे कर्मों को) देखता रहता है और मैं (फिर भी) इन्कार करती रहती हूँ। न मैं तेरे काम की हूँ और न तेरे नाम की (भाव न तो मैं उन कार्यों को करने में प्रवृत हूँ जो काम आपको प्रिय है और न मैं तेरे नाम का ही) चिन्तन करती हूँ ॥२॥

जेता देहि तेता हउ खाउ ॥
बिआ दरु नाही कै दरि जाउ ॥

जितना भी तू देता (रहता) है, उतना ही मैं (मैं ढीठ होकर) खाती (रहती) हूँ। (पर मैं करूँ क्या ? तेरे बिना और कोई)

नानकु एक कहै अरदासि ॥ जीउ पिंडु सभु तेरै पासि ॥३॥	दूसरा दरवाजा है ही नहीं, (मैं और) किस द्वार पर जाऊँ ? जहाँ मुझे विश्राम मिले। (इसलिए) (बाबा) नानक एक प्रार्थना करते हैं कि (मेरा) जीव और शरीर सभी तेरे पास (समर्पित) रहें ॥३॥
आपे नेड़ै दूरि आपे ही आपे मंझि मिआनुो आपे वेखै सुणे आपे ही कुदरति करे जहानुो ॥ जो तिसु भावै नानका हुकमु सोई परवानुो ॥४॥३१॥	(हे प्रभु !) तू स्वयं ही निकट है, स्वयं ही (निकट-दूर के) मध्य में है, स्वयं ही (सभी कुकर्म) देखता है (और) स्वयं ही (सभी की प्रार्थना) सुनता है। (हाँ) वह स्वयं ही (अपनी) शक्ति से जहान की रचना कर देता है (इसलिए) जो 'उसे' भाता है, वही हुकम, हे नानक ! (हमें सदा) मान्य हो ॥४॥३१॥

सिरी रागु महला १ घरु ४॥

कीता कहा करे मनि मानु ॥ देवणहारे कै हथि दानु ॥ भावै देइ न देई सोइ ॥ कीते कै कहिऐ किआ होइ ॥१॥	(परमात्मा का) बनाया हुआ (अल्पज्ञ) जीव (अपने) मन में भला क्या अभिमान कर सकता है (जबकि) दान देना (उस कर्त्तार के अपने) हाथ में हैं। 'वह' (कर्त्ता देने वाला) चाहे (तो किसी को) देवे (न भावें तो) न देवे। (उसकी मर्जी पर सब कुछ निर्भर है)। 'उसके' बनाए गए जीव के कहने से (भला) क्या हो सकता है ? ॥१॥
आपे सचु भावै तिसु सचु ॥ अंधा कचा कचु निकचु ॥१॥रहाउ॥	(देने वाला कर्त्तार) स्वयं सत्य (स्वरूप) है। 'उसे' सत्य ही भाता है (किन्तु बनाया हुआ अल्पज्ञ जीव अन्धा) अज्ञानी है। (चचल होने के कारण जीव मन से) कच्चा है, (भ्रम के कारण बुद्धि से) कच्चा है और (नश्वर शरीर होने के कारण तो) विशेष कच्चा है ॥१॥ रहाउ॥
जा के रुख बिरख आराउ ॥ जेही धातु तेहा तिन नाउ ॥ फुलु भाउ फलु लिखिआ पाइ ॥ आपि बीजि आपे ही खाइ ॥२॥	(जैसे माली) जिसके रुख, वृक्ष होते हैं, उनको 'वह' स्वयं ही पालता, रक्षा करता और हर तरह से सजाता है (किन्तु फिर भी वह) (जिस बूटं की) जो नसल (धातु) होती है उस अनुसार नाम लिख देता है। (इसी प्रकार) फूल के भाव के अनुसार फल भी लिखे जाते हैं (अर्थात् मनुष्य के जीवन रूपी वृक्ष में जो अच्छे-बुरे कर्मों के फूल लगते हैं, उसी के अनुसार फल भी होते हैं। यह कर्मों का विधान है।) अतः जीव स्वयं ही जो बोता है, वही खाता है ॥२॥

कची कंध कचा विचि राजु ॥
मति अलूणी फिका सादु ॥
नानक आणे आवै रासि ॥
विणु नावै नाही साबासि ॥३॥३२॥

(जैसे कोई) कंध (=मकान) होवे कच्चा (और उसारी करने वाला) राज भी जो अन्दर (रहता हो पर वह भी) होवे कच्चा और (उस राज की भी) बुद्धि होवे कच्ची तो (उसमें निवास भी) बेसवाद ही होगा। (उसी तरह मनुष्य—) शरीर कच्चा है (क्योकि खम्भे के बिना है और) मन भी अन्दर कच्चा है (जो शरीर की अगवाई करता है और उस मन की अगवाई करने वाली) बुद्धि (भी सर्वज्ञ नही है बल्कि भय, भ्रम करके नाम-रूपी) नमक से रहित होने के कारण रस-हीन है। किन्तु जीवन को रसमय बनाने के लिए आवश्यक है कि जीव में दृढ़ता आ जाए कि करण कारण दातार प्रभु एक है, मेरे किए कुछ भी नहीं होता)। (हाँ) यदि (जिसके जीवन में) 'वह' स्वयं (कृपा करके) स्वाद लाता है उसी को रस आयेगा। हे नानक! यह सब रस नाम (की आराधना) के बिना प्राप्त नही होते हैं ॥३॥३२॥

सिरी रागु महला १ घरु ५॥

अछल छलाई नह छलै
नह घाउ कटारा करि सकै ॥
जिउ साहिबु राखै तिउ रहै
इस लोभी का जीउ टलपलै ॥१॥

(प्रश्न—हे गुरु! कैसे यह सम्भव है कि) न छले जाने वालो को भी छल लेने वाली (माया मुझे) न छल सके? (हाँ जी! कैसे सभव हो कि इस ठगनी की) बडी कटार (मुझे) घाव (जख्म) न कर सके? (उत्तर हे भाई! प्रभु) मालिक जसे (इस जीव को) रखे (यह) उसी तरह रहे तो माया नही छल सकती। (प्रश्न इन्सान के स्वभाव मे लोभ है। लोभ अधेरा है जिस कारण) इस लोभी मनुष्य का मन डावाडोल हो जाता है ॥१॥

बिनु तेल दीवा किउ जलै ॥१॥ रहाउ॥

(इसका कोई इलाज बताओ? उत्तर. दीपक जला दो। प्रश्न मेरे पास तेल नही) बिना तेल के दीवा कैसे जले? ॥१॥रहाउ॥

पोथी पुराण कमाईऐ ॥
भउ वटी इतु तनि पाईऐ ॥
सचु बूझणु आणि जलाईऐ ॥२॥

(उत्तर इस मार्ग का दीपक यह है कि धर्म उपदेश वाली) पोथियाँ और (धर्म-कथा वाले) पौराणिक ग्रन्थो मे (बताई गई नाम की) कमाई करे (यह है मानो तेल) और इस शरीर में (परमेश्वर के) भय को रखना यह (दीपक मे) बत्ती पाना है, (फिर) गुरु से सच्चा ज्ञान लाकर (प्राप्त करके) (इस अग्नि से दीवा जला दे ॥२॥

इहु तेलु दीवा इउ जलै ॥
करि चानणु साहिब तउ मिलै ॥१॥ रहाउ॥

यह (हे भाई!) तेल (बत्ती और अग्नि,) ऐसे जलता है (यह दीपक अर्थात् इसका) प्रकाश, (अपना साथी) कर लो (तब तू द्वार पर अवश्य (पहुँचेगा और) तुम्हे साहब मिल जाएगा ॥१॥ रहाउ॥

इतु तनि लागै बाणीआ ॥
सुखु होवै सेव कमाणीआ ॥
सभ दुनीआ आवण जाणीआ ॥३॥

(फिर यह सोचा कि) सारी दुनिया (नश्वर) आने जाने वाली है। (जब तेरी बारी आयेगी तो) (यम रूपी) बाणियां इस शरीर को आकर लगेगा (किन्तु तुझे फिर भी ऊपर बताई हुई स्वामी की की हुई) कमाई की सेवा का सुख होगा ॥३॥

विचि दुनीआ सेव कमाईऐ ॥
ता दरगह बैसणु पाईऐ
कहु नानक बाह लुडाईऐ ॥४॥३३॥

(इसलिए भला इसी में है कि) जब तक दुनियां में (हो, तब तक ऊपर बताई गई स्वामी की) सेवा की कमाई करें (तभी) मर कर प्रभु के दरबार मे सम्मान से बैठने को मिलता है। हे नानक ! (तभी प्रसन्नता में) बाहे हिलाई जाती है ॥४॥३३॥

(तीसरी पातशाही गुरु अमरदास साहब के चउपदे प्रारम्भ)

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥

सिरी रागु महला ३ घर १॥

हउ सतिगुरु सेवी आपणा
इकमनि इकचित भाइ ॥
सतिगुरु मनकामना तीरथु है
जिस नो देइ बुझाइ ॥
मनचिंदिआ वरु पावणा
जो इछै सो फल पाइ ॥
नाउ धिआईऐ नाउ मंगीऐ
नामे सहिज समाइ ॥१॥

मै अपने सतगुरु की सेवा एकाग्र मन से, एकाग्र चित्त से, प्रेम के साथ करता हूँ। सतगुरु मन की कामनाओं को पूर्ण करने वाला तार्थ है। (किन्तु गुरु की महिमा वह समझता है) जिसे 'वह' स्वय समझाता है। मन वाछित वर मिल जाने से जो भी इच्छा करें वह फल प्राप्त हो जाता है। (लेकिन भला इसी मे ही है कि गुरु यदि प्राप्त हो जाए तो उससे) नाम ही मांगे, (नाम लेकर उस) नाम का ही ध्यान करे और (इस) नाम द्वारा ही सहज (परमात्मा मे समा जाए ॥१॥

मन मेरे हरिरसु चाखु तिख जाइ।
जिनी गुरमुखि चाखिआ
सहजे रहे समाइ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! हरि-रस चखने से प्यास जाती है। जिन्होने गुरु के उपदेश द्वारा (हरि-रस) चखा है, वे सहज (परमात्मा) मे समा गये हैं ॥१॥ रहाउ ॥

जिनी सतिगुरु सेविआ
तिनी पाइआ नामु निधानु ॥
अंतरि हरिरसु रवि रहिआ
चूका मनि अभिमानु ॥
हिरदै कमलु प्रगासिआ
लागा सहजि धिआनु ॥
मनु निरमलु हरि रवि रहिआ
पाइआ दरगहि मानु ॥२॥

जिन्होंने सतगुरु की सेवा की है, उन्हों ने ही नाम का खजाना प्राप्त किया है। उनके अतर्गत हरि-रस व्याप्त हो रहा और मन से अभिमान निवृत हो गया है। उनका हृदय-कमल विकसित हो गया है और उनका ध्यान (परमात्मा में) सहज ही लग जाता है। उनके निर्मल मन में हरि है, (हाँ) हरि का वास है और वे (परमात्मा) को दरबार में सम्मान प्राप्त करते हैं ॥२॥

सतिगुरु सेवनि आपणा
ते विरले संसारि ॥
हउमै ममता मारि कै
हरि राखिआ उरधारि ॥
हउ तिन कै बलिहारणै
जिना नामे लगा पिआरु ॥
सेई सुखीए चहु जुगी
जिना नामु अखुटु अपारु ॥३॥

(हाँ) अपने सत्गुरु की सेवा करने वाले संसार में विरले (बहुत कम) हैं जिन्होंने अहंकार और ममता को मारकर, हृदय में हरि (परमात्मा) को धारण करके रखा है। मैं उन पर बलिहारी हूँ, जिनका (हरि) नाम के साथ प्यार लगा है। वे ही चार युगों में सुखी हैं, जिन्हो के पास अपार परमात्मा का अखुट नाम (खजाना) है ॥३॥

गुर मिलिऐ नामु पाईऐ
चूकै मोह पिआस ॥
हरि सेती मनि रवि रहिआ
घर ही माहि उदासु ॥
जिना हरि का सादु आइआ
हउ तिन बलिहारै जासु ॥
नानक नदरी पाईऐ
सचु नामु गुणतासु ॥४॥१॥३४॥

गुरु के मिलने से ही नाम की प्राप्ति होती है, (जिस नाम से) मोह विकार और प्यास (तृष्णा) दूर हो जाते हैं। मन भी हरि के साथ रमण करता रहता है और घर (गृहस्थ) में रहता हुआ भी वह अनासक्त (उदास) रहता है। जिनको हरि (नाम) का स्वाद आया है, मैं उन पर बलिहारी जाता हूँ। हे नानक! गुणों के भण्डार परमात्मा का सच्चा नाम 'उसकी' कृपादृटि से ही प्राप्त होता है ॥४॥१॥३४॥

सिरी रागु महला ३॥

बहु भेख करि भरमाईऐ
मनि हिरदै कपटु कमाइ ॥
हरि का महलु न पावई
मरि विसटा माहि समाइ ॥१॥

जो बहुत (धार्मिक) वेष धारण करके मन में हृदय में कपट रखकर देश का भ्रमण करता है, उसे हरि का महल (स्वरूप) प्राप्त नहीं होता बल्कि मरने के बाद वह विष्टा (मल) में समाता है ॥१॥

मन रे ग्रिह ही माहि उदासु ।
सचु संजमु करणी सो करे
गुरमुखि होइ परगासु ॥१॥रहाउ॥

हे मन! घर (गृहस्थ) ही में अनासक्त (उदास) रहो। सच और संयम की कमाई वह करता है जिसे गुरु के द्वारा (नाम का) प्रकाश प्राप्त होता है ॥१॥ रहाउ ॥

गुर कै सबदि मनु जीतिआ
गति मुकति घरै महि पाइ ॥

गुरु के शब्द (नाम) द्वारा ही (अपने) मन को जीत कर, वे गृहस्थ में रहते हुए ही (स) गति और मुक्ति प्राप्त करते हैं।

हरि का नामु धिआईऐ
सतसंगति मेलि मिलाइ ॥२॥

(इसलिए हे मन !) सच्ची संगति के मेल-मिलाप से हरि (परमात्मा) के नाम का ध्यान करना चाहिए ॥२॥

जे लख इसतरीआ भोग करहि
नवखंड राजु कमाहि ॥
बिनु सतगुर सुखु न पावई
फिरि फिरि जोनी पाहि ॥३॥

यदि लाखों स्त्रियां भोग के लिए (मिल जायें) और नवखण्ड का राज्य भी कर ले, तो भी बिना सतगुर के सुख नहीं प्राप्त हो सकता बल्कि फिर-फिर योनियों (जन्म) ही प्राप्त करेगा ॥३॥

हरि हारु कंठि जिनी पहिरिआ
गुर चरणी चितु लाइ ॥
तिना पिछै रिधि सिधि फिरै
ओना तिलु न तमाइ ॥४॥

हरि (के नाम का) जिन्होंने गले में हार पहना है और गुरु के चरणों में चित्त लगाया है, उनके पीछे (आज्ञा में) रिद्धियाँ, सिद्धियाँ घूमती हैं, किन्तु उनको तिल भर भी (सांसारिक विभूतियों की) इच्छा (परवाह) नहीं होती (क्योंकि वे सब नश्वर है। ऐसा उन्होंने निश्चय करके जाना है) ॥४॥

जो प्रभ भावै सो थीऐ
अवरु न करणा जाइ ॥
जनु नानकु जीवै नामु लै
हरि देवहु सहजि सुभाइ ॥५॥२॥३५॥

जो प्रभु को भाता है वही होता है किसी दूसरे के करने से कुछ नहीं होता। दास नानक (हरि का) नाम लेकर (ही) जीवित रहता है। हे हरि ! (मुझे नाम का दान) स्वत सिद्ध दो अथवा नाम से सहज अवस्था प्राप्त करके मेरा स्वभाव शान्त (सहज) हो ॥५॥२॥३५॥

सिरी रागु महला ३ घरु १॥

जिस ही की सिरकार है
तिस ही का सभु कोइ ॥
गुरमुखि कार कमावणी
सचु घटि परगटु होइ ॥
अंतरि जिसु कै सचु वसै
सचे सची सोइ ॥
सचि मिले से न विछुड़हि
तिन निज घरि वासा होइ ॥१॥

जिसकी सरकार (राज्य) होता है सभा उसी के ही होकर रहते हैं। गुरु के उपदेश द्वारा कार्य (नाम) की कमाई करने से सच्चा परमात्मा हृदय मे प्रकट हो जाता है। जिसके अन्तर्गत सच का निवास है, वे सच्चे हैं और उनकी शोभा भी सच्चा है। जो सच्चे परमात्मा को मिलते हैं, वे (पुनः उससे) बिछुड़ते नहीं हैं और उनका निवास निज (पवित्र या अपने स्व-स्वरूप) घर में हो जाता है ॥१॥

मेरे राम मै हरि बिनु
अवरु न कोइ
सतिगुरु सचु प्रभु निरमला
सबदि मिलावा होइ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे राम ! हरि के बिना मेरा और कोई आश्रय नहीं है। सतगुरु के निर्मल शब्द द्वारा ही सच्चे प्रभु के साथ मिलाप होता है ॥१॥ रहाउ ॥

सबदि मिलै सो मिलि रहै
जिस नउ आपे लए मिलाइ ।।
दूजै भाइ को ना मिलै
फिरि फिरि आवै जाइ ।।
सभ महि इकु वरतदा
एको रहिआ समाइ ।।
जिस नउ आपि दइआलु होइ
सो गुरमुखि नामि समाइ ।।२।।

जिसे (गुरु) शब्द मिलता है वह परमात्मा से मिला रहता है। 'वह' स्वय ही उसे अपने से मिला लेता है। द्वैत-भाव रखने वाले को (परमात्मा) नही मिलता, वह बार-बार आता-जाता है अर्थात् जन्मता-मरता है। सभी (जीवो) मे एक (परमात्मा) व्याप्त है और 'वही' सभी मे समाया हुआ है। जिस पर 'वह' स्वय दयालु होता है, वह गुरु के सन्मुख होकर नाम के द्वारा 'उसमें' समा जाता है ।।२।।

पड़ि पड़ि पंडित जोतकी
वाद करहि बीचारु ।।
मति बुधि भवी न बुझई
अंतरि लोभ विकारु ।।
लख चउरासीह भरमदे
भ्रमि भ्रमि होइ खुआरु।।
पूरबि लिखिआ कमावणा
कोई न मेटणहारु ।।३।।

पढ़-पढ़कर पंडित और ज्योतिषी वाद-विवाद और विचार करते हैं। उनकी मति और बुद्धि (तर्क-वितर्क के कारण) (नाम से) भटक जाती है इस प्रकार उनकी तृष्णा शान्त नही होती और न ही लोभ और विकार अन्दर से समाप्त होते है।
वे चौरासी लाख योनियो में भटकते हैं और भटक-भटक के नष्ट-भ्रष्ट होते हैं। पूर्व-लिखित कर्मों के अनुसार ही कर्म करते है, (हां) उनके लेख को कोई भी मिटाने वाला नही है ।।३।।

सतगुर की सेवा गाखड़ी
सिरु दीजै आपु गवाइ ।।
सबदि मिलहि ता हरि मिलै
सेवा पवै सभ थाइ ।।
पारसि परसीऐ पारसु होइ
जोती जोति समाइ ।।
जिन कउ पूरबि लिखिआ
तिन सतगुरु मिलिआ आइ ।।४।।

सतगुरु की सेवा (अति) कठिन है। सिर देना पडता है और अपने आपा भाव—अहंकार को मिटाना पड़ता है। शब्द (नाम) मिलने से ही हरि मिलता है। इस प्रकार की की गई सेवा सभी जगह सफल होती है। पारस (गुरु) को स्पर्श करने से (लोहा-तुच्छ जीव) पारस हो जाता है और (जीव की) ज्योति (परम) ज्योति में समा जाती है। जिनके (मस्तक में) पूर्व-लिखित (संयोग का) लेख लिखा है, उन्हें ही सतगुरु आकर मिलता है ।।४।।

मन भुखा भुखा मत करहि
मत तू करहि पूकार ।।

हे (मेरे) मन ! 'भूखा हूँ', 'भूखा हूँ' (तृष्णा के अधीन होकर रोया) मत करो और किसी के आगे (भी) पुकार (शिकायत) मत

लख चउरासीह जिनि सिरी
सभसै देइ अधारु ॥
निरभउ सदा दइआलु है
सभना करदा सार ॥
नानक गुरमुखि बुझीऐ
पाईऐ मोखदुआर ॥५॥३॥३६॥

करना। जिस (परमात्मा ने) चौरासी लाख योनियों की सृष्टि की है, 'वह' सबको आधार (आश्रय) दे रहा है। निर्भय (परमात्मा) सदा दयालु है और सभी की सार-संभाल करता है। हे नानक! गुरु-शब्द के द्वारा ही (यह भेद) समझ आता है और मोक्ष का द्वार प्राप्त होता है ॥५॥३॥३६॥

सिरी रागु महला ३॥

जिनी सुणि कै मंनिआ
तिना निजघरि वासु ॥
गुरमती सालहि सचु
हरि पाइआ गुणतासु ॥
सबदि रते से निरमले
हउ सद बलिहारै जासु ॥
हिरदै जिन कै हरि वसै
तितु घटि है परगासु ॥१॥

जिन्होंने (गुरु-शब्द) सुनकर मनन किया है, उनका आत्म-स्वरूप (निज घरि) में वास हुआ है। गुरु की मति लेकर (उन्होंने) सचे (परमात्मा की) प्रशंसा करके गुणों के भण्डार-हरि को प्राप्त किया है। जो (गुरु के) शब्द से अनुरक्त हैं, वे निर्मल हैं और मैं सदा उन पर बलिहारी जाता हूँ। (सच जानो) जिनके हृदय में हरि का निवास है, उनके अन्तर्गत ही (ज्ञान) प्रकाश है ॥१॥

मन मेरे हरि हरि निरमलु धिआइ ॥
धुरि मसतकि जिन कउ लिखिआ
से गुरमुखि रहे लिवलाइ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन! निर्मल हरि-हरि का ध्यान करो। धुर से जिनके मस्तक पर (हरि-नाम स्मरण) लिखा हुआ है, वे ही गुरु के सन्मुख रहकर (हरि-परमात्मा के) स्नेह (लिव) मे रहते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

हरि संतहु देखहु नदरि करि
निकटि वसै भरपूरि
गुरमती जिनी पछाणिआ
से देखहि सदा हदूरि ॥
जिन गुण तिन सद मनि वसै
अउगुणवंतिआ दूरि ॥
मनमुख गुण तै बाहरे
बिनु नावै मरदे झूरि ॥२॥

हे हरि के सतजनों! (ध्यान पूर्वक) देखो। परमात्मा (अति) निकट बस रहा है और (सब में) व्याप्त हो रहा है। गुरु की मति लेकर जिन्होने 'उसे' पहचान लिया है, वे (परमात्मा को) सदा अति समीप (प्रत्यक्ष) देखते हैं। जिन्होने (आध्यात्मिक) गुण ग्रहण किये हैं, उनके मन में सदा (परमात्मा) वास करता है किन्तु जो अवगुणों से भरे हुए हैं, उनसे 'वह' दूर है। अपने मन के पीछे चलने वाले जीव—मनमुख गुणों से शून्य (बाहर) हैं और नाम के बिना दुख झेलते हुए मर जाते हैं ॥२॥

जिन सबदि गुरू सुणि मंनिआ
तिन मनि धिआइआ हरि सोइ ॥
अनदिनु भगती रतिआ
मनु तनु निरमल होइ ॥
कूड़ा रंगु कसुंभ का
बिनसि जाइ दुखु रोइ ॥
जिसु अंदरि नाम प्रगासु है
ओहु सदा सदा थिरु होइ ॥३॥

जिन्होंने शब्द सुनकर (नाम) माना (मनन किया) उन्होंने मन से उस हरि का ध्यान किया है। रात-दिन (प्रेम) भक्ति में अनुरक्त हैं और उनका मन तन निर्मल हुआ है। (मायिक-पदार्थों का) रंग कसुम्भे (के सदृश) झूठा (क्षणभंगुर) है और (शीघ्र ही) नाश हो जाता है और (मनमुख जीव को) दुःखी होकर रोना पड़ता है। किन्तु जिसके अन्तर्गत (हरि) नाम का प्रकाश (ज्ञान) है, वह सदा-सदा के लिए स्थिर हो जाता है ॥३॥

इहु जनमु पदारथु पाइ कै
हरिनामु न चेतै लिव लाइ ॥
पगि खिसिऐ रहणा नही
आगै ठउरु न पाइ ॥
ओह वेला हथि न आवई
अंति गइआ पछुताइ ॥
जिसु नदरि करे सो उबरै
हरि सेती लिव लाइ ॥४॥

यह (मनुष्य) जन्म रूपी (अमूल्य) पदार्थ प्राप्त कर के भी यदि प्रेम-साथ हरि-नाम का चिन्तन नहीं करता तो पैर के फिसलते ही (मौत आने पर) (उसने इस संसार में) रहना नहीं है और आगे (परलोक में) भी ठिकाना नहीं प्राप्त होगा। वह (नाम जपने की) वेला (मनुष्य देही वापस) हाथ नहीं आता है और अन्त में जीव पश्चाताप करता हुआ चला जाता है॥

(किन्तु) जिस पर (परमात्मा) कृपादृष्टि करता है, वह हरि के साथ स्नेह लगा कर (भव-सागर से) पार हो जाता है ॥४॥

देखा देखी सभ करे
मनमुखि बूझ न पाइ ॥
जिन गुरमुखि हिरदा सुधु है
सेव पई तिन थाइ ॥
हरिगुण गावहि हरि नित पड़हि
हरिगुण गाइ समाइ ॥
नानक तिन की बाणी सदा सचु है
जि नामि रहे लिव लाइ ॥५॥४॥३७॥

देखा-देखी सभी करते हैं, मन के पीछे लगने वाले—मनमुख ने (यह) समझ प्राप्त नहीं की है। गुरु के सन्मुख होकर जिन गुरुमुखों का हृदय शुद्ध हुआ है उनकी सेवा सफल हुई है। (ऐसे जीव) हरि के गुण गाते हैं, हरि (नाम) को नित्य पढ़ते हैं और अन्त में भी हरि के गुण गाते (हरि परमात्मा में) समा जाते हैं। हे नानक! उनकी वाणी (उपदेश) सदा सच है जो (हरि) नाम में स्नेह लगाकर रहते हैं ॥५॥४॥३७॥

सिरी रागु महला ३॥

जिनी इकमनि नामु धिआइआ
गुरमती वीचारि ॥

जिन्होंने एकाग्र मन से नाम का ध्यान किया है और गुरु की मति द्वारा (नाम पर) विचार (मनन) किया है, उनके मुख (उस

तिन के मुख सद उजले
तितु सचै दरबारि ॥
ओइ अंम्रितु पीवहि सदा सदा
सचै नामि पिआरि ॥१॥

सच्ची दरबार में सदा उज्ज्वल हैं। वे अमृत (नाम) सदा पीते हैं क्योंकि उनका प्यार सदा सच्चे नाम के साथ है ॥१॥

भाई रे गुरमुखि
सदा पति होइ ॥
हरि हरि सदा धिआईऐ
मलु हउमै कढै धोइ ॥१॥रहाउ॥

हे भाई ! गुरु के सन्मुख होने पर गुरमुख की सदा प्रतिष्ठा होती है। हरि-हरि (नाम) का सदा ध्यान (स्मरण) करो। (गुरु स्वयं) हउमै (अहंकार की) मैल निकाल कर (गरमुख को) शुद्ध कर देता है ॥१॥ रहाउ ॥

मनमुख नामु न जाणनी
विणु नावै पति जाइ ॥
सबदै सादु न आइओ
लागे दूजै भाइ ॥
विसटा के कीड़े पवहि विचि विसटा
से विसटा माहि समाइ ॥२॥

मनमुख (जीव) नाम (की महत्ता को) नहीं जानते हैं और वे बिना नाम के प्रतिष्ठा गवां कर (इस संसार से) जाते हैं। उनको शब्द (नाम) का स्वाद नही आया क्योंकि वे द्वैत-भाव (अन्य किसी के प्यार) मे लगे हुए हैं। वे विष्टा (विषय-विकारों के) कीड़े है और विष्टा मे ही पड़े रहते हैं और अन्ततः विष्टा (मल) मे ही समा जाते हैं ॥२॥

तिन का जनमु सफलु है
जो चलहि सतगुर भाइ ॥
कुलु उधारहि आपणा
धंनु जणेदी माइ ॥
हरि हरि नामु धिआईऐ
जिस नउ किरपा करे रजाइ ॥३॥

उनका जन्म सफल है जो सत्गुरु के प्रेम (हुक्म) में चलते हैं। वे अपने कुल का भी उद्धार कर लेते हैं (हाँ) उनको जन्म देने वाली माता भी धन्य है। हरि, हरि का नाम का ध्यान (स्मरण) करना चाहिए, (किन्तु वे ही स्मरण करते हैं) जिन पर परमात्मा प्रसन्न होकर (स्वयं) कृपा करता है ॥३॥

जिनी गुरमुखि नामु धिआइआ
विचहु आपु गवाइ ॥
ओइ अंदरहु बाहरहु निरमले
सचे सचि समाइ ॥
नानक आए से परवाणु हहि
जिन गुरमती हरि धिआइ ॥४॥५
॥३८॥

जिन्होने गुरु की शरण में आकर नाम का ध्यान (स्मरण) करके अन्तर के आपाभाव (अहं) को दूर किया है वे अन्दर और बाहर से निर्मल हैं, वे सच्चे हैं और (अन्त में) सत्य (परमात्मा) में ही समा जाते हैं। हे नानक ! (जगत में) उनका आना प्रमाणिक है जिन्होंने गुरु की मति द्वारा हरि परमात्मा का ध्यान (स्मरण) किया है ॥४॥५॥३८॥

सिरी रागु महला ३॥

हरि भगता हरि धनु रासि है
गुर पूछि करहि वापारु ॥
हरिनामु सलाहनि सदा सदा
वखरु हरिनामु अधारु ॥
गुरि पूरै हरिनामु दृड़ाइआ
हरि भगता अतुटु भंडारु ॥१॥

हरि (परमात्मा) की भक्ति करने वाले भक्त-व्यापारी के पास हरि-नाम का धन है और हरि-नाम की ही राशि (पूँजी) है, वे गुरू (शाह) से पूछकर (नाम-धन का) व्यापार करते हैं। वे हरि-नाम की सदा प्रशंसा करते हैं और उन्हें हरि-नाम के माल (वखर) का आश्रय है। पूर्ण गुरु ही हरि-नाम को (जीवन में) परिपक्व (दृढ़) कर देता है जिससे हरि के भक्तों को (नाम का) अटूट भंडार प्राप्त हो जाता है ॥१॥

भाई रे इसु मन कउ समझाइ ॥
ए मन आलसु किआ करहि
गुरमुखि नामु धिआइ॥१॥रहाउ॥

हे भाई !(अपने) इस मन को समझाओ (और कहो) हे मन ! आलस्य क्यों करता है ? गुरु की शरण में आकर नाम का ध्यान (स्मरण) करो ॥१॥ रहाउ ॥

हरि भगत हरि का पिआरु है
जे गुरमुखि करे बीचारु ॥
पाखंडि भगति न होवई
दुबिधा बोलु खुआरु ॥
सो जनु रलाइआ ना रलै
जिसु अंतरि बिबेक बीचारु ॥२॥

(प्रश्नः भक्ति क्या वस्तु है ? उत्तर) हरि की भक्ति है हरि (परमात्मा) का प्यार, यदि (जीव) गुरु की शरण मे आकर (उसकी दी हुई शिक्षा पर) विचार करें। पाखंड करने से भक्ति नही होती और द्वैत-भाव (दुविधा) के बोल बोलकर खराब होता है।

(पहचान फिर कैसे हो ?) जिसके अन्तर्गत विवेक-विचार (सत्य-असत्य को) समझने की सूझ है वह (पाखंडियों- दम्भियों मे रहकर भी) सर्वथा असग और एकाकी दीखता है ॥२॥

सो सेवकु हरि आखीऐ
जो हरि राखै उरि धारि ॥
मनु तनु सउपे आगै धरे
हउमै विचहु मारि ॥
धनु गुरमुखि सो परवाणु है
जि कदे न आवै हारि ॥३॥

उसको हरि का सेवक कहो जो हरि को हृदय में धारण करके रखता है, (अपने) मन और तन को अर्पण करके परमात्मा के आगे रख देता है और (अपने) अन्दर से अहंकार को मार (नष्ट कर) देता है। धन्य है वह गुरमुख जो अपने गुरु के सम्मुख रहकर आज्ञानुसार चलता है, वही ('उसकी' दरबार में) प्रमाणिक (स्वीकृत) है जो (भक्त) कभी भी विकारों से पराजित नही होता ॥३॥

करमि मिलै ता पाईऐ
विणु करमै पाइआ न जाइ ॥

कृपादृष्टि मिलने से (परमात्मा) प्राप्त होता है बिना कर्म (भाग्य) के (कृपादृष्टि की प्राप्ति नहीं की जा सकती)। चौरासी

लख चउरासीह तरसदे
जिसु मेले सो मिलै हरि आइ ॥
नानक गुरमुखि हरि पाइआ
सदा हरिनामि समाइ ॥४॥६॥
३९॥

लाख (जीव) ('उसको' मिलने के लिए) तरसते हैं किन्तु जिसे 'उसकी' कृपादृष्टि मिलती है वही हरि को आकर मिलता है। हे नानक! जो गुरु की शरण मे आते हैं वे गुरमुख हरि प्राप्त करके सदा हरि नाम में समा (तल्लीन हो) जाते हैं ॥४॥६॥३९॥

सिरी रागु महला ३॥

सुख सागरु हरिनामु है
गुरमुखि पाइआ जाइ ॥
अनदिनु नामु धिआईऐ
सहजे नामि समाइ ॥
अंदरु रचै हरि सच सिउ
रसना हरिगुण गाइ ॥१॥

हरि का नाम (सर्व) सुखों का सागर है, परन्तु यह गुरु के शरण में आने से प्राप्त किया जाता है। यदि प्रतिदिन (हरि) नाम का ध्यान करें तब अनायास (सहजे) ही नामी में लीन हुआ जा सकता है। यदि रसना से हरि के गुण गाये जायें तो हमारा हृदय हरि से हिल-मिल जाता है ॥१॥

भाई रे जगु दुखीआ दूजै भाइ ॥
गुर सरणाई सुखु लहहि
अनदिनु नामु धिआइ ॥१॥रहाउ॥

हे भाई! जगत में दुख 'द्वैत-भाव' अपना-पराया, (परमेश्वर पति को त्याग कर) अन्य से प्रीत करने के कारण है। जो गुरु की शरण में है और दिन-रात (परमात्मा के) नाम का ध्यान (स्मरण) करते हैं, वे ही सुख प्राप्त करते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

साचे मैलु न लागई
मनु निरमलु हरि धिआइ ॥
गुरमुखि सबदु पछाणीऐ
हरि अंमृत नामि समाइ ॥
गुर गिआनु प्रचंडु बलाइआ
अगिआनु अंधेरा जाइ ॥२॥

सच्चे हरि (परमात्मा) के नाम का ध्यान (स्मरण) करने वाले जीव को (विकारो की) मैल नही लगती, क्योंकि उनका मन निर्मल है। गुरु की शरण में आकर, गुरु के शब्द को पहचानना चाहिये, तभी वह हरि के अमृत-नाम मे समा सकता है। गुरु का प्रचंड ज्ञान जब प्रज्जवलित हो जाता है तब अज्ञान रूपी अंधेरा दूर हो जाता है ॥२॥

मनमुख मैले मलु भरे
हउमै त्रिसना विकारु ॥
बिनु सबदै मैलु न उतरै
मरि जंमहि होइ खुआरु ॥

अपने मन के सम्मुख रहने वाले मनमुख मैले हैं क्योंकि वे अहंकार और तृष्णा आदि विकारो की मैल से भरे रहते हैं। बिना (गुरु) शब्द के यह मैल नही उतर सकती और ऐसे जीव (बार-बार) मर कर जन्मते हैं और दु:खी होते हैं। वे नष्ट हो जाने

चातुरबाजी पलचि रहे
न उरवारु न पारु ॥३॥

वाली क्रीड़ा (खेल) में आसक्त हो रहे हैं, उन्हें न तो इस संसार में सुख मिलता है और न परलोक में ही ॥३॥

गुरमुखि जप तप संजमी
हरि कै नामि पिआरु ॥
गुरमुखि सदा धिआईऐ
एकु नामु करतारु ॥
नानक नामु धिआईऐ
सभना जीआ का आधारु ॥४॥७॥
४०॥

गुरु के सन्मुख रहने वाला गुरमुख जप, तप, संयम करता है क्योंकि उसे हरि (परमात्मा) के नाम के साथ प्यार है। इसलिए गुरु की शरण मे आकर कर्त्तार (प्रभु) के एक नाम का ध्यान (स्मरण) करना चाहिये। हे नानक ! उस परमात्मा के नाम का ध्यान (स्मरण) करें, जो सभी जीवों का आधार (आश्रय) है ॥४॥७॥४०॥

सिरी रागु महला ३॥

मनमुखु मोहि विआपिआ
बैरागु उदासी न होइ ॥
सबदु न चीनै सदा दुखु
हरि दरगह पति खोइ ॥
हउमै गुरमुखि खोईऐ
नामि रते सुखु होइ ॥१॥

अपने मन के पीछे लगने वाला मनमुख मोह में फँसा हुआ है, ऐसा व्यक्ति वैरागवान और उदासीन नही हो सकता है। वह (गुरु के) शब्द को नही समझता (विचारता) इसीलिये उसके लिए सदा दु:ख है और हरि की दरबार में अपनी प्रतिष्ठा भी गवाँ लेता है। किन्तु गुरु के मार्ग पर चलने वाला गुरमुख अहंकार को नष्ट करके, (परमात्मा के) नाम मे अनुरक्त है जिससे उसे सुख (प्राप्त) होता है ॥१॥

मेरे मन अहिनिसि पूरि रही
नित आसा ॥
सतगुरु सेवि मोहु परजलै
घर ही माहि उदासा ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! दिन-रात नित्य (नई) आशा (तेरे अन्दर) परि-पूर्ण (भरी हुई) है। सत्गुरु की सेवा करने से मोह को जला दें, (तभी तू) घर (गृहस्थ) मे रहकर भी उदासीन (अनासक्त) रहेगा ॥१॥ रहाउ ॥

गुरमुखि करम कमावै बिगसै
हरि बैरागु अनंदु ॥
अहिनिस भगति करे दिनु राती
हउमै मारि निचंदु ॥
वडै भागि सतसंगति पाई
हरि पाइआ सहजि अनंदु ॥२॥

गुरु के सन्मुख रहने वाला जो गुरमुख गुरु के बताए हुये कर्म करता है वह प्रसन्न होता है क्योंकि हरि का वैराग्य भी एक आनन्द है। वह दिन-रात, हर समय (हरि की) भक्ति करता है और निश्चिन्त होकर अहकार को नष्ट कर देता है। किन्तु भाग्य-शाली ने ही सच्चा-संगति प्राप्त की है और वह हरि (परमात्मा को) प्राप्त करके सहज आनन्द को प्राप्त होता है ॥२॥

ऐसे साधू बैरागी सोई
हिरदै नामु वसाए ॥
अंतरि लाग न तामसु मूले
विचहु आपु गवाए ॥
नामु निधानु सतगुरू दिखालिआ
हरिरसु पीआ अघाए ॥३॥

वह साधु है, वैरागी वही है जो हृदय में (हरि) नाम को बसाता है। उसके अन्तर्गत तमोवृत्ति का परिणाम क्रोधादि कदाचित नही होते और अहंकार भी अन्दर से दूर हो गया है। नाम का भण्डारा सतुगुरु ने उसे दिखा दिया, अब वह हरि का रस (नाम) पीकर तृप्त हुआ है ॥३॥

जिनि किनै पाइआ साधसंगती
पूरै भागि बैरागि ॥
मनमुखि फिरहि न जाणहि सतगुरु
हउमै अंदरि लागि ॥
नानक सबदि रते हरिनामि रंगाए
बिनु भै केही लागि ॥४॥८॥४१॥

जिस किसी ने भी साधु-संगति पायी है, उन्हें वैराग्य का सौभाग्य मिला है किन्तु मन के पीछे लगने वाले मनमुख घूमते-फिरते (भटकते) रहते हैं क्योंकि उनके अन्दर अहकार (की मैल) लगी हुई है, इसलिये वे सतुरु (की महिमा) को नही जानते। हे नानक! जो (गुरु) शब्द से अनुरक्त हैं वे ही हरि-नाम में रंग जाते हैं, किन्तु परमेश्वर के भय के बिना कैसे लग्न लग सकती है (अर्थात भक्ति का गूढ़ प्रेम-रंग लग सकता है?) ॥४॥८॥४१॥

सिरी रागु महला ३॥

घर ही सउदा पाईऐ
अंतरि सभ वथु होइ ॥
खिनु खिनु नामु समालीऐ
गुरमुखि पावै कोइ ॥
नामु निधानु अखुटु है
वडभागि परापति होइ ॥१॥

(हृदय) घर में ही (नाम का) सौदा प्राप्त करो क्योंकि (मनुष्य के) अन्तर्गत सभी (अमूल्य) पदार्थ (वस्तुएँ) हैं। क्षण-क्षण परमात्मा का नाम स्मरण करो किन्तु कोई (विरला) गुरु के सन्मुख रहकर (नाम) प्राप्त करता है। नाम का भण्डार अखुट है, जो सौभाग्य से ही प्राप्त होता है ॥१॥

मेरे मन
तजि निंदा हउमै अहंकारु ॥१॥
हरि जी सदा धिआइ तू
गुरमुखि एकंकारु ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन! निन्दा, हौमै और अहंकार का त्याग करके तू गुरु की शरण में आकर एक अद्वितीय हरि जी का ध्यान करो ॥१॥ रहाउ॥

गुरमुखा के मुख उजले
गुर सबदी बीचारि ॥
हलति पलति सुखु पाइदे
जपि जपि रिदै मुरारि ॥

गुरु के सन्मुख रहने वाले गुरमुखों के मुख उज्ज्वल हैं क्योंकि उन्होंने गुरु शब्द पर विचार (मनन) किया है। वे इस लोक और परलोक में सुख प्राप्त करते हैं और वे मुरारि (भगवान्) का

घर ही विचि महलु पाइआ
गुर सबदी वीचारि ॥२॥

नाम बार-बार जपते हैं। वे गुरु शब्द पर विचार करने से घर (हृदय) मे ही महल (प्रभु) को पा लेते हैं ॥२॥

सतगुर ते जो मुह फेरहि
मथे तिन काले ॥
अनदिनु दुख कमावदे
नित जोहे जमजाले ॥
सुपने सुखु न देखनी
बहु चिंता परजाले ॥३॥

(किन्तु) जो (अपने) सतगुरु से मुह फेर लेते हैं, उनके मुख काले (कलंकित) हैं। वे दिन-रात दुख झेलते हैं और नित्य यमराज की जाल में (फंसे) रहते हैं अथवा यमराज पाश लेकर उन्हें खोजता रहता है। वे स्वप्न में भी सुख नहीं देखते और बहुत चिन्ताओं में जलते-रहते हैं ॥३॥

सभना का दाता एकु है
आपि बखस करेइ ॥
कहणा किछू न जावई
जिसु भावै तिसु देइ ॥
नानक गुरमुखि पाईऐ
आपे जाणै सोइ ॥४॥१॥४२॥

सभी का दाता (परमात्मा) एक है, 'वह' स्वय ही बखशिश (दया) करता है। पर कुछ भी कहा नही जा सकता। (मनमुख क्यों नही नाम जपता और गुरमुख सदा जपता है)। वह परमात्मा जिसे (भाता) प्यार करता है, उसे ही (नाम का दान) देता है। हे नानक ! गुरु की शरण में आने पर ही (नाम दान की) प्राप्ति होती है। 'वह' स्वय ही जानता है कि किस पर कृपा-दृष्टि करनी है ॥४॥१॥४२॥

सिरी रागु महला ३॥

सचा साहिबु सेवीऐ
सचु वडिआई देइ ॥
गुर परसादी मनु वसै
हउमै दूरि करेइ ॥
इहु मनु धावत ता रहै
जा आपे नदरि करेइ ॥१॥

सच्चे साहब (परमात्मा) की सेवा करने से सच्चा (मालिक) सच्ची बड़ाई (महिमा) देता है। गुरु की प्रसन्नता (कृपा) से (परमात्मा) मन मे बसता है और वह अहंकार को दूर कर देता है। यह दौड़ता हुआ मन तभी दौड़ने से रहता (रुकता) है यदि 'वह' (परमात्मा) स्वयं कृपा-दृष्टि करे ॥१॥

भाई रे गुरमुखि
हरिनामु धिआइ ॥
नामु निधानु सद मनि वसै
महली पावै थाउ ॥१॥रहाउ॥

हे भाई ! गुरु के सन्मुख रहकर (हरि का ध्यान स्मरण) करो। जिसके मन में नाम का खजाना सदा बसता है, वह पति-परमेश्वर के महल में (स्वरूप में) स्थान (ठिकाना) प्राप्त कर लेता है ॥१॥ रहाउ ॥

मनमुख मनु तनु अंधु है
तिस नउ ठउर न ठाउ ॥

अपने मन के पीछे चलने वाले मनमुख का मन और तन अंधा (अज्ञानी) है, उसको कोई भी विश्राम के लिए ठिकाना

बहु जोनी भउदा फिरै
जिउ सुंञै घरि काउ ॥
गुरमती घटि चानणा
सबदि मिलै हरिनाउ ॥२॥

नहीं है। वह बहुत योनियों में भटकता फिरता है जैसे शून्य घर में कौआ। गुरु की शिक्षा द्वारा (गुरु) शब्द की कमाई से, हृदय में ज्ञान प्रकाश होने से हरि नाम की प्राप्ति हो जाती है ॥२॥

त्रै गुण बिखिआ अंधु है
माइआ मोह गुबार ॥
लोभी अन कउ सेवदे
पड़ि वेदा करै पूकार ॥
बिखिआ अंदरि पचि मुए
न उरवारु न पारु ॥३॥

त्रिगुणी विषय-विकारों के प्रभाव से जगत अन्धा हो रहा है और माया मोह की धुंध में पड़कर लोभी विद्वान (धर्म-ग्रन्थ) वेदों को पढ़कर सस्वर में (दूसरों को सुनाते हैं किन्तु) वे (अन्दर से प्रभु को भूलकर) अन्य की (माया की) सेवा करते हैं। इस प्रकार विषवत् विषय-विकारों में जलकर मरते हैं। वे न इधर (संसार) के रहते हैं और न उधर (परलोक) के ही ॥३॥

माइआ मोहि विसारिआ
जगत पिता प्रतिपालि ॥
बाझहु गुरू अचेतु है
सभ बधी जमकालि ॥
नानक गुरमति उबरे
सचा नामु समालि ॥४॥१०॥४३॥

माया के मोह में पड़कर जगत ने प्रतिपालक पिता (परमात्मा) को विस्मृत कर दिया है। गुरु के बिना वे (बेचारे) अज्ञानी (बेसमझ) हैं सारी सृष्टि ही यमकाल की (मायावी शक्तियों से) बंधी हुई है। हे नानक ! जो गुरु की शिक्षा लेकर (परमात्मा के) सच्चे नाम का स्मरण करते हैं, वे ही (त्रिगुणी माया के विषय-विकारों से) बच गए है ॥४॥१०॥४३॥

सिरी रागु महला ३॥

त्रै गुण माइआ मोहु है
गुरमुखि चउथा पदु पाइ ॥
करि किरपा मेलाइअनु
हरिनामु वसिआ मनि आइ ॥
पोतै जिन कै पुंनु है
तिन सतसंगति मेलाइ ॥१॥

(जगत मे) (सत् रज, तम) त्रैगुणात्मक माया का मोह होते हुए भी, गुरु के सन्मुख रहने वाला गुरमुख, (इन तीनों गुणों से मुक्त होकर) चौथा पद (जहाँ माया का जोर नहीं) प्राप्त कर लेता है। कृपा करके (परमात्मा जिन्हे गुरु से) मिलाता है उनके मन में हरि नाम आकर निवास करता है। किन्तु जिनके पूर्व संचित कर्मों के खजाने मे पुण्य शेष हैं, उनको ही 'वह' सच्ची संगति में मिलाता है ॥१॥

भाई रे गुरमति साचि रहाउ ॥
साचो साचु कमावणा
साचै सबदि मिलाउ ॥१॥रहाउ॥

हे भाई ! गुरु की मति लेकर सत्य स्वरूप परमात्मा में अथवा सच्चे (नाम) में स्थिर रहो। जिन्होंने सच्चे नाम की कमाई की है, वे ही सच्चे ब्रह्म में मिल जाते हैं ॥१॥रहाउ॥

जिनी नामु पछाणिआ
तिन विटहु बलि जाउ ॥
आपु छोडि चरणी लगा
चला तिन कै भाइ ॥
लाहा हरि हरि नामु मिलै
सहजे नामि समाइ ॥२॥

जिन्होंने (परमात्मा के) नाम को पहचान लिया है, मैं उन परबलिहारी जाता हूँ। अहंकार को छोड़कर मैं उनके चरणों में लगता हूँ और मैं उनके प्यार में भी (आज्ञानुसार) चलूँगा। इससे हरि, हरि नाम की प्राप्ति का लाभ होगा और अनायास ही सहजावस्था प्राप्त करके (हरि) में समा जायेंगे ॥२॥

बिनु गुर महलु न पाईऐ
नामु न परापति होइ ॥
ऐसा सतगुरु लोड़ि लहु
जिदू पाईऐ सचु सोइ ॥
असुर संघारै सुखि वसै
जो तिसु भावै सु होइ ॥३॥

बिना गुरु के (परमात्मा का) न महल प्राप्त होगा और न (परमात्मा के) नाम की प्राप्ति होगी। इसलिए ऐसे सत्गुरु को खोज लो, जिससे (परम) सत्य (हरि) की प्राप्ति हो सके। वह (ऐसा जीव ही) (क्रोधादि विकारों रूपी) दैत्य को मारकर ही सुख में विचरण करेगा लेकिन जो तुझ (परमात्मा को) भाता है, वही होता है ॥३॥

जेहा सतगुरु करि जाणिआ
तेहो जेहा सुखु होइ ॥
एहु सहसा मूले नाही
भाउ लाए जनु कोइ ॥
नानक एक जोति दुइ मूरती
सबदि मिलावा होइ ॥४॥११॥४४॥

जो जैसी भावना से सत्गुरु को जानता है, उसी भावना के अनुसार उसे सुख (लाभ) प्राप्त होता है। इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं है। कोई भी (गुरु-चरणों में) प्रेम (श्रद्धा) रखकर (आजमा) ले। हे नानक! एक ही ज्योति दोनों (गुरु और परमात्मा में) है, किन्तु देखने में दो स्वरूप हैं। लेकिन (गुरु के) शब्द द्वारा 'उसका' मिलाप होता है ॥४॥११॥४४॥

सिरी रागु महला ३॥

अम्रितु छोडि बिखिआ लोभाणे
सेवा करहि विडाणी ॥
आपणा धरमु गवावहि बूझहि नाही
अनदिनु दुखि विहाणी ॥
मनमुख अंध न चेतही
डूबि मुए बिनु पाणी ॥१॥

(नाम रूप) अमृत को छोड़कर विषवत् विषय-विकारों में लम्पट हुए जीव पराई (अजीव) सेवा कर रहे हैं। अपना वे (मनुष्य जन्म का) धर्म (कर्तव्य) गंवा रहे हैं किन्तु समझते नहीं, इस प्रकार दिन-रात दुःख में (आयु) व्यतीत करते हैं। (माया से) अन्धे हुए मनमुख चिन्तन (विचार तक) नहीं करते, इसलिए वे बिना पानी के डूब कर मर रहे हैं ॥१॥

मन रे सदा भजहु हरि सरणाई ॥
गुर का सबदु अंतरि वसै
ता हरि विसरि न जाई ॥१॥
रहाउ॥

हे मेरे मन! सदा भजन करो और हरि की शरण में रहो। जब गुरु का शब्द हृदय में निवास करता है तब हरि (परमात्मा) कभी नहीं भूलता ॥१॥ रहाउ ॥

इहु सरीरु माइआ का पुतला
विचि हउमै दुसटी पाई ॥
आवणु जाणा जंमणु मरणा
मनमुखि पति गवाई ॥
सतगुरु सेवि सदा सुखु पाइआ
जोती जोति मिलाई ॥२॥

यह शरीर माया का पुतला है, जिसमें दुष्टात्मा रूपी अहं-कार डाल दी है, ऐसा जीव (जगत मे) आता है और जाता है, (जन्मता है और मरता है) इस प्रकार मनमुख ने (लोक-परलोक में) प्रतिष्ठा खो दी है। (गुरमुख ने) सत्गुरु की सेवा से सदा सुख प्राप्त किया है और (परमात्मा की) ज्योति मे (अपनी) ज्योति मिला दी है।।२।।

सतगुर की सेवा अति सुखाली
जो इछे सो फलु पाए ॥
जतु सतु तपु पवितु सरीरा
हरि हरि मंनि वसाए ॥
सदा अनंदि रहै दिनु राती
मिलि प्रीतम सुखु पाए ॥३॥

सत्गुरु की सेवा अति सुख देने वाली है जो कोई जैसी इच्छा करता है, वही फल प्राप्त करता है। (गुरमुख) जत, सत, तप आदि से शरीर को पवित्र करके हरि, हरि-नाम को मन में बसाता है। वह दिन-रात सदा आनन्द में रहता है और प्रियतम (परमात्मा) से मिलकर (नित्य) सुख प्राप्त करता है।।३।।

जो सतगुर की सरणागती
हउ तिन कै बलि जाउ ॥
दरि सचै सची वडिआई
सहजे सचि समाउ ॥
नानक नदरी पाईऐ
गुरमुखि मेलि मिलाउ ॥४॥१२॥
४५॥

जो सत्गुरु की शरण मे हैं, मैं उनके ऊपर बलिहारी जाता हू। परमात्मा के सच्चे दरबार मे उन्हे सच्ची बढाई प्राप्त होती है और वे अनायास सहजावस्था प्राप्त करके परमात्मा में समा जाते हैं। हे नानक ! गुरमुखो की सगति से मिलाप, परमात्मा की कृपा-दृष्टि से ही प्राप्त होता है।।४।।१२।।४५।।

सिरी रागु महला ३॥

मनमुख करम कमावणे
जिउ दोहागणि तनि सीगारु ॥
सेजै कंतु न आवई
नित नित होइ खुआरु ॥
पिर का महलु न पावई
ना दीसै घरु बारु ॥१॥

मनमुख जो (धार्मिक) कर्म करते हैं, वे (पति से त्यागी हुई) दुहागिन (स्त्री) के शरीर पर किये गये शृ गार की तरह व्यर्थ हैं। (अनेक शृ गार करने पर भी) शय्या पर (अभागिन के पास) पति नही आता, और नित्यप्रति दु:खी होती है। उसे पति का महल नही प्राप्त होता है और उसे कही घर-बार (सत्सग) नजर नहीं आता।।१।।

भाई रे इक मनि नाम धिआइ ॥
संता संगति मिलि रहै
जपि राम नामु सुखु पाइ ॥१॥
रहाउ॥

हे भाई ! एकाग्र मन से हरि नाम का ध्यान (स्मरण) कर। जो संतों की संगति मे मिलकर रहते है, वे राम नाम जपकर सुख को प्राप्त करते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

गुरमुखि सदा सोहागणी
पिरु राखिआ उरधारि ॥
मिठा बोलहि निवि चलहि
सेजै रवै भतारु ॥
सोभावंती सोहागणी
जिन गुर का हेतु अपारु ॥२॥

गुरमुख रूपी स्त्री सदा सुहागिन (प्रभु को प्रिय) है, जिसने पति-परमेश्वर को हृदय में धारण करके रखा है। वह मीठा (वचन) बोलती है, नम्रता से चलती है, और शय्या पर पति-परमेश्वर के साथ रमण करती है। जिनको गुरु के प्रति अपार प्यार है वही सुहागिन शोभावती है ॥२॥

पूरै भागि सतगुरु मिलै
जा भागै का उदउ होइ ॥
अतंरहु दुखु भ्रमु कटीऐ
सुख परापति होइ ॥
गुर कै भाणै जो चलै
दुखु न पावै कोइ ॥३॥

पूर्ण भाग्य से सत्गुरु तब मिलता है, जब भाग्य (सूर्य) का उदय हो। (गुरु के मिलने से) अन्तर्गत दुख और भ्रम कट जाता है और सुख की प्राप्ति होती है। गुरु के आदेश मे जो चलता है वह दुःख नही प्राप्त करता ॥३॥

गुर के भाणे विचि अंम्रित है
सहजे पावै कोइ ॥
जिना परापति तिन पीआ
हउमै विचहु खोइ ॥
नानक गुरमुखि नामु धिआइऐ
सचि मिलावा होइ ॥४॥१३॥४६॥

गुरु के आदेश मे ही अमृत है। जो 'उसके' आदेशानुसार चलते हैं वे सहज ही (नाम) अमृत प्राप्त करते हैं। किन्तु आज्ञा मानने वाला कोई विरला ही है। जिनको (नाम अमृत की) प्राप्ति होती है वे ही अन्तःकरण से अहकार को दूर करके पीते हैं। हे नानक ! गुरु की शरण मे आकर नाम का ध्यान (स्मरण) करो तभी सत्य परमात्मा से मिलाप होगा ॥४॥१३॥४६॥

सिरी रागु महला ३॥
जा पिरु जाणै आपणा
तनु मनु अगै धरेइ ॥
सोहागणी करम कमावदीआ
सोई करम करेइ ॥

जो (जीव-स्त्री) पति-परमेश्वर को अपना जानना (स्वीकार करना) चाहती है, वह तन और मन अर्पण कर देवे और वैसे हीं (श्रेष्ठ) कर्म करे जैसे सुहागिनें पति को रिझाने के लिए करती

सहजे साचि मिलावड़ा
साचु वडाई देइ ॥१॥

हैं। तभी सच्ची बढ़ाई देने वाले सच्चे (परमात्मा) के साथ सहज ही मिलाप (संभव) है ॥१॥

भाई रे गुर बिनु
भगति न होइ ।
बिनु गुर भगति न पाईऐ
जे लोचै सभु कोइ ॥१॥रहाउ॥

हे भाई ! गुरु के बिना (सुहागिने वाली) भक्ति नहीं होती। यदि सब कोई इच्छा या प्रयास भी करें तो भी गुरु-भक्ति के बिना परमेश्वर नहीं प्राप्त होता ॥१॥ रहाउ ॥

लख चउरासीह फेर पइआ
कामणि दूजै भाइ ॥
बिनु गुर नीद न आवई
दुखी रैणि विहाइ ॥
बिनु सबदै पिरु न पाईऐ
बिरथा जनमु गवाइ ॥२॥

चौरासी लाख योनियों के चक्र में पड़ी रहती है जो कामिनी द्वैत (माया) को प्यार करती है। बिना गुरु के उसे नींद (शांति) नहीं आती और दुखी रहकर (अवस्था रूपी) रात्रि व्यतीत करती है। बिना (गुरु) शब्द के पति-परमेश्वर नहीं प्राप्त होता लेकिन वह व्यर्थ में (मनुष्य) जन्म गंवा देता है ॥२॥

हउ हउ करती जगु फिरी
ना धनु संपै नालि ॥
अंधी नामु न चेतई
सभ बाधी जमकालि ।
सतगुरि मिलिऐ धनु पाइआ
हरिनामा रिदै समालि ॥३॥

'मैं' 'मैं' करती हुई (जीव-स्त्री) जगत में (घूमती) फिरती है (पता होते हुए भी कि) न धन और न सम्पत्ति आदि ही (किसी के साथ) चलते हैं। (यह देखकर भी अज्ञान से) अंधी स्त्री हरि-नाम का चिन्तन नहीं करती इसलिए सारी सृष्टि यम के जाल में बंधी हुई है। किन्तु जिनको सत्गुरु मिल गया है उन्होंने ही हरि नाम के (अमूल्य) धन को प्राप्त करके हृदय मे संभाल कर रखा है ॥३॥

नामि रते से निरमले
गुर कै सहिज सुभाइ ॥
मनु तनु राता रंग सिउ
रसना रसन रसाइ ।
नानक रंगु न उतरै
जो हरि धुरि छोडिआ लाइ ॥४॥
१४॥४७॥

जो (जीव) (परमात्मा के) नाम में अनुरक्त हैं, वे ही निर्मल हैं क्योंकि गुरु के उपदेशों पर चलकर उनका स्वभाव शान्त हो गया है अथवा वे परमात्मा में अनायास लीन हो गए हैं। उनका मन और तन (नाम) रंग में रंगा हुआ है और उनकी रसना (नाम) आनन्द का रस लेती है अथवा उनकी रसना रसों मे (न रसाइ) आसक्त नहीं होती। हे नानक ! (नाम का मजीठ) रंग (कदाचित) नहीं उतरता जो हरि ने पहले से ही (धुरि से) (भक्तजनों पर) लगा दिया है ॥४॥१४॥४७॥

सिरी राग महला ३॥

गुरमुखि क्रिपा करे भगति कीजै
बिनु गुर भगति न होई ॥
आपै आपु मिलाए बूझै
ता निरमलु होवै सोई ॥
हरि जीउ साचा साची बाणी
सबदि मिलावा होई ॥१॥

गुरु जब कृपा करते हैं तब (जीव) गुरु के सन्मुख होकर भक्ति करते है, बिना गुरु (की शरण आए) भक्ति नही हो सकती। जब (गुरु) आप ही (जीव को) अपने साथ मिला लेता है और (गुरु-भक्ति की) समझ आ जाती है तभी वह निर्मल होता है। हरि जी सत्य है और उसकी वाणी भी सच्ची है। (गुरु) शब्द से ही (सत्यस्वरूप परमेश्वर के साथ) मिलाप होता है ॥१॥

भाई रे भगति हीणु
काहे जगि आइआ ।
पूरे गुर की सेव न कीनी
बिरथा जनमु गवाइआ ॥१॥रहाउ॥

हे भाई! (हरि-गुरु) भक्ति के विना (तू इस) जगत में किस लिए आया है? क्योंकि तूने पूर्ण गुरु की सेवा नही की, इसलिए (मनुष्य) जन्म को व्यर्थ ही गँवा दिया है ॥१॥ रहाउ ॥

आपे जगजीवनु सुखदाता
आपे बखसि मिलाए ॥
जीअ जंत ए किआ वेचारे
किआ को आखि सुणाए ॥
गुरमुखि आपे देइ वडाई
आपे सेव कराए ॥२॥

परमात्मा आप ही जगत का प्राण (जीवन) है, सुखो को देने वाला दाता है और आप ही बख्शिश (दया) करके अपने में मिला लेता है। यह जीव जन्तु बेचारे क्या हैं, असमर्थ हैं (इनकी वेदना) कोई क्या कह कर सुनाए। 'वह' आप ही गुरु के द्वारा (नाम की) बड़ाई देता है और आप ही (अपनी) सेवा करवाता है ॥२॥

देखि कुटंबु मोहि लोभाणा
चलदिआ नालि न जाई ॥
सतगुरु सेवि गुणनिधानु पाइआ
तिस दी कीम न पाई ॥
हरि प्रभु सखा मीतु प्रभु मेरा
अंते होइ सखाई ॥३॥

जो अपने कुटुम्ब को देखकर मोह मे लोभायमान हो रहा है, वह (परिवार) अन्त समय जाते समय (सहायता के लिए) नहीं जाता। जिसने सतगुरु की सेवा करके गुणों के भण्डार-परमात्मा को पा लिया है, 'उसकी' कीमत आँकी नहीं जा सकती, क्योंकि वह अमूल्य है। हरि प्रभु सखा है और मित्र भी है और (यह भी निश्चय करना चाहिए कि) प्रभु मेरा अन्त समय में भी सहायक होगा ॥३॥

आपणै मनि चिति कहै कहाए
बिनु गुर आपु न जाई ॥

अपने मन और चित्त से (बेशक) कहता रहे या (दूसरों के भी) कहलाए (कि मेरे में अहंकार नहीं है) (किन्तु) बिना गुरु के अहंकार नहीं जाता। हरि जो दाता है और (भक्तों को) प्यार

हरि जीउ दाता भगति वछलु है
करि किरपा मंनि वसाई ॥
नानक सोभा सुरति देह प्रभु
आपे गुरमुखि दे वडिआई ॥४॥
१५॥४८॥

और रक्षा करने वाला है और आप ही कृपा करके भक्तों के मन में (प्रेमी) भक्ति बसा देता है। हे नानक ! प्रभु आप ही अपनी भक्ति की) समझ (सूझ-बूझ) देकर (जगत में) शोभा देता है और आप ही गुरु की शरण में डालकर (परलोक में) बडाई देता है। ॥४॥१५॥४८॥

सिरी रागु महला ३॥

धनु जननी जिनि जाइआ
धनु पिता परधानु ॥
सतगुरु सेवि सुखु पाइआ
बिचहु गइआ गुमानु ॥
दरि सेवनि संत जन खड़े
पाइनि गुणी निधानु ॥१॥

धन्य है माता, धन्य हैं श्रेष्ठ पिता, जिसने (गुरु को) जन्म दिया है। क्योंकि सत्गुरु की सेवा करने से (आत्म) सुख की प्राप्ति होती है और अंतःकरण से अहकार दूर हो जाता है। जिस (सत्गुरु के) द्वार पर सतजन भी सावधान होकर सेवा करते हैं और गुणो के भण्डार परमात्मा को प्राप्त करते हैं ॥१॥

मेरे मन गुरमुखि धिआइ
हरि सोइ ॥
गुर का सबदु मनु वसै
मनु तनु निरमलु होइ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! ऐसे गुरु के सम्मुख होकर हरि (परमात्मा) का ध्यान कर। जब गुरु का शब्द (उपदेश) मन में निवास करता है तब मन और तन निर्मल हो जाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

करि किरपा घरि आइआ
आपे मिलिआ आइ ॥
गुर सबदी सलाहीऐ
रंगे सहजि सुभाइ ॥
सचै सचि समाइआ
मिलि रहै न बिछुड़ि जाइ ॥२॥

(परमात्मा की) कृपा करके जिनका (चंचल) मन निर्मल हुआ है (घर आया है), उन्हें परमात्मा स्वयं आकर मिलता है। गुरु के शब्द द्वारा यदि (जीव) स्तुति करे तो (परमात्मा उसे प्रेम में) सहजता से रंग लेता है। सच्चे (नाम को जपकर जीव) सत्य स्वरूप परमात्मा में मिल जाता है। पुन वे कभी अलग नहीं होते ('उससे बिछुडते नही है) ॥२॥

जो किछु करणा सु करि रहिआ
अवरु न करणा जाइ ॥
चिरी विछुंने मेलिअनु
सतगुर पंनै पाइ ॥
आपे कार कराइसी
अवरु न करणा जाइ ॥३॥

जो कुछ (परमात्मा ने) करना है वह' (स्वयं) कर रहा है, अन्य (जीवों से) कुछ नही किया जा सकता। चिरकाल से बिछुड़े हुए (जीव) को सत्गुरु की शरण में डालकर परमात्मा में अपने साथ मिला लिया है। 'वह' जो चाहता है, जीव से वैसा ही करवाता है। जीव अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकता ॥३॥

मनु तनु रता रंग सिउ
हउमै तजि विकार ॥
अहिनिसि हिरदै रवि रहै
निरभउ नामु निरंकार ॥
नानक आपि मिलाइअनु
पूरै सबदि अपार ॥४॥१६॥४९॥

जिन्होंने अहंकार तथा (अन्य) विकारों को त्याग दिया है, उनका मन और तन (नाम) रंग में रंग गया है और उनके हृदय मे भी निर्भय निरंकार का नाम दिन-रात निवास कर रहा है। हे नानक ! (ऐसे जीवों को) अपार परमात्मा ने पूर्ण (गुरु के) शब्द द्वारा अपने साथ मिला लिया है, अभेद कर दिया है ॥४॥१६॥४९॥

सिरी रागु महला ३॥

गोविंदु गुणी निधानु है
अंतु न पाइआ जाइ ॥
कथनी बदनी न पाईऐ
हउमै विचहु जाइ ॥
सतगुरि मिलिऐ सद भै रचै
आपि वसै मनि आइ ॥१॥

गोविन्द (परमात्मा) गुणो का भण्डार है, उसका अन्त नही पाया जा सकता। केवल कथा करने से, बातें बनाने से 'उसे' प्राप्त नही किया जा सकता। (वह तभी मिलता है) जब जीव के अन्त करण से अहंकार दूर हो जाये। सतगुरु के मिलने पर जब (जीव) सदा उसके' भय मे सदा रहने लग जाता है तब परमात्मा स्वयं ही मन मे आकर निवास करता है ॥१॥

भाई रे गुरमुखि बूझै कोइ ॥
बिनु बूझे करम कमावणे
जनमु पदारथु खोइ ॥१॥रहाउ॥

हे भाई ! गुरु के द्वारा ही कोई (विरला) (परमात्मा के रहस्य को) समझता है। बिना समझे किए गए कर्मों से, (जीव) (अमूल्य) जन्म पदार्थ खो देता है ॥१॥ रहाउ ॥

जिनी चाखिआ तिनी सादु पाइआ
बिनु चाखे भरमि भुलाइ ॥
अंम्रितु साचा नामु है
कहणा कछू न जाइ ॥
पीवत हू परवाणु भइआ
पूरै सबदि समाइ ॥२॥

जिन्होंने (प्रभु-नाम के स्वाद को) चखा है, वे ही (नाम) स्वाद को जानते हैं। बिना (स्वाद) चखे जीव भ्रम मे भूले रहते हैं। (परमात्मा का) नाम ही सच्चा अमृत है, (उसके सम्बन्ध मे) कुछ कहा नही जा सकता। नाम-अमृत को पीने (अपने) से 'उसकी' दरबार में जीव स्वीकृत हो जाता है और पूर्ण (शब्द) परमात्मा में समा जाता है ॥२॥

आपे देइ त पाईऐ
होरि करणा किछू न जाइ ॥
देवणवाले कै हथि दाति है
गुरू दुआरै पाइ ॥

किन्तु परमात्मा जब स्वयं (कृपा करके नाम का स्वाद) देता है तब (ऐसी उत्तम अवस्था) प्राप्त होती है। अन्य उपाय के करने से कुछ नहीं होता। देने वाले (परमात्मा) के हाथ में ही (नाम की दाति) है किन्तु वह केवल एक गुरु के द्वारा ही प्राप्त होती है। जो कर्म (जीव ने पूर्व जन्म में) किए हैं, वैसा ही होता

जेहा कीतोनु तेहा होआ
जेहे करम कमाइ ॥३॥

है (फल वही मिलता है) और (वर्तमान में) जैसे कर्म जीव करते हैं, वैसा ही फल अगले जनम में प्राप्त करेंगे ॥३॥

जतु सतु संजमु नामु है
विणु नावै निरमलु न होइ ॥
पूरै भागि नामु मनि वसै
सबदि मिलावा होइ ।
नानक सहजे ही रंगि वरतदा
हरिगुण पावै सोइ ॥४॥१७॥५०॥

जत् सत् और संयम (है) तो नाम है, बिना नाम के (जीव) निर्मल नहीं हो सकता। पूर्ण भाग्य हो तो (परमात्मा का) नाम मन में निवास करता है और (गुरु) शब्द द्वारा ही (परमात्मा से) मिलन होता है। हे नानक ! जो जीव हरि परमात्मा के गुण प्राप्त करके प्रेम-रंग में ही विचरते हैं, वे सहजावस्था में आकर परमात्मा को प्राप्त करते हैं॥ ४॥१७॥५०॥

सिरी रागु महला ३॥

कांइआ साधै उरध तपु करै
विचहु हउमै न जाइ ॥
अधिआतम करम जे करे
नामु न कबही पाइ ॥
गुर कै सबदि जीवतु मरै
हरिनामु वसै मनि आइ ॥१॥

जो जीव शरीर को साधते हैं और उरध उलटा होकर (भी) तप करते हैं तो भी उनके अन्तःकरण से अहंकार नही जाता। यदि अध्यात्म कर्म (शुद्धि के लिए किए गए बाह्य कर्म) निरन्तर करता रहे तो भी उनको नाम की प्राप्ति कभी नही होती। जो गुरु के शब्द उपदेश (पर चलते हैं)(हाँ) उन्ही के आदेश पर जीते और मरते हैं, उनके मन मे ही हरि नाम आकर निवास करता है ॥१॥

सुणि मन मेरे भजु सतगुर सरणा ॥
गुरपरसादी छुटीऐ
बिखु भवजलु सबदि गुर तरणा
॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! सुनो। सत्गुरु की शरण मे परमात्मा का भजन करो। गुरु की प्रसन्नता (कृपा) से ही विषवत् विषय-विकारों से छुटकारा पाया जा सकता है और (गुरु के) शब्द द्वारा ही भव-सागर से तैरना (सभव) है ॥१॥ रहाउ ॥

त्रै गुण सभा धातु है
दूजा भाउ विकारु ॥
पंडितु पड़ै बंधन मोह बाधा
नह बूझै बिखिआ पिआरि ॥
सतगुरि मिलिए त्रिकुटी छूटै
चउथै पद मुकति दुआरु ॥२॥

त्रिगुणात्मक ससार (सभा) का प्रपच नश्वर (धातु) है और द्वैत भाव (मन मे रखना) विकार है। पडित (वेदादि धर्म-ग्रन्थों) को पढता है, फिर भी मोह (माया) के बधनो में बधा हुआ है और उसे विषवत् विषय-विकारो से प्यार (रुचि) है क्योंकि वह (धर्म के मूल सिद्धान्त को नही) समझता। केवल सत्गुरु के मिलने से त्रिकुटी-ध्याता, ध्यान, ध्येय छूट जाती है अथवा नश्वर त्रिगुणात्मक प्रपंच से ऊपर उठकर जीव चौथे (तुरीया) पद मुक्ति का द्वार प्राप्त करता है ॥२॥

गुर ते मारगु पाईऐ
चूकै मोहु गुबारु ॥
सबदि मरै ता उधरै
पाए मोखदुआरु ॥
गुर परसादी मिलि रहै
सचु नामु करतारु ॥३॥

गुरु से ही (जीवन का सही) रास्ता प्राप्त होता है और (ज्ञान से ही) मोह का अंधकार दूर हो जाता है। (गुरु) शब्द से जब अहंकार मर जाता है तभी जीव (संसार-सागर में डूबने से) बच जाता है और तभी मुक्ति का द्वार खुलता है। गुरु की प्रसन्नता से (कृपा से) सच्चे नाम वाले कर्त्तार में विलीन (अभेद) हो जाता है ॥३॥

इहु मनूआ अति सबल है
छडे न कितै उपाइ ॥
दूजै भाइ दुखु लाइदा
बहुती देइ सजाइ ॥
नानक नामि लगे से उबरे
हउमै सबदि गवाइ ॥४॥१८॥५१॥

यह मन अति बलवान् है और अनेक उपाय करने पर भी वह (जीव को विषय-विकारों मे प्रवृत्त करने से) नही छोड़ता। मन ही (जीव) को द्वैत-भाव में लगाता है, जिससे वह जीव को दु:ख और सजा दिलवाता है। हे नानक ! जो हरि में लगे हुए हैं, वे ही (इस सबल) मन से बच जाते हैं क्योंकि उन्होंने (गुरु के) शब्द द्वारा अहंकार को दूर कर दिया है ॥४॥१८॥५१॥

सिरी रागु महला ३॥
किरपा करे गुरु पाईऐ
हरिनामो देइ द्रिड़ाइ ॥
बिनु गुर किनै न पाइओ
बिरथा जनमु गवाइ ॥
मनमुख करम कमावणे
दरगह मिलै सजाइ ॥१॥

(जब परमात्मा) कृपा करते हैं तब गुरु प्राप्त होता है और (जब गुरु कृपा करते हैं, तो हरि का नाम जिज्ञासु को देकर निश्चय (दृढ) करा देते हैं। बिना गुरु के किसी ने भी (नाम) नही पाया है और नाम के बिना जीव व्यर्थ में (अमूल्य) जन्म गँवा देते हैं। मनमुख ऐसे दुष्कर्म करते हैं कि उन्हें (हरि) दरबार में सजा मिलती है ॥१॥

मन रे दूजा भाउ चुकाइ ॥
अंतरि तेरै हरि वसै
गुर सेवा सुखु पाइ ॥१॥रहाउ॥

हे मन ! द्वैत-भाव को त्याग दे। तेरे अन्दर (हृदय में) हरि का वास है, गुरु की सेवा करके (उसके आदेशपर चलकर) (अटल) सुख (मोक्ष) प्राप्त कर ॥१॥ रहाउ ॥

सचु बाणी सचु सबदु है
जा सचि धरे पिआरु ॥
हरि का नामु मन वसै
हउमै क्रोधु निवारि ॥

उसकी वाणी सच्ची है, उसका शब्द सच्चा है, जो (जीव) सच्चे परमात्मा के साथ प्यार धारण करते हैं (अर्थात वचनों में यथार्थता और कल्याणकारिता होती है)। हरि का नाम मन

मनि निरमल नामु धिआईऐ
ता पाए मोखदुआरु ॥२॥

में बसने से, अहंकार और क्रोधादि निवृत हो जाते हैं और मुक्ति का द्वार प्राप्त करता है ॥२॥

हउमै विचि जगु बिनसदा
मरि जंमै आवै जाइ ॥
मनमुख सबदु न जाणनी
जासनि पति गवाइ ॥
गुर सेवा नाउ पाईऐ
सचे रहे समाइ ॥३॥

अहंकार के अन्दर (शेष) जगत नाश हो रहा है इसलिए मरता है, जन्मता हैं, संसार में (बार-बार) आता है और जाता है। अपने मन के पीछे चलने वाले मनमुख (गुरु) शब्द को (महत्व को) नहीं जानते हैं इसलिए वे संसार से प्रतिष्ठा गवाकर जाएँगे। गुरु की सेवा द्वारा ही (हरि) नाम की प्राप्ति होती है और वे सच्चे (परमात्मा में) समाए रहते हैं ॥३॥

सबदि मंनिऐ गुरु पाईऐ
विचहु आपु गवाइ ॥
अनदिनु भगति करे सदा
साचे की लिव लाइ ॥
नामु पदारथु मनि वसिआ
नानक सहजि समाइ ॥४॥
१९॥५२॥

गुरु से शब्द प्राप्त करके जब उसका मनन किया जाता है तो अन्त:करण अहकार से निवृत हो जाता है। (ऐसे गुरमुख) रात-दिन सदा सच्चे परमात्मा में स्नेह (लिव) लगाकर भक्ति करते हैं और (गुरु की कृपा से) नाम का पदार्थ मन में वास करता है और हे नानक ! वे परमात्मा (सहजि) में समा जाते हैं ॥४॥१९॥५२॥

सिरी रागु महला ३॥

जिनी पुरखी सतगुरु न सेविओ
से दुखीए जुग चारि ।
घरि होदा पुरखु न पछाणिआ
अभिमानि मुठे अहंकारि ॥
सतगुरु किआ फिटकिआ
मंगि थके संसारि ॥
सचा सबदु न सेविओ
सभि काज सवारणहारु ॥१॥

जिन पुरुषो ने सत्गुरु की (बताई) सेवा नहीं की है, वे चारो युगो में दु:खी रहते हैं। वे अन्त:करण (घर) मे निहित (कर्त्ता) पुरुष को नही पहचानते, क्योंकि अभिमान, अहंकार (और अहम्) से पीडित और ठगे गए हैं। सत्गुरु से फटकारे हुए पुरुष ससार में मांगते, भटकते मर (थक) जाते हैं। वे सच्चे परमात्मा अथवा अटल शब्द (गुरु) की सेवा नही करते, जो सभी कार्य सिद्ध करने वाला है ॥१॥

मन मेरे सदा हरि वेखु हदूरि ॥

हे मेरे मन ! तू हरि को सदा प्रत्यक्ष देख, जो परमात्मा जगत में परिपूर्ण हो रहा है ('उसको' प्रत्यक्ष देखने से) 'वह' जन्म

जनम मरण दुखु कटई
सबदि रहिआ भरपूरि ॥१॥रहाउ॥

मरण के दुःख को दूर कर देता है, 'वह' गुरु के शब्द में परिपूर्ण बस रहा है। (इसलिए गुरु का शब्द अपने अन्दर धारण कर।) ॥१॥ रहाउ ॥

सचु सलाहनि से सचे
सचा नामु अधारु ॥
सची कार कमावणी
सचे नालि पिआरु ॥
सचा साहु वरतदा
कोइ न मेटणहारु ॥
मनमुख महलु न पाइनी
कूड़ि मुठे कूड़िआर ॥२॥

जो पुरुष सच्चे परमात्मा की प्रशंसा करते हैं और सच्चा नाम ही जिन्हों का आधार है, वे पुरुष सच्चे हैं। वे सच्ची भक्ति की कमाई करते हैं, इसलिए सच्चे परमात्मा के साथ उनका प्यार है। सच्चे शहनशाह (परमात्मा) का हुकम चलता है, कोई भी 'उसके' हुकम की (मिटाने वाला) अवहेलना करने वाला नही है। मनमुख पुरुष परमात्मा के स्वरूप (महल) को प्राप्त नहीं करते, क्योंकि वे झूठे हैं और मिथ्या (झूठे) संसार के विषयों से ठगे जाते हैं। (इसलिए परमात्मा को प्राप्त नहीं करते) ॥२॥

हउमै करता जगु मुआ
गुर बिनु घोर अंधारु ॥
माइआ मोहि विसारिआ
सुखदाता दातारु ॥
सतगुरु सेवहि ता उबरहि
सचु रखहि उरधारि ॥
किरपा ते हरि पाईऐ
सचि सबदि वीचारि ॥३॥

'मैं' 'मैं' करते हुए जगत के पुरुष मर रहे हैं, क्योंकि उन्हें गुरु के बिना (अज्ञान का) घोर-अधकार हो रहा है। माया-मोह (के बन्धन में पडकर) उन्होंने सुख के दाता परमात्मा को भुला दिया है। सत्गुरु की सेवा से यदि (जीव) सत्य (नाम को) हृदय मे धारण करके रखें तो (मनमुख भी माया-मोह के घोर अधकार से) बच सकते हैं। (लेकिन) गुरु की कृपा से ही सच्चे परमात्मा का या सच्चे शब्द का विचार प्राप्त होता है और (विचार से ही) हरि की प्राप्ति होती है ॥३॥

सतगुरु सेवि मनु निरमला
हउमै तजि विकार ॥
आपु छोड़ि जीवत मरै
गुर कै सबदि वीचार ॥
धंधा धावत रहि गए
लागा साचि पिआरु ॥
सचि रते मुख उजले
तितु साचै दरबारि ॥४॥

सत्गुरु की सेवा करके अहकार से (उत्पन्न होने वाले) विकार त्याग देने पर मन निर्मल होता है। अहकार को छोड़कर और गुरु के शब्द द्वारा विचार कर लें (मनुष्य ससार में कर्मादि करते हुए भी विकारों से) मर जाते हैं अर्थात् जीवन-मुक्त हो जाते हैं। (ससार के) धंधों में दौडकर जीव के संकल्प-विकल्प शान्त हो जाते हैं और सच्चे परमात्मा के साथ प्यार हो जाता है। जो सत्य परमात्मा में अनुरक्त हैं, उनके मुख सच्ची दरबार में उज्ज्वल होते हैं ॥४॥

सतगुरु पुरखु न मंनिओ
सबदि न लगो पिआरु ॥
इसनानु दानु जेता करहि
दूजै भाइ खुआरु ॥
हरि जीउ आपणी क्रिपा करे
ता लागै नाम पिआरु ॥
नानक नामु समालि तू
गुर कै हेति अपारि ॥५॥२०॥५३॥

जो सतगुरु पुरुष को अपना (जीवन-मार्गदर्शक) नहीं मानते हैं और (गुरु) शब्द से प्यार (लगाव) नहीं रखते, चाहे ऐसे जीव कितने भी स्नान (तीर्थ) करें, दान-पुण्य करें पर द्वैत-भाव के कारण दुःखी होते हैं। जब हरि परमात्मा अपनी कृपा करते हैं, तब 'उसके' (परमात्मा के) नाम में प्यार लगता है। हे नानक! गुरु के अपरिमित प्रेम के द्वारा परमात्मा के नाम को संभाल अथवा स्मरण (चिंतन) कर ॥५॥२०॥५३॥

सिरी रागु महला ३॥

किसु हउ सेवी किआ जपु करी
सतगुरु पूछउ जाइ ॥
सतगुर का भाणा मंनि लई
विचहु आपु गवाइ ॥
एहा सेवा चाकरी
नामि वसै मनि आइ ॥
नामै ही ते सुखु पाईऐ
सचै सबदि सुहाइ ॥१॥

(जब मैं अपने) सतगुरु से जाकर पूछता हूँ कि (परमात्मा के नाम को मन में बसाने के लिए) किस की मैं सेवा करूं और किस (मन्त्र) का जाप करूं? (तो गुरु से उत्तर मिलता है कि) अन्तःकरण से अहंकार को दूर करके सतगुरु की आज्ञा को स्वीकार कर। गुरु की आज्ञा माननी एक ऐसी सेवा है, ऐसी चाकरी है, जिससे परमात्मा का नाम मन में आकर निवास करता है। (हरि) नाम से ही सुख की प्राप्ति होती है और (सतगुरु के) सच्चे शब्द के द्वारा ही (आत्मिक-जीवन) सुन्दर होता है ॥१॥

मन मेरे अनदिनु जागु हरि चेति॥
आपणी खेती रखि लै
कूंज पड़ैगी खेति ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन! रात-दिन जाग (सावधान हो) और हरि का चिन्तन कर। इस प्रकार अपनी (आत्मिक-जीवन की) खेती की (विषय-विकारों से) रक्षा कर, नहीं तो, (आत्मिक-जीवन की) खेती में (तृष्णा रूपी) कूंज आकर पड़ेगी ॥१॥ रहाउ ॥

मन कीआ इछा पूरीआ
सबदि रहिआ भरपूरि ॥
भै भाइ भगति करहि दिनु राती
हरि जीउ वेखै सदा हदूरि ॥

जिसके मन मे (गुरु का) शब्द पूर्ण हो रहा है, उनके मन की सब इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। वे दिन-रात (परमात्मा के) भय में रहते हैं और प्रेमाभक्ति करते हैं और हरि जी को सदा प्रत्यक्ष देखते हैं। सच्चे शब्द के द्वारा उनका मन सदा (प्रेम में) अनुरक्त रहता है जिससे (मनुष्य) शरीर के सभी प्रकार के भ्रम दूर

सचै सबदि सदा मनु राता
भ्रमु गइआ सरीरहु दूरि ॥
निरमलु साहिबु पाइआ
साचा गुणीगहीरु ॥२॥

हो जाते हैं। निर्मल साहब (परमात्मा) को प्राप्त करते हैं जो सच्चा है और गुणों का गम्भीर सागर है ॥२॥

जो जागे से उबरे
सूते गए मुहाइ ॥
सचा सबदु न पछाणिओ
सुपना गइआ विहाइ ॥
सुंञे घर का पाहुणा
जिउ आइआ तिउ जाइ ॥
मनमुख जनमु बिरथा गइआ
किआ मुहु देसी आइ ॥३॥

जो (अविद्या रूपी नीद से) सावधान (जाग्रत) हुए हैं, वे ही (तृष्णा रूपी कूज से) बच गए हैं लेकिन जो (अज्ञान रूपी नींद में अचेत) सो रहे हैं, वे (आत्मिक-जीवन की खेती) को लुटाकर चले जाते हैं। वे सच्चे शब्द (परमात्मा को) नहीं पहचानते और उनका जीवन स्वप्न की तरह निरर्थक बीत जाता है। (दृष्टान्त) शून्य घर का अतिथि जैसे (भूखा) आता है, वैसे ही (भूखा प्यासा वापस लौट जाता है) इसी प्रकार मनमुख का (अमूल्य) जन्म व्यर्थ ही चला जाता है। (वह वहाँ आगे परलोक में) क्या मुख दिखलाएगा ? ॥३॥

सभ किछु आपे आपि है
हउमै विचि कहनु न जाइ ॥
गुर कै सबदि पछाणीऐ
दुखु हउमै विचहु गवाइ ॥
सतगुरु सेवनि आपणा
हउ तिन कै लागउ पाइ ॥
नानक दरि सचै सचिआर हहि
हउ तिन बलिहारै जाउ ॥४॥
२१॥५४॥

संसार का समस्त प्रपच परमात्मा ही है, किन्तु अहंकार पूर्ण व्यक्ति से ऐसा नही कहा जा जाता कि (संसार हरि रूप है)। गुरु के शब्द द्वारा ही अन्त करण से अहकार का दु:ख नाश करके ही विश्व को ब्रह्म रूप पहचान लिया जाता है। जो अपने सतगुरु की सेवा करते हैं भाव गुरु के बताए हुए मार्ग पर चलते हैं, मैं उनके चरणों पर नमस्कार करता हूँ। हे नानक ! जो सच्चे परमात्मा के दरबार में सत्य (खरे) सिद्ध हुए हैं, मैं उनके ऊपर बलिहारी जाता हूँ ॥४॥२१॥५४॥

सिरी रागु महला ३॥

जे वेला वखतु वीचारीऐ
ता कितु वेला भगति होइ ॥
अनदिनु नामे रतिआ

(प्रभु-भक्ति करने के लिए) यदि समय काल या अवसर का विचार किया जाए तो किस समय भक्ति हो सकती है ? जो दिन-रात नाम (रग) मे अनुरक्त रहते हैं वे सच्चे हैं और उनकी शोभा भी सच्ची है। (भक्त यह सोचता है कि) यदि एक क्षण

सचे सची सोइ ॥
इकु तिलु पिआरा विसरै
भगति किनेही होइ ॥
मनु तनु सीतलु साच सिउ
सासु न बिरथा कोइ ॥१॥

भर भी प्रियतम-परमात्मा भूल जाए तो भक्ति (प्रीति) किस प्रकार की हुई (अर्थात भक्ति है हरि का प्यार जहाँ समय का विचार न करके आठ ही प्रहर पति-परमेश्वर का स्मरण करना है)। (भक्तों का) मन और तन सच्चे परमात्मा की भक्ति करने से शीतल हो जाता है। वे (एक भी) श्वास ('उसकी' याद के बिना) नही व्यर्थ करते हैं ॥१॥

मेरे मन हरि का नामु धिआइ ॥
साची भगत ता थीऐ
जा हरि वसै मनि आइ ॥१॥
रहाउ॥

हे मेरे मन ! तू हरिनाम का ध्यान (चिन्तन) कर। सच्ची भक्ति तब मानी जाती है जब मन में दु.ख हर्ता हरि आकर निवास करता है ॥१॥ रहाउ ॥

सहजे खेती राहीऐ
सचु नामु बीजु पाइ ।
खेती जंमी अगली
मनूआ रजा सहजि सुभाइ ॥
गुर का सबदु अंम्रितु है
जितु पीतै तिख जाइ ॥
इहु मनु साचा सचि रता
सचे रहिआ समाइ ॥२॥

जिन्होंने हृदय रूपी भूमि में सहज ही शान्ति, धैर्य, शम दमादि सदगुणों का हल चलाकर अपनी खेती को शुद्ध किया है और सच्चे परमात्मा का नाम का बीज डाला है, उनकी (भक्ति की) घनी खेती पैदा हुई है, उनका मन (संसार के पदार्थों से) तृप्त हो गया है और वे शान्त स्वभाव को प्राप्त हुए हैं। गुरु का शब्द (नाम) अमृत है जिसको पीने से (विषय-विकारों की) तृष्णा (प्यास) चली जाती है। यह मन भी सच्चा (स्थिर) हो जाता है और सच्चे परमात्मा में ही समाया रहता है ॥२॥

आखणु वेखणु बोलणा
सबदे रहिआ समाइ ॥
बाणी वजी चहु जुगी
सचो सचु सुणाइ ॥
हउमै मेरा रहि गइआ
सचै लइआ मिलाइ ॥
तिन कउ महलु हदूरि है
जो सचि रहे लिव लाइ ॥३॥

(प्रभु की स्तुति करने वालों का) कहना, सुनना, बोलना, सब शब्द रूपी ब्रह्म में लीन रहना है। ऐसे जीवों की यश रूपी आवाज (बाणी) चारों युगों में प्रकट हो रही है क्योंकि वे सच्चे परमात्मा का सच्चा नाम ही बार-बार सुनाते हैं। उनकी हउमै और ममता (मेरापन) रह जाती है और परमात्मा उन्हें अपने में मिला लेता है। जो नित्य सत्य में लिवलीन रहते हैं, उनको परमात्मा (महल) साक्षात्कार होता है अर्थात् वे परमात्मा के स्वरूप में निवास करते हैं ॥३॥

सदरी नामु धिआईऐ
बिनु करमा पाइआ न जाइ ॥
पूरे भाग सतसंगति लहै
सतगुरु भेटै जिसु आइ ॥
अनदिनु नामे रतिआ
दुखु बिखिआ विचहु जाइ ॥
नानक सबदि मिलावड़ा
नामे नामि समाइ ॥४॥२२॥५५॥

परमात्मा के नाम का ध्यान (स्मरण) करना चाहिए, किन्तु बिना (पुण्य) कर्मों के (भगवत्नाम) प्राप्त नहीं हो सकता। जब पूर्ण भाग्य (का उदय होता) है तो सच्ची संगति से (नाम की) प्राप्ति होती है किन्तु यह सभव केवल उन्हीं के लिए है जिसके पास सत्गुरु (स्वयं) आते हैं और शिष्य भी उससे भेंट करता है। रात-दिन नाम में अनुरक्त रहने से विषयों (के प्रति आसक्ति से उत्पन्न) दुःख अन्दर से निकल जाते है। हे नानक ! जिन्हों का गुरु शब्द से मिलाप हुआ है, वे नाम जपकर नामी (परमात्मा) में समा जाते हैं ॥४॥२२॥५५॥

सिरी रागु महला ३॥

आपणा भउ तिन पाइओनु
जिन गुर का सबदि बीचारि ॥
सत संगती सदा मिलि रहे
सचे के गुण सारि ॥
दुबिधा मैल चुकाईअनु
हरि राखिआ उरधारि ॥
सची बाणी सचु मनि
सचे नालि पिआरु ॥१॥

(परमात्मा ने) अपना भय उन (जीवों) में डाला हैं, जिन्होंने गुरु के शब्द पर विचार किया है। (वे) सदा सत्संगति में मिले रहते हैं और सच्च (परमात्मा) के गुणो का सम्भाल कर (चिन्तन) करते हैं। (उन्होंने) द्वैत रूपी मैल दूर कर दी है और (अब) हरि को हृदय में धारण करके रखा है। (उनका) सच्चे (परमात्मा के साथ प्यार है, (उनके) मन में सच का (निवास होता) है और उन्हीं की वाणी भी सच्ची होती है (भाव वे सच बोलते है, मन में सच धारण करते हैं) और सच्चे परमात्मा के साथ (सच्चा) प्यार करते हैं ॥१॥

मन मेरे हउमै मैलु भर नालि ॥
हरि निरमलु सदा सोहणा
सबदि सवारणहारु ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! (तू) अहंकार की मैल से भरा हुआ है (जबकि) हरि (सदा) निर्मल है और सदा सुन्दर भी है। (प्रश्न. मैला जीव निर्मल हरि को कैसे मिले ? उत्तर :) (मैले जीव को गुरु) शब्द द्वारा सवारने (शुद्ध) करने वाला है (भाव गुरु निर्मल और सुन्दर बनाने वाला है) ॥१॥ रहाउ ॥

सचै सबदि मनु मोहिआ
प्रभि आपे लए मिलाइ ॥
अनदिनु नामे रतिआ
जोती जोति समाइ ॥

(जिन्हों का) सच्चे शब्द से मन मोहित हुआ है, उन्हें प्रभु ने आप अपने साथ मिला लिया है। दिन-रात नाम में अनुरक्त रहने से (परमात्मा की) ज्योति में (जीव की) ज्योति समा जाती है। (भाव नाम द्वारा आत्मा परमात्मा में समा जाता है)। प्रभु (अपनी) ज्योति द्वारा ही जाना जाता है, (किन्तु इस बात की)

जोती हू प्रभु जापदा
बिनु सतगुर बूझ न पाइ ॥
जिन कउ पूरबि लिखिआ
सतगुरु भेटिआ तिन आइ ॥२॥

समझ सत्गुरु के बिना नहीं प्राप्त होती। (और) सत्गुरु भी उनको आकर मिलता है जिनका (गुरु से मिलाप) पहले ही से लिखा हुआ है ॥२॥

बिनु नावै सभ दुमणी
दूजै भाइ खुआइ ॥
तिसु बिनु घड़ी न जीवदी
दुखी रैणि विहाइ ॥
भरमि भुलाणा अंधुला
फिरि फिरि आवै जाइ ॥
नदरि करे प्रभु आपणी
आपे लए मिलाइ ॥३॥

नाम के बिना सारी (सृष्टि) दोचित्ती होने के कारण द्वैत-भाव में दुःखी हो रही है और उसकी रात दुखों में व्यतीत होती है। उस (परमात्मा) के बिना (सुख का जीवन) वह एक क्षण भर जीवित नहीं रह सकती। इस प्रकार जो पुरुष) भ्रम में भूला हुआ है (ज्ञान नेत्र न होने के कारण) अंधा है और (वह) फिर फिर आता (जन्मता) और जाता (मरता) है। (हाँ) (यदि) प्रभु अपनी कृपा-दृष्टि करे तो आप (उसको भी) मिला लेता है ॥३॥

सभु किछु सुणदा वेखदा
किउ मुकरि पाइआ जाइ ॥
पापो पाप कमावदे
पापे पचहि पचाइ ॥
सो प्रभु नदरि न आवई
मनमुखि बूझ न पाइ ॥
जिसु वेखाले सोई वेखै
नानक गुरमुखि पाइ ॥४॥२३॥
५६॥

(सर्वान्तर्यामी प्रभु) सब कुछ सुनता है (जो हम बोलते हैं, हाँ) सब कुछ देखता है (जो हम करते हैं)। उसके आगे (हम) कैसे मुकर सकते हैं? पाप ही पाप (के कर्म जो) करते हैं वे पापों में ही जलते और जलाये जाते हैं। (उनको) वह (अन्तर्यामी) प्रभु दिखाई नही देता, (वे) मनमुख हैं उनको सूझ-बूझ प्राप्त नही होती। किन्तु जिनको (प्रभु अपना स्वरूप आप) दिखाता है, वही देखता है। हे नानक! (यह दर्शन) गुरमुख को ही प्राप्त होता है। ॥४॥२३॥५६॥

सिरी रागु महला ३॥

बिनु गुर रोगु न तुटई
हउमै पीड़ न जाइ ॥
गुर परसादी मनि वसै
नामे रहै समाइ ॥

गुरु के बिना (अहंकार का) रोग नहीं टूटता (दूर होता) और अहंकार (से उत्पन्न) पीडा भी नही निवृत्त होती। गुरु के (शब्द) बिना (जीव) भ्रम में भूला रहता है (भूला होने के कारण दवाई नहीं ढूंढ सकता परन्तु गुरु के शब्द द्वारा हरि को

गुरसबदी हरि पाईऐ
बिनु सबदै भरमि भुलाइ ॥१॥

प्राप्त कर लेता है। गुरु की कृपा से (हरि का नाम) मन में आकर बसता है, (जीव फिर सदा) नाम मे समाया रहता है ॥१॥

मन रे निजघरि वासा होइ ॥
रामनामु सालाहि तू
फिरि आवणु जाणु न होइ ॥१॥ रहाउ॥

(प्रश्न . नाम में समाहित रहना क्या होता है? उत्तर :) हे मन ! (नाम में समाए रहने से) अपने स्वरूप में वासा हो जाता है। (स्वरूप में स्थित होने से) फिर जन्म-मरण नहीं होता (इसलिए हे मेरे मन !) तू राम के नाम की प्रशंसा कर अथवा राम के नाम की स्तुति कर तो फिर तेरा जन्म-मरण न हो) ॥१॥ रहाउ ॥

हरि इको दाता वरतदा
दूजा अवरु न कोइ ।
सबदि सालाही मनि वसै
सहजे ही सुखु होइ ॥
सभ नदरी अंदरि वेखदा
जै भावै तै देइ ॥२॥

(सारे संसार में) एक हरि ही दाता है और (उसी का हुकम) चलता है, दूसरा और कोई (दाता) नही है। (वह एक दाता) सारे (जीवों को अपनी) दृष्टि से देखता रहता है, जो (उसकी दृष्टि में उसको) भा जाता है, उसको (सुख की) देन देता है। (अत: उस एक दाता की) शब्द द्वारा प्रशंसा करें (प्रशंसा से वह) मन मे आकर बसता है, इस प्रकार स्वभाविक (सहज) ही सुख (आत्मिक सुख) हो जाता है ॥२॥

हउमै सभा गणत है
गणतै नउ सुखु नाहि ॥
बिखु की कार कमावणी
बिखु ही माहि समाहि ॥
बिनु नावै ठउरु न पाइनी
जमपुरि दूख सहाहि ॥३॥

(प्रश्न अहंकार क्यों दु:खदाई है ? उत्तर .) हउमै सारी गिनती (गणत) है (भाव जीव को अपने कर्मों की गिनती में रखती है, मैंने यह पुण्य किया, दान दिया आदि। इसमें 'मैं' 'मैं' और "मैंने किया" की गिनती चलती रहती है और वास्तव में जो दाता है, याद नहीं रहता है और हौमै बनी रहती है इसलिए) गिनती वाले को सुख नही प्राप्त होता। विषवत स्वर्ग के भोग्य पदार्थों की आशा से जो जीव (शुभ) कर्म करते हैं, वे विषयों में ही समाए रहते हैं (भाव बार-बार शरीर धारण करके भोगों में रहते हैं) और यमपुरी मे दुख सहारन करते हैं (क्योंकि वे) नाम के बिना (खाली) हैं इसलिए तो उन्हे कोई ठिकाना प्राप्त नहीं होता ॥३॥

जीउ पिंडु सभु तिस दा
तिसै दा आधारु ॥
गुर परसादी बुझीऐ
ता पाए मोखदुआरु ॥

(मुक्ति का मार्ग यह है) प्राण और शरीर सब उस (हरि) का है (और इस प्राण और इस शरीर को) 'उसी' का आधार है। (यदि यह रहस्य किसी को) गुरु की कृपा से समझ आ जाए तो (उसको) मुक्ति का द्वार प्राप्त हो जाता है। (अतः) हे नानक !

नानक नामु सलाहि तूं
अंतु न पारावारु ॥४॥२४॥५७॥

जिस हरि दाता का पारावार का अन्त नहीं, 'उस' (हरि के) नाम को जप और 'उस' की स्तुति कर ॥४॥२४॥५७॥

सिरी रागु महला ३॥

तिना अनंदु सदा सुखु है
जिना सचु नामु आधारु ॥
गुर सबदी सचु पाइआ
दूख निवारणहारु ॥
सदा सदा साचे गुण गावहि
साचै नाइ पिआरु ॥
किरपा करि कै आपणी
दितोनु भगति भंडारु ॥१॥

उन (पुरुषों) को सदा सुख और (सदा) आनन्द प्राप्त होता है, जिनको सच्चे नाम का आश्रय है। (उन्होंने) गुरु के शब्द द्वारा (नाम जप कर) सच (सत्य स्वरूप हरि) को प्राप्त कर लिया है (जो सारे) दुःखों को दूर करने वाला है। (दुःख दूर होने के कारण सदा सुख और आनन्द मिल जाने से वे आभार प्रकट करने के लिए) सदा सच्चे (हरि) के गुण गाते हैं (और) सच्चे (हरि) के नाम के साथ सदा प्यार करते हैं। (हरि और भी प्रसन्न होकर उनको) अपनी कृपा द्वारा भक्ति का भण्डार दे देता है ॥१॥

मन रे सदा अनंदु गुण गाइ ॥
सची बाणी हरि पाईऐ
हरि सिउ रहै समाइ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! (यदि तू) सदा आनन्द (चाहता है तो हरि के) गुण गाओ। (गुरु की) सच्ची वाणी द्वारा हरि की प्राप्ति होती है और वे हरि में ही समाये रहते हैं ॥१॥रहाउ॥

सची भगती मनु लालु थीआ
रता सहजि सुभाइ ॥
गुर सबदी मनु मोहिआ
कहणा कछू न जाइ ॥
जिहवा रती सबदि सचै
अंम्रितु पीवै रसि गुण गाइ ॥
गुरमुखि एहु रंगु पाईऐ
जिसनो किरपा करे रजाइ ॥२॥

सच्ची भक्ति से मन (रंगकर) लाल-आनन्दित हुआ है और इस आनन्द से शान्त (सहज) स्वभाव होकर (मन) मस्त रहता है। गुरु के शब्द (नाम) द्वारा ही मन इतना मोहित हुआ है कि उसका कुछ भी वर्णन नहीं किया जा सकता है। सच्चे नाम में रंगी हुई रसना भी (हरि के) गुण गाने के रस में (मस्त हुई आनन्द का) रस पी रही है। यह (भक्ति का) आनन्द गुरु द्वारा प्राप्त होता है। परन्तु प्राप्त वह करता है जिस पर 'वह' हरि (आप) अपनी इच्छा से कृपा करता है ॥२॥

संसा इहु संसारु है
सुतिआ रैणि विहाइ ॥

(हाँ) संसार संशय रूप है (इसमें प्रत्येक जीव की आयु रूप) रात्रि सोते (अज्ञानता में) व्यतीत हो रही है। (उस अज्ञानता में से जिसमें आयु व्यर्थ जा रही है) कुछ (जीवों) को अपने हुकम से

इकि आपणै भाणै कढि लइअनु
आपे लइओनु मिलाइ ॥
आपे ही आपि मनि वसिआ
माइआ मोहु चुकाइ ॥
आपि वडाई दितीअनु
गुरमुखि देइ बुझाइ ॥३॥

'वह' आप निकाल लेता है और आप ही अपने साथ मिला लेता है। (उस जीव का मानो) माया का मोह दूर करके (अपने आप ही) उसके मन में आकर निवास करता है। (इस प्रकार) आप ही गुरु द्वारा ज्ञान (नाम) देकर वडाई देता है ॥३॥

सभना का दाता एकु है
भुलिआ लए समझाइ ॥
इकि आपे आपि खुआइअनु
दूजै छडिअनु लाइ ॥
गुरमती हरि पाईऐ
जोती जोति मिलाइ ॥
अनदिनु नामे रतिआ
नानक नामि समाइ ॥४॥२५॥५८॥

सभी (जीवों) का दाता 'वह' एक है और भूले (भटके लोगों) को आप ही समझा लेता है। कुछ (जीवो) को 'उसने' आप ही अपने से भुला दिया है, (हाँ) उन्हें द्वैत-भाव मे लगा कर अपने से अलग कर दिया है। (द्वैत-भाव से निकलना) गुरु की भक्ति द्वारा (सम्भव) है जिससे हरि प्राप्त होता है और 'वह' ज्योति स्वरूप (हमारी) ज्योति (आत्मा) को मिला लेता है। हे नानक ! जो रात-दिन नाम मे रगे हुए हैं वे नाम के द्वारा (नामी हरि मे) समा जाते हैं ॥४॥२५॥५८॥

सिरी रागु महला ३॥

गुणवंती सचु पाइआ
त्रिसना तजि विकार ॥
गुर सबदी मनु रंगिआ
रसना प्रेम पिआरि ॥
बिनु सतिगुर किनै न पाइओ
करि वेखहु मनि वीचारि ॥
मनमुख मैलु न उतरै
जिचरु गुर सबदि न करे पिआरु॥१॥

गुणीवान (जीव-स्त्री ने) सत्य स्वरूप परमात्मा प्राप्त कर लिया है। (प्रश्न कैसे ? उत्तर) तृष्णा आदि विकारों को त्याग कर (उसने) गुरु के शब्द द्वारा (अपने) मन को (परमेश्वर के प्यार में) रग दिया है और (सच्चे) प्रेम प्यार से रसना को भी (गुण गाने में) रग लिया है। (तुम भी अपने) मन से विचार करके देख लो कि सत्गुरु के बिना किसी ने 'उसको' नही प्राप्त किया है। (यह सच मानो) मनमुख के (हृदय की) मैल (तृष्णा) (तब तक) नही उतरती है जब तक वह गुरु-उपदेश द्वारा (परमेश्वर से) प्यार नही करता ॥१॥

मन मेरे सतिगुर कै भाणै चलु ॥
निजघरि वसहि अंम्रितु पीवहि
ता सुख लहहि महलु ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! सत्गुरु के हुकम मे चलो, फिर तू अपने स्वरूप मे बसेगा (भाव तुम्हे समझ आ जायेगी कि तू शरीर से भिन्न आत्म स्वरूप है) किन्तु (समझ) अमृत समान है। जब तू ध्यान करेगा तब सुख का महल प्राप्त कर लेगा (भाव पहले आत्म स्वरूप को देखना है फिर परमात्मा स्वरूप में अभेदता) ॥१॥ रहाउ ॥

अउगुणवंती गुणु को नही
बहणि न मिलै हदूरि ॥
मनमुखि सबदु न जाणई
अवगणि सो प्रभु दूरि ॥
जिनी सचु पछाणिआ
सचि रते भरपूरि ॥
गुर सबदी मनु बेधिआ
प्रभु मिलिआ आपि हदूरि ॥२॥

अवगुणवंती (जीव-स्त्री में) (भजन-बंदगी-स्मरण आदि) कोई गुण नही होते, उसको परमेश्वर की प्रत्यक्षता में बैठना ही नहीं मिलता। (हाँ) मनमुख शब्द को नही जानता और इस अवगुण के कारण प्रभु उससे दूर रहता है। (पर) जिन्होंने सत्य-स्वरूप प्रभु को पहचान लिया है, और परिपूर्ण जानकर 'उस' सत्य में मस्त रहते हैं, (हाँ) जिनका मन गुरु शब्द से विंध (पिरोया) गया है, उनको प्रभु आप ही प्रत्यक्ष होकर मिलता है ॥२॥

आपे रंगणि रंगिओनु
सबदे लइओनु मिलाइ ॥
सचा रंगु न उतरै
जो सचि रते लिव लाइ ॥
चारे कुंडा भवि थके
मनमुख बूझ न पाइ ॥
जिसु सतिगुरु मेले सो मिलै
सचै सबदि समाइ ॥३॥

(हाँ, उनको प्रभु ने) आप ही प्रेमा-भक्ति रूपी कपड़ा रंगने वाली मटकी (रंगणि) में डालकर रंग दिया है और (शब्द) द्वारा अपने साथ मिला लिया है। (इस प्रकार) जो स्नेह लगाकर सच मे अनुरक्त रहते हैं उनका (प्रेम रूपी रंग) सच्चा रंग फिर नही उतरता। (पर इस बात की) समझ मनमुखों को नही होती, (वे) चारों दिशाओ में फिर-फिर कर थक जाते हैं। (हाँ) 'वह' जिसको सतुरु से मिला देता है वही (उसके) सच्चे शब्द मे समाकर प्रभु से मिलाप हो जाता है ॥३॥

मित्र घणेरे करि थकी
मेरा दुखु काटै कोइ ॥
मिलि प्रीतम दुखु कटिआ
सबदि मिलावा होइ ॥
सचु खटणा सचु रासि है
सचे सची सोइ ॥
सचि मिले से न विछुड़हि
नानक गुरमुखि होइ ॥४॥२६॥
५९॥

मैंने काफी (अनेक) मित्र बनाए कि मेरा कोई (तो) दुख काटेगा, (किन्तु) थक गई (दुख किसी ने नही काटा)। (हाँ) (जब) प्रियतम (गुरु) मिल गया (तो मेरा) दुःख कट गया और शब्द (परमात्मा) से मिलाप हो गया। (अत: जिन गुरुमुखों के पास) सच रूपी पूँजी है, (उन्होने ही) सच रूपी लाभ प्राप्त किया है। वे सच्चे कहे जाते हैं और फिर उन सच्चो की शोभा भी सच्ची होती है। हे नानक ! जो गुरमुख होकर सत्य-स्वरूप परमात्मा में मिल जाते हैं, वे (फिर कभी भी) वियोग में नही आते ॥४॥२६॥५९॥

सिरी रागु महला ३॥
आपे कारणु करता करे
स्रिसटि देखै आपि उपाइ ॥
सभ एको इकु वरतदा
अलखु न लखिआ जाइ ॥
आपे प्रभु दइआलु है
आपे देइ बुझाइ ॥
गुरमती सद मनि वसिआ
सचि रहे लिव लाइ ॥१॥

(जगत) कर्त्ता (प्रभु) आपे ही (इस सृष्टि रचना का) कारण है, सृष्टि उत्पन्न करके आप ही (देखै) पालन-पोषण करता है। (फिर) सभी जीवों में 'वह' (आप) एक ही एक अलक्ष्य होकर (ऐसा) समा रहा है कि दिखाई नहीं देता। (फिर इस सृष्टि को तारने के लिए) आप ही प्रभु दयालु हैं, और आप ही जीवों को अपना स्वरूप समझा देता है। (इस प्रकार) गुरु की मति द्वारा (जिन्हों के मन में) 'वह' सदा निवास करता है (वे) 'उस' सत्य स्वरूप मे स्नेह लगाकर रहते हैं ॥१॥

मन मेरे गुर की मंनि लै रजाइ ॥
मनु तनु सीतलु सभु थीऐ
नामु वसै मनि आइ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन! (तू) गुरु की आज्ञा मान ले (उसकी आज्ञा मानने से तेरे) मन में नाम आकर निवास करेगा (नाम के निवास से तेरा) मन और तन शीतल हो जाएगा ॥१॥ रहाउ ॥

जिनि करि कारणु धारिआ
सोई सार करेइ ॥
गुर कै सबदि पछाणीऐ
जा आपे नदरि करेइ ॥
से जन सबदे सोहणे
तितु सचै दरबारि ।
गुरमुखि सचै सबदि रते
आपि मेले करतारि ॥२॥

जिस (परमात्मा) ने (इसकी रचना) करके धारण किया है (भाव इसको कायम रखे हुए है) 'वह' ही देख-भाल करता है। 'उसको' गुरु के द्वारा पहचाना जाता है, जब परमात्मा आप कृपा दृष्टि करता है। (जिन पर गुरु की कृपा होती है) वे दास (जन) शब्द (नाम) द्वारा सुन्दर होते हैं और परमात्मा की सच्ची दरबार में सच्चे होते हैं। वे गुरमुख हैं, (हाँ) सच्चे शब्द मे रंगे हुए हैं, जिन्हें कर्त्तार आप मिला लेता है ॥२॥

गुरमती सचु सलाहणा
जिस दा अंतु न पारावारु ॥
घटि घटि आपे हुकमि वसै
हुकमे करे बीचारु ॥
गुरसबदी सालाहीऐ
हउमै विचहु खोइ ॥
सा धन नावै बाहरी
अवगणवंती रोइ ॥३॥

जिस (परमात्मा) के पारावार का अन्त नहीं, उस सच्चे (बेअन्त) प्रभु की, गुरु की मति द्वारा स्तुति करनी चाहिए। (हाँ) जो प्रत्येक हृदय में हुकमी होकर आप ही निवास कर रहा है और आप ही हुकम द्वारा विचार करता है। (हाँ) अहंकार को अन्तःकरण से खोकर, 'उसकी' प्रशंसा गुरु के शब्द द्वारा करनी चाहिए। जो (जीव रूपी) स्त्री नाम के बिना है, वह अवगुणवंती है, वह रोती है (कि मैंने मनुष्य शरीर विषय-विकारों में व्यर्थ ही खो दिया) ॥३॥

सचु सलाही सचि लगा
सचै नाइ त्रिपति होइ ॥
गुण वीचारी गुण संग्रहा
अवगुण कढा धोइ ॥
आपे मेलि मिलाइदा
फिरि वेछोड़ा न होइ ॥
नानक गुरु सालाही आपणा
जिदू पाई प्रभु सोइ ॥४॥२७॥६०॥

(अत: मेरी अभिलाषा है कि मैं सत्य स्वरूप परमात्मा में लगा रहूँ। (कैसे ? उत्तर :) उस सच्चे (परमात्मा) की स्तुति करता रहूँ और ('उसके') सच्चे नाम द्वारा (मेरी) तृप्ति होती रहे। 'उसके' गुणों का विचार करता रहूँ, (न केवल विचार करूँ लेकिन) गुण संग्रह करता रहूँ, और (काम क्रोधादि) अवगुणों को धो-धो कर (अपने अन्दर से) निकालता रहूँ। फिर (परमात्मा) आप ही (कृपा करके) अपने में मिलाता है, (हाँ) फिर कभी भी 'उससे' वियोग नहीं होता। हे नानक ! इसलिए मैं अपने गुरु की (विशेष) स्तुति करता हूँ, जिस (गुरु) की कृपा से 'वह प्रभु प्राप्त होता है ॥४॥२७॥६०॥

सिरी रागु महला ३॥

सुणि सुणि काम गहेलीए
किआ चलहि बाह लुडाइ ॥
आपणा पिरु न पछाणही
किआ मुहु देसहि जाइ ॥
जिनी सखी कंतु पछाणिआ
हउ तिन कै लागउ पाइ ॥
तिन ही जैसी थी रहा
सतसंगति मेलि मिलाइ ॥१॥

हे (पति से विमुख और) काम भाव से ग्रस्त जकड़ी हुई (मनमुख रूप) स्त्री ! सुनो। ध्यान पूर्वक मेरी बात सुनो। तू भुजाओं को हिलाकर (मस्ती से) क्या चलता है ? तूने अपने पति-परमेश्वर को तो पहचाना ही नहीं, (पति के) देश में (परलोक में) जाकर क्या मुख दिखायेगी। मैं तो, जिन (गुरमुख रूपी) सखियों ने कंत (पति) को पहचान लिया है, उनके चरणों में पड़ती हूँ, (और इच्छा है कि) उनकी सत्संगति में मिलकर उन्हीं जैसी हो जाऊँ ॥१॥

मुंधे कूड़ि मुठी कूड़िआरि ॥
पिरु प्रभु साचा सोहणा
पाईऐ गुर बीचारि ॥१॥रहाउ॥

(हे काम से ग्रस्त) स्त्री ! तू झूठ से ठगी गई है और इसलिए झूठी है। 'वह' प्रभु-पति सच्चा है (और 'वह' अति) सुन्दर है। 'वह' गुरु के विचार द्वारा (ही) प्राप्त होता है ॥१॥ रहाउ ॥

मनमुखि कंतु न पछाणई
तिन किउ रैणि विहाइ ॥
गरबि अटीआ त्रिसना जलहि
दुखु पावहि दूजै भाइ ॥
सबदि रतीआ सोहागणी
तिन विचहु हउमै जाइ ॥

(पर) मनमुख (रूपी स्त्रियाँ) अपने पति (कंत) को नहीं पहचानतीं, उनकी रात (अवस्था) कैसे (विरह में) व्यतीत होती है ? (वे तो) अहंकार से लबालब (गले तक) भरी हुई हैं, (विषयों की) तृष्णा में जल रही हैं और द्वैत-भाव के कारण दुःख प्राप्त करती हैं। (किन्तु) जो शब्द (नाम) में अनुरक्त हैं वे (ही) सुहागिनें हैं और उनके अन्दर से अहंकार दूर हो जाता है। वे अपने

सदा पिरु रावहि आपणा
तिना सुखे सुखि विहाइ ॥२॥

पति के साथ सदा रमण करती हैं, इसलिए उनकी रात (आयु) सुख से व्यतीत होती है ॥२॥

गिआन विहूणी पिर मुतीआ
पिरमु न पाइआ जाइ ॥
अगिआन मती अंधेरु है
बिनु पिर देखे भुख न जाइ ॥
आवहु मिलहु सहेलीहो
मै पिरु देहु मिलाइ ॥
पूरै भागि सतिगुरु मिलै
पिरु पाइआ सचि समाइ ॥३॥

(किन्तु जो जीव-स्त्रियाँ) ज्ञान से रहित हैं, वे पति से त्यागी हुई हैं, उनको पति की और से प्रेम प्राप्त नही होता। (हाँ) अज्ञानता की बुद्धि होने के कारण (अज्ञान का) अंधेरा हो रहा है (अंधेरे के कारण वे पति को देख नही सकती) और पति को देखे बिना तृष्णा रूपी भूख दूर नही होती। (अब अपने लिए) (हे सुहागिनें रूपी) सखियों ! आकर मुझे मिलो और आओ मुझे पति (परमेश्वर) के साथ मिला दो। किन्तु सत्गुरु भी पूर्ण भाग्य से मिलता है जिसके द्वारा पति-परमेश्वर के साथ मिलाप होता है और उस सत्य-स्वरूप परमात्मा मे समा जाता है ॥३॥

से सहीआ सोहागणी
जिन कउ नदरि करेइ ॥
खसमु पछाणहि आपणा
तनु मनु आगै देइ ॥
घरि वरु पाइआ आपणा
हउमै दूरि करेइ ॥
नानक सोभावंतीआ सोहागणी
अनदिनु भगति करेइ ॥४॥२८॥
६१॥

वे सखियाँ सुहागिने हैं जिन पर 'वह' (पति-परमेश्वर) कृपा दृष्टि करता है। वे अपने पति को पहचान लेती हैं और तन व मन 'उसके' आगे समर्पण कर देती हैं। (उन्होंने अपने) घर (हृदय) मे ही अपना पति प्राप्त कर लिया है और अहकार दूर कर दिया है। हे नानक ! ऐसी सौभाग्यवती सुहागिने रात-दिन 'उसकी' भक्ति करती हैं ॥४॥२८॥६१॥

सिरी रागु महला ३॥

इकि पिरु रावहि आपणा
हउ कै दरि पूछउ जाइ ॥
सतिगुरु सेवी भाउ करि
मै पिरु देहु मिलाइ ॥
सभु उपाए आपे वेखै
किसु नेड़ै किसु दूरि ॥

कुछ (सुहागवतीआँ) अपने पति (परमेश्वर) को (सदा) प्यार करती हैं, (किन्तु मुझे तो मिलाप प्राप्त नही, बताओ) मैं किसके द्वार पर जाकर (पति के मिलने का मार्ग) पूंछू ? (उत्तर:) प्रेम को धारण करके (मैं) सत्गुरु की सेवा करूँ (हे गुरुदेव !) मुझे भी पति-परमेश्वर के साथ मिला दो। सारे (जीव परमात्मा ने) आप ही उत्पन्न किये हैं, आप (सभी की) संभाल करता है, (पर) किसी के निकट होता है और किसी के दूर (होता है)। (किस के निकट

जिनि पिरु संगे जाणिआ
पिरु रावे सदा हदूरि ॥१॥

हैं ? उत्तर) जिन्हों ने पति को अपने संग जान लिया है और 'उसके' सदा प्रत्यक्ष रहते हैं, वे ही (अर्थात सुहागिनें) 'उसके' साथ रमण करती है ॥१॥

मुंधे तू चलु गुर कै भाइ ॥
अनदिनु रावहि पिरु आपणा
सहजे सचि समाइ ॥१॥रहाउ॥

हे जिज्ञासु रूप स्त्री ! तू गुरु की आज्ञा में चल। (फिर तू) दिन-रात अपने पति के साथ रमण करेगी और सहज ही 'उस' सत्य-स्वरूप में समा जाएगी ॥१॥ रहाउ ॥

सबदि रतीआ सोहागणी
सचै सबदि सीगारि ॥
हरिवरु पाइनि घरि आपणै
गुर कै हेति पिआरि ॥
सेज सुहावी हरि रंगि रवै
भगति भरे भंडार ॥
सो प्रभु प्रीतमु मनि वसै
जि सभसै देइ अधारु ॥२॥

(वे ही वास्तव में) सुहागिनें हैं (जो गुरु द्वारा दिये गये) शब्द मे अनुरक्त रहती हैं, सच्चे शब्द के साथ (अपना) श्रृंगार (प्यार) करती हैं, वे अपने (अन्त:करण रूपी) घर मे ही हरि स्वामी को प्राप्त कर लेती हैं। (किन्तु यह प्राप्ति गुरु के साथ) प्यार (और गुरु के जिज्ञासु के साथ) स्नेह करने पर ही (सभव होता है)। उनकी (अन्त:करण रूपी) शय्या सुन्दर हुई हैं, हरि (स्वामी) के आनन्द (प्रेम) मे रमण करती हैं और उनके (तन, मन, (इन्द्रे आदि) भण्डार भक्ति से भरे रहते हैं। (हाँ) 'वह' प्यारा प्रभु (उनके) मन मे बस रहा है जो सभी जीवो का आधार है ॥२॥

पिरु सालाहनि आपणा
तिनकै हउ सद बलिहारै जाउ ॥
मनु तनु अरपी सिरु देई
तिनकै लागा पाइ ॥
जिनी इकु पछाणिआ
दूजा भाउ चुकाइ ॥
गुरमुखि नामु पछाणीऐ
नानक सचि समाइ ॥३॥२६॥६२॥

जो अपने प्रियतम परमेश्वर की श्लाघा करती हैं, मैं उन पर सदा बलिहारी जाऊँ एव मन और तन उनको अर्पण कर दूँ तथा सिर भी दे दूँ और प्रेम से उनके चरणो मे लगा रहूँ। (हाँ) जिन्होने एक अद्वितीय परमात्मा को पहचान लिया है और द्वैत-भाव दूर कर दिया है अथवा गुरु द्वारा नाम पहचाना लिया है, हे नानक ! तब 'वे सत्य स्वरूप परमेश्वर मे समा जाते हैं ॥३॥२६॥६२॥

सिरी रागु महला ३॥

हरि जी सचा सचु तू
सभु किछु तेरै चीरै ॥
लख चउरासीह तरसदे
फिरे बिनु गुर भेटे पीरै ॥

हे हरि जी ! सत्य स्वरूप सच्चा (केवल एक) तू है और सभी कुछ तेरे सामर्थ्य में ही है। चौरासी लाख (योनियों में जीव घूमते-फिरते) तरसते ही रहे क्योंकि (प्रत्येक जन्म में) गुरु-पीर के भेंट के बिना (दु:ख के कारण) पीड़ित होते रहे। किन्तु जिन्होंने गुरु

हरि जीउ बखसे बखसि लए
सूख सदा सरीरै ॥
गुर परसादी सेव करी
सचु गहिर गंभीरै ॥१॥

की कृपा द्वारा सत्य स्वरूप और गहर गम्भीर (परमात्मा) की सेवा की है, हरि जी (उनके पाप) क्षमा कर देता है और बख्श देता है तभी सुख (उनके मन और) शरीरों में आकर सदा निवास करता है ॥१॥

मन मेरे नामि रते सुखु होइ ॥
गुरमती नामु सलाहीऐ
दूजा अवरु न कोइ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! (हरि) नाम में अनुरक्त रहने से सदा सुख प्राप्त होता है। (इसलिए) गुरु की मति द्वारा 'उसके' नाम की श्लाघा करनी चाहिए, जिस के सदृश और कोई भी स्तुत्य (स्तुति करने योग्य) नही है ॥१॥ रहाउ ॥

धरमराइ नो हुकमु है
बहि सचा धरमु बीचारि ॥
दूजै भाइ दुसटु आतमा
ओहु तेरी सरकार ॥
अधिआतमी हरि गुणतासु
मनि जपहि एकु मुरारि ॥
तिनकी सेवा धरमराइ करै
धंनु सवारणहारु ॥२॥

धर्मराज को हुकम है कि (तू धर्म की कुर्सी पर) बैठ कर सच्चा न्याय विचार से कर। जो द्वैत-भाव वाले दुष्ट आत्मा है उन पर तेरी हकूमत है। किन्तु जो आध्यात्मिक आत्माएँ (भक्त) हैं, और गुणों के निधि-हरि (जिन के) मन मे निवास करता है, (हाँ) एक मुरारि (प्रभु को रसना से) जपते हैं, उन की सेवा धर्मराजा (भी स्वय) करता है। (हाँ) धन्य है उनको सँवारने वाला (रचने वाला मेरा मुरारि) परमात्मा ॥२॥

मन के बिकार मनहि तजै
मनि चूकै मोहु अभिमानु ॥
आतमरामु पछाणिआ
सहजे नामि समानु ॥
बिनु सतिगुर मुकति न पाईऐ
मनमुखि फिरै दिवानु ॥
सबदु न चीनै कथनी बदनी करे
बिखिआ माहि समानु ॥३॥

(आध्यात्मिक ज्ञानी कैसे बनना है ? उत्तर) मन के विकार मन से त्याग दें (तथा) मन से मोह और अहंकार समाप्त हो जाएँ, तब आत्माराम (प्रभु से) पहचान हो जाती है और सहज ही नामी (परमात्मा) मे विलीन (अभेद) हो जाते हैं। बिना सत्गुरु के मुक्ति प्राप्त नही होती। मनमुख (योनियों में) पागल होकर फिरता (भटकता) रहता है, चाहे वह मुख से (ज्ञान का) कथन करता है, (पर वह गुरु के) शब्द को नही समझता और विषय-विकारों में समाया रहता है ॥३॥

सभु किछु आपे आपि है
दूजा अवरु न कोइ ॥

प्रभु सब कुछ आप है 'उसके' अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। 'वह' जैसे (हम से)बुलवाता है, वैसे ही हम बोलते हैं। किन्तु बोलते तब हैं जब 'वह' आप हम से बुलवाता है। (इसलिए) गुरमुख की

जिउ बोलाए तिउ बोलीऐ
जा आपि बुलाए सोइ ॥
गुरमुखि बाणी ब्रहमु है
सबदि मिलावा होइ ॥
नानक नामु समालि तू
जितु सेविए सुखु होइ ॥४॥
३०॥६३॥

वाणी ब्रह्म (वेद रूप) है, उसके शब्द से (वाणी द्वारा) ब्रह्म मिलाप होता है। हे नानक ! जिस (ब्रह्म) की सेवा करने से (सदा) सुख होता है, 'उस' के नाम को (सदा) संभाल अथवा स्मरण कर ॥४॥३०॥६३॥

सिरी रागु महला ३॥

जगि हउमै मैलु दुखु पाइआ
मलु लागी दूजै भाइ ॥
मलु हउमै धोती किवै न उतरै
जे सउ तीरथ नाइ ॥
बहुबिधि करम कमावदे
दूणी मलु लागी आइ ॥
पड़िऐ मैलु न उतरै
पूछहु गिआनीआ जाइ ॥१॥

जगत में (जीव) अहकार रूपी मैल के कारण दुःख प्राप्त कर रहा है और यह मैल द्वैत-भाव के कारण लगी है। यह अहकार की मैल किसी तरह धोने (स्नान करने) से भी नही उतरती, चाहे सैकडो तीर्थों पर स्नान किया जाये। (अज्ञानी जीव) अनेक प्रकार के (शुभ) कर्म करते हैं, उन को यह मैल दुगनी मात्रा मे आकर लगती है (क्योंकि 'करम करत बधे अहंमेव'-गउडी भक्त कबीर)। ज्ञानियों के पास जाकर तुम पूछ सकते हो, (वे भी बताएँगे कि) केवल मात्र धर्म-ग्रन्थों को पढने से अहकार की मैल कदाचित् दूर नही होती ॥१॥

मन मेरे गुर सरणि आवै
ता निरमलु होइ ॥
मनमुख हरि हरि करि थके
मैलु न सकी धोइ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! (इस मैल से) मल रहित (निर्मल) तभी हो सकेगा जब तू गुरु की शरण मे आएगा। मनमुख हरि-हरि करते थक गये किन्तु मैल धो नही सके। (केवल मात्र कथन से अहंकार की मैल दूर नही होती) ॥१॥ रहाउ ॥

मनि मैले भगति न होवई
नामु न पाइआ जाइ ॥
मनमुख मैले मैले मुए
जासनि पति गवाइ ॥
गुर परसादी मनि वसै
मलु हउमै जाइ समाइ ॥

(यह नियम है कि) मैले मन से (हरि की) भक्ति नही हो सकती और (हरि का पवित्र) नाम भी प्राप्त नही हो सकता। (गुरु को न मानने वाले, तथा मन के पीछे लगने वाले) मनमुख मैले और मैले ही मर जाते हैं और (प्रत्येक जन्म में अपनी) प्रतिष्ठा गँवाते हैं। (हाँ) जब गुरु की कृपा से नाम उसके मन में आकर निवास करता है, तब अहकार की मैल नाश हो जाती है।जैसे अन्धकार

जिउ अंधेरै दीपकु बालीऐ
तिउ गुरगिआनि अगिआनु तजाइ
॥२॥

में दीपक जलाने से अन्धकार दूर हो जाता है, वैसे ही गुरु के ज्ञान (रूपी दीपक के जलने से) से अज्ञान (अन्धकार) दूर हो जाता ॥२॥

हम कीआ हम करहगे
हम मूरख गावार ॥
करणैवाला विसरिआ
दूजै भाइ पिआरु ॥
माइआ जेवडु दुखु नही
सभि भवि थके संसारु ॥
गुरमती सुखु पाईऐ
सचु नामु उरधारि ॥३॥

(अहंकार से ग्रस्त मनमुख जीव कहते हैं कि) हमने पुण्य कर्म किए हैं और (आगे भी) हम करेंगे, (ऐसे) मैं मैं कहने वाले मूर्ख और गंवार (महामूर्ख अथवा पशुवत) हैं। उन को करने वाला (कर्त्तार) भूल गया है और उनका प्रेम द्वैत भावना में हो रहा है भाव जो माया को प्रेम करते हैं वे दुखी हैं। अत: माया मे जितना बड़ा दुःख है उतना बड़ा दु:ख और कोई नहीं, (जीव) सारे संसार में भ्रमण करके थक गये हैं (किन्तु यह दुःख दूर नहीं हुआ है)। (सत्य यह है कि) गुरु की भक्ति द्वारा और (उसके दिये) सच्चे नाम को हृदय में धारण करने से ही सुख की प्राप्ति होती है ॥३॥

जिस नो मेले सो मिलै
हउ तिसु बलिहारै जाउ ॥
एु मन भगती रतिआ
सचु बाणी निज थाउ ॥
मनि रते जिहवा रती
हरि गुण सचे गाउ ॥
नानक नामु न वीसरै
सचे माहि समाउ ॥४॥३१॥६४॥

(परमात्मा) जिसको (गुरु से) मिलाता है वही (गुरु द्वारा 'उस' हरि को) मिलता है। मैं उस पर बलिहारी जाता हूँ जिसका यह मन भक्ति में अनुरक्त है। वह गुरु की सच्ची वाणी से स्व-स्वरूप (निज थाउ को प्राप्त होता है)। (उसकी अन्दर की अवस्था यह है) मन से वह नाम मे है अनुरक्त और उसकी जिह्वा भी हरि के गुणों का गायन करके मस्त है। हे नानक ! (मेरी अभिलाषा यह है कि मुझे) नाम न विसरे (और नाम द्वारा) मैं सत्य नाम मे ही समा जाऊँ ॥४॥३१॥६४॥

(चौथी पातशाही गुरु रामदास साहब के चउपदे प्रारम्भ)

सिरी रागु महला ४ घरु १॥

मै मनि तनि बिरहु अति अगला
किउ प्रीतमु मिलै घरि आइ॥

मेरे मन और शरीर मे वियोग की पीड़ा अत्याधिक है, कैसे प्यारा मुझे घर आकर मिले ? (मुझे इतना पता है कि) जब मैं अपने

जा देखा प्रभु आपणा
प्रभि देखिऐ दुखु जाइ ॥
जाई पुछा तिन सजणा
प्रभु कितु बिधि मिलै मिलाइ ॥१॥

स्वामी (प्रभु) को देखूंगी, उसको देखते ही मेरे (इस विरह का) दुख दूर हो जाएगें। अब मैं उन अपने सज्जन (अर्थात सत्गुरुओं) से जाकर पूछूं कि प्रभु किस विधि से मिलता है ? कृपया मुझे उससे मिला दो ॥१॥

मेरे सतिगुरा
मै तुझ बिनु अवरु न कोइ ॥
हम मूरख मुगध सरणागती
करि किरपा मेले हरि सोइ ॥१॥
रहाउ॥

हे मेरे सत्गुरु ! तेरे बिना मेरा अन्य कोई (आश्रय) नहीं है। मैं मूर्ख हूँ, (मैं) अज्ञानी हूँ, (पर) आपकी शरण आई हूँ। (मुझ पर (ऐसी) कृपा करो कि 'वह' हरि मुझे अपने साथ मिला ले ॥१॥रहाउ॥

सतिगुरु दाता हरिनाम का
प्रभु आपि मिलावै सोइ॥
सतिगुरि हरिप्रभु बुझिआ
गुर जेवडु अवरु न कोइ ॥
हउ गुरसरणाई ढहि पवा
करि दइआ मेले प्रभु सोइ ॥२॥

(प्रश्न गुरु की शरण भला क्यों लेनी है ? उत्तर:) सत्गुरु हरि नाम का दाता है, प्रभु आप उसको हमारे साथ मिलाता है। (उस) सत्गुरु ने हरि प्रभु का अनुभव कर लिया है, (अतः) गुरु जितना बड़ा और कोई नही है। (इसलिए चाहना है कि) मैं गुरु की शरण में गिर पड़ूं (तो गुरु) दया करके वह (गुरु) (मुझे) 'उससे' मिला देवे ॥२॥

मनहठि किनै न पाइआ
करि उपाव थके सभु कोइ
सहस सिआणप करि रहे
मनि कोरै रंगु न होइ ॥
कूड़ि कपटि किनै न पाइओ
जो बीजै खावै सोइ ॥३॥

(गुरु की कृपा के बिना) मन के हठ से किसी ने (प्रभु को) नही पाया, सभी कोई (मन के हठ से किये गये) उपाय द्वारा थक गए हैं। फिर (चतुराईयो वाले चतुर लोग) हजारों चतुराईयां कर चुके हैं, पर (उन के) कोरे मन पर (प्रेम का) रंग नहीं चढ़ सका। (फिर) झूठ कपट करके भी किसी ने प्रभु को नहीं पाया है (ये सारे कर्म-जाल में होने के कारण इस नियम के अधीन हैं कि) जो कोई कुछ बीजेगा वही कुछ खायेगा। (भाव जैसा कोई कर्म करता है, वैसा ही फल भोगता है) ॥३॥

सभना तेरी आस प्रभु
सभ जीअ तेरे तूं रासि ॥
प्रभ तुधहु खाली को नही
दरि गुरमुखा नो साबासि ॥

हे प्रभु ! सभी जीव तेरे हैं, तू ही (इन की) पूँजी (राशि है अथवा तू सभी को (प्राण रूपी) राशि (पूँजी) दे रहा है, इस लिए सभी की आशा तेरे ऊपर (ही) है। (हाँ) तुम्हारे द्वार पर दान मांगने वाला कोई खाली नहीं जाता, परन्तु तुम्हारे द्वार पर शाबाशी (आदर-सम्मान) केवल गुरमुखों को ही मिलती है

बिखु भउजल डुबदे कढि लै
जन नानक की अरदासि
॥४॥१॥६५॥

(क्योंकि उन्होंने नाम माँग कर कमाई भी की है।) (शेष विचारे जीव) विषय-विकारो के जल से भरे समुद्र में डूब रहे हैं, दया करके भवसागर से डूबते हुए (जीवो) को बचा लो, (यह मेरे गुरुदेव) (बाबा) दास नानक की प्रार्थना है ॥४॥१॥६५॥

सिरी रागु महला ४॥

नामु मिलै मनु त्रिपतीऐ
बिनु नामै ध्रिगु जीवासु ॥
कोई गुरमुखि सजणु जे मिलै
मै दसे प्रभु गुणतासु ॥
हउ तिसु विटहु चउखंनीऐ
मै नाम करे परगासु ॥१॥

यदि नाम मिल जाए तो मन को तृप्ति (प्राप्त) होती है, नाम के बिना जीने की आशा को धिक्कार है। यदि कोई गुरमुख सज्जन मुझे मिल जाये, तो वह मुझे उस प्रभु के सम्बन्ध मे बता देवे जो गुणो का भण्डार (समूह) है, 'हाँ' और मेरे ऊपर नाम का प्रकाश भी करे। (अभिलाषा है कि) मैं उस (गुरमुख सज्जन) के ऊपर बलिहारी जाऊँ ॥१॥

मेरे प्रीतमा हउ जीवा नामु धिआइ॥
बिनु नावै जीवणु न थीऐ
मेरे सतिगुर नामु द्रिड़ाइ
॥१॥रहाउ॥

हे मेरे प्रियतम ! मैं नाम-स्मरण करके ही जीवित हूँ। नाम के बिना जीवन नही हो सकता हे मेरे सत्गुरु ! (जैसे हो सके) मुझे नाम दृढ करा दो (भाव मेरे हृदय मे बसा दो) ॥१॥ रहाउ ॥

नामु अमोलकु रतनु है
पूरे सतिगुर पासि ॥
सतिगुर सेवै लगिआ
कढि रतनु देवै परगासि ॥
धनु वडभागी वडभागीआ
जो आइ मिले गुर पासि ॥२॥

नाम अमूल्य रत्न है, जो केवल पूर्ण सत्गुरु के पास (ही) होता है। (उस) सत्गुरु की सेवा मे लगने से (सत्गुरु) वह (नामरूपी) रत्न (सेवक को) निकाल कर दे देता है। (तब तो) वे बडे भाग्य वालों में से और बडे भाग्य वाले हैं और धन्य हैं, जो गुरु के पास आकर मिले हैं ॥२॥

जिना सतिगुरु पुरखु न भेटिओ
से भागहीण वसि काल ॥
ओइ फिरि फिरि जोनि भवाईअहि
विचि विसटा करि विकराल ॥

(किन्तु) जिन्हों ने सत्गुरु (जैसे महा) पुरुष से भेंट नही की, वे भाग्य से खाली हैं और काल के वश में (रहते) हैं तथा वे बार-बार योनियो में भटकाये जाते हैं और भयानक रूप (कीट) बना कर विष्टा में डाल दिये जाते हैं। जिन के अन्दर (नाम की

ओना पासि दुआसि न भिटीऐ
जिन अंतरि क्रोधु चंडालु ॥३॥

जगह) क्रोध रूपी चण्डाल का वास है, उनके आस-पास भी नहीं जाना चाहिए (भाव उनकी संगति नहीं करनी चाहिए।) ॥३॥

सतिगुरु पुरखु अंम्रितसरु
वडभागी नावहि आइ ॥
उन जनम जनम की मैलु उतरै
निरमल नामु द्रिड़ाइ ॥
जन नानक उतमपदु पाइआ
सतिगुर की लिव लाइ ॥४॥२॥
६६॥

सत्गुरु (महा) पुरुष है, (वह) अमृत का सरोवर है, किन्तु बड़े भाग्य वाले उस (अमृत सरोवर) में आकर स्नान करते हैं (भाव उसकी संगति करते हैं)। इस स्नान से उनकी जन्म-जन्म की मैल उतर जाती है, (क्योंकि) गुरु उनको निर्मल नाम दृढ करा देता है। हे नानक! सत्गुरु के साथ स्नेह (लिव) लग जाने से वे दास उत्तम पद (नाम की उच्चतम अवस्था) प्राप्त कर लेते हैं॥४॥२॥ ६६॥

सिरी रागु महला ४॥

गुण गावा गुण विथरा
गुण बोली मेरी माइ ॥
गुरमुखि सजणु गुणकारीआ
मिलि सजण हरिगुण गाइ ॥
हीरै हीरु मिलि बेधिआ
रंगि चलूलै नाइ ॥१॥

हे मेरी माता! (मेरा मन चाहता है कि मैं हर समय अपने प्रभु के) गुण गाता रहूँ, गुणों का विस्तार करता रहूँ और गुणों का उच्चारण भी करता रहूँ। गुरमुख (सज्जन) जो (स्वाभाविक ही) परोपकारी होते हैं, (यदि मुझे मिल जायें तो) उनके साथ मिलकर (मैं) हरि के गुण गायन करूँगा, और (गुरमुखों की संगति तथा हरि के गुण गाने से) नाम के गूढ़े लाल रंग (के चढ़ जाने) से हीरे के साथ मेरा हीरा मिलकर बींधा जाएगा ॥१॥

मेरे गोविंदा गुण गावा
त्रिपति मनि होइ ॥
अंतरि पिआस हरिनाम की
गुरु तुसि मिलावै सोई ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे गोविन्दा! (कृपा करो) मैं गुण गाता रहूँ तो मन में तृप्ति रहे और हृदय में (अन्दर भी) हरि नाम की प्यास लगी रहे (हाँ उस हरि की) जो गुरु प्रसन्न होकर मिलाता है ॥१॥ रहाउ॥

मनु रंगहु वडभागीहो
गुरु तुठा करे पसाउ ॥
गुरु नामु द्रिड़ाइ रंग सिउ
हउ सतिगुर कै बलि जाउ ॥
बिनु सतिगुर हरिनामु न लभई
लख कोटी करम कमाउ ॥२॥

हे भाग्यशालियों! (गुरु के सिखों यदि तुम भी नाम की अवस्था चाहते हो तो अपने) मन को (प्रेमाभक्ति में) रंग लो तो गुरु प्रसन्न होकर (नाम की) कृपा करे। गुरु प्रेम के साथ अपने प्यारे सिखों को नाम दृढ कराता है। मैं ऐसे सत्गुरु पर बलिहारी जाऊँ। (सच जानो) सत्गुरु के बिना हरि का नाम ढूंढने पर भी नहीं मिलता चाहे लाखों करोड़ों (और भी) कर्म कर लो ॥२॥

बिनु भागा सतिगुरु ना मिलै
घरि बैठिआ निकटि नित पासि ॥
अंतरि अगिआन दुखु भरमु है
विचि पड़दा दूरि पईआसि ॥
बिनु सतिगुर भेटे कचंनु ना थीऐ
मनमुखु लोहु बूडा बेड़ी पासि ॥३॥

(परन्तु) भाग्य के बिना सत्गुरु नहीं मिलता (यहाँ तक कि) सदा निकट होने पर (हाँ) घर में पास बैठे हुए भी नहीं मिलता। (कारण यह है कि उन जीवों के) अन्दर अज्ञान का दुःख होता है और भ्रम के पर्दा होने के कारण (निकट होते भी) दूरी पड़ी रहती है। (जैसे) बेड़ी के पास लोहा है लेकिन उसमें न चढ़ने के कारण वह डूब जाता है, (वैसे ही) मनमुख चाहे गुरु के निकटवर्ती होवे किन्तु भव-सागर में डूब जाता है। अथवा ऐसा समझो कि जैसे लोहा पारस के निकट पड़ा हो किन्तु स्पर्श किए बिना सोना नहीं बन सकता (वैसे ही मनमुख) सत्गुरु (के घर में बसता हुआ भी) उसको मिलने के बिना कचन (शुद्ध स्वरूप) नहीं बन सकता ॥३॥

सतिगुरु बोहिथु हरिनाव है
कितु विधि चड़िआ जाइ ॥
सतिगुर कै भाणै जो चलै
विचि बोहिथ बैठा आइ ॥
धंनु धंनु वडभागी नानका
जिना सतिगुरु लए मिलाइ
॥४॥३॥६७॥

(प्रश्न) सत्गुरु हरि नाम का जहाज है, उस पर किस विधि से चढ़ा जावे? (उत्तर) जो सत्गुरु की आज्ञा मे चलता है (समझ लो) वह जहाज पर चढ बैठा है। हे नानक! (वे) धन्य हैं, (वे) धन्य हैं, (वे) भाग्यशाली हैं जिन को सत्गुरु अपने नाम जहाज मे लाकर (चढाकर) हरि के साथ मिला लेता है ॥४॥३॥६७॥

सिरी रागु महला ४॥

हउ पंथु दसाई नित खड़ी
कोई प्रभु दसे तिनि जाउ ॥
जिनी मेरा पिआरा राविआ
तिन पीछै लागि फिराउ ॥
करि मिंनति करि जोदड़ी
मै प्रभु मिलणै का चाउ ॥१॥

मैं (जिज्ञासु रूपी स्त्री) नित्य (आकांक्षा से) खडी (पथिकों से) रास्ता पूछती रहती हूँ, कि (मुझे) कोई प्रभु (का मार्ग) बताए (तो) मैं उस (मार्ग बताने वाले) के पास जाऊँ। (क्योंकि) उन्होंने मेरे प्यारे (के मिलने) का रस अनुभव किया है। मैं उनके पीछे घूमती फिरती रहूँ और (उनकी) मिन्नत करूँ, (उनके आगे) विनय करूँ और (कहूँ कि) मुझे प्रभु के मिलने की (तीव्र) चाहना है ॥१॥

मेरे भाई जना कोई मो कउ
हरि प्रभु मेलि मिलाइ ॥
हउ सतिगुर विटहु वारिआ
जिनि हरि प्रभु दीआ दिखाइ ॥१॥
रहाउ॥

हे मेरे भाईजनों! कोई (परोपकारी) मुझे हरि प्रभु (प्यारे) के साथ मेल करा दे। (मेरी यह प्रार्थना सुनकर) सत्गुरु न मुझे हरि प्रभु दिखा दिया। मैं उस सत्गुरु पर बलिहारी जाता हूँ ॥१॥रहाउ॥

होइ निमाणी ढहि पवा
पूरे सतिगुर पासि ॥
निमाणिआ गुरु माणु है
गुरु सतिगुरु करे साबासि ॥
हउ गुरु सालाहि न रजऊ
मै मेले हरि प्रभु पासि ॥२॥

(अब) मैं निमाणी (विनम्र) होकर पूर्ण सत्गुरु (के चरणों) के आगे गिर पड़ूँ। निमाणियों का माण गुरु है। (हाँ) गुरु सत्गुरु (ही ऐसा दयालु है जो विनम्र निमाणियों को) शाबासी देता है। (इसीलिए) मैं गुरु की प्रशंसा करता तृप्त नहीं होता, क्योंकि वह मुझे हरि प्रभु के साथ मिला देगा ॥२॥

सतिगुर नो सभ को लोचदा
जेता जगत सभु कोइ ॥
बिनु भागा दरसनु ना थीऐ
भागहीण बहि रोइ ॥
जो हरि प्रभ भाणा सो थीआ
धुरि लिखिआ न मेटै कोइ ॥३॥

(चाहे ऐसे मिलने वाले) सत्गुरु को सभी कोई (मिलना) चाहता है, (हाँ) जितना भी जगत है, सभी कोई चाहता है किन्तु भाग्य के बिना दर्शन नहीं प्राप्त होता, भाग्यहीन (निराश होकर) बैठे रोते हैं। (पर कोई क्या करे) जो हरि प्रभु का हुकम (होता) है वही होता है, पूर्वकाल से (हरि प्रभ के द्वारा) लिखे लेख को कोई मिटा नही सकता ॥३॥

आपे सतिगुरु आपि हरि
आपे मेलि मिलाइ ॥
आपि दइआ करि मेलसी
गुर सतिगुर पीछै पाइ ॥
सभु जगजीवनु जगि आपि है
नानक जलु जलहि समाइ ॥४॥४॥६८॥

(सब कुछ हरि प्रभु आप हैं अर्थात्) आप हरि है आप सत्गुरु है, (सत्गुरु और हरि में भेद नहीं है) आप ही मिलाने वाला है, आप ही सत्गुरु के पीछे लगाकर (शरण डालकर) दया करके (अपने साथ) आप ही मिला लेगा। (हाँ) 'वह' आप ही जगत में समस्त जगत का जीवन है। हे नानक! जैसे जल के तरंग वास्तव मे जल स्वरूप होते हैं, किन्तु स्थूलदर्शी को देखने में जल से भिन्न प्रतीत होते हैं, वैसे ही यह सम्पूर्ण जगत ब्रह्म स्वरूप है, किन्तु अज्ञानी जीवों को जडता के कारण ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है ॥४॥४॥६८॥

सिरी रागु महला ४॥

रसु अंम्रितु नामु रसु अति भला
कितु बिधि मिलै रसु खाइ ॥
जाइ पुछहु सोहागणी
तुसा किउकरि मिलिआ प्रभु आइ ॥
ओइ वेपरवाह न बोलनी
हउ मलि मलि धोवा तिन पाइ ॥१॥

(प्रश्न.) नाम रूपी रस अत्यन्त श्रेष्ठ है (क्योंकि यह रस) अमृत रस है (जहाँ अन्य रस जन्म-मरण के कारण है वहाँ यह रस अमर करता है) यह रस हमें कैसे मिले (कि इसका) आस्वादन कर सके? (उत्तर:) (इस रस के दाता प्रभु प्यारे की) सुहागिन (रूप सत-पुरुषों) से जाकर पूछो कि तुम्हें (नाम-रस दाता) प्रभु कैसे आकर मिला था? (जब मैंने उनसे जाकर पूछा तो) वे बेपरवाह (सुहागिनें) बोली ही नही। (उनका प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए अवश्य) मैं उनके चरणों को मल-मल कर धोऊँगी ॥१॥

भाई रे मिलि सजण
हरिगुण सारि ॥
सजणु सतिगुरु पुरखु है
दुखु कढै हउमै मारि ॥१॥रहाउ॥

(अन्तत: उन्होंने उत्तर दिया) हे भाई ! सज्जनों को मिलकर हरि के गुण संभालो (चिन्तन करो)। (मैंने पूछा सज्जन कौन है, उन्होंने कहा) सज्जन (तो) सत्गुरु पुरुष है (हाँ, वही है) जो अहंकार के दुःख को (मन से) मारकर निकाल देता है ॥१॥ रहाउ ॥

गुरमुखीआ सोहागणी
तिन दइआ पई मनि आइ ॥
सतिगुर वचनु रतंनु है
जो मंने सु हरिरसु खाइ ॥
से वडभागी वड जाणीअहि
जिन हरिरसु खाधा गुरभाइ ॥२॥

(गुरमुख रूप) सुहागिनें गुरु के सन्मुख (होती) हैं, (हाँ) उनके मन में (मेरी दशा देख कर) दया आ गई। (मुझे उन्होंने समझाया कि) सत्गुरु के वचन रत्न (सदृश्य अमूल्य) हैं, जो (इसे) मान लेवे वह हरि रस पान करता है। वे महान भाग्यशाली जाने जाते हैं, जो हरि रस को गुरु के आदेशानुसार खाते (पीते) हैं (भाव गुरु को प्यार देकर उसके आदेश पर चल कर हरि रस प्राप्त करते हैं) ॥२॥

इहु हरि रसु वणि तिणि सभतु है
भागहीण नही खाइ ॥
बिनु सतिगुर पलै ना पवै
मनमुख रहे बिललाइ ॥
ओइ सतिगुर आगै ना निवहि
ओना अंतरि क्रोधु बलाइ ॥३॥

यह हरि-रस तृणादि सभी मे है, (इसको) भाग्यहीन (मनमुख) नही खा सकते, (क्योंकि) यह सत्गुरु के बिना प्राप्त नही होता, (चाहे) मनमुख कितना भी चिल्लाते रहे, पर वे सत्गुरु के आगे नही झुकते, (क्योकि) उनके अन्दर क्रोध रूपी पिशाच (बला) है ॥३॥

हरि हरि हरि रसु आपि है
आपे हरि रसु होइ ॥
आपि दइआ करि देवसी
गुरमुखि अंम्रितु चोइ ॥
सभु तनु मनु हरिआ होइआ
नानक हरि वसिआ मनि सोइ ॥४
॥५॥६९॥

हरि (स्वय) ही हरि है (भाव सत्य-स्वरूप है, फिर 'वह') हरि रस रूप है (भाव आनन्द स्वरूप है, सर्व व्यापक है इसलिए 'वह' हरि रस (होकर भी) आप ही तृष्णादि मे व्यापक हो रहा है। वह' दयालु होकर (यह रस) उन (जीवों) को देता है, (हाँ) वह (स्वयं) अमृत रस गुरमुखो के मुख में डालता है (जी हाँ) हे नानक! (जिनके) मन में 'वह' हरि आकर बस जाता है, उनका तन और मन (जो सूखे काठ के सदृश नीरस हो गया था, वह हरि रस से) हरा भरा हो जाता है (भाव आत्मिक आनन्द प्राप्त करके जीवन मुक्त हो जाते हैं) ॥४॥५॥६९॥

सिरी रागु महला ४॥

दिवसु चड़ै फिरि आथवै
रैणि सबाई जाइ ॥

दिन उदय होता है, फिर अस्त हो जाता है, (इस प्रकार) सारी रात भी (आती और) चली जाती है। (इस आवरआई

आव घटै नरु ना बुझै
निति मूसा लाजु टुकाइ ॥
गुड़ु मिठा माइआ पसरिआ
मनमुखु लगि माखी पचै पचाइ ॥१॥

में जीवों की) आयु घटती रहती है, किन्तु यह मनुष्य नही समझता कि (काल रूपी) चूहा मेरी आयु रूपी रस्सी को नित्य काट रहा है। (इसके चारों ओर) माया का मीठा गुण फैला हुआ है (जिसमें वह) मनमुख (जीव) मक्खीवत् फंसकर मर जाता है ॥१॥

भाई रे मै मीतु सखा प्रभु सोइ ॥
पुतु कलतु मोहु बिखु है
अंति बेली कोइ न होइ ॥१॥रहाउ॥

हे भाई ! मुझे बचाने वाला मेरा मित्र और साथी वह प्रभु है। पुत्र और स्त्री का मोह विषवत् (रूप) है; (इन में से) अन्त के समय कोई सहायक मित्र नही बनेगा ॥१॥रहाउ ॥

गुरमति हरि लिव उबरे
अलिपतु रहे सरणाइ ॥
ओनी चलणु सदा निहालिआ
हरि खरचु लीआ पति पाइ ॥
गुरमुखि दरगह मंनीअहि
हरि आपि लए गलि लाइ ॥२॥

(जिन्होने काल की गति और माया को समझ लिया है, वे गुरमुख) गुरु की मति द्वारा हरि में चितवृति लगाकर बच गये हैं, वे गुरु की शरण मे होने के कारण कमलवत् (माया के मोह जाल से) अलिप्त (रहते) हैं। उन्होने यह निश्चय करके दृष्टि मे रखा है कि यहाँ से चलना ही है (इसलिए उन्होंने) हरि नाम का खर्चा इकट्ठा कर लिया है जिससे उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। वे गुरमुख (हरि की) दरबार में सम्मानित होते हैं, हरि आप ही उन को अपने गले लगा लेता है ॥२॥

गुरमुखा नो पंथु परगटा
दरि ठाक न कोई पाइ॥
हरिनामु सलाहनि नामु मनि
नामि रहनि लिव लाइ॥
अनहद धुनी दरि वजदे
दरि सचै सोभा पाइ ॥३॥

(संसार में) गुरमुखों का (परमार्थ) मार्ग स्पष्ट होता है और उन्हे (परमात्मा) के द्वार में प्रवेश करने से कोई भी रुकावट नही डाल सकता। उस द्वार पर अनाहद ध्वनि (वाले) बाजे बजते हैं, वे (गुरमुख) उस सच्चे द्वार पर शोभा पाते हैं। (प्रश्न वह कौन-सा मार्ग है, जिस पर चलकर वे ऐसे सुन्दर द्वार पर पहुँचते हैं ? उत्तर) वे हरि नाम की स्तुतिक रते हैं, हरि नाम को मन में बसाते हैं और हरि नाम मे ही निमग्न रहते हैं ॥३॥

जिनि गुरमुखि नामु सलाहिआ
तिना सभ को कहै साबासि ॥
तिन की संगति देहि प्रभ
मै जाचिक की अरदासि ॥

जिन्होंने गुरु के सन्मुख होकर नाम का जाप किया है और (नामी-प्रभु की) स्तुति की है उनको (लोक-परलोक में) सभी कोई धन्य कहता है। हे प्रभु ! उनकी संगति मुझे दो। मुझ भिक्षुक की

नानक भाग वडे तिना गुरमुखा
जिन अंतरि नामु परगासि ॥४॥
३३॥३१॥६॥७०॥

रहा झलकता है। हे नानक ! उन गुरमुखों के भाग्य (बहुत) उत्तम हैं, जिन के अन्दर नाम का प्रकाश है ॥४॥३३॥३१॥६॥७०॥

(पांचवी पातशाही गुरु अर्जुन देव के चउपदे शब्द प्रारम्भ)

सिरी रागु महला ५ घरु १॥

किआ तू रता देखि कै
पुत्र कलत्र सीगार ॥
रस भोगहि खुसीआ करहि
माणहि रंग अपार ॥
बहुतु करहि फुरमाइसी
वरतहि होइ अफार ॥
करता चिति न आवई
मनमुख अंध गवार ॥१॥

पुत्र, स्त्री और (स्त्री के) शृंगार को देखकर तू क्यों मस्त हो रहा है ? रस भोगता है, खुशियां मनाता है, और अनेक प्रकार के आनन्द अनुभव करता है। फरमाइशें (हुकम) भी बहुत करता है और स्वच्छन्द होकर चलता है। हे मनमुख ! हे अज्ञानी ! हे मूढ़ ! कर्त्ता (तुम्हें) कभी भी चित्त मे याद नही आता ॥१॥

मेरे मन सुखदाता हरि सोइ
गुर परसादी पाईऐ
करमि परापति होइ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! (असली) सुखों का दाता 'वह' हरि है, (परन्तु) वह हरि गुरु की कृपा से प्राप्त होता है, गुरु (उत्तम) भाग्य के होने पर मिलता है ॥१॥ रहाउ ॥

कपड़ि भोगि लपटाइआ
सुइना रुपा खाकु ॥
हैवर गैवर बहु रंगे
कीए रथ अथाक ॥
किस ही चिति न पावही
बिसरिआ सभ साक ॥
सिरजणहारि भुलाइआ
विणु नावै नापाक ॥२॥

तू (सुन्दर) कपड़े (पहनने) में, भोग आदि (विषयों को भोगने) में लम्पट हो रहा है। सोना चांदी (इकट्ठा करता है) ये (तुम्हारे लिए) मिट्टी के समान हो जायेंगे। श्रेष्ठ घोड़े, उत्तम हाथी अनेक रंगों के इकट्ठे किए हुए हैं, (साथ ही) अथक रथ (संग्रह) कर रखे हैं। (उपरोक्त सामग्री को संग्रह करके तुझे ऐसा अभिमान हो गया है कि) किसी को चित्त में ही नही लाता (अर्थात् कि सी को भी अपने जैसा नहीं समझता इतने घमंड में मस्त होकर अपने) सभी सम्बन्धियों (तक) को भी भुला दिया है। (पर समझ ले कि तुझे) सृजनहार (प्रभु) ने (भी तुझे) भुला दिया है, क्योंकि तू नाम से खाली (बिना) है (इसलिए) अपवित्र है ॥२॥

लैदा बद दुआइ तूं
माइआ करहि इकत ॥
जिसनो तूं पतीआइदा
सो सणु तुझै अनित ॥
अहंकारु करहि अहंकारीआ
बिआपिआ मन की मति
तिनि प्रभि आपि भुलाइआ
ना तिसु जाति न पति ॥३॥

(फिर) तू (जिनसे जुलम करके) माया इकट्ठी करता है, (उनकी) बुरासीस लेता है। (जिस माया के ऐश्वर्य) पर (तू) विश्वास कर बैठा है वह तुम्हारे सहित अनित्य है। हे अहंकारी! तू अपनी मनमानी करके अहंकार कर रहे हो। पर तुम्हें यह पता नहीं कि तुम्हें तो उस प्रभु ने स्वयं भुला दिया है। (प्रभु यदि किसे भुला देवे तो क्या होता है? उत्तर :) उसकी न जाति से (उत्कृष्टता है और न धन ही) प्रतिष्ठा होती है ॥३॥

सतिगुरि पुरखि मिलाइआ
इको सजणु सोइ ॥
हरिजन का राखा एकु है
किआ माणस हउमै रोइ ॥
जो हरिजन भावै सो करे
दरि फेरु न पावै कोइ ॥
नानक रता रंगि हरि
सभ जग महि चानणु होइ
॥४॥१॥७१॥

(किन्तु जिसको) सत्गुरु पुरुष ने 'उस' एक (हरि रूपी) सज्जन को मिला दिया है, ऐसे हरि जन का रक्षक 'वह' एक है। अहंकारी (जीव) उसका क्या बिगाड़ सकते हैं (वे मानो सदा) रोते हैं। हरि जन को जो कुछ अच्छा लगता है, (हरि) वही कुछ करता है, उसकी की हुई अर्ज को दरबार में कोई वापिस नहीं कर सकता। हे नानक! जो हरि के रंग (प्यार) में रंगा गया है, वह सारे जगत में प्रकाश (स्वरूप) है। (भाव सारे जगत के अज्ञान अंधकार को दूर करने वाला प्रकाश रूप ज्ञान का दाता है) ॥४॥१॥७१॥

सिरी रागु महला ५॥

मनि बिलासु बहु रंगु घणा
द्रिसटि भूलि खुसीआ ॥
छत्रधार बादिसाहीआ
विचि सहसे परीआ ॥१॥

मन के जो बहुत कौतुक (विलास) हैं, उनके अत्यधिक आनन्द (रंग) में (हे जीव! तू) उल्लसित हो रहा है, (सांसारिक) खुशियों के कारण (तुम्हें) (आत्मिक) [illegible] है अथवा यह विलास भूल दृष्टि वालों की खुशियाँ हैं ... दृष्टि वालों की खुशी, और छत्रधारी (राजाओं के) राज्य (बादिशाहीआं) भी (अनेक) संशय (चिन्ताओं) में पड़े रहते हैं (अर्थात् इन नश्वर विभूतियों को प्राप्त करके भी कोई सुखी नहीं) ॥१॥

भाई रे सुखु साधसंगि पाइआ ॥
लिखिआ लेखु तिनि पुरखि बिधातै
दुखु सहसा मिटि गइआ ॥१॥ रहाउ

हे भाई! (सच्चा) सुख तो साधु की संगति में प्राप्त होता है। जिनके भाग्य में 'उस' पुरुष विधाता ने लेख लिख दिया है, उनको यह सुख मिलता है, हाँ, उनके दुःख और चिन्ता (दोनों) मिट जाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

जेते थान थनंतरा
तेते भवि आइआ ॥
धनपाती वडभूमीआ
मेरी मेरी करि परिआ ॥२॥

जितने देश-देशान्तर हैं, उन सभी में भ्रमण करके आया हूँ, (सभी जगह क्या देखा कि) धनाढय और बड़े-बड़े भूमि-पति लोग (सभी) मेरी-मेरी करते हैं ॥२॥

हुकमु चलाए निसंगु होइ
वरतै अफरिआ ॥
सभु को वसगति करि लइओनु
बिनु नावै खाकु रलिआ ॥३॥

(वस्तुत: सभी धनाढ्य और भूमि पति) नि:शंक (निर्भय) होकर हुकम चला रहे हैं और रोक-टोक के बिना स्वछन्द होकर व्यवहार कर रहे हैं। (इस प्रकार) सभी को अधीन तो कर लेते हैं, किन्तु नाम के बिना (वे सभी) धूलि में मिल जाते हैं ॥३॥

कोटि तेतीस सेवका
सिध साधिक दरि खरिआ ॥
गिरंबारी वडसाहबी
सभु नानक सुपनु थीआ ॥४॥२॥
७२॥

फिर यदि इतनी बडी भारी हकूमत (जिसकी सीमा पर्वतों से लेकर जल तक थी) जिसके द्वार पर तैतीस करोड देवते, सिद्ध तथा साधक भी खडे होकर सेवा करते थे (ऐसे चक्रवर्ती महा-प्रतापी महाराजा होते हुए भी)। हे नानक! (अन्तत:) वह सब कुछ स्वप्न हो गया (रावण के प्रति इशारा है) ॥४॥२॥७२॥

सिरी रागु महला ५॥

भलके उठि पपोलीऐ
विणु बूझे मुगध अजाणि
सो प्रभु चिति न आइओ
छुटैगी बेबाणि ॥
सतिगुर सेती चितु लाइ
सदा सदा रंगु माणि ॥१॥

(हे जाव ! देखो तुम प्रतिदिन) प्रात.काल उठकर (अपने शरीर का) पालन-पोषण करते हो, (जीवन के मनोरथ को) समझने बिना वह मूर्ख और अज्ञानी है (इस शरीर का रचनहार) प्रभु तो याद नही आया (जान लो कि यह अन्तत:) यह देह शमशान भूमि मे छोड दी जाएगी। यदि तुम सदा सदा के लिए आत्मानन्द अनुभव करना चाहते हो तो सत्गुरु के साथ चित्त लगाओ। (प्यार करो) ॥१॥

प्राणी तूं आइआ लाहा लैणि ॥
लगा कितु कुफकड़े
सभ मुकदी चली रैणि ॥१॥रहाउ॥

हे प्राणी ! तू (इस जगत मे और मनुष्य देही में) लाभ प्राप्त करने आया है। (तू) किस व्यर्थ कार्य में लग गया है, तेरी आयु रूपी रात्रि व्यतीत होती जा रही है ॥१॥ रहाउ ॥

कुदम करे पसु पंखीआ
दिसै नाही कालु ॥
ओतै साथि मनुखु है
फाथा माइआ जालि ॥

(जिस प्रकार जाल मे फसे हुए) पशु-पक्षी खेल-कूद (मनो-विनोद) करते हैं, किन्तु (उनको) मृत्यु दिखाई नहीं देती, उन के साथी (भाव उन) जैसा ही (यह मूर्ख और अज्ञानी) मनुष्य है, माया-जाल में फसा हुआ है (और मनोविनोद करने में मस्त है) किन्तु माया-जाल से छूटे हुए वही समझे जाते हैं, जो (परमात्मा

मुकते सेई भालीअहि
जि सचा नामि समालि ॥२॥

के) सच्चे नाम को सम्भालते हैं (भाव जो नाम का स्मरण करते हैं।) ॥२॥

जो घरु छडि गवावणा
सो लगा मन माहि ॥
जिथै जाइ तुधु वरतणा
तिस की चिंता नाहि ॥
फाथे सेई निकले
जि गुर की पैरी पाहि ॥३॥

जिस घर को (एक दिन) छोड़कर चले जाना है, वह मन में (प्रिय) लग रहा है। जहाँ आकर तूने निवास करना है, उसकी कोई चिन्ता नहीं है। माया-जाल में फसे हुए वही जीव निकलते हैं जो गुरु के चरणो मे आकर लगे हैं। (अर्थात् जो गुरु की शरण को ग्रहण करके उसका आज्ञा के अनुसार चलते हैं।) ॥३॥

कोई रखि न सकई
दूजा को न दिखाइ ॥
चारे कुंडा भालि कै
आइ पइआ सरणाइ ॥
नानक सचै पातिसाहि
डुबदा लइआ कढाइ ॥४॥३॥७३॥

(यह निश्चय कर ले कि गुरु के बिना माया रूपी भव-सागर से) कोई भी रक्षा नही कर सकता, (हमें) कोई दूसरा (ऐसा) दिखाई नही देता। (इसलिए) चारो दिशाओ को ढूंढकर मैं गुरु की शरण में आकर पडा हूँ, (आशा है हरि नाम देकर मुझे कृतार्थ करेंगे)। हे नानक ! उस सच्चे बादशाह (गुरु) ने (संसार-सागर में) मुझे डूबते हुए को निकाल लिया है। (अर्थात् हरि-नाम देकर आत्मानन्द का अनुभव करा दिया है।) ॥४॥३॥७३॥

सिरी रागु महला ५॥

घड़ी मुहत का पाहुणा
काज सवारणहारु ॥
माइआ कामि विआपिआ
समझै नाही गावारु ॥
उठि चलिआ पछुताइआ
परिआ वसि जंदार ॥१॥

(यह जीव जगत में) घड़ी दो घडी का (मानो) अतिथि है, किन्तु यह यहाँ ऐसे लगा हुआ है जैसे कि जगत के सारे कामो को बनाने वाला (यही) है। (इस प्रकार यह) मायिक कार्यों में लगा हुआ मूर्ख समझता नही (कि मैं क्या कर रहा हू, इतने में मृत्यु आ जाती है) और उठकर चल पड़ता है और फिर पश्चाताप करता है, जब यमदूतो के वश (अधीन) हो जाता है ॥१॥

अंधे तूं बैठा कंधी पाहि ॥
जे होवी पूरबि लिखिआ
ता गुर का बचनु कमाहि ॥१॥
रहाउ॥

हे (ज्ञान) नेत्रों से हीन-अज्ञानी) ! (जीव सावधान हो) तू (तो काल रूपी) नदी के गिरते हुए किनारे पर बैठा है। यदि (भाग्य में कोई) पूर्व लिखित (पुण्य-कर्म का) लेख लिखा हुआ है, तो तू गुरु के वचनों की कमाई कर लेगा ॥१॥ रहाउ ॥

जेते थान थनंतरा
तेते भवि आइअा ॥
धनपाती वडभूमीआ
मेरी मेरी करि परिआ ॥२॥

जितने देश-देशान्तर हैं, उन सभी में भ्रमण करके आया हूँ, (सभी जगह क्या देखा कि) धनाढय और बड़े-बड़े भूमि-पति लोग (सभी) मेरी-मेरी करते हैं ॥२॥

हुकमु चलाए निसंगु होइ
वरतै अफरिआ ॥
सभु को वसगति करि लइओनु
बिनु नावै खाकु रलिआ ॥३॥

(वस्तुत सभी धनाढय और भूमि पति) निःशंक (निर्भय) होकर हुकम चला रहे हैं और रोक-टोक के बिना स्वच्छन्द होकर व्यवहार कर रहे हैं। (इस प्रकार) सभी को अधीन तो कर लेते हैं, किन्तु नाम के बिना (वे सभी) धूलि में मिल जाते हैं ॥३॥

कोटि तेतीस सेवका
सिध साधिक दरि खरिआ ॥
गिरंबारी वडसाहबी
सभु नानक सुपनु थीआ ॥४॥२॥
७२॥

फिर यदि इतनी बडी भारी हकूमत (जिसकी सीमा पर्वतों से लेकर जल तक थी) जिसके द्वार पर तैंतीस करोड देवते, सिद्ध तथा साधक भी खड़े होकर सेवा करते थे (ऐसे चक्रवर्ती महा-प्रतापी महाराजा होते हुए भी)। हे नानक! (अन्ततः) वह सब कुछ स्वप्न हो गया (रावण के प्रति इशारा है) ॥४॥२॥७२॥

सिरी रागु महला ५॥

भलके उठि पपोलीऐ
विणु बुझे मुगध अजाणि
सो प्रभु चिति न आइओ
छुटैगी बेबाणि ॥
सतिगुर सेती चितु लाइ
सदा सदा रंगु माणि ॥१॥

(हे जीव! देखो तुम प्रतिदिन) प्रातःकाल उठकर (अपने शरीर का) पालन-पोषण करते हो, (जीवन के मनोरथ को) समझने बिना वह मूर्ख और अज्ञानी है (इस शरीर का रचनहार) प्रभु तो याद नहीं आया (जान लो कि यह अन्ततः) यह देह शमशान भूमि मे छोड दी जाएगी। यदि तुम सदा सदा के लिए आत्मानन्द अनुभव करना चाहते हो तो सत्गुरु के साथ चित्त लगाओ। (प्यार करो) ॥१॥

प्राणी तूं आइआ लाहा लैणि ॥
लगा कितु कुफकड़े
सभ मुकदी चली रैणि ॥१॥रहाउ॥

हे प्राणी! तू (इस जगत मे और मनुष्य देही में) लाभ प्राप्त करने आया है। (तू) किस व्यर्थ कार्य में लग गया है, तेरी आयु रूपी रात्रि व्यतीत होती जा रही है ॥१॥ रहाउ ॥

कुदम करे पसु पंखीआ
दिसै नाही कालु ॥
ओतै साथि मनुखु है
फाथा माइआ जालि ॥

(जिस प्रकार जाल मे फसे हुए) पशु-पक्षी खेल-कूद (मनोविनोद) करते हैं किन्तु (उनको) मृत्यु दिखाई नहीं देती, उन के साथी (भाव उन) जैसा ही (यह मूर्ख और अज्ञानी) मनुष्य है, माया-जाल में फंसा हुआ है (और मनोविनोद करने में मस्त है) किन्तु माया-जाल से छूटे हुए वही समझे जाते हैं, जो (परमात्मा

मुकते सेई भालीअहि
जि सचा नामि समालि ॥२॥

के) सच्चे नाम को सम्भालते हैं (भाव जो नाम का स्मरण करते हैं।) ॥२॥

जो घरु छडि गवावणा
सो लगा मन माहि ॥
जिथै जाइ तुधु वरतणा
तिस की चिंता नाहि ॥
फाथे सेई निकले
जि गुर की पैरी पाहि ॥३॥

जिस घर को (एक दिन) छोडकर चले जाना है, वह मन में (प्रिय) लग रहा है। जहाँ जाकर तूने निवास करना है, उसकी कोई चिन्ता नही है। माया-जाल में फंसे हुए वही जीव निकलते हैं जो गुरु के चरणो में आकर लगे हैं। (अर्थात् जो गुरु की शरण को ग्रहण करके उसका आज्ञा के अनुसार चलते हैं।) ॥३॥

कोई रखि न सकई
दूजा को न दिखाइ ॥
चारे कुंडा भालि कै
आइ पइआ सरणाइ ॥
नानक सचै पातिसाहि
डुबदा लइआ कढाइ ॥४॥३॥७३॥

(यह निश्चय कर ले कि गुरु के बिना माया रूपी भव-सागर से) कोई भी रक्षा नही कर सकता, (हमें) कोई दूसरा (ऐसा) दिखाई नहीं देता। (इसलिए) चारो दिशाओ को ढूँढकर मैं गुरु की शरण में आकर पडा हूँ, (आशा है हरि नाम देकर मुझे कृतार्थ करेंगे)। हे नानक ! उस सच्चे बादशाह (गुरु) ने (ससार-सागर में) मुझे डूबते हुए को निकाल लिया है। (अर्थात् हरि-नाम देकर आत्मानन्द का अनुभव करा दिया है।) ॥४॥३॥७३॥

सिरी रागु महला ५॥

घड़ी मुहत का पाहुणा
काज सवारणहारु ॥
माइआ कामि विआपिआ
समझै नाही गावारु ॥
उठि चलिआ पछुताइआ
परिआ वसि जंदार ॥१॥

(यह जीव जगत में) घड़ी दो घडी का (मानो) अतिथि है, किन्तु यह यहाँ ऐसे लगा हुआ है जैसे कि जगत के सारे कामों को बनाने वाला (यही) है। (इस प्रकार यह) मायिक कार्यों में लगा हुआ मूर्ख समझता नही (कि मैं क्या कर रहा हू, इतने में मृत्यु आ जाती है) और उठकर चल पडता है और फिर पश्चाताप करता है, जब यमदूतो के वश (अधीन) हो जाता है ॥१॥

अंधे तूं बैठा कंधी पाहि ॥
जे होवी पूरबि लिखिआ
ता गुर का बचनु कमाहि ॥१॥
रहाउ॥

हे (ज्ञान) नेत्रों से हीन-अज्ञानी) ! (जीव सावधान हो) तू (तो काल रूपी) नदी के गिरते हुए किनारे पर बैठा है। यदि (भाग्य में कोई) पूर्व लिखित (पुण्य-कर्म का) लेख लिखा हुआ है, तो तू गुरु के वचनों की कमाई कर लेगा ॥१॥ रहाउ ॥

हरी नाही नह डडुरी
पकी वढणहार ॥
लै लै दात पहुतिआ
लावे करि तईआरु ॥
जा होआ हुकमु किरसाण दा
ता लुणि मिणिआ खेतारु ॥२॥

(यदि तू विचार करे कि वृद्धावस्था में नाम जप लूंगा तो देख जैसे अपनी) पकी हुई (खेती) को काटने वाला है, (वैसे ही) न कच्ची का न अर्धपकी (खेता को भी काटने में सकोच नहीं करता जो चाहे काट लेना है)। (हाँ, जिस समय चाहे वह) खेती काटने वाले मजदूरे तैयार कर लेता है, जो दात्रियाँ लेकर आकर पहुँचते हैं। जब किसान का हुकम होता है, तब लावे लोग खेत को काटकर हिसाब करने के लिए नाप लेते हैं। (भाव यह है कि जब मनुष्यो को उत्पन्न करने वाले किसान रूपी परमेश्वर जीवों को मरने की आज्ञा देता है तब यम रूपी लावे विविध प्रकार के रोग तथा मृत्यु के अन्य कारण रूपी दात्रियाँ हाथ में लेकर मनुष्य रूपी खेती को काटने के लिए आ जाते हैं। वे पक्की हुई खेती वृद्धो को तो मारते हा है, परन्तु हरी खेती-बालक तथा डडुरी खेती-युवा पुरुषो को भी मारने मे शका नही करते। मारने के बाद जीव के शुभाशुभ कर्मों का हिसाब उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार खेत काटने के बाद मजदूरों का हिसाब करने के लिए खेत को नापा जाता है ॥२॥

पहिला पहरु धंधै गइआ
दूजै भरि सोइआ ॥
तीजै झाख झखाइआ
चउथै भोरु भइआ ॥
कद ही चिति न आइओ
जिनि जीउ पिंडु दीआ ॥३॥

(रात्रि का) पहला प्रहर दिन के व्यवहारो को समेटने में और खाने-पीने आदि) धन्धो मे चला जाता है। (रात्रि के) दूसरे प्रहर में खूब सोता है। (रात्रि के) तीसरे प्रहरमें भोग-विलास में दुखी होता है और चौथे (प्रहर मे) प्रात काल हो जाता है। (यह जीव का प्रतिदिन का व्यवहार है। इसी प्रकार आयु रूपी रात्रि का पहला भाग बालक और कुमार अवस्था पढ़ने एव काम सीखने और नौकरी, व्यापार करने में व्यतीत हो जाता है। दूसरे भाग मे युवावस्था आने पर धर्म की ओर से हटकर प्रमाद रूपी नीद मे सो जाते हैं। तीसरे अर्थात् अर्द्धवृद्धावस्था जब आती है तो ससार के बड़े हुए झझट और उलझनें गले मे आ पड़ती हैं और चौथे भाग मे जब वृद्धावस्था आती है, तब बाल (केश) सफेद हो जाते हैं, शरीर शिथिल हो जाता है और मृत्यु रूपी प्रातः-काल उदय हो जाता है) आयु भर कदापि उसे (कर्त्ता पुरुष) याद नही आया, जिसने उसे जीव और शरीर दिया है ॥३॥

साध संगति कउ वारिआ
जीउ कीआ कुरबाणु ॥
जिस ते सोझी मनि पई
मिलिआ पुरखु सुजाणु ॥

साधु सगति पर मैं बलिहारी हूँ और अपने जीव को (भी) न्योछावर करता हूँ, जिस मे मन को सूझ-बूझ प्राप्त हुई। (वह पहले साधु-संगति की कृपा से, सुज्ञान पुरुष (गुरु) मिल गया और गुरु की कृपा से) अन्दर बैठा और अन्दर की जानने वाला ज्ञाता

नानक डिठा सदा नालि
हरि अंतरजामी जाणु
॥४॥४॥७४॥

अन्तर्यामी हरि को सदा अपने साथ ही देख लिया। (कहते हैं बाबा) नानक ! (अर्थात् सत्संग करें जिससे सुजान पुरुष 'गुरु' मिले और उसकी कृपा से हरि की प्राप्ति हो, कैसे ? जब 'वह' अपने साथ, अपने अन्दर, हर समय, हर जगह दिखाई दे।) ॥४॥ ४॥७४॥

सिरी रागु महला ५॥

सभे गला विसरनु
इको विसरि न जाउ ॥
धंधा सभु जलाइ कै
गुरि नामु दीआ सचु सुआउ ॥
आसा सभे लाहि कै
इका आस कमाउ ॥
जिनी सतिगुरु सेविआ
तिन अगै मिलिआ थाउ ॥१॥

(ससार की) सभी बाते भूल जाये, किन्तु (सर्व का प्रेरक एव सरक्षक) एक (परमात्मा) मुझे भूल न जाए। (ससारिक) सभी व्यवहारों को जलाकर (जो जीव) धन्धा करते हुए भी उससे आसक्त नही होते। गुरु ने उन्हे अधिकारी समझकर नाम दिया (और कहा कि) नाम जपना जीवन का सच्चा प्रयोजन है। (साथ यह भी कहा कि) सभी प्रकार की आशाए निवृत करके एक ही आशा (हरि मिलने की) मन मे रखकर (नाम की) कमाई कर। जिन्होने सत्गुरु की सेवा की है, उन्हे आगे (दरबार मे) (उच्चतम) स्थान मिलता है ॥१॥

मन मेरे करते नो सालाहि ॥
सभे छडि सिआणपा
गुर की पैरी पाहि ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! कर्त्ता—उत्पत्ति 'पालन' सहार करने वाले परमात्मा की स्तुति कर, (लेकिन याद रहे स्तुति तभी सभव होगी जब तू) सभी चतुराईयों को छोड कर (ऐसे) गुरु के चरणों मे पडे रहो (अर्थात् श्रद्धा भक्ति पूर्वक शरण ग्रहण करो) ॥१॥ रहाउ॥

दुख भुख नह विआपई
जे सुखदाता मनि होइ ॥
कित ही कमि न छिजीऐ
जा हिरदै सचा सोइ ॥
जिसु तूं रखहि हथ दे
तिसु मारि न सकै कोइ ॥
सुखदाता गुरु सेवीऐ
सभि अवगण कढै धोइ ॥२॥

(गुरु नाम के साथ दृढ़ता भी देते हैं कि) यदि मन मे सुखो का दाता (परमात्मा) निवास करता है, तो (जन्म-मरण का) दु:ख और सासारिक पदार्थों की भूख (तृष्णा) व्याप्त नही होती। फिर भी किसी काम मे विघ्न बाधा और घाटा नही होता, यदि हृदय मे सच्चा परमात्मा (स्वरूप) निवास करता है। हे प्रभु ! जिसको हाथ देकर रक्षा करते हो उसको कोई भी मार नही सकता। (इसलिए हे मेरे मन ! शुभ बात तो यही है कि) सुखों के दाता-गुरु की सेवा कर (क्योंकि) वह सभी अवगुणों (की मैल) को नाम जल से धोकर निकाल देता है ॥२॥

सेवा मंगै सेवको
लाईआं अपुनी सेव ॥

(अवगुणों का मैल निकल जाने पर भी) सेवक को सेवा ही मांगनी चाहिए कि (ऐसी प्रार्थना करे कि हे गुरुदेव !) मुझे अपनी

साधू संगु मसकते तुठै पावा देव ॥
सभु किछु वसगति साहिबै
आपे करण करेव ॥
सतिगुर कै बलिहारणै
मनसा सभ पूरेव ॥३॥

सेवा में लगाईए क्योंकि साधु का संगति और (नाम के लिए) कठिन परीश्रम सब आपके प्रसन्न होने पर ही प्राप्त कर सकता हूँ।

हे साहब ! सब कुछ आपके वशीभूत है, और आप ही (सब) कार्यों को करने वाले हो। (मैं ऐसे प्रभु से मिलाने वाले) सतुगुर पर (भी) बलिहारी हूँ, जो (सेवकों की) सभी कामनाओं को पूर्ण करता है ॥३॥

इको दिसै सजणो
इको भाई मीतु ॥
इकसै दी सामगरी
इकसै दी है रीति ॥
इकस सिउ मनु मनिआ
ता होआ निहचलु चीतु ॥
सचु खाणा सचु पैनणा
टेक नानक सचु कीतु ॥४॥५॥
७५॥

(उस गुरु की कृपा से मुझे अब वह) एक (अद्वितीय परमात्मा ही अपना) सज्जन दिखाई देता है, एक वही मित्र है, वही भाई है। (इस संसार की भी सारी) सामग्री और मर्यादा (जिससे यह संसार चल रहा है उस) एक की बनाई हुई (दिख रही) है। जब 'उस' एक के साथ मन विश्वस्त हो जाता है तो चित्त भी स्थिर हो जाता है। (अत.) हे नानक ! जिन्होंने उस सत्य स्वरूप को टेक बनाया हुआ है, उनका खाना सच्च है, पहनना भी सच्च है। (अथवा सच्चा नाम ही उनका खाना और पहनना है। अथवा उनका खाना-पहनना आदि सब सफल ही सफल है) ॥४॥५॥७५॥

सिरी रागु महला ५॥

सभे थोक परापते
जे आवै इकु हथि ॥
जनमु पदारथु सफलु है
जे सचा सबदु कथि ॥
गुर ते महलु परापते
जिसु लिखिआ होवै मथि ॥१॥

सभी (धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि) पदार्थ प्राप्त हो चुके यदि एक परमात्मा हस्तगत हो जाए। (हाँ) जन्म पदार्थ सफल हो जाएगा यदि सच्चा नाम (शब्द) कथन किया। यह (नाम-स्थिति का) ठिकाना गुरु से प्राप्त होता है यदि माथे में (शुभ) लेख लिखा होवे ॥१॥

मेरे मन
एकस सिउ चितु लाइ ॥
एकस बिनु सभ धंधु है
सभ मिथिआ मोहु माइ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! एक (परमात्मा) के साथ चित्त लगाओ। 'उस' एक के बिना (अन्य से चित्त लगाना) व्यर्थ है, (क्योंकि) सब मायिक (पदार्थों का) मोह मिथ्या (निष्फल) है ॥१॥ रहाउ ॥

लख खुसीआ पातिसाहीआ
जे सतिगुरु नदरि करेइ ॥
निमख एक हरिनामु देइ
मेरा मनु तनु सीतलु होइ ॥
जिस कउ पूरबि लिखिआ
तिनि सतिगुर चरन गहे ॥२॥

लाखों राज्यों की (अनन्त) खुशियाँ प्राप्त हो चुकीं, यदि सत्गुरु कृपा-दृष्टि करे। मेरा मन और तन शीतल हो जाय, यदि (सत्गुरु) एक क्षण भर के लिए हरि नाम (दान) दे देवे। किन्तु सत्गुरु के चरण उसी ने ग्रहण किए हैं, जिसके भाग्य में पूर्व (जन्म का शुभ) लेख लिखा हुआ है ॥२॥

सफल मूरतु सफला घड़ी
जितु सचे नालि पिआरु ॥
दूख संतापु न लगई
जिसु हरि का नामु अधारु ॥
बाह पकड़ि गुरि कढिआ
सोई उतरिआ पारि ॥३॥

(हाँ) जिस घड़ी, जिस मुहूर्त सच्चे (परमात्मा) के साथ प्यार (उत्पन्न) हो, वही सफल है। (हाँ) उसको (ही) (शरीर का) दुख और (मन का)सं ताप नहीं लगता, जिसको हरि के नाम का आधार (आश्रय) मिल जाए। वही (भव-सागर से) पार होता है, जिसको गुरु ने भुजा पकड़कर बाहर निकाल दिया है ॥३॥

थानु सुहावा पवितु है
जिथै संत सभा ॥
ढोई तिस ही नो मिलै
जिनि पूरा गुरू लभा ॥
नानक बधा घरु तहाँ
जिथै मिरतु न जनमु जरा ॥४॥
६॥७६॥

वह स्थान शोभायमान और पवित्र है, जहाँ सदैव सतों की सभा (लगी) होती है। (उस सभा में) उसी को सम्मान मिलेगा जिसको पूर्ण गुरु मिल गया है। हे नानक ! मैंने तो वहाँ घर बनाया है, जहाँ मृत्यु नहीं, जन्म नहीं (हाँ) बुढ़ापा (जरा)भी नहीं। ॥४॥६॥७६॥

सिरी रागु महला ५॥

सोई धिआईऐ जीअड़े
सिरि साहाँ पातिसाहु
तिस ही की करि आस मन
जिस का सभसु वेसाहु ॥
सभि सिआणपा छडि कै
गुर की चरणी पाहु ॥१॥

हे (मेरे) जीव ! उस (प्रभु) की (सदा) आराधना करो जो बादशाहो का शिरोमणि सम्राट है। (हाँ) 'उस' (प्रभु) की ही हे मन ! आशा रख जिसका सभी को विश्वास है। (अत: यह प्राप्त करने के लिए) सभी चतुराइयों को छोड़कर गुरु के चरणो में जाकर (गिर) पड। क्योंकि गुरु के शरण में आने से गुरू नाम की बख्शिश (कृपा) करेगा और जीव फिर प्रभु की आराधना करने लगेगा। ॥१॥

मन मेरे सुख सहज सेती जपि नाउ ॥
आठ पहर प्रभु धिआइ तूं
गुण गोइंद नित गाउ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! ऐसे प्रभु (सम्राट) का नाम तू सुख पूर्वक और सहज (धैर्य) से जप और नित्य गोविन्द के गुन गा । (चाहे जप कर या गा कर, किन्तु) आठ प्रहर प्रभु का स्मरण कर। (इसी में तेरा भला है ।) ॥१॥ रहाउ ॥

तिस की सरणी परु मना
जिसु जेवडु अवरु न कोइ ॥
जिसु सिमरत सुखु होइ घणा
दुखु दरदु न मूले होइ ॥
सदा सदा करि चाकरी
प्रभु साहिबु सचा सोइ ॥२॥

हे (मेरे) मन ! उस' (प्रभु) की शरण ग्रहण कर जिसके समान महान (बडा) और कोई नहीं है। जिसका स्मरण करने से बहुत सुख (प्राप्त) होता है, और फिर दुख तथा पीडा सर्वथा नहीं होती । (हाँ) 'उसकी' नौकरी (सेवा) सर्वदा सदा करो जो प्रभु (हमारा) सच्चा साहब (स्वामी) है ॥२॥

साध संगति होइ निरमला
कटीऐ जम की फास ॥
सुखदाता भै भंजनो
तिसु आगै करि अरदासि॥
मिहर करे जिसु मिहरवानु
तां कारजु आवै रासि ॥३॥

(लेकिन याद रहे कि 'उसकी' नौकरी करने के लिए हमे) साधु की सगति से (पाप) (अहंकार की मैल दूर करके, निर्मल होना पडेगा तब यम की फास कट जाएगी। जो सुखों का दाता है, और भय को तोड़ने (समाप्त) वाला है 'उसके' आगे प्रार्थना (किया) कर। 'वही' दयालु (प्रार्थना सुनकर) जिस पर (जब) दया करते हैं तभी (उसकी आत्मा का) कार्य सिद्ध हो जाता है ॥३॥

बहुतो बहुतु वखाणीऐ
ऊचो ऊचा थाउ ॥
वरना चिहना बाहरा
कीमति कहि न सकाउ ॥
नानक कउ प्रभ मइआ करि
सचु देवहु अपुणा नाउ ॥४॥७॥
७७॥

('वह' दयालु जो आत्मिक कार्य सिद्ध करने वाला है उसके लिए प्रत्येक जीव) कहते हैं कि 'वह' (प्रभु) बहुत ऊचा है, बहुत ऊँचा है, उसका स्थान भी बहुत ऊँचा है। 'वह' वर्ण और चिन्ह से रहित है और मैं 'उसका' मूल्यांकन नही कर सकता । (क्योकि 'वह' बेअन्त है । ('उसकी' अनन्ता मे मग्न होकर मेरे गुरुदेव प्रार्थना करते हैं कि) हे प्रभु ! (बाबा) नानक पर दया करो और (इसको) सत्य नाम (सतिनाम) देने की कृपाता करो ॥४॥ ७॥७७॥

सिरी रागु महला ५॥
नामु धिआए सो सुखी
तिसु मुखु ऊजलु होइ ॥

जो नाम का ध्यान (स्मरण) करते हैं, वे (यहाँ) सुखी रहते हैं और आगे उनका मुख उज्जवल होता है। (किन्तु वह नाम) पूर्ण गुरु से प्राप्त होता है, (यह बात) सभी लोकों में प्रकट है अथवा नाम जपने वाला (भक्त) सभी लोकों में प्रकट हो

पूरे गुर ते पाईऐ
परगटु सभनी लोइ ॥
सत संगति कै घरि वसै
एको सचा सोइ ॥१॥

जाता है। 'वह' एक अद्वितीय सच्चा स्वरूप परमात्मा साधु-संगति में निवास करता है। (भाव गुरु-साधु की संगति में आकर सच्चे परमात्मा का नाम स्मरण करके अपना मुख 'उसकी' दरबार में उज्ज्वल करना है) ॥१॥

मेरे मनि हरि हरि नामु धिआइ ॥
नामु सहाई सदा संगि
आगै लए छडाइ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! (सर्व दुखो को दूर करने वाले) हरि का नाम जप, हरि का नाम सदा संग रहने वाला सहायक है और (हरि-नाम ही) आगे (परलोक मे) बंधनो से छुड़ाएगा ॥१॥ रहाउ ॥

दुनीआ कीआ वडिआईआ
कवनै आवहि कामि ॥
माइआ का रंगु सभु फिका
जातो बिनसि निदानि ॥
जा कै हिरदै हरि वसै
सो पूरा परधानु ॥२॥

दुनिया की बड़ाईयाँ (मान-प्रतिष्ठा) किस काम आती हैं ? माया का रंग (क्योंकि) अन्त मे नष्ट हो जाता है, (इसलिए मायिक आनन्द को) प्रारम्भ से ही फीका समझ (लेना चाहिए)। (वास्तव में महिमा किसकी है ?) जिसके हृदय में हरि परमात्मा का निवास है। वह पूर्ण है और प्रधान अथवा पूर्ण महिमा वाला है ॥२॥

साधू की होहु रेणुका
अपणा आपु तिआगि ॥
उपाव सिआणप सगल छडि
गुर की चरणी लागु ॥
तिसहि परापति रतनु होइ
जिसु मसतकि होवै भागु ॥३॥

(प्रश्न . यह नाम रत्न कैसे प्राप्त हो ? उत्तर :) अपने अहंकार का त्याग करके साधु के चरणो की धूलि बन, (हाँ) सभी चतुराइयाँ और उपाय छोड दे और गुरु के चरणों में लग। (किन्तु) यह (नाम) रत्न उसे ही प्राप्त होगा जिसके मस्तक पर (श्रेष्ठ) भाग्य (का लेख) होगा। (भाव गुरु साधु की शरण में आकर गुरु के चरणों में बैठकर अहंकार, चतुराइयों और अन्य सभी उपाय को छोड़कर नाम रत्न के लिए प्रार्थना कर) किन्तु (यह याद रहे कि) जिसके मस्तक मे शुभ भाग्य का लेख होगा ही तो वही नाम उसे ही नाम रत्न प्राप्त होगा ॥३॥

तिसै परापति भाईहो
जिसु देवै प्रभु आपि ॥
सतिगुर की सेवा सो करे
जिसु बिनसै हउमै तापु ॥
नानक कउ गुरु भेटिआ
बिनसे सगल संताप ॥४॥८॥७८॥

(हाँ) भाइयो ! यह (नाम-रत्न) उसे प्राप्त होगा जिसको प्रभु आप देवेगा और सत्गुरु की भी सेवा वही करेगा जिसका अहंकार रूपी ताप नष्ट होता है। (देखो बाबा) नानक को गुरु मिला है या गुरु से भेंट हुई है और अब सारे शोक और दुःख नष्ट हो गए हैं ॥४॥८॥७८॥

सिरी रागु महला ५॥

इकु पछाणू जीअ का
इको रखणहारु ॥
इकस का मनि आसरा
इको प्राण अधारु ॥
तिसु सरणाई सदा सुखु
पारब्रहमु करतारु ॥१॥

जीव का मित्र (केवल) एक (परमात्मा) है, 'वह' एक (ही) रक्षा करने वाला है, एक का ही मन को आश्रय है, और 'वह' एक ही (जीव के) प्राणों का आधार है। 'उसकी' शरण में ही सदा सुख है। (प्रश्न: 'वह' एक कौन है ? उत्तर: त्रिगुणात्मक निराकार,) परब्रह्म है और (जगत-सृष्टा सगुण रूप) कर्त्ता (भी) है ॥१॥

मन मेरे सगल उपाव तिआगु ॥
गुरु पूरा आराधि नित
इकसु की लिव लागु ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन! (और) सारे उपाय त्याग दे और एक 'उसी' के लौ (प्यार) में लगा रह (प्रश्न: *प्यार में लिवलीन कैसे होना है ?* उत्तर:) पूर्ण गुरु की नित्य (सदा) आराधना से ॥१॥ रहाउ॥

इको भाई मितु इकु
इको मात पिता ॥
इकस की मनि टेक है
जिनि जीउ पिंडु दिता ॥
सो प्रभु मनहु न विसरै
जिनि सभु किछु वसि कीता ॥२॥

(हाँ) 'वह' एक ही (सच्चा) भाई और 'वह' एक ही (सच्चा) माता-पिता है। जीव और शरीर (जिस एक ने ही दिया है) 'उस' एक की ही मन में टेक रहे, 'वह' प्रभु मन से विस्मृत न हो जिसने सब कुछ अपने वश में (अधीन) करके रखा है ॥२॥

घरि इको बाहरि इको
थान थनंतरि आपि ॥
जीअ जंत सभि जिनि कीए
आठ पहर तिसु जापि ॥
इकसु सेती रतिआ
न होवी सोग संतापु ॥३॥

(प्रश्न: 'वह' एक कर्त्ता प्रभु कहाँ है ? उत्तर:) घर में 'वह' एक है, घर से बाहर भी 'वह' एक है (भाव मन और शरीर में और शरीर से बाहर भी) सभी स्थानों पर और स्थानों के अन्दर गति भी 'वही' आप है (अथवा छोटे-बड़े स्थानों पर)। 'उस' ने सारे जीव-जन्तु उत्पन्न किये हैं, (अत:) उसका आठ प्रहर (तू) जाप (स्मरण) कर। (याद रखना) 'उस' एक के साथ अनुरक्त होने से फिर शोक और संताप नही होता ॥३॥

पारब्रहमु प्रभु एकु है
दूजा नाही कोइ ॥
जीउ पिंडु सभु तिस का
जो तिसु भावै सु होइ ॥

(फिर देखो) जीव और शरीर सब (कुछ) 'उसका' (दिया हुआ) है, (फिर देखो) होता भी वही कुछ है जो 'उसे' अच्छा लगता है। (फिर देखो जो कोई) पूर्ण हुआ है, 'उसे' सच्चे (पर-

पुरि पूरै पूरा भइआ
जपि नानक सचा सोइ ॥४॥
९॥७९॥

मात्मा) को पूर्ण गुरु द्वारा जप कर ही पूर्ण हुआ है (कहते हैं मेरे गुरु देवबाबा) नानक (साहब) ॥४॥९॥७९॥

सिरी रागु महला ५

जिना सतिगुर सिउ चितु लाइआ
से पूरे परधान ॥
जिन कउ आपि दइआलु होइ
तिन उपजै मनि गिआनु
जिन कउ मसतकि लिखिआ
तिन पाइआ हरिनामु ॥१॥

(हाँ) वे ही (पुरुष) पूर्ण और प्रधान हैं, जिन्होंने सतगुरु के साथ चित्त लगाया है। ज्ञान उन के मन में उत्पन्न होता है, जिन पर (प्रभु) आप दयालु होता है और हरि नाम (भी) वही प्राप्त करते हैं, जिनके मस्तक पर (पूर्व) लिखित हरि नाम प्राप्त करने का लेख लिखा होता है ॥१॥

मन मेरे एको नामु धिआइ ॥
सरब सुखा सुख ऊपजहि
दरगह पैधा जाइ ॥१॥रहाउ॥

(इसलिये) हे मेरे मन ! एक (के ही) नाम का ध्यान (स्मरण) कर। (इस से) सारे सांसारिक सुखों का शिरोमणि (आत्मिक) सुख (तुम्हारे अन्दर) उत्पन्न हो जायेगा (और तू प्रभु की) दरबार में भक्ति रूपी वस्त्रों से सुशोभित होकर (सम्मान पूर्वक) जाएगा ॥१॥ रहाउ ॥

जनम मरण का भउ गइआ
भाउ भगति गोपाल ॥
साधू संगति निरमला
आपि करे प्रतिपाल ॥
जनम मरण की मलु कटीऐ
गुर दरसनु देखि निहाल ॥२॥

(उस पुरुष का) जन्म-मरण का भय दूर हो जाता है, जो गोपाल प्रभु की प्रेम-भक्ति करता है। (हाँ) जो साधु की संगति करके (पाप और अहम् की) मैल से रहित हो जाता है, उसकी प्रतिपालना (गोपाल) आप करता है क्योंकि उसका वह मैल कट गई है, जो जन्म-मरण को देने वाली होती है। अब वह गुरु के दर्शन देख-देख कर कृतार्थ हो रहा है ॥२॥

थान थनंतरि रवि रहिआ
पारब्रहमु प्रभु सोइ ॥
सभना दाता एकु है
दूजा नाही कोइ ॥
तिसु सरणाई छुटीऐ
कीता लोड़ै सु होइ ॥३॥

स्थानों और स्थानों के अन्तर्गत (सभी जगह) 'वह' परब्रह्म प्रभु व्यापक हो रहा है। सभी (जीवों) का दाता 'वह' है, (अन्य) दूसरा (ऐसा दाता) कोई नही है। (हे मन !) 'उसकी' शरणागत से जीव सारे बन्धनों से छूट जाता है, ऐसा (शरणागत पुरुष) जो करना चाहेगा वही होगा। (भाव उसके संकल्प सत्य होंगे) ॥३॥

जिन मनि वसिआ पारब्रहमु
से पूरे परधान ॥
तिन की सोभा निरमली
परगटु भई जहान ॥
जिनी मेरा प्रभु धिआइआ
नानक तिन कुरबान ॥४॥१०॥८०॥

जिन के मन में परब्रह्म परमात्मा निवास कर रहा है वे ही पूर्ण है और प्रधान हैं। उन की शोभा निर्मल है जो ससार में प्रकट हो जाते हैं। जिन्होंने मेरे प्रभु (गोपाल) का ध्यान (स्मरण) किया है, हे नानक ! (मैं) उन पर बलिहारा हूँ ॥४॥ १०॥८०॥

सिरी रागु महला ५॥

मिलि सतिगुर सभु दुखु गइआ
हरि सुखु वसिआ मनि आइ ॥
अंतरि जोति प्रगासीआ
एकसु सिउ लिव लाइ ॥
मिलि साधू मुखु ऊजला
पूरबि लिखिआ पाइ ॥
गुण गोविंद नित गावणे
निरमल साचै नाइ ॥१॥

(प्रश्न : गुरु-सेवा से कैसा सुख प्राप्त होता है ? उत्तर :) सत्गुरु को मिलने से सभी (प्रकार के) दुःख दूर हो गए हैं और हरि (प्राप्ति) के सुख ने मन में आकर निवास किया है। पहले एक (अद्वितीय प्रभु) से प्यार लगाया था तो (हृदय के) भीतर (परम) ज्योति (परमात्मा) का प्रकाश हो गया था, (इस प्रकार) साधु (सत्गुरु) को मिलकर मुख उज्ज्वल हो गया, वैसे प्राप्ति पूर्व-लिखित ही थी। (अब ऐसा जीव) गोबिन्द के गुणो को सदा गाता है और निर्मल सच्चे नाम का स्मरण करता है अथवा नित्य गोबिन्द के गुण गाने से और सच्चे नाम का स्मरण करने से (बाहर-भीतर) निर्मल हो जाता है ॥१॥

मेरे मन गुरसबदी सुखु होइ ॥
गुर पूरे की चाकरी
बिरथा जाइ न कोइ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! गुरु के शब्द से सुख (प्राप्त) होता है। पूरे गुरु की सेवा करने से (भाव पूर्ण गुरु के शब्द अनुसार चलने से) जीव (गुरु के द्वार से) खाली नहीं जाता ॥१॥ रहाउ ॥

मन कीआ इछां पूरीआ
पाइआ नामु निधानु ॥
अंतरजामी सदा संगि
करणैहारु पछानु ॥
गुरपरसादी मुखु ऊजला
जपि नामु दानु इसनानु ॥
कामु क्रोधु लोभु बिनसिआ
तजिआ सभु अभिमानु ॥२॥

(गुरु-सेवा करके जब) नाम रूपी खजाना प्राप्त हुआ, तो मन की (सभी) इच्छायें पूर्ण हो गई। सृष्टि की उत्पत्ति करने वाले अन्तर्यामी (परमात्मा) को सदा अपने साथ पहचान लिया। गुरु की कृपा से 'उसका' नाम जप (अप) कर, (यथाशक्ति) दान दे (दे) कर और स्नान करके (उस सच्ची दरबार में उनका) मुख उज्जवल हुआ है। काम क्रोध और लोभ (विकार) नष्ट हो गए और (इस त्याग का भी) सारा अहकार त्याग दिया है ॥२॥

पाइआ लाहा लाभु नामु
पूरन होए काम ॥
करि किरपा प्रभि मेलिआ
दीआ अपणा नामु ॥
आवण जाणा रहि गइआ
आपि होआ मिहरवानु ॥
सचु महलु घरु पाइआ
गुर का सबदु पछानु ॥३॥

नाम का लाभ प्राप्त करने से (आत्मिक) लाभ प्राप्त हुआ है और सभी कामनायें पूर्ण हो गई हैं। प्रभु ने (आप) कृपा करके (हमें गुरु) मिलाया और (फिर उस गुरु द्वारा हमें) अपना नाम दिया। (हाँ) 'वह' आप ही दयालु हुआ और (हमारा) जन्म-मरण निवृत्त हो गया। (इस प्रकार हमने सच्चा) घर (आत्म स्वरूप) और (साथ ही) सच्चा महल (परमात्मा स्वरूप) प्राप्त किया। (किन्तु यह तभी सम्भव हुआ जब) गुरु के शब्द को पहचान लिया ॥३॥

भगत जना कउ राखदा
आपणी किरपा धारि ॥
हलति पलति मुख ऊजले
साचे के गुण सारि ॥
आठ पहर गुण सारदे
रते रंगि अपार ॥
पारब्रहमु सुख सागरो
नानक सद बलिहार ॥४॥११॥
८१॥

(ऐसे) भक्त जनों पर 'वह' अपनी कृपा करके सारे दुःखों से रक्षा करता है। ऐसे भक्तजन सच्चे (परमात्मा) के गुणों को संभालते रहते हैं (जिनसे उनका मुख) लोक-परलोक में उज्ज्वल होता है। वे (भक्त केवल मुख से गुण नहीं गाते वे तो) अपार प्रेम में रंगे हुए आठ ही प्रहर हरि के गुणो को संभालते हैं। हे नानक! परब्रह्म (परमेश्वर) सुखों का सागर है और भक्त सदा बलिहारी जाते रहते हैं ॥४॥११॥८१॥

सिरी रागु महला ५॥

पूरा सतिगुरु जे मिलै
पाईऐ सबदु निधानु ॥
करि किरपा प्रभ आपणी
जपीऐ अंम्रित नाम ॥
जनम मरण दुखु काटीऐ
लागै सहजि धिआनु ॥१॥

यदि पूर्ण सत्गुरु मिल जाये तो (नाम रूपी) शब्द का खजाना प्राप्त हो जाता है। जब प्रभु अपनी कृपा करता है तो (गुरु द्वारा प्राप्त) अमर करने वाले नाम को (शिष्य) जपता है। (नाम के जाप से) सहज में ध्यान लग जाता है, (इस ध्यान के लगने से) जन्म-मरण का दुःख कट जाता है ॥१॥

मेरे मन प्रभ सरणाई पाइ ॥
हरि बिनु दूजा को नही
एको नामु धिआइ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन! हरि के बिना दूसरा कोई नहीं है, (इसलिए) प्रभु की शरण प्राप्त करो और एक नाम का ध्यान करो। ॥१॥ रहाउ॥

कीमति कहणु न जाईऐ
सागरु गुणी अथाहु ॥
वडभागी मिलु संगती
सचा सबदु विसाहु ॥
करि सेवा सुखसागरै
सिरि साहा पातिसाहु ॥२॥

यह सच्चा शब्द (नाम) गुणों का अथाह सागर है, इसका मूल्यांकन किया नहीं जा सकता। (हे जीव !) तू बड़े भाग्य द्वारा (सत्) संगति में मिल और यह सच्चा शब्द (नाम) खरीद ले (फिर) इस नाम द्वारा, जो बादशाहों का भी शिरोमणि बादशाह है, 'उस' सुख सागर (परमेश्वर) की सेवा कर ॥२॥

चरण कमल का आसरा
दूजा नाही ठाउ ॥
मैं धर तेरी पारब्रहम
तेरै ताणि रहाउ ॥
निमाणिआ प्रभु माणु तूं
तेरै संगि समाउ ॥३॥

हे परब्रह्म ! मुझे तेरे चरण-कमलों का (ही) आश्रय है और दूसरा स्थान मेरा (कोई) नही। मुझे (केवल) तेरी (ही) टेक है और मैं (सदा) तेरे ही बल के सहारे पर पड़ा रहता हूँ। हे प्रभु ! तू (ही निमाणिओ का मान है, (कृपा कर, कि मैं सदा) तेरे साथ (ही) समाया (अभेद) रहूँ ॥३॥

हरि जपीऐ आराधीऐ
आठ पहर गोविंदु ॥
जीअ प्राण तनु धनु रखे
करि किरपा राखी जिंदु ॥
नानक सगले दोख उतारिअनु
प्रभु पारब्रहमु बखसिंदु ॥४॥१२॥
८२॥

(अत:) आठ (ही) प्रहर (उस) गोविन्द (उस) हरि का (रसना से) जाप करें और (मन से) आराधना करें जिसने भक्तो के जीव, प्राण तन और धन की (सदा) रक्षा की है और कृपा करके आत्मा की भी (आवागमन के चक्र से) रक्षा की है। (हाँ) 'उस' परब्रह्म (परमात्मा) ने (अपने भक्तों के) सारे दोष (अपने मन से) दूर कर दिए हैं, (क्योकि) 'वह' क्षमाशील प्रभु है, कहते हैं मेरे गुरुदेव (बाबा) नानक (साहब) ॥४॥१२॥८२॥

सिरी रागु महला ५॥

प्रीति लगी तिसु सच सिउ
मरै न आवै जाइ ॥
ना वेछोड़िआ विछुड़ै
सभ महि रहिआ समाइ ॥
दीन दरद दुख भंजना
सेवक कै सत भाइ ॥
अचरज रूपु निरंजनो
गुरि मेलाइआ माइ ॥१॥

(भक्तो की) प्रीत 'उस' सत्य स्वरूप परमेश्वर से लगी है, जो न मरता है, न (जन्म मरण मे) आता-जाता है। (फिर आकाश के समान) 'वह' सभी में (ऐसा रस) रमा रहा है, जो अलग करने पर भी अलग नही होता। वह विनम्र (दीन) के दुःख और दर्द को काटता है और सेवकों को सच्चे स्नेह से मिलता है। हे माता ! 'वह' (फिर) माया-रहित (निरंजन) है, (इसलिए) आश्चर्य है कि 'वह' रूप, (मुझे) गुरु ने मिला दिया है ॥१॥

भाई रे मीतु करहु प्रभु सोइ ॥
माइआ मोह परीति ध्रिगु
सुखी न दीसै कोइ ॥१॥ रहाउ ॥

हे (मेरे) भाई ! (तुम भी) उस प्रभु (परमात्मा) मित्र बनाओ। माया के मोह वाली प्रीति तो धिक्कार योग्य है (ऐसी प्रीति वाला) कोई (भी) सुखी नहीं दिखता ॥१॥ रहाउ ॥

दाना दाता सीलवंतु
निरमलु रूपु अपारु ॥
सखा सहाई अति वडा
ऊचा वडा अपारु ॥
बालकु बिरधि न जाणीऐ
निहचलु तिसु दरवारु ॥
जो मंगीऐ सोई पाईऐ
निधारा आधारु ॥२॥

'वह' निरंजन प्रभु सभी कुछ जानने वाला, (महान) दाता, उत्तम स्वभाव वाला, (परम) पवित्र और अत्यन्त सुन्दर है। (सुहृद) मित्र, (सबका) सहायता करने वाला, सबसे अधिक बड़ा और ऊंचा है, (हाँ) बड़ा अनन्त है। बाल्यादि अवस्था से रहित होने के कारण परमात्मा को बालक और बूढ़ा नहीं समझना चाहिए किन्तु 'उसका' स्वरूप (दरबार) निश्चल और अटल है। (फिर 'उससे') जो कुछ माँगा जाता है, वही प्राप्त होता है और आश्रयहीनों का आश्रय है। ॥२॥

जिसु पेखत किलविख हिरहि
मनि तनि होवै सांति ॥
इकमनि एकु धिआईऐ
मन की लाहि भरांति ॥
गुण निधानु नवतनु सदा
पूरन जा की दाति ॥
सदा सदा आराधीऐ
दिनु विसरहु नही राति ॥३॥

जिसके दर्शन मात्र से पाप नष्ट हो जाते हैं, मन और शरीर शान्त हो जाते हैं। (हाँ) एक को एकाग्र मन से ध्यान करें, (हाँ) मन की भ्रान्ति को दूर करके (ध्यान करें)। 'वह' सर्व गुणों का खजाना है और सदा नवीन हृष्ट-पुष्ट और 'उसकी' प्रत्येक वस्तु पूर्ण है (कोई भी अधूरी नहीं)। ऐसे प्रभु की सदा सदा आराधना करें, न 'उसे' दिन को भूलें न रात्रि को (भूलें) ॥३॥

जिन कउ पूरबि लिखिआ
तिन का सखा गोविंदु ॥
तनु मनु धनु अरपी सभो
सगल वारीऐ इह जिंदु ॥
देखै सुणै हदूरि सद
घटि घटि ब्रहमु रविंदु ॥
अकिरतघणा नो पालदा
प्रभ नानक सद बखसिंदु ॥४॥
१३॥८३॥

जिनके भाग्य में पहले से (संयोग का लेख) लिखा हुआ होता है, उन्हीं का गोविन्द (प्रभु सुहृद) मित्र होता है। (अतः) उसें तन, मन और धन सभी कुछ अर्पण करने चाहिए और समस्त जीवन भी समर्पण कर देना चाहिए। 'वह' परब्रह्म परमात्मा अत्यन्त समीप है और प्रत्येक जीव के कर्म को देखता है, (प्रत्येक जीव की प्रार्थना को) सुनता है और प्रत्येक शरीर में रमण कर रहा है सर्वत्र (सर्व व्यापक है)। हे नानक ! प्रभु उनको भी पालता है जो 'उसके' किए हुए उपकारों को भूल जाते हैं, (किन्तु ऐसा) प्रभु सदा (ही) क्षमा करने वाला है ॥४॥१३॥८३॥

सिरी रागु महला ५॥

मनु तनु धनु जिनि प्रभि दीआ
रखिआ सहजि सवारि ॥
सरब कला करि थापिआ
अंतरि जोति अपार ॥
सदा सदा प्रभ सिमरीऐ
अंतरि रखु उरधारि ॥१॥

जिस प्रभु ने (हमें) मन, तन और धन दिए हैं और फिर स्वाभाविक ही (हमारे अंग प्रत्येक अंग) सुन्दर बना रखे हैं तथा (फिर हमें शारीरिक) सर्व शक्तियाँ प्रदान करके स्थापित किया है अतएव उसमें अनन्त शक्तिमान परमात्मा ने चैतन्य सत्ता डाल दी है, गोविन्द (ऐसे) प्रभु का सदा सदा स्मरण करें। (हाँ) हृदय के अन्दर 'उसे' धारण करके ('उसका' चिन्तन करना चाहिए)
॥१॥

मेरे मन हरि बिनु अवरु न कोइ ॥
प्रभ सरणाई सदा रहु
दूखु न बिआपै कोइ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! हरि के बिना दूसरा और कोई (उपकारी) नहीं है। (अतः) प्रभु की शरण में सदा रहो (याद रहे जो भी 'उसकी' शरण में रहते हैं उन्हें कभी भी) कोई दुःख व्याप्त नहीं होगा
॥१॥रहाउ॥

रतन पदारथ माणका
सुइना रुपा खाकु ॥
मात पिता सुत बंधपा
कूड़े सभे साक ॥
जिनि कीता तिसहि न जाणई
मनमुख पसु नापाकु ॥२॥

माणिक्यादि रत्न और स्वर्ण-रजतादि पदार्थ भस्म हो जाने वाले हैं, (इसी प्रकार) सारे सम्बन्धी माता, पिता, पुत्र और बन्धुजन (आदि) झूठे हैं। (इन स्वार्थी सम्बन्धियों के आश्रय रहने वाला और अपने) मन के पीछे चलने वाला (मनमुख) अपवित्र पशु (जैसा) है, (क्योंकि वह) जिसने उसको उत्पन्न किया है 'उस' (परोपकारी) परमात्मा को नहीं जानता ॥२॥

अंतरि बाहरि रवि रहिआ
तिस नो जाणै दूरि ॥
त्रिसना लागी रचि रहिआ
अंतरि हउमै कूरि ॥
भगती नाम विहूणिआ
आवहि वंञहि पूर ॥३॥

(और देखो मनमुख जीव की अज्ञानता, जो प्रभु शरीर के) अन्दर और बाहर (प्रकृति में) रम रहा है (सर्वत्र परिपूर्ण है) उसको (अति) दूर जानता है। (इसके) अन्दर झूठा अहम् भाव है जिस कारण इसको तृष्णा लग रही है, (इसलिए वह नित्य सांसारिक नश्वर पदार्थों को इकट्ठा कर रहा है और सम्बन्धियों से आसक्त है।) ऐसे जीव जो प्रेमा-भक्ति और (हरि) नाम के (स्मरण से) रहित हैं, पूरों के पूर (जन्म-मरण के चक्र में) आते और जाते हैं ॥३॥

राखि लेहु प्रभु करणहार
जीअ जंत करि दइआ ॥
बिनु प्रभ कोइ न रखनहारु
महा बिकट जम भइआ ॥

हे सृष्टि के करने वाले प्रभु परमेश्वर ! (इन) जीव-जन्तुओं की दया करके रक्षा करो। हे प्रभो ! तुम्हारे बिना कोई भी रक्षा करने वाला नहीं है, (यम से) यम का भय अति दुःखदायक

नानक नामु न वीसरउ
करि अपुनी हरि मइआ ॥४॥
१४॥८४॥

है। (अतः) हे हरि ! अपनी कृपा करो जिससे (आपका) नाम न भूले, (विनय करते हैं मेरे गुरुदेव, बाबा) नानक (साहब) ॥४॥१४॥८४॥

सिरी रागु महला ५॥

मेरा तनु अरु धनु मेरा
राज रूप मैं देसु ॥
सुत दारा बनिता अनेक
बहुतु रंग अरु वेसु ॥
हरि नामु रिदै न वसई
कारजि कितै न लेखि ॥१॥

(हे जीव ! तू अज्ञानता के कारण कहता फिरता है कि यह) शरीर मेरा है और धन मेरा है, राज्य मेरा है, देश (मेरा) है। पुत्र (मेरे) हैं, स्त्री (मेरी) है, और (सेवा करने वाली) अनेक स्त्रियाँ हैं जिनके कारण तरह-तरह के आनन्द का अनुभव करता है अथवा पहनने के लिए रंग-रंग के बहुत वस्त्र हैं, किन्तु यदि हृदय में हरि नाम नहीं बसता तो (पूर्वोक्त समस्त सामग्री) किसी लेखे में नहीं। (परलोक मे यह) किसी काम नहीं आती ॥१॥

मेरे हरि हरि नामु धिआइ ॥
करि संगति नित साध की
गुरचरणी चितु लाइ ॥१॥रहाउ॥

(अत:) हे मेरे मन ! हरि (हाँ) हरि के नाम का ध्यान कर और नित्य साधु की संगति कर तथा गुरु के चरणों में चित्त लगा ॥१॥ रहाउ ॥

नामु निधानु धिआईऐ
मसतकि होवै भागु ॥
कारज सभि सवारीअहि
गुर की चरणी लागु ॥
हउमै रोगु भ्रमु कटीऐ
ना आवै ना जागु ॥२॥

जब मस्तक में (श्रेष्ठ) भाग्य (का लेख) होता है तो नाम, जो सर्व सुखों का खजाना है, ध्यान (स्मरण) किया जाता है और (यदि) गुरु के चरणों (की शरण) में आ जाएँ तो सारे कार्य ठीक हो जाते हैं। (इस प्रकार) हउमै का रोग और (मन का) भ्रम कट जाता है, फिर यह जीव आवागमन में नहीं आता और न (ही) जायेगा ॥२॥

करि संगति तू साध की
अठसठि तीरथ नाउ ॥
जीउ प्राण मनु तनु हरे
साचा एहु सुआउ ॥
ऐथै मिलहि वडाईआ
दरगहि पावहि थाउ ॥३॥

(अत. हे भाई !) तू (अपने कल्याण के लिये) साधु की संगति कर, (यह है) अठाहठ तीर्थों का स्नान करना। (साधु की संगति से) जीव और प्राण एवं मन और शरीर हरे भरे (प्रफुल्लित) हो जाएँगे, (वास्तव में) सच्चा लाभ यही है। (फिर तुम्हें) इस लोक में प्रतिष्ठा मिलेगी और (प्रभु) दरबार मे (तुम्हें) स्थान मिलेगा ॥३॥

करे कराए आपि प्रभु
सभु किछु तिस ही हाथि ॥

सब कुछ प्रभु के हाथ में है, आप ही 'वह' सब कुछ करता है और (जीवों से) कराता है। (मनुष्य के) अन्दर और बाहर (सदा)

सिरी रागु महला ५॥

सोई सासतु सउणु सोइ
जितु जपीऐ हरिनाउ ॥
चरणकमल गुरि धनु दीआ
मिलिआ निथावे थाउ ॥
साची पूंजी सचु संजमो
आठ पहर गुण गाउ ॥
करि किरपा प्रभु भेटिआ
मरणु न आवणु जाउ ॥१॥

वही शास्त्र (श्रेष्ठ) है, वही शकुन (श्रेष्ठ) है, जिसके द्वारा हरि नाम का जाप (स्मरण) किया जाये। जिसको गुरु ने चरण-कमलों का (ध्यान रूपी) धन दे दिया उन (निथावे) स्वरूप से भूले हुए आश्रय हीन को (थाउ) स्वरूप की प्राप्ति रूपी स्थान प्राप्त हुआ है। (हे मेरे मन!) आठ प्रहर (गोविन्द के) गुण गाते रहो यही सदा रहने वाली सच्ची पूँजी है और यही इन्द्रियों को वश मे करने का अटल सच्चा सयम है। ऐसे जीव को प्रभु कृपा करके आकर मिलता है और (फिर) वह मरने जमने और आवागमन से रहित हो जाता है ॥१॥

मेरे मन हरि भजु सदा इकरंगि ॥
घट घट अंतरि रवि रहिआ
सदा सहाई संगि ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन! सदा (प्रेम के) एक रग से उस हरि का भजन कर जो प्रत्येक शरीर के अन्दर व्यापक हो रहा है और जीव के अग संग रहता है तथा सदा सहायक है ॥१॥ रहाउ ॥

सुखा की मिति किआ गणी
जा सिमरी गोविंदु ॥
जिन चाखिआ से त्रिपतासिआ
उहु रसु जाणै जिंदु ॥
संता संगति मनि वसै
प्रभु प्रीतमु बखसिंदु ॥
जिनी सेविआ प्रभु आपणा
सोई राज नरिंदु ॥२॥

जब (मैं) गोबिन्द का स्मरण करता हूँ, तब (उस समय के) सुखों की गिनती का क्या अनुमान लगाऊँ? जिन्होंने हरि रस का आस्वादन किया है, वे तृप्त हो गए हैं, (हाँ) उस (आत्म) रस को वही जीव जानते हैं (जिन्होंने रसास्वादन किया है)। (ऐसा) प्यारा प्रभु जो (भूलचूक) क्षमा करने वाला है 'वह' सन्तों की संगति द्वारा (आकर) मन मे निवास करता है। (हाँ) जिन्होंने 'उसकी' सेवा अपना प्रभु समझकर की है, वे राजाओं से भी राजा हैं (अर्थात् वे संसार में परम पूजनीय हैं) ॥२॥

अउसरि हरि जसु गुण रमण
जितु कोटि मजन इसनानु ॥
रसना उचरै गुणवती
कोइ न पुजै दानु ॥
द्रिसटि धारि मनि तनि वसै
दइआल पुरखु मिहरवानु ॥

जिस समय में हरि यश एवं हरि-गुण गायन किये जाते हैं, वह करोड़ों तीर्थों में डुबकी लगाकर स्नान करने के तुल्य है, (फिर) जो रसना हरि नाम का उच्चारण करती है, वह (जिह्वा श्रेष्ठ) गुणों वाली और किसी प्रकार का भी दान इस काम की तुलना नहीं कर सकता। (जो जीव भक्ति में अनुरक्त है उसके) तन और मन में दयालु कृपालु पुरुष (परमात्मा अपनी) कृपा दृष्टि धारण करके

जीउ पिंडु सभु तिसका
हउ सदा सदा कुरबानु ॥३॥

आकर निवास करता है। यह जीव (सब शरीर और प्राण आदि सब कुछ) जिस (परमेश्वर) का (दिया हुआ) है, मैं 'उस' (कृपालु हरि) पर सर्वदा सदा बलिहारी जाता हूँ ॥३॥

मिलिआ कदे न विछुड़ै
जो मेलिआ करतारि ॥
दासा के बंधन कटिआ
साचै सिरजणहारि ॥
भूला मारगि पाइओनु
गुण अवगुण न बीचारि ॥
नानक तिसु सरणागति
जि सगल घटा आधारु ॥४॥
१७॥८८॥

जिसको कर्तार ने (अपने साथ) मिला लिया है, वह मिला हुआ (फिर) कभी अलग नही होता। सेवकों के बन्धनों को सृष्टि-कर्त्ता सच्चे परमात्मा ने (आप) काट दिया है; भूले हुए दासों को भी 'उस' प्रभु ने (उनके गुण तथा दुर्गुणों का विचार न करके) सन्मार्ग में लगा दिया है। हे नानक ! मैं 'उस' परमात्मा की शरण ग्रहण करता हूँ, जो सब शरीरों (जीवों) का आश्रय है ॥४॥
१७॥८८॥

सिरी रागु महला ५॥

रसना सचा सिमरीऐ
मनु तनु निरमलु होइ ॥
मात पिता साक सगले
तिसु बिनु अवरु न कोइ ॥
मिहर करे जे आपणी
चसा न बिसरै सोइ ॥१॥

रसना के द्वारा सच्चे (परमात्मा) का स्मरण करने से मन और तन (दोनों) निर्मल हो जाते हैं। (फिर) 'उसके' बिना (लोक-परलोक मे सहायक) कोई (भी) और नहीं है, चाहे माता, पिता आदि सम्बन्धी (कितने भी बहुत) हों। जब 'वह' अपनी कृपा-दृष्टि करता है, तब 'वह' क्षण मात्र भी नहीं भूलता ॥१॥

मन मेरे साचा सेवि जिचरु सासु ॥
बिनु सचे सभ कूड़ु है
अंते होइ बिनासु ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! जब तक (शरीर में) श्वास है, तब तक सच्चे (प्रभु) का सेवन (पूजन) कर, सच्चे प्रभु के बिना सब (कुछ) झूठ (मिथ्या) है, अतः अन्त मे अवश्य नष्ट ही जायेगा ॥१॥ रहाउ ॥

साहिबु मेरा निरमला
तिसु बिनु रहणु न जाइ ॥
मेरै मनि तनि भुख अति अगली
कोई आणि मिलावै माइ ॥
चारे कुंडा भालीआ
सह बिनु अवरु न जाइ ॥२॥

मेरा साहब माया तथा अविद्या मल से निर्मल है, उसके बिना (मुझ से) रहा नहीं जाता। मेरे मन और तन में 'उसके' मिलने की अत्यन्त चाहना (भूख) है। हे मेरी माता ! कोई (प्यारा) आकर मुझे मेरे अपने स्वामी से मिला देवे। मैंने चारों दिशाएँ ढूँढ कर देखी हैं कि 'उस' पति (परमेश्वर) के बिना कोई स्थान नहीं है ॥२॥

गुर चरणी जिस मनु लगा
से वडभागी माइ ॥
गुरु दाता समरथु गुरु
गुरु सभ महि रहिआ समाइ ॥
गुरु परमेसरु पारब्रहमु
गुरु डुबता लए तराइ ॥२॥

भाग्यवान हैं वे जिनका मन (अपने) गुरु के चरणों में लग गया है। गुरु दाता है (नाम भक्ति का), गुरु समर्थ है (नाम देने में), और गुरु ही सर्वत्र समा रहा है। गुरु (साक्षात्) परमेश्वर (स्वरूप) है, परब्रह्म है और गुरु डूबते हुए (जीव) को (भव-सागर से) तार लेता है ॥२॥

कितु मुखि गुरु सालाहीए
करणकारण समरथु ॥
से मथे निहचल रहे
जिन गुरि धारिआ हथु ॥
गुरि अंमृत नामु पीआलिआ
जनम मरन का पथु ॥
गुरु परमेसुरु सेविआ
भै भंजनु दुख लथु ॥३॥

किस मुख से (मैं अपने) गुरु की प्रशंसा करूँ, वह समर्थ है, वह (जगत में सब कुछ) करने का सामर्थ्य रखता है। जिनके मस्तक पर गुरु (अपना प्यार भरा) हाथ रखता है, वे (ही केवल संसार में) निश्चल हुए हैं। गुरु ने (जिन पर कृपा करके) अमृत रूपी नाम का प्याला पिलाया है, यह जन्म-मरण रूपी रोग को काटने के लिए महान उपचार है। (अत) जिन्होने भय को नष्ट करने वाले परमेश्वर स्वरूप गुरु का सेवन-पूजन किया है, उनके जन्म-मरण के दु.ख दूर हो गए हैं ॥३॥

सतिगुरु गाहिर गंभीरु है
सुख सागरु अघखंडु ॥
जिनि गुरु सेविआ आपणा
जमदूत न लागै डंडु ॥
गुर नालि तुलि न लगई
खोजि डिठा ब्रहमंडु ॥
नामु निधानु सतिगुरि दीआ
सुखु नानक मन महि मंडु ॥४॥२०॥९०॥

सत्गुरु (ईश्वर तुल्य) गहरा (अगाध) और गम्भीर (अथाह) है (भाव सर्व व्यापक है एक देशी नही), वह सुखों का समुद्र है और (हमारे) पापों को नष्ट करने वाला है। जिन्होंने अपने गुरु की सेवा (आराधना) की है, उनको यमदूतों का दण्ड नहीं (सहन करना) मिलता। मैंने (सारा) ब्रह्माण्ड खोज करके देख लिया है कि कोई भी गुरु के बराबर (तुल्य) नहीं है। हे नानक ! सत्गुरु ने जिस (जीव) को (परमात्मा का) नाम खजाना दे दिया है, उसने सुख स्वरूप (प्रभु) को अपने मन में धारण किया है ॥४॥
२०॥९०॥

सिरी रागु महला ५॥

मिठा करि कै खाइआ
कउड़ा उपजिआ सादु ॥

हे भाई ! जिन (मायिक पदार्थों) को मधुर समझ कर खाते हो, उनका स्वाद (अन्ततः) कड़वा (दु:खदायक ही) होता है। (जीव

भाई मीत सुरित कीन
कैसाना रचिआ राचु ॥
जांदे बिलम न होवई
विणु नावै बिसमादु ॥१॥

संसार में) भाई, मित्र, सुहृदय आदि अपने सहायक बनाता है और (इनके साथ मिलकर) विषय-विकारों में (सदा) आसक्त रहता है, जबकि ये (भी सब कुछ बाद) व्यर्थ सिद्ध होते हैं। किन्तु आश्चर्य इस बात का है कि (प्रभु) नाम के बिना (किसी भी वस्तु को) नाश होने मे देरी नहीं लगती ॥१॥

मन मेरे सतगुर की सेवा लागु ॥
जो दीसै सो विणसणा
मन की मति तिआगु ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! सत्गुरु की सेवा मे तत्पर हो और मन की मति को त्याग दे क्योंकि जो कुछ दिखाई देता है, वह (सब कुछ) नष्ट होने वाला है अथवा जो पदार्थ तुझे सुखदाई प्रतीत होते हैं, उन्हें क्षण भगुर एव विनश्वर जान कर उन में प्रेम करने वाली मति का परित्याग कर ॥१॥रहाउ॥

जिउ कूकरु हरकाइआ
धावै दहदिस जाइ ॥
लोभी जंतु न जाणई
भखु अभखु सभ खाइ ॥
काम क्रोध मदि बिआपिआ
फिरि फिरि जोनी पाइ ॥२॥

जैसे पागल कुत्ता दौडता है और दसो दिशाओं मे जाता है, वैसे ही लोभी जीव खाने योग्य और न खाने योग्य सभी पदार्थों को खा जाता है, किन्तु उन पदार्थों के गुण-दोष को नही समझता। लोभी जीव काम क्रोधादि विषयो के नशे मे उन्मत हो रहा है इस लिए वह बारम्बार (अनेक) योनियो मे पडता रहता है ॥२॥

माइआ जालु पसारिआ
भीतरि चोग बणाइ ॥
त्रिसना पंखी फासिआ
निकसु न पाए माइ ॥
जिनि कीता तिसहि न जाणई
फिरि फिरि आवै जाइ ॥३॥

(प्रश्न कारण क्या है कि जीव चतुर होते हुए भी सदा माया-जाल में फंसा रहता है ? उत्तर) माया ने (एक) जाल फैलाया हुआ है और इसमें (विषयों को) चोगा बनाकर (फेंका हुआ है), तृष्णा करके (जीव रूपी) पक्षी इस मे फस जाता है और हे माता ! (फिर) निकल नही पाता। जिस परमेश्वर ने (इस जीव को) उसे बनाया है, उस को नही पहचानता, (इसलिए) बारम्बार (जन्म-मरण) मे आता जाता है ॥३॥

अनिक प्रकारी मोहिआ
बहु बिधि इहु संसारु ॥
जिसनो रखै सो रहै
संम्रिथु पुरखु अपारु ॥
हरि जन हरि लिव उधरे
नानक सद बलिहारु ॥४॥२१॥९१॥

(एक जीव का क्या कहे) यह संसार (तो सारा ही) को नाना प्रकार का है, अनेक प्रकार के विषयों में मोहित हो रहा है। इस (माया के जाल) से वही बचता है जिसकी 'वह' (सर्व) शक्तिमान पुरुष परमात्मा, (जो) अनन्त है, रक्षा करता है। हे नानक ! हरि के दास हरि से स्नेह लगाकर बच गए हैं। (मैं) उनके ऊपर सदा बलिहारी जाता हूँ ॥४॥२१॥९१॥

सिरी रागु महला ५ ॥

गोइलि आइआ गोइली
किआ तिसु डंफु पसारु ॥
मुहलति पुंनी चलणा
तूं संमलु घरबारु ॥१॥

(जिस प्रकार ग्वाला चरागाह में पशुओं को चराने के लिये आता है और पशुओं को चराकर वापस लौट आता है, उसी प्रकार) ग्वाला रूपी जीव संसार की चरागाह में पशु चराने आया है लेकिन वह यहाँ क्या आडम्बर फैला कर बैठ गया है ? जीवन रूपी अवधि की सीमा समाप्त होते ही तुझे यहाँ से चलना है (इसलिए हे जीव !) अपने असली घर की सामग्री समेट ले ॥१॥

हरि गुण गाउ मना
सतिगुरु सेवि पिआरि ॥
किआ थोड़ड़ी बात गुमानु ॥१॥
रहाउ॥

(और वह सामग्री है) हे मन ! हरि का गुण गान कर और सत्गुरु की प्यार के साथ सेवा कर (यह जीवन अल्प-काल का है और ये पदार्थ विनश्वर हैं,) इन तुच्छ बातों का क्या घमण्ड करता है ॥१॥ रहाउ ॥

जैसे रैणि पराहुणे
उठि चलसहि परभाति ॥
किआ तू रता गिरसत सिउ
सभ फुला की बागाति ॥२॥

(हे जीव ! और भी सोच ले, तू यहाँ ऐसे है) जैसे रात्रि (विश्राम करने के लिए) आया (हुआ) मेहमान प्रभात होते ही उठ चलता है (तुम्हें भी जाना है)। तू (इस) गृहस्थी में क्या तल्लीन हो गया है. यह (ग्रहस्थी) फूलों वाली बगीचे की तरह शीघ्र ही मुरझा कर बिखरने वाली है ॥२॥

मेरी मेरी किआ करहि
जिनि दीआ सो प्रभु लोड़ि ॥
सरपर उठी चलणा
छडि जासी लख करोड़ि ॥३॥

(तू) मेरी-मेरी क्या करता है ? जिसने (यह सब कुछ) दिया है, उस (महान दाता प्रभु को पाने) की इच्छा कर। नि.संदेह जब तुम (यहाँ से) उठ चलोगे तो लाखो-करोड़ों (की सम्पति यहीं) छोड जाओगे ॥३॥

लख चउरासीह भ्रमतिआ
दुलभ जनमु पाइओइ
नानक नामु समालि तूं
सो दिनु नेड़ा आइओइ ॥४॥
॥२२॥९२॥

चौरासी लाख (योनियों) में भटकते हुए तुमने दुर्लभ-जन्म पाया है। हे नानक ! तू नाम की सम्भाल कर। वह दिन (जब यहाँ से कूच करना है) निकट आ गया है ॥४॥२२॥९२॥

सिरी रागु महला ५॥

तिचरु वसहि सुहेलड़ी
जिचरु साथी नालि ॥

हे देही ! (तू) तब तक सुख पूर्वक निवास कर रही है, जब तक तेरा साथी (जीवात्मा) तेरे साथ निवास कर रहा है। जब (तेरा)

जा साथी उठी चलिआ
ता धन खाकू रालि ॥१॥

साथी (जीवात्मा) उठ कर चला जाता है तब (देही रूपी) स्त्री धूलि (मिट्टी) में मिल जाती है ॥१॥

मनि बैरागु भइआ
दरसनु देखणै का चाउ ॥
धंनु सु तेरा थानु ॥१॥रहाउ॥

(दुर्लभ मनुष्य शरीर की ऐसी सोचनीय दशा को देखकर) मन में वैराग्य (उत्पन्न) हो गया है। (हे परमेश्वर ! तेरे) दर्शन देखने की चाहना (उत्पन्न हुई) है। धन्य है वह स्थान (जहाँ तुम निवास करते हो) ॥१॥ रहाउ ॥

जिचरु वसिआ कंतु घरि
जीउ जीउ सभि कहाति ॥
जा उठी चलसी कंतड़ा
ता कोइ न पुछै तेरी बात ॥२॥

जब तक शरीर (घर) में (जीवात्मा रूपी) पति निवास करता है, तब तक सभी लोग इसको 'आइये जी' 'आइये जी' कहते हैं, (हाय) जब जीव रूपी पति (शरीर से) उठ करके चलता है तब तेरी कोई बात भी नहीं पूछेगा (अर्थात सम्बन्धी लोग दाह-संस्कार अथवा भूमि मे गाड़कर मानो तुझे फेंक कर सर्वदा भूल जायेंगे) ॥२॥

पेईअड़ै सहु सेवि तूं
साहुरड़ै सुखि वसु ॥
गुरमिलि चजु आचारु सिखु
तुधु कदे न लगै दुखु ॥३॥

(हे जीव-स्त्री !) पीयर घर मे रहती हुई अर्थात (इस लोक में रहती हुई) तू पति (परमेश्वर) की (मन लगाकर) सेवा कर तब तू ससुराल घर में (परलोक मे) सुख पूर्वक निवास करेगी। गुरु से मिलकर पति-परमेश्वर के साथ प्रेम करने की विधि (गुरु से) सीख, तब तुझे (जन्म-मरण का) दु ख कभी नही लगेगा (सतायेगा) ॥३॥

सभना साहुरै वंञना
सभि मुकलावणहार ॥
नानक धंनु सोहागणी
जिन सह नालि पिआरु
॥४॥२३॥९३॥

सभी (जीवों) ने ससुराल (परलोक) में (अवश्य) जाना है और सभी (जीव रूपी स्त्रियाँ) विवाहित होकर पति के घर जायेंगी (अर्थात काल रूपी दुलहा के साथ विवाह होने वाला है।) (किन्तु) हे नानक ! धन्य हैं वे सुहागिनें जिनका पति (परमेश्वर) के साथ प्यार है ॥४॥२३॥९३॥

सिरी रागु महला ५ घर ६॥

करण कारण एकु ओही
जिनि कीआ आकारु ॥
तिसहि धिआवहु मन मेरे
सरब को आधारु ॥१॥

(समस्त ससार की उत्पत्ति, पालना, संहार आदि) कार्यों को करने वाला 'वही' एक (परमात्मा) है, जिसने (यह) आकार (द्रष्यमान जगत) बनाया है (अर्थात चार खानियो में अनेक प्रकार के रूप-रग की विविध सृष्टि उत्पन्न की हैं)। हे मेरे मन ! (तू) 'उसका' ध्यान कर जो (सृष्टि-कर्त्ता परमात्मा) सर्व (समस्त) का आश्रय है ॥१॥

गुर के चरन मन महि धिआइ ॥
छोडि सगल सिआणपा
साचि सबदि लिव लाइ ॥१॥रहाउ॥

(हे भाई ! सबसे पहले) गुरु के चरणों का मन में ध्यान कर और सभी चतुराइयों को छोड़कर (गुरु के) सच्चे शब्द (नाम) में स्नेह लगा ॥१॥ रहाउ ॥

दुखु कलेसु न भउ बिआपै
गुर मंत्रु हिरदै होइ ॥
कोटि जतना करि रहे
गुर बिनु तरिओ न कोइ ॥२॥

(यदि) गुरु (से प्राप्त) मन्त्र (नाम का) हृदय में निवास करता है, तो दुःख, पीड़ा और भय व्याप्त नही होते। (जीव) करोड़ो यत्न कर रहे हैं, किन्तु (पूर्ण) गुरु के बिना कोई भी (जन्म-मरण के दुःख की पीड़ा और यम के भय से) तैर नही सका (अर्थात बच सका) ॥२॥

देखि दरसनु मनु साधारै
पाप सगले जाहि ॥
हउ तिन कै बलिहारणै
जि गुर की पैरी पाहि ॥३॥

(सत्गुरु का) दर्शन करके मन सन्तुष्ट एव शुद्ध हो जाता है और सभी (प्रकार के) पाप (मन से) चले जाते हैं। मैं उनके ऊपर बलिहारी जाता हूँ, जो (जीव) (शुद्ध मन से) गुरु के चरणों में जाकर पडते हैं ॥३॥

साध संगति मनि वसै
साचु हरि का नाउ ॥
से वडभागी नानका
जिना मनि इहु भाउ ॥४॥२४॥
९४॥

साधु-सगति से सत्य स्वरूप हरि का नाम जीव के मन मे आकर निवास करता है। हे नानक ! वे (जीव) बडे भाग्यशाली हैं, जिनके मन में (साधु-संगति के लिए) यह प्रेम है ॥४॥२४॥९४॥

सिरी रागु महला ५॥

संचि हरिधनु पूजि सतिगुरु
छोड सगल विकार ॥
जिनि तू साजि सवारिआ
हरि सिमरि होइ उधारु ॥१॥

हरि धन का संग्रह कर, सत्गुरु की पूजा कर और सम्पूर्ण विकारों को त्याग दे। जिस हरि परमात्मा ने तुम्हें रच कर (शुभ गुणो से) विभूषित किया है, 'उसका' स्मरण कर इस (हरि धन) से तुम्हारा कल्याण हो जाएगा ॥१॥

जपि मन नामु एकु अपारु ॥
प्रान मनु तनु जिनहि दीआ
रिदे का आधारु ॥१॥रहाउ॥

हे (मेरे) मन! एक अद्वितीय परमात्मा के नाम को जप, जो पार रहित (अनन्त) है और जिसने तुम्हें प्राण, मन और तन दिया है, 'उस' (परोपकारी हरि) को अपने हृदय का आश्रय बना ॥१॥
॥ रहाउ ॥

कामि क्रोधि अहंकारि माते
विआपिआ संसारु ॥

जिन जीवों पर संसार का मोह व्याप्त है, वे काम में, क्रोध में, अहंकारादि में मस्त रहते हैं। (गुरदेव जी इन विकारों से

पगु संत सरणी लागु चरणी
मिटै दूखु अंधारु ॥२॥

छूटने का (उपाय बताते हैं)। (हे जीव !) सन्तों की शरण में, गुरु के चरणों में लगो (इस प्रकार अज्ञानता का) घोर अन्धकार रूपी दुःख मिट जाएगा (भाव द्वैत वृत्ति नष्ट हो जाएगी) ॥२॥

सतु संतोखु दइआ कमावै
एह करणी सार ॥
आपु छोडि सभ होइ रेणा
जिसु देइ प्रभु निरंकारु ॥३॥

(सन्तों के चरण-शरण ग्रहण करने के साथ विकारों के घोर-अन्धकार से बचने के लिए, हे जीव !) सत्य, सन्तोष और दयादि (दैवी गुणों) का कमाई कर। यही करनी श्रेष्ठ है। (साथ ही) अहंकार को त्याग कर सभी के चरणों की धूलि (विनम्र) हो जाएँ, (किन्तु ये दैवी गुण उसी भाग्यशाली जीव को प्राप्त होते हैं, जिन्हें निरंकार प्रभु (स्वयं) प्रदान करता है ॥३॥

जो दीसै सो सगल तूं है
पसरिआ पासारु ॥
कहु नानक गुरि भरमु काटिआ
सगल ब्रहम बीचारु ॥४॥२५॥
९५॥

(दैवी गुण प्राप्त होते ही जीव की क्या अवस्था होती है ? हे हरि !) जो दिखाई दे रहा है, सम्पूर्ण तू है, (तेरा ही यह ससार का) विस्तार फैला हुआ है। हे नानक ! (जिन जीवों के चित्त से) गुरु ने भ्रम निवृत्त कर दिया है, वे विचार द्वारा सकल विस्तार को ब्रह्म रूप देखते हैं ॥४॥२५॥९५॥

सिरी रागु महला ५॥

दुक्रित सुक्रित मंधे
संसारु सगलाणा॥
दुहहूं ते रहत भगतु है
कोई विरला जाणा ॥१॥

सारा (ही) ससार पाप और पुण्य कर्मों के भीतर (फंसा हुआ) है। दोनो (भाव पुण्य और पाप की फाँसी) से रहित कोई (भी नही, केवल प्रभु-भक्ति के प्रताप से निखिल कर्मों का भगवतपर्ण करने वाला केवल भक्त (ही) है, किन्तु (सम्पूर्ण संसार में) विरला ही दिखाई देता है ॥१॥

ठाकुरु सरबे समाणा ॥
किआ कहउ सुणउ सुआमी
तूं वड पुरखु सुजाणा ॥१॥रहाउ॥

(मेरा) ठाकुर (परमात्मा) सर्व मे समा रहा है (इस बात को मैं) क्या कथन करूँ, हे स्वामिन ! तू (सर्व से) महान, पूर्ण और सर्वज्ञ हैं ॥१॥ रहाउ ॥

मान अभिमान मंधे
सो सेवक नाही ॥
तत समदरसी संतहु
कोई कोटि मंधाही ॥२॥

जो (जीव विद्या धनादि के) मान में और (रूप एवं जाति के) अभिमान में पड़ा हुआ है, वह सेवक (भक्त) नहीं है। हे सन्तो ! जो (संसार के तत) ब्रह्म को सर्व में एक जैसा व्यापक देखने वाला ऐसा (भक्त) करोडों में कोई (एक आध ही) होता है (अधिक नहीं ॥२॥

कहन कहावन इहु
कीरति करला ॥
कथन कहन ते मुकता
गुरमुखि कोई विरला ॥३॥

([illegible] बातें केवल) कहना और ([illegible]) कहाना यह एक प्रकार से (अपनी) कीर्ति कराने का रास्ता है। गुरु के सन्मुख रहने वाला कोई विरला ही जीव होता है जो (ज्ञान की बातों को केवल) कहने कहाने से मुक्त रहता है ॥३॥

[illegible] अचिगति कछु
नदरि न आइआ ॥
संतन की रेणु
नानक दानु पाइआ ॥४॥२६॥९६॥

हे नानक ! जिन्हों (भाग्यशाली गुरमुखो, भक्तों, सेवकों) ने संतजनों के चरणों की धूलि का दान प्राप्त कर लिया है, उनको प्राप्ति-अप्राप्ति अथवा ज्ञान-अज्ञान के विचार (अब) दृष्टि में नहीं आते (क्योंकि उनको हरि सर्व में दिखाई दे रहा है।) हे नानक ! मैंने जो दान (प्रभु से) पाया है वह सन्तों की धूलि है। ॥४॥२६॥९६॥

सिरी रागु महला ५ घरु ७॥

तेरै भरोसै पिआरे
मै लाड लडाइआ ॥
भूलहि चूकहि बारिक
तूं हरि पिता माइआ ॥१॥

हे प्यारे (प्रभु) ! तेरे भरोसे ही मैं (तरह-तरह के) लाड (प्यार) करता हूँ। (बेशक मैं) भूलें करता हूँ, चूक भी जाता हूँ फिर भी तो, हे हरि ! मैं (तेरा) बालक हूँ और तुम (मेरे) पिता-माता हो (अर्थात माता-पिता के समान क्षमा करने वाले हो) ॥१॥

सुहेला कहनु कहावनु ॥
तेरा बिखमु भावनु ॥१॥रहाउ॥

(हे प्यारे !) (स्वयं) कहना और दूसरों से कहलवाना तो सरल है, किन्तु तुम्हारी (हुकम) आज्ञा मानना अति कठिन है अथवा तुम्हारी प्रसन्नता प्राप्त करनी अति कठिन है ॥१॥ रहाउ ॥

हउ माणु ताणु करउ तेरा
हउ जानउ आपा ॥
सभ ही मधि सभहि ते बाहरि
बेमुहताज बापा ॥२॥

तुम्हें मैं अपना समझता हूँ, इसलिए तो तेरा मान करता हूँ और तेरा सहारा (बल) मानता हूँ। हे मेरे बेमुहताज पिता ! तू सब में व्याप्त और सबसे न्यारा (असंग) भी है ॥२॥

पिता हउ जानउ नाही
तेरी कवन जुगता ॥
बंधन मुकतु संतहु
मेरी राखै ममता ॥३॥

हे पिता ! (बालक होने के कारण) मैं नहीं जानता कि कौन-सी 'वह' युक्ति है (जिससे आपको मैं प्रसन्न कर सकूँ।) हे सन्तो ! आप तो बन्धन-मुक्त हो (आप कृपा करें मेरी [illegible] हरि में लगी हुई) ममता को रखो (अर्थात [illegible]) ॥३॥

भए किरपाल ठाकुर
रहिओ आवण जाणा ॥

हे नानक ! जिस पर (मेरे) ठाकुर की कृपा होती है, वह (जीव) आवागमन से छूट जाता है और गुरु के मिलकर [illegible]

गुर मिलि नानक
पारब्रहमु पछाणा ॥४॥२७॥९७॥

परमात्मा को पहचान लेता है ॥४॥२७॥९७॥

सिरी रागु महला ५ घरु १॥

संत जना मिलि भाईआ
कटिअड़ा जमकालु ॥
सचा साहिबु मनि वुठा
होआ खसमु दइआलु ॥
पूरा सतिगुरु भेटिआ
बिनसिआ सभु जंजालु ॥१॥

हे भाईयो ! सन्तजनो के साथ मिलकर यमकाल (का भय) काट दिया है। (सन्तो की कृपा से) अब सत्य स्वरूप साहब ने मेरे मन में आकर निवास किया है। यह तभी सभव हुआ जब मेरा स्वामी (मुझ पर) दयालु हुआ। अब (तो) पूर्ण सत्गुरु मिल गया है (जिसकी भेंट से ही) सारा (माया-मोह का) बन्धन नाश हो गया है ॥१॥

मेरे सतिगुरा
हउ तुधु विटहु कुरबाणु ॥
तेरे दरसन कउ बलिहारणै
तुसि दिता अंमृत नामु ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे (परोपकारी) सत्गुरु ! मैं तेरे ऊपर बलिहारी जाता हूँ, (हाँ मैं तो) तेरे दर्शन पर भी बलिहारी जाता हूँ। मुझे (तुमने) प्रसन्न होकर अमर करने वाला अमृत सदृश नाम दिया है। ॥१॥ रहाउ ॥

जिन तूं सेविआ भाउ करि
सेई पुरख सुजानु ॥
तिना पिछै छुटीऐ
जिन अंदरि नामु निधानु ॥
गुर जेवडु दाता को नही
जिनि दिता आतम दानु ॥२॥

जिन्होने प्रेम करके तुम्हारा सेवन पूजन किया है, वे ही पुरुष बुद्धिमान और चतुर हैं। जिनके हृदय मे नाम रूपी खजाना है, उनके उपदेशानुसार चलने से जीव बन्धनो से छूट (मुक्त) जाता है। (यदि विचार कर देखा जाए तो अन्नवस्त्रादि शारीरिक वस्तुओ को देने वाले दानियो में) गुरु जैसा बडा कोई भी दानी नही है, क्योकि उसने आत्म दान दिया है ॥२॥

आए से परवाणु हहि
जिन गुरु मिलिआ सुभाइ ॥
सचे सेती रतिआ
दरगह बैसणु जाइ ॥
करते हथि वडिआईआ
पूरबि लिखिआ पाइ ॥३॥

(ससार मे) उनका आना ही प्रामाणिक (सफल) है, जिनको गुरु प्रेम के साथ अथवा स्वाभाविक ही मिल गया है। (गुरु मिलने पर) अब वे सच्चे परमेश्वर के साथ प्रेम में रगे हुए हैं और 'उसकी' दरबार मे (अब उन्हे) बैठने के लिए (सम्मान से) स्थान प्राप्त होता है। किन्तु (ये सब) बढ़ाइयाँ कर्त्तार के हाथ में है और जिसके मस्तक पर पूर्व (जन्म का शुभ) लेख लिखा होता है, वही प्राप्त करता है ॥३॥

सचु करता सचु करणहारु
सचु साहिबु सचु टेक ॥

(जगत) कर्त्ता परमात्मा सृष्टि से पहले सत्य था और करण हार परमात्मा अब भी सत्य है तथा (जगत) स्वामी (भविष्य में

सचो सचु वखाणीऐ
सचो बुधि बिबेक ॥
सरब निरंतरि रवि रहिआ
जपि नानक जीवै एक ॥४॥२८॥
९८॥

भी) सत्य (स्वरूप) होगा और भक्तजनों का सच्चा आश्रय है। (अत: हम भी ऐसे) सत्य स्वरूप सत्य परमेश्वर की स्तुति करें और उस सच्चे ज्ञान को ही बुद्धि में उत्पन्न करें। 'वह' सर्व में निरन्तर एक रस पूर्ण हो रहा है और मैं नानक 'उसको' जप-जप कर ही जीवित रह रहा हूँ ॥४॥२८॥९८॥

सिरी रागु महला ५॥

गुरु परमेसुरु पूजीऐ
मनि तनि लाइ पिआरु ॥
सतिगुरु दाता जीअ का
सभसै देइ अधारु ॥
सतिगुर बचन कमावणे
सचा एहु वीचारु ॥
बिनु साधू संगति रतिआ
माइआ मोहु सभु छारु ॥१॥

गुरु को परमेश्वर रूप जानकर मन और तन से प्रेम लगा कर पूजन-सेवन करना चाहिए। सतगुरु, जीवन का दाता है और सभी को आश्रय (भी) देता है। (ऐसे) सतगुरु के बचन (उपदेश) (जीवन मे) कमाना ही (एक मात्र) सच्चा विचार है। (किन्तु यह सदा स्मरण रहे कि) साधु (गुरु) की संगति में (अनुरक्त) प्रेम किये बिना माया का मोह सब भस्म है (अर्थात् जीव पर अपना बल बनाए रखता है) ॥१॥

मेरे साजन
हरि हरि नामु समालि ॥
साधू संगति मनि वसै
पूरन होवै घाल ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे सज्जन मित्र ! हरि नाम का स्मरण (सभाल) कर। साधु (गुरु) की संगति में रहने से (परमात्मा का नाम) मन में निवास करता है और (इस प्रकार) परिश्रम सफल हो जाता है। ॥१॥ रहाउ ॥

गुरु समरथु अपारु गुरु
वडभागी दरसनु होइ ॥
गुरु अगोचरु निरमला
गुर जेवडु अवरु न कोइ ॥
गुरु करता गुरु करणहारु
गुरमुखि सची सोइ ॥
गुर ते बाहरि किछु नही
गुरु कीता लोड़े सु होइ ॥२॥

गुरु (सब कुछ करने मे) समर्थ है, गुरु अपार (गुणों वाला) है किन्तु (ऐसे शक्तिमान अपार) गुरु का दर्शन बडे भाग्य से किसी (पुण्यात्मा) को प्राप्त होता है। गुरु अतीन्द्रिय मन वाणी की पहुच से परे है, गुरु (अविद्या मल से रहित) पवित्र है और गुरु जैसा महान और कोई नही। गुरु कर्ता है, करने वाला (गुरु ही) है। गुरु की शरण मे आने से (सदा) सच्ची शोभा प्राप्त होती है अथवा उस गुरु की शोभा सच्ची है। गुरु (की दृष्टि) से बाहर (होकर हम) कुछ (भी) नही (कर सकते), गुरु जो कुछ करना चाहता है वही होता है ॥२॥

गुरु तीरथु गुरु पारजातु
गुरु मनसा पूरणहारु ॥

गुरु (ही असली महान) तीर्थ है, गुरु (ही मनोवाञ्छित फल देने वाला कलपतरु) पारजात है और गुरु ही सब की आशाओं को

गुरु दाता हरिनामु देइ
उधरै सभु संसारु ॥
गुरु समरथु गुरु निरंकारु
गुरु ऊचा अगम अपारु ॥
गुर की महिमा अगम है
किआ कथे कथनहारु ॥३॥

पूर्ण करने वाला है। गुरु दाता है (जो) हरि नाम का दान देता है (जिससे) सारे संसार का कल्याण होता है। गुरु समर्थ है, गुरु निराकर है, गुरु (सबसे) ऊँचा है क्योंकि गम्यता से रहित और पहुँच से परे-अगम और अपार है। गुरु की महिमा तक (अक्षरों द्वारा) पहुँचा नही जा सकता। (अत.) कहने वाला क्या कुछ या कितना कुछ कह सकता है ॥३॥

जितड़े फल मनि बाछीअहि
तितड़े सतिगुर पासि ॥
पूरब लिखे पावणे
साचु नामु दे रासि ॥
सतिगुर सरणी आइआं
बाहुड़ि नही बिनासु ॥
हरि नानक कदे न विसरउ
एहु जीउ पिंडु तेरा सासु ॥४॥
२९॥९९॥

जितने भी फलों की आवश्यकता है, उतने ही सत्गुरु के पास है जिनके (मस्तक में) पूर्व (जन्म के शुभ) लेख लिखे हैं, वही जीव (मनोवाञ्छित) फल प्राप्त करते हैं (किन्तु गुरु में यह भी सामर्थ्य है कि वह) सच्चे नाम की पूजी देकर (उसे पूज्यनीय व माननीय बना देता है)। सत्गुरु की शरण ग्रहण करने से फिर जीवात्मा का विनाश (जन्म-मरण) नही होता। हे हरि ! (बाबा) नानक आपको कभी भी न भूले, यह मेरा जीव, शरीर और प्राणादि (सभी कुछ) तेरा (ही दिया हुआ) है ॥४॥२९॥९९॥

सिरी रागु महला ५॥

संत जनहु सुणि भाईहो
छूटनु साचै नाइ ॥
गुर के चरण सरेवणे
तीरथ हरि का नाउ ॥
आगै दरगहि मंनीअहि
मिलै निथावे थाउ ॥१॥

हे सन्त जनो ! हे भाईयो ! (भाव प्यारे !) सुनो (सभी प्रकार के बन्धनो से) छुटकारा सच्चे नाम से (प्राप्त) होता है। गुरु के चरणो का सेवन करने से तीर्थ के समान (पवित्र) हरि की प्राप्ति होती है अथवा हरि का नाम ही तीर्थ है जो गुरु की सेवा से प्राप्त होता है। (इस प्रकार गुरु-सन के चरणो की सेवा द्वारा प्राप्त हरि नाम से) परलोक मे (ईश्वर के) दरबार मे (नाम जपने वाले) सम्मानित होते हैं और निराश्रय (जीव) को प्रभु का आश्रय मिलता है ॥१॥

भाई रे साची सतिगुर सेव ॥
सतिगुर तुठै पाईऐ
पूरन अलख अभेव ॥१॥रहाउ॥

हे भाई ! सत्गुरु की सेवा ही सच्ची सेवा है क्योंकि सत्गुरु के प्रसन्न होने से परिपूर्ण अलक्ष्य (अदृश्य) एवं अभेद (परमेश्वर) प्राप्त होता है ॥१॥ रहाउ ॥

सतिगुर विटहु वारिआ
जिनि दिता सचु नाउ ॥

मैं उस सत्गुरु के ऊपर बलिहारी जाता हूँ जिसने सच्चा नाम दिया है। अब मैं उसकी आज्ञा से रात-दिन (प्रतिदिन) सत्य

अनदिनु सच सलाहणा
सचे के गुण गाउ ॥
सचु खाणा सचु पैनणा
सचे सचा नाउ ॥२॥

स्वरूप परमेश्वर की स्तुति करता हूं और सच्चे प्रभु के ही गुणों को गायन करता हूँ। (गुरु की) कृपा से अब मानो मेरे लिए सच्चे परमात्मा का नाम ही खाना और सच्चा (नाम ही मेरा) पहनना और सच्चे का नाम ही सदा जपता हू ॥२॥

सासि गिरासि न विसरै
सफलु मूरति गुरु आपि ॥
गुर जेवडु अवरु न दिसई
आठ पहर तिसु जापि ॥
नदरि करे ता पाईऐ
सचु नामु गुणतासि ॥३॥

गुरु स्वय परमेश्वर की सफल मूर्ति है, जिसके दर्शन मात्र से ही अब श्वास-प्रश्वास अर्थात प्रत्येक श्वास में प्रत्येक ग्रास में (हरि नाम) नही विस्मृत होता। (हे भाई !) मुझे गुरु के बराबर (और कोई) कृपालु दाता दिखाई नही देता, (इसलिए आठों ही प्रहर उस गुरु का जाप कर स्मरण रहे कि जब गुरु) कृपा दृष्टि करता है तब गुणो का भण्डार सच्चा नाम प्राप्त होता है ॥३॥

गुरु परमेसरु एकु है
सभ महि रहिआ समाइ ॥
जिन कउ पूरबि लिखिआ
सेई नामु धिआइ ॥
नानक गुर सरणागती
मरै न आवै जाइ ॥४॥३०॥१००॥

(हे भाई !) जो परमेश्वर सर्वत्र समा रहा है, 'वह' और गुरु एक (रूप) है। जिन जीवों के मस्तक पर पूर्व-लिखित (पुण्य का लेख) लिखा है, वे ही (हरि) नाम का ध्यान (चिन्तन) करते हैं। हे नानक ! जो (जीव) गुरु-शरण में आया है वह (जन्मता) मरता नहीं (अर्थात् आवागमन के चक्र में आता-जाता नहीं भाव जीवन मुक्त हो जाता है) ॥४॥३०॥१००॥

पांचवी पातशाही गुरु अर्जुन देव के शब्दों की समाप्ति।
सिरी राग के सारे शब्द (चउपदे) इति।

गुरु नानक साहब के ३३ शब्द गुरु रामदास के ६ शब्द

गुरु अमर दास के ६१ शब्द गुरु अर्जुन देव के ६० शब्द

कुल योग १०० शब्द हैं इसलिए अन्तिम शब्द में १०० अंक लगाए है।

(श्री गुरु नानक साहब की अष्टपदीआ प्रारम्भ)

सिरी रागु महला १ घरु १
असटपदीआ ।।

आखि आखि मनु वावाणा
जिउ जिउ जापै वाइ ।।
जिस नो वाइ सुणाईऐ
सो केवडु कितु थाइ ।।
आखण वाले जेतड़े
सभि आखि रहे लिव लाइ ।।१।।

(हरि-यश उचारण कर-कर के मन रूपी बाजा बजाते हैं, (अर्थात् आनन्दित होते हैं) जैसे-जैसे (जीव को हरि के (गुण गाने की) समझ आती है, वैसे-वैसे (मन बाजा बजाते हैं। जिसे बजा-कर (सुनाया जाता है, 'वह' कितना बडा (महान) है और किस स्थान पर है ? जितने भी (हरि-यश) उचारण करने वाले हैं, वे कभी स्नेह लगाकर 'उसकी' स्तुति करते-करते गम्भीर ध्यान मे निमग्न हो जाते हैं किन्तु 'उसका' अन्त प्राप्त नही कर सकते ।।१।।

बाबा अलहु अगम अपारु ।।
पाकी नाई पाक थाइ
सचा परवदिगारु ।।१।। रहाउ ।।

हे बाबा-! अल्लाह अगम है और अपार है। 'वह' सत्य स्व-रूप है और परवदिगार। सर्व का पालक एव पोषक है। 'उसका' नाम (बड़ाई) पवित्र है और 'उसका' स्थान (भी) सदा स्थिर रहने वाला, सच्चा और पवित्र है ।।१।। रहाउ ।।

तेरा हुकमु न जापी
केतड़ा लिखि न जाणै कोइ ।।
जे सउ साइर मेलीअहि
तिलु न पुजावहि रोइ ।।
कीमति किनै न पाईआ
सभि सुणि सुणि आखिहि सोइ
।।२।।

(हे अल्लाह ! तेरा स्वरूप तो अगम और अपार है) (किन्तु) तेरा हुकम (भी) नही जाना जाता कितना बड़ा (महान) है और न (उस हुकम को) लिखकर कोई जान सकता है। यदि सौ शायर (कवि) एकत्रित किए जायें (वे कहने और लिखने लग जायें) तो भी वे तेरे यश का किंचित मात्र भी वर्णन नहीं कर सकते। तेरा मूल्य किसी ने भी नही पाया है, (वस्तुत) तेरी शोभा (को) सुन-सुनकर ही कह रहे हैं ।।२।।

पीर पैकामर सालक सादक
सुहदे अउरु सहीद ॥
सेख मसाइक काजी मुला
दरि दरवेस रसीद ॥
बरकति तिन कउ अगली
पड़दे रहनि दरूद ॥३॥

पीर, पैगम्बर, पथ-प्रदर्शक (सालिक), सदाचारी (सादक), मस्त फकीर (सुहदे) तथा शहीद (धर्म के लिए बलिदान होने वाले), शेख, तपस्वी (मसाइक),काजी, (मुल्ला, परमात्मा के दर-वाजे पर पहुँचे हुए फकीर(दरवेश) (आदि किसी ने भी तेरे गुणों का अंत नही प्राप्त किया है। केवल) उनको ही बहुत (शक्ति-कृपा) मिली है, (उनके ही भाग्य उदय (हुए) जो (तेरे द्वार पर) दुआ पढ़ते हैं (दरूद=नमाज के पीछे की जो दुआ पढ़ी जाती है अत यह प्रार्थना वाचक शब्द है।)॥३॥

पुछि न साजे पुछि न ढाहे
पुछि न देवै लेइ ॥
आपणी कुदरति आपे जाणै
आपे करणु करेइ ॥
सभना वेखै नदरि करि
जै भावै तै देइ ॥४॥

(पर अल्लाह किसी से भी) पूछकर (परामर्श लेकर जगत की रचना नही करता और न ही (किसी से भी) पूछकर नाश करता है, और न ही (किसी से) पूछकर (शरीर में जीवात्मा) डालता (देवै) है और न निकालता है। अपनी प्राकृतिक-शक्ति-माया 'वह' आप ही जानता है (अन्य कोई नही), 'वह' स्वयं ही सृष्टि का कारण है। 'वह' सभा के ऊपर (अपनी) कृपादृष्टि से (जीवों की पालना करके) देखता रहता है किन्तु 'उसे' जो भाता है, उसको वह (अपने गुणो की महिमा) दे देता है ॥४॥

थावा नाव न जाणीअहि
नावा केवडु नाउ ॥
जिथै वसै मेरा पातिसाहु
सो केवडु है थाउ ॥
अंबड़ि कोइ न सकई
हउ किसनो पुछणि जाउ ॥५॥

न (तो) स्थानों के नाम जाने जा सकते हैं, और न (यही जाना जा सकता है कि नामों में उस (हरि) का नाम कितना महान (बड़ा) है। वह स्थान कितना बड़ा है, जहाँ मेरा बादशाह (हरि) निवास करता है? वहाँ (तक) कोई नही पहुँच सकता मैं किससे पूछने जाऊँ ॥५॥

वरना वरन न भावनी
जे किसै वडा करेइ ॥
वडे हथि वडिआईआ
जै भावै तै देइ ॥
हुकमि सवारे आपणै
चसा न ढिल करेइ ॥६॥

(तो 'वह' स्वतन्त्र है, यहाँ तक कि) यदि किसी को (अपने गुण प्रदान करके) बड़ा बनाना है (तो उसमें वर्णावर्ण-ऊँची-नीची जाति) का भाव नही रखता। (वास्तव में) बड़े (परमात्मा) के हाथ में ही बड़ाइयाँ हैं, (गौरव) है। जो 'उसे' भाता है, उसे 'वह' महिमा दे देता है। 'वह' अपने हुकम से (जिसे चाहे बिना किसी-जाति-पाति के भेद के) संवार देताहै, (इसमें 'वह') अंश-मात्र भी ढिलाई नही करता ॥६॥

सभु को आखै बहुतु बहुतु
लैणै कै वीचारि ॥
केवडु दाता आखीऐ
दे कै रहिआ सुमारि ॥
नानक तोटि न आवई
तेरे जुगह जुगह भंडार ॥७॥ १॥

(अत: सभी भिखारी हैं, दाता कोई नहीं) सभी कोई लेने के विचार से (परमात्मा को) बहुत-बहुत कथन करके माँग रहा है। 'उस' दाता को कितना महान (बडा) कहा जाय जो सब को दे रहा है, (आश्चर्य तो यह है कि) उसकी गणना (गिनती) में सभी कोई हैं (कोई खाली न रह जावे) अथवा दाता की देन (दान) गिनती से परे हैं (अनन्त है)। हे नानक ! 'तेरे' भण्डारे युग-युगान्तरो से (भरे पड़े हैं) और उनमें कमी (कदाचित) नही आती ॥७॥१॥

महला १॥

सभे कंत सहेलीआ
सगलीआ करहि सीगारु ॥
गणत गणावणि आईआ
सूहा वेसु विकारु ॥
पाखंडि प्रेमु न पाईऐ
खोटा पाजु खुआरु ॥१॥

सभी जीव पति-परमेश्वर की स्त्रियाँ और सभी ('उसे' प्रसन्न करने के लिए जप तपादि) शृंगार करती हैं। जो स्त्रियाँ अपने बाह्य शृंगार (प्रभु-भक्तो के सन्मुख गिनती करने के निमित्त अर्थात् दिखावट के लिए आई हुई हैं, उनका अल्प-काल तक शोभा देने वाली—शोभनीय वेष-भूषा व्यर्थ (निन्दनीय) है यद्यपि वे बाह्य कर्म कितने भी अच्छे हो, प्रभु दृष्टि में वे अशुभ हैं। पाखण्ड से प्रेम की प्राप्ति नही होती, ऐसी जीव-स्त्रियो के खोटे दिखावे शृंगारादि (उन्हें) दुःख अथवा नष्ट करते हैं ॥१॥

हरि जीउ इउ पिरु रावै नारि ॥
तुधु भावनि सोहागणी
अपणी किरपा लैहि सवारि ॥१॥
रहाउ॥

(वस्तुत:) जो पति (परमेश्वर) को (जीव-स्त्री) भा जावे, वह है सुहागिन (जिसे) प्रिय पति अपनी कृपा से सवार लेता है। ऐसी (विभूषित) स्त्री को पति-प्रियतम हरि जी रमण (प्यार) करते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

गुरसबदी सीगारीआ
तनु मनु पिर कै पासि ॥
दुइ कर जोड़ि खड़ी तकै
सचु कहै अरदासि ॥
लालि रती सच भै वसी
भाइ रती रंगि रासि ॥२॥

(प्रश्न: ऐसी स्त्री भाव सुहागिन के क्या लक्षण हैं ? उत्तर.) (वह पीहर घर में हा अपने) गुरु के शब्द (उपदेश) द्वारा संवारी (सुशोभित) होती है; 'उसका' तन और मन प्रियतम (हरि) के पास (समर्पित) है; दोनों हाथ जोडकर खडी रहती है तथा प्रियतम के दर्शनार्थ आँखें (बिछाकर) ताकती रहती है और प्रार्थना में सच्च कहती है। वह अपने (प्रिय) लालन (के प्रेम-रंग) में अनुरक्त रहती है, सत्य-भय में निवास करती है, (हाँ) वह भाव में रंगी और 'उसके' प्रेम में संवारी गई है (अर्थात् उसका रंग प्रेमपूर्ण होता है और उससे सदा सच्चा आनन्द प्राप्त करती है ॥२॥

प्रिअ की चेरी कांढीऐ
लाली मानै नाउ ॥
साची प्रीति न तुटई
साचे मेलि मिलाउ ॥
सबदि रती मनु वेधिआ
हउ सद बलिहारै जाउ ॥३॥

ऐसा (स्त्री, प्रियतम की दासी कही जाती है और वह प्यारी (प्रियतम परमात्मा के) नाम को ही मानती है। उसकी प्रीति सच्ची होने के कारण (कदाचित) नहीं टूटती और (उस अटूट-दृढ़ प्रीति से) सच्चे ईश्वर के साथ मेल-मिलाप हो जाता है अथवा (गुरु ने) सच्ची संगति से उसका मेल-मिलाप किया है। जो (गुरु के) शब्द में रंगी हुई है और (जिसका) मन ('उसी' में) बिंध गया है, मैं (काश !) उस पर सदैव बलिहारी जाऊँ ॥३॥

साधन रंड न बैसई
जे सतिगुर माहि समाइ ॥
पिरु रीसालू नउतनो
साचउ मरै न जाइ ॥
नित रवै सोहागणी
साची नदरि रजाइ ॥४॥

ऐसी स्त्री (कभी भी) राँड (विधवा) होकर (पति प्रियतम से) अलग नहीं बैठती जो सतगुरु (के उपदेश) मे (सदा) समाई हुई है। वस्तुतः वह तो प्रियतम के साथ सदैव एक रहती है। उसका प्रियतम रसिक है, नवतन वाला (हाँ) नूतन, अति सुन्दर है, सच्चा है और 'वह' न मरता है और न (कहीं) जाता है। 'वह' (अपनी) सुहागिन स्त्री से नित्य रमण (प्यार) करता है और उस पर (अपनी) प्रसन्नता भरी सच्ची कृपा दृष्टि (सदा) रखता है। ॥४॥

साचु धड़ी धन माडीऐ
कापड़ु प्रेम सीगारु ॥
चंदनु चीति वसाइआ
मंदरु दसवा दुआरु ॥
दीपकु सबदि विगासिआ
रामनामु उर हारु ॥५॥

ऐसी (सुहागिन) स्त्री सत्य की माँग काढ़ती है अथवा सत्य का निश्चय करना ही सिर के बालो को संवारना है, और प्रेम के कपड़े का शृंगार करती है। (परमात्मा को) चित में बसाना ही (उसका) चन्दन-लेप है, और दशम द्वार मे (निवास करना) उसका (वास्तविक) महल (मन्दिर) है। उसने शब्द का ही दीपक जलाया है और राम-नाम को ही (अपने) गले का हार बनाया है। (भाव भक्तजन रूपी सुहागिनियाँ आन्तरिक शृंगार करती हैं न केवल बाह्य आडम्बर) ॥५॥

नारी अंदरि सोहणी
मसतकि मणी पिआरु ॥
सोभा सुरति सुहावणी
साचै प्रेमि अपार ॥
बिनु पिर पुरखु न जाणई
साचे गुर कै हेति पिआरि ॥६॥

ऐसी स्त्री (सभी) स्त्रियों में (परम) सुन्दरी है (उसके) मस्तक पर (प्रभु) प्रेम की माँग सुशोभित है। उसकी शोभा यह है कि उसका सुन्दर ध्यान केवल उस सच्चे और अपार (हरि के) प्रेम मे लगा है। (ऐसी पतिव्रता स्त्री अपने) प्रियतम के बिना —अतिरिक्त, (वह अन्य) पुरुष को जानती ही नहीं, सच्चे गुरु के प्रति ही उसका प्रेम होता है ॥६॥

निसि अंधिआरी सुतीए
किउ पिर बिनु रैणि विहाइ ॥

(अब अज्ञानता रूपी नींद में सोई हुई जीव-स्त्री का निरूपण करते हैं) (अरी तू !) अन्धकारपूर्ण रात्रि में सोई है; (भला

अंकु जलउ तनु जालीअउ
मनु धनु जलिबलि जाइ ॥
जा धन कंति न रावीआ
ता बिरथा जोबनु जाइ ॥७॥

बताओ तो) बिना प्रियतम के तेरी रात्रि (आयु) कैसे बीतेगी? ऐसी स्त्री की छाती (अंक) जल जाय। शरीर भी जल जाय, और मन, तन भी जल-बल जाय, (क्योंकि वह दुर्भागिनी है) जिस स्त्री को पति नही रमण (प्यार) करता तो उसका यौवन व्यर्थ ही चला जाता है ॥७॥

सेजै कंत महेलड़ी
सूती बूझ न पाइ ॥
हउ सुती पिरु जागणा
किस कउ पूछउ जाइ ॥
सतिगुरि मेली भै वसी
नानक प्रेमु सखाइ ॥८॥ २॥

(आश्चर्य जनक दु:ख की बात है कि) सेज पर कंत है, (किंतु स्त्री सोई हुई है। (अतएव) वह ज्ञान (समझ) नही पाती है। मैं तो सोई हूँ और प्रियतम जाग रहा है, (यह बात) किससे जाकर पूँछू (कि प्रियतम कैसे मिले? अर्थात् इसका उपचार क्या है? जब मैं) सत्गुरु (को जाकर पूछा तो उसने मुझे पहले प्रभु के) भय में बसा दिया, (फिर उसने) प्रेम (मेरा) सखा (मित्र) बनाकर (प्रभु के साथ मुझे) मिला दिया। (कहते हैं (बाबा) नानक (जी)। (अर्थात् सुहागिन स्त्री बनने के लिए पति का भय और उसका प्रेम होना अनिवार्य है ॥८॥ २॥

सिरी रागु महला १॥

आपे गुण आपे कथै
आपे सुणि वीचारु ॥
आपे रतनु परखि तूं
आपे मोलु अपारु ॥
साचउ मानु महतु तूं
आपे देवणहारु ॥१॥

(हे प्रभु! तुम) स्वयं ही गुण हो, स्वय ही (उसका) कथन करने वाले (गुरु) हो, और स्वय ही (उसे) सुनकर विचार करने वाले (जिज्ञासु) हो। स्वय ही रत्न हो और स्वय ही (उसके) पारखी हो और स्वय ही (उसका) अपार मूल्य हो। तुम्ही सच्चा मान और महत्ता हो और तुम्ही उनके देने वाले हो ॥१॥

हरि जीउ तूं करता करतारु ॥
जिउ भावै तिउ राखु तूं
हरिनामु मिलै आचारु ॥१॥रहाउ॥

हे हरि जी! तुम सृष्टि कर्त्ता (ब्रह्मादि का भी) करने वाला (कर्त्तार) हो। तुम्हे जैसे अच्छा लगे, उसी प्रकार (मुझे) रखो, मेरा (शुभ) कार्य (आसार) हरि नाम हो और वही (मुझे) प्राप्त हो ॥१॥ रहाउ॥

आपे हीरा निरमला
आपे रंगु मजीठ ॥
आपे मोती ऊजलो
आपे भगत बसीठु ॥

(हे हरि!) तुम्ही (नाम रूपी) निर्मल हीरा हो और तुम्ही (भक्ति का गहरा) मजीठा रग हो। तुम्ही (ज्ञान रूपी) उज्जवल मोती हो और तुम्ही भक्तों के वकील (मध्यस्थ भाव गुरु) हो। गुरु के शब्द द्वारा (तुम्ही अपनी) प्रशंसा-स्तुति कर रहे हो, घट-

गुर कै सबदि सलाहणा
घटि घटि डीठु अडीठु ॥२॥

घट में तुम्ही दृश्य और अदृश्य (रूप में) दिखाई पड़ रहे हो अथवा जिन्होंने गुरु के शब्द द्वारा परमात्मा की स्तुति की है, उन्होंने घट-घट मे गोपनीय प्रभु को देखा है ॥२॥

आपे सागरु बोहिथा
आपे पारु आपारु
साची वाट सुजाणु तूं
सबदि लघावणहारु ॥
निडरिआ डरु जाणीऐ
बाझु गुरू गुबारु ॥३॥

(हे हरि !) तुम्ही (संसार रूपी) सागर हो और तुम्ही (नाम रूपी) जहाज हो, तुम्ही (सागर का) यह पार (किनारा) हो और तुम्हीं वह पार भी हो। तुम्ही मार्ग को जानने वाले चतुर हो और तुम्ही शब्द द्वारा (संसार-सागर को) पार कराने वाले (गुरु) हो। जो जीव तुम्हारे भय से रहित हैं, उन को (संसार में डूबने का या यम का) भय समझना चाहिये, क्योकि गुरु के बिना (घनघोर) अंधकार है ॥३॥

असथिरु करता देखीऐ
होरु केती आवै जाइ ॥
आपे निरमलु एकु तूं
होर बंधी धंधै पाइ ॥
गुरि राखे से उबरे
साचे सिउ लिव लाइ ॥४॥

स्थिर (रहने वाला तो एक मात्र) कर्त्ता ही देखा जाता है, अन्य जीव-सृष्टि तो कितनी ही आती (जन्मती) और जाती (मरती) है। (हे हरि !) एक तुम्ही (माया मल से रहित) निर्मल हो और (न मालूम) और कितनी ही जीव-सृष्टि (सांसारिक) धन्धो (रूपी रस्सी मे) बन्धी पड़ी है। (जिनकी) गुरु रक्षा करता है, वे ही सच्चे (परमात्मा) से लौ (स्नेह) लगाकर (इन बन्धनों से) उभरते हैं ॥४॥

हरि जीउ सबदि पछाणिऐ
साचि रते गुरवाकि ॥
तितु तनि मैलु न लगई
सच घरि जिसु ओताकु ॥
नदरि करे सचु पाईऐ
बिनु नावै किआ साकु ॥५॥

हे हरि जी ! (गुरु के) शब्द द्वारा) तू पहचाना जाता है, किन्तु (सत्य है) गुरु के वाक्य द्वारा (जिज्ञासु) सत्य मे अनुरक्त होता है। जिसकी बैठक (ओताक) सत्य के घर मे है, उस (भक्त) के शरीर पर (पाप की) मैल नही लगती। जब (आपकी) कृपा-दृष्टि होती है, तब सत्य की प्राप्ति होती है। (सत्य है कि) बिना हरि नाम के (ससार के) सम्बन्धी किस काम के हैं ? अथवा बिना नाम के (तेरे) साथ किसी का कोई सम्बन्ध उत्पन्न नही होता ॥५॥

जिनी सचु पछाणिआ
से सुखीए जुग चारि ॥
हउमै त्रिसना मारि कै
सचु रखिआ उरधारि ॥
जग महि लाहा एकु नामु
पाईऐ गुर वीचारि ॥६॥

जिन्होने सत्य स्वरूप परमात्मा को पहचान लिया (साक्षात्कार कर लिया) वे चारों युगो मे सुखी हैं। उन्होने अहकार और तृष्णा को मार कर अपने हृदय में सत्य को ही धारण करके रखा है। जगत मे लाभ केवल एक नाम का है जो गुरु के विचार से प्राप्त होता है ॥६॥

साचउ वखरु लादीऐ
लाभु सदा सचु रासि ॥
साची दरगह बैसई
भगति सची अरदासि ॥
पति सिउ लेखा निबड़ै
रामुनामु परगासि ॥७॥

(अत:) सच्चा सौदा (नाम का गुरु से लेकर) लेना चाहिये जिसमें सदा लाभ (ही लाभ) है। फिर उनकी सच्ची पूँजी सदा स्थिर (बनी रहती) है अथवा श्रद्धा रूपी पूंजी के नाम का सच्चा सौदा लेने से सदा सच्चा लाभ होता है। (अब) वे सच्ची भक्ति और सच्ची अरदास (प्रार्थना) के द्वारा सत्य स्वरूप परमात्मा की सच्चे दरबार मे (आदर पूर्वक) बैठते हैं। उनमें राम-नाम का प्रकाश होने के कारण उनके कर्मों का लेखा प्रतिष्ठा के साथ सुलझ जाता है ॥७॥

ऊचा ऊचउ आखीऐ
कहउ न देखिआ जाइ ॥
जह देखा तह एकु तूं
सतिगुरि दीआ दिखाइ ॥
जोति निरंतरि जाणीऐ
नानक सहजि सुभाइ ॥८॥३॥

'वह' (परमात्मा) ऊँचे से ऊँचा कहा जाता है, किन्तु कहीं पर भी सर्वव्यापी परमात्मा गुरु-कृपा के बिना देखा नही जाता। (हाँ) जब सत्गुरु ने (कृपा करके सर्वव्यापी प्रभु को) दिखा दिया तो अब (मैं) जहाँ देखता हूँ, वहाँ पर तू ही दिखाई पडता है। हे नानक ! सहज भाव से (परमात्मा की) अखण्ड (निरन्तर) ज्योति जानी जाती है ॥८॥ ॥३॥

सिरी रागु महला १॥

मछुली जालु न जाणिआ
सरु खारा असगाहु ॥
अति सिआणी सोहणी
किउ कीतो वेसाहु ॥
कीते कारणि पाकड़ी
कालु न टलै सिराहु ॥१॥

अथाह और खारे समुद्र मे, रहती हुई भी, हे मछली ! तुमने (प्रमादवश) जाल को नही जाना (कि यह तेरी मृत्यु का कारण है) (देखने मे तो तू) अति सयाना और सुन्दर है, फिर तुमने जाल का) क्यों विश्वास कर लिया ? (हाँ) वह अपने किए हुए (लालच) के कारण पकडी गई। (अब) उसके सिर से काल टल नही सकता ॥१॥

भाई रे इउ सिरि जाणहु कालु ॥
जिउ मछी तिउ माणसा
पवै अचिंता जालु ॥१॥रहाउ॥

अरे भाई ! (मानव) इस प्रकार (अपने) सिर पर (भी) काल समझो। जिस प्रकार मछला (जाल मे पड जाती है), उसी प्रकार मनुष्य भी अचानक (काल के) जाल मे पड जाता है ॥१॥रहाउ॥

सभु जगु बाधो काल को
बिनु गुर कालु अफारु ॥
सचि रते से उबरे
दुबिधा छोडि विकार ॥

सारा जगत काल द्वारा बाधा गया है, बिना गुरु के काल अमिट (न टलने वाला) है। (हाँ) जो (जीव) द्वैत भाव (दुविधा) के विकार को त्याग कर सत्य में अनुरक्त हैं, वे ही (काल के जाल से)

हउ तिन कै बलिहारणै
दरि सचै सचिआर ॥२॥

बच निकलते हैं। मैं उन पर बलिहारी हूँ जो सच्चे (परमात्मा के) दरवाजे पर सत्य सिद्ध होते हैं ॥२॥

सीचाने जिउ पंखीआ
जाली बधिक हाथि ॥
गुरि राखे से उबरे
होरि फाथे चोगै साथि ॥
बिनु नावै चुणि सुटीअहि
कोइ न संगी साथि ॥३॥

जिस प्रकार पक्षी बाज के (वश में है) और जिस प्रकार शिकारी बधिक के हाथ में जाल है उसी प्रकार (मनुष्य भी काल के वशीभूत है)। जिनकी गुरु रक्षा करते हैं, वे ही बचते हैं, शेष (सभी मायिक आकर्षणो रूपी) चोगे मे (स्वाद मे) फंस जाते हैं। बिना (परमात्मा के) नाम के (ऐसे जीव) चुन-चुन कर (नरकों मे) फेंक दिये जाते हैं, (उस समय उनका) कोई भी संगी साथी नही होगा ॥३॥

सचो सचा आखीऐ
सचे सचा थानु ॥
जिनी सचा मंनिआ
तिन मनि सचु धिआनु ॥
मनि मुखि सूचे जाणीअहि
गुरमुखि जिना गिआनु ॥४॥

(प्रश्न जो गुरु द्वारा रक्षा करने पर बच जाते हैं, वे कैसे बचते हैं ? उत्तर . 'वह' परमात्मा) सत्य स्वरूप है और उस सच्चे का स्थान भी सच्चा है। जिन्होंने 'उस' सत्य (परमात्मा) के नाम का उच्चारण (करके साथ-साथ) मनन अर्थात् मान लिया है, उनके मन में ही सत्य का ध्यान होता है। (हाँ) जिन्होंने गुरु के मुख द्वारा ज्ञान प्राप्त किया है, उन्हें मन और मुख से पवित्र जानना चाहिए ॥४॥

सतिगुर अगै अरदासि करि
साजनु देइ मिलाइ ॥
साजनि मिलिऐ सुखु पाइआ
जमदूत मुए बिखु खाइ ॥
नावै अंदरि हउ वसां
नाउ वसै मनि आइ ॥५॥

(हे जिज्ञासु !) सत्गुरु के आगे यह प्रार्थना कर कि 'वह' साजन (परमात्मा) को मिला दे। साजन के मिलने पर (परम) सुख की प्राप्ति होती है और यमदूत जहर खाकर मर जाते हैं (अर्थात् काल सिर से टल जाएगा)। यदि मैं नाम के अन्तर्गत बस जाऊँ, तो नाम भी आकर मन मे बस जाता है। (अर्थात् यदि गुरु द्वारा प्राप्त नाम को अपने मन में बसा लेगा, तो नामी के अन्दर तेरा निवास हो जायेगा) ॥५॥

बाझु गुरू गुबारु है
बिनु सबदै बूझ न पाइ ॥
गुरमती परगासु होइ
सचि रहै लिव लाइ ॥
तिथै कालु न संचरै
जोती जोति समाइ ॥६॥

(साथ ही साथ जिज्ञासु यह भी निश्चय करे कि) बिना गुरु के अन्धकार है, बिना गुरु-शब्द के यह समझ नही पडती कि कैसे नाम के अन्तर्गत बस जाने से नाम भी आकर मन में बस जाता है। (हाँ) गुरु की मति से ही प्रकाश होता है और (जीव नाम के द्वारा) सत्य स्वरूप परमात्मा मे अपनी लौ लगा देता है। वहाँ (सत्य खड में) काल का संचरण नही होता (अर्थात् काल प्रवेश नही कर सकता) जहाँ नाम जपने वाले की ज्योति (नामी की) परम ज्योति में समा जाती है ॥६॥

तूं है साजन तूं सुजाणु
तूं आपे मेलणहारु ।।
गुर सबदी सालाहीऐ
अंतु न पारावारु ।।
तिथै कालु न अपड़ै
जिथै गुर का सबदु अपारु ।।७।।

(हे हरि !) तू ही साजन है और तू सुजान (चतुर) है और तू ही अपने में (जीवों) को मिलाने वाला है। (हे परमात्मा !) न तुम्हारा अन्त है और न पारावार (सीमा) है, (हमें चाहिए कि) गुरु के शब्द द्वारा (अनन्त प्रभु की) स्तुति करें, (क्योंकि) जहाँ गुरु का अपार शब्द है, वहाँ काल नही पहुँचता ।।७।।

हुकमी सभे ऊपजहि
हुकमी कार कमाहि ।।
हुकमी कालै वसि है
हुकमी साचि समाहि ।।
नानक जो तिसु भावै सो थीऐ
इना जंता वसि किछु नाहि
।।८।।४।।

(परमात्मा हाकिम के) हुकम से ही सब उत्पन्न होते हैं और 'उसके' हुकम से ही सब (अपना-अपना) कार्य करते हैं। 'उसके' हुकम से ही (कोई) काल के वशीभूत होते है और 'उसके' हुकम से ही (कोई) सत्य परमात्मा मे समा जाते है। हे नानक ! उसे जो अच्छा लगता है, वही होता है, इन प्राणियो के वश मे कुछ भी नही होता। (अर्थात् प्राणी-प्राण के कारण है और प्राण भी 'उसके' हुकम के अधीन हैं) ।।८।। ।।४।।

सिरी रागु महला १।।

मनि जूठै तनि जूठि है
जिहवा जूठी होइ ।।
मुखि झूठै झूठु बोलणा
किउकरि सूचा होइ ।।
बिनु अभ सबद न मांजीऐ
साचे ते सचु होइ ।।१।।

जो मन मे (या मन के) झूठे हैं, उनके तन (भी) झूठे होते हैं और जीभ भी झूठी हो जाती है। (फिर उन्होंने) मुख से झूठ ही झूठ बोलना है। (प्रश्न !) (अब) वे कैसे पवित्र हो सकते हैं ? (उत्तर) बिना (गुरु के) शब्द रूपी पानी के (वे झरने) साफ (शुद्ध) नही होते; (हाँ) सत्य (व्यक्ति के सत्य उपदेश) से सत्य की प्राप्ति होती है ।।१।।

मुंधे गुणहीणी सुखु केहि ।।
पिरु रलीआ रसि माणसी
साचि सबदि सुखु नेहि ।।१।।रहाउ।।

(हे जीव रूपी स्त्री !) दैवी गुणो के बिना गुणहीन स्त्री को सुख कहाँ (मिल सकता) है ? (तुम) अपने प्रियतम से मिलकर ही प्यार का रस मानोगी (प्राप्त करोगी)। जो सत्य शब्द द्वारा (पति) प्रेम में आ जाती है, (हाँ) वही स्त्री परम सुख में होती है ।।१।। रहाउ ।।

पिरु परदेसी जे थीऐ
धन वांढी झूरेइ ।।

यदि प्रियतम परदेशी है, तो (उसके) बिछुडी हुई स्त्री दुःखी होती है। (उस बिछडी हुई स्त्री की ठीक वही दशा होती है)

जिउ जलि थोड़ै मछुली
करण पलाव करेइ ॥
पिर भावै सुखु पाईऐ
जा आपे नदरि करेइ ॥२॥

जैसे थोड़े जल में मछली करुणा-जनक प्रलाप करती है। प्रियतम के अच्छी लगने पर ही (स्त्री) सुख प्राप्त रकती है, (किन्तु यह सुख तभी मिलता है) जब प्रियतम (प्रभु) स्वय कृपा-दृष्टि करता है ॥२॥

पिरु सालाही आपणा
सखी सहेली नालि ॥
तनि सोहै मनु मोहिआ
रती रंगि निहालि ॥
सबदि सवारी सोहणी
पिरु रावे गुण नालि ॥३॥

(अत मैं) अपनी सखी-सहेलियों (सन्तो) की संगति में अपने प्रियतम की स्तुति करूँगी। (प्रियतम के सौन्दर्य को देखकर) (मेरा) शरीर सुहावना हो गया है, मन मोहित हो गया है और प्रेम रंग मे रत होकर (अब) मैं आनन्द से (पति को) देखकर कृतार्थ हो रही हूँ। (गुरु के) शब्द द्वारा सवारी गई मैं (बहुत ही) सुहावनी हो गई हूँ। अब इन गुणो के कारण प्रियतम मेरे साथ रमण कर रहा है, (अर्थात् पति का आनदमय प्यार प्राप्त हो रहा है) ॥३॥

कामणि कामि न आवई
खोटी अवगणिआरि ॥
ना सुखु पेईऐ साहुरै
झूठि जली वेकारि ॥
आवणु वंञणु डाखड़ो
छोडी कंति विसारि ॥४॥

अवगुणो वाली खोटी (दुराचारिणी) स्त्री अपने (पति) के (किसी भी) काम नहीं आती। उसे न तो मैके (इस ससार) में सुख (मिलता) है और न ससुराल (परलोक) मे। वह झूठ और विकार मे ही जलती रहती है। उसका आना-जाना (जन्म-मरण) अति दुखमय होता है क्योंकि (उसके) पति ने उसे भुला कर छोड दिया है ॥४॥

पिर की नारि सुहावणी
मुती सो कितु सादि ॥
पिर कै कामि न आवई
बोले फादिलु बादि ॥
दरि घरि ढोई ना लहै
छूटी दूजै सादि ॥५॥

यह (जिसे जीव-स्त्री) तो पति (प्रियतम) की सुहावनी स्त्री थी, (किन्तु) किस स्वाद (मायिक आकर्षणो) के कारण छोड़ दी गई? (वह छोडी हुई स्त्री) प्रियतम के किसी काम नही आती, वह व्यर्थ बकवास (वाद-विवाद) करती है। (अब) वह (परमात्मा के) दरवाजे पर और घर मे प्रवेश नही प्राप्त कर सकती, क्योंकि (वह) दूसरे स्वादों मे लिप्त होने के कारण छोड़ दी गई है ॥५॥

पंडित वाचहि पोथीआ
ना बूझहि वीचारु ॥
अन कउ मती दे चलहि
माइआ का वापारु ॥

पंडित पोथियों (धार्मिक ग्रथ) बाँचते (पढ़ते) हैं, (किन्तु स्वयं) विचार (तत्व) को नही समझते। दूसरो को तो (मति) शिक्षा देते हैं, (किन्तु स्वय) माया का व्यापार करते हैं (भाव धन सम्पति आदि इकट्ठा करना ही अपना लक्ष्य बना कर रखा है,)

कथनी झूठी जगु भवै
रहणी सबदु सु सारु ॥६॥

(आचरण के बिना केवल) कथनी झूठी होती है जिसके कारण (सारा) जगत भटकता फिरता है। (गुरु के) शब्द के अनुसार (वास्तविक) रहनी रहना ही सार-तत्व है ॥६॥

केते पंडित जोतकी
बेदा करहि बीचारु ॥
वादि विरोधि सलाहणे
वादे आवणु जाणु ॥
बिनु गुर करम न छुटसी
कहि सुणि आखि वखाणु ॥७॥

कितने ही है पंडित और ज्योतिषी जो वेदों का विचार करते हैं, (किन्तु) वे वाद-विवाद और विरोध, प्रशंसा और वैरे, (इन्हीं में) आते-जाते रहते हैं। व्याख्यानो के कहने और सुनने से (हाँ) बिना गुरु-कृपा के छुटकारा नहीं मिलता ॥७॥

सभि गुणवंती आखीअहि
मै गुणु नाही कोइ ॥
हरि वरु नारि सुहावणी
मै भावै प्रभु सोइ ॥
नानक सबदि मिलावड़ा
ना वेछोड़ा होइ ॥८॥ ॥५॥

सारी (स्त्रियाँ) गुणवती कहलाती हैं, (किन्तु) मुझ में तो कोई गुण नही है। जिसका पति हरि है, वह स्त्री सुहावनी (सुन्दर) है। मुझे भी वह प्रभु (पति) कब प्यार करेगा? हे नानक! उस पति के साथ मेल-मिलाप (गुरु के) शब्द द्वारा ही होता है, (जिसको मिलकर फिर) वियोग नही होता ॥८॥५॥

सिरी रागु महला १ ॥

जपु तपु संजमु साधीऐ
तीरथि कीचै वासु ॥
पुंन दान चंगिआईआ
बिनु साचे किआ तासु ॥
जेहा राधे तेहा लुणै
बिनु गुण जनमु विणासु ॥१॥

यदि (किसी सिद्धि प्राप्ति के लिए मन्त्रों का) पाठ (जाप) किया जाये, (अग्निादि जलाकर) शरीर को कष्ट (तप) दिये जाये, (इन्द्रियों को वशीभूत करने के लिये कोई) सयम की साधना की जाये, किसी तीर्थों पर वास किया जाये, (जनता की भलाई के लिये) पुण्य, दान एवं शुभ काम भी किये जाय, (किन्तु) सच्चे परमात्मा के (बिना नाम-भक्ति के) बिना उन सबका क्या लाभ है? (जीव) जैसा बोता है, वैसा काटता है, (नाम-भक्ति के) गुण (धारण करने) के बिना (यह अमुलय मनुष्य) जन्म नष्ट हो जाता है ॥१॥

मुंधे गुण दासी सुखु होइ ॥
अवगण तिआगि समाईऐ
गुरमति पूरा सोइ ॥१॥रहाउ॥

हे जीव-स्त्री! जो (भक्ति के) गुणों की दासी है, उसी को (आत्मिक) सुख होता है। वह अवगुणों को त्याग कर (परमात्मा के चरणों में) समा जाती है और गुरु की मति (पर चलने) से उसे वह पूर्ण प्रभु मिलता है ॥१॥ रहाउ ॥

बिनु रासी वापारीआ
तके कुंडा चारि ॥
मूलु न बुझै आपना ॥
वसतु रही घरबारि ॥
विणु वखर दुखु अगला
कूड़ि मुठी कूड़िआरि ॥२॥

बिना मूलधन के व्यापारी (लाभ के लिए) चारों दिशाओं में देखता फिरता है। जो जीव (अपने जीवन के) मूल-प्रभु को नहीं समझता, उसका असली मूलधन उसके हृदय-घर के भीतर ही (बिना पहचाने) पड़ा रहता है। (विनश्वर झूठे पदार्थों की व्यापारिन) (जीव-स्त्री) झूठ मे लग कर (भक्ति के गुणों से) लूटी ठगी जा रही है; नाम-सौदे के बिना उसको अत्यन्त दुःख होता है ॥२॥

लाहा अहिनिसि नउतना
परखे रतनु वीचारि ॥
वसतु लहै घरि आपणै
चलै कारजु सारि ॥
वणजारिआ सिउ वणजु करि
गुरमुखि ब्रहमु बीचारि ॥३॥

(उस व्यापारी को) दिन-रात नये से नया लाभ होता है, (जो नाम रूपी) रत्न विचार करके परखता है। अत. जो (जीव नाम के) व्यापारियो के साथ व्यापार करता है, जो गुरु की शरण मे आकर गुरुमुख बनकर ब्रह्म (परमात्मा) का विचार करता है, उसे अपने हृदय-घर मे (मूल प्रभु रूपी) वस्तु मिल जाती है और वह अपने जीवन का कार्य (मनोरथ) पूरा करके (यहाँ से) चला जाता है ॥३॥

संतां संगति पाईऐ
जे मेले मेलणहारु ॥
मिलिआ होइ न विछुड़ै
जिसु अंतरि जोति अपार ॥
सचै आसणि सचि रहै
सचै प्रेम पिआर ॥४॥

संतों की संगति में (भक्ति के गुणो का भंडार तब) प्राप्त किया जाता है, यदि मिलाने वाला (प्रभु) स्वयं मिला ले, जिसके अन्तर्गत अपार (प्रभु की) ज्योति (एक बार प्रकट हो जाती), मिलाप होने पर उसको (फिर परम ज्योति परमात्मा से) वियोग नही होता, क्योकि वह सच्चे (परमात्मा) के सच्चे (अटल) आसन पर (विराजमान) होता है, वह सच्चे (परमात्मा) को सच्चा प्रेम करता है ॥४॥

जिनी आपु पछाणिआ
घर महि महलु सुथाइ ॥
सचे सेती रतिआ
सचो पलै पाइ ॥
त्रिभवणि सो प्रभु जाणीऐ
साचो साचै नाइ ॥५॥

(अत.) जिन्होने अपने आपको पहचान लिया है, (उनको) (अपने हृदय) घर मे ही (हरि का) निवास स्थान (महल) मिल जाता है। जो सच्चे (स्वरूप के प्रेम-रंग) मे अनुरक्त हैं, उनके पल्ले में सच्चा (परमात्मा) ही पड़ता है। जो (प्रभु) सच्चा है, सच्चे नाम वाला है, उसे त्रिभुवन में (व्याप्त) जानना चाहिए ॥५॥

सा धन खरी सुहावणी
जिनि पिरु जाता संगि ॥

वह स्त्री सच्ची सुन्दरी (सौभाग्यवती) है, जिसने अपने पति (परमेश्वर) को (सदा अपने साथ) समझ लिया है। वह स्त्री महल

महली महल बुलाईऐ
सो पिरु रावे रंगि ॥
सचि सुहागणि सा भली
पिरि मोही गुण संगि ॥६॥

में बुलाई जाती है और प्रियतम के साथ आनन्दपूर्वक रमण करती है (अर्थात प्रभु-पति उसको प्यार करता है) वही सच्ची सुहागिन है और वही भली है, जो (अपने प्रियतम के) गुणों के साथ मोहित हुई है।६॥

भूली भूली थलि चड़ा
थलि चड़ि डूगरि जाउ ॥
बन महि भूली जे फिरा
बिनु गुर बूझ न पाउ ॥
नावहु भूली जे फिरा
फिरि फिरि आवउ जाउ ॥७॥

(आध्यात्मिक-जीवन के सही मार्ग को) भूलकर (यदि) मैं भूली जीव-स्त्री (ससार छोडकर भी) सारी जमीन पर फिरती रहूँ, जमीन पर भ्रमण करके फिर यदि पर्वत पर भी चढ़ जाऊँ, (यदि मैं किसी पर्वत की गुफा मे भी बैठ जाऊँ, (सही मार्ग से) भूलकर भटक कर यदि मैं जंगलो मे भटकती रहूँ, तो भी मुझे (सही मार्ग की) समझ नही पड सकती, क्योकि बिना गुरु के समझ नही प्राप्त होती। (यदि) नाम को भूलकर मैं भटकती फिरती हूँ, तो बार-बार आना जाना पडेगा (जन्म-मरणके चक्र मे आना पडेगा) ॥७॥

पूछहु जाइ पधाऊआ
चले चाकर होइ ॥
राजनु जाणहि आपणा
दरि घरि ठाक न होइ ॥
नानक एको रवि रहिआ
दूजा अवरु न कोइ ॥८॥६॥

(यदि आध्यात्मिक जीवन का सही मार्ग समझना चाहते हो तो) उन पथिकों (सुहागनियो) से जाकर पूछो जो (भक्ति-मार्ग मे) चाकर होकर चल रहे हैं। वे (सृष्टि के मालिक परमात्मा को) अपना राजा समझते हैं और (आज्ञाकारी प्रजा होने के कारण, परमात्मा के) घर के दरवाजे पर वे रोके नही जाते। हे नानक ! एक (परमात्मा) ही (सर्वत्र) रमा हुआ है, ('उसके' अतिरिक्त) दूसरा और कोई नही है ॥८॥६॥

सिरीरागु महला १॥

गुर ते निरमलु जाणीऐ
निरमल देह सरीरु ॥
निरमलु साचो मनि वसै
सो जाणै अभ पीर ॥
सहजै ते सुखु अगलो
ना लागै जम तीरु ॥१॥

(हे भाई !) गुरु से ही निर्मल (परमात्मा का नाम) जाना जाता है, (और फिर उस निर्मल नाम-जल मिलने से (स्थूल) देही और (सूक्ष्म) शरीर (दोनो) निर्मल हो जाते हैं। (जब हमारे) निर्मल मन मे (वह) सत्य स्वरूप और शुद्ध (हरि) आकर बस जाता है, जो आभ्यान्तर (हृदय की) पीडा को जानता है। (मनुष्य देही विकारो से रहित और निर्मल मन मे शुद्ध स्वरूप प्रकट होते ही सहज अवस्था प्राप्त होती है और अब) सहजावस्था से अत्यन्त सुख मिलता है और यम का तीर भी नहीं लगता ॥१॥

भाई रे मैलु नाही
निरमल जलि नाइ ॥
निरमलु साचा एकु तू
होरु मैलु भरी सभ जाइ ॥
॥१॥रहाउ॥

हे भाई ! (जैसे) निर्मल जल में नहाने से (शरीर की) मैल नही रहती (तैसे नाम-जल द्वारा मन निर्मल होता है)। हे सच्चे प्रभु ! एक तू ही निर्मल और सच्चा है और सारी जगह (जाइ) मैल से भरी हैं ॥१॥ रहाउ ॥

हरि का मंदरु सोहणा
कीआ करणैहारि ॥
रवि ससि दीप अनूप जोति
त्रिभवणि जोति अपार ॥
हाट पटण गड़ कोठड़ी
सचु सउदा वापार ॥२॥

(सहजावस्था प्राप्त होते ही जीव की पवित्र दृष्टि क्या देखती है कि) हरि-कर्त्ता ने (स्वयं) यह (बड़ा ही) सुन्दर मन्दिर (ब्रह्मांड) बनाया है।(विराट उस सुन्दर) मन्दिर में सूर्य और चन्द्रमा के दीपक की अनुपम ज्योति है, किन्तु (इनमें) तीनों भवनों मे 'उस' अपार ज्योतिमय प्रभु की ही ज्योति प्रकाश कर रही है (भाव व्याप्त है) फिर जो (इस जगत मे) दुकानें, नगर, किले और कोठरियाँ हैं वे सत्य सौदे के व्यापार के लिये ही रचे गये हैं ॥२॥

गिआन अंजनु भैभंजना
देखु निरंजन भाइ ॥
गुपतु प्रगटु सभ जाणीऐ
जे मनु राखै ठाइ ॥
ऐसा सतिगुरु जे मिलै
ता सहजे लए मिलाए ॥३॥

जिसने (भी यम के) भय को नष्ट करने वाले ज्ञान का अन्जन (आँखों मे डाला है) उसने ही निरंजन परमात्मा को भाव-पूर्वक देखा है। (हाँ) यदि (चचल) मन को टिका दिया जाय तो अदृश्य दृश्य (जगत में) सभी जगह (हरि को) जान लिया जाता है। यदि (इस प्रकार का मन निरोध करने वाला) सत्गुरु प्राप्त हो जाये तो वह जीव को सहजावस्था (चतुर्थ पद) में मिला देता है अथवा सहज ही परमात्मा से लि देता है ॥३॥

कसि कसवटी लाईऐ
परखे हितु चितु लाइ ॥
खोटे ठउर न पाइनी
खरे खजानै पाइ ॥
आस अंदेसा दूरि करि
इउ मलु जाइ समाइ ॥४॥

(सत्गुरु साधक को सोने की तरह) कसौटी पर चढ़ाकर बड़े ही प्रेम और ध्यान से परखता है। जो (उसकी कसौटी पर) खोटे (सिद्ध होते) है उन्हें स्थान नही मिलता, (वे फेंक दिए जाते हैं, जो खरे (निकलते) हैं वे खजाने मे डाल दिए जाते हैं। (अत: गुरु की आज्ञा मे रहकर हे जीव ! तू) आशा और सशय को दूर कर दे, तो इस प्रकार (तुम्हारे) सारे मल (पाप) विलीन हो जायेंगे ॥४॥

सुख कउ मागै सभु को
दुखु न मागै कोइ ॥

सभी कोई सुख को ही माँगते हैं, कोई भी दु:ख नही माँगता। (किन्तु मायिक) सुख की आशा रखने वाले (सांसारिक) जीव

सुरै कउ दुखु अगला
मनमुखि बूझ न होइ ॥
सुख दुख सम करि जाणीअहि
सबदि भेदि सुखु होइ ॥५॥

की दुःख (रूपी फल बहुत ही) लगता है। अपने मन के पीछे लगने वाले मनमुख जीव को इस (भेद) की समझ नहीं होती। (वस्तुत संसार में) सुख-दुख को समान रूप से जानना चाहिए (किन्तु यह अवस्था तभी प्राप्त होती है यदि) (गुरु के) शब्द (नाम) द्वारा (मन को) बेध लिया जाय तभी (आत्मिक अलौकिक) सुख प्राप्त होता है ॥५॥

बेदु पुकारे वाचीऐ
बाणी ब्रहम बिआसु ॥
मुनिजन सेवक साधिका
नामि रते गुणतासु ॥
सचि रते से जिणि गए
हउ सद बलिहारै जासु ॥६॥

(यदि) ब्रह्म की वाणी वेद और व्यास (ऋषि के वेदान्त सूत्र) आदि पढ़े जायें, (तो यही) पुकार (पुकार) कर कहते हैं, कि (जो) मुनिगण, (भक्त) जन और साधक, गुणो के खजाने हरि परमात्मा के नाम मे अनुरक्त है, (हाँ) जो सत्य में रत हैं, वे ही विजयी हुए हैं। मैं उन पर सदैव बलिहारी जाता हूँ ॥६॥

चहु जुगि मैले मलु भरे
जिन मुखि नामु न होइ ॥
भगती भाइ विहूणिआ
मुहु काला पति खोइ ॥
जिनी नामु विसारिआ
अवगण मुठी रोइ ॥७॥

(किन्तु) जिनके मुख मे (प्रभु का) नाम नही है, वे चारों युगो में मैले और मल (होने) से भरे हैं। (परमात्मा की) भक्ति और प्रेम से विहान (जीवो का) मुँह काला होता है और (अपनी मान) प्रतिष्ठा नष्ट कर देते हैं। जिसने (जीव-स्त्री ने पति-परमेश्वर का) नाम भुला दिया है, वह आन्तरिक अवगुणों द्वारा ठगी (लूटी) गई है और (अन्तत) रोती (हुई जाती) है ॥७॥

खोजत खोजत पाइआ
डरु करि मिलै मिलाइ॥
आपु पछाणै घरि वसै
हउमै त्रिसना जाइ ॥
नानक निरमल ऊजले
जो राते हरिनाइ ॥८॥७॥

(गुरु के द्वारा) खोजते-खोजते (यह सदैव समझ) प्राप्त होती है कि (परमात्मा का) डर (अब हृदय मे धारण करने) से गुरु के मिलाने पर ही परमात्मा मिलता है। (गुरु की शरण में आने से जो) अपने को पहचानता है। उसका मन बाहर भटकने से हटकर अपने) घर (स्वरूप) मे बस जाता है और उसके अहंकार और तृष्णा की निवृत्ति हो जाती है। हे नानक ! जो (जीव) हरि नाम के रंग) मे रते हैं, वे निर्मल और उज्ज्वल हैं ॥८॥७॥

सिरी राग महला १॥

सुणि मन भूले बावरे
गुर की चरणी लागु ॥

अरे भूले और बावरे मन ! सुनो। गुरु के चरणों में लग जाओ। (गुरु से पूछकर) तू हरि का जाप (रसना से करो)

गुरि कहि नामु धिआइ तू
जमु डरपै दुख भागु ॥
दुखु घणो दोहागणी
किउ थिरु रहै सुहागु ॥१॥

और (मन से) नाम का ध्यान करो। (तुम्हारे इस क्रिया से) यम भयभीत हो जायेंगे और सारे दु:ख भी (तुमसे) भाग जायेंगे। (जो जीव-स्त्री नाम नहीं जपती उस) दुहागिन को बहुत ही दु:ख होता है क्योंकि (उसका) पति (स्थिर होता हुआ भी उसे) प्राप्त नहीं होता अथवा उसका पति (परमात्मा से मिलाप) कैसे स्थिर होगा ? ॥१॥

भाई रे अवरु नाही मैं थाउ ॥
मै धनु नामु निधानु है
गुरि दीआ बलि जाउ ॥१॥
रहाउ ॥

अरे भाई ! मेरे लिये (प्रभु) नाम ही (वास्तविक) धन है, नाम ही खजाना है, (वह खजाना जिसे भी दिया है) गुरु ने (ही) दिया है, मैं (उस गुरु पर) बलिहारी हूँ। (नाम खजाना प्राप्त करने के लिए) मेरे लिए (गुरु को छोड़कर) कोई अन्य स्थान नही है ॥१॥ रहाउ॥

गुरमति पति साबासि तिसु
तिस कै संगि मिलाउ ॥
तिसु बिनु घड़ी न जीवऊ
बिनु नावै मरि जाउ ॥
मै अंधुले नाम न वीसरै
टेक टिकी घरि जाउ ॥२॥

धन्य है (ऐसा मेरा गुरु) जिस गुरु की मति से प्रतिष्ठा (मति) प्राप्त होती है। (प्रभु कृपा करे) मैं उस (गुरु) की संगति मे मिला रहूँ। उस (गुरु) के बिना मैं एक घडी भी जीवित नही रह सकता क्योंकि नाम के बिना मर जाता हूँ। नाम के बिना मैं माया मोह से अन्धा हो जाता हूँ। (अत प्रभु कृपा करे) मुझ अंधे को उसका नाम न भूल जाय। मैं गुरु की टेक लेकर ही 'उसके' घर (अवश्य) जाऊँगा ॥२॥

गुरू जिना का अंधुला
चेले नाही ठाउ ॥
बिनु सतिगुर नाउ न पाईऐ
बिनु नावै किआ सुआउ ॥
आइ गइआ पछुतावणा
जिउ सुंञै घरि काउ ॥३॥

(जिनका गुरु दूरदर्शी नही है या) जिनका गुरु (स्वयं ही मायिक पदार्थों को इकट्ठा करने में) अन्धा हो रहा है, उसके चेले को (आत्मिक सुख का) स्थान नही (प्राप्त हो सकता) है। बिना (पूर्ण) सत्गुरु के नाम की प्राप्ति नही होती और बिना नाम के (मनुष्य-जीवन का) प्रयोजन-मनोरथ अथवा लाभ अथवा स्वाद क्या हुआ ? (नाम के बिना जीव ससार मे आया और (चला) गया पश्चाताप ही (साथ ले गया-खाली हाथ ही जगत से गया) जैसे सूने घर में कौआ (आकर बिना कुछ प्राप्त किये) खाली चले जाता है ॥३॥

बिनु नावै दुखु देहुरी
जिउ कलर की भीति ॥

नाम (बन्दगी) के बिना शरीर दु:ख रूप है (क्योंकि शारीरिक सत्ता ऐसे जीर्ण विशीर्ण होती जाती है) जैसे लोने की दीवाल (कह पड़ती है।) (इसको गिडने से बचाने के लिए) तब तक (प्रभु का)

तब लगु महलु न पाईऐ
जब लगु साचु न चीति ॥
सबदि रपै घरु पाईऐ
निरबाणी पदु नीति ॥४॥

महल (रूपी सहारा) नहीं मिलता जब तक सच्चा परमात्मा जीव के। चित्त में नही (आकर बसता)। (गुरु के) शब्द में अनुरक्त होने से प्रभु का घर (रूपी सहारा) प्राप्त हो जाता है और शाश्वत निर्दोष पदवी—आत्मिक आनन्द की अवस्था प्राप्त हो आती है) जहाँ कोई वासना नहीं, मोक्ष ही मोक्ष है ॥४॥

हउ गुर पूछउ आपणे
गुर पुछि कार कमाउ ॥
सबदि सलाही मनि वसै
हउमै दुखु जलि जाउ ॥
सहजे होइ मिलावड़ा
साचे साचि मिलाउ ॥५॥

(अत. इस 'निर्वाण पदवी' की प्राप्ति के लिए) मैं अपने (गुरु से पूँछू, (हाँ) गुरु से पूछकर कर्म करूँ और (गुरु के) शब्द द्वारा प्रशसा-योग्य परमात्मा की स्तुति करूँ और विधीय (हो सकता है मेरे प्रभु मन में आकर बस जाये, तब (जाकर) अहंकार का दुःख जल जायेगा और (फिर) सहज ही (परमात्मा के साथ) मिलाप हो जायेगा (क्योकि) सत्य के साथ सच्च द्वारा ही मिलन हो सकता है ॥५॥

सबदि रते से निरमले
तजि काम क्रोधु अहंकारु ॥
नामु सलाहनि सद सदा
हरि राखहि उरधारि ॥
सो किउ मनहु विसारीऐ
सभ जीआ का आधारु ॥६॥

(जो जीव गुरु के) शब्द मे रत है, वे काम, क्रोध, अहकार (आदि विकारो) को त्याग कर निर्मल हो जाते हैं, वे सदैव ही नाम की स्तुति करते हैं और सदा हरि को हृदय में धारण करके रखते हैं (इसलिये हे भाई ! उस) (हरि) को मन से किस लिए भुलाया जाय, जो सभी जीवो के (जीवन का) आधार है ॥६॥

सबदि मरै सो मरि रहै
फिरि मरै न दूजी वार ॥
सबदै ही ते पाईऐ
हरिनामे लगै पिआरु ॥
बिनु सबदै जगु भूला फिरै
मरि जनमै वारो वार ॥७॥

(जो जीव गुरु के) शब्द द्वारा मरता है (भाव जो अपनी देही को अपने से असग देख लेता है वह मानो एक बार ही) ऐसा मरता है कि उसे (फिर) दूसरी बार नहीं मरना पडता (उसकी यह मृत्यु जीवन का भी जीवन है)। (अमरत्व की अवस्था) शब्द द्वारा ही प्राप्त होती है और हरि नाम प्यारा लगता है। बिना शब्द के यह जगत भटकता फिर रहा है और बारबार जन्मता मरता है ॥७॥

सभ सालाहै आप कउ
वडहु वडेरी होइ ॥

सभी अपनी-अपनी प्रशंसा करते हैं, (आत्मश्लाघा में मेरी बड़ाई) अधिक से भी अधिक हो, (किन्तु) गुरु के बिना अपने आप को नही पहचाना जाता, (अपने आप को बड़ा) कहने सुनने से

गुर बिनु आपु न चीनीऐ
कहे सुणे किआ होइ ॥
नानक सबदि पछाणीऐ
हउमै करै न कोइ ॥८॥८॥

क्या लाभ होता है। हे नानक ! (यदि गुरु के) शब्द द्वारा (अपने मूल को) पहचान ले (कि हम रक्त बूँद के पुतले हैं और नचाए जा रहे हैं,) तो (वह) अहकार (के कारण अपनी बडाई) नहीं करेगा ॥८॥८॥

सिरी रागु महला १॥

बिनु पिर धन सीगारीऐ
जोबनु बादि खुआरु ॥
ना माणे सुखि सेजड़ी
बिनु पिर बादि सीगारु ॥
दूखु घणो दोहागणी
ना घरि सेज भतारु ॥१॥

बिना प्रियतम के स्त्री का शृंगार और यौवन व्यर्थ है और वह बदनाम (दुखी) होती है, (क्योकि वह पति की) सेज पर सुख नही मानती, (अत:) बिना प्रियतम के उसका शृंगार व्यर्थ ही जाता है। (उस भाग्यहीन) दुहागिन को अत्याधिक दुख होता है, क्योंकि (उसके) सेज का भतार (पति) घर में नही है। (भाव —प्रेमाभक्ति के बिना जीव-स्त्री के सारे बाह्यमुखी कर्म शृंगार है, किन्तु वे व्यर्थ है क्योंकि अन्तःकरण रूपी सेज खाली है। वहाँ पति-परमेश्वर को नही बसाया। इस प्रकार कर्म करते पर भी जीवन व्यर्थ चला गया और दु.ख ही प्राप्त हुआ ॥१॥

मन रे राम जपहु सुखु होइ ॥
बिनु गुर प्रेमु न पाईऐ
सबदि मिलै रंगु होइ ॥१॥रहाउ॥

अरे मन ! राम जपो तभी सुख होगा। (पर मन भी क्या करे ? जिसके साथ प्यार ही नही है, 'उसको' बार-बार कैसे स्मरण करेगा ? राम के साथ यह) प्रेम बिना गुरु के प्राप्त नहीं होता। (गुरु के) शब्द से (वह) प्रेम मिलता है और (उसके प्राप्त होने पर ही) आनन्द होता है ॥१॥ रहाउ ॥

गुर सेवा सुखु पाईऐ
हरि वरु सहजि सीगारु ॥
सचि माणे पिर सेजड़ी
गूड़ा हेतु पिआरु ॥
गुरमुखि जाणि सिञाणीऐ
गुरि मेली गुण चारु ॥२॥

गुरु की सेवा और सहजावस्था के शृंगार से हरि रूपा पति के मिलनावस्था का सुख प्राप्त होता है। फिर वह सच्चे पति-परमेश्वर (के आनन्द) को सेज पर मानती (अनुभव करती) है। (ऐसी सच्ची स्त्री का) गहरा-गभीर स्नेह और प्यार है। गुरु के सन्मुख रहने पर ही जीव-स्त्री जानती व पहचानती है (कि 'वह' मेरा है), 'उस' सुन्दर गुणो वाले (स्वामी) के साथ गुरु ने ही मिलाया है ॥२॥

सचि मिलहु वर कामणी
पिरि मोही रंगु लाइ ॥

हे प्रभु-पति की सुन्दर स्त्री ! पति-परमेश्वर को मिलने का (प्रयत्न) करो, जो सत्य (स्वरूप) है। प्रियतम ने जिस (स्त्री) पर (प्रेम का) रंग लगाकर मोहित किया है, उसका मन और तन

मनु तनु साचि विगसिआ
कीमति कहणु न जाइ ॥
हरि वरु घरि सोहागणी
निरमल साचै नाइ ॥३॥

सत्य (परमात्मा) में प्रफुल्लित हुआ है, उस (अलौकिक आनन्द) की कीमत (महिमा) कही नही जा सकती। (हाँ) अपने घर में ही हरि रूपी पति प्राप्त करके ऐसी सुहागिन सच्चे नाम (प्रेम रंग) से निर्मल हुई है ॥३॥

मन महि मनुआ जे मरै
ता पिरु रावै नारि ॥
इकतु तागै रलि मिलै
गलि मोतीअन का हारु ॥
संत सभा सुखु ऊपजै
गुरमुखि नाम अधारु ॥४॥

यदि जीव-स्त्री का मन ही में मन (अर्थात् चंचलता वाला स्वभाव) मर जाये तो प्रियतम ऐसी स्त्री के साथ रमण (प्यार) करता है। (जिस प्रकार) एक ही तागे में गूँथे हुए मोती गले का हार बन जाता है (उसी प्रकार पति-पत्नी, परमात्मा-जीवात्मा मिलकर एकाकर हो जाते हैं)। (किन्तु यह एकाकार की अवस्था) सन्तो की सभा में (प्राप्त होने पर ही) अपार सुख उत्पन्न होता है और गुरु की शरण मे आने से ही नाम का आश्रय मिलता है ॥४॥

खिन महि उपजै खिनि खपै
खिनु आवै खिनु जाइ ॥
सबदु पछाणै रवि रहै
ना तिसु कालु संताइ ॥
साहिबु अतुल न तोलीऐ
कथनि न पाइआ जाइ ॥५॥

(नाम के बिना यदि मायिक पदार्थों का लाभ होता है तो) क्षण में (मानो) मन प्रसन्न हो जाता है और (हानि होने पर) क्षण में खप (दु:खी हो) जाता है। (चंचल मन) क्षण में आता है और क्षण में चला जाता है (क्योंकि स्थिर नही)। (मन की ऐसी दशा को देखकर जो गुरु के) शब्द द्वारा परमात्मा के नाम में रल मिल जाये, तो उसे काल दु:ख नही दे सकेगा। साहब (परमात्मा) अतुलनीय है, 'उसकी' (किसी वस्तु से) तुलना नही की जा सकती। 'वह' कथन से नही पाया जा सकता (क्योंकि अकथनीय है।) ॥५॥

वापारी वणजारिआ
आए वजहु लिखाइ ॥
कार कमावहि सच की
लाहा मिलै रजाइ ॥
पूंजी साची गुरु मिलै
ना तिसु तिलु न तमाइ ॥६॥

(सारे जीव शाह) व्यापारी (परमात्मा) से (अपनी-अपनी) प्रारब्ध रूपी) तन्खाह लिखाकर बनजारे के समान (इस जगत में) आए हैं। यदि सच्चे परमात्मा (के नाम) का काम (ईमानदारी और) सच्चाई से करे, तो (उन्हे अवश्य ही) लाभ मिलेगा (कैसा लाभ ? शाह व्यापारी प्रभु की) प्रसन्नता (खुशी)। किन्तु यह लाभ उस जीव को प्राप्त होता है जो उस गुरु को मिलता है जिसे तिल मात्र भी लालच नही, इस प्रकार श्वास रूपी पूँजी जीव की सच्ची अर्थात् सफल होती है ॥६॥

गुरमुखि तोलि तोलाइसी
सचु तराजी तोलु ॥

(जीव की सफलता के लिये) सत्य ही तराजू है, सत्य ही बटे हैं (जिसके पल्ले भी सत्य के हैं, वही सफल है), इस परख-तौल में वही पूर्ण तौला जायेगा, जो गुरु के सन्मुख रहता है, क्यों

आसा मनसा मोहणी
गुरि ठाकी सचु बोलु ॥
आपि तुलाए तोलसी
पूरै पूरा तोलु ॥७॥

कि गुरु ने (अपनी) सच्ची वाणी से (शिष्य के) मन को मोहने वाली आशा और वासना को रोक रखा है। पूर्ण (प्रभु की) तोली पूरी (पूरी बहुत ही सच्ची) है, किन्तु (वही जीव इस) तोल में (पूर्ण) तोला जायेगा जिसे ('वह') स्वयं (अपनी कृपा से) तौलेगा ॥७॥

कथनै कहणि न छुटीऐ
ना पड़ि पुसतक भार ॥
काइआ सोच न पाईऐ
बिनु हरि भगति पिआर ॥
नानक नामु न वीसरै
मेले गुरु करतार ॥८॥९॥

(केवल मात्र) कथन करने से या पुस्तकों के भार को पढ़ने से (आशा और वासना से) छुटकारा नहीं मिलता। यदि (हृदय) में हरि की भक्ति नही, क्योंकि (प्रभु) प्यार के बिना केवलमात्र शरीर को शुद्ध करने से 'वह' प्राप्त नहीं होता। (अत:) हे नानक ! जिसे नाम नही भूलता, उसे गुरु (सृष्टि) कर्ता (प्रभु) से मिलन करा देता है ॥८॥९॥

सिरी रागु महला १॥

सतिगुरु पूरा जे मिलै
पाईऐ रतनु बीचारु ॥
मनु दीजै गुर आपणे
पाईऐ सरब पिआरु ॥
मुकति पदारथु पाईऐ
अवगण मेटणहारु ॥१॥

यदि पूर्ण सत्गुरु प्राप्त हो जाय, तभी विचार रूपी रत्न की प्राप्ति होती है। (हाँ) यदि अपने गुरु को मन दे दिया जाय तभी सर्वप्रिय या सर्व (व्यापी परमात्मा का) प्यार प्राप्त हो जाता है। सत्गुरु से ही (नाम का) मुक्ति पदार्थ प्राप्त होता है, जो (समस्त) अवगुणों (दोषो, पापो) को मिटाने वाला है ॥१॥

भाई रे गुर बिनु
गिआनु न होइ ॥
पूछहु ब्रहमे नारदै
बेद बिआसै कोइ ॥१॥रहाउ॥

अरे भाई ! गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता। (यदि किसी को) मेरे इस कथन पर विश्वास न हो, तो वह (जाकर) किसी ब्रह्मा, नारद अथवा वेद व्यास (ऋषि) से जाकर पूछ ले ॥१॥ रहाउ॥

गिआनु धिआनु धुनि जाणीऐ
अकथु कहावै सोइ ॥
सफलिओ बिरखु हरीआवला
छाव घणेरी होइ ॥
लाल जवेहर माणकी
गुर भंडारै सोइ ॥२॥

ज्ञान और ध्यान (शब्द की) ध्वनि अर्थात् तात्पर्य समझने पर) ही जाने जाते हैं, वह (गुरु) अकथनीय ईश्वर का कथन करवाता है। गुरु (उपदेश द्वारा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के) फल देने वाला है। फलयुक्त और ('सदा') हरा भरा वृक्ष है जिसके (नीचे शान्ति रूपी) सघन छाया है। (प्रेम रूपी) लाल, (ज्ञान रूपी) जवाहर और (वैराग्य रूपी) माणिक्य गुरु के (अन्त:करण रूपी) भण्डार में सुशोभित हो रहे हैं ॥२॥

गुर भंडारै पाईऐ
निरमल नाम पिआरु ॥
साचो वखरु संचीऐ
पूरै करमि अपारु ॥
सुखदाता दुख मेटणो
सतिगुरु असुर संघारु ॥३॥

गुरु के (उस भरे हुए) भण्डार से ही निर्मल नाम (के प्रति प्रेम) प्राप्त होता है। उसकी पूर्ण कृपा से ही (नाम रूपी) सच्चा और अपार सौदा संग्रह किया जाता है। सत्गुरु सुख देने वाला दाता है और दु:ख का मेटने वाला (भी) है (हाँ वही ऐसा सत्गुरु) असुरों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी राक्षसों) का संहार करने वाला है ॥३॥

भवजलु बिखमु डरावणो
ना कंधी ना पारु ॥
ना बेड़ी ना तुलहड़ा
ना तिसु वंझु मलारु ॥
सतिगुरु भै का बोहिथा
नदरी पारि उतारु ॥४॥

भयानक संसार रूपी जल (सागर) अत्यन्त विषम (तैरने में कठिन) है, न तो (इसका) किनारा है और न आरपार है। (भव-संसार को पार करने के लिए) न कोई नौका है, नहीं (तल्हा) न तो उसमें कोई बाँस (चप्पू) है और न मल्लाह ही है। (केवल) सत्गुरु ही संसार (सागर) का जहाज है, वह अपनी कृपा-दृष्टि से पार उतार देता है ॥४॥

इकु तिलु पिआरा विसरै
दुखु लागै सुखु जाइ ॥
जिहवा जलउ जलावणी
नामु न जपै रसाइ ॥
घटु बिनसै दुखु अगलो
जमु पकड़ै पछुताइ ॥५॥

(यदि) प्रियतम तिल मात्र के लिए विस्मृत होता है तो बहुत ही दु:ख होता है और सुख चला (नष्ट हो) जाता है। जो रस-सहित नाम का जप नहीं करती, वह जलाने योग्य जीभ जल जाय। शरीर के नष्ट होने पर जब (जीवात्मा को) यम पकड़ते हैं तो उसे महादुख होता है और (वह) पछताता है (कि मनुष्य देही प्राप्त करके भी गुरु से नाम लेकर जाप नहीं किया ?) ॥५॥

मेरी मेरी करि गए
तनु धनु कलतु न साथि ॥
बिनु नावै धनु बादि है
भूलो मारगि आथि ॥
साचउ साहिबु सेवीऐ
गुरमुखि अकथो काथि ॥६॥

(मनमुख) "मेरी-मेरी" करते हुए (इस संसार से) चले (मर) गए, किन्तु उनके साथ (उनका अपना) शरीर, धन और स्त्री नहीं गई। बिना (हरि) नाम के (सांसारिक) धन व्यर्थ है, (मनुष्य) माया के रास्ते में पड़कर (प्रभु मार्ग को) भूला हुआ है। इसलिये गुरु द्वारा सच्चे साहब की सेवा करना चाहिए और अकथनीय (परमात्मा) का कथन करना चाहिए ॥६॥

आवै जाइ भवाईऐ
पइऐ किरति कमाइ ॥

(यह जीव अपने) पूर्व (जन्म) में किये कर्मानुसार (संसार में) आता है, जाता है और भटकता रहता है। पूर्वलिखित लेख को

पूरबि लिखिआ किउ मेटीऐ
लिखिआ लेखु रजाइ ॥
बिनु हरि नाम न छूटीऐ
गुरमति मिलै मिलाइ ॥७॥

कैसे मेटा जा सकता है ? यह लेख परमात्मा की मर्जी से (जीव के कर्मानुसार ही) लिखा है। बिना हरि नाम के छुटकारा नहीं मिलता। यदि गुरु की मति (उपदेश) मिले तो (परमात्मा से) मिलाप होता है ॥७॥

तिसु बिनु मेरा को नही
जिसु का जीउ परानु ॥
हउमै ममता जलि बलउ
लोभु जलउ अभिमानु ॥
नानक सबदु वीचारीऐ
पाईऐ गुणी निधानु ॥८॥१०॥

(इस अष्टपदी की प्रारम्भिक तुक है 'रतनु वीचारु'। गुरु के वचन जो रत्न रूप अमूल्य हैं, जो भी विचार करके कमाई के द्वारा नाम की पदवी प्राप्त करते हैं अब उनकी अवस्था का वर्णन है।) जिस (हरि) के ये जीव और प्राण हैं, 'उसके' बिना मेरा कोई (अन्य) नहीं है। 'उसकी' (कृपा से) अहंकार और ममता (मेरे अन्दर से) जल-बल जायें, लोभ और अभिमान भी जल जायें। हे नानक ! (गुरु के) शब्द पर विचार करने से गुणों का भण्डार (परमात्मा) प्राप्त हो जाता है ॥८॥१०॥

सिरी रागु महला १॥

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि
जैसी जल कमलेहि ॥
लहरी नालि पछाड़ीऐ
भी विगसै असनेहि ॥
जल महि जीअ उपाइ कै
बिनु जल मरणु तिनेहि ॥१॥

हे मन ! हरि से इस प्रकार प्रीति कर जैसी (प्रीति) जल से कमल की है। वह जल की लहरों से धक्के खाता है, फिर भी प्रेम के कारण विकसित होता है। इन (कमलों) का जीवन पानी मे ही रखा गया है और पानी के बिना ही उनका मरण है। (भाव जो जीव प्रेम-मार्ग में हैं, उनके जीवन में अनेक कष्ट व कठिनाईयाँ आती हैं। फिर भी वे दु:ख-दर्द को अपने किये हुए कर्मों का फल मानकर हरि का हुकम मीठा करके स्वीकार करते है और निश्चित होकर अपने प्रियतम के साथ प्यार मे सदा विकसित रहते हैं।) ॥१॥

मन रे किउ छूटहि बिनु पिआर ॥
गुरमुखि अंतरि रवि रहिआ
बखसे भगति भंडार ॥१॥रहाउ॥

अरे मन ! बिना प्यार के कैसे (भव-सागर से) छुटोगे (मुक्त होगे) ? किन्तु यह प्यार गुरु की शरण मे रहने के बिना प्राप्त नही होता इसलिये तू गुरमुख बन क्योंकि गुरमुख के अन्तर्गत (हरि) रमण कर रहा है और गुरु के माध्यम से 'वह' उसे भक्ति (प्रेम का भण्डार) प्रदान करता है ॥१॥ रहाउ ॥

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि
जैसी मछुली नीर ॥
जिउ अधिकउ तिउ सुखु घणो
मनि तनि सांति सरीर ॥

हे मन ! हरि से इस प्रकार प्रीति कर जैसी (प्रीति) मछली की जल से है। जैसे-जैसे जल का अधिक्य होता है वैसे-वैसे (मछली को) अधिक सुख होता है। उसको तन मे और मन मेंशान्ति रहती है। बिना जल के वह एक घड़ी भी

बिनु जल घड़ी न जीवई
प्रभु जाणै अभ पीर ॥२॥

नही जीती। पानी के बिना उसे जो आभ्यान्तरिक पीड़ा होती है उसे प्रभु ही जानता है। (भाव प्रभु के प्यारे सत्संग रूपी जल में रहकर अपने को आनन्दित महसूस करते हैं और बिना सत्संग के अपनी मृत्यु समझते हैं) ॥२॥

रे मन ऐसी हर सिउ प्रीति करि
जैसी चात्रिक मेहु ॥
सर भरि थल हरीआवले
इक बूंद न पवई केहु ॥
करमि मिलै सो पाईऐ
किरतु पइआ सिरि देहु ॥३॥

हे मन ! हरि से इस प्रकार प्रीति कर जैसी (प्रीति) चातक (पक्षी की) वर्षा (बादल) से है। (वर्षा के कारण सारे) सरोवर भर जाते हैं, स्थल हरे-भरे हो जाते हैं किन्तु यदि चातक के मुख में स्वाती नक्षत्र के बादल की एक बूंद नही पड़ी (तो फिर वे सभी) किस काम के (अर्थात् उनका क्या लाभ)? यदि 'उसकी' कृपा हो तो वह (बूंद) प्राप्त होती है, पूर्व जन्म में किया हुआ कर्म का लेख जो भाग्य मे लिखा है (अपना फल) देता है। (भाव प्रभु के प्यारो का चित चातक के समान है और गुरु बादल समान है। जो नित्य वर्षा करते हैं किन्तु गुरमुख प्यारे शब्द रूपी स्वाति बूंद को प्राप्त करके ही तृप्त होते है। यदि उनका अन्तर्गत हृदय शान्त नही हुआ तो वे शहर-कूचे मुहले में (हाँ) जगह-जगह पर बने हुए धर्म स्थानों से उन्हे क्या लाभ ? ॥३॥

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि
जैसी जल दुध होइ ॥
आवटणु आपे खवै
दुधु कउ खपणि न देइ ॥
आपे मेलि विछुंनिआ
सचि वडिआई देइ ॥४॥

हे मन ! हरि से इस प्रकार प्रीति कर जैसी (प्रीति) जल और दूध में होती है। (देखो पानी अग्नि का सेक् या) उबाला स्वय सहारन करता है, किन्तु दूध को नही खपने (सूखने) देता। ऐसी प्रीति करने वाले बिछुडे हुए को स्वयं हरि (अपने में) मिलाता है और सच्च द्वारा बड़ाई देता है। (भाव प्रभु के प्यारे हुकम स्वीकार करके दु ख सहन करते हैं और कष्ट में सहायता के लिए पुकार नहीं करते हैं। जैसे (गुरु अर्जुन देव और गुरु तेग बहादुर की शहीदियाँ। ऐसे सन्त महापुरुषो को प्रभु अपने से मिलाकर उनकी महिमा कर देते हैं) ॥४॥

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि
जैसी चकवी सूर ॥
खिनु पलु नीद न सोवई
जाणै दूरि हजूरि ॥

हे मन ! हरि से इस प्रकार प्रीति कर जैसी (प्रीति) चकवी की सूर्य से है। (नोट: चकवी की प्रीति सूर्य के साथ इसलिये है क्योंकि रात्रि होते ही चकवा चकवी दोनों अन्धे हो जाते हैं और सूर्य उदय होने पर ही एक दूसरे को देख पाते हैं)। चकवी (अपने पति चकवे के विरह में) एक क्षण भी एक पल भी नींद में नही सोती। (वह) दूरस्थ (सूर्य) को निकट ही समझाती है। (इसी प्रकार) गुरमुख गुरु की शिक्षा द्वारा (परमात्मा) को निकट ही (जानता) है किन्तु मनमुख को समझ नही प्राप्त होती।

मनमुखि सोझी ना पवै
गुरमुखि सदा हजूरि ॥५॥

(भाव जिज्ञासु रूपी चकवी को गुरु रूप सूर्य के दर्शन के बिना परमात्मा दूरस्थ प्रतीति होता है। चाहे 'वह' सदैव निकट से निकट हो) ॥५॥

मनमुखि गणत गणावणी
करता करे सु होइ ॥
ता की कीमति ना पवै
जे लोचै सभु कोइ ॥
गुरमति होइ त पाईऐ
सचि मिलै सुखु होइ ॥६॥

मन के पीछे चलने वाला जीव (मनमुख) (तीर्थ-पुण्य दानादि अपने कर्मों की) गिनती गिनता है, (किन्तु जीव के भी क्या वश में है ?) किन्तु (वास्तव में) जो कर्त्ता (परमात्मा) करता है वही होता है। यदि सब कोई (मिलकर भी 'उसकी' कीमत आँकना) चाहें तो भी 'उसकी' कीमत आँकी नहीं जा सकती। (हाँ) गुरु की शिक्षा (मति) हो (और उस पर चलें) तो ही (सच्च) प्राप्त होता है (फिर) सच द्वारा ही (अपार) सुख होता है ॥६॥

सचा नेहु न तुटई
जे सतिगुरु भेटै सोइ ॥
गिआन पदारथु पाईऐ
त्रिभवण सोझी होइ ॥
निरमलु नामु न वीसरै
जे गुण का गाहकु होइ ॥७॥

यदि सत्गुरु मिल जाय तो सच्चा प्यार नहीं टूटता। (गुरु से) ज्ञान रूपी पदार्थ पा जाने पर त्रिभुवन का ज्ञान होता है। (केवल मात्र मुख ज्ञानी नहीं लेकिन शुद्ध आचरण, वैराग्य, और ज्ञानादि) गुणों का यदि ग्राहक हो जाय तो (प्रभु का) निर्मल नाम नहीं विस्मृत होता ॥७॥

खेलि गए से पंखणूं
जो चुगदे सर तलि ॥
घड़ी कि मुहति कि चलणा
खेलणु अजु कि कलि ॥
जिसु तूं मेलहि सो मिलै
जाइ सचा पिड़ु मलि ॥८॥

(हे मन ! देखो) जो जीव-पक्षी इस (संसार रूपी) तालाब के धरातल पर (चारा) चुगते थे (जो भोग विलास का अपना जीवन व्यतीत करते थे) वे खेल-खेल कर चल दिये। (उन जैसे ही तुमने भी) घडी अथवा मुहूर्त भर में (थोड़े समय में) यहाँ से चल देना है, आज अथवा कल भर का खेल है। (अत. तेरी भलाई इसी में है कि झूठे खेल छोडकर प्रभु द्वार पर प्रार्थना कर, हे प्रभु !) मेरा मिलन करो क्योंकि जिसे तू मिलाता है वही तुझसे मिलता है और(वही केवल) सच्ची (जीवन)बाजी जीत कर जाता है अथवा वही सच्चे स्वरूप को जाकर मिलता है ॥८॥

बिनु गुर प्रीति न ऊपजै
हउमै मैलु न जाइ ॥
सोहं आपु पछाणीऐ
सबदि भेदि पतीआइ ॥

बिना गुरु के (परमात्मा में) प्रीति उत्पन्न नहीं होती और (बिना प्रीति के) अहंकार की मैल नहीं जाती। (अहंकार की निवृति होते ही गुरु के) शब्द का भेद जानकर (अर्थात अभेद बोधक महा वाक्यों के अर्थ का) रहस्य समझ कर (जिज्ञासु को) निश्चय हो जाता है कि सोऽहं तत्त्व मैं ही हूँ (ब्रह्म मैं हूँ)। (इस

गुरमुखि आपु पछाणीऐ
अवर कि करे कराइ ॥९॥

प्रकार जीव अपने) आपको पहचान लेता है। (सम्यग्ज्ञान) (जिसने) गुरु के द्वारा अपने आपको पहचान लिया है (उस ज्ञानवान को ससार में) और कर्म (एवं उपासना आदि) करना कराना कोई बाकी नहीं रहता (अर्थात कृतकृत्य होने के कारण उसके कोई कर्तव्य शेष नही रहते ॥९॥

मिलिआ का किआ मेलीऐ
सबदि मिले पतीआइ ॥
मनमुखि सोझी ना पवै
वीछुड़ि चोटा खाइ ॥
नानक दरु घरु एकु है
अवरु न दूजी जाइ ॥१०॥११॥

जो विचारवान् गुरु के शब्द द्वारा अपने सत्य स्वरूप का निश्चय करके ईश्वर के साथ मिल (अभेद हो) चुके हैं, उन प्रभु प्राप्ति वाले प्रेमियों का और मिलना मिलाना शेष कुछ नहीं क्योंकि वे ईश्वर से सदा अभिन्न हैं। मनमुख को ज्ञान नही होता (वह परमात्मा से) बिछुड कर चोटें खाता है। हे नानक! (जो अभेद हो चुका है) उसके लिए (प्रभु ही) एक मात्र द्वार है, घर है, ('उसे' छोडकर) दूसरा कोई स्थान (ठिकाना) नही है (जहाँ जाकर विश्राम करे) ॥१०॥११॥

सिरी रागु महला १॥

मनमुखि भुलै भुलाईऐ
भूली ठउर न काइ ॥
गुर बिनु को न दिखावई
अंधी आवै जाइ ॥
गिआन पदारथु खोइआ
ठगिआ मुठा जाइ ॥१॥

मनमुखी (स्त्री) (माया के) भुलावे में भटकती फिरती है, उस भटकती हुई को कोई ठिकाना नही मिलता। बिना गुरु के (उसे) कोई भी (मार्ग) नही दिखाता, (इस प्रकार ज्ञान-नेत्रों से हीन वह) अन्धी (आवागवन मे बार-बार) आती जाती रहती है (उसका अन्त ऐसे होता है जैसे ठगो से) जाकर ज्ञान पदार्थ को खो कर लुटी हुई (ससार से खाली हाथ चली) जाती है ॥१॥

बाबा माइआ भरमि भुलाइ ॥
भरमि भुली डोहागणी
ना पिर अंकि समाइ ॥१॥रहाउ॥

अरे बाबा! माया (सभी को) भ्रम में डालकर (सत्य मार्ग को भुला देती है)। वह दोहागिनी भ्रमित होकर भूली हुई (परमेश्वर) प्रियतम के अंक (गोदी) में नहीं समा सकती ॥१॥ रहाउ ॥

भूली फिरै दिसंतरी
भूली ग्रिहु तजि जाइ ॥
भूली डूंगरि थलि चड़ै
भरमै मनु डोलाइ ॥
धुरहु विछुंनी किउ मिलै
गरबि मुठी बिललाइ ॥२॥

(जिनकी बुद्धि भ्रमित है अर्थात मनमुखी स्त्री) भूली हुई देश-देशान्तरों में भटकती फिरती है। (वह अपना वास्तविक) घर छोड़कर (बाहर) भटकती फिरती है। वह भटकती हुई (कभी) पर्वतों पर चढ़ती है और (कभी) स्थलों पर फिरती है, इस प्रकार वह मन चचल करके भटकती रहती है। जो असल से ही (परमात्मा से) बिछुडी हुई है (वे) किस भाँति मिल सकती है? अहंकार में वह फंसी हुई बिललाती हैं ॥२॥

बिछुड़िआ गुरु मेलसी
हरि रसि नाम पिआरि ॥
साचि सहजि सोभा घणी
हरिगुण नाम अधारि ॥
जिउ भावै तिउ रखु तूं
मै तुझ बिनु कवनु भतारु ॥३॥

(प्रश्न: क्या मनमुखी स्त्री सदा रोयेगी ? क्या उसके लिए कोई आशा नहीं है ? (उत्तर ·) गुरु (ही) है जो बिछुड़ी हुई स्त्रियों को (पति-परमेश्वर से) मिला देगा। (कैसे ?) (कृपा द्वारा) उनका हरि से प्यार लगाकर और (हरि) नाम का रस देकर। इस प्रकार सत्य और सहजावस्था (ज्ञान) द्वारा, हरि गुणों और नाम के आश्रय से बहुत शोभा (बढ़ती) है। (अब वे परम प्यार मे कहती हैं हे प्रभु !) जैसा तुम्हें अच्छा लगे, वैसा तुम (हमें) रखो। तुम्हारे बिना हमारा (अन्य) पति कौन है ? (भाव कोई नही है।) ॥३॥

अखर पड़ि पड़ि भुलीऐ
भेखी बहुतु अभिमानु ॥
तीरथ नाता किआ करे
मन महि मैलु गुमानु ॥
गुर बिनु किनि समझाईऐ
मनु राजा सुलतानु ॥४॥

किन्तु जो मन के पीछे लगने वाले-मनमुख हैं, वे चाहे कितने भी ग्रन्थ क्यों न पढ़ लेवें लेकिन (भक्ति के बिना) अक्षर पढ़-पढ़ कर (भी माया के) भुलावे में पडे रहते हैं और यदि भेष धारण कर लें तो भेष में तो और भी अधिक अभिमान (की मैल मन में अधिकाधिक होती) है। (हाँ यदि कोई तीर्थों का भी भ्रमण कर लें तो क्या लाभ है ?) यदि मन में मैल और गुमान है तो तीर्थों में स्नान करके क्या कर सकता है ? (वास्तव में) गुरु के बिना (यह तथ्य) और कौन समझा सकता है कि "मन ही राजा और सुल-तान है।" (अर्थात् गुरु के बिना कोई नही समझा सकता।) ॥४॥

प्रेम पदारथु पाईऐ
गुरमुखि ततु वीचारु ॥
साधन आपु गवाइआ
गुर कै सबदि सीगारु ॥
घर ही सो पिरु पाइआ
गुर कै हेति अपारु ॥५॥

प्रेम-पदार्थ पाने पर ही (गुरु के) उपदेश द्वारा (शिष्य) तत्व-विचार (तत्व-ज्ञान, ब्रह्मज्ञान) प्राप्त करता है। स्त्री ने गुरु के शब्द द्वारा शृंगार करके आपेपन (अहंकार) को नष्ट किया है, उसने गुरु से अपार प्यार रखकर अपने अन्तर्गत (घर में) ही पति को पा लिया है ॥५॥

गुर की सेवा चाकरी
मनु निरमलु सुखु होइ ॥
गुर का सबदु मनि वसिआ
हउमै विचहु खोइ ॥
नामु पदारथु पाइआ
लाभु सदा मनि होइ ॥६॥

गुरु की सेवा तथा चाकरी से मन निर्मल होता है और (मन के मल रहित हो जाने से अपार) सुख होता है। जिसके मन में गुरु का शब्द बस जाता है, उसका अहंभाव नष्ट हो जाता है। (गुरु के द्वारा जिन्होंने) नाम रूपी पदार्थ प्राप्त किया है उनके मन में सदा लाभ होता है (अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति होती है) ॥६॥

करमि मिलै ता पाईऐ
आपि न लइआ जाइ ॥
गुर की चरणी लगि रहु
विचहु आपु गवाइ ॥
सचे सेती रतिआ
सचो पलै पाइ ॥७॥

(यह लाभ भी तभी संभव है यदि) पूर्व-लिखित श्रेष्ठ कर्म हो या (परमात्मा की) कृपा हो, तभी नाम की प्राप्ति होती है, वह अपने आप नही पाया जा सकता। अपने में से आपेपन को गँवा कर गुरु के चरणों में लगे रहो। (यह निश्चय कर लो कि) जो सत्य से अनुरक्त हैं, उनके पल्ले सत्य ही पडता है ॥७॥

भुलण अंदरि सभु को
अभुलु गुरू करतारु ॥
गुरमति मनु समझाइआ
लागा तिसै पिआरु ॥
नानक साचु न वीसरै
मेले सबदु अपारु ॥८॥१२॥

सभी कोई भूल के अन्तर्गत है, कर्त्तार रूपी गुरु ही भूल न करने वाला है। (ऐसे अभूल) गुरु की शिक्षा द्वारा (जिसने) मन को समझाया है उसका (कर्त्तार) से प्रेम लग जाता है। हे नानक ! जिसको सत्य (नाम) नही विस्मृत होता, उसको (गुरु) अपने शब्द द्वारा अपार (परमात्मा) से मिलाप करा देता है ॥८॥१२॥

सिरी रागु महला १॥

त्रिसना माइआ मोहणी
सुत बंधप घर नारि ॥
धनि जोबनि जगु ठगिआ
लबि लोभि अहंकारि ॥
मोह ठगउली हउ मुई
सा वरतै संसारि ॥१॥

यह तृष्णा रूपी माया, जो मोहिनी (भाव ठगणी) है के फल स्वरूप पुत्र, सम्बन्धी, घर की स्त्री के लिए मोह होता है। धन, यौवन, लालच, लोभ और अहकार ने (सारा) जगत ही ठग कर रखा है (ये ठग हैं)। मोह और अहकार की ठगमूरी (वह नशे वाली बूटी है जिससे पथिकों को बेहोश करके ठग उनका धनादि लूट लेता है), जो (सारे) संसार में वरत (व्याप्त) रही है, से सम्पूर्ण सृष्टि ठगी गई है अथवा मोह की ठगमूरी के कारण मैं (अर्थात् असली सुरत ही) मानो मर जाती है अथवा मोह की ठगमूरी ने मुझे (भी) ठग लिया है ॥१॥

मेरे प्रीतमा मै तुझ बिनु
अवरु न कोइ ॥
मै तुझ बिनु अवरु न भावई
तूं भावहि सुखु होइ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे प्रियतम ! तुम्हारे बिना मेरा और कोई नहीं है। मुझे तुम्हारे बिना कुछ और अच्छा भी नहीं लगता। (हे प्रभु !) जब तुम (मुझे) अच्छे लगते हो तो (मुझे) सुख होता है ॥१॥ रहाउ ॥

नामु सालाही रंग सिउ
गुर कै सबदि संतोखु ॥
जो दीसै सो चलसी
कूड़ा मोहु न वेखु ॥
वाट वटाऊ आइआ
नित चलदा साथु देखु ॥२॥

मैं (अपने) गुरु के शब्द अनुसार तृप्त (सन्तोष) होकर बड़े प्रेम (रंग) से (हरि) नाम की स्तुति करूँगी। क्योंकि जो कुछ (वस्तुएँ आदि) दिखाई पडती हैं, वे चली जायेंगी (भाव विनश्वर हैं)। अत. (जगत) मोह जो झूठा है, (इसकी ओर) मत देखो (अर्थात मोह नहीं रखना चाहिए)। मार्ग में (तू भी) पथिक (बन-कर) आया है (हे मन ! अपने) साथ को (नित्य स्थिर न समझना, यह काफले की तरह) नित्य चलता ही रहता है ॥२॥

आखणि आखहि केतड़े
गुर बिनु बूझ न होइ ॥
नामु वडाई जे मिलै
सचि रपै पति होइ ॥
जो तुधु भावहि से भले
खोटा खरा न कोइ ॥३॥

(यह जगत मुसाफिर घर है, यह बात) कितने ही लोग कथा व्याख्यानादि मे कहते हैं, किन्तु गुरु के बिना यह समझ नही होती। यदि गुरु के द्वारा (किसी को) नाम की बडाई मिलती है तो वह सत्य मे रग जाता है और उसकी (लोक-परलोक में) प्रतिष्ठा होती है। (हे प्रभु !) जो तुम्हे अच्छे लगते हैं, वे ही भले हैं, (अपने उद्यम से) न कोई खोटा है न खरा है। (भाव-जिन पर 'उसकी' कृपा दृष्टि होती है तो वे कर्मों से) खोटे होते हुए भी खरे हो जाते हैं (जैसे अजामल, गनिकादि) ॥३॥

गुर सरणाई छुटीऐ
मनमुखी खोटी रासि ॥
असट धातु पातिसाह की
घड़ीऐ सबदि विगासि ॥
आपे परखै पारखू
पवै खजानै रासि ॥४॥

(अत) गुरु की शरण से (ही तृष्णादि पाचो ठगो से) छुटकारा होता है। अपने मन के पीछे चलने वाला (मनमुख) तो खोटी पूँजी ही (इक्ट्ठी करता रहता) है। (जिस प्रकार) बादशाह की आठ धातुओ को गलाकर (सिक्के) गढ़े जाते हैं और उन पर (बादशाही) शब्द खोदने से वे प्रकाशित होकर खजाने मे डाले जाते हैं। (उसी प्रकार परमात्मा ने भान्ति-भान्ति के मनुष्य उत्पन्न किये हैं। मनुष्य जाति के आठ धातु—चार वर्ण और चार मजहब हैं, जो गुरु के) शब्द द्वारा गढ़ करके (शुद्ध होकर) विकसित होते हैं। (प्रभु) स्वय ही पारखी है और (शुद्ध सिक्को को) परख कर खजाने की राशि मे डाल देता है (अर्थात् ईश्वर के स्वरूप में अभेद हो जाते हैं ॥४॥ यथा "अस्त धात इक धातु कराइआ।" भाई गुरदास

तेरी कीमति ना पवै
सभ डिठी ठोकि वजाइ ॥
कहणै हाथ न लभई
सचि टिकै पति पाइ ॥
गुरमति तूं सालाहणा
होरु कीमति कहणु न जाइ ॥५॥

(मैंने सम्पूर्ण सृष्टि) ठोंक बजा कर (परीक्षा करके) देख लिया है कि (हे प्रभु !) तेरी कीमत नहीं आँकी जा सकती। कहने से 'वह' हाथ में नही आता, (यदि) सत्य में टिकें, तभी प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। (अतः) गुरु की मति (यही) है (कि हे प्रभु !) तेरी प्रशंसा ही (प्रशंसा) करनी है और (तेरी) कीमत (हम जीवों से) कही ही नही जा सकती ॥५॥

बिनु तनि नामु न भावई
तितु तनि हउमै वादु ॥
गुर बिनु गिआनु न पाईऐ
बिखिआ दूजा सादु ॥
बिनु गुण कामि न आवई
माइआ फीका सादु ॥६॥

जिस शरीर में (मनमुख को) नाम नहीं आता, उसके शरीर (मन) में अहंकार और वाद-विवाद है। गुरु के बिना ज्ञान नहीं प्राप्त होता, (नाम रस के बिना) अन्य स्वाद विषवत् हैं अथवा विषयों के सारे स्वाद द्वैतभाव के हैं। बिना (परमात्मा के) गुण गाने के (यह शरीर, सभी वस्तुएँ आदि) किसी काम में नहीं आते। वस्तुतः मायिक (पदार्थों का) स्वाद (अन्तत.) फीके हैं ॥६॥ पाँच विषय हैं (१) शब्द (२) स्पर्श (३) रूप (४) रस तथा (५) गन्ध ॥

आसा अंदरि जंमिआ
आसा रस कस खाइ ॥
आसा बंधि चलाईऐ
मुहे मुहि चोटा खाइ ॥
अवगणि बधा मारीऐ
छूटै गुरमति नाइ ॥७॥

(मनमुख मानो पूर्वजन्म के कर्मानुसार) आशा के अन्तर्गत ही) जन्म लेता है और आशा ही में (लगकर मायिक) रस भोगता है। वह आशा मे ही बध कर (आगे) चलाया जाता है। (वह आशा ही में) ठगा जाता है और मुँह पर (यम की) चोट खाता है। (इस प्रकार जो नाम को भूलकर गुरु की मति से खाली मानो) अवगुणो में बंधा है, (वह) मारा जाता है। जो गुरु को मति द्वारा नाम की ही आशा रखकर नाम का ही रसास्वादन करता है वह ही गुरुमुख (आशा-तृष्णा के) बन्धन से छूटता है (मोक्ष पाता है) ॥७॥ रस छ हैं—(१) मीठा (२) नमकीन (३) कड़वा (४) तीक्ष्ण (५) कसैला और (६) खट्टा।

सरबे थाई एकु तूं
जिउ भावै तिउ राखु ॥
गुरमति साचा मनि वसै
नामु भलो पति साखु ॥
हउमै रोगु गवाईऐ
सबदि सचै सचु भाखु ॥८॥

(हे मेरे प्रियतम !) सभी स्थानो पर एक तू (ही) है, जैसे तुझे अच्छा लगे, वैसे (मुझे) रख। (कृपा कर कि) गुरु की मति लेकर सच्चा (परमात्मा) मन में बस जाय, (क्योंकि तेरी दरबार में) नाम ही भली प्रतिष्ठा और साथी (सगति) है। (हाँ) (गुरु के) सच्चे शब्द द्वारा मेरा अहंकार रोग नष्ट कर दो और सत्य (नाम ही मेरा) भाषण हो अर्थात् सत्य ही सत्य कहूँ ॥८॥

आकासी पातालि तूं
त्रिभवणि रहिआ समाइ ॥
आपे भगती भाउ तूं
आपे मिलहि मिलाइ ॥
नानक नामु न वीसरै
जिउ भावै तिवै रजाइ ॥९॥१३॥

(हाँ मेरे प्रियतम !) तू आकाश मे, पाताल मे (अर्थात्) तीनों लोकों में व्याप्त है। तू स्वय ही भक्ति है, तू स्वयं ही प्रेम है, तू स्वयं ही (मिलने वाला प्रेमी होकर) मिलता है और तू स्वयं ही (प्रियतम होकर प्रेमियों को अपने साथ) मिलाता है। (प्रार्थना है) हे नानक ! मुझे (तेरा) नाम न भूले। जैसे तुझे अच्छा लगे वैसे ही मुझे अपनी आज्ञा (मर्जी) में रख ॥९॥१३॥

सिरी रागु महला १॥

राम नामि मनु बेधिआ
अवरु कि करी वीचारु ॥
सबद सुरति सुखु ऊपजै
प्रभ रातउ सुख सारु ॥
जिउ भावै तिउ राखु तूं
मै हरिनामु अधारु ॥१॥

(मेरा) मन राम के नाम में बिंध (लग) गया है, (अब) मैं अन्य विचार क्या करूँ ? (गुरु के) शब्द में चितवृत्ति (सुरति) लगाने से सुख उत्पन्न होता है और प्रभु (प्रेम) में अनुरक्त होना समस्त सुखो का सार है अथवा सुख सार श्रेष्ठ आत्मिक सुख प्राप्त करना है। (हे प्रभु !) तुझे जैसा अच्छा लगे वैसा (मुझे) रख, क्योंकि मुझे तो (केवल) हरि नाम का ही आश्रय है ॥१॥

मन रे साची खसम रजाइ ॥
जिनि तनु मनु साजि सीगारिआ
तिसु सेती लिव लाइ ॥१॥रहाउ॥

अरे मन ! पति परमेश्वर की आज्ञा सच्ची है। जिस (खसम) ने तन और मन को रच कर सवारा है, 'उसी' से (अनन्य) प्रेम लगाओ ॥१॥ रहाउ ॥

तनु बैसंतरि होमीऐ
इक रती तोलि कटाइ ॥
तनु मनु समधा जे करी
अनदिनु अगनि जलाइ ॥
हरिनामै तुलि न पुजई
जे लख कोटी करम कमाइ ॥२॥

(हरि नाम की महिमा ।) यदि शरीर को एक रत्ती की तोल में काट कर अग्नि में हवन (होम) किया जाय, यदि तन और मन को (हवन कुण्ड में डालने वाली) लकड़ियाँ (समिधा) की जाय और रात-दिन अग्नि में जलाई जाय, इसी प्रकार के यदि लाखों करोडो कर्म किये जायँ, तो भी हरिनाम की तुलना (बराबरी) में पुज नही सकते ॥२॥

अरध सरीरु कटाईऐ
सिरि करवतु धराइ ॥
तनु हैमंचलि गालीऐ
भी मन ते रोगु न जाइ ॥
हरिनामै तुलि न पुजई
सभ डिठी ठोकि वजाइ ॥३॥

यदि सिर पर आरा रखवा कर शरीर के दो टुकडे भी किये जायँ और शरीर को (वीर पाण्डवों के समान सन्यास लेकर) हिमालय में गला दिया जाय, फिर भी मन से रोग (अहंकार, कामादिक) नही जाते, तो भी हरिनाम की तुलना (बराबरी) में (कोई भी साधन) पुज नही सकते (मैंने) सभी (साधनो की) ठोक बजाकर अर्थात् अच्छी प्रकार निर्णय करके देख लिया है ॥३॥

कंचन के कोटि दतु करी
बहु हैवर गैवर दानु ॥
भूमि दानु गऊआ घणी
भी अंतरि गरबु गुमानु ॥

यदि (लंका जैसे) सोने के किले अथवा करोड़ों मन सोना दान कर दूँ, यदि बहुत से श्रेष्ठ घोड़ों और श्रेष्ठ हाथियों को दान में दे दूँ, यदि भूमिदान और बहुत सी गौवों का दान करूँ, फिर भी (दान करने का) भीतर गर्व और गुमान (बने रहते) हैं। जिन्हों

रामनामि मनु बेधिआ
गुरि दीआ सचु दानु ॥४॥

को गुरु ने (कृपा करके) सच्चा (नाम) दान दे दिया है, उन्हों का ही मन राम नाम में बिंध (लग) जाता है ॥४॥

मन हठ बुधी केतीआ
केते बेद बीचार ॥
केते बंधन जीअ के
गुरमुखि मोखदुआर ॥
सचहु ओरै सभु को
उपरि सचु आचारु ॥५॥

(मनमुख के) मन के हठ और बुद्धि के कारण कितने भी (अन्यान्य कर्म किये) जायें, चाहे कितने ही वेदों के विचार कर लें (इसी प्रकार) जीव के कितने ही बंधन हैं, किन्तु मुक्ति का द्वार गुरु के सन्मुख रहने पर ही मिलता है। सभी साधन सत्य की अपेक्षा न्यून (तुच्छ) हैं अथवा सभी साधनो से सत्य का साधन उत्तम है किन्तु सत्य से भी ऊँचा सत्य की रहनी (आचार) है ॥५॥

सभु को ऊचा आखीऐ
नीचु न दीसै कोइ ॥
इकनै भांडे साजिऐ
इकु चानणु तिहु लोइ ॥
करमि मिलै सचु पाईऐ
धुरि बखस न मेटै कोइ ॥६॥

सभी को (परमेश्वर रूप समझकर) ऊँचा कहना (ही ठीक) है (क्योंकि ब्रह्म-आत्म दृष्टि से) कोई भी नीच नहो दिखाई देगा (स्मरण रहे) एक ही (मिट्टी) से एक (परमात्मा) के द्वारा ही (सभी भान्ति-भान्ति के) शरीर (भाडे) बने हैं और 'उसी' एक की ही ज्योति तीनो अर्थात् समस्त लोको में है। किन्तु (परमात्मा की) कृपा से ही सत्य (की दृष्टि) प्राप्त होता है, उसकी असली-(ईश्वरीय वरदान) बख्शिश को फिर कोई भी मेट नही सकता ॥६॥

साधु मिलै साधू जनै
संतोखु वसै गुर भाइ ॥
अकथ कथा वीचारीऐ
जे सतिगुर माहि समाइ ॥
पी अंम्रितु संतोखिआ
दरगहि पैधा जाइ ॥७॥

जब अधिकारी जन साधक को साधु (पुरुष) (भाव गुरु मिल) जाय तो (श्रद्धा) प्रेम से गुरु भक्ति करने पर ही (हृदय में) सन्तोष (गुणादि) बस जाता है। (हाँ) यदि सत्गुरु (के उपदेश मे साधक) समा जाय तो 'वह' अकथनीय (परमात्मा) की कथा का विचार करता है। वह (गुरु से) (नाम) अमृत पीकर (संसार में) सन्तुष्ट होकर (परमात्मा की) दरबार में प्रतिष्ठा की पोशाक पहनकर जाता है ॥७॥

घटि घटि वाजै किंगुरी
अनदिनु सबदि सुभाइ ॥
विरले कउ सोझी पई
गुरमुखि मनु समझाइ ॥

(साधक को गुरु से नाम, ब्रह्म-दृष्टि, सन्तोष, तृप्ति आदि की प्राप्ति होने पर) प्रत्येक शरीरो में (घटि-घटि में) जो चैतन्य सत्ता रूपी वीणा (किंगुरी) बज रही है, (ऐसा साधक) रात-दिन उस (अनाहत) शब्द को सुनकर शोभायमान होता है अथवा वह (गुरु) शब्द द्वारा प्रेम के श्रेष्ठ प्रेम में रात-दिन (रहता) है। किन्तु इसकी (किंगुरी की) समझ विरले को ही पड़ती है जिसने गुरु के

नानक नामु न वीसरै
छूटै सबदु कमाइ ॥८॥१४॥

द्वारा मन को समझाया है। हे नानक ! (ऐसे साधक को) नाम (कभी) नहीं भूलता और वह गुरु के शब्द पर आचरण करके (सांसारिक बन्धनों से) छूट जाता है ॥८॥१४॥

सिरी रागु महला १॥

चिते दिसहि धउलहर
बगे बंक दुआर ॥
करि मन खुसी उसारिआ
दूजै हेति पिआरि ॥
अंदरु खाली प्रेम बिनु
ढहि ढेरी तनु छारु ॥१॥

चित्र-विचित्र श्वेत महल (धउलहर) जो दिखाई पडते हैं, जिनो के दरवाजे श्वेत और सुन्दर (भी) हैं, मन की खुशी के लिए ही (ये महल) बनाये गये हैं, किन्तु (नाम के बिना) ये सब द्वैत भाव के ही प्रति स्नेह और प्यार है। जिनके हृदय (ईश्वर के) प्रेम से खाली हैं, (हाँ) प्रेम-विहीन हैं, उनके (महल) गिर कर, (हाँ) शरीर भी ढह-ढहकर खाक की ढेरी हो जायेगा ॥१॥

भाई रे तनु धनु साथि न होइ ॥
रामनामु धनु निरमलो
गुरु दाति करे प्रभु सोइ ॥१॥रहाउ॥

अरे भाई ! तन और धन (मृत्यु के पश्चात्) साथ नहीं होते। (प्रश्न हे सत्गुरु ! वह कौन-सी वस्तु है जो साथ चलेगी ? उत्तर: साथ में चलने वाला) धन है राम का नाम जो निर्मल है। (प्रश्न· यह कहाँ से और कैसे मिलता है ? उत्तर·) जब प्रभु गुरु के द्वारा (नाम का) दान (बख्शिश) देता है तब यह प्राप्त होता है ॥१॥ रहाउ ॥

रामनामु धनु निरमलो
जे देवै देवणहारु ॥
आगै पूछ न होवई
जिसु बेली गुरु करतारु ॥
आपि छडाए छुटीऐ
आपे बखसणहारु ॥२॥

राम नाम का धन निर्मल है (भाव आप निर्मल है और तन, मन और बुद्धि को निर्मल करता है) यदि (यह निर्मल धन) देने वाला देता है तो (ऐसे धनी की) आगे (परलोक में) किसी प्रकार की पूछ नहीं होती (भाव नाम जपने वाला बड़ा कोई बुरा कर्म करेगा ही नहीं तो धर्मराजा क्या पूछेगा ? ऐसे (जीव के) साथी, सहायक कर्तार रूप गुरु है। क्षमाशील दयालु प्रभु जब आप जीव को संसार के बन्धनों से छुड़ाता है तब यह बन्धनों से छूट जाता है ॥२॥

मनमुखु जाणै आपणे
धीआ पूत संजोगु ॥
नारी देखि विगासीअहि
नाले हरखु सु सोगु ॥
गुरमुखि सबदि रंगावले
अहिनिसि हरिरसु भोगु ॥३॥

(मनमुख और गुरमुख में अन्तर) पुत्रीआँ और पुत्रादि तो संयोग से मिले हैं, किन्तु अपने मन के पीछे चलने वाला-मनमुख (उन्हें) अपना जानता है। वह स्त्री को देखकर बहुत प्रसन्न-विकसित होता है, किन्तु यह प्रसन्नता और हर्ष शोक से मिश्रित रहती है। गुरु के बताये हुए मार्ग पर चलने वाला (गुरमुख) (परिवार आदि का मोह त्याग कर) (गुरु के) शब्द में अनुरक्त रहता है और रात-दिन हरिरस (का आनन्द) भोगता है ॥३॥

चितु चलै वितु जावणो
साकत डोलि डोलाइ ॥
बाहरि ढूंढि विगुचीऐ
घर महि वसतु सुथाइ ॥
मनमुखि हउमै करि मुसी
गुरमुखि पलै पाइ ॥४॥

(माया-शक्ति का पुजारी) साकत का चित्त (संसारिक) धन के जाने से चलायमान होता है, वह स्वयं भटकता है और (साथियों को भी) भटकाता है। (हरिधन रूपी) वस्तु घर ही में (हृदय रूपी) सुन्दर स्थान में है, किन्तु (साक्त) बाहर ढूँढ कर (नष्ट) खराब होता है। मनमुखी (सृष्टि) अहंकार के कारण (हरि-धन से) लूटी गई है, किन्तु गुरु की शिक्षा द्वारा (शिष्य) हरि धन अपने पल्ले में डाल लेता है ॥४॥

साकत निरगुणिआरिआ
आपणा मूलु पछाणु ॥
रकतु बिंदु का इहु तनो
अगनी पासि पिराणु ॥
पवणै कै वसि देहुरी
मसतकि सचु नीसाणु ॥५॥

ऐ गुणविहीन ! ऐ माया-शक्ति के उपासक (साकत) ! अपने (वास्तविक) मूल को पहचानो। यह शरीर (माता के) रक्त तथा (पिता के) वीर्य से निर्मित हुआ है। (इसलिये रक्त-वीर्य गन्द ही शरीर का मूल कारण है) और (अन्त मे) अग्नि के पास ही (शरीर ने) चले जाना (प्रयाण करना) है। (फिर यह देही) पवन (स्वास) के वशीभूत है (फिर इस स्वास ने सदा भी नही रहना क्योकि प्रत्येक के मस्तक में यह सच्चा निशान पडा हुआ है (कि क्षणभंगुर शरीर इतना समय रहेगा) ॥५॥

बहुता जीवणु मंगीऐ
मुआ न लोड़ै कोइ ॥
सुख जीवणु तिसु आखीऐ
जिसु गुरमुखि वसिआ सोइ ॥
नाम विहूणे किआ गणी
जिसु हरिगुर दरसु न होइ ॥६॥

(महान आश्चर्य की बात है कि) कोई भी मरना नही चाहता इसलिये अधिक (से अधिक) जीवन माँगते (चाहते) हैं ! सुखी जीवन उसी का कहना चाहिये जिसके (मन में) गुरु के द्वारा वह (हरि) बस गया है। जो (जीव) नाम-विहीन हैं और जिनको हरि (स्वरूप) गुरु का दर्शन नही होता (उनके जीवन की) क्या गणना की जाय ? (अर्थात् उनका जीवन निष्फल है।) ॥६॥

जिउ सुपनै निसि भुलीऐ
जब लगि निद्रा होइ ॥
इउ सरपनि कै वसि जीअड़ा
अंतरि हउमै दोइ ॥
गुरमति होइ वीचारीऐ
सुपना इहु जगु लोइ ॥७॥

जैसे रात्रि में, जब तक निद्रा रहती है, स्वप्न में (हम) भटकते रहते हैं, वैसे ही (माया रूपी) सर्पिणी के वशीभूत जीव (अविद्या में सोया पडा) है, हृदय में अहता और द्वैत भावना बनी रहती है। (मायिक निद्रा कैसे दूर हो ? यह जगत स्वप्नवत् कब प्रतीत होगा ? उत्तर.) गुरु की शिक्षा ग्रहण करके विचार करे कि इस जगत का प्रकाश स्वपन के समान (क्षणभंगुर) है ॥७॥

अगनि मरै जलु पाईऐ
जिउ बारिक दूधै माइ ॥
बिनु जल कमल सु ना थीऐ
बिनु जल मीनु मराइ ॥
नानक गुरमुखि हरि रसि मिलै
जीवा हरि गुण गाइ ॥८॥१५॥

जैसे जल के डालने से अग्नि शान्त हो जाती है अथवा पानी पीने से प्यास बुझ जाती है (अर्थात् तृष्णा रूपी अग्नि हरि नाम का जल डालने से शान्त होती है), जैसे माता के दूध को पीकर बालक की तृप्ति होती है (अर्थात् गुरु माता का उपदेश रूपी दूध मिलने से मन रूपी बालक तृप्त होता है), जैसे बिना जल के कमल नहीं रह सकता (अर्थात् नाम रूपी जल के बिना दैवी गुण रूपी कमल नहीं रहता और बिना जल के मच्छली मर जाती है अर्थात् आत्मा रूपी जल के बिना जीव या देही रूपी मच्छली मर जाती है)। हे नानक ! (यदि) गुरु की शिक्षा द्वारा हरिरस मिल जाय और हरि रस द्वारा हरि मिल जाय, तो हाँ (हरि) हरि के गुण गाकर जीवित रहूँगा ॥८॥१५॥

सिरी रागु महला १॥

डूंगरु देखि डरावणो
पेईअड़ै डरीआसु ॥
ऊचउ परबतु गाखड़ो
ना पउड़ी तितु तासु ॥
गुरमुखि अंतरि जाणिआ
गुरि मेली तरीआसु ॥१॥

(जैसे कोई मनुष्य किसी घेरे में पड जाए, निकलने का स्थान न देख कर व्याकुल एवं भयभीत होता है, वैसे हो जीव रूपी स्त्री) इस ससार रूपी (पिता के) घर (पीहर) मे (कामादिक) भयानक पहाडों को देखकर डर रही है। (संसार-सागर के भंवर रूप जाल से निकलकर आत्मिक-जीवन के (ऊँचे और दुर्गम पहाड़ की शिखर) पर चढना अति कठिन है क्योंकि वहाँ चढ़ने के लिए भक्ति रूपी सीढ़ी उसके पास नही है। किन्तु गुरमख ने अपने भीतर यह (रहस्य) जाना है कि गुरु के मिलाप होने पर ही (भव-सागर से) तर गई है ॥१॥

भाई रे भवजलु बिखमु डरांउ ॥
पूरा सतिगुरु रसि मिलै
गुरु तारे हरि नाउ ॥१॥रहाउ॥

अरे भाई ! ससार-सागर (बहुत ही) विषम और डरावना है। यदि पूर्ण सत्गुरु प्रसन्न होकर मिल जाय तो वह रसिक प्रेमी को हरि नाम देकर (इस संसार-सागर से) पार कर देता है ॥१॥ रहाउ ॥

चला चला जे करी
जाणा चलणहारु ॥
जो आइआ सो चलसी
अमरु सु गुरु करतारु ॥
भी सचा सालाहणा
सचै थानि पिआरु ॥२॥

(वैराग्यवान होकर) यदि (जीव-स्त्री) कहे कि (यहाँ से) चले जाना है, (अवश्य) चले जाना है और अपने को (ससार से) चले जाने वाला भी समझ ले तथा यह भी विश्वास हो जाय कि (संसार में) जो आया है वह अवश्य चला जायेगा एवं (यह भी निश्चय हो जाय कि संसार में केवल) कर्त्तार स्वरूप गुरु ही है जो अमर है, तो भी सच्चे स्थान-सत्संग में प्यार के साथ सच्चे (परमात्मा) की स्तुति करनी चाहिये। (भाव-जिज्ञासु में वैराग्य के साथ-साथ हृदय में सुन्दर प्रभु को मिलने के लिये भावपूर्ण स्तुति अनिवार्य है) ॥२॥

घर घर महला सोहणे
पके कोट हजार ॥
हसती घोड़े पाखरे
लसकर लख अपार ॥
किसही नालि न चलिआ
खपि खपि मुए असार ॥३॥

(चाहे किसी के पास) सुन्दर दरवाजों वाले घर और महल भी (अनेक) हों तथा हजारों पक्के किले हों एव अम्बारी वाले हाथी और काठियों वाले घोड़े भी लाखों हो और अगनित सैना हो, किन्तु यह देख लेने पर भी कि इनमें से कोई वस्तु किसी के साथ नहीं जाती, तो भी इसको संग्रह करने वाले बेखबर (प्रमादी जीव) दु:खी होकर मर गए ॥३॥

सुइना रुपा संचीऐ
मालु जालु जंजालु ॥
सभ जग महि दोही फेरीऐ
बिनु नावै सिरि कालु ॥
पिंडु पड़ै जीउ खेलसी
बदफैली किआ हालु ॥४॥

चाहे (कोई) सोना, चाँदी तथा (अन्य) सामग्री संग्रह कर ले किन्तु यह समस्त प्रपंच (बंधन) रूप जाल है। (हाँ) चाहे (किसी की) सारे जगत में (बडाई की) मुनादी की जाय, फिर भी बिना (हरि) नाम के (उसके) सिर पर काल (अवश्यम्भावी) है (अर्थात् जन्म-मरण का चक्र बना ही रहता है)। शरीर पात (मृत्यु) होने पर जीवात्मा अपना खेल समाप्त कर देगा। (अब बताओ) विषय लोलुप—दुष्ट मित्रों का क्या हाल होगा? (अर्थात् नरको में पडकर दु ख भोगेंगे) फिर भी अज्ञानी जीव ऐसा जानता हुआ भी हरि-नाम का भजन नही करता ॥४॥

पुता देखि विगसीऐ
नारी सेज भतार ॥
चोआ चंदनु लाईऐ
कापड़ु रूपु सीगारु ॥
खेहू खेह रलाईऐ
छोडि चलै घर बारु ॥५॥

(पिता-माता) अपने पुत्रों को देख (देख) कर और पति अपनी स्त्री को सेज पर देखकर प्रसन्न हो रहे हैं; (जीव जिस शरीर को शीतल) एवं सुगन्धित करने के लिये चन्दन और इत्रादि लगाता है तथा रूप की सुन्दरता के लिये (सुन्दर) कपड़े पहन कर श्रंगार करता है, किन्तु मरने पर मिट्टी (की देही) मिट्टी मे ही मिल जाती है और वह घरबार (बाल-बच्चे—घर सम्पत्ति आदि पीछे) छोडकर *आगे (नगा)* चल देता है ॥५॥

महर मलूक कहाईऐ
राजा राउ कि खानु ॥
चउधरी राउ सदाईऐ
जलि बलीऐ अभिमान ॥
मनमुखि नामु विसारिआ
जिउ डवि दधा कानु ॥६॥

चाहे कोई (अपने आप को) सरदार (महर), बादशाह (मलूक), राजा, राय या खान कहलाएँ अथवा चाहे कोई चौधरी और राज-पुत्र के नामों से बुलाए जायँ, तो भी जो अपने मन के पीछे लगकर (हरि) नाम (की महिमा) को भूल जाते हैं, वे (अपने ही) अभिमान में ऐसे जल-बल जाते हैं, जैसे दावाग्नि, (बन की अग्नि) में दग्ध हुए सरपत की दुर्दशा होती है (सरपत—कुश की तरह एक घास जो छप्पर आदि छाने के काम आती है) ॥६॥

हउमै करि करि जाइसी
जो आइआ जग माहि ॥
सभु जगु काजल कोठड़ी
तनु मनु देह सुआहि ॥
गुरि राखे से निरमले
सबदि निवारी भाहि ॥७॥

जो भी (जीव) जगत में आया हुआ है यदि अहंकार कर के जायेगा तो उसके लिये यह सारा जगत (मानो विषय-विकारों की) काजल की कोठड़ी है जिसमें उसका तन, मन और (सारी मनुष्य) देही राख के समान काले-मैले हो जाते हैं। किन्तु (इस संसार रूपी काजल कोठड़ी में) वे हो जीव मल रहित निर्मल हुए हैं जिनके अन्दर से गुरु ने (कृपा करके) अपने शब्द द्वारा (अहंकार रूपी) अग्नि को निवारण (दूर) कर दिया है ॥७॥

नानक तरीऐ सचि नामि
सिरि साहा पातिसाहु ॥
मै हरिनामु न वीसरै
हरिनामु रतनु वेसाहु ॥
मनमुख भउजलि पचि मुए
गुरमुखि तरे अथाहु ॥८॥१६॥

हे नानक ! जो (परमात्मा) बादशाहों का भी शिरोमणि बादशाह है, 'उसके' सच्चे नाम के स्मरण करने से (जीव) संसार सागर रूपी विषय-विकारों से तर जाता है। काश ! मुझे वह हरि नाम न विस्मृत हो और हरिनाम को रत्न समझ कर (गुरु से) खरीद करूँ। मन के पीछे लगकर चलने वाले मनमुख ससार-सागर में हरि नाम को भूलकर दु:खी होकर मरते हैं, जब कि गुरु के पीछे लगकर चलने वाले गुरुमुख इसी अगाध संसार सागर से (हरि नाम जपकर) तर जाते हैं ॥८॥१६॥

सिरी रागु महला १ घरु २॥

मुकामु करि घरि बैसणा
नित चलणै की धोख ॥
मुकामु ता परु जाणीऐ
जा रहै निहचलु लोक ॥१॥

(यहाँ) घर में (सदा) ठहरने का स्थान (मुकाम) समझकर बैठना भूल है, क्योंकि (यहाँ से) नित्य चलने का धोखा (भय) बना रहता है, किन्तु (वास्तविक) मुकाम तो उसी को समझना चाहिये, जब ये (चौदह) लोक निश्चल रह सकें। जब चतुर्दश भुवन ही स्थिर नही है तो हमारे घर या हमारी स्थिति कैसे स्थिर रहेगी ? ॥१॥

दुनीआ कैसि मुकामे ॥
करि सिदकु करणी खरचु
बाधहु लागि रहु नामे ॥१॥
रहाउ॥

(हे भाई !) यह दुनिया कैसे (सदा) ठहरने का स्थान (मुकाम) हो सकता है ? अत (महा पुरुषो के वचनो पर) विश्वास करके शुभ कर्मों को करो और सदा (हरि) नाम में लगे रहो (बस यही आगे परलोक की यात्रा के लिये) खर्च बांधो ॥१॥ रहाउ ॥

जोगी त आसणु करि बहै
मुला बहै मुकामि ॥

(किन्तु जीव को आशङ्का होती है कि) योगी तो (मठ बना कर पद) आसन लगाकर (स्थिर) बैठते हैं, और मुल्ला (मस्जिद को अपना) मुकाम बना (समझकर) बैठते हैं। पण्डित (एकान्त में

पंडित वखाणहि पोथीआ
सिध बहहि देवसथानि ॥२॥

बैठ कर) धर्म ग्रन्थों (पोथियों) की व्याख्या करते हैं और सिद्ध (पुरुष) देव स्थान (सुमेर पर्वत) पर (चित्त के लिये) बैठते हैं ॥२॥

सुर सिध गण गंधरब
मुनिजन सेख पीर सलार ॥
दरि कूच कूचा करि गए
अवरे भि चलणहार ॥३॥

(इसी प्रकार) देवता, सिद्ध, (शिव के) गण, किन्नरादि गायक (गंधर्व), मुनिजन, शेख, पीर तथा सरदार (सलार) इत्यादि (सभी ठिकाने बनाकर) बैठते तो अवश्य हैं, किन्तु कूच दर कूच कर गए (बारी बारी से चले गए) और जो शेष बचे हैं वे भी यहाँ से जाने वाले हैं (यहाँ पर रहने वाला कोई भी दिखाई नही देता) ॥३॥

सुलतान खान मलूक उमरे
गए करि करि कूचु ॥
घड़ी मुहति कि चलणा
दिल समझु तूं भि पहूचु ॥४॥

(यही नही स्वयं) बादशाह, बहादुर (खान), चक्रवर्ती (मूलक) धनी मानी (उमरे) भी (यहाँ से) कूच करके चल दिए हैं। ऐ दिल ! यह समझ लो कि घडी (२४ मिनट) अथवा मुहूर्त (दो घडी, ४८ मिनट) भर मे ही तुम्हें भी (यहाँ से) चलना है, (हाँ) तुम्हे भी वही (परलोक मे) पहुँचना है ॥४॥

सबदाह माहि वखाणीऐ
विरला त बूझै कोइ ॥
नानकु वखाणै बेनती
जलि थलि महीअलि सोइ ॥५॥

(यह ससार अनित्य एव क्षणभगुर है इस प्रकार की बाते) अनेक शब्दो मे (अनेकानेक) कथन करते हैं किन्तु कोई विरला ही (इस सिद्धान्त को) समझता है। (बाबा) नानक विनय करके (कलियुगी जीवो को) कह रहे हैं कि (मृत्यु के भय से बचने के लिये जिज्ञासु को परमात्मा के आगे बार-बार प्रार्थना करनी चाहिये कि हे प्रभु !) तू ही जल, स्थल तथा पृथ्वी और आकाश के मध्य मे व्याप्त है ॥५॥

अलाहु अलखु अगंमु
कादरु करणहारु करीमु ॥
सभ दुनी आवण जावणी
मुकामु एकु रहीमु ॥६॥

(हाँ सच्चा मुकाम वह एक) अल्लाह है, जो अलख है, अतीन्द्रिय (अगंमु) है, शक्तिशाली (कादिर) है, करने वाला (करण हारु) और कृपालु (करीम) है। यह सारी दुनिया आने-जाने वाली है, किन्तु सदा स्थिर रहने वाला (मुकाम) एक परम कृपालु (रहीम) परमात्मा है ॥६॥

मुकामु तिसनो आखीऐ
जिसु सिसि न होवी लेखु ॥
असमानु धरती चलसी
मुकामु ओही एकु ॥७॥

कायम (मुकाम मे) रहने वाला तो वही कहा जाता है, जिस के सिर पर (विचलित करने वाली कोई) लेख लिखा हुआ न हो। आकाश, धरती (जल, तेज, वायु ये पाँच महाभूत) नष्ट होने वाले हैं, किन्तु कायम तो एक 'वही' है(जिसने इन्हे उत्पन्न कियाहै)॥७॥

दिनु रवि चलै निसि ससि चलै
तारिका लख पलोइ ॥
मुकामु ओही एकु है
नानका सचु बुगोइ ॥८॥१७॥

दिन और सूर्य नष्ट हो जायेंगे, रात्रि और चन्द्रमा (भी) नष्ट हो जायेंगे, लाखों तारागण भी लोप हो जायेंगे। हे नानक! (मैं यह) सच्ची बात कहता हूँ कि 'वह' एक ही मुकाम-सर्वदा स्थिर रहने वाला एक स्थान है, शेष समस्त विश्व क्षणभंगुर तथा चलायमान है ॥८॥१७॥

महले पहिले सतारह असटपदीआ ॥

महले पहले गुरु नानक साहब की सतरह अष्टपदीआं इति अथ,तु (समाप्त हुईं।)

सिरी रागु महला ३ घरु १
असटपदीआ ॥

गुरमुखि क्रिपा करे भगति कीजै
बिनु गुर भगति न होइ ॥
आपै आपु मिलाए बूझै
ता निरमलु होवै कोइ ॥
हरि जीउ सचा सची बाणी
सबदि मिलावा होइ ॥१॥

(दीक्षा देने वाले) मुख्य गुरु जब कृपा करते हैं, तब (हरि की) भक्ति होती है क्योंकि बिना गुरु (की कृपा) के (अनन्य) भक्ति नही होती। जब गुरु (शिष्य को) आप ही अपने साथ मिलाता है तब वह (भक्ति की रीति) समझता है और (हरि-रूप गुरु की भक्ति द्वारा) निर्मल होता है। किन्तु खेद है कि गुरु को प्रेम करने वाला कोई (विरला ही होता) है। हरि जी (स्वयं) सच्चा है और (गुरु द्वारा दी गई) वाणी (अर्थात् नाम) भी सच्ची है। अतः (गुरु के) शब्द द्वारा ही (निर्मल हरि से) मिलाप होता है ॥१॥

भाई रे भगति हीणु
काहे जगि आइआ ॥
पूरे गुर की सेवा न कीनी
बिरथा जनमु गवाइआ ॥१॥रहाउ॥

अरे भाई! भक्तिहीन जीव जगत में (जन्म लेकर) क्यों आया है? क्योंकि (उसने) पूर्ण गुरु की (पूर्ण) सेवा (भक्ति) नही की है, इस प्रकार (अपना अमूल्य मनुष्य) जन्म व्यर्थ ही खो दिया है ॥१॥ रहाउ ॥

आपे हरि जगजीवनु दाता
आपे बखसि मिलाए ॥

(मनुष्य देही की सफलता उसके ही हाथ में है क्योंकि) हरि स्वय ही जगत का जीवन और दाता है। 'वह' स्वयं ही (भक्ति की) बख्शिश करके (जीव को अपने साथ) मिलाता है। इन बेचारे

जीअ जंत ए किआ वेचारे
किआ को आखि सुणाए ॥
गुरमुखि आपे दे वडिआई
आपे सेव कराए ॥२॥

जीव-जन्तुओं के हाथ में क्या है (भाव कुछ करने योग्य नहीं क्योंकि जीव असमर्थ हैं) और वे हरि के बिना और किसे क्या हाल सुना सकते हैं। (हरि) स्वयं ही गुरु के द्वारा गुरमुख को (नाम की) बड़ाई देता है और स्वयं ही गुरु की सेवा कराता है ॥२॥

देखि कुटंबु मोहि लोभाणा
चलदिआ नालि न जाई ॥
सतिगुरु सेवि गुणनिधानु पाइआ
तिस की कीम न पाई ॥
प्रभु सखा हरि जीउ मेरा
अंते होइ सखाई ॥३॥

(भक्तिहीन जीव अपने) बाल परिवारादि (कुटुंब) को देख कर मोह से आसक्त हो रहा है, पर हाय मृत्यु के समय (वह परिवार) साथ नही चलता। किन्तु, जो सत्गुरु की सेवा करके गुणो के भण्डार (हरि) को प्राप्त करता है उस (भक्त) की कीमत आंकी नही जा सकती। (अब भक्त को यह विश्वास हो जाता है कि) हरि प्रभु जी मेरा मित्र है और अन्त मे भी 'वही' सहायक होगा ॥३॥

पेईअड़ै जगजीवनु दाता
मनमुखि पति गवाई ॥
बिनु सतिगुर को मगु न जाणै
अंधे ठउर न काई ॥
हरि सुखदाता मनि नही वसिआ
अंति गइआ पछुताई ॥४॥

अपने मन के पीछे चलने वाले मनमुख ने इस पीहर घर मे जगत के जीवन दाता (प्रभु) को भूलकर (अपनी) प्रतिष्ठा गवाई है। बिना सत्गुरु के कोई भी (भक्ति) मार्ग को नही जानता। ज्ञानहीन (जीव) को कोई भी, कही भी (विश्राम के लिये) ठिकाना नही मिलता। हरि जो सुखों का दाता है (मनमुख के) मन मे नही निवास करता, इसलिये वह अन्तकाल मे धर्मराजा के पास जाकर दण्ड मिलने पर) पच्छाताप् करता है (कि मैंने मनुष्य देही प्राप्त करके हरि-भक्ति क्यो नही की) ॥४॥

पेईअड़ै जगजीवनु दाता
गुरमति मंनि वसाइआ ॥
अनदिनु भगति करहि दिनु राती
हउमै मोहु चुकाइआ ॥
जिसु सिउ राता तैसो होवै
सचे सचि समाइआ ॥५॥

गुरु की मति लेकर गुरमुख इस पीहर घर में जगत के जीवन-दाता (प्रभु) को मन मे बसा लेता है। वह रात-दिन निरन्तर हरि की भक्ति करता है और (भक्ति के प्रभाव से) अहकार मोह (आदि विकारो) को निवृत कर देता है। (गुरमुख) सत्य के द्वारा सत्य स्वरूप परमेश्वर मे समा जाता है (क्योकि यह ऐसा नियम है कि) जो जिसके साथ प्रेम करता है, वह उस जैसा ही हो जाता है ॥५॥

आपे नदरि करे भाउ लाए
गुरसबदी बीचारि ॥
सतिगुरु सेविऐ सहजु ऊपजै
हउमै त्रिसना मारि ॥

(हरि) आप ही जब कृपा-दृष्टि करता है तो गुरु-शब्द के विचार द्वारा उसमे प्रेम (लौ) लगा देता है। सत्गुरु की सेवा करने से (आत्म) ज्ञान उत्पन्न होता है जो (ज्ञान के प्रताप से) अहकार और तृष्णा को मार देता है। जिसने गुरु के सच्चे उपदेश को

हरि गुणदाता सद मनि वसै
सचु रखिआ उरधारि ॥६॥

हृदय में धारण करके रखा है, उसके मन में ही गुणों के दाता हरि आकर सदा निवास करता है ॥६॥

प्रभु मेरा सदा निरमला
मनि निरमलि पाइआ जाइ ॥
नामु निधानु हरि मनि वसै
हउमै दुखु सभु जाइ ॥
सतिगुरि सबदु सुणाइआ
हउ सद बलिहारै जाउ ॥७॥

मेरा प्रभु सदा निर्मल है और निर्मल मन के द्वारा ही प्राप्त होता है। जिसके मन में हरि का नाम रूपी भण्डार निवास करता है, उसका अहंकार और (उससे उत्पन्न) सभी दुःख दूर हो जाते हैं किन्तु (यह तभी सम्भव है) जब सत्गुरु अपना उपदेश (शब्द) सुनाता है। मैं (ऐसे परम कृपालु गुरु पर) सर्वदा बलिहारी जाता हूँ ॥७॥

आपणै मनि चिति कहै कहाए
बिनु गुर आपु न जाई ॥
हरि जीउ भगति वछलु सुखदाता
करि किरपा मंनि वसाई ॥
नानक सोभा सुरति देइ प्रभु आपे
गुरमुखि दे वडिआई ॥८॥१॥१८॥

(यह जीव) चाहे अपने मन और चित्त से कहता रहे और (अपने शिष्यों से भी) कहाता रहे कि मैंने अहंकार का त्याग किया है, किन्तु (सत्य तो यह है कि) बिना गुरु (की कृपा) के अहकार दूर नही होता। हे नानक ! जो भी जीव गुरु कृपा से अहकार का त्याग करता हैं उसके (गुरमुख) मन में हरि (प्रभु) जी जो भक्तो को प्यार और रक्षा करने वाला है तथा सुखों का भी दाता है, 'वह' अपनी कृपा करके मन मे आकर निवास करता है एवंस्वय ही आत्म ज्ञान देकर (इस लोक में) शोभा और (परलोक में) बड़ाई देता है ॥८॥१॥१८॥

सिरी रागु महला ३॥

हउमै करम कमावदे
जमडंडु लगै तिन आइ ॥
जि सतिगुरु सेवनि से उबरे
हरि सेती लिव लाइ ॥१॥

जो अहंकार के कर्म करते हैं, उनको यम का दण्ड लगता है, किन्तु जो सत्गुरु की सेवा करके हरि परमात्मा से स्नेह लगाते हैं वे (केवल) (यम से) बच जाते हैं ॥१॥

मन रे गुरमुखि नामु धिआइ ॥
धुरि पूरबि करतै लिखिआ
तिना गुरमति नामि समाइ ॥१॥
रहाउ॥

अरे मन ! गुरु की शरण मे आकर नाम का ध्यान (स्मरण) कर। (सृष्टि) कर्त्ता (विधाता) ने (जिनके मस्तक पर) पूर्व से (संयोग की लेख) लिखा है, वे ही गुरु की मति लेकर नाम के द्वारा (नामी हरि में) समाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

बिनु सतिगुर परतीति न आवई
नामि न लागो भाउ ॥
सुपनै सुखु न पावई
दुख महि सवै समाइ ॥२॥

बिना सत्गुरु के (हरि में) विश्वास नहीं आता और न ही 'उसके' नाम में प्रेम लगता है। (प्रेम के बिना) स्वप्न में भी (जीव को) सुख नही प्राप्त होता (भाव जाग्रतावस्था में तो सुख नही किन्तु स्वप्न मे भी नही)। इस प्रकार (नाम विहीन) जीव दु:ख में ही (नित्य) सोता है और दु:ख में ही मर कर (चौरासी लाख योनियों में) समा जाता है ॥२॥

जे ह रि हरि कीजै बहुतु लोचीऐ
किरतु न मेटिआ जाइ ॥
हरि का भाणा भगती मंनिआ
से भगत पए दरि थाइ ॥३॥

यदि (मन्दभागी) जीव को हरि हरि (जपने) के लिए (उपदेश भी) किया जाये और उसके लिए (सुख की भी) बहुत इच्छा की जाये, तो भी उसका पूर्व-जन्म का किया हुआ कर्म मिट नही सकता। जिन्होने हरि की आज्ञा भक्ति-भावना से स्वीकार की है, वे ही (सच्चे) भक्त हैं और (हरि के) द्वार पर स्वीकृत होते हैं ॥३॥

गुरु सबदु दिड़ावै रंग सिउ
बिनु किरपा लइआ न जाइ ॥
जे सउ अंम्रित नीरीऐ
भी बिखु फलु लागै धाइ ॥४॥

गुरु (दयालु होने के कारण) प्रेम से शब्द (उपदेश) दृढ़ कराता है. (किन्तु प्रभु की) कृपा के बिना (गुरु उपदेश को) ग्रहण नहीं किया जा सकता। जैसे (मन्दभागी) जीव, यदि सैकड़ो बार भी (निम्बादि वृक्ष को) अमृत (जल से) सिचन करे तो फिर-फिर (धाई) कड़वा विषवत फल (ही) लगता है। (भाव यदि मनमुख को अमृत रूपी शब्द बार-बार दिया भी जाये तो भी मन्द भाग के कारण विषवत् पदार्थों की ओर ही प्रवृत्त होता है) ॥४॥

से जन सचे निरमले
जिन सतिगुर नालि पिआरु ॥
सतिगुर का भाणा कमावदे
बिखु हउमै तजि विकारु ॥५॥

वे (ही) दास सच्चे और मल से रहित (निर्मल) हैं जिन्हो का सत्गुरु के साथ प्यार है। (प्यार के कारण) वे सत्गुरु की आज्ञा की कमाई करते हैं अथवा वे ही कर्म करते हैं जो सत्गुरु को अच्छे लगते हैं, इस प्रकार वे विषवत् अहंकार तथा (कामादि) विकारो का त्याग करते हैं ॥५॥

मनहठि कितै उपाइ न छुटीऐ
सिम्रिति सासत्र सोधहु जाइ ॥
मिलि संगति साधू उबरे
गुर का सबदु कमाइ ॥६॥

(गुरु शब्द की कमाई के बिना अपने) मन के हठ से किये हुए जितने भी कर्म हैं, जीव (कदाचित अहंकार व अन्य विकारों से) छुटकारा नही पा सकता, चाहे स्मृति (ग्रन्थों) और शास्त्रों को जाकर पढो और विचारो। (भाग्यशाली जीव) गुरु के शब्द की कमाई करके और साधु-संगति के मिलाप से ही (इन विकारो से) बचता है (अन्य किसी उपाय से नही।) ॥६॥

हरि का नामु निधानु है
जिसु अंतु न पारावारु ॥
गुरमुखि सेई सोहदे
जिन किरपा करे करतारु ॥७॥

हरि का नाम (सर्वनिधियों का) भण्डार है, जिसका न अन्त है और न ही पारावार है (अर्थात अपरिमित है)। गुरु की शरण में आकर गुरमुख ही (नाम रूपी भण्डार को प्राप्त करके) शोभा प्राप्त करते हैं जिन पर कर्त्तार (प्रभु) (अपनी) कृपा करता है ॥७॥

नानक दाता एकु है
दूजा अउरु न कोइ ॥
गुर परसादी पाईऐ
करमि परापति होइ ॥८॥२॥१९॥

हे नानक ! 'वह' कर्त्तार (ही) एक (मात्र) देने वाला दाता है, 'उसके' बिना और दूसरा (दाता) कोई नही। किन्तु ('वह' प्रभु दाता और 'उसका' नाम भण्डार) गुरु की कृपा-प्रसन्नता से ही प्राप्त होता है और गुर प्रसाद भी (उत्तम) कर्मों से प्राप्त होता है ॥८॥२॥१९॥

सिरीराग महला ३॥

पंखी बिरखि सुहावड़ा
सचु चुगै गुर भाइ ॥
हरि रसु पीवै सहजि रहै
उडै न आवै जाइ ॥
निज घरि वासा पाइआ
हरि हरि नामि समाइ ॥१॥

(शरीर रूपी एक) सुन्दर वृक्ष है (जिस वृक्ष पर एक गुरमुख रूपी पक्षी) बैठा हुआ है, जो गुरु-प्रेम मे आकर अथवा गुरु की दया से सत्य रूपी चोग को चुगता है वह (गुरमुख) हरि रस को पान करके (आत्म) ज्ञान मे ही निवास करता है और शरीर त्याग करके कही पर आता-जाता नही (अर्थात जन्मता-मरता नही)। अपने स्वरूप (निज घरि) में निवास प्राप्त करता है और हरि, (हाँ) हरिनाम मे समा जाता है ॥१॥

मन रे गुर की कार कमाइ ॥
गुर कै भाणै जे चलहि
ता अनदिनु राचहि हरि नाइ ॥१॥
रहाउ॥

अरे मन ! (तू भी गुरमुख रूपी पक्षी की तरह) गुरु के द्वारा (बताये हुए) कार्य की कमाई कर। यदि गुरु की आज्ञा में चलेगा तो रात-दिन हरिनाम मे अनुरक्त रहेगा ॥१॥ रहाउ ॥

पंखी बिरख सुहावड़े
ऊडहि चहु दिसि जाहि ॥
जेता ऊडहि दुख घणे
नित दाझहि तै बिललाहि ॥
बिनु गुर महलु न जापई
ना अंम्रित फल पाहि ॥२॥

(अनेक शरीर रूपी) सुन्दर वृक्ष हैं उन वृक्षों पर बैठे हुए मन-मुख रूपी) पक्षी (संकल्प-विकल्पों करके) चारो दिशाओ से उड़-उड कर जाते हैं, जितना अधिक भटकते हैं उतना अधिक दु:ख प्राप्त करते हैं और तृष्णा अग्नि करके नित्य दग्ध होते हुए विलाप एवं पश्चाताप करते हैं। बिना गुरु के (अपने) स्वरूप को नहीं जानते और (स्वरूप के अज्ञान से आत्मानन्द रूपी) अमृत फल को भी प्राप्त नही करते ॥२॥

गुरमुखि बिरखु हरीआवला
साचैं सहजि सुभाइ ॥
साखा तीनि निवारिआ
एक सबदि लिव लाइ ॥
अंम्रित फलु हरि एकु है
आपे देइ खवाइ ॥३॥

गुरमुख (जीव रूपी पक्षी) सच्चे परमात्मा में स्वाभाविक (सहज सुभाइ) लगे रहने से (अर्थात् उसके साथ तद्रूप होने से वे आप भी) ब्रह्म रूप एक हरा-भरा वृक्ष हो जाता है। वे एक पर ब्रह्म परमेश्वर मे चितवृति लगा कर (तम, रज, सत् गुणों रूपी) तीन शाखाओ की निवृति करते हैं। (ऐसे गुरमुखो के लिये) आत्म आनन्द रूपी फल हरि का एक नाम प्रभु है जो स्वय ही हरि उनको खिलाता है ॥३॥

मनमुख ऊभे सुकि गए
ना फलु तिना छाउ ॥
तिना पासि न बैसीऐ
ओना घरु न गिराउ ॥
कटीअहि तै नित जालीअहि
ओना सबदु न नाउ ॥४॥

मनमुख खडे सूखे वृक्ष के समान हैं जिनमे न (हरि-प्राप्ति रूपी) फल है और न (परोपकार की हरियाली रूपी) छाया ही है। कदाचित ऐसे मनमुख के पास नही बैठना चाहिए क्योंकि उनको न तो अपना स्वरूप (घर) (का ज्ञान) है और न ही सत्संग रूपी ठिकाना (गिराउ) है। वे (सूखे लकड के समान) नित्य काटे और जलाये जाते हैं(अर्थात् माता की गर्भ की अग्नि मे जलकर दु खी होते हैं), क्योकि वे न (गुरु के) शब्द को (ग्रहण करते हैं) और न नाम ही जपते हैं ॥४॥

हुकमे करम कमावणे
पइऐ फिरति फिराउ ॥
हुकमे दरसनु देखणा
जह भेजहि तह जाउ ॥
हुकमे हरि हरि मनि वसै
हुकमे सचि समाउ ॥५॥

(प्रश्न · हे गुरु ! ऐसा क्यो होता है ? उत्तर ।) (ईश्वर के) हुक्म से जीव कर्मों को करते हैं और पूर्व-लिखित कर्मानुसार ही जीव (योनियो मे) भटकते हैं। 'उसके' हुक्म से ही जीव (गुरुमुख बनकर) 'उसका' दर्शन (सभी मे) देखते हैं। इसलिए (हरि उन्हे) जहाँ पर भी भेजता है, (प्रसन्नता से) जाते है। 'उसके' हुकम से ही हरि, हरि (नाम) मन में बसता है और 'उसके' हुकम से ही जीव सत्य स्वरूप परमात्मा मे समा जाते हैं ॥५॥

हुकमु न जाणहि बपुड़े
भूले फिरहि गवार ॥
मन हठि करम कमावदे
नित नित होहि खुआरु ॥
अंतरि सांति न आवई
ना सचि लगै पिआरु ॥६॥

(मनमुख) बिचारे (परमात्मा के) हुक्म को जानते ही नही, इसलिए वे मूढ़ भूलकर (अज्ञान के कारण) भटकते रहते हैं। वे (अपने) मन के हठ से (अनेक) कर्म करते हैं, इसलिये नित्य प्रति-दिन दुःखी होते हैं। उनके अन्तर्गत शान्ति नहीं आती और न उनका सत्य स्वरूप के साथ ही प्यार ही लगता है ॥६॥

गुरमुखीआ मुह सोहणे
गुर कै हेत पिआरि ॥

गुरु के सम्मुख रहने वाले गुरमुखों के मुख सुन्दर और शोभा-यमान होते है, क्योंकि वे गुरु के साथ अत्यन्त प्यार करते हैं। वे

सची भगती सचि रते
दरि सचै सचिआर ॥
आए से परवाणु है
सभ कुल का करहि उधारु ॥७॥

सच्ची (प्रेम।) भक्ति से सत्य स्वरूप ईश्वर में अनुरक्त रहते हैं और सच्ची दरबार में वे सच्चे (माने जाते) हैं। उनका (इस संसार में) आना सफल है, वे अपने समस्त कुल का उद्धार करते हैं ॥७॥

सभ नदरी करम कमावदे
नदरी बाहरि न कोइ ॥
जैसी नदरि करि देखै सचा
तैसा ही को होइ ॥
नानक नामि वडाईआ
करमि परापति होइ ॥८॥३॥२०॥

सभी (गुरमुख और मनमुख) जीव परमात्मा की दृष्टि में कर्म करते हैं, 'उसकी' दृष्टि से बाहर कोई भी जीव नहीं है। सत्य स्वरूप परमात्मा (जीवों के कर्मानुसार) जैसी-जैसी दृष्टि करके देखता है वैसा ही हो जाता है। (अर्थात जिस पर ईश्वर कृपा-दृष्टि करता है, वह भक्ति की ओर प्रवृत होता है, किन्तु जिस पर 'उसकी' कृपा-दृष्टि नही होती, वह बन्धन-युक्त कर्म करता है।) हे नानक! (हरि) नाम (जपने) से (मुक्ति रूपी) बडाइ मिलती हैं, किन्तु नाम (हरि) कृपा से ही प्राप्त होता है ॥८॥३॥२०॥

सिरी रागु महला ३॥

गुरमुखि नामु धिआईऐ
मनमुखि बूझ न पाइ ॥
गुरमुखि सदा मुख ऊजले
हरि वसिआ मनि आइ ॥
सहजे ही सुखु पाईऐ
सहजे रहै समाइ ॥१॥

गुरु की शरण आने पर ही गुरमुख (हरि) नाम का ध्यान (चिन्तन) करते हैं, किन्तु अपने मन के पीछे चलने वाले मनमुखो को (नाम जपने की) समझ ही प्राप्त नही होती। (नाम जपने से) गुरुमुखो के मन मे हरि (आप) आकर निवास करता है, इस प्रकार उनका (प्रज्जवलित) मुख सदा (इस लोक में और परलोक में) उज्जवल होता है। (बिना किसी हठ के कारण) वे सहजावस्था प्राप्त करके (आत्मिक) सुख प्राप्त करते हैं और स्वाभाविक ही हरि मे समाहित (अभेद) रहते हैं ॥१॥

भाई रे दासनिदासा होइ ॥
गुर की सेवा गुरभगति है
विरला पाए कोइ ॥१॥रहाउ॥

अरे भाई! (परमात्मा के) दासों का दास बन। गुरु की सेवा (का अर्थ) है गुरु की भक्ति करनी (अर्थात् गुरु के प्रति प्रेम-भावना वाली सेवा)। किन्तु (कलियुग मे) कोई विरला ही गुरु-सेवा अर्थात् (गुरु भक्ति) प्राप्त करता है ॥१॥ रहाउ ॥

सदा सुहागु सुहागणी
जे चलहि सतिगुर भाइ ॥
सदा पिरु निहचलु पाईऐ
ना ओहु मरै न जाइ ॥

(प्रश्न 'गुरु सेवा, 'गुरु-भक्ति' किसे कहते हैं? उत्तर) जो (जीव-स्त्री) सत्गुरु की आज्ञा मे चलती है वह (ही) (प्रभु) पति की सदैव सुहागिन बन जाती हैं क्योकि उसने नित्य, अविनाशी निश्चल परमेश्वर-पति को प्राप्त किया है, जो न मरता है और न (अपनी सुहागिन को छोड़कर कही) जाता है। (गुरु के) शब्द द्वारा जो

सबदि मिली ना वीछुड़ै
पिर कै अंकि समाइ ॥२॥

(सुहागिन पति-परमेश्वर के साथ मिली है कदाचित वह (गुरु. 'उससे') नहीं बिछुडती क्योंकि प्रियतम की (प्रिय) गोद में समा जाती है ॥२॥

हरि निरमलु अति ऊजला
बिनु गुर पाइआ न जाइ ॥
पाठु पड़ै ना बूझई
भेखी भरमि भुलाइ ॥
गुरमती हरि सदा पाइआ
रसना हरि रसु समाइ ॥३॥

हरि (परमात्मा) जो शुद्ध स्वरूप (निर्मल) और अत्यन्त स्वच्छ व उज्जवल है, बिना गुरु (भक्ति) के प्राप्त नहीं होता। (पोथियों और शास्त्रादि ग्रन्थो के केवल) पाठ पढ़ने मात्र से ज्ञान नही (प्राप्त) होता, भेषधारी भी भ्रम मे भूलकर (आत्म-ज्ञान से वंचित) है। (केवल) गुरु की मति से अविनाशी हरि प्राप्त होता है क्योंकि (गुरमुखो की) रसना (सदा) हरि-रस मे समाहित रहती है ॥३॥

माइआ मोहु चुकाइआ
गुरमती सहजि सुभाइ ॥
बिनु सबदै जगु दुखीआ फिरै
मनमुखा नो गई खाइ ॥
सबदे नामु धिआईऐ
सबदे सचि समाइ ॥४॥

(गुरुमुखो ने) गुरु की मति लेकर माया के मोह (अज्ञानता) को स्वाभाविक ही समाप्त किया है। बिना (गुरु) शब्द के (समस्त जगत (माया-मोह के कारण) दुःखी (भटकता) फिरता है क्योंकि मनमुखो को तो माया खा ही जा रही है। (गुरु) शब्द द्वारा ही नाम का ध्यान करना चाहिये क्योंकि शब्द द्वारा ही (जीव) सत्य स्वरूप परमात्मा मे समा जाता है ॥४॥

माइआ भूले सिध फिरहि
समाधि न लगै सुभाइ ॥
तीने लोअ विआपत है
अधिक रही लपटाइ ॥
बिनु गुर मुकति न पाइऐ
ना दुबिधा माइआ जाइ ॥५॥

सिद्ध पुरुष भी माया मे भूलकर भटकते हैं इसलिये (माया के चक्र के कारण) उनकी स्वाभाविक (निर्विकल्प) समाधि नही लगती। यद्यपि तीनो लोको मे (माया) व्याप्त है, तथापि (मनमुखो को) (विशेष रूप से) अधिक लपेट कर रखा है (अर्थात् मनमुख माया में अधिक आसक्त रहते हैं)। बिना गुरु (की कृपा) के न माया से मुक्ति प्राप्त होती है और न ही द्वैत-भाव, जो माया के कारण है, दूर होता है ॥५॥

माइआ किस नो आखीऐ
किआ माइआ करम कमाइ ॥
दुखि सुखि एहु जीउ बधु है
हउमै करम कमाइ ॥
बिनु सबदै भरमु न चूकई
ना विचहु हउमै जाइ ॥६॥

(प्रश्न. हे गुरुदेव !, माया किसको कहते हैं अर्थात् माया का क्या (स्वरूप है) और माया क्या काम करती है ? (उत्तर. जिस कारण) यह जीव दु:ख-सुख में बन्धा हुआ है (वह माया है और विनश्वर शरीर को ही सत्य मानता यह भ्रान्ति ही माया का स्वरूप है और माया के वशीभूत होने के कारण ही जीव) अहंकार के कर्म कर रहा है। बिना (गुरु) शब्द के भ्रम के कारण न जीव की भटकना समाप्त होती है और न ही अन्दर से अहंकार ही निवृत होती हैं ॥६॥

बिनु प्रीती भगति न होवई
बिनु सबदै थाइ न पाइ ॥
सबदे हउमै मारीऐ
माइआ का भ्रमु जाइ ॥
नामु पदारथु पाईऐ
गुरमुखि सहजि सुभाइ ॥७॥

बिना प्रेम के भक्ति नही होती (न ही बिना गुरु-भक्ति के गुरु उपदेश ही मिलता है) और न ही बिना (गुरु) शब्द के (निजात्म) स्वरूप की प्राप्ति होती है। (हाँ) (गुरु के) शब्द द्वारा ही अहकार मरता (नष्ट होता) है और माया का भ्रम (भी) दूर हो जाता है। (अतः हे भाई !) गुरु की शरण में आने से अर्थात् गुरमुख बनने से स्वाभाविक ही नाम का (अमूल्य) पदार्थ प्राप्त होता है ॥७॥

बिनु गुर गुण न जापनी
बिनु गुण भगति न होइ ॥
भगति वछलु हरि मनि वसिआ
सहजि मिलिआ प्रभु सोइ ॥
नानक सबदे हरि सालाहीऐ
करमि परापति होइ ॥८॥४॥२१॥

बिना गुरु (की शरण आने) के (भक्ति के श्रेष्ठ) गुणों को नहीं जाना जा सकता इसलिये गुणो के बिना भक्ति नही हो सकती। केवल अनन्य भक्ति से भक्त के मन मे भक्तो के प्रिय और रक्षक हरि आकर निवास करता है, इस प्रकार स्वाभाविक ही वह भक्त वत्सल प्रभु मिल जाता है। हे नानक ! गुरु शब्द के द्वारा ही हरि की स्तुति करनी चाहिये, किन्तु स्मरण रहे कि (गुरु सेवा और गुरु भक्ति भी) उसके पूर्व-जन्म के पुण्य कर्म से ही प्राप्त होती है ॥८॥४॥२१॥

सिरी रागु महला ३॥

माइआ मोह मेरै प्रभि कीना
आपे भरमि भुलाए ॥
मनमुखि करम करहि नही बूझहि
बिरथा जनमु गवाए ॥
गुरबाणी इसु जग महि चानणु
करमि वसै मनि आए ॥१॥

(जीव के पूर्व कर्मानुसार) माया का मोह मेरे प्रभु ने स्वय (उत्पन्न) किया है और स्वयं ही (जीवों को माया के) भ्रम में (डाल कर) भुला दिया है। मनमुख (माया के) कर्म करते हैं किन्तु (उसके परिणाम को) नही समझते, इसलिये (अज्ञानता मे दुलर्भ मनुष्य) जन्म व्यर्थ ही गँवा देते हैं (किन्तु माया के मोह को नष्ट भी प्रभु स्वय ही करता है क्योंकि)। गुरु की वाणी इस जगत मे प्रकाश (रूपी दीपक) है किन्तु उत्तम भाग्य से या प्रभु कृपा से (ही) (गुरमुखो के) मन मे निवास करता है ॥१॥

मन रे नामु जपहु सुखु होइ ॥
गुरु पूरा सालाहीऐ
सहजि मिलै प्रभु सोइ ॥१॥रहाउ॥

अरे मन ! (प्रभु) नाम का जाप (चिन्तन) करो, तो सुख (प्राप्त) होगा। (नाम सुख फल प्राप्त करने के लिये अपने) पूर्ण गुरु की स्तुति करो, (नाम जपने से) वह प्रभु स्वाभाविक ही मिल जाता है ॥१॥ रहाउ ॥

भरमु गइआ भउ भागिआ
हरि चरणी चितु लाइ ॥

(हरि-नाम द्वारा) जब हरि के चरणो मे चित्त लग जाता है तो (माया जन्य) भ्रम दूर हो जाता है और (जन्म-मरण का) भय भी भाग जाता है। (अतः) गुरु की शरण में आकर (गुरु के

गुरमुखि सबदु कमाईऐ
हरि वसै मनि आइ ॥
घरि महलि सचि समाईऐ
जमु कालु न सकै खाइ ॥२॥

शब्द की (जीवन में) कमाई (साधना) करनी चाहिये तो ही हरि मन में आकर निवास करता है। फिर अपने अन्त: करण (घर) में ही प्राप्त सत्य स्वरूप में (गुरमुख) समा जाता है, तब उसे (गुरमुख को) यमकाल खा नहीं सकता (भाव काल अपने घेरे में नहीं रख सकता) ॥२॥

नामा छीबा कबीरु जोलाहा
पूरे गुर ते गति पाई ।
ब्रहम के बेते सबदु पछाणहि
हउमै जाति गवाई ॥
सुरि नर तिन की बाणी गावहि
कोई न मेटै भाई ॥३॥

(हे गुरुदेव ! क्या ऐसे पारग्रामी उत्तम पुरुष हुए हैं जिन्होंने गृहस्थ में ही सत्य स्वरूप को प्राप्त किया हो ? उत्तर) (भक्त) नामदेव था छीपा और भक्त कबीर था जुलाहा जिन्होंने (अपने) पूर्ण गुरु (ज्ञानदेव और रामानन्द से नाम लेकर) गति (मुक्ति) प्राप्त की । वे ब्रह्म को जानने वाले—ब्रह्मवेता (होने के कारण सर्व व्यापक) ब्रह्म (शब्द) को पहचानते थे इस प्रकार उन्होंने अहंकार को मूल से नाश कर दिया । देवता और मनुष्य भी उनकी वाणी को गाते हैं (प्रमाणि मानते) हैं और उनकी वाणी को कोई भी मिटा नहीं सकता (अर्थात् अनन्त है उनकी वाणी) ॥३॥

दैत पुतु करम धरम किछु संजम
न पड़ै दूजा भाउ न जाणै ॥
सतिगुरु भेटिऐ निरमलु होआ
अनदिनु नामु वखाणै ॥
एको पड़ै एको नाउ बूझै
दूजा अवरु न जाणै ॥४॥

(फिर देखो) (हरणाखस) दैत्य पुत्र (भक्त प्रहलाद) धर्म शास्त्र में (प्रतिपादित यज्ञ व्रत आदि) कर्मों को और धर्म सयमादि को पढा हुआ नहीं था, फिर भी परमेश्वर के बिना वह और किसी को नहीं प्यार करता था अथवा द्वैत भाव को तो तिल मात्र नहीं जानता था । अपने सत्गुरु (नारद मुनि) के मिलाप से निर्मल होकर रात-दिन हरिनाम का उचारण करता रहता था। वह एक ईश्वर के नाम को (बार-बार) पढ़ता था, उसी (एक नाम को (मुक्ति दाता) समझता था और नाम के अतिरिक्त अन्य वस्तु को कुछ नहीं समझता था ॥४॥

खटु दरसन जोगी संनिआसी
बिनु गुर भरमि भुलाए ॥
सतिगुरु सेवहि ता गति मिति पावहि
हरि जीउ मंनि वसाए ॥
सची बाणी सिउ चितु लागै
आवणु जाणु रहाए ॥५॥

बिना गुरु की शरण आए छ: भेष धारण करने वाले—योगी, जङ्गम सन्यासी, जैन, वैरागी, बौद्ध भी भ्रम में भूले हुए हैं। (पूर्वोक्त षट्-भेष में से जो भी अपने) सत्गुरु की सेवा करके हरि जी को मन में बसायेगा, वह मुक्ति को प्राप्त कर लेगा । गुरु उपदेश रूपी सच्ची वाणी से जब जीव का चित्त लग जाता है, तब उसका आना-जाना (अर्थात् वह जन्म-मरण से) रहित हो जाता है ॥५॥

पंडित पड़ि पड़ि वादु वखाणहि
बिनु गुर भरमि भुलाए ॥
लख चउरासीह फेरु पइआ
बिनु सबदै मुकति न पाए ॥
जा नाउ चेतै ता गति पाए
जा सतिगुरु मेलि मिलाए ॥६॥

बिना गुरु (शब्द) के भ्रम में भूले हुए पंडित (लोग) भी षट्-शास्त्रों को पढ-पढ़कर व्यर्थ का वादविवाद (झगड़े) करते हैं और चौरासी लाख योनियों के चक्र में जाकर पडते हैं क्योंकि (गुरु के) शब्द की कमाई के बिना मुक्ति को नही प्राप्त होते। (हाँ) यदि वह पडिण्त (परमात्मा के) नाम का चिन्तन करे तो मुक्ति प्राप्त कर सकता है, किन्तु जब (परमात्मा स्वयं अपनी कृपा द्वारा) सत्गुरु से मेल मिलाता है (तब हरि-नाम का चिन्तन और भक्ति होती है) ॥६॥

सत संगति महि नामु हरि उपजै
जा सतिगुरु मिलै सुभाए ॥
मनु तनु अरपी आप गवाई
चला सतिगुर भाए ॥
सद बलिहारी गुरु अपुने विटहु
जि हरि सेती चितु लाइ ॥७॥

सत्संगति मे हरि नाम की उत्पत्तिहोती है (अर्थात् नाम प्राप्त होता है) जब सत्गुरु हमारे में अच्छा भाव देखकर आकर मिलता है। अत. हमें चाहिए कि मन और तन (अपने गुरु प्रति) समर्पण कर देवे और अहम् भाव को भी दूर करें तथा सत्गुरु की आज्ञानुसार चलें। हमे अपने सत्गुरु पर सदैव बलिहारी जाना चाहिए जो हमारा चित्त हरि के साथ लगाता है ॥७॥

सो ब्राहमणु ब्रहमु जो बिंदे
हरि सेती रंगि राता ।
प्रभु निकटि वसै सभना घट अंतरि
गुरमुखि विरलै जाता ॥
नानक नामु मिलै वडिआई
गुर कै सबदि पछाता
॥८॥५॥२२॥

वह ब्राह्मण है जो ब्रह्म को जानता है और हरि (परमात्मा के प्रेम) रंग में अनुरक्त रहता है तथा ऐसा जानो कि प्रभु (हम) सभी जीवों के अति निकट बस रहा है। किन्तु ऐसे ब्राह्मण कोई विरले ही हैं जो गुरु के उपदेश द्वारा ऐसा जानते हैं। हे नानक ! नाम (जपने से) बढाई उसे मिलती है, जिसने गुरु के शब्द द्वारा परमात्मा को पहचाना है ॥८॥५॥२२॥

यथा "कह कबीर जो ब्रह्म बीचारै सो ब्राह्मण कहीअत हमारै ?

सिरी रागु महला ३॥

सहजै नो सभ लोचदी
बिनु गुर पाइआ न जाइ ॥
पड़ि पड़ि पंडित जोतकी
थके भेखी भरमि भुलाइ ॥

सारी (जीव) सृष्टि (मन की शान्ति के लिये त्रिगुणातीत होकर) स्वाभाविक आत्मिक अवस्था (सहजावस्था) चाहती (तरसती) है, किन्तु बिना गुरु के यह (सहजावस्था) प्राप्त नही होती। पंडित (धर्म-ग्रंथ) पढ-पढकर, ज्योतिषी (शुभ-महुर्त) देख-देख कर थक गये हैं तथा बहुभेषी (भी) अनेक भेष धारण कर करके भ्रम में भूले हुए हैं (क्योंकि अपने आप किसी भी उपाय से 'सहजावस्था' प्राप्त नहीं होती)। जिनपर परमात्मा)

गुर भेटे सहजु पाइआ
आपणी किरपा करे रजाइ ॥१॥

अपनी मर्जी से कृपा करता है, वह (जीव) गुरु को मिलकर (नाम जप कर गुरु की प्रसन्नता से) सहजावस्था प्राप्त करता है ॥१॥

भाई रे गुर बिनु सहजु न होइ ॥
सबदै ही ते सहजु ऊपजै
हरि पाइआ सचु सोइ ॥१॥रहाउ॥

अरे भाई ! गुरु (के शब्द की कमाई) के बिना (जीवात्मा) शान्त और संयत होकर वास्तविक रूप में स्थित नहीं होती (सहजावस्था) गुरु के शब्द की कमाई से ही सहजावस्था उत्पन्न होती हे, जिस (गुरु ने) सत्य स्वरूप हरि को प्राप्त किया है ॥१॥ रहाउ॥

सहजे गाविआ थाइ पवै
बिनु सहजै कथनी बादि ॥
सहजे ही भगति ऊपजै
सहजि पिआरि बैरागि ॥
सहजै ही ते सुख साति होइ
बिनु सहजै जीवणु बादि ॥२॥

सहज (प्रेम में मग्न होकर निरन्तर हरि यश) गायन ही स्वीकार (सफल) होता है. सहज के बिना (सारी) कथनी व्यर्थ अथवा झगडेवाली हो जाती है। (प्रश्न : भक्ति का स्वरूप क्या है ? उत्तर :) (संसार से) वैराग्य होना और (हरि जी के) प्रेम-मग्न मे निरन्तर सहज प्यार मे रहना ही भक्ति है। यह सहज भक्ति सहज से ही उत्पन्न (प्राप्त) होती है। शान्ति और (आत्मिक)सुख भी भक्तो को सहज से ही होता है। (हाँ) सहज के बिना (मनुष्य की सारा) जीवन (ही) व्यर्थ है ॥२॥

सहजि सालाही सदा सदा
सहजि समाधि लगाइ ॥
सहजे ही गुण ऊचरै
भगति करे लिव लाए ॥
सबदे ही हरि मनि वसै
रसना हरि रसु खाइ ॥३॥

(भक्त) सहज में सदा सर्वदा स्तुति योग्य परमात्मा की स्तुति करते हैं और सहज मे ही समाधि लगाते हैं। (आठ ही प्रहर) सहज में ही प्रभु के गुणों का उच्चारण करते हैं और (गुणानुवाद) प्यार के साथ (भक्त) (अपने प्यारे की) भक्ति करता है। (गुरु के) शब्द द्वारा जिसके मन मे हरि का निवास है, उसी की रसना हरि के रस का पान करती है।।३॥

सहजे कालु विडारिआ
सच सरणाई पाइ ॥
सहजे हरिनामु मनि वसिआ
सची कार कमाइ ॥
से वडभागी जिनी पाइआ
सहजे रहे समाइ ॥४॥

(भक्त जनों ने) सत्य स्वरूप परमात्मा की शरण को ग्रहण करके सहज ही काल को मार दिया है अथवा दूर कर दिया है। (कैसे ?) (परमात्मा को) सच्ची (भक्ति की) कमाई की तो सहज ही हरिनाम मन में बस गया। वे (जीव) भाग्यशाली है जिन्होंने सहजावस्था प्राप्त की है, अब वे सहज ही परमात्मा में समाहित (लिवहीन) रहते हैं ॥४॥

दूजै विचि सहजु न ऊपजै
माइआ दूजै भाइ ॥
मनमुख करम कमावदे
हउमै जलै जलाइ ॥
जंमणु मरणु न चूकई
फिरि फिर आवै जाइ ॥५॥

(कालकूट और क्रोध में बडो अन्तर के जान।) [illegible] माया में लिवलीन रहने से सहजावस्था उत्पन्न नहीं होती क्योंकि माया द्वैत भावना उत्पन्न करती है। मनमुख अहंकार के कर्म करता है इसलिये वे स्वयं तो (अहंकार रूपी अग्नि में) जलते हैं औरों को भी जलाते हैं। ऐसे अहंकार ग्रस्त मनमुखों का जन्म-मरण निवृत नही होता और वे फिर-फिर (योनियों में) आते और जाते (भाव जन्मते और मरते) हैं ॥५॥

त्रिहु गुणा विचि सहजि न पाईऐ
त्रै गुण भरमि भुलाइ ॥
पड़ीऐ गुणीऐ किआ कथीऐ
जा मुंढहु घुथा जाइ ॥
चउथे पद महि सहजु है
गुरमुखि पलै पाइ ॥६॥

(सत् रज् तम्) तीन गुणों में (लगा हुआ) जीव सहजावस्था प्राप्त नही करता क्योंकि तीन गुण (जीव को) भ्रम में फसा कर (सहज पदवी से) भुला कर रखते हैं। ऐसे पढ़ने, विचार करने अथवा कथन करने से क्या लाभ, यदि जीव मूल कारण (परमेश्वर) से (माया के द्वारा) उखाडा गया है। त्रिगुणातीत चौथे पद अर्थात तुरीय पद में ही आत्मिक अलौकिक सुख सहज ही है लेकिन यह (भक्तो वाली अवस्था) गुरु की शरण आने पर ही सम्भव है (गुरु शब्द की कमाई से) ॥६॥

निरगुण नामु निधानु है
सहजे सोझी होइ ॥
गुणवंती सालाहिआ
सचे सची सोई ॥
भुलिआ सहजि मिलाइसी
सबदि मिलावा होइ ॥७॥

निर्गुण परमात्मा का नाम जो निधियों का (अखट) भंडार है, उसकी समझ सहज हो जाती है। जिन गुणीवान जीवों ने (ऐसे निर्गुण परमात्मा की) स्तुति (उसके असख्यनामो के द्वारा) की हैं वे ही सच्चे है और उनकी (जगत मे) शोभा भी सच्ची (अटल) है। (हरि नाम से) भूले हुए जीवों को भी प्रभु सहज द्वारा अपने साथ (अवश्य) मिलाता है (यदि वे गुरु के शब्द की कमाई करें) ॥७॥

बिनु सहजै सभु अंधु है
माइआ मोहु गुबारु ॥
सहजे ही सोझी पई
सचै सबदि अपारि ॥
आपे बखसि मिलाइअनु
पूरे गुर करतारि ॥८॥

बिना सहजावस्था (प्राप्त किये) सारा जगत (अज्ञानता के कारण) अन्धा हो रहा है, (जीवो पर) माया के मोह का [illegible] अन्धकार छाया रहता है। किन्तु सच्चे के अपार शब्द द्वारा सहजावस्था की सूझ-बूझ सहज ही प्राप्त हो जाती है। ([illegible]) पूर्ण गुरु कर्त्तार आप ही (अपनी) कृपा द्वारा मिलन करा देता है ॥८॥

सहजे अदिसटु पछाणीऐ
निरभउ जोति निरंकारु ।।
सभना जीआ का इकु दाता
जोती जोति मिलावणहारु ।।
पूरै सबदि सलाहीऐ
जिसदा अंतु न पारावार ।।९।।

(सहजावस्था प्राप्त होने पर) सहज ही अदृश्य परमेश्वर, जो निर्भय है, ज्योति स्वरूप है और निराकार है, पहचान लिया जाता है। भाव जीव जब अहकार से रहित हो जाता है तो निर्गुण निरंकार प्रभु को भी पहचान लेता है)। सभी जीवों का दाता एक परमात्मा है। 'वह' ज्योति स्वरूप अपनी ज्योति से मिलाने वाला है अर्थात सर्व का प्रकाशक है। (अत) पूर्ण गुरु के शब्द द्वारा (ज्योति स्वरूप परमात्मा की) स्तुति करो जिसके पारावार को कोई अन्त नही अथवा जो समुद्र के समान अनन्त है ।।९।।

गिआनीआ का धनु नामु है
सहजि करहि वापारु ।।
अनदिनु लाहा हरिनामु लैनि
अखुट भरे भंडार ।।
नानक तोटि न आवई
दीए देवणहारि ।।१०।।६।।२३।।

(आत्मिक) ज्ञानियो का (असली) धन नाम ही है और (आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिये) जिज्ञासुओं के साथ सहज (नाम का) व्यापार करते हैं। वे रात-दिन हरिनाम का ही लाभ प्राप्त करते हैं। इस प्रकार उनके हरिनाम धन के भण्डार अटूट भरे रहते हैं। हे नानक ! हरि नाम के भण्डार में कभी भी त्रुटि नही आती क्योंकि देने वाले परिपूर्ण परमात्मा ने पूर्ण ज्ञानवान को पूर्ण नाम का परिपूर्ण भण्डार (स्वय) दिया है ।।१०।।६।।२३।।

सिरी रागु महला ३।।

सतिगुरि मिलिऐ फेरु न पवै
जनम मरण दुखु जाइ ।।
पूरै सबदि सभ सोझी होई
हरि नामै रहै समाइ ।।१।।

सत्गुरु को मिलने से जीव को (चौरासी के) चक्र में भ्रमण नहीं करना पड़ता, इस प्रकार (उसके लिये) जन्म-मरण का दुःख चला जाता है। (सत्गुरु के मिलने पर जिज्ञासु को शब्द प्राप्त होते ही) पूर्ण (गुरु के) शब्द द्वारा सर्व प्रकार की सूझ-बूझ प्राप्त हो जाती है और (उस ज्ञान-प्रकाश के कारण) वह हरि नाम में निमग्न रहता है ।।१।।

मन मेरे सतिगुर सिउ चितु लाइ ।।
निरमलु नामु सद नवतनो
आपि वसै मनि आइ ।।१।।रहाउ।।

हे मेरे मन ! सत्गुरु के साथ चित लगा। चित लगाने से निर्मल नाम जो सर्वदा नूतन रहता है, 'वह' अपने आप मन में आकर निवास करेगा ।।१।। रहाउ ।।

हरि जीउ राखहु अपुनी सरणाई
जिउ राखहि तिउ रहणा ।।
गुर कै सबदि जीवतु मरै
गुरमुखि भवजलु तरणा ।।२।।

हे हरि जी ! मुझे अपनी शरण में रखो, जिस अवस्था में भी रखोगे मैं (प्रसन्न) रहूँगा। गुरु के शब्द (की कमाई) से जो जीवित ही मरता है अर्थात जीते ही मन मार कर चलता है, वह गुरुमुख बनकर ससारसागर से तर जाता है ।।२।।

वडै भागि नाउ पाईऐ
गुरमति सबदि सुहाई ॥
आपे मनि वसिआ प्रभु करता
सहजे रहिआ समाई ॥३॥

बड़े भाग्य से (हरि) नाम प्राप्त होता है और गुरु की मति लेकर (हाँ) गुरु शब्द (की कमाई) से (जीवन-यात्रा) सुशोभित होती है। आप ही प्रभु कर्त्ता परमात्मा मन में आकर निवास करता है, इस प्रकार (मन) सहज में ही समाया रहता है ॥३॥

इकना मनमुखि सबदु न भावै
बंधनि बंधि भवाइआ ।
लख चउरासीह फिरि फिरि आवै
बिरथा जनमु गवाइआ ॥४॥

कई ऐसे (जीव) हैं जो अपने मन के पीछे चलते हैं, उन मनमुखों को (गुरु का) शब्द अच्छा नही लगता, वे (मोह-माया के) बन्धनों में बन्ध कर (जन्म-मरण के चक्र में) भटकाये जाते हैं। वे चौरासी लाख (योनियों) में बार-बार आते (जन्मते और मरते) हैं, इस प्रकार (मनमुखो ने) व्यर्थ ही (अपना अमूल्य मनुष्य) जन्म खो दिया है ॥४॥

भगता मनि आनंदु है
सचै सबदि रंगि राते ॥
अनदिनु गुण गावहि सद निरमल
सहजे नामि समाते ॥५॥

परमात्मा की भक्ति करने वाले भक्तो के मन में (सर्वदा) आनन्द है क्योकि सत्य स्वरूप परमात्मा के (नाम) रग में (गुरु के) शब्द के कारण अनुरक्त रहते हैं। वे रात-दिन परमात्मा के निर्मल गुण सदा गाते हैं, इस प्रकार वे सहज ही नाम मे समाहित रहते हैं ॥५॥

गुरमुखि अंम्रित बाणी बोलहि
सभ आतमरामु पछाणी ॥
एको सेवनि एकु अराधहि
गुरमुखि अकथ कहाणी ॥६॥

गुरुमुख अमृत तुल्य (मीठी एव हितकारी) वाणी बोलते हैं, क्योकि वे सर्व के आत्मा को रामरूप करके पहचानने हैं (अर्थात सर्व को रामरूप समझते हैं)। वे एक अद्वितीय परमात्मा का सेवन करते है, (मन से) एक प्रभु की ही आराधना करते हैं और (जिह्वा से एक हरि की) अकथनीय कहानियाँ कहते हैं अथवा ऐसे गुरमुखो की (जीवन) कथा अकथनीय है ॥६॥

सचा साहिबु सेवीऐ
गुरमुखि वसै मनि आइ ॥
सदा रंगि राते सच सिउ
अपुनी किरपा करे मिलाइ ॥७॥

(अत हे भाई !) गुरु के द्वारा सच्चे साहब परमेश्वर की सेवा करनी चाहिये तब ('वह' सत्य स्वरूप परमात्मा) मन में आकर 'वह' निवास करता है तथा सच्चे (प्रभु) के नाम-रग मे अनुरक्त रहने से 'वह' स्वय कृपा करके अपने साथ मिला लेता है ॥७॥

आपे करे कराए आपे
इकना सुतिआ देइ जगाइ ॥

(किन्तु यह सारा खेल 'उसी' एक परमात्मा के हाथ में है जो) आप (ही सब कुछ) करता है और आप ही (जीव से) कराता है। (कोई भी) जीव अपने किये हुए का अभिमान न करे (क्योकि मेरा कृपालु प्रभु) कई (साधन हीन अविद्या में सोये

आपे मेलि मिलाइअा
नानक सबदि समाइ ॥८॥७॥२४॥

हुए जीवों को गुरु का ज्ञान) देकर (माया से) जगा देता है। 'वह' आप ही (गुरु के साथ) मेल मिलता है, हे नानक! आप ही शब्द में (अपने सत्य स्वरूप में) जिज्ञासु को समा (मिला) लेता है ॥८॥ ७॥२४॥

सिरी रागु महला ३॥

सतिगुरि सेविऐ मनु निरमला
भए पवितु सरीर ॥
मनि आनंद सदा सुखु पाइआ
भेटिआ गहिर गंभीरु ॥
सची संगति बैसणा
सचि नामि मनु धीर ॥१॥

सत्गुरु की सेवा करने से मन निर्मल होता है और शरीर भी पवित्र (शुद्ध) हो जाता है। इस प्रकार निर्मल शुद्ध मन से सदा आनन्द होता है और सर्वदा सुख प्राप्त होता है, क्योंकि आनन्द स्वरूप परमात्मा जो अगाध, शान्त, निश्चल रूप है, प्राप्त हो जाता है। यह प्राप्ति सत्पुरुषों की सच्ची संगति में बैठने से सत्य नाम के उपदेश द्वारा मन धैर्य वाला हो जाता है ॥१॥

मन रे सतिगुर सेवि निसंगु ॥
सतिगुरु सेविऐ हरि मनि वसै
लगै न मैलु पतंगु ॥१॥रहाउ॥

अरे मन! निशङ्क अथवा निर्भय होकर सत्गुरु की सेवा कर। सत्गुरु की सेवा करने से हरि मन में आकर निवास करता है और फिर इस मन को किंचित मात्र भी अहंकार की मैल नहीं लगती अथवा पाप रूपी कीडा ही नहीं लगता ॥१॥ रहाउ॥

सचै सबदि पति ऊपजै
सचे सचा नाउ ॥
जिनी हउमै मारि पछाणिआ
हउ तिन बलिहारै जाउ ॥
मनमुख सचु न जाणनी
तिन ठउर न कतहू थाउ ॥२॥

सत्य स्वरूप ईश्वर का नाम सच्चा है, जो सच्चे गुरु के सच्चे उपदेश से प्राप्त होता है और जिस नाम की प्राप्ति से लोक-परलोक मे प्रतिष्ठा उत्पन्न होती है। जिन्होंने अहंकार को मार कर सत्य स्वरूप ईश्वर को पहचान लिया है, मैं उनके ऊपर बलिहारी जाता हूँ। किन्तु मनमुख (गुरु उपदेश के बिना) सत्य स्वरूप ईश्वर को नही जानते इसलिये उन्हे कही भी ठहरने को स्थान नहीं मिलता ॥२॥

सचु खाणा सचु पैनणा
सचे ही विचि वासु ॥
सदा सचा सालाहणा
सचै सबदि निवासु ॥
सभु आतमरामु पछाणिआ
गुरमती निज घरि वासु ॥३॥

गुरमुखों का खाना पवित्र होता है, पहनना भी पवित्र होता है (भाव—वे झूठ, कपट व पाप का जीवन व्यतीत नहीं करते)। वे सत्य स्वरूप परमात्मा में ही निवास करते हैं (अर्थात् परमात्मा के ध्यान में ही सदा रहते हैं), वे सदा सर्वदा 'उसकी' स्तुति करते हैं और सत्य स्वरूप ब्रह्म में निवास करते हैं। वे सब आत्माओं में रमे हुएं ब्रह्म को ही पहचानते हैं और फिर गुरु के उपदेश द्वारा उनका आत्म स्वरूप में निवास होता है ॥३॥

सचु वेखणु सचु बोलणा
तनु मनु सचा होइ ।।
सची साखी उपदेसु सचु
सचे सची सोइ ।।
जिनी सचु विसारिआ
से दुखीए चले रोइ ।।४।।

गुरमुखों का देखना पवित्र है अर्थात् जहाँ दृष्टि डालते हैं श्रेष्ठ ही देखते हैं तथा उनका बोलना भी सत्य यथार्थ ही होता है तथा मन्द कर्मों से रहित होने के कारण उनका शरीर पवित्र है और काम, क्रोधादि विकारों के त्यागने से उनका मन भी पवित्र है। उनकी शिक्षा सच्ची होती है और उपदेश भी सत्य स्वरूप का ही करते है इसलिये उन सत्य पुरुषो की शोभा भी सच्ची होती है किन्तु जिन्होंने (मनमुखों ने) सच्चे नाम को भुला दिया है, वे दु:खी होकर संसार से रीते हुए चले जाते हैं ।।४।।

सतिगुरु जिनी न सेविओ
से कितु आए संसारि ।।
जम दरि बधे मारीअहि
कूक न सुणे पूकार ।।
बिरथा जनमु गवाइआ
मरि जंमहि वारो वार ।।५।।

जिन मनमुखो ने सत्गुरु की सेवा नही की है वे किस लिए ससार मे आए हैं? (अर्थात् उनका जन्म लेना व्यर्थ है)। वे यम के द्वार पर (जजीरों से) बांधकर मारे (पीटे) जाते हैं, उनकी पुकार दु:ख वेदना को (वहाँ पर) कोई भी नही सुनता। वे (अपना मनुष्य) जन्म व्यर्थ ही खो देते हैं, इस प्रकार वे बार-बार मर-कर जन्मते रहते हैं ।।५।।

एहु जगु जलता देखि कै
भजि पए सतिगुर सरणा ।।
सतगुरि सचु दिड़ाइआ
सदा सचि संजमि रहणा ।।
सतिगुर सचा है बोहिथा
सबदे भवजलु तरणा ।।६।।

(गुरमुख) इस जगत (के लोकों) को (तृष्णा रूपी) अग्नि मे जलता हुआ देखकर (अपने बचाव के) दौड कर सत्गुरु की शरण मे जाकर पडते हैं। तब सत्गुरु (शरणगत जिज्ञासुओं को) सच्चा उपदेश दृढ़ कराता है (हाँ) सदा सत्य संभाषण एवं सयम नियम में रहने की शिक्षा देता है सत्गुरु सच्चा जहाज है और (गुरु के) उपदेश द्वारा (गुरमुख)ससार-सागर से तर जाते है। ।।६।।

लख चउरासीह फिरदे रहे
बिनु सतिगुर मुकति न होई ।।
पड़ि पड़ि पंडित मोनी थके
दूजै भाइ पति खोई ।।
सतिगुरि सबदि सुणाइआ
बिनु सचे अवरु न कोई ।।७।।

(मनमुख) चौरासी लाख योनियों में (ही) घूमते रहते हैं, किन्तु सत्गुरु के उपदेश बिना उनकी (योनियो से) मुक्ति नहीं होती। (गुरु उपदेश के बिना) पंडित (नाना ग्रन्थों को) पढ-पढ कर भी और मौन व्रतधारी (मौन धारण करते-करते) थक गए क्योंकि उन्होंने द्वैत भाव के कारण (अपनी) प्रतिष्ठा (भी) खो दी। (प्रतिष्ठा उन्होने अपनी बनाई है) जिन्हो को सत्गुरु ने (यह) शब्द सुनाया है कि बिना सत्य परमात्मा के (संसार में) और कोई (शरण योग्य और तारण योग्य) नहीं है ।।७।।

जो सचै लाए से सचि लगे
नित सची कार करंनि ॥
तिना निज घरि वासा पाइआ
सचै महलि रहंनि ॥
नानक भगत सुखीए सदा
सचै नामि रचंनि ॥८॥१७॥
८॥२५॥

जिन को (सतगुरु ने उपदेश देकर) सन्मार्ग में लगाया है वे ही सत्य (नाम) में लगे हैं और वे नित्य (ससार में रहकर) सच्ची कृत (रूपी भक्ति) करते हैं। वे अपने स्व-स्वरूप में निवास प्राप्त कर लेते हैं और सत्य स्वरूप ईश्वर में स्थित रहते हैं। हे नानक! भक्त (जन) सर्वदा सुखी (एवं प्रसन्न) रहते हैं क्योंकि वे सत्य स्वरूप परमात्मा के सच्चे नाम में सदा अनुरक्त रहते हैं ॥८॥१७॥८॥२५॥

सिरी रागु महला ५॥

जा कउ मुसकलु अति बणै
ढोई कोइ न देइ ॥
लागू होए दुसमना
साक भि भजि खले ॥
सभो भजै आसरा
चुकै सभु असराउ ॥
चिति आवै ओसु पारब्रहमु
लगै न तती वाउ ॥१॥

जिस जीव को अति कठिनाई उत्पन्न हो जाये और उसे आश्रय देने वाला भी कोई न हो, उसके (मारने के लिये भी) शत्रु पीछे पड जाये और (आपत्ति काल मे) उसके साथ सबन्धी सहायता करने वाले भी उससे भाग जायें, सभी आश्रय टूट जाये और सभी आश्रय देने वाले सहायक (मित्र-बन्धुजन) जवाब दे जायें अर्थात् किसी प्रकार का भी आश्रय न रहे किन्तु ऐसे विपत्ति ग्रस्त जीव को आपत्ति काल मे भी यदि परब्रह्म परमेश्वर स्मरण हो आता है, तो उसको किसी प्रकार का भी दु ख कष्ट स्पर्श नही कर सकता ॥१॥

साहिबु निताणिआ का ताणु ॥
आइ न जाई थिरु सदा
गुर सबदी सचु जाणु ॥१॥रहाउ॥

(मेरा) साहब निर्बलों का बल है। 'वह' (अविनाशी प्रभु) न आता है न जाता है (अर्थात् जन्म मरण से रहित है) और सर्वदा स्थिर है, इस बात को गुरु के उपदेश द्वारा सत्य जान (अर्थात् निश्चय कर) ॥१॥ रहाउ ॥

जे को होवै दुबला
नंग भुख की पीर ॥
दमड़ा पलै ना पवै
ना को देवै धीर ॥
सुआरथु सुआउ न को करे
ना किछु होवै काजु ॥

यदि कोई (जीव शरीर से अति) दुर्बल है, (वस्त्र के अभाव से) नगा और (भोजनादि के अभाव से) भूख के कारण पीडित (दु खी) है। (किसी कार्य चलाने के लिये किसी धनी से उसे) रुपया भी प्राप्त न हो अर्थात् उधार भी न मिल सकता हो और न (ही विपत्ति काल में उसे) कोई धैर्य देने वाला भी हो, उसका स्वार्थ (उसका) प्रयोजन भी कोई सिद्ध न करता हो और न ही किसी भी तरह किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त हो, किन्तु (ऐसे

चिति आवै ओसु पारब्रहमु
ता निहचलु होवै राजु ॥२॥

भयानक विपत्तिकाल मे दु.खी एवं निराश जीव को यदि) पारब्रह्म परमात्मा स्मरण हो आता है तो उसे (ध्रु वादि भक्त के समान), निश्चल राज्य की प्राप्ति हो जाती है ॥२॥

जा कउ चिंता बहुत बहुत
देही बिआपै रोगु ॥
ग्रिसति कुटंबि पलेटिआ
कदे हरखु कदे सोगु ॥
गउणु करे चहु कुंट का
घड़ी न बैसणु सोइ ॥
चिति आवै ओसु पारब्रहमु
तनु मनु सीतलु होइ ॥३॥

जिस (जीव) को (हर समय) अत्यन्त चिन्ता (व्याप्त) हो और शरीर (अनेक) बीमारियों से ग्रस्त हो, गृहस्थ (आश्रम) मे हाँ) कुटुम्ब के जाल मे (सदा) फँसा होने के कारण कभी हर्ष और कभी शोक को प्राप्त होता हो तथा (अर्थोपार्जन एवं प्राप्त कठिनाईयों को दूर करने के लिये) चारो दिशाओं में यदि भ्रमण करे एव (विश्राम करने के लिये उसे) घडी भर भी बैठने (या सोने) को स्थान न हो, ऐसे रोगी और चिन्तातुर जीव को भी यदि परब्रह्म परमात्मा स्मरण आता है, तो उसका तन और मन (अग्नि व्याधि एवं उपाधि से मुक्त होकर) शीतल हो जाता है ॥३॥

कामि करोधि मोहि वसि कीआ
किरपन लोभि पिआरु ॥
चारे किलविख उनि अघ कीए
होआ असुर संघारु ॥
पोथी गीत कवित किछु
कदे न करनि धरिआ ॥
चिति आवै ओसु पारब्रहमु
ता निमख सिमरत तरिआ ॥४॥

जिस (जिस) को काम, क्रोध, मोहादि (विकारो) ने अपने अधीन कर रखा है और (धनी होने पर भी जो धन के) लोभ से कृपण हो रहा है, तथा (सुरापान, गुरु प्राप्ति गमन, स्वर्ण की चोरी और गाय, ब्राह्मण की हत्या इन) चार उग्र पाप को और (मित्र द्रोह विश्वासघात आदि अन्य) पापी भी किये हों और असुरो के समान (जीवो का निर्दयता पूर्वक जिसने) सहार भी किया हो, (धर्म की ओर से इतना प्रमादि हो कि कभी कोई) धर्म पुस्तक (हरियश का बोधक कोई) गीत व (हरि भक्तो की महिमा मे उत्पत्ति) (कविताएँ भी) श्रवण नकी हो, ऐसे (कृपण, महापापी एव धर्म की ओर से प्रमादी जीव को यदि) पारब्रह्म परमात्मा स्मरण हो आता है तो एक क्षण भर के स्मरण से (अजामिल के समान ससार-सागर से) तर जाता है ॥४॥

सासत सिंम्रिति बेद चारि
मुखागर बिचरे ॥
तपे तपीसर जोगीआ
तीरथि गवनु करे ॥
खटु करमा ते दुगुणे
पूजा करता नाइ ॥

यदि (कोई) छ. शास्त्र, (सताईस) स्मृतियाँ, (चार) वेद कण्ठस्थ करके (कोई विद्वान) उच्चारण करता हो अथवा विचारता (भी) हो, तपस्वियो मे (शिरोमणी) तपस्वी हो और योगियों में (महान योगी) हो तथा अनेक तीर्थों की भी यात्रा करता हो, (षटकर्म ये है—अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना इनमे छ. कर्म और मिलने से) द्वादश (हो जाते हैं (यथा स्नान जप, हवन, देव पूजा, तीर्थ यात्रा और तप) कर्मों को भी करता हो तथा स्नान करके (देवी देवताओं की) पूजा भी

रंगु न लगी पारब्रहम
ता सरपर नरके जाइ ॥५॥

करता हो, (पठन, पाठन करने कराने वाले विद्वान एवं तपस्वी के मन में) यदि परब्रह्म परमात्मा (के नाम) का (प्रेम) रंग नहीं लगा तो अवश्य नरको में जायेगा (अर्थात् जन्म-मरण के दुःख को प्राप्त होगा) ॥५॥

राज मिलक सिकदारिआ
रस भोगन बिसथार ॥
बाग सुहावे सोहणे
चले हुकमु अफार ॥
रंग तमासे बहुबिधी
चाइ लगि रहिआ ॥
चिति न आइओ पारब्रहमु
ता सरप की जूनि गइआ ॥६॥

यदि (किसी के पास) राज्य शासन हो, भूमि आदि की जागीरे हों, (हर जगह उसकी) सरदारियाँ (बनी) हों और विषयो-विलासता को भोगने की बहुलता हो अथवा अनेक रसों का भोजन करता हो, सुन्दर बगीचे (जो अत्यन्त मनहोर प्रतीत होते हो) तथा अमोघ आज्ञा भी चलती हो, जो नाना प्रकार के आनन्दमयी तमाशों को देखने मे उत्साहित रहता हो, इस प्रकार के (नाना भोगो को भोगने वाले तथा प्रजा पर अप्रतिहत शासन करने वाले जीवों को) यदि परब्रह्म परमात्मा स्मरण नहीं हो आता है तो वह सर्प की योनि में (अवश्य) जायेगा ॥६॥

बहुत धनाढि अचारवंतु
सोभा निरमल रीति ॥
मात पिता सुत भाईआ
साजन संगि परीति ॥
लसकर तरकसबंद बंद
जीउ जीउ सगली कीत ॥
चिति ना आइओ पारब्रहमु
ता खड़ि रसातलि दीत ॥७॥

यदि (कोई) बहुत धन्वान, सदाचारी, हो शोभावान एवं निर्मल मर्यादा वाला हो तथा माता, पिता, पुत्र भाई, सज्जन (मित्रादि सभी के) साथ प्रीति हो। तरकश में तीरो को रखने वाली सनद्ध बद्धसेना जिसके आगे जी हजूर जी (सरकार इत्यादि शब्द उच्चारण करने) वन्दना (सलामी) करती हो, (ऐसे धन, सदाचारी एवं सनद्ध बद्ध सेना की सलामी लेने वाले जीव को भी) यदि परब्रह्म परमेश्वर का स्मरण नहीं हो आता है तो उसे (यमदूत) ले जाकर नरक मे फेंक देंवे ॥७॥

काइआ रोगु न छिद्रु किछु
ना किछु काड़ा सोगु ॥
मिरतु न आवी चिति तिसु
अहिनिसि भोगै भोगु ॥
सभ किछु कीतोनु आपणा
जीइ न संक धरिआ ॥

यदि (किसी जीव के) शरीर में (कोई) रोग नही और न ही कोई अंग-भंग अथवा अवगुण है और न ही कोई जलन चिन्ता है तथा न ही कोई शोक संताप ही है, तथा जिसने चित्त से मृत्यु को भुलाकर दिन-रात भोगों को ही भोगता है। जिसने (भुज बल से) सब को अपना अनुगामी बना लिया हो और जिसके अन्तर्गत (तिल मात्र भी) शका न रखी हो, (रात-दिन भोगों को भोगने वाला तथा भुजबल एवं चतुराइयों से सभी को अपने

जिनि न असइओ पारब्रहमु
जम कंकर वसि परिआ ॥८॥

अधीन करने वाले जीव को यदि) परब्रह्म परमात्मा स्मरण नहीं हो जाता है तो वह यमदूतों के (अवश्य) अधीन होगा ॥८॥

किरपा करे जिसु पारब्रहमु
होवै साधू संगु ॥
जिउ जिउ ओहु वधाईऐ
तिउ तिउ हरि सिउ रंगु ॥
दुहा सिरिआ का खसमु आपि
अवरु न दूजा थाउ ॥
सतिगुर तुठै पाइआ
नानक सचा नाउ ॥९॥१॥२६॥

(सिद्धांत।) जिसपर (भाग्यशाली जीव पर) परब्रह्म परमेश्वर कृपा करता है, उसे साधु-संगति प्राप्त होती है। जैसे-जैसे वह साधु की संगति विशेष रूप से करेगा वैसे-वैसे हरि का (प्रेम) रंग बढ़ता जाता है। 'वह' परब्रह्म परमेश्वर दोनों लोक पर-लोक का स्वामी है, 'उसके' बिना और कोई दूसरा ठिकाना (सुख का) नहीं। हे नानक! (ऐसे परब्रह्म परमेश्वर का) सच्चा नाम सतगुरु की प्रबलता से ही प्राप्त होता है ॥९॥१॥२६॥

सिरी रागु महला ५ घरु ५॥

जानउ नही भावै कवन बाता
मन खोजि मारगु ॥१॥रहाउ।

मैं नहीं जानता कि कौन-सी बात (प्रभु को) अच्छी लगती है। हे (मेरे) मन! तू (वह) मार्ग ढूंढ (जिस पर चलने से प्रभु प्रसन्न हो जाय और 'उसकी' प्राप्ति हो) ॥१॥ रहाउ ॥

धिआनी धिआनु लावहि ॥
गिआनी गिआनु कमावहि ॥
प्रभु किनही जाता ॥१॥

ध्यानी (प्रभु को प्राप्त करने के लिए) ध्यान लगाते हैं और ज्ञानी ज्ञान को सिद्ध करते हैं। किन्तु प्रभु परमेश्वर को किसी एक आध (विरले) ने (ही यथार्थ रूप से) जाना है ॥१॥

भगउती रहत जुगता ॥
जोगी कहत मुकता ॥
तपसी तपहि राता ॥२॥

भगवत-उपासक (वैष्णव-एकादशीव्रत, तुलसी माला एवं तिलक इत्यादि) युक्ति में रहते हैं। योगी कहते हैं कि हम (योग क्रिया द्वारा) मुक्त हैं। तपस्वी तप में ही मस्त (मग्न) है अर्थात् वे भी समझते हैं कि उनकी तपस्या ही प्रभु प्राप्ति के लिये पर्याप्त है ॥२॥

मोनी मोनि धारी ॥
सनिआसी ब्रहमचारी ॥
उदासी उदासि राता ॥३॥

मौनी मौन धारण करने में (प्रभु प्राप्ति) समझते हैं। संन्यासी केवल संन्यास को और ब्रह्मचारी एक ब्रह्मचर्य को ही मुख्य लिये बैठे हैं तथा उदासी उदासीनता में ही मस्त होकर समझते हैं कि हम (मुक्त) हैं ॥३॥

भगति नवै परकारा ॥
पंडितु वेदु पुकारा ॥
गिरसती गिरसति धरमाता ॥४॥

(भक्त) भगवान की भक्ति नौ प्रकार से करते हैं. यथा (१) श्रवण (२) कीर्तन (३) स्मरण (४) पाद सेवन (५) अर्चन (६) बन्दना (७) सख्य (८) दास्य और (९) सात्म निवेदन (समर्पण) इस नवधा भक्ति (को ही प्रभु प्राप्ति का साधन मानते हैं), पंडित ऊँचे स्वर से वेद पाठ करने को तथा गृहस्थी गृहस्थ धर्म को पालने में ही मस्त होकर समझते हैं कि प्रभु प्राप्ति के ये ही साधन हैं ॥४॥

इक सबदी बहुरूपि अवधूता ॥
कापड़ी कउते जागूता ॥
इकि तीरथि नाता ॥५॥

एक शब्द अर्थात् अलख-अलख कहने वाले (योगी), बहुरूप धारण करने वाले (राम व कृष्ण लीला करने वाले भावुक), नग्न रहने वाले (अवधूत), कषाय-गेरुवा वस्त्र धारण करने वाले (कापडी सम्प्रदाय के साधु), लोगों को स्वांग दिखा कर प्रसन्न करने वाले (कउते) अथवा कवि जन, रात्रि के जागरण करने वाले तथा कोई तीर्थ स्नान करने में ही (मस्त होकर समझते हैं कि प्रभु प्राप्ति के ये ही साधन है) ॥५॥

निरहार वरती आपरसा ॥
इकि लूकि न देवहि दरसा ॥
इकि मन ही गिआता ॥६॥

कोई (निर्जला एकादशी जैसे) निराहार व्रत करने वाले, (हीन जाति के साथ) स्पर्श न करने वाले, कोई गुफा के अन्दर छिपकर बैठते हैं और किसी को भी दर्शन नहीं देते हैं और एक ऐसे हैं जो अपने मन में ही स्वयमेव ज्ञानी बने फिरते हैं ॥६॥

घाटि न किनही कहाइआ ॥
सभ कहते है पाइआ
जिसु मेले सो भगता ॥७॥

इस प्रकार अपने आपको कोई भी न्यून (छोटा) नही कहलाता। सभी कहते कि हमने (अपने साधनो से प्रभु) प्राप्त किया है। (वास्तविक बात तो यह है कि) जिस (अधिकारी जीव) को गुरु के उपदेश द्वारा प्रभु अपने साथ मिला लेता है वही भक्त है (अर्थात उसी ने ही प्रभु प्राप्त किया है) ॥७॥

सगल उकति उपावा ॥
तिआगी सरनि पावा ॥
नानकु गुरचरणि पराता ॥८॥२॥
२७॥

हे नानक! सर्व युक्तियो अथवा स्यानप और उपायो का परित्याग करके (प्रभु की) शरण में पडा हूँ, (क्योंकि) गुरु के चरणो को ही (प्रभु प्राप्ति का साधन पहचानता हूँ अर्थात प्रभु की शरण, गुरु की शरण ही प्रभु प्राप्ति का सरल उपाय है) ॥८॥२॥२७॥

सिरी रागु महला १ घरु ३॥

जोगी अंदरि जोगीआ तूं भोगी अंदरि भोगीआ ॥ तेरा अंतु न पाइआ सुरगि मछि पइआलि जीउ ॥१॥	(हे प्रभु !) योगियो में (तू आप ही) योगी (होकर व्याप्त) है और भोगियो में भोगी (कितनी विचित्र है) तेरी लीला स्वर्ग (वासी देवता) मृत्यु लोक (वासी मनुष्य और) पाताल (वासी नागादि) किसी ने भी तेरा अन्त नही प्राप्त किया है ॥१॥
हउ वारी हउ वारणै कुरबाणु तेरे नाव नो ॥१॥रहाउ॥	तुम पर मैं बलिहारी हूँ, जीव (भी मेरा) बलिहार है तथा कुर्बान है, (आपकी प्राप्ति के साधन) तेरे नाम पर ॥१॥ रहाउ॥
तुधु ससारु उपाइआ ॥ सिरे सिरि धधे लाइआ ॥ वेखहि कीता आपणा करि कुदरति पासा ढालि जीउ॥२॥	(हे कर्त्ता पुरुष !) तू ने (ही) संसार को उत्पन्न किया है और प्रत्येक जीव को (कर्मानुसार) धन्धो मे लगा दिया है। तू आप ही कुदरत की रचना करके जीवो को चौपड की नरदो की तरह च ला रहे हो तथा अपने रचित तमाशे को देख रहे हो ॥२॥
परगटि पाहारै जापदा ॥ सभु नावै नो परतापदा ॥ सतिगुर बाझु न पाइओ सभ मोही माइआ जालि जीउ ॥३॥	(हरि) नाम का इतना प्रताप है (कि नाम जपने वाले भक्त ब्रह्मज्ञानी) पर्वतो पर भी प्रकट हो जाते हैं अथवा इस विस्तृत ससार मे तू प्रकट ही प्रतीत हो रहा है। सत्गुरु के बिना (नाम) प्राप्त नही होता क्योकि शेष सम्पूर्ण सृष्टि मोहित होकर माया के जाल मे फँस रही है ॥३॥
सतिगुर कउ बलि जाईऐ ॥ जितु मिलिऐ परमगति पाईऐ ॥ सुरि नरि मुनि जन लोचदे सो सतिगुरि दीआ बुझाइ जीउ ॥४॥	(अत हे भाई !)सत्गुरु पर बलिहार जाओ जिनके मिलने से परम पद (मोक्ष) प्राप्त होता है। जिस (नाम को) देवता एव मनुष्य तथा मननशील मुनि जन चाहते हैं, उस (नाम) की जानकारी सत्गुरु ने मुझे दे दी ॥४॥
सतसगति कैसी जाणीऐ ॥ जिथै एको नामु वखाणीऐ ॥ एको नामु हुकमु है नानक सतिगुरि दीआ बुझाइ जीउ ॥५॥	(प्रश्न. (सत्संगति (के स्वरूप) को किस प्रकार जाना जाये ? अथवा किस समूह को सत्सगति कहा जाये ? (उत्तर.) जहाँ एक मात्र केवल नाम की (ही महिमा) बखान होती है अथवा जहाँ पर एक प्रभु के नाम की व्याख्या हो वही सत्संग है। हे नानक ! एक नाम जपना ही (ईश्वरीय) हुक्म है (जीवन की सफलता के लिये,) ऐसा (मुझे) सत्गुरु ने समझा दिया है ॥५॥

इहु जगतु भरमि भुलाइआ ॥
आपहु तुधु खुआइआ ॥
परतापु लगा दोहागणी
भाग जिना के नाहि जीउ ॥६॥

(प्रश्न . सभी जीव सत्संग में क्यों नहीं आते हैं ? मेरे गुरुदेव परमात्मा के समक्ष होकर यह उत्तर देते हैं। हे प्रभु !) यह (सारा) जगत भ्रम में भूला हुआ है और (जीवों के कर्मानुसार) आप ने (ही) इसे (अपने से) भुलाया है। अत्यन्त दुःख (परतापु) लगा है उन दुहागिन (जीव स्त्रियों) को, जिन्हों के भाग्य में (अपने मिलने का) लेख नही (लिखा हुआ) है ॥६॥

दोहागणी किआ नीसाणीआ ।
खसमहु घुथीआ फिरहि निमाणीआ ॥
मैले वेस तिना कामनी
दुखी रैणि विहाइ जीउ ॥७॥

(प्रश्न :) पति से त्यागी हुई दुहागिनियो की क्या निशानियाँ हैं ? उत्तर :) (दुहागिनियाँ वे हैं, जो अपने) पति (परमेश्वर) से विलग होकर मान-विहीन होकर (इधर-उधर) भटकती फिरती हैं। उन (अभागिन) स्त्रियों के वेश मैले होते हैं, (अर्थात कर्म) इससे उनका (जीवन) दु:खों में व्यतीत होता है ॥७॥

सोहागणि किआ करमु कमाइआ ॥
पूरबि लिखिआ फलु पाइआ ॥
नदरि करे कै आपणी
आपे लए मिलाइ जीउ ॥८॥

(प्रश्न :) पति का प्यार सौभाग्यवती स्त्रियों सुहागिनियों को प्राप्त हुआ है, उन्हों ने क्या (शुभ)कर्म किया है ? (उत्तर :) पूर्व (जन्म के अनुसार जो) फल (देना ईश्वर ने) लिखा था वह (फल) प्राप्त किया है। उनके ऊपर अपनी कृपा-दृष्टि करके प्रभु जी आप ही उन्हें अपने साथ मिला लिया है ॥८॥

हुकमु जिना नो मनाइआ
तिन अंतरि सबदु वसाइआ ॥
सहीआ से सोहागणी
जिन सह नालि पिआरु जीउ ॥९॥

हे (प्रभु) जीउ ! जिन (जीव-स्त्रियों से) आप ने अपना हुकम मनवाया है, उन्होंने अन्तर्गत (गुरु का) शब्द धारण किया है। वे ही सहेलियाँ सुहागिनियाँ हैं जिनका पति-परमेश्वर के साथ प्यार है ॥९॥

जिना भाणे का रसु आइआ ॥
तिन विचहु भरमु चुकाइआ ॥
नानक सतिगुरु ऐसा जाणीऐ
जो सभसै लए मिलाइ जीउ ॥१०॥

जिन्हो को (प्रभु जी की) आज्ञापालन का आनन्द प्राप्त हुआ उन्होने अन्दर से भ्रम को दूर कर दिया है। हे नानक ! ऐसे (उत्तम) जीव समझते हैं कि सत्गुरु सभी (अधिकारियों) को प्रभु जी से मिला लेता है ॥१०॥

सतिगुरि मिलिऐ फलु पाइआ ॥
जिनि विचहु अहकरणु चुकाइआ ॥
दुरमति का दुखु कटिआ
भागु बैठा मसतकि आइ जीउ ॥११॥

सत्गुरु को मिलने से (उनको मुक्ति) फल प्राप्त होता हैं, जिन्होंने अपने अन्दर से अहंकार दूर कर दिया है। जब उनके मस्तक में (पूर्व जन्म का) भाग्य आकर उदय होता है, तो उनकी दुर्मति से (प्राप्त होने वाले अनेक प्रकार के) दुःख नष्ट हो जाते हैं ॥११॥

अंम्रितु तेरी बाणीआ ॥
तेरिआ भगता रिदै समाणीआ ॥
सुख सेवा अंदरि रखिऐ
आपणी नदरि करहि निसतारि जीउ
॥१२॥

हे (प्रभु) जीउ ! आपकी वाणी अमर करने वाली है। यह आपके भक्तों के हृदयों में निवास करती है। (परम) सुख को (देने वाली) सेवा (निष्काम भक्ति के) भीतर (छिपा कर) रखा है और अपनी कृपा-दृष्टि से (भक्तो को भक्ति का दान देकर उन्हें भव-सागर से) उद्धार करके (परम सुख) देते हो ॥१२॥

सतिगुरु मिलिआ जाणीऐ ॥
जितु मिलिऐ नामु वखाणीऐ ॥
सतिगुर बाझु न पाइओ
सभ थकी करम कमाइ जीउ ॥१३॥

हे (प्रभु) जीउ ! सत्गुरु के मिलने पर ही (परम तत्व यथार्थ रूप से) जाना जाता है। (सत्गुरु) के मिलने से (जीव) नाम उचारण लग पडता है। सत्गुरु के बिना किसी ने भी (नाम) नही प्राप्त किया, (वस्तुत.) सारी (जीव सृष्टि अनेक प्रकार के) कर्मों को करती थक गई (निराश हो रही) है ॥१३॥

हउ सतिगुर विटहु घुमाइआ ॥
जिनि भ्रमि भुला मारगि पाइआ
नदरि करे जे आपणी
आपे लए रलाइ जीउ ॥१४॥

हे (प्रभु) जीउ ! मैं (अपने) सत्गुरु के ऊपर बलिहारी जाता हूँ, जिसने भ्रम में भूले (जीव) को (भक्ति) मार्ग मे लगा दिया। (गुरु की दया से जब हे प्रभु !) तू कृपा-दृष्टि करता है, तो स्वय अपने साथ मिलाप (अभेद) कर देते हो ॥१४॥

तूं सभना माहि समाइआ ॥
तिनि करतै आपु लुकाइआ ॥
नानक गुरमुखि परगटु होइआ
जा कउ जोति धरी करतारि जीउ
॥१५॥

हे (कर्त्तार) जीउ ! तू सर्व (प्राणियो) में (चाहे) व्याप्त है, किन्तु (तुमने) अपने आप को (मनमुखो से) छिपा लिया है, (अर्थात वे तुम्हारे यथार्थ रूप को नही पहचानते)। हे नानक ! (उन्ही) गुरमुखो के (हृदय) में प्रकट होना है, जिनको (सृष्टि) कर्त्ता ने ज्ञान-दृष्टि प्रदान की है ॥१५॥

आपे खसमि निवाजिआ ॥
जीउ पिंडु दे साजिआ ॥
आपणे सेवक की पैज रखीआ
दुइ कर मसतकि धारि जीउ ॥१६॥

हे (स्वामी) जीउ ! (अपने सेवक को) आप ही ने सन्मानित किया है। जीव (सत्ता) देकर शरीर का निर्माण किया है ॥ दोनो हाथ माथे पर रख कर (अर्थात् अति कृपालु होकर) अपने सेवक की प्रतिज्ञा एव लज्जा की रक्षा तुमने स्वयं की है ॥१६॥

सभि संजम रहे सिआणपा ॥
मेरा प्रभु सभु किछु जाणदा ॥

हे (प्रभु) जीउ ! (आपकी कृपा से) सभी संयम तथा (लौकिक) चतुराईयाँ रह गये हैं (अर्थात मैं अपने आपको अधिक शक्तिशाली नहीं समझता) क्योंकि आप मेरे (गुण-अव-

प्रगट प्रतापु वरताइओ
सभु लोकु करै जैकारु जीउ ॥१७॥

गुणों को) (हाँ) सब कुछ मेरा जानते हो। (आप ने ही बेअन्त) प्रताप संसार में प्रकट कर दिया है, इसलिये सभी लोक जय-जयकार करते हैं ॥ १७॥

मेरे गुण अवगन न बीचारिआ ॥
प्रभि अपणा बिरदु समारिआ ॥
कंठि लाइ कै रखिओनु
लगै न तती वाउ जीउ ॥१८॥

हे (प्रभु) जीउ ! आप ने मेरे (थोड़े से) गुणों का और (अधिक) अवगुणो का कभी विचार नही किया, किन्तु आपने तो अपनी प्रतिज्ञा का ही पालन किया है (अर्थात प्रभु का यह अकृत्रिम धर्म है कि वह सेवक के उद्धार के समय गणना में पड़ कर विलम्ब नही करता)। आपने मुझे कंठ से लगाकर सुरक्षित कर दिया है जिससे मुझे कोई किसी प्रकार की गर्म हवा भी (दुःख बाधा) नही लगती ॥१८॥

मै मनि तनि प्रभू धिआइआ ॥
जीइ इछिअड़ा फलु पाइआ ॥
साह पातिसाह सिरि खसमु तूं
जपि नानक जीवै नाउ जीउ ॥१९॥

हे (प्रभु) जीउ ! मैंने मन और तन से (अर्थात सच्चे हृदय से) आपका ही ध्यान किया है, इसलिये मनोवांछित फल को प्राप्त किया है। आप राजा महाराजाओं के शिरोमणि स्वामी हो, (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब) आपका नाम जपकर ही जी रहा है ॥१९॥

तुधु आपे आपु उपाइआ ॥
दूजा खेलु करि दिखलाइआ ॥
सभु सचो सचु वरतदा
जिसु भावै तिसै बुझाइ जीउ ॥२०॥

हे (प्रभु) जीउ ! आप ने (अपने सकल्प से) इस जगत को उत्पन्न किया है और (मनमुख को) द्वैत भाव वाला खेल (अर्थात माया रूप खेल करके) दिखलाया है। किन्तु (वास्तव में) केवल आप ही सत्य ही सत्य (सर्वत्र परिपूर्ण) व्यापक हो रहे हो और जिसको चाहते हो उसे समझा देते हो (कि सारा जगत ब्रह्म रूप है) ॥२०॥

गुर परसादी पाइआ ॥
तिथै माइआ मोहु चुकाइआ ॥
किरपा करि कै आपणी
आपे लए समाइ जीउ ॥२१॥

जिस (जीव) ने गुरु की कृपा से (परमात्मा की सर्व-व्यापकता का भेद) प्राप्त किया है, उसके (हृदय से प्रभु ने) माया का मोह दूर कर दिया है। प्रभु अपनी ही कृपा करके आप ही उसको अपने साथ मिला लेता है ॥२१॥

गोपी नै गोआलीआ ॥
तुधु आपे गोइ उठालीआ ॥

हे (प्रभु) जीउ ! तू आप ही (गोकुल की) गोपी हो, तू आप ही (यमुना) नदी हो, तू आप ही (गोकुल का) ग्वाला हो। तू आप ही ने (कृष्ण रूप होकर) धरती (गोवर्धन पर्वत) उठाई थी।

हुकमी भांडे साजिआ
तूं आपे भंनि सवारि जीउ ॥२२॥

तूने अपनी आज्ञा से जीव-जन्तु उत्पन्न किये हैं और तुम आप ही उनको संहार मार) फिर (कर्मानुसार) दूसरी योनियाँ देते हो (अर्थात् उत्पत्ति, पालना, संहार तुम स्वयं ही करते हो) ॥२२॥

जिन सतिगुर सिउ चितु लाइआ ॥
तिनी दूजा भाउ चुकाइआ ॥
निरमल जोति तिन प्राणीआ
ओइ चले जनमु सवारि जीउ ॥२३॥

जिन (भाग्यशाली जीवों) ने सत्गुरु के साथ चित्त लगाया है, उन्होंने (अपने हृदय से) द्वैत भाव को नष्ट कर दिया है। उनकी (आत्मिक) ज्योति निर्मल हो गई है, ऐसे जीव अपने मनुष्य जन्म को सार्थक करके यहाँ से चले जाते हैं ॥२३॥

तेरीआ सदा सदा चंगिआईआ ॥
मै राति दिहै वडिआईआ ॥
अणमंगिआ दानु देवणा
कहु नानक सचु समालि जीउ
॥२४॥ १॥

हे (प्रभु) जीउ ! आपकी भलाईयाँ (उपकार) सदा सर्वदा हो रही हैं (अर्थात् हमारे लिये सदा अच्छा ही करते हो) (कृपा करके दान दो कि) रात दिन मैं आपकी महिमा ही गाता रहूँ। आप (पूर्व-कर्मानुसार) बिना माँगे ही (जीवों को) दान देते रहते हो। मैं नानक तेरा सच्चा (नाम) (सदैव) संभालता रहूँ अथवा हे दाता ! मैं सदा (आपको जो) सत्य (स्वरूप हो) स्मरण करता रहूँ (भाव शेष कुछ भी न माँगूँ) ॥२४॥१॥

सिरी रागु महला ५॥

पै पाइ मनाई सोइ जीउ
सतिगुर पुरखि मिलाइआ
तिसु जेवडु अवरु न कोइ जीउ ॥१॥
रहाउ॥

ऐ (प्रभु) जी ! मैं सत्गुरु के चरणो पर पड़कर उन्हें (सनम्र) मानता (प्रसन्न करता) हूँ, क्योंकि सत्गुरु ने मुझे आपके साथ मिलाया है इसलिए उनके समान (संसार में) बडा और कोई नहीं है ॥१॥ रहाउ ॥

गोसाई मिहंडा इठड़ा ॥
अम अबे थावहु मिठड़ा ॥
भैण भाई सभि सजणा
तुधु जेहा नाही कोइ जीउ ॥१॥

(हे भगवान !) तुम पृथ्वी के स्वामी हो और मेरे परम प्यारे हो। आप अम्बा (माता) और अम्बे (पिता) से अधिक मधुर हो। बहिन भाई (मित्र आदि) सभी सम्बन्धी मेरे हैं, किन्तु आप जैसा प्यारा एक भी नहीं है ॥ १ ॥

तेरै हुकमे सावणु आइआ ॥
मै सत का हलु जोआइआ ॥
नाउ बीजण लगा आस करि
हरि बोहल बखस जमाइ जीउ
॥२॥

आपके हुकम से (मनुष्य जन्म रूपी) सावण (का महीना) आया (प्राप्त हुआ) है, मैंने (हृदय रूपी खेती को शुद्ध करने के लिये) सत्य का हल जोडाया है। मैं नाम (जपने का) बीज उसमें बीजने लगा हूँ और यह आशा करता हूँ कि हे हरि ! आपकी कृपा रूपी अन्न का ढेर एकत्रित हो जायेगा ॥२॥

हउ गुर मिलि इकु पछाणदा ॥
दुया कागलु लिखि न जाणदा ॥
हरि इकतै कारै लाइओनु
जिउ भावै तिवै निबाहि जीउ
॥३॥

मैं गुरु से मिलकर केवल एक (आप) को ही पहचानता हूँ। एक सृष्टि कर्ता परमात्मा की महिमा के अतिरिक्त अन्य लेखा मैं लिखना नही जानता अथवा अन्य किसी की भी बातचीत मैं नहीं करता। हे हरि जी ! आप ने मुझे एक (भक्ति रूपी) कार्य में लगाया है; आप को जैसे अच्छा लगेगा वैसे ही पूर्ण करोगे ॥३॥

तुसी भोगिहु भुंचहु भाईहो ॥
गुरि दीबाणि कवाइ पैनाईओ ॥
हउ होआ माहरु पिंड दा
बंनि आदे पंजि सरीक जीउ ॥४॥

हे भाई ! तुम भी (नाम का) आनन्द अनुभव करो और दूसरों को भी आनन्द दो अर्थात् स्वयं नाम जपो और दूसरों से नाम जपाओ। गुरु ने मुझे (सत्संग रूपी) दरबार में (भक्ति रूपी) पौशाक पहनाई है। मैं शरीर रूपी ग्राम का चौधरी (मुखिया) हो गया हूँ और मैंने पाँच विरोधी भाव काम, क्रोधादि विकरों को बान्ध लिया है अर्थात् अपने अधीन कर लिया है ॥४॥

हउ आइआ साम्है तिहडीआ ॥
पंजि किरसाण मुजेरे मिहडिआ ॥
कनु कोई कढि न हंघई
नानक वुठा घुघि गिराउ जीउ ॥५॥

(हे गोस्वामी !) मैं जब से आपकी शरण में आया हूँ, पाँच (ज्ञानेन्द्रिय रूपी) किसान मेरे काश्तकार कर दिये हैं (अर्थात् वश में कर दिये हैं)। अब कोई भी इन्द्रिय कधा निकाल नही सकता अर्थात् सिर नही उठा सकता। हे नानक ! जहाँ चमकादर थे (अर्थात् सूनापन था) अब घना आबाद हुआ है अर्थात् शुभ गुणो की आबादी हुई है ॥५॥

हउ वारी घुमा जावदा ॥
इक साहा तुधु धिआइदा ॥
उजड़ु थेहु वसाइओ
हउ तुध विटहु कुरबाणु जीउ ॥६॥

हे (मेरे भगवत् प्रभु) जोउ ! मैं आपके ऊपर बलिहारी (हो) न्यौछावर जाता हूँ और निरन्तर एक रस आप (शहन) शाह का ही ध्यान करता हूँ। आपने मेरे बरबाद हुए ग्राम को आबाद (हरा-भरा) किया है मैं आप के ऊपर ही कुर्बान होता हूँ ॥६॥

हरि इठै नित धिआइदा ॥
मनि चिंदी सो फलु पाइदा ॥
सभे काज सवारिअनु
लाहीअनु मन की भुख जीउ ॥७॥

हे (मेरे) प्यारे हरि ! मैं नित्य आपका ही ध्यान करता हूँ और मन वांछित फल प्राप्त करता हूँ। ऐ (प्रभु) जी ! आपने सभी मेरे कार्य सिद्ध कर दिये हैं और मेरे मन की (तृष्णा रूपी) भूख दूर कर दी है ॥७॥

मै छडिआ सभो धंधड़ा ॥
गोसाई सेवी सचड़ा ॥

अरे (प्रभु) जी ! मैंने (ससार के) सभी धंधे व्यवहार छोड़ दिये हैं और मैं (केवल) तुम सच्चे गोस्वामी की सेवा करता हूँ। हे हरि ! तुम्हारा नाम नव निधियों का खजाना है, वह मैंने बाँध

लद लिवि नामु निधानु हरि
मै पलै बधा छिकि जीउ ॥८॥

कर अपने (हृदय रूपी) वस्त्र में बांध लिया है (अर्थात् हरिनाम मैंने अन्तःकरण में दृढ़ किया है)। ॥८॥

मै सुखी हूं सुखु पाइआ ॥
गुरि अंतरि सबदु वसाइआ ॥
सतिगुरि पुरखि विखालिआ
मसतकि धरि कै हथु जीउ ॥९॥

अरे (प्रभु) जी ! जब से गुरु ने अन्त.करण में शब्द बसाया है, तब से मैंने सर्व सुखो में शिरोमणी (आत्म) सुख को प्राप्त कर लिया है। सत्गुरु ने मेरे मस्तक पर हाथ रख कर अर्थात् कृपा दृष्टि से परिपूर्ण परमेश्वर दिखा दिया है ॥९॥

मै बधी सचु धरमसाल है ॥
गुर सिखा लहदा भालि कै ॥
पैर धोवा पखा फेरदा
तिसु निवि निवि लगा पाइ जीउ
॥१०॥

मैंने निश्चय करके सत्य की (भक्ति की) धर्मशाला बनाई है (अर्थात् प्रमियो के लिये हरि-मन्दिर की अमृतसर में स्थापना की है अथवा श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी का निर्माण किया है।) गुरु? सिखो की खोज कर रहा हूँ (उस धर्म-केन्द्र मे इकट्ठे करने के लिये)। उन गुरु-सिखो के चरणों को धोता हूँ, उन्हें पंखा करता हूँ तथा नम्रता पूर्वक उनके चरणों में पड़ता हूँ ॥१०॥

सुणि गला गुर पहि आइआ ॥
नामु दानु इसनानु दिड़ाइआ ॥
सभु मुकतु होआ सैसारड़ा
नानक सची बेड़ी चाड़ि जीउ
॥११॥

जन साधारण में गुरु सम्बन्धी बातें सुनकर जो भी गुरु के पास आया, गुरु ने उसे (हरि) नाम (चिन्तन) बाँट कर खाना, (मानसिक और कार्मिक) शुद्धाचरण (की अमूल्य शिक्षा) दृढ़ (निश्चय) कराई। सारा संसार अर्थात् अनेक जीवो को (भक्ति रूपी) सच्ची बेड़ी पर बैठा कर मुक्त किया ॥११॥

सभ स्रिसटि सेवे दिनु राति जीउ ॥
दे कंनु सुणहु अरदासि जीउ ॥
ठोकि वजाइ सभ डिठीआ
तुसि आपे लइअनु छडाइ जीउ
॥१२॥

ऐ (प्रभु) जी ! संपूर्ण सृष्टि दिन रात तुझे सेवन करती है (कृपया मेरी प्रार्थना को) कान देकर श्रवण करो। मैंने जाँच पडताल करके सभी को देख लिया है कि आपकी प्रसन्नता के बिना (बन्धनों से) दूसरा कोई मुक्त नही करवा सकता ॥१२॥

हुणि हुकमु होआ मिहरवाण दा ॥
पै कोई न किसै रञाणदा ॥

बस, उन दयालु प्रभु का हुक्म हो गया है कि कोई किसी पर प्रबल होकर उसे दुःख नहीं दे सकेगा। सारी प्रजा सुखपूर्वक रहेगी। ऐ (प्रभु) जी ! ऐसा विनम्रता वाला राज्य हो गया है।

सभ सुखाली वुठीआ
इहु होआ हलेमी राजु जीउ ॥१३॥

(अर्थात् सुख धर्म एक राज्य है जिसमें एक दूसरे के प्रति प्रेम रखना चाहिए और अपने आप को गरीब मसकीन होकर रहना चाहिए ॥१३॥

झिमि झिमि अंम्रितु वरसदा ॥
बोलाइआ बोली खसम दा ॥
बहु माणु कीआ तुधु उपरे
तूं आपे पाइहि थाइ जीउ ॥१४॥

ऐ (प्रभु) जी ! (आपकी दया से मेरे मुख से नाम की) अमृत-धारा रिम-झिम, रिम झिम बरस रही है। मैं तो स्वामी का बोलाया हुआ ही बोलता हूँ। मैं आपके ऊपर बहुत मान करता हूँ जिससे आपने मुझे सफल किया है, स्वीकृत किया है ॥१४॥

तेरिआ भगता भुख सद तेरीआ ॥
हरि लोचा पूरन मेरीआ ॥
देहु दरसु सुखदातिआ
मै गल विचि लैहु मिलाइ जीउ
॥१५॥

ऐ (प्रभु) जी ! तुम्हारे भक्तों को सदैव (आपके नाम की) भूख है हे हरि ! मेरी यह इच्छा पूर्ण करो (अर्थात् नाम देकर कृतार्थ करो)। हे सुखो के दाता ! मुझे अपना दर्शन दो और मुझे अपने गले से लगाकर मिला लो (अर्थात् अपने साथ अभेद कर लो) ॥१५॥

तुधु जेवडु अवरु न भालिआ ॥
तूं दीप लोअ पइआलिआ ॥
तूं थानि थनंतरि रवि रहिआ
नानक भगता सचु अधारु जीउ
॥१६॥

ऐ (प्रभु) जी ! मैंने आप जैसा बड़ा (महान) और किसी को नही देखा है। आप (सात) द्वीपों, (चौदह) लोकों और (सात) पातालों में, (हाँ) आप देश-देशान्तरों में परिपूर्ण हो रहे हैं। हे नानक ! आप भक्तो के सच्चे आश्रय हो ॥१६॥

हउ गोसाई दा पहिलवानड़ा ॥
मै गुर मिलि उच दुमालड़ा ॥
सभ होई छिंझ इकठीआ
दयु बैठा वेखै आपि जीउ ॥१७॥

मैं अपने गोस्वामी का (एक छोटा-सा) पहिलवान हूँ (अर्थात् सांसारिक अखाडे में कामादिक प्रबल विरोधी विकारों को पछाड़ दिया है)। मैंने गुरु के साथ मिलकर प्रेम रूपी ऊँचा दोमाला (दुपट्टा रूपी सूचक चिन्ह पगड़ी के रूप में) बान्ध लिया है। पहिलवानों के दङ्गल को देखने के लिये दर्शकों की भीड इकट्ठी हो रही थी और स्वयं प्रकाशवान् परमात्मा भी अखाड़े में बैठकर क्रीडा को देख रहे थे ॥१७॥

वात वजनि टमक भेरीआ ।
मल लथे लैदे फेरीआ ॥

ऐ (प्रभु) जी ! गुरु-साहिबा के (उपदेश रूपी) मुख से बजने वाले बाजे, छोटे नगारे तथा बड़े नगारे (अखाड़े में) बज रहे हैं। पहिलवान (सन्त) (संसार रूपी) अखाड़े में उतर कर चक्र लगा

निहते पंजि जुआन मै
गुर थापी दिती कंडि जीउ ॥१८॥

रहे हैं। जब मैंने (कामादिक) पाँच जवानों को मार दिया, तब प्रसन्न होकर मेरे गुरुदेव ने मेरी पीठ पर थापी दी (अर्थात् आशीर्वाद दिया) ॥१८॥

सभ इकठे होइ आइआ ॥
घरि जासनि वाट वटाइआ ॥
गुरमुखि लाहा लै गए
मनमुख चले मूलु गवाइ जीउ ॥१९॥

ऐ (प्रभु) जी ! सभी मनुष्य एक साथ जन्म लेकर संसार में आये हैं, किन्तु वापिस घर (परलोक) जाते समय (प्रत्येक जीव का) मार्ग बदल जाता है (अर्थात् गुरमुख निज स्वरूप को प्राप्त होकर मुक्ति मार्ग के अधिकारी होते हैं और मनमुख नाम को भूल कर यम मार्ग में जाते हैं (इस बात को गुरदेव स्पष्ट करते हैं)। गुरमुख तो (मनुष्य जीवन का) लाभ (ईश्वर चिन्तन करके) ले गये और मनमुख (अपने श्वासों की) पूंजी को खो कर (यहाँ से खाली हाथ) जाते हैं ॥१९॥

तूं वरना चिहना बाहरा ॥
हरि दिसहि हाजरु जाहरा ॥
सुणि सुणि तुझै धिआइदे
तेरे भगत रते गुणतासु जीउ ॥२०॥

हे हरे ! तू वर्णों (रंगों) और चिन्हों के बिना हो अर्थात् रंग रूप से निराले हो, (तो भी तू महापुरुषों को, नाम में अनुरक्त भक्तों को) सर्वत्र प्रत्यक्ष और समीप दिखाई देते हो। हे गुणों के समुद्र ! तुम्हारे भक्त तुम्हारी महिमा श्रवण कर करके तुम्हारा ध्यान करते हैं और तुममे अनुरक्त हैं अर्थात् तुम्हें प्यार करते हैं ॥२०॥

मै जुगि जुगि दयै सेवड़ी ॥
गुरि कटी मिहडी जेवड़ी ॥
हउ बाहुड़ि छिंझ न नचऊ
नानक अउसरु लधा भालि जीउ ॥२१॥२॥२९॥

हे ज्योति स्वरूप प्रभु जी ! मैं युग-युग में तुम्हारी ही सेविका (दासी) हूँ। मेरे गुरुदेव ने मेरी (जन्म-मरण की) जेवरी (रस्सी) को काट दिया है। मैं संसार रूपी अखाड़े खेल मे पुन. कुश्ती नही करूँगा (अर्थात् पुन जन्म-मरण नहीं होगा) हे नानक ! मैंने अवसर खोज लिया है (अर्थात् मानव जीवन सफल कर लिया है) ॥२१॥२॥२९॥

नोट—यह अक २९ इगित करता है कि यहाँ तक ये समस्त अष्टपदीआँ ही हे।
वर्गीकरण इस प्रकार है—

गुरु नानक साहब	१७
गुरु अमर दास	८
गुरु अर्जन देव	२
गुरु नानक साहब	१
गुरु अर्जन देव	१
	——

कुल—२९

सिरी रागु पहरे महला १ घरु १॥

पहिलै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा
हुकमि पइआ गरभासि ॥
उरध तपु अंतरि करे वणजारिआ
मित्रा खसम सेती अरदासि ॥
खसम सेती अरदासि वखाणै
उरध धिआनि लिव लागा ॥
नामरजादु आइआ कलि भीतरि
बाहुड़ि जासी नागा ॥
जैसी कलम वुड़ी है मसतकि
तैसी जीअड़े पासि ॥
कहु नानक प्राणी पहलै पहरै
हुकमि पइआ गरभासि ॥१॥

हे बजनारे मित्र ! (मनुष्य जीवन की) रात्रि के पहले प्रहर में (परमात्मा के) हुकम से (जीव माता के) गर्भाशय में पड़ जाता है। हे बनजारे जीव-मित्र ! (माता के गर्भाशय में) ऊपर की ओर पैर फैलाकर तप करता है और (गर्भ से बाहर आने के लिए) पति-परमेश्वर से प्रार्थना करता है। (हे नाथ ! इस नर्क कुण्ड से मेरी रक्षा करो) ।(वह) स्वामी (खसम) से प्रार्थना करता है और उलटा होकर ध्यान मे लिव लगाये रहता है। वह मर्यादाहीन (भाव जीव पर न कोई धार्मिक चिह्न और न कोई वस्त्र होता है) जो (इस) कलियुग मे आया है और फिर नग्न ही जायेगा। (अर्थात न किसी पदार्थ को साथ लेकर आया है और न किसी पदार्थ को साथ लेकर जायेगा)। जैसी लेखनी जीव के मस्तक पर ईश्वर की ओर से चली है, वैसा ही (भाग्य) जीव के पास होता है। हे नानक ! (मनुष्य जीवन की) रात्रि के पहले प्रहर में (परमात्मा के) हुकम से (जीव माता के) गर्भाशय में पड़ गया है ॥१॥

दूजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा
विसरि गइआ धिआनु ॥
हथो हथि नचाईऐ वणजारिआ
मित्रा जिउ जसुदा घरि कानु ॥
हथो हथि नचाईऐ प्राणी
मात कहै सुतु मेरा ॥
चेति अचेत मूड़ मन मेरे
अंति नही कुछु तेरा ॥

हे बनजारे मित्र ! (मनुष्य जीवन की) रात्रि के दूसरे प्रहर (बाल्यावस्था) में (गर्भवाला) ध्यान विस्मृत हो गया। हे बन-जारे (सौदागर) मित्र ! वह (बालक) हाथों हाथ इस प्रकार नचाया जाता है, जैसे यशोदा (माता) के घर में कान्ह (श्री कृष्णजी) को (नचाये जाते थे)। वह बालक (सभी परिवार के लोगों द्वारा) हाथों हाथ नचाया जाता है (प्यार-वश)। (मोह ममता से) माता कहती है, "मेरा पुत्र है।" (किन्तु) ऐ विवेक-हीन और मूढ़ मन ! तू ईश्वर का चिन्तन कर, (यह) समझ लो कि अन्त में तेरा कुछ भी नहीं होगा (अर्थात कोई भी सहायक नहीं होगा)।

जिनि रचि रचिआ तिसहि न जाणै
मन भीतरि धरि गिआनु ॥
कहु नानक प्राणी दूजै पहरै
विसरि गइआ धिआनु ॥२॥

जिसने (परमात्मा ने सारी) रचना रचकर तेरा शरीर बनाया है, उसे तुम नहीं जानते हो (अर्थात भूल गये हो) अतएव मन के भीतर मे (ईश्वर के) ज्ञान कि धारण करके (उस' निर्माता को जानने का प्रयत्न कर)। हे नानक ! (मनुष्य जीवन की) रात्रि के दूसरे प्रहर में प्राणी (ईश्वर के) ध्यान को भूल गया है ॥२॥

तीजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा
धन जोबन सिउ चितु ॥
हरि का नामु न चेतही वणजारिआ
मित्रा बधा छुटहि जितु ॥
हरि का नामु न चेतै प्राणी
बिकलु भइआ संगि माइआ ॥
धन सिउ रता जोबनि मता
अहिला जनमु गवाइआ ॥
धरम सेती वापारु न कीतो
करमु न कीतो मितु ॥
कहु नानक तीजै पहरै प्राणी
धन जोबन सिउ चितु ॥३॥

हे वनजारे मित्र ! (मनुष्य-जोवन की) रात्रि के तीसरे प्रहर (यौवनावस्था) में (जीव का) चित धन (संग्रह करने में) और यौवन (की मस्ती) में लग जाता है। हे बनजारे मित्र ! वह हरि के नाम को नही चेतता, जिससे बधन-युक्त प्राणी छूट जाते हैं। वह प्राणी, हरि का नाम नही चेतता, माया के साथ व्याकुल हो रहा है। वह धन से अनुरक्त है और यौवन में मस्त है इस प्रकार (दुर्लभ मनुष्य) जन्म को व्यर्थ ही गवा दिया। हे मित्र ! (जीव ने) न तो धर्म का व्यापार किया है और न (शुभ) कर्मों का ही किया। (अथवा न शुभ कर्मों को अपना मित्र बनाया है)। हे नानक ! (मनुष्य जीवन की) रात्रि के तीसरे प्रहर में प्राणी धन (को संग्रह करने में) और यौवन (के रसास्वादन) में ही अपना चित लगा लिया है ॥३॥

चउथै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा
लावी आइआ खेतु ॥
जा जमि पकड़ि चलाइआ वणजारिआ
मित्रा किसै न मिलिआ भेतु ॥
भेतु चेतु हरि किसै न मिलिओ
जा जमि पकड़ि चलाइआ ॥
झूठा रुदनु होआ दोआलै
खिन महि भइआ पराइआ ॥
साई वसतु परापति होई
जिसु सिउ लाइआ हेतु ॥
कहु नानक प्राणी चउथै पहरै
लावी लुणिआ खेतु ॥४॥१॥

(हे बनजारे मित्र ! (मनुष्य जीवन की) रात्रि के चौथे प्रहर (वृद्धावस्था) मे (शरीर रूपी) खेत को काटने वाला (यम) खेत मे पहुँचता है (और खेत काट लेता है)। हे बनजारे मित्र ! जब यम पकड कर (इस ससार से) चला देता है तो यह रहस्य किसी को भी (ठीक) नही मिल सकता (कि शरीर से जीव कहाँ, कैसे चला गया)। इस प्रकार जब यम पकडकर (यहा से) चला देता है, तो तब इस बात का रहस्य किसी सम्बन्धी को नही मिलता। उसके आस-पास झूठा रुदन होता है, किन्तु वह (प्राणी) तो पराया (यमदूतो का) हो जाता है, (सम्बन्धियों का नही रहता)। (परलोक में जीव को) वही वस्तु प्राप्त होती है, जिसके साथ वह (इस लोक मे) प्रेम करता है। हे नानक ! (मनुष्य-जीवन की) रात्रि के चौथे प्रहर में खेत काटने वाला (यम) प्राणी का खेत काटकर चला देता है ॥४॥१॥

गुरु वाक्यानुसार—अन्त काल जो

सिरी रागु महला १॥

पहिलै पहरै रैणि कै वणजारिआ
मित्रा बालक बुधि अचेतु ॥
खीरु पीऐ खेलाईऐ वणजारिआ मित्रा
मात पिता सुत हेतु ॥
मात पिता सुत नेहु घनेरा
माइआ मोहु सबाई ॥
संजोगी आइआ किरतु कमाइआ
करणी कार कमाई ॥
रामनाम बिनु मुकति न होई
बूडी दूजै हेति ॥
कहु नानक प्राणी पहलै पहरै
छूटहिगा हरि चेति ॥१॥

हे बनजारे मित्र ! (मनुष्य जीवन की) रात्रि के पहले प्रहर (बाल्यावस्था) में बालक बुद्धि से अचेत (विवेकहीन) रहता है। वह दूध पीता है और खेलाया जाता है। हे बनजारे मित्र ! माता-पिता (अपने) पुत्र से स्नेह करते हैं। माता-पिता का अपने पुत्र के लिए बड़ा ही स्नेह होता है इस प्रकार माया के मोह में समस्त (सृष्टि) बँधी पड़ी है। (माता-पिता के उद्योग से नहीं अथवा अपनी इच्छा से भी नही) किन्तु वह (बालक) संयोगवशात् (इस संसार में) आता है और आगे भी वही कर्म करता है जो काम (पूर्व कर्मानुसार जीव से परमात्मा) कराता है अथवा जो कर्म जीव यहाँ आकर करता है (उसका लेखा फिर आगे परलोक में जाकर देता है)। राम नाम के बिना (कर्मजाल), (जीव की) मुक्ति नही हो सकती। किन्तु (विवेकहीन होने के कारण) सारी जीव सृष्टि द्वैत भाव के प्रेम मे डूब रही है। हे नानक ! (मनुष्य जीवन की) रात्रि के पहले प्रहर में हरि चिन्तन करने से प्राणी ध्रुवादि भक्तो के समान (भव-बन्धनो से) छूट जायगा ॥१॥

दूजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा
भरि जोबनि मै मति ॥
अहिनिसि कामि विआपिआ
वणजारिआ मित्रा
अंधुले नामु न चिति ॥
रामनामु घट अंतरि नाही
होरि जाणै रस कस मीठे ॥
गिआनु धिआनु गुण संजमु नाही
जनमि मरहुगे झूठे ॥
तीरथ वरत सुचि संजमु नाही
करमु धरमु नही पूजा ॥
नानक भाइ भगति निसतारा
दुबिधा विआपै दूजा ॥२॥

हे बनजारे मित्र ! (मनुष्य-जोवन की) रात्रि के दूसरे प्रहर (यौवनावस्था) मे (मनुष्य) भरी जवानी मे मदमत्त रहता है। हे बनजारे मित्र ! वह दिन-रात काम मे आसक्त रहता है, वह अन्धा नाम से चित्त नही लगाता। काम मे अनुरक्त रहने के कारण उसके घट के अन्तर्गत रामनाम नही रहता, वह (अन्य सासारिक) रसादिकों को मोठा समझता है। जिसमे ज्ञान, ध्यान, गुण और सयम नही है, वे जन्म ले कर झूठे ही मर जाते हैं। वह न ही तीर्थों का स्नान करता है न व्रत रखता है, न उसमे कोई पवित्रता ही है और न ही वह धर्मानुसार ही कर्म करता है तथा न ही ईश्वर को पूजा करता है। हे नानक ! परमात्मा की प्रेमा-भक्ति से (ही जीव का भव-सागर से) निस्तार होता है, द्वैत भाव कर्म करने से वह माया में) व्याप्त होता है ॥२॥

तीजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा
सरि हंस उलथड़े आइ ॥
जोबनु घटै जरूआ जिणै वणजारिआ
मित्रा आव घटै दिनु जाइ ॥
अंति कालि पछुतासी अंधुले
जा जमि पकड़ि चलाइआ ॥
सभु किछु अपना करि करि राखिआ
खिन महि भइआ पराइआ ॥
बुधि विसरजी गई सिआणप
करि अवगण पछुताइ ॥
कहु नानक प्राणी तीजै पहरै
प्रभु चेतहु लिव लाइ ॥३॥

हे बनजारे मित्र ! (मनुष्य जीवन की) रात्रि आप के तीसरे प्रहर (वृद्धावस्था) में सिर रूपी सरोवर में श्वेत बलरूपी हंस आ उतरे, यौवन घटता जाता है (वृद्धावस्था) यौवन को जीतती जाती है और दिन भी बीतते जाते हैं। हे अन्धे ! अन्तकाल में जब यमराज पकड़ कर (यहाँ से) चला देगा, (तब) पछताएगा। यह सभी कुछ (माल धनादि) जिसको तुमने अपना समझा था वह क्षणमात्र में पराया हो जाता है (अर्थात् वह कुटुम्ब का हो जाता है इस दशा को देखकर उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, चतुराई समाप्त हो जाती है, और उसे अवगुण करके पछताना पड़ता है। हे नानक ! (मनुष्य जीवन की) रात्रि के तीसरे प्रहर मे, हे प्राणी ! प्रभु में लिव लगाकर उसका चिन्तन करो (कि कुछ तो तुम्हारा भला हो) ॥३॥

चउथै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा
बिरधि भइआ तनु खीणु ॥
अखी अंधु न दीसई वणजारिआ मित्रा
कंनी सुणै न वैण ॥
अखी अंधु जीभ रस नाही
रहे पराकउ ताणा ॥
गुण अंतरि नाही किउ सुखु पावै
मनमुख आवणजाणा ॥
खड़ु पकी कुड़ि भजै बिनसै
आइ चलै किआ माणु ॥
कहु नानक प्राणी चउथै पहरै
गुरमुखि सबदु पछाणु ॥४॥

हे बनजारे मित्र ! (मनुष्य जीवन की) रात्रि (आयु) के चौथे प्रहर (क्षीणवस्था) मे (मनुष्य) वृद्ध हो जाता है, उसका शरीर क्षीण हो जाता है। हे बनजारे मित्र ! वह अन्धी आँखों से कुछ भी नही देख पाता और कान से वचन नही सुनता। वह आँखो से अन्धा हो जाता है, जीभ से रसास्वादन भी नही कर सकता, उसकी (इन्द्रियो का) पराक्रम तथा (शरीर का) बल रह जाता है। मनमुख के हृदय मे (शुभ) गुण भी नही है, भला वह कैसे सुख पा सकता है ? इस प्रकार उस मनमुख का आवागमन बना रहता है। जैसे खेती पकने पर मुरझा कर नष्ट हो जाती है, वैसे ही मनुष्य की आयु पूर्ण होने पर उसका शरीर टूट कर नष्ट हो जाता है। ऐसे आ कर चले जाने वाले (शरीर) का क्या घमंड है? हे नानक ! (मनुष्य जीवन की आयु के) चौथे प्रहर में हे प्राणी ! गुरु के उपदेश द्वारा शब्द (ब्रह्म रूप) को पहचानो ॥४॥

ओड़कु आइआ तिन साहिआ
वणजारिआ मित्रा
जरु जरवाणा कंनि ॥

हे बनजारे मित्र ! (अब चतुर्थ प्रहर भी समाप्त होने लगा है) क्योंकि जालिम निर्दयी बुढापा कंधे पर चढ आया है। जिन श्वासों के बल पर शरीर चलता था, अब उनका भी अन्त आ गया है। हे बनजारे मित्र ! (मनमुखों में) एक रत्ती भी गुण नही

इक रती गुण न समाणिआ
वणजारिआ मित्रा
अवगण खड़सनि बंनि ॥
गुण संजमि जावै चोट न खावै
ना तिसु जंमणु मरणा ॥
कालु जालु जमु जोहि न साकै
भाइ भगति भै तरणा ॥
पति सेती जावै सहजि समावै
सगले दूख मिटावै ॥
कहु नानक प्राणी गुरमुखि छूटै
साचे ते पति पावै ॥५॥२॥

टिके हैं, वे अपने अवगुणों को ही बांधकर जायेंगे। किंतु जो (जीव) (शुभ) गुणों का (संग्रह करके) संयम के साथ (जीवन व्यतीत करके) जाते हैं, उस पर चोट नहीं पडती और न उनका जन्म-मरण ही होता है। यमदूत मृत्युपाश को लेकर उनको देख नहीं सकते, क्योंकि वे प्रेमा-भक्ति के कारण भव-सागर से तर गये हैं। ऐसा जीव स्वरूप में समाकर प्रतिष्ठा के साथ परलोक जाते हैं और वे अपने सारे दुखों को मिटा देते है। हे नानक! वह प्राणी गुरमुख बनकर, गुरु की शिक्षा द्वारा (भव-बन्धन से) छूट जाता है और सत्य स्वरूप परमात्मा से प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं ॥५॥२॥

सिरी रागु महला ४॥

पहिलै पहरै रैणि कै वणजारिआ
मित्रा हरि पाइआ उदर मंझारि ॥
हरि धिआवै हरि उचरै वणजारिआ
मित्रा हरि हरि नामु समारि ॥
हरि हरि नामु जपे आराधे
विचि अगनी हरि जपि जीविआ ॥
बाहरि जनमु भइआ मुखि लागा
सरसे पिता मात थीविआ ॥
जिस की वसतु तिसु चेतहु प्राणी
कर हिरदै गुरमुखि बीचारि ॥
कहु नानक प्राणी पहिलै पहरै
हरि जपीऐ किरपा धारि ॥१॥

हरि-नाम का व्यापार करने के लिए (संसार में) आए (बनजारे) मित्र! जीवन रात्रि के प्रथम प्रहर में हरि (जीव को माता के) उदर में डाल देता है (गर्भ में पीडा से व्याकुल हो) हे वणजारे मित्र! तू हरि का ध्यान करता है, प्रभु हरि (नाम का) उच्चारण करता है और (प्रत्येक घडी) दुःख विनाशक (प्रभु) हरि नाम का स्मरण करता है। बारम्बार हरि नाम को जपता है और हरि को स्मरण करता है और जठराग्नि (पेट-मझारि अग्नि) में हरि नाम जप कर ही वह जीवित रहता है। गर्भ से बाहर आते ही जीव माता-पिता का प्यार पाता है और बच्चे का मुख देखकर प्रसन्न होते हैं। हे प्राणी! गुरु के द्वारा हृदय में विचार पूर्वक 'उसका' (हरि) का चिन्तन कर जिसकी वस्तु यह बालक है। हे नानक! (जीवन-रात्रि के) प्रथम पहर में कृपा (निधि) हरि (के नाम) जाप करना चाहिए ॥१॥

दूजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा
मनु लागा दूजै भाइ ॥

हरि-नाम का व्यापार करने के लिए (संसार में) आए हुए बनजारे-मित्र! (जीवन) रूपी रात्रि के दूसरे प्रहर में जिनका मन (हरि को छोड़कर।) दूसरे भाव मोह-माया में लग जाता

मेरा मेरा करि पालीऐ वणजारिआ
मित्रा ले मात पिता गलि लाइ ॥
लावै मात पिता सदा गल सेती
मनि जाणै खटि खवाए ॥
जो देवै तिसै न जाणै
मूड़ा दिते नो लपटाए ॥
कोई गुरमुखि होवै सु करै वीचारु
हरि धिआवै मनि लिव लाइ ॥
कहु नानक दूजै पहरै प्राणी
तिसु कालु न कबहूं खाइ ॥२॥

है। हे बणजारे मित्र ! बच्चे को माता-पिता गले के साथ लगा कर मेरा (लाल) मेरा (सोनू) कह कर पालन-पोषण करते हैं। माता-पिता बच्चे को लेकर (नित्य) गले से लगाते हैं और (ममता के कारण) मन में आशा रखते हैं कि (बड़ा होकर हमें) कमा कर खिलायेगा। जो (हरि) (पुत्रादि धन पदार्थ) देने वाला है उसको यह मूढ़ प्राणी जानता नहीं और जो उसने दिया है वह नश्वर है उससे लिपटता (प्यार करता) है। किन्तु कोई गुरमुख (जीव) ही विचारशील होता है, जो (तत्व) मिथ्या का विचार करना है और मन से लौ लगाकर हरि का ध्यान करता है। हे नानक ! (जीवन रात्रि के) दूसरे प्रहर मे जो प्राणी मन से हरि स्मरण करता है उसे कभी काल नहीं खा सकता (अर्थात् वह जीव जन्म-मरण से रहित हो जाता है) ॥२॥

तीजै पहरै रैणि के वणजारिआ
मित्रा मनु लगा आलि जंजालि ॥
धनु चितवै धनु संचवै वणजारिआ
मित्रा हरिनामा हरि न समालि ॥
हरिनामा हरि हरि कदे न समालै
जि होवै अंति सखाई ॥
इहु धनु संपै माइआ झूठी
अंति छोडि चलिआ पछुताई ॥
जिसनो किरपा करे गुरु मेले
सो हरि हरिनामु समालि ॥
कहु नानक तीजै पहरै प्राणी
से जाइ मिले हरि नालि ॥३॥

हरि-नाम का व्यापार करने के लिए (संसार में) आए हुए वनजारे-मित्र ! (जीवन) रात्रि के तीसरे प्रहर मे (जीव का) मन घर के झंझटों मे लग जाता है। हे बनजारे मित्र ! वह धन (प्राप्ति के लिए ही) का चिन्तन करता है और धन का संचय करता है, किन्तु दुःखो को हरण करने वाले हरि हरि के नाम का स्मरण नहीं करता। वह हरि के, दुख हर्ता हरि नाम को कभी भी स्मरण नहीं करता जो अन्तकाल में (जीवात्मा का) सहायक होगा। यह धन सम्पत्ति आदि माया झूठी है क्योंकि अन्तकाल में इसे यहाँ छोड कर जीव चला जाता है और पश्चाताप् करता है। जिस पर हरि की कृपा होती है, उसे गुरु मिला देता है, और वही ईश्वर के दुःख हर्ता हरि नाम को सम्भाल लेता है ! हे नानक ! (जीवन रात्रि के) तीसरे प्रहर में वह प्राणी (हरि का चिन्तन करता है) वह हरि के साथ जाकर मिलता है (अर्थात् अभेद हो जाता है) ॥३॥

चउथै पहरै रैणि कै वणजारिआ
मित्रा हरि चलण वेला आदी ॥
करि सेवहु पूरा सतिगुरु वणजारिआ
मित्रा सभ चली रैणि विहादी ॥

हरि-नाम का व्यापार करने के लिए (संसार में) आए हुए बनजारे मित्र ! (जीवन) रात्रि के चौथे प्रहर (बुढ़ापे में) हरि ने चलने की बेला (समय) ला दी है। हे बनजारे मित्र। (इस अवस्था में) पूर्ण सत्गुरु की सेवा कर क्योंकि (जीवन की) समस्त रात्रि (रूपी आयु) व्यतीत होती जा रही है। हरि की सेवा प्रति क्षण करो, विलम्ब कदाचित तनिक भी न करना

हरि सेवहु खिनु खिनु ढिल मूल न करिहु जितु असथिरु जुगु जुगु होवहु ॥
हरि सेती सद माणहु रलीआ जनम मरण दुखु खोवहु ॥
गुर सतिगुर सुआमी भेदु न जाणहु जितु मिलि हरि भगति सुखांदी ॥
कहु नानक प्राणी चउथै पहरै सफलिओ रैणि भगता दी ॥४॥ १॥३॥

क्योंकि यही एक साधन है, जिससे युग-युगान्तर में स्थिर (अमर) हो जाएगा। हरि के साथ मिलकर सर्वदा आनन्द, खुशियां मनाएगा और जन्म-मरण का दु:ख भी नष्ट कर देगा। जिस गुरु के मिलने से हरि की भक्ति सुखदायी प्रतीत होती है, उस (पूजनीय) सत्गुरु और परमात्मा मे किंचित मात्र भी भेद नही समझना। हे नानक ! (जीवन-रात्रि के) चौथे प्रहर (वृद्धावस्था) मे हे प्राणी ! (भक्ति करनेवाले) भक्तों की (आयु रूपी) रात्रि सफल होती है ॥४॥१॥३॥

सिरी रागु महला ५॥

पहिलै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा धरि पाइता उदरै माहि ॥
दसी मासी मानसु कीआ वणजारिआ मित्रा करि मुहलति करम कमाहि
मुहलति करि दीनी करम कमाणे जैसा लिखतु धुरि पाइआ ॥
मात पिता भाई सुत बनिता तिन भीतरि प्रभू संजोइआ ॥
करमु सुकरमु कराए आपे इसु जंतै वसि किछु नाहि ॥
कहु नानक प्राणी पहिलै पहरै धरि पाइता उदरै माहि ॥१॥

हरि-नाम का व्यापार करने के लिए (ससार मे) आए हुए है बनजारे जीव-मित्र ! (जीवन) रात्रि के पहले प्रहर मे (हरि) (जीव को माता के) पेट (गर्भ) में रख देता है। हे बनजारे मित्र ! दस महीनो में (हरि उस जीव की) मनुष्य शरीर तैयार करता है और (जीव के जीने की) अवधि बान्ध देता है और वह (ससार मे जीने तक) कर्मों को करता है। आयु की जितनी अवधि कर दी है और जैसा लेख उसके भाग्य मे (विधाता ने) लिख दिया है उसीके अनुसार (जीव) कर्म करता है। (पूर्व लिखित कर्मा नुसार) प्रभु जीव को माता, पिता भाई, पुत्र, स्त्री आदि के प्यार में अच्छी प्रकार जोड देता है। कर्म तथा शुभ कर्म आप ही (जीव से) कराता है, इस जीव के वश में कुछ भी नहीं है। हे नानक ! (जीवन रात्रि के) पहले प्रहर में प्राणी (जीव) को माता के पेट (गर्भ) में रख देता है ॥१॥

दूजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा भरि जुआनी लहरी देइ ॥

हरि-नाम का व्यापार करने के लिए (ससार में) आए हुए है बनजारे जीव-मित्र ! (जीवन रूपी) रात्रि के दूसरे प्रहर में (यौवन काल) में भरी हुई युवा (रूपी नदी) (कामादिक) लहरें

बुरा भला न पछाणई वणजारिआ मित्रा
मन मता अहंमेइ ॥
बुरा भला न पछाणै प्राणी
आगै पंथु करारा ॥
पूरा सतिगुरु कबहूं न सेविआ
सिर ठाढे जम जंदारा ॥
धरमराइ जब पकरसि बवरे
तब किआ जबाबु करेइ ॥
कहु नानक दूजै पहरै प्राणी
भरि जोबनु लहरी देइ ॥२॥

(फेंकती) हैं। हे बनजारे मित्र। यौवन के मद के कारण बुरे और भले (कर्म) की उसे पहचान नहीं रहती और उसका मन भी अहकार में मस्त रहता है। हे प्राणी ! बुरे और भले (कर्मों) का विचार तक नही करता कि आगे (मरने के पश्चात् धर्म-राज के समकक्ष कर्मों का फल भोगना पड़ेगा) अतः यम का मार्ग अत्यन्त कठिन है। पूर्ण सत्गुरु की यह (जीव) कभी भी सेवा नही करता, इसलिए उसके सिर पर निर्दयी यमदूत (मारने के लिये सदैव तैयार) खड़े रहते हैं। हे पगले ! जब धर्मराज आकर पकड़ेगा तब क्या जवाब देगा ? हे नानक ! प्राणी की जीवन-रात्रि के दूसरे प्रहर (यौवन काल) मे भरी हुई युवा (रूपी नदी कामादिक) लहरें (फेंकती) हैं ॥२॥

तीजै पहरै रैणि कै वणजारिआ
मित्रा बिखु संचै अंधु अगिआनु ॥
पुत्रि कलत्रि मोहि लपटिआ
वणजारिआ मित्रा
अंतरि लहरि लोभानु ॥
अंतरि लहरि लोभानु परानी
सो प्रभु चिति न आवै ॥
साध संगति सिउ संगु न कीआ
बहु जोनी दुखु पावै ॥
सिरजनहारु विसारिआ सुआमी
इक निमख न लगो धिआनु ॥
कहु नानक प्राणी तीजै पहरै
बिखु संचे अंधु अगिआनु ॥३॥

हरि-नाम का व्यापार करने के लिए (संसार में) आए हुए हे बनजारे जीव-मित्र ! (जीवन रूपी) रात्रि के तीसरे प्रहर मे अज्ञान से अन्धा होकर विष (माया) इकट्ठी करता है। हे बन-जारे मित्र ! वह (जीव) पुत्र एव स्त्री के मोह में लम्पट हो रहा है और अन्त करण मे लोभ की लहरें उठती हैं। हे प्राणी ! इसके अन्तर्गत लोभ की लहरें उठ रही हैं, इसलिये वह प्रभु चित्त में नही आता। वह कभी भी साधु की सगति नही करता, इसलिए बहुत सी योनियों मे (भटकने से) दुःख पाता है। (उसने) अपने स्वामी (सृष्टि) कर्त्ता को भुला दिया है इसलिये एक क्षण भर भी उसके ध्यान मे (मन) नही लगता। हे नानक ! (जीवन रूपी रात्रि के) तीसरे प्रहर मे (मदमस्त) प्राणी अज्ञान से अन्धा होकर विष (माया) इकट्ठो करता है ॥३॥

चउथै पहरै रैणि कै वणजारिआ
मित्रा दिनु नेड़ै आइआ सोई ॥

हरि-नाम का व्यापार करने के लिये (संसार में) आए हुए हे बनजारे जीव-मित्र ! (जीवन के) चौथे प्रहर (बुढ़ापे) में (मृत्यु का) दिन समीप आ पहुँचता है। हे बनजारे मित्र ! तू

गुरमुखि नामु समालि तूं वणजारिआ
मित्रा तेरा दरगह बेली होइ ॥
गुरमुखि नामु समालि पराणी
अंते होइ सखाई ॥
इहु मोहु माइआ तेरै संगि न चालै
झूठी प्रीति लगाई ॥
सगली रैणि गुदरी अंधिआरी
सेवि सतिगुरु चानणु होइ ॥
कहु नानक प्राणी चउथै पहरै
दिनु नेड़ै आइआ सोइ ॥४॥

गुरु के उपदेश द्वारा (हरि) नाम का स्मरण कर जो (हरिनाम तेरा) परलोक में सहायक हो। हे प्राणी ! गुरु की शरण में आकर गुरु के द्वारा (हरि) नाम का स्मरण कर, जो (हरि नाम) अन्त में तेरा (एक मात्र) सहारा हो। जिस माया के साथ तुमने मोह बनाकर रखा है, वह (माया) तुम्हारे साथ नहीं चलेगी। तुमने (माया के साथ) झूठी प्रीति लगाकर रखी है। तुम्हारी सारी (आयु रूपी) रात्रि (अज्ञान रूपी) अन्धकार में व्यतीत हुई है, अब तू सत्गुरु की सेवा कर तो तुम्हे (ज्ञान रूपी) प्रकाश हो। हे नानक ! प्राणी के (जीवन रूगो रात्रि के) चौथे प्रहर में बुढापे मे) वह दिन निकट आ जाता है (जब उसने यहाँ से प्रस्थान करना होता है) ॥४॥

लिखिआ आइआ गोविंद का
वणजारिआ मित्रा
उठि चले कमाणा साथि ॥
इक रती बिलम न देवनी वणजारिआ
मित्रा ओनी तकड़े पाए हाथ ॥
लिखिआ आइआ पकड़ि चलाइआ
मनमुख सदा दुहेले ॥
जिनी पूरा सतिगुरु सेविआ
से दरगह सदा सुहेले ॥
करम धरती सरीरु जुग अंतरि
जो बोवै सो खाति ॥
कहु नानक भगत सोहहि दरवारे
मनमुख सदा भवाति ॥५॥१॥४॥

हरि-नाम का व्यापार करने के लिये (ससार में) आए हुए हे वनजारे जीव-मित्र ! जब गोबिन्द का लिखा हुआ (मृत्यु का) सन्देश आता है तो (जीव) यहाँ से उठकर अपने (शुभा-शुभ कर्मों) की कमाई के साथ (परलोक को) चला जाता है। हे वनजारे मित्र ! (यम के दूत) उस (जीव) को एक रत्ती भर भी त्रिलम्ब नही करने देते। उन्होने (जीव पर) तकड़े (मजबूत) हाथ डाले हुए होते हैं (अर्थात् जीव यमदूतों से अपना पीछा छुडा नही सकता)। (ईश्वर द्वारा) जब लिखा हुआ (आज्ञा-पत्र) आता है, तब (यमदूत) इसे पकड कर आगे चला लेते हैं, इस प्रकार मनमुख सर्वदा दु.खी रहते हैं। किन्तु जिन्होंने पूर्ण सत्गुरु की सेवा को है, वे (हरि की) दरबार में सर्वदा सुखी रहते हैं। इस (कलि) युग के अन्दर (शुभाशुभ) कर्मों का बीज (बोने के लिये शरीर रूपी) पृथ्वी है, जीव जैसा कोई (बीज) बोता है, वही (फल) खाता है। हे नानक ! भक्त (गोबिन्द की) दरबार मे सुशोभित होते हैं, जबकि मनमुख सर्वदा (योनियों मे) भटकाए (घुमाये) जाते हैं ॥५॥१॥४॥

सिरी रागु महला ४ घरु २ छंत ॥

मुंध इआणी पेईअड़ै
किउकरि हरि दरसनु पिखै ॥
हरि हरि अपनी किरपा करे
गुरमुखि साहुरड़ै कंम सिखै ॥
साहुरड़ै कंम सिखै गुरमुखि
हरि हरि सदा धिआए ॥
सहीआ विचि फिरै सुहेली
हरि दरगह बाह लुडाए ॥
लेखा धरमराइ की बाकी
जपि हरि हरि नामु किरखै ॥
मुंध इआणी पेईअड़ै
गुरमुखि हरि दरसनु दिखै ॥१॥

(प्रश्न) (जीव रूपी) अनजान स्त्री अपने मायके घर (इस लोक मे, मनुष्य जीवन मे) हरि (पति) का दर्शन किस प्रकार कर सकती है? (उत्तर.) सर्व दुखो को दूर करने वाला हरि जब अपनी कृपा करता है, तब (जीव-स्त्री) गुरु के सन्मुख होकर ससुराल (परलोक) मे सुख देने वाले कर्मों को करना सीखती है। गुरु की शरण मे आकर (जीव-स्त्री) वे कर्म सीखती है, जिससे वह ससुराल में (अपने पति के पास पहुँच सके और वे कर्म हैं कि जीव-स्त्री) सदा हरि, हरि (नाम) का ध्यान करे। (हरि-नाम जपने वाली जीव रूपी स्त्री इस ससार में) सखियों (सन्तो) में सुविधापूर्वक फिरती है और (परलोक मे) हरि दरबार में (भी) निश्चित होकर सहर्ष आनन्द से पहुँचती है। इस प्रकार सर्व दुखों को नाश करने वाला हरि-नाम का (सदा) जाप करके वह (जीव-स्त्री) धर्मराज के शेष लेखा पर लकीर फेर देनी है (लेखा समाप्त हो जाता है)। इस प्रकार अनजान (जीव रूपी) स्त्री (अपने मायके घर, मनुष्य देही में) गुरु की शरण मे आकर हरि (पति) का दर्शन कर लेती है ॥१॥

वीआहु होआ मेरे बाबुला
गुरमुखे हरि पाइआ ॥
अगिआनु अंधेरा कटिआ
गुर गिआनु प्रचंडु बलाइआ ॥

हे मेरे पिता! मेरा विवाह हुआ है, जब मैंने गुरु के उपदेश द्वारा हरि (पति) को पाया। अब (मेरा) अज्ञान रूपी अन्धेरा कट गया है (नष्ट हो गया है), जब गुरु ने ज्ञान रूपी प्रखर प्रकाश जला दिया। गुरु का ज्ञान रूपी प्रकाश जलते ही अन्धेरा (अज्ञान) नष्ट हो गया। अब हरि रूपी (अमूल्य) रत्न पदार्थ मिल गया

बलिआ गुर गिआनु
अंधेरा बिनसिआ
हरि रतनु पदारथु लाधा ॥
हउमै रोगु गइआ दुखु लाथा ॥
आपु आपै गुरमति खाधा ॥
अकाल मूरति वरु पाइआ
अबिनासी ना कदे मरै न जाइआ ॥
वीआहु होआ मेरे बाबोला
गुरमुखे हरि पाइआ ॥२॥

और अहम् (हउमै) का रोग चला गया तथा दुःख भी दूर हो गए। गुरु की मति से अपने आप ही हउमै का रोग खाया गया। अब अविनाशी पति (जिसकी मूर्ति काल से रहित है), 'वह' (हरि) मैंने प्राप्त कर लिया है जो न मरता है और न (कभी) जन्मता है। हे मेरे पिता! मेरा विवाह हो गया है क्योंकि मैंने गुरु की कृपा से हरि (पति) प्राप्त किया है॥२॥

हरि सति सते मेरे बाबुला
हरिजन मिलि जंञ सुहंदी ॥
पेवकड़ै हरि जपि सुहेली
विचि साहुरड़ै खरी सोहंदी
साहुरड़ै विचि खरी सोहंदी
जिनि पेवकड़ै नामु समालिआ ॥
सभु सफलिओ जनमु तिना दा
गुरमुखि जिना मनु जिणि
पासा ढालिआ ॥
हरि संत जना मिलि कारजु सोहिआ
वरु पाइआ पुरखु अनंदी
हरि सति सति मेरे बाबोला
हरिजन मिलि जंञ सोहंदी ॥३॥

हे मेरे पिता! मेरा हरि (पति) सदा स्थिर रहने वाला सत्य स्वरूप है। जब हरि के दास—भक्तजन आकर मिलते हैं, तो बरात कैसी शोभा दे रही है! जिस (जीव-स्त्री) ने (इस मनुष्य देही में हरि) नाम का स्मरण किया है, वह ससुराल (घर) मे अति शोभा प्राप्त करती है। जिन (जीव-स्त्रियों ने) गुरु की शरण मे आकर अपने मन पर विजय प्राप्त कर ली है, (वास्तव में) उन्होंने ही जीवन की बाजी जीती है और अपना जीवन सफल बनाया है। हरि के सन्त जनों के साथ मिलकर मेरा (विवाह का) कार्य शोभायमान हुआ है क्योंकि मैंने आनन्द रूप परिपूर्ण पति-परमेश्वर प्राप्त कर लिया है। हे मेरे पिता! सत्य स्वरूप हरि तो मेरा पति है 'उसके' साथ मिलकर श्रेष्ठ हरि के जन (सन्त-जन) जब आये तब उनके मेल से बनी हुई बरात भी अति शोभायमान हुई॥३॥

हरि प्रभ मेरे बाबुला
हरि देवहु दान मै दाजो ॥

हे मेरे पिता! मुझे हरिनाम का दान दहेज के रूप में दो। हरिनाम के ही मुझे वस्त्र दो और हरिनाम (रूपी आभूषण) देकर मेरी (ससुराल में) शोभा बढ़ाओ जिससे मेरा (विवाह का)

हरि कपड़ो हरि सोभा देवहु
जितु सवरै मेरा काजो ॥
हरि हरि भगती काजु सुहेला
गुरि सतिगुरि दानु दिवाइआ ॥
खंडि वरभंडि हरि सोभा होई
इहु दानु न रलै रलाइआ ॥
होरि मनमुख दाजु
जि रखि दिखालहि
सु कूड़ु अहंकारु कचु पाजो ॥
हरि प्रभ मेरे बाबुला
हरि देवहु दानु मै दाजो ॥४॥

कार्य भी सम्पन्न (सिद्ध) हो जाये। दुःख हर्ता हरि की भक्ति करने से मेरा विवाह का कार्य (सुविधापूर्वक) सम्पन्न होता है, यह भक्ति का दान (दहेज) मेरे गुरु ने, (हाँ) (पूर्ण) सत्गुरु ने (अति कृपा करके) दिलाया है। (हरि भक्ति के कारण) मेरी महिमा देश में, संसार में हुई है। यह दहेज अद्वितीय है। हरिनाम के दान को किसी भी (सांसारिक दहेज से) मिलाने पर भी मिल नहीं सकता (भाव यह हरिनाम सर्वोत्कृष्ट दहेज है उसके समक्ष दूसरा दहेज हो ही नहीं सकता)। किन्तु मनमुख (हरिनाम को छोड़कर विवाह के समय) जो वह शीशे (के समान) कच्चा (विनश्वर) है दूसरा दहेज निकाल कर रखते हैं और (सम्बन्धियों को) दिखाते हैं, वह झूठे अहंकार के कारण ही होता है। वस्तुतः वह कच्चा है, (मिथ्या है, पाखण्ड है। अत.) हे मेरे पिता रूप गुरु-देव ! मुझे हरि प्रभु, (हाँ) हरि के नाम का दान ही दहेज मे दो (कृपा करो)॥४॥

हरि राम राम मेरे बाबोला
पिर मिलि धन वेल वधंदी ॥
हरि जुगह जुगो जुग जुगह जुगो
सद पीड़ी गुरू चलंदी ॥
जुगि जुगि पीड़ी चलै सतिगुर की
जिनी गुरमुखि नामु धिआइआ ॥
हरि पुरखु न कब ही बिनसै जावै
नित देवै चड़ै सवाइआ ॥
नानक संत संत हरि एको
जपि हरि हरि नामु सोहंदी ॥
हरि राम राम मेरे बाबुला
पिर मिलि धन वेल वधंदी ॥५॥१॥

हे मेरे पिता ! प्रियतम परमात्मा से मिलकर (जीव रूपी) स्त्री की वंश (परम्परा) (सगति रूप संतति) की बेल बढने लगती है। मेरा हरि सर्वत्र रमणशील है जिसका नाम राम है। युग-युगान्तर से सदा ही (मेरे) हरि (पति) की, गुरु की अंश चली आती है। प्रत्येक युग में अंश (नादी संतान) चल पड़ती है, जिन्होंने गुरु से मिलकर हरि नाम का ध्यान किया है (वे गुरु की अंश है, नादी संतान है)। हरि परमात्मा ऐसा पति है, जो कभी भी नष्ट नही होता और न ही कही पर जाता है। 'वह' सर्वदा (जीवों को दान) देता है जो (नित्य) बढ़ता चला जाता है और (कदाचित कम नही पडता)। हे नानक ! सन्त और सन्तों का (प्यारा) हरि दोनों एक रूप हैं। (जीव रूपी स्त्री) सर्व दुखों को हरण करने वाला हरि नाम जप कर सुशोभित होती है। हे मेरे पिता ! सर्व दुखों को हरण करने वाला (हरि) जिसे (भक्त जन) राम-राम (कहकर) पुकारते हैं, 'उस' प्रियतम परमात्मा से मिलकर (जीव रूपी) स्त्री की वंश (परम्परा) की बेल बढ़ने लगती है ॥५॥१॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥

सिरी रागु महला ५ छंत॥

मन पिआरिआ जीउ मित्रा
गोबिंद नामु समाले ॥
मन पिआरिआ जी मित्रा
हरि निबहै तेरै नाले ॥
संगि सहाई हरिनामु धिआई
बिरथा कोइ न जाए ॥
मन चिंदे सेई फल पावहि
चरण कमल चितु लाए ॥
जलि थलि पूरि रहिआ बनवारी
घटि घटि नदरि निहाले ॥
नानकु सिख देइ मन प्रीतम
साध संगि भ्रमु जाले ॥१॥

हे मेरे प्यारे मन ! हे मेरे मित्र मन ! गोबिन्द का नाम याद कर। हे प्यारे मन ! हे मित्र मन ! हरि सदा तेरा साथ देगा। हरि नाम (जो लोक परलोक में) साथ होकर सहायता करने वाला है, उसका ध्यान कर क्योंकि (हरि के नाम का ध्यान) कदाचित व्यर्थ नही जाता। जो (जीव) हरि के कमल-चरणों से चित्त लगाते हैं, वे मन-वांछित फल प्राप्त करते हैं। बनवारी परमेश्वर जल और स्थल (सम्पूर्ण सृष्टि) में परिपूर्ण हो रहा है। 'वह' प्रत्येक जीव को देख रहा है (अर्थात् प्रत्येक जीव की आवश्यकताओं को देखकर पूर्ण कर रहा है)। हे मेरे प्यारे मन ! (बाबा) नानक यह (सारगर्भित) शिक्षा दे रहे हैं कि साधु की संगति में जाकर अपने भ्रम (जाल) को जला दे ॥१॥

मन पिआरिआ जी मित्रा
हरि बिनु झूठु पसारे ॥
मन पिआरिआ जीउ मित्रा
बिखु सागरु संसारे ॥

हे मेरे प्यारे मन ! हे मेरे मित्र मन ! हरि के बिना (माया का समस्त) पसारा (आडम्बर) झूठा (विनश्वर) है। हे मेरे प्यारे मन ! हे मेरे मित्र मन ! यह संसार एक सागर है जो विष से (भरा) हुआ है। (विषवत् संसार से) पार उतरने के लिए कर्त्तार प्रभु के चरण कमलों का (ध्यान करने का) जहाज बना, जिससे तुम्हें संशय और दुख व्याप्त न हो सकें। भाग्यशाली जीव

चरन कमल करि बोहिथु
करते सहसा दूखु न बिआपै ।।
गुरु पूरा भेटै वडभागी
आठ पहर प्रभु जापै ।।
आदि जुगादी सेवक सुआमी
भगता नामु अधारे ।।
नानकु सिख देइ मन प्रीतम
बिनु हरि झूठ पसारे ।।२।।

पूर्ण गुरु की संगति से आठ ही प्रहर प्रभु (का नाम) जपते हैं। आदि से, युगों के प्रारम्भ से जो स्वामी के सेवक हैं, उन भक्तों को नाम का ही आश्रय है। हे मेरे प्यारे मन ! (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक यह (सारगर्भित) शिक्षा देते हैं कि हरि के बिना (माया का समस्त) पसारा (आडम्बर) झूठा (विनश्वर) है ।।२।।

मन पिआरिआ जीउ मित्रा
हरि लदे खेप सवली ।।
मन पिआरिआ जीउ मित्रा
हरि दरु निहचलु मली ।।
हरि दरु सेवे अलख अभेवे
निहचलु आसणु पाइआ ।।
तह जनम न मरणु न आवण जाणा
संसा दूखु मिटाइआ ।।
चित्र गुपत का कागदु फारिआ
जमदूता कछू न चली ।।
नानकु सिख देइ मन प्रीतम
हरि लदे खेप सवली ।।३।।

हे प्यारे मन ! हे मित्र मन ! जिन्होंने हरि (नाम के सौदे की) गठड़ी (बोझ), जो सस्ती एवं लाभकारी है, हे प्यारे मन ! हे मित्र मन ! अपने सिर पर सम्हाल कर लाद ली है (अर्थात नाम का सौदा खरीदा है), वे हरि के निहचल दरवाजे पर जाकर (अवश्य) पहुँचते हैं। जो (जीव) अलक्ष्य और अभेद्य हरि के दरवाजे की सेवा करते हैं, वे निश्चय स्थान प्राप्त करते हैं (अर्थात् स्वरूप का दर्शन पाते हैं)। वहाँ (आत्मिक अवस्था में पहुँच कर) न जन्म है, न मरण है तथा न योनियों में आना-जाना है (अर्थात आवागमन समाप्त हो जाता) और (उस अलौकिक अवस्था में) सभी संशय और दुःख मिट जाते हैं। अब वे चित्र-गुप्त द्वारा (लिखित पुण्य-पाप कर्मों के) लेखों को फाड देते हैं, इसलिये यमदूतों का कुछ (वश) भी नहीं चलता। हे मेरे प्यारे मन ! (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक यह (सारगर्भित) शिक्षा देते हैं कि (मरने से पहले) हरि नाम की सस्ती (व सुखाली) गठड़ी (अपने जीवन में) उठा ले (जो अन्त समय तुझे सहायता करेगी) ।।३।।

मन पिआरिआ जीउ मित्रा
करि संता संगि निवासो ।।
मन पिआरिआ जीउ मित्रा ।।
हरि नामु जपत परगासो ।।

हे प्यारे मन ! हे मित्र मन ! तू सन्त जनों की संगति में निवास कर। हे जीव के मित्र प्यारे मन ! हरि नाम जपने से (ज्ञान का) प्रकाश होता है। सुखों को देने वाले स्वामी का स्मरण कर (जिसके स्मरण मात्र से) सभी (शुभ) इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। पूर्व जन्म में (किए हुए शुभ कर्मों की) कमाई के

सिमरि सुआमी सुखह गामी
इछ सगली पुंनीआ ॥
पुरबे कमाए स्री रंग पाए
हरि मिले चिरी विछुंनिआ ॥
अंतरि बाहरि सरबति रविआ
मनि उपजिआ बिसुआसे ॥
नानकु सिख देइ मन प्रीतम
करि संता संगि निवासो ॥४॥

कारण चिरकाल से बिछुड़े हुए (जीव को) लक्ष्मी को धारण करने वाले नारायण हरि (फिर) मिल जाता है। फिर तेरे जीवन में (पूर्ण) विश्वास होगा कि वह (हरि) बाह्याभ्यन्तर सर्वत्र समा रहा है! हे मेरे प्यारे मन! (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक यह (सारगर्भित) शिक्षा देते हैं कि सन्तों की संगति में (नित्य) निवास करो ॥४॥

मन पिआरिआ जीउ मित्रा
हरि प्रेम भगति मनु लीना ॥
मन पिआरिआ जीउ मित्रा
हरि जल मिलि जीवे मीना ॥
हरि पी आघाने अमृतबाने
सभ सुखा मन वुठे ॥
स्री धर पाए मंगल गाए
इछ पुंनी सतिगुर तुठे ॥
लड़ि लीने लाए नउ निधि पाए
नाउ सरबसु ठाकुरि दीना ॥
नानक सिख संत समझाई
हरि प्रेम भगति मनु लीना ॥५॥
१॥२॥

हे (मेरे) प्यारे मन! हे (मेरे) प्यारे मित्र! जिन्हों का मन हरि की ही प्रेमा-भक्ति में लीन हुआ है, हे जीव के प्यारे मित्र मन! वे हरि (नाम रूपी) जल प्राप्त करके मछली जैसे जीवित रहते हैं। जो (जीव गुरु की अमृत रूप बाणी द्वारा) हरि (नाम) रस पीकर तृप्त होते हैं, उनके मन में सभी प्रकार के सुख आकर निवास करते हैं। जिन पर सत्गुरु प्रसन्न होते हैं, वे (भाग्यशाली जीव) लक्ष्मी-पति (नारायण) प्राप्त करते हैं और (प्रभु प्राप्ति के) मंगलमय गीत गाते हैं और उनकी (सभी शुभ) इच्छाएँ पूर्ण होती हैं (ऐसे प्यारों को परमात्मा) अपनी शरण मे लगा देता है (अर्थात अपनी गोद में बिठा लेता है)। वे नव-निधियाँ (सब खजाने) प्राप्त करते हैं क्योंकि जिनको परमात्मा अपना नाम देता है, ऐसा समझो उनको सम्पूर्ण विभूति ठाकुर ने (प्रसन्न होकर) दे दी है। हे नानक! जिनको सन्तों ने यह शिक्षा देकर समझा-बुझा दिया है अर्थात् दृढ़ कराया है उनका मन हरि की प्रेमा-भक्ति में लीन हो गया है ॥५॥१॥२॥

सिरी रागु के छंत महला ५ डखणा ॥

विशेष : मुलतान साहीवाल आदि जो मेरे गुरुदेव, गुरु नानक साहब की जन्मभूमि से दक्षिण की ओर क्षेत्र (इलाके) हैं, वहाँ की भाषा में जो श्लोक व दोहा लिखा है, उसका नाम 'डखणा' रखा है। इस रचना मे (द) के स्थान पर (ड) अक्षर का प्रयोग किया गया है—यथा 'कोइ न दिसै डूजड़ो'।

हठ मझाहू मा पिरी
पसे किउ दीदार ॥
संत सरणाई लभणे
नानक प्राण अधार ॥१॥

(प्रश्न :) हृदय के भीतर ही मेरा प्यारा प्रियतम है, किन्तु 'उसका' दर्शन कैसे हो? (उत्तर :) हे नानक ! सन्तों की शरण में पड़ने से प्राणाश्रय (प्रिय) परमात्मा (का दर्शन) प्राप्त होता है ॥१॥

छंतु ॥ चरन कमल सिउ प्रीति रीति
संतन मनि आवए जीउ ॥
दुतीआ भाउ बिपरीति अनीति
दासा नह भावए जीउ ॥
दासा नह भावए बिनु दरसावए
इकु खिनु धीरजु किउ करै ॥
नाम बिहूना तनु मनु हीना
जल बिनु मछुली जिउ मरै ॥
मिलु मेरे पिआरे प्रान अधारे
गुण साध संगि मिलि गावए ॥
नानक के सुआमी धारि अनुग्रहु
मनि तनि अंकि समावए ॥१॥

परमात्मा के चरण-कमलो से प्रीति करने की रीति (मर्यादा) सन्तों की सगति से (हमारे) मन में आती है। द्वैत-भाव हरि के दासों को अच्छा नही लगता क्योंकि (एक को छोडकर अन्य को प्यार करना) मर्यादा के विरुद्ध है। हरि के दासों को (हरि के) दर्शन के बिना (कुछ भी) अच्छा नही लगता। इसलिए वे (दर्शन के बिना) एक क्षण भर भी धैर्य कैसे धारण कर सकते हैं? जो (जीव) नाम के बिना खालो (विहीन) हैं, वे तन और मन से कमजोर हैं (अर्थात वे कोडी के समान तुच्छ हैं)। जैसे जल के बिना मछली तड़फ-तडफ कर मर जाती है, ऐसे ही (उन हरि के दासों-भक्तों का) जीवन नाम के बिना क्षीण होता है। हे (बाबा) नानक के स्वामी ! हे (मेरे) प्राणों के आधार ! कृपा करके आकर मुझे मिलो। काश ! मैं साधु की संगति में आपके गुण गाऊँ और मन तन से मैं आपकी गोद (स्वरूप) में समा जाऊँ ॥१॥

डखणा ॥ सोहंवड़ो हभ ठाइ
कोइ न दिसै डूजड़ो ॥
खुल्हड़े कपाट
नानक सतिगुर भेटते ॥१॥

हे नानक ! सत्गुरु को मिलते ही (भ्रम, अज्ञान के) दरवाजे (फाटक) खुल जाते हैं और (जीव को समझ आ जाती है कि प्रिय-परमात्मा) सभी जगह (सर्वत्र व्याप्त है और) शोभायमान हो रहा है, 'उसके' बिना दूसरा और कोई दिखाई नही देता ॥१॥

छन्तु ॥ तेरे बचन अनूप अपार
संतन आधार बाणी बीचारीऐ
जीउ ॥ सिमरत सास गिरास
पूरन बिसुआस किउ मनहु बिसारीऐ
जीउ ॥
किउ मनहु बेसारीऐ निमख नहीं
टारीऐ गुणवंत प्रान हमारे ॥
मन बांछत फल देत है सुआमी
जीअ की बिरथा सारे ॥
अनाथ के नाथे स्रब कै साथे
जपि जूऐ जनमु न हारीऐ ॥
नानक की बेनंती प्रभ पहि
क्रिपा करि भवजलु तारीऐ ॥२॥

हे सुन्दर प्रियतम ! तेरे (मीठे) वचन अनुपम और अनन्त हैं और तेरी वाणी सन्तों का आधार है तथा वे (इस वाणी का) विचार करते हैं। वे (तुम्हारा नाम) पूर्ण विश्वास के साथ श्वास प्रश्वास स्मरण करते हैं और (आप जैसे प्रिय स्वामी को) सन्त-जन अपने मन से कैसे भुला सकते हैं ? हे गुणीवान प्रभु ! हे हमारे प्राणों के आधार ! हम आपको अपने मन से कैसे भुला सकते हैं। (हाँ) एक क्षण मात्र भी आपको (मन से) हटाना नही चाहिए। (हे मेरे स्वामी !) आप मन-वाँछित फल देते हैं और (प्रत्येक) जीव की पीडा को जानते हैं। हे भगवन ! आप अनाथो के नाथ हैं और सर्व के साथ हैं। (हमें आपका नाम) जपना चाहिए और यह मनुष्य जन्म (माया रूपी) जूऐ मे नही हारना चाहिये। हे प्रभु ! (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक की प्रार्थना है कि आप कृपा करके मुझे इस संसार-समुद्र से पार कीजिए ॥२॥

डखणा ॥ धूड़ी मजनु साध खे
साई थीए क्रिपाल ॥१॥

(प्रश्न : हे गुरुदेव ! सन्तजनो की सगति का लाभ कब होता है ? उत्तर) जब स्वामी प्रभु प्रसन्न (कृपालु) होते हैं, तभी सन्तो (चरणों) की धूली में स्नान होता है ॥१॥

लधे हभे थोकड़े
नानक हरि धनु माल ॥१॥

हे नानक ! (जिन भाग्यशाली जीवों को सन्तों की संगति से) हरि (नाम) का माल-धन प्राप्त होता है, ऐसा मानो कि उन्हें संसार के सभी (अमूल्य) पदार्थ मिल गए हैं ॥१॥

छंतु ॥ सुंदर सुआमी धाम भगतह
बिस्राम आसा लगि जीवते जीउ ॥
मनि तने गलतान सिमरत प्रभ नाम
हरि अंमृत पीवते जीउ ॥
अंमृतु हरि पीवते सदा थिरु थीवते
बिखै बनु फीका जानिआ ॥
भए क्रिपाल गोपाल प्रभु मेरे
साध संगति निधि मानिआ ॥
सरब सो सूख आनंद घन पिआरे
हरि रतनु मन अंतरि सीवते ॥
इकु तिलु नही विसरै प्रान आधारा
जपि जपि नानक जीवते ॥३॥

(प्यारे) भक्तजनों के विश्राम के लिये मेरा सुन्दर स्वामी एक प्रकार का धाम है, जिसकी आशा मे लगकर वे जीते हैं। (भक्तजन) प्रभु का नाम स्मरण करके तन और मन से (प्रभु चरणों मे मग्न होकर) हरि (नाम रूपी) अमृत रस का पान करते हैं। वे हरि के अमृत (नाम) रस का पान करके सर्वदा स्थिरता को प्राप्त होते हैं, क्योंकि उन्होने (संसार के) विषवत् पदार्थों के जल (रस) को पीकर (नि सार) जान लिया है। जब मेरे गोपाल प्रभु कृपालु हुए, तब उन्होंने साधु-सगति को (एक अमृत का महान) खजाना माना है। हे प्यारे ! जो (भक्त) हरि (नाम) रत्न को (अपने) मन में परो कर रखते हैं, वे सर्व सुखो और निरन्तर आनन्द का अनुभव करते हैं। हे नानक ! (भक्त-जन) एक तिल भर भी अपने प्राणो के आधार (प्रभु) को नही विस्मृत करते और वे ऐसे प्यारे स्वामी (के नाम) को जप-जप-कर जीवित रहते हैं ॥३॥

डखणा ॥ जो तउ कीने आपणे
तिना कूं मिलिओहि ॥
आपे ही आपि मोहिओहु
जसु नानक आपि सुणिओहि ॥१॥

हे नानक ! जिनको 'उसने' (परमात्मा ने) अपना बनाया है, उन्हो को ही 'वह' मिलता है। (हे हरि ! उन भक्तों से) अपना यश सुन कर तुम आप ही मोहित हो जाते हो ॥१॥

छंतु ॥ प्रेम ठगउरी पाइ रीझाइ
गोबिंद मनु मोहिआ जीउ ॥
संतन कै परसादि अगाधि
कंठे लगि सोहिआ जीउ ॥
हरि कंठि लगि सोहिआ दोख सभि
जोहिआ भगति लख्यण
करि वसि भए ॥
मनि सरब सुख वुठे गोविंद तुठे
जनम मरणा सभि मिटि गए ॥
सखी मंगलो गाइआ इछ पुजाइआ
बहुड़ि न माइआ होहिआ ॥
करु गहि लीने नानक प्रभ पिआरे
संसारु सागरु नही पोहिआ ॥४॥

(हे भाई ! भक्त जनो ने) प्रेम की ठग लेने वाली बूटी खिला-कर और इस प्रकार 'उसे' प्रसन्न करके गोबिन्द का मन मोहित कर लिया है। सन्तो की प्रसन्नता से अथाह प्रभु के गले लग कर (भक्त) सुशोभित हुआ है। (हाँ) हरि के गले लग कर वह सुशोभित हुआ है, उसके सभी दोष दूर हो गए हैं और भक्ति के लक्षण (शुभ गुणो को) देखकर (गोबिन्द जी भक्त के) वश मे हो गए हैं। गोबिन्द जी प्रसन्न हो गए मन मे सारे सुख आ गए और जन्म-मरण के सारे दुख मिट गए, इस प्रकार (आत्मिक) इच्छा पूर्ण होते ही (भक्त) मंगलमय गीत गाने लगा। ऐसे बन्दे (भक्त) को फिर माया के धक्के नही लगते। हे नानक ! (मेरे) प्यारे प्रभु ने हाथ पकड लिया अब संसार सागर (मेरे जीवन पर) कोई प्रभाव (जोर) नही डाल सकता ॥४॥

डखणा ॥ साई नामु अमोलु
कीम न कोई जाणदो ॥
जिना भाग मथाहि
से नानक हरिरंगु माणदो ॥१॥

(मेरे) स्वामी (प्रभु) का नाम अमूल्य है, उसकी कीमत कोई भी (जीव) नहीं आंक सकता। हे नानक! जिन के मस्तक में (श्रेष्ठ) भाग्य हैं, वे (ही) हरि के रंग (आनन्द) का अनुभव करते हैं ॥१॥

छंतु ॥ कहते पवित्र सुणते सभि
धंनु लिखतीं कुलु तारिआ जीउ ॥
जिन कउ साधू संगु नाम हरि रंगु
तिनी ब्रहमु बीचारिआ जीउ ॥
ब्रहमु बीचारिआ जनमु सवारिआ
पूरन किरपा प्रभि करी ॥
करु गहि लीने हरिजसो दीने
जोनि ना धावै नह मरी ॥
सतिगुर दइआल किरपाल भेटत
हरे कामु क्रोधु लोभु मारिआ ॥
कथनु न जाइ अकथु सुआमी
सदकै जाइ नानकु वारिआ ॥४॥
१॥३॥

(जो जीव प्रेम-रग से हरि का नाम) कहते हैं वे पवित्र हैं और जो (हरि नाम को) सुनते (भी) हैं, वे सभी (जीव) धन्य हैं अर्थात् धन्यवाद के पात्र हैं तथा जो (हरि नाम की महिमा को) लिखते हैं उन्होने तो अपनी पूरी कुल को (भव-सागर से पार) उतार दिया है। जिन को साधु की सगति (प्राप्त हुई है) और (सगति के प्रभाव से) हरि नाम का (गूढ़ पक्का) रंग (अपने जीवन मे) चढ़ाया है, उन्होने ही (केवल) ब्रह्म का (निश्चयपूर्वक) विचार किया है। (हाँ) उन्होने ब्रह्म का विचार करके अपना (मनुष्य) जन्म सफल किया है और ऐसे जीवों पर ही प्रभु ने पूर्ण कृपा (दृष्टि) की है। (प्रभु) उनके हाथ पकड कर अपना कर लिया है और उन्हे हरि यश दिया है, अब वे योनियो मे नही भटकते और न ही (बारबार) मरते है। जब सत्गुरु दयालु होते हैं, तभी कृपालु प्रभु से मिलकर (जीव) हरे भरे (आनन्दी) होते हैं और काम, क्रोध, लोभादि (विकारो) को मार देते हैं। अकथनीय स्वामी का कथन नही किया जा सकता, (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक तो (ऐसे स्वामी पर) बलिहारी, (हाँ कुर्बान) जाता है ॥ ४॥१॥३॥

विशेष अगले शब्द का शीर्षक है 'वणजारा' एक श्रद्धालु वणजारा शिष्य और चौथी पातशाही, गुरु रामदास की शरण मे उपदेश लेने आया था। गुरुदेव वणजारे के ब्याज से सर्व हित-कारी उपदेश करते हैं। इस शब्द के ६ अंक है। पहली और छेवी की 'रहाउ' के पदो मे दो बार 'वणजारा' सम्बोधन आया है। इससे भी प्रतीत होता है कि किसी वणजारे के प्रति यह शब्द उच्चारण हुआ है। वणजारे से भाव प्रत्येक जीव के साथ है जो नाम का सौदा खरीदने और स्वासो रूपी पूँजी लेकर इस ससार में आया है। 'रहाउ' के प्रत्येक पद में गुरु की महिमा है। छ वें अक में गुरु शब्द नही गुरमुख की महिमा कही है और जो वस्तुत: गुरु की ही महिमा है क्योंकि गुरमुख गुरु को प्राप्त करके गुरु की बताई हुई कमाई करके ही बनता है।

सिरी रागु महला ४ वणजारा ॥

हरि हरि उतमु नामु है
जिनि सिरिआ सभु कोइ जीउ ॥
हरि जीअ सभे प्रतिपालदा
घटि घटि रमईआ सोइ ॥
सो हरि सदा धिआईऐ
तिसु बिनु अवरु न कोइ ॥
जो मोहि माइआ चितु लाइदे
से छोडि चले दुखु रोइ ॥
जन नानक नामु धिआइआ
हरि अंति सखाई होइ ॥१॥

जिस हरि ने सबको उत्पन्न किया है, उस सर्व दुःखो को दूर करने वाले हरि का नाम (सर्व साधनो से) उत्तम है। हरि जी सभी (जीवो) की प्रतिपालना करता है और 'वह' रमईया प्रभु प्रत्येक घर मे (सर्वत्र) व्यापक हो रहा है। ऐसे हरि का (तू) सदा ध्यान कर क्योंकि 'उसके' बिना जीव का अन्य कोई भी (सहायक) नही है। (प्रभु हरि को छोडकर) जो जीव मोह, माया में चित्त लगाते हैं, वे (मृत्यु आने पर) (सभी पदार्थ यही) छोड कर दुःखी होकर रोते हुए जाते हैं। हे नानक! जिन (हरि के) दासो ने (हरि) नाम का ध्यान किया है, हरि उनका अन्त काल में सहायक होगा ॥१॥

मै हरि बिनु अवरु न कोइ ॥
हरि गुर सरणाई पाईऐ
वणजारिआ मित्रा
वडभागि परापति होइ ॥१॥रहाउ॥

(हे प्यारे!) मेरा हरि के बिना और कोई आश्रय नही है हरि (नाम) का व्यापार करने आए वणजारे मित्र! गुरु की शरण प्राप्त होने पर हरि (नाम) मिलता है, किन्तु गुरु भी बडे भाग्य से ही प्राप्त होता है ॥१॥ रहाउ॥

संत जना विणु भाईआ
हरि किनै न पाइआ नाउ ॥
विचि हउमै करम कमावदे
जिउ वेसुआ पुतु निनाउ ॥

सन्त जनों (की कृपा) के बिना किसी भी पुरुष ने (हरि) नाम को प्राप्त नही किया। जो (मनमुख) अन्दर से अहकार धारण करके कर्म करते हैं, (वे परमात्मा के भक्त नही हैं)। जैसे वैश्या के पुत्र के (पिता का) नाम नहीं होता (अर्थात् ऐसे कैसे कहा जा सकता है कि वह किसका पुत्र है, वैसे ही जो जीव मन-

पिता जाति ता होईऐ
गुरु तुठा करे पसाउ ॥
वडभागी गुरु पाइआ
हरि अहिनिसि लगा भाउ ॥
जन नानकि ब्रहमु पछाणिआ
हरि कीरति करम कमाउ ॥२॥

मुखता धारण करके परमात्मा से विमुख है, उसे भगवान का पुत्र नही कहा जा सकता)। अपने पिता (परमेश्वर) की जाति वाले तभी हो सकते हैं (अर्थात् सत् चित्त आनन्द यह जीव तभी हो सकता है), जब गुरु प्रसन्न होकर कृपा करता है। भाग्यशाली (जीवो) ने ही गुरु प्राप्त किया है और (गुरु की कृपा द्वारा) उनका प्रेम दिन-रात हरि के साथ लगा रहता है। हे नानक ! वे ब्रह्म को पहचानते हैं और हरि यश गायन रूप कर्म करते रहते हैं ॥२॥

मनि हरि हरि लगा चाउ ॥
गुरि पूरै नामु दृड़ाइआ
हरि मिलिआ हरिप्रभ नाउ ॥१॥
रहाउ॥

(उन जीवों के ही) मन में हरि नाम जपने का उत्साह उत्पन्न हुआ है, जिनको पूर्ण गुरु ने (सच्चा) नाम (हृदय में) दृढ कराया है और ऐसे जीवो को हरि (नाम), (हाँ) हरि प्रभु प्राप्त होता है॥१॥ रहाउ॥

जब लगु जोबनि सासु है
तब लगु नामु धिआइ ॥
चलदिआ नालि हरि चलसी
हरि अंते लए छडाइ ॥
हउ बलिहारी तिन कउ
जिन हरि मनि वुठा आइ ॥
जिनी हरि हरि नामु न चेतिओ
से अंति गए पछुताइ ॥
धुरि मसतकि हरिप्रभि लिखिआ
जन नानक नामु धिआइ ॥३॥

(हे भाई !) जब तक यौवन है, (हाँ) (शरीर में) श्वास है, तब तक हरि के नाम का ध्यान कर, क्योकि परलोक जाने वालों के साथ हरि (नाम) साथ जायेगा और अन्त (काल) मे (यम से) छुडा देता है। मैं उन के ऊपर बलिहारी जाता हूँ, जिन के मन में हरि ने आकर निवास किया है, पर जिन्होंने दुःख हर्ता हरिनाम का चिन्तन नही किया है, वे अन्त समय पश्चाताप करते हुए जायेंगे। हे नानक ! जिन के मस्तक पर (भाग्यो मे) पूर्व से ही हरि-प्रभु ने (उत्तम) भाग्य लिखे हैं, वे ही दास (हरि का) ध्यान करते हैं ॥३॥

मन हरि हरि प्रीति लगाइ ॥
वडभागी गुरु पाइआ
गुरसबदी पारि लघाइ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! दुःख हर्ता हरि के साथ प्रीति कर। जिन भाग्यशाली (जीवों) ने गुरु प्राप्त किया है, उनको (प्रभु) गुरु के शब्द के द्वारा (ससार-सागर से) पार निकाल देता है॥१॥ रहाउ ॥

हरि आपे आपु उपाइदा
हरि आपे देवै लेइ ॥
हरि आपे भरमि भुलाइदा
हरि आपे ही मति देइ ॥

(प्रश्न: जिनको गुरु ने शब्द देकर भव-सागर से पार किया है, उनका निश्चय कैसा होता है ? उत्तर) हरि आप ही अपने में से (सभी जीव) उत्पन्न करता है और हरि आप ही (श्वास) देता है और आप ही वापस ले लेता है। हरि आप ही (जिनको

गुरमुखा मनि परगासु है
से विरले केई के ॥
हउ बलिहारी तिन कउ
जिन हरि पाइआ गुरमते ॥
जन नानकि कमल परगासिआ
मनि हरि हरि वुठड़ा हे ॥४॥

फंसाना चाहता है, उनको) भ्रम में भुलाता है और हरि आप ही (जिनको मुक्ति देना चाहता है, उनको) (श्रेष्ठ) मति देता है। जिन गुरमुखों के मन में गुरु के उपदेश द्वारा (ज्ञान का) प्रकाश हुआ है, ऐसे जीव (संसार मे) कोई विरले (बहुत ही थोड़े होते) हैं। मैं उन पर बलिहारी जाता हूँ, जिन्होने गुरु की मति लेकर हरि को प्राप्त किया है। हे नानक ! जिन हरि के दासों के मन में हरि (नाम) निवास करता है, उनके हृदय रूपी कमल विकसित हुए हैं (अर्थात् उन्हें परम आनन्द प्राप्त हुआ है) ॥४॥

मनि हरि हरि जपनु करे ॥
हरि गुर सरणाई भजि पउ
जिंदू सभ किलविख दुख परहरे
॥१॥रहाउ॥

हे जीव ! मन लगाकर हरि (नाम) का जाप कर। गुरु की शरण दौड कर ग्रहण कर तो वह तुम्हे हरि (से मिला के तुम्हारे) सम्पूर्ण पाप और दुःख दूर कर दे ॥१॥ रहाउ॥

घटि घटि रमईआ मनि वसै
किउ पाईऐ कितु भति ॥
गुरु पूरा सतिगुरु भेटीऐ
हरि आइ वसै मनि चिति ॥
मै धर नामु अधारु है
हरिनामै ते गति मति ॥
मै हरि हरि नामु विसाहु है
हरिनामै ही जति पति
जन नानक नामु धिआइआ
रंगि रतड़ा हरि रंगि रति ॥५॥

(प्रश्न·) रमणशील प्रभु (रमईआ), जो प्रत्येक प्राणी के मन (हृदय) में निवास कर रहा है (किन्तु जीव प्रत्यक्ष नहीं देख पाता है), वह' किस साधन से प्राप्त (दर्शन) हो ? (उत्तरः) पूर्ण सत्गुरु को मिलने से हरि (स्वय) आकर मन और चित्त में निवास करता है। मेरे लिये (हरि)नाम ही टेकऔर आश्रय है। हरि नाम (जपने) से ही गति प्राप्त करने की (उत्तम) मति होती है। मुझे हरि, (हाँ) हरिनाम का ही विश्वास है कि हरि नाम (जपने) से जाति (की उत्तमता) और प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। हे नानक ! जिन्होने (हरि) नाम का ध्यान किया है, वे (नाम) रंग में अनुरक्त होकर हरि, (हाँ) हरि रंग मे उनकी प्रीति बनी रहती है ॥५॥

हरि धिआवहु हरिप्रभु सति ॥
गुर बचनी हरिप्रभु जाणिआ
सभ हरिप्रभु ते उतपति ॥१॥रहाउ॥

हे भाई ! सर्व दुःखों को हरण करने वाले (हरि) सत्यस्रूप हरि प्रभु का ध्यान करो। जिन्होंने गुर के वचनों द्वारा हरि प्रभु को जाना है, (उनको पूर्ण निश्चय है कि) सभी कुछ हरि प्रभु से ही उत्पन्न हुआ है ॥१॥ रहाउ ॥

जिन कउ पूरबि लिखिआ
से आइ मिले गुर पासि ॥
सेवक भाइ वणजारिआ मित्रा
गुरु हरि हरि नामु परगासि ॥

जिनके मस्तक पर पूर्व लिखित (संयोग का) लेख परमात्मा ने लिखा है, वे (भाग्यशाली जीव) गुरु के (अति) समीप आकर मिलते हैं। हे वणजारे मित्र ! गुरु (ऐसे) सेवकों में (सेवा का) प्यार देखकर, दुःख हर्ता हरि नाम का (ज्ञान देकर) (जीवन में) प्रकाश दे देता है। धन्य है, धन्य है ऐसे व्यापारियों का व्यापार,

धनु धनु वणजु वापारीआ
जिन वखरु लदिअड़ा हरि रासि ॥
गुरमुखा हरि मुख उजले
से आइ मिले हरि पासि ॥
जन नानक गुरु तिन पाइआ
जिना आपि तुठा गुणतासि ॥६॥

जो हरिनाम की पूँजी का सौदा लाद लेते हैं। गुरमुखों के मुख (ईश्वर की) दरबार में उज्जवल होते हैं और वे ही हरि के (अति) समीप आकर (सदा-सदा के लिये) मिलते हैं। हे नानक! (हरि के उन) दासों ने (ही) गुरु प्राप्त किया है, जिन पर गुणों के समुद्र (हरि) आप प्रसन्न हुआ है ॥६॥

हरि धिआवहु सासि गिरासि ॥
मनि प्रीति लगी तिना गुरमुखा
हरि नामु जिना रहरासि ॥१॥
रहाउ ॥१॥

(हे भाई!) श्वास लेते हुए और (मुख में) ग्रास डालते हुए हरि का ध्यान करो। उन गुरमुखो के मन मे हरि की प्रीति लगी है, जिन्होंने अपने (जीवन) मार्ग में हरि नाम की पूँजी इकट्ठी की है अथवा जिन का सच्चा मार्ग हरि का नाम है ॥१॥रहाउ॥१॥

मेरे विचार में सिरी राग की वार

वार का शब्दिक अर्थ है 'यश का गीत' जिसमें किसी योद्धा शूरवीर, जिसने धर्म-युद्ध मे सिर दिया हो अथवा शूरवीरता दिखाई हो, की स्तुति का वर्णन होता है। इसमें सामान्यत वीर रस की प्रधानता होती है और इसको गाने वाले अथवा रचयिता भी भाट अथवा चारण (ढाढी) होते हैं। मेरे गुरुदेव अपने आप को प्रभु का ढाढी घोषित करते हैं। सर्वप्रथम गुरु नानक साहब ने 'वार' को वीर रस के क्षेत्र से निकाल कर आध्यात्मिकता के शान्त और सौम्य वातावरण में खडा किया। इस परिवर्तन के सम्बन्ध मे 'पुरातन जन्मसाखी' की २३वी साखी, जो आसा की वार की अवतरणिका के रूप में लिखी गई है, विशेष उल्लेखनीय है। कालान्तर में वार का अर्थ हुआ कोई भी यश का गीत। श्री गुरु ग्रन्थ साहब में वार का अर्थ है 'हरि के यश का गीत।' वार प्राय' (छन्द विशेष) में किया जाता था जिसका अन्तिम पद अन्य पदो से छोटा होता था तथा उदाहरण देने के लिए साथ में दोहे या श्लोक का भी गायन होता था। इस वार में जो शेष श्लोक रह गए उन्हे मेरे गुरुदेव ने [गुरु ग्रन्थ साहब के अन्त में लिखकर शीर्षक लिख दिया "सलोक वारां ते वधीक।" वार गाने वाले लोग ढाढ सारंगी के साथ गाते थे यथा—"ढाढी हरि प्रभु खसम का दरि कै दरि आइआ" (पौडी २१, पृष्ठ ६१)

इस वार का नाम 'सिरी राग की वार' इसलिए है क्योंकि 'सिरी राग' मे उच्चरित है। 'सिरी राग की वार' की सम्पूर्ण पौड़ियां चौथी पातशाही, गुरु रामदास साहब की हैं इसलिए ऊपर 'महला चौथा' लिखा हुआ है और श्लोको मे विशेष तौर पर अंक दिखाया गया है कि किस किस गुरु के द्वारा लिखे गए हैं।

पुरातन जन्म साखी के अनुसार शेख फरीद शकरगज के गद्दीदार शेख ब्रहम ने जब सुना कि गुरु नानक साहब ने खुदा रूपी नायक की वार गाई है तो उसने गुरुदेव को कहा कि वार सुनाओ मैं देखूं कि आप ने उस वार में 'एक' का कैसे निरूपण किया है, जब कि 'वार' तो दो के बिना नही होती। अतः दो या दो से अधिक सूरवीरो के यश के वर्णन को वार कहते थे। मेरे गुरुदेव ने वारों में आसुरी वृत्ति पर दैवी वृत्ति की ओर दैवी गुणो के स्वामी हरि प्रभु का यश वर्णन किया है जिसमें उपदेश तथा अन्य शुभ भाव प्रकट किए हैं।

सिरी रागु की वार महला ४ सलोका नालि ॥

सलोक मः ३॥
रागा विचि सिरीरागु है
जे सचि धरे पिआरु ॥
सदा हरि सचु मनि वसै
निहचल मति अपारु ॥
रतनु अमोलकु पाइआ
गुर का सबदु बीचारु ॥
जिहवा सची मनु सचा
सचा सरीर अकारु ॥
नानक सचै सतिगुरि सेविऐ
सदा सचु वापारु ॥१॥

(हे श्री राग गायन करने वाले प्यारे !) सभी रागों में से श्री राग का गायन तब उत्तम है, यदि (गा सुन कर जीव) सत्य परमात्मा से प्रेम करे, सत्य स्वरूप हरि सदा मन में निवास करे, और बुद्धि भी अनन्त (अपार) परमात्मा में स्थिर रहे। जिन्होंने गुरु के शब्द पर विचार किया है, उन्होंने (नाम का) अमूल्य रत्न प्राप्त किया है। उनकी जिह्वा भी सच्ची है, उनका मन भी सच्चा है और शरीर का रूप भी सच्चा (पवित्र) है। हे नानक! यह सच्चा व्यापार सदा तभी (सम्भव) है, यदि जीव सच्चे गुरु की सेवा (प्यार से) करे ॥१॥

मः ३॥ होरु बिरहा सभ धातु है
जब लगु साहिब प्रीति न होइ ॥
इहु मनु माइआ मोहिआ
वेखणु सुनणु न होइ ॥
सह देखे बिनु प्रीति न ऊपजै
अंधा किआ करेइ ॥
नानक जिनि अखी लीतीआ
सोई सचा देइ ॥२॥

(प्रभु स्वामी को छोडकर) औरो से प्रीति करनी सब झूठ (विनश्वर) है, जब तक (प्रभु साहब से) प्रीति नही होती, (इस जीव का) मन माया ने मोहित कर दिया है, इसलिये (माया ग्रसित जीव का) देखना और सुनना (सत्य) नही (अर्थात् वह न परमात्मा को प्रत्यक्ष देखता है और न 'उसका' (सच्चा नाम) (हृदय से) सुन सकता है। (परमेश्वर) पति को (प्रत्यक्ष) देखे बिना, (जीव की) प्रीति (सत्य स्वरूप परमात्मा के साथ) कैसे उत्पन्न हो सकती है ? (यह मन अज्ञान से) अन्धा हो रहा है। (फिर अब आप ही बताएँ कि यह अज्ञानी जीव प्रभु को प्रत्यक्ष कैसे देख सकता है ?) हे नानक ! जिस परमात्मा ने (मोह माया में डालकर जीव से) (ज्ञान की) आँखें ले ली हैं, 'वह' सच्चा परमेश्वर ही फिर (आँखें) दे सकता है ॥२॥

पउड़ी ॥ हरि इको करता इकु
इको दीबाणु हरि ॥
हरि इकसै दा है अमरु
इको हरि चिति धरि ॥
हरि तिसु बिनु कोई नाहि
डरु भ्रमु भउ दूरि करि ॥
हरि तिसै नो सालाहि
जि तुधु रखै बाहरि घरि ॥
हरि जिस नो होइ दइआलु
सो हरि जपि भउ बिखमु तरि ॥१॥

(हे भाई !) हरि (परमात्मा) एक है, 'वह' (समस्त सृष्टि का) एक (मात्र) कर्त्ता है, 'उस' हरि की दरबार (अनुपम और अद्वितीय) है (जहाँ बैठकर न्याय करता है)। सभी जगह 'उस' एक हरि का (ही) हुकम (चल रहा) है, इसलिए एक हरि को (अपने) चित में धारण कर। 'उस' हरि के बिना दूसरा कोई भी (सहायक अथवा समर्थ) नही है, इसलिये 'उस' हरि का (आश्रय लेकर मन से) भय, भ्रम एवं (जमदूतों का) डर दूर कर। (हे जीव !) 'उस' हरि की स्तुति कर, जो घर मे और घर से बाहर (सभी जगह) तेरी रक्षा करता है। हरि जिस पर दयालु होता है, वह (जीव) हरि को जपकर कठिन (दुष्कर) भव (ससार) सागर से तैर कर पार हो जाता है ॥१॥

सलोक मः १॥
दाती साहिब संदीआ
किआ चलै तिसु नालि ॥
इक जागंदे ना लहंनि
इकना सुतिआ देइ उठालि ॥१॥

वस्तुएँ (पदार्थ सभी) साहब (प्रभु) की हैं, पर 'उस' पर किसी का क्या वश (बल) चल सकता है ? कुछ तो जागते हुए भी नही पाते हैं और कुछ सोये हुओ को (दाता) उठा कर दे देता है ॥१॥

मः १॥ सिदकु सबूरी सादिका
सबरु तोसा मलाइकां ॥
दीदारु पूरे पाइसा
थाउ नाही खाइका ॥२॥

श्रद्धालु साधक (पुरुषो को) विश्वास (निश्चय) और सब्र (सन्तोष का) तथा देव स्वरूप पुरुषो को सब्र सहनशीलता रूप सन्तोष का मार्ग का खर्च (तोशा) है। वे पूर्ण परमात्मा का (पूर्ण) दर्शन प्राप्त करते हैं, किन्तु केवल उदरभरि (पेट)भरने वाले अथवा गप्प मारने वाले मूर्ख (खाइका) के लिये (परमात्मा की दरबार मे कोई भी) स्थान नहीं है ॥२॥

पउड़ी ॥ सभ आपे तुधु उपाइ कै
आपि कारै लाई ॥
तूं आपे वेखि विगसदा
आपणी वडिआई ॥

(हे कर्त्ता !) तुम आप ही सृष्टि उत्पन्न करके आप ने ही (विभिन्न) धंधों में लगाई है। तुम आप ही अपनी बड़ाई देख कर प्रसन्न होते हो। हे हरे ! आप के (हुकम से) बाहर कुछ भी नहीं है, तू सच्चा स्वामी है। तू अपने आप ही सारे स्थानो में

हरि तुधहु बाहरि किछु नाही
तू सचा साई ॥
तूं आपे आपि वरतदा
सभनी ही थाई ॥
हरि तिसै धिआवहु संत जनहु
जो लए छडाई ॥२॥

वरत रहे हो। हे सन्त जनो ! तुम 'उस' हरि का ध्यान करो जो (मरने से पहले माया के बन्धनों से और अन्त के समय यम के दूतों से अथवा आवागमन के चक्र से) छुड़ा लेता है ॥२॥

सलोक मः १॥

फकड़ जाती फकड़ु नाउ ॥
सभना जीआ इका छाउ ॥
आपहु जे को भला कहाए ॥
नानक तापरु जापै
जा पति लेखै पाए ॥१॥

जाति (का अहंकार करना) व्यर्थ है और नाम (बड़प्पन का अभिमान भी) व्यर्थ है (अर्थात सांसारिक बड़ाई में कोई लाभ नहीं है)। सभी जीवों पर एक (ईश्वर) की ही छाया है (अर्थात 'वह' एक सभी जीवों का आश्रय है)। यदि कोई अपने आप को (जाति या नाम बड़ाई के बल पर अपने को) अच्छा कहलाता है, (तो वह अच्छा नहीं बन जाता)। हे नानक ! (इस जीव के भले होने का) तभी पता चलता है, जब इसकी प्रतिष्ठा (परलोक में) लेखे में होगी (भाव जिसे हरि की दरबार में प्रतिष्ठा मिलती है) ॥१॥

मः २॥ जिसु पिआरे सिउ नेहु
तिसु आगै मरि चलीऐ ॥
ध्रिगु जीवणु संसारि
ता कै पाछै जीवणा ॥२॥

जिस प्यारे के साथ स्नेह हो उसके (शरीर त्याग से) पहले ही मर जाना चाहिए। प्यारे के पीछे संसार में जीवित रहना ही धिक्कार है ॥२॥

पउड़ी ॥ तुधु आपे धरती साजीऐ
चंदु सूरजु दुइ दीवे ॥
दसचारि हट तुधु साजिआ
वापारु करीवे ॥
इकना नो हरि लाभु देइ
जो गुरमुखि थीवे ॥

(हे भगवन् !) तुमने स्वयं ही धर्ती सृजन की है, और (इसके प्रकाश के लिए) चाँद तथा सूर्य दो दीपक बनाए हैं। (जीवों के) व्यापार के लिए चौदह लोक मानों (बड़ी) दुकानें सृजन कर दी हैं। हे हरि ! किन को तो (तुम स्वयं) लाभ देते हो, जो गुरमुख हो जाते हैं। (ऐसे गुरमुख) जिन्होंने सत्यस्वरूप परमात्मा (का नाम) अमृत का पान किया है, उन्हें यमकाल व्याप्त नहीं होता

तिन जमकालु न विआपई
जिन सचु अंमृतु पीवे ॥
ओइ आपि छुटे परवार सिउ
तिन पिछै सभु जगतु छुटीवे ॥३॥

(अर्थात् यमदूत नहीं पकड़ते)। (इस संसार रूपी बन्धनों से) वे स्वयं परिवार सहित छूट जाते हैं, किन्तु उनके पीछे (चलकर अर्थात् उनकी संगति में रहकर नाम जपते हुए) सारा जगत भी छूट जाता है ॥३॥

सलोक मः १ ॥
कुदरति करि कै वसिआ सोइ ॥
वखतु वीचारे सु बंदा होइ ॥
कुदरति है कीमति नही पाइ ॥
जा कीमति पाइ त कही न जाइ ॥
सरै सरीअति करहि बीचारु ॥
बिनु बूझे कैसे पावहि पारु ॥
सिदकु करि सिजदा
मनु करि मखसूदु ॥
जिह धिरि देखा
तिह धिरि मउजूदु ॥१॥

कुदरत (माया-शक्ति) की रचना करके (प्रभु) स्वयं ही इसमें बस रहा है। जो (जीव) (मनुष्य देही के) समय का विचार करता है (अर्थात जो यह सोचता है, कि इस संसार में मनुष्य-जन्म किस लिए प्राप्त हुआ है), वह 'उस' प्रभु का (सच्चा) बन्दा (सेवक) है। कुदरत (वाला परमात्मा सचमुच इसी रचना में व्याप्त है.) किन्तु 'उसकी' कीमत नहीं पाई जा सकती। यदि कोई 'उसकी' कीमत पा भी जाय तो भी 'उसका' कथन नहीं किया जा सकता (तात्पर्य यह है कि यदि कोई सन्त महापुरुष परमेश्वर को जानता भी है, तो भी 'उसका' वर्णन नहीं कर सकता)। शरह शरीअत (इस्लामी धर्म-शास्त्र के हुकम पर यदि) विचार भी कर लिया (तो क्या लाभ हो गया?) (परमात्मा के स्वरूप को) जानने के बिना (अनुभव किये बिना) 'उसका' अन्त कैसे प्राप्त हो सकता है? (हे प्यारे!) विश्वास रखा तो मानो तुमने (पृथ्वी पर सिर रखकर नमस्कार) सिजदा की। मन (का इष्ट केवल परमात्मा को) करो यही तेरा लक्षय हो, तब तू जिस तरफ भी देखेगा उधर ही (ईश्वर) मौजूद (प्रत्यक्ष) दिखाई देगा ॥१॥

मः ३॥ गुर सभा ऐव न पाईऐ
ना नेड़ै ना दूरि ॥
नानक सतिगुरु तां मिलै
जा मनु रहै हदूरि ॥२॥

गुरु की संगति न तो समीप रहने से और न ही दूर रहने से प्राप्त होती है। हे नानक! सत्गुरु तब मिलता है, जब (शिष्य का) मन गुरु के सन्मुख (प्रत्यक्ष) रहता है, (अर्थात जब आठ ही प्रहर गुरु को चाहेगा (जैसे राजा शिवनाभ लंका में सत्गुरु नानक साहब के दर्शन के लिए व्याकुल रहता था। जिसे गुरुदेव ने स्वयं उसके पास लंका में जाकर दर्शन देकर कृतार्थ किया।) ॥२॥

पउड़ी ॥ सपत दीप सपत सागरा
नव खंड चारि वेद दसअसट पुराणा॥

हे हरि! सप्त द्वीप, सात समुद्र, नव खण्ड, चार वेद, और अठारह पुराण, इन सब में तू व्यापक है; रहे हो और तू सभी को अच्छे (प्रिय) लगते हो। हे सारङ्ग पाणे (धनुष धारी विष्णु

हरि सभना विचि तूं वरतदा
हरि सभना भाणा ॥
सभि तुझै धिआवहि जीअ जंत
हरि सारगपाणा ॥
जो गुरमुखि हरि आराधदे
तिन हउ कुरबाणा ॥
तूं आपे आपि वरतदा
करि चोज विडाणा ॥४॥

हरि) ! सभी जीव-जन्तु आपका ही ध्यान करते हैं। किन्तु मैं उन पर कुर्बान जाता हूँ जो गुरु के सम्मुख होकर (गुरमुख बन-कर) हे हरि ! आपकी अराधना करते हैं। (हे प्रभु !) तू आप ही आश्चर्य जनक कौतुक करता हुआ अपने आप ही (इस लीला में) वरत रहा है ॥४॥

सलोक मः ३॥
कलउ मसाजनी किआ सदाईऐ
हिरदै ही लिखि लेहु ॥
सदा साहिब कै रंगि रहै
कबहूं न तूटसि नेहु ॥
कलउ मसाजनी जाइसी
लिखिआ भी नाले जाइ ॥
नानक सह प्रीति न जाइसी
जो धुरि छोडी सचै पाइ ॥१॥

लेखनी (कलम) और मसी पात्र (दवात) क्या मँगवानी है, हृदय में ही लिख ले (अर्थात हृदय में हरि नाम का उपदेश धारण करले से तू) सदा साहब के (प्रेम) रंग में (मस्त) रहेगा और (तेरा) स्नेह (प्यार) (साहब परमात्मा से) कभी भी नहीं टूटेगा। कलम और मसी पात्र तो नष्ट हो जाएँगें और लेखा लिखे हुए कागज भी तुम्हारे) साथ ही नष्ट हो जाएँगे, किन्तु हे नानक ! जो प्रीति सच्चे पति परमेश्वर ने (हृदय में) डाल दी है वह (कदाचित) नष्ट (व्यर्थ) नही होगी ॥१॥

मः ३॥
नदरी आवदा नालि न चलई
वेखहु को विउपाइ ॥
सतिगुरि सचु दृड़ाइआ
सचु रहहु लिव लाइ ॥
नानक सबदी सचु है
करमी पलै पाइ ॥२॥

(प्रश्न : हे गुरुदेव ! क्या सांसारिक पदार्थों से भी प्रीति रखनी है या केवल सच्चे साहब से ? उत्तर :) जो (कुछ भी) देखने में आता है (वह कुछ भी) (जीव के) साथ नहीं जायेगा। चाहे कोई निर्णय करके देख ले। सतुगुरु ने सत्य ही का दृढ़ निश्चय कराया है, इसलिए सत्य मे ही लौ लगाकर रखो (क्योंकि प्रभु ही साथ चलने वाला है)। हे नानक ! 'वह' सत्य शब्द बख्शिश करने वाला परमात्मा आप ही है और वह उसे प्राप्त होता है जिस पर 'उसकी' कृपा दृष्टि है ॥२॥

पउड़ी ॥ हरि अंदरि बाहरि इकु तूं
तूं जाणहि भेतु ॥
जो कीचै सो हरि जाणदा
मेरे मन हरि चेतु ॥
सो डरै जि पाप कमावदा
धरमी विगसेतु ॥
तूं सचा आपि निआउ सचु
ता डरीऐ केतु ॥
जिना नानक सचु पछाणिआ
से सचि रलेतु ॥५॥

हे हरि ! (शरीर के) अन्दर और बाहर (अर्थात समस्त ब्रह्मांड में) तू एक ही (व्याप्त) है, तू (सभी जीवों के हृदय के) भेद को जानते हो। हे मेरे मन ! तू हरि का स्मरण कर, 'वह' हरि, जो (कुछ हम भीतर या बाहर) करते हैं, हरि (सब कर्म) जानता है। डरते वे हैं जो पाप (कर्म) करते हैं। धर्मी पुरुष (अर्थात प्रभु को दृष्टा और ज्ञाता मानने वाले तो सदैव फूल की तरह) प्रफुल्लित (प्रसन्न) रहते हैं। तू आप सत्य है और तुम्हारा न्याय भी सत्य है (फिर बुरा कर्म करने के बिना) डर कैसा ? हे नानक ! जिन्होंने (आप) सत्य स्वरूप को पहचाना है, वे जीव सत्य स्वरूप में मिल जाते हैं ॥५॥

सलोक मः ३॥

कलम जलउ सणु मसवाणीऐ
कागदु भी जलि जाउ ॥
लिखण वाला जलि बलउ
जिनि लिखिआ दूजा भाउ ॥
नानक पूरबि लिखिआ कमावणा
अवरु न करणा जाइ ॥१॥

कलम दवात सहित जल जाय, कागज भी जल जाय। लिखने वाला भी जल बल जाय (जिसने प्रभु-प्रेम के बिना) द्वैत भाव (अर्थात माया के प्यार का लेखा) लिखा है (अर्थात प्रभु-प्रेम के बिना दूसरे (माया) से प्रेमादि की बातें लिखने वाला स्वयं भी नष्ट हो जाता है और उसकी पुस्तकें भी। (प्रश्न: यदि प्रभु-प्रेम ही मुख्य वस्तु है तो फिर जीव सांसारिक पदार्थों के पीछे क्यों मदमस्त हो रहे हैं ? उत्तर :) हे नानक ! पूर्व-जन्म से लिखे हुए (शुभाशुभ कर्म) करते हैं उसके विपरीत और कुछ कर ही नहीं सकते ॥१॥

मः३॥ होरु कूड़ पड़णा कूड़ु बोलणा
माइआ नालि पिआरु ॥
नानक विणु नावै को थिरु नही
पड़ि पड़ि होइ खुआरु ॥२॥

जिनका प्यार माया के साथ है, उनका (नाम के बिना) पढ़ना झूठ (व्यर्थ) है, (हरि बोल के बिना अन्य कुछ) बोलना भी झूठ (व्यर्थ) है। हे नानक ! (हरि) नाम के बिना कोई भी स्थिर (अटल) नहीं किन्तु (सांसारिक जीव हरि-नाम को भूल-कर जो कुछ) पढ़ते-पढ़ाते हैं, वे दुःखी (बदनाम) होते हैं ॥२॥

पउड़ी ॥ हरि की वडिआई वडी है
हरि कीरतनु हरि का ॥

हरि की बड़ाई (महिमा) बड़ी (महान) है, क्योंकि हरि का कीर्तन (सर्व दुःखों को) हरण करने वाला है।

हरि की वडिआई वडी है
जा निआउ है धरम का ॥
हरि की वडिआई वडी है
जा फलु है जीअ का ॥
हरि की वडिआई वडी है
जा न सुणई कहिआ चुगल का ॥
हरि की वडिआई वडी है
अपुछिआ दानु देवका ॥६॥

हरि की बड़ाई बडी है, क्योंकि 'उसका' न्याय धर्म का है। हरि की बडाई बड़ी है, क्योकि (प्रत्येक) जीव को (कर्मानुसार) फल मिलता है। हरि की बडाई बडी है, क्योंकि 'वह' किसी चुगल-खोर से (कोई चुगली बैठकर) नही सुनता (अर्थात निन्दकों और चुगलखोरों के लिये प्रभु दरबार में प्रवेश निषेध किया हुआ है)। हरि की बड़ाई बडी है क्योंकि 'वह' बिना पूछे ही दान देता है (अर्थात 'उसे' किसी से भी परामर्श लेने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि 'वह' स्वय आप ही आप है) ॥६॥

सलोक मः ३॥
हउ हउ करती सभ मुई
संपउ किसै न नालि ॥
दूजै भाई दुखु पाइआ
सभ जोही जमकालि ॥
नानक गुरमुखि उबरे
साचा नामु समालि ॥१॥

मैं-मे (मेरी-मेरी) करते हुए सारी (जीव-सृष्टि) (धन-पदार्थों को संग्रह करने में) मर रही है, किन्तु सम्पत्ति किसी के साथ (मरने पर परलोक मे) नही चलती। (परमेश्वर को छोड़-कर) दूसरों से प्रेम रखना है दुख (ही) प्राप्त करना और (ऐसे) सभी (जीवो को) यमकाल भी (मारने के विचार से सदा) देख रहा है। (किन्तु) हे नानक ! गुरु की शरण मे आए हुए (गुर-मुख) सच्चा नाम (हृदय में) सभालकर (यमकाल से) बच जाते हैं ॥१॥

मः १॥ गली असी चंगीआ
आचारी बुरीआह ॥
मनहु कुसुधा कालीआ
बाहरि चिटवीआह ॥
रीसा करिह तिनाड़ीआ
जो सेवहि दरु खड़ीआ ॥
नालि खसमै रतीआ
माणहि सुखि रलीआह ॥
होदै ताणि निताणीआ
रहहि निमाणीआह ॥
नानक जनमु सकारथा
जे तिन कै संगि मिलाह ॥२॥

बातो से हम (जीव-स्त्रियाँ) अच्छी (बन बैठती) हैं, पर आचार-व्यवहार में बडी (मलिन) हैं। मन से (विषय-विकारों के कारण) अशुद्ध (मलिन) और (खोटे-पाप कर्मों के कारण) काली हैं, पर बाहर (वेश-भूषा की बनावट से) गोरी-चिट्टी हैं। फिर भी हम उन (भाग्यशाली सुहागिनो) की बराबरी करती हैं जो (हरि के) द्वार पर सेवा के लिए (तत्पर) खड़ी रहती हैं और जो प्रभु-पति के प्यार मे रगी हुई हैं तथा 'उसके' मिलाप का सुख-आनन्द भोग रही हैं। जो बलवती होती हुई भी अपने आपको बलहीन समझती हैं और विनम्र बनकर रहती हैं। हे नानक ! (मनुष्य) जन्म सफल (तभी हो सकता है) यदि उन (सुहागिनियों) की संगति में रहें ॥२॥

पउड़ी ॥ तूं आपे जलु मीना है आपे
आपे ही आपि जालु ॥
तूं आपे जालु वताइदा
आपे विचि सेबालु ॥
तूं आपे कमलु अलपितु है
सै हथां विचि गुलालु ॥
तूं आपे मुकति कराइदा
इक निमख घड़ी करि खिआलु ॥
हरि तुधहु बाहरि किछु नही
गुरसबदी वेखि निहालु ॥७॥

(हे प्रभु !) तू आप ही (मछली का जीवन रूप) जल है और आप ही (जल में) मछली है और फिर तू आपे ही आप (पकड़ने वाला) जाल (भी) है। तू आप ही जाल बिछाने फैलाने वाला है और (तू) आप ही जल पर आया हुआ शैवाल (माया रूप जाला) है। तू आप ही (जल में रहकर) निर्लिप्त रहने वाला कमल है (जो) सैंकड़ों हाथों (रूपी लहरों की पछाड़ में रहकर भी) लाल-गुलाल ही रहता है (भाव अपना रंग नहीं छोड़ता)। तू आप ही (माया-जाल से) मुक्त करने वाले हो, यदि (कोई जीव) एक निमिष (एक) क्षण भर के लिये भी 'तेरा' ध्यान करे। हे हरि ! तुम्हारे से भिन्न (बाहर) और कोई (वस्तु) नहीं है (अर्थात सब ब्रह्म ही ब्रह्म है वह) गुरु-शब्द के द्वारा ही (सर्व-व्यापक परमात्मा का दर्शन) देखकर (कमल की तरह) आनन्दित (प्रफुल्लित) रहता है ॥७॥

सलोक मः ३॥

हुकमु न जाणै बहुता रोवै ॥
अंदरि धोखा नीद न सोवै ॥
जे धन खसमै चलै रजाई ॥
दरि घरि सोभा महलि बुलाई ॥
नानक करमी इह मति पाई ॥
गुर परसादी सचि समाई ॥१॥

(हे हरि !) जो (जीव-स्त्री पति-परमेश्वर के) हुकम को नही जानती (अर्थात 'उसके' हुकम में नहीं रहती) वह बहुत रोती है। उसके (मन) अन्दर संशय है, इसलिये (सुख की) नींद नहीं सोती। यदि (जीव रूप) स्त्री (प्रभु) पति की इच्छा (आज्ञा) में चले तो (उसकी) इस घर में (भाव इस लोक में) और (प्रभु) दरवाजे पर (परलोक में) शोभा होती है तथा अन्त में (प्रभु के स्वरूप में) बुला ली जायेगी अर्थात (प्रभु से अभेद हो जायेगी)। हे नानक ! यह मति (हुकमानुसार चलना) 'उसकी' कृपा-दृष्टि से ही प्राप्त होती है और गुरु की प्रसन्नता से (यह मति प्राप्त करके) सत्य स्वरूप में समा जाती है ॥१॥

मः ३॥ मनमुख नाम विहूणिआ
रंगु कुसुंभा देखि न भुलु ॥
इस का रंगु दिन थोड़िआ
छोछा इस दा मुलु ॥
दूजै लगे पचि मुए
मूरख अंध गवार ॥

हे नाम से खाली (विहीन) मनमुख ! कसुम्भे (जैसे चमकीले और कच्चे रंग वाले मायिक पदार्थों) को देखकर न भूल क्योंकि (विषवत् पदार्थों का रस) आनन्द थोड़े (दिनों का होता) है और उनका मूल्य भी तुच्छ (थोडा) है। (जो नाम को छोड़कर) दूसरों के (प्यार में) लगे हुए हैं, वे दुःखी होकर मरते हैं, इसलिए वे मूर्ख अन्धे और गंवार (कहलाते) हैं।

बिसटा अंदरि कीट से
पइ पचहि वारो वार ॥
नानक नाम रते से रंगुले
गुर कै सहजि सुभाइ ॥
भगती रंगु न उतरै
सहजे रहै समाइ ॥२॥

(महामूढ़ एक बार नहीं मरते किन्तु) गन्दगी के कीड़ों की तरह बारम्बार विष्ठा में ही दग्ध (जलते और बलते) हैं। हे नानक! जो नाम (रग) में अनुरक्त हैं, वे गुरु से ज्ञान रूपी स्वभाव या अनुभव रूपी प्रकाश लेकर प्यार वाले अथवा आनन्द वाले (रंगुले) होते हैं। (उनके जीवन से) भक्ति का रंग (प्रभाव) नहीं उतरता। इसलिए वे स्वाभाविक ही (परमात्मा में) समाए रहते हैं ॥२॥

पउड़ी ॥ सिसटि उपाई सभ तुधु
आपे रिजकु संबाहिआ ॥
इकि वलु छलु करि कै खावदे
मुहहु कूड़ कुसतु तिनी ढाहिआ ॥
तुधु आपे भावै सो करहि
तुधु ओतै कंमि ओइ लाइआ ॥
इकना सचु बुझाइओनु
तिना अतुट भंडार देवाइआ ॥
हरि चेति खाहि तिना सफलु है
अचेता हथ तडाइआ ॥८॥

(हे प्रभु!) सारी (जीव) सृष्टि तुमने ही उत्पन्न की है और (तू) आप सभी (जीवों) को आजीविका पहुँचा रहे हो। (इस संसार मे) एक वे (जीव) हैं जो छल कपट कर के खा रहे हैं और मुख से झूठ और कुत्सित बोल (निन्दा) करते हैं, (पर हे प्रभु!) जो आपको अच्छा लगता वे वही करते हैं। तुमने (स्वय ही) उनको (झूठ के) काम मे लगाया है। कुछ (जीवों को तुमने स्वयं ही) सच्च समझाया (अर्थात सत्य ज्ञान दृढ़ करवाया) है और उनको (नाम का) अटूट भण्डार (गुरु से) दिलाया है। जो (जीव तुझ) हरि को स्मरण करके खाते हैं, (उनका खाना-पीमा आदि सब) सफल है, पर जो अचेत हैं (अर्थात तुम्हें याद करके नही खाते उनके हाथ (माँगने के लिये) तुमने ही फैलाये है (अर्थात वे जीव सदा भिखारी की तरह माँगते ही रहते हैं) ॥८॥

सलोक मः ३॥
पड़ि पड़ि पंडित बेद वखाणहि
माइआ मोह सुआइ ॥
दूजै भाइ हरिनामु विसारिआ
मन मूरख मिलै सजाइ ॥
जिनि जीउ पिंडु दिता
तिसु कबहूं न चेतै
जो देंदा रिजकु संबाहि ॥
जम का फाहा गलहु न कटीऐ
फिरि फिरि आवै जाइ ॥

मोह (के वशीभूत होकर) पंडित (पढ़े-लिखे लोग) माया प्राप्त करने के उद्देश्य से वेद (धर्म-ग्रन्थ) पढ़ते है और पढ़कर व्याख्यान भी करते हैं। (वेद-पाठी होत हुए भी यदि) द्वैत भाव रखकर हरि नाम को विस्मृत करते हैं तो मन के मूर्खों को दण्ड मिलेगा। जिस 'हरि) ने जोवात्मा और शरीर दिये हैं और जो आहार (स्वय) पहुँचा देता है 'उसका' वे कभी भी स्मरण नही करते। (उन मनमुखों के) गले से यम की फाँसी (कभी भी) नही कटती और वे फिर फिर (योनियों में) आते (जन्मते) और जाते (मरते) हैं।

मनमुखि किछू न सूझै अंधुले
पूरबि लिखिआ कमाइ ॥
पूरै भागि सतिगुरु मिलै
सुखदाता नामु वसै मनि आइ ॥
सुखु माणहि सुखु पैनणा
सुखे सुखि विहाइ ॥
नानक सो नाउ मनहु न विसारीऐ
जितु दरि सचै सोभा पाइ ॥१॥

मनमुख अन्धे अज्ञानी कोई भी नहीं समझते (कि वास्तविकता क्या है), वे पूर्व-जन्म के लिखे अनुसार कर्मों को करते हैं। पर जिनके पूर्ण भाग्य हैं, सत्गुरु उन्हें आकर मिलता है और उनके मन में सुख देने वाले (परमात्मा) का नाम आकर निवास करता है। फिर वे सुख को भोगते हैं (अर्थात आत्मिक सुख उनका भोजन है), (आत्मिक) सुख उनकी पौशाक है और उनकी (समस्त आयु) सुख ही सुख में व्यतीत होती है। हे नानक ! मन से वह (पवित्र) नाम कभी नहीं भूलना चाहिये, जिस (हरि) नाम से सच्ची दरबार में शोभा प्राप्त होती है ॥१॥

मः ३॥ सतिगुर सेवि सुखु पाइआ
सचु नामु गुणतासु ॥
गुरमती आपु पछाणिआ
राम नाम परगासु ॥
सचो सचु कमावणा
वडिआई वडे पासि ॥
जीउ पिंडु सभु तिस का
सिफति करे अरदासि ॥
सचै सबदि सालाहणा
सुखे सुखि निवासु ॥
जपु तपु संजमु मनै माहि
बिनु नावै ध्रिगु जीवासु ॥
गुरमती नाउ पाईऐ
मनमुख मोहि विणासु ॥
जिउ भावै तिउ राखु तूं
नानकु तेरा दासु ॥२॥

सत्गुरु की सेवा करने से गुणों के सागर परमात्मा के सच्चे नाम का सुख प्राप्त होता है। गुरु की मति लेकर राम नाम के प्रकाश से यह जाव अपने स्वरूप को पहचानता है। जो सच्चे हैं वे सत्य की कमाई करते हैं। वे जीवात्मा और शरीर सब परमात्मा का समझकर, 'उसकी' स्तुति करते हैं और 'उसी' के आगे प्रार्थना करते हैं। वे सत्य स्वरूप परब्रह्म की स्तुति करके अथवा (गुरु) शब्द के द्वारा सच्चे परमात्मा की स्तुति करके परम सुख में निवास करते हैं। यदि जप, तप तथा सयम भी मन मे कोई कर ले तो भी परमात्मा के नाम के बिना जीवन की आशा को भी धिक्कार है। गुरु की मति धारण करने से नाम प्राप्त होता है और मनमुख मोह के कारण विनाश होते हैं। हे प्रभु ! जैसे आपको अच्छा लगे वैसे ही मेरी रक्षा करो। मैं नानक आपका दास हूँ ॥२॥

पउड़ी ॥ सभु को तेरा तूं सभसु दा
तूं सभना रासि ॥

हे प्रभु ! सभी कोई आपके (दास) हैं और आप सभी के (स्वामी) हैं, आप सभी को प्राण रूपी पूँजी देते हो।

सभि तुधै पासहु मंगदे
नित कर अरदासि ॥
जिस तूं देहि तिस सभु किछु मिलै
इकना दूरि है पासि ॥
तुधु बाझहु थाउ को नाही
जिसु पासहु मंगीऐ
मनि वेखहु को निरजासि ॥
सभि तुधै नो सलाहदे
दरि गुरमुखा नो परगासि ॥९॥

(हे भगवंत !) नित्य सभी (जीव) आपके आगे प्रार्थना करके आपसे माँगते हैं। जिनको आप देता है, उनको सब कुछ मिल जाता है। किन्तु एक ऐसे भी संसार में जीव है अर्थात मनमुखों के लिये आप दूर हैं और (गुरमुखों के लिए आप अति) समीप हैं। आप के बिना अन्य कोई स्थान-(दाता) नही है, जिसके पास जाकर माँग सकें, मन में (इस बात को) कोई भी निर्णय करके देख सकताहै। (हे प्रभु !) सभी आपकी प्रशसा कर रहे हैं, पर गुरु-मुखों को (आपके) द्वार का प्रकाश होता है (अर्थात उनके अन्त:करण मे आपका ज्ञान प्रकट होता है) ॥९॥

सलोक मः ३॥

पंडितु पड़ि पड़ि उचा कूकदा
माइआ मोहि पिआरु ॥
अंतरि ब्रहमु न चीनई
मनि मूरखु गावारु ॥
दूजै भाइ जगतु परबोधदा
ना बूझै बीचारु ॥
बिरथा जनमु गवाइआ
मरि जंमै वारो वार ॥१॥

पंडित (वेद शास्त्रादि) पढ-पढ कर ऊँचे स्वर से पुकारते हैं अर्थात व्याख्यान करते हैं, पर उनका माया से मोह और प्यार है। वे मन के मूर्ख और अनपढ लोग अन्दर मे जो ब्रह्म है 'उसे' नही देखते (पहचानते)। वे द्वैत भाव से अर्थात माया की लालच के कारण जगत को उपदेश देते हैं, पर वे स्वय आत्म-ज्ञान का विचार नही समझते। उन्होने अपना (मनुष्य) जन्म व्यर्थ ही खो दिया है और बार-बार वे मरते और जन्मते रहते हैं ॥१॥

मः ३॥

जिनी सतिगुरु सेविआ
तिनी नाउ पाइआ
बूझहु करि बीचारु ॥
सदा सांति सुखु मनि वसै
चूकै कूक पुकार ॥
आपै नो आपु खाइ
मनु निरमलु होवै गुरसबदी बीचारु ॥

जिन्होने सत्गुरु की सेवा की है, उन्होने (ही) नाम प्राप्त किया है। यह बात विचार करके (स्वयं) देखो (कि उन्हें क्या प्राप्त हुआ है ?) उनके मन में सदैव शान्ति और सुख निवास करता है और उनके (अन्दर से माया के लिये) कूक पुकार समाप्त हो जाती है (अर्थात वे माया के लिये याचको के समान दीनता से रोते-पीटते नही है, अब वे हर अवस्था मे सन्तुष्ट रहते हैं)। वे गुरु के शब्द का विचार करके अपना अहकार खा लेते हैं अर्थात दूर करते हैं और फिर उनका मन निर्मल हो जाता

नानक सबदि रते से मुकतु है
हरि जीउ हेति पिआरि ॥२॥

है। हे नानक ! जो (गुरु के) शब्द में अनुरक्त हैं, वे हरि से प्रेम रखकर मुक्त होते हैं ॥२॥

पउड़ी ॥ हरि की सेवा सफल है
गुरमुखि पावै थाइ ॥
जिसु हरि भावै तिसु गुरु मिलै
सो हरिनामु धिआइ ॥
गुरसबदी हरि पाईऐ
हरि पारि लघाइ ॥
मनहठि किनै न पाइओ
पुछहु वेदा जाइ ॥
नानक हरि की सेवा सो करे
जिसु लए हरि लाइ ॥१०॥

हरि की सेवा (वैसे प्रत्येक जीव के लिये) सफल है, पर स्वीकारणीय सेवा उसकी है जो गुरु के सन्मुख अर्थात आज्ञा में रहता है। जिसको हरि चाहता है, उसे गुरु मिलता है और वह ही हरि के नाम का ध्यान करता है। गुरु के शब्द द्वारा ही हरि प्राप्त होता है और हरि आप ही (संसार सागर से) पार उतारता है। मन के हठ से किसी ने भी परमात्मा को नहीं प्राप्त किया है, जाकर वेदों से पूछो (अर्थात वेद-शास्त्र पढ़कर देख सकते हो कि गुरु के बिना गति नहीं है)। हे नानक ! हरि की सेवा वही (जीव) करता है, जिसे हरि अपनी (सेवा में) लगाता है ॥१०॥

सलोक मः ३॥
नानक सो सूरा वरीआमु
जिनि विचहु दुसटु अहंकरणु
मारिआ ॥
गुरमुखि नामु सालाहि
जनमु सवारिआ ॥
आपि होआ सदा मुकतु
सभु कुलु निसतारिआ ॥
सोहनि सचि दुआरि
नामु पिआरिआ ॥
मनमुख मरहि अहंकारि
मरणु विगाड़िआ ॥
सभो वरतै हुकमु
किआ करहि विचारिआ ॥

हे नानक ! शूरवीर और महा योद्धा वह है, जिसने अपने हृदय से दुष्ट अहंकार को मार (कर निकाल) दिया है। वह गुरु की शिक्षा द्वारा नाम की स्तुति करके अपना (मनुष्य) जन्म सफल करता है। वह स्वयं तो सदा मुक्त होता है, पर (अपने) समस्त कुल का (भी) उद्धार करता है। जिनको (हरि) नाम से प्यार है, वे परमात्मा की सच्ची दरबार में सुशोभित होते हैं। मनमुख (जीव) अहंकार के कारण मर जाते हैं, वे अपने मरण (मृत्यु) को भी बिगाड़ लेते हैं (अर्थात मरने के बाद प्रभु-प्राप्ति ही मृत्यु को सफल करना है, पर मरने के बाद योनियों में भटकना मानो मरने का बिगाड़ना है)। वे बेचारे कर भी क्या सकते हैं ? सब कुछ (प्रभु के) हुक्म में चल रहा है। (मन-

हउमै दूजै लगि
खसमु विसारिआ ॥
नानक विन नावै सभु दुखु
सुखु विसारिआ ॥१॥

मुख) अहंकार और द्वैत (भाव) में लग कर पति-परमेश्वर को भुला देते हैं। हे नानक ! नाम के बिना सब दुख है, पर (मनमुख ने नाम रूपी) सुख भुला दिया है ॥१॥

म: ३॥ गुरि पूरै हरिनामु दिड़ाइआ
तिनि विचहु भरमु चुकाइआ ॥
रामनामु हरि कीरति गाई
करि चानणु मगु दिखाइआ ॥
हउमै मारि एक लिव लागी
अंतरि नामु वसाइआ ॥
गुरमती जमु जोहि न सकै
साचै नामु समाइआ ॥
सभु आपे आपि वरतै करता
जो भावै सो नाइ लाइआ ॥
जन नानकु नाउ लए ता जीवै
खिनु नावै खिनु मरि जाइआ ॥२॥

(जिनके अन्दर में) पूर्ण गुरु ने हरि के नाम को दृढ़ निश्चय (पक्का) करा दिया है, उन्होंने ही अन्तःकरण से भ्रम को दूर कर दिया है। वे राम का नाम और हरि की कीर्ति गाते हैं और (गुरु-ज्ञान का) प्रकाश करके उन्हें (परमार्थ का) मार्ग दिखाता है। वे फिर अहंकार को मार कर एक परमात्मा में लिव लगाकर अपने अन्दर नाम को बसाते हैं। गुरु की मति लेने के कारण उन्हें यम भी (आँख उठाकर) देख नहीं सकता, क्योंकि वे सच्चे नाम में समाहित हैं। सभी में आप ही आप (व्याप्त) पूर्ण हो रहा है, जो 'उसे' अच्छा लगता है, उसे नाम में लगा लेता है। हे नानक ! (प्रभु के) दास यदि नाम लेते हैं तो जीवित हैं, बिना नाम के क्षण भर मे मर जाते हैं। (मृतक-तुल्य हो जाते हैं क्योंकि प्रभु के प्रेमियो के जीवन का आधार हरिनाम ही है) ॥२॥

पउड़ी ॥जो मिलिआ हरि दीबाण
सिउ सो सभनी दीबाणी मिलिआ ॥
जिथै ओहु जाइ तिथै ओहु सुरखरू
उस कै मुहि डिठै सब पापी तरिआ ॥
ओसु अंतरि नामु निधानु है
नामो परवारिआ ॥
नाउ पूजीऐ नाउ मंनीऐ
नाइ किलविख सभ हिरिआ ॥

जो (जीव) हरि की दरबार मे (अर्थात सत्संग में) मिला हुआ है, वह जानो एक प्रकार से सभी राजाओ की दरबारों मे मिला हुआ है (अर्थात जिनको मेरा प्रभु सत्संग प्रदान करता है उनको संसारिक मान-प्रतिष्ठा से कोई आसक्ति नहीं)। जहाँ पर वह जाता है, वहाँ पर उसका मुख सुर्ख लाल है (अर्थात मुख उज्ज्वल होता है, उसे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है) और उसके मुख को देखने से (अर्थात दर्शन करने से) सभी पापी तर जाते हैं। उसके अन्तःकरण मे नाम का खजाना है और उसका परिवार या कुटुम्ब नाम ही है अथवा वह नाम में ही पलता है (भाव उसका भोजन ही नाम है)। वह नाम के कारण ही पूज्नीय है और नाम के कारण ही माननीय है तथा नाम (अपने से उसके)

जिनी नाम धिआइआ
इक मनि इक चिति से
असथिरु जगि रहिआ ॥११॥

सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जिन्होंने एक मन से, एकाग्र चित्त से नाम का ध्यान किया है, वे जगत में स्थिर (अमर) रहते हैं ॥११॥

सलोक मः ३॥ आत्मा देउ पूजीऐ
गुर कै सहजि सुभाइ ॥
आतमे नो आतमे दी प्रतीति होइ
ता घर ही परचा पाइ ॥
आतमा अडोलु न डोलई
गुर कै भाइ सुभाइ ॥
गुर विणु सहजु न आवई
लोभु मैलु न विचहु जाइ ॥
खिनु पलु हरिनामु मनि वसै
सभ अठसठि तीरथ नाइ ॥
सचे मैलु न लगई
मलु लागै दूजै भाइ ॥
धोती मूलि न उतरै
जे अठसठि तीरथ नाइ ॥
मनमुख करम करे अहंकारी
सभु दुखो दुखु कमाइ ॥
नानक मैला ऊजलु ता थीऐ
जा सतिगुर माहि समाइ ॥१॥

गुरु के ज्ञान द्वारा श्रेष्ठ भावना (प्रेम) प्राप्त करके (हमे) सर्वत्र परिपूर्ण प्रकाश स्वरूप परमेश्वर (आत्मादेउ) पूजन करना चाहिए। यदि (जीव) आत्मा को (परम) आत्मा में पूर्ण विश्वास हो जाये तो घर (भाव स्वरूप) से ही परिचय हो जाय। आत्मा निश्चल है, कभी भी चलायमान नहीं होती और गुरु से प्रेम रखने पर शोभा प्राप्त करती है। गुरु के (उपदेश के बिना शान्ति अर्थात सन्तोष नहीं आता और (सन्तोष के बिना) लोभ की मैल नही जाती। यदि किसी के मन में एक क्षण, एक पल के लिये भी हरि नाम आकर निवास करता है तो मानो उसने अठ़सठ तीर्थों (के स्नान का सब फल) प्राप्त कर लिया। (जिनको सच्चे स्वामी के साथ प्यार है उनको लोभ की) मैल नही लगती, पर जिनका दूसरो से (माया से) प्यार है उनको (लोभ की) मैल लगती है। यह मैल धोने से (कंचित् मात्र भी दूर नही होती यदि कोई अठसठ तीर्थों का स्नान भी कर ले। मनमुख अहंकारी जीव जो कर्म करते हैं (उसका परिणाम यह होता है कि वे) सभी दुख ही दुःख भोगते हैं (अर्थात प्राप्त करते हैं)। हे नानक! (इस जीव का) अपवित्र (मन) तभी पवित्र (शुद्ध) होगा, जब सत्गुरु (का उपदेश उसके मन) में समा जाता है ॥१॥

मः ३॥ मनमुखु लोकु समझाईऐ
कदहु समझाइआ जाइ ॥
मनमुखु रलाइआ ना रलै
पइऐ किरति फिराइ ॥

मनमुख को यदि समझाया भी जाये तो भी क्या वे समझने वाले हैं? (भाव वे कभी नही समझेंगे)। मनमुखों को चाहे सत्संगति में भी मिलाने का यत्न किया जाये तो भी वे नही मिलेंगे (समझेंगे)। वे अपने किये हुए कर्मानुसार (योनियों में भट कते) फिरते हैं।

लिव धातु दुइ राह है
हुकमी कार कमाइ ॥
गुरमुखि आपणा मनु मारिआ
सबदि कसवटी लाइ ॥
मन ही नालि झगड़ा
मन ही नालि सथ
मन ही मंझि समाइ ॥
मनु जो इछे सो लहै ॥
सचै सबदि सुभाइ ॥
अंम्रित नामु सदा भुंचीऐ
गुरमुखि कार कमाइ ॥
विणु मनै जि होरी नालि लुझणा
जासी जनमु गवाइ ॥
मनमुखी मनहठि हारिआ
कूड़ु कुसतु कमाइ ॥
गुर परसादी मनु जिणै
हरि सेती लिव लाइ ॥
नानक गुरमुखि सचु कमावै
मनमुखि आवै जाइ ॥२॥

परमात्मा के साथ प्रेम तथा माया में प्रेम—ये दो मार्ग हैं (अर्थात् गुरमुख—हरि के सन्मुख और मनमुख हरि से विमुख—दोनों के लिये)। यह जीव हरि के हुक्म से (शुभ और अशुभ) कर्मों को करता है (अर्थात पूर्व-जन्म में किये हुए कर्मों के अनुसार प्रभु की दरबार से जो हुक्म इस जीव के लिये होता है, उसी अनुसार यह जगत में कर्म करता है।) (मनमुख जीव तो माया में ग्रसित है, पर) गुरमुख ने अपने मन को मार कर (जीतते) हैं और मन को गुरु के शब्द रूपी कसवटी पर लगाते हैं (इसलये कि देखें कि हमारा मन गुरुओं के वचनानुसार चलकर शुद्ध हुआ है या नहीं)। गुरमुखों का मन से ही झगडा है, मन से ही फैसला करते हैं और अपने मन में ही समाए हुए हैं (अर्थात् मन को शुद्ध करने का ही एक मात्र विचार उनके अन्दर बना रहता है)। जो सच्चे (गुरु के) उपदेश से श्रेष्ठ प्रेम रखते हैं, उनका मन जो इच्छा करता है, वही प्राप्त करते हैं। वे अमृत—नाम का सदा भोजन खाते हैं और गुरु की शिक्षा अनुसार कार्य करते हैं। जो जीव अपने मन से झगडा करने की बजाय औरों से झगडा करते हैं, वे अपना जन्म (व्यर्थ ही) गवाते हैं। मनमुख मन के हठ के कारण झूठ और कुत्सित कर्मों के कारण (जीवन-बाजी) हारते हैं, पर गुरमुख गुरु की कृपा से मन को जीतते हैं और हरि के साथ लिव लगाते हैं। हे नानक ! गुरमुख सत्य स्वरूप प्रभु (के नाम) की कमाई करते हैं (जिससे वे जन्म-मरण से छूट जाते हैं किन्तु) मन मुख (जन्म-मरण में) आते और जाते हैं ॥२॥

पउड़ी ॥

हरि के संत सुनहु जन भाई
हरि सतिगुर की इक साखी ॥
जिसु धुरि भागु होवै मुखि मसतकि
तिनि जनि लै हिरदै राखी ॥
हरि अंमृत कथा सरेसट ऊतम
गुर बचनी सहजे चाखी ॥

हे हरि के सन्त जनो ! हे भाई ! सतुगुरु से ही एक हरि (परमात्मा की) शिक्षा सुनो। जिनके मस्तक में पूर्व से (श्रेष्ठ) भाग्य लिखा है, वे ही हृदय में यह शिक्षा (धारण करके) रखते हैं। हरि की अमृत-कथा श्रेष्ठ और उत्तम है, वह गुरु के बचनों द्वारा स्वाभाविक ही चखी है।

तह भइआ प्रगासु
मिटिआ अंधिआरा
जिउ सूरज रैणि किराखी ॥
अदिसटु अगोचरु अलखु निरंजनु
सो देखिआ गुरमुखि आखी ॥१२॥

ऐसा करने से उन्हें (ज्ञान का) जैसे प्रकाश हुआ है और (अज्ञान का) अन्धकार निवृत हो गया है, सूर्य रात्रि के (अन्धेरे को) खींच लेता है अर्थात् (समाप्त कर देता है)जो (परमात्मा) देखने में नहीं आता (अदिसटु), जो इन्द्रियों के वश में नहीं है (अगोचर), मन-वाणी का विषय न होकर समझ नहीं पाते (अलखु) और जो माया मल से रहित है (निरंजन) 'उस' (शक्तिशाली परमात्मा को) गुरमुख ने (ज्ञान रूपी) आंखों से देखा है ॥१२॥

सलोक मः ३॥

सतिगुरु सेवे आपणा
सो सिरु लेखै लाइ ॥
विचहु आपु गवाइ कै
रहनि सचि लिव लाइ ॥
सतिगुरु जिनी न सेविओ
तिना बिरथा जनमु गवाइ ॥
नानक जो तिसु भावै सो करे
कहणा किछू न जाइ ॥१॥

जो (जीव अपना सिर देकर) अपने सत्गुरु की सेवा करते हैं, उनका सिर लेखे में लगा (अर्थात् स्वीकृत हुआ भाव उनका जन्म सफल हुआ)। वे अपने अन्दर से अहंकार को दूर करके सच्चे (परमात्मा) से लिव लगाकर रहते हैं। पर जिन्होंने सत्गुरु की सेवा नहीं की, उन्होंने (मानो अपना अमूल्य मनुष्य) जन्म व्यर्थ (ही) गँवा दिया है। हे नानक ! जो 'उसे' (अर्थात् प्रभु को) अच्छा लगता है, वह (ही) करता है, (इसमें) कुछ कह नहीं सकते (अर्थात् 'उसके' काम में किसी भी जीव की दखलदाजी नहीं है) ॥१॥

मः ३॥ मन वेकारी वेड़िआ
वेकारा करम कमाइ ॥
दूजै भाइ अगिआनी पूजदे
दरगह मिलै सजाइ ॥
आतम देउ पूजीऐ
बिनु सतिगुर बूझ न पाइ ॥
जपु तपु संजमु भाणा सतिगुरू का
करमी पलै पाइ ॥
नानक सेवा सुरति कमावणी
जो हरि भावै सो थाइ पाइ ॥२॥

मन को विकारो ने घेर लिया है और (उसके) कर्म विकार पूर्ण होते हैं। जो अज्ञानी द्वैत भाव मे रहते हुए परमात्मा से इतर किसी अन्य (माया) की पूजा करते हैं, उनको (हरि) दरबार में सजा मिलती है। प्रकाश स्वरूप परमात्मा (आत्मदेव) की पूजा करनी चाहिए, किन्तु बिना सत्गुरु की (कृपा के) (आत्मदेव की) सूझ-बूझ प्राप्त नही होती। जप, तप और संयम गुरु (की आज्ञा पालन करने) से प्राप्त होते हैं, किन्तु (गुरु आज्ञा का पालन) (शुभ) कर्मों द्वारा अथवा ईश्वरीय कृपा से प्राप्त होता है। हे नानक ! (सत्गुरु की) सेवा सप्रेम ध्यानपूर्वक चित्त से करनी चाहिए और जो सेवा हरि को अच्छी लगती है, वह सेवा सफल हो जाती है (अर्थात् स्वीकार कर लेता है) ॥२॥

पउड़ी ॥ हरि हरि नामु जपहु मन मेरे
जितु सदा सुखु होवै दिनु राती ॥

हे मेरे मन ! दुःख हर्ता हरि नाम का जाप कर जिसके स्मरण मात्र से (ही) दिन रात (हाँ) सदैव सुख (प्राप्त) होता है।

हरि हरि नामु जपहु मन मेरे
जितु सिमरत सभि किलविख पाप
लहाती ॥
हरि हरि नामु जपहु मन मेरे
जितु दालदु दुख भुख सभ लहि
जाती ॥
हरि हरि नामु जपहु मन मेरे
मुखि गुरमुखि प्रीति लगाती ॥
जितु मुखि भागु लिखिआ धुरि साचै
हरि तितु मुखि नामु जपाती ॥१३॥

हे मेरे मन ! दु:खों को हरण करने वाले हरिनाम का जाप कर, जिसे स्मरण करने से सभी पाप और दु:ख दूर हो जाते हैं। हे मेरे मन ! दुखों को हरण करने वाले हरि के नाम का जाप कर, जिसके स्मरण करने से दरिद्र (गरीबी), दुख भूख (प्यास आदि) सब दूर हो जाती है। हे मेरे मन ! दु:खों को हरण करने वाले हरि का नाम जाप कर, जो गुरु महान है उसके मुख से अर्थात् उसके मुख उपदेश द्वारा (हरि के साथ) प्रीति लगती है। जिसके मस्तक पर पूर्व से सच्चे (परमात्मा) ने (श्रेष्ठ) भाग्य लिख दिया है, उनके ही मुख से हरि नाम जपाता है ॥१३॥

सलोक म: ३॥
सतिगुरु जिनी न सेविओ
सबदि न कीतो वीचारु ॥
अंतरि गिआनु न आइओ
मिरतकु है संसारि ॥
लख चउरासीह फेरु पइआ
मरि जंमै होइ खुआरु ॥
सतिगुर की सेवा सो करे
जिस नो आपि कराए सोइ ॥
सतिगुर विचि नामु निधानु है
करमि परापति होइ ॥
सचि रते गुर सबद सिउ
तिन सची सदा लिव होइ ॥
नानक जिस नो मेले न विछुड़ै
सहजि समावै सोइ ॥१॥

(हे भाई !) जिन्होंने सत्गुरु की सेवा नहीं की है और उसके शब्द पर विचार (तक) नहीं किया है तथा जिनके अन्त:करण में ज्ञान उत्पन्न नही हुआ, ऐसे (जीव) संसार में मृतक (समान) हैं। वे (जीव) चौरासी लाख (योनियो के) चक्र में पड़ते हैं, इस प्रकार वे (बारम्बार) मरते-जन्मते हैं और दु:खी होते हैं। सत्गुरु की सेवा वही (जीव) करता है जिससे 'वह' (परमेश्वर) आप (ही) कराता है। सत्गुरु के अन्दर नाम का भण्डार है, जो (गुरु) कृपा से प्राप्त होता है। जो गुरु के शब्द द्वारा सच्चे (परमात्मा) से अनुरक्त हैं उनकी सदा सच्ची लौ लगी हुई है। हे नानक ! जिनको (प्रभु अपने आपसे) मिलाता है, वह फिर (कदाचित प्रभु से) बिछुड़ते नहीं हैं। वे शान्त स्वरूप परमात्मा मे समा जाते हैं ॥१॥

म: ३॥ सो भगउती
जो भगवंतै जाणै ॥
गुर परसादी आपु पछाणै ॥
धावतु राखै इकतु घरि आणै ॥

(परमात्मा का सच्चा) भक्त (वास्तव में) वह है, जो भगवान को जानता है और गुरु की प्रसन्नता (कृपा) से अपने (वास्तविक स्वरूप को) पहचानता है। जो दौड़ते हुए मन को (विषय-विकारों से) रखकर (बचाकर) एक (परमात्मा के) स्व-

जीवतु मरै हरिनामु वखाणै ॥
ऐसा भगउती उतमु होइ
नानक सचि समावै सोइ ॥२॥

रूप (घर में) लाकर स्थिर करता है, जो जीवित ही (अपनी अहंता ममता को) मार देता है और (सदा) हरि नाम का उच्चारण करता है, ऐसा भक्त (ही संसार में सर्व से) उत्तम है। हे नानक ! ऐसा भक्त (ही) सत्य स्वरूप परमात्मा में समा जाता है ॥२॥

मः ३॥ अंतरि कपटु भगउती कहाए ॥
पाखंडि पारब्रहमु कदे न पाए ॥
पर निंदा करे अंतरि मलु लाए ॥
बाहरि मलु धोवै मन की जूठि न जाए ॥
सत संगति सिउ बादु रचाए ॥
अनदिनु दुखीआ दूजै भाइ रचाए ॥
हरिनामु न चेतै बहु करम कमाए ॥
पूरब लिखिआ सु मेटणा न जाए ॥
नानक बिनु सतिगुर सेवे मोखु न पाए ॥३॥

जिस (जीव) के अन्तर्गत कपट है, किन्तु (अपने को) भक्त कहलाता है, ऐसा (कपटी पुरुष) पाखण्ड के द्वारा परब्रह्म परमेश्वर कभी भी प्राप्त नही कर सकता। वह दूसरों की निन्दा करके, (पराई) मैल को (अपने) अन्तःकरण में लगाता है। चाहे (कपटी जीव) बाह्य जीव (अर्थात् शरीर की) मैल (स्नान करके) धोता है, पर उसके मन की मैल (अपवित्रता) नही जाती है। ऐसा जीव सत्संगति से वाद-विवाद (झगडा) करता है। वह दिन-रात दुखी है और द्वैत-भाव से विकृत है। वह हरि का नाम चिन्तन नही करता, परन्तु कर्मों को (नाम के बिना) करता है। जो कुछ पूर्व कर्मानुसार (हमारे मस्तक पर फल) लिखा हुआ है, वह (भोगे बिना) मिट नही सकता। हे नानक ! बिना सत्गुरु की सेवा के वह (कभी भी) मोक्ष नही प्राप्त कर सकता ॥३॥

पउड़ी ॥ सतिगुर जिनी धिआइआ से कढ़ि न सवाही ॥
सतिगुरु जिन धिआइआ से तृपति अघाही ॥
सतिगुरु जिन धिआइआ तिन जम डरु नाही ॥
जिन कउ होआ क्रिपालु हरि से सतिगुर पैरी पाही ॥
तिन ऐथै ओथै मुख उजले हरि दरगह पैधे जाही ॥१४॥

जिन्होंने सत्गुरु का ध्यान किया है, वे सम्पूर्ण इन्द्रियों को वशीभूत कर लेते हैं अथवा कुढ़ते हुए, जल-जलकर राख नही होते। जिन्होंने सत्गुरु का ध्यान किया है, वे भूख और प्यास (आशा-तृष्णा) से तृप्त हुए हैं। जिन्होंने सत्गुरु का ध्यान किया है, उनको यम (दूतों) का भय नहीं है। जिन पर हरि दयालु होता है, वे सत्गुरु के चरणो में पडते हैं (अर्थात् शरण ग्रहण करते हैं)। ऐसे (गुरु के प्यारे, ध्यान धारण करने वालों का) मुख यहाँ (इस लोक में) तथा वहाँ (परलोक में) उज्जवल होते हैं और हरि की दरबार मे यश रूपी पौशाक पहनकर (अर्थात सम्मानित होकर) जाते हैं ॥१४॥

सलोक मः २॥ जो सिरु सांई ना निवै सो सिरु दीजै डारि ॥

जो सिर (प्रभु) स्वामी के (हुकम के) आगे नहीं झुकता, उस (सिर) को काट-काट दीजिए (क्योंकि मनुष्य देही प्राप्त करके

नानक जिसु पिंजरमहि बिरहु नही सो पिंजरु लै जारि ॥१॥

भी परमात्मा से विमुख हुआ सिर अच्छा नहीं लगता)। हे नानक! जिस (शरीर रूपी) पिंजरे में (प्रभु मिलने के लिए) विरह (प्यार) नही वह शरीर जला देना चाहिए ॥१॥

मः ५॥ मूंढहु भुली नानका फिरि फिरि जनमि मुईआसु ॥ कसतूरी कै भोलड़ै गंदे डुंमि पईआसु ॥२॥

हे नानक ! जो (जीव-स्त्री) मूल-भूत (पति-परमेश्वर से) भूली हुई है, वह बार-बार जन्म लेकर मरती (रहती) है। जिस प्रकार (हिरण की नाभि मे) कस्तूरी (होती) है किन्तु अज्ञानता के कारण दुर्गन्धित वाले पानी के गड्ढे में गिरता है (वैसे ही यह जीव सुख के भ्रम से विषय-विकारों के दुःख-दायक गर्त में गडते हैं) ॥२॥

पउड़ी ॥ सो ऐसा हरिनामु धिआईऐ मन मेरे जो सभना उपरि हुकमु चलाए ॥ सो ऐसा हरिनामु जपीऐ मन मेरे जो अंती अउसरि लए छडाए ॥ सो ऐसा हरिनामु जपीऐ मन मेरे जु मन की तृसना सभ भुख गवाए ॥ सो गुरमुखि नामु जपिआ वडभागी तिन निंदक दुसट सभि पैरी पाए ॥ नानक नामु अराधि सभना ते वडा सभि नावै अगै आणि निवाए ॥१५॥

हे मेरे मन ! जो दुःख हर्ता हरिनाम सम्पूर्ण (जीव-सृष्टि पर) शासन करता है, उस (पावन) हरिनाम का ध्यान कर। हे मेरे मन ! ऐसे हरि नाम को जपना चाहिए जो अन्त के समय (यम दूतो से) छुड़ा लेता है। हे मेरे मन ! ऐसे हरिनाम को जपना चाहिए जो मन की सभी प्रकार की भूख (तृष्णा) को दूर कर देता है। ऐसा (उत्तम) नाम गुरु की शिक्षा द्वारा भाग्यशाली (जीवों ने) स्मरण (जाप) किया है, जिसके प्रभाव से निन्दक और दुष्ट (पुरुष) चरणों मे आकर पडे हैं (अर्थात नाम की शरण सभी ने ली है)। हे नानक !(प्रभु के) नाम की आराधना कर यह(साधन कलियुग में) (सभी साधनो से) सर्वोत्तम है, जो नाम जपते हैं उनके सभी आकर झुकते हैं (अर्थात शरण मे आते हैं) ॥१५॥

सलोक मः ३॥

वेस करे कुरूपि कुलखणी मनि खोटै कूड़िआरि ॥ पिर कै भाणै ना चलै हुकमु करे गावारि ॥ गुर कै भाणै जो चलै सभि दुख निवारणहारि ॥

यदि कोई स्त्री (शरीर से) रूपहीन (कुरुप) शुभ गुणों से हीन कुलक्षणा) हो, मन से ही खोती और (आचार-विचार व कर्मों से) झूठी हो, अपने पति का आज्ञा मे नही चलती हो बल्कि वह मूर्ख स्त्री औरो पर हुकम चलाती हो (अर्थात पति के हुकम को मानने की बजाय स्वय पति बनकर हुकम चलाती हो), ऐसी स्त्री चाहे कितने भी वेश (शृंगार) करे (तो भी क्या हुआ भाव वह अपने पति को प्रिय नही लगेगी ! इसी प्रकार मनमुख जीव जिनके मन खोटे व झूठे हैं, सिद्धि के लिए कितने भी धार्मिक दिख लाव करे तो तो भी परमात्मा को अच्छे नही लगेंगे)। किन्तु जो (जिज्ञासु रूपी) स्त्री आज्ञा मे चलती है, वह सभी दुख (दर्द)

लिखिआ मेटि न सकीऐ
जो धुरि लिखिआ करतारि ॥
मनु तनु सउपे कंत कउ
सबदे धरे पिआरु ॥
बिनु नावै किनै न पाइआ
देखहु रिदै बीचारि ॥
नानक सा सुआलिओ सुलखणी
जि रावी सिरजनहारि ॥१॥

निवृत्त करने वाली होती है। जो कुछ कर्तार ने धुर से लिख दिया है, वह मिट नहीं सकता। (स्त्री को चाहिए कि वह अपना) मन और तन (अपने) पति परमात्मा के आगे समर्पण कर दे और 'उसके' वचनों से प्यार रखे। (हरि) नाम के बिना किसी ने भी (पति परमेश्वर का प्यार) प्राप्त नहीं किया है. चाहे कोई इस बात को हृदय में विचार के (देख परखे)। हे नानक ! वही स्त्री सुन्दर या श्लाघा योग्य और शुभ गुणों वाली सुन्दरी है, जिसे सृजनहार (प्रभु) ने प्यार किया है ॥१॥

मः ३॥ माइआ मोहु गुबारु है
तिस दा न दिसै उरवारु न पारु ॥
मनमुख अगिआनी महा दुखु पाइदे
डुबे हरिनामु विसारि ॥
भलके उठि बहु करम कमावहि
दूजै भाइ पिआरु ॥
सतिगुरु सेवहि आपणा
भउजलु उतरे पारि ॥
नानक गुरमुखि सचि समावहि
सचु नामु उरधारि॥२॥

माया का मोह घोर अन्धकार समान है, जिसका इधर का और उधर का किनारा दिखाई नहीं देता। मनमुख अज्ञानी जीव (संसार-सागर मे) महान दुख प्राप्त करते हैं और हरि के नाम को विस्मृत करके (माया के भण्डार मे अज्ञानता के कारण) डूब जाते हैं। वे प्रात काल उठकर (हरिनाम जपने की बजाय) बहुत कर्म करते हैं किन्तु द्वैत भाव के कारण अथवा माया से प्यार(होने के कारण ससार-सागर से पार नही हो सकते)। पर जो (जीव अपने) सत्गुरु की सेवा करते हैं, संसार-सागर को (तैरकर) पार उतर जाते हैं। हे नानक ! गुरु की आज्ञा मे चलने वाले (गुरमुख) सच्चे नाम को हृदय मे धारण करके सत्य स्वरूप परमात्मा में जाकर समा जाते हैं ॥२॥

पउड़ी ॥ हरि जलि थलि महीअलि भरपूरि
दूजा नाहि कोइ ॥
हरि आपि बहि करे निआउ
कूड़िआर सभ मारि कढोइ ॥
सचिआरा देइ वडिआई
हरि धरम निआउ कीओइ ॥
सभ हरि की करहु उसतति
जिनि गरीब अनाथ राखि लीओइ ॥
जैकारु कीओ धरमीआ का
पापी कउ डंडु दीओइ ॥१६॥

हरि परमात्मा जल, स्थल, पृथ्वी और आकाश के मध्य (महाजलि) में परिपूर्ण है, 'उसके' बिना और कोई नही है। हरि आप बैठकर न्याय करता है और जो झूठे हैं उन सभी को मारकर (बाहर) निकाल देता है। (हरि) सत्यवादी जीवों को बड़ाई देकर हरि धर्म का न्याय करता है। (हे प्यारे !) आप सभी भी हरि की स्तुति करो, जिस हरि ने (भीलणी सुदामा जैसे) गरीबों को तथा (गजेन्द्र तथा जटायु जैसे) अनाथो को बचा लिया। और जिसने धार्मिक पुरुषो (ध्रुव, प्रहलादि भक्तों की) जय जयकार कराई तथा (हिरण्यकश्यप आदि) पापी पुरुषों को दण्ड दिया है ॥१६॥

सलोक मः ३॥

मनमुख मैली कामणी
कुलखणी कुनारि ॥
पिरु छोडिआ घरि आपणा
पर पुरखै नालि पिआरु ॥
त्रिसना कदे न चुकई
जलदी करे पूकार ॥
नानक बिनु नावै कुरूपि कुसोहणी
परहरि छोडि भतारि ॥१॥

मनमुख पुरुष मैली, अशुभ लक्षणों वाली (कुलक्षणी) और व्यभिचार खोटी स्त्री के समान है, जो अपने घर का पति छोड़ कर पराए (दूसरे) पुरुषों से प्यार करती है। उसकी तृष्णा कभी भी समाप्त नहीं होती और (तृष्णा रूपी अग्नि में बार-बार) जल-जलकर चिल्लाती (दु खी) होती है। हे नानक !(इसी प्रकार मनमुख) बिना (हरि) नाम के कुरूप और कुलक्षणा (गन्दी) है, उसे पति (परमेश्वर) ने मानो त्याग करके छोड़ दिया है (भाव उसमें जो नाम जपने से सुन्दरता उत्पन्न होती थी वह नहीं हुई और नाम विहीन जीव-स्त्रियाँ अवगुणो के कारण कुरुप और गन्दी हैं) ॥१॥

मः ३॥ सबदि रती सोहागणी
सतिगुर कै भाइ पिआरि ॥
सदा रावे पिरु आपणा
सचै प्रेमि पिआरि ॥
अति सुआलिउ सुंदरी
सोभावंती नारि ॥
नानक नामि सोहागणी
मेली मेलणहारि ॥२॥

जो (जिज्ञासु रूपी) स्त्री सतगुरु के प्रेम और प्यार में लगकर उसके शब्द से रंगी हुई हैं, वही सुहागिन (सौभाग्यशाली स्त्री) है। वह (पतिव्रता जैसे) सच्चा प्रेम और प्यार धारण करके अपने पति(परमात्मा) का सदैव प्यार (आनन्द) अनुभव करती है। वह स्त्री श्लाघा योग्य, अति सुन्दर और शोभायमान है । हे नानक ! उसी (स्त्री) का नाम सुहागिन है जिसको मिलाने वाले (पति-परमेश्वर ने अपने साथ) मिलाया है ॥२॥

पउड़ी ॥

हरि तेरी सभ करहि उसतति
जिनि फाथे काढिआ ॥
हरि तुधनो करहि सभ नमसकारु
जिनि पापै ते राखिआ ॥
हरि निमाणिआ तूं माणु
हरि डाढीहूं तूं डाढिआ ॥
हरि अहंकारीआ मारि निवाए
मनमुख मूड़ साधिआ ॥

हे हरि ! सभी आप की स्तुति करते हैं, क्योंकि आपने (माया जाल मे) फसे हुए (जीवो) को निकाला है। हे हरि ! सभी आपको नमस्कार करते हैं, क्योंकि आपने उनको पाप (कर्मों) से बचा लिया है। हे हरि ! निर्मानो का तू मान है और (रावण जैसे) बलवानों से भी बलवान है। हे हरि ! आप अहंकारी पुरुषों को मारकर उन्हे झुका देते हो और मनमुखो तथा अज्ञानी जीवो को आपने सीधा किया है (अर्थात सन्मार्ग मे लगाया है)। हे हरि ! (तू

हरि भगता देइ वडिआई
गरीब अनाथिआ ॥१७॥

आप, भक्तजनो गरीबो और अनाथों को (हरिनाम की) बड़ाई देते हो ॥१७॥

सलोक मः ३॥

सतिगुर कै भाणै जो चलै
तिसु वडिआई वडी होइ ॥
हरि का नामु उतमु मनि वसै
मेटि न सकै कोइ ॥
किरपा करे जिसु आपणी
तिसु करमि परापति होइ ॥
नानक कारणु करते वसि है
गुरमुखि बूझै कोइ ॥१॥

जो (जीव-स्त्री) सत्गुरु की आज्ञा मे चलता है, उसकी बड़ाई (महिमा) बहुत होती है। उसकी (महिमा को) कोई भी मिटा नही सकता जिसके मन मे हरि का उत्तम नाम निवास करता हैं। जिस पर (कृपालु प्रभु) अपनी कृपा (दृष्टि) करते हैं, उसे (अपने पूर्व जन्म मे किए हुए श्रेष्ठ) कर्मो के कारण (नाम) प्राप्त होता है। हे नानक ! माया कर्तार के वश में है, पर यह (रहस्य) कोई गुरमुख विचारवान ही समझता है ॥१॥

मः ३॥

नानक हरिनामु जिनि आराधिआ
अनदिनु हरि लिवतार ॥
माइआ बंदी खसम की
तिन अगै कमावै कार ॥
पूरै पूरा करि छोडिआ
हुकमि सवारणहार ॥
गुर परसादी जिनि बुझिआ
तिनि पाइआ मोखदुआरु ॥
मनमुख हुकमु न जाणनी
तिन मारे जम जंदारु ॥
गुरमुखि जिनी अराधिआ
तिनी तरिआ भउजलु संसारु ॥
सभि अउगण गुणी मिटाइआ
गुरु आपे बखसणहारु ॥२॥

हे नानक ! जिन (जीवो ने) हरि के नाम की आराधना की है और रात-दिन हरि (परामात्मा) के साथ पूर्ण वृत्ति (लौ) लगायी है, उनके आगे माया, जो पति-परमेश्वर की दासी है, (हाथ जोडकर भक्तो का) काम (सेवा) करती है। पूर्ण (परमात्मा अपने भक्तो को) पूर्ण बनाता है और अपने हुकम से उनको सवारता है (बनाना) है। जिन्होंने गुरु की प्रसन्नता से (हुकम को) समझा है, उन्होने मुक्ति का द्वार प्राप्त किया है। मनमुख (जीव) जो (परमात्मा के) हुकम को नही जानते उनको यम रूपी चण्डाल मारता है, पर जिन्होंने गुरु की शिक्षा के द्वारा (हरिनाम की) आराधना की है, वे ससार-सागर से (तैरकर) पार उतर जाते हैं। क्षमाशील गुणवान सत्गुरु ने स्वय उनके सम्पूर्ण अवगुणो को मिटा दिया है ॥२॥

पउड़ी ।। हरि की भगता परतीति
हरि सभ किछु जाणदा ।।
हरि जेवडु नाही कोई जाणु
हरि धरमु बीचारदा ।।
काड़ा अंदेसा किउ कीजै
जा नाही अधरमि मारदा ।।
सचा साहिबु सचु निआउ
पापी नरु हारदा ।।
सालाहिहु भगतहु कर जोड़ि
हरि भगत जन तारदा ।।१८।।

हरि के भक्तों को पूर्ण विश्वास है कि हरि (परमात्मा) सभी कुछ जानता है। हरि जितना बडा और कोई भी जानने वाला नहीं है। हरि धर्म का विचार करता है(अर्थात 'उसके' सभी विचार धर्म के हैं)। (यदि भरोसा है कि) हरि अन्याय करके (किसी को भी) नहीं मारता तो फिर चिन्ता और सन्देह करने की क्या आवश्यकता है। 'वह' सच्चा साहब है और 'उसका' न्याय भी सच्चा है। पापी मनुष्य ही (ईश्वर के सच्चे न्याय के आगे) हारते हैं। हे भक्तजनों! हाथ जोडकर उस (सच्चे) हरि की स्तुति करो, जो भक्तजनो को (युगयुगान्तर से) तारता (अर्थात भव-सागर से पार उतारता) है ।।१८।।

सलोक मः ३।।
आपणे प्रीतम मिलि रहा
अंतरि रखा उरि धारि ।।
सालाही सो प्रभु सदा सदा
गुर कै हेति पिआरि ।।
नानक जिसु नदरि करे
तिसु मेलि लए साई सुहागणि नारि
।।१।।

(जीवात्मा की अभिलाषा है कि मैं) अपने प्रियतम (प्रभु) से (निरन्तर) मिलती रहूँ और 'उसको' अपने अन्तर्गत हृदय में धारण (सम्भालकर) रखूं। गुरु के हित और प्यार से (मैं) सदा सर्वदा स्तुति योग्य परमात्मा की स्तुति करती रहूँ। हे नानक! हरि जिस पर (कृपा) दृष्टि करता है, उसे अपने साथ मिलाता है और वही स्त्री सुहागिन (पति-परमेश्वर के प्यार को प्राप्त होती) है ।।१।

मः ३।। गुर सेवा ते हरि पाईऐ
जा कउ नदरि करेइ ।।
माणस ते देवते भए
धिआइआ नामु हरे ।।
हउमै मारि मिलाइअनु
गुर कै सबदि तरे ।।
नानक सहजि समाइअनु
हरि आपणी क्रिपा करे ।।२।।

जिस पर हरि (कृपा) दृष्टि करता है, वह गुरु की सेवा करके हरि प्राप्त कर सकता है। हरि के नाम का ध्यान करने से वह (जीव) मनुष्य से देवता (रूप) हो जाता है। (भाव आसुरी अवगुणों को छोड कर दैवी गुण ग्रहण करता है)। उसकी हउमै (अहंकार) को मार कर परमात्मा अपने साथ मिला लेता है और वह गुरु के उपदेश द्वारा (भवसागर से) तैर (पार उतर) जाता है। हे नानक! हरि जिन पर भी अपनी कृपा (दृष्टि) करता है, वे सहज स्वभाविक ही परब्रह्म परमेश्वर में समा जाते हैं ।।२।।

पउड़ी ।। हरि आपणी भगति कराइ
वडिआई वेखालीअनु ।।

हरि अपनी भक्ति (अपने भक्तों से) करवा कर (सन्तों को) अपनी बड़ाई दिखाता है।

आपणी आपि करे परतीति
आपे सेव घालीअनु ॥
हरि भगता नो देइ अनंदु
थिरु घरी बहालिअनु ॥
पापीआ नो न देई थिरु रहणि
चुणि नरक घोरि चालिअनु ॥
हरि भगता नो देइ पिआरु
करि अंगु निसतारिअनु ॥१९॥

हरि आप ही (गुरु रूप होकर) अपना निश्चय करवाता है और आप ही (जिज्ञासु की) सेवा अंगीकार करता है। हरि आप ही भक्तों को आनन्द देता है और अपने स्वरूप में उनको स्थिर बैठाता है। पापियो को रहने के लिए स्थिर (अटल) स्थान नहीं देता और उनको चुनकर घोर नरकों में भेज देता है। हरि (अपने) भक्तों को (अटल) प्यार देता है और उनकी रक्षा करके (भवसागर से) पार उतार देता है॥१९॥

सलोक मः १॥
कुबुधि डूमणी कुदइआ कसाइणि
पर निंदा घट चूहड़ी मुठी क्रोधि
चंडालि ॥
कारी कढी किआ थीऐ
जां चारे बैठीआ नालि ॥
सचु संजमु करणी कारां
नावणु नाउ जपेही ॥
नानक अगै ऊतम सेई
जि पापां पंदि न देही ॥१॥

(हे पण्डित जी !) कुबुद्धि जेमिनी है, निर्दयता कसाइनी है, परनिन्दा मेहतरानी है और क्रोध चण्डालिनी है—(इन चारों ने तुम्हारे) हृदय को ठग लिया है। यदि ये चारो (हृदय मे) एक साथ बैठी हों, तो (बाहरी चौके की शुद्धि के लिए) लकीर खींचने से क्या लाभ ? यदि पवित्रता की तुम्हें आवश्यकता है तो सत्य (बोलो), विषय-वासनाओं से इन्द्रियो को रोकना (संयम), शुभ करणी की लकीरें (चौके को शुद्ध करने के लिए खींचो) और (परमात्मा के) नाम-जप का स्नान करो। हे नानक ! आगे (परलोक मे, परमात्मा की दरबार में) वे ही उत्तम (गिने जाते) हैं, जो पाप वाली शिक्षा नहीं देते हैं ॥१॥

मः १॥ किआ हंसु किआ बगुला
जा कउ नदरि करेइ ॥
जे तिसु भावै नानका
कागहु हंसु करेइ ॥२॥

हे नानक ! जिन (जीवों) पर (प्रभु की) कृपा-दृष्टि है, वे हंस हैं तो क्या, यदि बगुले हैं तो (भी) क्या ? यदि (प्रभु को) अच्छा लगे तो कौवे को भी हस बना देता है। (अर्थात यदि प्रभु चाहे तो बिल्कुल नीच पुरुष भी उत्तम पदवी पर पहुँच सकता है) ॥२॥

पउड़ी ॥ कीता लोड़ीऐ कंमु
सु हरि पहि आखीऐ ॥
कारजु देइ सवारि
सतिगुर सचु साखीऐ ॥

(हे भाई !) यदि अपने काम को करना चाहते हो, तो (पहले) हरि (परमात्मा) से कहो (अर्थात किसी भी काम की सफलता के लिए हरि से प्रार्थना करो)। (प्रार्थना करने पर परमेश्वर सभी) कार्य संवार (सिद्ध कर) देता है। सच्चा सतगुरु (इसका)

संता संगि निधानु
अंम्रितु चाखीऐ ॥
भै भंजन मिहरवान
दास की राखीऐ ॥
नानक हरिगुण गाइ
अलखु प्रभु लाखीऐ ॥२०॥

प्रवाह (जारी) है। सन्तों की संगति (नाम) अमृत का भण्डार है, (इसे) चखना चाहिए। हे भय-भंजन मेहरबान प्रभु ! दास (की नाम-अमृत देकर) उसकी (लज्जा) रखो। हे नानक ! (श्रद्धा व प्रेम से) हरि के गुण गाने से अदृश्य (न दिखने वाले) प्रभु को देख लेते हैं ॥२०॥

सलोक मः ३॥
जीउ पिंडु सभु तिस का
सभसै देइ अधारु ॥
नानक गुरमुखि सेवीऐ
सदा सदा दातारु ॥
हउ बलिहारी तिन कउ
जिनि धिआइआ हरि निरंकारु ॥
ओना के मुख सद उजले
ओना नो सभु जगतु करे नमसकारु
॥१॥

(यह) जीव और शरीर सभी कुछ उस (प्रभु) का (दिया हुआ) है, जो सब को आधार, आश्रय देने वाला है। हे नानक ! (ऐसा प्रभु) जो सर्वदा देने वाला दाता है, गुरु की शिक्षा लेकर सेवा करनी चाहिए। (अभिलाषा है कि) मैं उन पर बलिहार जाऊँ, जिन्होंने हरि निरंकार का ध्यान किया है। (नाम जपने वालों के) मुख सदा उज्ज्वल होते हैं (वे प्रभु की दरबार में शोभा पाते हैं) और उनको सारा जगत नमस्कार करता है। (अर्थात उनके आगे सभी झुकते हैं।) ॥१॥

मः ३ ॥ सतिगुर मिलिऐ उलटी भई
नव निधि खरचिउ खाउ ॥
अठारह सिधी पिछै लगीआ फिरनि
निज घरि वसै निज थाइ ॥
अनहद धुनि सद वजदे
उनमनि हरि लिव लाइ ॥
नानक हरि भगति तिना कै मनि वसै
जिन मसतकि लिखिआ धुरि पाइ
॥२॥

सतगुरु के मिलने से (सासारिक दृष्टि) पलट कर आध्यात्मिक (जगतोन्मुखी से परमात्मोन्मुखी) हो जाती है और नव-निधियाँ (मिलती हैं) (अर्थात नाम मिलता है)। जो (सन्त महा-पुरुष) खर्च करके खाते हैं (अर्थात हरि नाम का स्वाद आप भी लेते हैं और औरों को भी रसास्वादन कराते हैं)। जो (पुरुष) निज स्वरूप मे (अपने पवित्र स्थान मे स्थिर) रहते हैं, उनके पीछे अठारह सिद्धियाँ घूमती फिरती हैं। जो (पुरुष) सहजावस्था मे रहकर हरि के साथ लिव लगाते हैं (अर्थात जिनका मन संसार से हटकर हरि में लीन रहता है) उनके अन्दर में अनाहद शब्द की धुनि सदा बज रही है। हे नानक ! हरि की भक्ति उन के ही मन में निवास करती है जिनके मस्तक पर (प्रभु विधाता ने) पहले से ही (संयोग का लेख) लिख दिया है ॥२॥

पउड़ी ॥
हउ ढाढी हरि प्रभ खसम का
हरि कै दरि आइआ ॥

मैं हरि प्रभु स्वामी का (ढाढ बाद्य से स्तुति करने वाला) ढाढी होकर हरि के द्वार पर आया हूँ। हरि ने अपने महल के भीतर

हरि अंदरि सुणी पूकार
ढाढी मुखि लाइआ ॥
हरि पुछिआ ढाढी सदि कै
कितु अरथि तूं आइआ ॥
नित देवहु दानु दइआल
प्रभ हरिनामु धिआइआ ॥
हरि दातै हरिनामु जपाइआ
नानकु पैनाइआ ॥२१॥१॥सुधु॥

बैठे हुए ही मेरी पुकार को सुनकर मुझ ढाढी को अपने मुख लगाया (अर्थात सन्मुख बुला लिया)। हरि ने मुझ (दास) ढाढी से पूछा कि किस प्रयोजन से तुम यहाँ आए हो? (उत्तर मैंने दिया कि) हे दयालु प्रभु! मुझे प्रतिदिन यह दान दो कि मैं हरि नाम का ध्यान करूँ। हे नानक! हरि दाता ने मुझसे अपना नाम जपाया और मुझे भक्ति की पोशाक पहना दी ॥२१॥१॥सुधु॥

विशेष कई वारो के अन्त मे 'सुधु' पद आता है, इसका अर्थ यह है कि असल के साथ मिला कर संशोधन की हुई ठीक है। कई स्थानो मे 'सुधु किए' लिखा है जो श्री गुरु अर्जन देव ने अपने लेखक भाई गुरुदास को चेतावनी दी है कि इस वाणी को असल के साथ मिलाकर सशोधन कर लेना।

सिरी रागु कबीर जीउ का ॥

एक सुआनु कै घरि गावणा ॥

नोट "एक सुआनु दुइ सुआनी नालि" यह शब्द मेरे गुरुदेव गुरु नानक साहब का श्री राग मे आ चुका है। गायक लोग सगीत की शैली से चौथे घर मे इसका गायन करते हैं। इसी प्रकार भक्त कबीर के इस शब्द को भी इसी घर मे गायन करना चाहिए। मेरे गुरुदेव ने 'एक सुआन' वाला शब्द भक्त कबीर के इस शब्द की व्याख्या की दृष्टि से उच्चारण किया है। भक्त जी का यह शब्द गुरुदेव के पास ही था। ऐसा विचार सन्त महापुरुष सुनाते हैं।

जननी जानत सुतु बडा होतु है
इतनाकु न जानै
जि दिन दिन अवध घटतु है ॥
मोर मोर करि अधिक लाडु धरि
पेखत ही जमराउ हसै ॥१॥

माता (अज्ञान के कारण) समझती है (कि मेरा) पुत्र (आयु मे) बड़ा हो रहा है, (पर) वह इतना भी नही जानती (कि उसके पुत्र की) आयु दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है। मेरा मेरा (कह) कर विशेष प्यार दुलार करती है। (अथवा माता पुत्र को 'मेरा राजा', 'मेरा सोनू' ऐसे अधिकाधिक शब्द कहती रहती है)। (पर) यमराज (अज्ञान मूलक क्रिया को) देख-कर हसता है (कि आयु पूर्ण हो तो पुत्र को अपने साथ यमपुरी मे ले जाऊँ) ॥१॥

ऐसा तैं जगु भरमि लाइआ ॥
कैसे बूझै जब मोहिआ है माइआ
॥१॥रहाउ॥

इस प्रकार ऐ परमात्मा ! तुमने जगत (के जीवों) को (माया के) भ्रम में भुला दिया है। वे आपको कैसे जान सकते हैं जबकि माया ने (सारी जीव-सृष्टि को) मोह लिया है ? ॥१॥रहाउ॥

कहत कबीर छोडि बिखिआ रस
इतु संगति निहचउ मरणा ॥
रमईआ जपहु प्राणी अनत जीवन
बाणी
इन बिधि भवसागरु तरणा ॥२॥

कहते हैं (भक्त) कबीर, (हे भाई !) (विषवत्) विषयो के रस को त्याग दो क्योंकि (विषयो की) सगति में (तू) निश्चय ही मरेगा। हे प्राणी ! सर्वत्र रमणशील परमेश्वर (के नाम) को जपो। 'उसकी' वाणी अनन्त और जीवन रूप है (अर्थात् जीवन देने वाली है)। इस विधि से (अर्थात् अनन्त हरि नाम के जाप से तू) भव-सागर से तर (पार हो) जाएगा ॥२॥

जां तिसु भावै ता लागै भाउ ॥
भरमु भुलावा विचहु जाइ ॥
उपजै सहजु गिआन मति जागै ॥
गुरप्रसादि अंतरि लिव लागै ॥३॥

यदि उस' (रमईआ प्रभु) को पसन्द आ जाए तो (जीव को) प्रेम (और श्रद्धा) लग जाता है और फिर (माया का डाले हुए) भ्रम और सशय अन्त करण से दूर हो जाते हैं और (जीव में) सहज ही ज्ञान उत्पन्न होता है, मति जाग पड़ती है तथा गुरु की कृपा से इसके मन मे (रमईया प्रभु से) लो लग जाती है ॥३॥

इतु संगति नाही मरणा ॥
हुकमु पछाणि ता खसमै मिलणा
॥१॥रहाउ दूजा॥

इन (शुभ गुणों-प्रेम ज्ञान और सुमति) की सगति में (अर्थात् इन दैवी गुणो को ग्रहण करने से) जन्म-मरण (प्राप्त) नही होता। (हे भाई !) पति (परमेश्वर) के हुकम को पहचान (स्वीकार कर) तो तेरा (अवश्य ही) 'उससे' मिलाप होगा ॥१॥ रहाउ दूजा ॥ नोट . शब्द में प्राय एक 'रहाउ' होता है। जिसमें सम्पूर्ण शब्द का निष्कर्ष साराश होता है, पर कही-कही दो या दो से अधिक 'रहाउ' भी आते हैं।

सिरी रागु त्रिलोचन का ॥

माइआ मोहु मनि आगलड़ा प्राणी
जरा मरणु भउ विसरि गइआ ॥
कुटंबु देखि बिगसहि कमला
जिउ पर घरि जोहहि कपट
नरा ॥१॥

हे प्राणी ! तुम्हारे मन में माया का मोह अत्याधिक (भरा हुआ) है अथवा बहुत समय से माया और मोह के प्रति तीव्र आकर्षण है कि तुम बुढापे और मौत को भी भूल गये हो। (जिस प्रकार) कमल (सूर्य को देख कर) प्रसन्न होता है, (उसी प्रकार जीव) कुटुम्ब को देख कर खुश होता है अथवा पागलों की तरह अपने कुटुम्ब को देखकर फजूल खुश हो रहा है। हे कपटी नर ! तू परायी स्त्री को बुरी दृष्टि से देखते हो ॥१॥

दूड़ा आइओहि जमहि तणा ॥
तिन आगलड़ै मै रहणु न जाइ ॥
कोई कोई साजणु आइ कहै ॥

जब मृत्यु का संदेश देने वाला यम का पुत्र (बुढापा) जोर से दौड कर आएगा तो उसके आगे ठहरना अति कठिन है अथवा यमराज के बलवान दूत अनेक प्रकार के शस्त्रों से सज्जित होकर जब लेने आएँगे तो उनके सामने पेश नही जाती। (अन्तर्गत अभिलाषा यह है कि मुझे) कोई सज्जन (सन्त)

मिलु मेरे बीठुला लै बाहड़ी वलाइ ॥
मिलु मेरे रमईआ मै लेहि छडाइ ॥
१॥रहाउ॥

आकर (यह उपदेश) कहे कि हे मेरे बीठल भगवान ! मुझे (आकर) मिलो और अपनी भुजा खोलकर (मेरे गले में) डाल (अर्थात् गले मिल) दो। हे मेरे रमईआ प्रभु ! मुझे आकर मिलो और (मुझे यमदूतों से अथवा बुढ़ापे से) छुड़ा दो ॥१॥ रहाउ ॥

विशेष. बीठुला—महाराष्ट्र प्रदेश में सतारे शहर के निकट एक भक्त पुण्डरीक नाम से अति दीन था, परन्तु आदर सत्कार के लिए उसने भगवान विष्णु जी को एक ईंट बैठने को दी। भगवान् बड़े प्रेम से उस पर बैठे, जिससे उनको बिटल कहा जाता है।

अनिक अनिक भोग राज बिसरे
प्राणी
संसार सागर पै अमरु भइआ ॥
माइआ मूठा चेतसि नाही
जनमु गवाइओ आलसीआ ॥२॥

हे परमेश्वर से भूले हुए प्राणी ! तुम अनेक भोग-विलासों मे पड कर प्रभु को भूल गए हो और संसार-सागर में डूबते हुए भी तुम खुद को अमर समझते हो। माया से ठगे हुए तुम (परमेश्वर)को स्मरण नहीं करते (क्योंकि तुम्हे चेतना नही आई)। हे प्रमादी जीव ! तुमने अपना (दुर्लभ मनुष्य) जन्म व्यर्थ ही खो दिया है ॥२॥

बिखम घोर पंथि चालणा प्राणी
रवि ससि तह न प्रवेसं ॥
माइआ मोहु तब बिसरि गइआ
जां तजीअले संसारं ॥३॥

हे प्राणी ! (एक दिन तुम्हे) कठिन और भयानक डराने वाले मार्ग पर चलना है, जहाँ पर सूर्य और चन्द्रमा का प्रवेश नही है (अर्थात चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार है)। माया का मोह तब जीव को भूलेगा, जब वह ससार का परित्याग करेगा ॥३॥

आजु मेरै मनि प्रगटु भइआ है
पेखीअले धरमराओ ॥
तह करवल करनि महाबली
तिन आगलड़ै मै रहणु न जाइ ॥४॥

(हे गुरुदेव ! आपके उपदेश को सुनकर) आज मेरे मन मे दृढ़ निश्चय हुआ है कि (पाप कर्मों के कारण) मुझे धर्मराजा (का मुख) देखना पडेगा। वहाँ (अर्थात धर्मराजा की कचहरी मे) महाबली (यमदूत) अपने हाथो से जीवों को मारेगा (दलन करेगा) उन बलवान दूतो के सामने मैं ठहर नहीं सकता ॥४॥

जे को मूं उपदेसु करतु है
ता वणि तृणि रतड़ा नाराइणा ॥

(यमराज की क्रूरता को श्रवण करके उससे भयभीत होकर मैं ईश्वर चिन्तन करने लग पड़ा हूँ अब मेरी यह अवस्था है कि) जो कोई (हितैषी सज्जन) उपदेश करता ही है (तो उसका भाव ऐसा होना चाहिए कि मुझे) बन में एवं तृण में (भाव सभी जगह) परिपूर्ण परमात्मा दिखाई देता है।

ऐ जी तूं आपे सभ किछु जानदा
बदति त्रिलोचनु रामईआ ॥५॥२॥

भक्त त्रिलोचन कहते हैं कि हे रमईया जी ! तुम आप ही सब कुछ जानते हो (कि मेरी भावना क्या है अर्थात् मुझे यमदूतों से छुडा दो) ॥५॥२॥

सिरी रागु भगत कबीर जीउ का ॥

अचरज एकु सुनहु रे पंडीआ
अब किछु कहनु न जाई ॥
सुरि नर गण गंध्रब जिनि मोहे
त्रिभुवन मेखुली लाई ॥१॥

हे पण्डित ! आश्चर्य चकित (करने वाली माया की) एक बात (मुझसे ध्यान पूर्वक) सुनो। इस समय भी (माया के सम्बन्ध में) कुछ भी कहा नही जा सकता। (हाँ) यह वह माया है जिसने देवता, मनुष्य, गण, गन्धर्वादि मोहित किए हैं और तीन लोको (अर्थात् समूची सृष्टि) को (मोह माया की) तड़ागी में बान्ध रखा है ॥१॥

राजा राम अनहद किंगुरी बाजै ॥
जा की दिसटि नाद लिव लागै ॥१॥
रहाउ ॥

(हे योगी ! यह तो हुआ माया का स्वरूप, किन्तु माया का) 'राजा राम' उसके (नाम रूपी) किंगुरी से अनाहद शब्द बज रहा है, जिसकी (कृपा) दृष्टि से इसी (अनाहद) शब्द (नाद) से लौ (सुरति) लग जाती है ॥१॥ रहाउ ॥

भाठी गगनु सिङिआ अरु चुंङिआ
कनक कलसु इकु पाइआ ॥
तिसु महि धार चुऐ अति निरमल
रस महि रसन चुआइआ ॥२॥

'उसकी' प्राप्ति के साधन के विषय में हमने दशम् द्वार को भट्ठी बनाई है अथवा ईडा और पिंगला(अर्थात दाहिनी और बाईं नासिका ये दो नालियाँ हैं तथा (शुद्ध हृदय को) एक स्वर्ण पात्र (मदिरा चुआने के लिए बनाया) है। हृदय (रूपी स्वर्ण पात्र) में आत्मानन्द की अति निर्मल (नाम) अमृत की धारा टपक रही है। इस प्रकार सर्व रसो मे उत्तम (नाम-आत्म) रस मैंने (दशम द्वार से) टपकाया (अनुभव किया) है ॥२॥

एक जु बात अनूप बनी है
पवन पिआला साजिआ ॥
तीनि भवन महि एको जोगी
कहहु कवनु है राजा ॥३॥

(हे योगी !) एक अनुपम बात यह हुई है कि (नाम-रस मदिरा को पीने के लिए मैंने श्वासों रूपी) पवन को प्याला बनाया है। त्रिलोकी में एक ही ऐसा योगी बताओ कि कौन है वह जिसने सर्वोत्तम नाम महा रस (आत्मानन्द रूपी मदिरा) पीकर तृप्त हो गया है ॥३॥

ऐसे गिआन प्रगटिआ पुरखोतम
कहु कबीर रंगि राता ॥
अउर दुनी सभ भरमि भुलानी
मनु राम रसाइन माता ॥४॥३॥

(भक्त) कबीर जी कहते हैं कि (मेरे हृदय में) पुरुषोतम प्रभु का ज्ञान प्रकट हुआ है इसलिए (मैं सदा नाम के) रंग मे अनुरक्त रहता हूँ और सारी दुनिया (भ्रम में) भूली हुई है, पर (मेरा) मन (रसो के घर राजा) राम के रस (नाम-रस) में मस्त हो रहा है ॥४॥३॥

सिरी राग बाणी भगत बेणी जीउ की ॥ पहिरआ कै घरि गावणा ॥

विशेष भक्त कबीर जी ने उपरोक्त शब्द को समाप्त किया तो भक्त बेणी जी ने माया से वैराग्य धारण करने को ही मोक्ष का साधन बताकर इस सिद्धान्त का निरूपण इस शब्द मे किया है।

नोट · (इस शब्द को भा) पहले घर' मे ही गायन करना है जिसमे गुरु नानक साहब के पहरे दर्ज हैं। १४३० पृष्ठ वाली 'बीड' के पृष्ठ ७४ पर उसका शीर्षक ही है 'सिरी रागु पहले महला १ घरु १' अर्थात् प्रहर प्रहर मे इस शब्द का गायन करना अथवा वस्त्रो आभूषणों के पहनने पर इस शब्द का गायन करना अथवा पहरा देते-देते घरों के आगे इस शब्द का गायन करना।

रे नर गरभ कुंडल जब आछत
उरध धिआन लिव लागा ॥
मिरतक पिंडि पद मद ना
अहिनिसि एकु अगिआनु सु लागा ॥
ते दिन संमलु कसट महा दुख
अब चितु अधिक पसारिआ ॥
गरभ छोडि म्रित मंडल आइआ
तउ नरहरि मनहु बिसारिआ
॥१॥

हे नर (प्राणी)! जब (तुम माता के) गर्भ कुण्ड मे उलटे लटके हुए थे, तब (तुम्हारा) ध्यान ऊपर (परमात्मा की ओर) था अथवा तुम्हारा ध्यान उलटी ओर भाव लाते ऊपर की ओर थी और सिर नीचे की ओर था)। उस समय तुम्हें इस विनश्वर (मिट्टी) शरीर का जरा भी अहकार नही था और दिन-रात एक अज्ञान के अन्धकार से मुक्त थे अथवा शरीर से सर्वथा नग्न था अथवा शरीर से तू मृतक था (अर्थात शरीर का अहसास नही था)। दिन-रात (ईश्वर के चरणों मे) मस्त था और अज्ञान का अभाव था। उन कष्ट पूर्ण एव महा दु खो को याद करो। (किन्तु खेद है कि) अब तुमने अधिक पसारे मे चित्त लगाया है। (हे भाई!) गर्भ को छोडकर जब तू मृत्यु मण्डल (ससार) में आए हो, तब से तुमने नरसिंहावतार धारण करने वाले प्रभु को मन से भुला दिया है अथवा हे नर! तुमने हरि को विस्मृत कर दिया है ॥१॥

फिरि पछुतावहिगा मूड़िआ
तूं कवन कुमति भ्रमि लागा ॥
चेति रामु नाही जमपुरि जाहिगा
जनु बिचरै अनराधा ॥१॥रहाउ॥

हे मूर्ख! (अन्तत:) तुझे फिर पछताना पडेगा। भ्रम में पड़कर कौन-सी कुमति में तू लग रहा है। राम का चिन्तन कर नहीं तो यमलोक जायेगा (जहाँ तुम्हे सजा मिलेगी). कहीं तू (रामनाम के चिन्तन के बिना) औरो की आराधना में लगे रहो अथवा मूर्खों की तरह मत विचरण करो ॥१॥ रहाउ ॥

बाल बिनोद चिंद रस लागा
खिनु खिनु मोहि बिआपै ॥
रसु मिसु मेधु अंमृतु बिखु चाखी
तउ पंच प्रगट संतापै ॥
जपु तपु संजमु छोडि सुक्रित मति
राम नामु न अराधिआ ॥
उछलिआ कामु काल मति लागी
तउ आनि सकति गलि बांधिआ
॥२॥

बाल्यावस्था में (जीव) (मन) चिदोआ खेल-तमाशों के रस में लगता है और फिर (धीरे-धीरे) प्रत्येक क्षण में इसे मोह व्याप्त होने लगता है। (किशोरावस्था में यह जीव) विषय-विकारों में लगकर मांस या शराब का रस, जो विषवत् है उसे बहाने से अमृत (औषधि) समझकर वह पान करता है तब (काम, क्रोधादि) पांच विकार प्रकट होकर (जीव को) कष्ट देते हैं। जहरीले मदिरादि पदार्थों का आस्वादन करने से जीव जप, तप, सयम तथा श्रेष्ठ कर्म करने वाली सुमति छोड़ देता है और राम के नाम की आराधना (भी) नही करता। (युवावस्था में) कामना (वासना) बढ़ती (प्रबल होती) है इस प्रकार कालिमा बुद्धि को लगती जाती है (ऐसा देखकर माता-पिता आदि स्त्री को लाकर गले में बांध देते हैं (अर्थात विवाह कर देते हैं) ॥२॥

तरुण तेजु परत्रिअ मुखु जोहहि
सरु अपसरु न पछाणिआ ॥
उनमत कामि महा बिखु भूलै
पापु पुंनु न पछानिआ ॥
सुत संपति देखि इहु मनु गरबिआ
रामु रिदै ते खोइआ ॥
अवर मरत माइआ मनु तोले
तउ भग मुखि जनमु विगोइआ ॥३॥

यौवन (और काम के) तेज (बल) के कारण (अपनी स्त्री के होते हुए भी) पर स्त्रियों के मुख को काम (वासना) की दृष्टि से देखता है और समय कुसमय अथवा भले व बुरे को नही पहचानता। काम से उन्मत (पागल) होने के कारण महान विषवत् (विषयो) मे भूला हुआ (जीव) पाप और पुण्य को नहीं पहचानता अर्थात् धर्माधर्म का विचार नही करता। पुत्र और सम्पत्ति देखकर जीव का मन अहंकार करता है और हृदय से राम (रत्न) को खो देता है और (निकटवर्ती सम्बन्धियों) के मरने पर (यह जीव) मन में माया को तोलता है (कि कितनी वह छोड गए हैं और उसमें से कितनी तुम्हे मिलेगी) किन्तु ऐसा करने से भाग्य से प्राप्त अत्युत्तम मानव जनम को खो देता है (असफल कर देता है) ॥३॥

पुंडर केस कुसम ते धउले
सपत पाताल की बाणी ॥
लोचन स्रमहि बुधि बल नाठी
ता कामु पवसि माधाणी ॥
ता ते बिखै भई मति पावसि
काइआ कमलु कुमलाणा ॥
अवगति बाणि छोडि म्रित मंडलि
तउ पाछै पछुताणा ॥४॥

(वृद्धावस्था मे जीव के) बाल सफेद कमल से भी अधिक सफेद हो जाते हैं और आवाज कमजोर पड़ जाती है (ऐसे लगता है जैसे वह) सातवें पाताल (से बोल रहा हो)। आंखों से पानी बहता है और शरीर का बल नही रहता तथा बुद्धि भी क्षीण पड जाती है (अर्थात् शरीर और बुद्धि दोनों ही दुर्बल होते जाते हैं) किन्तु अन्दर में कामनाएं उत्पन्न होकर मथनी के समान मन को मन्थन करती है (अर्थात काम-वासनाओं के अन्तःकरण में बल पडते विलोहे रहते हैं)। इससे बुद्धि में पावसवत् वासना का अन्धकार छा जाता है जिससे शरीर रूपी कमल मुरझा जाता है। वर्षा में कमल कुम्हला जाता है। मृत्युलोक (अर्थात इस संसार) में आकर (जीव) परमात्मा के नाम की वाणी को छोड़ देता है और इस प्रकार बुढ़ापे में पछताता है ॥४॥

बिनसी देह देखि धुनि उपजै
मान करत नही बूझै ॥
लालचु करै जीवन पद कारन
लोचन कछू न सूझै ॥
थाका तेजु उडिआ मनु पंखी
घरि आंगनि न सुखाई ॥
बेणी कहै सुनहु रे भगतहु
मरन मुकति किनि पाई ॥५॥

(बूढ बुढापे की अवस्था में वृद्ध बाबा के अपने) छोटे-छोटे बाल बच्चो को अथवा समीप अपने सम्बन्धियो की देह को बाहर देखकर (हृदय मे प्यार की) ध्वनि उत्पन्न होती है (अर्थात उनको अपने समीप बुलाता है) और इनके पालन-पोषण का मान करता है, किन्तु वे उसके (हृदय की बात को) नहीं समझते। जबकि आँखो से कुछ दिखाई नही देता, फिर भी जीवन (बचाने के लिए) लालच करता है। (प्राण) बल क्षीण होकर जब (आत्म रूपी) पक्षी लोक-लोकातर की उडान लेता है (प्राणों का शरीर से अलग होना) तो घर एव आंगन में (रखा हुआ मृतक शरीर) अच्छा नही लगता। हे भक्तजनो! (मेरी यह बात) सुनो कि मरने के पश्चात् मुक्ति किसने प्राप्त की है? (अर्थात किसी ने भी नही भाव भक्तजन हमे मरने से पहले नाम जपने के लिए उपदेश करते हैं) किन्तु हम (परमात्मा की मति के बिना) अन्तत पछताते हैं ॥५॥

सिरी रागु ॥

तोही मोही मोही तोही
अंतरु कैसा ॥
कनक कटिक जल तरंग जैसा ॥१॥

(भक्त) रविदास कहते हैं कि हे भगवान! तुममे और मुझमे (हाँ) मुझमे और तुममें अन्तर कैसा (अर्थात कोई अन्तर नही)। यदि कोई अन्तर दिखता है तो वह स्वर्ण और आभूषण या जल और तरग जैसा है। (सोना और उससे बने आभूषण तथा जल में उत्पन्न तरग वास्तव में एक ही है, वैसे ही जीव और परमात्मा एक है) ॥१॥

जउपै हम न पाप करंता अहे अनंता।
पतित पावन नामु कैसे हुंता ॥१॥
रहाउ॥

यदि मैं संसार में रहता हुआ पाप नही करता, तो हे अनन्त प्रभु! तुम्हारा नाम पतित-पावन कैसे हो सकता था? (यदि कोई जीव पाप ही न करे तो किसे आप पवित्र करके पतित-पावन नाम को सार्थक करोगे?) ॥१॥ रहाउ ॥

तुम जु नाइक आछहु अंतरजामी ॥
प्रभ ते जनु जानीजै
जन ते सुआमी ॥२॥
सरीरु आराधै मोकउ बीचारु देहू ॥
रविदास समदल समझावै कोऊ
॥३॥

हे अन्तर्यामी प्रभो! यदि तुम खुद को स्वामी और हमे दास कहकर अन्तर स्थापित करना चाहते हो तो वह भी उचित नहीं है क्योंकि स्वामी से ही दास जाने जाते हैं और दासों से ही स्वामी। उनमें घनिष्ठ सम्बन्ध है। दास विहीन स्वामी की कोई सत्ता नही और स्वामी की अनुपस्थिति मे कोई दास नही होता। (जब इस प्रकार दृढ़ता पूर्वक भक्त रविदास ने प्रभु को प्यार से दलील देकर मनाया तो प्रसन्न होकर मेरे स्वामी ने माँगने के लिए कहा। भक्त का मागना हीव स्तुत मागना है)। हे स्वामी! मुझे यह बुद्धि दो कि जब तक शरीर है (मैं) तुम्हारी आराधना करता रहूँ; भक्त रविदास कहते हैं कि कोई विरले (ही) ऐसा समझते हैं कि परमात्मा सब जीवो मे एक जैसा है ॥३॥

सिरी राग में आई हुई वाणी का विश्लेषण—शब्दों की गिनती ।

महला १ के ३३ शब्द
महला ३ के ३१ शब्द
महला ४ के ६ शब्द
महला ५ के ३० शब्द
महला १ की १७ अष्टपदीयां
महला ३ की ८ अष्टपदीयां
महला ५ की २ अष्टपदीयां
महला १ का १ छन्त
महला ५ का १ छन्त
महला १ के २ पहरे
महला ४ का १ पहरे
महला ५ का १ पहरे
महला ४ का १ छन्त
महला ५ के ६ छन्त
महला ४ का १ वणजारा

सिरी राग की वार के २१ श्लोक
वार के २२ महले
वार की २१ पौड़ीयां

सिरी राग की भक्त वाणी में भक्त जनों के पाँच शब्द हैं—

भक्त कबीर के २ शब्द
भक्त त्रिलोचन का १ शब्द
भक्त बेणी का १ शब्द
भक्त रविदास का १ शब्द

कुल— २१० शब्द

सिरी राग की भक्त वाणी इति ।

सम्पूर्ण सिरी राग समाप्तम् ।

माझ राग मेरे विचार में

राग मॉंड-मॉंड भक्तियुग (मध्यकाल) में प्रचलित था। अनेक भक्त संगीतकारो ने यह राग गाया है। यह स्पष्ट है कि मेरे गुरुदेव ने राग मॉंड को ही माझ लिखा है। इसका मूल कारण है भाषा का अन्तर। गुरुदेव के काल से पूर्व अपभ्रंश भाषा प्रचलित थी। शब्द तथा उच्चारण आज की भाषा से भिन्न थे। जिन व्यक्तियों को इस सम्बन्ध मे शका हो कृपया 'गुरु नानक भाषा' डा० काला सिंह बेदी की पुस्तक पढ़ें। सिख ग्रन्थाकारों के मतानुसार 'माझ' एक देसी राग है और इसका वर्णन प्राचीन सगीत ग्रन्थों में नही है। शायद इस राग का सम्बन्ध 'माझे' इलाके से है क्योंकि यह एक स्थानीय राग है इसलिए इसमें भक्त नामदेव, भक्त कबीर इत्यादि भक्तो की रचनाएँ नही हैं। पाँचवी पातशाही, गुरु अर्जन देव ने इसी राग में 'बारह माहा' लिखा है जिसमे मेरे गुरुदेव ने प्रभु प्रियतम को केवल मात्र पुरुष की सज्ञा देकर अपने आप को स्त्री मान कर बारह महीनो के द्वारा 'उससे' मिलन की तीव्र अभिलाषा प्रेम-विरह से विह्वलता और दु:ख तथा गुरु के निकट सहवास में अपने आपको परमात्मा की इच्छा पर सम्पूर्ण आत्म समर्पण पर बल दिया है। जिस प्रकार एक स्त्री को अपने पति मिलन की उत्कण्ठा होती है, उसी प्रकार जीव रूपी स्त्री को पति रूपी परमात्मा से मिलने को तीव्र इच्छा होती है। भला निर्वसित स्त्रियाँ अपने प्रियतम भगवान के वियोगावस्था में कैसे शान्ति सुख प्राप्त कर सकती हैं? पजाब की जलवायु तथा ऋतुओं का भी वर्णन है।

वस्तुतः रागो की श्रेणी मे माझ राग का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही है, किन्तु यह सोरठ, बिलावल, सारग, धनासरी और नट इन पाँच रागों के मिश्रण से बनता है। बुद्धि प्रकाश दर्पण मे माझ राग के विषय में इस प्रकार लिखा है—

"श्री राग मधु माधवी और मलार स्वर जान।
इन मिल माझ बखानही, लीजे गुणी जन मान।"

गायक लोग इसे मध्यान्तर में गायन करते हैं और कुछ लोग इसका सायकाल में भी गायन करते हैं।
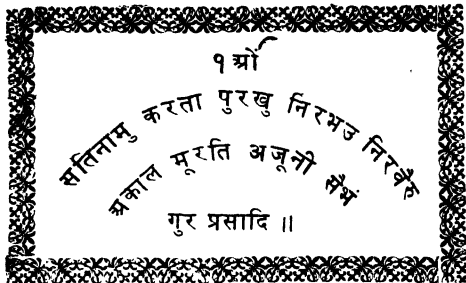
रागु माझ चउपदे घरु १ महला ४

"हरि है मेरे प्राणों का आधार और श्वांस का श्रृंगार ।"

एक समय चौथी पातशाही, गुरु रामदास साहब के दर्शनो के लिए सन्त मण्डली आई और उन्होने प्रश्न किया कि हे गुरुदेव ! आप अपनी मानसिक अवस्था का वर्णन करे। उनकी प्रार्थना पर आगे के सात शब्दो मे अपनी प्रेमावस्था और प्रभु मिलाप की उत्कण्ठा का विस्तार पूर्वक मेरे गुरुदेव ने निरूपण किया है।

हरि हरि नामु
मै हरि मनि भाइआ ॥
वडभागी हरिनामु धिआइआ ॥
गुरि पूरै हरिनाम सिधि पाई
को विरला गुरमति चलै जीउ ॥१॥

(हे प्रिय सन्त जनो !) दुःखो को दूर करने वाले हरि का हरिनाम मेरे मन को भा गया है, पर हरिनाम का ध्यान उत्तम भाग्य से होता है। पूर्ण गुरु की (कृपा से हरिनाम जपने की) सिद्धि (सफलता) प्राप्त हुई है। किन्तु कोई विरला ही होता है, जो गुरु के अनुसार गुरु की मति पर (बताए हुए मार्ग पर) चलता है (और नाम जपता है) ॥१॥

मै हरि हरि खरचु
लइआ बंनि पलै ॥
मेरा प्राण सखाई सदा नालि चलै ॥

मैंने दुःखों को दूर करने वाले हरिनाम रूप खर्च को (हृदय रूपी) पल्ले में बाध लिया है। (अर्थात् मैंने हरिनाम धन को लोक-परलोक में खर्च करने के लिये सग्रह किया है)। (हरि नाम मेरे) प्राणो का सहायक (सखा) है जो सदा मेरा साथ देगा (और देता है)।

पुरि पूरै हरिनामु दिड़ाइआ हरि निहचलु हरि धनु पलै जोउ ॥२॥	पूर्ण गुरु ने हरि नाम को (मेरे हृदय में) दृढ़ कराया है। (अब) यह हरि का निश्चल (नाम-) धन मैंने (हृदय रूपी) पल्ले में (संभालकर) बाँध लिया है ॥२॥
हरि हरि सजणु मेराप्रीतमु राइआ ॥ कोई आणि मिलावै मेरे प्राण जीवाइआ॥ हउ रहि न सका बिनु देखे प्रीतमा मै नीर वहे वहि चलै जीउ ॥३॥	हरि (ही) मेरा सज्जन है, हरि (ही) मेरा प्रियतम है और हरि (ही) मेरा राजा है। यदि कोई (सज्जन) आकर मुझे (हरि प्रियतम से) मिला देवे तो वह (परोपकारी) जीवन देने वाला प्राणों (का रक्षक होगा)। प्रियतम को देखे बिना मैं रह नही सकता, मेरी आँखों से (विरह और प्रेम की प्रबलता के कारण) निरन्तर नीर (अश्रु) बह रहा है अथवा प्रेमजल के नाले बहते ही जाते हैं ॥३॥
सतिगुरु मित्रु मेरा बाल सखाई ॥ हउ रहि न सका बिनु देखे मेरी माई॥ हरि जीउ क्रिपा करहु गुरु मेलहु जन नानक हरि धनु पलै जीउ ॥४॥१॥	सत्गुरु (ही) मेरा मित्र और बाल सखा है। हे मेरी (गुरुदेव) माता! मैं 'उसे' देखे बिना नही रह सकता। हे हरि जी! कृपा करके (मुझे) गुरु से मिला दो तो (गुरु से ही) (नाम) धन लेकर (अपने हृदय रूपी) पल्ले से बाँध लूँ, (कहते हैं मेरे गुरुदेव) दास नानक—गुरु रामदास साहब ॥४॥१॥
माझ महला ४॥	"प्रियतम प्रभु के लिए उत्कण्ठा।"
मधुसूदन मेरे मन तन प्राना ॥ हउ हरि बिनु दूजा अवरु न जाना ॥ कोई सजणु संतु मिलै वडभागी मै हरि प्रभु पिआरा दसै जीउ ॥१॥	मधु दैत्य को मारने वाला, मधु सूदन (कृष्ण) भगवान मेरे मन, तन और प्राणों (का आधार) है और मैं हरि के बिना किसी अन्य (दूसरे) को नही जानता। कोई भाग्यशाली सज्जन संत मुझे मिले जो हरि प्रभु प्रियतम जी के बारे मे (कुछ पता) बता दे ॥१॥
हउ मनु तनु खोजी भालि भालाई ॥ किउ पिआरा प्रीतमु मिलै मेरी माई॥ मिलि सतसंगति खोजु दसाई विचि संगति हरि प्रभु वसै जीउ ॥२॥	(सभी का यह विचार है कि परमात्मा का निवास अन्तर्गत है, इसलिए) मैं भी अपने मन और तन में खोजी होकर 'उसको' खोज रहा हूँ और (औरों को भी कह रहा हूँ कि 'उसे') खोजो। हे मेरी माता! (किस विधि से) प्यारा प्रियतम मुझे मिल सकता है। (अन्तत.) सत्सगति मे मिलकर मैंने 'उसकी' खोज पूछी वहाँ से पता लगता कि) हरि प्रभु सगति (सत्संग) मे बसता है ॥२॥
मेरा पिआरा प्रीतमु सतिगुरु रखवाला ॥	(सत्गुरु ही) मेरा प्यारा प्रियतम और रक्षा करने वाला है, (इसलिये मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि) हे सत्गुरु! मैं दीन (नाचीज)

हम बारिक दीन करहु प्रतिपाला ॥
मेरा मात पिता गुरु सतिगुरु पूरा
गुर जल मिलि कमलु बिगसै जीउ
॥३॥

बालक हूँ। अत: (कृपा करके) मेरी रक्षा करो। पूर्ण सत्गुरु जो (सबसे) बडा और मुख्य है, वही मेरा माता और पिता है। जिस प्रकार जल के मिलने से कमल (फूल) प्रफुल्लित हो जाता है, उसी प्रकार मेरा हृदय रूपी कमल गुरु को मिलकर विकसित होता है ॥३॥

मै बिनु गुर देखे नीद न आवै ॥
मेरे मन तनि वेदन गुर बिरहु
लगावै ॥
हरि हरि दइआ करहु गुरु मेलहु
जन नानक गुर मिलि रहसै जीउ
॥४॥२॥

गुरु के दर्शन के बिना मुझे नीद नही आती। गुरु से विरह (अलग होने) के कारण तन और मन में वेदना (पीड़ा) होती है। हे हरि! दया करके मुझे गुरु से मिला दो क्योंकि गुरु से मिलकर ही (मेरा हृदय रूपी कमल) प्रफुल्लित व आनन्द से विकसित हो जायेगा। कहते हैं दास नानक—गुरु राम दास साहब ॥४॥२॥

माझ महला ४॥

"हरिगुण गाओ और दुष्कर भव-सागर से पार उतरो।"

हरिगुण पड़ीऐ हरिगुण गुणीऐ ॥
हरि हरि नाम कथा नित सुणीऐ ॥
मिलि सतसंगति हरिगुण गाए
जगु भउजलु दुतरु तरीऐ जीउ ॥१॥

हरि के गुणों को पढना चाहिए और हरि के गुणों पर चिंतन और मनन करना चाहिए तथा हरि व हरिनाम की कथा कों हीं नित्य सुनना चाहिए। सत्सगति में मिल कर जब (जिज्ञासु) हरि के गुणों को गाता है, तब दुष्कर (कठिन) जगत, (हाँ) ससार-सागर से पार हो सकता है ॥१॥

आउ सखी हरि मेलु करेहा ॥
मेरे प्रीतम का मै देइ सनेहा ॥
मेरा मित्र सखा सो प्रीतमु भाई
मै दसे हरि नरहरीऐ जीउ ॥२॥

हे सखि रूप सन्तजनों! (दया करके) आओ और आकर मेरा हरि के साथ मिलाप करो तथा मुझे मेरे प्रियतम (हरि) का (नाम) सन्देश दो अथवा 'उसके' साथ मिलने का ही उपदेश करो। वही मेरा मित्र है, वही मेरा सखा है, वही मेरा प्रिय भाई है, जो मुझे नरसिंह अवतार हरि का पता बताने (की कृपा) करता है ॥२॥

मेरी बेदन हरि गुरु पूरा जाणै ॥
हउ रहि न सका बिनु नाम वखाणे ॥
मै अउखधु मंत्रु दीजै गुर पूरे
मै हरि हरि नामि उधरीऐ जीउ
॥३॥

(विरह के कारण हृदय में) जो पीडा हुई है, वह केवल हरि रूप पूर्ण गुरु ही जानता है। मैं नाम जपने के बिना रह नही सकता। हे मेरे पूर्ण गुरु! (अहंकार रूपी रोग से निवृति के लिए) मुझे (हरिनाम की) औषधि दीजिए और (कामादि सर्प को मारने के लिए गरुड़ी) मन्त्र दीजिए क्योंकि (केवल) हरि, (हाँ) हरि नाम के द्वारा ही मेरा उद्धार होगा ॥३॥

हम चात्रिक दीन सतिगुर सरणाई ॥
हरि हरि नामु बूंद मुखि पाई ॥
हरि जलनिधि हम जल के मीने
जन नानक जल बिनु मरीऐ जीउ ॥४॥३॥

हे सत्गुरु! मैं चातृक (पक्षी) की तरह दीन-हीन होकर आपकी शरण मे आया हूँ। (दया करके) सर्व दु:खों को हरण करने वाले हरिनाम रूपी (स्वाती) बून्द मेरे मुख मे डालो (तो मुझे शान्ति व तृप्ति हो)। (मेरा प्रिय) हरि जल का समुद्र है और मैं हूँ उसमे रहने वाली मछली। इसलिए मैं जल (हरि) के बिना (तड़प-तड़प कर) मर जाऊँगी ॥४॥३॥

माझ महला ४॥

"सत्संग मे रहकर ही भव-सागर से पार होगे।"

हरिजन संत मिलहु मेरे भाई ॥
मेरा हरिप्रभु दसहु मै भुख लगाई ॥
मेरी सरधा पूरि जगजीवन दाते
मिलि हरि दरसनि मनु भीजै जीउ ॥१॥

हे हरि के सन्तजनो! हे मेरे (प्यारे) भाई! (आप कृपा करके मुझे आकर) मिलो और मुझे हरि प्रभु का पता बताओ क्योंकि मुझे 'उसकी' (दर्शन की अत्याधिक) भूख है। हे जगजीवन दाते! मुझे (आपके दर्शन की) श्रद्धा (व प्यास) है वह मेरी पूर्ण करो, हे हरि! मुझे (अवश्य) मिले। तेरे दर्शन (की वर्षा) से मेरे मन (की धरती) लहलहा उठे, भीग जाये (अर्थात मन तृप्त हो जायेगा) ॥१॥

मिलि सतसंगि बोली हरि बाणी ॥
हरि हरि कथा मेरै मनि भाणी ॥
हरि हरि अंमृतु हरि मनि भावै
मिलि सतिगुर अंमृतु पीजै जीउ ॥२॥

(अभिलाषा है कि मैं) सत्सगति मे मिलकर हरि की बाणी (नाम) बोलूँ क्योकि सर्व दु:खो को हरण करने वाले हरि (नाम) की कथा मेरे मन को अच्छी लगती है। (यह भी इच्छा है कि) सत्गुरु को मिल कर मै (नाम रूपी) अमृत का पान करूँ क्योकि सर्व दु:खो को नाश करने वाले हरि, (हाँ) हरि (नाम) अमृत मेरे मन को (बहुत) प्रिय लगता है ॥२॥

वडभागी हरि संगति पावहि ॥
भागहीन भ्रमि चोटा खावहि ॥
बिनु भागा सतसंगु न लभै
बिनु संगति मैलु भरीजै जीउ ॥३॥

भाग्यशाली (जिज्ञासु ही) हरि की सगति प्राप्त करते हैं और अभागे जीव (चौरासी लाख योनियो मे) भटक कर अथवा माया के भ्रम में पड़ कर ठोकरें खाते हैं। भाग्य के बिना सत्सगति प्राप्त नही (होती) और बिना (सच्ची) सगति के (जीव का मन पाप रूपी) मलिनता से भरा रहता है ॥३॥

मै आइ मिलहु जगजीवन पिआरे ॥
हरि हरि नामु दइआ मनि धारे ॥

हे जग के जीवन रूप प्यारे (हरि)! मुझे आकर मिलो और दया करो कि मेरा मन दु:खो को दूर करने वाले हरिनाम को धारण करे। गुरु की मत्ति (ग्रहण करने) के कारण मुझे (हरि)

गुरमति नामु मीठा मनि भाइआ
जन नानक नामि मनु भीजै जीउ
॥४॥४॥

नाम मधुर लगता है, (हाँ) प्रिय लगता है, क्योंकि नाम के द्वारा ही मेरा मन गद्‌गद् और प्रसन्न रहता है, (कहते हैं) दास नानक—गुरु रामदास साहब ॥४॥४॥

माझ महला ४॥

"सत्गुरु है अमृत का सागर।"

हरि गुर गिआनु
हरिरसु हरि पाइआ ॥
मनु हरि रंगि राता
हरिरसु पीआइआ ॥
हरि हरि नामु मुखि हरि हरि बोली
मनु हरि रसि टुलि टुलि पउदा
जीउ ॥१॥

(हे भाई !) गुरु के उपदेश से हरि का ज्ञान हुआ जिससे सर्व दुःखों को नाश करने वाले हरि रस की प्राप्ति हुई। अब मेरा मन हरि के (प्रेम) रग में रंग गया है और मैंने औरो को भी हरि नाम का रस पिलाया है। प्रत्येक पाप का हरण करने वाला हरिनाम मेरे मुख में है और मैं हरि नाम को ही बोलता रहता हूँ जिससे हरि के नाम रस में मेरा मन प्रफुल्लित रहता है ॥१॥

आवहु संत मै गलि मेलाईऐ ॥
मेरे प्रीतम की मै कथा सुणाईऐ ॥
हरि के संत मिलहु मनु देवा
जो गुरबाणी मुखि चउदा जीउ
॥२॥

हे सन्त जनों ! (दया करके) आओ और मुझे अपने गले लगाओ। मुझे मेरे प्रियतम (प्रभु) की कथा सुनाओ। हे हरि के (प्रिय) सन्त जनो ! मुझे (आकर) मिलो। जो सज्जन मुख से गुरु की वाणी का उचारण करता है, (इच्छा है कि मैं) उसे अपना मन अर्पण कर दूँ ॥२॥

वडभागी हरि संतु मिलाइआ ॥
गुरि पूरै हरि रसु मुखि पाइआ ॥
भागहीन सतिगुरु नही पाइआ
मनमुखु गरभ जूनी निति पउदा
जीउ ॥३॥

हरि (किसी) भाग्यशाली को ही सन्त से मिलाता है और पूर्ण गुरु ही (जिज्ञासु के) मुख मे हरि रस को डालता है। भाग्य-हीन जीव सत्गुरु को प्राप्त नही कर सकता, जिससे वह मनमुख (परमात्मा से विमुख) जीव नित्य गर्भ योनियो मे भटकता रहता है ॥३॥

आपि दइआलि दइआ प्रभि धारी ॥
मलु हउमै बिखिआ सभ निवारी ॥
नानक हट पटण विचि कांइआ
हरि लैंदे गुरमुखि सउदा जीउ
॥४॥५॥

जिन (जीवों) पर दयालु प्रभु दया करके (पाप रूपी) सारी मलिनता और अहंकार रूपी विष को दूर कर देता है, वे गुरु के सन्मुख रहने वाले गुरमुख रूपी व्यापारी शरीर रूपी नगर के अन्दर ज्ञान-इन्द्रियों रूपी दुकानों से नाम रूपी सौदा खरीदते हैं ॥४॥५॥

माझ महला ४॥

"सन्तों की संगति से लाभ"।

हउ गुण गोविंद हरिनामु धिआई ॥
मिलि संगति मनि नामु वसाई ॥
हरि प्रभ अगम अगोचर सुआमी
मिलि सतिगुर हरिरसु कीचै जीउ ॥१॥

मैं गुण (के सागर) गोबिन्द (हरि) नाम का ध्यान करता हूँ और सत्सगति में मिलकर मैंने (हरि) नाम अपने मन में बसाया है। (चाहे मेरा) हरि प्रभु स्वामी मन वाणी का विषय नहीं है क्योंकि अगम और अगोचर हैं, तो भी सत्गुरु को मिलने से हरिनाम के रस का रसास्वादन किया जा सकता है ॥१॥

धनु धनु हरिजन
जिनि हरि प्रभु जाता ॥
जाइ पुछा जन हरि की बाता ॥
पाव मलोवा मलि मलि धोवा
मिलि हरिजन हरिरसु पीचै जीउ ॥२॥

धन्य है, धन्य है वे हरि के दास जिन्होने हरि प्रभु (के रहस्य) को जान लिया है। मैं ऐसे हरि के प्यारो से जाकर हरि (के मिलाप) की बातें पूछूँगा। (मेरी इच्छा है कि मैं उनके) चरणों को (प्यार से) मलूँ (दबाऊँ) और उनको मल-मल धोऊँ तथा इन्ही हरि के जनो के साथ मिलकर हरि (नाम का) रस का पान करूँ ॥२॥

सतिगुर दातै नामु दिड़ाइआ ॥
वडभागी गुर दरसनु पाइआ ॥
अंम्रित रसु सचु अंम्रितु बोली
गुरि पूरै अंम्रितु लीचै जीउ ॥३॥

सत्गुरु जो नाम का दाता है, उसने (मेरे मन मे) नाम दृढ़ (पका) कराया है। वह भाग्यशाली है जिसने गुरु का दर्शन प्राप्त किया है। (अब मैं) अमृत नाम का रस पीकर, सत्य रूप अमृत वाणी का उच्चारण करने लगा हूँ, (किन्तु स्मरण रहे) वह अमृत (केवल) पूर्ण गुरु द्वारा ही लिया जा सकता है ॥३॥

हरि सतसंगति सतपुरखु मिलाईऐ ॥
मिलि सतसंगति हरिनामु धिआईऐ ॥
नानक हरि कथा सुणी मुखि बोली
गुरमति हरि नामि परीचै जीउ ॥४॥६॥

हे हरि! (मुझे) सत्संगति और सत्पुरुषो से मिला दो। उनकी सत्संगति मे मिलकर (काश! मैं) हरि नाम का ध्यान करूँ। (अभिलाषा हैं कि मैं) गुरु की मति लेकर हरि (नाम) की कथा सुनूँ और नाम मुख से उच्चारण करूँ (अर्थात् औरो को सुनाकर बताऊँ) तथा (मेरा मन) हरिनाम मे ही लीन रहे (क्योंकि मन की तृप्ति केवल हरि-नाम से होनी है) ॥४॥६॥

माझ महला ४॥

"सत्गुरु है सच्चा परोपकारी।"

आवहु भैणे तुसी मिलहु पिआरीआ॥
जो मेरा प्रीतमु दसे तिस कै हउ वारिआ ॥
मिलि सतसंगति लधा हरि सजणु
हउ सतिगुर विटहु घुमाइआ जीउ ॥१॥

हे मेरी प्यारी बहनो! तुम आकर मुझ से मिलो। जो (बहन) मुझे मेरे प्रियतम का मार्ग बतायेगी, मैं उस पर (सदा) बलिहारी जाता हूँ, जिसकी सच्ची सगति मे रह कर मैंने हरि सज्जन प्रियतम प्राप्त किया हैं। मैं सत्गुरु के ऊपर बलिहारी जाता हूँ ॥१॥

जह जह वेखा तह तह सुआमी ॥
तू घटि घटि रविआ अंतरजामी ॥
पूरि पूरै हरि नालि दिखालिआ
हउ सतिगुर विटहु सद वारिआ
जीउ ॥२॥

हे स्वामिन ! मैं जहाँ-जहाँ देखता हूँ, वहाँ-वहाँ तू अंदर ही (दिखाई देते) है। हे अन्तर्यामिन ! तू घट-घट में परिपूर्ण व्याप्त है। मैं सत्गुरु के ऊपर सदा बलिहारी जाता हूँ, जिस पूर्ण गुरु ने मुझे हरि को अपने साथ ही दिखा दिया है ॥२॥

एको पवणु माटी सभ एका
सभ एका जोति सबाईआ ॥
सभ इका जोति वरतै भिनि भिनि
न रलई किसै दी रलाईआ ॥
गुर परसादी इकु नदरी आइआ
हउ सतिगुर विटहु वताइआ जीउ
॥३॥

(ब्रह्मा से लेकर चींटी पर्यन्त) सभी (शरीरों में) एक ही (प्राण) वायु और मिट्टी भी एक ही है तथा सभी (प्राणियों में) (आत्मा) ज्योति भी एक ही समा रही है। यद्यपि सम्पूर्ण (सृष्टि) में एक ही (आत्म) ज्योति परिपूर्ण हो रही है तथापि (जीवों की प्रारब्ध) भिन्न-भिन्न होने के कारण सभी का व्यवहार भी अलग अलग है। इसलिये किसी के द्वारा मिलाने पर भी परस्पर एक दूसरे से नहीं मिलते। मैं सत्गुरु के ऊपर (सदा) बलिहारी जाता हूँ, जिस (पूर्ण) गुरु की कृपा से (मुझे सब में एक अद्वितीय परमात्मा दिखाई दे रहा है) ॥३॥

जनु नानकु बोलै अंम्रित बाणी ॥
गुरसिखां कै मनि पिआरी भाणी ॥
उपदेसु करे गुरु सतिगुरु पूरा
गुरु सतिगुरु परउपकारीआ जीउ
॥४॥७॥

दास नानक—गुरु रामदास साहब कहते हैं कि अमृतमयी वाणी जो सत्गुरु बोलते हैं, वह (श्रद्धालु) सिखों के मन को प्यारी लगती है। पूर्ण गुरु, (हाँ) पूर्ण सत्गुरु यही उपदेश करता है (कि ब्रह्मा से लेकर चींटी पर्यन्त सभी शरीरों में एक ही परमात्मा की ज्योति समा रही है)। (हाँ मेरा) गुरु (मेरा) सत्गुरु परोपकारी (और सर्व के हितैषी) हैं ॥४॥७॥

सत चउपदे महले चउथे के ॥

(मेरे गुरुदेव, गुरु रामदास साहब के सात शब्द (माझ राग में समाप्त हुए) है, एक चउपदे मे चार पाद होते हैं।

विशेष अगामी चार "रहाउ" वाला चउपदा ऐतिहासिक है। पंचम पातशाही, गुरु अर्जन देव अपने पिता गुरु रामदास साहब की आज्ञानुसार अपने ताऊ भाई सहारीमल के पुत्र के विवाह पर लाहौर गये थे। पिताजी की आज्ञा थी कि जब तक हम न बुलायें तब तक वहाँ ही रहना। पुत्र के मन मे पिता के लिए केवल पितृ-स्नेह ही नहीं था, किन्तु गुरु-भक्ति, हाँ हरि-भक्ति भी थी। कुछ समय पश्चात् पुत्र के मन में पिता के पावनतम् दर्शनों के लिए तीव्र उत्सुकता उत्पन्न हुई और इसी व्याकुलता के अन्दर बैठकर तीन प्रार्थना पत्र लिखे, जो इस चौपदे के पहले तीन अंक हैं। चतुर्थ पद चौथी पातशाही, गुरु रामदास के मिलाप की प्रसन्नता में लिखा है। मेरे गुरुदेव, पुत्र को सर्व प्रकार से सुयोग्य समझकर गुरु-गद्दी प्रदान की। तीसरी पातशाही गुरु अमरदास ने पहले ही अपने दोतरे (नाती) गुरु अर्जन देव को वरदान दिया था—"दोहिता बाणी का बोहिथा।"

माझ महला ५ चउपदे घरु १ ॥

"गुरु के दर्शनों की अत्यधिक अभिलाषा।"

मेरा मनु लोचै गुर दरसन ताई
बिलप करे चात्रिक की निआई ॥
त्रिखा न उतरै सांति न आवै
बिनु दरसन संत पिआरे जीउ
॥१॥

हे सत्गुरु! मेरा मन आपके दर्शनों के लिए व्याकुल है। ऐसे पुकार रहा है जैसे चातृक (पपीहा) (स्वाति बूंद) के लिए। हे प्यारे (गुरु रूप) सन्तजी! आपके दर्शन के बिना (मेरी) प्यास नही मिटती और न ही शान्ति आती है ॥१॥

हउ घोली जीउ घोलि घुमाई
गुर दरसन संत पिआरे जीउ
॥१॥रहाउ॥

(अभिलाषा है कि) मैं तुझ प्यारे सन्त गुरु के (दर्शनों पर) अपने आपको न्यौछावर कर दूँ, (हाँ) अर्पित कर दूँ ॥१॥ रहाउ॥

तेरा मुखु सुहावा जीउ
सहज धुनि बाणी ॥
चिरु होआ देखे सारिंगपाणी ॥
धंनु सु देसु जहा तूं वसिआ
मेरे सजण मीत मुरारे जीउ ॥२॥

(हे सत्गुरु!) आपका मुख सुन्दर (शोभनीय) है और आपकी वाणी की ध्वनि भी सुख-शान्ति और ज्ञान (सहज देने वाली है। हे सारगपाणी (सत्गुरु)! आपके दर्शनों को चिरकाल हो गया है अथवा मुझ चातृक को जल देखे चिरकाल हो गया है (अर्थात् चातृक जैसी दशा हो रही है जैसे प्यास से उसकी अवस्था होती है, वही दशा भक्त की प्रभु के दर्शनों के बिना हो गई है)। हे मेरे साजन! हे मेरे मित्र! हे मेरे मुरारी (प्रभु)! वह देश धन्य है, जहाँ आप बस रहे हैं ॥२॥

हउ घोली हउ घोलि घुमाई
गुर सजण मीत मुरारे जीउ
॥१॥रहाउ॥

(अभिलाषा है कि) मैं तुझ प्यारे सज्जन मित्र गुरु के (दर्शनो) पर अपने आपको बलिहारी कर दूँ, (हाँ) न्यौछावर कर दूँ ॥१॥ रहाउ॥

इक घड़ी न मिलते
ता कलिजुगु होता ॥
हुणि कदि मिलीऐ
प्रिअ तुधु भगवंता ॥
मोहि रैणि न विहावै नीद न आवै
बिनु देखे गुर दरबारे जीउ ॥३॥

हे प्यारे भगवंत (सत्गुरु)! एक घडी भी यदि आप नही मिलते हो तो मेरे लिये (वियोग) कलियुग हो जाता है (अर्थात् जैसे कलियुग दुखदायी है वैसे ही प्रियतम का वियोग दुःखदायी है)। अब (आप) मुझे कब मिलोगे? आपकी (अद्वितीय) दरबार के दर्शनो के बिना मेरी रात्रि व्यतीत नही होती और न ही मुझे नीद ही आती है ॥३॥

हउ घोली जीउ घोलि घुमाई
तिसु सचे गुर दरबारे जीउ
॥१॥रहाउ॥

(अभिलाषा है कि) मैं उस सच्चे गुरु की दरबार (के दर्शनों) पर अपने आपको बलिहारी कर दूँ, (हाँ) न्योछावर कर दूँ ॥१॥ रहाउ ॥

नोट . तीसरे पत्र के पहुँचने पर ही पिता—गुरु रामदास साहब ने पुत्र—गुरु अर्जन देव को बुलाकर उसे गुरु गद्दी पर बैठा दिया। फिर हुकम दिया कि चौथा पद उच्चारण करो कि शब्द चउपदा बने। अतः गुरुगद्दी पर बैठकर चौथा पद उच्चारण किया, इसलिए इसमे 'नानक' नाम ही है और पहले तीन पदों मे 'नानक' नाम नही है।

भागु होआ गुरि संतु मिलाइआ ॥
प्रभु अबिनासी घर महि पाइआ ॥
सेव करी पलु चसा न विछुड़ा
जन नानक दास तुमारे जीउ ॥४॥

हे सतगुरु! मेरे भाग्य उदय हुए हैं जो सन्त (स्वरूप बाबा बुढा जी ने) आप गुरुदेव के साथ मिलाप करा दिया। (मैंने तो अब अपने हृदय) घर में ही अविनाशी प्रभु को प्राप्त किया है। बस अब तो मैं आपकी, (हाँ) आपके नाम सन्देश की सेवा करता रहूँगा, (मुझे) एक क्षण पल भी आप से वियोग न हो। हे नानक जी! मैं आपका दास हूँ ॥४॥

हउ घोली जीउ घोलि घुमाई
जन नानक दास तुमारे जीउ
॥रहाउ॥१॥८॥

(अभिलाषा है कि) मैं आप पर अपने आपको बलिहारी कर दूँ, (हाँ) न्योछावर कर दूँ। हे नानक जी! मैं आपका (ही) दास हूँ ॥रहाउ॥१॥८॥

रागु माझ महला ५॥

"परमात्मा ही सच्चा मित्र है।"

सा रुति सुहावी जितु तुधु समाली ॥
सो कंमु सुहेला जो तेरी घाली ॥
सो रिदा सुहेला जितु रिदै तूं वुठा
सभना के दातारा जीउ ॥१॥

हे सभी जीवो को देने वाले दाता (प्रभु) जी! (ऋतुओ मे) वह ऋतु (ही) सुन्दर (शोभनीय) है, जिसमे (जीव) तुम्हे याद करे और (कामों में) श्रेष्ठ सुखद काम वह है, जो तुम्हारी सेवा मे लगे तथा (हृदयों मे) वही हृदय सुखद है, जिसके हृदय मे सभी को देने वाले प्रभु का वास है ॥१॥

तूं साझा साहिबु बापु हमारा ॥
नउ निधि तेरे अखुट भंडारा ॥

(हे भगवंत!) तू (हम सभी का) एक स्वामी, साहब और पिता हो और तेरे आश्रय अखूट भण्डार (खजाने) नव निधियों से (भरे हुए) हैं (अर्थात अनन्त है आपके अपरिमित खजाने); एवं

जिसु तूं देहि सु त्रिपति अघावै
सोई भगतु तुमारा जीउ ॥२॥

जिसको तू (कृपा करके) देता है, वह (सांसारिक पदार्थों व आशा तृष्णा की भूख-प्यास) से तृप्त हो जाता है (भाव नाम भण्डार का कृपा होते ही जीव को किसी अन्य पदार्थ के लिएं इच्छा नहीं रहती)। वस्तुतः वही तुम्हारा भक्त है ॥२॥

सभु को आसै तेरी बैठा ॥
घट घट अंतरि तूं है वुठा ॥
सभे साझीवाल सदाइनि तूं
किसै न दिसहि बाहरा जीउ ॥३॥

(हे सर्व व्यापक हरि जी!) सभी कोई आपकी ही आशा लगा कर बैठा है। हे अन्तर्यामिन! तू ही घट-घट के अन्दर निवास कर रहा है। सभी तुझे अपना हिस्सेदार कहते हैं क्योंकि तुम किसी को भी अपने से बाहर नही देखते (अर्थात कोई भी तुम्हारी दृष्टि में बेगाना नही है।) ॥३॥

तूं आपे गुरमुखि मुकति कराइहि ॥
तूं आपे मनमुखि जनमि भवाइहि ॥
नानक दास तेरै बलिहारै
सभु तेरा खेलु दसाहरा जीउ
॥४॥२॥९॥

तू आप ही गुरमुखो को (नाम का अनन्त भंडार देकर) मुक्त कर देते हो (मोक्ष प्राप्त करवाते हो, और तू आप ही मनमुखो को (सत्गुरु से विमुख करके) जन्म (मरण की चौरासी योनियो के चक्र) में भटकाते हो। दास नानक आप पर बलिहारी जाता है। हे प्रभु जी! यह सम्पूर्ण जगत रचना तेरा ही खेल (मुझे) दिखाई देता है ॥४॥२॥९॥

माझ महला ५॥

"अनाहद शब्द सुनने से मन स्थिर होता है।"

अनहदु वाजै सहजि सुहेला ॥
सबदि अनंद करे सद केला ॥
सहज गुफा महि ताड़ी लाई
आसणु ऊच सवारिआ जीउ ॥१॥

(गुरु की कृपा से मेरे अन्दर हरि नाम का) एक रस अनाहत (अलौकिक) शब्द निरन्तर बज रहा है इससे (मेरा मन) स्वाभाविक (सहज) ही सुखी हो रहा है। (अलौकिक) शब्द की (ध्वनि से) आनन्दित हो कर सर्वदा चित्त को प्रसन्न कर रहा हूँ तथा सहजावस्था (आत्मिक आनन्द रूपी) गुफा में समाधि लगाई है। यही मैंने (सर्व से श्रेष्ठ) ऊचा आसन बनाया है ॥१॥

फिरि घिरि अपुने ग्रिह महि
आइआ ॥
जो लोड़ीदा सोई पाईआ ॥
त्रिपति अघाइ रहिआ है संतहु
गुरि अनभउ पुरखु दिखारिआ
जीउ॥२॥

(मेरा मन) घूम फिर कर (अर्थात इधर-उधर भटकने के वाद) अपने घर मे स्थित हुआ है (अर्थात स्वस्वरूप रूपी अपने घर को पहचान लिया है)। जिसकी उसे आवश्यकता थी वही उसे प्राप्त हुआ है। हे सन्त जनों! (मेरे) गुरु ने जानने योग्य पुरुष (परमात्मा) का दर्शन करा दिया है (अब मेरा मन बाहरी पदार्थों की भख और प्यास से) तृप्त और शान्त हो गया है ॥२॥

आपे राजनु आपे लोगा ॥
आपि निरबाणी आपे भोगा ॥
आपे तखति बहै सचु निआई
सभ चूकी कूक पुकारिआ जीउ
॥३॥

(अब मुझे यह निश्चय गुरु ने करवा दिया है कि) (सत्पुरुष परमात्मा) आप ही राजा है और आप ही प्रजा है तथा आप ही त्यागी (विरक्त) है एवं आप ही (सर्व पदार्थों को भोगने वाला है। (मेरा प्रभु) आप ही सिंहासन पर बैठकर सच्चा न्याय करता है, इसलिये अब (मेरे मन की) समूची पुकार शांत अथवा सभी कल्पनाएँ निवृत हो गई हैं। (भाव अब निश्चय हुआ है कि प्रभु की दरबार में न्याय होता है और जो कुछ भी 'वह' चाहेगा वही होता है। इसलिए मेरी गिला शिकायत अब समाप्त हो चुकी है) ॥३॥

जेहा डिठा मै तेहो कहिआ ॥
तिसु रसु आइआ जिनि भेदु
लहिआ ॥
जोती जोति मिली सुखु पाइआ
जन नानक इकु पसारिआ जीउ
॥४॥३॥१०॥

(गुरु की कृपा से) मैंने जैसे देखा (अनुभव किया) है, वैसा ही (मैंने) कहा है। (परमात्मा के साथ मिलाप का) आनन्द (रस) उसी को मिला है, जिसने 'उसके' रहस्य को पाया है। हे दास नानक! (अनाहत शब्द की ध्वनि गुरु कृपा से प्रकट होते ही जीव की) ज्योति परमात्मा की परम ज्योति से मिल कर (अभेद होकर) आत्मिक सुख (आनन्द) प्राप्त होता है, अब ऐसे (भाग्यशाली जीव को केवल) एक अद्वितीय परमात्मा ही सारे जगत में परिपूर्ण (दिखाई देता) है ॥४॥३॥१०॥

माझ महला ५॥

"रानी है वह जो राजा को प्रिय लगी।"

जिसु घरि पिरि सोहागु बणाइआ ॥
तिसु घरि सखीए मंगलु गाइआ ॥
अनद बिनोद तितै घरि सोहहि
जो धन कंति सिगारी जीउ ॥१॥

हे सखियों! जिसके घर में पति ने सुहाग बनाया है (अर्थात जिसके अन्त करण में पति-परमेश्वर का प्रकाश हुआ है), उसी घर में (तुम सभी) (प्रभु के) मंगलमय गीत गाओ। उसी घर में आनन्द-विनोद और प्रसन्नता शोभा देती है, जहाँ पति ने अपनी स्त्री (धन) को (प्रेम रूपी आभूषणों से हाँ) अलंकृत (शृंगार) किया है ॥१॥

सा गुणवंती सा वडभागणि ॥
पुत्रवंती सीलवंति सोहागणि ॥
रूपवंति सा सुघड़ि बिचखणि
जो धन कंत पिआरी जीउ ॥२॥

जो स्त्री (जीव) पति (परमेश्वर) को प्यारी है, वही (स्त्री) गुणवंती है और वही भाग्यशाली (भी) है। वही पुत्रवती, शील-वंती और सुहागिन है। (हाँ) वह (स्त्री) रूपवती, सुडौल अथवा गुणीवान तथा विलक्षण प्रतिभाशालिनी (चतुर) है। (भाव वह स्त्री दैवी गुणों की खान है) ॥२॥

आचारवंति साई परधाने ॥
सभ सिंगार बणे तिसु गिआने ॥
सा कुलवंती सा सभराई
जो पिरि कै रंगि सवारी जीउ
॥३॥

जो स्त्री (जीव) पति (परमेश्वर के प्रेम) रंग से सुसज्जित है, वही (स्त्री) आचारवान (सदाचार वाली) और स्त्रियों में प्रधान (मुख्य) है। ज्ञान से सभी श्रृंगार हुए हैं। वही स्त्री कुलवंती है तथा वही (स्त्री) भाईयों वाली है अथवा वह रानियों की रानी (पटरानी) है ॥३॥

महिमा तिसकी कहणु न जाए
जो पिरि मेलि लई अंगि लाए ॥
थिरु सोहागु वरु अगमु अगोचरु
जन नानक प्रेम साधारी जीउ
॥४॥४॥११॥

ऐसी स्त्री की महिमा (स्तुति) वर्णन नही की जा सकती (अकथनीय है सुहागिन की महिमा) जिसे पति ने अपने अंग के साथ लगाकर अपने साथ मिला लिया है (जीवात्मा परमात्मा से अभिन्न हो गयी है)। जिस स्त्री (जीवात्मा) का पति (परमात्मा) अगम और अगोचर है, हे दास नानक ! वह (स्त्री) प्रेम सहित प्रभु के पास जाती है, क्योंकि उसका सुहाग (सर्वदा) स्थिर है (अर्थात वह स्त्री सदा सुहागिन है) ॥४॥४॥११॥

माझ महला ५॥

"तेरा राम तेरे पास है फिर भला क्यों भटक रहे हो ?"

खोजत खोजत दरसन चाहे ॥
भाति भाति बन बन अवगाहे ॥
निरगुणु सरगुणु हरि हरि मेरा
कोई है जीउ आणि मिलावै जीउ
॥१॥

(परमात्मा के दर्शनाभिलाषी) दर्शन की चाहना के कारण (निरन्तर) खोज करते हैं और भान्ति-भान्ति के बनो का अवगाहन करते (घूमते) हैं, किन्तु (परमात्मा का पता नही प्राप्त होता)। कोई ऐसा मेरा (सज्जन, प्यारा) है, जो मुझे अपने हरि से आकर मिला देवे जो हरि निर्गुण रूप है और सगुण रूप (भी) है ॥१॥

खटु सासत बिचरत मुखि गिआना ॥
पूजा तिलकु तीरथ इसनाना ॥
निवली करम आसन चउरासीह
इन महि सांति न आवै जीउ ॥२॥

(मन की शान्ति के लिए अनेक विद्वान) छः शास्त्रों पर विचार करते हैं और (माथे पर) तिलक लगा कर पूजा करते हैं और (अठसठ) तीर्थों का स्नान (भी) करते हैं। (अनेक योगी शारीरिक शुद्धि के लिए यौगिक क्रियाओं को करते हैं और (अनेक ही सिद्ध पद्मासनादि) चौरासी आसनों को लगाते हैं, किन्तु इन कर्मों को करने से भी (मन को) शान्ति नहीं मिलती ॥२॥

अनिक बरख कीए जप तापा ॥
गवनु कीआ धरती भरमाता ॥

(चाहे कोई जीव) अनेक वर्ष जाप, तपादि करे और [illegible] कर सारी धरती का भ्रमण करे, फिर भी एक क्षण भर के लिये

[illegible] बिनु हिरदै सांति न आवै ओही बहुड़ि बहुड़ि उठि धावै जीउ ॥३॥

हृदय में शान्ति नहीं मिलेगी (क्योंकि विषयों के प्रति उसका मन विरक्त नहीं, मन पर संयम नहीं)। वह लोभी बार-बार उठकर (अहंकार पूर्वक अनेक कर्मों को करने के लिये) दौड़ता है ॥३॥

करि किरपा मोहि साधु मिलाइआ ॥
तनु मनु सीतलु धीरजु पाइआ ॥
प्रभु अबिनासी बसिआ घट भीतरि हरि मंगलु नानकु गावै जीउ ॥४॥५॥१२॥

मेरे अविनाशी प्रभु ने कृपा करके मुझे साधु से मिला दिया। साधु पुरुष को मिलते ही मेरा मन और तन शीतल हो गया और मैंने (अब) धैर्य (शान्ति, एकाग्रता) प्राप्त किया है। अविनाशी प्रभु ने मेरे भीतर आकर निवास किया है, इसलिये (गुरु) नानक रूप गुरु अर्जन देव हरि के मंगलमय (गीत) गाता है ॥४॥५॥१२॥

माझ महला ५॥

"मेरे अगम्य परमात्मा की स्तुति।"

पारब्रहम अपरंपर देवा ॥
अगम अगोचर अलख अभेवा ॥
दीन दइआल गोपाल गोबिंदा हरि धिआवहु गुरमुखि गाती जीउ ॥१॥

हे परब्रह्म प्रकाश स्वरूप (देवा) परमेश्वर! हे अपरम्परा! आपका पार नही पाया जा सकता। आप अगम, अगोचर और अलक्ष्य हैं तथा हे अभेद्य! आपका भेद नही पाया जा सकता। आप (सगुण रूप होकर) दीनो पर दया करने वाले हो, पृथ्वी को पालने वाले (गोपाल) हो, तथा वेदों के द्वारा जानने योग्य (गोविन्द) हो। हे हरे! मैं आपका ध्यान करता हूँ, क्योंकि आप गुरमुख (प्रेमियो) को सदगति प्रदान करने वाले हो ॥१॥

गुरमुखि मधुसूदनु निसतारे ॥
गुरमुखि संगी क्रिसन मुरारे ॥
दइआल दमोदरु गुरमुखि पाईऐ होरतु कितै न भाती जीउ ॥२॥

हे मधुसूदन! हे कृष्ण मुरारे! आप गुरमुख (प्रेमियो) को (भव-सागर से) पार उतारने वाले हैं और आप (ही) गुरमुख (प्रेमियों) के संगी (साथी और सहायक) हैं। हे दयालु दामोदर! आप (केवल) गुरु के द्वारा (ही) गुरमुखों को प्राप्त होते हो और किसी भी प्रकार से प्राप्त नहीं होते ॥२॥

निरहारी केसव निरवैरा ॥
कोटि जना जा के पूजहि पैरा ॥
गुरमुखि हिरदै जा कै हरि हरि सोई भगतु इकाती जीउ ॥३॥

हे सुन्दर केशों वाले (केशव)! आप निराहारी हो और वैर रहित होने के कारण निर्विकार (भी) हो। करोड़ों दास आपके (कमल समान) चरणों की पूजा करते हैं। हे हरि! जिसके हृदय में गुरु की शिक्षा द्वारा आप निवास करते हो, वही पुरुष आपका एकांती (अर्थात वह भक्त, जो एकान्त मे बैठकर भगवत् भजन करता) है ॥३॥

अमोघ दरसन बेअंत अपारा ॥
वड समरथु सदा दातारा ॥
गुरमुखि नामु जपीऐ तितु तरीऐ
गति नानक विरली जाती जीउ॥४॥
६॥१३॥

हे अनन्त अपार प्रभु ! आपका दर्शन सफल (सार्थक) है, आप महान हैं, आप सामर्थ्यवान हैं और सदा देने वाले (दाता) हैं। जो पुरुष गुरु की शिक्षा द्वारा आपका नाम जपते हैं, वे (संसार-सागर से) तर जाते हैं, किन्तु हे नानक ! यह रीति किसी विरले पुरुष ने ही जानी है (अर्थात ऐसी उच्चतम अवस्था वाले बहुत ही थोड़े जीव हैं) ॥४॥६॥१३॥

माझ महला ५॥

"परमात्मा की आज्ञा जीव को धारण करनी चाहिये। 'वह' आप ही सब कुछ है।"

कहिआ करणा दिता लैणा ॥
गरीबा अनाथा तेरा माणा ॥
सभ किछु तूं है तूं है मेरे पिआरे
तेरी कुदरति कउ बलि जाई जीउ
॥१॥

(हे भगवन् !) जो कुछ तुम कहते हो (अर्थात आज्ञा करते हो), वही जीव करते हैं और जो कुछ तुम देते हो वही जीव लेते हैं (अर्थात प्राप्त करते हैं क्योंकि सब कुछ तुम्हारे हाथ मे है)। गरीबो और अनाथो को केवल तेरा ही मान है। हे मेरे प्यारे ! सब कुछ तुम्ही हो, मैं तुम्हारी शक्ति (कुदरत) पर बलिहारी जाता हूँ ॥१॥

भाणै उझड़ भाणै राहा ॥
भाणै हरिगुण गुरमुखि गावाहा ॥
भाणै भरमि भवै बहु जूनी
सभ किछु तिसै रजाई जीउ ॥२॥

(हे भगवंत !) तुम्हारे हुकम से ही (मनमुख) कुमार्ग (अज्ञान रूपी गलत रास्ते) पर चलते हैं और तुम्हारी आज्ञा से ही (गुर-मुख) सन्मार्ग (नाम भक्ति के सही) रास्ते पर चलते हैं। तुम्हारे हुकम से गुरमुख हरि के गुण गाते हैं। तुम्हारे हुकम से मनमुख भ्रम मे फँस कर बहुत योनियो मे भटकते हैं। यह सब कुछ 'उस' परमात्मा की आज्ञा से हो रहा है ॥२॥

ना को मूरखु ना को सिआणा ॥
वरतै सभ किछु तेरा भाणा ॥
अगम अगोचर बेअंत अथाहा
तेरी कीमति कहणु न जाई जीउ
॥३॥

हे अनन्त प्रभु ! वस्तुत न तो कोई मूर्ख है और न ही कोई बुद्धिमान है। सब कुछ तेरी इच्छा (आज्ञा) से ही हो रहा है। (अर्थात जीव को मूर्ख भी तुम ही करते हो और चतुर भी तुम ही करते हो। बेचारे जीव के वश में कुछ भी नही है)। तुम अनाम और अगोचर हो तथा अनन्त और अथाह (भी) हो तुम्हारी कीमत आंकी नही जा सकती (अर्थात तुम्हारी महिमा का वर्णन नहीं हो सकता) ॥३॥

खाकु संतन की देहु पिआरे ॥
आइ पइआ हरि तेरै दुआरै ॥
दरसनु पेखत मनु आघावै
नानक मिलणु सुभाई जीउ ॥४॥
७॥१४॥

हे प्यारे हरि ! मैं तुम्हारे द्वार पर आकर पड़ा हूँ। (कृपा करके मुझे) सन्त जनो (के चरणों) की धूलि प्रदान करो क्योंकि (उन सन्तों के) दर्शनों से मन (भूख और प्यास से) तृप्त हो जाता है, (किन्तु) हे नानक ! पूर्ण प्रेम रखने से ही मिलन सरल हो जाता है ॥४॥७॥१४॥

माझ महला ५॥

"नाम जप तो सच्चा सुख देवेगा ।"

दुखु तदे जा विसरि जावै ॥
भुख विआपै बहु बिधि धावै ॥
सिमरत नामु सदा सुहेला
जिसु देवै दीन दइआला जीउ ॥१॥

(हे भगवंत !) जब (आपको हम) भूल जाते हैं, तो (हमें) दुःख (सताते) हैं। (नाम से विमुख जीव मन जितना) अधिक (माया के पीछे) अनेक प्रकार से दौड़ता है, सांसारिक पदार्थों संग्रह करने की तृष्णा (भूख) अधिकाधिक व्याप्त हो जाती है, (क्योंकि संतोष के बिना तृष्णा नहीं जाती)। किन्तु हे दीनो पर दया करने वाले ! जिनको (नाम की देन) देते हो, वह (जीव) तुम्हारे नाम का सदा स्मरण करके सर्वदा सुखी हो जाता है ॥१॥

सतिगुरु मेरा वड समरथा ॥
जीइ समाली ता सभु दुखु लथा ॥
चिंता रोगु गई हउ पीड़ा
आपि करे प्रतिपाला जीउ ॥२॥

(पर नाम की देन गुरु से ही प्राप्त होती है। अत.) मेरा सद्गुरु महान और समर्थ अथवा बड़ी शक्ति वाला है, जिसकी कृपा से जब मैं तुम्हें अपने हृदय से स्मरण करता हूँ तो मेरे सभी दुःख दूर हो जाते हैं। फिर मेरी (मन की) चिन्ताएँ, (शरीर के) रोग तथा (अहंकार की) पीडा भी निवृत हो जाती है। (हे प्रभु !) तुम ही (हमारी) पालना (रक्षा) करते हो ॥२॥

बारिक वांगी हउ सभ किछु मंगा ॥
देदे तोटि नाही प्रभ रंगा ॥
पैरी पै पै बहुतु मनाई
दीन दइआल गोपाला जीउ ॥३॥

(पर यह जानते हुए भी कि परमात्मा स्वय ही पालन करता है फिर भी) मैं बालक के समान तुमसे सब कुछ माँगता हूँ और (तू सदा मुँह मांगे पदार्थ की) खुशियाँ देते रहते हो और तुम से मिली वस्तुओं में कभी त्रुटि नही आती अथवा आनन्द से भरे आपके घर में किसी चीज की कमी नही है। हे दीन दयालु ! हे गोपाल (प्रभु) ! मैं तेरे चरणों में गिर कर बार-बार प्रार्थना करता हूँ ॥३॥

हउ बलिहारी सतिगुर पूरे ॥
जिनि बंधन काटे सगले मेरे ॥
हिरदै नामु दे निरमल कीए
नानक रंगि रसाला जीउ ॥४॥
८॥१५॥

मैं अपने पूर्ण सत्गुरु पर बलिहारी जाता हूँ, जिन्होंने मेरे सम्पूर्ण बन्धन काट दिये हैं (अर्थात समस्त विकारों से मुक्त कर दिया है)। (गुरु ने) (हरि) नाम देकर (मेरे) हृदय को निर्मल कर दिया है। अब मैं, हे नानक (परमात्मा के) प्रेम के कारण रस का घर (अर्थात आनन्दमय प्राणी) हो गया हूँ ॥४॥८॥१५॥

माझ महला ५॥

"हरि से प्रेम रख तो पार हो जाओगे।"

लाल गोपाल दइआल रंगीले ॥
गहिर गंभीर बेअंत गोविंदे ॥
ऊच अथाह बेअंत सुआमी
सिमरि सिमरि हउ जीवां जीउ
॥१॥

हे प्यारे! हे पृथ्वी के पालक! हे दयालु! हे प्रेम व आनन्द (स्वरूप)! हे गहरे हृदय वाले! शान्त स्वरूप! हे अनन्त! हे वेदों के द्वारा जानने योग्य! अथवा हे पृथ्वी के जानने वाले! हे सर्वोच्य! हे अगाध! हे (मेरे) अनन्त स्वामी। तुम्हारा स्मरण करता करता (मैं) जीवित रहता हूँ ॥१॥

दुख भंजन निधान अमोले ॥
निरभउ निरवैर अथाह अतोले ॥
अकाल मूरति अजूनी स्मभौ
मन सिमरत ठंढा थीवां जीउ ॥२॥

हे दुःखों को दूर करने वाले! हे अमूल्य निधियो के स्वामी! हे भय रहित! हे वैर रहित! हे अगाध! हे अतुलनीय! तेरी मूर्ति (स्वरूप) काल से रहित है और तू योनियों मे नहीं आता तथा हे स्वयम्भू! तुम्हारा स्मरण करके (मेरा) मन शीतल एवं शान्त होता है ॥२॥

सदा संगी हरि रंग गोपाला ॥
ऊच नीच करे प्रतिपाला ॥
नामु रसाइणु मनु त्रिपताइणु
गुरमुखि अंम्रितु पीवां जीउ ॥३॥

हे (मेरे) गोपाल! तू हरि रग में अनुरक्त भक्त जनो का सदा मित्र (सहायक) हो और तू ऊँच-नीच (सर्व की) पालन-पोशण करने वाले (भी) हो। तेरा नाम (सर्व) रसो का घर है और मन को तृप्त करने वाला है, किन्तु (नाम) अमृत का पाना गुरु की आज्ञा मे रहने से ही गुरमुख बनकर किया जा सकता है ॥३॥

दुखि सुखि पिआरे तुधु धिआई ॥
एह सुमति गुरू ते पाई ॥
नानक की धर तूं है ठाकुर
हरि रंगि पारि परीवां जीउ ॥४॥
९॥१६॥

हे प्यारे! मैं दुख मे चाहे तथा सुख में तेरा ही ध्यान करता हूँ। यह श्रेष्ठ मति मैंने गुरु से (ही) प्राप्त की है। हे ठाकुर! (बाबा) नानक का आश्रय तो तू ही है। हे हरि! प्रेम करके (ही मैं इस भव-सागर से) पार हो जाऊँगा ॥४॥९॥१६॥

माझ महला ५॥

"सत्गुरु और नाम की महिमा।"

धंनु सु वेला
जितु मै सतिगुरु मिलिआ ॥
सफलु दरसनु नेत्र पेखत तरिआ ॥
धंनु मूरत चसे पल घड़ीआ
धंनि सु ओहु संजोगा जीउ ॥१॥

(हे भाई !) वह समय शुभ है (हाँ) धन्य है जब मुझे सत्गुरु मिला। (सत्गुरु का दर्शन ऐसा) सफल दर्शन है कि नेत्रों से देखते (ही मैं भव-सागर से) पार हो गया। (सत्गुरु के) मिलाप की वह मुहूर्त, निमेष एवं पल तथा घड़ियाँ (सब) धन्य हैं और धन्य है वह (श्रेष्ठ कर्म) जिससें (सत्गुरु के साथ) संयोग (मिलाप) होता है ॥१॥

उदमु करत मनु निरमलु होआ ॥
हरि मारगि चलत भ्रमु सगला
खोइआ ॥
नामु निधानु सतिगुरू सुणाइआ
मिटि गए सगले रोगा जीउ ॥२॥

(हे भाई !) नाम जपने के लिये पुरषार्थ करने से (मेरा) मन निर्मल हो गया और हरि के मार्ग पर चलने से समस्त भ्रम (और संशय) मिट गए। नाम, जो भण्डार रूप है वह हमें सत्गुरु ने सुनाया (जिसके श्रवण मात्र से ही) सम्पूर्ण रोग निवृत हो गए ॥२॥

अंतरि बाहरि तेरी बाणी ॥
तुधु आपि कथी तै आपि वखाणी ॥
गुरि कहिआ सभु एको एको
अवरु न कोई होइगा जीउ ॥३॥

हे सत्गुरु ! अन्दर-बाहर (अर्थात सभी जगह) तेरी ही (आनन्द रूप) वाणी (बरत रही) है। वह (वाणी) भी तुमने आप ही कही (रची) है और स्वयं ही तुमने वर्णन भी की है। (हे भाई !) (मेरे) गुरुदेव ने (मुझे) कहा है कि सब में एक अद्वितीय (परमात्मा ही) (व्याप्त हो रहा) है तथा 'उस' जैसा न (हुवा) और न (आगे) होगा ॥३॥

अंमृत रसु हरि गुर ते पीआ ॥
हरि पैनणु नामु भोजनु थीआ ॥
नामि रंग नामि चोज तमासे
नाउ नानक कीने भोगा जीउ ॥४॥
१०॥१७॥

हरि (नाम रूपी) अमृत-रस को मैंने गुरु से पान किया है। (अब) हरि नाम ही हमारे लिये (पोशाक) पहनना और भोजन है तथा हमने आनन्द, कौतुक और तमाशे (मनो-विनोद) हरि के नाम को ही किया है (अर्थात नाम जपने से हमें सांसारिक पदार्थों की आवश्यकता ही नहीं है)। हे नानक ! नाम को ही (हमने समस्त) भोगो के स्थान पर बड़ा भोग माना है (अर्थात नाम के तुल्य अब कोई प्रिय और सारपूर्ण वस्तु दिखाई नहीं देती) ॥४॥१०॥१७॥

माझ महला ५॥

"सन्तों की धूलि प्राप्त होने से दुर्बुद्धि नाश होती है।"

सगल संतन पहि वसतु इक मांगउ ॥
करउ बिनंती मानु तिआगउ ॥
वारि वारि जाई लख वरीआ
देहु संतन की धूरा जीउ ॥१॥

(हे प्रभु ! मैं)सभी सन्तो से एक वस्तु माँगता हूँ और मान का त्याग कर (अर्थात दीन हो कर) एक वस्तु के लिये प्रार्थना करता हूँ। (हे प्रभु ! मैं) आप पर लाखों बार बलिहारी जाता हूँ। मुझे सन्तों (के चरणो) की धूलि दो ॥१॥

तुम दाते तुम पुरख बिधाते ॥
तुम समरथ सदा सुखदाते ॥
सभ को तुम ही ते वरसावै
अउसरु करहु हमारा पूरा जीउ ॥२॥

(हे प्रभु !) तुम (फल) दाता हो, तुम परिपूर्ण और (भाग्य) विधाता (भी) हो। तुम समर्थ और सदा सुख देने वाले हो। सभी (जीवों) को तुम से ही (पदार्थ) प्राप्त होते हैं और अब तुम ही (मानव) जीवन सफल (पूर्ण) (करने की कृपा) करो ॥२॥

दरसनि तेरै भवन पुनीता ॥
आतम गड़ु बिखमु तिना ही जीता ॥
तुम दाते तुम पुरख बिधाते
तुधु जेवड अवरु न सूरा जीउ
॥३॥

(हे जगदीश्वर !) (जिन्होंने भी) तेरे दर्शन किये हैं, उनके (शरीर रूपी) भवन (घर) पवित्र हो गये हैं। उन्होंने आत्म गढ़ (मन को), (जो) विषम गढ (कठिन किला) है उसे जीत लिया है। (हे सृजन कर्ता !) तुम देने वाले हो, तुम परिपूर्ण (पुरुष) और (भाग्य) विधाता (भी) हो तथा तुम जैसा बड़ा (महान) शूरवीर और कोई नहीं है ॥३॥

रेनु संतन की मेरै मुखि लागी ॥
दुरमति बिनसी कुबुधि अभागी ॥
सच घरि बैसि रहे गुण गाए
नानक बिनसे कूरा जीउ ॥४॥
११॥१८॥

(हे भाई !) जब सन्तो की धूलि (मेरे) मुख पर लगी, तब (सारी) दुर्भाग्यशाली खोटी मति (दुर्मति) और खराब बुद्धि (कुबुद्धि) नष्ट हो गई। फिर (हमनें परमात्मा के स्वरूप रूपी) सच्चे घर मे वृति को लगाकर (अर्थात् स्थित करके) (हरि के) गुण गाये जिससे झूठ आदि विकार दूर हो गये ॥४॥११॥१८॥

माझ महला ५॥

"जब तक है तू जगत में रहता, बोल सदा राम सदा।"

विसरु नाही एवड दाते ॥
करि किरपा भगतन संगि राते ॥
दिनसु रैणि जिउ तुधु धिआई
एहु दानु मोहि करणा जीउ ॥१॥

हे इतने बडे (परम) दाता! (अभिलाषा है कि मैं तुझ परम दात्ता प्रभु को) न भूलूँ! तू (आप) मुझ पर (यह) कृपा कर कि (मेरा मन) सन्तों की संगति में अनुरक्त रहे और (हाँ), हे कृपालु! यह भी (दया करके) दान देना कि दिन-रात (मैं) तुम्हारा (नाम ही) का ध्यान करता रहूँ ॥१॥ रहाउ ॥

माटी अंधी सुरति समाई ॥
सभ किछु दीआ भलीआ जाई ॥
अनद बिनोद चोज तमासे
तुधु भावै सो होणा जीउ ॥२॥

(आप इतने महान दाता हो कि यह शरीर चाहे) अन्धी मिट्टी अर्थात् जड़ वस्तु से बना है, तो भी आपकी उसमें (सुरति) अर्थात् आत्मा रूपी चेतन सत्ता समा रही है, (जिससे आपके साथ लिव लग सकती है)। आप ने ही सुन्दर स्थान (शरीर के रहने के लिये) और सभी पदार्थ (खाने के लिये) दिये हैं (जिन्हें प्राप्त करके हम) आनन्द, मनोरंजन और खेल तमाशे करते हैं, (किन्तु यह स्मरण रहे कि) जो आप को अच्छा लगता है, वास्तव में वही होता है ॥२॥

जिसदा दिता सभु किछु लैणा ॥
छतीह अंम्रित भोजनु खाणा ॥
सेज सुखाली सीतलु पवणा
सहज केल रंग करणा जीउ ॥३॥

(हे कृपालु दाता !) हम सभी कुछ आपका दिया हुआ लेते हैं और छत्तीस प्रकार के भोजन अर्थात् अनेक प्रकार के अमृत तुल्य भोजन खाते हैं; सुखमय शय्या सोने को और शीतल पवन सेवन को और (निश्चिन्त होकर) स्वाभाविक खेल तमाशे करते हैं ॥३॥

सा बुधि दीजै जितु विसरहि नाही ॥
सा मति दीजै जितु तुधु धिआई ॥
सास सास तेरे गुण गावा
ओट नानक गुर चरणा जीउ ॥४॥
१२॥१९॥

(हे दयालु दाता ! कृपा करके) (मुझे ऐसी श्रेष्ठ) बुद्धि (अवश्य) दो, जिससे आप को (मैं) न भूलूँ। (हाँ) ऐसी सुमति (भी) दो, जिससे आप का (सदा) ध्यान करूँ और हे नानक ! गुरु के चरणों की ओट लेकर श्वास-प्रश्वास आपके गुण गाता रहूँ ॥४॥१२॥१९॥

माझ महला ५॥

"परमात्मा की इच्छानुसार रहना ही 'उसके' गुण गाना है।"

सिफति सालाहणु तेरा हुकमु
रजाई ॥
सो गिआनु धिआनु जो तुधु भाई ॥
सोई जपु जो प्रभ जीउ भावै
भाणै पूर गिआना जीउ ॥१॥

(हे इच्छा के पूर्ण करने वाले प्रभो !) आपका हुक्म (सहर्ष मानना) और (आपकी) इच्छा में रहना (ही आपकी) स्तुति एवं प्रशंसा करना है और जो जाप को अच्छा लगता है, वही (सच्चा) ज्ञान और (पूर्ण) ध्यान है। जाप (भी) वही (श्रेष्ठ) है जो, हे प्रभु ! आपको प्रिय है तथा आपकी आज्ञा का पालन करना ही पूर्ण ज्ञान है ॥१॥

अंम्रितु नामु तेरा सोई गावै ॥
जो साहिब तेरै मनि भावै ॥

हे मेरे साहब ! आपका अमृत रूप नाम वही (प्यारा) गाता है जो आपके मन को अच्छा लगता है। हे साहब ! तू सन्तों के

तूं संतन का संत तुमारे
संत साहिब मनु माना जीउ ॥२॥

(स्वामी) हो और सन्त तुम्हारे (सेवक) हैं। हे साहिब! सन्तों के मन में आपका विश्वास है (अथवा सन्तों का और स्वामी का मन परस्पर विश्वस्त हो रहा है) ॥२॥

तूं संतन की करहि प्रतिपाला ॥
संत खेलहि तुम संगि गोपाला ॥
अपुने संत तुधु खरे पिआरे
तूं संतन के प्राना जीउ ॥३॥

हे गोपाल ! आप सन्तों की (प्रतिक्षण) पालना (रक्षा) करते हो और सन्तजन आपके साथ ही खेलते (लाड़-प्यार करते) हैं (अर्थात् सन्त जन आपका भजन करके सदा आनन्द में मग्न रहते हैं)। (हे प्रभो !) अपने सन्त आप को बहुत प्यारे हैं और आप ही सन्तों के प्राण आधार हैं ॥३॥

उन संतन कै मेरा मनु कुरबाने ॥
जिन तूं जाता जो तुधु मनि भाने ॥
तिन कै संगि सदा सुखु पाइआ
हरिरस नानक त्रिपति अघाना
जीउ ॥४॥१३॥२०॥

(हे प्रभु !) (मैं) उन सन्त जनो पर न्यौछावर हूँ, जिन्होंने आपको (सर्वत्र और सर्वरूप से) पहचाना है तथा जो आपके मन को अच्छे लगते हैं। हे नानक ! ऐसे (सन्त जनो की) संगति में (मैंने आत्मिक परम) सुख सदा प्राप्त किया है और (उनसे ही) हरि (नाम का अमृत) रस का (पान करके अब मैं भूख और प्यास से तृप्त (सन्तुष्ट) हुआ हूँ (अर्थात् तत्वदर्शी सन्तो से नित्य सुख और हरि-रस प्राप्त करके जीव की तृष्णा की भूख समाप्त हो जाती है और तृप्त मन शांत हो जाता है) ॥४॥१३॥२०॥

माझ महला ५॥

"परमात्मा के लिये सच्ची अभिलाषा।"

तूं जलनिधि
हम मीन तुमारे ॥
तैरा नामु बूंद
हम चात्रिक तिखहारे ॥
तुमरी आस पिआसा तुमरी
तुम ही संगि
मनु लीना जीउ ॥१॥

(हे भगवान !) आप जलनिधि (सागर) हो और हम (आपके भीतर रहने वाली) मछलियाँ हैं (अर्थात् जैसे मछली के लिये जल जीवन है, वैसे आप हमारे लिये प्राण आधार हो)। आप का अमृत रूपी नाम स्वाति-बूंद है और हम जीव आपके प्यासे चातक (पक्षी) हैं (अर्थात् जैसे चातक पक्षी वर्षा-ऋतु में स्वाति-बूंद प्राप्त करने पर ही शान्त होता है, वैसे ही हम आपका नाम रूपी जल पाकर आनन्दित रहते हैं)। (हे प्रभो !) हमें आप के (दर्शन की ही) आशा और प्यास है और हमारा मन आपके साथ ही लीन हो रहा है ॥१॥

जिउ बारिकु पी खीरु अघावै ॥
जिउ निरधनु धनु देखि सुखु पावै ॥

जैसे बालक माता का दूध पीकर तृप्त होता है, जैसे निर्धन धन को देखकर (पाकर) सुख को प्राप्त करता है, जैसे प्यासा जल पीकर शीतल हो जाता है [illegible]

तिखावंत जलु पीवत ठंढा
तिउ हरि संगि इहु मनु भीना
जीउ ॥२॥

पीकर प्रसन्न हो जाता है, हे हरि ! वैसे ही मेरा मन आपके साथ मिल (लीन हो) गया है (अर्थात् आपके साथ रहने में सदा मैं सुख अनुभव करता हूँ) ॥२॥

जिउ अंधिआरै दीपकु परगासा ॥
भरता चितवत पूरन आसा ॥
मिलि प्रीतम जिउ होत अनंदा
तिउ हरि रंगि मनु रंगीना जीउ
॥३॥

जिस प्रकार अन्धकार में दीपक (जलने से) प्रकाश होता है, जैसे पति (को मिलने की आशा से) चिन्तन करती हुई (विरहणी को) पति-दर्शन हो जाने से आशा पूर्ण हो जाती है और जैसे प्रियतम के मिलने से आनन्द होता है वैसे ही मेरा मन, हे हरि ! आप के (नाम-) रंग में रंगा हुआ है ॥३॥

संतन मो कउ हरि मारगि पाइआ ॥
साध क्रिपालि हरि संगि गिझाइआ॥
हरि हमरा हम हरि के दासे
नानक सबदु गुरू सचु दीना जीउ
॥४॥१४॥२१॥

हे हरि ! सन्तों ने (ही) मुझे आपके मार्ग में डाला है (अर्थात् हरि-नाम का निश्चय कराया है) और उन साधुओं ने (ही) कृपा करके मुझे हे हरि ! आपके साथ मिलाप करवाकर हिला मिला दिया है। हे हरि ! अब आप ही हमारे (साहब) हैं और हम (भी) आपके दास (सेवक) हैं लेकिन यह अवस्था तभी प्राप्त हुई जब, हे नानक ! (मेरे) गुरु ने (कृपा करके मुझे) सच्चे नाम का उपदेश दिया। (उसी ने मुझे हरि के स्वरूप का ज्ञान कराया है) ॥४॥
१४॥२१॥

माझ महला ५॥

"हरि का नाम सभी स्वादों से स्वादिष्ट है।"

अंम्रित नामु सदा निरमलीआ ॥
सुखदाई दूख बिडारन हरीआ ॥
अवरि साद चखि सगले देखे
मन हरि रसु सभ ते मीठा जीउ ॥१॥

(हे भाई !) (हरि का) अमृत-नाम सदा (ही) निर्मल है और सुखदायक है तथा दुःखों को नाश करने वाला है। (हे प्यारे !) शेष सभी पदार्थों का स्वाद चख कर देख लिया है, किन्तु हरि (नाम का) रस सर्व (पदार्थों से अधिक) मन को मीठा लगता है। (अर्थात् हरि-नाम-रस से ही मन तृप्त होता है) ॥१॥

जो जो पीवै सो त्रिपतावै ॥
अमरु होवै जो नामरसु पावै ॥
नाम निधान तिसहि परापति
जिसु सबदु गुरू मनि वूठा जीउ ॥२॥

(हे भाई !) जो-जो (जीव) (हरि) नाम रस को पीता है, वह तृप्त हो जाता है (अर्थात् उसकी तृष्णा समाप्त हो जाती है) और अमर हो जाता है अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है)। किन्तु (हरि) नाम (रस) का खज़ाना उस [illegible] शाली) जिज्ञासु) को ही प्राप्त होता है, जिसके मन में गुरु का शब्द बसा हुआ है ॥२॥

जिनि हरि रसु पाइआ
सो त्रिपति अघाना ॥
जिनि हरि सादु पाइआ
सो नाहि डुलाना ॥
तिसहि परापति हरि हरि नामा
जिसु मसतकि भागीठा जीउ ॥३॥

(हे भाई !) जिन्हें हरि (नाम) रस की प्राप्ति हो जाती है, वे भूख और प्यास से (पूर्ण) तृप्त हो जाते हैं (अर्थात् वासना एवं तृष्णा रूपी भूख और प्यास उनकी दूर हो गई है)। जिन्होंने हरि (नाम) रस के स्वाद को प्राप्त कर लिया है, वे (फिर कभी भी) भटकते नही हैं, किन्तु दु खों को दूर करने वाले हरि का नाम उस (जीव) को प्राप्त होता है जिसके मस्तक पर (श्रेष्ठ) भाग्य लिखा हुआ है ॥३॥

हरि इकसु हथि आइआ
वरसाणे बहुतेरे ॥
तिसु लगि मुकतु भए घणेरे ॥
नामु निधाना गुरमुखि पाईऐ
कहु नानक विरली डीठा जीउ ॥४॥
१५॥२२॥

(हे भाई !) हरि (नाम) एक (सतगुरु) के हाथ में (ही) आया है, फिर उस गुरु से (नाम प्राप्त करके) बहुत ही (प्यारों को) लाभ होता है। (नाम के दाता गुरु की शरण में) लग-कर बहुत अधिक (जीव) मुक्त होते हैं, किन्तु नाम का खजाना कोई (विरला) गुरमुख ही प्राप्त करता है। (हाँ) (नाम खजाने को किसी) विरले (प्यारे) ने ही देखा हैं, कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब) ॥४॥१५॥२२॥

माझ महला ५॥

"परमात्मा का नाम प्राप्त होने पर जन्म सफल होता है।"

निधि सिधि रिधि
हरि हरि हरि मेरै ॥
जनमु पदारथु गहिर गंभीरै ॥
लाख कोट खुसीआ रंग रावै
जो गुर लागा पाई जीउ ॥१॥

(हे भाई !) हरि (नाम) मेरे लिये (नव) निधि है, हरि (नाम) मेरे लिये (अठारह) सिधि है और हरि (नाम ही) मेरे लिये ऋद्धि है तथा गहरा गम्भीर हरि ही मेरे लिये जन्म-पदार्थ है। जो (जीव) गुरु के चरणों में लग जाता है, (अर्थात् सतगुरु की शरण ग्रहण करता है) वह लाखों करोड़ों खुशियों के आनन्द को भोगता है ॥१॥

दरसनु पेखत भए पुनीता ॥
सगल उधारे भाई मीता ॥
अगम अगोचरु सुआमी अपुना
गुरकिरपा ते सचु धिआई जीउ॥२॥

(हे भाई !) जिन्होने हरि का दर्शन प्राप्त किया है, वे स्व-तो पवित्र हुए हैं, पर साथ ही अपने सभी भाई और मित्रों का भी उद्धार करते हैं। मेरा स्वामी अगम और अगोचर है। मैं गुरु की कृपा से ऐसे सच्चे परमात्मा का ध्यान करता हूँ ॥२॥

जा कउ खोजहि असंख उपाए ॥
वडभागी दरसनु को विरला पाए ॥
ऊच अपार अगोचर थाना
ओहु महलु गुरू देखाई जीउ ॥३॥

(हे भाई !) जिस अगम अगोचर स्वामी की खोजना सभी (जीव) (अनेक) उपायों से करते हैं, उसका दर्शन कोई विरला ही भाग्यवान प्राप्त करता है। 'उसका' स्थान (सब से) ऊँचा है, 'वह' पार से रहित है, अतीन्द्रिय है। स्वरूप (घर) को (मेरे) गुरु ने दिखाया है ॥३॥

गहिर गंभीर अंम्रित नामु तेरा ॥
मुकति भइआ जिसु रिदै वसेरा ॥
गुरि बंधन तिन के सगले काटे
जन नानक सहजि समाई जीउ
॥४॥१६॥२३॥

हे गहर गम्भीर परमात्मा ! आपका नाम ही अमृत है अथवा आपके अमृत नाम (का सागर बहुत) गहरा और (बहुत) गम्भीर (शक्ति देने वाला) है। वह (नाम) जिसके हृदय में निवास करता है वह मुक्त हो जाता है, और गुरु ने उसके सभी बन्धन काट दिये हैं और वह सहज (अवस्था) में समा गया है अथवा वह परमात्मा के स्वरूप में समा गया है ॥४॥१६॥२३॥

माझ महला ५॥

"राखे राम तो मारे कौन ?"

प्रभ किरपा ते हरि हरि धिआवउ ॥
प्रभू दइआ ते मंगलु गावउ ॥
ऊठत बैठत सोवत जागत
हरि धिआईऐ सगल अवरदा
जीउ ॥१॥

(हे भाई !) प्रभु की कृपा से मैं दुःख हर्ता हरि (नाम) का ध्यान करता हूँ और प्रभु की दया (दृष्टि) से मैं मंगलमय हरि के मंगलमय गीत गाता हूँ। उठते, बैठते, सोते और जागते (हाँ), सारी आयु (हर अवस्था में) हमें हरि (नाम) का ध्यान करना चाहिए ॥१॥

नामु अउखधु मो कउ साधू दीआ ॥
किलबिख काटे निरमलु थीआ ॥
अनदु भइआ निकसी सभ पीरा
सगल बिनासे दरदा जीउ ॥२॥

(हे भाई !) (हरि) नाम रूपी औषधि (दुःखों को नाश कर सुख देने वाली) मुझे साधु ने दी है, (उस दवाई ने मेरे सभी पाप (रूपी रोग) काट दिये हैं, अब (मेरा मन) निर्मल हो गया है। (हरि नाम दवाई का सेवन करने से सम्पूर्ण अहंकार रूपी) पीड़ा (मन से) मिट गई है और (राग द्वैषादि के) सारे दर्द भी दूर हो गये। इसलिये मुझे परम आनन्द (प्राप्त हुआ) है ॥२॥

जिसका अंगु करे मेरा पिआरा ॥
सो मुकता सागर संसारा ॥
सति करे जिनि गुरू पछाता
सो काहे कउ डरदा जीउ ॥३॥

(हे प्यारे !) जिसकी सहायता अथवा जिसका पक्ष मेरा प्यारा (गुरु रूप परमात्मा) करता है वह संसार-सागर से मुक्त हो जाता है। जिस (पुरुष) ने अपने गुरु को (परमात्मा का) सत्य स्वरूप करके पहचाना (समझा) है, वह किसी से कैसे डर सकता है? (अर्थात् उसे यमकाल का या कामादिक विकारों का या किसी अन्य का भय नहीं रहता) ॥३॥

जब ते साधू संगति पाए ॥
गुर भेटत हउ गई बलाए ॥
सासि सासि हरि गावै नानकु
सतिगुर ढाकि लीआ मेरा पड़दा
जीउ ॥४॥१७॥२४॥

जब से मैंने साधु-संगति प्राप्त की है और गुरु से मिलाप हुआ है, तब से मेरी (अहंम् रूपी) बला दूर हो गई है। (मेरे [illegible] बाबा) नानक अब श्वास-प्रश्वास हरि (के गुन) गाता है! (हे भाई!) सतुगुरु ने मेरा पर्दा ढांक लिया है (अर्थात् हमारे सभी अवगुण बख्श (क्षमा) कर दिये हैं) ॥४॥१७॥२४॥

माझ महला ५॥

"सेवक की अद्वितीय अवस्था।"

ओति पोति सेवक संगि राता ॥
प्रभ प्रतिपाले सेवक सुखदाता ॥
पाणी पखा पीसउ सेवक कै
ठाकुर ही का आहरु जीउ ॥१॥

(हे भाई!) (परमात्मा) ताने बाने की तरह (सरासर) (अपने अनन्य श्रद्धालु) सेवक के साथ मिला हुआ है। (मेरा) प्रभु जो सुखों का दाता है, 'वह' सदैव अपने सेवक की पालना (रक्षा) करता है। (अभिलाषा है कि मैं उस) सेवक के (चरणों में बैठकर उसे) पानी (पिलाऊँ या भर कर लाऊँ), पंखा झुलाऊँ और चक्की चलाऊँ (जिसे अपने) ठाकुर के भजन करने का (ही) उद्यम (आहरु) है (अर्थात हरि जन की सेवा, हरि की ही सेवा है क्योंकि दोनों एक रूप है) ॥१॥

काटि सिलक प्रभि सेवा लाइआ ॥
हुकमु साहिब का सेवक मनि
भाइआ ॥
सोई कमावै जो साहिब भावै
सेवकु अंतरि बाहरि माहरु
जीउ ॥२॥

प्रभु ने (वासना रूपी) फाँसी को काट कर (मुझे अपनी) सेवा में लगाया है। साहब का हुक्म सेवक के मन को अच्छा लगता है। (सेवक) वही कार्य करता है जो साहब (के मन) को अच्छा लगता है और (अर्थात् भक्त भगवान की भक्ति में ही लगा रहता है। (इसलिये) सेवक भीतर-बाहर (लोक परलोक में) प्रधान (मुखिया) हो रहा है ॥२॥

तूं दाता ठाकुर सभ बिधि
जानहि ॥
ठाकुर के सेवक हरि रंग माणहि ॥
जो किछु ठाकुर का सो सेवक का
सेवकु ठाकुर ही संगि जाहरु जीउ
॥३॥

हे ठाकुर! तुम सर्वज्ञ हो। (हाँ) सभी कुछ, सभी विधियों से जानते हो। हे ठाकुर! आपके सेवक सर्व प्रकार के आनन्द में (सुखों) को भोगते हैं (अनुभव करते) हैं हे ठाकुर जी! जो कुछ आपका है, वह सब आपके सेवक का भी है, क्योंकि सेवक ठाकुर के (ही) सङ्ग से प्रकट होता है ॥३॥

अपुनै ठाकुरि जो पहिराइआ ॥
बहुरि न लेखा पुछि बुलाइआ ॥
तिसु सेवक कै नानक कुरबाणी ॥
सो गहिर गभीरा गउहरु जीउ ॥४॥
१८॥२५॥

जिस सेवक को अपने ठाकुर ने (भक्ति या यश रूपी) पोशाक पहना दी है, उसे फिर लेखा-जोखा पूछने के लिए वापस नहीं बुलाता (अर्थात उसकी चौरासी लाख योनियां समाप्त करके अपने साथ लीन कर देता है)। (भक्ति में अनुरक्त) सेवक गहन, गम्भीर और उज्ज्वल-स्वरूप है। मैं नानक ऐसे सेवक के ऊपर कुर्बान जाता हूँ ॥४॥१८॥२५॥

माझ महला ५॥

"आँख उठा कर देख प्रभु प्यारा तुझमें है।"

सभ किछु घर महि बाहरि नाही।
बाहरि टोलै सो भरमि भुलाही ॥
गुरपरसादी जिनी अंतरि पाइआ
सो अंतरि बाहरि सुहेलाजीउ ॥१॥

(हे भाई!) सभी कुछ (हृदय) घर अन्दर ही है, बाहर (कुछ) नहीं है। पर (जो अज्ञानता के कारण प्रभु को) बाहर ढूँढता है, वह भ्रम में भूला रहता है। गुरु की प्रसन्नता से जिन (गुरमुखों ने) (प्रभु को अपने) अन्दर (हृदय-घर में) पा लिया है, वे अन्दर और बाहर (अर्थात मन से चाहे तन से) सुखी हैं ॥१॥

झिमि झिमि वरसै अंमृत धारा ॥
मनु पीवै सुनि सबदु बीचारा ॥
अनद बिनोद करे दिन राती
सदा सदा हरि केला जीउ ॥२॥

(गुरु रूपी बादल से नाम रूपी) अमृत-धारा रिम-झिम, रिम-झिम बरस रही है, पर (उसका) मन पीता है, जो गुरु का शब्द (ध्यान से) सुनकर विचार (भी) करता है। (फिर) उसका मन दिन और रात आनन्द और विनोद करता है और हरि के साथ सर्वदा क्रीड़ा (भी) करता है ॥२॥

जनमजनम का विछुड़िआ
मिलिआ ॥
साध क्रिपा ते सूका हरिआ ॥
सुमति पाए नामु धिआए
गुरमुखि होए मेला जीउ ॥३॥

(नाम-अमृत पीने से) जन्म-जन्म का बिछुड़ा हुआ (जीव हरि के साथ) मिलता है। सन्तों की कृपा से सूखा हुआ (मन) भी हरा-भरा हो जाता है (अर्थात पहले अवगुणों से भरा था, वह अब शुभ गुणों से परिपूर्ण होता है)। गुरु से श्रेष्ठ मति प्राप्त करता है और नाम का ध्यान करता है क्योंकि गुरमुख से उसका मिलन हुआ है अथवा ऐसे गुरमुख का मिलाप हरि के साथ होता है ॥३॥

जल तरंगु जिउ जलहि समाइआ ॥
तिउ जोती संगि जोति मिलाइआ ॥
कहु नानक भ्रम कटे किवाड़ा ॥
बहुड़ि न होईऐ जउला जीउ ॥४॥
१९॥२६॥

(हे भाई!) जैसे जल की तरंग जल में समा जाती है, वैसे ही (गुरमुख की) ज्योति का मेल (परम) ज्योति के साथ हो जाता है, जिससे उसके भ्रम के किवाड़ कट जाते हैं और फिर कभी भी परमेश्वर से जीव का भटकना नहीं होता। कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (अर्थात उसे फिर वियोग का दुःख सहन नहीं करना पड़ता) ॥४॥१९॥२६॥

माझ महला ५॥

"जिसने जाना उसने पाया।"

तिसु कुरबाणी जिनि तूं सुणिआ ॥
तिसु बलिहारी जिनि रसना भणिआ ॥
वारि वारि जाई तिसु विटहु जो मनि तनि तुधु आराधे जीउ ॥१॥

(हे प्रभु !) (मैं) उस (प्यारे पर) कुर्बान जाऊँ जिसने तुम्हारे (पवित्र नाम कानों से) सुना है और उस पर बलिहारी जाऊँ जिसने रसना से तुम्हारा (नाम) उच्चारण किया है तथा उसके ऊपर बार-बार न्यौछावर होऊँ जो मन और तन से तुम्हारी आराधना करता है ॥१॥

तिसु चरण पखाली जो तेरै मारगि चालै ॥
नैन निहाली तिसु पुरख दइआलै ॥
मनु देवा तिसु अपुने साजन जिनि गुर मिलि सो प्रभु लाधे जीउ ॥२॥

(हे भगवत् !) (मैं) उस (राही) के चरण (कमल) प्रक्षालन करूँ (धोऊँ) जो तुम्हारे मार्ग में चलता है और ऐसे दयालु पुरुष का दर्शन आँखों से करूँ तथा अपने सज्जन को अपना मन (अर्पण करूँ), जिसने गुरु से मिलकर तुझ प्रभु को ढूंढा (पाया) है॥२॥

से वडभागी जिनि तुम जाणे ॥
सभ कै मधे अलिपत निरबाणे ॥
साध कै संगि उनि भउजलु तरिआ सगल दूत उनि साधे जीउ ॥३॥

(हे स्वामी !) वे भाग्यशाली है जिन्होंने तुमको जाना है। वे चाहे सबके मध्य मे रहते हैं तो भी वे निर्लिप्त और निर्विकार (असग) हैं। ऐसे (प्यारे जीव) साधु की संगति के कारण (काम क्रोधादि) सकल दूतो को वशीभूत करते हैं और संसार-सागर से पार (मुक्त) हो जाते हैं ॥३॥

तिन की सरणि परिआ मनु मेरा ॥
माणु ताणु तजि मोहु अंधेरा ॥
नामु दानु दीजै नानक कउ तिसु प्रभ अगम अगाधे जीउ ॥४॥२०॥२७॥

(हे प्रभु !) मेरा मन मान, बल एवम् मोह रूपी अन्धकार (अज्ञानता) को छोडकर ऐसे (महापुरुषों) की शरण में आकर पड़ा है और उनके आगे यह प्रार्थना है कि (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक को अगम अगाध प्रभु के नाम का दान देवें।

॥४॥२०॥२७॥

माझ महला ५ ॥	"सभी कुछ 'वह' आप ही आप है।"
तूं पेडु साख तेरी फूली ॥ तूं सूखमु होआ असथूली ॥ तूं जलनिधि तूं फेनु बुदबुदा तुधु बिनु अवरु न भालीऐ जीउ ॥१॥	(हे परमात्मा !) तुम (एक) वृक्ष हो और (यह सृष्टि) तुम्हारी फूली-फली शाखा है (अर्थात समस्त रचना तेरा ही विस्तार है)। तुम सूक्ष्म (निर्गुण से) स्थूल विराट रूप हो रहे हो। तुम आप (सृष्टि रूप) महा सागर हो और (पदार्थों रूपी) झाग (भी) तुम हो तथा (जीवन रूपी) बुलबुले भी तुम (ही) हो। आप के बिना कोई दूसरा दिखाई नही देता ॥१॥
तूं सूतु मणीए भी तूं है ॥ तूं गंठी मेरु सिरि तूं है ॥ आदि मधि अंति प्रभु सोई अवरु न कोई दिखालीऐ जीउ ॥२॥	(हे भगवान !) तू आप (ही चेतन सत्ता रूपी) धागा हो और उस माला में पिरोये हुए (जीव रूपी) मनके (भी) तुम ही हो और फिर (वर्णाश्रम रूपी) गाँठें भी तुम (ही) हो तथा (माला का) शिरोमणि मोती दाना (मुख्य आत्मा) भी तुम ही हो। वस्तुत: (सृष्टि के) आदि एवं मध्य तथा अन्त मे तुम ही प्रभु व्यापक हो रहे हो, आपके बिना कोई दूसरा दिखाई नही देता ॥२॥
तूं निरगुणु सरगुणु सुखदाता ॥ तूं निरबाणु रसीआ रंगि राता ॥ अपणे करतब आपे जाणहि आपे तुधु समालीऐ जीउ ॥३॥	हे सुखों के दाता हरि ! निर्गुण भी तुम हो और फिर सगुण भी तुम (ही) हो। तुम ही निर्लेप (त्यागी) हो और तुम ही सभी रंगों में मस्त हुए रस भोक्ता (रसिक) हो। तुम अपने कार्यों को आप ही जानते हो और तुम आप ही अपने को याद करते हो (अर्थात जिस परमात्मा को हम जपते हैं वह भी तुम आप हो और जिज्ञासु जो जपता है, वह भी तुम ही हो) ॥३॥
तूं ठाकुरु सेवकु फुनि आपे ॥ तूं गुपतु परगटु प्रभ आपे ॥ नानक दासु सदा गुण गावै ॥ इक भोरी नदरि निहालीऐ जीउ ॥४॥२१॥२८॥	(हे कर्त्तार !) तू आप ही स्वामी हो और फिर सेवक भी तुम (ही) हो। हे प्रभु ! तुम आप गुप्त हो और तुम ही प्रकट (भी) हो। हे नानक ! मैं आपका दास सदा आपके गुण गाता रहूँ। (कृपया) थोड़ी से कृपा दृष्टि से मेरी ओर भी देखिये ॥४॥२१॥२८॥

माझ महला ५।।

सफलु सु बाणी
जितु नामु वखाणी ।।
गुर परसादि किनै विरलै जाणी ।।
धंनु सु वेला
जितु हरि गावत सुनणा
आए ते परवाना जीउ ।।१।।

'जिसने हरि का यश गाया उसका जन्म सफल हुआ'।

वह वाणी सफल है, जिस द्वारा (हरि) नाम का उच्चारण होता है, किन्तु इस बात को किसी विरले (मनुष्य) ने ही गुरु की कृपा से जाना है। वह श्रेष्ठ समय सफल है, (हाँ) धन्य है, जिसमें हरि का यश का गायन और श्रवण होता है। ऐसे जीवों का (संसार में) आना सफल (प्रमाणिक) है (जो हरि का यश गाते और सुनते हैं) ।।१।।

से नेत्र परवाणु जिनी दरसनु पेखा ।।
से कर भले जिनी हरि जसु लेखा ।।
से चरण सुहावे जो हरि मारगि चले
हउ बलि तिन संगि पछाणा
जीउ ।।२।।

(हे भाई !) वे नेत्र सफल हैं, जिन्होंने हरि का दर्शन किया है। वे हाथ श्रेष्ठ (पवित्र) हैं जिनके द्वारा हरि का यश लिखा जाता है। वे चरण शोभायमान (पावन) हैं जो हरि के मार्ग में चलते हैं। मैं ऐसे (प्यारों) पर बलिहारी जाऊँ जिनकी संगति से हरि को पहचाना जाता है ।।२।।

सुणि साजन मेरे मीत पिआरे ।।
साध संगति खिन माहि उधारे ।।
किलविख काटि होआ मनु निरमलु
मिटि गए आवण जाणा जीउ ।।३।।

हे मेरे प्यारे सज्जन और मित्र! ध्यानपूर्वक मेरी बात सुन कि साधु की संगति से क्षण भर में (संसार-सागर से) उद्धार होता है और छोटे बड़े पाप कट जाते हैं, जिससे मन निर्मल होता है तथा (संसार में) आना जाना (अर्थात जन्म-मरण) मिट (समाप्त हो) जाता है ।।३।।

दुइ कर जोड़ि इकु बिनउ करीजै ।।
करि किरपा डुबदा पथरु लीजै ।।
नानक कउ प्रभ भए क्रिपाला
प्रभ नानक मनि भाणा जीउ ।।४।।
२२।।२९।।

दोनों हाथ जोडकर एक विनय करता हूँ कि कृपा करके मुझ (पापों से भरे) डूबते हुये पत्थर को (संसार-सागर से) निकाल लो (अर्थात पार लगा दो)। हे नानक! प्रभु मेरे पर कृपालु हुए हैं, जिससे आप प्रभु नानक के मन को अच्छे लगते हो ।।४।।२२।।२९।।

माझ महला ५।।

अंमृत बाणी हरि हरि तेरी ।।
सुणि सुणि होवै परमगति मेरी ।।

"सुनो सच्ची वाणी तो दूर हो दुःखों की वाटी।"

हे हरि! तुम्हारी हरि (नाम) रूपी वाणी अमृत समान है, जिसे बार-बार सुनने से (मेरी) परम गति (मुक्ति) होती है और

जलनि बुझी सीतलु होइ मनूआ सतिगुर का दरसनु पाए जीउ ॥१॥	तृष्णा रूपी जलन शान्त हो गई है, जिससे मन (भी) शीतल हो गया है। (किन्तु यह अवस्था) सत्गुरु का दर्शन पाकर ही मुझे प्राप्त हुई है ॥१॥
सुखु भइआ दुखु दूरि पराना ॥ संत रसनि हरिनामु वखाना ॥ जल थल नीरि भरे सर सुभर बिरथा कोइ न जाए जीउ ॥२॥	(हे भाई!) जब सन्तों के द्वारा हरिनाम का आचरण मैंने रसना से किया तो (आत्मिक) सुख प्राप्त हुआ और (मानसिक आदि) दुख दूर भाग गए। (हरि नाम रूपी वाणी के) जल से स्थल और समुन्द्र अर्थात सारी सृष्टि और सन्तों के पवित्र हृदय रूपी तालाब लबा-लब भरे हुए हैं। (हाँ) (हरिनाम जल के बिना) कोई भी जगह खाली नहीं है (अर्थात अधिकारी पुरुष सन्त की सगति में आने से खाली नही जाता) ॥२॥
दइआ धारी तिनि सिरजनहारे ॥ जीअ जंत सगले प्रतिपारे ॥ मिहरवान किरपाल दइआला सगले त्रिपति अघाए जीउ ॥३॥	हे भाई! वह (सृष्टि) रचयिता, मिहरबान, कृपालु और दयालु प्रभु दया करके सभी जीवों की पालना (रक्षा) करता है, जिससे सभी भूख और प्यास से तृप्त रहते हैं (क्योंकि परमात्मा का उपदेश सन्तों द्वारा प्राप्त हुआ) ॥३॥
वणु त्रिणु त्रिभवणु कीतोनु हरिआ ॥ करणहारि खिन भीतरि करिआ ॥ गुरमुखि नानक तिसै अराधे मन की आस पुजाए जीउ ॥४॥ २३॥३०॥	(हे भाई!) 'उसी' जगत निर्माता ने एक क्षण के भीतर ही सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की है और वन, तृण तथा त्रिभुवन को (भी) हरा-भरा कर दिया है, इसलिये हे नानक! गुरु की शिक्षा द्वारा 'उस' प्रभु की आराधना करनी चाहिए जो मन की (सभी) आशाओं को पूर्ण कर देता है ॥४॥२३॥३०॥
माझ महला ५॥	"जब प्रभु ही रक्षक है तो भय कैसा?"
तूं मेरा पिता तूं है मेरा माता ॥ तूं मेरा बंधपु तूं मेरा भ्राता ॥ तूं मेरा राखा सभनी थाई ता भउ केहा काड़ा जीउ ॥१॥	(हे प्रभु जी) तू (ही) मेरा पिता है और तू (ही) मेरी माता है, तू (ही) मेरा सम्बन्धी (बान्धव) है तथा तू (ही) मेरा भाई है। जब तू (ही) सभी जगह पर मेरी रक्षा करने वाले हो, तब मुझे भय किसका और चिन्ता कैसी? ॥१॥
तुमरी क्रिपा ते तुधु पछाणा ॥ तूं मेरी ओट तूं है मेरा माणा ॥	(हे प्रभु!) तुम्हारी कृपा से (ही मैंने) तुम्हें पहचाना है। तू (ही) मेरी ओट (सहारा) है और तू (ही) मेरा मान है। तुम्हारे

तुझ बिनु दूजा अवरु न कोई
सभु तेरा खेलु अखाड़ा जीउ ॥२॥

बिना और दूसरा कोई है नहीं । ऐ (प्रभु) जी ! यह सारा (संसार) तेरे (ही) खेलने का अखाडा है ॥२॥

जीअ जंत सभि तुधु उपाए ॥
जितु जितु भाणा तितु तितु लाए ॥
सभ किछु कीता तेरा होवै
नाही किछु असाड़ा जीउ ॥३॥

हे सृष्टि के रचयिता ! यह जीव-जन्तु सब तुमने ही उत्पन्न किये हैं और जहाँ-जहाँ तुम्हें अच्छा लगा वहाँ-वहाँ उसके लिए कार्य निश्चित कर दिया है । (अर्थात तुम्हारे हुकम अनुसार ही जीव कार्य करते हैं) । यह सब कुछ (पसारा) तेरा ही है अथवा सब कुछ तुम्हारे करने से ही होता है, हमारे करने से कुछ नही होता अथवा हमारा किया हुआ कुछ भी नहीं है ॥३॥

नामु धिआइ महासुखु पाइआ ॥
हरिगुण गाइ मेरा मनु सीतलाइआ ॥
गुरि पूरै वजी वाधाई
नानक जिता बिखाड़ा जीउ ॥४॥
२४॥३१॥

हे हरि ! तुम्हारे नाम का ध्यान करके मैंने महा सुख प्राप्त किया है और तुम्हारे गुण गाकर मन भी शीतल हो गया है । पूर्ण गुरु की बधाई मिली है । हे नानक ! (जिस गुरु की कृपा से मैंने कामादि) विषम विकारो को अथवा कठिन (ससार रूपी) अखाड़े को जीत लिया है, पूर्ण गुरु के द्वारा बधाई प्रकट हुई है ॥४॥२४॥ ३१॥

माझ महला ५॥

"हरि का ध्यान कर तो सुख पायेगा ।"

जीअ प्राण प्रभ मनहि अधारा ॥
भगत जीवहि गुण गाइ अपारा ॥
गुणनिधानु अंम्रितु हरिनामा
हरि धिआइ धिआइ सुखु पाइआ
जीउ ॥१॥

(हे भाई !) प्रभु जी (ही) जीवों के मन और प्राणों के आधार हैं । भक्तजन उसी अपार परमात्मा के गुण गाकर जीवित रहते हैं (अर्थात हरे-भरे व स्वस्थ रहते हैं) । हरि का अमृत रूपी नाम (ही) गुणों का भण्डार है, जिस हरि नाम को जप-जप कर सुख प्राप्त किया है ॥१॥

मनसा धारि जो घरि ते आवै ॥
साधसंगि जनम मरणु मिटावै ॥
आस मनोरथु पूरनु होवै
भेटत गुर दरसाइआ जीउ ॥२॥

जो (जीव) इच्छा धर कर (साधु संगति रूपी) घर में आता है, वह साधु की संगति से अपना जन्म-मरण का चक्र मिटा लेता है (अर्थात वह परमात्मा से मिलता है) । उसी जीव की (सभी) आशाएँ तथा मनोरथ गुरु के मिलने पर (हाँ) गुरु के दर्शन करने से पूर्ण हो जाते हैं ॥२॥

नोट · कुछ प्यारे पहली पंक्ति इस प्रकार भी उचारण करते हैं —"मन साधरि" जो जीव मन को सुधार कर।

अगम अगोचर किछु मिति नही जानी ॥
साधिक सिध धिआवहि गिआनी ॥
खुदी मिटी चूका भोलावा
गुरि मनही महि प्रगटाइआ जीउ ॥३॥

(हे भाई !) उस अगम्य, और अगोचर परमात्मा की साधना करने वाले, सिद्ध, ज्ञानी और ध्यान लगाने वाले भी 'उसकी' सीमा को नहीं जान सकते। जब गुरु मन के अन्दर परमात्मा को प्रकट करके दर्शन कराता है, तब अहंकार नाश होता है और अज्ञान का अन्धेरा निवृत हो जाता है ॥३॥

अनद मंगल कलिआण निधाना ॥
सूख सहज हरिनामु बखाना ॥
होइ क्रिपालु सुआमी अपना
नाउ नानक घर महि आइआ जीउ ॥४॥२५॥३२॥

(हे भाई !) हरिनाम का उच्चारण करने से (हमें) आनन्द, खुशी, कल्याण, अथवा मंगलमय आनन्द और कल्याण, (आत्म) सुख और शान्ति का भण्डार प्राप्त हुआ है, किन्तु जब 'वह' अपना स्वामी परमात्मा कृपालु हुआ तब (हरि) नाम (हृदय रूपी) घर में प्रकट हुआ ॥४॥२५॥३२॥

माझ महला ५॥

"जो सुने हरि की कथा दुःख दर्द उसी का लथा।"

सुणि सुणि जीवा सोइ तुमारी ॥
तूं प्रीतमु ठाकुरु अति भारी ॥
तुमरे करतब तुम ही जाणहु
तुमरी ओट गुोपाला जीउ ॥१॥

हे (मेरे) गोपाल ! तुम्हारी शोभा को सुन-सुन कर मैं जीता हूँ (अर्थात आनन्दित हूँ)। तू (मेरा) प्रियतम है और अति भारी (बडा) ठाकुर है, अपने (आश्चर्यजनक) कार्यों (के रहस्य) को तुम ही जानते हो, पर मुझे तुम्हारी ही ओट (आसरा) है ॥१॥

गुण गावत मनु हरिआ होवै ॥
कथा सुणत मलु सगली खोवै ॥
भेटत संगि साध संतन कै
सदा जपउ दइआला जीउ ॥२॥

हे सदा दयालु (प्रभु) जी ! तुम्हारे गुणों का गायन करने से मन हरा-भरा (प्रसन्न) हो जाता है और तुम्हारी कथा सुनने से (पापों की) सम्पूर्ण मैल दूर हो जाती है। (इसलिये मेरी यह प्रार्थना है कि) साधु-सन्तों की संगति में मिलकर (तुम्हारे नाम को) सदा जपता रहूँ ॥२॥

प्रभु अपुना सासि सासि समराउ ॥
इह मति गुर प्रसादि मनि धारउ ॥
तुमरी क्रिपा ते होइ प्रगासा
सरब मइआ प्रतिपाला जीउ ॥३॥

(हे भगवन् !) ऐसी श्रेष्ठ मति गुरु की कृपा से धारण करूँ, जिससे श्वास-प्रश्वास में अपने प्रभु का स्मरण करूँ (अर्थात तुम्हें याद करूँ)। हे सर्व (जीवों) पर दया करने वाले ! हे सर्व जीवों की पालना (रक्षा) करने वाले ! तुम्हारी (ही) कृपा से (ज्ञान रूपी) प्रकाश होता है ॥३॥

सति सति सति प्रभु सोई ॥
सदा सदा सद आपे होई ॥
चलित तुमारे प्रगट पिआरे
देखि नानक भए निहाला जीउ
॥४॥२६॥३३॥

हे प्रभु ! तुम (सृष्टि से पूर्व) सदा सत्य थे और (अब भी) सदा सत्य हो तथा (आगे भी) सर्वदा सत्य रहोगे। आप ही सदा सर्वदा होते हो। हे प्यारे परमेश्वर ! तुम्हारे (आश्चर्यजनक चरित्र) सर्वदा प्रत्यक्ष देखकर मैं कृतार्थ (आनन्दित) हुआ हूँ ॥४॥२६॥३३॥

माझ महला ५॥

"कृपा की हुई वर्षा जभी, दुःख दर्द दूर हुए तभी।"

हुकमी वरसण लागे मेहा ॥
साजन संत मिलि नामु जपेहा ॥
सीतल सांति सहज सुखु पाइआ
ठाढि पाई प्रभि आपे जीउ ॥१॥

(हे भाई !) परमात्मा के हुकम से (गुरु रूपी बादलों से उपदेश रूपी) वर्षा होती है, जिससे सज्जन (उपकारी) सन्तों से मिलकर मैं नाम जपता हूँ। (नाम जपने के कारण) शीतलता, शान्ति तथा स्वाभाविक ही (आत्मिक) सुख प्राप्त करता हूँ, किन्तु यह शीतलता हे प्रभु ! आप ही ने आकर (मेरे मन में) भरी है ॥१॥

सभु किछु बहुतो बहुतु उपाइआ ॥
करि किरपा प्रभि सगल रजाइआ ॥
दाति करहु मेरे दातारा
जीअ जंत सभि ध्रापे जीउ ॥२॥

(हे भाई !) मेरे प्रभु ने सब कुछ अत्याधिक मात्रा में उत्पन्न किया है और कृपा करके सभी (अधिकारियों को) तृप्त कर दिया है। (निवेदन है) हे मेरे दाता ! और भी उदारता करो कि सभी जीव-जन्तु (पूर्ण) तृप्त हो जाएँ ॥२॥

सचा साहिबु सची नाई ॥
गुर प्रसादि तिसु सदा धिआई ॥
जनम मरण भै काटे मोहा
बिनसे सोग संतापे जीउ ॥३॥

(हे भाई !) परमात्मा सच्चा साहब है और 'उसकी' बड़ाई (भी) सच्ची है। गुरु की कृपा से मैं सदा 'उसका' ध्यान करता हूँ जिससे जन्म-मरण का भय और संसार का मोह कट जाता है तथा शोक एवं सन्तापादि (दुःख, कष्ट, जलन) (भी) नाश हो जाते हैं ॥३॥

सासि सासि नानकु सालाहे ॥
सिमरत नामु काटे सभि फाहे ॥
पूरन आस करि खिन भीतरि
हरि हरि हरि गुण जापे जीउ
॥४॥२७॥३४॥

(हे भाई !) श्वास-प्रश्वास (बाबा) नानक (हरि की) स्तुति करता है, जिसके नाम का स्मरण करने से सभी (दुनिया के) बन्धन कट जाते हैं। एक क्षण के भीतर हरि ने मेरी आशाएँ पूर्ण कर दी हैं, इसलिये हे हरि ! मैं हरि, (हाँ) हरि के गुणों का (सदा) गायन करता हूँ ॥४॥२७॥३४॥

माझ महला ५ ॥

'भाई जपो हरि का नाम तो पूर्ण होवे सभी काम।"

आउ साजन संत मीत पिआरे ॥
मिलि गावह गुण अगम अपारे ॥
गावत सुणत सभे ही मुकते
सो धिआईऐ जिनि हम कीए जीउ
॥१॥

हे प्यारे सज्जनों! हे सन्त जनों! हे मित्रो! आओ मिलकर अगम अपार प्रभु के गुणों को गायें क्योंकि गायन करने वाले और श्रवण करने वाले सभी ही मुक्त होते हैं, (हाँ) सचमुच हमें 'उसका' ध्यान करना चाहिये, जिस परमात्मा ने हमें उत्पन्न किया है ॥१॥

जनम जनम के किलबिख जावहि ॥
मनि चिंदे सेई फल पावहि ॥
सिमरि साहिबु सो सचु सुआमी
रिजकु सभसु कउ दीए जीउ ॥२॥

हे भाई! (जो जीव हरि को जपते हैं) उनके जन्म-जन्मान्तरों के पाप मिट जाते हैं और वे मन-वाँच्छित फलों को प्राप्त करते हैं (अर्थात उनकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं)। हमें 'उस' सच्चे साहब और स्वामी का स्मरण करना चाहिए जो सबको भोजन आदि पदार्थ (आहार) देता है ॥२॥

नामु जपत सरब सुखु पाईऐ ॥
सभु भउ बिनसै हरि हरि
धिआईऐ ॥
जिनि सेविआ सो पार गिरामी
कारज सगले थीए जीउ ॥३॥

(हे भाई!) नाम जपने से ही सर्व सुख प्राप्त होते हैं और हरि (नाम) का ध्यान करने से सभी (प्रकार के) भय नाश हो जाते हैं। वस्तुत. जिन जीवो ने (मेरे) हरि (प्रभु के नाम) की सेवा की है, वे (संसार-सागर से) पार हो जाते हैं और उनके समस्त कार्य (भी) पूर्ण हो जाते हैं ॥३॥

आइ पइआ तेरी सरणाई ॥
जिउ भावै तिउ लैहि मिलाई ॥
करि किरपा प्रभु भगती लावहु
सचु नानक अंम्रितु पीए जीउ
॥४॥२८॥३५॥

हे प्रभु! मैं आपकी शरण में आकर पडा हूँ, अब आपको जिस प्रकार भी अच्छा लगता है, उसी प्रकार मुझे अपने साथ मिला लीजिये। हे नानक! कृपा करके मुझे अपनी भक्ति में लगाओ तो मैं सच्चे नाम के अमृत का पान करूँ (अर्थात् तेरे नाम को निरन्तर जप सकूँ) ॥४॥२८॥३५॥

माझ महला ५॥

"सारे जगत को प्रभु पाले, सबको है वह सांई संभाले।"

भए क्रिपाल गोविंद गुसाई ॥
मेघु वरसै सभनी थाई ॥

(हे भाई!) जब गोविन्द गोसाई प्रभु कृपालु होता है तो (गुरु रूपी) बादलों से (नाम रूपी) वर्षा सभी जगह पर होती है। 'वह'

दीन दइआल सदा किरपाला
ठाढि पाई करतारे जीउ ॥१॥

दीनों पर दया करने वाला और सदा कृपालु (भी) है, 'उसी' कर्तार ने (भक्तों के हृदय में) शान्ति प्रदान की है ॥१॥

अपुने जीअ जंत प्रतिपारे ॥
जिउ बारिक माता संमारे ॥
दुख भंजन सुख सागर सुआमी
देत सगल आहारे जीउ ॥२॥

हे भाई ! (कर्त्तार) अपने जीव-जन्तुओं की ऐसी पालना (रक्षा) करता है, जैसे माता बालक को सभालती है। दुःखों को दूर करने वाले और सुखो के समुद्र तथा सर्व के स्वामी ही सभी को आहार (भोजन) प्रदान करता है ॥२॥

जलि थलि पूरि रहिआ मिहरवाना ॥
सद बलिहारि जाईऐ कुरबाना ॥
रैणि दिनसु तिसु सदा धिआई
जि खिन महि सगल उधारे
जीउ ॥३॥

(हे भाई !) 'वह' कृपालु प्रभु जल एवं स्थल में परिपूर्ण हो रहा है 'उसके' ऊपर सदैव बलिहारी, (हाँ) कुर्बान जाना चाहिए और रात-दिन सदा 'उस' ईश्वर का ध्यान करना चाहिए जो एक क्षण में सर्व जीवों का उद्धार करता है ॥३॥

राखि लीए सगले प्रभि आपे ॥
उतरि गए सभ सोग संतापे ॥
नामु जपत मनु तनु हरीआवलु
प्रभ नानक नदरि निहारे जीउ ॥
॥४॥२९॥३६॥

(मेरे) प्रभु ने अपने सभी (दासों) की स्वयं ही रक्षा कर ली जिससे सभी शोक और सन्ताप दूर हो गये। हे नानक ! 'वह' प्रभु जब कृपा दृष्टि से देखता है, तब नाम जपने से मन और तन हरे-भरे (अर्थात शुभ गुणों से परिपूर्ण) हो जाते हैं ॥४॥२९॥३६॥

माझ महला ५॥

"जिस जगह पर हरि-यश होता है, सुन्दर लगता वह स्वर्ण-महल।"

जिथै नामु जपीऐ प्रभ पिआरे ॥
से असथल सोइन चउबारे ॥
जिथै नामु न जपीऐ मेरे गोइदा
सेई नगर उजाड़ी जीउ ॥१॥

(हे भाई !) जहाँ प्यारे प्रभु-नाम का जाप होता है, वह स्थान स्वर्ण के चौबारे के समान शोभा देता है, पर जहाँ मेरे गोबिन्द (प्रभु) के नाम का जाप नहीं होता, वह स्थान उजड़े हुए के समान (निर्जन) है ॥१॥

हरि रुखी रोटी खाइ समाले ॥
हरि अंतरि बाहरि नदरि निहाले ॥

(हे भाई !) जो (नाम जपने वाला) यदि रूखी-सूखी (सादी) रोटी खा कर भी हरि चिन्तन करता है, हरि उसे सर्वत्र कृपा-दृष्टि से देखता है अथवा वह अपने अन्दर-बाहर हरि को आँखों

खाइ खाइ करे बदफैली
जाणु विसू की बाड़ी जीउ ॥२॥

से देखता है, पर जो (रसीले पदार्थ) खा-खाकर कुकर्म करता है, वह समझो विषैली (जहरीले) फूलों से भरी बगीची है ॥२॥

संता सेती रंगु न लाए ॥
साकत संगि विकरम कमाए ॥
दुलभ देह खोई अगिआनी
जड़ अपुणी आपि उपाड़ी जीउ
॥३॥

(हे भाई!) जो (जीव) सन्तों के साथ प्रेम नहीं करता पर माया (शक्ति) से प्रेम करने वाले साकत के साथ मिलकर कुकर्म करता है वह अज्ञानी अपनी दुर्लभ (मनुष्य) देही को व्यर्थ खो देता है अर्थात निष्फल कर देता है और अपनी जड अपने हाथों से स्वय उखाड देता है ॥ ३॥

तेरी सरणि मेरे दीन दइआला ॥
सुख सागर मेरे गुर गोपाला ॥
करि किरपा नानकु गुण गावै
राखहु सरम असाड़ी जीउ ॥४॥
३०॥३७॥

हे मेरे दीन दयालु! हे सुखों के सागर! हे मेरे गुरु! हे मेरे गोपाल! (मैं) तेरी शरण मे आया हूँ। कृपा करो कि (मेरे गुर-देव बाबा) नानक (तेरे) गुण गाए। मुझ शरण आए हुए की लज्जा रख लो (भाव भव सागर से मेरा उद्धार करो।)
॥४॥३०॥३७॥

माझ महला ५॥

"परमात्मा से सच्ची प्रीति कदाचित नही टूटती।"

चरण ठाकुर के रिदै समाणे ॥
कलि कलेस सभ दूरि पइआणे ॥
सांति सूख सहज धुनि उपजी
साधू संगि निवासा जीउ ॥१॥

ठाकुर के चरण (मेरे) हृदय में आकर समा गए हैं, जिससे कल्पना और कलेश आदि सभी दुःख भाग गए हैं। साधु की संगति में निवास करने से शान्ति, सुख और (सहज) ज्ञान की ध्वनि उत्पन्न हो गई है ॥१॥

लागी प्रीति न तूटै मूले ॥
हरि अंतरि बाहरि रहिआ भरपूरे ॥
सिमरि सिमरि सिमरि गुण गावा
काटी जम की फासा जीउ ॥२॥

(हरि से) लगी हुई प्रीति कभी भी नहीं टूटती, (मैं देखता हूँ कि) हरि (हमारे) अन्दर और बाहर (अर्थात सर्वत्र) परिपूर्ण हो रहा है। (मैं काश!) (हरि की) सदा स्मरण करके गुण गाता रहूँ, क्योंकि (हरि ने मेरी) यम की फासी काट दी है ॥२॥

अंमृतु वरखै अनहद बाणी ॥
मन तन अंतरि सांति समाणी ॥

अनाहद रूपी वाणी अमृत होकर बरस रही है अथवा वाणी रूप अमृत की वर्षा निरन्तर एक रस (अनाहद) हो रही है जिससे मन और तन में शान्ति समा रही है। योगी अनाहद नाद की बहुत प्रशंसा करते हैं जो स्वयं ही बजता और ब्रह्मरन्ध्र (दशम् द्वार) में

तृपति अघाइ रहे जन तेरे
सतिगुरि कीआ दिलासा जीउ ॥३॥

सुनाई पड़ता है। गुरु की वाणी वस्तुतः अनाहद वाणी है। हे हरि! तुम्हारे दास भूख और प्यास से पूर्ण तृप्त रहते हैं, (क्योंकि उनके मन को) सत्गुरु ने धैर्य (सब्र) दिया है ॥३॥

जिस का सा तिस ते फलु पाइआ ॥
करि किरपा प्रभ संगि मिलाइआ ॥
आवण जाण रहे वडभागी
नानक पूरन आसा जीउ ॥४॥
३१॥३८॥

जिसका मैं दास था उससे मैंने फल प्राप्त किया। (सत्गुरु ने) कृपा करके मुझे प्रभु के साथ मिला दिया। हे नानक! पूर्ण भाग्य होने के कारण आवागमन के चक्र से (अर्थात जन्म-मरण से) रहित हो गया हूँ तथा मेरी समस्त आशाएं पूर्ण हो गई हैं ॥४॥
३१॥३८॥

माझ महला ५॥

"सत्गुरु की शिक्षा सुखदायक है।"

मीहु पइआ परमेसरि पाइआ ॥
जीअ जंत सभि सुखी वसाइआ ॥
गइआ कलेसु भइआ सुखु साचा
हरि हरि नामु समाली जीउ ॥१॥

हे भाई! (नाम की) वर्षा हुई है, परमेश्वर ने (वर्षा) की है बरसाई है, और सभी जीव-जन्तुओं को सुखी बसाया है। दुःखों को दूर करने वाले हरिनाम को सम्भालने (स्मरण करने) से (सभी) कलेश दूर हो जाते हैं और सच्चा सुख प्राप्त होता है ॥१॥

जिस के से तिन ही प्रतिपारे ॥
पारब्रहम प्रभ भए रखवारे ॥
सुणी बेनंती ठाकुरि मेरै
पूरन होई घाली जीउ ॥२॥

(हे भाई!) जिस प्रभु का मैं (सेवक) था 'उसी' ने (मेरी) पालना की है, (हाँ) परब्रह्म परमेश्वर स्वयं मेरे रक्षक हुए हैं। मेरे ठाकुर ने मेरी प्रार्थना सुनी जिससे मेरी मेहनत (सेवा) पूर्ण (सफल) हुई है ॥२॥

सरब जीआ कउ देवणहारा ॥
गुर परसादी नदरि निहारा ॥
जल थल महीअल सभि तृपताणे
साधू चरन पखाली जीउ ॥३॥

(हे भाई!) 'वह' (परमात्मा जो) सभी जीवों को (आहार) देने वाला है, 'वह' गुरु की कृपा से (ही मैंने) आँखों से देखा है अथवा गुरु-कृपा द्वारा 'उस' प्रभु ने मुझे कृपा-दृष्टि से देखा है। जल स्थल एवं अन्तरिक्ष (मण्डल) (अर्थात समस्त संसार) तृप्त हुआ है, इसलिए (जिस साधु की कृपा से यह हुआ है उस) *साधु (गुरु) के चरणों का पखालन करना चाहिए (धोने चाहिए)* ॥३॥

मन की इछ पुजावणहारा ॥
सदा सदा जाई बलिहारा ॥

हे भाई! जो (प्रभु) मन की इच्छाएं पूर्ण करने वाला है, 'उस' पर मैं सदा सर्वदा बलिहारी जाता हूँ। हे नानक! दुःख काटने वाले प्रभु 'उसी' ने मुझे यह दान दिया है, परमात्मा जो

नानक दासु कीआ दुख भंजनि
रते रंगि रसाली जीउ ॥४॥
३२॥३९॥

आनन्द का घर है, मैं (आनन्द स्वरूप) के प्रेम में रंग गया हूँ (अर्थात् मग्न हो गया हूँ) ॥४॥३२॥३९॥

माझ महला ५॥

"प्रभु परमात्मा की स्तुति।"

मनु तनु तेरा धनु भी तेरा ॥
तू ठाकुरु सुआमी प्रभु मेरा ॥
जीउ पिंडु सभु रासि तुमारी
तेरा जोरु गोपाला जीउ ॥१॥

हे प्रभु ! यह मन चाहे तन तुम्हारा ही (दिया हुआ) है और धन भी तुम्हारा (ही) है। हे मेरे प्रभु ! तू ही (मेरा) ठाकुर और स्वामी है। मेरी जीवात्मा और शरीर सभी कुछ तुम्हारी ही (दी हुई) पूँजी है जिससे मैंने ससार मे रहकर नाम का लाभ प्राप्त करना है। हे गोपाल ! मुझे तुम्हारा (ही) बल है ॥१॥

सदा सदा तूं है सुखदाई ॥
निवि निवि लागा तेरी पाई ॥
कार कमावा जे तुधु भावा
जा तूं देहि दइआला जीउ ॥२॥

(हे प्रभु !) तू सदा सर्वदा सुख देने वाले हो इसलिए मैं झुक-झुक कर विनम्रता से तुम्हारे (कमल) चरणो मे पड़ता हूँ। हे दयालु ! जब मैं तुम्हे अच्छा लगूँ अर्थात भा जाऊँ तभी तुम्हारा कार्य (सेवा) करूँ वह भी तभी जब तुम दया करके दोगे ॥२॥

प्रभ तुम ते लहणा तूं मेरा गहणा ॥
जो तूं देहि सोई सुखु सहणा ॥
जिथै रखहि बैकुंठु तिथाई
तूं सभना के प्रतिपाला जीउ ॥३॥

हे प्रभु ! जो कुछ मैंने तुमसे लेना है, (वह तुमसे ही मिलना है). तू ही मेरा आभूषण (अर्थात सुन्दरता व शोभा) हो, जो कुछ भी तुम दोगे मैं सुख से सहन करूँगा अर्थात् (सहर्ष स्वीकार करूँगा)। (हाँ) जिस स्थान पर (भी) रखोगे, वह मेरे लिए बैकुण्ठ है। ऐ (प्रभु) जी ! तू सभी (जीवो) की प्रतिपालना करने वाले हो ॥३॥

सिमरि सिमरि नानक सुखु पाइआ ॥
आठ पहर तेरे गुण गाइआ ॥
सगल मनोरथ पूरन होए
कदे न होइ दुखाला जीउ ॥४॥
३३॥४०॥

(हे प्रभु !) (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक ने (तुम्हारा) स्मरण कर करके (अलौकिक) सुख प्राप्त किया है। आठो ही प्रहर (तुम्हारे) गुण गाता हूँ। सकल मनोरथ पूर्ण हुए हैं। अब कभी भी दु खी नही होऊँगा ॥४॥३३॥४०॥

माझ महला ५॥

"परब्रह्म परमेश्वर ने जगत के सुख के लिए गुरु को भेजा है।"

पारब्रहमि प्रभि मेघु पठाइआ ॥
जलि थलि महीअलि दहदिसि
बरसाइआ ॥

(हे भाई !) परब्रह्म प्रभु ने (गुरु रूपी) मेघ (बादल) भेजा है, जिसने जल, स्थल, अन्तरिक्ष (मण्डल), (हाँ) दसो दिशाओं में

सांति भई बुझी सभ त्रिसना
अनदु भइआ सभ ठाई जीउ ॥१॥

(हरि नाम की वर्षा) की है (अर्थात् उत्तम मध्यम कनिष्क सभी अधिकारियो को गुरु ने उपदेश किया है) जिससे (मन को) शान्ति (प्राप्त) हुई है। सारी तृष्णा नाश हो गई है तथा सभी जगह आनन्द ही (छा) गया है ॥१॥

सुखदाता दुख भंजनहारा ॥
आपे बखसि करे जीअ सारा ॥
अपने कीते नो आपि प्रतिपाले
पइ पैरी तिसहि मनाई जीउ ॥२॥

(हे भाई!) 'वह' परमात्मा सुखो का दाता और दुखो को दूर करने वाला है। 'वह' आप ही सभी जीवो पर बख्शिश (कृपा) करता रहता है तथा अपनी बनाई हुई रचना की आप पालना करता है, ऐसे दातार प्रभु के चरणो मे पडकर उसे' मनाना चाहिए॥२॥

जा की सरणि पइआ गति पाईऐ ॥
सासि सासि हरिनामु धिआईऐ ॥
तिसु बिनु होरु न दूजा ठाकुरु
सभ तिसै कीआ जाई जीउ ॥३॥

(हे भाई!) जिस (हरि) की शरण ग्रहण करने से मुक्ति प्राप्त होती है, 'उसके' नाम का श्वास-प्रश्वास ध्यान करना चाहिए, क्योकि उसके' बिना और कोई दूसरा ठाकुर (मेरा स्वामी) नही हैं, यह सभी स्थान ईश्वर के ही बनाये हुए हैं ॥३॥

तेरा माणु ताणु प्रभ तेरा ॥
तूं सचा साहिबु गुणी गहेरा ॥
नानकु दासु कहै बेनंती
आठ पहर तुधु धिआई जीउ ॥४॥
३४॥४१॥

हे प्रभु! मुझे तेरा ही मान है और तेरा ही बल है। हे गुणो के समुद्र (भण्डार)! तुम (ही) मेरे साहब (स्वामी) हो। (मेरे गुरुदेव) नानक दास विनय करके कहते है, कि हे प्रभु! आठो ही प्रहर तुम्हारी आराधना करता रहूँ ॥४॥३४॥४१॥

माझ महला ५॥

"भक्त जनो को सदैव आनन्द है।"

सभे सुख भए प्रभ तुठे ॥
गुर पूरे के चरण मनि वुठे ॥
सहज समाधि लगी लिव अंतरि
सो रसु सोई जाणै जीउ ॥१॥

जब प्रभु प्रसन्न होता है तो पूर्ण गुरु के चरण मन में निवास करते हैं फिर सभी (प्रकार के) सुख प्राप्त होते हैं और अखण्ड (सहज) समाधि मे लीन हो जाता है, परन्तु जो इस रस का पान करता है वही (सहजावस्था के आनन्द को) जानता है ॥१॥

अगम अगोचरु साहिबु मेरा ॥
घट घट अंतरि वरतै नेरा ।
सदा अलिपतु जीआ का दाता
को विरला आपु पछाणै जीउ ॥२॥

मेरा साहब (मन की) पहुँच से परे (अगम्य) है,(इन्द्रियों की) पहुँच से परे (अगोचर) है, परन्तु (फिर भी इतना) समीप है क्योंकि घट-घट में व्याप्त रहा है। वह जीवन का दाता सदा निर्लेप रहता है, परन्तु कोई विरला (ही) 'उसे' (अपने घर में) पहचानता (देखता) है ॥२॥

प्रभु मिलणै की एह नीसाणी ॥
मनि इको सचा हुकमु पछाणी ॥
सहजि संतोखि सदा तृपतासे ॥
अनदु खसम कै भाणै जीउ ॥३॥

प्रभु को मिलने की यह निशानी है कि (पहचानने वाले के मन मे) एक सच्चा (ईश्वर) निवास करता है और 'उसके' हुकम को (वह) पहचानता है। ऐसा पुरुष स्वाभाविक ही सन्तोषी होकर सदा तृप्त रहता है, परन्तु यह आनन्द पति-परमेश्वर के हुकम में रहने से ही (प्राप्त) होता है ॥३॥

हथी दिती प्रभि देवणहारै ॥
जनम मरण रोग सभि निवारे ॥
नानक दास कीए प्रभि अपुने
हरि कीरतनि रंग माणे जीउ ॥४॥
॥३५॥४२॥

जिसको दाता प्रभु ने सहारा अथवा नाम रूपी औषधि अपने हाथों से दी है, उसके जन्म-मरणादि सभी रोग (मेरे) प्रभु ने निवृत कर दिए हैं। हे नानक ! जिनको प्रभु ने अपना दास बनाया है, वे हरि-कीर्तन का आनन्द अनुभव करते हैं ॥४॥३५॥४२॥

माझ महला ५॥

"परमात्मा की दया-कृपा।"

कीनी दइआ गोपाल गुसाई ॥
गुर के चरण वसे मन माही ॥
अंगीकारु कीआ तिनि करतै
दुख का डेरा ढाहिआ जीउ ॥१॥

मेरे गोपाल गोसाई ने यह दया की कि (मेरे) मन मे गुरु के चरण आकर बसे हैं (अर्थात मैंने गुरु की टेक ली है)। कर्त्तार ने मुझे अंगीकार कर लिया है (गले लगा लिया है) जिससे जन्म-मरण के दु ख का डेरा (जो अज्ञान है वह) नष्ट हो गया है ॥१॥

मनि तनि वसिआ सचा सोई ॥
बिखड़ा थानु न दिसै कोई ॥
दूत दुसमण सभि सजण होए
एको सुआमी आहिआ जीउ ॥२॥

मन और तन मे 'वह' सच्चा कर्त्तार बसा हुआ है, जिससे (मुझे अब) कोई भी कठिन स्थान दिखाई नही देता (अर्थात हर जगह मेरे लिए सुख है)। जब से एक स्वामी (प्रभु) को चाहा है, तब से यमदूत रूप शत्रु भी सभी सज्जन (मित्र) हो गए हैं ॥२॥

जो किछु करे सु आपे आपै ॥
बुधि सिआणप किछू न जापै ॥
आपणिआ संता नो आपि सहाई
प्रभि भरम भुलावा लाहिआ जीउ
॥३॥

जो कुछ परमेश्वर करता है, 'वह' अपने आप करता है। (जीव की) बुद्धि और चतुराई कुछ भी नही जान पाती (अर्थात हमारी चतुराई व्यर्थ है)। प्रभु अपने सन्तों की आप ही सहायता करता है और उनके मनों से भ्रम (का पर्दा) जो भुलाने वाला है, उतार (दूर कर) देता है ॥३॥

चरण कमल जन का आधारो ॥
आठ पहर रामुनामु वापारो ॥
सहज अनंद गावहि गुण गोविंद
प्रभ नानक सरब समाहिआ जीउ ॥
॥४॥३६॥४३॥

(प्रभु के) चरण-कमल दासों के आधार हैं और वे आठों ही प्रहर राम के नाम का व्यापार करते हैं। हे नानक ! वे (सन्त) सहजावस्था में (मग्न होकर) आनन्द से (उस) गोविन्द के गुण गाते हैं जो सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ॥४॥३६॥४३॥

माझ महला ५॥

"परमात्मा की स्तुति।"

सो सचु मंदरु जितु सचु धिआईऐ ॥
सो रिदा सुहेला
जितु हरि गुण गाइऐ ॥
सा धरति सुहावी
जितु वसहि हरिजन
सचे नाम विटहु कुरबाणो जीउ ॥१॥

वह ही सच्चा मन्दिर है जहाँ बैठकर सत्य स्वरूप परमात्मा का ध्यान किया जाता है वह ही हृदय सुखी और सुन्दर है, जिसमें हरि के गुणो का गायन किया जाता है। वह ही धरती सुन्दर (शोभा सुख देने वाली) है जहाँ हरि के दास (सन्तजन) निवास करते हैं। मैं (प्रभु के) सच्चे नाम के ऊपर कुर्बान जाता हूँ ॥१॥

सचु वडाई कीम न पाई ॥
कुदरति करमु न कहणा जाई ॥
धिआइ धिआइ जीवहि जन तेरे
सचु सबदु मनि माणो जीउ ॥२॥

सच्चे परमात्मा की महानता की कीमत नही पायी जा सकती और न ही उसकी शक्ति और बख्शिश (कृपा दृष्टि) का वर्णन किया जा सकता है अथवा न जीव मे शक्ति ही है 'उसकी' कृपा को वर्णन करने का। (हे प्रभु !) तेरे दास तेरे नाम की आराधना करके जीते हैं और सच्चे शब्द (के आनन्द) को मन मे अनुभव करते हैं ॥२॥

सचु सालाहणु वडभागी पाईऐ ॥
गुर परसादी हरिगुण गाईऐ ॥
रंगि रते तेरै तुधु भावहि
सचु नामु नीसाणो जीउ ॥३॥

सच्चे परमात्मा की स्तुति बडे भाग्य से प्राप्त होती है अथवा भाग्यशाली जीव ही परमात्मा की स्तुति करते हैं। गुरु की प्रसन्नता से ही हरि के गुणो का गायन किया जाता है। (हे प्रभु !) जो (प्यारे) आपके (प्रेम) रग में अनुरक्त हैं, वे ही आपको अच्छे लगते हैं, उनके पास ही सच्चे नाम का परवाना (प्रमाण-पत्र) है ॥३॥

सचे अंतु न जाणै कोई
थान थनंतरि सचा सोई ॥
नानक सचु धिआईऐ सद ही
अंतरजामी जाणो जीउ ॥४॥
॥३७॥४४॥

सत्य स्वरूप परमात्मा का कोई भी अन्त नही जानता। 'वह' सच्चा परमात्मा सभी स्थानों, (हाँ) देश-देशान्तरों में परिपूर्ण हो रहा है। हे नानक ! सच्चे परमात्मा का सर्वत्र ध्यान करना चाहिए। 'वह' अन्तर्यामी प्रभु (मेरे हृदय की इस भावना को) जानता है। ॥४॥३७॥४४॥

माझ महला ५॥

"सफल समय है वह जो व्यतीत होता है नाम जपने में।"

रैणि सुहावड़ी दिनसु सुहेला ॥
जपि अंमृत नामु संत संगि मेला ॥
घड़ी मूरत सिमरत पल वंञहि
जीवणु सफलु तिथाई जीउ ॥१॥

वह रात्रि शोभायमान (सुन्दर) है और वह दिन सुखदायी है, जब सन्तों से मिलकर (प्रभु के) अमृत नाम को जपते हैं। जिस सत्संग में (हरि-नाम का) स्मरण करके घड़ी, मुहूर्त एवं पल व्यतीत होते हैं, उसी स्थान पर जीवन सफल है ॥१॥

सिमरत नामु दोख सभि लाथे ॥
अंतरि बाहरि हरिप्रभु साथे ॥
भै भउ भरमु खोइआ गुरि पूरै
देखा सभनी थाई जीउ ॥२॥

नाम-स्मरण से सभी दुःख दूर हो जाते हैं और अन्दर-बाहर (सभी जगह) हरि प्रभु को अपना सहायक (अपने साथ) समझते है। पूर्ण गुरु ने (मेरे सभी) भय, डर और भ्रम नाश कर दिए, जिससे कर्त्तार को मैं सभी जगह देखता हूँ ॥२॥

प्रभु समरथु वड ऊच अपारा ॥
नउ निधि नामु भरे भंडारा ॥
आदि अंति मधि प्रभु सोई
दूजा लवै न लाई जीउ ॥३॥

प्रभु समर्थ है, महान है, सर्वोच्च है और अपार (अपरिमित) है। नव निधियों रूपी नाम से 'उसके' भण्डार भरे हुए हैं। आदि मे, अन्त में और मध्य मे (भी) वह (एक अद्वितीय) प्रभु की ही सत्ता है। कोई 'उसके' सदृश्य लाया नही जा सकता। (अर्थात ईश्वर के सदृश्य और कोई नही हो सकता क्योकि 'वह' एक अद्वितीय परिपूर्ण अविनाशी प्रभु है) ॥३॥

करि किरपा मेरे दीन दइआला ॥
जाचिकु जाचै साध रवाला ॥
देहि दानु नानकु जनु मागै
सदा सदा हरि धिआई जीउ ॥४॥
३८॥४५॥

हे दीनो पर दया करने वाले! मेरे पर कृपा करो। मैं याचक आपके साधु-सन्तो के चरणो की धूलि माँगता (चाहता) हूँ। (हाँ) (मेरे गुरुदेव) दास नानक आपसे माँगता है कि (एक) दान (और भी) दो (कि मैं) सदा सर्वदा हरि (नाम) का ध्यान करता रहूँ ॥४॥३८॥४५॥

माझ महला ५॥

"परमात्मा सर्व व्यापक है।"

ऐथै तूं है आगै आपे ॥
जीअ जंत्र सभि तेरे थापे ॥
तुधु बिनु अवरु न कोई करते
मै धर ओट तुमारी जीउ ॥१॥

(हे प्रभु!) यहाँ (इस लोक मे) भी तू ही है आगे (परलोक में) भी तू आप (ही) है। सभी जीव-जन्तु तुम्हारे ही रचे (पाले) हुए हैं। हे कर्त्तार! तुम्हारे बिना और कोई नही हैं। मैं तुम्हारा ही आधार और सहारा लेकर बैठा हूँ ॥१॥

रसना जपि जपि जीवै सुआमी ॥
पारब्रहम प्रभ अंतरजामी ॥

हे (मेरे) स्वामी! हे परब्रह्म प्रभु! हे अन्तर्यामी! (मेरी) रसना (आपके नाम का) जाप करके (ही) जीवित रहती है।

जिनि सेविआ तिन ही सुखु पाइआ
सो जनमु न जूऐ हारी जीउ ॥२॥

जिसने (परमात्मा की) सेवा की है, उसने ही सुख प्राप्त किया है और वह (सेवक) अपने (मनुष्य) जन्म को जूआ (खेलने) में नही हारता (अर्थात उसका जन्म सफल होता है) ॥२॥

नामु अवखधु जिनि जन तेरै
पाइआ ॥
जनम जनम का रोगु गवाइआ ॥
हरि कीरतनु गावहु दिनु राती
सफल एहा है कारी जीउ ॥३॥

हे प्रभु ! जिस तुम्हारे दास ने नाम की आषौधि प्राप्त की है, उसने जन्म-जमान्तरो के रोग को दूर कर दिया है। हे भाई ! दिन-रात हरि का कीर्तन गाओ (करो), क्योंकि इसी से ही (जीवन का) कार्य सफल होता है ॥३॥

द्रिसटि धारि अपना दासु सवारिआ ॥
घट घट अंतरि पारब्रहमु
नमसकारिआ ॥
इकसु विणु होरु दूजा नाही
बाबा नानक इह मति सारी जीउ
॥४॥३१॥४६॥

हे प्रभु ! (कृपा-) दृष्टि करके जिस अपने दास को सँवार लिया है, वह घट-घट में (तुम) परब्रह्म परमेश्वर को नमस्कार करता है। (अर्थात वह घट-घट में तुम्हारा ही स्वरूप देखकर सब की सेवा करता है)। (उसकी दृष्टि में) एक परमात्मा के बिना और कोई भी दूसरा नही है। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक के विचार मे यह मति (ही) श्रेष्ठ है ॥४॥३१॥४६॥

माझ महला ५॥

"राम नाम की महिमा।"

मनु तनु रता राम पिआरे ॥
सरबसु दीजै अपना वारे ॥
आठ पहर गोविंद गुण गाईऐ
बिसरु न कोई सासा जीउ ॥१॥

(हे भाई !) (मेरा) मन और तन प्यारे राम में लीन है। जो अपना है, उस (राम) पर सर्वस्व कुर्बान कर देना चाहिए और आठो ही प्रहर गोबिन्द के गुण गाने चाहिए तथा एक श्वास भर भी 'उसे' नही भूलना चाहिए ॥१॥

सोई साजन मीतु पिआरा ॥
रामनामु साध संगि बीचारा ॥
साधू संगि तरीजै सागरु
कटीऐ जम की फासा जीउ ॥२॥

हे भाई ! वही मेरा प्यारा सज्जन (हितैषी) और मित्र है जो साधु-सन्तो की संगति मे राम नाम का विचार करता है। साधु की सगति से ही (संसार-) सागर से पार हो जाता है और यम की फासी कट जाती है ॥२॥

चारि पदारथ हरि की सेवा ॥
पारजातु जपि अलख अभेवा ॥

(हे भाई !) हरि की सेवा करके चार पदार्थ (धर्म, अर्थ काम और मोक्ष) प्राप्त होते हैं। अलक्ष्य और अभेद्य परमात्मा को

कामु क्रोधु किलबिख गुरि काटे
पूरन होई आसा जीउ ॥३॥

अपने से कल्पवृक्ष (पारजात) प्राप्त होता है। काम, क्रोध, दुःख-पाप गुरु ने नाश कर दिए हैं और मेरी (सभी) आशाएं पूर्ण हुई हैं ॥३॥

पूरन भाग भए जिसु प्राणी ॥
साध संगि मिले सारंगपाणी ॥
नानक नामु वसिआ जिसु अंतरि
परवाणु गिरसत उदासा जीउ ॥४॥
४०॥४७॥

जिस प्राणी के पूर्ण भाग्य उदय हुए हैं, वह साधु संगति द्वारा सारंगपाणि विष्णु भगवान को मिलता है। हे नानक ! जिस (प्राणी के) हृदय में नाम का वास है वह स्वीकार्य है, फिर वह चाहे ग्रहस्थी हो या उदासीन विरक्त (त्यागी) हो ॥४॥४०॥४७॥

माझ महला ५॥

"हरि नाम की महिमा।"

सिमरत नामु रिदै सुखु पाइआ ॥
करि किरपा भगतीं प्रगटाइआ ॥
संत संगि मिलि हरि हरि जपिआ
बिनसे आलस रोगा जीउ ॥१॥

(हे भाई !) (हरि) नाम का स्मरण करके (मैंने) सुख प्राप्त किया है। प्रभु ने कृपा करके (मेरे अन्दर में) भक्ति प्रकट की है। सन्तो की सगति मे मिलकर (मैंने) सर्व दुःख हरण हरि (नाम) का जाप किया है, जिससे आलस्य का रोग नाश हो गया है ॥१॥

जा कै ग्रिहि नव निधि हरि भाई ॥
तिसु मिलिआ जिसु पुरब कमाई ॥
गिआन धिआन पूरन परमेसुर
प्रभु समना गला जोगा जीउ ॥२॥

(हे भाई ! जिस हरि के घर में नव-निधियाँ हैं, वह (हरि)उसे ही मिलता है, जिसने पूर्व (जन्म) के (शुभ) कर्मों की साधना एवं परिश्रम किया हुआ है। परमेश्वर में ही पूर्ण ज्ञान और ध्यान है और प्रभु सभी बातो में समर्थ है ॥२॥

खिन महि थापि उथापनहारा ॥
आपि इकंती आपि पसारा ॥
लेपु नही जग जीवन दाते
दरसन डिठे लहनि विजोगा जीउ
॥३॥

(हे भाई !) जो परमात्मा एक क्षण में बनाकर नष्ट कर देने वाला है, 'वह' आप ही एकाँकी (अर्थात निर्गुण और सगुण रूप आप ही है) और वह आप ही सर्वव्यापक सभी रूपो में है। जगत को जीवन प्रदान करने वाला दातार प्रभु निर्लिप्त है (अर्थात उस पर माया का लेप नही है) और जिसके दर्शनों से बिछुड़े हुए जीवों के दुःख दूर हो जाते हैं ॥३॥

अंचलि लाइ सभ सिसटि तराई ॥
आपणा नाउ आपि जपाई ॥

(हे भाई !) 'उस' हरि ने (अपना नाम रूपी)दामन पकडाकर सारी सृष्टि तार दी है। 'वह' अपने नाम का जाप (जीवो से) स्वयं ही कराता है। गुरु की कृपा से (नाम रूपी) जहाज प्राप्त हुआ है क्योंकि पूर्व से यह सयोग (मेरे मस्तक पर लिखा हुआ)

गुर बोहिथु पाइआ किरपा ते
नानक धुरि संजोगा जीउ ॥४॥
॥४१॥४८॥

था। (अर्थात् शुभ भाग्यों के संयोग से ही गुरु कृपा करके नाम के जहाज में जीव को बैठाकर भव-सागर से पार करता है) ॥४॥ ४१॥४८॥

माझ महला ५॥

"प्रभु-हुकम को मानने वाला ही चतुर है।"

सोई करणा जि आपि कराए ॥
जिथै रखै सा भली जाए ॥
सोई सिआणा सो पतिवंता
हुकमु लगै जिसु मीठा जीउ ॥१॥

(हे भाई!) मैं वह कर्म करता हूँ, जो (प्रभु) आप करवाता है। जहाँ 'वह' मुझे रखता है, वही मेरे लिए श्रेष्ठ (अच्छी) जगह है। वही बुद्धिमान है और वही माननीय है जिसे (कर्तार का) हुकम मीठा लगता है ॥१॥

सभ परोई इकतु धागै ॥
जिसु लाइ लए सो चरणी लागै ॥
ऊंधु कवलु जिसु होई प्रगासा
तिनि सरब निरंजनु डीठा जीउ
॥२॥

सारी (सृष्टि) (प्रभु ने) एक ही धागे (हुकम) में पिरोई हुई है। जिसे 'वह' अपने संग लगाना चाहता है, वही 'उसके' चरणों में लगता है। जिसका (हृदय रूपी) कमल जो पहले उलटा लटका हुआ था, अब सीधा हो गया है और उसे प्रकाश प्राप्त हुआ है (अर्थात् जिसकी वृत्ति पहले संसार के प्रति थी, वह अब उलटी होकर परमात्मा के प्रति हो जाती है)। अत वह अब सर्वत्र निरंजन प्रभु को देखता है ॥२॥

तेरी महिमा तूं है जाणहि ॥
अपणा आपु तूं आपि पछाणहि ॥
हउ बलिहारी संतन तेरे
जिनि कामु क्रोधु लोभु पीठा जीउ
॥३॥

(हे भगवान!) अपनी महिमा को तुम आप ही जानते हो और अपने (यथार्थ स्वरूप) को तुम आप ही पहचानते हो। मैं तुम्हारे सन्तजनो पर बलिहारी जाता हूँ, जिन्हों ने काम, क्रोध, लोभ (आदि विकारो) को पीस दिया है ॥३॥

तूं निरवैरु संत तेरे निरमल ॥
जिन देखे सभ उतरहि कलमल ॥
नानक नामु धिआइ धिआइ जीवै
बिनसिआ भ्रमु भउ धीठा जीउ ॥
॥४॥४२॥४९॥

(हे प्रभु!) तू (स्वयं) वैर से रहित है और तुम्हारे सन्तजन पवित्र हैं जिन के दर्शन मात्र से (सभी) पाप दूर हो जाते हैं। हे नानक! (वे निर्मल सन्त) नाम का ध्यान कर करके जीवित रहते हैं, (उनके) सभी भ्रम और भय जो बहुत ही ढीठ होते हैं, नाश हो गए हैं ॥४॥४२॥४९॥

माझ महला ५॥

"सांसारिक पदार्थों के लिए प्रार्थना नहीं करनी चाहिए, यदि मांगना ही है तो केवल हरि नाम ही।"

झूठा मंगणु जे कोई मांगै ॥
तिस कउ मरते घड़ी न लागै ॥
पारब्रहमु जो सद ही सेवै
सो गुर मिलि निहचलु कहणा ॥१॥

जो (याचक नाम के बिना) मिथ्या (विनश्वर पदार्थों) की याचना करता है, उसे मरते हुए एक पल (विलम्ब) नहीं लगता, पर जो (जीव) परब्रह्म की सर्वदा सेवा करता है, वह गुरु से मिलकर अमर कहा जाता है॥१॥

प्रेम भगति जिस कै मनि लागी ॥
गुण गावै अनदिनु निति जागी ॥
बाह पकड़ि तिसु सुआमी मेलै
जिस कै मसतकि लहणा ॥२॥

जिसके मन में प्रेमा-भक्ति (स्वामी से) लगी है, वह रात-दिन (परमात्मा के) गुण गाने में जागृत (सावधान) रहता है। (मेरा) स्वामी पकड कर उसको अपने साथ मिलाता है जिसके मस्तक पर (यह) लेना लिखा हुआ होता है॥२॥

चरन कमल भगतां मनि वुठे ॥
विणु परमेसर सगले मुठे ॥
संत जनां की धूड़ि नित बांछहि
नामु सचे का गहणा ॥३॥

(हे भाई!) परमात्मा के चरण-कमल भक्तों के मन में निवास करते हैं और परमेश्वर के (नाम के) बिना (शेष) सभी (जीव) ठगे जाते हैं। हे प्यारे! नित्य सन्तो के चरणों की धूलि की याचना करते रहो। सच्चे परमात्मा का नाम ही (भक्तों के लिए) गहना (शोभा देने वाला) है॥३॥

ऊठत बैठत हरि हरि गाईऐ ॥
जिसु सिमरत वरु निहचलु पाईऐ ॥
नानक कउ प्रभ होइ दइआला
तेरा कीता सहणा ॥४॥४३॥५०॥

(हे भाई!) उठते-बैठते (सदा) दुःख हर्ता हरि के गुणों को गाना चाहिए, जिसका स्मरण करने से निश्चल पति (परब्रह्म परमात्मा) की प्राप्ति होती है। हे प्रभु! (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक पर दयालु हो, ताकि आप के किए हुए को मैं सहन कर सकूँ (अर्थात प्रारब्ध अनुसार आप मुझे सुख-दुख जो भी दो उसे मैं स्वीकार करूँ)॥४॥४३॥५०॥

रागु माझ असटपदीआ महला १ घरु १॥

"गुरमुख करते जन्म सफल, मनमुख करते जन्म असफल।"

सबदि रंगाए हुकमि सबाए ॥
सची दरगह महलि बुलाए ॥
सचे दीन दइआल मेरे साहिबा
सचे मनु पतीआवणिआ ॥१॥

(हे हरि !) आप सभी (गुरमुखो को) अपने हुक्म से (गुरु के) शब्द द्वारा रँगते हो और फिर (उन्हे) सच्ची दरबार मे बुला लेते हो (अपने स्वरूप से मिला देते हो)। हे मेरे सच्चे साहब ! हे दीन दयालु ! ऐसे (गुरमुख प्यारे) आप मे सच्चे मन से विश्वास रखते हैं ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
सबदि सुहावणिआ ॥
अंमृत नामु सदा सुखदाता
गुरमती मंनि वसावणिआ ॥१॥
रहाउ॥

(हे भाई !) (ऐसे गुरमुख प्यारे गुरु का) शब्द (धारण करने से) शोभायमान होते हैं। उनके ऊपर मैं बलिहारी जाऊँ और अपने जीव को भी कुर्बान करूँ क्योकि वे सुखो के दात्ता (हरि) का अमृत रूपी नाम गुरु की मति लेकर मन मे बसाते है ॥१॥ रहाउ ॥

ना को मेरा हउ किसु केरा ॥
साचा ठाकुरु त्रिभवणि मेरा ॥
हउमै करि करि जाइ घणेरी
करि अवगण पछोतावणिआ ॥२॥

(इस ससार में) न तो मेरा कोई है और न मैं किसी का हूँ (अर्थात ये सभी सम्बन्धी पूर्व-जन्म के सयोगो से आकर मिले हैं।) केवल 'वह' सच्चा परमात्मा, जो तीनों लोको का मालिक है मेरा स्वामी है (और मैं 'उसी' का हूँ)। अहंकार करके बहुत से जीव (इस संसार से) चले जाते हैं और अवगुण करके अन्त में (वे) पछताते हैं ॥२॥

हुकमु पछाणै सु हरिगुण वखाणै ॥
गुर कै सबदि नामि नीसाणै ॥
सभना का दरि लेखा सचै
छूटसि नामि सुहावणिआ ॥३॥

जो (जीव) (हरि का) हुकम पहचानता है, वह हरि के गुणो की प्रशंसा करता है और वही गुरु के शब्द द्वारा नाम जप कर (झंडे जैसा) प्रकट होता है तथा जब सभी जीवो का सच्चे दरबार में लेखा (हिसाब) होता है, तो वह नाम (जपने के कारण) छूट जाता है और सुशोभित होता है ॥३॥

मनमुखु भूला ठउरु न पाए ॥
जम दरि बधा चोटा खाए ॥
बिनु नावै को संगि न साथी ।
मुकते नामु धिआवणिआ ॥४॥

मनमुख (अज्ञान के कारण) भूले हुए हैं, जिस कारण (उन्हें कोई भी) ठिकाना नहीं मिलता और यम के दरवाजे पर (वे) बाँध कर चाँटे (ठोकरें) खाते हैं। (वस्तुतः हरि) नाम के बिना न कोई संगी है और न कोई साथी ही है इसलिए जो नाम का ध्यान करते हैं, वे (ही) मुक्त हैं ॥४॥

साकत कूड़े सचु न भावै ॥
दुबिधा बाधा आवै जावै
लिखिआ लेखु न मेटै कोई
गुरमुखि मुकति करावणिआ ॥५॥

(माया-शक्ति के उपासक) शाक्त झूठे हैं, उन्हें सत्य नहीं अच्छा लगता। वे द्वैत-भाव में बन्धे हुए आते-जाते (जन्मते-मरते) रहते हैं। (खोटे कर्मों के कारण) जो लिखा हुआ लेख है, उसे कोई भी मिटा नहीं सकता। केवल गुरु की शिक्षा ही उन्हें मुक्ति प्रदान कर सकती है ॥५॥

पेईअड़ै पिरु जातो नाही ॥
झूठि विछुंनी रोवै धाही ॥
अवगणि मुठी महलु न पाए
अवगण गुणि बखसावणिआ ॥६॥

(मनुष्य रूपी स्त्रियाँ संसार रूपी) पीहर (-मैका) में आकर प्रियतम-पति को नहीं जानती और (वे) झूठे (मायिक) व्यवहार के द्वारा (प्रियतम से) बिछुड कर हाहाकार करती हुई रोती हैं। वे अवगुणो द्वारा ठगी हुई अपने (वास्तविक) महल को नहीं पाती। (हाँ) यदि (वे) गुण (धारण करें तो परमात्मा) उनके अवगुण (भी) क्षमा कर देगा ॥६॥

पेईअड़ै जिनि जाता पिआरा ॥
गुरमुखि बूझै ततु बीचारा ॥
आवणु जाणा ठाकि रहाए
सचै नामि समावणिआ ॥७॥

जिन (गुरमुख रूपी स्त्रियों) ने (इस संसार रूपी) पीहर में आकर (अपने) प्रियतम को जान लिया है, वे (ही) गुरु की शिक्षा द्वारा तत्व (रूपी परमात्मा) का विचार करती है, जिससे उनका आवागमन समाप्त हो जाता है और वे सच्चे नाम में समा जाती हैं ॥७॥

गुरमुखि बूझै अकथु कहावै ॥
सचे ठाकुर साचो भावै ॥
नानक सचु कहै बेनंती
सचु मिलै गुण गावणिआ ॥८॥१॥

(ऐसी) गुरमुख (रूपी स्त्रियाँ स्वयं तो) अकथनीय (परमात्मा) को समझती हैं (किन्तु अन्य जीवों से भी नाम तत्व को) कहलवाती हैं क्योंकि सच्चे ठाकुर को तो सच्चा (नाम ही) अच्छा लगता है। हे नानक! विनय करके मैं सत्य कहता हूँ कि सत्य (परमात्मा) गुणगान करने से (ही) मिलेगा ॥८॥१॥

माझ महला ३ घरु १॥

"अन्तर्मुख होकर देख स्वामी का डेरा तुझ में है।"

करमु होवै सतिगुरू मिलाए ॥
सेवा सुरति सबदि चितु लाए ॥
हउमै मारि सदा सुखु पाइआ
माइआ मोहु चुकावणिआ ॥१॥

(यदि जीव के उत्तम) भाग्य हों तो (हरि अपनी दया से) सत्गुरु से मेल मिलाता है, फिर जिज्ञासु अपनी मन-वृत्ति (सत्गुरु की) सेवा में और चित्त (उसके) शब्द में लगाता है ऐसा करने से अहंकार को नाश करके सदा सुख प्राप्त होता है और माया का मोह भी छूट जाता है ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
सतिगुर कै बलिहारणिआ ॥
गुरमती परगासु होआ जी
अनदिनु हरिगुण गावणिआ ॥१॥
॥रहाउ॥

(हे भाई!) मैं बलिहारी हूँ, (हाँ) ऐसे सतगुरु के ऊपर (अपना) जीव (भी) अर्पित करता हूँ, जिसकी शिक्षा से (ज्ञान रूपी) प्रकाश होता है इसीलिए हरि के गुण गाये जाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

तनु मनु खोजे ता नाउ पाए ॥
धावतु राखै ठाकि रहाए ॥
गुर की बाणी अनदिनु गावै
सहजे भगति करावणिआ ॥२॥

(सत्य तो यह है कि जब) तन और मन के अन्दर खोज करते हैं और (इन्द्रियों व विषयो की ओर) दौडते हुए (मन को) संयम में लाकर रखते हैं तथा गुरु की वाणी का रात-दिन स्वाभाविक गायन करते हैं और दूसरों से भी सहज भक्ति करवाते हैं, तभी (हरि) नाम प्राप्त होता है ॥२॥

इसु काइआ अंदरि वसतु असंखा ॥
गुरमुखि साचु मिलै ता वेखा ॥
नउ दरवाजे दसवै मुकता
अनहद सबदु वजावणिआ ॥३॥

इस शरीर के भीतर गणना से परे (एक परमात्मा) वस्तु है, यदि गुरु की शिक्षा द्वारा सच्चा (नाम) मिले तो ही (वह वस्तु) देखी जाती है। शरीर के जो नव-द्वार हैं—(दो नेत्र, नाक के दो छिद्र, दो आँखे, मुख, दो कान, दो गुप्तेन्द्रियाँ) और (इन्हे विषय-वासनाओ से बद करने पर ही) दशम द्वार (खुलता) है, मुक्त होता है। वहाँ अनाहत शब्द निरन्तर बज रहा होता है (जो नाम के द्वारा चित्त की एकाग्रता होने पर सुनाई पड़ता है) ॥३॥

सचा साहिबु सची नाई ॥
गुरप्रसादी मंनि वसाई ॥
अनदिनु सदा रहै रंगि राता
दरि सचै सोझी पावणिआ ॥४॥

(मेरा) साहब सच्चा है और 'उसकी' बडाई (भी) या 'उसका' नाम (भी) सच्चा है। ऐसी बडाई गुरु की प्रसन्नता से जिसके मन में निवास करती है, वह रात-दिन, (हाँ) सदा प्रेम-रग मे अनुरक्त रहता है और सच्चे दरबार (के मार्ग) की उसे सूझ-बूझ प्राप्त हो जाती है ॥४॥

पाप पुंन की सार न जाणी ॥
दूजै लागी भरमि भुलाणी ॥
अगिआनी अंधा मगु न जाणै
फिरि फिरि आवण जावणिआ ॥५॥

(मनमुख अज्ञानी जीव) पाप-पुण्य के अन्तर को नही जानता क्योंकि उसकी बुद्धि द्वैत भाव में लगी रहने के कारण भ्रम (के चक्र) मे भूली रहती है। ऐसा अज्ञानी अन्धा (परमात्मा को मिलने का) मार्ग नही जानता, जिससे वह बार-बार आवागमन (के चक्र) में पड़ा रहता है ॥५॥

गुर सेवा ते सदा सुखु पाइआ ॥
हउमै मेरा ठाकि रहाइआ ॥

गुरु की सेवा करने से सदा सुख प्राप्त होता है और अहम् व ममता को रोका जा सकता है। गुरु की शिक्षा द्वारा (ही)

गुर साखी मिटिआ अंधिआरा
बजर कपाट खुलावणिआ ॥६॥

(अज्ञान रूपी) अन्धकार मिटता है और (भ्रम रूपी) बज्र के समान द्वार (कपाट) खुल जाते हैं ॥६॥

हउमै मारि मंनि वसाइआ ॥
गुर चरणी सदा चितु लाइआ ॥
गुर किरपा ते मनु तनु निरमलु
निरमल नामु धिआवणिआ ॥७॥

गुरु की कृपा से जो अहंकार को मार कर मन को वशीभूत करता है और गुरु के चरणों मे सदा चित्त लगाता है, उसी का मन व तन निर्मल होता है तथा वही परमात्मा के निर्मल नाम अथवा निर्मल मन से नाम का ध्यान करता है ॥७॥

जीवणु मरणा सभु तुधै ताई ॥
जिसु बखसे तिसु दे वडिआई ॥
नानक नामु धिआइ सदा तूं
जमणु मरणु सवारणिआ ॥८॥
१॥२॥

(हे बन्दे !) जन्म-मरण (के दु:ख) सभी तेरे लिए ही हैं अथवा (हे प्रभु !) जीवन और मरण सब तुम्हारे ही अर्पण कर दिए हैं अथवा जन्म से लेकर मरण पर्यन्त आपका ही नाम स्मरण करूँगा, परन्तु जिस पर (प्रभु) कृपा करता है, उसे ही (नाम जपने की बडाई) देता है। हे नानक ! तू भी (हे बन्दे !) सदा नाम का ध्यान करके (अपने) जन्म-मरण को सवार ले (अर्थात् अपना मनुष्य जन्म सफल कर) ॥८॥१॥२॥

माझ महला ३॥

"हरि नाम की महिमा।"

मेरा प्रभु निरमलु अगम अपारा ॥
बिनु तकड़ी तोलै संसारा ॥
गुरमुखि होवै सोई बूझै
गुण कहि गुणी समावणिआ ॥१॥

मेरा प्रभु शुद्ध (स्वरूप), मन वाणी से परे—अगम्य और पार से रहित—अपार है। वह तराजू के बिना ही सारे ससार को तोलता है (अर्थात् सभी जीवों के शुभ कर्मों का विचार करता है)। जो गुरमुख है, वे ही समझते हैं, (हां) वे गुणनिधि परमात्मा के गुणो को गा कर (स्तुति कर के) 'उसी' मे समा जाते है ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
हरि का नामु मंनि वसावणिआ
जो सचि लागे से अनदिनु जागे
दरि सचै सोभा पावणिआ ॥१
॥रहाउ॥

मैं उन पर बलिहारी जाता हूँ, (हाँ अपना) जीव (भी) कुर्बान करता हूँ, जो मन मे (हरि के) नाम को बसाते है। जो सच्चे नाम (जपने) मे लगे हुए हैं, वे रात-दिन (माया से) जागृत रहते हैं (अर्थात् अविद्या की नीद मे नही सोते) और सच्चे (परमात्मा) के दरबार मे शोभा प्राप्त करते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

आपि सुणे तै आपे वेखै ॥
जिस नो नदरि करे सोई जनु लेखै ॥

(प्रभु) आप ही (हमारा हाल) सुनता है और आप ही (हमारे काम) देखता है, किन्तु जिस पर वह कृपा-दृष्टि करता है, वही

आपे लाइ लए सो लागै
गुरमुखि सचु कमावणिआ ॥२॥

लक्षित होते हैं (अर्थात् स्वीकृत, प्रमाणित होते हैं)। जिनको (प्रभु) आप (अपने नाम की सेवा में) लगाते हैं वे ही लगते हैं। (हाँ) वे ही गुरु की शिक्षा लेकर सच्च की कमाई करते हैं ॥२॥

जिसु आपि भुलाए
सु किथै हथु पाए ॥
पूरबि लिखिआ
सु मेटणा न जाए ॥
जिन सतिगुरु मिलिआ सेवडभागी
पूरै करमि मिलावणिआ ॥३॥

जिनको (प्रभु) आप भुला देता है, वे कहाँ हाथ डालेंगे? (अर्थात् किसका आश्रय लेंगे?) पूर्व (जन्म) का लिखा हुआ (लेख) मिटाया नहीं जा सकता। जिनको सत्गुरु मिला है, वे भाग्यशाली हैं क्योंकि पूर्ण भाग्य के कारण ही (गुरु) मिलता है ॥३॥

पेईअड़ै धन अनदिनु सुती ॥
कंति विसारी अवगणि मुती ॥
अनदिनु सदा फिरै बिललादी
बिनु पिर नीद न पावणिआ ॥४॥

जो (जीव-) स्त्री (इस ससार रूपी) पीहर मे रात-दिन (अज्ञान रूपी नींद के अन्दर) सोयी हुई है (अर्थात पति-परमेश्वर से विमुख हो रही है), उसे पति (-परमात्मा) ने भुला दिया है। वह अवगुणों के कारण त्यागी गई है (अर्थात् पति इसे पूछता तक नही)। वह रात-दिन सदा विलाप करती, भटकती रहती है, क्योकि प्रियतम के बिना (शान्ति रूपी) नीद को प्राप्त नही कर पाती ॥४॥

पेईअड़ै सुख दाता जाता ॥
हउमै मारि गुर सबदि पछाता ॥
सेज सुहावी सदा पिरु रावे
सचु सीगारु बणावणिआ ॥५॥

जिस (जीव-) स्त्री ने (इस संसार रूपी) पीहर मे सुख दाता (पति-परमेश्वर की महिमा) को जान लिया है और जिसने अहकार को मार कर गुरु के शब्द को पहचाना है, उसकी (अन्त करण रूपी) शय्या शोभनीय है क्योंकि वह सदा पति का आनन्द अनुभव करती है। उसी ने सच्चे (नाम के जाप) को शृ गार बनाया है (अर्थात् नाम जपने से वह सुशोभित होती है।) ॥५॥

लख चउरासीह जीअ उपाए ॥
जिस नो नदरि करे
तिसु गुरू मिलाए ॥
किलबिख काटि सदा जन निरमल
दरि सचै नामि सुहावणिआ ॥६॥

(परमात्मा ने) चौरासी लाख जीवो की योनियाँ उत्पन्न की हैं, (उनमे से) जिन पर 'वह' कृपा-दृष्टि करता है उन्हें गुरु के साथ मिलाता है। (वे) दास पापों (की मैल) को धोकर सदा पवित्र होते हैं और नाम जपने के कारण वे सच्चे परमात्मा के दरबार में शोभायमान होते हैं ॥६॥

लेखा मंगै ता किनि दीऐ ॥
सुखु नाही फुनि दूऐ तीऐ ॥
आपे बखसि लए प्रभु साचा
आपे बखसि मिलावणिआ ॥७॥

(हे भाई !) (जब कर्मों का) लेखा (हिसाब) मांगा जायेगा तब कौन (लेखा) दे सकेगा ? (अर्थात तुम्हें ही देना पड़ेगा)। (केवल नाम मे सुख है, नाम से ही छुटकारा है क्योकि) द्वैत में पुन: तीन गुणो (वाली माया) में (कोई) सुख नहीं है। जब सच्चा (परमात्मा) आप कृपा करता है और दया करके अपने साथ मिलाता है (तभी ही सच्चा सुख प्राप्त होता है) ॥७॥

आपि करे तै आपि कराए ॥
पूरे गुर कै सबदि मिलाए ॥
नानक नामु मिलै वडिआई
आपे मेलि मिलावणिआ ॥८॥२॥३॥

प्रभु आप कर्त्ता है (अर्थात जीव उत्पन्न करता है) और आप ही जीवों से कर्म कराता है और पूर्ण गुरु के शब्द द्वारा अपने साथ मिलाता है। हे नानक ! जिनको नाम (जपने) से बढ़ाई मिलती है, उन को अपने से मिलता है ॥८॥२॥३॥

माझ महला ३॥

"गुरमुखो की सुन्दर दशा और मनमुखों की दुर्दशा।"

इको आपि फिरै परछंना ॥
गुरमुखि वेखा ता इहु मनु भिंना ॥
त्रिसना तजि सहज सुखु पाइआ
एको मंनि वसावणिआ ॥१॥

(हे भाई !) वह एक (अद्वितीय परमात्मा) ही (भिन्न-भिन्न होकर विभिन्न रूपो में) गुप्त रूप से फिर रहा है (अर्थात् व्याप्त हो रहा है)। यदि गुरु की शिक्षा द्वारा 'उसको' देखेंगे तो यह मन ('उसके' प्रेम मे) द्रवीभूत (भीग) हो जाएगा और तृष्णा त्याग कर स्वाभाविक सुख की प्राप्ति होगी और एक ही (प्रभु) को मन में बसायेगा ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
इकसु सिउ चितु लावणिआ ॥
गुरमती मनु इकतु घरि आइआ
सचै रंगि रंगावणिआ ॥१॥ रहाउ॥

(हे भाई !) मैं बलिहारी जाता हूँ।' (हाँ) उन (प्यारे जीवो पर) कुर्बान जाता हूँ, जिन्हो ने एक (अद्वितीय परमात्मा) से चित्त लगाया है। जो जीव गुरु की मति ग्रहण करता है (उसका मन) एक घर (अर्थात् अपने स्वरूप) मे स्थित हुआ है और सच्चे (नाम के) रग मे रग गया है ॥१॥ रहाउ ॥

इहु जगु भूला तैं आपि भुलाइआ ॥
इकु विसारि दूजै लोभाइआ ॥
अनदिनु सदा फिरै भ्रमि भूला
बिनु नावै दुखु पावणिआ ॥२॥

हे प्रभु ! यह (जीव) जगत आपको भूला हुआ है, किन्तु इसे आपने ही भुलाया है, इसलिए वह एक (आप) को भुलाकर दूसरी ओर (ससार मे) लोभायमान हो रहा है और रात-दिन सदा भ्रम में भूला हुआ फिर रहा है तथा बिना नाम (चिन्तन) के दु:ख प्राप्त करता है ॥२॥

जो रंगि राते करम बिधाते ॥
गुर सेवा ते जुग चारे जाते ॥
जिसनो आपि देइ वडिआई
हरि कै नामि समावणिआ ॥३॥

हे भाई ! जो कर्म (फल) प्रदाता ईश्वर के (प्रेमी) रंग में अनुरक्त हैं, वे गुरु की सेवा करके चारों युगों में प्रसिद्ध होते हैं। जिनको प्रभु आप (नाम की) बढ़ाई देता है, वे ही हरि के नाम में समा जाते हैं (अर्थात् नाम जपकर हरि परमात्मा से अभेद हो जाते हैं) ॥३॥

माइआ मोहि हरि चेतै नाही ॥
जमपुरि बधा दुख सहाही ॥
अंना बोला किछु नदरि न आवै
मनमुख पापि पचावणिआ ॥४॥

(हे भाई !) जो (जीव) माया के मोह के कारण हरि का चिन्तन नही करते, वे यमपुरी में बँध कर दुःख सहन करेंगे। ऐसे अंधे और बहरे जीवों को कुछ भी दिखाई नहीं देता, वे (मनमुख) स्वयं पापों में जलते हैं तथा अपने साथियों को भी जलाते हैं ॥४॥

इकि रंगि राते
जो तुधु आपि लिव लाए ॥
भाइ भगति तेरै मनि भाए ॥
सतिगुरु सेवनि सदा सुखदाता
सभ इच्छा आपि पुजावणिआ ॥५॥

(हे प्रभु !) जो कोई विरले आपके (प्रेम-) रंग में रंगे हुए हैं, जिनको तुमने अपने प्रेम में लीन किया है, वे (तुम्हारी प्रेमा-भक्ति करके) तुम्हारे मन को अच्छे (प्रिय) लगे हैं। जो (जीव) सुखदाता सत्गुरु की सेवा करते हैं, उनकी सभी इच्छाएँ तुम आप ही पूर्ण करते हो ॥५॥

हरि जीउ तेरी सदा सरणाई ॥
आपे बखसहि दे वडिआई ॥
जमकालु तिसु नेड़ि न आवै
जो हरि हरि नामु धिआवणिआ
॥६॥

हे (प्यारे) हरि जी ! जो (जीव) सदा तुम्हारी शरण मे रहते हैं, उनको तुम आप कृपा करके (नाम की) बढ़ाई (महानता) प्रदान करते हो। हे हरि ! जो हरि का, (हाँ) हरि नाम का ध्यान करते हैं, यमकाल उनके निकट भी नही आता ॥६॥

अनदिनु राते जो हरि भाए ॥
मेरै प्रभि मेले मेलि मिलाए ॥
सदा सदा सचे तेरी सरणाई
तूं आपे सचु बुझावणिआ ॥७॥

हे हरि ! जो आपको भाते हैं (प्रिय लगते हैं अर्थात् भक्त) वे रात-दिन (सदा तुम्हारी भक्ति में) रगे हुए होते हैं। हे मेरे प्रभु ! आप स्वयं उनको सत्संग में मिलाकर अपने साथ मिलाते हो। हे सच्चे (स्वामी) ! जो सदा सर्वदा तुम्हारी शरण ग्रहण करते हैं, उनको आप स्वयं ही सत्य की सूझ-बूझ देते हो ॥७॥

जिन सचु जाता से सचि समाणे ॥
हरिगुण गावहि सचु वखाणे ॥
नानक नामि रते बैरागी
निजघरि ताड़ी लावणिआ
॥८॥३॥४॥

हे हरि ! जिन्हों (प्यारों) ने तुम सत्य परमात्मा (के स्वरूप) को जाना है, वे ही सत्य में समाये हुए हैं। वे आपके गुण गाते हैं और सत्य का ही व्याख्यान करते हैं। हे नानक ! जो नाम (रंग में रंगे हुए हैं अथवा नाम के द्वारा आप में अनुरक्त हैं, वे वैराग्यवान हैं, और वे अपने घर (स्वरूप) में समाधि लगाते हैं ॥८॥३॥४॥

माझराग महला ३॥

"मरे हुए को भला काल फिर कैसे मार सकता ?"

सबदि मरै सु मुआ जापै ॥
कालु न चापै दुखु न संतापै ॥
जोती विचि मिलि जोति समाणी
सुणि मन सचि समावणिआ ॥१॥

जो (जीव)गुरु के शब्द द्वारा (जीते जी अहकारयुक्त जीवन से) मर जाता है, वह (वास्तव में) मरा हुआ समझा जाता है, उसे मृत्यु (काल) दबा नही सकती और न ही दुःख उसे संतप्त कर सकता है। उसकी ज्योति (आत्मा) परम ज्योति (परमात्मा) में समा जाती है। हे (मेरे) मन! तुम्हें (भी गुरु की शिक्षा) सुनकर सच्चे परमात्मा में समाहित होना चाहिए ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
हरि कै नाइ सोभा पावणिआ ॥
सतिगुरु सेवि सचि चितु लाइआ
गुरमती सहजि समावणिआ ॥१॥ रहाउ ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) (मैं अपना) जीव (भी) उन पर कुर्बान करता हूँ, जो हरि के नाम (जपने) के कारण शोभा प्राप्त करते हैं। वे सत्गुरु की सेवा करके सच्चे परमात्मा से चित्त लगाते हैं और गुरु की मति लेकर सहज ही (हरि में) समा जाते हे अथवा सहजावस्था में समा जाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

काइआ कची कचा चीरु हंढाए ॥
दूजै लागी महलु न पाए ॥
अनदिनु जलदी फिरै दिनु राती
बिनु पिर बहु दुखु पावणिआ ॥२॥

(जीवात्मा की स्थूल देह कच्ची (विनश्वर) है और इस कच्चे (जीर्ण-शीर्ण) वस्त्र को पहन रहा है। (जीव-स्त्री पति-प्रभु का परित्याग करके) दूसरी ओर (द्वैत-भाव में) रुचि होने के कारण (ईश्वर के) महल (स्वरुप) को प्राप्त नहीं कर सकती। रात-दिन (तृष्णा या ममता की अग्नि मे) जलती-फिरती है और बिना प्रियतम के दिन-रात बहुत दुःख प्राप्त करती है ॥२॥

देही जाति न आगै जाए ॥
जिथै लेखा मंगीऐ
तिथै छुटै सचु कमाए ॥
सतिगुरु सेवनि से धनवंते
ऐथै ओथै नामि समावणिआ ॥३॥

यह (सुन्दर) देही और (ऊच्ची) जाति आगे (परलोक में) नहीं जाएगी (अर्थात शरीर और जाति-अभिमान की आगे कोई पूछ नहीं होती, मरने के पश्चात् यही रह जाते हैं)। जहाँ जीव से लेखा माँगा जाता है, वहाँ वही छूट जाते हैं (मुक्त हो जाते हैं) जिन्होंने सत्य की कमाई की है। जो सत्गुरु की सेवा करते हे वे धन्य है अथवा धनी हैं। वे यहाँ (लोक मे) और वहाँ (परलोक में) नाम के द्वारा नामी में समाये हुए होते है ॥३॥

भै भाइ सीगारु बणाए ॥
गुर परसादी महलु घरु पाए ॥
अनदिनु सदा रवै दिनु राती
मजीठै रंगु बणावणिआ ॥४॥

(जो जीव-स्त्री-पति के) भय और प्रेम का शृगार करती है, वह गुरु की कृपा से (पति-परमेश्वर का) स्वरूप हृदय में ही प्राप्त करती है। वह पक्के मजीठ रंग (नाम की पौशाक) बनाकर (पहनकर) रात-दिन सदा निरन्तर (पति का) प्यार शय्या पर प्राप्त करती है ॥४॥

सभना पिरु वसै सदा नाले ॥
गुरपरसादी को नदरि निहाले ॥
मेरा प्रभु अति ऊचो ऊचा
करि किरपा आपि मिलावणिआ
॥५॥

चाहे पति-परमेश्वर सभी के साथ सदा रहता है, फिर भी कोई विरले (प्यार गुरमुख ही) गुरु की कृपा से 'उसे' देखते हैं। मेरा प्रभु ऊँचे से भी अति ऊँचा है (सर्वोच्च है)। 'वह' जब कृपा करता है, तभी अपने साथ मिला लेता है ॥५॥

माइआ मोहि इहु जगु सुता ॥
नामु विसारि अंति विगुता ॥
जिस ते सुता सो जागाए ॥
गुरमति सोझी पावणिआ ॥६॥

माया के मोह के कारण यह(जीव)जगत(अज्ञान रूपी नींद में) सोया हुआ है और (हरि के अमृत रूपी) नाम को भूल कर अन्तत: दुखी (नाश) होता है। जिस (परमात्मा) ने खोटे-कर्मों के कारण (जीव) को सुला दिया है, 'वह' जब कृपा करके जगाता है, तभी गुरु की मति से उसे सूझ-बूझ प्राप्त होती है ॥६॥

अपिउ पीऐ सो भरमु गवाए ॥
गुर प्रसादि मुकति गति पाए ॥
भगती रता सदा बैरागी
आपु मारि मिलावणिआ ॥७॥

जो (जीव)(नाम रुपी) अमृत का पान करता है, वह भ्रम को नाश कर देता है और गुरु की कृपा से मुक्ति की अवस्था (गति) प्राप्त कर लेता है। वह सर्वदा वैराग्यवान हो कर (हरि) भक्ति मे रंगा रहता है और अहम् भाव(अहंकार) को मारकर (अपने आप को हरि से) मिला लेता है ॥७॥

आपि उपाए धंधै लाए ॥
लख चउरासी
रिजकु आपि अपड़ाए ॥
नानक नामु धिआइ सचि राते
जो तिसु भावै सु कार
करावणिआ ॥८॥४॥५॥

(प्रभु) आप ही (जीवों को) उत्पन्न करके (विभिन्न काम) धन्धो मे लगाता और चौरासी लाख(योनियों के जीवों को)आहार स्वयं पहुँचाता है। हे नानक! जो नाम का ध्यान करके सच्चे परमात्मा में रंगे रहते हैं, वे फिर वही काम करते हैं, जो 'उसे' अच्छा लगता(भाता) है ॥८॥ ९॥५॥

माझ महला ३ ॥

"जिन्होंने बसाई मन में गुरुबाणी उनकी ज्योति
परम ज्योति में समाई।"

अंदरि हीरा लालु बणाइआ ॥
गुर कै सबदि परखि परखाइआ ॥
जिन सचु पलै सचु वखाणहि
सचु कसवटी लावणिआ ॥१॥

इस (विनश्वर कच्चे शरीर) के अन्दर रचनहार प्रभु ने (नाम अथवा ज्योति रूपी) हीरा और लाल रखा हुआ है, किन्तु किसी विरले गुरमुख ने ही गुरु के शब्द द्वारा (उस हीरे लाल की) परख करके सत्संगति में उसकी परख करवाई है। (अर्थात् निश्चय किया है) ॥ ॥

हउ वारी जीउ वारी
गुर की बाणी मंनि वसावणिआ ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव (भी) उन (गुर-मुख प्यारों) के ऊपर कुर्बान करता हूँ, जो गुरुवाणी को अपने मन

अंजन माहि निरंजनु पाइआ
जोती जोति मिलावणिआ ॥१॥
रहाउ॥

में बसाते हैं और माया में रह कर माया से रहित निरंजन परमात्मा को प्राप्त करते हैं तथा अपनी ज्योति (परम) ज्योति के साथ मिला लेते हैं ॥॥१॥ रहाउ ॥

इसु काइआ अंदरि बहुतु पसारा ॥
नामु निरंजनु अति अगम अपारा ॥
गुरमुखि होवै सोई पाए
आपे बखसि मिलावणिआ ॥२॥

इस शरीर के अन्दर (एक ओर तो माया का) बहुत (ही) विस्तार है तथा (दूसरी ओर) अति अगम्य अपार और निरंजन प्रभु का (निश्कलक) नाम भी भीतर ही है, (किन्तु जिज्ञासु को प्राप्त कैसे हो ?) जो गुरु की शरण में आता है, वही (निरंजन नाम को) प्राप्त करता है (वस्तुत) प्रभु आप ही (नाम की) कृपा करके अपने साथ मिलाता है ॥२॥

मेरा ठाकुर सचु द्रिड़ाए ॥
गुरपरसादी सचि चितु लाए ॥
सचो सचु वरतै सभनी थाई
सचे सचि समावणिआ ॥३॥

मेरा ठाकुर जिसको सत्य का निश्चय कराता है, वही गुरु की कृपा से सत्य मे चित्त लगाता है। 'वह' सत्य-स्वरूप प्रभु सभी जगह व्याप्त हो रहा है और वह सच्चे प्रभु की संगति मे सत्यरूप होकर 'उसमे' समाया रहता है ॥३॥

बेपरवाहु सचु मेरा पिआरा ॥
किलविख अवगण काटणहारा ॥
प्रेम प्रीति सदा धिआईऐ
भै भाइ भगति द्रिड़ावणिआ ॥४॥

मेरा प्यारा (प्रभु) सत्य स्वरूप है और (सदा) बेपरवाह है। 'वह' अवगुणो और दु ख और पापो को काटने वाला है। 'उसको' प्रेमी अति प्रेम से सदा स्मरण करते हैं और ईश्वर का भय तथा प्रेम-भक्ति स्वय करते हैं और दूसरों को भी दृढ़ कराते हैं ॥४॥

तेरी भगति सची जे सचे भावै ॥
आपे देइ न पछोतावै ॥
सभना जीआ का एको दाता
सबदे मारि जीवावणिआ ॥५॥

हे प्रभु ! तुम्हारी भक्ति सच्ची है, परन्तु प्राप्त तभी होती है, जब आपको भक्ति सच्चे मन से अच्छी लगती है। (हे प्रभु !) आप स्वय (भक्त को) भक्ति का दान देकर पश्चात्ताप नही करते (क्यों कि जिनको अधिकारी समझते हो उनको ही देते हो)। सभी जीवों का (एक ही) दाता है। तू स्वय (गुरु) शब्द द्वारा गुरमुखो को ससार की ओर से मन मारकर (अर्थात हटा कर) अपनी ओर लाकर जीवन प्रदान करते हो ॥५॥

हरि तुधु बाझहु मै कोई नाही ॥
हरि तुधै सेवी तै तुधु सालाही ॥
आपे मेलि लैहु प्रभ साचे
पूरै करमि तूं पावणिआ ॥६॥

हे हरि ! तुम्हारे बिना (ससार में मेरा) और कोई (सहारा) नहीं है। (अभिलाषा है कि) हे हरि ! (मैं) तुम्हारी सेवा करूँ और तुम्हारी सही स्तुति करूँ। हे सच्चे प्रभु ! मुझे तू स्वयं आकर अपने साथ मिला ले। पूर्ण (उत्तम) भाग्य से ही आप प्राप्त हो सकते हो ॥६॥

मै होरु न कोई तुधै जेहा ॥
तेरी नदरि सीझसि देहा ॥
अनदिनु सारि समालि हरि राखहि
गुरमुखि सहजि समावणिआ ॥७॥

(हे प्रभु !) मेरे को तुम्हारे जैसा और कोई(दयालु)प्रतीत नहीं होता। तुम्हारी कृपा से ही इस (मनुष्य) देही का कल्याण होता है जब जीव स्वीकृत होता है। हे हरि ! (तू) रात-दिन अपने जीवों की देख भाल और रक्षा करते हो, गुरमुख स्वाभाविक ही आपमें समाये हुए हैं ॥७॥

तुधु जेवडु मै होरु न कोई ॥
तुधु आपे सिरजी आपे गोई ॥
तूं आपे ही घड़ि भंनि सवारहि
नानक नामि सुहावणिआ ॥८॥
५॥६॥

हे प्रभु ! मुझे तुम्हारे जैसा महान और कोई नहीं दिखाई देता। तुम आप ही सृष्टि उत्पन्न करते हो और तू आप ही लय (नष्ट) करते हो। तू आप ही (सृष्टि की रचना) करते हो, स्वयं ही पालना करते हो और स्वय ही संहार करते हो। (अर्थात तू ही सृजनहार, पालनहार तथा संहारक हो)। हे नानक ! (हरि) नाम के द्वारा ही (जीव) शोभायमान होता है ॥८॥५॥६॥

माझ महला ३॥

"जिन्होने आराधा एककार, उनके अन्दर से गया घोर अंधकार"

सभ घट आपे भोगणहारा ॥
अलखु वरतै अगम अपारा ॥
गुर कै सबदि मेरा हरि
प्रभु धिआइऐ
सहजे सचि समावणिआ ॥१॥

(हे भाई !) सभी जीवो में (सभी जगह) प्रभु आप (ही) भोगने वाला है। 'वह' अलक्ष्य, अगम्य और अपार सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है। गुरु के शब्द द्वारा मेरे हरि-प्रभु का ध्यान करना चाहिए। जिन्होने ध्यान किया है, वे सहज ही सत्य स्वरूप ईश्वर में समा गये हैं ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
गुर सबदु मंनि वसावणिआ ॥
सबदु सूझै ता मन सिउ लूझै
मनसा मारि समावणिआ ॥१॥
रहाउ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) अपने जीव को (भी) उनके ऊपर कुर्बान करता हूँ, जिन्होने गुरु के शब्द (रूप नाम) को अपने मन मे बसाया है। (हे भाई !) जिनको शब्द की सूझ बूझ हो जाती है, वे मन (पर सयम करने के लिए विकारो) से लडते हैं और मन की वासनाओ को मार कर (अलक्ष्य, अगम्य, अपार प्रभु मे) समा जाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

पंच दूत मुहहि संसारा ॥
मनमुख अंधे सुधि न सारा ॥
गुरमुखि होवै सु अपणा घरु राखै
पंच दूत सबदि पचावणिआ ॥२॥

(काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार) पाच ये (माया के) दूत (संसार के जीवों को) लूट रहे हैं, किन्तु (ज्ञानहीन) अंधे मनमुखों को होश एवं पता (बोध) नही है। जिन्होंने गुरु (शब्द को मन में टिका कर रखा है। वे गुरमुख प्यारे हो) अपने (अन्तः करण रूपी) घर को (पांच दूतों के लूटने से बचाकर) रखते हैं वे शब्द के द्वारा पांच दूतों को जला देते है ॥२॥

इकि गुरमुखि सदा सचै रंगि राते ॥ सहजे प्रभु सेवहि अनदिनु माते ॥ मिलि प्रीतम सचे गुण गावहि हरि दरि सोभा पावणिआ ॥३॥	(अत:) एक गुरमुख (जन ही ऐसे) हैं, जो सदा सत्य स्वरूप परमात्मा के (प्रेम) रंग मे रगे रहते हैं और रात-दिन (प्रेम में) मस्त होकर स्वाभाविक (सहज) ही प्रभु की सेवा करते हैं। वे सच्चे प्रियतम से मिलकर गुण गाते हैं तथा हरि के दरबार में शोभा प्राप्त करते हैं ॥३॥
एकम एकै आपु उपाइआ ॥ दुबिधा दूजा त्रिबिधि माइआ ॥ चउथी पउड़ी गुरमखि ऊची सचो सचु कमावणिआ ॥४॥	अद्वितीय एक परमेश्वर ने आप (ही) (इस विस्तृत जगत को) उत्पन्न किया है, फिर दूसरी द्वैत-भावना वाली—तीन गुणो (सत्, रज् व तम्) वाली माया (भी उत्पन्न की है)। गुरमुखो की चौकी पौडी (तुरीय पद) जो ऊँची है, (वहाँ गुरमुख ही पहुचते हैं)। क्योकि उन्होने (तन, मन) मे केवल सत्य ही सत्य कमाया है ॥४॥
सभु है सचा जे सचे भावै ॥ जिनि सचु जाता सो सहजि समावै ॥ गुरमुखि करणी सचे सेवहि साचे जाइ समावणिआ ॥५॥	(हे भाई!) यदि सत्य स्वरूप परमात्मा को भा जाये (अच्छा लग जाय), तो (जीव के) सभी कर्त्तव्य सफल (सच्चे) हो जाते हैं। जिन्होंने सच्चे परमात्मा को जाना है, वे सहज (अर्थात ब्रह्म) में समा जाते हैं। गुरमुखो का यही कर्त्तव्य (काम) है कि वे सच्चे परमात्मा की सेवा करते हैं और 'उसी' सत्य में समा जाते हैं॥५॥
सचे बाझहु को अवरु न दूआ ॥ दूजै लागि जगु खपि खपि मूआ ॥ गुरमुखि होवै सु एको जाणै एको सेवि सुखु पावणिआ ॥६॥	(हे भाई!) सत्य स्वरूप परमात्मा के बिना दूसरा कोई (सत्य) नही हैं। द्वैत-भाव में लग कर (सारा जीव) जगत (माया के मोह में फँस कर) बार-बार दुखी होकर मर गए। जो गुरमुख होता है पसारे में एक को ही जानता हो, फिर 'उस' एक की ही सेवा करके सुख पाने वाला हो जाता है ॥६॥
जीअ जंत सभि सरणि तुमारी ॥ आपे धरि देखहि कची पकी सारी ॥ अनदिनु आपे कार कराए आपे मेलि मिलावणिआ ॥७॥	(हे प्रभु!) जो भी जीव-जन्तु हैं, वे सभी तुम्हारी शरण (अर्थात तुम्हारे वश) में हैं और (यह ससार चौपड़ का खेल है जहाँ) तुम आप (हरि) (मनमुख रूपी) कच्ची और (गुरमुख रूपी) पक्की नरदो (गोटियो) को रखकर देख रहे हो (अर्थात बुरे और भले जीवों के कर्म आपसे छिपे हुए नही हैं)। तुम आप (हरि) रात-दिन (जीवो से) कर्म कराते हो, (किन्तु गुरमुख रूपी पक्की नरदों को) तुम आप ही सत्संग मे मिलाकर अपने साथ मिला लेते हो ॥७॥
तूं आपे मेलहि वेखहि हदूरि ॥ सभ महि आपि रहिआ भरपूरि ॥	(हे प्रभु!) जिन (गुरमुखों) को तुम आप सत्सग मे मिलाते हो, वे आपको प्रत्यक्ष देखते हैं और उनको पूर्ण निश्चय है कि) तुम आप सभी मे (सभी जगह) परिपूर्ण हो रहे हो। हे नानक! (तू) आप

नानक आपे आपि वरतै
गुरमुखि सोझी पावणिआ ॥८॥
६॥७॥

अपने आप हरि (सर्व में) व्यापक हो रहे हो, (किन्तु यह रहस्य केवल) गुरु की शरण मे आए हुए (गुरमुख) को ही प्राप्त होता है ॥८॥६॥७॥

माझ महला ३॥

"अमृत रूपी वाणी है तो मीठा, पर आया स्वाद उसे जिसने चखकर देखी।"

अंमृत बाणी गुर की मीठी ॥
गुरमुखि विरलै किनै चखि डीठी ॥
अंतरि परगासु महा रसु पीवै
दरि सचै सबदु वजावणिआ ॥१॥

गुरु की अमृत (रूपी) वाणी मीठी है किन्तु किसी विरले ने, जो गुरमुख है, उसे चखकर देखा है (अर्थात् धारण किया है)। इस महारस को पीने से अन्तर्मन मे (नाम का) प्रकाश होता है और सच्चे परमात्मा के द्वार रूपी सत्सग मे वह शब्द बजता (अर्थात् कीर्तन करता) है ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
गुर चरणी चितु लावणिआ ॥
सतिगुरु है अंमृतसरु साचा
मनु नावै मैलु चुकावणिआ ॥१॥
रहाउ॥

मैं बलिहारी हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव (भी) उनके ऊपर कुर्बान करता हूँ, जिन (प्यारों ने) गुरु के चरणो के साथ चित्त लगाया है, (नाम) अमृत का सच्चा सरोवर है और जो (भाग्यशाली जीव अपने) मन को इसमे स्नान कराते हैं (धोते हैं), वे (अहकार रूपी) मैल को उतार देते हैं (भाव गुरु शब्द की कमाई करनी है, गुरु रूप अमृत सरोवर में स्नान करना) ॥१॥रहाउ॥

तेरा सचे किनै अंतु न पाइआ ॥
गुर परसादि किनै विरलै
चितु लाइआ ॥
तुधु सालाहि न रजा कबहूं
सचे नावै की भुख लावणिआ
॥ २ ॥

हे सत्य स्वरूप परमात्मा ! तेरा किसी ने भी अन्त नही प्राप्त किया। गुरु की कृपा से किसी विरले ने ही तुम्हारे चित्त लगाया है (हे प्रभु !) आपकी स्तुति करता हुआ कभी भी मैं तृप्त नही होऊँगा, क्योंकि आपने ही सच्चे नाम की भूख मुझे लगाई है ॥ ॥

एको वेखा अवरु न बीआ ॥
गर परसादी अंमृत पीआ ॥
गुर कै सबदि तिखा निवारी
सहजे सूखि समावणिआ ॥ ३ ॥

गुरु की प्रसन्नता से जिन्हों (गुरमुख प्यारों) ने अमृत (रूपी नाम) का पान किया है, वे एक अद्वितीय परमात्मा को ही (सर्व में) देखते हैं, उनको और कोई दूसरा दिखाई नही देता जिन्होने गुरु के शब्द द्वारा तृष्णा रूपी प्यास को निवृत किया है, वे स्वाभाविक ही (आत्मिक) सुख में समाते हैं (अर्थात् सुखी और प्रसन्न रहते हैं) ॥३॥

रतनु पदारथु पलरि तिआगै ॥
मनमुखु अंधा दूजै भाइ लागै ॥
जो बीजै सोई फलु पाए
सुपनै सुखु न पावणिआ ॥ ४ ॥

मनमुखों ने (नाम के) रत्न रूपी (अमूल्य) पदार्थ को पुआल जैसा व्यर्थ समझ कर त्याग दिया है क्योंकि वे (विवेक और वैराग्य रूपी आँखों से विहीन होने के कारण) अंधे हैं और द्वैत-भावना में (सदा) लगे रहते हैं। जो (मन्द कर्म रूपी) बीज बीजते हैं, वे (दु ख रूपी) फल प्राप्त करते हैं। वे स्वप्न में भी सुख नहीं प्राप्त करते हैं ॥४॥

अपनी किरपा करे सोई जनु पाए ।
गुर का सबदु मनि वसाए ॥
अनदिनु सदा रहै भै अंदरि
भै मारि भरमु चुकावणिआ ॥५॥

जिन पर प्रभु अपनी कृपा करता है,वे ही दास गुरु प्राप्त करते हैं और गुरु के शब्द (नाम) को मन में बसाते हैं तथा रात-दिन, (हाँ) सदा (गुरु के) भय के अन्दर रहते हैं एव (यम के) भय को मारकर भ्रम को दूर कर देते हैं ॥५॥

भरमु चुकाइआ सदा सुखु पाइआ
गुर परसादि परम पद पाइआ ॥
अंतरु निरमलु निरमल बाणी
हरिगुण सहजे गावणिआ ॥ ६ ॥

जिन्होंने भ्रम को दूर किया है, वे ही सदैव सुख प्राप्त करते हैं और गुरु की प्रसन्नता से (नाम का) परम पद (मोक्ष) प्राप्त करते हैं। जो (गुरु को प्रसन्न करके परम पद प्राप्त करते हैं) वे स्वाभाविक ही हरि के गुण गाते रहते हैं, उनका अन्तःकरण निर्मल है और उनकी वाणी भी शुद्ध एवं पवित्र है ॥६॥

सिमृति सासत बेद वखाणै ॥
भरमे भूला ततु न जाणै ॥
बिनु सतिगुर सेवे सुखु न पाए
दुखो दुखु कमावणिआ ॥ ७ ॥

किन्तु जिन्होने भ्रम दूर करके अन्त करण को निर्मल नहीं किया है, वे चाहे स्मृतियाँ, (छ) शास्त्र और (चार) वेदों का व्याख्यान् भी करते हो, तो भी वे भ्रम में भूले हुए हैं और सार वस्तु (यथार्थ तत्त्व) को नहीं जानते (क्योंकि वे त्रिगुणात्मक ससार का प्रतिपादन करते हैं। तुर्यावस्था की प्राप्ति तो गुरु द्वारा ही होती है)। बिना सत्गुरु की सेवा के सुख प्राप्त नही होता, केवल दु ख ही दु ख कमाते (प्राप्त करते) है ॥७॥

आपि करे किसु आखै कोई ॥
आखणि जाईऐ जे भूला होई ॥
नानक आपे करे कराए
नामे नामि समावणिआ ॥८ ॥
७॥८॥

(प्रभु) आप (ही सब कुछ) करता है। कोई 'उसे' (यह नही) कह सकता (कि इस तरह से कर क्योंकि 'उससे' बडा और कोई नही है)। 'उसे' कहने का साहस वही कर सकता है जो (भ्रम में) भूला हुआ है अथवा कहा उसी को जाता है, यदि 'वह' भूला हुआ हो। हे नानक! 'वह' आप (ही जीवों को) उत्पन्न करता है और आप ही (जीवों से कर्म भी) कराता है, किन्तु जो नाम जपते हैं, वे नामी परमात्मा में समा जाते है ॥८॥७॥८॥

माझ महला ३ ॥

"यदि संसार-सागर से पार उतरना चाहो तो सदा नाम जपो।"

आपे रंगे सहजि सुभाए ॥
गुर कै सबदि हरिरंगु चड़ाए ॥
मनु तनु रता रसना रंगि चलूली
भै भाइ रंगु चड़ावणिआ ॥ १ ॥

जिनको प्रभु आप (अपने प्रेम) रंग में रंगता है, वे सहज ही शोभायमान हैं, क्योंकि गुरु के शब्द द्वारा हरि उन पर अपना (नाम का) रंग चढ़ाता है(अर्थात अपने प्रेम की बख्शिश करता है)। उनका मन और तन (प्रेम में) अनुरक्त हैं, उनकी रसना भी(प्रेम) सुर्ख (गाढे) रंग मे रंगी हुई है तथा उन पर भय एवं प्रेम का रंग चढा हुआ है (अर्थात उनको हरि का डर और प्यार भी है)।।१।।

हउ वारी जीउ वारी
निरभउ मंनि वसावणिआ ॥
गुर किरपा ते हरि
निरभउ धिआइआ
बिखु भउजलु सबदि तरावणिआ
॥ १ ॥ रहाउ ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) अपना जीव (भी) उन पर क़ुर्बान करता हूँ, जिन्होने निर्भय (परमेश्वर) को (अपने) मन में बसाया हैं और गुरु की कृपा से निर्भय हरि का ध्यान करते हे तथा औरों को भी उपदेश देकर विषवत्-सागर से तार लेते हे ॥१॥ रहाउ ॥

मनमुख मुगध करहि चतुराई ॥
नाता धोता थाइ न पाई ॥
जेहा आइआ तेहा जासी
करि अवगण पछोतावणिआ ॥२॥

अपने मन के पीछे चलने वाले (मनमुख) मूढ़ हे, क्योंकि (प्रभु से) चतुराई करते हे, इसलिए उनके तीर्थ स्नानादि (कर्म) सफल (स्वीकार) नही होते। (संसार मे) जैसे (खाली हाथ) आए (नाम के बिना वैसे (ही खाली हाथ) चले जाते है। वे अवगुणों के कारण पश्चात्ताप करते हे ॥२॥

मनमुख अंधे किछू न सूझै ॥
मरणु लिखाइ आए नही बूझै ॥
मनमुख करम करे नही पाए
बिनु नावै जनमु गवावणिआ ॥३॥

मनमुख अन्धे(अज्ञानी) हैं, उनको कुछ भी नही सूझता (समझ आता)। वे यह भी नही समझते कि(जीव)जन्म के समय मरना भी लिखाकर (मृत्युलोक मे) आए हैं। मनमुख (हरिनाम के बिना) (अनेक प्रकार के) (सकाम) कर्म भी करते हैं, जिससे वे (परमात्मा को) नही प्राप्त करते। इसलिए बिना नाम प्राप्त किए वे अपना (अमूल्य) जन्म व्यर्थ ही गवाँ देते हैं ॥३॥

सचु करणी सबदु है सारु ॥
पूरै गुरि पाईऐ मोख दुआरु ॥
अनदिनु बाणी सबदि सुणाए
सचि राते रंगि रंगावणिआ ॥४॥

(जिन)(प्यारो)का रहन-सहन(ग्रहस्थ मे)श्रेष्ठ उपदेश के कारण सत्य है, वे पूर्ण गुरु के द्वारा मुक्ति का द्वार प्राप्त करते हैं। वे रात-दिन (सत्गुरु का नाम)वाणी और उपदेश (लोगों को) सुनाते हैं और वे सच्चे परमात्मा के (प्रेम) रंग में स्वयं भी रंगे हुए हैं और औरों को भी रंगते है ॥४॥

रसना हरि रस राती रंगु लाए ॥
मनु तनु मोहिआ सहजि सुभाए ॥
सहजे प्रीतमु पिआरा पाइआ
सहजे सहजि मिलावणिआ ॥५॥

(प्रेमी जनों की) रसना हरि के रस (आनन्द) में रंगी रहती है (अर्थात् वे रसना से हरि नाम उच्चारण करते रहते हैं) क्योंकि उन्हें परमात्मा का प्रेम लगा हुआ है। उनका मन और तन स्वाभाविक (सहस) ही (हरि में) मोहित रहता है। वे सहज ही (अपना) प्यारा प्रियतम प्राप्त करते हैं और सहज ही परमात्मा में या सहज पद में मिल जाते हैं ॥५॥

जिसु अंदरि रंगु सोई गुण गावै ॥
गुर के सबदि सहजे
सुखि समावै ॥
हउ बलिहारी सदा तिन विटहु ॥
गुर सेवा चितु लावणिआ ॥६॥

जिनके अन्दर (हृदय) में (हरि का) प्रेम है, वे ही 'उसके' गुण गाते हैं। वे गुरु का शब्द ग्रहण करके सहज ही सुख में समाये हुए हैं। मैं सदा उनके ऊपर बलिहारी जाता हूँ, जो गुरु की सेवा चित्त लगाकर करते हैं ॥६॥

सचा सचो सचि पतीजै ॥
गुर परसादी अंदरु भीजै ॥
बैसि सुथानि हरिगुण गावहि
आपे करि सति मनावणिआ ॥७॥

निश्चय ही सत्य स्वरूप परमात्मा सच्चे (गुरमुखों) की परीक्षा लेता है अथवा (परमात्मा जो) सहज ही सत्य हैं (अर्थात सत्य स्वरूप है) वह सत्य (नाम) मे ही विश्वास करता है। वे गुरु की प्रसन्नता से हृदय में (प्रेम-रस से) भीगे (लबालब) रहते हैं। वे श्रेष्ठ स्थान (सत्यसगति) मे बैठकर हरि के गुण गाते हैं तथा आप ही हरि उनको निश्चय करवाता है ॥७॥

जिसनो नदरि करे सो पाए ॥
गुर परसादी हउमै जाए ॥
नानक नामु वसै मन अंतरि
दरि सचै सोभा पावणिआ ॥८॥
८॥९॥

जिन पर हरि कृपा-दृष्टि करता है, वे ही 'उसको' प्राप्त करते हैं। गुरु की कृपा से उनकी अहंता ममता चली जाती है। हे नानक ! उनके अन्दर (मन में) नाम का निवास होता है और वे सच्ची दरबार में शोभा प्राप्त करते है (अर्थात वे मान-प्रतिष्ठा के साथ जाते हैं) ॥८॥८॥९॥

माझ महला ३॥

"साधु-संगति मे मिलके अपने आप को पहचानो।"

सतिगुरु सेविऐ वडी वडिआई ॥
हरि जी अचिंतु वसै मनि आई ॥
हरि जीउ सफलिओ बिरखु है
अमृत जिनि पीता तिसु तिखा
लहावणिआ ॥ १ ॥

सत्गुरु की सेवा करने से (जिज्ञासु को) महान बड़ाई यह मलती है कि अकस्मात् (सहसा) ही अथवा चिन्ता से रहित अर्थात आनन्द रूप (अचिंत) हरि जी मन में आकर निवास करता है। हरि जी सफल वृक्ष है (जिसका फल नाम रूप अमृत है।), जिन्होंने यह अमृत को पिया है, उनकी तृष्णा रुपी प्यास बुझ जाती है ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
सचु संगति मेलि मिलावणिआ ॥
हरि सत संगति आपे मेलै
गुर सबदी हरिगुण गावणिआ ॥१
॥रहाउ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव (भी) उन के ऊपर कुर्बान करता हूँ, जो मुझे (सन्तों के) सच्चे मेल (सत्संगति) में मिलाते हैं अथवा जो (प्यारे) अपने को सत्संगति के मेल में मिलाते हैं। (वस्तुतः) हरि (जी) आप (अधिकारी पुरुष को) सत्संगति में मिलाता है जहाँ गुरु का उपदेश ग्रहण करके हरि के गुण गाये जाते हैं ॥१॥रहाउ॥

सतिगुरु सेवी सबदि सुहाइआ ॥
जिनि हरि का नामु
मंनि वसाइआ ॥
हरि निरमलु हउमै मैलु गवाए
दरि सचै सोभा पावणिआ ॥२॥

जिन्होने सत्गुरु की सेवा शब्द के द्वारा की है (अर्थात गुरु-शब्द की कमाई करके) हरि-नाम को मन में बसाया है, वे शोभायमान होते हैं। (हरि) मन में बसते ही वे अहंकार की मैल को निवृत कर देते हैं क्योंकि हरि आप मल से रहित है। (ऐसे निर्मल प्यारे हरि की) सच्ची दरबार मे वे शोभा प्राप्त करते हैं ॥२॥

बिनु गुर नामु न पाइआ जाइ ॥
सिध साधिक रहे बिललाइ ॥
बिनु गुर सेवे सुखु न होवी
पूरै भागि गुरु पावणिआ ॥३॥

(नाम प्राप्ति के लिये) सिद्ध और साधक (आदि) (अनेक प्रकार के) *यत्न (विरलाप) करते हैं, फिर भी बिना गुरु (शब्द* की सेवा) के नाम प्राप्त नहीं होता। बिना सत्गुरु की सेवा के सुख (भी) प्राप्त नही होता, किन्तु ऐसा गुरू उत्तम भाग्य से (ही) प्राप्त होता है ॥३॥

इहु मनु आरसी
कोई गुरमुखि वेखै ॥
मोरचा न लागै जा हउमै सोखै ॥
अनहत बाणी
निरमल सबदु वजाए
गुर सबदी सचि समावणिआ ॥४॥

यह मन दर्पण है, कोई विरला गुरमुख ही (गुरु की कृपा से इस दर्पण में झाक कर अपने आत्मिक जीवन को) देखता है। जो अहकार (रुप नमी) को सुखा देता है (अर्थात दूर कर देता है) फिर उसके मन (मन रुपी दर्पण) पर जग (कभी) नही लगती (अर्थात मन निर्मल हो जाता है)। (गुरमुख) निर्मल वाणी, अनहत शब्द को (निरन्तर अपने अन्दर) बजाता है (इस प्रकार) गुरु के शब्द द्वारा वह सच्चे परमात्मा में समा जाता है ॥४॥

बिनु सतिगुर
किहु न देखिआ जाइ ॥
गुरि किरपा करि
आपु दिता दिखाइ ॥
आपे आपि आपि मिलि रहिआ
सहजे सहजि समावणिआ ॥५॥

बिना सत्गुरु (की कृपा) के 'वह' (हरि) किसी प्रकार भी देखा नही जा सकता। (हाँ) जब गुरु ने कृपा की तब हरि ने आप आकर हमें दर्शन दिया। फिर हरि अपने आप ही अपने स्वरुप के साथ हममें मिल गया और स्वाभाविक ही सहजावस्था अथवा परमात्मा में समा गये ॥५॥

गुरमुखि होवै सु इकसु
सिउ लिव लाए ॥
दूजा भरमु गुरसबदि जलाए ॥
काइआ अंदरि वणजु करे वापारा
नामु निधानु सचु पावणिआ ॥६॥

जो गुरमुख होता है वह एक अद्वितीय परमात्मा के साथ ही लौ (प्रेम) लगाता है और गुरु के शब्द द्वारा द्वैत-भाव और भ्रम को जला देता है। वह अपने शरीर (रूपी हट्टी) के भीतर (नाम का) व्यापार करता है और इस प्रकार (हरि) नाम के सच्चे खजाने को प्राप्त करता है ॥६॥

गुरमुखि करणी हरि
कीरति सारु ॥
गुरमुखि पाए मोखदुआरु ॥
अनदिनु रंगि रता गुण गावै
अंदरि महलि बुलावणिआ ॥७॥

गुरुमुखों का आचार-विचार (रहन-सहन) हरि कीर्तन ही है, जो श्रेष्ठ (उत्तम) हैं, (इस श्रेष्ठ करणी से) गुरु की शरण में आए हुए (वे प्यारे) मुक्ति का द्वार प्राप्त करते हैं। वे रात-दिन हरि नाम के रग में रगकर गुण गाते हैं जिससे (प्रभु स्वयं ही प्रसन्न होकर सहज ही) महल के अन्दर बुलाता है ॥७॥

सतिगुरु दाता मिलै मिलाइआ ॥
पूरै भागि मनि सबदु वसाइआ ॥
नानक नामु मिलै वडिआई
हरि सचे के गुण गावणिआ ॥८॥
९॥१०॥

सत्गुरु-दाता तभी मिलता है, जब परमात्मा (कृपालु प्रभु) उससे (गुरु से) मिलाता हैं। उत्तम भाग्य उनके हैं जो मन में गुरु के शब्द (नाम) को बसाते हैं। हे नानक ! सच्चे हरि के गुण गाने से नाम की बड़ाई (प्रशंसा) मिलती है ॥८॥९॥१०॥

माझ महला ३॥

"जब अन्दर से निकालेगा अहंकार तब होगा बेड़ा पार।"

आपु वञाए ता सभ किछु पाए ॥
गुर सबदी सची लिव लाए ॥
सचु वणंजहि सचु संघरहि
सचु वापारु करावणिआ ॥१॥

(यह जीव) जब अहंकार दूर करता है, तब सभी कुछ प्राप्त करता है और फिर गुरु के शब्द द्वारा (परमात्मा के साथ) सच्ची लौ लगाता है। वह सच्चे (नाम) का वणिज करता है और उसे (सच्चा धन समझकर) संग्रह करता है, इस प्रकार वह सच्चे (नाम) का ही व्यापार करता रहता है ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
हरिगुण अनदिनु गावणिआ ॥
हउ तेरा तूं ठाकुर मेरा
सबदि वडिआई देवणिआ ॥१॥
रहाउ ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव (भी) उनके पर कुर्बान करता हूँ, जो रात-दिन हरि के गुण गाते हैं। (हे हरि!) मैं तुम्हारा दास (सेवक) हूँ और तुम मेरे ठाकुर हो। गुरु के शब्दानुसार हरिगुण गाने वालों को आप स्वय बड़ाई देते हो ॥ १ ॥ रहाउ ॥

बेला वखत सभि सुहाइआ ॥
जितु सचा मेरे मनि भाइआ ॥
सचे सेविऐ सचु वडिआई
गुर किरपा ते सचु पावणिआ
॥२॥

(मनुष्य जन्म का) सारा समय वही सुन्दर है, जिस समय सच्चा परमेश्वर मेरे मन को भाता (प्रिय लगता) है। सच्चे परमेश्वर की सेवा करने से सच्ची बडाई मिलती है, किन्तु यह (सच्चा परमेश्वर) गुरु की कृपा से ही प्राप्त होता है ॥ २ ॥

भाउ भोजन सतिगुरि तुठै पाए ॥
अनरसु चूकै हरिरसु मनि वसाए ॥
सचु संतोखु सहज सुखु बाणी
पूरे गुर ते पावणिआ ॥३॥

सत्गुरु के प्रसन्न होने पर प्रेम रूपी भोजन प्राप्त होता है, जिससे (संसार के) अन्य स्वाद समाप्त हो जाते हैं (अर्थात् संसारिक स्वादों के प्रति अपेक्षा हो जाती है)। केवल हरिनाम (रूपी अमृत रस) मन में बसता है, (हाँ)पूर्ण गुरु के द्वारा ही सत्य, सन्तोष, सहजावस्था वाला सुख और अमृत (रूपी वाणी) प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

सतिगुरु न सेवहि
मूरख अंध गवारा ॥
फिरि ओइ किथहु
पाइनि मोखदुआरा ॥
मरि मरि जंमहि
फिरि फिरि आवहि
जम दरि चोटा खावणिआ ॥४॥

जो (जीव)सत्गुरु की सेवा नही करते हैं, वे मूर्ख, अज्ञानी(अंधे) और महामूढ़ (गँवार) हैं,(बताओ) वे फिर मुक्ति का द्वार (मोक्ष) कहाँ से प्राप्त करेंगे ? वे मर मर कर जन्मते हैं और (योनियों में) बारम्बार आते (जाते) हैं (अर्थात् आवागमन के चक्र में भटकते रहते हैं) तथा यम के द्वार पर चोट(मार) खाते हैं ॥४॥

सबदै सादु जाणहि
ता आपु पछाणहि ॥
निरमल बाणी सबदि वखाणहि ॥
सचे सेवी सदा सुखु पाइनि
नउनिधि नामु मनि वसावणिआ
॥५॥

(गुरुमुख जब) गुरु शब्द का स्वाद जानते हैं, तो वे अपने आत्म स्वरूप को पहचान लेते हैं। (हाँ) यदि वे गुरु के उपदेशानुसार निर्मल वाणी (नाम) का उच्चारण करें, इस प्रकार ये परमात्मा की सेवा करके सदा सुख प्राप्त करते हैं और नवनिधि (रूप हरि का) नाम मन में बसाते हैं ॥ ५ ॥

सो थानु सुहाइआ
जो हरि मन भाइआ ॥
सत संगति बहि हरिगुण गाइआ ॥

वह स्थान (सत्संग) सुन्दर (सफल) है, जहाँ (बैठकर) हरि मन में भाता है, (हाँ) जहाँ सत्संगति में बैठकर हरि के गुण गाए जाते हैं, रात दिन हरि की स्तुति करते हैं तथा जहाँ गुरु के निर्मल

अनदिनु हरि सालाहहि
साचा निरमल नादु वजावणिआ
॥६॥

उपदेश का नाद (आत्म मंडल का संगीत) बजाते हैं ॥ ६ ॥

मनमुख खोटी रासि
खोटा पासारा ॥
कूड़ कमावनि दुखु लागै भारा ॥
भरमे भूले फिरनि दिन राती
मरि जनमहि जनमु गवावणिआ
॥७॥

मनमुखों की श्वास रूपी पूँजी खोटी है और उनके कर्मों का व्यापार भी खोटा है। वे झूठ की कमाई करते हैं, जिससे उन्हें भारी दुःख लगता है। वे भ्रम में भूले हुए रात दिन भटकते फिरते हैं, जिससे वे बारम्बार जन्मते और मरते हैं, इस प्रकार (मनुष्य) जन्म व्यर्थ ही खो देते हैं ॥ ७ ॥

सचा साहिबु मै अति पिआरा ॥
पूरे गुर कै सबदि अधारा ॥
नानक नामि मिलै वडिआई
दुखु सुखु सम करि जानणिआ ॥
८॥१०॥११॥

परमात्मा, जो सच्चा साहब है मुझे अति प्यारा है और पूर्ण गुरु के उपदेश द्वारा मैंने 'उसका' आधार लिया है। हे नानक ! (सच्चे साहब का) नाम (जपने) से यह बड़ाई मिली है कि मैं दुःख चाहे सुख को एक जैसा करके जानता हूँ (अर्थात् दुःख और सुख अपने कर्मों का फल जानकर सदा सहर्ष रहकर 'उसका' हुक्म मानता हूँ) ॥ ८ ॥ १० ॥ ११॥

माझ महला ३॥

"बिना गुरू के घोर अन्धकार है।"

तेरीआ खाणी तेरीआ बाणी ॥
बिनु नावै सभ भरमि भुलाणी ॥
गुर सेवा ते हरिनामु पाइआ
बिनु सतिगुर कोई न पावणिआ
॥१॥

(हे सृष्टि कर्ता !) (अंडजादि चार) खानियाँ तुम्हारी (बनाई हुई) हैं तथा (उन खानियों के जीवों के) आकार-प्रकार एवं भाषाएं (जो भिन्न भिन्न हैं) वे भी तुम्हारी हैं, पर बिना नाम के सभी जीव सृष्टि भ्रम में भूली हुई हैं। गुरु की सेवा से हरिनाम प्राप्त होता है, बिना सत्गुरु (की कृपा) के कोई भी (नाम) प्राप्त नहीं कर सकता ॥ १ ॥

हउ वारी जीउ वारी ॥
हरि सेती चितु लावणिआ ॥
हरि सचा गुर भगति पाईऐ
सहजे मंनि वसावणिआ ॥१॥
रहाउ ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) अपना जीव (भी) उन (प्यारों) के ऊपर कुर्बान करता हूँ, जिन्होंने हरि के साथ चित्त लगाया है। सच्चा हरि गुरु-भक्ति (करने) से प्राप्त होता है (और जिन्होंने भक्ति की है), वे सहज ही (हरि को) मन में बसा लेते हैं ॥ १ ॥
रहाउ ॥

सतिगुरु सेवे ता सभ किछु पाए ॥
जेही मनसा करि लागै
तेहा फलु पाए ॥
सतिगुरु दाता सभना वथू का
पूरै भागि मिलावणिआ ॥२॥

(यह जीव) जब सत्गुरु की सेवा करता है तो सब कुछ प्राप्त कर लेता है, (हाँ) जो भी (शुभ) भावना करके (सेवा में) लगता है, वैसा ही फल प्राप्त करता है। (मेरा) सत्गुरु सभी पदार्थों को देने वाला है किन्तु ऐसा सत्गुरु बडे उत्तम भाग्य से मिलता है ॥२॥

इहु मनु मैला इकु न धिआए ॥
अंतरि मैलु लागी बहु दूजै भाए ॥
तटि तीरथि दिसंतरि भवै अहंकारी
होरु वधेरै हउमै मलु लावणिआ
॥३॥

(जीव का) मन मलीन है, क्योकि वह तक अद्वितीय परमात्मा (के नाम का) मे ध्यान नही करता, (इसके) मन में द्वैत-भाव की बहुत सी मैल लगी हुई है। (मन का मलिन जीव)देश-देशान्तरो मे स्थित तीर्थों के किनारे घूमता-फिरता है, इससे अहकार की मैल और बढ जाती है। (क्योकि वे हरि-नाम से विमुख हैं केवल उन्हें स्मरण है कि हमने तीर्थ स्नान किए हैं आदि आदि कर्म किए हैं) ॥ ३ ॥

सतिगुरु सेवे ता मलु जाए ॥
जीवतु मरै हरि
सिउ चितु लाए ॥
हरि निरमलु सचु मैलु न लागै
सचि लागै मैलु गवावणिआ ॥४॥

(यह जीव) जब सत्गुरु की सेवा करता है, तब (अहकार की) मलीनता दूर हो जाती है। वह जीते जी (अहकार को) मारकर हरि के साथ चित्त लगाता है। हरि सत्य है, हरि निर्मल है, 'उसे' (कभी भी) मैल नही लगती और जो (ऐसे निर्मल) सच्चे (हरि) के साथ (चित्त) लगाते हैं, वे (अपने अहकार की) मैल को दूर करते है ॥ ४ ॥

बाझु गुरू हैं अंध गुबारा ॥
अगिआनी अंधा अंधु अंधारा ॥
बिसटा के कीड़े बिसटा कमावहि
फिरि बिसटा माहि पचावणिआ
॥५॥

गुरु के बिना (घोर) अन्धकार (ज्ञान न होने के कारण) अज्ञानी पुरुष अन्धा है और (अज्ञान के) गाढान्धकार (उसके चारो ओर छाया हुआ) है। वे (पहले भी) विष्ठा के कीडे थे, अब भी इस योनी (इसी मनुष्य देही रूपी योनी मे) विष्ठा (अशुभ वासनाओं) में रुचि रखते हैं, दुर्गन्ध से भरे कर्म करते हैं और फिर भी वे विष्ठा में ही सड गल कर मर जायेंगे (अर्थात् मर कर भी कोई नीच योनी प्राप्त करेंगे) ॥ ५ ॥

मुकते सेवे मुकता होवै ॥
हउमै ममता सबदे खोवै ॥
अनदिनु हरि जीउ सचा सेवी
पूरै भागि गुरु पावणिआ ॥६॥

जीवन मुक्त (सत्गुरु की) सेवा करने से (यह जीव) मुक्त होता है। वह फिर गुरु के उपदेश द्वारा अहता ममता (रूपी मैल) को दूर करके रात दिन हरि जी की सेवा करता है, किन्तु ऐसा गुरु बडे उत्तम भाग्य से प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

आपे बखसि मेलि मिलाए ॥
पूरे गुर ते नामु निधि पाए ॥
सचै नामि सदा मनु सचा
सचु सेवे दुखु गवावणिआ ॥७॥

जिन (जीवों) को परमेश्वर सत्संगति के मेल में मिलाकर आप बख्शिश करता है या क्षमा करता है, वे पूर्ण गुरु के नाम रूपी खजाने को प्राप्त करते हैं। सच्चे नाम में लग कर उनका मन सदा सच्चा रहता है और वे सच्चे (साहब) की सेवा करके (जन्म मरण का) दु:ख दूर करते हैं ॥ ७ ॥

सदा हजूरि दूरि न जाणहु ॥
गुरसबदी हरि अंतरि पछाणहु ॥
नानक नामि मिलै वडिआई
पूरे गुर ते पावणिआ ॥८॥
११॥१२॥

(हे भाई !)'वह' बख्शिश करने वाला परिपूर्ण परमात्मा सर्वदा अति समीप (प्रत्यक्ष) है, 'उसे' दूर नही जानना चाहिए, गुरु के उपदेश द्वारा 'उसे' अपने भीतर (हृदय में) पहचानो (देखो)। हे नानक ! नाम (जपने) से बडाई मिलती है, किन्तु नाम गुरु से ही प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ ११ ॥ १२ ॥

माझ महला ३॥

"वे सत्पुरुष इस लोक में भी सच्चे हैं और परलोक में भी"

ऐथै साचे सु आगै साचे ॥
मनु सचा सचै सबदि राचे ॥
सचा सेवहि सचु कमावहि
सचो सचु कमावणिआ ॥१॥

वे यहाँ भी सच्चे है और वहाँ भी सच्चे हैं तथा उनका मन (भी) सच्चा है, जो गुरु के सच्चे शब्द में रंगे हुए हैं(अर्थात् शब्दानुसार कमाई करते हैं)। वे (शरीर से)सत्य की सेवा करते हैं (वाणी से)सत्य(नाम) की कमाई करते हैं तथा (मन से) भी सत्य ही सत्य की कमाई करते है (अर्थात शरीर, वाणी तथा मन से सत्पुरुष केवल सच्चे परमात्मा, सच्चे नाम या नाम जपने वालों की सेवा करते है) ॥ १ ॥

हउ वारी जीउ वारी
सचा नामु मंनि वसावणिआ ॥
सचे सेवहि सचि समावहि
सचे के गुण गावणिआ ॥१॥
रहाउ ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव भी उनके ऊपर कुर्बान करता हूँ, जो नाम को मन मे बसाते है। जो(सत्पुरुष)सच्चे परमात्मा की सेवा करते है और सच्चे परमेश्वर के गुण गाते है, वे सच्चे प्रभु मे ही समा जाते है ॥ १ ॥ रहाउ ॥

पंडित पड़हि सादु न पावहि ॥
दूजै भाइ माइआ मनु भरमावहि ॥
माइआ मोहि सभ सुधि गवाई
करि अवगण पछोतावणिआ ॥२॥

पडित(शास्त्रादि धर्म-ग्रथो को तो) पढते है, किन्तु (शास्त्र का) आनन्द नही प्राप्त करते क्योकि उनका मन द्वैत-भाव के कारण माया मे भटकता है। माया के मोह ने उनकी सारी विवेक बुद्धि (सुरति)गँवा दी है और वे अवगुण (अशुभ कर्म) के कारण पछताते हैं ॥ २ ॥

सतिगुरु मिलै ता ततु पाए ॥
हरि का नामु मंनि वसाए
सबदि मरै मनु मारै अपुना
मुकती का दरु पावणिआ ॥३॥

जब सत्गुरु मिलता है तो हरि नाम मन में आकर निवास करता है और सार वस्तु (परमात्मा) को प्राप्त कर लेता है। जो (गुरु के) शब्द द्वारा अपने मन को मार लेता है (अर्थात मन पर अधिकार पा लेता है),वह(जीते) जी मर जाता है(अर्थात् देहाभिमान से रहित हो जाता है) और मुक्ति का द्वार प्राप्त कर लेता है ॥ ३ ॥

किलविख काटै क्रोधु निवारे ॥
गुर का सबदु रखै उरधारे ॥
सचि रते सदा बैरागी
हउमै मारि मिलावणिआ ॥४॥

अतः जीव को चाहिए कि पापों को काट कर क्रोध की निवृति करे और गुरु के शब्द को हृदय में धारण करे। जो (जीव) सच्चे परमात्मा में रत (लीन) हैं, वे सदा बैरागी (सांसारिक पदार्थों के भोगों से पृथक रहने वाले) हैं और वे अहंकार को मारकर वे(स्वय तो परमात्मा से मिले हैं पर दूसरो को भी प्रभु से)मिलाते हैं ॥४॥

अंतरि रतनु मिलै मिलाइआ ॥
त्रिबिधि मनसा त्रिबिधि माइआ ॥
पड़ि पड़ि पंडित मोनी थके
चउथे पद की सार न पावणिआ
॥५॥

(नाम रूपी) रत्न, जो हमारे अन्दर है, वह तब मिलेगा जब गुरु हमे मिलायेगा क्योकि गुरु के बिना तीन प्रकार की माया में लगकर जीव मे त्रिविध (सत्, रज्, तम्) आकाक्षाए आ जाती हैं। पंडित (शास्त्र) पढ़-पढ़कर और मौनी मौन-व्रत धारण करके थक गये हैं किन्तु वे (गुरु के बिना) चौथे (सहज) पद के भेद को नहीं पा सकते ॥ ५॥

आपे रंगे रंगु चड़ाए ॥
से जन राते गुर सबदि रंगाए ॥
हरि रंगु चड़िआ अति अपारा
हरि रसि रसि गुण गावणिआ
॥६॥

प्रभु आप ही (प्रेम) रग चढाकर (भक्त को भक्ति रंग में) रग लेता है। वे जन गुरु के शब्द मे रंगकर लाल (सुर्ख होते) हैं। उन पर हरि का अत्याधिक गहरा (प्रेम) रग चढ़ता है और वे हरि के प्रेम रस मे लीन होकर 'उसके' गुण गाते हैं ॥ ६ ॥

गुरमुख रिधि सिधि
सचु संजमु सोई ॥
गुरमुखि गिआनु नामि मुकति
होई ॥
गुरमुखि कार सचु कमावहि
सचे सचि समावणिआ ॥७॥

गुरमुखो (ने यह पहचाना है कि) प्रभु ही रिद्धि, सिद्धि, सत्य और सयम है और गुरमुखों ने यह भी ज्ञान प्राप्त किया है कि नाम (जपने से, यथार्थ ज्ञान) से ही मुक्ति होती है। गुरमुख (भक्ति रूपी) सच्ची कमाई करते हैं और इस निश्चय से सत्य स्वरूप परमात्मा मे समा जाते हैं ॥ ७ ॥

गुरमुखि थापे थापि उथापे ॥
गुरमुखि जाति पति सभु आपे ॥

गुरमुखों ने यह भी जाना है कि उत्पन्न भी 'वह' करता है, पालन भी 'वही' करता है तथा विनाश भी 'वही' करता है और

नानक गुरमुखि नामु धिआए
नामे नामि समावणिआ ॥८॥
१२॥१३॥

गुरमुखों ने यह भी ज्ञान प्राप्त किया है कि हमारी जाति-पाति सब कुछ(प्रभु)आप ही है। हे नानक! गुरुमुख नाम का ध्यान करते हैं और नाम जपकर नामी (परमात्मा) में समा जाते हैं ॥ ८ ॥ १२ ॥ १३ ॥

माझ महला ३॥

"जगत की उत्पत्ति और सत्गुरु की आवश्यकता।"

उतपति परलउ सबदे होवै ॥
सबदे ही फिरि ओपति होवै ॥
गुरमुखि वरतै समु आपे सचा
गुरमुखि उपाइ समावणिआ ॥१॥

(सृष्टि की) उत्पत्ति और प्रलय परमात्मा के शब्द (नाम) से (ही) होती है और (महा प्रलय के पश्चात्) पुन. उसी नाम से उत्पति होती है। गुरमुख (जानते हैं कि) यह परमात्मा आप ही सभी में व्याप्त है और गुरमुख (यह भी जानते हैं कि वही) (सृष्टि की) उत्पत्ति करके (पुन:) संहार (भी) करता है ॥ १ ॥

हउ वारी जीउ वारी
गुरु पूरा मंनि वसावणिआ
गुर ते साति भगति करे दिनु राती
गुण कहि गुणी समावणिआ ॥१॥
रहाउ ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) अपना जीव (भी) उनके ऊपर कुर्बान करता हूँ, जो पूर्ण गुरु को मन मे बसाते हैं और गुरु द्वारा दिन-रात भक्ति करके शान्त रूप होते हैं तथा गुण उच्चारण कर-करके गुणी परमात्मा मे समा जाते हैं ॥२॥ रहाउ ॥

गुरमखि धरती गुरमुखि पाणी ॥
गुरमुखि पवणु बैसंतरु
खेलै विडाणी ॥
सो निगुरा जो मरि मरि जंमै
निगुरे आवण जावणिआ ॥२॥

गुरमुख (यह भी जानते हैं कि परमात्मा आप ही धरती, पवन और अग्नि में आश्चर्य रूप खेल खेल रहा है अथवा गुरमुख धरती जैसे सहनशील, पानी जैसे शीतल, पवन जैसे समदर्शिता और अग्नि जैसे निर्दोष हैं। गुरु से रहित जीव बारम्बार जन्मते (मरते) हैं। इस प्रकार निगुरे ससार मे आते और जाते (रहते) है॥ २ ॥

तिनि करतै इकु खेलु रचाइआ ॥
काइआ सरीरै विचि
सभु किछु पाइआ ॥
सबदि भेदि कोई महलु पाए
महले महलि बुलावणिआ ॥३॥

उस (सृष्टि) कर्त्ता ने इस जगत की एक खेल के समान रचना की है और शरीर रूपी घर मे सभी कुछ (अर्थात् दैवी गुण, चैतन्य सत्ता)को डाल दिया है। किन्तु रहस्य उसे प्राप्त होता है, जिसे(पूर्ण गुरु का) शब्द मिला है अथवा जो(गुरु) शब्द से बीधा (जाए)वही 'उस' (हरि स्वरूप) को पाता है। जीव, जो महल के अन्दर है, वह बुलाया जाता है (अर्थात् ज्ञानी दूसरों को महल मे बुलाकर सत्य स्वरूप की प्राप्ति करवाते है ॥३॥

सचा साहु सचे वणजारे ॥
सचु वणंजहि गुर हेति अपारे ॥
सचु विहाझहि सचु कमावहि
सचो सचु कमावणिआ ॥४॥

सच्चा शाह व्यापारी (सत्गुरु) है और सच्चे बनजारे (जिज्ञासु) हैं। वे गुरु से अत्याधिक प्रेम रखकर सच्चे (नाम) का व्यापार करते हैं। वे सत्य (नाम) खरीदते हैं जिससे उनकी कमाई भी सत्य है। वे (मन तन से) सच की कमाई करते हैं ॥ ४ ॥

बिनु रासी को वथु किउ पाए ॥
मनमुख भूले लोक सबाए ॥
बिनु रासी सभ खाली चले खाली
जाइ दुखु पावणिआ ॥५॥

श्रद्धा रूपी पूँजी के बिना (नाम रूपी) वस्तु कैसे प्राप्त हो सकती है? सभी मनमुख लोग भूले हुए हैं। (श्रद्धा रूपी) पूँजी के बिना सभी मनमुख (नाम के बिना) खाली (हाथ) जाते हैं और जो (नाम के बिना) खाली जाते हैं, उन्हे दुःख पाना पड़ता है ॥ ५ ॥

इकि सचु वणंजहि
गुर सबदि पिआरे ॥
आपि तरहि सगले कुल तारे ॥
आए से परवाणु होए
मिलि प्रीतम सुखु पावणिआ ॥६॥

एक वे (जिज्ञासु) हैं, जो गुरु के शब्द से प्यार रखते है, वे सत्य (नाम) का व्यापार करते हैं। वे स्वय तो (भव-सागर से) पार हो जाते है किन्तु (नाम के प्रताप से अपने) कुल के सभी कुटम्बियो (सम्बन्धियो) को भी पार लगाते है। उनका इस ससार मे (जन्म लेकर) आना प्रमाणित (सफल) है, वे प्रियतम गुरु से मिलकर सुख प्राप्त करतें है ॥ ६ ॥

अंतरि वसतु मूड़ा बाहरु भाले ॥
मनमुख अंधे फिरहि बेताले ॥
जिथै वथु होवै तिथहु
कोइ न पावै
मनमुख भरमि भुलावणिआ ॥७॥

(आत्म) वस्तु या (नाम) वस्तु तो भीतर पड़ी है, किन्तु मूर्ख इसे बाहर ढूँढते है। वे मनमुख अन्धे (अज्ञानी) भूत-प्रेतो के समान इधर-उधर फिरते (भटकते) है। जिस (सत्संगति रूप) स्थान पर (नाम) वस्तु होती है वहाँ जाकर (मनमुख) नही प्राप्त करते, क्योकि वे मनमुख स्वयं तो भ्रम में भूले है पर औरो को भी भुला देतें है ॥ ७ ॥

आपे देवे सबदि बुलाए ॥
महली महलि सहज सुखु पाए ॥
नानक नामि मिलै वडिआई
आपे सुणि सुणि धिआवणिआ ॥८
॥१३॥१४॥

परम पिता परमेश्वर (कृपा करके) जिन (भाग्यशाली जिज्ञासुओं को) स्वय बुलाकर (गुरु के द्वारा) उपदेश देता है, वे जिज्ञासु स्वरूप के सुख को सहज ही प्राप्त कर लेते है। हे नानक ! नाम (जपने) से बड़ाई मिलती है और आप ही (प्रभु) (जिज्ञासु होकर गुरु का उपदेश) सुन-सुनकर ध्यान करता है ॥ ८ ॥ २३॥ १४ ॥

माझ महला ३॥

"सत्गुरु की महिमा।"

सतिगुर साची सिख सुणाई ॥
हरि चेतहु अंति होइ सखाई ॥
हरि अगम अगोचरु
अनाथु अजोनी
सतिगुर कै भाइ पावणिआ ॥१॥

(मैरे सत्गुरु ने यह सच्ची शिक्षा सुनाई है कि हे भाई!) हरि का चिन्तन करो जो अन्त काल में (तुम्हारा) सहायक होगा। हरि जो अगम्य, इन्द्रियातीत, (जिसका कोई स्वामी नहीं सर्वथा) स्वतन्त्र और अजन्मा है, 'वह सत्गुरु के द्वारा प्रेम करने से प्राप्त होता है॥ १ ॥

हउ वारी जीउ वारी
आपु निवारणिआ ॥
आपु गवाए ता हरि पाए
हरि सिउ सहजि समावणिआ ॥१
॥रहाउ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव भी उनके ऊपर कुर्बान करता हूँ, जो अहंकार को निवृत कर देते हैं क्योंकि अहं-कार के भाव को दूर करने से हरि प्राप्त होता है और फिर स्वाभाविक ही हरि के साथ समा जाता है ॥१॥ रहाउ ॥

पूरबि लिखिआ
सुकरमु कमाइआ ॥
सतिगुरु सेवि सदा सुखु पाइआ ॥
बिनु भागा गुरु पाईऐ नाही
सबदै मेलि मिलावणिआ ॥२॥

पूर्व-जन्म के लिखे हुए कर्मानुसार (जीव) कर्म करते है। जो सत्गुरु की सेवा करते हैं, वे सदा सुख प्राप्त करते है, किन्तु उत्तम भाग्य के बिना गुरु की प्राप्ति नहीं होती। (गुरु ही अपने) शब्द के द्वारा (परमेश्वर से) मिलाकर अभेद कर देता है॥ २ ॥

गुरमुखि अलिपतु रहै संसारे ॥
गुर कै तकीए नामि अधारे ॥
गुरमुखि जोरु करे किआ तिसनो
आपे खपि दुखु पावणिआ ॥३॥

गुरमुख संसार में रहते हुए भी (माया से) निर्लिप्त रहते हैं। वे गुरु के आश्रय के नाम का आधार (सहारा) लेते हैं। गुर-मुख पर (मनमुख) क्या जोर चला सकते हैं ? (अर्थात् गुरमुख को मनमुख के दुर्व्यवहार की क्या चिन्ता है, 'हाँ') (मनमुख) स्वयं ही खप-खप कर दुःख ही प्राप्त करते हैं॥ ३ ॥

मनमुखि अंधे सुधि न काई ॥
आतमघाती है जगत कसाई ॥
निंदा करि करि बहु भारु उठावै
बिनु मजूरी भारु पहुचावणिआ ॥
४॥

मनमुख अन्धों (अज्ञानी जीवों)को कोई भी समझ नही होती, (ज्ञान की दृष्टि से देखें तो मनमुख) आत्म हत्या करने वाले और जगत के कसाई (विवेकहीन) हैं। वे (गुरमुखों की) निन्दा कर करके पापों का (सिर पर) बोझ उठाते हैं और बिना मजदूरी लिए ही (उठाए भार को) पहुँचा देते हैं (अर्थात निन्दक जिनकी निन्दा करते हैं, उनके पापो का भार अपने सिर पर उठाते हैं)॥ ४॥

इहु जगु वाड़ी मेरा प्रभु माली ॥
सदा समाले को नाही खाली ॥
जेही वासना पाए तेही वरतै
वासू वासु जणावणिआ ॥५॥

(हे भाई!) यह जगत एक बगीची है और (मेरा) प्रभु(इसका) माली है। 'वह' (सारे जीव सृष्टि की)सदा देखभाल करता है और 'उसकी' (देख-रेख के बिना कोई भी जीव) खाली नही है। ईश्वर जैसी वासना मन में डालता है। (पूर्व कर्मानुसार) जीव उसी के अनुरूप कर्म करता है और वासनाओं से पूर्ण जीव अपनी वासनाओं से (वृति) प्रकट कर देता है (अर्थात गुरमुख और मनमुख अपने आचार-विचार से हृदयगत भावों को प्रकट करते है) ॥ ५ ॥

मनमखु रोगी है संसारा ॥
सुखदाता विसरिआ
अगम अपारा ॥
दुखीए निति फिरहि बिललादे
बिनु गुर सांति न पावणिआ ॥६॥

मनमुख संसार में रोगी हैं क्योंकि उन्हें सुखदाता परमात्मा जो अगम्य और अपार है, 'उसे' भूल गए हैं। इसलिए वे दुखी होकर नित्य विरलाप करते हुए इधर-उधर घूमते-फिरते हैं। किन्तु स्मरण रहे कि बिना गुरु की शरण आए कदाचित शांति प्राप्त नही होती है ॥ ६ ॥

जिनि कीते सोई बिधि जाणै ॥
आपि करे ता हुकमि पछाणै ॥
जेहा अंदरि पाए तेहा वरतै
आपे बाहरि पावणिआ ॥७॥

(हम व्यर्थ की चिन्ता क्यों करें, क्योंकि) जिस (अन्तर्यामी ईश्वर) ने (इन अज्ञानी जीवों को) उत्पन्न किया है, 'वही' इन्हे बचाने की भी) विधि जानता है, किन्तु जिन पर 'वह' आप (अपनी) कृपा करता है, वे ही 'उसका' हुकम पहचानते हे। जैसा (स्वभाव जीव के) अन्दर (ईश्वर ने) पाया है, (वे जीव) वैसा ही व्यवहार करते है,(यदि चाहे तो उनके बुरे स्वभाव को)'वह' आप बाहर निकाल देता ॥ ७ ॥

तिसु बाझहु सचे मैं होरु न कोई ॥
जिसु लाइ लए सो निरमलु होई ॥
नानक नामु वसै घट अंतरि
जिसु देवै सो पावणिआ ॥८॥
१४॥१५॥

उस सच्चे (हरि) के बिना मेरा और कोई (बन्धु-बान्धव) नही हैं, 'वह'(हरि)जिसको(अपनी भक्ति में)अपने मे लगा लेता है बह निर्मल एवं पवित्र हो जाता है।हे नानक!(हरि)नाम तो प्रत्येक घट में निवास करता है, किन्तु परम कृपालु हरि जिसको (दया करके) देता है, वही (हरि नाम) प्राप्त करता है ॥ ८ ॥१४॥ १५॥

माझ महला ॥३॥

"मैं हूँ उन पर कुर्बानी जो बसाते हैं हृदय में बाणी।"

अंम्रित नामु मंनि वसाए ॥
हउमै मेरा सभु दुखु गवाए ॥
अंम्रित बाणी सदा सलाहे
अंम्रिति अंम्रितु पावणिआ ॥१॥

जो (श्रेष्ठ जीव) अमृत रूपी नाम को मन में बसाते हैं, वे अहंता-ममता, मेरा-तेरा आदि सभी दुःखों को नष्ट कर देते हैं। वे अमृतमयी वाणी से सर्वदा (हरिनाम की) स्तुति करते है। अमृत रूपी वाणी की सराहना करते करते अमृत ही अमृत अथवा नाम रूपी अमृत के कारण अमर पदवी प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

हउ वारी जीउ वारी
अंमृत बाणी मंनि वसावणिआ ॥
अंमृत बाणी मनि वसाए
अंमृतु नामु धिआवणिआ ॥१॥
रहाउ ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव (भी) उनके ऊपर कुर्बान करता हूँ, जो अमृतमयी वाणी को मन मे बसाकर (हरि) नाम अमृत का ध्यान करते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥

अंमृतु बोलै सदा मुखि वैणी ॥
अंमृतु वेखै परखै सदा नैणी ॥
अंमृत कथा कहै सदा दिनु राती
अवरा आखि सुनावणिआ ॥२॥

(ऐसे हरिजन) सदा मुख से अमृतमयी वाणी या वचन बोलते हैं और अमृत रूप ब्रह्म को सदा (सर्व में) परख कर (निश्चय करके) आँखों से देखत है तथा दिन-रात, (हाँ) सदा अमृत (रूपी नाम) की कथा स्वय भी कहते है तथा अन्य (जिज्ञासुओं) को (प्रेम से) कहकर (हरि कथा) सुनाते हैं ॥ २ ॥

अंमतु रंगि रता लिव लाए ॥
अंमृतु गुरपरसादी पाए ॥
अंमृतु रसना बोलै दिनु राती
मनि तनि अंमृतु पीआवणिआ
॥३॥

(तथा ऐसे हरिजन नाम रूपी) अमृत से लौ लगाकर 'उसी' के (प्रेम) रंग में अनुरक्त रहते है, किन्तु यह अमृत (नाम) गुरु की प्रसन्नता से (ही) प्राप्त होता है। फिर वे दिन-रात अपनी रसना से अमृत (नाम) ही बोलते है और मन तन (अर्थात सच्चे हृदय) से औरों को भी अमृत पिलाते है ॥3॥

सो किछु करै जु चिति न होई ॥
तिस दा हुकमु
मेटि न सकै कोई ॥
हुकमे वरतै अमत बाणी
हुकमे अंमृतु पाआवणिआ ॥४॥

(गुरमुखों को निश्चय है कि परमात्मा) ऐसे कुछ विचित्र व अलौकिक कार्यों को करता है, जो (जीव के) चित्त में भी नही होते हैं (अर्थात जिनकी जीव भी कल्पना भी नहीं कर सकता) (कर्त्ता के) हुकम को अर्थात् लिखे हुए लेख को कोई भी मिटा नहीं सकता (अर्थात लेख अनुसार ही जीव कर्म करता है) 'उसके' हुक्म से ही (भक्त) अमृतमयी वाणी में (सभी) व्यवहार करते है और उसके ही हुक्म का नामामृत (जिज्ञासाओं को) पिलाते है ॥ ४ ॥

अजब कंम करते हरि केरे ॥
इहु मनु भूला जांदा फेरे ॥

जगत-सृष्टा हरि के काम आश्चर्यजनक है किन्तु यह भ्रम में भूला हुआ मन उसके विभिन्न कार्यों को जानकर योनियों के चक्र में भटकता रहता है अथवा जिज्ञासु भ्रम में भूले एव विषयों

अंमृत बाणी सिउ चितु लाए
अंमृत सबदि वजावणिआ ॥५॥

की ओर जाते हुए इस मन को मोड़ें। (हाँ) यदि वे अमृत वाणी से चित्त लगाएँ तो प्रभु अमृत रूप अनाहत शब्द को प्रकट कर देता है॥ ५ ॥

खोटे खरे तुधु आपि उपाए ॥
तुधु आपे परखे लोक सबाए
खरे परखि खजानै पाइहि
खोटे भरमि भुलावणिआ ॥६॥

(हे कर्त्तार !) बुरे और अच्छे (जीव) तुमने आप ही उत्पन्न किए हैं और सभी लोगों की तुम आप ही परख करते हो। खरे(गुरमुखों) को परखकर मोक्ष रूपी खजाने मे डाल देते हो और खोटे (मनमुखों) को भ्रम में भटकाते रहते हो (अर्थात् आवागमन के चक्र मे डाले रखते हो)॥ ६॥

किउकरि वेखा किउ सालाही ॥
गुर परसादी सबदि सलाही ॥
तेरे भाणे विचि अंमृतु वसै
तूं भाणै अंमृतु पीआवणिआ
॥७॥

(हे प्रभु !) मैं (अज्ञानी जीव) तुझे कैसे देखूँ ? कैसे तुम्हारी प्रशंसा स्तुति करूँ ? गुरु की प्रसन्नता (प्राप्त करके) यदि शब्द द्वारा स्तुति की जाए (तो दर्शन हो सकते हैं)। तुम्हारे हुक्म मे अमृत निवास करता है और तुम स्वय अपने हुक्म से हरि नाम अमृत पिलाते हो ॥ ७ ॥

अंमृत सबदु अंमृत हरि बाणी ॥
सतिगुरि सेविऐ रिदै समाणी ॥
नानक अंमृत नामु सदा सुखदाता
पी अंमृत सभ भुख
लहि जावणिआ ॥८॥१५॥१६

(सत्गुरु का) शब्द अमृत के समान है और हरि की वाणी (भी) अमृत के समान है, जिस सत्गुरु की सेवा करने से ही अमृत रूपी वाणी हृदय में समा जाती हैं। हे नानक ! अमृत रूपी नाम सदा सुख देने वाला है जिस नामामृत को पीने से सभी प्रकार की (तृष्णा रूपी) भूख दूर हो जाती है ॥८॥१५॥१६॥

माझ महला ३॥

"गुरमुख करते हैं हरि के मेले मनमुख भटकते हैं योनियों में अकेले।"

अंमृतु वरसै सहजि सुभाए ॥
गुरमुखि विरला कोई जनु पाए ॥
अंमृतु पी सदा तृपतासे
करि किरपा तृसना बुझावणिआ
॥१॥

हरिनाम-अमृत की वर्षा सहज स्वभाव ही बरस रही है, किन्तु कोई विरला ही (हरि का) दास गुरु की शिक्षा द्वारा (अमृत को) प्राप्त करता है और परमात्मा की कृपा से(अमृत) पान करके सदा तृप्त हो जाता हैं, जिससे उसकी तृष्णा रूपी अग्नि बुझ जाती है ॥ १ ॥

हउ वारी जीउ वारी
गुरमुखि अंमृतु पीआवणिआ ॥
रसना रसु चाखि सदा रहै रंगि राती
सहजे हरिगुण गावणिआ ॥१॥ रहाउ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव (भी) उन गुरमुखों के ऊपर कुर्बान करता हूँ, जो गुरु की शिक्षा द्वारा नाम रूपी अमृत का पान करते हैं और फिर उनकी रसना नाम का स्वाद चखकर सदा 'उसके' रंग मे रत रहती है और सहज ही हरि के गुण गायन करती रहती है ॥१॥ रहाउ ॥

गुरपरसादी सहजु को पाए ॥
दुबिधा मारे इकसु सिउ लिव लाए ॥
नदरि करे ता हरिगुण गावै
नदरी सचि समावणिआ ॥२॥

कोई (विरला साधन सम्पन्न पुरुष ही) गुरु की प्रसन्नता से (नाम अमृत पीकर) सहजावस्था को प्राप्त करता है जो दुबिधा को मार कर एक अद्वितीय भगवान में लौ लगाता है। किन्तु हरि जब कृपादृष्टि करता है तब जीव हरि के गुण गाता है जिससे वह कृपादृष्टि करने वाले सच्चे प्रभु मे समा जाता है ॥२॥

सभना उपरि नदरि प्रभ तेरी ॥
किसै थोड़ी किसै है घणेरी ॥
तुझ ते बाहरि किछु न होवै
गुरमुखि सोझी पावणिआ ॥३॥

हे प्रभो ! सभी जीवों पर तुम्हारी कृपा-दृष्टि है, किन्तु (कर्मानुसार) किसी पर थोडी और किसी पर अधिक। आपके हुकम के बाहर कुछ भी नही होता किन्तु यह सूझ (पहचान, ज्ञान) किसी गुरमुख में ही होती है ॥३॥

गुरमुखि ततु है बीचारा ॥
अंमृति भरे तेरे भंडारा ॥
बिनु सतिगुर सेवे कोई न पावै
गुर किरपा ते पावणिआ ॥४॥

(हे हरि !) तुम्हारे नाम रूपी अमृत के भण्डार भरे हुए हैं, किन्तु गुरु की शिक्षा द्वारा ही नाम रूपी तत्व पर विचार (चिंतन-मनन) कर सकते हैं। बिना सत्गुरु की सेवा के कोई भी (नामामृत) को प्राप्त नही कर सकता, केवल गुरु की कृपा से ही यह प्राप्त होता है ॥४॥

सतिगुरु सेवै सो जनु सोहै ॥
अंमृत नामि अंतरु मनु मोहै ॥
अंमृति मनु तनु बाणी रता
अंमृतु सहजि सुणावणिआ ॥५॥

जो (हरि का) दास सत्गुरु की सेवा करता है, वह (लोक व परलोक मे) शोभा पाता है क्योंकि उसके हृदय में जो अमृत नाम निवास करता है, उसने उसके मन को मोहित कर लिया है (अर्थात मन नामामृत में तन्मय है)। उसका मन और तन अमृत-मयी वाणी में अनुरक्त है और वह अमृतानाम सहज ही औरो को सुनाता (पिलाता) रहता है (अर्थात स्वय भी नाम जपता है और औरो से भी नाम जपवाता है) ॥५॥

मनमुखु भूला दूजै भाइ खुआए ॥
नामु न लेवै मरै बिखु खाए ॥

मनमुख जीव द्वैत-भाव के कारण स्वयं तो (भ्रम मे) भूला हुआ है और दूसरों को भी भटकाता है। वह (हरि) नाम नही जपता और विषय रूपी विष खाकर मरता है। उसका वास रात-

अनदिनु सदा विसटा महि वासा बिनु सेवा जनमु गवावणिआ ॥६॥	दिन सदा मन्द कर्म रूपी विष्ठा में निवास होता है, जिससे वह बिना सत्गुरु की सेवा के अपना (अमूल्य) जन्म गँवा देता है ॥६॥
अंमृतु पीवै जिसनो आपि पीआए ॥ गुरपरसादी सहजि लिव लाए ॥ पूरन पूरि रहिआ सभ आपे गुरमति नदरी आवणिआ ॥७॥	नाम रूपी अमृत वही पीता है, जिसको 'वह' आप पिलाता है और वही गुरु की प्रसन्नता से निर्मल नाम में (सहज ही) लौ लगाता है। परिपूर्ण परमेश्वर आप ही सब में परिव्याप्त हैं, किन्तु गुरु की मति द्वारा दिखाई देता है ॥७॥
आपे आपि निरंजनु सोई ॥ जिनि सिरजी तिनि आपे गोई ॥ नानक नामु समालि सदा तूं सहजे सचि समावणिआ ॥८॥ १६॥१७॥	हे नानक! माया मल से रहित वह निरंजन ही सब कुछ आपे आप है जिस निरजन प्रभु ने यह सृष्टि उत्पन्न की है, वही उसकी प्रलय (नाश) करता है। (हे जीव!) तू सदा (हरि) नाम का स्मरण कर, इससे तुम सहज ही सत्यस्वरूप परमात्मा में समा जाओगे ॥८॥१६॥१७॥
	विशेष—इन अष्टपदियो मे परमात्मा की सर्वव्यापकता के अनेक रूप प्रदर्शित किए हैं। पीछे 'उस' प्रभु को 'अमृत रूप' बतला कर अब 'उस' को सत्यस्वरूप कहते हैं। सभी अवस्थाओं मे 'वह' गुरु की वाणी द्वारा प्रत्यक्ष होता है। इसलिए वाणी भी 'अमृत वाणी' कहलाती है, यही 'सच्चा शब्द' है क्योंकि ये उसके स्वरूप को बतलाते हैं।
माझ महला ३॥	"जो सच्चे परमात्मा मे अनुरक्त हैं, उनकी ही प्रीति सच्ची है।"
से सचि लागे जो तुधु भाए ॥ सदा सचु सेवहि सहज सुभाए ॥ सचै सबदि सचा सालाही सचै मेलि मिलावणिआ ॥१॥	हे प्रभु! वे ही सच्चे नाम मे अथवा सत्य प्राप्ति में लगे हुए हैं, जो तुम्हे भाते (अच्छे लगते) हैं। वे सदा आप सत्य-स्वरूप की सेवा सहज-स्वभाव से करते हैं। वे सच्चे गुरु के उपदेश द्वारा आप सत्य स्वरूप की स्तुति करते है। जिन्होने सच्चे गुरु के साथ मिलाप किया है, वे (दूसरो को भी परस्पर) मिलाने वाले हो जाते हैं ॥१॥
हउ वारी जीउ वारी सचु सालाहणिआ ॥ सचु धिआइनि से सचि राते सचे सचि समावणिआ ॥१॥रहाउ॥	मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव (भी) उनके ऊपर न्यौछावर करता हूँ, जो सच्चे परमात्मा की स्तुति करते हैं, क्योंकि जो सत्य स्वरूप परमात्मा का ध्यान करते हैं, वे सत्य में रंगे हुए होते हैं और वे (निश्चित ही) सच्चे परमात्मा में समा जाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

जह देखा सचु सभनी थाई ॥
गुरपरसादी मंनि वसाई ॥
तनु सचा रसना सचि राती
सचु सुणि आखि वखानणिआ ॥२॥

हे भाई ! मैं जिधर भी देखता हूँ, सर्वत्र सभी स्थानों पर सच्चा परमात्मा दिखाई देता है, किन्तु गुरु की प्रसन्नता से परिपूर्ण हरि मन मे निवास करता है। (अर्थात् उससे साक्षात्कार होता है)। जब रसना सच्चे नाम में रत हो जाती है, तब (सारा) शरीर सच्चा (सफल) होता है और सच्चा उपदेश (गुरु से) सुनकर औरों को कहकर व्याख्यान करता है ॥२॥

मनसा मारि सचि समाणी ॥
इनि मनि डीठी सभ आवण जाणी ॥
सतिगुरु सेवे सदा मनु निहचलु
निजघरि वासा पावणिआ ॥३॥

मन की इच्छाओ (वासनाओं) को मारकर जो सत्य में समाई हैं, उसने अपने मन से देखा है अर्थात् निश्चय किया है कि सारी जीव सृष्टि आने-जाने वाली (अर्थात् विनश्वर) है। जो सत्गुरु की सेवा करते हैं, उनका मन सदा निश्चल हुआ है और उन्होंने अपने घर (स्वरूप) में वास किया है ॥३॥

गुर कै सबदि रिदै दिखाइआ ॥
माइआ मोहु सबदि जलाइआ ॥
सचो सचा वेखि सालाही ॥
गुर सबदी सचु पावणिआ ॥४॥

जिनको गुरु ने उपदेश देकर (हरि) हृदय मे दिखा दिया है, उन्होंने गुरु के शब्द द्वारा माया के मोह को जला दिया है। वे (सर्वरूप से) केवल सत्य ही सत्य को देखते हैं और सत्य की ही स्तुति करते हैं, किन्तु (स्मरण रहे कि) गुरु के उपदेश द्वारा ही वे सच्चे परमात्मा को प्राप्त करते हैं ॥४॥

जो सचि राते तिन सची लिव लागी॥
हरिनामु समालहि से वडभागी ॥
सचै सबदि आपि मिलाए ॥
सतसंगति सचु गुण गावणिआ ॥५॥

जो सच्चे नाम मे रगे हुए हैं, उनकी ही सच्ची प्रीति परमात्मा से लगी हुई है और भाग्यशाली हरि का नाम सदैव स्मरण करते (संभालते) हैं। जो (जिज्ञासु) सत्सगति मे सच्चे प्रभु के गुणों का गायन करते हैं, उनको ही सच्चे शब्द अर्थात् ब्रह्म ने अपने साथ आप मिला लिया है ॥५॥

लेखा पड़ीऐ जे लेखे विचि होवै ॥
ओहु अगमु अगोचरु सबदि सुधि होवै ॥
अनदिनु सच सबदि सालाही
होर कोइ न कीमति पावणिआ ॥६॥

(हे भाई !) यदि परमात्मा लेखे मे हो, तो लेखा पढने में लाभ है, किन्तु 'वह' मन वाणी और इन्द्रियो की पहुच से परे हैं अर्थात् अगम्य व अगोचर है। केवल (गुरु के) ज्ञान (उपदेश) से ही 'उसकी' समझ आ सकती है। जो रात-दिन (गुरु के शब्द) द्वारा सच्चे परमात्मा की स्तुति करते हैं वे ही जानते हैं अन्य कोई 'उसकी' कीमत आक नही सकते ॥६॥

पड़ि पड़ि थाके सांति न आई ॥
तृसना जाले सुधि न काई ॥

विद्वान (धर्म-ग्रन्थों को) पढ़-पढ़कर थक गए हैं, पर उनको (पढ़ने से भी) शान्ति नही मिली। (विद्वानो को) तृष्णा जला रही है, इसलिए उन्हे (भी) परमात्मा की या अपने स्वरूप की समझ

बिखु बिहाझहि बिखु मोह पिआसे
कूड़ु बोलि बिखु खावणिआ ॥७॥

किंचित्त मात्र भी नहीं है। वे (माया के) मोह के वशीभूत विषयों के प्यासे हैं, वे विषयों को ही खरीदते हैं और मिथ्या झूठा बोल-कर विषय रूपी विष को खाते हैं ॥७॥

गुर परसादी एको जाणा ॥
दूजा मारि मनु सचि समाणा ॥
नानक एको नामु वरतै मन अंतरि
गुर परसादी पावणिआ ॥८॥
१७॥१८॥

जिन जिज्ञासु पुरुषों ने गुरु की कृपा से एक अद्वितीय पर-मेश्वर को जाना है, उनका मन द्वैत-भाव को मारकर सत्य में समाया है। हे नानक ! उनके मन में एक परमेश्वर ही बसता है, किन्तु 'वह' गुरु की प्रसन्नता से प्राप्त होता है ॥८॥१७॥१८॥

माझ महला ३॥

"सत्य स्वरूप परमेश्वर सर्वत्र परिपूर्ण है।"

वरन रूप वरतहि सभ तेरे ॥
मरि मरि जंमहि फेर पवहि घणेरे ॥
तूं एको निहचलु अगम अपारा
गुरमती बूझ बुझावणिआ ॥१॥

(हे प्रभु !) इस नाम-रूपात्मक सृष्टि में सर्वत्र तुम्हारे ही रूप रंग व्याप्त हैं। जो इस रहस्य को नहीं जानते वे बार-बार जन्मते हैं और कई बार चौरासी के चक्र में पड़ते हैं। हे परमेश्वर ! तू एक निश्चल है, अगम्य है और अपार है, परन्तु गुरु की मति से ही यह ज्ञान प्राप्त होता है ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
रामनामु मंनि वसावणिआ ॥
तिसु रूपु न रेखिआ वरनु न कोई
गुरमती आपि बुझावणिआ ॥१
॥रहाउ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) अपना जीव भी उनके ऊपर न्यौछावर करता हूँ, जिन्होंने, रामनाम को मन में बसाया है। 'उस' प्रभु का न रूप, न रंग और न चिह्न वर्ण ही है। इस बात की समझ गुरु की मति धारण करने वाले जीवों को परमात्मा आप ही देता है ॥१॥ रहाउ ॥

सभ एका जोति जाणै जे कोई ॥
सतिगुरु सेविऐ परगटु होई ॥
गुपतु परगटु वरतै सभ थाई
जोती जोति मिलावणिआ ॥२॥

यदि कोई (इस बात को) जानता भी है कि सभी (जीवों में एक (परमात्मा) की ही ज्योति (विद्यमान) है, (तो वह यह भी जाने कि केवल) सत्गुरु की सेवा करने से ही यह ज्योति प्रकट होती है (अर्थात प्रत्यक्ष दिखाई देती है)। 'वह' गुप्त अथवा प्रकट रूप में सभी जगह पर व्याप्त है। (जिन्होंने ऐसा समझ लिया है) उनकी ज्योति (आत्मा) प्रभु की ज्योति के साथ मिल जाती है। ॥२॥

तिसना अगनि जलै संसारा ॥
लोभु अभिमानु बहुतु अहंकारा ॥

तृष्णा की अग्नि में (सारा) संसार जल रहा है, क्योंकि उसमें लोभ, अभिमान और अहंकार बहुत (बढ़ रहा) है। इसी

मरि मरि जनमें पति गवाए अपणी
बिरथा जनमु गवावणिआ ॥३॥

कारण (जीव) बारम्बार मरते और जन्मते हैं, अपनी प्रतिष्ठा गँवाते हैं और अपना (मनुष्य) जन्म गँवा देते हैं ॥३॥

गुर का सबदु को विरला बूझै ॥
आपु मारे ता त्रिभवणु सूझै ॥
फिरि ओहु मरै न मरणा होवै
सहजे सचि समावणिआ ॥४॥

गुरु के उपदेश को कोई विरला (भाग्यशाली ही) समझता हैं, (हाँ) (यदि गुरु शब्द द्वारा कोई अहंकार को मार दे, तो उसे तीन लोको के रहस्य की) समझ आ जाती है। (जो जीवित ही अहम् की विसर्जन कर देता है) वह फिर मरता नही, (हाँ) मृत्यु उसके निकट नही आती। वह सत्य-स्वरूप परमेश्वर में सहज ही समा जाता है ॥४॥

माइआ महि फिरि चितु न लाए ॥
गुर कै सबदि सद रहै समाए ॥
सचु सलाहे सभ घट अंतरि
सचो सचु सुहावणिआ ॥५॥

(सहजावस्था प्राप्त करके) वह फिर माया में चित्त को नहीं लगाता। (हाँ) गुरु के शब्द मे सदा वह समाया रहता है। वह परमेश्वर को सभी शरीरो मे व्यापक समझकर 'उस' सच्चे परमात्मा की ही स्तुति करता है और सत्य को पाकर निश्चय ही शोभायमान होता है ॥५॥

सचु सालाही सदा हजूरे ॥
गुर कै सबदि रहिआ भरपूरे ॥
गुर परसादी सचु नदरी आवै
सचे ही सुखु पावणिआ ॥६॥

वह सच्चे परमात्मा को सर्वदा प्रत्यक्ष जानकर 'उसकी' स्तुति करता है, क्योकि उसने गुरु के शब्द के द्वारा परमात्मा को सर्वत्र परिपूर्ण जाना है। गुरु की कृपा से ही सच्चा परमात्मा दृष्टि गोचर होता है और सत्य-स्वरूप परमात्मा से सुख प्राप्त करता है ॥६॥

सचु मन अंदरि रहिआ समाइ ॥
सदा सचु निहचलु आवै न जाइ ॥
सचे लागै सो मनु निरमलु
गुरमती सचि समावणिआ ॥७॥

'वह' सत्य स्वरूप परमात्मा (प्रत्येक जीव) के मन में समाया हुआ है। 'वह' सदा सच है, निश्चल है, वह न आता (जन्म लेता), और न जाता (मरता) है। पर जो ऐसे सच्चे परमात्मा से मन लगाते है, उनका ही मन निर्मल होता है और वे ही गुरु के उपदेश द्वारा सच्चे परमात्मा मे समा जाते हैं ॥७॥

सचु सालाही अवरु न कोई ॥
जितु सेविऐ सदा सुखु होई ॥
नानक नामि रते वीचारी
सचो सचु कमावणिआ ॥८॥
१८॥१६॥

(हे भाई!) जो (प्यारे) सत्य स्वरूप परमात्मा की स्तुति करते हैं, वे अन्य किसी को नही पहचानते। 'उसी' सच्चे परमात्मा की सेवा करने से सदा सुख प्राप्त होता है। हे नानक ! जो विचारवान् पुरुष प्रभु मे अनुरक्त (लीन) हैं, वे निश्चय करके सत्य की ही कमाई करते हैं ॥८॥१८॥१६॥

माझ महला ३॥

"निर्मल नाम ही अहंकार की मैल को दूर करता है।"

निरमल सबदु निरमल है बाणी ॥
निरमल जोति सभ माहि समाणी ॥
निरमल बाणी हरि सालाही जपि
हरि निरमलु मैलु गवावणिआ ॥१॥

परमात्मा की ज्योति मल से रहित (परम शुद्ध) है जो सभी जीवो मे समायी हुई (परिव्याप्त) है। (गुरु का) शब्द (भी) निर्मल है और (उसकी) वाणी (भी) निर्मल है। (इस) निर्मल वाणी से हरि की स्तुति और निर्मल हरि को (निर्मल शब्द द्वारा) जपकर (जीव अपने पापों की) मैल को गँवा (दूर कर) देता है ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
सुखदाता मंनि वसावणिआ ॥
हरि निरमलु गुर सबदि सलाही
सबदो सुणि तिसा मिटावणिआ ॥१
॥रहाउ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) अपना जीव (भी) उनके ऊपर कुर्बान करता हूँ, जिन्होने सुखो के दाता परमात्मा को अपने मन में बसाया किया हैं। वे (निर्मल) गुरु के (निर्मल) शब्द द्वारा निर्मल हरि की स्तुति करते है तथा उसका शब्द सुनकर तृष्णा को मिटाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

निरमल नामु वसिआ मनि आए ॥
मनु तनु निरमलु माइआ मोहु
गवाए ॥
निरमल गुण गावै नित साचे के
निरमल नादु वजावणिआ ॥२॥

जिन्हों के मन में निर्मल नाम आकर निवास करता है, उन्ही का मन और तन निर्मल हो जाता है और उन्होने ही माया का मोह गँवा दिया है। वे सदैव सच्चे परमात्मा के निर्मल गुण गाते हैं और नित्य (गुरु का) निर्मल शब्द (नाद) उच्चारण करते हैं(बजाते है) ॥२॥

निरमल अंमृतु गुर ते पाइआ ॥
विचहु आपु मुआ तिथै मोहु न
माइआ ॥
निरमल गिआनु धिआनु अति निरमलु
निरमल बाणी मंनि वसावणिआ
॥३॥

अमृत रूप निर्मल नाम गुरु से (ही) प्राप्त होता है। जिसके हृदय से अहकार मर गया है, उस (हृदय मे) माया का मोह (रह नही सकता)। जिन्होंने अपने मन मे निर्मल वाणी को बसाया है, उन्होने (ही) निर्मल ज्ञान प्राप्त किया है और उनका ध्यान भी अति निर्मल है ॥३॥

जो निरमलु सेवे सु निरमलु होवै ॥
हउमै मैलु गुर सबदे धोवै ॥

जो (जीव) निर्मल (शुद्ध स्वरूप) परमात्मा की सेवा करते हैं, वे (स्वयं) निर्मल होते हैं और गुरु के शब्द द्वारा अहकार की मैल धो देते हैं (अर्थात अहंकार निवृत्त करते हैं)। जिन्हो को वाणी की अनाहद ध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है, उन्हों के (जीवन मे)

निरमल वाजै अनहद धुनि बाणी
दरि सचै सोभा पावणिआ ॥४॥

निर्मल (प्रभु) प्रकट होता है और वे सच्चे परमात्मा की दरबार में शोभा प्राप्त करते हैं ॥४॥

निरमल ते सभ निरमल होवै ॥
निरमलु मनूआ हरि सबदि परोवै ॥
निरमल नामि लगे बडभागी
निरमलु नामि सुहावणिआ ॥५॥

निर्मल (नाम के जपने से) सभी निर्मल होते हैं। (हाँ) जब (जीव) हरि नाम (शब्द) को मन में पिरो लेते हैं, तभी निर्मल (होते) हैं। जो (जीव) निर्मल नाम (की सेवा) में लगे हुए हैं और निर्मल नाम के कारण सुशोभित हो रहे हैं, (वास्तव में वे ही) बड़े ही भाग्यशाली हैं ॥५॥

सो निरमलु जो सबदे सोहै ॥
निरमल नामि मनु तनु मोहै ॥
सचि नामि मलु कदे न लागै ॥
मुखु ऊजलु सचु करावणिआ ॥६॥

जो (जीव) (गुरु के) शब्द द्वारा सुशोभित हो रहे हैं, वे ही सदा निर्मल हैं। निर्मल नाम उनके मन और तन को मोह लेता है (अर्थात वे नाम में संलग्न हो जाते हैं)। सच्चे नाम के कारण (अहकार की) मैल कभी भी नहीं लगती। सच्चा नाम मुख को उज्जवल करने वाला और सत्य करने वाला है ॥६॥

मनु मैला है दूजै भाइ ॥
मैला चउका मैलै थाइ ॥
मैला खाइ फिरि मैलु वधाए
मनमुख मैलु दुखु पावणिआ ॥७॥

मन द्वैत-भाव के कारण मैला होता है। (जब तक मन मैला है) चौकी भी मैली है और वह स्थान (भी) मैले हैं (अर्थात यदि मन मैला है तो बाह्य विधि-विधानों का कोई महत्व नहीं)। (मनमुख) जो खाते हैं वह (भी) मैला है और इसलिए पापों की मैल को बढ़ाते हैं और पापों की मैल के कारण दुख प्राप्त करते हैं ॥७॥

मैले निरमल सभि हुकमि सबाए ॥
से निरमल जो हरि साचे भाए ॥
नानक नामु वसै मन अंतरि
गुरमुखि मैलु चुकावणिआ ॥८॥
१९॥२०॥

मैले (जीव) अथवा निर्मल (जीव) सभी परमात्मा के हुकम में (बन्धे हुए) हैं। निर्मल वही हैं जो सच्चे हरि को अच्छे लगते हैं। हे नानक ! जिन गुरमुखों के मन में (हरि) नाम बसा हुआ है, उन्हीं की अहकार रूपी मैल को (नाम ने) दूर कर दिया है (अर्थात् धो दिया है) ॥८॥ १९॥२०॥

माझ महला ३॥

"गोबिन्द के गुण गाने से मन उज्जवल होता है।"

गोविंदु ऊजलु ऊजल हंसा ॥
मनु बाणी निरमल मेरी मनसा ॥
मनि ऊजल सदा मुख सोहहि अति
ऊजल नामु धिआवणिआ ॥१॥

(मेरा) गोबिन्द उज्जवल (मानसरोवर) है और हंस (रूप सन्तजन भी) उज्जवल हैं। उनके द्वारा मेरा मन, वाणी और इच्छा (मन का भाव) (सभी) निर्मल हुए हैं। (सन्तो का) मन उज्जवल है, उन्हीं के मुख सदैव अति शोभायमान हैं क्योंकि वे (उज्जवल) परमात्मा के नाम का ध्यान करते हैं ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
गोबिद गुण गावणिआ ॥
गोबिदु कहै दिन राती
गोबिद गुण सबदि सुणावणिआ ॥१
॥रहाउ॥

मैं बलिहारी जाता हूं, (हाँ) मैं अपना जीव (भी) उन के ऊपर कुर्बान करता हूँ जो (मेरे) गोबिन्द के गुण गाते हैं और दिन-रात गोबिन्द-गोबिन्द का उच्चारण करते हैं और गुरु की शिक्षा (शब्द) को लेकर औरो को गोबिन्द के गुण सुनाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

गोबिदु गावहि सहजि सुभाए ॥
गुर कै भै ऊजल हउमै मलु जाए ॥
सदा अनंदि रहहि भगति करहि
दिनु राती
सुणि गोबिद गुण गावणिआ ॥२॥

वे गोविन्द (के गुणो) को सहज-स्वभाव से गाते हैं, जिन्हों की (अहंकार रूप) मैल गुरु के भय से चली गई है। वे सदा आनन्द में रहते हैं, दिन-रात (गोबिन्द की) भक्ति करते हैं और गोबिन्द के गुण सुनते तथा गाते हैं ॥२॥

मनूआ नाचै भगति द्रिड़ाए ॥
गुर कै सबदि मनै मनु मिलाए ॥
सचा तालु पूरे माइआ मोहु चुकाए ॥
सबदे निरति करावणिआ ॥३॥

मन (जो सदा माया के कारण) नृत्य कर रहा है, (भक्तजन) उसे भक्ति से दृढ करते हैं (अर्थात भक्ति में लीन होकर, मन में आनन्द विभोर होकर नाचते है। वे स्वयं भी भक्ति करते हैं और दूसरो के मन में भक्ति का भाव दृढ कराते है) और गुरू के शब्द द्वारा अपने मन को दिव्य ज्योति के साथ एक स्वर करते हैं। माया के मोह को निवृत करते है, यह उनका सच्चा और पूर्ण ताल है और दूसरो को उपदेश देकर उनसे भी नृत्य (भगवान की भक्ति मे लीन होकर नाचना) करवाते हैं ॥३॥

ऊचा कूके तनहि पछाड़े ॥
माइआ मोहि जोहिआ जमकाले ॥
माइआ मोहु इसु मनहि नचाए
अंतरि कपटु दुखु पावणिआ ॥४॥

किन्तु जो जीव कपटपूर्ण नृत्य करता है (वह भक्त नही), चाहे वह ऊँचे (स्वर मे) पुकारे और शरीर को (धरती पर बार-बार) गिराये। वह माया के मोह के कारण ऐसा करता है इसलिए यम काल उसे पकडने के लिए देखता रहता है। (वस्तुत) माया-मोह उसके मन को नचा रहा है और हृदय-कपट के कारण दुख प्राप्त करता है ॥४॥

गुरमुखि भगति जा आपि कराए ॥
तनु मनु राता सहजि सुभाए ॥
बाणी वजै सबदि वजाए
गुरमुखि भगति थाइ पावणिआ ॥५॥

गुरमुखो वाली रास (भक्ति) तभी पड़ती है यदि (मेरा गोबिन्द) स्वय करवाता है। उन्हो का मन और तन सहज स्व-भाव ही गोबिन्द (के प्रेम-रंग) में रंगा रहता है। जो गुरमुख (गुरु के) शब्द को जपते हैं, उनकी (यश की) वाणी (संसार में) प्रकट होती है तथा उन गुरमुखो की भक्ति (भी) सफल होती है ॥५॥

बहु ताल पूरे वाजे वजाए ॥
ना को सुणे न मंनि वसाए ॥
माइआ कारणि पिड़ बंधि नाचै
दूजै भाइ दुखु पावणिआ ॥६॥

मनमुख ताल पूर्ण नृत्य करते, बहुत बाजे बजाते हैं। (मोह-माया के वशीभूत होने के कारण यह सब द्वैत-भाव से पूर्ण होता है)। इस नृत्य और बाजो को कोई भी (गुरमुख) न सुनता है और न उस ओर ध्यान देता है (मन मे नही बसाता)। ये माया-मोह के कारण अखाडा बाधकर नाचते हैं, किन्तु द्वैतभाव के कारण दुःख प्राप्त करते हैं ॥६॥

जिसु अंतरि प्रीति लगै सो मुकता ॥
इंद्री वसि सच संजमि जुगता ॥
गुर कै सबदि सदा हरि धिआए ॥
एहा भगति हरि भावणिआ ॥७॥

जिस (जीव के) हृदय में (गोविन्द के साथ) प्रीति उत्पन्न हो गई है, वह (मोह-माया तथा जन्म-मरण के चक्र से) मुक्त है। वह इन्द्रियो को अपने वश मे करके सच्चे रहन-सहन में युक्ति वाला होता है अथवा सयमित कर जितेन्द्रिय होता है। वह गुरु के उपदेश से सदा हरि का ध्यान करता है। ऐसी भक्ति (मेरे) हरि को अच्छी लगती है ॥७॥

गुरमुखि भगति जुग चारे होई ॥
होरतु भगति न पाए कोई ॥
नानक नामु गुर भगती पाईऐ
गुर चरणी चितु लावणिआ ॥८॥
२०॥२१॥

चारो युगों मे गुरु शिक्षा द्वारा (गुरमुखो ने) भक्ति की है। दूसरे उपायो से कोई भक्ति नही कर पाया है। हे नानक ! गुरु-भक्ति करने से, गुरु के चरणो मे चित्त लगाने से (ही) (गोबिन्द का) नाम प्राप्त होता है ॥८॥२०॥२१॥

माझ महला ३॥

"हरि के सेवक सदैव सुखी हैं।"

सचा सेवी सचु सालाही ॥
सचै नाइ दुखु कबही नाही ॥
सुखदाता सेवनि सुखु पाइनि
गुरमति मनि वसावणिआ ॥१॥

हे सत्य स्वरूप परमात्मन् ! (अभिलाषा है कि मैं शरीर से आपकी) सेवा करूँ और (वाणी करके) हे सत्य स्वरूप ! आपकी स्तुति करूँ। हे सत्य स्वरूप परमेश्वर ! आपके नाम का ध्यान करने से दुःख कभी नही लगता। हे सुख दाता ! जिन्होने (सेवको ने) गुरु की मति लेकर आपको मन मे बसाया है, वे ही सुख प्राप्त करते हैं ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
सुख सहजि समाधि लगावणिआ ॥
जो हरि सेवहि से सदा सोहहि
सोभा सुरति सुहावणिआ ॥१॥
रहाउ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीवन (भी) उनके ऊपर कुर्बान करता हूँ, जो (भी) सुख स्वरूप परमात्मा में समाधि लगाते हैं। हे हरि ! जो भी आपकी सेवा करते हैं, वे सदा शोभायमान होते हैं। वे ही (बाह्य) शोभा और अन्दर की प्रीति (सुरति) के कारण शोभनीय हैं ॥१॥ रहाउ ॥

सभु को तेरा भगतु कहाए ॥
सेई भगत तेरै मनि भाए ॥

हे प्रभु ! सब कोई आपका ही भक्त कहलाता, है, पर भक्त वे हैं जो आपके मन को भाते हैं। जो (भी) आपकी स्तुति करते हैं,

सचु बाणी तुधै सालाहनि
रंगि राते भगति करावणिआ ॥२॥

उनकी वाणी सच्ची है ; वे स्वयं तो प्रेम-रंग में रंगे हुए हैं किन्तु अन्य लोगों से भी आपकी भक्ति करवाते हैं ॥२॥

सभु को सचे हरि जीउ तेरा ॥
गुरमुखि मिलै ता चूकै फेरा ॥
जा तुधु भावै ता नाइ रचावहि
तूं आपे नाउ जपावणिआ ॥३॥

हे सत्य स्वरूप हरि जी ! सब कोई आपका है, किन्तु जो गुरु की शरण ग्रहण करता है, वही आपको आकर मिलता है, वह चौरासी के चक्र से मुक्त हो जाता है । हे परमात्मा ! जब आपको अच्छा लगता है, तब आप नाम मे प्रीति उत्पन्न कराते हो और आप स्वयं ही नाम जपाते है ॥३॥

गुरमती हरि मंनि वसाइआ ॥
हरखु सोगु सभु मोहु गवाइआ ॥
इकसु सिउ लिव लागी सदही
हरिनामु मंनि वसावणिआ ॥४॥

हे हरि ! जिन्होंने गुरु मति लेकर आपको मन में बसाया है, उन्होंने हर्ष, शोक और मोहादि सभी को दूर कर दिया है । उनकी सदा केवल एक तुम्हारे साथ ही प्रीति लगी रहती है क्योंकि हरिनाम को उन्होंने मन मे बसाया है ॥४॥

भगत रंगि राते सदा तेरै चाए ॥
नउ निधि नामु वसिआ मनि आए ॥
पूरै भागि सतिगुरु पाइआ
सबदे मेलि मिलावणिआ ॥५॥

हे प्रभु ! भक्त आपके प्रेम-रग मे रगे हुए हैं, क्योंकि उनको सदा आपके (दर्शन) की चाहना है, इसलिए नवनिधि (प्रभु) का नाम उनके मन में आकर बस गया है। जिन्होंने पूर्ण भाग्य से सत्गुरु प्राप्त किया है, वे गुरु के उपदेश द्वारा परमात्मा से मिल जाते हैं ॥५॥

तूं दइआलु सदा सुखदाता ॥
तूं आपे मेलिहि गुरमुखि जाता ॥
तूं आपे देवहि नामु वडाई
नामि रते सुखु पावणिआ ॥६॥

हे सुखदाता ! तुम सदा दयालु हो । जिन्होने गुरु की शिक्षा द्वारा आपको जाना है, उनको तुम आप अपने साथ मिला लेते हो। तुम आप ही (भक्तो को) नाम की बड़ाई देते हो। हे परमेश्वर ! जो भक्त तुम्हारे नाम (रग) में रंगे हुए हैं, वे सर्वदा सुख को प्राप्त करते हैं ॥६॥

सदा सदा साचे तुधु सालाही ॥
गुरमुखि जाता दूजा को नाही ॥
एकसु सिउ मनु रहिआ समाए
मनि मंनिऐ मनहि मिलावणिआ ॥७॥

हे सत्य स्वरूप परमात्मा ! (अभिलाषा है कि मैं) सदा सर्वदा तुम्हारा स्तुति करता रहूँ । गुरमुखो ने आप के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जाना है । उनका मन एक (प्रभु) के साथ मिला रहा है, इसलिए मन के मानने से अपने स्वरूप मे तुम मिला लेते हो ॥७॥

गुरमुखि होवै सो सालाहे ॥
साचे ठाकुर वेपरवाहे ॥

हे (मेरे) बेपरवाह सच्चे ठाकुर ! जो गुरमुख हैं, वे आपकी स्तुति करते हैं । हे नानक ! जिन के मन में गुरु की शिक्षा से नाम

नानक नामु वसै मन अंतरि
गुर सबदी हरि मेलावणिआ ॥८॥
२१॥२२॥

का वास है, हे हरि ! उनको तुम आप अपने में मिला लेते हो ॥८॥२१॥२२॥

माझ महला ३॥

"गुरमुखों और मनमुखो की तुलना।"

तेरे भगत सोहहि साचै दरबारे ॥
गुर कै सबदि नामि सवारे ॥
सदा अनंदि रहहि दिनु राती
गुण कहि गुणी समावणिआ ॥१॥

(हे प्रभु! तुम्हारी भक्ति करने वाले) भक्त सच्ची दरबार में शोभा पाते हैं। (भक्तजन) गुरु के शब्द द्वारा नाम (जपकर अपने जीवन को) सँवार लेते हैं। वे सदा आनन्द में रहते हैं और दिन-रात गुण उच्चारण कर करके आप सर्व-गुण सम्पन्न परमात्मा में समा जाते हैं ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
नामु सुणि मंनि वसावणिआ ॥
हरि जीउ सचा ऊचो ऊचा
हउमै मारि मिलावणिआ ॥१॥
रहाउ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव (भी) उन (भक्त-जनों) के ऊपर कुर्बान करता हूँ, जिन्हों ने (हरि) नाम श्रवण करके मन मे बसाया हैं। हे हरि जी ! आप सत्य स्वरूप हैं और सर्वोच्य हैं (सब से महान हैं)। जो अहँकार को मार देते हैं, उनको आप अपने साथ मिलाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

हरि जीउ साचा साची नाई ॥
गुरपरसादी किसै मिलाई ॥
गुर सबदि मिलहि से विछुड़हि नाही
सहजे सचि समावणिआ ॥२॥

हे हरि जी ! आप सत्य स्वरूप हैं। आपका नाम भी सच्चा है अथवा आपकी महानता सच्ची है। गुरु की कृपा से आप किसी विरले (गुरमुख) को अपने से मिलाते हो। जो गुरु के उपदेश से आप से मिलते हैं वे (फिर) बिछुड़ते नही हैं और वे सहज ही हे सत्य स्वरूप ! आप मे समा जाते हैं ॥२॥

तुझ ते बाहरि कछू न होइ ॥
तूं करि करि वेखहि जाणहि सोइ ॥
आपे करे कराए करता
गुरमति आपि मिलावणिआ ॥३॥

हे प्रभु ! आपके (हुकम) के बिना (संसार में) कुछ भी नहीं होता। तुम आप ही (सृष्टि का) निर्माण करके देख भाल करते हो और (सब जीवो के कर्मो को) जानते हो। हे सृष्टि कर्त्ता ! आप स्वयं ही (सब कुछ) करते हो और (जीवो से) करवाते हो तथा गुरु की मति द्वारा गुरमुखो को) अपने साथ मिलाते हो ॥३॥

कामणि गुणवंती हरि पाए ॥
भै भाइ सीगारु बणाए ॥
सतिगुरु सेवि सदा सोहागणि
सच उपदेसि समावणिआ ॥४॥

हे हरि ! वह (जीव रूप) स्त्री गुणो वाली है, जिसने भय और प्रेम का शृंगार किया है और हरि को पाया है तथा सत्गुरु की सेवा करके सदा सुहागिन बनकर (गुरु के) सच्चे उपदेश में समा गई है ॥४॥

सबदु विसारनि तिना ठउरु न ठाउ ॥
भ्रमि भूले जिउ सुंञै घरि काउ ॥
हलतु पलतु तिनी दोवै गवाए
दुखे दुखि विहावणिआ ॥५॥

जो (जीव) गुरु के शब्द को भुला देते हैं उनको (ठहरने के लिए) न ठिकाना है (न आश्रय के लिए) स्थान है। वे भ्रम में भूले हुए हैं। उनका हाल वही है जो सुनसान घर मे कौवे का होता है (कौवे को खाली घर में कुछ नही खाने को मिलता)। वे लोक और परलोक दोनों बिगाड़ देते हैं तथा उनकी (आयु) केवल दु ख ही दु.ख में व्यतीत होती है ॥५॥

लिखदिआ लिखदिआ
कागद मसु खोई ॥
दूजै भाइ सुखु पाए न कोई ॥
कूड़ु लिखहि तै कूड़ु कमावहि
जलि जावहि कूड़ि चितु लावणिआ
॥६॥

(मनमुख) लिखते-लिखते कागज (कलम) और स्याही को (व्यर्थ में) खो देते हैं क्योंकि द्वैत-भाव (तथा माया प्राप्ति की इच्छा से कभी) कोई सुख नही पाता। वे झूठ ही लिखते हैं और झूठ ही कमाते हैं तथा झूठ से चित्त लगाने के कारण (तृष्णा की) अग्नि में जल जाते हैं ॥६॥

गुरमुखि सचो सचु लिखहि वीचारु ॥
से जन सचे पावहि मोखदुआरु ॥
सचु कागदु कलम मसवाणी
सचु लिखि सचि समावणिआ ॥७॥

गुरमुख सत्य ही लिखते हैं और सत्य का (ही) विचार करते हैं। वे ही जन मुक्ति का द्वार (भक्ति) प्राप्त करते हैं। (उन गुर-मुखो का) कागज, कलम तथा स्याही (ये) सब कुछ सच्च (सफल) है, क्योकि वे सत्य को लिखकर सत्य स्वरूप मे समा जाते हैं॥७॥

मेरा प्रभु अंतरि बैठा वेखै ॥
गुर परसादी मिलै सोई जनु लेखै ॥
नानक नामु मिलै वडिआई
पूरे गुर ते पावणिआ ॥८॥
२२॥ २३॥

मेरा प्रभु हृदय (मन) में बैठा हुआ सब कुछ देख रहा है. किन्तु जो गुरु की कृपा से (प्रभु के साथ) मिलता है, वही जन लेखे में है (अर्थात् उसकी गिनती ऐसे जीवो मे होती है. जिनका मिलन परमात्मा से होना है या हो गया है)। हे नानक ! नाम (जपने से जीवों को) से बडाई मिलती है, पर (नाम) पूर्ण गुरु से ही प्राप्त होता है ॥८॥२२॥२३॥

माझ महला ३॥

"गुरु की आवश्यकता।"

आतमराम परगासु गुर ते होवै ॥
हउमै मैलु लागी गुर सबदी खोवै ॥
मनु निरमलु अनदिनु भगती राता
भगति करे हरि पावणिआ ॥१॥

आत्मा परमात्मा रूप है इसका ज्ञान रूप प्रकाश गुरु द्वारा होता है अथवा (मन में) सर्वव्यापक राम का ज्ञान रूप प्रकाश गुरु द्वारा होता है, क्योंकि जो अहंकार की मैल लगी हुई है वह गुरु के उप-देश से दूर होती है। (फिर) रात-दिन भक्ति में अनुरक्त हुआ मन निर्मल हो जाता हैं। इस प्रकार भक्ति करके हरि प्राप्त होता है ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
आपि भगति करनि
अवरा भगति करावणिआ ॥
तिना भगत जना कउ
सदनमसकारु कीजै
जो अनदिनु हरिगुण गावणिआ ॥१॥
रहाउ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) अपना जीव (भी) कुर्बान उन (भक्तों) के ऊपर करता हूँ जो स्वय भक्ति करते हैं और अन्य लोगों से भक्ति कराते हैं। जो (भक्त) रात-दिन हरि के गुण गाते हैं, उन भक्तो को सदा नमस्कार करनी चाहिए (अर्थात भक्तजनों को अपना मुखिया समझना चाहिए ॥१॥ रहाउ॥

आपे करता कारणु कराए ॥
जितु भावै तितु कारै लाए ॥
पूरै भागि गुर सेवा होवै
गुर सेवा ते सुखु पावणिआ ॥२॥

(सृष्टि) कर्त्ता आप ही कारण रूप होकर (सृष्टि की रचना) करता है और जैसा उचित समझता है, (जीवो को) उसी काम में लगाता है। पूर्ण भाग्य होने पर गुरु की सेवा (प्राप्त) होती है और गुरु की सेवा से ही (आत्मिक) सुख प्राप्त होता है ॥२॥

मरि मरि जीवै ता किछु पाए ॥
गुरपरसादी हरि मंनि वसाए ॥
सदा मुकतु हरि मंनि वसाए ॥
सहजे सहजि समावणिआ ॥३॥

जब (जीव) मर-मर कर जीता है (अर्थात मोह-माया तथा विकारो भरे जीवन से मन को मार देता है और प्रभु-भक्ति में मन को लगा देता है) तभी कुछ (लाभ) प्राप्त करता है और गुरु की कृपा से हरि (नाम) को मन मे बसाता है। जिन्होने हरि (नाम) को अपने मन मे बसाया है, वे (ही) सदा मुक्त हैं और सहज ही (सहजावस्था अथवा सहज प्रभु) मे समा जाते हैं ॥३॥

बहु करम कमावै मुकति न पाए ॥
देसंतरु भवै दूजै भाइ खुआए ॥
बिरथा जनमु गवाइआ कपटी
बिनु सबदै दुखु पावणिआ ॥४॥

(हरि-भक्ति के बिना यह जीव चाहे) नाना प्रकार के (सकाम) कर्म भी करे, किन्तु (कर्मों से) मुक्ति नही प्राप्त कर सकता। वह द्वैत-भाव के कारण देशान्तर मे भटकता है और दुःख पाता है। इस कपटी जीव ने व्यर्थ में ही अपना (अमूल्य) जन्म गंवा दिया है और बिना (गुरु) शब्द (ग्रहण किये) (जन्म-मरण के) दुःख को पाता है ॥४॥

धावतु राखै ठाकि रहाए ॥
गुर परसादी परम पदु पाए ॥
सतिगुरु आपे मेलि मिलाए
मिलि प्रीतम सुखु पावणिआ ॥५॥

(प्रश्न: सुख की प्राप्ति कैसे होगी? उत्तर.) जो दौड़ते हुए इन्द्रियों को (विषय-वसनाओ और मन्द-कर्मों से रोक कर रखे और (मन्द-सकल्पो से) मन को रोक कर अपने अधीन करता है, वह गुरु की कृपा से परम पदवी (अर्थात मोक्ष) पाता है। प्रभु आप ही सत्गुरु से मेल मिलाप कराता है और प्रियतम (सत्गुरु) से मिलकर (जीव) सुख प्राप्त करता है ॥५॥

इकि कूड़ि लागे कूड़े फल पाए ॥
दूजै भाइ बिरथा जनमु गवाए ॥
आपि डूबे सगले कुल डोबे
कूड़ु बोलि बिखु खावणिआ ॥६॥

(इस संसार में) एक ऐसे (जीव हैं अर्थात मनमुख) जो झूठे कर्मों में लगे हैं, वे उसका फल (भी) झूठा ही पाते हैं और द्वैत-भाव के कारण अपना (मनुष्य) जन्म व्यर्थ ही गवा देते हैं। ऐसे जीव स्वयं तो (भव-सागर में) डूबते ही हैं, किन्तु अपने पूरे कुल को भी डुबा देते हैं और झूठ बोलकर विषवत् विषयों को खाते हैं ॥६॥

इसु तन महि मनु को गुरमुखि देखै ॥
भाइ भगति जा हउमै सोखै ॥
सिध साधिक मोनिधारी रहे लिव लाइ
तिन भी तन महि
मनु न दिखावणिआ ॥७॥

इस तन में मन को (आत्मा को) कोई विरला गुरमुख ही देख पाता है। ऐसी दृष्टि या तो प्रेम-भक्ति से जीव प्राप्त करता है या अहकार का शोषण करके (अर्थात निवृति करके)। साधक, मौन व्रत धारण करने वाले भी परमात्मा से लौ लगा कर रहते हैं, किन्तु उनको भी तन मे आत्मा का ज्ञान न हुआ (अर्थात उनकी भी दृष्टि किसी न किसी रूपमें, शारीरिक रसो में अटकी रही) ॥७॥

आपि कराए करता सोई ॥
होरु कि करे कीतै किआ होई ॥
नानक जिसु नामु देवै सो लेवै
नामो मंनि वसावणिआ ॥८॥
२३॥२४॥

(सृष्टि) कर्त्ता (जीवो से) जो कुछ स्वयं कराता है, वही कुछ होता है और कोई अपनी इच्छा से क्या कर सकता है अथवा और के करने से हो भी क्या सकता है ? हे नानक ! जिसे 'वह' अपना नाम देता है, वह नाम को लेकर मन मे बसाता है (अर्थात हरि-नाम का निरन्तर अभ्यास करता है) ॥८॥२३॥२४॥

माझ महला ३॥

"हे जीव ! अन्तर्मुखी हो तो देखेगा अपने यार को।"

इसु गुफा महि अखुट भंडारा ॥
तिसु विचि वसै हरि अलख अपारा ॥
आपे गुपतु परगटु है आपे
गुर सबदी आपु वंञावणिआ ॥१॥

इस (शरीर रूपी) गुफा मे शुभ गुणो का अक्षय (अटूट) भण्डार है। इसमे ही अलख अपार हरि का वास है। 'वह' आप ही (मनमुखो के लिए) गुप्त और (गुरमुखो के लिये) प्रकट है। वे गुरु-उपदेश द्वारा अहकार को दूर कर देते हैं (वे गुरमुख हैं और अलक्ष्य अपार हरि को प्राप्त कर लेते हैं) ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
अंमृत नामु मनि वसावणिआ ॥
अमृत नामु महारसु मीठा
गुरमती अमृतु पीआवणिआ ॥१॥
रहाउ ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव (भी) उन (गुरमुखो) के ऊपर कुर्बान करता हूँ, जिन्हों ने अमृत रूपी नाम को अपने मन में बसाया है। अमृत नाम, जो महारस है (गुरमुखों के लिए अति) मीठा है, किन्तु गुरु की मति ग्रहण करने वाले (ही) नाम-अमृत रस को पीते हैं और दूसरों को पिलाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

हउमै मारि बजर कपाट खुल्हाइआ ॥
नामु अमोलकु गुर परसादी पाइआ ॥
बिनु सबदै नामु न पाए कोई
गुर किरपा मंनि वसावणिआ ॥२॥

जो अहंकार को मार कर वज्र (के समान दृढ़ अज्ञान रूपी) कपाट (किवाड़) को खुलाता है उसे ही गुरु की कृपा से अमूल्य नाम की प्राप्ति होती है। बिना (गुरु) शब्द (की कमाई) के कोई भी (जीव) नाम नहीं प्राप्त कर सकता। (केवल) गुरु की कृपा से (ही) नाम मन में निवास करता है ॥२॥

गुर गिआन अंजनु सचु नेत्री पाइआ ॥
अंतरि चानणु अगिआनु अंधेरु
गवाइआ ॥
जोती जोति मिली मनु मानिआ
हरि दरि सोभा पावणिआ ॥३॥

जब (मेरे) गुरुदेव ने ज्ञान रूपी अंजन को (बुद्धि रूपी) आँखों में निश्चय करके पाया तो अज्ञान रूपी अन्धकार दूर हो गया और (अन्धकार के दूर होते ही) अन्तर मे प्रकाश हो गया। जब मन मान गया तो (जीव की) ज्योति (परम) ज्योति से मिल गई और हरि के दरबार मे वह शोभा पाने वाला हो गया ॥३॥

सरीरहु भालणि को बाहरि जाए ॥
नामु न लहै बहुतु वेगारि दुखु पाए ॥
मनमुख अंधे सूझै नाही
फिरि घिरि आइ गुरमुखि वथु
पावणिआ ॥४॥

जो शरीर से बाहर (परमात्मा को, 'उसके' नाम को) ढूंढने जाता है, वह 'उसे' नही पाता। उसे नाम की प्राप्ति नहीं होती बल्कि वह बेगारियो की तरह दु:ख पाता है। मनमुख अन्धा है (अज्ञानी है) उसे कुछ नही सूझता, फिर भी जब इधर-उधर भटकने के बाद (गुरु की शरण मे आता है तो) गुरु की शिक्षा द्वारा (गुरमुख शरीर में ही नाम) वस्तु प्राप्त करता है ॥४॥

गुर परसादी सचा हरि पाए ॥
मनि तनि वेखै हउमै मैलु जाए ॥
बैसि सुथानि सद हरि गुण गावै ॥
सचै सबदि समावणिआ ॥५॥

जब (जीव की) अहकार रूपी मैल निकल जाती है तब वह मन-तन मे (हरि को) देखता है और गुरु की कृपा से सत्य स्वरूप हरि को प्राप्त करता है। वह सत्सगति (अच्छे स्थान में बैठकर सदा हरि के गुण गान करता है और गुरु शब्द के द्वारा वह सत्य स्वरूप परमात्मा मे समा जाता है ॥५॥

नउ दरि ठाके धावतु रहाए ॥
दसवै निजघरि वासा पाए ॥
ओथै अनहद सबद वजहि दिनु राती
गुरमती सबदु सुणावणिआ ॥६॥

(प्रश्न यह जीव सत्य स्वरूप परमात्मा में किस प्रकार समा जाता है ? उत्तर) जब वह इन्द्रियो को बाहर जाने से नौ द्वार रोकता है तब दसम् द्वार—(उसकी प्राप्ति नौ दरवाजो पर अधिकार पाने के बाद होती है) निज स्वरूप मे निवास पाता है। वहाँ दिन-रात (आठ ही प्रहर) अनाहत शब्द बजता है, किन्तु गुरु की मति ग्रहण करने वाला (गुरमुख ही इस बिलक्षण अनाहत) शब्द को सुनता और सुनाता है ॥६॥

बिनु सबदै अंतरि आनेरा ॥
न वसतु लहै न चूकै फेरा ॥

बिना (गुरु के) शब्द के अन्तर में अन्धकार (अज्ञानता) है और इस अन्धकार के होते हुए न तो (आत्मा) वस्तु की प्राप्ति होती है और न ही चौरासी का चक्र (ही) समाप्त होता है।

सतिगुर हथि कुंजी
होरतु दरु खुल्है नाही
गुरु पूरै भागि मिलावणिआ ॥७॥

(अज्ञान रूपी ताले को खोलने के लिए) सत्गुरु के हाथ में (ज्ञान रूपी कुन्जी है गुरु के बिना किसी ओर उपाय से द्वार नहीं खुल सकता, किन्तु गुरु भी पूर्ण (उत्तम) भाग्य से मिलाते हैं ॥७॥

गुपतु परगटु तूं सभनी थाई ॥
गुरपरसादी मिलि सोझी पाई ॥
नानक नामु सलाहि सदा तूं
गुरमुखि मंनि वसावणिआ ॥८॥
२४॥२५॥

(हे प्रभु !) गुप्त एव प्रकट सभी स्थानो में तुम (ही व्यापक हो रहे) हो। जिन (भाग्यशाली जीवो) पर गुरु की कृपा होती है, उन्हें इस प्रकार की सूझ-बूझ प्राप्त होती है। हे नानक ! तू भी (हे जीव !) (हरि) नाम की स्तुति कर क्योंकि गुरमुख ही 'हरिनाम को) मन में बसाते हैं ॥८॥२४॥२५॥

माझ महला ३॥

"गुरमुखों की अपार महिमा।"

गुरमुखि मिलै मिलाए आपे ॥
कालु न जोहै दुखु न संतापे ॥
हउमै मारि बंधन सभ तोड़ै
गुरमुखि सबदि सुहावणिआ ॥१॥

गुरमुख स्वय (परमात्मा से) मिलते हैं और (दूसरो को भी प्रभु से) मिलाते हैं। (ऐसे पुरुषो को) न काल (बुरी दृष्टि से) देखता है और न दुःख ही सतप्त (दुःखी) करता है। गुरमुख अहंकार को मार कर (माया के) सभी बन्धनो को तोड देते हैं और गुरु-उपदेश ग्रहण करके वे शोभायमान होते हैं ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
हरि हरि नामि सुहावणिआ ॥
गुरमुखि गावै गुरमखि नाचै
हरि सेती चितु लावणिआ ॥१॥
रहाउ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव (भी) उन (प्यारो) के ऊपर कुर्बान करता हूँ जो दुःखो को दूर करने वाले हरिनाम (को जपकर) शोभायमान हैं। गुरमुख गाते हैं, गुरमुख नाचते हैं और (गुरमुख) हरि के साथ चित्त लगाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

गुरमुखि जीवै मरै परवाणु ॥
आरजा न छीजै सबदु पछाणु ॥
गुरमुखि मरै न कालु न खाए
गुरमुखि सचि समावणिआ ॥२॥

गुरमुख जीवन मे और मर कर दोनो अवस्थाओ मे स्वीकार है। उनकी आयु निष्फल नही जाती क्योकि वे परब्रह्म परमेश्वर को पहचानते हैं। गुरमुखो को काल नही खाता, इसलिए वे मरते नही। गुरमुख (तो) सच्चे परमात्मा मे समा जाते हैं ॥२॥

गुरमुखि हरि दरि सोभा पाए ॥
गुरमुखि विचहु आपु गवाए ॥

गुरमुख (ही) हरि द्वार पर शोभा पाते हैं। गुरमुख अपने अन्दर से अहकार को दूर कर देते हैं। वे स्वयं (तो) भव-सागर

आपि तरै कुल सगले तारे
गुरमुखि जनमु सवारणिआ ॥३॥

से तर जाते हैं किन्तु अपने पूरे कुल को भी तार लेते हैं। इस तरह गुरमुख अपने जीवन को (नाम के द्वारा) सँवार लेते हैं ॥३॥

गुरमुखि दुखु कदे न लगै सरीरि ॥
गुरमुखि हउमै चूकै पीर ॥
गुरमुखि मनु निरमलु
फिरि मैलु न लागै
गुरमुखि सहजि समावणिआ ॥४॥

गुरमुखों के शरीर को कभी कोई दु:ख नहीं लगता क्योंकि गुरमुखों के अन्दर से अहकार (अहंता और ममता) की पीड़ा दूर हो जाती है। गुरमुखो का मन निर्मल है इसलिए उन्हें पुन: (अहकार की) मैल नही लगती क्योंकि गुरमुख सहज ही अथवा सहजावस्था में समा जाते हैं ॥४॥

गुरमुखि नामु मिलै वडिआई ॥
गुरमुखि गुण गावै सोभा पाई ॥
सदा अनंदि रहै दिनु राती
गुरमुखि सबदु करावणिआ ॥५॥

गुरमुखो को नाम (जपने) से बड़ाई मिलती है। गुरमुख (प्रभु के) गुण गाकर ही (हरि की दरबार मे) शोभा पाते है। वे दिन-रात सदा आनन्द अवस्था में रहते है क्योंकि वे गुरमुख स्वय शब्द (नाम) की कमाई करते और (अधिकारी पुरुषो से) कराते है ॥५॥

गुरमुखि अनदिनु सबदे राता ॥
गुरमुखि जुग चारे है जाता ॥
गुरमुखि गुण गावै सदा निरमलु
सबदे भगति करावणिआ ॥६॥

गुरमुख दिन-रात शब्द में रंगे रहते हैं। गुरमुखों ने चारों युगों मे(परमात्मा को)जाना है अथवा गुरमुख चारों युगों में जाने जाते हैं (अर्थात प्रसिद्ध हो जाते हैं)। गुरमुख सदा (हरि के) गुण गाते हैं इसलिए निर्मल (एव पवित्र) हैं और वे दूसरों को उपदेश देकर उनसे भक्ति करवाते हैं ॥६॥

बाझु गुरू है अंध अंधारा ॥
जमकालि गरठे करहि पुकारा ॥
अनदिनु रोगी बिसटा के कीड़े
बिसटा महि दुखु पावणिआ ॥७॥

गुरु के बिना (निगुरे) जो अन्धे हैं, वे (सदैव) (अज्ञान रूपी) घोर अन्धकार में हैं। वे यमकाल द्वारा पकड़े जाने पर पुकार करते हैं (अर्थात् यमकाल के दु.ख सहन करने पर पुकारते हैं, किन्तु कोई भी उन्हें सुनने वाला नही)। वे रात-दिन रोगी हैं और (योनियों मे) विष्ठा के कीड़े होकर आते हैं और विष्ठा में रह-कर दु:ख पाते हैं ॥७॥

गुरमुखि आपे करे कराए ॥
गुरमुखि हिरदै वुठा आपि आए ॥
नानक नामि मिलै वडिआई
पूरे गुर ते पावणिआ ॥८॥
२५॥२६॥

गुरमुख स्वयं (प्रभु की भक्ति) करते और कराते हैं। 'वह' गुरमुखो के हृदय में (प्रभु) स्वयं आकर निवास करता है। हे नानक ! नाम ही जपने से (गुरमुखों को) बडाई मिलती है, किन्तु नाम पूर्ण गुरु से ही प्राप्त होता है ॥८॥२१॥२६॥

माझ महला ३॥

एका जोति जोति है सरीरा ॥
सबदि दिखाए सतिगुरु पूरा ॥
आपे फरकु कीतोनु घट अंतरि
आपे बणत बणावणिआ ॥१॥

"परमेश्वर सब कुछ आप ही आप है।"

एक ही (अद्वितीय परमात्मा की) ज्योति है। 'उसकी' चैतन्य सत्ता सब शरीरो मे है (अर्थात् चैतन्य ज्योति सर्वत्र परिपूर्ण है)। किन्तु 'उस' ज्योति को पूर्ण सतगुरु ही उपदेश के द्वारा दिखा देते हैं (अर्थात् साक्षात्कार करा देते हैं)। आप ही (परमेश्वर) ने जीवन (नाना प्रकार)के भेद किये हैं (अर्थात् स्थावर)—अचल (स्थिर जैसे वृक्ष, पर्वत आदि तथा जंगम—चलते हुए जैसे मनुष्य, पशु आदि) ऐसी विक्षेपता भरी सृष्टि को प्रभु ने स्वयं (ही) बनाया है ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
हरि सचे के गुण गावणिआ ॥
बाझु गुरू को सहजु न पाए
गुरमुखि सहजि समावणिआ ॥१॥ रहाउ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ,(हाँ) मैं अपना जीव (भी) उन (प्यारों) के ऊपर कुर्बान करता हूँ, जो सच्चे हरि के गुण गाते हैं। गुरु के बिना कोई भी ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। गुरु की शिक्षा से ही गुरमुख सहज ही सहजावस्था अथवा सहज प्रभु में समा जाते हैं। ॥१॥ रहाउ ॥

तूं आपे सोहहि आपे जगु मोहहि ॥
तूं आपे नदरी जगतु परोवहि ॥
तूं आपे दुखु सुखु देवहि करते
गुरमुखि हरि देखावणिआ ॥२॥

(हे भगवन् !) तू आप (ही) (निर्गुण रूप में) सुशोभित हो रहे हो और तू आप ही (सारे) जग को (सगुण रूप में) मोहित कर रहे हो। हे दयालु प्रभु ! तू आप (ही) (सारे) जगत को अपनी सत्ता रूपी सूत्र में पिरो रहे हो (अर्थात् पालन कर रहे हो)। हे कर्तार ! तू आप (ही) (जीवों को कर्मानुसार) दुःख-सुख देते हो और हे हरि ! गुरु की शिक्षा द्वारा ही गुरमुखो को अपना (वास्तविक) स्वरूप दिखाते हो (अर्थात् दर्शन कराते हो) ॥२॥

आपे करता करे कराए ॥
आपे सबदु गुर मंनि वसाए ॥
सबदे उपजै अंमृत बाणी
गुरमुखि आखि सुणावणिआ ॥३॥

हे (सृष्टि) कर्त्ता ! (तू) आप ही करते और कराते हो और (तू) आप ही गुरु शब्द को मन में बसाते हो। शब्द के द्वारा (नाम) अमृत वाणी (अन्दर में) प्रकट होती है तथा गुरु के द्वारा (तू) आप ही कहकर सुनाते हो ॥३॥

आपे करता आपे भुगता ॥
बंधन तोड़े सदा है मुकता ॥
सदा मुकतु आपे है सचा
आपे अलखु लखावणिआ ॥४॥

(हे भगवन् !) (तू) आप ही (सृष्टि के) कर्त्ता हो और (तू) आप ही (सर्व पदार्थों के) भोक्ता हो। जिसके (भी) बन्धन (तू) आप तोडते हो, वह सदा मुक्त है। हे सत्य स्वरूप परमेश्वर ! (तू) आप ही सदा मुक्त रूप हो और (तू) आप ही (अपने) (अलक्ष्य) स्वरूप को दिखाते हो ॥४॥

आपे माइआ आपे छाइआ ॥
आपे मोहु सभु जगतु उपाइआ ॥
आपे गुणदाता गुण गावै
आपे आखि सुणावणिआ ॥५॥

(हे प्रभु !) (तू) आप ही माया हो और (तू) आप (ही) (माया का) प्रतिबिम्ब अर्थात् (अविद्या) हो तथा आपने ही सारे जगत में मोह उत्पन्न किया है। (तू) आप ही (गुरु रूप) गुणों के दात्ता हो और (तू) आप ही (शिष्य बनकर) गुण गाते हो तथा (तू) आप (ही) कहकर (औरो को) सुनाते हो ॥५॥

आपे करे कराए आपे ॥
आपे थापि उथापे आपे ॥
तुझ ते बाहरि कछू न होवै
तूं आपे कारै लावणिआ ॥६॥

(हे प्रभु !) (तू) आप ही (सृष्टि की रचना) करते हो और (तू) आप ही (जीवों से कर्म) (भी) कराते हो। (तू) आप ही रचना रचते हो और (तू) आप ही (रचना का) विनाश (भी) करते हो। आपके बाहर (अर्थात् आपके हुकम के बिना संसार में कुछ भी नही होता तथा (तू) आप ही (प्रत्येक जीव को अपने-अपने) काम मे लगाते हो ॥६॥

आपे मारे आपि जीवाए ॥
आपे मेले मेलि मिलाए ॥
सेवा ते सदा सुखु पाइआ
गुरमुखि सहजि समावणिआ ॥७॥

(हे भगवन् !) (तू) आप (ही) (जीवो को) मारते हो और (तू) आप (ही) (जीवो को) मिलाते (जीवन देते) हो (अर्थात् दूसरा जन्म देते हो)। (तू) आप ही (जीवो को सत्संग के) मेल मे मिलाकर (अपने साथ) मिलाते हो। आपकी सेवा से (ही) सदा सुख प्राप्त होता है और गुरु की शिक्षा (ग्रहण करने) से सहज ही आप मे समा जाते हैं ॥७॥

आपे ऊचा ऊचो होई ॥
जिसु आपि विखाले सु वेखै कोई ॥
नानक नामु वसै घट अंतरि
आपे वेखि विखालणिआ ॥८॥
२६॥२७॥

(हे प्रभु !) (तू) आप (ही) सभी से ऊँचे (सर्वोत्तम) हो और जिसे (भी) (तू) आप (अपने आपको) दिखाते हो, वही (आपके स्वरूप को) देखता है, (किन्तु कलियुग मे ऐसा भाग्य-शाली) कोई (विरला) ही है। हे नानक ! जिनके हृदय मे तुम्हारा नाम निवास करता हैं, वे स्वयं ही आपका (दर्शन) करते और कराते हैं ॥८॥२६॥२७॥

माझ महला ३॥

मेरा प्रभु भरपूरि रहिआ सभ थाई ॥
गुर परसादी घर ही महि पाई ॥
सदा सरेवी इक मनि धिआई
गुरमुखि सचि समावणिआ ॥१॥

"सभी कुछ तुम्हारे अन्दर में है, बाहर भटकने से कुछ नही होगा।"

मेरा प्रभु सभी स्थानों मे परिपूर्ण हो रहा है, किन्तु गुरु की कृपा से (मैंने) हृदय (घर) में ही प्राप्त कर लिया। ऐसे (प्रभु की) एकाग्र मन से सदा सेवा तथा आराधना करनी चाहिए क्योंकि (ध्यानपूर्वक सेवा करने से) गुरमुख सत्य स्वरूप परमात्मा में समा जाते हैं ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
जग जीवनु मंनि वसावणिआ ॥
हरि जगजीवनु निरभउ दाता
गुरमति सहजि समावणिआ ॥१॥
रहाउ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव (भी) उन (प्यारों) के ऊपर कुर्बान करता हूँ, जो जगत हूँ को जीवन प्रदान करने वाले परमात्मा को मन मे बसाते हैं। (मेरा) हरि, जो जगत का जीवन है, 'उसे' किसी का भी भय नही और 'वह' देने वाला है। जो गुरु की मति को ग्रहण करते हैं, वे सहज ही 'उसमे' समा जाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

घर महि धरती धउलु पाताला ॥
घर ही महि प्रीतमु सदा है बाला ॥
सदा अनंदि रहै सुख दाता
गुरमति सहजि समावणिआ ॥२॥

(गुरमुखों को निश्चय है कि) शरीर के भीतर ही धरती (क्षमा), बैल (धर्म) और पाताल (नम्रता और गम्भीरता आदि दैवी गुण विद्यमान) हैं तथा शरीर मे ही नित्य एवं नूतन प्रियतम परमात्मा का वास है। 'वह' सुख देने वाला परमात्मा सदा आनन्द मे रहता है, किन्तु गुरु की मति ग्रहण करने से गुरमुख सहज ही उसमें समा जाते हैं ॥२॥

काइआ अंदरि हउमै मेरा ॥
जंमण मरणु न चूकै फेरा ॥
गुरमुखि होवै सु हउमै मारे ॥
सचो सचु धिआवणिआ ॥३॥

(प्रश्न शरीर के भीतर निवास करने वाले परमात्मा को जीव क्यो नही जानते ? उत्तर .) जब तक शरीर के भीतर अहता और ममता है, तब तक जन्म-मरण का चक्र समाप्त नही होता। जो गुरमुख होता है, वही (केवल) अहता (ममता) को मारकर निश्चय पूर्वक सत्य स्वरूप परमात्मा का ध्यान करता है ॥३॥

काइआ अंदरि पापु पुंनु दुइ भाई ॥
दुही मिलि कै स्रिसटि उपाई ॥
दोवै मारि जाइ इकतु घरि आवै
गुरमति सहजि समावणिआ ॥४॥

(हे भाई !) शरीर के भीतर ही पाप और पुण्य दो भाई है, इन दोनो ने मिलकर (समस्त) सृष्टि को उत्पन्न किया है (अर्थात् यदि जीव पाप और पुण्य से निकले होते तो सब परमात्मा मे लीन हो जाते, फिर सृष्टि भला कैसे होती ?) यदि (कोई जीव) गुरु की भक्ति से इन दोनो को मारकर एकता के घर मे आ जाता है तो वह सहज ही परमात्मा मे समा जाता है ॥४॥

घर ही माहि दूजै भाइ अनेरा ॥
चानणु होवै छोडै हउमै मेरा ॥
परगटु सबदु है सुखदाता
अनदिनु नामु धिआवणिआ ॥५॥

घर के भीतर द्वैत-भाव के कारण (ही) अन्धेरा (अज्ञानता) है। जब अहंता और ममता को (जीव) छोड देता है, तो (इसी घर मे प्रकाश) ज्ञान हो जाता है। (गुरु का) शब्द (ही) सुखों को देने वाला है और जिन्हे (गुरु) शब्द प्राप्त होता है वे रात-दिन (हरि) नाम का ध्यान करते हैं ॥५॥

अंतरि जोति परगटु पासारा ॥
गुर साखी मिटिआ अंधिआरा ॥

जिसका प्रसार प्रत्यक्ष है, 'उसकी' ज्योति (वे ही अपने हृदय जगत में पहचानते हैं) जो गुरु की शिक्षा ग्रहण करके (अज्ञान के) अन्धकार को दूर करते हैं। हृदय कमल की तरह खिल जाता है

कमलु बिगासि सदा सुखु पाइआ
जोती जोति मिलावणिआ ।।६।।

और वे सदा सुख पाते हैं तथा वे अपनी ज्योति परमात्मा की ज्योति से मिला लेते हैं ।।६।।

अंदरि महल रतनी भरे भंडारा ।।
गुरमुखि पाए नामु अपारा ।।
गुरमुखि वणजे सदा वापारी
लाहा नामु सद पावणिआ ।।७।।

(शरीर के) अन्दर (एक) महल है जिसमें रत्नों के भण्डार भरे हुए हैं। गुरमुख ही (परमात्मा का) अपार नाम प्राप्त करते हैं और वे गुरमुख व्यापारी होकर हरि नाम को सदा खरीदते हैं और नाम का(जपकर) ही सदा (मुक्ति रूप) लाभ प्राप्त करते हैं। ।।७।।

आपे वथु राखै आपे देइ ।।
गुरमुखि वणजहि केई केइ ।।
नानक जिसु नदरि करे सो पाए
करि किरपा मंनि वसावणिआ ।।८।।
२७।।२८।।

परमात्मा आप (नाम रूपी) वस्तु को (गुरु के पास सुरक्षित) रखता है और आप (ही) (गुरु रूप होकर वह) देता है, किन्तु कोई विरले गुरमुख(ही) (नाम का) व्यापार करते हैं। हे नानक ! जिन पर परमात्मा कृपा-दृष्टि करता है, वे (गुरु को) प्राप्त करते हैं और (जिन पर गुरु कृपा करते हैं, वे नाम को) मन मे बसाते हैं ।।८।।२७।।२८।।

माझ महला ३।।

"इस लोक मे नाम जप, तो परलोक मे सुखी होगा।"

हरि आपे मेले सेव कराए ।।
गुर कै सबदि भाउ दूजा जाए ।।
हरि निरमलु सदा गुणदाता
हरिगुण महि आपि समावणिआ
।।१।।

जिनको हरि प्रभु ने आप (गुरु के साथ) मिलाया है, उनसे (हरि)(गुरु की)सेवा करवाता है। गुरु के उपदेश से (उन सेवको का) द्वैत-भाव चला जाता है। हरि जो निर्मल है और सदा गुणो को देने वाला है. उस हरि के (शुभ) गुणो मे (सेवक) स्वय ही समा जाते हैं(अर्थात वे हरि रूप हो जाते हैं) ।।१।।

हउ वारी जीउ वारी
सचु सचा हिरदै वसावणिआ ।।
सचा नामु सदा है निरमलु
गुरसबदी मंनि वसावणिआ ।।१।।
रहाउ।।

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मै अपना जीव भी उन (सेवको) के ऊपर कुर्बान करता हूँ, जो निश्चय करके सत्य स्वरूप परमात्मा को हृदय मे बसाते है। परमात्मा का सच्चा नाम सदा निर्मल है, किन्तु वह गुरु के उपदेश ग्रहण करने से मन मे बसाया जाता है ।।१।।रहाउ।।

आपे गुरदाता करमि बिधाता ।।
सेवक सेवहि गुरमुखि हरि जाता ।।
अंम्रित नामि सदा जन सोहहि
गुरमति हरिरसु पावणिआ ।।२।।

प्रभु आप ही कर्म फल को देने वाला है और आप ही सर्वोपरि बडा दात्ता है। जो,सेवक होकर 'उसकी' सेवा करते हैं, वे ही गुर-मुख हरि को जानते है। प्रभु का अमृत नाम पाकर वे भक्त सदा शोभा पाते हैं तथा गुरु की मति लेकर ही हरि-रस को प्राप्त करते हैं ।।२।।

इसु गुफा महि इकु थानु सुहाइआ ॥
पूरै गुरि हउमै भरमु चुकाइआ ॥
अनदिनु नामु सलाहनि रंगि राते
गुर किरपा ते पावणिआ ॥३॥

यह शरीर जो काया रूपी गुफा है, उसमें हृदय रूपी एक स्थान सुशोभित हो रहा है, क्योंकि पूर्ण गुरु ने अहंकार और भ्रम को दूर कर दिया है। वे रात-दिन प्रेम में रंगे हुए (हरि) नाम की स्तुति करते हैं, किन्तु (हरिनाम) गुरु की कृपा से ही प्राप्त होता है ॥३॥

गुर कै सबदि इहु गुफा वीचारे ॥
नामु निरंजनु अंतरि वसै मुरारे ॥
हरि गुण गावै सबदि सुहाए
मिलि प्रीतम सुखु पावणिआ ॥४॥

गुरु के उपदेश से (ही वे) इस काया रूपी गुफा में विचार करते हैं कि निरञ्जन नाम वाला मुरारी परमात्मा (हृदय में ही) निवास करता है। वे हरि के गुण गाते हैं, (गुरु के) शब्द द्वारा सुशोभित होते हैं और प्रियतम को मिलकर सुख प्राप्त करते हैं ॥४॥

जमु जगाती दूजै भाइ करु लाए ॥
नावहु भूले देइ सजाए ॥
घड़ी मूहत का लेखा लेवै
रतीअहु मासा तोल कढावणिआ ॥५॥

द्वैत-भाव में लिप्त (जीवों से) यम रूप महसूल लेने वाला (कर्मचारी) टैक्स (कर) वसूल करता है और जो (प्रभु के) नाम को भूल गए हैं,उन्हें सजा देता है(अर्थात हरि नाम को भूलकर जो पाप किए हैं उनका हिसाब यमदूत लेते हैं)। (यम के दूत द्वैत-भाव मे लगे हुए जीवों से) घडी, आधी घडी, मुहूर्त भर का भी हिसाब लेते हैं। वे रत्ती माशा (छोटे-छोटे कर्मों) के हिसाब को निकालकर दिखाते है ॥५॥

पेईअड़ै पिरु चेते नाही ॥
दूजै मुठी रोवै धाही ॥
खरी कुआलिओ कुरूपि कुलखणी
सुपनै पिरु नही पावणिआ ॥६॥

जो (जीव रूपी स्त्री इस ससार रूपी) पीहर में पति-परमेश्वर का चिन्तन नही करती, वह द्वैतभाव मे ठगी हुई ऊँचे स्वर से (छाती पीट-पीट कर) रोती है। ऐसी स्त्री सर्वथा निन्दित, कुरूप तथा अशुभ लक्षणो वाली है। (हाँ) ऐसी स्त्री स्वप्न में भी पति (परमेश्वर का सुख)को नहीं पाती ॥६॥

पेईअड़ै पिरु मंनि वसाइआ ॥
पूरै गुरि हदूरि दिखाइआ ॥
कामणि पिरु राखिआ कंठि लाइ
सबदे पिरु रावै सेज सुहावणिआ ॥७॥

जिसने (जीव रूपी स्त्री ने इस ससार रूपी) पीहर मे पति (परमेश्वर को अपने) मन मे बसाया है, उसे पूर्ण गुरु ने परमेश्वर को प्रत्यक्ष ही दिखा दिया है। वह (गुरु का) उपदेश स्मरण करके (अपने) पति को हृदय में धारण करती है और उसे कंठ के साथ लगाकर रखती हैं, जिससे प्रियतम उसे प्यार करता है और इस प्रकार उसकी हृदय रूपी शय्या शोभायमान होती है ॥६॥

आपे देवै सदि बुलाए ॥
आपणा नाउ मनि वसाए ॥

प्रभु आप ही बुलाकर अपना नाम देता है और मन में बसाता है। हे नानक ! नाम (जपने से जीव को) बड़ाई मिलती है

नानक नामु मिलै वडिआई
अनदिनु सदा गुण गावणिआ ॥८॥
२८॥२९॥

क्योंकि वह रात-दिन, (हाँ) सदा (हरि के) गुण गाता रहता है। ॥८॥२८॥२९॥

माझ महला ३॥

"गुरमुखो और मनमुखो की तुलना।"

ऊतम जनमु सुथानि है वासा ॥
सतिगुरु सेवहि घर माहि उदासा ॥
हरि रंगि रहहि सदा रंगि राते
हरि रसि मनु त्रिपतावणिआ ॥१॥

(उनका ही मनुष्य) जन्म उत्तम है और वे ही (केवल) श्रेष्ठ स्थान में वास करते हैं जो सत्गुरु की सेवा करते है और अपने मनरूपी घर मे (प्रभु को मिलने के लिए सदा) उदास रहते हैं। वे हरि के (प्रेम) रग मे रहते हैं और 'उसके' रग मे सदा रगे हुए हैं और उन का मन हरि (नाम) के रस मे (सदा) तृप्त रहता है ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
पड़ि बुझि मंनि वसावणिआ ॥
गुरमुखि पड़हि हरिनामु सलाहहि
दरि सचै सोभा पावणिआ ॥१॥
रहाउ॥

मैं वलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव भी उन (प्यारो के) ऊपर कुर्बान करता हूँ, जो (धर्म ग्रन्थो को) पढकर और उनके सिद्धान्त को समझकर मन में बसाते हैं। जो गुरमुख हरि नाम पढते है और 'उसकी' स्तुति करते है, वे सच्चे परमात्मा के द्वार पर शोभा पाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

अलख अभेउ हरि रहिआ समाए ॥
उपाए न किती पाइआ जाए ॥
किरपा करे ता सतिगुरु भेटै
नदरी मेलि मिलावणिआ ॥२॥

अलक्ष्य और अभेद्य हरि चाहे सर्व मे पूर्ण हो रहा है, किन्तु 'वह' किसी (बाह्य) उपाय से प्राप्त नही होता। (सर्वव्यापक हरि) जब अपनी कृपा (जीव पर) करता है तो उसकी सत्गुरु से भेट होती है और फिर वह सत्गुरु (दयालु) परमात्मा के साथ (जीव को) मिला देता है ॥२॥

दूजै भाइ पड़ै नही बूझै ॥
त्रिबिधि माइआ कारणि लूझै ॥
त्रिबिधि बंधन तूटहि गुर सबदी
गुर सबदी मुकति करावणिआ ॥३॥

जो द्वैत-भाव मे (शास्त्रादि धर्म ग्रन्थ) पढते हैं, उनको (धर्म-अधर्म की) समझ नही आती है। वे त्रिगुणात्मक माया के लिए झगडते हैं, किन्तु गुरु का उपदेश ही त्रिगुणात्मक माया के बन्धनो को तोडता है और गुरु का शब्द ही उसकी मुक्ति करवाता है। ॥३॥

इहु मनु चंचलु वसि न आवै ॥
दुबिधा लागै दहदिसि धावै ॥

यह मन बहुत चचल है और वश मे नही आता क्योंकि वह दुबिधा मे लगकर दशो दिशाओ मे दौडता है (अर्थात् एक क्षण मात्र भी स्थिरता को प्राप्त नही करता)। वह विषवत् (पदार्थों

बिखु का कीड़ा बिखु महि राता
बिखु ही माहि पचावणिआ ॥४॥

का) कीडा है और विषयों में ही अनुरक्त है (मनमुख सदा विषय-वासनाओ के विष मे ही डूबा रहता है) तथा वह विष में ही सड़ता-गलता एव पचता रहता है ॥४॥

हउ हउ करे तै आपु जणाए ॥
बहु करम करै किछु थाइ न पाए ॥
तुझ ते बाहरि किछू न होवै
बखसे सबदि सुहावणिआ ॥५॥

जो (जीव) अहता ममता करके अपने (महत्व) को दिखाते हैं, वह बहुत प्रकार के कर्म करने पर भी कहीं ठिकाना (आश्रय) नही पाता। हे प्रभु ! (आपके हुकम से) बाहर कुछ भी नहीं होता। जो (गुरु के) उपदेश से सुशोभित हो रहे हैं, उन्हें आपने क्षमा कर दिया है ॥५॥

उपजै पचै हरि बूझै नाही ॥
अनदिनु दूजै भाइ फिराही ॥
मनमुख जनमु गइआ है बिरथा
अंति गइआ पछुतावणिआ ॥६॥

जो (जीव) हरि को नही समझते और रात-दिन द्वैत-भाव में भटकते रहते हैं, वे (मनुष्य) जन्म लेकर भी (वासना रूपी अग्नि में) जलते व पचते रहते हैं। मनमुखो का जन्म व्यर्थ ही चला जाता है और अन्त समय मे जाते हुए पछताते हैं ॥६॥

पिरु परदेसि सिगारु बणाए ॥
मनमुख अंधु ऐसे करम कमाए ॥
हलति न सोभा पलति न ढोई
बिरथा जनमु गवावणिआ ॥७॥

जैसे प्रियतम के परदेश जाने पर स्त्री शृ गार करती है (स्त्री के शृ गार प्रिय की अनुपस्थिति मे व्यर्थ है), इसी तरह मनमुख अज्ञानियो के कर्म (निष्फल) हैं। उनको न इस लोक मे शोभा मिलती है और न परलोक मे आश्रय मिलता है। वे अपना (मनुष्य) जन्म व्यर्थ ही गँवा देते हैं ॥७॥

हरि का नामु किनै विरलै जाता
पूरे गुर कै सबदि प ाता ॥
अनदिनु भगति करे दिनु राती
सहजे ही सुखु पावणिआ ॥८॥

हरि का नाम कोई विरला ही जानता है। जिसने पूर्ण गुरु के उपदेश द्वारा (हरि नाम को) पहचाना है, वह रात-दिन, (हाँ) आठ प्रहर (हरि की) भक्ति करता है इसलिए वह सहज ही सुख को पाता है ॥८॥

सभ महि वरतै एको सोई ॥
गुरमुखि विरला बूझै कोई ॥
नानक नामि रते जन सोहहि
करि किरपा आपि मिलावणिआ
॥९॥२१॥३०॥

सर्व (जीवो) मे एक ही अद्वितीय परमात्मा व्याप्त हो रहा है, किन्तु कोई विरला गुरमुख ही (इस रहस्य को) समझता है। हे नानक ! जो (भक्त) जन (हरि) नाम (रग) में रंगे हुए हैं, वे (ही) शोभायमान हो रहे हैं और परमात्मा उन पर ही कृपा करके अपने साथ मिलाता है ॥९॥२१॥३०॥

माझ महला ३॥

"गुरमुख धर्म ग्रंथ का तत्व समझता है, मनमुख वाद-विवाद करता है।"

मनमुख पड़हि पंडित कहावहि ॥
दूजै भाइ महा दुखु पावहि ॥
बिखिआ माते किछु सूझै नाही
फिरि फिरि जूनी आवणिआ ॥१॥

मनमुख (शास्त्रादि धर्म-ग्रन्थ) पढ़ते और अपने आपको पंडित कहलाते हे, किन्तु द्वैत-भाव के कारण वे महा दुख विषवत् वासनाओं मे मस्त (आसक्त) होने के कारण उन्हें कुछ (भी) नही सूझता इसलिए वे बारबार (अनेक) योनियों में आते है (अर्थात आवागमन के चक्र मे पडे रहते हैं) ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
हउमै मारि मिलावणिआ ॥
गुर सेवा ते हरि मनि वसिआ
हरि रसु सहजि पीआवणिआ
॥१॥रहाउ॥

मैं बलिहारि जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव (भी) उन (प्यारों के ऊपर) कुर्बान करता हूँ, जिन्होंने अहकार को मारकर अपने आपको (परमात्मा से) मिलाया हैं। गुरु की सेवा (करने) से हरि (उनके) मन मे बसता है। वे हरि नाम का (अमृत) रस स्वय भी पीते हैं और औरो को भी पिलाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

वेदु पड़हि हरि रसु नही आइआ ॥
वादु वखाणहि मोहे माइआ ॥
अगिआन मती सदा अंधिआरा
गुरमुखि बूझि हरि गावणिआ ॥२॥

पडित वेदादि (धर्म-ग्रन्थों को) पढते हैं, किन्तु उनको हरि (नाम) का रस नही आता क्योंकि वे माया से मोहित हुए (धर्म-ग्रन्थो पर) वाद-विवाद करते हैं (अथवा व्यर्थ ही बहस करते हैं) अज्ञानता पूर्ण मति (बुद्धि) सदा अन्धकार मे रहती है, किन्तु गुरमुख (धर्म-ग्रन्थो) का तत्व समझकर हरि के गुण गाते हैं ॥२॥

अकथो कथीऐ सबदि सुहावै ॥
गुरमती मनि सचो भावै ॥
सचो सचु रवहि दिनु राती
इहु मनु सचि रंगावणिआ ॥३॥

(गुरमुख) गुरु के उपदेश द्वारा शोभायमान होकर अकथनीय परमात्मा की कथा-कथन करते हैं क्योंकि गुरु की मति ग्रहण करने वालों के मन को सत्य स्वरूप परमेश्वर (ही) भाता है। वे दिन रात सत्य ही सत्य का उच्चारण करते हैं इस प्रकार उनका मन सच्चे परमात्मा के प्रेम-रग में रगा जाता है ॥३॥

जो सचि रते तिन सचो भावै ॥
आपे देइ न पछोतावै ॥
गुर कै सबदि सदा सचु जाता
मिलि सचे सुखु पावणिआ ॥४॥

जो (जीव) सच्चे परमात्मा में रगे हुए हैं उनको सत्य ही भाता है। दाता प्रभु आप (सत्य) देकर पछताता नहीं हैं। वे गुरु के उपदेश द्वारा सच्चे परमात्मा को सदा जानते हैं और सत्य स्वरूप परमात्मा से मिलकर (सदा) सुख प्राप्त करते हैं ॥४॥

कूड़ु कुसतु तिना मैलु न लागै ॥
गुर परसादी अनदिनु जागै ॥

उनको झूठ और कपट या ठगी अथवा विकारी की मैल (तिल मात्र भी) नहीं लगती क्योंकि वे गुरु की कृपा से रात-दिन

निरमल नामु वसै घट भीतरि
जोति जोति मिलावणिआ ॥५॥

(माया से) जागृत हैं। उनके हृदय के भीतर निर्मल नाम बसता है इस प्रकार वे अपनी ज्योति परमात्मा की ज्योति से मिला देते हैं ॥५॥

त्रैगुण पड़हि हरि ततु न जाणहि ॥
मूलहु भुले गुर सबदु न पछाणहि ॥
मोह बिआपे किछु सूझै नाही
गुर सबदी हरि पावणिआ ॥६॥

जो (जीव) तीन गुणों (सत्, रज्, तम्) वाली बुद्धि से (धर्म ग्रन्थ) पढ़ते हैं, वे हरि-सार वस्तु को नही जानते। वे गुरु के उपदेश को नही पहचानते क्योंकि वे मूल (परमात्मा) से भूले हुए हैं। वे मोह से व्याप्त हैं इसलिये उनको कुछ भी नहीं सूझता, किन्तु जो गुरु उपदेश वाले हैं वे हरि को प्राप्त होते हैं ॥६

वेदु पुकारै त्रिबिधि माइआ ॥
मनमुख न बूझहि दूजै भाइआ ॥
त्रै गुण पड़हि हरि एकु न जाणहि
बिनु बूझे दुखु पावणिआ ॥७॥

जो त्रिगुणात्मक माया (प्राप्ति) के लिये वेदादि (धर्म-ग्रन्थों) को पुकारते (अर्थात् ऊँचे स्वर में पढते हैं), वे मनमुख हैं और द्वैत-भाव अर्थात् माया के साथ प्रेम रखने के कारण (हरि तत्व को) नही समझते। (हाँ) त्रिगुणी माया के लिए जो पढते हैं, वे एक अद्वितीय हरि को नही जानते और बिना सूझ-बूझ के वे दुःख पाते हैं ॥७॥

जा तिसु भावै ता आपि मिलाए ॥
गुर सबदी सहसा दूखु चुकाए ॥
नानक नावै की सची वडिआई
नामो मंनि सुखु पावणिआ
॥८॥३०॥३१॥

जब 'उसे' (प्रभु को) भाता है तो वह स्वयं ही जीव को सत्गुरु से मिला देता है। गुरु-उपदेश से सहसा ही सशय और दुःख दूर हो जाते हैं। हे नानक ! नाम की महिमा सच्ची है और जो (जीव) नाम को मन में बसाता है, वही सुख प्राप्त करता है ॥८॥३०॥३१॥

माझ महला ३॥

"हरि नाम ध्यान से सच्चा स्वाद प्राप्त होता है।"

निरगुणु सरगुणु आपे सोई ॥
ततु पछाणै सो पंडितु होई ॥
आपि तरै सगले कुल तारै
हरि नामु मंनि वसावणिआ ॥१॥

(मेरा प्रभु) आप (ही) निर्गुण और आप ही सगुण (भी) है। जो इस तत्व (सार) को पहचानता है वह (सचमुच) पंडित है। वह हरि का नाम मन में बसाता है, जिससे वह स्वयं तर जाता है और (साथ ही अपने) कुल को भी (भव-सागर से) तार देता है ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
हरि रसु चखि सादु पावणिआ ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव (भी) उन (प्यारों) के ऊपर न्यौछावर करता हूँ, जो हरि (नाम) का रस चख कर स्वाद (आनन्द) प्राप्त करते हैं। जो हरि (नाम) का

हरि रसु चाखहि से जन निरमल निरमल नामु धिआवणिआ ॥१॥रहाउ॥	रस चखते हैं, वे (भक्त) जन मैल से रहित हैं और वे (हरि परमात्मा के) निर्मल नाम का ध्यान करते हैं ॥१॥रहाउ॥
सो निहकरमी जो सबदु बीचारे ॥ अंतरि ततु गिआनि हउमै मारे ॥ नामु पदारथु नउ निधि पाए त्रै गुण मेटि समावणिआ ॥२॥	जो (जीव) (गुरु) शब्द पर विचार करता है वह (कर्मों को करता हुआ भी) निष्काम कर्म योगी है। वह अहंकार को मारता है जिससे उसके अन्दर यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है। वह नाम-पदार्थ के कारण नव निधियाँ प्राप्त करता है और तीन गुण—(सत्, ,रज् तम् को) मिटाकर परमात्मा मे समा जाता है ॥२॥
हउमै करै निहकरमी न होवै ॥ गुर परसादी हउमै खोवै ॥ अंतरि बिबेकु सदा आपु वीचारे गुर सबदी गुण गावणिआ ॥३॥	जो (जीव) अहं के (वशीभूत होकर) कर्म करता है, वह निष्काम कर्म योगी नही होता। गुरु की प्रसन्नता से (ही) अहंकार दूर होता है। वह अन्तर मे विवेक धारण करके सदा अपने स्वरूप का विचार करता है और गुरु के उपदेश द्वारा हरि के गुण गाता है ॥३॥
हरि सरु सागरु निरमलु सोई ॥ संत चुगहि नित गुरमुखि होई ॥ इसनानु करहि सदा दिनु राती हउमै मैलु चुकावणिआ ॥४॥	हरि समुद्र है, (हरि) महा समुद्र है जो निर्मल (मान-सरोवर) है उस मानसरोवर से सन्त (रूपी हंस) नित्य (हरि नाम रूपी) मोती चुगते हैं. ऐसा करने से वे गुरु के सन्मुख होते हैं। (कथा, कीर्तन रूपी) जल मे दिन रात, (हाँ) सदैव स्नान करते है और इसलिए वे अहंकार की मैल को दूर कर देते हैं ॥४॥
निरमल हंसा प्रेम पिआरि ॥ हरि सरि वसै हउमै मारि ॥ अहिनिसि प्रीति सबदि साचै हरि सरि वासा पावणिआ ॥५॥	ऐसे निर्मल (सन्त रूपी) हंसो का हरि (मानसरोवर) के साथ प्रेम है, वे अहंकार को मारकर हरि रूपी मानसरोवर में निवास करते हैं। उनकी प्रीति रात दिन (गुरु के) सच्चे शब्द के साथ है जिस कारण वे (सदा) हरि के सरोवर(सत्संग) में निवास करते हैं ॥५॥
मनमुखु सदा बगु मैला हउमै मलु लाई ॥ इसनानु करै परु मैलु न जाई ॥ जीवतु मरै गुर सबदु बीचारै हउमै मैलु चुकावणिआ ॥६ ॥	मनमुख बगुला है और सदा मैला है क्योंकि उसको अहंकार की मैल लगी हुई है। वह चाहे (सत्संग में कीर्तन रूपी जल में) स्नान करता है, तो भी उसकी (अहंकार की) मैल नहीं जाती है। जो (जीव) गुरु शब्द का विचार करके जीवित ही मर गया है, वही अहंकार की मैल निवृत करता है ॥६॥

रतनु पदारथु घर ते पाइआ ॥
पूरै सतिगुरि सबदु सुणाइआ ॥
गुर परसादि मिटिआ अंधिआरा
घटि चानणु आपु पछानणिआ ॥
७॥

जब पूर्ण सत्गुरु (दया करके) शब्द सुनाता है, तब जीव (नाम) रत्न रूपी पदार्थ को हृदय (घर) में ही प्राप्त कर लेता है। जब गुरु की कृपा से (अज्ञान रूपी) अन्धकार मिट जाता है, तो हृदय में (ज्ञान का) आलोक हो जाता है, जीव तभी अपने (वास्तविक स्वरूप) को पहचान लेता है ॥७॥

आपि उपाए तै आपे वेखै ॥
सतिगुरु सेवै सो जनु लेखै ॥
नानक नामु वसै घट अंतरि ॥
गुर किरपा ते पावणिआ ॥८॥३१
॥३२॥

(प्रभु) आप ही (जीवों को) उत्पन्न करता है और आप ही अन्दर की देखभाल भी करता है। किन्तु जो (जीव) सत्गुरु की सेवा करते हैं, वे ही लेखे के अन्दर आते हैं (अर्थात् वे स्वीकृत होते हैं)। हे नानक ! (हरि) नाम हृदय के भीतर ही निवास करता है, किन्तु (वह नाम) गुरु की कृपा से (ही) प्राप्त होता है ॥८॥३१॥३२॥

माझ महला ३॥

"सत्गुरु सेवा से जन्म सफल होता है।"

माइआ मोहु जगतु सबाइआ ॥
त्रै गुण दीसहि मोहे माइआ ॥
गुर परसादी को विरला बूझै
चउथै पदि लिव लावणिआ ॥१॥

सारा (जीव) जगत माया के मोह से ग्रसित है क्योंकि वे तीन गुणों वाले जीव माया से मोहित हुए देखे जाते हैं। गुरु की कृपा से कोई विरला ही इसको समझता है और (त्रै गुणों से ऊपर) चौथे पद में लौ लगाता है ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
माइआ मोहु सबदि जलावणिआ ॥
माइआ मोहु जलाए
सो हरि सिउ चितु लाए
हरि दरि महली सोभा पावणिआ
॥१॥रहाउ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) अपना जीव (भी) उन (गुरमुखों) के ऊपर न्यौछावर करता हूँ जो (गुरु के) शब्द द्वारा माया के मोह को जलाते हैं। जो माया के मोह को जला देते हैं, वे हरि के साथ चित्त लगाते हैं और वे (ही केवल) हरि के महल के द्वार पर शोभा प्राप्त करते हैं ॥१॥ रहाउ॥

देवी देवा मूलु है माइआ ॥
सिम्रिति सासत जिनि उपाइआ ॥
कामु क्रोधु पसरिआ संसारे
आइ जाइ दुखु पावणिआ ॥२॥

देवी-देवता जिन्होंने स्मृतियों और शास्त्रों की रचना की है, उनका मूल माया है (अर्थात् ये माया से उत्पन्न हुए हैं) क्योंकि इनकी कथाओं से मालूम होता है कि संसार में काम, क्रोधादि (विकार) फैले हुए हैं, जिस कारण जीव जन्मते-मरते हुए (आवागमन के चक्र को) दुःख प्राप्त करते हैं ॥२॥

तिसु विचि गिआन रतनु इकु पाइआ ॥
गुर परसादी मंनि वसाइआ ॥
जतु सतु संजमु सचु कमावै
गुरि पूरै नामु धिआवणिआ ॥३॥

जिस ससार में (कामादि) विकारों का प्रसार है उसी (संसार) में (मुक्ति दायक) एक ज्ञान रूपी रत्न उन्होने पाया है, जिन्होंने गुरु की कृपा से (हरि को) मन में बसाया है। वे संयमित, सत्य-पालक और जितेन्द्रिय होकर सच्चे परमात्मा की साधना करते हैं और पूर्ण गुरु द्वारा नाम का ध्यान करते हैं ॥३॥

पेईअड़ै धन भरमि भुलाणी ॥
दूजै लागी फिरि पछोताणी ॥
हलतु पलतु दोवै गवाए
सुपनै सुखु न पावणिआ ॥४॥

जो (जीव-) स्त्री (ससार रूपी) मायके घर मे भ्रम के कारण (अपने पति को) भूली हुई है, वह द्वैत-भाव में लगी होने के कारण बाद में पछताया करती है। उसने लोक और परलोक दोनों ही खो दिये हैं, इसलिये वह स्वप्न में भी (पति के) सुख का प्राप्त नही कर पाती ॥४॥

पेईअड़ै धन कंतु समाले ॥
गुर परसादी वेखै नाले ॥
पिर कै सहजि रहै रंगि राती
सबदि सिंगारु बणावणिआ ॥५॥

(पर) जो (जीव) स्त्री (संसार रूपी) माया के घर में (अपने) पति-परमेश्वर को स्मरण करती है, वह गुरु की कृपा से (पति-परमेश्वर को) हर समय अपने साथ सदा देखती है और सहज ही पति-प्रियतम के प्रेम मे अनुरक्त रहती है और गुरु के उपदेश को अपना शृ गार बनाती है ॥५॥

सफलु जनमु जिना सतिगुरु पाइआ ॥
दूजा भाउ गुर सबदि जलाइआ ॥
एको रवि रहिआ घट अंतरि
मिलि सत संगति हरिगुण गावणिआ ॥६॥

जिन्होने सत्गुरु को पाया है और द्वैतभाव को गुरु के शब्द द्वारा जला दिया है, उनका जन्म सफल है। वे अपने हृदय मे एक अद्वितीय परमात्मा को व्याप्त देखते हैं और सत्सगति मे मिल-कर हरि के गुण गाते हैं ॥६॥

सतिगुरु न सेवे सो काहे आइआ ॥
ध्रिगु जीवणु बिरथा जनमु गवाइआ ॥
मनमुखि नामु चिति न आवै
बिनु नावै बहु दुखु पावणिआ ॥७॥

जो (जीव) सत्गुरु की सेवा नही करते वे इस ससार में क्यों आए हैं? (अर्थात् उनका जन्म लेना बेकार है)। (हाँ) उनका जीवन धिक्कार है। वे व्यर्थ ही (मनुष्य) जन्म (रूपी पदार्थ को) गँवा देते हैं। मनमुखों को (हरि का) नाम चित्त मे नही आता (अर्थात् वे हरि) नाम मे अपना चित्त नही लगाते इस प्रकार बिना नाम (स्मरण के) वे दु:ख प्राप्त करते हैं ॥७॥

जिनि सिसटि साजी सोई जाणै ॥
आपै मेलै सबदि पछाणै ॥
नानक नामु मिलिआ तिन जन कउ
जिन धुरि मसतकि लेखु
लिखावणिआ ॥८॥१॥३२॥३३॥

जिस (कर्त्ता) ने सृष्टि की रचना की है उसे (उसके रहस्यों को) वही जानता है, जो (जीव) गुरु के उपदेश को पहचानता है, उसे कर्त्ता अपने साथ आप मिलाता है। हे नानक! नाम (रत्न) उन (जनों) को मिलता है, जिनके मस्तक में यह लेख पहले से ही लिखा हुआ है ॥८॥१॥३२॥३३॥

माझ महला ४॥

"घट घट में व्याप्त निरकार को गुरमुख देखता है।"

आदि पुरखु अपरंपरु आपे ॥
आपे थापे थापि उथापे ॥
सभ महि वरतै एको सोई
गुरमुखि सोभा पावणिआ ॥१॥

हे आदि पुरुष परमेश्वर! (तू) आप अगम (अर्थात हमारी पहुँच के बाहर) हो। (तू) आप ही (सृष्टि की) उत्पत्ति करते हो, पालना करके सहार भी (आप ही) करते हो। सभी (जीवों) में (तू) आप ही व्यापक हो रहे हो। ऐसा जान कर गुरमुख पुरुष शोभा को प्राप्त होते हैं (अर्थात् आनन्दित होते हैं) ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
निरंकारी नामु धिआवणिआ ॥
तिसु रूपु न रेखिआ घटि घटि
देखिआ
गुरमुखि अलखु लखावणिआ
॥१॥रहाउ॥

हे निरकार स्वरूप परमातमा! मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव भी उन (प्यारो) के ऊपर न्यौछावर करता हूँ जो आप के नाम का ध्यान करते हैं जिसे आपके स्वरूप का कोई विशेष रूप और रेखा की प्रतीति नही होती, (फिर भी) वे गुरमुख आप को घट-घट मे व्याप्त देखते हैं और दिखाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

तू दइआलु किरपालु प्रभु सोई ॥
तुधु बिनु दूजा अवरु न कोई ॥
गुरु परसादु करे नामु देवै
नामे नामि समावणिआ ॥२॥

हे प्रभु (तू) आप दयालु है और आपके बिना और कोई दूसरा कृपालु (भी) नही है। आप दयालु कृपालु की प्राप्ति तब होती है यदि गुरु कृपा करके (तुम्हारा) नाम दे तो (यह जीव) नाम जप कर नामी मे समा जाता है ॥२॥

तूं आपे सचा सिरजणहारा ॥
भगती भरे तेरे भंडारा ॥
गुरमुखि नामु मिलै मनु भीजै
सहजि समाधि लगावणिआ ॥३॥

हे भगवन्! (तू) आप ही सत्य स्वरूप हो और (सृष्टि के) रचयिता (सृजन करने वाले) (भी) हो। तुम्हारे भण्डार भक्ति से भरे हुए हैं। जिन गुरमुखों को आपका नाम मिला है, उनका मन भक्ति मे भीग गया है और वे सहज ही समाधि को लगाते हैं ॥३॥

अनदिनु गुण गावा प्रभ तेरे ॥
तुधु सालाही प्रीतम मेरे ॥
तुधु बिनु अवरु न कोई जाचा
गुर परसादी तूं पावणिआ ॥४॥

(हे प्रभु !) (ऐसी कृपा करो कि मैं) रात-दिन तुम्हारे गुण गाऊँ। हे मेरे प्रियतम ! तुम्हारी स्तुति (भी) करूँ। तुम्हारे बिना और किसी की भी याचना न करूँ (अर्थात एक तुम्हारी प्राप्ति की ही सदैव इच्छा करूँ), किन्तु (तू) गुरु की कृपा से (ही) प्राप्त होता है ॥४॥

अगमु अगोचरु मिति नही पाई ॥
आपणी क्रिपा करहि तूं लैहि मिलाई ॥
पूरे गुर कै सबदि धिआईऐ
सबदु सेवि सुखु पावणिआ ॥५॥

हे अगम्य ! हे अगोचर ! तुम्हारा अनुमान (सीमा) किसी को प्राप्त नही होता। (हाँ) जिस पर तुम अपनी कृपादृष्टि करते हो उसी को अपने साथ मिला लेते हो। जो (जीव) पूर्ण गुरु के उपदेश द्वारा तुम्हारा ध्यान करते हैं, वे तुझ (प्रभु) की सेवा करके सुख प्राप्त करते हैं ॥५॥

रसना गुणवंती गुण गावै ॥
नामु सलाहे सचे भावै ॥
गुरमुखि सदा रहै रंगि राती
मिलि सचे सोभा पावणिआ ॥६॥

जो रसना तुम्हारे गुण गाती है, वह गुणों वाली है और जो (हरि) नाम की स्तुति करते हैं वे सत्य स्वरूप परमात्मा को भाते हैं। गुरमुखो की रसना सदा प्रेम रग मे रगी (अनुरक्त) रहती है और वे सत्य स्वरूप को मिलकर शोभा पाते हे ॥६॥

मनमुखु करम करे अहंकारी ॥
जूऐ जनमु सभ बाजी हारी ॥
अंतरि लोभु महा गुबारा
फिरि फिरि आवण जावणिआ ॥७॥

मनमुख अहकार के कर्म करते हैं इसलिये वे (मनुष्य) जन्म रूपी सारी बाजी विषय रूप जूए में हार देते हैं। उनके अन्तर्गत लोभ का गाढा अन्धकार होता है, इसलिए वे बार-बार आते (जन्मते) और जाते (मरते) हे ॥७॥

आपे करता दे वडिआई ॥
जिन कउ आपि लिखतु धुरि पाई ॥
नानक नामु मिलै भउभंजनु
गुर सबदी सुखु पावणिआ ॥८॥
१॥३४॥

हे (सृष्टि) कर्ता ! उनको (तू) ही स्वय (भक्ति रूपी) बडाई देते हो, जिन के मस्तक मे तुमने पहले से ही शुभ कर्मों का लेख लिख दिया है। हे नानक ! जिनको गुरु के उपदेश से तुम्हारा नाम, जो भय को दूर करने वाला है, मिलता है, वे ही सुख पाते हे ॥८॥१॥३४॥

माझ महला ५ घरु १॥

"हृदय में अलक्ष्य प्रभु और 'उसका' नाम गुरु की कृपा से मिलता है।"

अंतरि अलखु न जाई लखिआ ॥
नामु रतनु लै गुझा रखिआ ॥

हे अलक्ष्य प्रभु ! (सर्व के) भीतर (सर्वव्यापक) होते हुए भी मुझ से देखे नही जा सकते। तुमने (अपना) नाम रूपी

अगमु अगोचरु सभ ते ऊचा
गुर कै सबदि लखावणिआ ॥१॥

रत्न गुप्त (छिपाकर) रखा हुआ है। हे अगम्य! हे अगोचर! तुम सबसे ऊँचे (सर्वोच्च) हो, किन्तु गुरु के उपदेश द्वारा आप जाने जाते हो ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
कलि महि नामु सुणावणिआ ॥
संत पिआरे सचै धारे
वडभागी दरसनु पावणिआ ॥१
॥रहाउ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) अपना जीव भी उन (सन्तों) के ऊपर न्योछावर करता हूँ, जो कलियुग में (प्रभु का) नाम सुनाते हैं। प्यारे सन्त सत्य-स्वरूप परमात्मा को (हृदय में) धारण करके रखते हैं। वे (जीव) भाग्यशाली हैं जो ऐसे सन्तों का दर्शन प्राप्त करते हैं ॥१॥रहाउ॥

साधिक सिध जिसै कउ फिरदे ॥
ब्रहमे इंद्र धिआइनि हिरदे ॥
कोटि तेतीसा खोजहि ता कउ
गुर मिलि हिरदै गावणिआ ॥२॥

साधना करने वाले जिज्ञासु और सिद्ध पुरुष जिस ईश्वर का स्वरूप प्राप्त करने के लिये घूमते-फिरते हैं तथा ब्रह्मा और इन्द्रादि (मुख्य देवता भी) जिसका हृदय में ध्यान करते हैं एव तेतीस करोड़ देवता भी जिसको खोजते-फिरते हैं, किन्तु जो (जीव) गुरु को मिलते हैं, वे (हरि को) हृदय में धारण करके उसे गाते हैं ॥२॥

आठ पहर तुधु जापे पवना ॥
धरती सेवक पाइक चरना ॥
खाणी बाणी सरब निवासी
सभना कै मनि भावणिआ ॥३॥

(हे परमात्मा!) वायु (देवता) आठ प्रहर तुमको जपता है। धरती (तुम्हारे) चरणों की दासी होकर (तुम्हारी) सेवा करती है। (हे प्रभु!) (तू) (चार) खानियों में और (सभी) बाणियों में सर्वत्र तू स्वय निवास कर रहे हो तथा सभी (जीवों) के मन को (तुम) अच्छे लगते हो ॥३॥

साचा साहिबु गुरमुखि जापै ॥
पूरे गुर कै सबदि सिञापै ॥
जिन पीआ सेई तृपतासे
सचे सचि अघावणिआ ॥४॥

हे सच्चे साहब! इस बात को गुरमुख (ही) जानते हैं कि तू पूर्ण गुरु के उपदेश द्वारा (ही) पहचाने जाते हो। हे सत्य स्वरूप परमात्मन्! जिन्होंने (गुरमुखों ने) निश्चय करके आपके (नाम रूपी) अमृत को पिया है, वे ही तृप्त हुए हैं, (हाँ) वे सच्चे स्वरूप के सच्च में समाकर (तृष्णादि से) पूर्ण तृप्त हुए हैं ॥४॥

तिसु घरि सहजा सोई सुहेला ॥
अनद बिनोद करे सद केला ॥
सो धनवंता सो वड साहा
जो गुर चरणी मनु लावणिआ ॥५॥

(और) उनके अन्तःकरण (घर) में ज्ञान है, इसलिये वे सुखी हैं। आनन्द-विनोद में सदा केलि (क्रीड़ा) करते हैं। (हे भाई!) जो गुरु के चरणों में चित्त लगाते हैं, वे धनवान हैं, (हाँ) वे ही बडे धनाढ्य हैं (अर्थात् वे आगे अन्य अधिकारियों को शाह व्यापारी की तरह आनन्द विनोद आदि रूपी पूँजी देते हैं) ॥५॥

पहिलो दे तैं रिजकु समाहा ॥
पिछो दे तैं जंतु उपाहा ॥
तुधु जेवडु दाता अवरु न सुआमी
लवै न कोई लावणिआ ॥६॥

(हे प्रभु !) तुम पहले से ही (जीवों के) खान-पान का प्रबन्ध रखते हो (अर्थात् माता के स्तनों में दूध रखते हो) और तब जीवों की उत्पत्ति करते हो। हे स्वामी ! तुम्हारे जैसा दाता और कोई नही है तथा तुम्हारे बराबर हम किसी को ला नहीं सकते ॥६॥

तिसु तूं तुठा सो तुधु धिआए ॥
साध जना का मंत्रु कमाए ॥
आपि तरै सगले कुल तारे
तिसु दरगह ठाक न पावणिआ ॥७॥

(हे प्रभु !) जिस पर तुम प्रसन्न होते हो वह तुम्हारा ध्यान करता है और वही साधु जनों से प्राप्त हुए (हरिनाम का) मन्त्र कमाता है। (जीवन में गुरु-शब्द की कमाई करके) वह स्वय तर जाता है और (अपने) कुल को भी (नाम जपाकर) तार देता है। उसे तुम्हारी दरबार मे जाते हुए कोई बाधा नहीं होती ॥७॥

तूं वडा तूं ऊचो ऊचा ॥
तूं बेअंतु अति मूचो मूचा ॥
हउ कुरबाणी तेरै वंञा
नानक दास दसावणिआ ॥८॥
१॥३५॥

(हे प्रभु !) तुम बड़ो से बडे हो और ऊँचो से ऊँचे (सर्वोच्च) हो एव तुम बेअन्त हो तथा महान् से महान् हो। मैं तुझ पर न्योछावर हूँ और तुम्हारे दास से तेरी प्राप्ति के मार्ग को पूछूँ अथवा मैं तेरे दासों का दास बना रहूँ। (विनय करते हैं बाबा) नानक (साहब) ॥८॥१॥३५॥

माझ महला ५॥

'गुरु-शिष्य के सवाद में चौबीस प्रश्नो का उत्तर संक्षिप्त एवं युक्ति युक्त।"

कउणु सु मुकता कउणु सु जुगता ॥
कउणु सु गिआनी कउणु सु बकता ॥
कउणु सु गिरही कउणु उदासी
कउणु सु कीमति पाए जीउ ॥१॥

(प्रश्न) (१) मुक्त (पुरुष) कौन है ? (२) (प्रभु से) जुड़ा हुआ कौन है ? (३) ज्ञानवान कौन है ? (४) (हरि के यश को) कहने वाला (वक्ता) कौन है ? (५) ग्रहस्थी कौन है ? (६) उदासी (वैरागी) कौन है ? (७) (ईश्वर की) कीमत पाने वाला 'उसे' (जानने वाला) कौन है ? ॥१॥

किनि बिधि बाधा
किनि बिधि छूटा ॥
किनि बिधि आवणु जावणु तूटा ॥
कउण करम कउण निहकरमा
कउणु सु कहै कहाए जीउ ॥२॥

(८) किस विधि से जीव बन्धा हुआ है ? (९) किस विधि से जीव बन्धनो से छूट जाता है ? (१०) किस विधि से (जीव का) आना-जाना (आवागमन) टूटता है ? (११) कर्म (सहित) कौन है ? (अर्थात फल की इच्छा रखकर कर्मो मे लगा हुआ) (१२) निष्काम कर्म करने वाला कौन है ? (अर्थात् फल की इच्छा को छोडकर कर्मों को करने वाला कौन है) ? (१३) हरि के गुण कहने वाला और कहलाने वाला कौन है ? ॥२॥

कउणु सु सुखीआ कउणु सु दुखीआ ॥
कउणु सु सनमुखु कउणु वेमुखीआ ॥
किनि बिधि मिलीऐ
किनि बिधि बिछुरै
इह बिधि कउणु प्रगटाए जीउ ॥३॥

(१४) सुखी कौन है? (१५) और दुःखी कौन है? (१६) सन्मुख कौन है? (अर्थात् जो आज्ञा मानने के लिए सदा तैयार रहता है) (१७) और विमुख कौन है? (१८) किस विधि से जीवात्मा परमात्मा को मिल सकता है? (१९) और किस विधि से (जीवात्मा का परमात्मा से) वियोग होता है? (२०) इस विधि को कौन (जीव के आगे) प्रकट करता है? ॥३॥

कउणु सु अखरु जितु धावतु रहता ॥
कउणु उपदेसु जितु दुखु सुखु सम
सहता ॥
कउणु सुचाल जितु पारब्रहमु धिआए
किनि बिधि कीरतनु गाए जीउ ॥४॥

(२१) वह अक्षर कौन सा है जिसके पढने से मन दौडने-भटकने से रहता) (अर्थात् रुक जाता) है? (२२) वह उपदेश कौन है जिसके द्वारा (जीव) दुख सुख को सम (एक-सा) समझता (देखता) है और सहता है? (२३) वह सुन्दर युक्ति (रीति) कौन सी है जिसके द्वारा जीव (प्रभु का) ध्यान करता है? (२४) और किस विधि से (हरि) कीर्तन गायन किया जाय?॥४॥

गुरमुखि मुकता गुरमुखि जुगता ॥
गुरमुखि गिआनी गुरमुखि बकता ॥
धनु गिरही उदासी गुरमुखि
गुरमुखि कीमति पाए जीउ ॥५॥

(उत्तर) (१) (गुरु के बताए हुए मार्ग पर चलने वाला) गुरमुख ही (माया के बन्धनो से) मुक्त है। (२) गुरमुख ही परमेश्वर के साथ जुड़ा हुआ (योगी) है। (३) गुरमुख ही ज्ञानी है। (४) गुरमुख ही (गुण गान करने वाला) वक्ता है। (५) गुरमुख चाहे ग्रहस्थी हो अथवा (६) उदासी (त्यागी) हो, वह धन्यवाद का पात्र है। (७) गुरमुख ही प्रभु की कीमत पाने वाला (अर्थात् पूर्ण रूप से पहचानने वाला) है ॥५॥

हउमै बाधा गुरमुखि छूटा ॥
गुरमुखि आवणु जावणु तूटा ॥
गुरमुखि करम गुरमुखि निहकरमा
गुरमुखि करे सु सुभाए जीउ ॥६॥

(८) (मनमुख) अहंकार के कारण बधा हुआ है। (९) गुरमुख (अहंकार से रहित होने के कारण माया के बन्धनो से) छूटा हुआ (अर्थात् बन्धन मुक्त) है। (१०) गुरमुख का आना-जाना टूट गया है (अर्थात् जन्म-मरण से मुक्त है)। (११) गुरमुख ही (श्रेष्ठ) कर्म करता है। (१२) गुरमुख ही कर्म करता हुआ भी अकर्ता (अर्थात् निष्काम कर्म योगी) है। (१३) गुरमुख जो कथन करता या कराता है, वही शोभनीय है ॥६॥

गुरमुखि सुखीआ मनमुखि दुखीआ ॥
गुरमुखिसनमुखु मनमुखि वेमुखीआ ॥
गुरमुखि मिलीऐ मनमुखि विछुरै
गुरमुखि बिधि प्रगटाए जीउ ॥७॥

(१४) गुरमुख ही सुखी है। (१५) मनमुख दुःखी है। (१६) गुरमुख गुरु के सन्मुख है। (१७) मनमुख (गुरु से) विमुख है। (१८) गुरमुख ईश्वर को मिलता है। (१९) मनमुख (ईश्वर से) बिछुडता है। (२०) गुरमुख ही ईश्वर (से मिलने और बिछुडने) की विधि को प्रकट करता है ॥७।

गुरमुखि अखरु जितु धावतु रहता ॥
गुरमुखि उपदेसु दुखु सुखु सम
सहता ॥
गुरमुखि चाल जितु पारब्रहमु धिआए
गुरमुखि कीरतनु गा ; जीउ ॥८॥

(२१) गुरु के मुख से निकला हुआ अक्षर (नाम का) जिसके जाप से (माया के प्रति) दौडता हुआ मन रुक जाता है। (२२) गुरु के मुख से निकला हुआ उपदेश (नाम का) जिससे जीव दुःख सुख को समान समझकर सहता है। (२३) गुरु के मुख से निकली हुई आज्ञा (नाम की) वह रीति है जिससे परब्रह्म परमेश्वर का ध्यान किया जाता है और (२४) गुरमुख की बताई हुई विधि से (हरि का) कीर्तन गायन करना है ॥८॥

सगली बणत बणाई आपे ॥
आपे करे कराए थापे ॥
इकसु ते होइओ अनंता
नानक एकसु माहि समाए जीउ
॥९॥२॥३६॥

हे प्रभु ! सारी सृष्टि की रचना आप (ही) ने की है। तू आप ही करता है और (जीवो से) उनसे कराता है और तू आप ही जीवो को स्थित करता है। हे नानक ! एक अद्वितीय परमात्मा से ही जगत का अनन्त रूप रचा हुआ है और अन्त मे (सभी जीव) एक ही परमेश्वर में समा जायेंगे ॥९॥ २॥३६॥

माझ महला ५॥

"हे प्रभु ! तू ही मेरा सब कुछ है। मेरा उद्धार करो।"

प्रभु अबिनाशी ता किआ काड़ा ॥
हरि भगवता ता जनु खरा सुखाला ॥
जीअ प्रान मान सुखदाता
तूं करहि सोई सुखु पावणिआ ॥१॥

जिस (जीव) को अविनासी प्रभु मे विश्वास है, उसको (फिर) संशय व चिन्ता कैसी ? और जिस हरि जन को भगवंत् मे निश्चय है, वह अपने आपको अत्यन्त सुखी समझता है तथा यह जानता है कि हे प्रभु ! तू ही जीव प्राण, मान और सुख का दाता है और जो तू करता है, उसी मे सुख प्राप्त होता है (अर्थात प्रसन्न रहता है) ॥१॥

हउ वारी जीउ वारी
गुरमुखि मनि तनि भावणिआ ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं अपना जीव (भी) उन गुरमुखों के ऊपर न्योछावर करता हूँ, जिनके मन और तन को तू भाता

तूं मेरा परबतु तूं मेरा ओला
तुम संगि लवै न लावणिआ ॥१
॥रहाउ॥

है। (हे हरि !) तू ही मेरे लिये पर्वत के समान सुदृढ़ आश्रय हो और तू ही मेरा (पर्दे के समान) अवगुणों को ढकने वाले (भी) हो तथा तुम्हारे बराबर मुझे और कोई नहीं लगता ॥१॥ रहाउ॥

तेरा कीता जिसु लागै मीठा ॥
घटि घटि पारब्रहमु तिनि जनि डीठा ॥
थानि थनंतरि तूं है तूं है
इको इकु वरतावणिआ ॥२॥

हे परब्रह्म परमेश्वर ! तुम्हारा किया हुआ हुकम जिसको मीठा लगता है (अर्थात जो तुम्हारी रजा मे राजी रहता है) उसने ही तुम्हें घट-घट मे व्याप्त (परिपूर्ण) देखा है। देश-देशान्तरों में (अर्थात सभी स्थानो में) एक तुम ही तुम व्यापक हो रहे हो (अर्थात सर्वत्र तुम्हारा ही हुकम चलता है) ॥२॥

सगल मनोरथ तूं देवणहारा ॥
भगती भाइ भरे भंडारा ॥
दइआ धारि राखे तुधु सेई
पूरै करमि समावणिआ ॥३॥

(हे प्रभु !) तुम मन की सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हो और तुम देने वाले (दाता) भी हो और तुम्हारे (प्रेमा-भक्ति के) भण्डार भरे हुए हैं। किन्तु जिनको तुमने दया करके कामादि विकारों से (रख) बचा लिया है वे ही पूर्ण भाग्य के कारण तुम्हारे मे समा जाते हैं ॥३॥

अंध कूप ते कंढै चाड़े ॥
करि किरपा दास नदरि निहाले ॥
गुण गावहि पूरन अबिनासी
कहि सुणि तोटि न आवणिआ ॥४॥

हे अविनाशी ! हे परिपूर्ण पुरुष ! तू अपनी कृपा-दृष्टि से अपने दासो को (ससार रूपी) अन्धे कुएँ से निकाल कर किनारे के ऊपर चढा देते हो (अर्थात पार लगा देते हो) तथा वे तुम्हारे ही गुण गाते हैं और उन गुणो को गाने व सुनने से कोई त्रुटि नही होती क्योकि तुम्हारी महिमा अपरंपार है ॥४॥

ऐथै ओथै तूं है रखवाला ॥
मात गरभ महि तुम ही पाला ॥
माइआ अगनि न पोहै तिन कउ
रंगि रते गुण गावणिआ ॥५॥

(हे परमेश्वर !) लोक-परलोक मे तू ही (जीव की) रक्षा करने वाले हो और तू ही माता के गर्भ (जठर अग्नि) में बच्चे की पालना करते हो। जो भी प्रेम-रग मे रगकर तुम्हारे गुण गाते हैं, उनको माया रूपी अग्नि नहीं स्पर्श करती है (अर्थात जलाती)। वे रहते भी ससार मे है तो भी माया के बन्धनों से मुक्त है ॥५॥

किआ गुण तेरे आखि समाली ॥
मन तन अंतरि तुधु नदरि निहाली ॥
तूं मेरा मीतु साजनु मेरा सुआमी
तुधु बिनु अवरु न जानणिआ ॥६॥

(हे परमेश्वर !) मैं तुम्हारे किन-किन गुणों का स्मरण करके कहूँ ? मैं तो मन और तन मे तुमको ही देख कर धन्य हो रहा हूँ। हे स्वामिन् ! तू मेरा मित्र है और सज्जन भी है तथा तुम्हारे बिना मैं और किसी को नहीं जानता ॥६॥

जिस कउ तूं प्रभ भइआ सहाई ॥
तिसु तती वाउ न लगै काई ॥
तूं साहिबु सरणि सुखदाता
सतसंगति जपि प्रगटावणिआ ॥७॥

हे प्रभु ! जिस (जीव) की तुम आप सहायता करते हो उसे किसी प्रकार की गर्म हवा नही लगती (अर्थात कोई भी कष्ट नही होता)। हे (मेरे) साहब ! तू शरण में आए हुए को सुख देने वाले हो। जो सत्संगति में बैठकर तुम्हारा नाम जपते हैं, उनके सामने ही तुम प्रकट होते हो ॥७॥

तूं ऊच अथाहु अपारु अमोला ॥
तूं साचा साहिबु दासु तेरा गोला ॥
तूं मीरा साची ठकुराई
नानक बलि बलि जावणिआ ॥८॥
३॥३७॥

(हे प्रभु !) तुम सर्वोच्च हो, अथाह हो, अपार हो, अमूल्य हो और सच्चे साहब हो। मैं तुम्हारा (खरीदा हुआ) दास (गोला) हूँ। तुम (मेरे) बादशाह हो, तुम्हारी ठकुराई (बादशाही) सच्ची है, (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (विनय करते हैं कि) मैं तुम पर बलिहारी जाता हूँ ॥८॥३॥३७॥

माझ महला ५ घरु २॥

"सन्तो की सगति में नाम जपकर अटल सुहाग प्राप्त कर।"

नित नित दयु समालीऐ ॥
मूलि न मनहु विसारीऐ ॥रहाउ॥

(हे भाई !) नित्य-प्रति प्रकाशवान प्रभु का स्मरण करना चाहिए और मन से कभी भी (सर्व के प्रेरक) हरि को नही भूलना चाहिए ॥रहाउ॥

संता संगति पाईऐ ॥
जितु जम कै पंथि न जाईऐ ॥
तोसा हरि का नामु लै
तेरे कुलहि न लागै गालि जीउ
॥१॥

सन्तों की सगति को प्राप्त करने से यम के मार्ग में नही जाना पडता। (हे भाई !) हरि का नाम (परलोक मे मार्ग पर खर्च के काम आता है, उसे) ले जाना चाहिए, इससे तेरे कुल को उला-हना एव कलक नही लगेगा ॥१॥

जो सिमरंदे सांईऐ ॥
नरकि न सेई पाईऐ ॥
तती वाउ न लगई
जन मनि वुठा आइ जीउ ॥२॥

जो (मेरे) स्वामी प्रभु का स्मरण करते है, वे (जीव) नरक में नही जाते। जिनके मन मे स्वय परमात्मा आकर निवास करता है दु खदायी वायु उनको नही लगती (अर्थात विघ्न, बाधा, कष्टादि नही होते) ॥२॥

सेई सुंदर सोहणे ॥
साध संगि जिन बैहणे ॥
हरि धनु जिनी संजिआ
सेई गंभीर अपार जीउ ॥३॥

सुन्दर और शोभनीय वही हैं जो साधु-संगति में बैठते हैं। जिन्होने हरि धन का संग्रह किया है, वे ही अत्यन्त गम्भीर हैं (अर्थात् उनके अन्तर्गत हृदय का अन्त कोई भी नही प्राप्त कर सकता) ॥३॥

हरि अमिउ रसाइणु पीवीए ॥
मुहि डिठै जन कै जीवीऐ ॥
कारज सभि सवारि लै
नित पूजहु गुर के पाव जीउ ॥४॥

(हे भाई !) सच्चे सत्गुरु के दर्शन मात्र से ही जीवन प्राप्त होता है। अत. उससे ही रसो (हरि नाम) का अमृत पीना चाहिए और अपने गुरु के नित्य-प्रति चरणों की पूजा करके अपने सभी कार्यों को पूरा (ठीक) कर लेना चाहिए ॥४॥

जो हरि कीता आपणा ॥
तिनहि गुसाई जापणा ॥
सो सूरा परधानु सो
मसतकि जिस दै भागु जीउ ॥५॥

(हे भाई !) जिनको हरि ने अपना बना लिया है, वे ही गोसाई (के नाम) को जपते हैं। वे ही शूरवीर है और वे ही (सर्व में) प्रधान है जिनके मस्तक मे हरिनाम जपने का भाग्य लिखा हुआ है ॥५॥

मन मंधे प्रभु अवगाहीआ ॥
एहि रस भोगण पातिसाहीआ ॥
मंदा मूलि न उपजिओ
तरे सची कारै लागि जीउ ॥६॥

जिन्होने अपने मन में प्रभु (के स्वरूप) का विचार (चिन्तन और मनन) किया है, वे ही बादशाहियो के आनन्दो को भोगते हैं (अर्थात अनेक राज्य के सुखो का अनुभव करते हैं)। उनके मन मे कभी भी मन्द (बुरा) विचार उत्पन्न नही होता और वे सच्ची कृति (भक्ति) मे लगकर (ससार-सागर से) तर जाते है ॥६॥

करता मंनि वसाइआ ॥
जनमै का फलु पाइआ ॥
मनि भावंदा कंतु हरि तेरा
थिरु होआ सोहागु जीउ ॥७॥

(हे भाई !) कर्त्ता को मन मे बसाने से तू (मनुष्य) जन्म का फल प्राप्त कर लेगा। फिर हरि, जो आत्मा (मन) का प्रिय है और (सभी जीव-स्त्रियो का) पति है, वह तेरा हो जायेगा। अत तेरा सुहाग स्थिर हो जायेगा (अर्थात जीव सदा परमात्मा मे लीन रहेगा)। ॥७॥

अटल पदारथु पाइआ ॥
भै भंजन की सरणाइआ ॥
लाइ अंचलि नानक तारिअनु
जिता जनमु अपार जीउ ॥८॥
४॥३८॥

(हे भाई !) जो जीव भय-भजन प्रभु की शरण में आते हैं, वे (हरिनाम रूपी) अटल पदार्थ को प्राप्त करते है। हे नानक ! (ऐसे भाग्यशाली जीवो को) मेरा प्रभु अपने आँचल से लगाकर (बाधकर ससार-सागर से) तार देता है, जिससे वे (मनुष्य) जन्म को, जिसकी महिमा अनन्त है, जीत (सफल कर) लेते है ॥८॥४॥३८॥

माझ महला ५ घरु ३॥

"सन्तो की संगति में हरि नाम जप कर भय का दूर कर।"

हरि जपि जपे
मनु धीरे ॥१॥रहाउ॥

(हे भाई !) हरि को जपते-जपते मन धैर्य करता है। (अर्थात दु:ख-सुख मे विचलित नही होता) ॥१॥ रहाउ ॥

सिमरि सिमरि गुरु देउ
मिटि गए भै दूरे ॥१॥

गुरुदेव (जी) का स्मरण करते-करते भय दूर हो जाते है, (हाँ) मिट ही जाते हैं ॥१॥रहाउ ॥

सरनि आवै पारब्रहम की
ता फिरि काहे झूरे ॥२॥

जब परब्रह्म परमेश्वर की शरण में आते है तो चिन्ता और दु:ख अथवा पश्चात्ताप् क्यो होगा ? (अर्थात दु:ख ही दूर हो जायेंगे) ॥२॥

चरन सेव संत साध के
सगल मनोरथ पूरे ॥३॥

सन्तो और साधुओं के चरणों की सेवा करने से सकल मनोरथ पूरे हो जाते है ॥३॥

घटि घटि एकु वरतदा
जलि थलि महीअलि पूरे ॥४॥

घर-घर (प्रत्येक शरीर) में एक अद्वितीय परमात्मा परिव्याप्त है तथा जल, स्थल पृथ्वी तथा आकाश के बीच—अन्तरिक्ष में भी 'वह' परिपूर्ण है ॥४॥

पाप बिनासनु सेविआ ॥
पवित्र संतन की धूरे ॥५॥

सन्तो के चरणों की पवित्र धूलि प्राप्त होने पर अथवा यदि सन्तों की सेवा-टहल की, तो मानो पापों को नष्ट करने वाले हरि की सेवा की (क्योकि सन्त हरि के ही रूप हैं) ॥५॥

सभ छडाई खसमि आपि
हरि जपि भई ठरूरे ॥६॥

हरि (नाम) जपने से (समस्त जीव)-सृष्टि शान्त होती है। स्वयं पति-परमेश्वर ने सारी (जीव) सृष्टि को (विकारों की अग्नि से) छुड़ा लिया है ॥६॥

करतै कीआ तपावसो
दुसट मुए होइ मूरे ॥७॥

(सृष्टि) कर्त्ता का यह न्याय (तपावसो) है कि दुष्ट पुरुष जड़ से ही मर जाते हैं (अर्थात उनकी जड़ ही नष्ट हो जाती है) ॥७॥

नानक रता सचि नाइ
हरि वेखै सदा हजूरे ॥८॥५॥३९
॥१॥३२॥१॥५॥३९॥

हे नानक ! जो जीव सत्य स्वरूप परमेश्वर के नाम में अनुरक्त है, वह हरि परमात्मा को सर्वदा अपने अत्यन्त ही निकट देखता है ॥८॥५॥३९॥१॥३२॥१॥५॥३९॥

बारह माहा मेरे विचार मे

एक समय कुछ श्रद्धालु प्रेमियो ने पचम पातशाही, गुरु अर्जन देव से प्रार्थना की कि हे गुरुदेव ! यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध एव सर्व मान्य है कि किसी माननीय पुरुष के मुख से महीने के प्रथम दिन का नाम श्रवण करने से सारा महीना सुख और शान्ति पूर्वक व्यतीत होता है। इसलिए किसी कल्याणकारी वाणी का उच्चारण करें। शहीदो के शिरोमणि, मेरे वन्दनीय सत्गुरु गुरु अर्जन देव ने प्रेमियो की प्रार्थना सुनकर 'बारह माहा' नाम की सुगम एव मनोहर वाणी का उच्चारण करके आज्ञा प्रदान की कि प्रत्येक शिष्य संक्रान्ति के पवित्र दिवस पर श्रदापूर्वक यथा शक्ति भेंट, पूजा एव प्रसाद रखकर बारह माहा के उपदेश को विचार सहित श्रवण, पठन एवम् गायन करें। यद्यपि पहली पातशाही, गुरु नानक साहब की रचित वाणी बारह माहा तुखारी राग में विद्यमान है तथा उसकी उपेक्षा माझ राग का बारह माहा अति सुगम एव सरल होने के कारण सक्रान्ति के दिवस पर इसी का महत्त्व है। मेरे विचार में तुखारी राग का बारह माहा मूल रूप है जिसका विश्लेषण माझ राग का बारह माहा है।

दशम् पातशाही, गुरु गोविन्द सिंह कृत 'दशम् ग्रन्थ' मे भी श्री कृष्णावतार की कथा में बारह मासा का भव्य निरूपण हुआ है। सत्गुरु के अनन्य प्रेमी भाई वीर सिंह ने लगभग संमत १८७७ में अपने प्यारे गुरुदेव, गुरु गोविन्द सिंह के विरह मे बारह माहा लिखा है।

बारह माहा का शाब्दिक अर्थ है बारह महीने। वर्ष के प्रत्येक मास विरहिणी स्त्री मे अनुभूत दु खो तथा हार्दिक वेदनाओ की अभिव्यक्ति मास के क्रम से पाई जाती है। इसमें साल के बारह मास दु:खों का वर्णन होता है अत इनको बारह मासा की संज्ञा प्राप्त हुई है। हाँ, पहले ग्यारह महीने वियोग के होते हैं

और बारहवाँ महीना मिलन का। जिसमें वियोगिनी के केवल छः मासों या बार मासों की दुखानुभति का चित्रण उपलब्ध होता है, उसे छः मासा या चौमासा कहते हैं।

मेरे गुरुदेव ने प्रभु प्रियतम को ही केवल मात्र पूर्ण पुरुष की संज्ञा देकर अपने आपको स्त्री मानकर बारह महीनों के द्वारा पति-परमेश्वर से मिलने की तीव्र अभिलाषा, प्रेम-विरह से विह्वलता और दुःख तथा गुरु के निकट सहवास में अपने आपको ईश्वर की इच्छा पर सम्पूर्ण आत्म समर्पण पर बल दिया है। जिस प्रकार लौकिक जगत में एक स्त्री को अपने पति को मिलने की उत्कठा होती है, उसी प्रकार अलौकिक जगत में जिज्ञासु रूपी स्त्री को प्रियतम-प्रभु से मिलने की तीव्र इच्छा होती है। वस्तुत निर्वासित जीव-स्त्रिया अपने प्रियतम भगवान की वियोगवस्था कैसे सहन कर सकती हैं!

पहली पौडी मगल रूप है। दया की भावना से ओत-प्रोत मेरे गुरुदेव कलियुगी जावों की दयनीय दशा को देखकर कृपालु प्रभु के सम्मुख प्रार्थना करते हैं।

चैत्र मास —चैत्र मास के अन्तर्गत गुरुदेव ने जीवात्मा रूपी स्त्री की मिलनोत्कण्ठा चित्रित की है। विह्वल जीवात्मा-स्त्री भला अपने पति के बिना कैसे सुखी हो सकती है। हरि मिलन के लिए सन्तजनो का जीवन में होना अनिवार्य है। क्योकि उनकी सगति मे जीव रूपी स्त्री गोविन्द की अराधना करके उस आत्मिक अवस्था को प्राप्त करती है जहाँ उसे सर्वत्र परिपूर्ण परमेश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

बैशाख मास—प्रस्तुत मास मे गुरुदेव ने प्रकृति के शृ गार रत संदर्भ में सुहागिन जीवात्मा की मनोदशा का मनोवैज्ञानिक रूप प्रस्तुत किया है। उसका प्रतीक्षाकुल हृदय प्रिय को पुकारता है किन्तु सन्त से भेंट होने पर ही उसका प्रियतम से मिलन होता है।

ज्येष्ठ मास - ज्येष्ठ मास के दहकते वातावरण मे विरह से विदग्ध जीवात्मा शाति प्राप्ति के लिए हरि-मिलन हेतु उद्विग्न हो उठती है और उसकी अनुग्रह याचना करती है। हरि रग ही इस विरह दशा में जीवात्मा का एक मात्र विकल्प है जो केवल साधु की सगति से प्राप्त होता है। किन्तु वह भी तभी सम्भव है यदि मस्तक पर शुभ कर्म का लेख लिखा हुआ हो।

आषाढ मास —आषाढ मास के स्निग्ध माहा से गुरुदेव-विह्वल जीवात्मा की आतुर दशा व्यक्त की है। वह अपने प्रियतम प्रभु से प्रेम की स्निधता के लिए पुकार करती है। किन्तु पूर्व लिखित शुभ कर्म होने से साधु के मिलने ही हरिनाम की शीतल वर्षा से ही जीवात्मा को शान्ति मिलती है और हरि प्रभु के दर्शन प्राप्त होते है।

श्रावण मास— श्रावण के महीने में कामिनी प्रेम-विह्वल होकर आनन्द विभोर हो उठती है। प्रेम की तरगे अन्तर्मन में उमडती हैं और केवल एक ही अभिलाषा होती है कि पति-प्रियतम के साथ कैसे मिलन हो। प्रेम के सहायक सन्तजन ही हैं। उन प्रेमियो के लिए भूख और प्यास है ही नही, जिन्होने प्रेम रस का रसास्वादन किया है। गुरु की संगति में रहकर ही कोई भाग्यशाली स्त्री अपने तन,मन आदि को कभी मंद न पडने वाले लालीमा युक्त प्रेम रग (प्रेमाभक्ति) से रंजित करती है अन्त में वह प्रभु मे मिलकर सदा के लिए कृतार्थ हो जाती है।

भाद्रपद मास इस मास के अन्तर्गत गुरुदेव ने वर्षा ऋतु के बाद जब बादल चारो ओर से इकट्ठे होकर आते हैं किन्तु शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ऐसा मौसम जो भ्रम में डालने वाला है उसका मनोहर निरूपण किया है। वस्तुतः जीव रूपी स्त्री भी भ्रम में भूली हुई है। वह द्वैत भाव वाले सासारिक

शृंगारों में लगी रहती है किन्तु हरि मिलन के लिए गुरु के चरण रूपी जहाज की आवश्यकता वह अनुभव करती है। क्योंकि गुरु ही भवसागर से पार उतारने वाला है। सत्य के मार्ग पर चलने से संसार स्तुति करता है। जिस पर मेरे दयालु प्रभु दया करके गुरु से मिलन कराते हैं वे ही हरि नाम का ध्यान करते हैं (हाँ) वे ही माघ के महीने में पवित्र हो जाते हैं।

फाल्गुन मास—प्रस्तुत मास में हरि सज्जन प्रकट होते ही जीवात्मा रूपी स्त्री की इच्छा पूर्ण होती है। अब वह सुहागिनो के साथ मिलकर हरि राजा के मगलमय गीत गाती है। वह निश्चल अवस्था प्राप्त करके अपना लोक परलोक संवार लेती है। वस्तुत परमात्मा के मिलाप मे सन्त ही सहायक हैं जो संसार सागर से बचा लेते हैं और फिर उन्हें जन्म-मरण में भटकना नही पड़ता। अत इस महीने मे हरि राजा की स्तुति करनी चाहिए जिसको तिल पर भी लालच नहीं है।

आश्विन मास—इस मास में जीवात्मा रूपी स्त्री के अन्तर्गत प्रेम उछल-उछल पडता है क्योकि उसके मन तन में हरि परमेश्वर के दर्शन की अत्याधिक प्यास है। वस्तुत सन्त ही प्रेम के सहायक हैं। जिस-पर दयालु सन्त दया करके हरि नाम के प्रेम रस का पान कराते हैं वे ही स्त्री तृप्त होती है किन्तु यह सब कुछ सम्भव तभी होता है जब मेरे हरि राजा अपनी कृपा दृष्टि करें।

कार्तिक मास—गुरुदेव ने इस मास द्वारा जीवात्मा रूपी स्त्री को यह स्पष्ट किया है कि पति परमेश्वर के वियोग का कारण कोई अन्य नही, स्वयं जीव-स्त्री के कर्म हैं जिसके कारण वह अपने पति राम से विमुख होकर जन्म-जन्मान्तरों के वियोग को प्राप्त करती है। अपने करने से कुछ नही बनता क्योकि परमेश्वर की ओर से उनके मस्तक पर भाग्य ही ऐसे लिखे है। किन्तु यदि मेरे प्रभु जी, जो बन्धनो को काटने वाले हैं, किसी साधु की सगति प्रदान कर दे तो जीवात्मा की सभी चिन्तायें दूर हो जाती है।

मार्ग शीर्ष मास—इस मास में गुरुदेव ने प्रभु की आराधना पर बल दिया है। जिन भाग्यशाली जीव स्त्रियो ने हरि को ही अपना एकमात्र अवलम्ब बनाकर उसकी आराधना की है वे हरि प्रियतम की संगति मे बैठी हुई सुशोभित होती हैं। उनका मन-तन कमल की भाति विकसित रहता है। वस्तुत सुहागिनियों ने ही हरि नाम के रत्न जवाहर लाल हार को पहना है। किन्तु जो साधु की सगति को प्राप्त नही करतें वे यम के वशीभूत होते हैं।

पौष मास—पौष के ठंडे हिमपात मास के द्वारा गुरुदेव ने हरि वियुक्त जीवात्मा का मिलन दिखाया है। किन्तु दर्शन उसे प्राप्त होता है जिसने गोबिन्द का सहारा लेकर साधु की सगति से विषवत् माया का त्याग किया है। नारायण प्रभु स्वय ऐसी स्त्री को हाथ से पकड कर अटल सुख प्रदान कर देते हैं।

माघ मास—माघ का मास स्नान के लिए विख्यात है गुरुदेव ने साधु जनो की चरणधूलि मे स्नान करने का सद्-उपदेश दिया है। हरि नाम का दान सर्वोत्तम दान है।

उपसंहारात्मक छन्त—जीवात्मा के लिए हरि नाम का ध्यान ही एक मात्र लक्ष्य है किन्तु हरि की अराधना गुरु के माध्यम से ही सम्भव है। वे विषयो की अग्नि में कदाचित् नही जलते जिन्होने इस विषमय भवसागर मे हरि चरण-कमलों का सहारा लेकर प्रेमाभक्ति की है। ऐसे जीव परब्रह्म प्रभु की सेवा मन के अन्दर एक हरि को धारण करके करते है। उनके लिए सभी मास, दिन, मुहूर्त शुभ हैं, जिनपर हरि गुरु कृपा-दृष्टि करते हैं।

संक्षेप मे जिज्ञासु रूपी कामिनी को अपने पति-प्रियतम के प्रति प्रेम [की अति सुन्दर अभिव्यक्ति बारह माहा में हुई है। विरहिणी की यही तड़प है, यही वेदना है, यही दुःख की पराकाष्ठा है जो ग्यारह मास के विरह के पश्चात् मिलन की मधुर वेला का सुखद वर्णन करती है।

बारह माहा माझ महला ५ घरु ४ ॥

किरति करम के वीछुड़े
करि किरपा मेलहु राम ॥
चारि कुंट दह दिस भ्रमे
थकि आए प्रभ की साम ॥
धेनु दुधै ते बाहरी
कितै न आवै काम ॥
जल बिनु साख कुमलावती
उपजहि नाही दाम ॥
हरि नाह न मिलीऐ साजनै
कत पाईऐ बिसराम ॥
जितु घरि हरि कंतु न प्रगटई
भठि नगर से ग्राम ॥
स्रब सीगार तंबोल रस
सणु देही सभ खाम ॥
प्रभ सुआमी कंत विहूणीआ
मीत सजण सभि जाम ॥
नानक की बेनंतीआ
करि किरपा दीजै नामु ॥
हरि मेलहु सुआमी संगि प्रभ
जिस का निहचल धाम ॥१॥

हे (प्यारे) राम हम पूर्व-जन्म के (मन्द) कर्मों के कारण (आप से) बिछुडे हुए हैं अब कृपा करके हमे अपने साथ मिला दो। हे प्रभु ! चारो कोनो और दसो दिशाओ मे भटक कर (थक कर) (अन्तत) आपकी ही शरण मे आए हैं ! जैसे गऊ दूध के बिना किसी काम मे नही आती तथा जैसे जल के बिना खेती मुर्झा जाती है और उससे पैसे (मूल्य) प्राप्त नही होते अथवा जैसे शाखा के मुर्झा जाने पर द्रुम-वृक्ष का दाम उत्पन्न नही होता, (वैसे ही मनुष्य शरीर को पाकर जो जीव-स्त्री) हरि रूप सज्जन पति को नहो मिलती, वह (भला बताओ) कैसे विश्राम प्राप्त कर सकती है ? जिस घर (हृदय) मे हरि (पति) प्रकट नहीं हुआ है, वे नगर ग्राम (अमीर-गरीब) सभी भट्ठी के समान तपते हैं ? (अर्थात वहाँ शान्ति नही)। (पति-प्राप्ति के बिना जीव स्त्री के) सभी श्रृंगार, पान आदि सभी रस शरीर सहित कच्चे, भाव नाशवान् हैं। प्रभु स्वामी जो हमारा पति है, उसके बिना मित्र, सज्जन ये सभी यम के समान हैं। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक की यह प्रार्थना है कि हे प्रभु ! कृपा करके अपना नाम प्रदान करें और हे स्वामी (गुरु) ! मुझे हरि प्रभु की संगति में मिलाओ जिसका घर धाम) निश्चल है (जिसका स्वरूप सदा स्थिर है) ॥१॥

चेति गोविंदु अराधीऐ
होवै अनंदु घणा ॥
संत जना मिलि पाईऐ
रसना नामु भणा ॥
जिनि पाइआ प्रभु आपणा
आए तिसहि गणा ॥
इकु खिनु तिसु बिनु जीवणा
बिरथा जनमु जणा ॥
जलि थलि महीअलि पूरिआ
रविआ विचि वणा ॥
सो प्रभु चिति न आवई
कितड़ा दुखु गणा ॥
जिनी राविआ सो प्रभू
तिंना भागु मणा ॥
हरि दरसन कंउ मनु लोचदा
नानक पिआस मना ॥
चेति मिलाए सो प्रभू
तिस कै पाइ लगा ॥२॥

चैत्त महीने के द्वारा मेरे गुरुदेव उपदेश करते हैं कि गोबिन्द (प्यारे की) आराधना करो जिससे अत्यधिक आनन्द प्राप्त होगा। सन्त जनों के साथ मिलकर रसना से 'उसका' नाम उच्चारण करो तो 'वह' प्राप्त होगा। जिन्होंने अपने प्रभु को पा लिया है, उनको (ससार) मे आना सफल माना जाता है। 'उसके' बिना एक क्षण जीना भी अपना जन्म व्यर्थ हुआ जानना चाहिए। जल, स्थल और पृथ्वी एवं आकाश के बीच मे 'वह' परिपूर्ण हो रहा है तथा बनों में भी व्याप्त है। जिनको ऐसा परिपूर्ण प्रभु स्मरण (चित्त) नही आता, उनके दु ख की गणना कितनी की जाये (अर्थात् पति-परमेश्वर को भूलने से अत्यत दु.ख होता है)। जिन्होंने 'उस' प्रभु के साथ निरन्तर रमण किया है (अर्थात् पति-परमेश्वर जिन्हे सुहाग-रात के लिये स्वीकार किया है), उनके उत्तम भाग्य है अथवा वे भाग्य के मणि हैं। हे नानक! हरि-दर्शन के लिये मेरा मन लालायित (तडपता) है, मन ,मे 'उससे' मिलने की (सदा) प्यास लगी रहती है। चैत्र (महीने) में जो 'उस' प्रभु के साथ मेल करा दे, मैं उसके चरणो को पकड लूंगा ॥२॥

वैसाखि धीरनि किउ वाढीआ
जिना प्रेम बिछोहु ॥
हरि साजनु पुरखु विसारि कै
लगी माइआ धोहु ॥
पुत्र कलत्र न संगि धना
हरि अविनासी ओहु ॥
पलचि पलचि सगली मुई
झूठै धंधे मोहु ॥
इकसु हरि के नाम बिनु
अगै लईअहि खोहि ॥

वैशाख (महीने के द्वारा मेरे गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) बिछुडी हुई स्त्रियाँ जिन्हे प्रियतम के प्रेम का वियोग है, कैसे धैर्य (शान्ति) प्राप्त कर सकती हैं। हरि सज्जन पुरुष को भुलाकर वे छल रूप माया मे लगी हुई हैं। पुत्र एव स्त्री और धन आदि (इनमें से कोई भी जीव के) साथ नही जाता। केवल वह अविनाशी हरि ही एक मात्र सहायक होता है। झूठे धन्धो के लालच में फँस-कर जीव-सृष्टि मर रही है। एक हरिनाम के बिना वे आगे (यम के मार्ग मे) लूटे-खसोटे जाते हैं (अर्थात् हरिनाम ही जीव के साथ जाता है, शेष सब यही रह जाता है)। जिस प्रकाशवान (दैव) प्रभु के बिना और कोई भी (सहायक) नहीं है, उसे जो

बसु बिसारि विगुचणा
प्रभ बिनु अवरु न कोइ ॥
प्रीतम चरणी जो लगे
तिन की निरमल सोइ ॥
नानक की प्रभ बेनती
प्रभ मिलहु परापति होइ ॥
वैसाखु सुहावा तां लगै
जा संतु भेटै हरि सोइ ॥३॥

(जीव) भूलते हैं, उनका नाश (खुआर-खराब) होता है। जो प्रियतम (प्रभु) के चरणो मे लगते है, उनकी शोभा निर्मल है। (मेरे बाबा) नानक की यह प्रार्थना है कि हे प्रभु ! (ऐसी बिछुड़ी हुई स्त्री को) मिलो, (हाँ) 'मुझे आपकी प्राप्ति हो', वैसाख (महीना) तभी सुन्दर है, यदि हरि के सुशोभित सन्त के साथ भेंट (मिलन) हो अथवा 'वह' (हरि अविनाशी ओहु) मिल जाए ॥३॥

हरि जेठि जुड़ंदा लोड़ीऐ
जिसु अगै सभि निवंनि ॥
हरि सजण दावणि लगिआ
किसै न देई बनि ॥
माणक मोती नामु प्रभ
उन लगै नाही संनि ॥
रग सभे नाराइणै
जेते मनि भावनि ॥
जो हरि लोड़े सो करे
सोई जीअ करनि ॥
जो प्रभि कीते आपणे
सेई कहीअहि धनि ॥
आपण लीआ जे मिलै
विछुड़ि किउ रोवनि ॥
साधू संगु परापते
नानक रंग माणंनि ॥
हरि जेठु रगीला तिसु धणी
जिस कै भागु मथंनि ॥४॥

(जेठ महीने के द्वारा मेरे गुरुदेव उपदेश करते हैं कि उस) ज्येष्ठ (बडे) हरि के साथ जुडने की चाहना होनी चाहिए, जिसके आगे सभी झुकते हैं। जो सज्जन हरि का पल्ला पकडते अर्थात् शरण मे जाते हैं, उनको हरि बाधकर किसी अन्य (यमदूतो) को नही देना (अर्थात वे धर्मराज के पास बाधकर ले नही जाते) अथवा वे (शरणागत) किसी अन्य से गठ-बन्धन नही करते। (हरि) प्रभु का नाम (अमूल्य) माणिक एव मोती (रत्नादि) के समान है जिन्हे कामादि विकारो का सेध (खाट) नही लग सकता (अर्थात् जिन्हें कोई चुरा नही सकता)। जितने आनन्द (जीव के) मन मे अच्छे लगते हैं, वे सभी नारायण स्वामी के पास हैं। जो जीव 'उसका' दामन पकडता है उसे सभी आनन्द प्राप्त हो जाते हैं। हरि जो चाहता है, वह (अपनी इच्छानुसार) करता है और जीव भी वही कुछ करते हैं। जिनको प्रभु ने अपना बनाया है, वह धन्य कहे जाते हैं अथवा उन्हे धन्य कहो। (गुरु की सहायता के बिना) यदि अपना (प्रयत्न से) हरि मिल सकता तो वे (हरि के) वियोग मे जीव-स्त्री क्यो रोये ? हे नानक ! जिन्हे साधु (सन्तो) की सगति प्राप्त हो जाती है, उन्हे प्रेम के सब आनन्द मिल जाते हैं। जेठ (महीने) मे रगीले (आनन्ददायक) हरि को वही (जीव-स्त्री) अपना पति स्वीकार करती है जिसके मस्तक मे श्रेष्ठ भाग्य (उदय) होते हैं ॥४॥

आसाड़ु तपदा तिसु लगै
हरि नाहु न जिना पासि ॥

(आषाढ महीने के द्वारा मेरे गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) आषाढ़ तपता हुआ (दुःख देने वाला) उसको लगता है, जिस

जग जीवन पुरखु तिआगि कै
माणस संदी आस ॥
दुये भाई विगुचीऐ
गलि पईसु जम की फास ॥
जेहा बीजै सो लुणै
मथै जो लिखिआसु ॥
रैणि विहाणी पछुताणी
उठि चली गई निरास ॥
जिन कौ साधू भेटीऐ
सो दरगह होइ खलासु ॥
करि किरपा प्रभ आपणी
तेरे दरसन होइ पिआस ॥
प्रभ तुधु बिनु दूजा को नही
नानक की अरदासि ॥
आसाड़ सुहंदा तिसु लगै
जिसु मनि हरि चरण निवास ॥५॥

जीव-स्त्री के पास हरि-पति नहीं है । जो भी जीव-स्त्री जगत को जीवन प्रदान करने वाले (परिपूर्ण) पुरुष को छोड़कर मनुष्य में आशा रखती है, वह द्वैत-भाव (अर्थात अपने प्रेम का पात्र किसी मनुष्य को बनाती है तो) द्वारा बदनाम होती है और मर कर उसके गले में यम की फाँसी पड़ती है। जैसा उसने बोया था, वैसा ही वह काटती है (क्योंकि उसके) मस्तक पर (कर्मानुसार भी) लेख (विधाता ने) लिखा हुआ है, (वही कर्म करती है)। जब (आयु रूपी) रात्रि व्यतीत हो जायेगी तो उसे पश्चाताप् होगा क्योंकि उसे निराश-हताश होकर यहाँ से उठ कर जाना पड़ेगा। जिनको साधु-सन्त मिल जाते हैं, वे ही (हरि की) दरबार में मुक्त होते हैं अर्थात् वे आवागमन के बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं। हे प्रभु ! मुझपर अपनी कृपा-दृष्टि करें कि मुझे आपके दर्शनों की ऐसी प्यास (हृदय मे) हो। (बाबा) नानक की प्रार्थना है कि हे प्रभु ! आपके बिना दूसरा और कोई मेरा (सहायक) नहीं है। आषाढ के महीना की तपत उसी को शान्ति देगी जिसके मन मे हरि के चरणो का निवास है ॥५॥

सावणि सरसी कामणी
चरन कमल सिउ पिआरु ॥
मनु तनु रता सच रंगि
इको नामु अधारु ॥
बिखिआ रंग कूड़ाविआ
दिसनि सभे छारु ॥
हरि अमृत बूंद सुहावणी
मिलि साधू पीवणहारु ॥
वणु तिणु प्रभ संगि मउलिआ
संम्रथ पुरख अपारु ॥

(श्रावण महीने के द्वारा मेरे गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) सावन मे स्त्री-कामिनी (जिज्ञासु) प्रेम-विह्वल होकर रसिक (अर्थात् आनन्द विभोर) हो जाती है। वह अपने प्रियतम के चरण-कमल पर अपना प्रेम अर्पण कर देती है। उसका मन और तन (कभी न फीके पडने वाले) सच्चे (प्रेम) रंग मे रंग जाता है। उसे केवल एक नाम का ही आधार होता है। विषवत् विषयो के आनन्द (स्वाद) झूठे (फोके) होते हैं और सब राख के समान (विनश्वर) दिखाई देते हैं। हरि नाम रूपी अमृत की बूंद सुमधुर और सुहावनी है, किन्तु साधु-सन्तों की संगति में मिलकर ही (कोई जिज्ञासु इसे) पीने का अधिकारी हो सकता है। समर्थ और अपार परिपूर्ण प्रभु की संगति मे बन, तृण प्रफुल्लित हो रहे हैं। (श्रावन) महीने में सुन्दर प्रकृति को चारों ओर हरामरा देखकर

हरि मिलणै नो मनु लोचदा
करमि मिलावणहारु ॥
जिनी सखीए प्रभु पाइआ
हंउ तिन कै सद बलिहार ॥
नानक हरि जी मइआ करि
सबदि सवारणहारु ॥
सावणु तिना सुहागणी
जिन रामनामु उरि हारु ॥६॥

(जिज्ञासु रूपी स्त्री का) मन हरि-परमात्मा को मिलने के लिये लालायित है, किन्तु (हे प्रभु ! आपकी) कृपा से ही (आपसे) मिलन होगा ! जिन (जिज्ञासु रूपी) सखियों ने प्रभु (पति) को पा लिया है, मैं उनके ऊपर सदा बलिहारी जाता हूँ । (बाबा)नानक की प्रार्थना है कि हे हरि ! (मुझ पर) दया कर, (हाँ) वह शब्द (नाम) ही (आपके साथ मिलने के लिए मेरा) शृंगार करेगा । सावन का महीना उन जिज्ञासु रूपी सुहागिनो के लिये सुहावना व आनन्दप्रद है, जिन्होंने रामनाम का हार हृदय मे धारण किया है ॥६॥

भादुइ भरमि भुलाणीआ
दूजै लगा हेतु ॥
लख सीगार बणाइआ
कारजि नाही केतु ॥
जितु दिनि देह बिनससी
तितु वेलै कहसनि प्रेतु ॥
पकड़ि चलाइनि दूत जम
किसै न देनी भेतु ॥
छडि खड़ोते खिनै माहि
जिन सिउ लगा हेतु ॥
हथ मरोड़ै तनु कपे
सिआहहु होआ सेतु ॥
जेहा बीजै सो लुणै
करमा संदड़ा खेतु ॥
नानक प्रभ सरणागती
चरण बोहिथ प्रभ देतु ॥
से भादुइ नरकि न पाईअहि
गुरु रखणवाला हेतु ॥७॥

(भाद्रपद महीने के द्वारा मेरे गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) भाद्रो मे (बादल घिर-घिर आते हैं परन्तु बरसते नही) (जैसे बादल चारों ओर इकट्ठे होकर आते हैं, किन्तु शीघ्र ही छिन्न भिन्न हो जाते हैं अर्थात् यह मौसम भ्रम मे डालने वाला है। इसी प्रकार जीव रूपी स्त्री भी) भाद्रपद मे भ्रम में पड़कर द्वैत (किसी अन्य) से प्रेम करने लगती है । यद्यपि उसने लाखो प्रकार के शृंगार किए हैं, तथापि (वह सब) किसी काम नहीं आता । जिस दिन उसका शरीर विनाश होगा, उसी समय (अपने बन्धु-बान्धव) उसे प्रेत कहने लग पड़ेंगे । जब यम के दूत उसे पकड़ कर ले चलेंगे तो (घर के) किसी (सम्बन्धी को ले जाने का) रहस्य (भेद) नही देंगे । जिन (सम्बन्धियों) के साथ प्रेम लगा हुआ था वे (सभी उसी) क्षण मे उससे पथक होकर खड़े हो जायेंगे। (यम दूतों को देखकर डरती हुई जीव-स्त्री) हाथों को मलती है अर्थात् पश्चाताप करती है और (भय से) शरीर कांपता है तथा उन भयानक दूतों को देखकर शरीर का रंग श्याम वर्ण से श्वेत हो जाता है। (जीव-स्त्री) जैसे बीज बोती है, वही काटती है अर्थात् जैसे कर्म करती है, वैसा ही फल भोगती है) क्योंकि यह (शरीर रूपी धरती) कर्मों की खेती है । हे नानक ! जो प्रभु की शरण में आते हैं, उनको प्रभु अपने चरण रूपी जहाज देता है (जिससे वे संसार-सागर से सुगमतापूर्वक पार हो जाते हैं।) भादो मे वे नरक में नही डाले जाते, जिनका सरक्षक हितैषी गुरु (विद्यमान) है ॥७॥

असुनि प्रेम उमाहड़ा
किउ मिलीऐ हरि जाइ ॥
मनि तनि पिआस दरसन घणी
कोई आणि मिलावै माइ ॥
संत सहाई प्रेम के
हउ तिन कै लागा पाइ ॥
विणु प्रभ किउ सुखु पाईऐ
दूजी नाही जाइ ॥
जिन्ही चाखिआ प्रेम रसु
से त्रिपति रहे आघाइ ॥
आपु तिआगि बिनती करहि
लेहु प्रभू लड़ि लाइ ॥
जो हरि कंति मिलाईआ
सि विछुड़ि कतहि न जाइ ॥
प्रभ विणु दूजा को नही
नानक हरि सरणाइ ॥
असू सुखी वसंदीआ
जिना मइआ हरि राइ ॥८॥

(आश्विन महीने के द्वारा मेरे गुरुदेव विचार रखते हैं कि) असू मे प्रेम की तरंगें अन्तर्गत हृदय में उमड़ रही हैं कि हरि के साथ किस प्रकार मिलन हो ? मेरे मन और तन में 'उसके' दर्शनों की अधिक प्यास है । हे (गुरुदेव) माता ! क्या कोई (दयालु) है जो मेरा मिलाप 'उसके' साथ करा दे ? प्रेम के कारण सन्तजन सहायता करते हैं; (अभिलाषा है कि) मैं उनके चरणों को स्पर्श करूँ (अर्थात् शरण ग्रहण करूँ) । बिना प्रभु (प्रियतम) के सुख कैसे प्राप्त हो सकता है क्योंकि 'उसके' बिना अन्य कोई (सुख-दायक) जगह नहीं है। जिन्होने प्रेम रस को चखा है, वे (सासारिक पदार्थो से) तृप्त व संतुष्ट हुए हैं। (तृप्त) जीव अहकार को त्याग कर विनम्र प्रार्थना करते हैं कि, हे प्रभु ! हमे अपनी ओर लाओ । हमें अपनी शरण मे लगाओ। जिन्हें हरि रूपी पति ने अपने साथ मिला लिया है, वे हरि पति से बिछुड कर कही नही जाती (भटकती)। प्रभु के बिना अन्य कोई रक्षक नही हैं। हे नानक ! हमने तो हरि को ही शरण ग्रहण की है । असू (महीने मे वे जीव-स्त्रियाँ सुखी निवास करती हैं, जिन पर (मेरे) हरि राजा की कृपा है ॥८॥

कतिकि करमि कमावणे
दोसु न काहू जोगु ॥
परमेसर ते भुलिआं
विआपनि सभे रोग ॥
वेमुख होए राम ते
लगनि जनम विजोग ॥
खिन महि कउड़े होइ गए
जितड़े माइआ भोग ॥

कार्तिक (महीने के द्वारा मेरे गुरुदेव उपदेश करते हैं कि हे जीव रूपी स्त्री ! तुम्हे यह शोभा नही देता कि) अपने किये हुए कर्मों के फल का दोष दूसरों को दें । परमेश्वर से भूले हुए जीवों को ही सभी रोग घेर लेते हैं। सर्वत्र रमणशील परिपूर्ण राम से विमुख होने के कारण, उन्हें कई जन्म-जन्मान्तरों के वियोग भोगने पडते हैं और जितने मायिक पदार्थों के आनन्द हैं, वे क्षण भर में कडवे (दुखदायी) हो जाते हैं।

बिनु न कोई करि सकै
किस थै रोवहि रोज ।।
कीता किछू न होवई
लिखिआ धुरि संजोग ।।
वडभागी मेरा प्रभु मिलै
तां उतरहि सभि बिओग ।।
नानक कउ प्रभ राखि लेहि
मेरे साहिब बंदी मोच ।।
कतिक होवै साधसंगु
बिनसहि सभे सोच ।।९।।

(ऐसे दुःखदायी समय में) कोई भी मध्ययस्थता नहीं कर सकता (अर्थात् बोल नही सकता)। आह ! वे (प्राणी) कहाँ अथवा किसके पास जा कर प्रतिदिन प्रार्थना करेंगे ? (हाय ! वह दुख निरन्तर चलता रहेगा)। अपने किये हुए (प्रयत्न) से कुछ भी नहीं होता किन्तु होता वही है जो पहले से ही मस्तक में (कर्मानुसार) लिखा हुआ है (और जीव वही कुछ प्राप्त करता है)। उत्तम भाग्य से मेरा प्रभु किसी भाग्यवान को ही मिलता है तब वियोग के सभी दुख दूर हो जाते हैं। हे (मेरे) साहब ! हे बन्धनों के काटने वाले प्रभु ! (बाबा) नानक को रख ले (रक्षा करो)। कार्तिक मास में यदि साधु-सगति प्राप्त हो जाये तो सभी चिन्ताएँ नाश हो जाती हैं ।।९।।

मघिरि माहि सोहंदीआ
हरि पिर संगि बैठड़ीआह ।।
तिन की सोभा किआ गणी
जि साहिबि मेलड़ीआह ।।
तनु मनु मउलिआ राम सिउ
संगि साध सहेलड़ीआह ।।
साध जना ते बाहरी
से रहनि इकेलड़ीआह ।।
तिन दुखु न कबहू उतरै
से जम कै वसि पड़ीआह ।।
जिनी राविआ प्रभु आपणा
से दिसनि नित खड़ीआह ।।
रतन जवेहर लाल हरि
कंठि तिना जड़ीआह ।।
नानक बांछै धूड़ि तिन
प्रभ सरणी दरि पड़ीआह ।।
मंघिरि प्रभु आराधणा
बहुड़ि न जनमड़ीआह ।।१०।।

(मार्गशीर्ष महीने के द्वारा मेरे गुरुदेव उपदेश देते हैं कि) मार्गशीर्ष महीने में वे (जीव रूपी स्त्रियाँ) शोभायमान होती हैं जो अपने हरि प्रियतम पति के साथ (हाँ समीप) बैठी हुई हैं। जिन्हें स्वामी ने अपने साथ मिला लिया है (अभेद कर लिया है) उनकी शोभा का क्या वर्णन किया जाये (अर्थात् उनकी शोभा अवर्णनीय हैं। साध-सन्तों की सगति में वे (हरि प्रभु की) सहेलियाँ (दासियाँ) बन जाती हैं और उनके मन और तन राम के नाम (प्रेमोन्माद) में झूम उठते हैं (अर्थात् प्रफुल्लित होते हैं)। किन्तु जो साधु-सन्तो से रहित हैं, वे अकेली (पति के बिना) ही रह जाती हैं। उनका दुख कभी भी दूर नही होता क्योंकि वे यम के वश पड जाती हैं। जिनको प्रभु (पति) ने रमण (प्यार) किया है, वे नित्य (प्रेमाभक्ति मे) सावधान, तत्पर अथवा सुन्दर दिखाई देती हैं। उनके कण्ठ मे रत्न एव जवाहर तथा लाल के समान (अमूल्य) हरि के नाम से जडी हुई माला सुशोभित होती है। (बाबा) नानक उन (सुहागिनो) के चरणों की धूलि को चाहता है जो प्रभु के द्वार पर (जाकर) 'उसकी' शरण मे पडी हैं। अत. मार्गशीर्ष (महीने) में जो प्रभु की आराधना करती हैं वे पुन: जन्म नही लेती। (अर्थात् हरि की आराधना करने से पुन: जन्म-मरण नही होता क्योंकि वे हरि में ही लीन हो जाती हैं) ।।१०।।

पोखि तुखारु न विआपई
कंठि मिलिआ हरि नाहु ॥
मनु बेधिआ चरणारबिंद
दरसनि लगड़ा साहु ॥
ओट गोविंद गोपाल राइ
सेवा सुआमी लाहु ॥
बिखिआ पोहि न सकई
मिलि साधू गुण गाहु ॥
जह ते उपजी तह मिलि
सची प्रीति समाहु ॥
करु गहि लीनी पारब्रहमि
बहुड़ि न विछुड़िआहु ॥
बारि जाउ लख बेरीआ
हरि सजणु अगम अगाहु ॥
सरम पई नाराइणै
नानक दरि पईआहु ॥
पोखु सुहंदा सरब सुख
जिसु बखसे वेपरवाहु ॥११॥

(पौष महीने के द्वारा मेरे गुरुदेव उपदेश करते हैं कि हे जीव रूपी स्त्री !) पौष महीने की शीत (ठंड) उन्हें नही लगती, जिन्हें हरि रूपी पति ने अपने गले के साथ लगाया हो। जिनका मन (हरि के) चरण कमलों से बींधा हुआ हो और उनके प्रत्येक श्वास (हरि के) दर्शनों की माला का मनका बन गया हो; जब स्वयं गोविन्द गोपाल राजा ही (उनका एक मात्र) आश्रय हो और 'उसकी' सेवा ही (उनके जीवन का) लाभ हो तो उन्हें विषवत् विषय वासनाएं स्पर्श नहीं कर सकतीं, वे साधु सन्तो से मिलकर (हरि के) गुण गाती हैं। जिस परमेश्वर से यह जीव रूपी स्त्री उत्पन्न हुई थी उसी में (पुनः) मिल जाती है किन्तु यह (पुर्नमिलन की अवस्था) केवल सच्ची प्रीति ही में समा जाने से प्राप्त होती है। जब परब्रह्म परमेश्वर (जीव-स्त्री को) अपने हाथ से पकड लेंगे तो वह फिर नही बिछुड़ती। हरि सज्जन अगम्य और आपार है, मैं लाखो बार 'उस' पर बलिहारी जाती हूँ। हे नानक ! नारायण (हरि) को द्वार पर शरण पडी हुई की लज्जा (शर्म) पालन करनी पडती है। पौष (का महीना उनके लिए) सुहावना एव सुखदायी है, जिन्हे बेपरवाह (अवगुणों की ओर ध्यान न देने वाला प्रभु) बख्श (क्षमा कर) देता है ॥११॥

माघि मजनु संगि साधूआ
धूड़ी करि इसनानु ॥
हरि का नामु धिआइ सुणि
सभना नो करि दानु ॥
जनम करम मलु उतरै
मन ते जाइ गुमानु ॥
कामि करोधि न मोहीऐ
बिनसै लोभु सुआनु ॥
सचै मारगि चलदिआ
उसतति करे जहानु ॥

(माघ महानी के द्वारा मेरे गुरुदेव उपदेश देते हैं कि) माघ में साधु-सन्तो की सगति कर और उनके चरणों की धूलि में स्नान कर तथा (उनसे) हरि का नाम सुन, हरि के नाम का ध्यान कर और सभी (प्राणियों) को (हरि नाम का) दान कर। (इस प्रकार नाम, दान, स्नान करने से असख्य) जन्मो के कर्मों की मैल उतर जाती है और मन से अहकार भी जाता रहता है। काम, क्रोधादि (विकार) मोहित नही कर पाते और लोभ रूपी कुत्ता (अन्त करण से) नष्ट हो जाता है। जो सत्य मार्ग मे चलते हैं, सारा ससार उनकी स्तुति करता है।

अठसठि तीरथ सगल पुंन
जीअ दइआ परवानु ॥
जिस नो देवै दइआ करि
सोई पुरखु सुजानु ॥
जिना मिलिआ प्रभु आपणा
नानक तिन कुरबानु ॥
माघि सुचे से कांढीअहि
जिन पूरा गुरु मिहरवानु ॥१२॥

अठसठ तीर्थों पर (स्नान करने का फल) और धर्म-ग्रन्थों में प्रमाणित सभी प्रकार के पुण्य दान का फल यह सभी उसी को प्राप्त होते हैं जो हरिनाम के द्वारा सर्व जीवो पर दया करते हैं अथवा जीव दया ही (वास्तव मे) प्रमाणित है। जिसको मेरा दयालु प्रभु दयावश होकर (नाम दान, स्नान) देता है, वही पुरुष सुजान (चतुर) है। हे नानक ! जिन (प्रेमियो) को अपना प्रभु प्राप्त हुआ है, मैं उन पर बलिहारी जाता हूँ। माघ (महीने में) मे वही पवित्र कहे जाते हैं जिन पर पूर्ण गुरू दयालु है ॥१२॥

फलगुणि अनंद उपारजना
हरि सजण प्रगटे आइ ॥
संत सहाई राम के
करि किरपा दीआ मिलाइ ॥
सेज सुहावी सरब सुख
हुणि दुखा नाही जाइ ॥
इछ पुनी वडभागणी
वरु पाइआ हरि राइ ॥
मिलि सहीआ मंगलु गावही
गीत गोविंद अलाइ ॥
हरि जेहा अवरु न दिसई
कोई दूजा लवै न लाइ ॥
हलतु पलतु सवारिओनु
निहचलु दितीओनु जाइ ॥
ससार सागर ते रखिअनु
बहुड़ि न जनमै धाइ ॥
जिहवा एक अनेक गुण
तरे नानक चरणी पाइ ॥
फलगुणि नित सालाहीऐ
जिसनो तिलु न तमाइ ॥१३॥

(फाल्गुन महीने के द्वारा मेरे गुरुदेव उपदेश करते हैं कि ऋतुराज बसत के गहरे लाल रग से अति रजित) फाल्गुन (का महीना मेरे लिए अत्यन्त) आनन्द उत्पन्न करने वाला है क्योंकि (हृदय मे) हरि सज्जन प्रकट हुआ है। सन्तजन राम (के मार्ग पर चलने वालो के) सहायक हैं उन्होंने कृपा करके मुझे 'उससे' मिला दिया। मेरी शय्या पति-परमेश्वर के साथ (अब) सुशोभित हो रही है और सभी प्रकार के सुख (प्राप्त हुए) हैं, अब दु खो के लिए (हृदय मे) कोई स्थान नही रहा। मेरे अहोभाग्य हैं मेरी सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण हुई हैं क्योकि हरि राजा रूपी पति को पाया है। हे सखियो ! (आओ हम) मिलकर (हरि के) मंगलमय गीत गाएं। आओ हम अपने गोविन्द के गीतों का आलाप (गायन) करें क्योकि (ससार में) हरि जैसा कोई और दूसरा दिखाई नही देता और न ही कोई दूसरा 'उसकी' समानता कर सकता है। (उन सन्तजनो ने मेरा) लोक और परलोक (दोनों) सँवार दिए हैं और (ध्रुव भक्त के समान) अटल स्थान दिया है। उन्होने ससार-सागर से मेरी रक्षा की है। (अब मैं) फिर जन्म मरण के (चक्र) मे नही भटकूंगी। मेरी जिह्वा एक है जब कि (हरि प्रभु) गुण अनेक हैं। (बाबा) नानक तो (हरि के) चरणो मे पड कर ससार-सागर से तर गया है। फाल्गुन (महीने) मे नित्य (प्रति) 'उस' (हरि) की स्तुति करें जिसमे (देते समय किसी प्रकार की भी) तिलमात्र इच्छा (लालच) नही है ॥१३॥

जिनि जिनि नामु धिआइआ
तिन के काज सरे ॥
हरि गुरु पूरा आराधिआ
दरगह सचि खरे ॥
सरब सुखा निधि चरण हरि
भउजलु बिखमु तरे ॥
प्रेम भगति तिन पाईआ
बिखिआ नाहि जरे ॥
कूड़ गए दुबिधा नसी
पूरन सचि भरे ॥
पारब्रहमु प्रभु सेवदे
मन अंदरि एकु धरे ॥
माह दिवस मूरत भले
जिस कउ नदरि करे ॥
नानकु मंगै दरस दानु
किरपा करहु हरे ॥१४॥१॥

जिन जिन (प्यारों) ने (हरि) नाम का ध्यान किया है, उन (सभी) के (सभी) काम पूरे हो जाते हैं। जिन्होंने पूर्ण गुरु के द्वारा हरि की आराधना की है, वे ईश्वर की सच्ची दरबार में खरे उतरते हैं (अर्थात् शोभा पाते हैं)। उनके लिए सर्व सुखों की निधि हरि के चरण कमल हैं। (वे चरण-शरण पाकर) दुष्कर (कठिन) भव-सागर से तर जाते हैं। उन्होंने प्रेमा-भक्ति के कारण (हरि प्रभु) प्राप्त किया है, (अब वे) विषवत् वासनाओं में नहीं जलते (अर्थात् विषय वासना मे नही आसक्त होते)। (उन प्रेमियो के मन से) झूठ (आदि विकार) चले जाते हैं और द्वैत भाव-दुबिधा (धकाएँ आदि) सभी नष्ट हो जाते हैं तथा वे सत्य से भरे परिपूर्ण (रहते) हैं एव एक परब्रह्म प्रभु को अपने मन (के सिंहासन) पर धारण करके 'उसकी' सेवा करते है। (उन प्यारो के लिए सभी) महीने, दिन, मुहूर्त शुभ है, जिन पर (मेरा कृपालु प्रभु) कृपा-दृष्टि करता है। हे हरि ! (बाबा) नानक आप से आप के दर्शन का दान माँगता है। कृपा करे। (अर्थात् कृपा करके दर्शन दीजिए (अर्थात् मैं प्रत्येक प्राणी मे आपको देखूँ। भाव आपका ही दर्शन करूँ। कृपया ऐसी दृष्टि मेरी उत्तम करे) ॥१४॥१॥

माझ महला ५ ॥ दिन रैणि ॥

विशेष : 'दिन रैणि' का शाब्दिक अर्थ है 'दिन-रात'। मेरे गुरुदेव से कुछ प्रेमियों ने आकर पूछा कि दिन रात कैसे सफल होते हैं? इसलिए सतगुरु ने इनका नाम ही 'दिन रैणि' रख दिया। इस बाणी मे तीन बार

दिन रैणि शब्द की आवृत्ति हुई है और पहले पद में 'दिन सब रैणि' तुक भी आई है। जिस प्रकार अन्यत्र गुरबाणी में रुति, माह, तिथि, वार इत्यादि शीर्षक देकर निर्माण किया है, उसी प्रकार यहाँ पर 'दिन रैणि' इस शीर्षक में शिक्षा प्रद सरल एवं मनोहर चार शब्दों का उच्चारण करके गुरुदेव उपदेश करते हैं कि सभी दिन-रात हरि की सेवा करने में ही व्यतीत करने चाहिए। एक क्षण भर के लिए भी हरि परमात्मा को कदाचित् विस्मृत नही करना चाहिए। हाँ ! प्रतिपल, प्रतिक्षण, 'उसका' स्मरण ही सुखदायी है।

सेवी सतिगुरु आपणा
हरि सिमरी दिन सभि रैण ॥
आपु तिआगि सरणी पवां
मुखि बोली मिठड़े वैण ॥
जनम जनम का विछुड़िआ
हरि मेलहु सजणु सैण ॥
जो जीअ हरि ते विछुड़े
से सुखि न वसनि भैण ॥
हरि पिर बिनु चैनु न पाईऐ
खोजि डिठे सभि गैण ॥
आप कमाणै विछुड़ी दोसु न काहू देण ॥
करि किरपा प्रभि राखि लेहु
होरु नाही करण करेण ॥
हरि तुधु विणु खाकू रूलणा
कहीऐ किथै वैण ॥
नानक की बेनंतीआ
हरि सुरजनु देखा नैण ॥१॥

(अभिलाषा है कि मैं) अपने सत्गुरु की सेवा करके सभी दिन और राते, हे हरि ! आपका स्मरण करूँ। (यह भी चाहना है कि मैं) अहकार को त्याग कर आपकी शरण में आकर पड़ूँ और मुख से मधुर वचन बोलूँ (अर्थात हितकारी वचन बोलूँ)। हे हरि सज्जन ! (मुझ) जन्म-जन्म से विछुड़े हुए को अपने साथ मिला लो। हे बहिन ! जो जीव हरि से विछुड़े हुए हैं, वे सुख से नही निवास करते (अर्थात् उनके दिन सुखपूर्वक नही व्यतीत होंगे)। हरि (प्रिय) पति के बिना चैन (सुख) नही मिलता। (मैंने) (प्रेमार्थ) सभी मार्ग खोजकर देख लिए हैं। किन्तु दोष अन्य किसी को भी नही देना चाहिए क्योंकि (मैं) अपने किए (बड़े) कर्मों के अनुसार हरि से विछुड़ी हुई हूँ। (अत) हे प्रभो ! कृपा करके मुझे रख लो, दूसरा कोई करने कराने वाला नही है। हे हरि ! तेरे बिना तो मिट्टी में भटकना है (अर्थात् धक्के खाने हैं)। (तेरे बिना) कहाँ जाकर दुःख के वचनों को कहूँ (अर्थात) (किसके आगे जाकर रोऊँ) ? (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक की प्रार्थना है कि हे पुरुषोत्तम (श्रेष्ठ पुरुष प्रिय पति) ! हे हरि ! नेत्रों से सदा आपको देखता रहूँ। (अर्थात मेरी दृष्टि सदा तेरा ही दर्शन सर्व में करती रहे) ॥१॥

जीअ की बिरथा सो सुणे
हरि संम्रिथ पुरखु अपारु ॥
मरणि जीवणि आराधणा
सभना का आधारु ॥

हरि जो समर्थ और परिपूर्ण पुरुष है और पार रहित है, 'वही' जीव की पीडा (वेदना) को सुनाता है। जितना कि जीवन-मरण पर्यन्त है, 'उसको' आराधना करनी चाहिए जो सभी (जीवों) का आधार है।

ससुरै पेईऐ तिसु कंत की
वडा जिसु परवारु ॥
ऊचा अगम अगाधि बोध
किछु अंतु न पारावारु ॥
सेवा सा तिसु भावसी
संता की होइ छारु ॥
दीना नाथ दैआल देव
पतित उधारणहारु ॥
आदि जुगादी रखदा
सचु नामु करतारु ॥
कीमति कोइ न जाणई
को नाही तोलणहारु ॥
मन तन अंतरि वसि रहे
नानक नही सुमारु ॥
दिनु रैणि जि प्रभ कंउ सेवदे
तिन कै सद बलिहार ॥२॥

बडा जिसका परिवार है (अर्थात् जिसके उत्पन्न किये हुए जीव-जन्तुओं का महान विस्तार है), 'उस' पति-परमेश्वर की जीवात्मा रूपी स्त्री इस लोक में और परलोक में है। 'वह' सर्वोच्च है, अगम्य (बुद्धि से परे) है, अगाध बोध है (अर्थात 'उसके' ज्ञान का पार नही है) और न उसका (कोई) अन्त है और न कोई उसके आदि अन्त का (आर-पार का) कुछ पता है। सन्तो (के चरणों) की धूलि होकर (बनकर) रहना, 'उस' प्रभु को अच्छा लगता है। 'वह' दीन दुखियो का स्वामी है, (परम) दयालु, है प्रकाश स्वरूप (हाँ) सब पापियो का उद्धार करने वाला है। वह सत्य नाम, सृष्टि कर्त्ता परमेश्वर प्रारम्भ से, युगों के पहले से भी (सदा) (नाम जपने वालो की) रक्षा करता आया है। कर्त्ता की न तो कोई कीमत ही जानने वाला है (अर्थात 'उसका' मूल्याकन नही हो सकता) और न ही कोई (नापने व) तोलने वाला है। हे नानक! (जिस प्रभु की गणित विद्या के द्वारा) गणना नही हो सकती, 'वह' मन और तन के भीतर (साक्षी रूप से) निवास कर रहा है और जो (जीव) प्रभु की दिन और रात (आठ हो प्रहर) सेवा करते हैं, मैं उन्ही के ऊपर सर्वदा बलिहारी जाता हूँ।२॥

संत अराधनि सद सदा
सभना का बखसिंदु ॥
जीउ पिंडु जिनि साजिआ
करि किरपा दितीनु जिंदु ॥
गुर सबदी आराधीऐ
जपीऐ निरमल मंतु ॥
कीमति कहणु न जाईऐ
परमेसुरु बेअंतु ॥
जिसु मनि वसै नाराइणो
सो कहीऐ भगवंतु ॥

(उस वन्दनीय प्रभु) की आराधना सन्त (महापुरुष) सदा वे (हाँ) सदा से करते हैं, जो (परमेश्वर) सभी (जीवो) को देनेवाला अथवा क्षमा करने वाला है। जिस (प्रभु) ने जीव के लिये (सुन्दर) शरीर बनाया है और कृपा करके (शरीर मे) प्राण कला दी है, 'उसकी' गुरु के उपदेश द्वारा आराधना करनी चाहिए तथा (नाम-रूपी) निर्मल मन्त्र का जाप करना चाहिए। अनन्त परमेश्वर की कीमत कथन नही की जा सकती। जिसके मन मे नारायण हरि निवास करता है, वह (जीव) भाग्यवान कहा जाता है।

जीअ की लोचा पूरीऐ
मिलै सुआमी कंतु ॥
नानकु जीवै जपि हरी
दोख सभे ही हंतु ॥
दिनु रैणि जिसु न विसरै
सो हरिआ होवै जंतु ॥३॥

जिस (भाग्यशाली जीव-रूपी स्त्री को) इस प्रकार का शक्तिशाली और दयालु) स्वामी प्रियतम मिल जाता है, उसके हृदय की कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं। हे हरि ! (बाबा) नानक तो आपको जपकर ही जीवित है, जिससे सभी (दुख) दोष नष्ट हो रहे हैं। (हां) जिस (जीव) को दिन रात हरि नही भूलता, वह जन्तु (जीव) सदा हरा-भरा (प्रफुल्लित व आनन्दित) रहता है ॥३॥

सरब कला प्रभ पूरणो
मंञु निमाणी थाउ ॥
हरि ओट गही मन अंतरे
जपि जपि जीवां नाउ ॥
करि किरपा प्रभ आपणी
जन धूड़ी संगि समाउ ॥
जिउ तूं राखहि तिउ रहा
तेरा दिता पैना खाउ ॥
उदमु सोई कराइ प्रभ
मिलि साधू गुण गाउ ॥
दूजी जाइ न सुझई
किथै कूकण जाउ ॥
अगिआन बिनासन तम हरण
ऊचे अगम अमाउ ॥
मनु विछुड़िआ हरि मेलीऐ
नानक एहु सुआउ ॥
सरब कलिआणा तितु दिनि
हरि परसी गुर के पाउ॥४॥१॥

प्रभु सर्व कला (शक्तियो) से पूर्ण है और मुझ निराश्रय का आश्रय है। मैंने मन में हरि की ओट ग्रहण की है और उसके नाम को जप-जपकर जीता हूँ। हे प्रभु ! मुझ पर अपनी ऐसी कृपा करो कि मैं तेरे सेवकों के चरणों की धूलि मे समा जाऊँ। (हे प्रभु !) तू जैसा रखे वैसा ही रहूँ, (अर्थात हर अवस्था में प्रसन्न रहूँ) और तेरा दिया हुआ पहनु और खाऊँ। (हे प्रभु !) मुझसे ऐसा उद्यम करवाओ जिससे मैं साधु-सन्तो (की सत्संगति) मे मिल कर तेरे गुणों का गान करूँ क्योंकि मुझे तेरे बिना और कोई जगह दिखाई नही देती, जहाँ मैं कूक पुकार (अर्थात दुख एवं अन्तर्वेदना प्रकट) करने के लिये जाऊँ। हे अज्ञान को दूर करने वाले ! हे अन्धकार विनाशक ! हे सर्वोच्च ! हे अगम्य ! हे अपरिमेय (माप रहित) हरि ! मेरे बिछुडे हुए मन को अपने साथ मिला लीजिए। (बाबा) नानक का यही प्रयोजन है। हे हरि ! जिस दिन मैं गुरुदेव के (श्री) चरणो को स्पर्श करूँगा, उसी दिन सर्व कल्याण (सर्वथा सुख) समझूँगा ॥४॥१॥

विशेष : मेरे गुरुदेव ने सम्पूर्ण जीवन को दस भागों में विभा-जित किया है। उसके किए हुए सारे प्रयत्नों का चित्र इस प्रकार बनता है—

वार माझ की तथा सलोक महला १

मलक मुरीद तथा चंद्रहड़ा सोहीआ की धुनी गावणी

विशेष : मूल मन्त्र गुरु ग्रन्थ साहब मे चार प्रकार का है। (१) जो जपुजी के प्रारम्भ में है यथा—१ओं से लेकर गुर प्रसादि तक। (२) जो यहाँ है यथा १ओं सतिनामु करता पुरख गुर प्रसादि। (३) १ओं सतिनामु गुरु प्रसादि। (४) १ओं सतिगुरु प्रसादि।

यह १६ अक्षरो वाला मन्त्र, जो यहाँ है, वह आठ बार आता है। एक बार इस राग (माझ) में, छः बार गौड़ी राग मे और एक बार बिलावल राग मे। मूल-मन्त्र समस्त गुरवाणी का आधार, विघ्न विनाशक और मगलकारी है।

वार माझ की तथा सलोक महला १

वार राग की माझ मे सभी पौडियाँ गुरु नानक साहब की हैं और श्लोक तथा महले भी अधिक पहली पातशाही के हैं। कुछ श्लोक और महले गुरु अगद साहब के हैं। गुरु अमर दास का एक और गुरु रामदास के दो महले हैं।

जिस समय गुरु अर्जन देव ने गुरु हरगोबिन्द साहब को गुरु गद्दी का तिलक दिया तो गुरुदेव ने विनय की कि हमें वाणी रचने की क्या आज्ञा है ? गुरु अर्जन देव ने कहा कि आपको रणभमि मे दुष्टों का संहार करना है। आपको वाणी रचने का समय नही मिलेगा। (हाँ) आपने शूरवीरो से ढाढीओं से सुनकर जिस वार के प्रारम्भ मे आप योग्य समझें उस वार के आरम्भ मे भाई गुरुदास से लिखवा लेना। उस आज्ञा के अनुसार छवी बादशाही, गुरु हर गोविन्द साहब ने भाई गुरुदास से यह प्रथम धुनो लिखवाई है (संत कृपाल सिंह कृत सम्प्रदायी सटोक-द्वितीय सचय-पृष्ठ ६६७)

मलक मुरीद तथा चंद्रहड़ा सोहीआ की धुनी गावणी

मलक जाति का 'मुरीद खा' और सोहीआ जाति का 'चद्रहड़ा' अकबर बादशाह के दो बड़े शूर-वीर सेनापति थे। इन दोनों का आपस में बाहर से बडा प्यार था किन्तु अन्दर से परस्पर दुश्मनी थी। एक बार बादशाह ने काबुल की मुहिम (लडाई) पर मलक मुरीद खां को भेजा, जिसने जाकर शत्रु पर विजय प्राप्त की, किन्तु शान्ति को स्थापना करने मे कुछ देरी हो गई। सोहीआ चंद्रहड़ा ने बादशाह के पास चुगली की कि मलक काबुल पर अपना प्रभुत्व स्थापन करके स्वतन्त्र हो बैठा है। बादशाह ने चंद्रहड़ा को मलक

विरुद्ध भेजा। दोनों का भीषण युद्ध हुआ और दोनों बड़ी वीरता से लडकर मर गये ढाढियो ने ८ वृतान्त को वार में गायन किआ। यथा—

'काबल विच मुरीद खां फडिआ बड जोर।
चंद्रहडा लै फौज को चडिआ बड तौर ॥'

छेवी पातशाही ने ढाढिओं से यह वार सुनकर भाई गुरुदास से लिखवाकर रागियों को हुकम दिया कि जैसे इन शूरवीरों की वार गाई जाती है, तैसे वार माझ को इस स्वर ताल में गायन करना। इसी प्रकार की सभी छ वारें शीर्षको के सहित गुरु ग्रन्थ साहब में चढ़ी हैं।

सलोकु महला १॥

गुरु दाता गुरु हिवै घरु
गुरु दीपकु तिहु लोइ ॥
अमर पदारथु नानका
मनि मानिऐ सुखु होइ ॥१॥

"गुरु की महिमा"

गुरु (नाम का) दाता है, गुरु ही हिम (बर्फ) के घर है जैसे शीतलता का घर है। वही तीनों लोको का (प्रकाश करने वाला) दीपक है। हे नानक ! साम रुपी असर पदार्थ (गुरु से ही प्राप्त होता है)। जिसका मन गुरु से मान जाय, उसे (महान्) सुख होता है ॥१॥

म० १ ॥

पहिलै पिआरि लगा थण दुधि ॥
दूजै माइ बाप की सुधि ॥
तीजै भया भाभी बेब ॥
चउथै पिआरि उपंनी खेड ॥
पंजवै खाण पीअण की धातु ॥
छिवै कामु न पुछै जाति ॥
सतवै संजि कीआ घर वासु ॥
अठवै क्रोधु होआ तन नासु ॥
नावै धउले उभे साह ॥
दसवै दधा होआ सुआह ॥
गए सिगीत पुकारी धाह ॥
उडिआ हंसु दसाए राह ॥
आइआ गइआ मुइआ नाउ ॥
पिछै पतलि सदिहु काव ॥
नानक मनमुखि अंधु पिआरु ॥
बाझु गुरू डुबा संसारु ॥२॥

पहली अवस्था मे (जीव) (माँ के) स्तन के दूध से प्यार रखता है, दूसरी अवस्था में (यानी जब कुछ बड़ा हो जाता है) उसे माँ-बाप की समझ आने लगती है, तीसरी अवस्था में उसे भाई, भाभी और बहन (से मोह हो जाता है); चौथी अवस्था में खेल में प्रीति उत्पन्न होती है, पाँचवी अवस्था मे उसे खाने-पीने की लालसा (रुचि) उत्पन्न होती है। छठी अवस्था में काम (जागृत होता है, (जिसमें) वह जाति-कुजाति को नहीं पूछता, सातवीं अवस्था मे वह घर मे रहने के लिये (अनेक पदार्थों का) संग्रह करता है। आठवी अवस्था मे (कामनाएँ पूर्ण न होने पर) उसमें क्रोध (उत्पन्न होता) है जो शरीर का नाश करता है, (आयु की) नवी अवस्था मे उसके बाल सफेद और उल्टे श्वाश (अर्थात कठिनाई से स्व श्वास) आने लगते हैं, दसवी अवस्था मे वह जलकर राख हो जाता है। जीव के संगी-साथी (जो मृत शरीर के साथ श्मशान तक) गये, वे छाती पीट-पीटकर ऊँचे स्वर से रोते हैं, (किन्तु जीवात्मा) रुपी हस उड गया (प्राण पखेरू उड़ गये मर गया) तो जीव (भटक कर) रास्ता पूछता है। (यह जीव ससार में खाली हाथ) आता है और (खाली हाथ ही चला जाता है; उसका नाम भी नही रहता (उसके देहान्त के पश्चात्) (श्राद्ध के) पत्तल में लोग (सम्बन्धी) पीछे कौवे बुलाते हैं। हे नानक ! मन के पीछे चलने वाले का प्यार (जगत के साथ) अन्धा होता है। गुरु के शरण आए) बिना ससार (इस अन्धे प्यार मे) डूबा रहता है ॥२॥

म० १॥
दस बालतणि बीस रवणि
तीसा का सुंदरु कहावै ॥
चालीसी पुरु होइ पचासी पगु खिसै
सठी के बोढेपा आवै ॥
सतरि का मति हीणु
असीहां का विउहारु न पावै ॥
नवै का सिहजासणी
मूलि न जाणै अपबलु ॥
ढंढोलिमु ढूढिमु डिठु मैं
नानक जगु धूए का धवलहरु ॥३॥

जीव दस वर्ष तक (की अवस्था भर) बाल्यावस्था में रहता है, बीस (वर्ष तक पहुँचते-पहुँचते) (स्त्री के साथ) रमण वाली अवस्था में आ जाता है, तीस (वर्ष का होकर) सुन्दर (युवक) कहलाता है, चालीस वर्ष में (उसकी जवानी की अवस्था) भर आती है अर्थात पूर्ण होती है, पचास (वर्ष तक होते-होते पैर (जवानी से) खिसकने लगते हैं, (साठ वर्ष) में बुढ़ापा आ जाता है; सत्तर (वर्ष में मनुष्य) मतिहीन हो जाता है और अस्सी (वर्ष) का होने पर व्यवहार करने योग्य नहीं रह जाता। नब्बे (वर्ष) में वह सेज पर आसन ले लेता है (अर्थात चारपाई पर ही पड़ा रहता है) न तो वह सेज से हिल सकता है और कमजोरी के कारण (न अपने को सभाल ही सकता है)। हे नानक! मैंने ढूँढा है, खोजा है और देखा है कि जगत धुएँ का महल (धवला-गृह) है, (इसमें इ च मात्र भी स्थायित्व नहीं है) ॥३॥

पउड़ी ॥ तूं करता पुरखु अगंमु है
आपि स्रिसटि उपाती ॥
रंग परंग उपारजना
बहु बहु बिधि भाती ॥
तूं जाणहि जिनि उपाईऐ
सभु खेलु तुमाती ॥
इकि आवहि इकि जाहि उठि
बिनु नावै मरि जाती ॥
गुरमुखि रंगि चलूलिआ
रंगि हरि रंगि राती ॥
सो सेवहु सति निरंजनो
हरि पुरखु बिधाती ॥
तूं आपे आपि सुजाणु है
वड पुरखु वडाती ॥
जो मनि चिति तुधु धिआइदे
मेरे सचिआ बलि बलि हउ तिन
जाती ॥१॥

(हे प्रभु!) तू (सृष्टि) कर्त्ता है, परिपूर्ण एक मात्र पुरुष है और मन वाणी से परे अगम्य है। तूने स्वयं ही (सारी) सृष्टि उत्पन्न की है। (यह रचना) तूने नाना रंगों की, नाना प्रकार की और नाना विधि से बनाई है जो (मन को) भाती (अच्छी लगती) है। (जगत का यह) सारा खेल तेरा ही (बनाया हुआ) है, (इस खेल के भेद को) तू आप ही जानता है, जिसने यह खेल (तमाशा) बनाया है (संसार के आकर्षण भ्रम है क्योंकि प्रत्येक पदार्थ बिनश्वर हैं)। (इस खेल में) कुछ (जीव) तो जा रहे हैं और कुछ (खेल देखकर) चले जा रहे हैं, किन्तु जो (जीव) बिना नाम के हैं (वे) मर कर (दुखी होकर) जाते हैं। जो (जीव) गुरु के सन्मुख हैं, वे हरि के प्रेम में, गहरे लाल रंग में रगे हुए हैं (उसके प्यार में अनुरक्त हैं)। वे यह उपदेश करते हैं कि सत्य स्वरूप माया से रहित निरंजन की सेवा करो जो हरि पापों को नाश करने वाला है, परिपूर्ण (पुरुष) है और भाग्य निर्माण कर्त्ता (विधाता) है। हे प्रभु! तू आप ही सुजान है, तू सबसे महान पुरुष है। हे मेरे (साहब) जो तुझे मन लगाकर (हाँ) चित्त लगाकर ध्यान करते हैं, मैं उन पर (मैं बार-बार) बलिहारी होता हूँ ॥१॥

सलोकु महला २
जीउ पाइ तनु साजिआ
रखिआ बणत बणाइ ॥
अखी देखै जिहवा बोलै
कंनी सुरति समाइ ॥
पैरी चलै हथी करणा
दिता पैनै खाइ ॥
जिनि रचि रचिआ
तिसहि न जाणै अंधा अंधु कमाइ ॥
जा भजै ता ठीकरु होवै
घाड़त घड़ी न जाइ ॥
नानक गुर बिनु नाहि पति पति
विणु पारि न पाइ ॥१॥

(प्रभु ने) जीव उत्पन्न करके शरीर सजाया है और ऐसी तो उसकी रचना रची है कि (वह) आँखों से देखता है, जिह्वा से बोलता है और (उसके) कानों में सुनने की सत्ता विद्यमान है, पैरों से चलता है, हाथों से (कर्म) करता है और (प्रभु का) दिया हुआ पहनता और खाता है। किन्तु जिस (प्रभु) ने (इसे) रचा और सँवारा है 'उस' रचयिता (प्रभु) को यह जानता (भी) नहीं; अन्धा (अज्ञानी मनुष्य) अंधे ही कर्म करता है। जब (यह शरीर रूपी पात्र) टूट जाता है, तो यह ठीकड हो जाता है (अर्थात खपडे के टुकड़ की तरह व्यर्थ हो जाता है) फिर बनाए जाने पर भी नहीं बन सकता है (अर्थात मनुष्य जन्म दुर्लभ है फिर प्राप्त करना कठिन है)। हे नानक! अंधे मनुष्य की) गुरु (की शरण) के बिना सम्मान-प्रतिष्ठा नही होती और बिना प्रतिष्ठा के वह (इस भव-सागर को) पार नही कर सकता ॥१॥

म० २ ॥ दैंदे थावहु दिता चंगा
मनमुखि ऐसा जाणीऐ ॥
सुरति मति चतुराई ता की
किआ करि आखि वखाणीऐ ॥
अंतरि बहि कै करम कमावै
सो चहु कुंडी जाणीऐ ॥
जो धरमु कमावै
तिसु धरम नाउ होवै
पापि कमाणै पापी जाणीऐ ॥
तूं आपे खेल करहि सभि करते
किआ दूजा आखि वखाणीऐ ॥
जिचरु तेरी जोति
तिचरु जोति विचि तूं बोलहि
विणु जोति
कोई किछु करिहु दिखा सिआणीऐ
नानक गुरमुखि नदरी आइआ
हरि इको सुघड़ु सुजाणीऐ ॥२॥

जो देने वाले (दातार प्रभु) से दिये हुये सासारिक पदार्थों को श्रेष्ठ समझता है उसे मनमुख समझना चाहिए। (ऐसे जीव की) समझ, बुद्धि और चतुराई को क्या कुछ कहकर बतलायें? (अर्थात् मनमुख की अल्प बुद्धि है)। किन्तु जो (गुरमुख) अन्तर्मुख होकर अथवा गुप्त होकर (श्रेष्ठ) कर्म करता है, वह चारों ही कोनों मे जाना जाता है। जो धर्म-कर्म करता है, उसी का नाम धर्मात्मा हो जाता है और जो पाप के कर्म करता है, उसे पापी समझा जाता है। हे कर्त्तार! तू आप ही यह सब खेल कर रहा है, आपके बिना किसी अन्य का क्या वर्णन करें? (अर्थात् नाम लेवें?) जब तक (जीवों के अन्दर तेरी ज्योति है, तब तक ज्योति में तू (ही) बोलता है। बिना (तेरी) ज्योति के कोई कुछ कर दिखलाये तो जानें! (पहचानें) (अर्थात् तुम्हारी ज्योति के बिना कोई भी कुछ नही कर सकता)। हे नानक गुरमुखों को तो केवल एक अद्वितीय सुन्दर और ज्ञानवान हरि ही (सर्वत्र) दिखाई देता है ॥२॥

तुधु आपे जगतु उपाइ कै
तुधु आपे धंधै लाइआ ॥
मोहु ठगउली पाइ कै
तुधु आपहु जगतु खुआइआ ॥
तिसना अंदरि अगनि है
नह तिपतै भुखा तिहाइआ ॥
सहसा इहु संसारु है
मरि जंमै आइआ जाइआ ॥
बिनु सतिगुर मोहु न तुटई
सभि थके करम कमाइआ ॥
गुरमती नामु धिआईऐ
सुखि रजा जा तुधु भाइआ ॥
कुलु उधारे आपणा धंनु जणेदी माइआ
सोभा सुरति सुहावणी
जिनि हरि सेती चितु लाइआ ॥२॥

(हे प्रभु !) तुमने आप ही जगत को उत्पन्न करके, आप ही (जीवों को) धन्धों (काम) में लगाया है। मोह रूपी ठग-बूटी (अर्थात् वह नशे वाली जड़ी, जिस को ठग लोग पथिकों को खिला कर ठग लेते हैं) डाल कर (खिला कर) तुमने जगत को अपने से भुला रखा है (अर्थात सांसारिक जीव मोह के वशीभूत होकर आपको भूल जाते हैं उन (जीवों) के अन्दर तृष्णा रूपी अग्नि (जल रही) है और उनकी (पदार्थों के लिए) भूख और प्यास तृप्त नहीं होती (अर्थात जीव के पास सभी पदार्थ होते हुए भी भूखा और प्यासा है)। यह संसार संशय रूप है, जीव इसमें जन्म लेते हैं (आते हैं) और मर जाते हैं (संसार छोडकर जाते हैं)। बिना सत्गुरु के मोह रूपी (ठगमूरी) नहीं टूटती, सभी (जीव) कर्म करके थक गये हैं। (किन्तु हे हरि !) जब आप को अच्छा लगता है, तो (जीव) गुरु की मति (ग्रहण करके) नाम का ध्यान करता है, तब (आत्मिक) सुख मे तृप्त हो जाता है। (नाम-ध्यान करने वाले) अपने कुल का (भी) उद्धार करते हैं। हाँ उसको जन्म देने वाली माता भी धन्य है। उनकी शोभा और बुद्धि (सुरति) सुन्दर है जिन्होंने हरि के साथ चित्त लगाया है ॥२॥

विशेष· आँख, कानादि द्वारा मन विषयों को ओर दौडता है, इनसे पृथक हो जाने का भाव अहंकार रूपी विकार को त्यागना है।

सलोकु मः २ ॥
अखी बाझहु वेखणा
विणु कंना सुनणा ॥
पैरा बाझहु चलणा विणु हथा
करणा ॥
जीभै बाझहु बोलणा इउ जीवत
मरणा ॥
नानक हुकमु पछाणि कै तउ खसमै
मिलणा ॥१॥

आँखों के बिना देखना (अर्थात् जो आँखे पराया रूप और धन देखने की आदी हैं, उन्हें हटाकर परमात्मा को देखें), कानो के बिना सुनना (अर्थात जो कान पराई निन्दा सुनने के आदी हैं उनसे हटाकर प्रभु स्तुति सुनें), बिना पैरो के चलना (अर्थात् जो पैर बुराई की ओर ले जाते हैं, उन्हे रोक कर हरि मार्ग में ले चलें), हाथो के बिना (कर्म) करना (अर्थात जो हाथ किसी जीव की हत्या करते हैं या हानि पहुँचाते हैं, उन्हे रोक कर हरि की सेवा करें) तथा जीभ के बिना बोले (अर्थात जो जीभ सदा निन्दा करने की आदी है उसे हटा कर हरि-स्तुति करें)। इस प्रकार जीवित ही (अपने आप को)मार देना है (अर्थात् अहकार को त्यागना है। हे नानक इस (विधि) से (परमात्मा के) हुकम को पहचानने (अर्थात सहर्ष स्वीकार करने) से ही हरि स्वामी से मिलन (संभव) होता है ॥१॥

म: २॥
दिसै सुणीऐ जाणीऐ
साउ न पाइआ जाइ ॥
रुहला टुंडा अंधुला
किउ गलि लगै धाइ ॥
भै के चरण कर भाव के
लोइण सुरति करेइ ॥
नानकु कहै सिआणीए
इव कंत मिलावा होइ ॥२॥

(प्रश्न:) वह सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान परमेश्वर दीखने, सुनने और जानने में आता है. (किन्तु इस अज्ञानी जीव को फिर भी 'उस' का) आनन्द (स्वाद) नही प्राप्त होता । (क्यों ?) (उत्तर) (कारण यह है कि देखने, सुनने और जानने वाला जीव पैरों से) लँगडा (पँगु), (हाथो से) टुडा और (आँखों से) अन्धा है, (इस दशा में वह) कैसे (प्रियतम परमेश्वर के) गले के साथ दौड़ कर लग जाय ? (हाँ), (यदि प्रभु के) भय के पैर, (प्रभु-) प्यार के हाथ (हरि व गुरु सेवा) और ध्यान लगाने की आँखें बनाये, तब नानक (बाबा) कहते हैं कि हे समझदार, स्यानी (जीव-स्त्रियों) का इस प्रकार (अपने) पति (परमेश्वर) के साथ मिलन होता है ॥२॥

पउड़ी ॥ सदा सदा तूं एकु है
तुधु दूजा खेलु रचाइआ ॥
हउमै गरबु उपाइ कै
लोभु अंतरि जंता पाइआ ॥
जिउ भावै तिउ रखु
तू सभ करे तेरा कराइआ ॥
इकना बखसहि मेलि लैहि
गुरमती तुधै लाइआ ॥
इकि खड़े करहि तेरी चाकरी
विणु नावै होरु न भाइआ ॥
होरु कार वेकार है
इकि सची कारै लाइआ ॥
पुतु कलतु कुटंबु है
इकि अलिपतु रहे जो तुधु भाइआ ॥
ओहि अंदरहु बाहरहु निरमले
सचै नाइ समाइआ ॥३॥

(हे सृष्टि रचयिता !) तू सदा सर्वदा एक है, (किन्तु) तुमने दूसरा खेल (माया रूप ससार) रच दिया है और जीवों के अन्दर (तुमने ही) अहकार और गर्व, उत्पन्न करके लोभ (भी) भर (डाल) दिया है । (हे प्रभु !) (अब) जैसे आप को अच्छा लगे (इनको माया रूप ससार खेल से) बचा लो, (ये जीव) सभी वही करते हैं जो तुम उनसे कराते हो । कुछ जीवों को बख्शिश करके अपने साथ मिला लेते हो (किन्तु मिलाते भी उन को ही हो जिन को तुमने (स्वयं) गुरु की मति में लगाया है (अर्थात गुरु आदेशानुसार चलते हैं) । कुछ (जीव आपकी प्रतीक्षा में सावधान होकर सदा) खडे तेरी चाकरी (सेवा) करते हैं उन को (तुम्हारे) नाम बिना अन्य कुछ भी अच्छा नही लगता । (ऐसे भाग्यशाली जीवों की दृष्टि मे) शेष सभी काम बेकार है (क्योंकि तुमने उनको) एक सत्य काम (सेवा) में लगा दिया है । कुछ (जीव) पुत्र, स्त्री, कुटुम्बादि होते हुए भी (उनसे) निर्लेप (तटस्थ) रहते हैं, (हाँ) वे वही काम करते हैं जो आप को अच्छे लगते हैं । वे अन्दर-बाहर से निर्मल हैं) क्योंकि वे (तुम्हारे) सच्चे नाम में समाये हुए हैं ॥३॥

सलोकु मः १॥
सुइनै कै परबति गुफा करी
कै पाणी पइआलि
कै विचि धरती कै आकासी
उरधि रहा सिरि भारि ॥
पुरु करि काइआ कपड़ु पहिरा
धोवा सदा कारि ॥
बगा रता पीअला
काला वेदा करी पुकार ॥
होइ कुचीलु रहा मलु धारी
दुरमति मति विकार ॥
ना हउ ना मै ना हउ होवा
नानक सबदु वीचारि ॥१॥

(मैं चाहे) सोने के पर्वत (सुमेर पर्वत) पर गुफा बना कर (योग-साधना करूँ) या जल मे अथवा पाताल में (जाकर तपस्या करूँ) अथवा धरती पर या आकाश में सिर के बल पर उलटा लटक कर (ऊर्ध्व-तपस्या करूँ;) चाहे शरीर को पूरी तौर पर कपड़े पहना लूं (ताकि कोई अंग नग्न न रह जाय)। चाहे शरीर को अथवा कपड़े धो धोकर पहनना ही अपना कार्य (कृत्य) बना लूं; चाहे श्वेत (सामवेद), लाल (ऋग्वेद), पीला (यजुर्वेद) और काला (अथर्वेद) का सच्चे स्वर से (चार) वेदो का पाठ करूँ, (गायत्री मत्र के पाँचवें पटल में वेदो के उपर्युक्त रंग दिये गये हैं)। चाहे फटे-पुराने वस्त्र पहनू और गंदगी धारण किए रहूँ (किन्तु ये सब उपरोक्त कर्म व्यर्थ हैं क्योंकि) कुबुद्धि खोटी मति के कारण इसकी मति (विषय-) विकारो से (भरी हुई) है। हे नानक! (गुरु के) शब्द पर विचार करने से (यह मति आ जाती है कि) न मैं हूँ, न मैं था और न मैं होऊँगा (अर्थात् सारा अहं-भाव नष्ट हो जाय) ॥१॥

मः १॥
वसत्र पखालि पखाले काइआ
आपे संजमि होवै ॥
अंतरि मैलु लगी नही जाणै
बाहरहु मलि मलि धोवै ॥
अंधा भूलि पइआ जम जाले ॥
वसतु पराई अपुनी करि जानै
हउमै विचि दुखु घाले ॥
नानक गुरमुखि हउमै तुटै
ता हरि हरि नामु धिआवै ॥
नामु जपे नामो आराधे
नामे सुखि समावै ॥२॥

(केवल बाह्य स्वच्छता आन्तरिक स्वच्छता के बिना व्यर्थ है)
(जो जीव नित्य) कपडे धोकर शरीर धोता है (और केवल कपडे तथा शरीर की शुद्धि रखने से ही) अपने को सयमी मान बैठना है, (किन्तु हृदय) अन्दर मे लगी हुई मैल की जिसे जानकारी नही है (सदैव शरीर को) बाहर ही से मल-मल कर धोता है, (वह) अन्धा मनुष्य (सीधे मार्ग को) भूल कर यम के जाल मे पडा हुआ है, अहकार मे दुख पाता है क्योंकि पराई वस्तु (शरीर और अन्य पदार्थ) को अपनी समझ बैठा है। हे नानक! जब गुरु के सन्मुख होकर (मनुष्य का) अहकार टूटता है, तो वह हरि के नाम का ध्यान करता है, नाम का ही जप करता है, नाम की ही आराधना करता है और नाम (के ही प्रभाव से सदैव) सुख मे समाया रहता है ॥२॥

पउड़ी ॥

काइआ हंस संजोगु मेलि मिलाइआ॥
तिन ही कीआ विजोगु
जिनि उपाइआ ॥
मूरखु भोगे भोगु दुख सबाइआ ॥
सुखहु उठे रोग पाप कमाइआ ॥
हरखहु सोगु विजोगु
उपाइ खपाइआ ॥
मूरख गणत गणाइ झगड़ा पाइआ॥
सतिगुर हथि निबेड़ झगड़
चुकाइआ ॥
करता करे सु होगु न चलै चलाइआ
॥४॥

शरीर का जीव (-आत्मा) के साथ संयोग मिला कर (परमात्मा ने इन दोनों को मनुष्य के जन्म में) मिला दिया है। जिस (प्रभु) ने (शरीर और जीव को) उत्पन्न किया है, उसी ने फिर इन को वियुक्त कर दिया। मूर्ख (उस कर्त्तार को छोड कर) भोग भोगता रहता है, जो सारे दुखो का (मूल) कारण है। पाप करने के कारण (भोगो के) सुख से रोग उत्पन्न होते हैं। (सासारिक) हर्ष से शोक और (अन्त मे) वियोग होता है और यह जीव उत्पन्न होकर खप जाता है। मूर्ख ने (कर्मों की) गिनती गिन-गिन कर (अर्थात अपने आप को कुछ समझकर) अपने गले में (मानो जन्म-मरण का) झगडा डाल रखा है जन्म-मरण के झगडे को) समाप्त करने की शक्ति केवल सत्गुरु के हाथो में है और वही यह झगडा समाप्त करता है। जीवो की अपनी भलाई (चतुराई) नही चल पाती, जो कर्त्तार करता है, वही होता है ॥४॥

सलोकु मः १॥
कूड़ु बोलि मुरदारु खाइ ॥
अवरी नो समझावणि जाइ ॥
मुठा आपि मुहाए साथै ॥
नानक ऐसा आगू जापै ॥१॥

(हे जीव ! तू) झूठ बोलकर दूसरों का हक अर्थात् हराम का खाना, जो मृतवत् है, खाता है तथा औरो को यह समझाने जाता है (कि झूठ मत बोलो, हराम का मत खाओ)। (तू) स्वयं (तो) ठगा ही जाता है किन्तु अपने (सगी) साथियो को भी ठगवाता है। हे नानक ! (तू) ऐसा उपदेशक मुखिया जाना जाता है ॥१॥ (यह श्लोक काजी को सम्बोधित करते हुए रचा गया है)।

महला ४॥

जिस दै अंदरि सचु है
सो सचा नामु मुखि सचु अलाए ॥
ओहु हरि मारगि आपि चलदा
होरना नो हरि मारगि पाए ॥
जे अगै तीरथु होइ ता मलु लहै
छपड़ि नातै सगवी मलु लाए ॥
तीरथु पूरा सतिगुरू
जो अनदिनु हरि हरि नामु धिआए ॥

जिसके (हृदय) अन्दर सत्य है, वह (प्रभु का) सत्य नाम अपने सत्य मुख से उच्चारण करता है। वह स्वय हरि के मार्ग मे चलता है और औरो को भी हरि-मार्ग मे चलाता है। यदि आगे (गुरु रूपी सच्चा) तीर्थ हो तो (सारी) मैल उतर जाती है, परन्तु यदि किसी गन्दे तालाब (अज्ञानी पुरुष की संगति मे स्नान करे तो मल दूर होने की बजाय और मलिनता बढ़ जाती है। (निर्मल करने वाला) तीर्थ पूर्ण सत्गुरु (हरि) है जो रात दिन हरि (हाँ) हरिनाम का ध्यान करता है। वह स्वयं भी कुटुम्ब सहित (बन्धनों से) मुक्त होता है और (जीव) सृष्टि को

ओहु आपि छुटा कुटंब सिउ
दे हरि हरि नामु हरि स्रिसटि
छडाए ॥
जन नानक तिसु बलिहारणै ॥
जो आपि जपै अवरा नामु जपाए
॥२॥

भी हरि, (हाँ) हरिनाम देकर (जपकर) मुक्त करवाता है। दास नानक उस पर बलिहारी है, जो स्वयं (नाम) जपता है और औरों से नाम जपवाता है ॥२॥

पउड़ी ॥ इकि कंद मूलु चुणि खाहि
वणि खंडि वासा ॥
इकि भगवा वेसु करि फिरहि
जोगी संनिआसा ॥
अंदरि तिसना बहुतु
छादन भोजन की आसा ॥
बिरथा जनमु गवाइ
न गिरही न उदासा ॥
जमु कालु सिरहु न उतरै
त्रिबिधि मनसा ॥
गुरमती कालु न आवै नेड़ै जा होवै
दासनिदासा ॥
सचा सबदु सचु मनि
घर ही माहि उदासा ॥
नानक सतिगुरु सेवनि आपणा से
आसा ते निरासा ॥५॥

एक कन्द मूल (फल-फूल) खाकर बन में, जगलो में वास करते हैं। एक भगवा (गेरूआ) वेश (धारण) करके (घूमते) फिरते हैं और योगी तथा सन्यासी (कहलाते) हैं, परन्तु उनके (हृदय) अन्दर तृष्णा है और (अच्छे) वस्त्रों तथा (स्वादिष्ट। भोजन की बहुत आशा (बनी ही रहती) है। वे व्यर्थ ही अपना (अमूल्य मनुष्य) जन्म गँवाते है, वे न तो गृहस्थी हैं और न ही वैरागी। उनके सिर से यमकाल (कभी) नही उतरता क्योंकि उनकी त्रिगुणात्मक वासनाएँ मन मे हैं (अर्थात वे तीन गुण-रज, तम् और सत् की ही इच्छा रखते हैं)। जब वे दासो के दास होते हैं, तब गुरु की मति के कारण (यम) काल उनके निकट (भी) नही आता। जो (गुरु के) सच्चे शब्द को सत्य करके (निश्चय के साथ) मानते हैं, वे ग्रहस्थ मे उदास (वैरागी होकर) रहते हैं। हे नानक ! जो अपने सतगुरु की सेवा करते हैं, वे आशाओं (वासनाओं, विकारों) से तटस्थ (निराश) रहते हैं ॥५॥

विशेष · निम्नलिखित श्लोक काजी के सम्बन्ध में कहा जाता है। यदि कपडे में रक्त लग जाय तो वह अपवित्र हो जाता है और खुदा के आगे नमाज पढने लायक नही रहता। ऐसी धारणा मुसलमानों की है। मेरे गुरुदेव के मार्मिक विचार आगे के सलोक मे समझाए गए हैं। अन्त करण को निर्मल करना है न केवल वेष भूषा को वरतुन अपवित्र मन से की गई प्रार्थना भी पवित्र प्रभु के यहाँ सुनी नहीं जाती। ऐसा विचार गुरदेव का है।

सलोकु मः १॥
जे रतु लगै कपड़ै
जामा होइ पलीतु ॥
जो रतु पीवहि माणसा
तिन किउ निरमलु चीतु ॥
नानक नाउ खुदाइ का
दिलि हछै मुखि लेहु ॥
अवरि दिवाजे दुनी के
झूठे अमल करेहु ॥१॥

यदि जामे (कपडे) में रक्त लग जाय, तो जामा अपवित्र हो जाता है, किन्तु जो (लोग) मनुष्यों का (ही) रक्त पी रहे हैं (अर्थात् अत्याचार और अन्याय व जबरदस्ती से उनका धनादि अपहरण करते हैं) उनका चित किस प्रकार निर्मल रह सकता है ? और अपवित्र मन से पढ़ी हुई नमाज किस प्रकार स्वीकार हो सकती है ? (हे काजी !) खुदा का नाम अच्छे दिल और अच्छे मुख से लो, (नाम के बिना) अन्य दुनियावी काम दिखावे के हैं, तुम तो झूठे ही कर्म करते हो (इसलिये इन्हे छोड़ दो वस्तुतः पवित्रता चाहिये मन की) ॥२॥

विशेष सिद्धो ने पूछा था कि आप कौन हो ? उत्तर रूप मे मेरे अहकार विहीन गुरुदेव ने बताया—

मः १॥
जा हउ नाही ता किआ आखा
किहु नाही किआ होवा ॥
कीता करणा कहिआ कथना
भरिआ भरि भरि धोवा ॥
आपि न बुझा लोक बुझाई
ऐसा आगू होवां ॥
नानक अंधा होइ कै दसे राहै
सभसु मुहाए साथै ॥
अगै गइआ मुहे मुहि पाहि
सु ऐसा आगू जापै ॥२॥

जब मैं कुछ ही नही हूँ, तो क्या कहूँ ? (जब मैं जानता हूँ कि) मैं कुछ (भी) नही हूँ, तो मैं क्या हो सकूगा ? (परमात्मा ने जो कुछ) किया है वही करता हूँ। (अर्थात् उसके हुकम से करता हूँ), जैसे उसने कहा है तैसे (मैं) कथन करता हूँ और पापों की मैल से भरे हुए मन को (नाम रूपी जल से मल-मल कर) धोता हूँ। (यद्यपि) मैं स्वय को नही जानता, (तथापि) औरो को समझाता (फिरता) हूँ, ऐसा हूँ (मैं) (उपदेशक अथवा सुधारक)। हे नानक ! जो स्वय अधा होकर औरों को रास्ता बताता है, वह (अपने) सारे साथियो को लुटा देता है, ऐसे (उपदेशक को) आगे (परलोक) जाकर मुह पर जूते पडते हैं, तब उस समय ऐसे (उपदेशक) का पता चलेगा कि वह (सचमुच) है या नही ॥२॥

पउड़ी ॥ माहा रुती सभ तू
घड़ी मूरत वीचारा ॥
तू गणतै किनै न पाइओ
सचे अलख अपारा ॥
पड़िआ मूरखु आखीऐ
जिसु लबु लोभु अहंकारा ॥

(हे प्रभु !) सारे महीनो, ऋतुओ, घड़ियो और मुहूर्तों (दिन का तीसवा भाग) में तुम्हारा विचार (स्मरण) किया जा सकता है (अर्थात् स्मरण के लिये कोई विशेष ऋतु, घड़ी अथवा मुहूर्त की आवश्यकता नही है सर्वदा तुम्हारा स्मरण करना है)। हे सत्य स्वरूप ! हे अलक्षय ! हे अपार (प्रभु) ! (तिथियों मुहूर्तों आदि की) गणना करके किसी ने भी तुम्हे नही प्राप्त किया। जिस (जीव) में (अति) लालच, लोभ और अहकार है, ऐसे पढ़े हुए को मूर्ख ही कहना चाहिए।

नाउ पड़ीऐ नाउ बुझीऐ
गुरमती वीचारा ॥
गुरमती नामु धनु खटिआ
भगती भरे भंडारा ॥
निरमलु नामु मंनिआ
दरि सचै सचिआरा
जिसदा जीउ पराणु है
अंतरि जोति अपारा ॥
सचा साहु इकु तूं
होरु जगतु वणजारा ॥६॥

(वास्तव में किसी तिथि, मुहूर्त के भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नहीं, केवल) विचार के साथ हरि (नाम) के सम्बन्ध में गुरु से प्राप्त की गई मति द्वारा पढ़ना चाहिए और समझना भी चाहिए। गुर-उपदेश मानने वालों ने (गुरमुखों ने) नाम-धन को प्राप्त कर लिया है और उनके भण्डार भक्ति से भर गए हैं उन्होंने (प्रभु के) निर्मल नाम को स्वीकार कर लिया है और वे (प्रभु की) सच्ची दरबार मे सच्चे (सिद्ध होते) है। जिस परमात्मा के ये जीव और प्राण हैं 'उसकी' अपार ज्योति (उनके) अन्तर्गत (प्रत्यक्ष) है। (हे प्रभु !) तू ही एक सच्चा शाह है और शेष जगत बनजारा है ॥६॥

विशेष : सच्चा मुसलमान कौन है ? मेरे गुरुदेव के सारगर्भित विचार समझिए। एक बार काजी ने मेरे गुरुदेव से कहा मैं तो अपने पूर्वजो के बताए हुए मार्ग पर चलता हूँ। मस्जिद जाता हूँ, मुसला बिछा कर कुराण शरीफ पढ़ता हूँ, रोजे रखता हूँ और तसबी फेडता हूँ, समय फिर निमाज पढता हूँ। गुरुदेव ने यह सुनकर उपदेश दिया कि आन्तरिक गुण न होने से बाह्य कर्म सफल नही होते। इस लिए हे काजी ! तू आन्तरिक गुण भी धारण कर।

सलोक मः १॥
मिहर मसीति सिदकु मुसला
हकु हलालु कुराणु ॥
सरम सुनति सीलु रोजा
होहु मुसलमाणु ॥
करणी काबा सचु पीरु
कलमा करम निवाज ॥
तसबी सा तिसु भावसी
नानक रखै लाज ॥१॥

(हे प्यारे !) दया की मस्जिद, निश्चय (श्रद्धा) की चटाई (जिस पर बैठकर नमाज पढ़ी जाती है) और हक हलाल की कमाई को कुरान (पढो)। (बुरे कर्मो के प्रति) लज्जा को सुन्नत (मानो), शील (स्वभाव) का रोजा (रखो) उपर्युक्त जीवन बनाओ तब मुसलमान हो सकते हो। (शुभ) करणी को काबा (धर्म-मन्दिर) करो, सच्चाई को पीर और (शुभ व दयापूर्ण) कर्मो को (ही) कलमा तथा नमाज बनाओ। जो (बात) खुदा को अच्छी लगे उसी को मानना यह हो तुम्हारी तसबीह (जप की माला)। हे नानक ! (खुदा ऐसे गुणों से युक्त मुसलमान की) लज्जा रखता है ॥१॥

मः १॥ हकु पराइआ नानका
उसु सूअर उसु गाइ ॥
गुरु पीरु हामा ता भरे
जा मुरदारु न खाइ ॥

हे नानक ! पराये हक (को खाना) मुसलमान के लिए सूअर (के समान) है और हिन्दू के लिये गाय (के समान) है। गुरु पीर तभी सिफारिश करता है, यदि जीव शववत् (बेईमानी की कमाई) न खाये। निरी बातें करने से बिहिश्त (स्वर्ग में नहीं जा सकता)।

गली भिसति न जाईऐ
छुटै सचु कमाइ ॥
मारण पाहि हराम महि
होइ हलालु न जाइ ॥
नानक गली कूड़ीई
कूड़ो पलै पाइ ॥२॥

सत्य को वास्तविक जीवन मे बरतने से ही छुटकारा मिलता हैं। हराम (निषिद्ध) के मास मे मसाला (चतुराई की बातें) डालने से हलाल नही हो जाता। हे नानक! झूठी बातें करने से झूठ ही पल्ले पडता है ॥२॥

मः १॥ पंजि निवाजा वखत पंजि
पंजा पंजे नाउ ॥
पहिला सचु हलाल दुइ
तीजा खैर खुदाइ ॥
चउथी नीअति रासि मनु
पंजवी सिफति सनाइ ॥
करणी कलमा आखि कै
ता मुसलमाणु सदाइ ॥
नानक जेते कूड़िआर
कूड़ै कूड़ी पाइ ॥३॥

(मुसलमानो की) पाँच नमाजे हैं, (उनके) पाँच वक्त हैं और उन पाँच नमाजो के (पृथकपृथक) पाँच नाम हैं (१) नमाजें सुबह (२) नमाजे पेशीन (३) नमाज दीवार (४) नमाजे शाम (५) नमाजे खुफनन। (मेरे गुरुदेव के अनुसार असली नमाजें पाँच ही हैं। यथा। पहली सत्य बोलने की, दूसरी हक की कमाई की, तीसरी खुदा से सब के लिये भला माँगना, चौथी मन में (माफ) नीयत रखनी तथा पाँचवी (अल्लाह के) यश की महिमा अर्थात् स्तुति करनी, (इन पाँच नमाजो के साथ-साथ) जब ऊँची करणी (आचरण) का कलमा (बिसमिल्ला आदि) (भी) पढ़े, तभी अपने आप को मुसलमान कहलवा सकता है। हे नानक! (इन नमाजो और कलमें से रहित) जितने भी (जीव) हैं, वे सब झूठे हैं; झूठ (की प्रतिष्ठा) भी झूठी ही होती है ॥३॥

पउड़ी ॥ इकि रतन पदारथ वणजदे
इकि कचै दे वापारा ॥
सतिगुरि तुठै पाईअनि
अंदरि रतन भंडारा ॥
विणु गुर किनै न लधिआ
अंधे भउकि मुए कूड़िआरा ॥
मनमुख दूजै पचि मुए
ना बूझहि वीचारा ॥
इकसु बाझहु दूजा को नही
किसु अगै करहि पुकारा ॥
इकि निरधन सदा भउकदे
इकना भरे तुजारा ॥

कुछ (प्यारे) (प्रभु के नाम रूपी) रत्न-पदार्थ का (सच्चा) व्यापार करते हैं और कुछ (जीव) (विषयादि) कच्चे (पदार्थों) का व्यापार करते हैं। (हृदय) अन्दर जो (प्रभु गुण रूपी) रत्न के भण्डार हैं, वे सत्गुरु के प्रसन्न होने पर ही प्राप्त होते हैं। बिना गुरु की (शरण मे आए) किसी ने भी (रत्न-पदार्थों को) प्राप्त नही किया। झूठ के व्यापारी अन्धे (अज्ञानी जीव कुत्तों की भाँति तृष्णा के वशीभूत होकर) भौंक-भौंक कर मर जाते हैं। (सत्गुरु का परित्याग करके जो अज्ञानी जीव अपने) मन के पीछे चलने वाले हैं, वे द्वैतभाव मे पच-पचकर (जल-जलकर) मर जाते हैं, और (मनमुख होने के कारण गुरु के) विचार (आदेश) को नही समझते। एक (प्रभु) के बिना दूसरा कोई (सुनने वाला) भी नहीं है, वे फिर किसके सन्मुख जाकर पुकार करें? (नाम रूपी भण्डार के बिना कई निर्धन (कुत्तों की भाँति भौंकते (रहते) हैं और किसी के (हृदय रूपी) खजाने (हरि-धन से) भरे पड़े हैं।

विणु नावै होरु धनु नाही
होरु बिखिआ सभु छारा ॥
नानक आपि कराए करे
आपि हुकमि सवारणहारा ॥७॥

बिना नाम के और कोई (साथ निभने वाला) धन नहीं है, शेष (माया रूपी धन विषवत् और खाक (के समान) है। (किन्तु) हे नानक ! (सर्वव्यापक प्रभु ही) स्वय मात्र अथवा नाम का व्यापार) कर-करा रहा है और वही हुकम के द्वारा (जीव को) सँवारने वाला ॥७॥

विशेष वेई नदी के डुबकी के पश्चात् मेरे गुरुदेव के प्रथम उद्गार थे न कोई हिन्दु है और न कोई मुसलमान हैं। काजी को सम्बोधन करते हुए वास्तविक मुसलमान के कुछ लक्षणो का उल्लेख किया है।

सलोकु मः १॥

मुसलमाणु कहावणु मुसकलु
जा होइ ता मुसलमाणु कहावै ॥
अवलि अउलि दीनु करि मिठा
मसकल माना मालु मुसावै ॥
होइ मुसलिमु दीन मुहाणै
मरण जीवण का भरमु चुकावै ॥
रब की रजाइ मंने सिर उपरि
करता मंने आपु गवावै ॥
तउ नानक सरब जीआ मिहरंमति
होइ त मुसलमाणु कहावै ॥१॥

मुसलमान कहलाना (बहुत) कठिन है। मुसलमान वही कहला सकता है जिसमें (इस प्रकार के) गुण हैं। सबसे पहले (यह अति आवश्यक है) कि वह औलियो (सन्तो) का धर्म मीठा करके माने (अर्थात् सन्त मार्ग की ओर रुचि हो)। तत्पश्चात् मसकले की तरह अपना माल (धन) (गरीबो मे) लुटा दे, भाव (धन) अहंकार का ऐसे मूलोच्छेद कर दे जैसे हथियार जग उतार देता है। (मुरशिद के) धर्म मे कायम (स्थित) रह कर (सच्चा) मुसलमान बने और जीवन मरण के भ्रम को समाप्त कर दे। प्रभु की मर्जी को सर्वोपरि (सिर माथे पर माने) तथा अहकार को दूर कर कर्त्ता (पुरुष) को माने। (अत.) हे नानक ! (परमात्मा के उत्पन्न किये) सारे जीवो पर मेहरबान हो (दया करे) तभी (अपने आपको) मुसलमान कहावे ॥१॥

महला ४॥

परहरि काम क्रोधु झूठु निंदा
तजि माइआ अहंकारु चुकावै ॥
तजि कामु कामिनी मोहु तजै
ता अंजन माहि निरंजनु पावै ॥
तजि मानु अभिमानु
प्रीति सुत दारा तजि
तजि पिआस आस राम लिव लावै ॥

(यदि जीव) काम, क्रोध, झूठ, निन्दा आदि छोड़ दे, (यदि) माया की लालच त्यागकर अहकार (भी) दूर कर दे, (हाँ) (यदि) स्त्री के प्रति काम वासना और (बच्चो के लिये) मोह त्याग दे, तो वह माया (अजन) मे रहकर भी निष्कलक (निरजन) पर मात्मा को पा लेता है। (यदि जीव) मान और अभिमान दूर करके पुत्र और स्त्री के प्रति प्रीति (लगाव) का त्याग कर दे; तृष्णा वासना और आशा दूर करके राम के साथ लौ लगाए,

नानक साचा मनि वसै
साचु सबदि हरिनामि समावै ॥२॥

तभी हे नानक ! सत्य स्वरूप राम (उसके) मन में बस जाता है और वह सच्चे शब्द (नाम) द्वारा हरिनाम में समा जाता है ॥२॥

पउड़ी ॥ राजे रयति सिकदार
कोइ न रहसीओ ॥
हट पटण बाजार हुकमी ढहसीओ ॥
पके बंक दुआर मूरखु जाणै आपणे ॥
दरबि भरे भंडार रीते इकि खणे ॥
ताजी रथ तुखार हाथी पाखरे ॥
बाग मिलख घर बार
किथै सि आपणे ॥
तंबू पलंघ निवार सराइचे लालती ॥
नानक सच दातारु सिनाखतु
कुदरती ॥८॥

राजा, प्रजा, सरदार (उनमें से) कोई भी नही रहेगा (क्योंकि सभी नश्वर हैं)। दुकानें, शहर, बाजार सभी प्रभु के हुकम से ढह जायेंगे (नष्ट हो जायेंगे) सुन्दर द्वारों वाले पक्के महलो को मूर्ख (जीव) अपना समझते हैं (वे भी ढह जायेंगे)। जो भण्डार धन-दौलत से भरे हैं, वे भी एक क्षण मे ही खाली हो जायेंगे। घोडे, रथ, ऊँट, झूल वाले हाथी, बाग, जायदाद, घर बार आदि अपने कहाँ है ? (अर्थात वे भी तुम्हारे नही हैं)। तम्बू, निवार के पलग, अतलस (एक प्रकार का बहुत मुलायमी वस्त्र) की कनाते (भी मिथ्या हैं) हे नानक ! इन पदार्थों को देने वाला दाता प्रभु ही स्थिर (सच) है और 'वह' अपनी कुदरत द्वारा ही पहचाना जाता है ॥८॥

सलोकु मः १॥
नदीआ होवहि धेणवा
सुंम होवहि दुधु घीउ ॥
सगली धरती सकर होवै
खुसी करे नित जीउ ॥
परबतु सुइना रुपा होवै
हीरे लाल जड़ाउ ॥
भी तूं है सालाहणा
आखण लहै न चाउ ॥१॥

यदि (सारी) नदियाँ (मेरे लिए) गाये हो जायँ, (पानी के) चश्मे दूध और घी बन जायँ, सारी धरती शक्कर हो जाय (इन पदार्थों को देखकर) मेरा मन (जीव) नित्य प्रसन्न हो जाय, तथा हीरो और लालो से जडे हुए सोने और चाँदी के पर्वत बन जायँ, तो भी (हे प्रभु ! मैं इन पदार्थों में न आसक्त हूँ और) तुम्हारी सरहाना करने का मेरा चाव न कम (समाप्त) हो ॥१॥ रहाउ ॥

मः १॥ भार अठारह मेवा होवै
गरुड़ा होइ सुआउ ॥
चंदु सूरजु दुइ फिरदे रखीअहि
निहचलु होवै थाउ ॥

यदि सारी वनस्पति (मेरे खाने के लिए) मेवा हो जाय; (प्राचीन विचार है कि प्रत्येक वृक्ष व पौधें का एक पत्ता लेकर सब को तोला जाय तो अठारह भार वजन होगा। एक भार पाँच मन कच्चे के तुल्य है), (नर्म-नर्म विशेष प्रकार के रसीले) चावल का भी आस्वादन करूँ, चाँद व सूर्य जो दोनों फिरते (रहते) हैं, उन्हे (अपनी करामात से) रोक लू तथा मेरे रहने सहने (और

भी तूं हैं सालाहणा
आखण लहै न चाउ ॥२॥

बैठने) का स्थान अचल (स्थिर) हो जाय, तो भी (हे प्रभु! मैं इन पदार्थों में न आसक्त हूँ, और) तुम्हारी सराहना करने का मेरा चाव न कम (समाप्त) हो ॥२॥

म: १॥ जे देहै दुखु लाईऐ
पाप गरह दुइ राहु ॥
रतु पीणे राजे सिरै उपरि रखीअहि
एवै जापै भाउ ॥
भी तूं है सालाहणा
आखण लहै न चाउ ॥३॥

(यदि किसी शत्रु की) देह को दुख लगाना चाहूँ तो दोनों पाप ग्रहो राहु और केतु (को उनके पीछे लगा दूं), रक्त पीने वाले (अति अत्याचारी) राजे उनके सिर पर रख दूं (जो उन्हें दुख देते रहे अथवा मेरे सिर के ऊपर हों (अर्थात पहरे वाले हों) तथा इस प्रकार मुझे प्रतीत हो कि मेरा प्रभाव इतना शक्तिशाली है। तो भी (हे प्रभु! इन शक्तियों में न आसक्त हूँ, और) तुम्हारी सराहना करने का मेरा चाव न कम (समाप्त) हो ॥३॥

म० १॥ अगी पाला कपड़ु होवै
खाणा होवै वाउ ॥
सुरगै दीआ मोहणीआ इसतरीआ
होवनि नानक सभो जाउ ॥
भी तू है सालाहणा
आखण लहै न चाउ ॥४॥

(फिर मुझे ऐसी भी सिद्धी प्राप्त हो जाय कि ग्रीष्म ऋतु की) अग्नि और (हेमन्त व शिशिर ऋतुओं का) पाला (मेरे पहनने के) कपड़े बन जायें, वायु मेरा भोजन हो जाय अथवा गर्मी का ताप और सर्दी का पाला दुख देने के बजाय मेरे कपड़े हो जायें, स्वर्ग की (समस्त) मोहिनी अप्सराएँ भी मुझे प्राप्त हो जायें, तो भी। हे नानक! ये सारी (ऐश्वर्य-सामग्रियाँ) नश्वर हैं। (हे प्रभु! इनके मोह में आसक्त होकर कहीं मैं तुम्हें भुला न दूं। इसलिये अभिलाषा है कि मैं) तेरी सराहना करता रहूँ और तुम्हारी सराहना करने का मेरा चाव न कम (समाप्त) हो ॥४॥

पवड़ी ॥
बदफैली गैबाना खसमु न जाणई ॥
सो कहीऐ देवाना आपु न पछाणई ॥
कलहि बुरी संसारि वादे खपीऐ ॥
विणु नावै वेकारि भरमे पचीऐ ॥
राह दोवै इकु जाणै सोई सिझसी ॥
कुफर गोअ कुफराणै पइआ दझसी॥
सभ दुनीआ सुबहानु सचि समाईऐ ॥
सिझै दरि दीवानि आपु गवाईऐ
॥९॥

बुरे कर्म करने वाला भूत-प्रेत (के समान) है क्योंकि वह (प्रभु) स्वामी को (प्रत्येक स्थान पर) नहीं जानता। जो अपने (वास्तविक) स्वरूप को नहीं पहचानता उसे दीवाना (पागल) कहना चाहिए। संसार में कलेश (फैलाना) बुरा है और झगड़े में (अर्थात वाद-विवाद में) नष्ट हो जाने है बिना नाम के सब विकार हैं जिन के कारण जीव भ्रमित होकर दुखी हो जाते हैं। जो दोनों (अर्थात हिन्दू और मुसलमान धर्म को) एक करके जाने वही जीवन सफल कर सकेगा। वास्तिकता की बातें करने वाला (अर्थात हिन्दुओं में परमेश्वर नहीं मुसलमानों में ही है, इत्यादि ऐसी बातें करने वाला नास्तिक की जगह (नरक) में पड़ कर जलेगा। (हाँ) जो सत्य में समाया हुआ है (अर्थात सत्य में लगे हुए हैं उसके लिये) सारे जगत (के लोग) सुन्दर (बधाई के पात्र) हैं। प्रभु के दरबार में वह स्वीकार होगा जो अहंकार की निवृति करता है ॥९॥

मः १ सलोकु ॥ सो जीविआ
जिसु मनि वसिआ सोइ ॥
नानक अवरु न जीवै कोइ ॥
जे जीवै पति लथी जाइ ॥
सभु हरामु जेता किछु खाइ ॥
राजि रंगु मालि रंगु
रंगि रता नचै नंगु ॥
नानक ठगिआ मुठा जाइ ॥
विणु नावै पति गइआ गवाइ ॥१॥

(वास्तव में) वही (मनुष्य) जीता है, जिसके मन में प्रभु बसा हुआ है। हे नानक ! (भक्त के अतिरिक्त) कोई और नहीं जीता है। यदि (नाम विहीन होकर) जीता भी है तो वह प्रतिष्ठा गँवा कर (यहाँ से) जाता है। (वह यहाँ) जो कुछ भी खाता (पीता) है सब हराम (ही का खाता) है। जो राज्य-सुख और धन-सुख के रंग में अनुरक्त है वह (उन सुखों में उन्मत) नंगा (निल्लज) होकर नाचता (विचरता) है। हे नानक ! (प्रभु के) नाम के बिना (मनुष्य) ठगा जा रहा है, (हाँ) लूटा जा रहा है और प्रतिष्ठा गँवा कर (यहाँ से) जाता है ॥१॥

मः १॥

किआ खाधै किआ पैधै होइ ॥
जा मनि नाही सचा सोइ ॥
किआ मेवा किआ घिउ गुड़ मिठा
किआ मैदा किआ मासु ॥
किआ कपड़ु किआ सेज सुखाली
कीजहि भोग बिलास ॥
किआ लसकर किआ नेब खवासी
आवै महली वासु ॥
नानक सचे नाम विणु
सभे टोल विणासु ॥२॥

(रसयुक्त भोजन) खाने से तथा (सुन्दर वस्त्र) पहनने से क्या होता है ? यदि 'वह' सचवा (प्रभु) मन मे नही बसता (अर्थात् नाम के बिना खाना-पीना-पहनना सब व्यर्थ है)। क्या हुआ, यदि मेवे, घी, मीठा, गुड, मैदा मासादिक पदार्थ खाते गए ? क्या हुआ यदि (सुहावने) कपडे तथा सुखद सेज मिल गई और क्या हुआ, यदि (बहुत से) भोग-विलास भी (भोग)लिए ? क्या बन गया, यदि (बहुत-सा) लश्कर, नायब और शाही नौकर मिल गए और महलो मे (सुन्दर) निवास हो गया ? हे नानक ! सत्य नाम के बिना सारे पदार्थ (शोभा की सारी सामग्री) नश्वर (व्यर्थ) हैं। ॥२॥

विशेष. मेरे गुरुदेव कुल व जाति आदि के अभिमान का निशेध करते हैं। अर्थात् परलोक में किसी जाति अथवा वर्ण का कोई लिहाज नही किया जाता है।

पवड़ी ॥
जाती दै किआ हथि सचु परखीऐ ॥
महुरा होवै हथि मरीऐ चखीऐ ॥
सचे की सिरकार जुगु जुगु जाणीऐ ॥
हुकमु मंने सिरदारु दरि दीबाणीऐ ॥
फुरमानी है कार खसमि पठाइआ ॥
तबलबाज बीचार सबदि सुणाइआ ॥
इकि होए असवार इकना साखती ॥
इकनी बधे भार इकना ताखती ॥
१०॥

(हाँ, वहाँ केवल) सत्य की ही परख होती है। (जाति का अहंकार माहुर (विष) के समान है)। (यदि किसी के) हाथ मे विष हो तो उसे खाने से वह अवश्य ही मर जायगा (चाहे वह किसी भी जाति का क्यों न हो)। सच्चे परमात्मा का शासन (न्याय) प्रत्येक युग मे बरतता चला आया है। इसे जान लो। 'उसके' दरबार में सरदार वही बनता है जो 'उसके' हुकम को मानता है। आज्ञा मानना यह (पूर्वलिखित) हुकम है जो स्वामी ने देकर भेजा है। नगारची गुरू ने शब्द द्वारा यह बात सुना दी है अर्थात् ढिंढोरा पीट दिया है)। (इस ढिंढोर को सुनकर) कुछ (गुरमुख) प्यारे (हरि-मार्ग मे) सवार हो गये हैं (चल पडे हैं), कई (बन्दे) त्यार हो पड़े है (दुमची आदि कस कर), कुछ माल असबाब लाद चुके हैं तथा कईयो ने घोडे दौड़ा भी लिए हैं। (अर्थात दौड़ पड़े हैं) ॥१०॥

सलोकु मः १॥ जा पका ता कटिआ
रही सु पलरि वाड़ि ॥
सणु कीसारा चिथिआ
कणु लइआ तनु झाड़ि ॥
दुइ पुड़ चकी जोड़ि कै
पीसण आइ बहिठु ॥
जो दरि रहे सु उबरे
नानक अजबु डिठु ॥१॥

जव (कृषि) पक जाती है, तो (ऊपर-ऊपर) काट ली जाती है, जो वस्तु शेष रह जाती है, वह डठल और फूस है, (फिर) उसे वालियों समेत दबा लिया जाता है, (पौधों का) तन झाड के भूसा-ओसा कर दाना निकाल लिया जाता है। चक्की के दोनो पाटो मे रखकर (उन दानो को) पीसने के लिए (मनुष्य) आ बैठता है, (किन्तु) हे नानक ! एक आश्चर्यमय तमाशा देखा है कि जो दाने चक्की के दरवाजे (कील) के साथ रहते हैं, वे पिसने से बचे रहते है (इसी प्रकार जो जीव प्रभु के नाम रूपी कीली के साथ रहते हैं, उन्हे सांसारिक विकार व्याप्त नही हो सकते।) ॥१॥

विशेष प्राय कई बार भद्र पुरुषो को दु ख झेलने पड़ते हैं। गन्ने का उदाहरण देकर समझाया है।

मः १॥ वेखु जि मिठा कटिआ
कटि कुटि बधा पाइ ॥
खुंढा अंदरि रखि कै
देनि सु मल सजाइ ॥
रसु कसु टटरि पाईऐ
तपै तै विलाइ ॥
भी सो फोगु समालीऐ
दिचै अगि जालाइ ॥

(हे भाई !) देखो गन्ना (मीठा) काटा जाता है, छील-छाल कर रस्सी मे डाल कर बाँधा जाता है, फिर उसे बेलन (कोल्हू) मे डालकर पहलवान इसे (मानो) सजा देते है (पेरते हैं)। ईख को पेर कर निकाला हुआ रस कड़ाहे में डाल दिया जाता है। (आग की आँच से यह रस) तपता है और बिलखता है (तत्पश्चात् गन्ने की) फोक को भी इकट्ठा करके (सुखाकर) अग्नि मे जला देते हैं। (बाबा) नानक (साहब) (कहते हैं कि) मधुर पत्तो वाले—मीठे गन्ने की (दशा को) आकर देखो (कि इसका क्या हाल हुआ। (भाव है कि रस की संगति करने का फल

नानक मिठै पतरीऐ
वेखहु लोका आइ ॥२॥

गन्ने को यह मिला कि उसे कष्ट सहारन करने पडे। इसी प्रकार माया की सगति करने से जीव को जन्म-मरण के दु:ख सहारन करने पडेंगे) ॥२॥

पवड़ी ॥ इकना मरणु न चिति
आस घणेरिआ ॥
मरि मरि जंमहि नित
किसै न केरिआ ॥
आपनड़ै मनि चिति
कहनि चंगेरिआ ॥
जम राजै नित नित मनमुख हेरिआ ॥
मनमुख लूण हाराम
किआ न जाणिआ ॥
बधे करनि सलाम
खसम न भाणिआ ॥
सचु मिलै मुखि नामु
साहिब भावसी ॥
करसनि तखति सलामु
लिखिआ पावसी ॥११॥

कुछ (जीवो) को मरना चित्त मे (याद) नही; (बल्कि संसार में जीने की), (हाँ) और भी बडी आशाएँ हैं। नित्य जन्म लेते और मरते हैं और वे किसी के नही होते (अर्थात् निगुरे हैं उन्होने गुरु और परमेश्वर का आश्रय नही लिया है)। वे (जीव) अपने मन मे, अपने चित्त (अपने) को भला कहते हैं। (किन्तु स्मरण रहे कि) यमराज ऐसे मनमुखो को नित्य ही (मारने के लिए) देखता रहता है। मनमुख नमक हरामी होते हैं, वे (परमात्मा के) किए हुए को (उपकार को) नही जानते। वे जन (यमपुरी मे) बँधते हैं, तभी (प्रभु को) सलाम करते हैं (अर्थात् मजबूरी मे सलाम करते है), (ऐसा करने से) वे खसम (स्वामी) को प्रिय नही हो सकते। जिस (जीव) को सत्य (परमात्मा) मिल गया है, जिसके मुख में (प्रभु का) नाम है, वह खसम को प्यारा लगेगा। वे, जो प्रभु तख्त पर बिराजमान है, सलाम करते हैं और लिखे लेख को पाते है (अर्थात् अपनी सच्ची कमाई का फल प्राप्त करते हैं)। ॥११॥

मः १ सलोकु ॥

"असाधु मूर्ख को सुधारना अति कठिन है।"

मछी तारू किआ करे
पंखी किआ आकासु ॥
पथर पाला किआ करे
खुसरे किआ घर बासु ॥
कुते चंदनु लाईऐ
भी सो कुती धातु ॥

गहरा अथाह जल मछली का क्या कर सकता है ? (अर्थात् पानी कितना ही गहरा क्यो न हो मछली के लिए कोई प्रति-बन्ध नही), आकाश पक्षी का क्या कर सकता है ? पाला (ककड और) पत्थर का क्या कर सकता है ? हिजडे को घर बसाने से (स्त्री करने से) क्या लाभ ? कुत्ते को चन्दन लगा दिया जाय, फिर भी उसकी वृति (स्वभाव) कुत्तियो मे ही रहती है। गूंगें को (चाहे जितना) समझाइए अथवा (चाहे जितना) स्मृतियो का पाठ कीजिए, किन्तु वह तो (सुन ही नही सकता)।

बोला जे समझाईऐ
पड़ीअहि सिमृति पाठ ॥
अंधा चानणि रखीऐ
दीवे बलहि पचास ॥
चउणे सुइना पाईऐ
चुणि चुणि खावै घासु ॥
लोहा मारणि पाईऐ
ढहै न होइ कपास ॥
नानक मूरख एहि गुण
बोले सदा विणासु ॥१॥

अन्धे मनुष्य को प्रकाश में रखा जाय और उसके पास पचास दीपक जलते हो (फिर भी वह नही देख सकता), चरने के लिए गए हुए पशुओं के सम्मुख चाहे सोना डाल दीजिए तो भी वे घास ही चुग-चुगकर खाएगे, चाहे लोहे को चूर-चूर कर डालिए तो भी वह कपास (के समान मुलायम नहीं) हो सकता। हे नानक! मूर्ख में भी यही गुण (स्वभाव) होते हैं. उसके साथ बोलना सदा व्यर्थ ही जाता है ॥१॥

मः १॥ कैहा कंचनु तुटै सारु ॥
अगनी गंढु पाए लोहारु ॥
गोरी सेती तुटै भतारु ॥
पुतीं गंढु पवै संसारि ॥
राजा मंगै दितै गंढु पाइ ॥
भुखिआ गंढु पवै जा खाइ ॥
काला गंढु नदीआ मीह झोल ॥
गंढु परीती मिठे बोल ॥
बेदा गंढु बोले सचु कोइ ॥
मुइआ गंढु नेकी सतु होइ ॥
एतु गंढि वरतै संसारु ॥
मूरख गंढु पवै मुहि मार ॥
नानकु आखै एहु बीचारु ॥
सिफती गंढु पवै दरबारि ॥२॥

यदि काँसा, सोना अथवा लोहा टूट जाय तो अग्नि द्वारा लोहार (उन्हे) जोड देता है, यदि स्त्री से पति टूट (रुष्ट) जाय तो ससार में पुत्रों द्वारा (पुन) मिलाप हो जाता है, यदि राजा माँगे और प्रजा दे तो (दोनो का सम्बन्ध) जुडा रहता है, भूखे जीवो (के शरीर और प्राणो) मे मिलाप तभी सभव होगा, जब वे (भोजन) खायेंगे, यदि बहुत वर्षा जोर से हो और नदियाँ बहने लगें तो दुर्भिक्ष (अकाल) मे गाँठ पड जाती है (अर्थात वर्षा होने से दुर्भिक्ष की समाप्ति होती है), मीठे वचन से प्रीति जुडती है, वेदादि (धर्म-ग्रन्थो से मनुष्य का तभी) सम्बन्ध जुडता है, यदि वह सत्य बोले, नेकी और सच्चाई के होने से मृत व्यक्तियो का (जीवितो से) सम्बन्ध बना रहता है (अर्थात् उनकी भलाई को याद करके वे उन्हे अपनाते हैं)। (अतएव) इस प्रकार के सम्बन्ध से ससार का व्यवहार चलता है। किन्तु मूर्ख की उपेक्षा करने से या उसके सामने चुप रहने से सम्बन्ध बनता है। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक यह विचार की बात बताते हैं कि (हरि की) स्तुति करने से 'उसकी' दरबार से सम्बन्ध जुडता है ॥२॥

पउड़ी ॥ आपे कुदरति साजि कै
आपे करे बीचारु ॥
इकि खोटे इकि खरे
आपे परखणहारु ॥
खरे खजानै पाईअहि
खोटे सटीअहि बाहरवारि ॥
खोटे सची दरगह सुटीअहि
किसु आगै करहि पुकार ॥
सतिगुर पिछै भजि पवहि
एहा करणी सारु ॥
सतिगुरु खोटिअहु खरे करे
सबदि सवारणहारु ॥
सची दरगह मंनीअनि
गुर कै प्रेम पिआरि ॥
गणत तिना दी को किआ करे
जो आपि बखसे करतारि ॥१२॥

(परमात्मा) आप ही कुदरत—(शक्ति, माया, सृष्टि आदि) उत्पन्न करके आप ही इसका विचार (ध्यान) करता है। (इस जीव सृष्टि में) कुछ (जीव) (बादशाही सिक्के समान) खरे हैं और कुछ (जीव) खोटे हैं (अर्थात मनुष्यता के मापदण्ड से नीचे खड़े हुए हैं), (इन सब को) परखने वाला भी आप ही है। जो खरे (सच्चे) हैं उनको (सत्य-खण्ड रूपी) खजाने मे डाल देता है और जो खोटे हैं उन्हे (सत्य-खण्ड से) बाहर निकालकर (योनियों के चक्र मे) फेंक देता है। खोटे सिक्कों (जीवों) को सच्ची दरबार से (धक्का देकर) निकाल दिया जाता है, वे फिर कहाँ जाकर (सहायता के लिये) पुकार करें ? (उत्तर :) सत्गुरु के पास (शरण मे) उन को दौड़कर जाना चाहिए। यही श्रेष्ठ (सर्वोत्तम) कर्म है। सत्गुरु खोटे (जीवो) को खरा बना देता है क्योकि सत्गुरु शब्द के द्वारा खोटे (जीवो) को सँवारने वाला है (अर्थात सँवारने मे समर्थ है)। गुरु के साथ प्रेम प्यार रखने से सच्ची दरबार मे प्रमाणित (स्वीकृत) होते हैं (फिर जिन पर प्रभु) कर्त्ता आप बख्शिश करता है, उनसे (कर्मों का) हिसाब भला कौन ले सकता है ? (अर्थात् धर्मराज भी उनका लेखा-जोखा समाप्त कर देता है और उन्हे नमस्कार करता है) ॥१२॥

सलोकु मः १॥

हम जेर जिमी दुनीआ
पीरा मसाइका राइआ ॥
मे रवदि बादिसाहा अफजू खुदाइ ॥
एक तू ही एक तुही ॥१॥

पीर, शेख (मसाइका), राय (आदि) और (दुनिया के बड़े) बादशाह, (हाँ) सारा ससार पृथ्वी के नीचे (जेर) आ जायेगा (अर्थात मर कर दब जायेगा)। किन्तु सदैव रहनेवाला (अटल), हे प्रभु ! एक तू ही है, (हाँ) एक तू ही है ॥१॥

मः १॥ न देव दानवा नरा ॥
न सिध साधिका धरा ॥
असति एक दिगरि कुई ॥
एक तुई एक तुई ॥२॥

देवते, दैत्य और मनुष्य भी नही रहेंगे और न ही रहेंगे धरती पर सिद्ध और साधक। सदैव रहने वाला (तुम्हे छोड़कर) दूसरा कौन है ? सदैव रहने वाला, हे प्रभु ! एक तू ही है, (हाँ) एक तू ही है ॥२॥

मः १॥ न दादे दिहंद आदमी ॥
न सपत जेर जिमी ॥
असति एक दिगरि कुई ॥
एक तुई एक तुई ॥३॥

न न्याय करने वाले व्यक्ति और न पृथ्वी के नीचे सात लोक ही सदैव रहेंगे। (हे प्रभु ! तुझे छोड़कर) दूसरा कौन है ? हे प्रभु ! सदैव स्थिर रहने वाला, एक तू ही है, (हाँ) एक तू ही है ॥३॥

मः १॥ न सूर ससि मंडलो ॥
न सपत दीप नह जलो ॥
अंन पउण थिरु न कुई ॥
एकु तुई एकु तुई ॥४॥

सूर्य, चन्द्रमा और (तारा) मण्डल भी स्थिर नही रहेंगे और न ही सात द्वीप तथा पानी के समुद्र ही रहेंगे। अन्न और पवन आदि (तत्व) भी नही रहेंगे। (सदा स्थिर रहने वाला, हे प्रभु !) एक तू ही, (हाँ) एक तू ही है ॥४॥

मः १॥ न रिजकु दसत आ कसे ॥
हमारा एकु आस वसे ॥
असति एकु दिगिर कुई ॥
एक तुई एकु तुई ॥५॥

(हे प्रभु !) (हमारा) आहार (तुम्हारे बिना) किसी अन्य के हाथ मे नही है। सभी जीवो को बस, एक तुम्हारा ही आश्रय है (क्योंकि सदा स्थिर) अन्य कोई नही; सदैव रहने वाला, हे प्रभु ! एक तू ही है, (हाँ) एक तू ही है ॥५॥

मः १॥ परंदए न गिराह जर॥
दरखत आब आस कर ॥
दिहंद सुई ॥
एक तुई एक तुई ॥६॥

(देखो) पक्षियों के गाँठ (पल्ले) में कोई धन-सम्पत्ति नही है, (वे भी प्रभु के बनाए हुए) वृक्षों और पानी का ही सहारा लेते हैं, (किन्तु उनके रोजी) देने वाला 'वही' एक है। (हे प्रभु ! उन्हें आहार पहुँचाने वाला) एक तू ही है, (हाँ) एक तू ही है ॥६॥

मः १॥
नानक लिलारि लिखिआ सोइ ॥
मेटि न साकै कोइ ॥
कला धरै हिरै सुई ॥
एकु तुई एकु तुई ॥७॥

हे नानक ! (जीव के) मस्तक पर जो कुछ विधाता परमात्मा की ओर से लिखा गया है, उसे कोई भी मिटा नही सकता। (चेतन) सत्ता 'वही' देता है और वापस भी 'वही' लेता है। (हे प्रभु ! जीवों को शक्ति देने वाला, हाँ उनकी खोज-खबर लेने वाला) एक तू ही है, (हाँ) एक तू ही है ॥७॥

पउड़ी ॥
सचा तेरा हुकमु गुरमुखि जाणिआ ॥
गुरमती आपु गवाइ
सचु पछाणिआ ॥

(हे प्रभु !) तेरा हुकम सच्चा है और गुरु के सम्मुख रहने वाले गुरमुख ही (हुकम को) जानते (मानते) हैं। वे गुरु की मति द्वारा (अपना) अहंकार दूर करके (तुझ) सत्य स्वरूप प्रभु को पहचानते हैं। (हे प्रभु !) तेरी दरबार सच्ची है किन्तु शब्द

सचु तेरा दरबारु सबदु नीसाणिआ ।
सचा सबदु वीचारि
सचि समाणिआ ॥
मनमुख सदा कूड़िआर
भरमि भुलाणिआ ॥
विसटा अंदरि वासु
सादु न जाणिआ ॥
विणु नावै दुखु पाइ आवण जाणिआ ॥
नानक पारखु आपि
जिनि खोटा खरा पछाणिआ ॥१३॥

(नाम) की कमाई से (गुरमुख के जीवन में) प्रकट होती है (प्राप्त होती है)। (गुरमुख) सच्चे शब्द विचार करके सत्य में समा जाते हैं. किन्तु मन के पीछे दौडनेवाले --मनमुख सदा झूठे हैं, वे भ्रम में ही भूले रहते हैं। उनका निवास (माया, विषय-विकार अथवा गर्भविष्ठा मे सदा रहता है, इसलिए वे (नाम-शब्द के) स्वाद को नही जानते। (हरि) नाम के बिना वे दु ख झेलते हैं और जन्मते-मरते (रहते) हैं। हे नानक ! परखने वाला प्रभु आप ही है, जिसने खोटे खरे को पहचाना है (अर्थात प्रभु आप ही जानता है कि खोटा अथवा खरा कौन है।) ॥१३॥

सलोकु मः १॥

सीहा बाजा चरगा कुहीआ
एना खवालै घाह ॥
घाहु खानि तिना मासु खवाले ॥
एहि चलाए राह ॥
नदीआ विचि टिबे देखाले
थली करे असगाह ॥
कीड़ा थापि देइ पातिसाही
लसकर करे सुआह ॥
जेते जीअ जीवहि लै साहा
जीवाले ता कि असाह ॥
नानक जिउ जिउ सचे भावै
तिउ तिउ देइ गिराह ॥१॥

(मेरा अनन्त प्रभु यदि चाहे तो शेरों, बाजो, शिकरा तथा कुही आदि मासाहारी जानवरो को भी घास खिला सकता है और जो घास खाते हैं (अर्थात गाय, बकरी आदि) उन्हे मास खिला सकता है, (तात्पर्य यह है कि 'वह' इस प्रकार के विरोधी) मार्गो को चला सकता है। (मेरा प्रभु यदि चाहे तो) नदियो के बीच मे टीले दिखा सकता है और रेत के टीलो पर अथाह जल भर सकता है, कीडे को बादशाही (तख्त) पर स्थापित कर सकता है और (बादशाहो की) सेना को धूलि कर सकता है। (ससार मे) जितने भी जीव जीवित हैं, श्वास लेकर जीते हैं, (किन्तु यदि 'उसने') श्वास के बिना भी किसे रखना हो तो 'उसके' लिए क्या बडी बात है ? हे नानक ! सत्य स्वरूप परमात्मा को जो जो अच्छा लगता है, जीवो को वही वही ग्रास (रोज़ी) देता है ॥१॥

मः १॥

इकि मासहारी इकि तृणु खाहि ॥
इकना छतीह अंमृत पाहि ॥
इकि मिटीआ महि मिटीआ खाहि ॥
इकि पउण सुमारी पउण सुमारि ॥

कुछ जीव मासाहारी है और कुछ जीव तृण (घास) खाने वाले हैं, कुछ जीवो को छत्तीस प्रकार के अमृतमय (स्वाद वाले) व्यंजन प्राप्त हैं और कुछ मिट्टी से (पैदा) होते हैं और मिट्टी ही खाते हैं। कुछ (साधक) पवन के गिनने वाले हैं और पवन ही

इकि निरंकारी नाम आधारि ॥
जीवै दाता मरै न कोइ ॥
नानक मुठे जाहि नाही मनि सोइ ॥२॥

गिनते रहते हैं (अर्थात कुछ प्राणायाम के अभ्यासी प्राणयाम में ही लगे रहते हैं)। (दूसरी ओर कुछ नाम के अभ्यासी) केवल एक निरकार के उपासक हैं, जिनको नाम का ही आश्रय है। उनका दाता जीवित रहे। (उनमे से) कोई भूखा नही मरता (अर्थात वे अपने दाता के आश्रित हैं। अत. उन्हें रोजी अवश्य मिलती है)। हे नानक ! वे ही जीव ठगे जाते हैं, जिनके मन मे 'वह' (अन्नदाता प्रभु) नही है ॥२॥

पउड़ी ॥

पूरे गुर की कार करमि कमाईऐ ॥
गुरमती आपु गवाइ नामु धिआईऐ ॥
दूजी कारै लगि जनमु गवाईऐ ॥
विणु नावै सभ विसु पैनै खाईऐ ॥
सचा सबदु सालाहि सचि समाईऐ ॥
विणु सतिगुरु सेवे नाही सुखि निवासु फिरि फिरि आईऐ ॥
दुनिआ खोटी रासि कूड़ु कमाईऐ ॥
नानक सचु खरा सालाहि पति सिउ जाईऐ ॥१४॥

पूर्ण सत्गुरु की सेवा प्रभु की कृपा द्वारा ही की जा सकती है। गुरु की मति लेकर आपा (अहकार) को दूर करके (हरि) नाम का ध्यान करना चाहिए अन्यथा द्वैतभाव मे लगकर (अमूल्य) जन्म व्यर्थ ही गँवा देंगे। (हरि) नाम (के ध्यान) के बिना पहनना और खाना विषवत् है, इसलिए सच्चे शब्द (नाम) की स्तुति करके सत्य स्वरूप परमात्मा में समा जाना चाहिए। सत्गुरु की सेवा कीए बिना सुख मे निवास नही हो सकता, (बल्कि) बारम्बार जन्म-मरण के चक्र में जाना पडता है। झूठ के कर्म करना ससार की खोटी पूँजी है (अर्थात झूठा मनुष्य इस ससार से कुछ साथ नही ले जायेगा)। हे नानक ! सत्य रूपी परमात्मा खरा (पूँजी) है, 'उसकी' स्तुति करने से ही (जीव-ससार से) प्रतिष्ठा के साथ जाता है ॥१७॥

सलोकु मः १॥

तुधु भावै ता वावहि गावहि
तुधु भावै जलि नावहि ॥
जा तुधु भावहि ता करहि बिभूता
सिंङी नादु वजावहि ॥
जा तुधु भावै ता पड़हि कतेबा
मुला सेख कहावहि ॥
जा तुधु भावै ता होवहि राजे
रस कस बहुत कमावहि ॥
जा तुधु भावै तेग वगावहि

(हे प्रभु !) यदि तुम्हे अच्छा लगे तो (मैं) बाजे बजाऊँ और गाऊँ, यदि तुम्हे अच्छा लगे तो (मैं तीर्थों पर जाकर) स्नान करूँ, यदि तुम्हे अच्छा लगे तो (मैं अपने शरीर पर) विभूति लगाऊँ और शृ गी का नाद बजाऊँ, यदि तुम्हे अच्छा लगे तो (मै धार्मिक) किताबे पढकर मुल्ला और शेख कहलाऊँ; यदि तुम्हे अच्छा लगे तो राजा होकर तरह-तरह के स्वादों को भोगू, यदि तुम्हे अच्छा लगे तो (मैं) तलवार चलाऊँ जिससे गर्दन से सिर कट जाय, यदि तुम्हे अच्छा लगे तो (सिद्धियो की शक्ति से) देश-देशान्तरो मे जाऊँ और (वहाँ लोगो की) बातें सुनकर (फिर अपने) घर लौट जाऊँ, यदि तुम्हे अच्छा लगे तो तुम्हारे नाम (जपने) में रुचि रखूँ। (वस्तुत. हे प्रभु !) तुम्हारा हुकम

सिर मुंडी कटि जावहि ॥
जा तुधु भावै जाहि दिसंतरि
सुणि गला घरि आवहि ॥
जा तुधु भावै नाइ रचावहि ॥
तुधु भाणे तूं भावहि ॥
नानकु एक कहै बेनंती
होरि सगले कूड़ु कमावहि ॥१॥

मानने वाले ही तुम्हें अच्छे लगते हैं। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक एक विनती करते है (कि वे जीव जो तुम्हारी आज्ञा में नही चल रहे हैं) झूठ ही कमा रहे है (अर्थात बजाना, गाना, स्नानादि करना तथा अन्य कर्म यदि प्रभु की आज्ञा से करते हैं, तो वे श्रेष्ठ है अन्यथा आज्ञा के बिना सब कुछ व्यर्थ हैं।)॥१॥

मः १॥

जा तूं वडा सभि वडिआंईआं
चंगै चंगा होई ॥
जा तूं सचा ता सभु को सचा
कूड़ा कोइ न कोई ॥
आखणु वेखणु बोलणु चलणु
जीवणु मरणा धातु ॥
हुकमु साजि हुकमै विचि रखै
नानक सचा आपि ॥२॥

(हे प्रभु !) तू बडा (महान) है, क्योक तुमसे सभी बड़ाइयाँ निकलती हैं। (हे प्रभु !) तू भला है, (क्योंकि तुमसे) भला ही) होता है। (हे प्रभु !) तू सच्चा है, क्योकि तेरा किया हुआ सब सच है (आत्मिक दृष्टि से, हाँ) कोई भी कुछ भी झूठा नही है। कहना, देखना, बोलना, चलना, जीना, मरना यह सब माया के रूप हैं(जो माया तुमसे भिन्न नही, वह तुम्हारी ही शक्ति है)। हे नानक ! सत्य (अटल) 'वह' आप है। (हे प्रभु !) तू ही स्वय अपने हुकम से (सबको) रचकर और अपने हुकम मे ही रखते हो॥२॥

पउड़ी ॥ सतिगुरु सेवि निसंगु
भरमु चुकाईऐ ॥
सतिगुरु आखै कार
सु कार कमाईऐ ॥
सतिगुरु होइ दइआलु
त नामु धिआईऐ ॥
लाहा भगति सु सारु
गुरमुखि पाईऐ ॥
मनमुखि कूड़ु गुबारु
कूड़ु कमाईऐ ॥
सचे दै दरि जाइ सचु चवांईऐ ॥

(हे भाई !) सत्गुरु की निःशंक होकर सेवा कर तो तुम्हारा भ्रम दूर हो जाय, सत्गुरु जो काम (सेवा) करने को कहे, वही काम करना चाहिए। यदि सत्गुरु दयालु होता है तो (प्रभु के) नाम का ध्यान किया जा सकता है। भक्ति रूपी सर्वश्रेष्ठ लाभ गुरू के सन्मुख रहने वाले गुरमुख ही प्राप्त करते है। (किन्तु) अपने मन के पीछे चलने वाले—मनमुख झूठ के घोर अन्धकार मे है, जिससे वे झूठ की कमाई करते है। जो सच बोलते है, वे सच्चे परमात्मा की दरबार मे जाते है। वे सत्यस्वरूप परमात्मा

सचै अंदरि महलि सचि बुलाईऐ ॥
नानक सचु सदा
सचिआरु सचि समाईऐ ॥१५॥

के सच्चे महल मे बुलाये जाते हैं। हे नानक ! जिनको (पल्ले में) सदा सत्य है, वे सत्यवादी सत्यस्वरूप परमेश्वर में समा जाते हैं ॥१५॥

सलोकु मः १॥

कलि काती राजे कासाई
धरमु पंख करि उडरिआ ॥
कूड़ु अमावस सचु चंद्रमा
दीसै नाही कह चड़िआ ॥
हउ भालि विकुंनी होई ॥
आधेरै राहु न कोई ॥
विचि हउमै करि दुखु रोई
कहु नानक किनि बिधि गति होई
॥१॥

यह भयानक समय (कलियुग) छुरी जैसा है और राजे कसाइयों की तरह अत्याचारी हैं, धर्म अपने पखो पर (न जाने कहाँ) उड गया है। झूठ अमावस्या की रात्रि के अन्धकार के समान फैला हुआ है और सत्य अमावस्या के चन्द्रमा की तरह हो गया है जो दीखता ही नही है कि कहाँ उदय हुआ है ? (देखिये भाई गुरदास, वार १ (२९)। मैं (उस चन्द्रमा को) ढूंढ-ढूंढकर व्याकुल हो गई हूँ। अन्धकार मे कोई रास्ता ही नही दिखलायी पडता। (इस अन्धकार मे) (जीव-सृष्टि) अहंकार के कारण दुखी होकर रो रही है। हे नानक ! (इस कलियुग के घोर अन्धकार से) किस प्रकार छुटकारा (मुक्ति) हो ? ॥१॥

विशेष—ऊपर वाले श्लोक के प्रश्न का उत्तर इस श्लोक मे दिया है।

मः ३॥
कलि कीरति परगटु चानणु संसारि ॥
गुरमुखि कोई उतरै पारि ॥
जिसनो नदरि करे तिसु देवै ॥
नानक गुरमुखि रतनु सो लेवै ॥२॥

कलियुग मे हरि-कीर्ति ही ससार में प्रत्यक्ष प्रकाश है। किन्तु कोई विरला ही गुरमुख (हरि-यश रूपी प्रकाश से अन्धकार के समुद्र में से) पार उतरता है। (हाँ) जिस पर वह अपनी कृपा-दृष्टि करता है, उसे ही (हरि-कीर्ति का प्रकाश) देता है। हे नानक ! वह गुरु के सन्मुख होकर (हरि-यश के अत्यन्त प्रकाशयुक्त—देदीप्यमान) रत्न को प्राप्त कर लेता है ॥२॥

पउड़ी ॥ भगता तै सैसारीआ
जोड़ु कदे न आइआ ॥
करता आपि अभुलु है
न भुलै किसै दा भुलाइआ ॥
भगत आपे मेलिअनु
जिनी सचो सचु कमाइआ ॥

भक्त और ससारी जीव का (परस्पर) मेल (जोड) कभी नही हुआ (अर्थात भक्त भगवान की भक्ति में अनुरक्त रहता है और सासारिक जीव माया मे आसक्त)। (न्याय करने मे) कर्त्ता प्रभु कभी नही भलता और न ही कभी किसी के भुलाने पर ही कभी भूलता है। 'वह' स्वय भक्तो को अपने साथ मिला लेता है, जिन्होने सत्य ही सत्य की कमाई की है।

संसारी आपि खुआइअनु
जिनी कूड़ु बोलि बोलि
बिखु खाइआ ॥
चलण सार न जाणनी
कामु करोधु विसु वधाइआ ॥
भगत करनि हरि चाकरी
जिनी अनदिनु नामु धिआइआ ॥
दासनि दास होइ कै
जिनी विचहु आपु गवाइआ ॥
ओना खसमै कै दरि मुख उजले
सचै सबदि सुहाइआ ॥१६॥

किन्तु संसारी जीवों को, जिन्होंने झूठ बोल-बोल कर मानो विष खाया है, उन्हों को अपने आप से ('वह' स्वयं) दूर रखता है। (माया में आसक्त जीवों को यह) समझ नहीं कि (समार से एक दिन) चलना है, इसलिए वे काम, क्रोधादि विषवत् (विकारो को) बढाते रहते हैं। (किन्तु) भक्त (तो) हरि प्रभु की (सदा) नौकरी करते हैं। (प्रश्न: भक्त कौन हैं ? उत्तर:) जो रात-दिन (हरि) नाम का ध्यान करते है और (हरि के) दासो का दास (चाकर) होकर जिनों ने अपने अन्दर से अहकार को दूर कर दिया है। उनके (ऐसे भक्तों के) मुख पति-परमेश्वर के दरबार में उज्जवल होते हैं क्योंकि वे सच्चे शब्द (नाम) से सुशोभित हुए हैं ॥१६॥

सलोकु मः १॥

सबाही सालाह
जिनी धिआइआ इकमनि ॥
सेई पूरे साह वखतै उपरि लड़िमुए॥
दूजै बहुते राह
मन कीआ मती खिंडीआ ॥
बहुतु पए असगाह
गोते खाहि न निकलहि ॥
तीजै मुही गिराह
भुख तिखा दुइ भउकीआ ॥
खाधा होइ सुआह
भी खाणे सिउ दोसती ॥
चउथै आई ऊंघ
अखी मीटि पवारि गइआ ॥
भी उठि रचिओनु वादु
से वरिआ की पिड़ बधी ॥

सवेरे (अर्थात प्रथम प्रहर मे) जो (प्यारे) प्रभु की स्तुति करते हैं एव एकाग्र मन से (हरिनाम का) ध्यान करते हैं, वे ही पूर्ण शाह हैं और वे ही इस समय पर (अर्थात मनुष्य देही मे काम, क्रोधादि विकारों से) युद्ध करते है।

दूसरे प्रहर मे (अर्थात दिन-भाव सूर्य चढने पर) मन के अनेक रास्ते हो जाते हैं (अर्थात मन कई ओर भागता है) और मन की मत्ति भी बिखर जाती है (अर्थात मन बँट जाता है) तथा वह सकल्प-विकल्प के अथाह सागर मे गोते खाता (मरता) है जहाँ से निकल नही पाता।

तीसरे प्रहर मे भूख और प्यास दोनो (कुत्तिया) भौंकने लगती है (प्रबल पड जाती है) और वह मुंह मे ग्रास (भोजन) डालने लगती है, किन्तु जो कुछ खाते हैं वह भस्म हो जाता है, फिर भी वह खाने से दोस्ती (इच्छा) रखता है।

चौथे प्रहर में नीद आ दबाती है वह आँख मीट कर (मानों) परलोक मे चला जाता है (अर्थात स्वपन-संसार में विचरण करने लग जाता है)। निद्रा से उठकर पुनः वही झगड़े खड़े कर लेता है, जैसे सैकडो वर्ष का जीवन-सग्राम रचा होता है (अर्थात सारी आयु ऐसे ही व्यर्थ चली जाती है)। यदि आठ ही प्रहर हरि

सभे वेला वखत सभि
जे अठी भउ होइ ॥
नानक साहिबु मनि वसै
सचा नावणु होइ ॥१॥

का भय हो (तो केवल प्रातः ही नहीं) सारी वेला, सारा समय (भजन के लिये) पवित्र है। हे नानक ! फिर 'वह' साहब (प्रभु) ऐसे जीव के मन में वास करता है तभी वह सच्चा (आत्मिक) स्नान करता है (अर्थात शुद्ध स्वरूप हो जाता है) ॥१॥

म : २॥

सेई पूरे साह जिनी पूरा पाइआ ॥
अठी वे परवाह रहनि इकतै रंगि ॥
दरसनि रूपि अथाह
विरले पाईअहि ॥
करमि पूरै पूरा गुरू
पूरा जा का बोलु ॥
नानक पूरा जे करे घटै नाही तोलु
॥२॥

(वास्तव में) वे ही पूरे शाहूकार हैं जिन्होने परिपूर्ण परमात्मा को पा लिया है। वे आठ ही प्रहर बेपरवाह रहते हैं और एक (हरि) के (प्रेम-)रंग में (मस्त) रहते हैं। (मेरे अपार प्रभु के) अथाह रूप हैं, 'उसका' दर्शन वे विरले ही पाते हैं। उनके (पूर्व के किये हुए) कर्म अच्छे हैं, उन्हो को पूर्ण गुरू (मिलता) है और उन्हो के वचन भी पूर्ण हैं। हे नानक ! (प्रभु) यदि जीव को पूर्ण कर दे तो उनका तोल कम नही होता (अर्थात वे नित्य-प्रति भक्ति की ओर अग्रसर होते जाते है) ॥२॥

पउड़ी ॥ जा तूं ता किआ होरि
मै सचु सुणाईऐ ॥
मुठी धंधै चोरि महलु न पाईऐ ॥
एनै चिति कठोरि सेव गवाईऐ ॥
जितु घटि सचु न पाइ
सु भंनि घड़ाईऐ ॥
किउ करि पूरै वटि
तोलि तुलाईऐ ॥
कोइ न आखै घटि हउमै जाईऐ ॥
लईअनि खरे परखि दरि बीनाईऐ ॥
सउदा इकतु हटि पूरै गुरि पाईऐ
॥१७॥

(हे प्रभु !) मैं सत्य कहता हूँ कि जब तू (प्राप्त होता) है, तब मुझे अन्य किसी की परवाह नही रहती। किन्तु जो (जीव-स्त्री) सासारिक धन्धो रूपी चोर से ठगी गई है, वह (पति-परमेश्वर का) महल प्राप्त नही करती। कठोर चित्त होने से उसने अपनी (सम्पूर्ण) सेवा (व्यर्थ) गँवा दी है। जिसके हृदय मे सच का वास नही है उसे तोडकर फिर बनाना चाहिए (क्योकि वह निकम्मी है)। वह भला कैसे पूर्ण बट्टे के साथ तोल में पूर्ण उतर सकती है। उसको कोई कम नही कहेगा, यदि उसके अहकार की निवृत्ति हो जाय। जब प्रभु के दरबार मे छान-बीन होगी तो खरे परख लीये जाएगे। (नाम का) सौदा तो एक ही सत्सग-रूपी हटी पर है और उसकी प्राप्ति पूर्ण गुरु (की कृपा) द्वारा ही होती है ॥१७॥

सलोकु मः २॥
अठी पहरी अठ खंड
नावा खंडु सरीरु ॥
तिसु विचि नउ निधि नामु एकु
भालहि गुणी गहीरु ॥
करमवंती सालाहिआ
नानक करि गुरु पीरु ॥
चउथै पहरि सबाह कै
सुरतिआ उपजै चाउ ॥
तिना दरीआवा सिउ दोसती
मनि मुखि सचा नाउ ॥
ओथै अंमृतु वंडीऐ
करमी होइ पसाउ ॥
कंचन काइआ कसीऐ
वंनी चड़ै चड़ाउ ॥
जे होवै नदरि सराफ की
बहुड़ि न पाई ताउ ॥
सती पहरी सतु भला
बहीऐ पढ़िआ पासि ॥
ओथै पापु पुंनु बीचारीऐ
कूड़ै घटै रासि ॥
ओथै खोटे सटीअहि
खरे कीचहि साबासि ॥
बोलणु फादलु नानका
दुखु सुखु खसमै पासि ॥१॥

(विशेष—अमृत वेले की महिमा। मनमुख जीव को अपने जीवन में क्या कुछ करना चाहिए।) आठ प्रहर में आठ वस्तुओ (यथा ५ विकार - काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और ३ गुण —सत, रज, तम) का खण्डन करते रहो तथा नौवे शरीर (के अभिमान) का भी खण्डन करो अथवा जीव आठो प्रहर बाहर खोजता है, किन्तु जो ९ वा खण्ड शरीर है, उसकी खोज नहीं करता। इसी शरीर मे नव निद्धियों के समान एक परमेश्वर का नाम है, जिसको (केवल) गुणीवान और गम्भीर पुरुष ही ढूंढते हैं। हे नानक! भाग्यवान ही गुरु पीर धारण करके 'उसकी' प्रशसा (प्राप्त) करते हैं। सवेरे के चौथे प्रहर मे सुरत लगाने वाले को (हरि नाम से) उत्साह उत्पन्न होता है। उन्हो की प्रीति सत्सग रूपी दरियाओ से हैं (अर्थात वे अमृत वेले उठकर सत्सग की ओर आते है) और वे मन तथा मुख से सच्चे नाम का उच्चारण करते हैं। वहाँ (सत्सग मे) नाम रूपी अमृत को बाँटा जाता है किंतु किसी अच्छे कर्म वाले जीव पर अमृत (नाम) की बख्शिश होती है अथवा उसकी कृपा दृष्टि से (नाम की) बख्शिश होती है। उन्हो की स्वर्ण रूपी सुन्दर काया पर साधना रूपी कसौटी से परखने के पश्चात (नाम का) रग चढता है। जब सराफ (परमात्मा) की कृपा दृष्टि उन पर होगी तो पुन उस स्वर्ण (शरीर) को अग्नि मे डालकर तपाया नही जायेगा। (आठ प्रहर मे से एक प्रहर हरि-यश मे लगाकर) शेष सात प्रहर सच्चाई में व्यतीत करना शुभ है और ज्ञानी पुरुषो के पास बैठना चाहिए। वहाँ (परमात्मा की दरबार मे) पाप और पुण्य का विचार होता है और झूठ की राशि मे कमी हो जाती है। वहाँ खोटों (नाम-विहीन जीवो) को फेंक दिया जाता है और खरो (नाम जपने वालों) को शाबासी (प्रशसा) मिलती है। हे नानक! वहाँ बोलना व्यर्थ है, दुःख-सुख परमेश्वर के पास हैं (अर्थात दुःख सुख कर्मानुसार ही प्राप्त होते हैं।) ॥१॥

मः २॥
पउणु गुरू पाणी पिता
माता धरति महतु ॥

जगत का गुरू पवन है, पानी पिता है और धरती महान माता है। यह सारा जगत (बालकवत्) खेल रहा है तथा उसको

दिनसु राति दुइ दाई दाइआ
खेलै सगल जगतु ॥
चंगिआईआ बुरिआईआ
वाचै धरमु हदूरि ॥
करमी आपो आपणी
के नेड़ै के दूरि ॥
जिनी नामु धिआइआ
गए मसकति घालि ॥
नानक ते मुख उजले
होर केती छुटी नालि ॥२॥

दिन रूपी दाया (खिलाता) है और रात रूपी दाई (सुलाती) है। इस प्रकार सारे जगत का खेल चल रहा है।

अच्छे और बुरे कर्मों का वाचन धर्मराज (न्याय का राजा) भगवान की उपस्थिति मे करता है। अपने-अपने कर्मों से कोई 'उसके' निकट है और कोई 'उससे' दूर है (परमात्मा के लिए दूरी और समीपता का कोई प्रश्न नही है। 'वह' सर्वत्र है)।

किन्तु जिन्होंने (इस खेल-घर मे) नाम का ध्यान किया है, वे सदा के लिए कठिन परिश्रम (अर्थात नाम जपकर) मनुष्य देही सफल कर गए। हे नानक ! उनके मुख वहाँ (सत्य-खण्ड में) उज्ज्वल होते हैं (अर्थात वे जन्म-मरण से छूट जाते है) और कितने ही उनके साथ (मोह-माया और आवागमन् से) मुक्त हो जाते हैं ॥२॥

पउड़ी ॥

"प्रश्न : सच्चा भोजन क्या है ? उत्तर ."

सचा भोजनु भाउ सतिगुरि दसिआ ॥
सचे ही पतीआइ सचि विगसिआ ॥
सचै कोटि गिरांइ निजघरि वसिआ ॥
सतिगुरि तुठै नाउ प्रेमि रहसिआ ॥
सचै दै दीबाणि कूड़ि न जाईऐ ॥
झूठो झूठु वखाणि
सु महलु खुआईऐ ॥
सचै सबदि नीसाणि
ठाक न पाईऐ ॥
सचु सुणि बुझि वखाणि
महलि बुलाईऐ ॥१८॥

प्रेम का सच्चा भोजन (मुझे) सत्गुरु ने बताया है। जो सत्य स्वरूप परमात्मा मे निश्चय रखते हैं, वे सत्य के कारण (कमल की भान्ति) विकसित रहते है। वे शरीर के अन्तर्गत जो सत्य का गढ़ (दसम् द्वार) है, उस निज घर (स्वरूप) मे निवास करते हैं। सत्गुरु के प्रसन्न होने से वे नाम प्राप्त करते हैं और प्रेम के कारण आनन्दित होते हैं। सच्चे परमात्मा के दरबार मे झूठ के साथ नही जाया जा सकता। जो मिथ्या कर्मों में लगे है और झूठ बोलते हैं, वे परमात्मा के महल को खो देते हैं। किन्तु जिन के पास सच्चे शब्द (नाम) का चिह्न (निशान) है, उन्हे कोई रुकावट नही पडती। जो सच्चे परमेश्वर का नाम सुन कर, समझ कर (विचार कर) उचारण करते है, व महल में (प्रभु द्वारा) बुलाए जाते हैं (अर्थात उनकी प्रभु-दरबार मे प्रतिष्ठा होती है) ॥१८॥

विशेष : करामाती शक्तियाँ और सिद्धियाँ नाम की अपेक्षा तुच्छ हैं। योगियो के प्रति मेरे गुरुदेव बाबा नानक साहब के अमूल्य विचार।

सलोकु म : १॥

पहिरा अगनि हिवै घरु बाधा
भोजनु सारु कराई ॥

यदि (मैं) अग्नि के वस्त्र पहन लूँ अथवा बर्फ में घर बना लूँ, लोहे का भोजन करूँ, सारे दु:खो को पानी की भाति (बड़े शौक

सगले दूख पाणी करि पीवा
धरती हाक चलाई ॥
धरि ताराजी अंबरु तोली
पिछै टंकु चड़ाई ॥
एवडु वधा मावा नाही
सभसै नथि चलाई ॥
एता ताणु होवै मन अंदरि
करी भि आखि कराई ॥
जेवडु साहिबु तेवडु दाती
दे दे करे रजाई ॥
नानक नदरि करै जिसु उपरि
सचि नामि वडिआई ॥१॥

से) पी जाऊँ, सारी पृथ्वी को अपनी हाँक में चला लूँ (अर्थात समस्त भूमण्डल पर मेरा आधिपत्य हो जाय), सारे आकाश को तराजू में (एक पलडे पर) रख कर और पिछले पलडे पर टंक (चार माशा) रख कर (आसानी से) तोल लूँ; (अपने शरीर को) इतना अधिक बढा लूँ कि कहीं समा न सकूँ और सबको नाथ लूँ (अपनी आज्ञा में चलाऊँ); मेरे मन मे इतनी शक्ति हो कि जो चाहूँ उसे करूँ और दूसरो से भी कहकर करा लूँ। इतना शक्ति सम्पन्न तथा अद्भुत शक्तियो का मालिक होकर भी जीव परमात्मा के सामने तुच्छ है। (वस्तुत:) जितना वडा मेरा साहब है, उतनी ही बडी 'उसकी' देन है। यदि (आज्ञाओ का मालिक) और भी (अनन्त सिद्धियो का) दान मुझे दे दे, (तो भी ये सब तुच्छ दान ही है)। हे नानक! (सच तो यह है कि) जिस जीव पर (मेरा स्वामी) कृपा-दृष्टि करता है उसी को सच्चे नाम के द्वारा बड़ाई प्रदान करता है (अर्थात नाम सभी चमत्कारो व सिद्धियो से सर्वोत्तम है) ॥१॥

मः २॥ आखणु आखि न रजिआ
सुनणि न रजे कंन ॥
अखी देखि न रजीआ
गुण गाहक इक वंन ॥
भुखिआ भुख न उतरै
गली भुख न जाइ ॥
नानक भुखा ता रजै
जा गुण कहि गुणी समाइ ॥२॥

कहने (मात्र) से मुख तृप्त नही होता, सुनने (मात्र) से कान तृप्त नही होते और न ही आँखें देखने (मात्र) से तृप्त हुई हैं क्योकि ये इन्द्रियाएँ एक एक प्रकार के गुण (रस) के ग्राहक हैं। (यथा कर्ण—शब्द, त्वचा—स्पर्श, नेत्र—रूप, जिह्वा—रस और नासिका—गन्ध ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय और उनके क्रमश. विषय हैं। इन्द्रियाँ सदा अतृप्त रहती हैं)इनकी भूख कभी नही जाती, केवल ऊपर-ऊपर से समझाने पर अन्दर (आत्मा की) भूख की निवृत्ति नही होती। हे नानक! भूखे की तृप्ति तभी हो सकती है यदि प्रभु के गुणों का कथन करता हुआ गुणनिधि परमेश्वर मे समा जाय ॥२॥

पउड़ी ॥ विणु सचे सभु कूड़ु
कूड़ु कमाईऐ ॥
विणु सचे कूड़िआर बंनि चलाईऐ ॥
विणु सचे तनु छारु छारु रलाईऐ ॥
विणु सचे सभ भुख जि पैझै खाईऐ ॥
विणु सचे दरबारु कूड़ि न पाईऐ ॥
कूड़ै लालचि लगि महलु खुआईऐ ॥

सच्चे परमात्मा के बिना सब झूठे है और झूठ (मिथ्या) ही कमाते हैं। सत्य के बिना झूठे (जीव) (यमपुरी मे यमदूतो द्वारा) बाँधकर ले जाते है। सत्य के बिना यह शरीर भस्म के समान है और (मर कर) भस्म में ही मिल जाता है। सत्य के बिना सभी भूख में ही है जो खाते-पहनते भी भूखे ही रहते हैं (अर्थात उन्हो की तृष्णा बढती ही रहती है)। सत्य नाम के बिना झूठे (कर्म करने वाले) (प्रभु की) दरबार मे नही जा सकते। झूठे (कर्म करने वाले) (माया की) लालच में लग कर प्रभु के महल को

सभु जगु ठगिओ ठगि
आईऐ जाईऐ ॥
तन महि तृसना अगि
सबदि बुझाईऐ ॥१९॥

खो बैठते हैं। सारे जगत को माया ठगनी ने ठगा है, इसलिए जीव (जन्म-मरण के चक्र मे बार-बार) आते-जाते हैं। शरीर मे जो तृष्णा रूपी अग्नि है, वह गुरु के शब्द द्वारा ही बुझ सकती है ॥१९॥

सलोक म : १॥

नानक गुरु संतोखु रुखु
धरमु फुलु फल गिआनु ॥
रसि रसिआ हरिआ सदा
पकै करमि धिआनि ॥
पति के साद खादा लहै
दाना कै सिरि दानु ॥१॥

हे नानक ! गुरू सन्तोष का वृक्ष है जिसमें धर्म रूपी फूल और ज्ञान रूपी फल लगते हैं। वह वृक्ष ज्ञान रूपी फल (प्रेम) रस से परिपूर्ण और हरा-भरा रहता है और शुभ कर्मों तथा ध्यान से ही भक्ति रूपी फल पकता है अथवा वह प्रम-जल के सीचने से सदैव हरा-भरा रहता है। पति-परमात्मा (के मिलन) का रस (उस भक्ति रूपी फल) खाने से ही (जीव) प्राप्त करता है। गुरु, जो ज्ञान देता है वह दानो मे सर्वोपरि दान है ॥१॥

म : १॥

सुइने का बिरखु पत परवाला
फुल जवेहर लाल ॥
तितु फल रतन लगहि मुखि भाखित
हिरदै रिदै निहालु ॥
नानक करमु होवै मुखि मसतकि
लिखिआ होवै लेखु ॥
अठिसठि तीरथ गुर की चरणी
पूजै सदा विसेखु ॥
हंसु हेतु लोभु कोपु
चारे नदीआ अगि ॥
पवहि दझहि नानका
तरीऐ करमी लगि ॥२॥

(मेरा सत्गुरु) सोने का वृक्ष है जिस पर (प्रेम रूपी) मूँगा के पत्ते है और (उपदेश रूपी) लाल, जवाहर उसके फूल हैं। (नाम रूपी) रत्न उस वृक्ष का फल है। वह गुरू मुख से जो वाणी उच्चरित करता है और जिसके हृदय मे वह बसती है, उसके हृदय को आनन्दित कर देती है। हे नानक ! जिस पर (प्रभु की) कृपा है अथवा जिसके (अब भी) श्रेष्ठ कर्म है और जिसके मुख (मस्तक) पर पूर्व से ही शुभ कर्मों का लेख लिखा हुआ है, वे गुरु के चरणो को अड़सठ तीर्थों से विशेष जान कर सदैव पूजा करते हैं। हिंसा, मोह, लोभ और क्रोध—यह चार अग्नि की नदियाँ (ससार मे प्रवाहित हो रही) हैं। हे नानक ! जो जो (जीव) उन नदियो में पड़ते है, वे दग्ध हो जाते हैं, (हाँ) केवल प्रभु को कृपा-दृष्टि से ही (गुरु के चरणो मे) लग कर (इन नदियो को) पार किया जा सकता है ॥२॥

पउड़ी ॥

जीवदिआ मरु मारि न पछोताईऐ ॥
झूठा इहु संसारु किनि समझाईऐ ॥

जीवित ही मरकर अपने आप को मारो (अर्थात अहंकार का नास करदो) तो (अन्त में) पछताना नही पड़ेगा। यह संसार झूठा

सचि न धरे पिआरु धंधै धाईऐ ॥
कालु बुरा खै कालु
सिरि दुनीआईऐ ॥
हुकमी सिरि जंदारु मारे दाईऐ ॥
आपे देइ पिआरु मंनि वसाईऐ ॥
मुहतु न चसा विलंमु भरीऐ पाईऐ ॥
गुरपरसादी बुझि सचि समाईऐ ॥२०॥

है, (यह) किसको समझाएँ ? क्योंकि सत्य के साथ कोई भी प्यार नही रखते, (सब कोई ससार के झूठे) धधो के पीछे दौड़ते हैं। (जन्म-मरण का) समय ससार के सिर पर बहुत बडा है। प्रभु के हुकम से यमराज (प्रत्येक के) सिर के ऊपर (बैठा) है जो दाँव लगाकर मारता है। किन्तु प्रभु आप ही जिसको अपना प्यार देता है वह 'उसे' मन में बसाता है। जब स्वासो का प्याला भर जाता है तो आयु समाप्त हो जाती है ऐसा होने में पलक मात्र, (हाँ) निमिष मात्र को देरी नही लगती। केवल गुरु की कृपा से (इस रहस्य को) समझ कर जीव सत्य में समाहित हो जाता है॥२०॥

सलोकु मः १॥

तुमी तुमा विसु अकु
धतूरा निमु फलु ॥
मनि मुखि वसहि तिसु
जिसु तूं चिति न आवही ॥
नानक कहीऐ किसु
हंढनि करमा बाहरे ॥१॥

(हे प्रभु !) जिसके चित्त मे तू नही वसता, उसके मन और मुख मे तुम्मी, तुम्मा, विष, अक, धतूरा तथा नीम रूपी विषमय फल बस रहे है (अर्थात उसके मन और मुख दोनो विष तुलय कडवे है)। (वे स्वयं तो दुःखी हैं किन्त जो उनकी सगति करते हैं, वे भी दु खी होते हैं)। हे नानक ! यह बात किससे कहें ? (हे प्रभु !) वे (मनमुख शुभ) कर्मों से विहीन हैं, जिससे वे (चौरासी के चक्र में) भटकते फिरते हैं ॥१॥

मः १॥ मति पंखेरू किरतु साथि
कब उतम कब नीच ॥
कब चंदनि कब अकि डालि
कब उची परीति ॥
नानक हुकमि चलाईऐ
साहिब लगी रीति ॥२॥

मत्ति (बुद्धि) पक्षी की तरह उडने वाली है (जो स्थिर नहीं रहती), उसके पूर्व जन्मो के किए हुए कर्मों से बना स्वभाव उसके साथी (भाव पँख) है। (स्वभाव के फलस्वरूप मत्ति) कभी उत्तम होती है और कभी नीच, कभी यह (मत्ति रूपी पक्षी) चन्दन (के वृक्ष) पर (बैठता) है और कभी अक की डाल पर तथा कभी (इसके अन्तर्गत परमात्मा के प्रत्ति) ऊँची प्रीति (उत्पन्न होती) है। हे नानक ! (आदि जुगादि से यह) रीति चली आ रही है कि (प्रभु सभी जीवों को अपनी) आज्ञा से चला रहा है ॥२॥

पउड़ी ॥
केते कहहि वखाण
कहि कहि जावणा ॥
वेद कहहि वखिआण
अंतु न पावणा ॥

कितने ही (जीव) (परमात्मा के गुणों का) वर्णन करते हैं और कितने ही करते-करते (जगत से) चले जाते हैं। कितने ही वेदो का वर्णन करते हैं, किन्तु अन्त नही पाते हैं। पढ़ने से 'उसका' रहस्य मालूम नही होता, (हाँ) समझने से ही 'उसकी'

पड़िए नाही भेदु बुझिऐ पावणा ॥
खटु दरसन कै भेखि
किसै सचि समावणा ॥
सचा पुरखु अलखु सबदि सुहावणा ॥
मंने नाउ बिसंख दरगह पावणा ॥
खालक कउ आदेसु ढाढी गावणा ॥
नानक जुगु जुगु एकु मंनि वसावणा
॥२१॥

प्राप्ति होती है। (योगियों, संन्यासियों आदि) छ: भेष में किसी (एकाध) ने ही सत्य में लीन होना होता है। 'वह' सत्य पुरुष और अलक्ष्य (गुरु के) शब्द द्वारा सुहावना (प्यारा) लगता है। जो (जीव) अनन्त प्रभु के नाम को मानता है, 'उसकी' दरबार में (सम्मान) प्राप्त करता है। सृष्टि-रचयिता (खालिक) को प्रणाम करके, मैं ढाढी (यश गाने वाला) 'उसका' यश गाता हूँ। हे नानक ! जो युग-युगान्तरो से एक है, 'उसको' मन में बसाना चाहिए ॥२१॥

सलोकु महला २॥
मंत्री होइ अठूहिआ
नागी लगै जाइ ॥
आपण हथी आपणै
दे कूचा आपे लाइ ॥
हुकमु पइआ धुरि खसम का
अती हू धका खाइ ॥
गुरमुख सिउ मनमुखु अड़ै
डुबै हकि निआइ ॥
दुहा सिरिआ आपे खसमु
वेखै करि विउपाइ ॥
नानक एवै जाणीऐ
सभ किछु तिसहि रजाइ ॥१॥

(यदि कोई जीव) बिच्छू को पकडने का तंत्र मंत्र जानता है, किन्तु हाथ सर्पों में जाकर डालता है तो वह अपने ही हाथो से अपने आप को आग का कूचा लगा देता है (अर्थात् कष्ट मे डालता है)। सृष्टि के आदि से पति-परमेश्वर का हुकम है कि जो अति (ज्यादती) करता है वह धक्का खाता है। (अत.) गुरमुख से यदि मनमुख (विवाद या) विरोध करता है तो वह (अवश्य) डूबेगा। ऐसा (मेरे प्रभु का) सच्चा न्याय है। (क्योकि) दोनो सिरो (अर्थात् गुरमुख और मनमुख) का स्वामी 'वह' आप है, जो देख रहा है और देख कर न्याय करता है। हे नानक ! ऐसा समझना चाहिए कि सभी कुछ 'उसकी' इच्छानुसार ही होता है ॥१॥

महला २॥ नानक परखे आप कउ
ता पारखु जाणु ॥
रोगु दारू दोवै बुझै
ता वैदु सुजाणु ॥
वाट न करई मामला
जाणै मिहमाणु ॥

(दूसरों को परखने की बजाय) हे नानक ! जो (जीव) अपने स्वरूप को परख सकता है, उसे पारखी समझो। जो रोग और उसकी औषधि दोनो को जानता है, उसे चतुर वैद्य समझो। जो अपने आपको पथिक समझता है, वह मार्ग मे कोई झगड़ा नहीं करता (अर्थात वह माया मे आसक्त नही होता)। वह अपना मूल जानकर उसी अनुसार व्यवहार करता है और हानि-कारक विकारों को पटक कर दूर कर देता है। वह सत्य पथ

मूलू जाणि गला करे
हाणि लाए हाणु ॥
लबि न चलई सचि रहै
सो विसटु परवाणु ॥
सरु संधे आगास कउ
किउ पहुचै बाणु ॥
अगै ओहु अगंमु है
वाहेवड़ु जाणु ॥२॥

चलता है (और डावाडोल नही होता) और कभी भी लालच नही करता, इसलिए वह प्रमाणिक मध्यस्थ अथवा वकील है (अर्थात् वकील वही मजूर होता है जो किसी लालच मे नही पडता। भाव दोनो के लिए निष्पक्षता से बर्ताव करता है)। यदि कोई तीर खीचे आकाश की ओर तो वह लक्ष्य पर कैसे पहुचेगा क्योंकि आगे वह आकाश तो अगम्य है तीर चलाने वाले को ही लगेगा, ऐसा तू निश्चय जान (अर्थात सत्गुरु से ईर्ष्या करने वाला जीव, वह खुद ही अपमानित होता है।) ॥२॥

पउड़ी ॥
नारी पुरख पिआरु
प्रेमि सीगारीआ ॥
करनि भगति दिनु राति
न रहनी वारीआ ॥
महला मंझि निवासु
सबदि सवारीआ ॥
सचु कहनि अरदासि से वेचारीआ ॥
सोहनी खसमै पासि
हुकमि सिधारीआ ॥
सखी कहनि अरदासि
मनहु पिआरीआ ॥
बिनु नावै ध्रिगु वासु
फिटु सु जीविआ ॥
सबदि सवारीआसु अंम्रितु पीविआ
॥२२॥

जिन जीव-स्त्रियो का पति-परमेश्वर से प्यार है, वे इस प्यार (रूपी आभूषणो) से श्रृंगार करती है। वे दिन-रात (पति की) भक्ति करती है और रोकने पर भी नही रुकती (जैसे भक्ति में अनुरक्त मीरा बाई का प्यार अपने गिरधर गोपाल के साथ था, जो परिवार के सदस्यो आदि के रोकने पर भी नही रुकी)। वे (गुरु के) शब्द द्वारा सँवारी गई हैं, इसलिए उनका पति-परमेश्वर के स्वरूप में निवास हुआ है। वे नम्रता रखने वाली बेचारिया सच्चे परमात्मा के आगे प्रार्थना करती हैं। वे हुकमानुसार ही चलती है जिससे वे पति-परमेश्वर के पास सुशोभित हो रही हैं। वे चाहे पति के मन को भाती है तो भी दासियो जैसे (विनम्र होकर) प्रार्थना करती है। नाम के बिना ससार मे बसना (जीना) धिक्कार है और ऐसे जीवन को भी धिक्कार है। किन्तु जिनको (गुरु ने) शब्द द्वारा सँवारा है, वे नाम रूपी अमृत पीती है ॥२२॥

सलोकु म० १॥
मारू मीहि न त्रिपतिआ
अगी लहै न भुख ॥

मरुस्थल वर्षा से (कभी) तृप्त नही होता और न ही अग्नि की तृप्ति लकड़ियाँ जलने से होती हैं यथा "जिउ पावकु ईधनि नही ध्रापै"—(सुखमनी), राजा कभी राज्य करने से तृप्त

राजा राजि न तृपतिआ
साइर भरे कि सुक ॥
नानक सचे नाम की
केती पुछा पुछ ॥१॥

नहीं होता और समुद्र भी कभी जल से भरे नही हैं (चाहे नदियां दिन-रात उसमें गिर रही हैं तो भी समुद्र बस नहीं करता क्योंकि) तृप्त नही (हाँ भूखा) है। (इसी प्रकार भक्त-प्रेमियों को सच्चे नाम की भूख है)। हे नानक ! सच्चे नाम की कितनी पूछ-ताछ करूँ ? (अर्थात उन्हें नाम की कितनी भूख है कैसे पूछूँ ? (हाँ) उन्हे नाम की अथाह भूख है ॥१॥

महला २॥
निहफलं तसि जनमसि जावतु
ब्रहम न बिंदते ॥
सागरं संसारसि
गुर परसादी तरहि के ॥
करण कारण समरथु है
कहु नानक बीचारि ॥
कारणु करते वसि है
जिनि कल रखी धारि ॥२॥

जो (जीव) ब्रह्म को नही जानता, उसका जन्म निष्फल (व्यर्थ) है। इस ससार-सागर से कोई विरला ही जीव (गुरु की कृपा से) पार होता है। हे नानक ! जो प्रभु सृष्टि का रचयिता है और करने मे समर्थ है, 'उसका' विचार (ध्यान) करो। सारा ससार (कारण) 'उसी' कर्त्ता के वश मे है जिसने सारी सृष्टि को अपनी शक्ति से धारण करके रखा है ॥२॥

पउड़ी ॥
खसमै कै दरबारि ढाढी वसिआ ॥
सचा खसमु कलाणि
कमलु विगसिआ ॥
खसमहु पूरा पाइ मनहु रहसिआ ॥
दुसमन कढे मारि सजण सरसिआ ॥
सचा सतिगुरु सेवनि
सचा मारगु दसिआ ॥
सचा सबदु बीचारि
कालु विधउसिआ ॥
ढाढी कथे अकथु सबदि सवारिआ॥
नानक गुण गहि रासि
हरि जीउ मिले पिआरिआ ॥२३॥

जो यशोगान करने वाला (ढाढी) है, वह परमात्मा की दरबार मे बसता है। वह सच्चे परमात्मा का यशोगान करता है, जिससे उसका (हृदय रूपी) कमल खिल उठता है और वह हरि पति परमेश्वर से पूर्ण देन प्राप्त करके मन से आनन्दित होता है। वह (कामादिक विकारों रूपी) दुश्मनों को मारकर बाहर निकाल देता है और उसके सज्जन (अर्थात दैवी गुण सत्य, सन्तोष, दया, धर्म, आदि) प्रसन्न होते हैं। (भाव विकसित होते हैं)। वह सच्चे सत्गुरु की सेवा करता है, इसलिये उसे सत्य मार्ग बताया जाता है। वह सच्चे शब्द का विचार करके काल का वध करता है। 'उस' प्रभु का यशोगान करने वाले ढाढी ने शब्द (नाम) के द्वारा अकथनीय प्रभु का वर्णन करके अपने जीवन को सँवारा है। हे नानक ! गुणों की पूंजी ग्रहण करने से उसको (ढाढी को) प्यारे हरि जी मिलता है ॥२३॥

सलोकु म० १॥
खतिअहु जंमे खते करनि
त खतिआ विचि पाहि ॥
धोते मूलि न उतरहि
जे सउ धोवण पाहि ॥
नानक बखसे बखसीअहि
नाहि त पाही पाहि ॥१॥

(पापी-जीव) पाप कर्म (गुनाही) करके जन्मते हैं और (इस संसार में भी) पाप कर्म ही करते (आगे भी) नित्य पापों मे ही पडते हैं। ये (पाप) धोने से बिल्कुल नही उतरते, चाहे इन्हें सौ बार भी धोया जाय (अर्थात यदि तीर्थों पर जाकर स्नान करें, वृत्तादि रखें, शरीर को कष्टादि देवें, तो भी पापो की मैल नहीं उतरती)। हे नानक! यदि प्रभु कृपा करे तो ये (पाप) बख्शे जाते हैं, नही तो (नाम के बिना जीव को) जूते पड़ते हैं ॥१॥

म० १॥ नानक बोलणु झखणा
दुख छडि मंगीअहि सुख ॥
सुखु दुखु दुइ दरि कपड़े
पहिरहि जाइ मनुख ॥
जिथै बोलणि हारीऐ
तिथै चंगी चुप ॥२॥

हे नानक ! जो दु ख छोडकर सुख को माँगता है, यह बोलना केवल झक मारना है। सुख और दु ख दोनों ही (प्रभु के) दरवाजे से मिले हुए वस्त्र हैं। जहाँ बोलने से हार ही खानी पड़े, वहाँ चुप ही रहना भला है (अर्थात जब दु ख व सुख हमारे कर्मों का ही फल है तो फिर हमें मौन धारण करके प्रभु के हुकम को सहर्ष स्वीकार करना ही श्रेयस्कर है। हाँ प्रभु इच्छा में ही कल्याण है) ॥२॥

पउड़ी ॥
चारे कुंडा देखि अंदरु भालिआ ॥
सचै पुरखि अलखि
सिरजि निहालिआ ॥
उझड़ि भुले राह गुरि वेखालिआ ॥
सतिगुर सचे वाहु सचु समालिआ ॥
पाइआ रतनु घराहु दीवा बालिआ ॥
सचै सबदि सलाहि
सुखीए सच वालिआ ॥
निडरिआ डरु लगि
गरबि सि गालिआ ॥
नावहु भुला जगु फिरै बेतालिआ
॥२४॥

(प्रभु को) चारो ही कोनों में देखकर (जब नही पाया तो) 'उसे' (मैंने) अपने ही अन्दर ढूँढ लिया। सत्य स्वरूप परमेश्वर जो अलक्ष्य है और सृजनहार है, 'उसे' मैंने अन्दर मे देखा। मार्ग से भूलकर मैं उझड में पडा था, किन्तु गुरु ने मुझे मार्ग दिख-लाया। धन्य है सच्चा सतगुरु जिसकी कृपा से मैंने सच्चे प्रभु को संभाल लिया अथवा सच्चे का स्मरण किया। क्योकि जब सत्गुरु ने हृदय में (ज्ञान रूपी) दीपक जला दिया, तब मैंने (हरि-रूप अमूल्य) रत्न घर में ही प्राप्त किया अथवा सच्चे शब्द के द्वारा सच्चे परमात्मा की प्रशंसा करने से सच्चे भक्त सुखी रहते हैं। जिनको प्रभु का भय नही, उनको यम का भय लगता है और वे अहकार में पडकर गलते हैं। जो (जीव) परमात्मा के नाम से भूले हुए हैं, वे जगत मे भूत-प्रेत के समान फिरते हैं ॥२४॥

सलोकु म० ३॥
भै विचि जंमै भै मरै
भी भउ मन महि होइ ॥
नानक भै विचि जे मरै
सहिला आइआ सोइ ॥१॥

(जीव) भय में जन्म लेता है और भय में ही मरता है, (मरने के पश्चात्) भी उसके मन में (जन्म-मरण का) भय है। हे नानक ! जो जीव परमात्मा के भय में मरता है, उसका (ससार में) आना (जन्म लेना) सफल है (अर्थात उसे संसार में लाभ सहित आया जानिए) ॥१॥

म० ३॥ भै विणु जीवै बहुतु बहुतु
खुसीआ खुसी कमाइ ॥
नानक भै विणु जे मरै
मुहि कालै उठि जाइ ॥२॥

(जो जीव परमात्मा के) भय के बिना चाहे अधिक समय जीवित रहे और खुशियो के पीछे खुशियाँ ही मनाये, किन्तु यदि वह परमात्मा के भय के बिना मरता है तो वह (वास्तव में) अपना मुँह काला करके (संसार से) जाता है (अर्थात परलोक में दु:ख ही सहारन करता है और उसे कोई भी नही पूछता) ॥२॥

पउड़ी ॥
सतिगुरु होइ दइआलु
त सरधा पूरीऐ ॥
सतिगुरु होइ दइआलु
न कबहूं झूरीऐ ॥
सतिगुरु होइ दइआलु
ता दुखु न जाणीऐ ॥
सतिगुरु होइ दइआलु
ता हरि रंगु माणीऐ ॥
सतिगुरु होइ दइआलु
ता जम का डरु केहा ॥
सतिगुरु होइ दइआलु
ता सद ही सुखु देहा ॥
सतिगुरु होइ दइआलु
ता नव निधि पाईऐ ॥
सतिगुरु होइ दइआलु
त सचि समाईऐ ॥२५॥

यदि सत्गुरु दयालु हो जाय तो श्रद्धा पूर्ण होती है। यदि सत्गुरु दयालु हो जाय तो कभी कलेश नही होता।

यदि सत्गुरु दयालु हो जाय तो कभी दु:ख को नही जानता। यदि सत्गुरु दयालु हो जाय तो हरि का प्यार भोगते है।

यदि सत्गुरु दयालु हो जाय तो यम का भय कैसा ? यदि सत्गुरु दयालु हो जाय तो देह सदा सुखी रहती है।

यदि सत्गुरु दयालु हो जाय तो नौ निद्धियाँ प्राप्त होती है। यदि सत्गुरु दयालु हो जाय तो (जीव) सत्य स्वरूप परमेश्वर में समा जाता है ॥२५॥

सलोकु म० १॥

सिरु खोहाइ पीअहि मलवाणी
जूठा मंगि मंगि खाही ॥
फोलि फदीहति मुहि लैनि भड़ासा
पाणी देखि सगाही ॥
भेडा वागी सिरु खोहाइनि
भरीअनि हथ सुआही ॥
माऊ पीऊ किरतु गवाइनि
टबर रोवनि धाही ॥
ओना पिंडु न पतलि किरिआ
न दीवा
मुए किथाऊ पाही ॥
अठसठि तीरथ देनि न ढोई
ब्रहमण अंनु न खाही ॥
सदा कुचील रहहि दिन राती
मथै टिके नाही ॥
झुंडी पाइ बहनि निति मरणै
दड़ि दीबाणि न जाही ॥
लकी कासे हथी फुंमण
अगो पिछी जाही ॥
न ओइ जोगी ना ओइ जंगम
ना ओइ काजी मुंला ॥
दयि विगोए फिरहि विगुते
फिटा वतै गला ॥
जीआ मारि जीवाले सोई
अवरु न कोई रखै ॥

विशेष . यह सम्पूर्ण श्लोक जैनियो के प्रति उचारण किया है।

(जैनी) सिर के बाल नुचवाते (उखडवाते) हैं, गंदा पानी पीते हैं और झूठी (रोटी) माँग-माँग कर खाते हैं। वे अपना मल (विष्टा) (लकडी से) फैला देते हैं (कि कही कोई कीडा न मर जाय) फिर उसकी (गदी) हवा मुँह से अन्दर लेते हैं किन्तु पानी देखकर सहमते हैं (भाव पानी का प्रयोग नही करते)। भेडो की तरह बाल नुचवाते हैं और उनके (बाल नोचने वालो के) हाथों में राख लगा दी जाती है। वे माँ-बाप (पैतृक) के कर्म भुला बैठते हैं (अर्थात उनके प्रति अपने कर्म सेवा आदि को पूरा नही करते) जिससे उनका परिवार दु खी होकर रोता है। न तो वे पिंड-दान करते हैं और न तो (श्राद्ध) के पत्तल की क्रिया करते हैं, न दीपक देते हैं, मरने पर पता नही कहाँ पडे रहेगे ? अडसठ तीर्थ भी उन्हे पनाह नही देते और ब्राह्मण (भी) उनका अन्न नही खाते। वे सदैव दिन-रात गदे रहते है और मन्थे पर तिलक भी नही लगाते। वे नित्य झुण्ड में बैठते हैं जैसे (किसी गमी) मरने वाले घर मे गए हो। वे किसी सभा दरबार में भी नही जाते। उनकी कमर मे प्याले बँधे है, हाथ मे सून का बना हुआ एक प्रकार का झाडू लिए रहते, हैं (ताकि कोई कीडा-मकोडा मिल जाय तो उससे उन्हे बुहार दे, जिससे वे मरने न पाएँ) और आगे-पीछे एक पंक्ति में चलते हैं। न तो वे योगी हैं, न जगम हैं, न काजी अथवा मुल्ला ही हैं (अर्थात उनके आचार-व्यवहार न तो हिन्दुओ से मिलते हैं और न तो मुसलमानो से)। परमात्मा के मारे हुए वे धिक्कारने योग्य अवस्था मे घूमते हैं, उनका सारा समूह झुण्ड (गला) ही बिगडा हुआ है।

जीवो को मारने जिलाने वाला 'वह' (एक ही परमात्मा) है, (प्रभु के बिना) और कोई नही रक्षा करता। (जीव-हिसा के भय से) जैनी लोग (किरत-कर्म त्याग कर) दान और स्नान से भी विहीन हो गए है, (उनके) लुचित सिर मे राख पडी है। (हाँ) यह बात उनकी समझ मे भी नही आती कि जब देवताओ ने मदरा-चल पर्वत को मधानी बनाया (समुद्र-मथन किया) तो उसमे से (चौदह) रत्न उत्पन्न हुए। जल के ही सहारे देवताओ के अड़-सठ तीर्थ स्थापित किए गए, जहाँ पर्व लगते हैं और कथा (कीर्तन) होती है। स्नान करके (मुसलमान) नमाज पढ़ते हैं और (हिन्दू)

वानहु तै इसनानहु वंजे
भसु पई सिरि खुथै ॥
पाणी विचहु रतन उपंने
मेरु कीआ माधाणी ॥
अठसठि तीरथ देवी थापे
पुरबी लगै बाणी ॥
नाइ निवाजा नातै पूजा
नावनि सदा सुजाणी ॥
मुइआ जीवदिआ गति होवै
जा सिरी पाईऐ पाणी ॥
नानक सिर खुथे सैतानी
एना गल न भाणी ॥
वुठै होइऐ होइ बिलावलु
जीआ जुगति समाणी ॥
वुठै अंनु कमादु कपाहा
सभसै पड़दा होवै ॥
वुठै घाहु चरहि निति सुरही
साधन दही विलोवै ॥
तितु घिइ होम जग सद पूजा
पइऐ कारजु सोहै ॥
गुरू समुंदु नदी सभि सिखी
नातै जितु वडिआई ॥
नानक जे सिर खुथे नावनि नाही
ता सत चटे सिरि छाई ॥१॥

पूजा करते हैं, अतएव स्याने लोग सदा स्नान करते हैं। (यह विचार है कि) जन्म-मरण के समय सिर के ऊपर पानी डालने से (अर्थात शरीर को स्नान कराने से) गति होती है, (किन्तु) हे नानक! ये लोग जिन्होने सिर के बालों को उखाड फेंका है, वे शैतान हैं (शैतान के बिगाड़े हुए हें), उन्हें (जल एवं स्नानादि की महत्ता की) बातें अच्छी नहीं लगती।

(जल की और महता देखिए।) जल-वर्षा होने से आनन्द होता है (बिलावल राग आनन्द का प्रतीक है)। जीवों के जीवन की युक्ति जल में समायी हुई है। जल-वर्षा होने से अन्न (पैदा) होता है, ईख (उगती है) और कपास होती है जो सभी मनुष्यों का पर्दा बनती है। पानी बरसने से (उगी हुई) घास गायें नित्य चरती है (और दूध देती हैं) और उस दूध से बने (हुए) दही को स्त्रियाँ बिलोती है—मथती हैं (और घी बनाती हैं)। उसी घी से सदैव होम और पूजा होती है, उस (घी) के पडने से सारे कार्य शोभनीय होते है।

(एक और भी स्नान है।) गुरु समुद्र है (उसकी) सारी शिक्षा नदी है अथवा उसके सारे शिष्य नदियाँ हैं जिसमें स्नान करने से बडाई मिलती हं।

हे नानक! जो ये लुचित सिर वाले (इस नाम जल मे) स्नान नही करते उनके सिर मे सात मुटिठयाँ राख डाली जाय (भाव जैनी लोग भ्रम मे पडे हुए मलिन हो रहे हें, किन्तु यदि ये गुरु व गुरु की शिक्षा अथवा गुरु के प्यारे शिष्यो की संगति करते तो शुद्ध होकर भ्रम कर्म छोड देते।) ॥१॥

म० २॥ अगी पाला कि करे
सूरज केही राति ॥
चंद अनेरा कि करे
पउण पाणी किआ जाति ॥

अग्नि को शीत क्या कर सकेगा और सूर्य को रात क्या कर सकेगी? चन्द्रमा को अन्धकार क्या कर सकेगा? तथा पवन और पानी की क्या जाति है? अर्थात् जाति का भेद पवन, पानी (आदि प्राकृतिक पवित्र वस्तुओं का) क्या बिगाड़ सकता है? वस्तुएँ,

धरती चोजी कि करे
जिसु विचि सभु किछु होइ ।।
नानक ता पति जाणीऐ
जा पति रखै सोइ ।।२।।

(भोजनादि जो यज्ञ हवन समय पृथ्वी को अर्पण किये जाते हैं) जिस धरती से ये सब वस्तुएँ (उत्पन्न) होती हैं, वही वस्तुएँ 'उसे' अर्पण करने से क्या महत्ता है ? हे नानक ! (श्रेष्ठ) प्रतिष्ठा वही है जो प्रभु की ओर से मिले। (अपने आप बनाई इज्जत का क्या लाभ है ?) ।।२।।

पउड़ी ।।
तुधु सचे सुबहानु सदा कलाणिआ ।।
तूं सचा दीबाणु
होरि आवण जाणिआ ।।
सचु जि मगहि दानु
सि तुधै जेहिआ ।।
सचु तेरा फुरमानु सबदे सोहिआ ।।
मंनिऐ गिआनु धिआनु
तुधै ते पाइआ ।।
करमि पवै नीसानु
न चलै चलाइआ ।।
तूं सचा दातारु
नित देवहि चड़हि सवाइआ ।।
नानकु मंगै दानु जो तुधु भाइआ
।।२६।।

हे प्रभु ! तू आश्चर्य रूप है,(हाँ)(जीवो ने)सदैव तुम्हारी सराहना की है। तू ही सच्चा शासक है, शेष (ससार के शासक) आने-जाने वाले (विनश्वर) हैं। जो सत्य नाम का दान माँगते है, वे तेरे ही जैसे (आश्चर्य रूप) है। 'तेरा' हुकम सच्चा है, इसी हुकम को मानने से शब्द द्वारा (जीव) शोभायमान होता है। (तुम्हारा) हुकम मानने से ज्ञान और ध्यान तुम्हारे से प्राप्त होते है। जिस (जीव) पर तेरी कृपा का निशान पडता है वह कभी नाश नही होता। तू सच्चा दाता है, तू नित्य देता है और (तेरा दिया हुआ दान) दिन-प्रतिदिन बढता ही जाता है। (बाबा) नानक यह दान माँगता है कि (हे प्रभु !) जो तुझे अच्छा लगे, वह दो (अर्थात मुझे तुम्हारा हुकम मीठा लगे तथा दुख-सुख मे विचलित न होकर मै तेरी ही स्तुति करता रहूँ।) ।।२६।।

सलोकु म० २।।
दीखिआ आखि बुझाइआ
सिफती सचि समेउ ।।
तिन कउ किआ उपदेसीऐ
जिन गुरु नानक देउ ।।१।।

जिनका गुरू नानक देव है और जिन्हे (मेरे गुरुदेव ने) दीक्षा (उपदेश) देकर समझाया है, वे सत्य स्वरूप परमेश्वर मे समाये हुए हैं। उनको और क्या उपदेश दें ? (अर्थात प्रभु मे तल्लीन होने की शिक्षा ही सर्वोत्तम दीक्षा है।) ।।१।।

मः १॥ आपि बुझाए सोई बूझै ॥
जिसु आपि सुझाए
तिसु सभु किछु सूझै ॥
कहि कहि कथना माइआ लूझै ॥
हुकमी सगल करे आकार ॥
आपे जाणै सरब वीचार ॥
अखर नानक अखिओ आपि ॥
लहै भराति होवै जिसु दाति ॥२॥

जिसे (परमात्मा) स्वय समझाता है वही समझता है, जिसे प्रभु स्वय सूझ देता है, उसे सब कुछ सूझ आ जाती है। (सूझ-बूझ के बिना) शेष केवल बार-बार (कथाएँ) कथन कर रहे हैं और माया के लिए झगड़ते हैं। (प्रभु ने) समस्त सृष्टि-रचना अपने हुकम से की है, 'वह' स्वय ही समस्त जीवो के सम्बन्ध मे विचार करता है। हे नानक ! (परमात्मा ने) स्वय ही इस अक्षर को कहा है, जिसे प्रभु स्वय दान देता है (उसके मन की) भ्रान्ति नष्ट हो जाती है ॥२॥

पउड़ी ॥
हउ ढाढी वेकारु कारै लाइआ ॥
राति दिहै कै वार
धुरहु फुरमाइआ ॥
ढाढी सचै महलि
खसमि बुलाइआ ॥
सची सिफति सालाह
कपड़ा पाइआ ॥
सचा अंमृत नामु भोजनु आइआ ॥
गुरमती खाधा रजि
तिनि सुखु पाइआ ॥
ढाढी करे पसाउ सबदु वजाइआ ॥
नानक सचु सालाहि पूरा पाइआ
॥२७॥सुधु॥

मैं बेकार ढाढी (यशोगान करने वाले) को (मेरे प्रभु साहब ने नाम-बन्दगी) कार्य मे लगाया है। रात-दिन मैं 'उसका' यश का गायन करूँ, यह आज्ञा मुझे प्रारम्भ (धर) से (दरबार से) हुई है। (मुझ ढाढी को हरि-यश करने के कारण) सत्य स्वरूप स्वामी ने अपने महल मे बुला लिया और सच्ची स्तुति और प्रशसा के वस्त्र मुझे पहना दिए। सच्चे नाम का अमृत रूपी भोजन मेरे लिए (सच्ची दरबार से) आया जो मैंने गुरू की शिक्षा के अनुसार तृप्त होकर खाया, जिससे मैंने (आत्मिक) सुख पाया। मैं ढाढी शब्द गाकर परमात्मा की स्तुति करता हूँ। हे नानक ! सच्ची स्तुति करके मैंने पूर्ण परमात्मा प्राप्त किया है ॥२७॥

विशेष कई वारो के अन्त मे 'सुद्धु' शब्द आता है, इसका अर्थ यह है कि असल के साथ मिलाकर संशोधन की हुई ठीक है। कई स्थानो मे 'सुद्धु कीचे' है। जो पचम पातशाही गुरू अर्जन देव ने अपने लेखक भाई गुरदास को चेतावनी दी है कि इस वाणी को असल के साथ मिला कर सशोधन कर लेवा।

माझ राग में आई हुई वाणी तथा
शब्दों की गिनती का विशलेषण–

महला ४ के ७ शब्द
महला ५ के ४३ शब्द
महला १ की १ अष्टपदी
महला ३ की ३२ अष्टपदीयां
महला ४ की १ अष्टपदी
महला ५ की ५ अष्टपदीयां
बारह माह की १४ पौड़ीयां
महला ४ के १ दिन रैणि
माझ की वार के २७ श्लोक
वार के ३६ महले
वार की २७ पौड़ीयां

कुल संख्या–१६४

नोट––माझ राग में भक्तों की वाणी नहीं है।
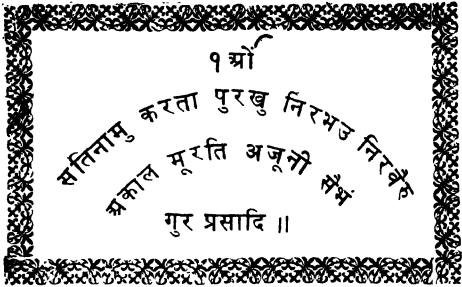
विशेष गौडी (गौरी) राग गुरु ग्रथ साहब मे वाणी की दृष्टि से सबसे बडा और तीसरा राग है और इस राग के अनेक भेद लिखे हैं। यथा—गुआरेरी चेती, दखणी, दीपकी, पूरबी, बैरागण, माझ, मालवा और माला। हकीकत मे गौडी राग एक रागिनी है। नाद बिनोद ग्रथ में लिखा है कि यह श्री राग की रागिनी है। जैसे कि राग माला मे "गवरी गावहि आसावारी" (पृष्ठ १४३०), किन्तु सगीतकारो ने इसको अन्य रागों से भी सम्बन्धित किया है। जैसे रागारगव मतानुसार गौरी मान्वा की रागिनी है। सिद्ध-सारसुत मतानुसार यह दीपक की रागिनी है तथा हनुमान एव भरत मतानुसार यह मालकौस की रागिनी है।

सगीत रत्नाकर में (१) सधा गीत (२) भिना गीत (३) गौरी गीत (४) बैसरा गीत (५) सधारणी गीत इन पाँच गीतो मे तीसरा गौरी गीत लिखा है। गौरी गीत का रूप ऐसे लिखा है—"जहाँ राग के स्वर एक जैसे उच्चारण किए जाएँ और मन को प्रिय लगते हो तथा गौरव देश मे प्रसिद्ध भी हो, उसको गौरी गीत कहते हैं।" यह दिन के तीसरे प्रहर मे गाई जाती है। वस्तुत इसके गाने की सफलता है प्रभु के चिन्तन करने में। यथा—"गउडी रागि सुलखणी जे खसमे चिति करे।" (गउडी वार पृष्ठ ३११)। जीवन तथा मृत्यु के जटिल प्रश्नो का समाधान इसी राग मे किया गया है। वस्तुत गम्भीर विषयो का विवेचन इसी राग मे ही हुआ है।

रागु गउड़ी गुआरेरी महला १ चउपदे दुपदे

"नानक जिन मनि भउ तिना मनि भाउ।"

भउ मुचु भारा वडा तोलु ॥
मनमति हउली बोले बोलु ॥

(हरि का) भय बहुत भारी है (अर्थात उसका धारण करना अति कठिन है) और इसकी तोल (अर्थात विचार करना भी)

सिरि धरि चलीऐ सहीऐ भारु ॥
नदरी करमी गुर बीचारु ॥१॥

बडी (भारी) है (क्योंकि 'उसके भय में सूर्य, चांद, समुद्र आदि सभी हैं)। (दूसरी ओर हम जीवो के) मन की मत्ति तुच्छ (ओछी) है और खाली बोल बोलती है (अर्थात परमेश्वर को इन्कार करके केवल मनमुखो वाली ओछी बातें करती हैं)। यदि भय का भार सिर पर धारण करके चलें और बलपूर्वक इसका बोझ सहन करें तो प्रभु की कृपा-दृष्टि द्वारा गुरु का विचार (प्राप्त) होता है ॥१॥

भै बिनु कोइ न लंघसि पारि ॥
भै भउ राखिआ भाइ सवारि ॥१॥ रहाउ॥

(हे भाई!) परमेश्वर के भय के बिना कोई भी (संसार-सागर से) पार नही जा सकना। (ऐसा जिसने विश्वास करके) प्रभु का भय प्राप्त किया है, (उसने भली-भाति अपने हृदय में) भय को बडे प्रेम से सँवार कर रखा है ॥१॥रहाउ॥

भै तनि अगनि भखै भै नालि ॥
भै भउ घड़ीऐ सबदि सवारि ॥
भै बिनु घाड़त कचु निकच ॥
अंधा सचा अंधी सट ॥२॥

जिनको परमात्मा का भय हैं, उनका शरीर भय की अग्नि से (और भी अधिक) प्रज्जवलित होता है (अर्थात उनके मुख की सुन्दरता देखने वाली होती है)। भय में रहकर शब्द (अर्थात वचन भी) सँवार कर गढता है (अर्थात उनके वचन प्रभावशाली होने के कारण अनेक जिज्ञासु अपना जीवन सँवार लेते हैं)। किन्तु प्रभु के भय के बिना (जो अज्ञानी जीव हैं) उनके उपदेश की बनावट बिलकुल कच्ची है, उन का अन्त.करण रूपी साँचा अन्धा (झूठा) है और चोट भी झूठी है (अर्थात जो स्वय झूठा है वह औरों को क्या प्रभावित करेगा।) ॥२॥

बुधी बाजी उपजै चाउ ॥
सहस सिआणप पवै न ताउ ॥
नानक मनमुखि बोलणु वाउ ॥
अंधा अखरु वाउ दुआउ ॥३॥१॥

यह ससार खेल की तरह (विनश्वर) है किन्तु (अज्ञानी जीव की) बुद्धि मे (बाजीगर की बाजी के लिए नित्य) चाहना उत्पन्न होती है अथवा बुद्धि बाजी को देखकर प्रसन्न होती है, वे चाहे हजारो चतुराईया करे, किन्तु (उसे) भय रूपी अग्नि का ताप नही लगता। हे नानक! मनमुखो का बोलना वायु के समान व्यर्थ है, उनका उपदेश अन्धा है (अज्ञान से भरा है) और उनकी दुआ (चाहे श्राप) (भी) व्यर्थ है ३॥१॥

गउड़ी महला १॥

"हरि का भय होने से और भय निकट नही आता।"

डरि घरु घरि डरु डरि डरु जाइ ॥
सो डरु केहा जितु डरि डरु पाइ ॥
तुधु बिनु दूजी नाही जाइ ॥

जिनको तुम्हारा डर हृदय मे है और हृदय (भी) तुम्हारे डर के अन्दर है, उनके यम का डर हरि के डर से चला जाता है। वह डर हरि का क्या हुआ जिस डर के होने से यम के डर से डरता रहे। (हे प्रभु!) तुम्हारे बिना और कोई स्थान नही है।

जो किछु वरतै सभ तेरी रजाइ ॥१॥	(हाँ) जो कुछ भी (संसार में) व्यवहार हो रहा है, वह सब तुम्हारी इच्छा से हो रहा है ॥१॥
डरीऐ जे डरु होवै होरु ॥ डरि डरि डरणा मन का सोरु ॥१॥ रहाउ॥	(हे प्रभु !) तुम्हारे डर से अधिक यदि और कोई डर हो तो उससे डरना चाहिए। जो (जीव) (यम के)दूत से डरते हैं, उनका डर केवल मन का शोर (हल्ला) है ॥१॥रहाउ॥
ना जीउ मरै न डूबै तरै ॥ जिनि किछु कीआ सो किछु करै ॥ हुकमे आवै हुकमे जाइ ॥ आगै पीछै हुकमि समाइ ॥२॥	(हाँ) जिसने मन का शोर रूपी डर दूर कर दिया है और कर्त्तार को ठिकाना बना लिया है, उसको निश्चय हो जाता है कि जीव (अपने आप) न डूबता है, न तैरता है और न मरता है। जिस प्रभु ने सब कुछ दिया है वही सब कुछ करता है। 'उसके' हुकम से ही जीव आता है (उत्पन्न होता है) और 'उसी' के हुकम से जाता है (इस ससार से विदा होता है) तथा आगे-पीछे अर्थात इस लोक मे चाहे परलोक मे यह जीव हुकम मे समाया हुआ है (अर्थात् हुकम का बन्दा है) ॥२॥
हंसु हेतु आसा असमानु ॥ तिसु विचि भूख बहुतु नै सालु ॥ भउ खाणा पीणा आधारु ॥ विणु खाधे मरि होहि गवार ॥३॥	हिंसा, मोह, आशा और अहकार (असमान--किसी को अपने समान न समझना, अहकार) अथवा हिंसा, मोह, आशा ये विकार आकाश के समान अनन्त है और उनमे बहुत तृष्णा नदी के प्रवाहवत् प्रबल है। (किन्तु जिन जीवो ने तुम्हारे) भय को अपना खाना-पीना और आश्रय समझा है, (वे उपरोक्त विकारो से बचे रहते हैं), बिना भय के भोजन किए (जीव) गँवार होकर मर जाते हैं ॥३॥
जिसका कोइ कोई कोइ कोइ ॥ सभु को तेरा तूं सभना का सोइ ॥ जा के जीअ जंत धनु मालु ॥ नानक आखणु बिखमु बीचारु ॥४॥२॥	जिसका कोई और (सहायक) है, वह कोई (बताए कि) कौन है, (किन्तु सत्यता यह है कि) कोई नयी है (अर्थात हमेशा के लिए कोई किसी का सहायक नही बन सकता क्योकि वह सहायता अस्थायी है)। हे हरि ! तू सबका है और सब तेरे हैं। हे नानक ! जिसके जीव-जन्तु तथा धन-माल है, उस प्रभु के सम्बन्ध में कथन करना बडा कठिन विचार है ॥४॥२॥

गउड़ी महला १॥

"श्रेष्ठ गुण ही हमारे सगे सम्बन्धी हैं।"

माता मति पिता संतोखु ॥ सतु भाई करि एहु विसेखु ॥१॥	श्रेष्ठ मति मेरी माता है और सन्तोष पिता है और सत्य मेरा भाई है—ये ही विशेष सम्बन्ध हैं ॥१॥

कहणा है किछु कहणु न जाइ ॥
तउ कुदरति कीमति नही पाइ ॥१॥ रहाउ॥

हे प्रभु ! आपके सम्बन्ध में कहना है किन्तु कुछ नही कहा जा सकता । (हाँ) तेरी कुदरत की कीमत नही पाई जा सकती ॥१॥ ॥रहाउ॥

सरम सुरति दुइ ससुर भए ॥
करणी कामणि करि मन लए ॥२॥

तेरी रचना का मूल्यांकन नही किया जा सकता । (बुरे कर्मों से) लज्जा ससुर और हरि की सुरति (ध्यान) मेरी सास बन गए हैं । हे मन ! तूने (शुभ) कर्म को स्त्री बना लिया है ॥२॥

साहा संजोगु वीआहु विजोगु ॥
सचु संतति कहु नानक जोगु ॥३॥ ३॥

सन्तों के साथ मेल का (विवाह का) लग्न है और ससार से वियोग मेरा विवाह है । हे नानक ! इससे (विवाह से मुझे) सत्य की सन्तान (उत्पन्न) हुई है, (हाँ) यही सम्बन्ध उचित है ॥३॥३॥

गउड़ी महला १॥

"आत्मा अजर और अमर है ।"

पउणै पाणी अगनी का मेलु ॥
चंचल चपल बुधि का खेलु ॥
नउ दरवाजे दसवा दुआरु ॥
बुझु रे गिआनी एहु बीचारु ॥१॥

हे ज्ञानी ! यह शरीर (पवन, पानी,) अग्नि (पृथ्वी और आकाश आदि) (पाच तत्वो) के मेल से बना है—जिसमे चचल मन और चचल बुद्धि का खेल (तमाशा) है । इस शरीर मे (प्रभु ने) नव दरवाजे (नासिका के दो छिद्र, दो आखे, दो कान, मुँह, गुर्दा तथा मुत्रेन्द्रिया प्रकट करते) हैं और दशम द्वार (गुप्त रखा) है । हे ज्ञानी ! यह बात समझ और उस पर विचार कर ॥१॥

कथता बकता सुनता सोई ॥
आपु बीचारे सु गिआनी होई ॥१॥ रहाउ॥

वह (अर्थात आत्मा) कथन करता है, बोलता है और सुनता है । जो अपने स्वरूप का विचार करता है, वही ज्ञानी है, (वह हर्ष-शोक नही करता क्योकि समझता है कि) ॥१॥रहाउ॥

देही माटी बोलै पउणु ॥
बुझु रे गिआनी मूआ है कउणु ॥
मूई सुरति बादु अहंकारु ॥
ओहु न मूआ जो देखणहारु ॥२॥

यह देही (मिट्टी) है और उसमे जो बोलता है, वह है श्वास । हे ज्ञानी ! समझो कौन मरा है ? (उत्तर) इस शरीर के लिए मन ने वाद विवाद (झगडे) और अहकार किया था उसकी (सुन्दर) सूरत (आकार) नाश हुई, किन्तु वह द्रष्टा आत्मा नही मरा जो शरीर मे साक्षी भाव से (स्थित) देखने वाला है ॥२॥

जै कारणि तटि तीरथ जाही ॥
रतन पदारथ घट ही माही ॥

(हे ज्ञानी !) जिस (साक्षी चेतन आत्मा की प्राप्ति) के निमित्त तू तीर्थ-तटों पर जाता है, वह रतन रूपी पदार्थ घट (शरीर) मे (स्थित) है । (यदि कोई पूछे कि पंडितों को यह समझ क्यों नही ?

पड़ि पड़ि पंडितु बादु वखाणै ॥
भीतरि होदी वसतु न जाणै ॥३॥

तो मेरे गुरुदेव कारण बताते हुए कहते हैं कि) पंडित-गण पढ़-पढ़कर वाद-विवाद की व्याख्या करते हैं, किन्तु भीतर होते हुई भी (आत्म) वस्तु को नही जानते ॥३॥

हउ न मूआ मेरी मुई बलाइ ॥
ओहु न मूआ जो रहिआ समाइ ॥
कहु नानक गुरि ब्रहमु दिखाइआ ॥
मरता जाता नदरि न आइआ ॥४॥४॥

(साक्षी रूप में) मैं (कभी भी) नही मरता, (हाँ) मेरी (अविद्या रूपी) बला (अवश्य) मर गई है। जो सर्वत्र व्याप्त है, वह कभी नही मरता। (अर्थात प्रभु मुझ में भी व्याप्त हैं। अतः मैं कैसे मरूँगा ?) (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कहते हैं कि गुरु ने मुझे ब्रह्म को दिखाया है अब (मेरी दृष्टि मे) न कोई मरता नजर आ रहा है और न कोई जन्म धारण करता ही (नजर आ रहा) है (भाव एक परमेश्वर की लीला प्रतीत हो रही है) ॥४॥४॥

गउड़ी महला १ दखणी ॥

"नाम ही हमारा सहारा है।"

सुणि सुणि बूझै मानै नाउ ॥
ता कै सद बलिहारै जाउ ॥
आपि भुलाए ठउर न ठाउ ॥
तूं समझावहि मेलि मिलाउ ॥१॥

जो (शिष्य गुरु से) नाम सुन-सुनकर मानता (मनन करता) है, वही समझता है। मैं (ऐसे प्यारे के ऊपर) सदैव बलिहारी जाता हूँ। (हे प्रभु ! जिसे) तू स्वय भुला देता है, उसे रहने के लिए कोई ठौर-ठार नही मिलता (अर्थात वह चौरासी मे भटकता है) किन्तु जिसे तू (सन्तो और भक्तो की) संगति में मिलाकर समझाता है, वही समझता है ॥१॥

नामु मिलै चलै मै नालि ॥ ॥
बिनु नावै बाधी सभ कालि ॥१॥ रहाउ॥

(हे स्वामी ! अभिलाषा है कि मुझे तुम्हारा) नाम मिले जो सदैव मेरे साथ हो (अर्थात कभी भी तुम्हारा नाम न भूलूँ क्योकि) बिना नाम के समस्त (जीव-सृष्टि) को यमकाल ने बाँध रखा है ॥१॥रहाउ॥

खेती वणजु नावै की ओट ॥
पापु पुंनु बीज की पोट ॥
कामु क्रोधु जीअ महि चोट ॥
नामु विसारि चले मनि खोट ॥२॥

नाम का आश्रय (मेरे लिए) खेती और व्यापार है। जिन्होंने पाप-पुण्य रूपी बीज की पोटली (अपने साथ) बाधी है, उनके मन में काम, क्रोधादि की चोट लगी हुई है और वे (अन्दर के) खोटे मन से नाम को भूलकर (ससार से) चले जाते हैं ॥२॥

साचे गुर की साची सीख ॥
तनु मनु सीतलु साचु परीख ॥

उन्होने सच्चे गुरू की सच्ची शिक्षा ग्रहण की है, (हाँ) उन्होंने अपने सच्चे स्वरूप की परख की है, जिससे उनके तन और मन शीतल हुए हैं। जैसे जल में चौपतियाँ और जल (रस) में कमल

जल पुराइनि रस कमल परीख ॥
सबदि रते मीठे रस ईख ॥३॥

(अलिप्त) हैं, वैसे ही ये पुरुष संसार में रहकर माया से निर्लेप हैं, यही (नाम जपने वालों की) परख है। (हाँ) वे गुरु के शब्द में अनुरक्त हैं इसलिए वे ईख के रस के समान (अब) मीठे हैं ॥३॥

हुकमि संजोगी गड़ि दस दुआर ॥
पंच वसहि मिलि जोति अपार ॥
आपि तुलै आपे वणजारु ॥
नानक नामि सवारणहार ॥४॥५॥

हे अपार (अनन्त) प्रभु ! आपके हुकम से यह (शरीर रूपी) किला बना है, जिसमें (इन्द्रिय रूपी) दस द्वार हैं और पाच तत्व (इस शरीर में आपकी) ज्योति (शक्ति) के साथ मिलकर रहते हैं। हे प्रभु ! तू आप ही (विचार रूपी तराजू में) तुल रहा है, (हाँ) तू आप ही तोलने वाला व्यापारी है। हे प्रभु ! तू नाम के द्वारा जीवन को सवारने वाला है, (कहते हैं बाबा) नानक ॥४॥५॥

गउड़ी महला १॥

"हरि नाम जो जपे हरि रूप हो जाय।"

जातो जाइ कहा ते आवै ॥
कह उपजै कह जाइ समावै ॥
किउ बाधिओ किउ मुकती पावै ॥
किउ अबिनासी सहजि समावै ॥१॥

(हे सतगुरु !) पता लगे कि जीव कहाँ से आता है, कहाँ से उत्पन्न होता है और किसमें जाकर समाता है ? यह किस प्रकार बन्धा रहता है और किस प्रकार मुक्ति प्राप्त करता है ? और किस प्रकार अविनाशी प्रभु मे सहज ही लीन होता है ? ॥१॥

नामु रिदै अंमृतु मुखि नामु ॥
नरहर नामु नरहर निहकामु ॥१॥
रहाउ ॥

जिनके हृदय में नाम है और मुख में भी अमृत-नाम है, वे हरि का नाम उच्चारण करके नरसिंह रूप है, (हाँ) निष्कामी (भी) हैं ॥१॥रहाउ॥

नोट.—भक्त प्रहलाद की रक्षा करने के लिए हरि ने सत्य युग में नरसिंह अवतार धारण किया था।

सहजे आवै सहजे जाइ ॥
मन ते उपजै मन माहि समाइ ॥
गुरमुखि मुकतो बंधु न पाइ ॥
सबदु बीचारि छुटै हरिनाइ ॥२॥

ब्रह्म से जीव आता है और ब्रह्म मे ही समा जाता है अथवा (जीव) सहज ही आता है और सहज ही जाता है। मानसिक संकल्पो-विकल्पो के अनुसार जीव उत्पन्न होता है और मानसिक वासनाओ के नाश होने से (जीव) (पुन) ब्रह्म मे समा जाता है। गुरु के उपदेश द्वारा (शिष्य) मुक्त हो जाता है और (फिर) बन्धन मे नही पडता क्योकि वह गुरु के शब्द द्वारा सत्य स्वरूप का विचार करके हरि नाम जप कर छूट जाता है ॥२॥

तरवर पंखी बहु निसि बासु ॥
सुख दुखीआ मनि मोह विणासु ॥
साझ बिहाग तकहि आगासु ॥
दहदिसि धावहि करमि लिखिआसु ॥३॥

इस (संसार रूपी) वृक्ष पर (बहुत से) जीव (रूपी पक्षी) आयु (रूपी रात) भर निवास करते हैं। (अपने कर्मानुसार) कोई सुखी है और कोई दुःखी है और मन में मोह होने के कारण नष्ट हो जाते हैं। संध्या के पश्चात् (रात बीतने पर) दिन उदय होने पर (फिर) आकाश की ओर देखते हैं; इस प्रकार अपने लिखे कर्मानुसार वे दशो दिशाओं में दौड़ते हैं ॥३॥

नामु संजोगी गोइलि थाटु ॥
काम क्रोध फूटै बिखु माटु ॥
बिनु वखर सूनो घरु हाटु ॥
गुर मिलि खोले बजर कपाट ॥४॥

जो नाम के सयोगी है, वे इस संसार को (बेल को) चारागाह वाले स्थान के सदृश समझते हैं। उनके काम, क्रोध-रूपी विष के मटके फूट जाते हैं किन्तु जिनके पास नाम का सौदा नही है, उनके घर (शरीर) और हाट (हृदय) खाली (निष्फल) हैं। गुरु को मिलने से अज्ञानता के वज्र-कपाट (पर्दे) खुलते हैं ॥४॥

साधु मिलै पूरब संजोग ॥
सचि रहसे पूरे हरि लोग ॥
मनु तनु दे लै सहजि सुभाइ ॥
नानक तिन कै लागउ पाइ ॥५॥६॥

(प्रश्न गुरु कैसे प्राप्त होगा ? उत्तर :) साधु (गुरु) पूर्व जन्म के (श्रेस्ठ) कर्मों के सयोग से मिलते हैं। वे साधु सत्य स्वरूप मे स्थित होकर प्रफुल्लित होते हैं और वे ही परमात्मा के पूर्ण सत्य पुरुष हैं। वे मन तन सौंप कर स्वाभाविक ही हरि परमेश्वर (के नाम) को ले लेते हैं। नानक (मैं) ऐसे सन्तो के चरणो में पडता है ॥५॥६॥

गउड़ी महला १॥

"मनमुखो की दुर्दशा।"

कामु क्रोधु माइआ महि चीतु ॥
झूठ विकारि जागै हित चीतु ॥
पूंजी पाप लोभ की कीतु ॥
तरु तारी मनि नामु सुचीतु ॥१॥

(विषयासक्त) मनुष्य का चित्त काम, क्रोध और माया में ही लगा रहता है, उसके मोह वाले चित्त मे झूठ और विकार जागते रहते हैं। उसने अपनी पूँजी पाप और लोभ की एकत्र की है, किन्तु मन के अन्दर नाम मे सचेत होकर रहना ससार-सागर से तैरने के लिये नाव (तारी) है ॥१॥

वाहु वाहु साचे मै तेरी टेक ॥
हउ पापी तूं निरमलु एक ॥१॥
रहाउ॥

हे सत्य परमात्मा ! तू धन्य है। तू धन्य है । मुझे तेरा ही सहारा है। मैं पापी हूँ और तू ही एक शुद्ध स्वरूप है ॥१॥ रहाउ॥

अगनि पाणी बोलै भड़ वाउ ॥
जिहवा इंद्री एकु सुआउ ॥
दिसटि विकारी नाही भउ भाउ ॥
आपु मारे ता पाए नाउ ॥२॥

यह शरीर अग्नि, पानी और वायु आदि तत्वों के संयोग से भड भड कर बोलता है (किन्तु नाम के बिना बोलना व्यर्थ है)। जिह्वा (आदि ज्ञानेन्द्रियो) में एक एक (पृथक्-पृथक्) रस हैं। जिनकी दृष्टि विकार युक्त है, उनको परमात्मा का न भय है और न प्रेम। जब यह जीव अपनेपन (अहंभाव) को मार देगा, तब (परमात्मा का) नाम प्राप्त करेगा ॥२॥

सबदि मरै फिरि मरणु न होइ ॥
बिनु मूए किउ पूरा होइ ॥
परपंचि विआपि रहिआ मनु दोइ ॥
थिरु नाराइणु करे सु होइ ॥३॥

जो जीव गुरु के शब्द द्वारा मरता है उसका फिर मरना(कभी) नही होता (अर्थात वह जीव मुक्ति प्राप्त करता है) । बिना मरे (कोई भी) पूर्ण नही हो सकता (अर्थात मुक्ति प्राप्त नही कर सकता) । उसका मन द्वैतभाव के कारण माया के प्रपंच में व्याप्त हो रहा है । स्थिर वही है जिसको नारायण प्रभु स्वयं स्थिर करता है । (भाव मनमुख नाशवत है और चौरासी के चक्र मे भटकते हैं, किन्तु जिन पर प्रभु कृपा करके गुरु का उपदेश देता है, वे ही अपने मन को मारते हैं और मुक्त होते हैं ।) ॥३॥

बोहिथि चड़उ जा आवै वारु ॥
ठाके बोहिथ दरगह मार ॥
सचु सालाही धंनु गुर दुआरु ॥
नानक दरि घरि एकंकारु ॥४॥७॥

(हे प्रभु ! विनम्र प्रार्थना है कि) जब मेरी बारी आवे (अर्थात देही समाप्त हो) तब (अभिलाषा है कि) तुम्हारे नाम रूपी जहाज पर चढ कर ससार-सागर से पार उतरूँ । जो जीव (विकारो के कारण) (इस नाम-जहाज पर) चढने से रोके जायेंगे, उनको दरबार मे मार पडेगी । हे नानक ! सत्य स्वरूप प्रभु धन्य है, जिसकी स्तुति गुरु के द्वारा हो सकती है और 'वह' एक परब्रह्म द्वार पर और घर मे (अर्थात सर्वत्र व्याप्त) है ॥४॥७॥

गउड़ी महला १॥

"हरिनाम प्राप्त हुआ तो सब कुछ प्राप्त हुआ ।"

उलटिओ कमलु ब्रहमु बीचारि ॥
अंमृत धार गगनि दस दुआरि ॥
त्रिभवणु बेधिआ आपि मुरारि ॥१॥

जब ससार से हमारा हृदय रूपी कमल उलट कर प्रभु के सन्मुख हुआ तभी हमे ब्रह्म का विचार हुआ और ब्रह्मरंध्र मे (स्थित)दशम द्वार से अमृत धार टपकने लगी, (अब निश्चय हुआ कि) मुरारी प्रभु तीनों लोको में स्वय ही व्याप्त है ॥१॥

रे मन मेरे भरमु न कीजै ॥
मनि मानिऐ अंमृत रसु पीजै ॥१ ॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! भ्रम मत करो— सशय-विपर्यय में मत पडो क्योकि मन में निश्चय रखने से ही मन अमृत रस पीता है ॥१॥रहाउ॥

जनमु जीति मरणि मनु मानिआ ॥
आपि मूआ मनु मन ते जानिआ ॥
नजरि भई घरु घर ते जानिआ ॥२॥

जब मन को परमात्मा मे पूर्ण निश्चय होता है, तब जन्म-मरण को जीता जाता है (अर्थात जन्म-मरण से छूटते हैं) । जब आपा भाव (अहंकार) मरता है, तब मन (अर्थात स्वरूप) मन के अन्दर देखने में आता है अथवा मन को मन से जान लिया जाता है । किन्तु जब प्रभु की कृपा दृष्टि होती है तब घर(स्वरूप) अपने हृदय में जाना जाता है ॥२॥

जतु सतु तीरथु मजनु नामि ॥
अधिक बिथारु करउ किसु कामि ॥
नर नाराइण अंतरजामि ॥३॥

इन्द्रिय-निग्रह (जत), सत्याचरण, तीर्थादिक का स्नान (सब) नाम में ही है (अर्थात जो नाम जपते हैं उनको सभी फल प्राप्त होते है)। इसलिए (नाम को छोड़कर) क्यों मैं अन्य कर्म अधिक विस्तार से करूँ? वे किस काम के? नर में अन्तर्यामी नारायण ही जानने वाला है ॥३॥

आन मनउ तउ पर घर जाउ ॥
किसु जाचउ नाही को थाउ ॥
नानक गुरमति सहजि समाउ ॥४॥८॥

(प्रभु के बिना) यदि अन्य किसी को मानूँ तो फिर दूसरे के घर में जाऊँ। 'उसके' बिना अन्य कोई भी स्थान नहीं है, जहाँ जाकर याचना करूँ। हे नानक! गुरु की मत्ति द्वारा सहज ही ब्रह्म मे समाया जाता है ॥४॥८॥

गउड़ी महला १॥

"सतगुरु की अपार महिमा।"

सतिगुरु मिलै सु मरणु दिखाए ॥
मरण रहण रसु अंतरि भाए ॥
गरबु निवारि गगनपुरु पाए ॥१॥

जब सत्गुरु मिलता है तो वह मरने की (सच्ची) युक्ति दिखाता है, (हाँ) वे ही (शिष्य) मरने से रहित होते हैं, जिनको परमात्मा का रस (आनन्द) भाता है। अपना गर्व निवृत करके वे दशम द्वार मे 'उस' (पूर्ण परमात्मा) को प्राप्त करते हैं। ॥१॥

मरणु लिखाइ आए नही रहणा ॥
हरि जपि जापि रहणु हरि सरणा ॥ १॥रहाउ॥

हे प्यारे! तू मरने को लिखा कर (इस ससार मे) आया है और यहाँ तुम्हे (कदाचित) नही रहना। तुम्हें हरि नाम का जाप जपकर हरि की शरण में रहना चाहिए ॥१॥ रहाउ ॥

सतिगुरु मिलै त दुबिधा भागै ॥
कमलु बिगासि मनु हरिप्रभ लागै ॥
जीवतु मरै महा रसु आगै ॥२॥

जब सत्गुरु मिलता है तो (मन की) दुविधा दूर हो जाती है, हृदय रूपी कमल विकसित हो जाता है और मन हरि प्रभु के साथ लग जाता है। (हाँ) जो जीते ही मरता है (अर्थात जीते ही अपने अहम् भाव को मार देता है) उसके आगे परमात्मा का महारस है (अर्थात वही प्रभु से मिलने के कारण महा आनन्द प्राप्त करता है) ॥२॥

सतिगुरि मिलिऐ सच संजमि सूचा ॥
गुर की पउड़ी ऊचो ऊचा ॥
करमि मिलै जम का भउ मूचा ॥३॥

सत्गुरु के मिलने पर सत्य, सयम और पवित्रता प्राप्त होती है। जो गुरू की सीढ़ी पर चढ़ता है (अर्थात गुरु-उपदेशानुसार चलता है), वह ऊँचे से ऊँचा है। जब (ईश्वर की) कृपा से सत्गुरु मिलता है तब यम का भय नाश हो जाता है ॥३॥

गुरि मिलिऐ मिलि अंकि समाइआ ।।
करि किरपा घरु महलु दिखाइआ ।।
नानक हउमै मारि मिलाइआ ।।४
।।६।

गुरु के मिलने पर यह जीव परमात्मा के अंक (गोदी) में समा जाता है (अभेद हो जाता है)। । सत्गुरु कृपा करके (हमारे हृदय रूपी) घर मे स्वरूप दिखा देता है। (प्रश्न क्या केवल गुरु की ही कृपा चाहिए या जीव को भी कुछ करना है ? उत्तर.) हे नानक ! जो जीव अपने अहम् भाव को मारते हैं, उनको गुरू हरि से मिलाता है ।।४।।६।।

गउड़ी महला १।।

"जिसके पास है हरिनाम, कर्म-धर्म किए सब उसने ।"

किरतु पइआ नह मेटै कोइ ।।
किआ जाणा किआ आगै होइ ।।
जो तिसु भाणा सोई हूआ ।।
अवरु न करणै वाला दूआ ।।१।।

(हे प्रभु ! तुम्हारी इच्छा से) जो लेख कर्मानुसार मेरे मस्तक पर है, उसे कोई नही मिटा सकता । मैं क्या जानूँ (इस लेख अनुसार) आगे क्या होगा ? हे प्रभु ! जो कुछ आपको अच्छा लगा है, वही हुआ है । आपके बिना कोई और दूसरा करने वाला नही है ।।१।।

ना जाणा करम केवड तेरी दाति ।।
करमु धरमु तेरे नाम की जाति ।।१
।।रहाउ।।

मैं नही जानता कि मेरे कर्म कैसे हैं और (उनकी अपेक्षा) आपकी देन (कृपा) कितनी महान् है ? (हे प्रभु !) मेरा कर्म, धर्म और जाति आदि सभी तेरा नाम ही है ।।१।। रहाउ ।।

तू एवडु दाता देवणहारु ।।
तोटि नाही तुधु भगति भंडार ।।
कीआ गरबु न आवै रासि ।।
जीउ पिंडु सभु तेरै पासि ।।२।।

(हे दयालु प्रभु !) तू इतना अधिक देने वाला दाता है। तुम्हारी भक्ति के भण्डार मे किसी प्रकार की कमी नही आती। अहंकार किया हुआ ठीक नही बैठता अथवा गर्व करने से परमात्मा रूपी राशि पल्ले नही पड़ती। जीव और शरीर सब तेरे ही पास (वशीभूत) हैं ।।२।।

तू मारि जीवालहि बखसि मिलाइ ।।
जिउ भावी तिउ नामु जपाइ ।।
तूं दाना बीना साचा सिरि मेरै ।।
गुरमति देइ भरोसै तेरै ।।३।।

(हे हरि !) तू ही मारता है और (तू ही) जिलाता है और (तू ही) कृपा करके अपने साथ मिलाता है, (अत) जैसे तुझे अच्छा लगे, मुझे अपना नाम जपाओ । (हे प्रभु !) तू सभी को जानने वाला और देखने वाला है। (हाँ) हे सच्चे (साहब) ! तू मेरे सिर के ऊपर है। (हे भगवत !) मैं तेरे भरोसे पर रहता हूँ, तू मुझे गुरु की मत्ति द्वारा नाम की देन दो ।।३।।

तन महि मैलु नाही मनु राता ।।
गुर बचनी सचु सबदि पछाता ।।

(हे परमेश्वर !) जिनका मन तुम्हारे साथ अनुरक्त है, उनके हृदय में पापों की मैल नही है और वे गुरु के शब्द(बचनो)से सत्य

तेरा ताणु नाम की वडिआई ॥
नानक रहणा भगति सरणाई ॥४॥
१०॥

स्वरूप को पहचानते हैं। (हे प्रभु !) तेरा ही बल (हमें) है और तेरा नाम जपने से ही (हमे) बड़ाई मिलती है और हे नानक ! हम तेरे भक्तों की शरण मे रहते हैं ॥४॥१०॥

गउड़ी महला १॥

"जिन्होंने किया नाम का जाप, उनके हुए पूरे काम।"

जिनि अकथु कहाइआ
अपिओ पीआइआ ॥
अन भै विसरे नामि समाइआ ॥१॥

जिस गुरु ने (हमसे) अकथनीय प्रभु का यश करवाया है, उसी ने हमें अमृत पिलाया है। इसलिए अन्य सभी भय विस्मृत हो गए और हम (जाकर) नाम में समा गए ॥१॥

किआ डरीऐ डरु डरहि समाना ॥
पूरे गुर कै सबदि पछाना ॥१॥
रहाउ॥

(हे भाई !) जब पूर्ण गुरु की शिक्षा द्वारा परमात्मा को पहचाना जाता है तो परमेश्वर के भय में यम का डर समाकर समाप्त हो जाता है, तब भला क्यो भय करें ? ॥१॥ रहाउ ॥

जिसु नर रामु रिदै हरि रासि ॥
सहजि सुभाइ मिले साबासि ॥२॥

(हे प्यारे !) जिसके हृदय में हरि (नाम) की पूँजी है, उसे सहज स्वभाव से शाबासी मिलती है (अर्थात वह धन्य है।)॥२।

जाहि सवारै साझ बिआल ॥
इत उत मनमुख बाधे काल ॥३॥

जिसे (मेरा प्रभु) साय और प्रात. (अज्ञानता की नीद मे) सुलाए रखता है, वह मनमुख यहाँ-वहाँ (प्रत्येक स्थान पर) काल के पाश में बँधा हुआ है ॥३॥

अहिनिसि रामु रिदै से पूरे ॥
नानक राम मिले भ्रम दूरे
॥४॥११॥

जिनके हृदय मे दिन-रात राम है, वे पूर्ण हैं। हे नानक ! राम के मिलने से (सभी) भ्रम दूर हो जाते हैं ॥४॥११॥

गउड़ी महला १॥

"त्रिगुणातीत होकर आत्म परायण हो।"

जनमि मरै त्रै गुण हितकारु ॥
चारे बेद कथहि आकारु ॥
तीनि अवसथा कहहि वखिआनु ॥
तुरीआवसथा सतिगुर ते हरि
जानु ॥१॥

चारों (ही) वेद कथन करते हैं कि जो इस प्रबन्ध मे आकार है, वे सभी तीन गुणों वाली माया से प्रेम करने के कारण जन्मते और मरते रहते हैं। वेद तीन अवस्थाओं का वर्णन करते है किन्तु जो तुरीया अवस्था रूप हरि है, वह केवल सत्गुरु से ही जाना जाता है ॥१॥

विशेष : वस्तुतः मनुष्य की चार अवस्थाएँ हैं। (१) जाग्रत (२) स्वप्न (३) सुषुप्ति (४) तुरीआ।

राम भगति गुर सेवा तरणा ॥
बाहुड़ि जनमु न होइ है मरणा ॥
॥१॥रहाउ॥

राम की भक्ति और गुरु की सेवा करने से (जीव-संसार-सागर से) तर जाता है; न फिर उसका जन्म होगा और न मरण ही ॥१॥ रहाउ॥

चारि पदारथ कहै सभु कोई ॥
सिम्रिति सासत पंडित मुखि सोई ॥
बिनु गुर अरथु बीचारु न पाइआ ॥
मुकति पदारथु भगति हरि पाइआ ॥२॥

चार पदार्थ—(धर्म, अर्थ काम, मोक्ष) सभी कोई कथन करते हैं, (हाँ) (२७) स्मृतियाँ, (६) शास्त्र और पण्डित भी मुख से उन्ही के विषय मे बताते हैं, किन्तु स्वरूप का विचार रूप अर्थ गुरु के बिना प्राप्त नही होता और जिसने मुक्ति रूपी पदार्थ प्राप्त किया है, उसने हरि की भक्ति करके ही पाया है ॥२॥

जा कै हिरदै वसिआ हरि सोई ॥
गुरमुखि भगति परापति होई ॥
हरि की भगति मुकति आनंदु ॥
गुरमति पाए परमानंदु ॥३॥

जिसको सत्गुरु से भक्ति प्राप्त होती है, उसके हृदय मे हरि का निवास होता है। हरि की भक्ति मुक्ति का आनन्द देने वाली है और जिन्होने गुरु की मत्ति लेकर (भक्ति) प्राप्त की है, उन्हे परम आनन्द प्राप्त होता है ॥३॥

जिनि पाइआ गुरि देखि दिखाइआ ॥
आसा माहि निरासु बुझाइआ ॥
दीना नाथु सरब सुखदाता ॥
नानक हरि चरणी मनु राता ॥४॥१२॥

जिन्होने गुरु के द्वारा भक्ति प्राप्त की है, वे स्वय दर्शन करके औरो को भी दर्शन करवाते हैं। उनको गुरु ने आशाओ से निराश करके (हरि) परमात्मा की सूझ-बूझ दी है। हे नानक ! दीनानाथ, जो सर्व सुखो का दाता है, 'उसके' चरणो मे मेरा मन अनुरक्त है ॥४॥१२॥

गउड़ी चेती महला १॥

"समस्त संसार एक खेल है।"

अंम्रित काइआ रहै सुखाली
बाजी इहु संसारो ॥
लबु लोभु मुचु कूड़ु कमावहि
बहुतु उठावहि भारो ॥

(जीवात्मा कहती है कि) हे देही ! तू अपने आप को अमर समझकर (विषय-विकारों मे) सुखी (समझकर) रहती है, किन्तु तू नही समझती कि यह (सारा) संसार (बाजीगर का) खेल (तमाशा) है। तू पदार्थों (को प्राप्त करने) के लिए लालच और लोभ करती है तथा बहुत झूठ कमाती रहती है एवं (पापों का)

तूं काइआ मै रुलदी देखी
जिउ धर ऊपरि छारो ॥१॥

अधिक बोझ (सिर पर) उठाती है। हे काया! मैंने तुझे (उसी प्रकार) दुःखी, भटकती हुई देखा है, जैसे धरती के ऊपर खाक (उड़ती) है ॥१॥

सुणि सुणि सिख हमारी ॥
सुक्रितु कीता रहसी मेरे जीअड़े
बहुड़ि न आवै वारी ॥१॥ रहाउ ॥

(देही अब जीवात्मा को कहती है) अरे जीव! तू मेरी शिक्षा सुन। जो शुभ कर्म तू करेगा, वे ही तेरे साथ रहेंगे, मनुष्य जन्म की बारी फिर नही आवेगी ॥१॥रहाउ॥

हउ तुधु आखा मेरी काइआ
तूं सुणि सिख हमारी ॥
निंदा चिंदा करहि पराई
झूठी लाइतबारी ॥
वेलि पराई जोहहि जीअड़े
करहि चोरी बुरिआरी ॥
हंसु चलिआ तूं पिछै रहीएहि
छुटड़ि होईअहि नारी ॥२॥

(जीव कहता है) हे मेरी काया! मैं तुझे जो शिक्षा दे रहा हूँ वह तू ध्यानपूर्वक सुन। तू पराई निन्दा का (सदैव) चिन्तन करती रहती है और झूठी चुगली करती है। (तब फिर देही जीव से कहती है) हे जीव! तू तो दूसरों की स्त्री को (सदैव पाप दृष्टि से) देखता रहता है और चोरी व बुराई करता है। (तू भी ये बुरे कार्य करना छोड़ दे। अब जीव फिर कहता है) हे देही! जीवात्मा रूपी हंस के चले जाने पर तू पति के द्वारा तिरस्कृत स्त्री के समान रह जायगी (अर्थात् हे शरीर!) फिर कोई भी तेरा मान-सम्मान नही करेगा) ॥२॥

तूं काइआ रहीअहि सुपनंतरि
तुधु किआ करम कमाइआ ॥
करि चोरी मै जा किछु लीआ
ता मनि भला भाइआ ॥
हलति न सोभा पलति न ढोई
अहिला जनमु गवाइआ ॥३॥

हे देही! इस स्वप्न मात्र संसार में रहकर तू ने क्या अच्छा कार्य किया है? (अर्थात तूने बुरे ही कर्म किये हैं)। (यह सुनकर देही कहती है कि) हे जीव! जब चोरी करके मैं कुछ भी तेरे पास ले आती थी तब वह तेरे मन को बहुत अच्छा लगता था। मैं तेरी संगति मे रहकर न इस लोक मे कोई शोभा प्राप्त कर सकी और न परलोक में ही कोई शरण मिली। इस प्रकार मैंने (अपना) सुन्दर (मनुष्य) जन्म (तेरे पीछे) गँवा दिया ॥३॥

हउ खरी दुहेली होई
बाबा नानक मेरी बात न पुछै कोई
॥१॥ रहाउ ॥

हे बाबा नानक! देही बिलकुल दुःखी होकर कहती है कि हे जीव! (अब तेरे बिछोह के पश्चात् मेरी बात भी कोई नही पूछता)। (अब) मैं बहुत ही दुःखी हो रही हूँ ॥१॥रहाउ॥

ताजी तुरकी सुइना रुपा
कपड़ केरे भारा ॥

(अरबी और) तुर्की घोड़े, सोना, चाँदी तथा कपड़ों के भार किसी के साथ नही जाते। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कहते हैं कि हे

किस ही नालि न चाले नानक
झड़ि झड़ि पए गवारा ॥
कूजा मेवा मै सभ किछु चाखिआ
इकु अंमृतु नामु तुमारा ॥४॥

गँवार ! इन पदार्थों में लग-लगाकर मरता है किन्तु ये सब यहाँ ही रह जाते हैं)। मैंने मिश्री, मेवादि सब कुछ चख लिए हैं, किन्तु तेरा एक नाम ही अमृत रूप है (अर्थात अन्य सभी पदार्थ नश्वर हैं, तेरा नाम ही केवल अमर पदवी देने वाला है) ॥४॥

दे दे नीव दिवाल उसारी
भसमंदर की ढेरी ॥
संचे संचि न देई किस ही
अंधु जाणै सभ मेरी ॥
सोइन लंका सोइन माड़ी
संपै किसै न केरी ॥५॥

(माया सम्पन्न लोग) नींव दे देकर दीवारें खड़ी करते हैं, किन्तु वे (अन्तत) भस्म की ढेरी ही होगी। वे माया संग्रह करते हैं और सग्रह करके किसी को नही देते। वे अज्ञानी समझते हैं कि (समस्त सम्पति आदि) मेरी है। जब सोने की लका और सोने के मन्दिर (महल) (रावण के) न रहे तो समझ लो कि माया किसी की भी नही ॥५॥

सुणि मूरख मंन अजाणा ॥
होगु तिसै का भाणा ॥१॥ रहाउ ॥

हे मूर्ख अनजान मन ! सुनो। होगा वही जो 'उसको' (परमात्मा को) भाता है ॥१॥रहाउ॥

साहु हमारा ठाकुरु भारा
हम तिस के वणजारे ॥
जीउ पिंडु सभ रासि तिसै की
मारि आपे जीवाले ॥६॥१॥१३॥

हमारा मालिक बडा शाहूकार है और हम 'उसके' बनजारे हैं। जीव और शरीर सब कुछ 'उसी (शाह) की (दी हुई) पूँजी है। 'वह' आप ही मारता है और आप ही जिलाता है ॥६॥१॥१३॥

गउड़ी चेती महला १॥

"विकार पाँच हैं, जबकि मैं अकेला हूं।"

अवरि पंच हम एक जना
किउ राखउ घर बारु मना ॥
मारहि लूटहि नीत नीत
किसु आगै करी पुकार जना ॥१॥

वे तो पाँच (- काम क्रोध, लोभ, मोह और अहकार) हैं जब कि मै अकेला हूं। हे (मेरे) मन ! मैं कैसे अपना घर-बार उनसे बचाऊँ ? (अर्थात् अपना हृदय घर और इन्द्रियाँ—बच्चो पाँचो की रक्षा विकारो से किस प्रकार करूँ ?) वे नित्य प्रति मारते (अर्थात विषयो मे डालते, है और लूटते हैं (अर्थात् श्रेष्ठ गुण मुझ से खीचते हैं)। हे सन्त जनो ! मैं किसके आगे जाकर पुकार करूँ ?॥१॥

श्री राम नाम उचरु मना ॥
आगै जमदलु बिखमु घना ॥१
॥रहाउ॥

हे मन ! श्री रामनाम का उच्चारण करो अन्यथा आगे यम का बहुत ही भयानक दल है ॥१॥रहाउ॥

उसारि मड़ोली राखै दुआरा
भीतरि बैठी साधना ॥
अंमृत केल करे नित कामणि
अवरि लुटेनि सु पंच जना ॥२॥

यह जो देही रूपी मठ है, ईश्वर ने बनाकर उसमें नौ दरवाजे रखे हैं और उनमें जीव रूपी स्त्री बैठी है। देही को अमर समझ कर, यह स्त्री नित्य (सांसारिक) क्रीडा करती है, किन्तु पाँच (ठग) (अविद्या रूपी नीद के अन्दर) उसे लूटते हैं (अर्थात कामादि विकार रूपी ठग इसे गफलत में देखकर इसके शुभ गुण रूपी धन को लूटते रहते हैं।) ॥२॥

ढाहि मड़ोली लूटिआ देहुरा
साधन पकड़ी एक जना ॥
जम डंडा गलि संगुल पड़िआ
भागि गए से पंच जना ॥३॥

जिस समय यम इस देही रूपी मठ को विनाश करके लूटता है, उस समय वह अकेली पकडी जाती है और जिस समय उसे यम का डण्डा लगता है तथा गले मे यम की जजीरे पडती हैं, (इस विकट अवस्था मे) वे पाँच (कामादिक ठग) भाग जाते हैं (अर्थात् किसी काम नही आते और इस प्रकार जीव-स्त्री दुखी होकर अकेली जाती है।) ॥३॥

कामणि लोड़ै सुइना रुपा
मित्र लुड़ेनि सु खाधाता ॥
नानक पाप करे तिन कारणि
जासी जमपुरि बाधाता ॥४॥२
॥१४॥

(इस ससार मे कोई भी किसी का सहायक नही, सभी स्वार्थी हैं, हाँ) सुन्दर स्त्री (भी) स्वर्ण, चाँदी आदि पदार्थों की कामना रखती है और मित्र चाहते हैं खाना-पीना। हे नानक ! जो जीव इन पदार्थों के लिए पाप करते हैं, वे यमपुरी में बाँधे जायेंगे ॥४
॥२॥१४॥

गउड़ी चेती महला १॥

"त्यागी ही उच्चकोटि का योगी है।"

मुंद्रा ते घट भीतरि मुंद्रा
कांइआ कीजै खिंथाता ॥
पंच चेले वसि कीजहि रावल
इहु मनु कीजै डंडाता ॥१॥

(हे योगी !) (असली) मुद्राएँ (वे) हैं, शरीर के भीतर ही मुद्राएँ हो (अर्थात अपने मन को विषयो से, हाँ संकल्प-विकल्पो से रोकने की मुद्राएँ पहननी चाहिए। ये जो बाह्य मुद्राएँ पहनी हैं वे तो मन और इन्द्रियों को रोकने में सहायक नहीं होती) और अपनी काया को (ही) कफनी समझना चाहिए (अर्थात जैसे एक गोदड़ी उतारकर दूसरी पहनते हैं वैसे ही यह देही नाशवत है)। हे योगी ! पाँच कमादिको को अथवा पाँच ज्ञानेन्द्रियों को वशीभूत करो और इस (अपने) मन को डण्डा बनाओ (अर्थात् प्रभु की ओर सीधा रखो।) ॥१॥

जोग जुगति इव पावसिता ।।
एकु सबदु दूजा होरु नासति
कंद मूलि मनु लावसिता ।।१।।
रहाउ ।।

योग कमाने की (वास्तविक) युक्ति इसी प्रकार प्राप्त कर सकोगे (और न बाह्य चिह्न और वेश आदि के धारण करने से)। एक शब्द (ब्रह्म) सत्य है, अन्य सब नश्वर हैं, ऐसा निश्चय करके 'उसके' साथ मन (प्रीति) लगाना ही योगियों का कदमूल ही खाना है ।।१।। रहाउ।।

मूंडि मुंडाइऐ जे गुरु पाईऐ
हम गुरु कीनी गंगाता ।।
त्रिभवण तारणहारु सुआमी
एकु न चेतसि अंधाता ।।२।।

मूँड मुँडाने से यदि गुरू प्राप्त हो सकता है, तो हम गंगा माता को अपना गुरु बनाएँ (क्योकि सभी यात्री पतित पावन गगा जी के किनारे पर मूँड मुँडाते हैं, किन्तु मुक्ति इन बातो से नही मिलती)। ऐ अन्धे (विषयाच्छान्न)! त्रिभुवन के तारने वाले एक मात्र स्वामी को (तू) नही चेतता है ।।२।।

करि पटंबु गली मनु लावसि
संसा मूलि न जावसिता ।।
एकसु चरणी जे चितु लावहि
लबि लोभि की धावसिता ।।३।।

(हे योगी!) यदि पाखड (चालाकी) करके (सासारिक बातो मे ही मन लगाओगे तो (इससे) संशय की मूल निवृत्ति नही होगी, किन्तु यदि एक प'मात्मा के चरणो मे चित्त लगाओगे, तो लालच और लोभ की ओर क्यों दौड़ेंगे? (अर्थात नही दौडना पडेगा।) ।।३।।

जपसि निरंजनु रचसि मना ।।
काहे बोलहि जोगी कपटु घना ।।१
।।रहाउ।।

(हे योगी! यदि तू) निरंजन परमात्मा (के नाम) का जाप करेगा तो तुम्हारा मन 'उ उमे' अनुरक्त (मस्त) हो जायेगा। हे योगी! बहुत कपट की बातें क्यो बोलता है? ।।१।।रहाउ।।

काइआ कमली हंसु इआणा
मेरी मेरी करत बिहाणीता ।।
प्रणवति नानकु नागी दाझै
फिरि पाछै पछुताणीता ।।४।।३।।
१५।।

शरीर पागल है और जीव रूपी हस भी अज्ञानी है, क्योकि 'मेरी' 'मेरी' (कहते) करते हुए आयु व्यतीत करता है। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक विनयपूर्वक कहते हैं कि (जीवात्मा के निकल जाने पर) जब इस काया को नगी करके जलायेगे तब तुम्हे पछताना पडेगा ।।४।।३।।१५।।

गउड़ी चेती महला १।।

"हे योगी! हम माया की सन्तति को नमस्कार नही करते।"

अउखध मंत्र मूलु मन एकै
जे करि दृड़ु चितु कीजै रे ।।

(हे योगी!) यदि चित्त को (विषय-विकारों से हटाकर निरंजन में दृढतापूर्वक) दृढ करे, तो (समस्त) औषधि और मंत्र का

जनम जनम के पाप करम के
काटनहारा लीजै रे ॥१॥

मूल, जो एक परमेश्वर है और जो जीव के मन में है, वह प्राप्त हो जाता है। जन्म-जन्मान्तरों के पाप कर्मों को काटने वाला रामनाम है, वह लेना (अर्थात् जपना) चाहिए ॥१॥

मन एको साहिबु भाई रे ॥
तेरे तीनि गुणा संसारि समावहि
अलखु न लखणा जाई रे ॥१॥
रहाउ॥

हे भाई मन ! (जो सबका) एक साहब है, 'वह' तुझे (कैसे) अच्छा लग सकता है। क्योंकि तेरी मनोवृति त्रिगुणात्मक ससार मे समाई हुई है (अर्थात तू ससार मे आसक्त है. इसलिए) अदृश्य प्रभु को नही जान (प्राप्त कर) सकेगा ॥१॥रहाउ॥

सकर खंडु माइआ तनि मीठी
हम तउ पंड उचाई रे ॥
राति अनेरी सूझसि नाही
लजु टूकसि मूसा भाई रे ॥२॥

शरीर में माया शक्कर और खांड सी मीठी लगती है और 'मैं तू' की गट्ठर (सिर पर) उठाते हैं (अर्थात् अहकार के कारण 'मैं' 'मैं' करते फिरते हैं)। हे योगी ! अविद्या रूपी अन्धेरी रात्रि मे कुछ सुझाई (दिखाई) नही पडता, काल रूपी चूहा जीवन रूपी रस्सी को काटता जा रहा है ॥२॥

मनमुखि करहि तेता दुखु लागै
गुरमुखि मिलै वडाई रे ॥
जो तिनि कीआ सोई होआ
किरतु न मेटिआ जाई रे ॥३॥

मनमुख जितने बुरे कर्म करते है, उतने दु ख उठाते हैं, किन्तु गुरमुखों को बढाई मिलती है। जो कर्म जीव ने किये हैं, वही फल उन्हे मिल चुका है। (हाँ, पूर्व जन्म के किए हुए कर्मों का भाग्य नहीं मिटाया जा सकता ॥३॥

सुभर भरे न होवहि ऊणे
जो राते रंगु लाई रे ॥
तिन की पंक होवै जे नानकु
तउ मूड़ा किछु पाई रे ॥४॥
४॥१६॥

जो परमात्मा के प्रेम-रंग में पूर्ण रूप से भरे हैं, वे सदैव गुणो से भरपूर हैं और वे (कभी भी) खाली नही होते। यदि नानक (ऐसे पहुँचे हुए) महात्माओ की धूलि हो जाय, तो इस मूढ को भी कुछ मिल जायेगा ॥४॥४॥१६॥

गउड़ी चेती महला १॥

"कई जन्मों से हमनें धक्के खाये है।"

कत की माई बापु कत केरा
किदू थावहु हम आए ॥
अगनि बिंब जल भीतरि निपजे
काहे कंमि उपाए ॥१॥

(हे प्रभु !) कौन मेरी माता है और कौन मेरा पिता है तथा किस स्थान से हम यहाँ (इस ससार मे) आए हैं ? (अर्थात् तू ही सब का माता-पिता है)। (माता की) जठराग्नि और पिता के बीर्य रूप जल से बुलबुले जैसे हमारे शरीर उत्पन्न होते हैं, किन्तु किस कार्य के लिए (हम) उत्पन्न किए गए हैं ? ॥१॥

मेरे साहिबा कउणु जाणै गुण तेरे ॥
कहे न जानी अउगण मेरे ॥१
॥रहाउ॥

हे मेरे साहब ! तेरे गुणों को कौन जान सकता है और मेरे अवगुणो का कथन नही किया जा सकता (अर्थात् जैसे तेरे गुण अनन्त हैं तैसे मेरे अवगुण भी अगणित है ।) ॥१॥रहाउ॥

केते रुख बिरख हम चीने
केते पसू उपाए ॥
केते नाग कुली महि आए
केते पंख उडाए ॥२॥

(मनुष्य जन्म धारण करने से पहले) कितने ही जन्म हमने रुख-वृक्षो को देखा, कितने ही जन्म हम पशु होकर उत्पन्न हुए; कितने ही जन्म हम नाग-कुलो मे (जन्म लेकर) आए और कितने ही जन्म हम पक्षी (बनाकर) उड़ाए गए। (यथा—"कई जनम भए कीट पतगा" " सुखमनी) ॥२॥

हट पटण बिज मंदर भंनै
करि चोरी घरि आवै ॥
अगहु देखै पिछहु देखै
तुझ ते कहा छपावै ॥३॥

(हम जीव तो) नगर के दुकान और पक्के महल तोडते है (अर्थात सध लगाते है) और चोरी करके (अपने) घर मे आते है, किन्तु हे सर्वदृष्टा प्रभु ! तू आगे पीछे (सर्वत्र) देख रहा है, फिर तुझसे (अपनी चोरी) कहाँ छिपा सकता हूँ ? (अर्थात तू अन्तर्यामी है इसलिए जीव के कर्म तुमसे छिपे हुए नहीं हैं) ॥३॥

तट तीरथ हम नव खंड देखे
हट पटण बाजारा ॥
लै कै तकड़ी तोलणि लागा
घट ही महि वणजारा ॥४॥

हमने तीर्थों के किनारे, नव-खण्ड, नगर की दुकान और बाजार (सभी) देखे, किन्तु जब सौदागर होकर बुद्धि रूपी तराजू लेकर विचार रूपी बट्टो से अपने कर्मों को अन्दर ही तोलने लगे, (तब देखा कि) ॥४॥

जेता समुंदु सागरु नीरि भरिआ
तेते अउगण हमारे
दइआ करहु किछु मिहर उपावहु
डुबदे पथर तारे ॥५॥

हमारे अवगुण समुद्र के जल के समान अगणित हैं। (हे प्रभु !) तू (मेरे ऊपर) दया कर और कुछ कृपा करके हम डूबते हुए पत्थर (जीवो) को (इस भव-सागर से) तार दो ॥५॥

जीअड़ा अगनि बराबर तपै
भीतरि वगै काती ॥
प्रणवति नानकु हुकमु पछाणै
सुखु होवै दिनु राती ॥६॥५॥१७॥

हमारा जीव (मन) (निरन्तर तृष्णा रूपी) अग्नि में जल रहा है और भीतर (हृदय) मे (कपट की) छुरी चल रही है। हे नानक ! जो (जीव) 'उसके' हुकम को पहचानता है, उसे दिन-रात (सदैव) सुख (प्राप्त) होता है ॥६॥५॥१७॥

गउड़ी बैरागणि महला १॥

"नाम जप अन्यथा पछताएगा ।"

रैणि गवाई सोइ कै
दिवसु गवाइआ खाइ ॥
हीरे जैसा जनमु है
कउडी बदले जाइ ॥१॥

(हे मूर्ख !) रात सोने में गँवा रहा है और दिन खाने-पीने में गँवाता है। हीरे जैसा अनमोल है तेरा मनुष्य जन्म किन्तु कौडी के भाव (बदले) गँवा रहा है ॥१॥

नामु न जानिआ राम का ॥
मूड़े फिरि पाछै पछुताहि रे ॥१
॥रहाउ ॥

तू ने राम का नाम नही जाना। अरे मूढ़! फिर पीछे पछताएगा ॥१॥रहाउ॥

अनता धनु धरणी धरे
अनत न चाहिआ जाइ ॥
अनत कउ चाहन जो गए॥
से आए अनत गवाइ ॥२॥

(स्मरण रहे, जो जीव) अनन्त धन (के विशाल भण्डार) को धरती में दबाते रहते हैं, उन्हे अनन्त प्रभु की चाहना नही होती (क्योंकि माया का विरोध हरिनाम के साथ है)। (देखो !) जो भी अनन्त (धन) की लालसा में गए हैं, वे 'उस' अनन्त प्रभु को गँवा कर ही आए हैं ॥२॥

आपण लीआ जे मिलै
ता सभु को भागठु होइ ॥
करमा उपरि निबड़ै
जे लोचै सभु कोइ ॥३॥

यदि अपने ही परिश्रम से (धन) मिलने लगे तो सब कोई भाग्यशाली अथवा धनाढ्य हो जायँ। कर्मानुसार ही भाग्य का निर्णय होता है, भले ही सब कोई कितना ही चाहता रहे (अर्थात चाहे कोई कितनी भी धनादि की इच्छा करे) ॥३॥

नानक करणा जिनि कीआ
सोई सार करेइ ॥
हुकमु न जापी खसम का
किसै वडाई देइ ॥४॥१॥१८॥

हे नानक ! जिस प्रभु ने सृष्टि-रचना की है, वही इसकी सभाल (भी) करता है। 'उस' पति-परमेश्वर का हुकम नही जाना जा सकता कि 'वह' किसे बड़ाई देगा (अर्थात 'वह' जिसे चाहे बड़ाई दे सकता है।) ॥४॥१॥१८॥

गउड़ी बैरागणि महला १॥

"राम नाम की बनजारिन के प्यार की झलक।"

हरणी होवा बनि बसा
कंद मूल चुणि खाउ ॥

यदि (मैं) हरिणी होऊँ (अर्थात् बानप्रस्थ धारण करूँ) और बन में (मेरा) निवास हो तथा कंदमूल (फल-फूल) चुन-चुन कर

गुर परसादी मेरा सहु मिलै
वारि वारि हउ जाउ जीउ ॥१॥

खाती फिरूँ (तो भी मैं गुरु की शरण पड़कर प्रभु को ढूँढती रहूँगी)। (हाँ) यदि गुरु की कृपा से मुझे प्रियतम मिल जाय तो मैं बार-बार बलिहारी जाऊँगी (ऐसे बानप्रस्थ या बनवास के ऊपर) ॥१॥

मै बनजारनि राम की ॥
तेरा नामु वखरु वापारु जी ॥१॥ रहाउ ॥

हे राम ! मैं तेरी बनजारिन हूँ। तेरा नाम ही मेरा सौदा है और मैं उसी सौदे का व्यापार करती हूँ ॥१॥ रहाउ॥

कोकिल होवा अंबि बसा
सहजि सबद बीचारु ॥
सहजि सुभाइ मेरा सहु मिलै
दरसनि रूपि अपारु ॥२॥

यदि (मैं) कोयल होऊँ (अर्थात मीठे बोल बोलूँ) और आम के पेड़ पर (अर्थात सत्संग में) मेरा निवास हो तथा ज्ञान द्वारा अथवा सहज भाव से मैं शब्द (ब्रह्म) का विचार करूँगी। (हाँ) सहज स्वभाव से मेरा प्रियतम मुझे आकर मिलेगा जिसके दर्शन और रूप अपार हैं अथवा सहज और प्रेम की अवस्था पाकर मुझे मेरा अपार सुन्दर प्रियतम दर्शन दे देवे ॥२॥

मछुली होवा जलि बसा
जीअ जंत सभि सारि ॥
उरवरि पारि मेरा सहु वसै
हउ मिलउगी बाह पसारि ॥३॥

यदि (मैं) मछली होऊँ और जल में मेरा निवास हो (अर्थात प्रेम रूपी) जल मे मछली जैसे प्यासी होऊँ (और उसे सदा स्मरण करूँ), जो सब जीव-जन्तुओं की सभाल करता है। मेरा प्रियतम इस पार (इस लोक मे) और उस पार (परलोक में, सर्वत्र) वास करता है, मैं 'उसे' बाँह पसार कर मिलूँगी ॥३॥

नागनि होवा धर वसा
सबदु वसै भउ जाइ ॥
नानक सदा सोहागणी
जिन जोती जोति समाइ ॥४॥२॥ १६॥

यदि (मैं) नागिन होऊँ और धरती में मेरा निवास हो (अर्थात् नागिन की तरह धरती में गुफा बनाकर रहूँ) और शब्द (ब्रह्म) मेरे मन में बस जाय (जिससे सासारिक) भय दूर हो जाय। हे नानक ! वे (जीव-स्त्रियाँ ही) सुहागिने हैं, जिनकी ज्योति (परम) ज्योति (परमात्मा) मे समा जाती है ॥४॥ २॥१६॥

नोट: (हाँ) जीव चाहे गृहस्थी हो या संन्यासी, तपस्वी हो या विचारशील, जीवन का प्रयोजन 'प्रेम' और 'हरि प्राप्ति' ही होना चाहिए। गुरुदेव ने चार द्रष्टातो द्वारा समझाया है जैसे जल (मछली), धरती (नागिन), वायु (हरणी) और आकाश (कोयल)।

गउड़ी पूरबी दीपकी महला १॥

"गाओ सोहला तो पति परमेश्वर का सुख मिले।"

जै घरि कीरति आखीऐ
करते का होइ बीचारो ॥
तितु घरि गावहु सोहिला
सिवरहु सिरजणहारो ॥१॥

जिस घर मे कर्त्ता पुरुष (परमेश्वर)की कीर्ति गाई जाती है और 'उसका' (गुणो पर) विचार होता है उस घर मे सोहिला (मगलमय गीत) का गान करो और सृजनहार प्रभु का स्मरण करो ॥१॥

तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला ॥
हउ वारी जाउ
जितु सोहिलै सदा सुखु होइ ॥१ ॥रहाउ॥

तुम मेरे निर्भय परमेश्वर का सोहिला गाओ। मैं उस सोहिले पर बलिहारी जाता हूँ, जिससे (गाने से) सदा सुख (प्राप्त) होता है ॥१॥ रहाउ॥

नित नित जीअड़े समालीअनि
देखैगा देवणहारु ॥
तेरे दानै कीमति ना पवै
तिसु दाते कवणु सुमारु ॥२॥

(देखो 'उस' कर्त्ता द्वारा) नित्य-नित्य जीव सँभाले जाते हैं। 'वह' देनेवाला दाता तुम्हारी भी देखभाल करेगा। (हे कर्त्ता !) जब तुम्हारे दान की कीमत आँकी नही जा सकती तो तुझ दान के) दाता का कौन अन्त पा सकता है अथवा कौन गणना कर सकता है ? ॥२॥

संबति साहा लिखिआ
मिलि करि पावहु तेलु ॥

(मृत्यु के साथ विवाह का) संवत और लग्न (शुभ दिन) लिखा हुआ है (अर्थात् मृत्यु पूर्व-निश्चित है)। हे सज्जनों ! सारे

देहु सजण आसीसड़ीआ
जिउ होवै साहिब सिउ मेलु ॥३॥

मिलकर तेल गिराए और आशीर्वाद दे कि (मेरा अपने) साहब (पति) के साथ मिलन हो। (कन्या के अपने पति के घर में प्रवेश करते समय मित्र, सम्बन्धी आदि द्वार पर तेल गिराते हैं और सुहाग के गीत गाते हैं।) ॥३॥

घरि घरि एहो पाहुचा
सदड़े नित पवंनि ॥
सदणहारा सिमरीऐ
नानक से दिह आवंनि ॥४॥१॥२०॥

घर-घर मे विवाह रूपी मृत्यु का बुलावा नित्य पहुँचता रहता है (भाव हमारे आस-पास जो मृत्यु होती है यह मानो जीवितो के लिए निमन्त्रण-पत्र (चेतावनी) दिये जा रहे हैं कि तुम्हारा भी बुलावा आने वाला है)। हे नानक! आइये। बुलाने वाले (परमेश्वर) का स्मरण करें क्योंकि वे दिन (प्रस्थान करने के) निकट आ रहे है ॥४॥१॥२०॥

रागु गउड़ी महला ३ चउपदे ॥ गउड़ी गुआरेरी ॥

"सतगुरु से प्रेम-भाव रख तो भ्रम और भय दूर हो।"

गुरि मिलिऐ हरि मेला होई ॥
आपे मेलि मिलावै सोई ॥
मेरा प्रभु सभ बिधि आपे जाणै ॥
हुकमे मेले सबदि पछाणै ॥१॥

(हे भाई!) गुरु के मिलने मे हरि से मिलन होता है, किन्तु जब 'वह' स्वय जीव को मिलाता है तब गुरु से मिलाप होता है। मेरा प्रभु स्वय सभी विधियाँ जानता है। जिसको अपने हुक्म से सत्गुरु से मिलाता है, वही ब्रह्म रूप शब्द को पहचानता है अथवा जीव गुरु के शब्द से हरि को पहचान लेता है ॥१॥

सतिगुर कै भइ भ्रमु भउ जाइ ॥
भै राचै सच रंगि समाइ ॥१॥
रहाउ॥

सत्गुरु से प्रेम भाव रखने से भ्रम (दुविधा) और भय (जन्म-मरण का) दूर हो जाता है। जो जीव सत्गुरु के प्रेम मे रचकर लालो लाल होता है, वह सच्चे परमात्मा के आनन्द में समा जाता है ॥१॥रहाउ॥

गुरि मिलिऐ हरि मनि वसै सुभाइ ॥
मेरा प्रभु भारा कीमति नही पाइ ॥
सबदि सालाहै अंतु न पारावारु ॥
मेरा प्रभु बखसे बखसणहारु ॥२॥

गुरु के मिलने से स्वाभाविक ही हरि मन में आकर बसता है। 'वह' मेरा प्रभु बहुत बडा है और 'उसकी' कीमत आँकी नही जा सकती। जिस प्रभु का न अन्त है और न 'उसका' आर-पार है, 'उसकी' गुरु के शब्द द्वारा स्तुति करनी चाहिए। मेरा प्रभु क्षमाशील है, (हाँ) 'वह' सभी को (दोष) क्षमा करता है ॥२॥

गुरि मिलिऐ सभ मति बुधि होइ ॥
मनि निरमलि वसै सचु सोइ ॥
साचि वसिऐ साची सभ कार ॥
ऊतम करणी सबद बीचार ॥३॥

गुरु के मिलने से सभी की मत्ति और बुद्धि (श्रेष्ठ) होती है, मन निर्मल होता है और सत्य स्वरूप परमेश्वर अन्दर में आकर बसता है। सच्चे परमात्मा का अन्दर मे निवास होने से सब कम श्रेष्ठ हो जाते है और गुरु के शब्द पर विचार करने से ही जीव का जीवन-व्यवहार उत्तम होता है ॥३॥

गुर ते साची सेवा होइ ॥
गुरमुखि नामु पछाणै कोइ ॥
जीवै दाता देवणहारु ॥ ॥
नानक हरि नामे लगै पिआरु ॥४
॥१॥२१॥

गुरु द्वारा ही सच्ची सेवा (अर्थात् भक्ति प्राप्त) होनी है, किन्तु ऐसा कोई विरला ही है जो गुरु की शिक्षा द्वारा नाम को पहचानता है। हे नानक ! हरि का नाम देने वाला दाता गुरु है, वह सदैव जीविन है और उसकी दया से ही हरि नाम के साथ प्यार लगता है ॥४॥१॥२१॥

गउड़ी गुआरेरी महला ३॥

"गुरु की महिमा।"

गुर ते गिआनु पाए जनु कोइ ॥
गुर ते बुझै सीझै सोइ ॥
गुर ते सहजु साचु बीचारु ॥
गुर ते पाए मुकति दुआरु ॥१॥

कोई विरले ही हं जो गुरु से ज्ञान प्राप्त करते है। जो गुरु से (शिक्षा लेकर) समझते हैं, वे ही (प्रभु-दरबार मे) स्वीकृत (प्रमाणित) होते हैं। गुरु से ही ज्ञान और सत्य स्वरूप परमात्मा का विचार मिलता है और गुरु से ही मुक्ति का द्वार प्राप्त होता है॥१॥

पूरै भागि मिलै गुरु आइ ॥
साचै सहजि साचि समाइ ॥१॥
रहाउ॥

पूर्ण भाग्य से ही जीव गुरू से आकर मिलता है। सच्चे गुरु द्वारा दिये गये ज्ञान से ही सत्य स्वरूप परमात्मा मे वह समा जाता है ॥१॥रहाउ॥

गुरि मिलिऐ त्रिसना अगनि बुझाए ॥
गुर ते सांति वसै मनि आए ॥
गुर ते पवित पावन सुचि होइ ॥
गुर ते सबदि मिलावा होइ ॥२॥

गुरु के मिलने से ही तृष्णा की अग्नि बुझ जाती है और गुरु की सहायता से ही मन में शान्ति आकर बसती है। गुरु से ही जीव पवित्र, शुद्ध और उज्ज्वल होता है और गुरु से ही शब्द जो प्रभु से मिलाने वाला है, मिलता है ॥२॥

बाझु गुरू सभ भरमि भुलाई ॥
बिनु नावै बहुता दुखु पाई ॥
गुरमुखि होवै सु नामु धिआई ॥
दरसनि सचै सची पति होई ॥३॥

गुरु के बिना सभी जीव भ्रम में भूले हुए हैं और नाम के बिना बहुत दुःख प्राप्त करते हैं, किन्तु जो (जीव) गुरु के सम्मुख हुए हैं, वे ही नाम का ध्यान करते हैं। गुरु द्वारा ही सत्य स्वरूप परमात्मा का दर्शन होता है और सच्ची प्रतिष्ठा (प्राप्त) होती है ॥३॥

किसनो कहीऐ दाता इकु सोई ॥
किरपा करे सबदि मिलावा होई ॥
मिलि प्रीतम साचे गुण गावा ॥
नानक साचे साचि समावा ॥४॥
२॥२२॥

और किसे कहे ? नाम को देने वाला एक गुरु ही है। जब गुरु कृपा करता है तब ब्रह्म रूप शब्द से मिलाप होता है। हे नानक ! (अभिलाषा है कि मैं) प्रियतम गुरु से मिलकर सत्य स्वरूप परमात्मा के गुण गाऊँ और सत्य होकर सच्चे परमात्मा में समा जाऊँ ॥४॥२॥२२॥

गउड़ी गुआरेरी महला ३॥

"सत्संग ही श्रेष्ठ स्थान है।"

सु थाउ सचु मनु निरमलु होइ ॥
सचि निवासु करे सचु सोइ ॥
सची बाणी जुग चारे जापै ॥
सभु किछु साचा आपे आपै ॥१॥

वह स्थान (सत्संग) सच्चा है, जहाँ जीव का मन निर्मल होता है। जो सत्य में निवास करता है (अर्थात् जिसका रहन-सहन सच्चा है) उसकी शोभा सच्ची होती है, उसकी वाणी सत्य है और उसकी महिमा चारों युगों में विख्यात होती है। (वह जान लेता है कि 'वह' हरि) सब कुछ आप ही आप है अथवा वह सभी में एक सच्चे परमात्मा का स्वरूप देखता है ॥१॥

करमु होवै सतसंगि मिलाए ॥
हरिगुण गावै बैसि सु थाए ॥१॥
रहाउ॥

प्रभु की कृपा जिन पर होती है, उनको ही 'वह' सत्संग में मिलता है। वे इस सत्संग रूपी श्रेष्ठ स्थान पर बैठकर हरि के गुण गाते हैं ॥१॥रहाउ॥

जलउ इह जिहवा दूजै भाइ ॥
हरिरसु न चाखै फीका आलाइ ॥

यह जिह्वा, जो द्वैत-भाव के बोल बोलती है, (अच्छा है) जल जाय क्योंकि वह हरि (नाम) के रस (आनन्द) का रसास्वादन नहीं

बिनु बूझे तनु मनु फीका होइ ॥ बिनु नावै दुखीआ चलिआ रोइ ॥ २॥	करती और जो बोलती है उसमें कोई स्वाद नही है। (हरि रस को) जानने के बिना इस जीव का तन और मन किसी भी काम के नही क्योकि दोनो फीके होते है। नाम के बिना यह जीव दुःखी होकर यहाँ से रोकर चला जाता है॥२॥
रसना हरिरसु चाखिआ सहजि सुभाइ गुर किरपा ते सचि समाइ ॥ साचे राती गुर सबदु बीचार ॥ अंमृतु पीवै निरमल धार ॥३॥	रसना से जिन प्यारो ने हरि नाम का स्वाद सहज ही चख लिया है, वे गुरु की कृपा से सत्य स्वरूप परमात्मा में समा जाते हैं। उनकी वृत्ति गुरु के उपदेश पर विचार करने से सच्चे परमात्मा में अनुरक्त है और वे अमृत रूप प्रभु के निर्मल नाम की धारा को पीते हैं॥३॥
नामि समावै जो भाडा होइ ॥ ऊंधै भांडै टिकै न कोइ ॥ गुर सबदी मनि नामि निवासु ॥ नानक सचु भांडा जिसु सबद पिआस ॥४॥३॥२३॥	यदि हृदय रूपी भाँडा शुद्ध होगा तो नाम उसमें समा सकता है (हाँ) उल्टे भांडे (अर्थात अशुद्ध हृदय) मे नाम कदाचित टिक नही सकता। (दृष्टांत -जैसे शेरनी का दूध केवल सोने के भाँडे मे ही सुरक्षित रहता है)। गुरु के शब्द से मन में नाम का निवास होता है। हे नानक! जिसको (गुरु के) शब्द की प्यास है, उसका ही हृदय रूपी भाँडा सच्चा है॥४॥३॥२३॥
गउड़ी गुआरेरी महला ३॥	"बिना प्रेमा भक्ति के गाना व्यर्थ हैं।"
इकि गावत रहै मनि सादु न पाइ ॥ हउमै विचि गावहि बिरथा जाइ॥ गावणि गावहि जिन नाम पिआरु ॥ साची बाणी सबद बीचारु ॥१॥	कुछ जीव (पेट के लिए) गाते हैं, (किन्तु परमात्मा की प्रीति के बिना) मन मे (नाम का) रस (आनन्द) नही प्राप्त करते। वे अहम् (द्वैत-भाव) के कारण गाते हैं, जिससे उनका गाना व्यर्थ जाता है। जिनका नाम से प्यार है, वास्तव मे वे ही प्रभु के गीत गाते हैं। उनकी वाणी सच्ची है जो शब्द पर विचार करते हैं॥१॥
गावत रहै जे सतिगुर भावै ॥ मनु तनु राता नामि सुहावै ॥१॥ रहाउ॥	वे ही (परमात्मा के गीत) गाते रहते हैं जो सत्गुरु को अच्छे (प्रिय) लगते हैं। उनका मन और तन नाम में अनुरक्त है इस-लिए वे शोभायमान हैं॥१॥रहाउ॥
इकि गावहि इकि भगति करेहि ॥ नामु न पावहि बिनु असनेह ॥	(मनमुख) बिना प्रेम के गाते है और कुछ जीव नाचते है (अर्थात् रास पाते है), किन्तु वे प्रेमाभक्ति के बिना नाम प्राप्त

सची भगति गुर सबद पिआरि ॥
अपना पिरु राखिआ सदा उरि धारि ॥२॥

नही करते। सच्ची भक्ति है, गुरु के शब्द के साथ प्यार रखना (जिनका गुरू के शब्द के साथ प्यार है) वे अपने प्रियतम परमात्मा को सदैव हृदय में धारण करके रखते हैं ॥२॥

भगति करहि मूरख आपु जणावहि ॥
नचि नचि टपहि बहुतु दुखु पावहि ॥
नचिऐ टपिऐ भगति न होइ ॥
सबदि मरै भगति पाए जनु सोइ ॥३॥

वे भक्त नही जो भक्ति करते हुए भी अपने आपको जताते है (हाँ) वे नाच-नाच कर टापते हैं (अर्थात रास पाते हैं) और अधिक दु:ख प्राप्त करते हैं क्योंकि नाचने-टापने से सच्ची भक्ति नही होती। (हाँ) जो जीव गुरु के शब्द द्वारा मरते हैं (अर्थात् अहम् भाव का विसर्जन करते हैं), वे ही जन परमेश्वर की भक्ति प्राप्त करते हैं ॥३॥

भगति वछलु भगति कराए सोइ ॥
सची भगति विचहु आपु खोइ ॥
मेरा प्रभु साचा सभ बिधि जाणै ॥
नानक बखसे नामु पछाणै ॥४॥४॥२४॥

भगवान, जो भक्त का रक्षक व प्यारा है, 'वह' स्वयं ही (भक्त से) भक्ति करवाता है। सच्ची भक्ति करने से अहम् भाव (अहंकार) अन्दर से नाश हो जाता है। हे नानक! मेरा प्रभु (प्रियतम) सच्चा है और सभी विधियाँ जानता है किन्तु जिन पर कृपा-दृष्टि करके नाम की बख्शिश करता है, वे ही 'उसके' नाम की महिमा को जानते हैं ॥४॥४॥२४॥

गउड़ी गुआरेरी महला ३॥

"मन जीते जगु जीतु।"

मनु मारे धातु मरि जाइ ॥
बिनु मूए कैसे हरि पाइ ॥
मनु मरै दारू जाणै कोइ ॥
मनु सबदि मरै बूझै जनु सोइ ॥१॥

जब (जीव) मन (के सकलप-विकलपो) को मारता है, तब उसका (इधर-उधर) भटकना नाश हो जाता है। मन (के सकलप-विकलपो) को मारने के बिना, जीव कैसे हरि को प्राप्त कर सकता है? मन को मारने की औषधि कोई विरला ही जानता है। जिसका मन गुरु के शब्द द्वारा मर गया है, वही दास परमात्मा को जानता है ॥१॥

जिसनो बखसे दे वडिआई ॥
गुर परसादि हरि वसै मनि आई ॥१॥रहाउ॥

जिस (जीव) को प्रभु नाम की बढाई देकर बख्शिश करता है, उसके मन मे गुरु की कृपा से हरि आकर बसता है ॥१॥ रहाउ॥

गुरमुखि करणी कार कमावै ॥
ता इसु मन की सोझी पावै ॥

जो गुरमुख हैं, वे मन को मारने के लिए भक्ति रूपी कर्म करते हैं और फिर उन्हें मन (के स्वभाव) की समझ आती है। मन हौमै रूपी शराब पीकर मदोन्मत हाथी की तरह मस्त रहता

मनु मै मतु मैगल मिकदारा ॥
गुरु अंकसु मारि जीवालणहारा ॥
२॥

है, किन्तु गुरु रूपी पीलबान का शब्द रूपी अंकुश उसे मारकर दोबारा जीवन देने वाला है ॥२॥

मनु असाधु साधै जनु कोइ ॥
अचरु चरै ता निरमलु होइ ॥
गुरमुखि इहु मनु लइआ सवारि ॥
हउमै विचहु तजे विकार ॥३॥

असाध्य रोग जैसे मन को कोई विरला ही वश मे करता है। मन जो चलायमान है, जब अचल (स्थिर) हो जाता है, तभी मन निर्मल होता है। गुरमुखो ने ही अहकार आदि विकारों को त्याग करके मन को सँवार (सुन्दर बना) लिया है ॥३॥

जो धुरि राखिअनु मेलि मिलाइ ॥
कदे न विछुड़हि सबदि समाइ ॥
आपणी कला आपे ही जाणै ॥
नानक गुरमुखि नामु पछाणै ॥४॥
५॥२५॥

जिनको प्रभु ने पहले से ही सत्सग रूपी मेल से मिला लिया है, वे कभी भी प्रभु से बिछुड़ते नही क्योकि वे शब्द (ब्रह्म) में लीन हो जाते हैं। हे नानक ! प्रभु जो अपनी शक्ति स्वय ही जानता है, 'उसके' नाम की पहचान गुरु के शिक्षा द्वारा ही प्राप्त होती है ॥४॥५॥२५॥

गउड़ी गुआरेरी महला ३॥

"अहकार ही वियोग का कारण है।"

हउमै विचि सभु जगु बउराना ॥
दूजै भाइ भरमि भुलाना ॥
बहु चिंता चितवै आपु न पछाना ॥
धंधा करतिआ अनदिनु विहाना ॥१॥

अहकार मे ही सारा जगत पागल हो रहा है और द्वैत-भाव के कारण भ्रम मे भूला हुआ है। जीव अनेक प्रकार की चिन्ताए करता है और अपने (असली) स्वरूप को नही पहचानता क्योकि (सासारिक) धधा करते हुए, उसका रात-दिन व्यतीत हो जाता है ॥१॥

हिरदै रामु रमहु मेरे भाई ॥
गुरमुखि रसना हरि रसन रसाई
॥१॥रहाउ॥

हे मेरे (प्यारे) भाई ! हृदय मे तू राम नाम का जाप कर। गुरमुखों की रसना हरि के नाम रूपी अमृत रस मे रसीली हो चुकी है ॥१॥रहाउ॥

गुरमुखि हिरदै जिनि रामु पछाता ॥
जगु जीवनु सेवि जुग चारे जाता ॥
हउमै मारि गुरसबदि पछाता ॥
किरपा करे प्रभ करम बिधाता ॥२॥

जिन गुरमुखो ने अपने हृदय मे राम को पहचाना है, वे ही पुरुष जगजीवन परमात्मा की सेवा करके चारो युगों मे जाने जाते हैं। किन्तु जिन पर कर्मों के फल को देने वाला प्रभु कृपा करता है, वे ही अहंकार को मारकर गुरु के शब्द द्वारा हरि को पहचानते हैं ॥२॥

से जन सचे जो गुरसबदि मिलाए ॥ धावत वरजे ठाकि रहाए ॥ नामु नव निधि गुर ते पाए ॥ हरि किरपा ते हरि वसै मनि आए ॥३॥	वे ही दास सच्चे हैं जो गुरु-शब्द द्वारा (प्रभु से) मिला दिये गये हैं। उन्होने दौड़ते हुए मन को रोक रखा है और नव निद्धियो को देनेवाले परमात्मा का जो नाम है, वह गुरु द्वारा प्राप्त किया है। हरि की कृपा से उनके मन मे हरि ने स्वय आकर निवास किया है ॥३॥
राम राम करतिआ सुखु सांति सरीर ॥ अंतरि वसै न लागै जम पीर ॥ आपे साहिबु आपि वजीर नानक सेवि सदा हरि गुणी गहीर ॥ ४॥६॥२६॥	(हे भाई!) राम राम जपने से शरीर मे सुख और शान्ति होती है। (जाप के अभ्यास से राम) अन्दर आकर बसता है और फिर यम (के दु ख)की पीडा नही लगती (अर्थात राम जपने वाला जीवन मुक्त हो जाता है)। (मेरा) राम स्वय ही साहब है और स्वय ही वजीर (सन्त) है। हे नानक! हरि, जो गुणो का समुद्र है, 'उसकी' सदैव सेवा करो ॥४॥६॥२६॥
गउड़ी गुआरेरी महला ३॥	"दाता प्रभु को कदाचित विस्मृत नहीं करना चाहिए।"
सो किउ विसरै जिस के जीअ पराना ॥ सो किउ विसरै सभ माहि समाना ॥ जितु सेविऐ दरगह पति परवाना ॥१॥	(हे भाई!) 'उस' प्रभु को भला क्यो विस्मृत करते हो, जिसके ये(सब)जीव और प्राण हैं। 'उसे' भला क्यो विस्मृत करते हो जो सभी मे समाया हुआ है और जिसकी सेवा करने से दरबार में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और(जीव)स्वीकृत होता है॥१॥
हरि के नाम विटहु बलि जाउ ॥ तूं विसरहि तदि ही मरि जाउ ॥१॥ रहाउ॥	काश! हरि के नाम पर मैं बलिहारी जाऊँ। हे हरि! जब तू विस्मृत होता है, तब मानो मेरी मृत्यु होती है ॥१॥रहाउ॥
तिन तूं विसरहि जि तुधु आपि भुलाए ॥ तिन तूं विसरहि जि दूजै भाए ॥ मनमुख अगिआनी जोनी पाए ॥२॥	हे हरि! जिनको तू स्वयं भुलाता है, वे ही तुझे विस्मृत करते हैं। (हाँ) जिनका प्यार दूसरी (माया) से है, वे (ही) तुम्हें विस्मृत करते हैं। ऐसे मनमुख अज्ञानी जीवो को तू स्वयं चौरासी के चक्र में डालता है ॥२॥

जिन इक मनि तुठा
से सतिगुर सेवा लाए ।।
जिन इक मनि तुठा
तिन हरि मंनि वसाए ।।
गुरमती हरिनामि समाए ।।३।।

(हे हरि !) जिन (गुरमुखो) पर तू प्रसन्न होता है, उनको तू एकाग्र मन करके गुरु की सेवा में लगाता है। जिन (गुरमुखों) पर तू प्रसन्न होता है, वे एकाग्र चित्त से तुझ हरि (नाम) को मन में बसाते हैं। वे गुरु की मत्ति ग्रहण करके हरि नाम में समा जाते हैं ।।३।।

जिना पोतै पुंनु से गिआन बीचारी ।।
जिना पोतै पुंनु तिन हउमै मारी ।।
नानक जो नामि रते तिन कउ
बलिहारी ।।४।।७।।२७।।

जिनके खजाने मे पुण्य है (अर्थात जिन्होंने पूर्व-जन्म मे पुण्य किये है), वे ज्ञानी और विचारवान हैं। जिनके खजाने मे पुण्य है, उन्होंने हौमै को मार दिया है। हे नानक ! जो (जीव) नाम मे अनुरक्त है, उन पर काश मैं बलिहारी जाऊँ ।।४।।७।। २७।।

गउड़ी गुआरेरी महला ३।।

"हरी अकथनीय है। अत 'उसके' गुण गाने चाहिए।"

तूं अकथु किउ कथिआ जाहि ।।
गुर सबदु मारणु मन माहि समाहि
तेरे गुण अनेक कीमति नह पाहि
।।१।।

(हे प्रभु !) तू अकथनीय है, मैं कैसे तेरा कथन करूं ? जिसके मन मे गुरु का शब्द रूपी मसाला है, वे ही तुम मे समाये हुए हैं। हे प्यारे ! तेरे अनेक गुण हैं, जिनकी कीमत आँकी नही जा सकती ।।१।।

जिसकी बाणी तिसु माहि समाणी ।।
तेरी अकथ कथा गुर सबदि
वखाणी ।।१।।रहाउ।।

वाणी जिस परमेश्वर की है, 'उसी' में समाई हुई है (भाव वाणी ईश्वरीय है और वह अपने रचियता की तरह अनन्त है)। हे अकथनीय (प्रभु) ! गुरुओ ने शब्द द्वारा ऐसी कथा वर्णन की है ।।१।।रहाउ।।

जह सतिगुरु तह सतसंगति बणाई ।।
जह सतिगुरु सहजे हरिगुण गाई ।।
जह सतिगुरु तहा हउमै सबदि
जलाई ।।२।।

जहाँ सत्गुरु है, वहाँ सत्सग रहना है। जहाँ सत्गुरु है, वहाँ सहज ही हरि के गुण गाए जाते हैं। जहाँ सत्गुरु है, वहाँ शब्द द्वारा हौमै जलाई जाती है (अर्थात निवृत्त होती है।) ।।२।।

गुरमुखि सेवा महली थाउ पाए ।।
गुरमुखि अंतरि हरिनामु वसाए ।।
गुरमुखि भगति हरि नामि समाए
।।३।।

गुरमुख सेवा के कारण परमात्मा के स्वरूप में स्थित हो जाते हैं। गुरमुख (हृदय) अन्दर हरिनाम को बसाते हैं और गुरमुख (हरि की) भक्ति करके हरिनाम मे समा जाते हैं ।।३।।

आपे बखसि करे दातारु ॥ पूरे सतिगुर सिउ लगै पिआरु ॥ नानक नामि रते तिन कउ जैकारु ॥४॥८॥२८॥	जिन गुरमुखों पर मेरा दाता (प्रभु) स्वयं बख्शिश करता है, उनका पूर्ण सत्गुरु से प्यार लगता है। हे नानक ! जो (जीव) नाम में अनुरक्त हैं उनकी (सदैव) जय (जयकार) है अथवा उनको हमारी नमस्कार है ॥४॥८॥२८॥
गउड़ी गुआरेरी महला ३॥	"परमात्मा सृष्टि-कर्ता है, गुरमुख ही केवल 'उसका' दर्शन पाता है।"
एकसु ते सभि रूप हहि रंगा ॥ पउणु पाणी बैसंतरु सभि सहलंगा ॥ भिंन भिंन वेखै हरि प्रभु रंगा ॥१॥	एक प्रभु से ही सभी आकार (रूप) और रग (उत्पन्न) हुए है। पवन, पानी, अग्नि (आकाश और पृथ्वी) इन तत्वो के मिलावट से (सारी मृष्टि को उत्पत्ति) हुई है। उसी भिन्न-भिन्न रगो वाली सृष्टि को हरि प्रभु (स्वय) देख रहा है (अर्थात् सभाल कर रहा है) ॥१॥
एकु अचरजु एको है सोई ॥ गुरमुखि वीचारे विरला कोई ॥१॥ रहाउ॥	आश्चर्य रूप हरि प्रभु एक ही है (अर्थात दूसरा कोई नही)। किन्तु कोई विरला गुरमुख ही 'उसका' विचार कर सकता है। (अर्थात् 'उसका' दर्शन प्राप्त कर सकता है) ॥१॥रहाउ॥
सहजि भवै प्रभु सभनी थाई ॥ कहा गुपतु प्रगटु प्रभि बणत बणाई ॥ आपे सुतिआ देइ जगाई ॥२॥	'वह' हरि प्रभु चाहे सहज ही सभी जगह बस रहा है, तो भी (मनमुख से) गुप्त होकर बसता है और गुरमुख को प्रकट होकर दर्शन देता है। (हाँ) प्रभु ने ही यह सारी रचना रची है। प्रभु स्वय अज्ञान की नीद मे सोए हुए जीवो को ज्ञान देकर जगाता है ॥२॥
तिस की कीमति किनै न होई ॥ कहि कहि कथनु कहे सभु कोई ॥ गुरसबदि समावै बूझै हरि सोई ॥३॥	'उस' हरि प्रभु की कीमत किसी से भी आँकी नही जा सकती। जो पहले ही कही गई है, (लोग) वही वार-बार कहते है। किन्तु जो जीव गुरु के शब्द द्वारा 'उसमे' समा जाते हैं, वे ही 'उस' हरि को समझते है ('यथा-नानक आखण सभ को आखै'—जपुजी, पौड़ी २१) ॥३॥
सुणि सुणि वेखै सबदि मिलाए ॥ वडी वडिआई गुर सेवा ते पाए ॥	जो जीव सुन-सुनकर (अर्थात् गुरु-शब्द सुनकर, विचारकर, मननकर और निध्यासन करके हरि प्रभु को) देखते हैं, उनको हरि (स्वयं) अपने साथ मिलता है, किन्तु वह महान बड़ाई

नानक नामि रते हरि नामि समाए ॥४॥९॥२९॥

गुरु की सेवा करने से प्राप्त होती है। हे नानक ! जो (जीव) नाम मे अनुरक्त हैं, वे हरिनाम मे समा जाते हैं। ॥४॥९॥२९॥

गउड़ी गुआरेरी महला ३॥

"मनमुख सोता अज्ञानता में, गुरमुख जागता ज्ञान से।"

मनमुखि सूता
माइआ मोहि पिआरि ॥
गुरमुखि जागे
गुण गिआन बीचारि ॥
से जन जागे जिन नाम पिआरि॥ १॥

मनमुख माया से प्यार रखकर मोह (अर्थात् अज्ञान) रूपी निद्रा में सोये रहते हैं और गुरमुख ज्ञान और परमात्मा के गुणों को विचार करके जागृत रहते हैं। वे ही दास सचमुच जाग्रत रहते हैं, जिनका नाम के साथ प्यार है ॥१॥

सहजे जागै सवै न कोइ ॥
पूरे गुर ते बूझै जनु कोइ ॥१॥रहाउ॥

जो जीव ज्ञान के कारण जाग्रत हैं, वे फिर अज्ञान रूपी नींद मे नही सोते। किन्तु कोई विरला ही दास पूर्ण गुरु से यह सूझ-बूझ प्राप्त करता है ॥१॥रहाउ॥

असंतु अनाड़ी कदे न बूझै ॥
कथनी करे तै माइआ नालि लूझै ॥
अंधु अगिआनी कदे न सीझै ॥२॥

किन्तु जो असन्त और अनाडी हैं, वे (गुरु के पास जाकर) कभी नही समझते। वे कहते हैं कि हमने समझ प्राप्त की है। पर वे माया की अग्नि मे जलते हैं ऐसे अन्धे अज्ञानी (जीव) कभी भी (हरि की दरबार में) नही स्वीकृत होते ॥२॥

इसु जुग महि राम नामि निसतारा ॥
विरला को पाए गुर सबदि वीचारा ॥
आपि तरै सगले कुल उधारा ॥३॥

कलियुग मे रामनाम जपने से ही (माया मोह से) छुटकारा होता है, किन्तु कोई विरला जीव गुरु के उपदेश पर विचार करने से (सहजावस्था) प्राप्त करता है। ऐसा (गुरमुख) जीव स्वयं तो पार होता हैं, किन्तु अपने समस्त कुटुम्ब का भी उद्धार करता है ॥३॥

इसु कलिजुग महि
करम धरमु न कोई ॥
कली का जनमु
चंडाल कै घरि होई ॥
नानक नाम बिना को मुकति न होई ॥४॥१०॥३०॥

(हे भाई !) इस कलियुग के समय में (श्रेष्ठ) कर्म-धर्म करने वाला कोई भी नही है, क्योंकि कलियुग के समय मे जीवों का जन्म (क्रोध रूपी) चण्डाल के गृह मे हुआ है (अर्थात् कलियुगी जीव काम क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार में मग्न हैं)। हे नानक ! (कलियुग मे) नाम के बिना कोई भी पांच (विकारो) से मुक्त नही हो सकता ॥४॥१०॥३०॥

गउड़ी महला ३ गुआरेरी ॥

"राम नाम की महिमा ।"

सचा अमरु सचा पातिसाहु ॥
मनि साचै राते हरि वेपरवाहु ॥
सचै महलि सचि नामि समाहु ॥१॥

(मेरा) हरि सच्चा बादशाह है और 'उसका' हुकम भी सच्चा है। जो मन से सच्चे हरि मे अनुरक्त रहता है, वह बेपरवाह है। वह सच्चे स्वरूप मे सच्चे नाम (जपने) से समा जाता है ॥१॥

सुणि मन मेरे सबदु वीचारि ॥
राम जपहु भवजलु उतरहु पारि॥१
॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! गुरू के शब्द का विचार सुन। तू राम का नाम जपकर ससार-सागर से पार उतर जा ॥१॥रहाउ॥

भरमे आवै भरमे जाइ॥
इहु जगु जनमिआ दूजै भाइ ॥
मनमुखि न चेतै आवै जाइ ॥२॥

(जो गुरु के शब्द के विचार से विमुख हैं, वे) भ्रम के कारण (संसार मे) आते (जन्मते) और भ्रम के कारण ही (ससार से) जाते (मरते) हे तथा इस जगत मे द्वैत-भाव के कारण (बार-बार) जन्म लेते हैं। (हाँ) मनमुख (जीव) परमात्मा का चिन्तन नहीं करते, जिससे उनका (चौरासी में) आना-जाना बना रहता है ॥२॥

आपि भुला
कि प्रभि आपि भुलाइआ ॥
इहु जीउ विडाणी चाकरी लाइआ ॥
महा दुखु खटे
बिरथा जनमु गवाइआ ॥३॥

(प्रश्न) वे स्वयं भूले हैं अथवा प्रभु ने उन्हें आप भुलाया है ? (उत्तर) जीव ने अपने मन को परायी चाकरी (सेवा) मे लगाया है (अर्थात् प्रभु की सेवा त्यागकर माया की सेवा में मन लगाया है), जिसमे वे अधिक दुख सहारन करते हैं और अपना अमूल्य जन्म व्यर्थ गँवाते हैं ॥३॥

किरपा करि सतिगुरू मिलाए ॥
एको नामु चेते
विचहु भरमु चुकाए ॥
नानक नामु जपे
नाउ नउनिधि पाए ॥४॥११॥३१॥

(किन्तु जिन भाग्यवान् जीवो को प्रभु अपनी) कृपा करके सत्गुरु से मिलता है, वे एक अद्वितीय परमात्मा के नाम को जपकर, चिन्तन करके (हृदय) अन्दर से भ्रम को दूर करते है। हे नानक ! जो नाम जपते है, 'वह' जो नवनिद्धियाँ देने वाला नामी (प्रभु) है, उसे प्राप्त करते हैं ॥४॥११॥३१॥

गउड़ी गुआरेरी महला ३॥

"हरि नाम प्राप्त करने की विधि ।"

जिना गुरमुखि धिआइआ
तिन पूछउ जाइ ॥

जिन गुरमुखों ने हरि के नाम का ध्यान किया है, उनसे परमेश्वर की प्राप्ति का उपाय जाकर पूछो, क्योकि गुरु की सेवा

गुर सेवा ते मनु पतीआइ ॥
से धनवंत हरिनामु कमाइ
पूरे गुर ते सोझी पाइ ॥१॥

करने से उनको मन मे निश्चय हुआ है। जो (जीव) हरि नाम की कमाई (जीवन मे) करते है और पूर्ण गुरु से सूझ-बूझ प्राप्त करते हैं, वे ही (असली) धनी हैं ॥१॥

हरि हरि नामु जपहु मेरे भाई ॥
गुरमुखि सेवा हरि घाल थाइ पाई ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे भाई ! तू (भी) हरि का नाम जप, क्योंकि गुरुमुखों की सेवा और परिश्रम हरि स्वीकृत करता है ॥१॥रहाउ॥

आपु पछाणै मनु निरमलु होइ ॥
जीवन मुकति हरि पावै सोइ ॥
हरिगुण गावै मति ऊतम होइ ॥
सहजे सहजि समावै सोइ ॥२॥

जिसने (निष्काम कर्म करके) अपने मन को निर्मल किया है, वह ही स्व-स्वरूप को पहचानता है। जो हरि को प्राप्त करता है, वह ही जीवन मुक्त है। हरि के गुण (प्रेम पूर्वक) गाने से मत्ति उत्तम होती है और वह सहज ही सहजावस्था अथवा शान्त स्वरूप परमात्मा मे समा जाता है ॥२॥

दूजै भाइ न सेविआ जाइ॥
हउमै माइआ महा बिखु खाइ ॥
पुति कुटंबि ग्रिहि मोहिआ माइ ॥
मनमुखि अंधा आवै जाइ ॥३॥

जिनको द्वैत-भाव है उनसे सेवा नही हो सकती, क्योकि अहंता और ममता मे, जो महाविष रूप माया है, उसे वे खाते हैं। माया ने उन्हे पुत्र, कुटुम्ब और घर मे मोहित कर रखा है, जिस कारण अन्धे मनमुख (जन्म-मरण के चक्र मे) आते-जाते है ॥३॥

हरि हरि नामु देवै जनु सोइ ॥
अनदिनु भगति गुर सबदी होइ ॥
गुरमति विरला बूझै कोइ ॥
नानक नामि समावै सोइ ॥४॥१२॥३२॥

जिसको हरि (दया करके) अपना नाम देता है, वह (गुरमुख) गुरु का शब्द ग्रहण करके दिन-रात भक्ति करता है। हे नानक ! कोई विरला ही जीव गुरु की मत्ति लेकर हरि को जानता है, किन्तु जो जीव जानता है, वह हरि के नाम में समा जाता है॥४॥१२॥३२॥

गउड़ी गुआरेरी महला ३॥

"गुरु की सेवा अति आवश्यक है।"

गुर सेवा जुग चारे होई ॥
पूरा जनु कार कमावै कोई ॥
अखुटु नाम धनु हरि तोटि न होई ॥
ऐथै सदा सुखु दरि सोभा होई ॥१॥

गुरुओ की सेवा चारो ही युगों मे फलीभूत हुई है, किन्तु (नाम की) सेवा की कमाई कोई पूर्ण दास करता है। उसे हरिनाम रूपी धन, जो अनन्त है और जिसकी त्रुटि नहीं होती, मिलता है। उसे यहाँ (इस लोक मे) सदैव सुख और परमात्मा की दरबार मे शोभा मिलती है ॥१॥

ए मन मेरे भरमु न कीजै ॥
गुरमुखि सेवा अंमृत रसु पीजै ॥१
॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! (नाम जपने में) भ्रम मत करना। गुरु के उपदेश द्वारा सेवा करके तू अमृत-नाम के रस का पान कर ॥१॥रहाउ॥

सतिगुरु सेवहि
से महा पुरख संसारे ॥
आपि उधरे कुल सगल निसतारे ॥
हरि का नामु रखहि उरधारे ॥
नामि रते भउजल उतरहि पारे ॥
२॥

जो सत्गुरु की सेवा करते हैं, वे संसार में महापुरुष हैं। वे स्वय तो (चौरासी से) बचते हे, किन्तु अपने सकल कुल का भी उद्धार करते हैं। वे हरि का नाम हृदय मे (सभाल कर) रखते हैं और नाम मे अनुरक्त होकर ससार-सागर से पार हो जाते हैं ॥२॥

सतिगुरु सेवहि सदा मनि दासा ॥
हउमै मारि कमलु परगासा ॥
अनहदु वाजै निज घरि वासा ॥
नामि रते घरि माहि उदासा ॥३॥

जो (जीव)सत्गुरु की सेवा करके सदैव मन में दास भाव रखते है (अर्थात विनम्र रहते है) वे अहम् भाव को मार देते हैं और कमलवत् प्रफुल्लित रहते हैं। उनका स्वरूप में निवास होता है और उन्हो के अन्तर्गत अनाहत शब्द बज रहा है। वे नाम में अनुरक्त हैं और गृहस्थ में रहकर भी उदास (निर्लिप्त) रहते हैं (भक्त राजा जनक जैसे) ॥३॥

सतिगुरु सेवहि
तिन की सची बाणी ॥
जुगु जुगु भगती आखि वखाणी ॥
अनदिनु जपहि हरि सारंगपाणी ॥
नानक नामि रते निहकेवल
निरबाणी ॥४॥१३॥३३॥

जो (जीव) सत्गुरु की सेवा करते हे, उनकी वाणी सच्ची है (अर्थात् वे सदैव सत्य बोलते हे)। युग-युग मे भक्त व्याख्यान करते हैं और रात दिन सारगपाणि (धनुष है हाथ में जिसके-विष्णु) भगवान को जपते हैं। हे नानक ! जो (जीव) नाम में अनुरक्त है, वे निर्वाण पदवी (अवस्था) प्राप्त करके (राग-द्वेष से रहित होकर) शुद्ध स्वरूप हो जाते हैं ॥४॥१३॥३३॥

गउड़ी गुआरेरी महला ३॥

"सत्गुरु की अति आवश्यकता है।"

सतिगुरु मिलै वडभागि संजोग ॥
हिरदै नामु नित हरिरस भोग ॥१॥

जिन (जीवो) को सत्गुरु उत्तम भाग्य के संयोग से मिलता है, उनके हृदय में नाम का वास है और वे सदैव हरिनाम का रस भोगते हैं ॥१॥

गुरमुखि प्राणी नामु हरि धिआइ ॥
जनमु जीति लाहा नामु पाइ ॥१॥ रहाउ॥

हे प्राणी ! गुरु का उपदेश ग्रहण करके, तू हरि (नाम) का ध्यान करके नाम का लाभ प्राप्त कर और अपना मनुष्य जन्म सफल कर ॥१॥ रहाउ॥

गिआनु धिआनु गुर सबदु है मीठा ॥
गुर किरपा ते किनै विरलै चखि डीठा ॥२॥

जिन (जीवों) को गुरु का शब्द मीठा (प्यारा) लगता है, उनको ज्ञान और ध्यान प्राप्त होता है, किन्तु गुरु की कृपा से कोई विरले जिज्ञासु ने (ज्ञान और ध्यान का) आनन्द चखकर देखा है ॥१॥ रहाउ॥

करम कांड बहु करहि अचार ॥
बिनु नावै ध्रिगु ध्रिगु अहंकार ॥३॥

(धर्म-शास्त्र के अनुसार) जो अधिक कर्मकाड करते है, किन्तु अहकार (भी) करते हैं, वे नाम के बिना रहते हैं । अत: उन्हे धिक्कार है, (हाँ) धिक्कार है ॥३॥

बंधनि बाधिओ माइआ फास ॥
जन नानक छूटै गुर परगास ॥४॥ १४॥३४॥

वे (नाम से विहीन, अहकारी जीव) माया बन्धन रूपी फाँसी में बन्धे रहते है । हे दास नानक ! (ऐसा बन्धा हुआ जीव भी) गुरु के ज्ञान रूपी प्रकाश से छूट सकता है ॥४॥१४॥३४॥

महला ३ गउड़ी बैरागणि ॥

"जो भिन्नता दीख पडती है, वह निपट भ्रम ही है।"

जैसी धरती ऊपर मेघुला बरसतु है
किआ धरती मधे पाणी नाही ॥
जैसे धरती मधे पाणी परगासिआ
बिनु पगा बरसत फिराही ॥१॥

जैसे धरती पर मेघ (पानी) बरसता है, (यदि विचार किया जाय तो) क्या (धरती मे पहले) पानी नही था ? जैसे धरती मे पानी प्रकट है, फिर भी बादल पैरों के बिना बरसता फिरता है (और अनेक जीवों का उद्धार करता है, उसी प्रकार सत्गुरु की वाणी अनेको का उद्धार करती है । वेद-शास्त्रादि धर्म-ग्रन्थों मे प्रभु को पाने का मार्ग बराबर दिखाया गया है। किन्तु सस्कृत भाषा में होने के कारण जन समूह लाभ नही ले सकते । अत. मेरे गुरुदेव की बाणी अति सरल भाषा में है । वह उन बादलों की तरह देश-देशान्तरों में नाम की वर्षा करके अनेकों का जीवन हरा-भरा कर देती है) ॥१॥

बाबा तूं ऐसे भरमु चुकाही ॥
जो किछु करतु है
सोई कोई है रे
तैसे जाइ समाही ॥१॥रहाउ॥

हे बाबा (पण्डित जी) ! तू अपना भ्रम ऐसे समझकर निवृत्त कर कि जो (सब) कुछ कर रहा है, वह (कर्त्तार ही कर रहा है और कोई नहीं) है । (जैसे जल—बादल, नदी-नाले अनेक रूपों में विचरता है, किन्तु अन्त में सारा जल समुद्र में समा जाता है), तैसे (भिन्न-भिन्न रूप 'उसी' में लीन हो जायेंगे) किन्तु, अरे ! ऐसी समझवाला (विरला ही) कोई है ॥१॥रहाउ॥

इसतरी पुरख होइ कै
किआ ओइ करम कमाही ॥
नाना रूप सदा हहि तेरे
तुझही माहि समाही ॥२॥

(प्रश्न यदि एक कर्त्तार ही उत्पन्न करने वाला है, तब उत्पत्ति के लिए स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध क्यों होता है ? उत्तर :) स्त्री और पुरुष इकट्ठे होकर क्या कर्म करते हैं (अर्थात् विषय-विकारों मे प्रवृत्त होते हैं और नीच कर्म करते हैं। सन्तान उनके वश में भी नही है। अत: जीव को तो सदैव प्रार्थना ही करनी चाहिए कि हे कर्त्तार !) ये भिन्न-भिन्न रूप तेरे ही हैं और अन्त में तुम्हारे मे ही लीन हो जायेंगे ॥२॥

इतने जनम भूलि परे से
जा पाइआ ता भूले नाही ॥
जा का कारजु सोई पर जाणै
जे गुर कै सबदि समाही ॥३॥

हम बहुत से जन्म भ्रम में ही पडे रहे थे, किन्तु जब, हे प्रभु ! तुम्हें पाया है तो भूलते नही (अर्थात ज्ञान प्राप्त होने से भ्रम की निवृति होती है और निश्चय होता है कि) जिस (कर्त्तार) का यह (भिन्न भिन्न प्रकार वाला) कार्य (जगत) है, उसे वही अच्छी तरह जानता है, जो गुरु के शब्द में समाया हुआ है ॥३।

तेरा सबदु तूं है हहि आपे
भरमु कहा ही ॥
नानक ततु तत सिउ मिलिआ
पुनरपि जनमि न आही ॥४॥१॥
१५॥३५॥

(हे प्रभु !) (सर्वत्र) तेरा ही हुकम चल रहा है और तुम आप ही सब कुछ हो अत: भ्रम कहाँ हो सकता है ? हे नानक ! जब जीवतत्व (आत्मा) (परम) तत्व (परमात्मा) के साथ मिल जाता है तब फिर (पुनरावृत्ति) उसे जन्म (मरण) नही है ॥४॥१॥ १५॥३५॥

गउड़ी बैरागणि महला ३॥

"यमकाल सभी को खाए जा रहा है। मुक्ति कैसे प्राप्त हो ?"

सभु जगु कालै वसि है
बाधा दूजै भाइ ॥
हउमै करम कमावदे
मनमुखि मिलै सजाइ ॥१॥

समस्त संसार (नाम के बिना) द्वैत-भाव मे बँधा होने के कारण यमकाल के वशीभूत है। जो जीव अहंभाव के कर्म करते हैं उन मनमुखों को सजा मिलती है (अर्थात अहंभाव और द्वैत-भाव करने वालों को यमदूत का डंडा सिर पर सहारन करना पड़ता है।) ॥१॥

मेरे मन गुर चरणी चितु लाइ ॥
गुरमुखि नामु निधानु लै
दरगह लए छडाइ ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! गुरु के चरणों में चित्त लगा और गुरु के द्वारा नाम का खजाना लेने पर तुझे धर्मराजा की कचहरी से छुड़ा देगा ॥१॥रहाउ॥

लख चउरासीह भरमदे
मन हठि आवै जाइ ॥

(मनुमुख) चौरासी (योनियों) में मन के हठ के कारण भटकते हैं और (बारम्बार) आते (जन्मते) और जाते (मरते)

गुर का सबदु न चीनिओ
फिरि फिरि जोनी पाइ ॥२॥

हैं। उन्होने गुरु का शब्द (अर्थात रामनाम) नही पहचाना (समझा) है, इसलिए वे बार-बार योनियों में डाले जाते हैं ॥२॥

गुरमुखि आपु पछाणिआ
हरिनामु वसिआ मनि आइ ॥
अनदिनु भगती रतिआ
हरि नामे सुखि समाइ ॥३॥

किन्तु जो गुरमुख हैं, उन्होने अपने स्वरूप को पहचाना है और हरि का नाम उनके मन मे आकर बसा है। गुरमुखों का मन रात-दिन (प्रभु की) भक्ति मे अनुरक्त रहता है और हरि-नाम जपकर सुख स्वरूप (हरि) में समा जाते हैं ॥३॥

मनु सबदि मरै परतीति होइ
हउमै तजे विकार ॥
जन नानक करमी पाईअनि
हरि नामा भगति भंडार ॥४॥२॥
१६॥३६॥

यदि जीव गुरु के शब्द से अपने मन को मार दे तो उसे (स्वरूप मे) विश्वास (निश्चय) हो। हे दास नानक! हरिनाम भक्ति का भण्डार है, वह भाग्यो से, (हाँ) (शुभ) कर्मों से प्राप्त होना है ॥४॥२॥१६॥३६॥

गउड़ी बैरागणि महला ३॥

"गुणीवान पुरुष ही परम आनन्द अनुभव करते हैं।"

पेईअड़ै दिन चारि है
हरि हरि लिखि पाइआ ॥
सोभावंती नारि है
गुरमुखि गुण गाइआ ॥
पेवकड़ै गुण संमलै
साहुरै वासु पाइआ ॥
गुरमुखि सहजि समाणीआ
हरि हरि मनि भाइआ ॥१॥

मायके (इस ससार) में (प्रत्येक) जीव चार दिनों का (अतिथि) है। यह बात हरि परमात्मा ने सबके मस्तक पर लिखकर डाल रखी है। (यह समझ कर कि जीव थोडे समय के लिये ससार मे आया है, जो) गुरमुख रूपी जीव—स्त्री गुरु से शिक्षा लेकर प्रभु के गुण गाती है, वह शोभा वाली स्त्री है। जो जीव-स्त्री मायके में प्रभु—पति के गुण सभालती है, वह साहुरे (परलोक मे) भी (पति-परमेश्वर के साथ) निवास प्राप्त करती है। जिन गुरमुख स्त्रियों के मन को हरि, (हाँ) हरि नाम प्रिय लगता है, वे सहज ही 'उसमे' समा जाती हैं ॥१॥

ससुरै पेईऐ पिरु वसै
कहु कितु बिधि पाईऐ ॥
आपि निरंजनु अलखु है
आपे मेलाईऐ ॥१॥रहाउ॥

(जिज्ञासु का प्रश्न है, हे गुरुदेव! जो) प्रियतम परमात्मा ससुराल (परलोक में) और मायके (इस ससार) में बसता है, वह किस विधि से प्राप्त होता है? (उत्तर.) परमात्मा, जो अलक्ष्य है और माया से रहित निरंजन है, 'वह' स्वयं जीव-स्त्री को अपने साथ मिलाता है (तभी 'उसे' प्राप्त किया जा सकता है) ॥१॥रहाउ॥

आपे ही प्रभु देहि मति
हरिनामु धिआईऐ ॥
वडभागी सतिगुरु मिलै
मुखि अंमृतु पाईऐ ॥
हउमै दुबिधा बिनसि जाइ
सहजे सुखि समाईऐ ॥
सभु आपे आपि वरतदा
आपे नाइ लाईऐ ॥२॥

जब प्रभु स्वयं सद्बुद्धि देता है, तब जीव हरिनाम का ध्यान करता है। जो श्रेष्ठ भाग्य वाले हैं, वे सत्गुरु से मिलते हैं और सत्गुरु उनके मुख में हरिनाम रूपो अमृत डालता है। उनकी अहंभाव और दुबिधा नष्ट हो जाती है और वे सहज ही सुख (स्वरूप परमात्मा) मे समा जाते हैं। सभी जगह प्रभु स्वय ही व्याप्त है और 'वह' स्वय ही अपने नाम के साथ (श्रेष्ठ भाग्य वाले जीवो को) लगाता है ॥२॥

मनमुखि गरबि न पाइओ
अगिआन इआणे ॥
सतिगुर सेवा ना करहि
फिरि फिरि पछुताणे ॥
गरभ जोनी वासु पाइदे
गरभे गलि जाणे ॥
मेरे करते एवै भावदा
मनमुख भरमाणे ॥३॥

मनमुख अहभाव के कारण परमात्मा को प्राप्त नही कर सकते, वे बेसमझ हैं और अज्ञानी (भी) हैं। वे सत्गुरु की सेवा नही करते, जिससे उनको वार बार पश्चात्ताप करना पडता है। वे गर्भ के अन्दर योनी प्राप्त करते हैं और गर्भ के अन्दर ही गल जाते हैं (नष्ट हो जाते हैं)। मेरे कर्त्तार प्रभु को इसी प्रकार अच्छा लगता है कि मनमुख जीव भटकते ही रहे ॥३॥

मेरै हरि प्रभि लेखु लिखाइआ
धुरि मसतकि पूरा ॥
हरि हरि नामु धिआइआ
भेटिआ गुरु सूरा ॥
मेरा पिता माता हरिनामु है
हरि बंधपु बीरा ॥
हरि हरि बखसि मिलाइ
प्रभ जनु नानकु कीरा ॥४॥३॥१७॥
३७॥

मेरे हरि प्रभु ने (मेरे) मस्तक पर पूर्व से (अर्थात जन्म से ही लेकर पूर्ण) लेख लिखा है, जिस कारण मुझे शूरवीर गुरू मिला है और मैं अब हरि हरिनाम का ध्यान करता हूं। (हे भाई !) मेरा पिता और माता हरिनाम ही है और मेरा बधु तथा भाई भी हरि (स्वय) है। हे सर्वदुःखो को नाश करने वाले हरि प्रभु ! मुझ कीटवत् दास नानक को बख्शिश करके अपने साथ मिला लो ॥४॥३॥१७॥३७॥

गउड़ी बैरागणि महला ३॥	"हे सन्तजनो ! हरि प्रभु किस विधि से प्राप्त होगा ?"
सतिगुर ते गिआनु पाइआ हरि ततु बीचारा ॥ मति मलीण परगटु भई जपि नामु मुरारा ॥ सिवि सकति मिटाईआ चूका अंधिआरा ॥ धुरि मसतकि जिन कउ लिखिआ तिन हरिनामु पिआरा ॥१॥	सत्गुरु से ज्ञान (अर्थात उपदेश)प्राप्त करके मैंने तत्व हरिनाम का विचार किया है। मेरी मति जो पहले मलीन थी, वह मुरारी हरि के नाम का जाप करने से श्रेष्ठ (सुमत्ति) हो गई है। परमात्मा ने माया का प्रभाव स्वय दूर किया है, अतः अंधकार (भी) निवृत्त हो गया है। (हे प्यारे !) जिनको पहले से ही नाम की प्राप्ति का लेख मस्तक पर लिखा हुआ है, उनको ही हरिनाम प्यारा लगता है ॥१॥
हरि कितु बिधि पाईऐ संत जनहु जिसु देखि हउ जीवा ॥ हरि बिनु चसा न जीवती गुर मेलिहु हरिरसु पीवा ॥१॥ रहाउ॥	(गुरुदेव से प्रश्नः)हे सतजनो ! हरि परमात्मा, जिसे मैं देखकर जीवित रहती हूँ, 'वह' किस विधि से प्राप्त किया जा सकता है ? मैं हरि के बिना क्षण भर भी नही जीवित रह सकती। हे गुरु ! मुझे हरि के साथ मिलाओ तो मैं हरिरस पीती रहूँ (अर्थात मिलन का आनन्द अनुभव करूँ।) ॥१॥रहाउ॥
हउ हरिगुण गावा नित हरि सुणी हरि हरि गति कीनी ॥ हरि रसु गुर ते पाइआ मेरा मनु तनु लीनी ॥ धनु धनु गुरु सतपुरखु है जिनि भगति हरि दीनी ॥ जिसु गुर ते हरि पाइआ सो गुरु हम कीनी ॥२॥	(सन्तजनो का उत्तर :) (हे प्यारी !)मैं सदैव हरि के गुण गाता हूँ ओर हरि का नाम औरो से भी सुनता हूँ क्योंकि हरि के नाम ने ही मेरी गति (अर्थात अविद्या से मुक्ति) की है। हरिनाम का आनन्द मैंने गुरु से प्राप्त किया है, अब मेरे मन चाहे तन हरिरस मे लीन हो गये हैं। गुरु, जो सत्पुरुष है और जिसने मुझे हरि भक्ति दी है, वह (सत्गुरु) धन्य है, (हाँ) धन्य है। जिस गुरु के द्वारा मैंने हरि परमात्मा प्राप्त किया है, उस गुरु की ही मैंने सेवा की है ॥२॥
गुण दाता हरि राइ है हम अवगणिआरे ॥	हम अवगुणो से भरे हुए हैं और हरि राजा गुणों को देने वाला है, क्योंकि हम पापी पत्थर रूप जीव ससार-सागर मे डूबे हुए

पापी पाथर डूबदे
गुरमति हरि तारे ॥
तूं गुणदाता निरमला
हम अवगणिआरे ॥
हरि सरणागति राखि लेहु
मूड़ मुगध निसतारे ॥३॥

थे, किन्तु हरि ने श्रेष्ठ मत्ति देकर तार दिया. (इसलिए गुणदाता हरि के आगे हम विनय करते हैं कि) हे महाराज ! तू गुणो का दाता है और शुद्ध स्वरूप है। हम अवगुणों से भरपूर हैं। हे हरि ! हम तेरी शरण में आये हैं और तू हमे बचा ले, क्योकि तुमने मूर्खों में भी महामूर्खों को तार दिया है ॥३॥

सहजु अनंदु सदा गुरमती
हरि हरि मनि धिआइआ ॥
सजणु हरि प्रभु पाइआ
घरि सोहिला गाइआ ॥
हरि दइआ धारि प्रभ बेनती
हरि हरि चेताइआ ॥
जन नानकु मंगै धूड़ि तिन
जिन सतिगुरु पाइआ ॥४॥४॥
१८॥३८॥

हमने गुरु की शिक्षा लेकर हरिनाम का मन में ध्यान किया है, इसलिए हमें सदैव (ब्रह्म) ज्ञान का आनन्द प्राप्त हुआ है। हरि प्रभु, जो हमारा सज्जन है, 'वह' पाया है और हम अपने हृदय मे 'उसके' मगलमय गीत गाते हैं। हे हरि प्रभु ! हमारी यह विनय है कि ऐसी दया कर कि तुम्हारे हरि नाम का सदैव चिन्तन करूँ। (मेरे गुरुदेव) दास नानक उन (महापुरुषों) (के चरणो) की धूलि माँगता है, जिन्होने अपने सतगुरु को प्राप्त किया है ॥४॥४॥१८॥३८॥

गउड़ी गुआरेरी महला ४ चउथा चउपदे ॥

"हरि नाम की महिमा।"

पंडितु सासत सिमृति पड़िआ ॥
जोगी गोरखु गोरखु करिआ ॥
मै मूरख हरि हरि जपु पड़िआ ॥१॥

(हे प्यारे !) पण्डित शास्त्र और स्मृतियाँ पढते हैं और योगी 'गोरख' कहकर पुकारते हैं, किन्तु मैं मूर्ख हूँ इसलिए हरि, हरि-नाम जपता हूँ ॥१॥

ना जाना किआ गति राम हमारी ॥
हरि भजु मन मेरे
तरु भउजलु तू तारी ॥१॥रहाउ॥

(हे भाई !) मैं नही जानता कि राम के (भजन के) बिना मेरी क्या दशा होगी। हे मेरे मन ! तू हरि का भजन कर, फिर तू संसार रूपी नदी को पार कर जायेगा ॥१॥ रहाउ॥

संनिआसी बिभूत लाइ देह सवारी ॥
पर त्रिअ तिआगु करी ब्रहमचारी ॥
मैं मूरख हरि आस तुमारी ॥२॥

(हे भाई !) सन्यासी विभूति लगाकर अपनी देही को शृंगारते हैं और ब्रह्मचारी पर-स्त्री को त्यागते हैं, किन्तु हे हरि ! मैं मूर्ख हूँ, इसलिए मुझे तुम्हारी ही आशा रहती है ॥२॥

खत्री करम करे सूरतणु पावै ॥
सूदु वैसु पर किरति कमावै ॥
मै मूरख हरिनामु छडावै ३॥

क्षत्री (युद्ध के) कर्म करते हैं और शौर्य प्राप्त (दिखाते) करते हैं तथा शूद्र औरो की सेवा करते हैं एव वैश्य वाणिज्य (व्यापार) आदि का काम करते हैं, किन्तु हे हरि ! मैं मूर्ख को हरि नाम ही (माया से) छुडाने वाला है ॥३॥

सभ तेरी स्रसटि
तूं आपि रहिआ समाई ॥
गुरमुखि नानक दे वडिआई ॥
मै अंधुले हरि टेक टिकाई ॥४॥१॥
३९॥

(हे महाराज !) यह समस्त सृष्टि तेरी है और तू स्वय इसमें समाया हुआ है। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब विनम्र भाव से) कहते हैं कि हे हरि ! तू गुरमुखों को नाम की बड़ाई देता है, किन्तु मुझ अन्धे ने (तेरे नाम की ही) टेक ली है। ॥४॥१॥३९॥

गउड़ी गुआरेरी महला ४॥

'सन्तो की संगति मे हरि प्रभु मिल सकता है।"

निरगुण कथा कथा है हरि की ॥
भजु मिलि साधू संगति जन की ॥
तरु भउजलु
अकथ कथा सुनि हरि की ॥१॥

(हे भाई !) त्रिगुणातीत हरि की कथा जो निर्गुण कथा है (अर्थात 'उसके' गुणों का कथन अकथनीय है) 'उसका' भजन तू (हरि के) दास साधु की संगति मे मिलकर कर। हरि की कथा सुनकर तू ससार-सागर को पार कर जायेगा ॥१॥

गोबिंद सत संगति मेलाइ ॥
हरि रसु रसना राम गुन गाइ ॥१
॥रहाउ॥

हे गोबिन्द ! अपने सन्तो की सगति मे मुझे मिला दे, जहाँ मैं हरि राम के गुण आनन्द (रस) से गाऊँ ॥१॥ रहाउ॥

जो जन धिआवहि हरि हरिनामा ॥
तिन दासनिदास करहु हम रामा ॥
जन की सेवा ऊतम कामा ॥२॥

हे राम ! जो (तेरे) दास तुझ हरि के नाम का ध्यान करते हैं, उनके दासों का दास मुझे बना दे, क्योंकि सन्तों की सेवा करनी (कलियुग में) उत्तम कार्य है ॥२॥

जो हरि की हरि कथा सुणावै ॥
सो जनु हमरै मनि चिति भावै ॥
जन पग रेणु वडभागी पावै ॥३॥

(हे भाई !) जो (निर्गुण) हरि की सर्व दु:खों को नाश करने वाली कथा सुनाता है वह दास मेरे मन और चित्त को (बहुत) अच्छा लगता है। ऐसे (सन्त) दास के चरणों की धूलि (कलियुग मे) कोई (विरला) भाग्यशाली ही पाता है ॥३॥

संत जना सिउ प्रीति बनि आई ॥
जिन कउ लिखतु लिखिआ
धुरि पाई ॥
ते जन नानक नामि समाई ॥४॥
२॥४०॥

जिन जीवों के मस्तक पर पहले से ही श्रेष्ठ (संयोग का) लेख लिखा हुआ है उनकी प्रीति सन्तजनों से बन आती है। हे नानक ! ऐसे (भाग्यशाली) दास नामी हरि में समा जाते हैं ॥४॥२॥४०॥

गउड़ी गुआरेरी महला ४॥

"प्रियतम को प्यार करना है, किन्तु कैसा ?"

माता प्रीति करे पुतु खाइ ॥
मीने प्रीति भई जलि नाइ ॥
सतिगुर प्रीति गुरसिख मुखि पाइ
॥१॥

जैसे माता अपने पुत्र के प्रति वात्सल्य भाव रखने के कारण (हर समय यही इच्छा रखती है कि अच्छा) भोजन करे; जैसे मछली पानी में स्नान करके (अति) प्रसन्न होती है, (हाँ) इसी प्रकार सतगुरु (अपने) गुरसिखों को मुख में नाम देकर प्रसन्न होता है ॥१॥

ते हरिजन हरि मेलहु हम पिआरे ॥
जिन मिलिआ दुख जाहि हमारे ॥१
॥रहाउ॥

हे हरि ! जो तेरे प्यारे हरिजन (सन्त) हैं उनको मेरे साथ मिलाओ। उनके मिलने से मेरे (सभी प्रकार के) दु:ख दूर हो जायेंगे ॥१॥रहाउ॥

जिउ मिलि बछरे गऊ प्रीति
लगावै ॥
कामनि प्रीति जा पिरु घरि आवै ॥
हरिजन प्रीति जा हरि जसु गावै॥२॥

जैसे गाय अपने बछड़े से मिलकर प्रसन्न होती है और स्त्री अपने पति के यहाँ आकर प्रसन्न होती है, (हाँ) इसी प्रकार हरि जन (सन्त) हरि का यश गाकर प्रसन्न (आनन्दित) होते हैं ॥२॥

सारिंग प्रीति बसै जल धारा ॥
नरपति प्रीति माइआ देखि पसारा ॥
हरि जन प्रीति जपै निरंकारा ॥३॥

जैसे (स्वाति नक्षत्र में) एक रस वर्षा (जलधारा) पड़ने पर चातक (पपीहा) प्रसन्न होता है और राजा तब प्रसन्न होता है जब अपने पास माया का विस्तार (अर्थात माल-धन और बहुत लशकर) देखता है, इसी प्रकार हरिजन निरंकार परमात्मा को जपकर प्रसन्न होते हैं ॥३॥

नर प्राणी प्रीति माइआ धनु खाटे ॥
गुर सिख प्रीति गुरु मिलै गलाटे ॥
जन नानक प्रीति साध पग चाटे ॥४॥३॥४१॥

जैसे (मनमुख) प्राणी माया का धन-माल कमाकर प्रसन्न होते हैं, इसी प्रकार गुरसिख गुरु के गले लगने पर प्रसन्न होते हैं। हे नानक ! मैं (हरि के) दास (सन्तों) के चरण चाटकर (स्पर्श करके) प्रसन्न होता हूँ ॥४॥३॥४१॥

गउड़ी गुआरेरी महला ४॥

"गुरू के प्रति गुरसिख की अपार प्रीति।"

भीखक प्रीति भीख प्रभ पाइ ॥
भूखे प्रीति होवै अंनु खाइ ॥
गुरसिख प्रीति गुर मिलि आघाइ ॥१॥

भिखारी को प्रीति होती है कि किसी प्रभुता वाले स्वामी (के घर) से भिक्षा मिले, भूखे को प्रीति होती है कि कैसे अन्न खाऊँ (तृप्त होऊँ), इसी प्रकार गुरसिख को प्रीति होती है कि गुरू को मिलकर सन्तुष्ट हो जाऊँ ॥१॥

हरि दरसनु देहु हरि आस तुमारी ॥
करि किरपा लोच पूरि हमारी ॥१॥रहाउ॥

हे हरि ! मुझे दर्शन दो। हे हरि ! मुझे तेरी आशा है। कृपा करके मेरी इच्छा पूर्ण करो ॥१॥रहाउ॥

चकवी प्रीति सूरजु मुखि लागै ॥
मिलै पिआरे सभ दुख तिआगै ॥
गुरसिख प्रीति गुरू मुखि लागै ॥२॥

चकवी की प्रीति होती है कि कैसे सूर्य को देखूँ ताकि प्यारे चकवे को देखकर सारे दुःख दूर हो जायँ। इसी प्रकार गुरसिख की प्रीति होती है कि गुरु के मुख लगूँ (अर्थात् गुरू के दर्शन हो।) ॥२॥

बछरे प्रीति खीरु मुखि खाइ ॥
हिरदै बिगसै देखै माइ ॥
गुरसिख प्रीति गुरू मुखि लाइ ॥३॥

बछडे की प्रीति होती है कि कैसे माँ का दूध मुख मे पडे, (हाँ) माँ को देखते ही उसका हृदय प्रफुल्लित हो जाता है, इसी प्रकार गुरसिख की प्रीति होती है कि गुरू मुझे अपने मुख लगाए (अर्थात प्यार करे।) ॥३॥

होरु सभ प्रीति
माइआ मोहु काचा ॥
बिनसि जाइ कूरा कचु पाचा ॥
जन नानक प्रीति तृपति गुरु साचा
॥४॥४॥४२॥

अन्य सभी प्रीति माया मोह के कारण कच्ची है अथवा काँच की तरह केवल देखने में सुन्दर है, किन्तु अस्थायी है, (हाँ)यह नष्ट हो जायेगी क्योंकि झूठी है। (मेरे गुरुदेव) दास नानक की प्रीति सच्चे गुरु से है, जिसको मिलकर तृप्ति होती है (भाव सच्चे गुरु को मिलकर प्रसन्नता और तृप्ति जो होती है, वह पक्की और (असली) है ॥४॥४॥४२॥

गउड़ी गुआरेरी महला ४॥

"सत्गुरु की सेवा ही फलदायक है।"

सतिगुर सेवा सफल है बणी ॥
जितु मिलि हरिनामु धिआइआ
हरि धणी ॥
जिन हरि जपिआ
तिन पीछै छूटी घणी ॥१॥

सत्गुरु की सेवा सफल बनी है क्योंकि (सत्गुरु को) मिलने से मैंने अपने स्वामी हरि के नाम का ध्यान किया है। (हे भाई !) जिन्होंने हरि के नाम का जाप किया है, उनके पीछे और भी बहुत से जीव छूट (मुक्त हो) जाते हैं ॥१॥

गुरसिख हरि बोलहु मेरे भाई ॥
हरि बोलत सभ पाप लहि जाई ॥१
॥रहाउ॥

हे मेरे भाई गुरु के सिखो ! हरि का नाम (रसना से) उच्चारण करो क्योकि हरि का नाम बोलने से सभी पाप दूर हो जाते हैं ॥१॥रहाउ॥

जब गुरु मिलिआ
तब मनु वसि आइआ ॥
धावत पंच रहे हरि धिआइआ ॥
अनदिनु नगरी हरिगुणगाइआ ॥२॥

जब जीव गुरू से मिलता है, तब उसका मन वश में आ जाता है और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ भी विषयो की ओर दौडने से रुक जाती हैं, क्योंकि वह अब हरि (के नाम) का ही ध्यान करता है। वह अब रात दिन शरीर रूपी नगरी मे हरि के गुण गाता है ॥२॥

सतिगुर पग धूरि जिना मुखि लाई ॥
तिन कूड़ तिआगे हरि लिव लाई ॥
ते हरि दरगह मुख ऊजल भाई ॥
३॥

हे भाई ! जिन्होने सन्तो के चरणो की धूलि अपने मुख (मस्तक) पर लगाई है, उन्होने झूठादि विकार का त्याग करके हरि परमात्मा में लौ लगाई है और (केवल) वे ही हरि की दरबार में उज्जवल मुख से जाते हैं ॥३॥

गुर सेवा आपि हरि भावै ॥
क्रिसनु बलभद्रु गुर पग लगि
धिआवै ॥
नानक गुरमुखि हरि आपि तरावै
॥४॥५॥४३॥

गुरू की सेवा स्वयं हरि को अच्छी लगती है अथवा गुरु की सेवा से तो स्वयं हरि (भी) प्रसन्न होता है। श्री कृष्ण और (उसके ज्येष्ठ भ्राता) बलराम ने भी अपने गुरू के चरणो को लगकर अर्थात गुरु की सेवा करके हरि परमात्मा को ध्यान किया है। हे नानक ! गुरमुखों को ही हरि स्वय (भव-सागर से) पार करता है ॥४॥५॥४३॥

विशेष—श्री कृष्ण महाराज और बलराम दोनो भाई मिलकर अपने गुरू संदीपन महाराज की सेवा करते थे। वे गुरू के भण्डारे के लिए बन से लकडी, नदी से पानी भरकर लाते थे। गुरू के स्थान की सेवा, धरती पर लेप लगाकर किया करते थे एव गुरु को स्नान आदि भी कराते थे। (हाँ) हर प्रकार से वे दोनों गुरू की सेवा करते थे। यह विचार श्रीमद् भागवत् और महाभारत में लिखा हुआ है। इसी प्रकार रामायण में है कि श्री रामचन्द्र जी महाराज भी अपने गुरु श्री वशिष्ट महाराज की हर प्रकार से सेवा किया करते थे। मेरे गुरुदेव गुरु रामदास साहब ने श्री कृष्ण ओर श्री बलराम का उदाहरण देकर बताया है कि जीवन में गुरु की सेवा बिना भक्ति नही हो सकती।

गउड़ी गुआरेरी महला ४॥

"हरि परमात्मा सर्व व्यापक है।"

हरि आपे जोगी डंडाधारी ॥
हरि आपे रवि रहिआ बनवारी ॥
हरि आपे तपु तापै लाइ तारी ॥१॥

हरि परमात्मा स्वय योगी है और डडा रखने वाला (सन्यासी) भी है। हरि स्वयं बनवारी है और सर्वस्व रमण कर रहा है (अर्थात् सर्व व्यापक है)। हरि स्वय ही तपस्वी होकर तपस्या कर रहा है और समाधी भी लगाकर बैठा है ॥१॥

ऐसा मेरा रामु रहिआ भरपूरि ॥
निकटि वसै नाही हरि दूरि ॥१
॥रहाउ॥

(हे भाई !) ऐसा जो मेरा राम है, 'वह' सर्व व्यापक है, वह हरि हमारे निकट बसता है और दूर (कदाचित्) नही है ॥१॥ रहाउ

हरि आपे सबदु सुरति धुनि आपे ॥
हरि आपे वेखै विगसै आपे ॥
हरि आपि जपाइ आपे हरि जापे
॥२॥

हरि स्वय शब्द (अर्थात ब्रह्म) है और वेद भी (स्वयं ही) है और (वेदो की) ध्वनि भी स्वयं ही है। हरि स्वयं ही (अपनी रचना को) देखता है (अर्थात देख-भाल करता है) और स्वयं ही प्रसन्न होता है। हरि स्वयं ही गुरु होकर नाम जपाता है और जिज्ञासु होकर नाम जपता है ॥२॥

हरि आपे सारिंग अंमृतधारा ॥
हरि अंमृतु आपि पीआवणहारा ॥
हरि आपि करे आपे निसतारा ॥३॥

हरि स्वयं ही जिज्ञासु रूपी पपीहा है और (स्वाति नक्षत्र की) अमृतधारा भी स्वय ही है। अमृत नाम को पिलाने वाला गुरु भी हरि स्वयं ही है। हरि स्वय ही स्वय को बन्धनों मे डालता है और स्वय ही अपना छुटकारा भी करता है ॥३॥

हरि आपे बेड़ी तुलहा तारा ॥
हरि आपे गुरमती निसतारा ॥
हरि आपे नानक पावै पारा ॥४॥६॥४४॥

हरि स्वय ही भक्ति रूपी नाव और विचार रूपी तुलहा (नदी पार करने के लिए लकड़ियो अथवा घास का बाँध कर बनाया हुआ गट्ठा) है तथा ज्ञान रूपी जहाज या गुरु रूपी खेवट हरि स्वय ही है। हरि स्वय ही गुरु की शिक्षा देकर छुटकारा करता है। हे नानक ! हरि स्वय जिज्ञासु रूप होकर पार कर किनारा पाता है (अर्थात पार होता है) ॥४॥६॥४४॥

गउड़ी बैरागणि महला ४॥

"हरि की कृपा से ही नाम का व्यापार करना सभव है।"

साहु हमारा तूं धणी
जैसी तूं रासि देहि तैसी हम लेहि ॥
हरिनामु वणंजह रंग सिउ
जे आपि दइआलु होइ देहि ॥१॥

हे मेरे प्रभु (सिम्री-धणी) ! तू हमारा शाह है। जैसी तू हमें (शुभ गुण रूपी) पूंजी देता है, वही हम लेते हैं। हे हरि! यदि तू दया करके नाम का ही सौदा हमे दे तो हम हरिनाम का ही व्यापार प्रसन्नतापूर्वक करें ॥१॥

हम वणजारे राम के ॥
हरि वणजु करावै दे रासि रे ॥१॥ रहाउ॥

हे राम ! हम तेरे नाम के वण्ज करने वाले व्यापारी हैं। हे हरि! तू हमे स्वासो रूपी पूँजी देकर नाम का व्यापार करवाते हो (अर्थात अपना नाम जपाते हो।) ॥१॥रहाउ॥

लाहा हरि भगति धनु खटिआ
हरि सचे साह मनि भाइआ ॥
हरि जपि हरि वखरु लदिआ
जमु जागाती नेड़ि न आइआ ॥२॥

हे हरि ! जिन्होने तुम्हारा भक्ति रूपी लाभ प्राप्त किया है, वे ही सच्चे शाह तेरे मन को अच्छे लगे है और हे हरि ! जिन्होने तेरे नाम के जपने का सौदा अपने जीवन मे लाद लिया है, उनके आगे यमराज रूपी चुगी लेने वाला नहो आता।

होरु वणजु करहि वापारीए
अनंत तरंगी दुखु माइआ ॥
ओइ जेहै वणजि हरि लाइआ
फलु तेहा तिन पाइआ ॥३॥

अन्य (मायाग्रस्त) व्यापारी कई प्रकार के वाणिज्य करते हैं, किन्तु वे माया की अनन्त लहरो मे फसकर दुखी होते हैं। उन (मायाग्रस्त व्यापारियो) को हरि ने ही ऐसे वाणिज्य में लगाया है, इसलिए उनको वैसा ही फल प्राप्त होता है ॥३॥

हरि हरि वणजु सो जनु करे
जिसु क्रिपालु होइ प्रभु देई ॥
जन नानक साहु हरि सेविआ
फिरि लेखा मूलि न लेई ॥४॥१॥७
॥४५॥

(हे भाई !) (कलियुग में) हरि नाम का व्यापार वे ही जीव करते हैं, जिनको प्रभु कृपालु होकर यह व्यापार देता है। हे नानक ! वे ही हरि शाह की सेवा करते हैं, फिर उनसे कोई भी लेखा नहीं लेता ॥४॥२॥७॥४५॥

(यथा-धरमराइ अब कहा करैगो जिउ फाटिओ सगलो लेखा॥ म० ५)

गउड़ी बैरागणि महला ४॥

"भक्त की महिमा स्वयं हरि की महिमा है।"

जिउ जननी गरभु पालती
सुत की करि आसा ॥
वडा होइ धनु खाटि देइ
करि भोग बिलासा ॥
तिउ हरिजन प्रीति हरि राखदा
दे आपि हथाथा ॥१॥

जैसे माता (नव मास) अपनी कोख को पुत्र प्राप्त होने की आशा से सुरक्षित रखती है, ताकि पुत्र बड़ा होकर धनोपार्जन करके देगा और हम प्रसन्नतापूर्वक उसका उपयोग करेंगे, वैसे ही हरि के सेवक की प्रीति है कि हरि स्वयं उसकी रक्षा हाथ देकर करता है ॥१॥

मेरे राम
मै मूरख हरि राखु मेरे गुसईआ ॥
जन की उपमा तुझहि वडिआ ॥१
॥रहाउ॥

हे मेरे राम ! हे हरि ! हे गुसाईं प्रभु ! मैं मूर्ख हूँ। मेरी रक्षा कर। जो तेरे सेवक (जन) की उपमा है, वह तेरी ही है अथवा जो तेरे सेवक की उपमा करता है, वास्तव मे वह तेरी ही बडाई करता है ॥१॥रहाउ॥

मंदरि घरि आनंदु
हरि हरि जसु मनि भावै ॥
सभ रस मीठे मुखि लगहि
जा हरि गुण गावै ॥
हरि जनु परवारु सधारु है
इकही कुली सभु जगतु छडावै ॥२॥

शरीर (मन्दिर) में, हृदय (घर) में आनन्द तभी होता है जब हरि परमात्मा का यश मन को अच्छा लगता है। सभी रस मीठे तभी प्राप्त होते हे जब हरि के गुण गाये जाते हैं। हरिजन (भक्त) अपने कुटम्ब परिवार का उद्धार करता है। वह अपनी इक्कीस कुलो का ही उद्धार नहीं करता बल्कि सारे जगत का (माया जाल स) भी छुटकारा करता है ॥२॥

विशष: २१ कुल—७ पितृ कुल; ७ मातृ कुल (ननिहाल) है एव ७ श्वसुर कुल के सम्बन्धी।

जो किछु कीआ सु हरि कीआ
हरि की वडिआई ॥

हे हरि ! जो कुछ किया है, वह तुझ हरि ने ही किया है और इसी में तुम हरि की बड़ाई है। हे हरि। ये सब जीव तेरे

हरि जीअ सेरै तूं वरतदा
हरि पूज कराई ॥
हरि भगति भंडार लहाइदा
आपे वरताई ॥३॥

हैं और तू सब में व्याप्त हो रहा है और तू उनसे पूजा करवाता है। हे हरि! तुम भक्तों को भक्ति के भण्डार दिलवाते हो और स्वय ही गुरु रूप होकर उनको बाँटते हो ॥३॥

लाला हाटि विहाझिआ
किआ तिसु चतुराई ॥
जे राजि बहाले ता हरि गुलामु
घासी कउ हरिनामु कढाई ॥
जनु नानकु हरि का दासु है
हरि की वडिआई ॥४॥२॥८॥४६॥

मैं तेरा गुलाम सत्संग रूपी हट्टी पर खरीदा गया हूँ, मेरे मैं अपनी चतुराई क्या हो सकती है? हे हरि! यदि मुझे सिंहासन पर बैठाओगे तभी भी तुम्हारा गुलाम होकर ही रहूँगा। (अभिलाषा है कि) मुझ घसियारे के मुख से हरि नाम ही निकलवाओ (जपवाओ)। (मेरे गुरुदेव) नानक दास भावना से कहते हैं कि हे हरि! मैं तेरा दास हूँ इसलिए तेरी बड़ाई (अर्थात स्तुति) करता हूँ ॥४॥२॥८॥४६॥

गउड़ी गुआरेरी महला ४॥

"हे हरि! मुझे सत्गुरू की सेवा में लगाओ।"

किरसाणी किरसाणु करे
लोचै जीउ लाइ ॥
हलु जोतै उदमु करे
मेरा पुतु धी खाइ ॥
तिउ हरिजनु हरि हरि जपु करे
हरि अंति छडाइ ॥१॥

जैसे कृषक (किसान) कृषि का काम करता है और अपने मन मे इच्छा करता है (कि मेरी फसल अच्छी हो)। वह उद्यम करके हल चलाता है जिससे उसके बेटे बेटियाँ खाएँ (सुखी रहे), इसी तरह हरि का सेवक हरि हरि नाम का जाप करता है जिससे हरि अन्त के समय (यम काल से) छुडा लेता ॥१॥

मै मूरख की गति कीजै मेरे राम ॥
गुर सतिगुर सेवा हरि लाइ
हम काम ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे राम! मुझ मूर्ख की गति (मुक्ति) कर। हे हरि! मुझे सत्गुरु की सेवा रूपी कार्य मे लगाओ ॥१॥रहाउ॥

लै तुरे सउदागरी सउदागरु धावै ॥
धनु खटै आसा करै
माइआ मोहु वधावै ॥
तिउ हरिजनु हरि हरि बोलता
हरि बोलि सुखु पावै ॥२॥

जैसे सौदागर घोडे लेकर सौदागरी के पीछे लग जाता है। वह धन प्राप्त करने की आशा करता है और माया तथा मोह को बढाता है, इसी तरह हरि का सेवक हरि हरि नाम का उच्चारण करता है और हरि बोल कर सुख प्राप्त करता है ॥२॥

बिखु संचै हटवाणीआ
बहि हाटि कमाइ ॥
मोह झूठु पसारा
झूठ का झूठे लपटाइ ॥
तिउ हरिजनि हरिधनु संचिआ
हरि खरचु लै जाइ ॥३॥

जैसे दुकानदार दुकान पर बैठकर कमाई करके विष रूपी माया संग्रह करता है और यह सारा प्रपन्च जो झूठा है, उसके माया के मोह के कारण लिपटा रहता है, इसी प्रकार हरि का सेवक हरि नाम रूपी धन इकट्ठा करता है और हरि नाम का खर्चा लेकर जाता है ॥३॥

इहु माइआ मोह कुटंबु है
भाइ दूजै फास ॥
गुरमती सो जनु तरै
जो दासनि दास ॥
जनि नानकि नामु धिआइआ
गुरमुखि परगास ॥४॥३॥६॥४७॥

द्वैत-भाव के कारण यह माया और कुटुम्ब का जो मोह है वह सचमुच फांसी है, किन्तु जो सेवक गुरु की मति (शिक्षा)लेकर दासों का दास होता है, वही तैर कर(भव-सागर) पार उतरता है। हे नानक ! जो सेवक गुरु के उपदेश द्वारा नाम का ध्यान करता है, वही ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करता है ॥४॥३॥६॥४७॥

गउड़ी बैरागणि महला ४॥

"संसारिक पदार्थों में सुख नही, सुख केवल हरिनाम में है।"

नित दिनसु राति लालचु करै
भरमै भरमाइआ ॥
वेगारि फिरै वेगारीआ
सिरि भारु उठाइआ ॥
जो गुर की जनु सेवा करे
सो घर कै कंमि हरि लाइआ ॥१॥

(मनमुख अज्ञानी जीव) दिन रात नित्य लालच करता है और (माया के) भ्रम मे पडकर भटकता है। वह बेगारी जैसे वेगार में चल फिर रहा है और सिर पर मोह और ममता रूपी भार उठाता है। किन्तु जो गुरमुख गुरू की सेवा करता है, उसे हरि घर के काम मे लगाता है (अर्थात भक्ति रूपी सच्चे काम में लगाता है) ॥१॥

मेरे राम तोड़ि बंधन माइआ
घर कै कंमि लाइ॥
नित हरिगुण गावह
हरिनामि समाइ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे राम ! माया के बन्धन तोडकर हमें अपने घर के काम मे लगाओ। हे हरि ! (अभिलाषा है कि हम) नित्य तेरे गुण गायें और तेरे नाम मे समा जाये ॥१॥रहाउ॥

नरु प्राणी चाकरी करे नरपति
राजे अरथि सभ माइआ ॥
कै बंधै कै डानि लेइ
कै नरपति मरि जाइआ ॥
धनु धंनु सेवा सफल सतिगुरू की
जितु हरि हरि नामु जपि
हरि सुखु पाइआ ॥२॥

नर प्राणी राजा की नौकरी (माया के लिये) करता है, किन्तु फिर वह सारी माया राजा के ही अर्थ लगती है अथवा किसी दोष के कारण राजा उसे बंधवाकर माया ले लेता है अथवा जुर्माना करके अथवा शाहुकार के मर जाने पर राजा उसकी माया को खजाने में जमा करवा देता है, किन्तु सत्गुरु की सेवा (सदा) सफल है (और प्रशसा के योग्य है) क्योंकि गुरु की सेवा करके हरि के नाम का जाप होता है और सुख प्राप्त होता है ॥२॥

नित सउदा सूदु कीचै
बहु भाति करि माइआ कै ताई ॥
जा लाहा देइ ता सुखु मने
तोटै मरि जाई ॥
जो गुण साझी गुर सिउ करे
नित नित सुखु पाई ॥३॥

(गुरु की सेवा के बिना) जो जीव माया (कमाने) के लिए भान्ति-भान्ति के व्यापार और सौदे करता है, फिर यदि उसे सौदा लाभ देता है तो सुख का अनुभव करता है, किन्तु जब (कभी व्यापार मे) हानि होती है, वह मरणवत् हो जाता है, किन्तु जो जीव गुरु से मिलकर गुणों की सांझेदारी करता है, वह सदैव सुख पाता है ॥३॥

जितनी भूख अन रस साद है
तितनी भूख फिरि लागै ॥
जिसु हरि आपि कृपा करे
सो वेचे सिरु गुर आगै ॥
जन नानक हरि रसि तृपतिआ
फिरि भूख न लागै ॥४॥४॥१०॥
४८॥

(हरि रस के अतिरिक्त) जितने भी संसार के अन्य रस (स्वाद) हैं, उनकी प्राप्ति हो जाने पर जीव की तृष्णा उनके प्रति और अधिक बढती चली जाती है (अर्थात वह ससारिक पदार्थों को भोगकर भी तृप्त नही होता)। किन्तु जिस पर हरि स्वयं कृपा करता है, वह अपना सिर सत्गुरु के आगे बेचकर (अर्थात अहभाव को त्यागकर सत्गुरु को सेवा में तत्पर रहता है)। हे नानक! ऐसा सेवक हरि (नाम) के रस से तृप्त हो जाता है और फिर उसे (विषवत् भोगो की) भूख नही लगती ॥४॥४॥
१०॥४८॥

गउड़ी बैरागणि महला ४॥

"मेरे गुरुदेव की प्रेमा-भक्ति तथा असीम नम्रता।"

हमरै मनि चिति हरि आस नित
किउ देखा हरि दरसु तुमारा ॥
जिनि प्रीति लाई सो जाणता
हमरै मनि चिति हरि बहुतु
पिआरा ॥

हे (मेरे) हरि! मेरे मन और चित्त में नित्य यह आशा बनी रहती है कि किस प्रकार मैं तेरा दर्शन करूँ। जो प्रेमी ऐसी प्रीति रखता है, वही (प्रेम के रसमय आनन्द को) जानता है। मेरे मन में और चित्त में, हे हरि! तू बहुत ही प्यारा लगता है। मैं अपने

हउ बलिहारी गुर आपणे
जिनि विछुड़िआ मेलिआ
मेरा सिरजनहारा ॥१॥

गुरु पर बलिहारी जाऊँ, जिसने मुझे सुख सृजनहार हरि से मिलाया है, जिससे मैं (युग-युगान्तरो से) बिछुड़ा हुआ था ॥१॥

मेरे राम हम पापी सरणि परे
हरि दुआरि ॥
मतु निरगुण हम मेलै कबहूं
अपुनी किरपा धारि ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे राम ! मैं पापी तेरे द्वार पर शरण आकर पड़ा हूँ, आप कभी अपनी कृपा धारण करके मुझ निर्गुण (गुणहीन) को अपने साथ मिला लो ॥१॥रहाउ॥

(यथा—कबीर मुहि मरने का चाह है, मरउ त हरि के द्वार ॥)
मत हर पूछै कौन है, परा हमारे बार ॥ (भक्त कबीर)

हमरे अवगुण बहुतु बहुतु है
बहु बार बार हरि गणत न आवै ॥
तूं गुणवंता हरि हरि दइआलु
हरि आपे बखसि लैहि हरि भावै ॥
हम अपराधी राखे गुर संगती
उपदेसु दीओ हरिनामु छडावै ॥२॥

हे हरि ! मेरे अवगुण बहुत हैं, क्योंकि बार-बार किये गये हैं, ये गिनती से बाहर हैं (अगणित हैं) । हे हरि ! तू गुणो से परिपूर्ण है और दयालु हरि है तथा जब तुझे अच्छा लगता है तब तू स्वय क्षमा कर देता है । हे हरि ! मैं अपराधी हूँ, किन्तु तुमने मुझे गुरु की सगति मे रखकर रख लिया है, जिस गुरु ने मुझे नाम का उपदेश देकर (भव-सागर से) छुडा दिया है ॥२॥

तुमरे गुण किआ कहा मेरे सतिगुरा
जब गुरु बोलह
तब बिसमु होइ जाइ ॥
हम जैसे अपराधी अवरु कोई राखै
जैसे हम सतिगुरि राखिलीए छडाइ ॥
तूं गुरु पिता तूं है गुरु माता
तूं गुरु बंधपु मेरा सखा सखाइ ॥३॥

हे मेरे सत्गुरु ! तुम्हारे गुण मैं कैसे वर्णन कर सकता हूँ ? जब तू (प्रेम से) मुझे अपने पास बुलाते हो, तब मेरी स्थिति विस्मय (आश्चर्यजनक) हो जाती है (क्योंकि मैं तो अवगुणों से भरा था किन्तु मुझ पर सत्गुरु की अपार कृपा हुई है ।) जैसे सत्गुरु ने मुझे छुडाकर मेरी रक्षा की है, क्या कोई मुझ जैसे अपराधी की रक्षा कर सकता है ? (उत्तर.) कदाचित नहीं । हे गुरु ! तू ही मेरा पिता है । हे गुरू ! तू ही मेरी माता है । हे गुरू ! तू ही मेरा बन्धु-बान्धव, सखा और सहायता करने वाला (सहायक व रक्षक) है ॥३॥

जो हमरी बिधि होती मेरे सतिगुरा
सा बिधि तुम हरि जाणहु आपे ॥

हे हरि ! हे मेरे सत्गुरू ! जो मेरी स्थिति (हालत) थी, उसे तुम स्वयं ही जानते हो ।

हम चलते फिरते कोई बात न पूछता
गुर सतिगुर संगि कीरे हम थापे ॥
धंनु धंनु गुरू नानक जन केरा
जितु मिलीऐ चूके सभि सोग
संतापे ॥४॥५॥११॥४९॥

मैं भटकता फिरता था, कोई भी मेरी बात को नहीं पूछता था (अर्थात मेरी हालत को देखकर किसको भी दया नही आती थी), किन्तु हे मेरे बडे (महान) सतगुरु ! मुझ तुच्छ कीट्वत् जीव को तुमने अपनी संगति मे उच्च पदवी पर स्थापित कर दिया। दास नानक का गुरू धन्यवाद के योग्य है, जिसकी संगति करने से सभी शोक और संताप दूर हो जाते हैं ॥४॥५॥११॥४०॥

गउड़ी बैरागणि महला ४॥

"विनय है मेरे कर्म नीच हैं। कृपया क्षमा करें।"

कंचन नारी महि जीउ लुभतु है
मोहु मीठा माइआ ॥
घर मंदर घोड़े खुसी
मनु अन रसि लाइआ ॥
हरि प्रभु चिति न आवई
किउ छूटा मेरे हरि राइआ ॥१

हे महाराज ! स्वर्ण (सोने) और स्त्री में मन लोभायमान हुआ है और माया का मोह मुझे मीठा लगता है। मेरा मन घर, महल, घोडों और अन्य विषयो की खुशी मे लगा हुआ है। हे हरि राजा ! तू मुझे (कभी भी) याद नही आता, फिर भला मैं कैसे छूटूँगा (अर्थात् बन्धनो से मुक्त होऊँगा) ?॥१॥

मेरे राम इह नीच करम हरि मेरे ॥
गुणवंता हरि हरि दइआलु
करि किरपा बखसि अवगण
सभि मेरे ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे राम ! हे हरि ! ये (सब) मेरे नीच कर्म हैं ? (जो मैंने अभिव्यक्त किए हैं)। हे हरि ! तुम गुणो से परिपूर्ण हो और दयालु भी हो। कृपा करके मेरे सभी अवगुण क्षमा कर दो ॥१॥रहाउ॥

किछु रूप नही किछु जाति नाही
किछु ढंगु न मेरा ॥
किआ मुहु लै बोलह गुण बिहून
नामु जपिआ न तेरा ॥
हम पापी संगि गुर उबरे
पुंनु सतिगुर केरा ॥२॥

हे भगवत् ! न मुझ मे कोई सुन्दरता है, न मैं किसी उत्तम जाति का (ही) हूँ और न मुझे कोई ढग है (अर्थात न कोई manners हैं)। मैं गुणो से विहीन क्या मुख लेकर तुमसे बोलूं (हाल सुनाऊ) ? मैंने कभी भी तम्हारे नाम का जाप नही किया है, किन्तु मैं पापी सतगुरु की सगति करके बच गया, किन्तु यह उपकार मेरे सतगुरु का ही है ॥२॥

सभु जीउ पिंडु मुखु नकु दीआ
वरतण कउ पाणी ॥
अंनु खाणा कपड़ु पैनणु दीआ
रस अनि भोगाणी ॥
जिनि दीए सु चिति न आवई
पसू हउ करि जाणी ॥३॥

मेरे प्रभु ने जीवों को सभी पदार्थ दिये हैं। शरीर और उसमें मुख, नाकादि और बरतन के लिए पानी दिया है। खाने के लिए अन्न (अनाज) और पहनने के लिए कपड़े तथा अन्य कितने रस भोगने के लिए दिए हैं। किन्तु (हाय !)जिस दातार प्रभु ने ये सब कुछ दिया है, 'वह' हमें कभी याद भी नहीं आता। हम पशुवत् (जीव)ऐसा समझते हैं(कि ये पदार्थ हमारे उद्यम का ही परिणाम है।) ॥३॥

सभु कीता तेरा वरतदा
तूं अंतरजामी ॥
हम जंत विचारे किआ करह
सभु खेलु तुम सुआमी ॥
जन नानकु हाटि विहाझिआ हरि
गुलम गुलामी ॥४॥६॥१२॥५०॥

हे प्रभु ! सब तेरा ही किया हुआ है और (संसार में) वही हो रहा है तथा तू अन्तर्यामी है। हे स्वामी ! हम बेचारे जीव-जन्तु क्या कर सकते हैं ? यह सब तेरा ही खेल है। हे हरि ! दास नानक तो तुम्हारी दुकान से खरीदा हुआ गुलाम है, (हाँ) तेरे गुलामों का भी गुलाम है ॥४॥६॥१२॥५०॥

गउड़ी बैरागणि महला ४॥

"सत्गुरु अपने शिष्यों की हर प्रकार से संभाल करता है।"

जिउ जननी सुतु जणि पालती
राखै नदरि मझारि ॥
अंतरि बाहरि मुखि दे गिरासु ॥
खिनु खिनु पोचारि ॥
तिउ सतिगुरु गुरु सिख राखता
हरि प्रीति पिआरि ॥१॥

जैसे माता पुत्र को जन्म देकर उसका पालन-पोषण करती है और अपनी दृष्टि में सदा रखती है। (घर के) अन्दर और बाहर भी आती जाती है और उसके मुख में ग्रास (दूध) देती है। क्षण-क्षण प्यार से पुचकारती है। उसी प्रकार सत्गुरु, जो बड़ा (महान) है अर्थात पूज्नीय है) अपने शिष्य को हरि का प्रेम प्यार बख़्शिश करके उसकी रक्षा करता है ॥१॥

मेरे राम हम बारिक
हरि प्रभ के है इआणे ॥
धंनु धंनु गुरू गुरु सतिगुरु पाधा
जिनि हरि उपदेसु दे कीए सिआणे
॥१॥रहाउ॥

हे मेरे राम ! हम तुझ हरि प्रभु के अबोध बालक हैं। मेरे गुरू धन्यवाद के योग्य हैं, (हाँ) धन्यवाद के योग्य हैं, मेरे सत्गुरु शिक्षा देने वाले उपाध्याय हैं जिसने हमें उपदेश देकर स्याना (समझदार) बना दिया था ॥१॥रहाउ॥

जैसी गगनि फिरंती ऊडती
कपरे बागे वाली ॥
ओह राखै चीतु पीछै बिचि बचरे
नित हिरदै सारि समाली ॥
तिउ सतिगुरसिख प्रीति हरिहरिकी
गुरु सिख रखै जीअ नाली ॥२॥

जैसे आकाश में सफेद वस्त्रों (पंखों) वाली क्रौंच (कुंज) उड़ती फिरती अपने बच्चों की सदा हृदय में याद सम्भाले हुए है, उसी प्रकार सत्गुरु की प्रीति शिष्य को हरिनाम देने की है और गुरु अपने शिष्य को प्राणों के साथ रखता है (अर्थात हर प्रकार से सार संभाल करता है।)॥२॥

जैसे काती तीस बतीस है
विचि राखै रसना मास रतु केरी ॥
कोई जाणहु मास काती कै
किछु हाथि है
सभ वसगति है हरि केरी ॥
तिउ संत जना की नर निंदा करहि
हरि राखै पैज जन केरी ॥३॥

जैसे (परमात्मा ने) तीस-बत्तीस दातों की (एक तरह की) कैंची के बीच में रक्त और मास की जिह्वा को सुरक्षित रखा हुआ है। क्या कोई जानता है कि मास (की जिह्वा) के अपने हाथ मे कोई शक्ति है जो कैंची (द्वारा काटे जाने) से बची रहती है? नहीं। यह तो स्वय हरि के अपने वश में है। उसी प्रकार जब सन्तजनों की मनुष्य निन्दा करते हैं, तब हरि अपने सेवको की लज्जा रखता है ॥३॥

भाई मत कोई जाणहु
किसी कै किछु हाथि है
सभ करे कराइआ ॥
जरा मरा तापु सिरति सापु
सभु हरि कै वसि है
कोई लागि न सकै
बिनु हरि का लाइआ ॥
ऐसाहरिनामुमनिचितिनिति धिआवहु
जन नानक जो अंती अउसरि लए
छडाइआ ॥४॥७॥१३॥५१॥

हे भाई! कही यह मत समझना कि किसी (जीव) के हाथ मे कुछ है। सभी जीव वही कुछ करते हैं जो (मेरा प्रभु) कराता है। बुढापा, मृत्यु, ज्वर (बुखार), आधे सिर का दर्द, श्राप (आदि तमाम दु:ख देने वाले रोग) सभी हरि के वश मे हैं। हरि की आज्ञा के बिना ये रोग कोई भी हमे लगा नही सकता (अर्थात् यदि हरि चाहे तो यह रोग लगते हैं अन्यथा कोई भी जीव नही लगा सकता)। हे भाई! इस समर्थ हरि के नाम का नित्य मन और चित्त से (अर्थात् प्रेम-भावना से) ध्यान करो, जिससे 'वह' अन्त समय मे (यमकाल से) छुडा दे, (कहते हैं मेरे) गुरुदेव (बाबा) दास नानक (साहब) ॥४॥७॥१३॥५१॥

गउड़ी बैरागणि महला ४॥

"सत्गुरु की निशानियाँ और उसकी संगति से लाभ।"

जिसु मिलिऐ मनि होइ अनंदु
सो सतिगुरु कहीऐ ॥

सत्गुरु उसे कहें जिसके मिलने से मन मे आनन्द होता है। (उसी की संगति करने से) मन की दुविधा नाश हो जाती है और

मन की दुबिधा बिनसि जाइ
हरि परम पदु लहीऐ ॥१॥

हरि परमात्मा की प्राप्ति की परम पदवी मिलती है ॥१॥

मेरा सतिगुरु पिआरा
कितु बिधि मिलै ॥
हउ खिनु खिनु करी नमसकारु
मेरा गुरु पूरा किउ मिलै ॥१॥
रहाउ॥

मेरा प्यारा सत्गुरु किस विधि से मुझे मिल सकता है? मैं क्षण-क्षण काश उसे नमस्कार करूं। मेरा पूर्ण गुरु कैसे मिल सकेगा ?॥१॥रहाउ॥

करि किरपा हरि मेलिआ
मेरा सतिगुरु पूरा ॥
इछ पुंनी जन केरीआ
ले सतिगुर धूरा ॥२॥

हरि ने कृपा करके मुझे अपने पूर्ण सत्गुरु से मिला दिया। मुझ दास की (मन की) इच्छाए पूर्ण हुई, जब सत्गुरु के चरणों की धूलि मैंने ली (प्राप्त की) ॥२॥

हरि भगति दृड़ावै हरि भगति सुणै
तिसु सतिगुर मिलीऐ ॥
तोटा मूलि न आवई
हरि लाभु निति दृड़ीऐ ॥३॥

ऐसे सत्गुरु की संगति करनी चाहिए जो हमारे अन्दर हरि की भक्ति दृढ कराता है और हरि के भक्तों की कथा औरों से सुनता है। (उसकी संगति करने से) कभी भी घाटा नही पडता बल्कि हरि नाम का ही लाभ नित्य प्राप्त होता है ॥३॥

जिस कउ रिदै विगासु है
भाउ दूजा नाही ॥
नानक तिसु गुर मिलि उधरै
हरि गुण गावाही ॥४॥८॥१४
॥५२॥

जिसके हृदय में सदैव (आत्म-ज्ञान का आनन्द अथवा नाम का) प्रकाश है और जिसमें द्वैत-भाव (कदाचित) नहीं; तथा जो (गुरु अपने भक्तो से) हरि के गुणों का गान करवाता है, हे नानक! उस गुरु को जाकर मिल (अर्थात् उसकी संगति कर) तो तेरा उद्धार हो ॥४॥८॥१४॥५२॥

महला ४ गउड़ी पूरबी ॥

"गुरु ही सच्चा रहबर है।"

हरि दइआलि दइआ प्रभि कीनी
मेरै मनि तनि मुखि हरि बोली ॥

जब दयालु हरि ने मुझ पर दया की तब मेरा मन तन हरि मे बस गया और मुख से भी मैं हरि बोलने लगा। (हे गुरु! ऐसी

**गुरमुखि रंगु भइआ अति गूड़ा
हरि रंगि भीनी मेरी चोली ॥१॥**

प्रेम की अवस्था आपको कैसे प्राप्त हुई ? उत्तर:)गुरु की शिक्षा से मैं अति गूढ़ प्रेम-रंग में रत गया और मेरी बुद्धि रूपी चोली हरि के प्रेम-रंग में भीग (तर हो) गई ॥१॥

**अपुने हरिप्रभ की हउ गोली ॥
जब हम हरि सेती मनु मानिआ
करि दीनो जगतु सभु गोल अमोली
॥१॥ रहाउ ॥**

मैं अपने हरि प्रभु की दासी हूँ। जब मेरा मन हरि के साथ विश्वस्त हुआ, तब हरि ने समस्त जगत को बिना मूल्य के मेरा दास बना दिया। (अर्थात् फिर सारा जगत मेरी सेवा करने लगा) ॥१॥ रहाउ ॥

**करहु बिबेकु संत जन भाई
खोजि हिरदै देखि ढंढोली ॥
हरि हरि रूपु सभ जोति सबाई
हरि निकटि वसै हरि कोली ॥२॥**

(प्रश्न: ऐसा सत्य साईं कहाँ रहता है ? उत्तर) हे भाई सन्तजनों ! विचार करके अपना हृदय खोज कर (हाँ) ढूँढकर देखो। सभी जीव हरि के रूप हैं और हरि की ज्योति (अर्थात् चेतन सत्ता) सभी में समाहित है तथा हरि निकट से निकट (हाँ) हरि पास मे वसता है ॥२॥

**हरि हरि निकटि वसै सभ जग कै
अपरंपर पुरखु अतोली ॥
हरि हरि प्रगटु कीओ गुरि पूरै
सिरु वेचिओ गुर पहि मोली
॥३॥**

हरि जो हमारे दुःख दूर करने वाला है, 'वह' समस्त जगत के निकट बस रहा है। 'वह' परे से परे है, अतुलनीय है. किन्तु सर्व व्यापक भी है। जब मैंने गुरु को अपना सिर मोल बेच दिया (अर्थात् अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया) तो पूर्ण गुरु ने हरि परमात्मा को (मेरे समक्ष) प्रकट कर दिया ॥३॥

**हरि जी अंतरि बाहरि तुम सरणागति
तुम वड पुरख वडोली ॥
जनु नानकु अनदिनु हरि गुण गावै
मिलि सतिगुर गुर वेचोली ॥४॥
१॥१५॥५३॥**

ऐ भीतर और बाहर सर्वत्र निवास करने वाले हरे ! तू महान से महान है। हे परिपूर्ण परमात्मन् ! मैं तेरी शरण मे आया हूँ। हे हरे ! मैं विचोले (वकील) सत्गुरु से मिलकर रात-दिन तेरे गुण गाता हूँ ॥४॥१॥१५॥५३॥

गउड़ी पूरबी महला ४॥

"हरि-नाम-रस की प्राप्ति केवल सत्संग में सम्भव है।"

**जगजीवन अपरंपर सुआमी
जगदीसुर पुरख बिधाते ॥**

हे जगत के जीवन ! हे परे से परे स्वामी ! हे जगत के ईश्वर ! हे सर्वव्यापक ! हे भाग्य निर्माता अथवा हे कर्मों के फल देने

जितु मारगि तुम प्रेरहु सुआमी
तितु मारगि हम जाते ॥१॥

वाले ! हे स्वामी ! जिस मार्ग की ओर तुम प्रेरित करते हो, उसी मार्ग की ओर हम जाते हैं ॥१॥

राम मेरा मनु हरि सेती राते ॥
सतसंगति मिलि रामु रसु पाइआ
हरि रामै नामि समाते ॥१॥रहाउ॥

हे राम ! मेरा मन हरि (नाम) के साथ रंगा गया है। सत्संगति में मिलकर मैंने रामनाम का रस पाया है, (हाँ) हरि में, रामनाम में समा गया हूँ ॥१॥रहाउ॥

हरि हरि नामु हरि हरि जगि अवखधु
हरि हरि नामु हरि साते ॥
तिनके पाप दोख सभि बिनसे
जो गुरमति राम रसु खाते ॥२॥

हरि परमात्मा का हरि हरि नाम जगत में (सर्व दुःख निवृत करने वाली) औषधि है, (हाँ) हरि हरि का नाम प्रत्येक को शान्ति देने वाला है। जो जीव गुरु की मत्ति लेकर राम रस को खाते (अर्थात पीते) हैं, उनके सभी पाप और दोष नाश हो जाते हैं ॥२॥

जिन कउ लिखतु लिखे धुरि
मसतकि
ते गुर संतोखसरि नाते ॥
दुरमति मैलु गई सभ तिन की
जो रामनाम रंगि राते ॥३॥

जिनके मस्तक में पूर्व जन्म के शुभ कर्मों का लेख लिखा हुआ है, उन्होने गुरु रूप सन्तोष सरोवर में स्नान किया है (अर्थात सत्गुरु के उपदेश को ग्रहण किया है)। जो जीव रामनाम के रंग में अनुरक्त हैं, उनकी दुर्बुद्धि की मलिनता सब निवृत हो गई है ॥३॥

राम तुम आपे आपि आपि प्रभु
ठाकुर
तुम जेवड अवरु न दाते ॥
जनु नानक नामु लए तां जीवै
हरि जपीऐ हरि किरपा ते ॥४॥२
॥१६॥५४॥

हे राम ! तू अपने आप से आप हो, प्रभु हो, ठाकुर हो, तुम्हारे जितना बडा और कोई दाता नही है। जब मैं दास नानक हरि के नाम का जाप करता हूँ, तो मुझे (वास्तिविक) जीवन प्राप्त होता है, किन्तु हरि का नाम भी 'उसकी' कृपा द्वारा जपा जा सकता है ॥४॥२॥१६॥५४॥

गउड़ी पूरबी महला ४॥

"हरि परमात्मा के प्रति प्रीति की अनुभूति।"

करहु कृपा जगजीवन दाते
मेरा मनु हरि सेती राचे ॥
सतिगुरि बचनु दीओ अति निरमलु
जपि हरि हरि हरि मनु माचे ॥१॥

हे जगत के जीवन ! हे (मेरे) दाते ! कृपा करो कि मेरा मन हरि के साथ रच जाये। हे हरि ! जब सत्गुरु ने मुझे अति निर्मल वचन (उपदेश) दिया (सुनाया), तब मेरा मन 'हरि हरि हरि' का नाम जपकर आनन्द से झूम उठा ॥१॥

राम मेरा मनु तनु बेधि लीओ
हरि साचे ॥
जिह काल कै मुखि
जगतु सभु ग्रसिआ
गुर सतिगुर कै बचनि
हरि हम बाचे ॥१॥रहाउ॥

हे राम ! मेरे मन और तन को सत्य स्वरूप हरि ने बींध लिया है। (अब ऐसी कृपा हुई है कि) जिस काल ने समस्त जगत को अपने मुख में ग्रास बनाकर रखा है, (उस काल के मुख से) बड़े सत्गुरु के बचन से, हे हरि ! मैं बच गया ॥१॥ रहाउ ॥

जिन कउ प्रीति नाही हरि सेती
ते साकत मूड़ नर काचे ॥
तिन कउ जनमु मरणु अति भारी
विचि विसटा मरि मरि पाचे ॥२॥

जिनकी हरि के साथ प्रीति नहीं है, वे माया-शक्ति के उपासक (साकत) हैं, मूर्ख हैं और कच्चे लोग हैं। उनको जन्म-मरण का अति भारी (दुख) लगता है और वे विष्ठा (गन्द) में मर-मरकर जलते हैं ॥२॥

तुम दइआल सरणि प्रतिपालक
मोकउ दीजै दानु हरि हम जाचे ॥
हरि के दास दास हम कीजै
मनु निरति करे करि नाचे ॥३॥

हे हरि ! तू दयालु है और शरणागत की पालना करने वाले हो, मैं तुमसे एक दान की याचना करता हूँ, (कृपा करके वह) मुझे दो। हे हरि ! मुझे अपने सेवकों का सेवक (चाकर) कर। (अभिलाषा है कि मेरा) मन (भक्ति के अन्दर प्रेम भाव के साथ) नृत्य कर करके नाचे(अर्थात तेरी भक्ति में अनुरक्त रहूँ)॥३॥

आपे साह वडे प्रभ सुआमी
हम वणजारे हहि ताचे ॥
मेरा मनु तनु जीउ रासि सभ तेरी
जन नानक के साह प्रभ साचे ॥४
॥३॥१७॥५५॥

हे प्रभु स्वामी ! तू आप बड़ा (महान) सेठ शाह है और हम तुम्हारे बनजारे हैं। हे दास नानक के सच्चे शाह और प्रभु ! मन, तन और जीवात्मा सब तेरी दी हुई पूँजी है ॥४॥३॥१७॥५५॥

गउड़ी पूरबी महला ४॥

"सत्गुरु को मिलने की अभिलाषा।"

तुम दइआल सरब दुख भंजन
इक बिनउ सुनहु दे काने ॥
जिस ते तुम हरि जाने सुआमी
सो सतिगुरु मेलि मेरा प्राने ॥१॥

(हे महाराज !) तू दयालु है और सम्पूर्ण दु:खों को नाश करने वाले हो। (हे प्रभु !) मेरी एक विनय को कान देकर (अर्थात ध्यानपूर्वक) सुनो। हे हरि स्वामी ! जिस (सत्गुरु) के (कृपा) द्वारा तुझे जान लिया जाता है, उस प्राणप्रिय सत्गुरु से मेरा मिलाप करा दो ॥१॥

राम हम सतिगुर पारब्रहम करि
माने ॥
हम मूड़ मुगध असुध मति होते
गुर सतिगुर कै बचनि
हरि हम जाने ॥१॥रहाउ॥

हे भाई ! मैंने सत्गुरु को परब्रह्म का रूप करके माना है, क्योंकि मैं मूर्ख बेसमझ, गंदी बुद्धि वाला होता था, किन्तु सत्गुरु, जो बड़ा (महान) है उसके वचन द्वारा मैंने हरि को जाना है ॥१॥रहाउ॥

जितने रस अनरस हम देखे
सभ तितने फीक फीकाने ॥
हरि का नामु अंमृत रसु चाखिआ
मिलि सतिगुर मीठ रस गाने ॥२॥

जितने अन्य रस (हरि नाम के बिना)मैंने देखें (अर्थात रसास्वादन किए), वे सभी फीके ही फीके (अर्थात बेस्वाद) हैं, किन्तु जब सत्गुरु से मिलकर तुम्हारा अमृत रूपी हरि नाम चखा, तब वह मुझे गन्ने (ईख) जैसा मीठा लगा अथवा सत्गुरु से मिलकर हरि के नाम रूपी मीठे रस को गा रहा हूँ ॥२॥

जिन कउ गुरु सतिगुरु नही भेटिआ
ते साकत मूड़ दिवाने ॥
तिन के करम हीन धुरि पाए
देखि दीपकु मोहि पचाने ॥३॥

जिनको पूज्यनीय (बडा) सत्गुरु नही मिला है, वे माया में आसक्त हुए हैं, इसलिए मूर्ख हैं और पागल हैं। क्योंकि उनके भाग्य पूर्व काल से ही फूटे हुए हैं और वे पतगों की भांति मोह माया रूपी दीपक पर जल कर मर रहे हैं ॥३॥

जिन कउ तुम दइआ करि मेलहु
ते हरि हरि सेव लगाने ॥
जन नानक हरि हरि हरि जपि प्रगटे
मति गुरमति नामि समाने ॥४॥
४॥१८॥५६॥

हे हरि ! जिनको तुम दया करके सत्गुरु से मिलाते हो, वे ही तुम्हारी सेवा (भक्ति) में लगते हैं और हरि का नाम बार-बार जपकर (सभी लोगो मे) प्रसिद्ध हो जाते हैं और बुद्धि में सत्गुरु की मत्ति धारण करते हुए हरि के नाम में समा जाते हैं ॥४॥
४॥१८॥५६॥

गउड़ी पूरबी महला ४॥

"मन को संबोधन और परामर्श।"

मन मेरे
सो प्रभु सदा नालि है सुआमी
कहु किथै हरि पहु नसीऐ ॥
हरि आपे बखसि लए प्रभु साचा
हरि आपि छडाए छुटीऐ ॥१॥

हे मेरे मन ! 'वह' प्रभु जो (सबका) स्वामी है, सदा तेरे साथ रहता है, बताओ कौन सी जगह है, जहाँ तुम हरि से भाग सकोगे (अर्थात प्रभु सर्वव्यापक है और ऐसी कोई भी जगह नही जहाँ पाप करके हम छिप सकते हैं)। सच्चा हरि प्रभु जो पापों को हरने वाला है 'वह' स्वयं ही क्षमा करेगा और हरि जब स्वयं छुडाएगा, तब (हम) छूटेंगे ॥१॥

मेरे मन
जपि हरि हरि हरि मनि जपीऐ ॥
सतिगुर की सरणाई भजि पउ मेरे मना
गुर सतिगुर पीछै छुटीऐ ॥१ ॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! हरि जो सर्व दु:खों को हरने (नाश करने) वाला है उसका मन में जाप कर,(हाँ) रसना से भी तूह रि हरि जप (बोलो) । हे मेरे मन ! तू सत्गुरु की ओर भाग कर शरण में जा पड़ क्योंकि सत्गुरु जो बड़ा (महान) है उसके पीछे लगने से तू (भव-सागर) छूट जाएगा ॥१॥ रहाउ ॥

मेरे मन सेवहु सो प्रभ सब सुखदाता
जितु सेविऐ निजघरि वसीऐ ॥
गुरमुखि जाइ लहहु घरु अपना
घसि चंदनु हरि जसु घसीऐ ॥२॥

हे मेरे मन ! प्रभु जो सब सुखो को देने वाला है, उसकी तू सेवा कर। (उसकी सेवा करने से) तू अपने घर(अर्थात सत् चित् आनन्द स्वरूप में निवास करेगा)। (हाँ) गुरु के पास जाकर अपने निजघर को ढूँढ ले । परमात्मा के यशोगान रूपी चन्दन को अपने मन पर घिसा लेना चाहिए (अर्थात जैसे चन्दन घिसकर सुगन्ध फैलाता है, वैसे ही हरि यश को बारम्बार उच्चारण करके हरि महिमा को चारो और प्रसारित कर) ॥२॥

मेरे मन हरि हरि हरि हरि हरि जसु उतमु
लै लाहा हरि मनि हसीऐ ॥
हरि हरि आपि दइआ करि देवै
ता अंमृतु हरि रसु चखीऐ ॥३॥

हे मेरे मन ! दु:ख दूर करने वाला जो हरि हरि हरि नाम है और हरि का यश उत्तम है, ऐसे हरि के नाम का लाभ लेकर तू मन मे प्रसन्न रहो, किन्तु जब हरि परमात्मा स्वयं दया करके अपना नाम देता है, तो हरि नाम के रस का रसास्वादन किया जा सकता है ॥३॥

मेरे मन नाम बिना जो दूजै लागे
ते साकत नर जमि घुटीऐ ॥
ते साकत चोर जिना नामु विसारिआ
मन तिन कै निकटि न भिटीऐ ॥४॥

हे मेरे मन ! हरि नाम का परित्याग करके जो द्वैत भाव मे लगे हैं, वे मायिक पदार्थो मे आसक्त (साकत) (अज्ञानी) जीव यम द्वारा दबोच लिए जाते हैं। जिन्होंने नाम को विस्मृत किया है, वे मनमुख, चोर हैं । हे मन ! उनके न निकट बैठें और न ही (उनको) स्पर्श ही करना ॥४॥

मेरे मन सेवहु अलख निरंजन
नरहरि जितु सेविऐ लेखा छुटीऐ ॥
जन नानक हरि प्रभि पूरे कीए
खिनु मासा तोलु न घटीऐ ॥५॥५ ॥१९॥५७॥

हे मेरे मन ! अलक्ष्य, निरजन, नृसिंह रूप परमात्मा की सेवा कर। 'उसकी' सेवा करने से लेखा छूट जाता है (अर्थात जीव कर्मजाल से मुक्त हो जाता है) । हे नानक ! जिन्होंने ऐसे हरि प्रभु की सेवा की है, उनको हरि ने पूर्ण कर दिया है वे क्षण मात्र, माशा भर भी तोल में कम नही होते (अर्थात हरि ने उन्हें अपने जैसा पूर्ण कर दिया है, वे 'उसी' का रूप हो जाते हैं।) ॥५॥५॥१९॥५७॥

गउड़ी पूरबी महला ४॥

हमरे प्रान वसगति प्रभ तुमरै
मेरा जीउ पिंडु सभ तेरी ॥
दइआ करहु हरि दरसु दिखावहु
मेरै मनि तनि लोच घणेरी ॥१॥

"प्रभु समक्ष के प्रार्थना।"

हे प्रभु! मेरे प्राण तेरे वश में है और मेरी जीवात्मा चाहे शरीर, सब तेरी देन है। हे हरि! दया करके मुझे अपना दर्शन दिखाओ। मेरे मन और तन में तुम्हारे दर्शन की (अति) तीव्र इच्छा है ॥१॥

राम मेरै मनि तनि लोच मिलण
हरि केरी ॥
गुर क्रिपालि क्रिपा किंचत गुरि कीनी
हरि मिलिआ आइ प्रभु मेरी ॥१॥
रहाउ॥

हे राम! मेरे मन चाहे तन में तुझ हरि को मिलने की इच्छा है। जो गुरु कृपालु है उसने मुझ पर किंचित (थोड़ी) सी ही कृपा की, तो हरि प्रभु आकर मिला ॥१॥ रहाउ ॥

जो हमरै मन चिति है सुआमी
सा बिधि तुम हरि जानहु मेरी ॥
अनदिनु नामु जपी सुखु पाई ॥
नित जीवा आस हरि तेरी ॥२॥

हे स्वामी! हे हरि! जो कुछ मेरे मन चाहे चित्त में है, वह दशा तुम जानते हो। (अभिलाषा है कि) रात-दिन तुम्हारा नाम जपकर सुख प्राप्त करूं और हे हरि! नित्य तेरी आशा रखकर जीवित रहूँ ॥२॥

गुरि सतिगुरि दातै पंथु बताइआ
हरि मिलिआ आइ प्रभु मेरी ॥
अनदिनु अनदु भइआ वडभागी
सभ आस पुजी जन केरी ॥३॥

जब बडे (महान) सत्गुरु दाता ने मुझे मार्ग बताया, तब हे हरि प्रभु, तू आकर मुझसे मिला। मुझे अब रात-दिन आनन्द है इसलिए मैं बडे भाग्यशाली हूँ क्योंकि मैं दास की (सभी) आशा पूर्ण हो गई ॥३॥

जगंनाथ जगदीसुर करते
सभ वसगति है हरि केरी ॥
जन नानक सरणागति आए
हरि राखहु पैज जन केरी ॥४॥६
॥२०॥५८॥

हे जगत के स्वामी! हे जगत के ईश्वर! हे (सृष्टि) कर्त्ता! हे हरि! सब तेरे वश में हैं। हे हरि! मैं दास नानक तेरी शरण मे आया हूँ। तू मुझ (के मनुष्य देह) दास की लज्जा रखो ॥४॥
६॥२०॥५८॥

गउड़ी पूरबी महला ४॥

"सत्गुरु का शिष्य खरीदा हुआ गुलाम है।"

इहु मनूआ खिनु न टिकै बहु रंगी
दह दहदिसि चलि चलि हाढे ॥
गुरु पूरा पाइआ वडभागी
हरि मंत्रु दीआ मनु ठाढे ॥१॥

बहुत रंगों में लिप्त यह मन क्षण भर के लिए भी टिकता नहीं (अर्थात स्थिर नहीं होता) और दशों-दिशाओं में चल-चलकर भटक रहा है, किन्तु जब बड़े सौभाग्य से पूर्ण गुरु प्राप्त होता है तो वह हरिनाम का मंत्र देता है जिससे (अस्थिर) मन स्थिर हो जाता है॥१॥

राम हम सतिगुर लाले कांढे ॥१
॥रहाउ॥

हे राम ! हम सत्गुरु के सेवक अथवा गुलाम कहे जाते हैं॥१
रहाउ॥

हमरै मसतकि दागु दगाना
हम करज गुरू बहु साढे ॥
परउपकारु पुंनु बहु कीआ
भउ दुतरु तारि पराढे ॥२॥

हमारे मस्तक पर (गुलामी का) निशान लगा दिया है (प्राचीन समय में गुलामों के माथे पर गर्म लोहे से अपने नाम का निशान देते थे)। हमारे सिर पर गुरु का बहुत ऋण है क्योंकि गुरु ने बहुत परोपकार और पुण्य हम पर किये हैं और दुष्कर भव-सागर से हमे पार भी उतार दिया है॥२॥

जिन कउ प्रीति रिदै हरि नाही
तिन कूरे गाढन गाढे ॥
जिउ पाणी कागदु बिनसि जात है
तिउ मनमुख गरभि गलाढे ॥३॥

जिनके हृदय में हरि की प्रीति नही है, उन्होंने झूठे गठबंधन किये हैं। जैसे कागज पानी मे गलकर नष्ट हो जाता है वैसे ही मनमुख योनियो मे पड़-पड़ कर गलते हैं॥३॥

हम जानिआ कछू न जानह आगै
जिउ हरि राखै तिउ ठाढे ॥
हम भूल चूक गुर किरपा धारहु
जन नानक कुतरे काढे ॥४॥७॥२१
॥५६॥

हमें न कुछ पहले मालूम था और न आगे कुछ मालूम होगा। हमे तो जैसे सर्व शक्तिमान सर्वज्ञ हरि रखता है, वैसे ही 'उसकी' आज्ञा मे खड़े रहते हैं। हे गुरु ! हम गलतिया आदि करने वाले हैं, हम पर कृपा करो, हम आपके कुत्ते कहलाते हैं। (कहते हैं मेरे गुरुदेव), दास (गुरु) नानक (साहब) ॥४॥७॥२१॥५६॥

गउड़ी पूरबी महला ४॥

"सन्त की संगति से सभी विकार नष्ट होते हैं।"

कामि करोधि नगरु बहु भरिआ
मिलि साधू खंडल खंडा हे ॥

(मनुष्य का यह) शरीर रूपी नगर काम, क्रोधादि (विकारों) से भरा हुआ है। साधु को मिलने पर ही नाम रूपी खड़ग से इन

पूरबि लिखत लिखे गुरु पाइआ
मनि हरि लिव मंडल मंडा हे ॥१॥

विकारो को नाश किया जा सकता है। किंतु पूर्व-लिखित कर्मों के अनुसार जिन्हे गुरु (साधु) प्राप्त होता है, उनका मन हरि की लौ (ध्यान) में मग्न होकर मण्डित हो जाता है ॥१॥

करि साधू अंजुली पुंनु वडा हे ॥
करि डंडउत पुनु वडा हे ॥१ ॥रहाउ॥

(हे भाई !) साधु (गुरु) बड़ा (महान) है, उसे दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करो। साष्टाग दन्डवत् प्रणाम करो। वह महान है अथवा उसे नमस्कार करना पुण्य कर्म है ॥१॥ रहाउ॥

साकत हरि रस सादु न जानिआ
तिन अंतरि हउमै कंडा हे ॥
जिउ जिउ चलहि चुभै दुखु पावहि
जम कालु सहहि सिरि डंडा हे ॥२॥

माया में आसक्त (साकत) जीव हरि के रस (आनन्द) को नही जानते, क्योकि उनके अन्तर्गत अहम भाव का काटा है। जैसे अहता ममता के कर्मो मे प्रवृत होते हैं, यह काटा उनको चुभता है और दु ख पाते हैं तथा अन्त समय में भी उन्हें यमकाल के डंडो को सिर पर सहना पडता है ॥२॥

हरिजन हरि हरि नामि समाणे
दुखु जनम मरण भव खंडा हे ॥
अबिनासी पुरखु पाइआ परमेसरु
बहु सोभ खंड ब्रहमंडा हे ॥३॥

किन्तु जो हरि के सेवक हैं, वे हरि में, (हाँ) हरि के नाम में समाये रहते हैं। वे जन्म-मरण के दु खो से मुक्त हो जाते हैं। वे अविनाशी परिपूर्ण पुरुष परमात्मा को प्राप्त करते हैं और उनकी शोभा खड-ब्रह्माण्डादि मे हो जाती है (अर्थात वे जहाँ-क ाँ सम्मानित होते हैं।) ॥३॥

हम गरीब मसकीन प्रभ तेरे
हरि राखु राखु वड वडा हे ॥
जन नानक नामु अधारु टेक है
हरिनामे ही सुखु मंडा हे ॥४॥८ ॥२२॥६०॥

हे प्रभु ! हम गरीब और बेसहारे (मसकीन जीव) हैं। पर तेरे हैं। महान से महान हे हरि ! रक्षा करो, (हाँ) हमारी (इन कामादिक विकारो से) रक्षा करो। दास नानक को (हे हरि !) तेरे नाम की ही टेक और आश्रय है। हरि नाम से ही परम सुख प्राप्त होता है ॥४॥८॥२२॥६०॥

गउड़ी पूरबी महला ४॥

'हरि का कीर्तन, (हाँ) गुरु के लिए लौ मीठी है।"

इसु गड़ महि हरि राम राइ है
किछु सादु न पावै धीठा ॥
हरि दीन दइआलि अनुग्रहु कीआ
हरि गुर सबदी चखि डीठा ॥१॥

इस शरीर रूपी किले मे हरि राम राजा विद्यमान है, किन्तु यह ढीठ (निर्लज्ज) जीव कुछ भी उसका स्वाद नही पाता है। जब हरि दीन दयालु ने कृपा की, तब गुरु के शब्द(उपदेश) द्वारा हरि का स्वाद चख कर देखा ॥१॥

राम हरि कीरतनु गुर लिव मीठा ॥१॥रहाउ॥

हे भाई ! गुरु द्वारा लौ लगाने से हरि राम का कीर्तन मीठा लगता है ॥१॥ रहाउ ॥

हरि अगमु अगोचरु पारब्रहमु है
मिलि सतिगुर लागि बसीठा ॥
जिन गुर बचन सुखाने हीअरै
तिन आगै आणि परीठा ॥२॥

जो जीव सत्गुरु रूपी वकील (के चरणो) मे लग जाते हैं। उनको अगम्य, इन्द्रियातीत, परब्रह्म मिल जाता है। जिनके हृदय मे गुरु के वचन सुख देते हैं(अर्थात प्रिय लगते हैं) उनके आगे गुरु नाम रूपी अमृत भोजन को स्वय लाकर परोस देता है ॥२॥

मनमुख हीअरा अति कठोरु है
तिन अंतरि कार करीठा ॥
बिसीअर कउ बहु दूधु पीआईऐ
बिखु निकसै फोलि फुलीठा ॥३॥

मनमुखों का हृदय अति कठोर है, उनके अन्तर्गत रीठे की सी कालिमा तथा कड़वापन है। जिस प्रकार यदि नाग को दूध पिलाये तो विष ही निकलेगा चाहे कितना भी उलट-पलट कर देखे (उसी प्रकार मनमुखो को चाहे श्रेष्ठ शिक्षा भी दी जाए तो भी उन पर कोई प्रभाव नही पडता, बल्कि वे बुराई ही करेंगे।) ॥३॥

हरि प्रभु आनि मिलावहु गुरु साधू
घसि गरुड़ु सबदु मुखि लीठा ॥
जन नानक गुर के लाले गोले
लगि संगति करूआ मीठा ॥४॥६॥२३॥६१॥

हे हरि ! हे प्रभु ! मुझे ऐसे गुरु साधु से मिलाओ। (काश ! मैं उसके शब्दो को, जो गारड़ी सर्प विष नाशक मन्त्र, जिसके देवता गरुड माने गये हैं) के समान (अहम्भाव रूपी विष को नाश करने वाला) है, जिसको घिसाकर मैं मुख से ग्रहण करूँ (अर्थात मुख से नाम का जाप करूँ)। हे दास नानक ! जो गुरु के सेवको के सेवक गुलाम हैं, सत्सगति में मिलकर, वे जो पहले कडवे थे, मीठे हो जाते है (अर्थात मनमुखो वाला स्वभाव न रह-कर गुरुमुखो वाला स्वभाव बन जाता है।) ॥४॥६॥२३॥६१॥

गउड़ी पूरबी महला ४॥

"सत्गुरु मे पूर्ण श्रद्धा अनिवार्य है।"

हरि हरि अरधि सरीरु हम बेचिआ
पूरे गुर कै आगे ॥
सतिगुर दातै नामु दिड़ाइआ
मुखि मसतकि भाग सभागे ॥१॥

हरि हरि (नाम) के लिए (अर्थात प्राप्ति के लिए) मैंने अपना शरीर पूर्ण गुरु के आगे बेच दिया है। मेरे मस्तक पर मुख्य (अर्थात श्रेष्ठ) भाग्य का लेख लिखा हुआ था, इसलिए मुझे सत्गुरु दाता ने नाम दृढ़ करा दिया ॥१॥

राम गुरमति हरि लिव लागे ॥१ ॥रहाउ॥

(हे भाई !) गुरु की मति द्वारा राम हरि से लौ लगती है ॥१॥ रहाउ ॥

घटि घटि रमईआ रमत राम राइ
गुर सबदि गुरू लिव लागे ॥
हउ मनु तनु देवउ काटि गुरू कउ
मेरा भ्रमु भउ गुरबचनी भागे ॥२॥

(हे भाई!) घट-घट मे राम राजा रमण कर रहा है। (अर्थात सर्वव्यापक है)। गुरु जो पूजनीय है उसके शब्द द्वारा (हरि नाम में) लौ लगती है। काश! मैं मन तन काटकर गुरु को दे दू जिस गुरु के वचनो के कारण भ्रम और भय भाग गये हैं ॥२॥

अंधिआरै दीपक आनि जलाए
गुर गिआनि गुरू लिव लागे ॥
अगिआनु अंधेरा बिनसि बिनासिओ
घरि बसतु लही मन जागे ॥३॥

जिस प्रकार अंधकार में दीपक लाकर जलाने से अंधकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार महान गुरु ज्ञान देकर हमारी लौ हरि के साथ लगा देता है और फिर अज्ञान रूप अन्धेरा बिलकुल ही नाश हो जाता है और आत्मा रूपी वस्तु हृदय घर में प्राप्त हो जाती है और यह मन अविद्या की नींद से जाग्रत हो जाता है।॥३॥

साकत बधिक माइआधारी
तिन जम जोहनि लागे ॥
उन सतिगुर आगै सीसु न बेचिआ
ओइ आवहि जाहि अभागे ॥४॥

शक्ति-माया के उपासक (साकत) को अथवा माया में लिप्त मायाधारी जीवो को वध करने वाला बधिक रूपी यम देख रहा है (मारने के लिए), उन्होने सत्गुरु के आगे अपना सिर नही बेचा है (अर्थात अहम् भाव को दूर नही किया है) इसलिए वे भाग्यहीन जीव जन्म-मरण के चक्र मे आते और जाते हैं॥४॥

हमरा बिनउ सुनहु प्रभ ठाकुर
हम सरनि प्रभू हरि मागे ।
जन नानक की लज पाति गुरू है
सिरु वेचिओ सतिगुर आगे ॥५
॥१०॥२४॥६२॥

हे प्रभु! हे ठाकुर! मेरी प्रार्थना सुन लो। मैं तुझ हरि प्रभु की शरण माँगता हूँ। मैं दास नानक की लज्जा (इस लोक में) और प्रतिष्ठा (परलोक मे) गुरू ही है। मैंने सत्गुरु के आगे अपना सिर बेच दिया है॥५॥१०॥२४॥६२॥

गउड़ी पूरबी महला ४॥

"सत्गुरु के बताने पर मुझे प्रियतम प्रभु अन्दर ही मिल गया। अब मेरो अवस्था तो देखो।"

हम अहंकारी
अहंकार अगिआन मति
गुरि मिलिऐ आपु गवाइआ ॥
हउमै रोगु गइआ सुखु पाइआ
धनु धंनु गुरू हरि राइआ ॥१॥

मैं अहकार के कारण अहंकारी और अज्ञानी था किन्तु गुरु के मिलने पर मेरा अहकार निवृत्त हो गया। जब हौमै का रोग दूर हो गया तो मुझे सुख की प्राप्ति हुई। धन्य है, धन्य है मेरा गुरू हरि राजा॥१॥

राम गुर कै बचनि
हरि पाइआ ॥१॥रहाउ॥

(हे भाई!) मैंने गुरु के वचनों द्वारा राम हरि प्राप्त किया है ॥१॥ रहाउ॥

मेरै हीअरै प्रीति राम राइ की
गुरि मारगु पंथु बताइआ ॥
मेरा जीउ पिंडु सभु सतिगुर आगै
जिनि विछुड़िआ हरि गलि लाइआ
॥२॥

मेरे हृदय में राम राजा की प्रीति है, गुरु ने (इस संसार रूपी) मार्ग में मुझे हरि (राजा को मिलने का) रास्ता बताया है। मेरा मन और तन तथा सभी पदार्थ सत्गुरु के आगे (समर्पित) हैं क्योंकि बिछुड़ा हुआ हरि मेरे गले से लगा दिया ॥२॥

मेरै अंतरि प्रीति लगी देखन कउ
गुरि हिरदे नालि दिखाइआ ॥
सहज अनंदु भइआ मनि मोरै
गुर आगै आपु वेचाइआ ॥३॥

जब मेरे अन्तर्गत हरि को मिलने के लिए (अत्यन्त) प्रीति लगी और मैंने अपने आपेपन को गुरु के आगे बेच दिया, तब गुरु ने मुझे हृदय में हरि को अपने साथ दिखा दिया। इसलिए मेरे मन में सहज ही आनन्द प्राप्त हुआ है अथवा वास्तविक सुख जो ज्ञानावस्था में प्राप्त होता है ॥३॥

हम अपराध पाप बहु कीने
करि दुसटी चोर चुराइआ ॥
अब नानक सरणागति आए
हरि राखहु लाज हरि भाइआ ॥४
॥११॥२५॥६३॥

(मेरे सत्गुरु की विनम्रता।) मैंने बहुत ही पाप और अपराध किये थे और दुष्टता करके चोर बनकर मैंने बहुत ही चोरियां भी की थी। हे हरि! मैं तेरी शरण में आया हूँ। हे हरि! तू मुझे अच्छा लगता है। तुम मेरी (मनुष्य देही की) लज्जा रखो।
॥४॥११॥२५॥६३॥

गउड़ी पूरबी महला ४॥

"गुरु की कृपा और शिक्षा से हरि प्राप्त होता है।"

गुरमति बाजै सबदु अनाहदु
गुरमति मनूआ गावै ॥
वडभागी गुर दरसनु पाइआ
धनु धंनु गुरू लिव लावै ॥१॥

गुरु की शिक्षा द्वारा ही अनहद शब्द बजता है अथवा शब्द रूप ब्रह्म प्रकट होता है (अर्थात प्रत्यक्ष दिखाई देता है) और गुरु की शिक्षा द्वारा मन गाता है (अर्थात स्तुति करता है)। भाग्यशाली जीव ही गुरु का दर्शन प्राप्त करते हैं। धन्य है, (हाँ) धन्य है वह (गुरमुख) जो गुरु के साथ लौ लगाता है ॥१॥

गुरमुखि हरि लिव लावै ॥१
॥रहाउ॥

(हे भाई!) गुरु की शिक्षा द्वारा ही (जीव) हरि से लौ लगाता है ॥१॥ रहाउ ॥

हमरा ठाकुरु सतिगुरु पूरा
मनु गुर की कार कमावै ॥
हम मलि मलि धोवह पाव गुरू के
जो हरि हरि कथा सुनावै ॥२॥

मेरा ठाकुर पूर्ण सत्गुरु ही है और मेरा मन गुरु का ही कार्य करता है (अर्थात सेवा करता है)। जो गुरु हरि-हरि की कथा सुनाता है, उसी के पैर मैं मल मल कर धोता हूँ ॥२॥

हिरदै गुरमति राम रसाइणु
जिहवा हरिगुण गावै ॥
मन रसकि रसकि हरि रसि आघाने
फिरि बहुरि न भूख लगावै ॥३॥

गुरु की शिक्षा द्वारा मैं अपने हृदय में राम (नाम) का अमृत पीता हूँ और जिह्वा (जबान) से हरि के गुण गाता हूँ। मेरा मन हरि के रस मे रच-रच कर (अर्थात बारम्बार स्वाद ले लेकर) तृप्त होता है, फिर मुझे (पदार्थों की) भूख (तृष्णा) नहीं लगती ॥३॥

कोई करै उपाव अनेक बहुतेरे
बिनु किरपा नामु न पावै ॥
जन नानक कउ हरि किरपा धारी
मति गुरमति नामु दृड़ावै ॥४
॥१२॥२६॥६४॥

(प्रश्न · हे सत्गुरु ! नाम रस प्राप्ति करने के लिए कितने ही जप, तप आदि किये जाते हैं फिर भी प्राप्त नही होता ? उत्तर) चाहे कोई अनेक प्रकार के बहुत उपाय करे, तो भी (गुरु की) कृपा के बिना नाम (रस) की प्राप्ति नहीं हो सकती। गुरु ने दास नानक पर कृपा की है इसलिए अपनी बुद्धि मे गुरु की शिक्षा द्वारा नाम दृढ किया है ॥४॥१२॥२६॥६४॥

रागु गउड़ी माझ महला ४॥

'गुरू की महिमा।"

गुरमुखि जिंदू जपि नामु करंमा ॥
मति माता मति जीउ
नामु मुखि रामा ॥
संतोखु पिता करि
गुरु पुरखु अजनमा ॥
वडभागी मिलु रामा ॥१॥

हे जीव ! गुरु के उपदेश द्वारा नाम जपने का कर्म कर। (हे जीव !) गुरु की मत्ति को ही तू अपनी माता समझ, इसी मत्ति को जीवन-आधार मान क्योंकि इसी मत्ति द्वारा राम नाम का जाप किया जाता है। सन्तोष को तू पिता बना और अयोनी तथा अजन्मा परमात्मा को गुरु धारण कर। हे भाग्यशाली ! ऐसा कुटुम्बी बनकर तू राम से मिल ॥१॥

गुरु जोगी पुरखु मिलिआ
रंगु माणी जीउ ॥
गुर हरि रंगि रतड़ा
सदा निरबाणी जीउ ॥

गुरू, जो योगी पुरुष है (अर्थात जो परमात्मा से जुड़ा हुआ है) ऐसा गुरु जिसे मिला है, वह परमात्मा का आनन्द (रंग) अनुभव करता है। गुरु स्वयं हरि के प्रेम-रंग में रंगा हुआ है और (संसार में रहता हुआ भी) निर्लेप है। वह सुघड़ है और सुजान

वडभागी मिलु सुघड़ सुजाणी
जीउ ॥
मेरा मनु तनु हरि रंगि भिना ॥२॥

है, ऐसा गुरु भाग्यशालियों को मिल सकता है। (हे भाई !) मेरा मन और तन हरि के प्रेम-रंग में भीग गया है ॥२॥

आवहु संतहु मिलि नामु जपाहा ॥
विचि संगति नामु सदा लै लाहा
जीउ ॥
करि सेवा सता अंमृतु मुखि पाहा
जीउ ॥
मिलु पूरबि लिखिअड़े धुरि करमा
॥३॥

हे सन्तजनो ! आओ मिलकर (हरि) नाम का जाप करें। (हे भाई !) सत्सगति मे ही नाम का लाभ प्राप्त करना चाहिए, इसलिए सन्तजनों की सेवा करो। क्योकि उनकी सेवा करने से अमृत-नाम मुख में डाला जाता है, किन्तु (सन्तजनों की सेवा भी) पूर्व जन्म के लिखे हुए शुभ कर्मों के प्रताप से प्राप्त होती है ॥३॥

सावणि वरसु अमृति जगु छाइआ
जीउ ॥
मनु मोरु कुहुकिअड़ा सबदु मुखि
पाइआ ॥ हरि अमृतु वुठड़ा
मिलिआ हरि राइआ जीउ ॥
जन नानक प्रेमि रतंना ॥४॥१
॥२७॥६५॥

(जीवन रूपी) श्रावण मास मे (गुरु रूपी बादल द्वारा) नाम अमृत को वर्षा हृदय जगत मे हो रही है और गुरु का शब्द (नाम) मुख में डालने से मन रूपी मोर खुश होकर कुहू कुहू की मधुर आवाज बोल रहा है। (हाँ, गुरु ने ही मेरे मुख मे अपना शब्द (नाम) डाला। हरि नाम रूपी अमृत वर्षा के कारण हरि राजा मिलता है और जिज्ञासु तब प्रेम-रग मे रग जाता है, कहते हैं दास नानक ॥४॥१॥२७॥६५॥

गउड़ी माझ महला ४॥

"परमात्मा-पति को कैसे प्रसन्न करे ?"

आउ सखी
गुण कामण करीहा जीउ ॥
मिलि सत जना
रंगु माणिह रलीआ जीउ ॥
गुर दीपकु गिआनु
सदा मनि बलीआ जीउ ॥
हरि तुठै ढुलि ढुलि मिलीआ
जीउ ॥१॥

हे मेरी सत्सग की सखियो ! आओ (पति-परमेश्वर को वशीभूत करने के लिए) शुभ गुणो का टोना (जादू) करे। हे हरि के प्यारे ! आओ तो सन्तजनो से मिलकर (आत्मिक) आनन्द की रग-रलिया मनायें। हे प्यारे ! ज्ञान का दीपक जो गुरु ने जगाया है वह मन मे जलता है और हरि प्रसन्न होकर गद्गद् होकर मिलता है ॥१॥

मेरै मनि तनि
प्रेमु लगा हरि ढोले जीउ ॥
मै मेले मित्रु सतिगुरु वेचोले जीउ ॥
मनु देवा संता मेरा प्रभु मेले जीउ ॥
हरि विटड़िअहु सदा घोले जीउ ॥२॥

हे प्यारे ! मेरे मन चाहे तन में हरि प्यारे अथवा मित्र का प्रेम लगा है। मुझे मित्र मध्यस्थ सतुगुरु ने प्रभु से मिलाया है। काश ! मैं अपना मन सन्तों को अपर्ण कर दूँ, जिसने मुझे प्रभु के साथ मिलाया है और काश ! मैं हरि परमात्मा पर सदैव बलिहारी हूँ ॥२॥

वसु मेरे पिआरिआ
वसु मेरे गोविदा
हरि करि किरपा मनि वसु जीउ ॥
मनि चिंदिअड़ा फलु पाइआ
मेरे गोविंदा
गुरु पूरा वेखि विगसु जीउ ॥
हरि नामु मिलिआ सोहागणी
मेरे गोविंदा
मनि अनदिनु अनदु रहसु जीउ ॥
हरि पाइअड़ा वडभागीई
मेरे गोविंदा
नित लै लाहा मनि हसु जीउ ॥३॥

हे मेरे प्यारे ! तू मेरे(तन में आकर)बस और हे मेरे गोविन्द ! तू मेरी (वाणी में आकर) बस और हे हरि ! कृपा करके तू मेरे (मन मे आकर) बस (अर्थात मेरा तन मन और वाणी केवल तुम्हे ही चाहे) । हे मेरे भाई ! जो जीव पूर्ण गुरु का दर्शन करके (मन) खिल उठते हैं, वे मनवांछित फल पाते हैं। हे मेरे भाई ! जिन सुहागिनो को हरि का नाम मिला है, उनके मन मे दिन-रात आन द और हर्ष होता है। हे मेरे भाई ! जो उत्तम भाग्यों के कारण हरि पाते हैं, वे नित्य लाभ लेकर मन मे प्रसन्न होते हैं ॥३॥

हरि आपि उपाए हरि आपे वेखै
हरि आपे कारै लाइआ जीउ ॥
इकि खावहि बखस तोटि न आवै
इकना फका पाइआ जीउ ॥
इकि राजे तखति बहहि नित
सुखीए
इकना भिख मंगाइआ जीउ ॥
सभु इको सबदु वरतदा मेरे गोविंदा
जन नानक नामु धिआइआ जीउ
॥४॥२॥२८॥६६॥

हे हरि ! तू स्वय ही जीवों को उत्पन्न करके स्वयं ही देख-भाल कर रहा है तथा सब जीवो को स्वयं ही भिन्न-भिन्न कार्यों मे लगाता है। कुछ जीव ऐसे हैं, जिन पर प्रभु कृपा दृष्टि होने के कारण उन्हे इतने पदार्थ प्राप्त हुए हैं कि उनका उपभोग करने पर भी उनमें कमी नही होती, किन्तु ऐसे भी हैं जिन्हें 'वह' बहुत थोड़ा देता है। फिर कुछ ऐसे भी हैं जो प्रभु राजा बनकर सिंहासन पर बैठते हैं और फिर कुछ ऐसे भी है जो भीख माँगते है। हे मेरे गोबिन्द ! सभी में एक तू पारब्रह्म ही व्याप्त हो रहा है। मैं दास नानक तेरे ही नाम का ध्यान करता हूँ।
॥४॥२॥२८॥६६॥

गउड़ी माझ महला ४॥

"गुरु साहिब की असीम प्रसन्नता प्रभु को मिलने पर।"

मन माही मन माहो मेरे गोविंदा
हरि रंगि रता मन माही जीउ ॥
हरि रंगु नालि न लखीऐ
मेरे गोविंदा
गुर पूरा अलखु लखाहो जीउ ॥
हरि हरि नामु परगासिआ
मेरे गोविंदा
सभ दालद दुख लहि जाही जीउ ॥
हरि पदु ऊतमु पाइआ मेरे गोविंदा
वडभागी नामि समाही जीउ ॥१॥

हे मेरे गोबिन्द ! तू मेरे मन में है, (हाँ, तू मेरे मन मे है। हे हरि ! तू मेरे मन में ही है इसलिए तेरे प्रेम-रंग में अनुरक्त हूँ। हे गोबिन्द ! तू आनन्द स्वरूप है और हमारे (नित्य) साथ है किन्तु पूर्ण गुरु की सहायता से तू अदृष्ट प्रभु दिखाई देने लग जाता है। हे मेरे गोबिन्द ! उन जीवो की समस्त दरिद्रता और दु:ख दूर हो जाते हैं, जिनके अन्तर्गत हरि नाम का प्रकाश हुआ है। हे मेरे गोबिन्द ! भाग्यशाली जीवों ने हरि नाम जपकर उत्तम पदवी प्राप्त की है और वे नाम (परमात्मा) में समा गये हैं ॥१॥

नैणी मेरे पिआरिआ नैणी
मेरे गोविंदा
किनै हरि प्रभु डिठड़ा नैणी जीउ ॥
मेरा मनु तनु बहुतु बैरागिआ
मेरे गोविंदा
हरि बाझहु धन कुमलैणी जीउ ॥
संत जना मिलि पाइआ
मेरे गोविंदा
मेरा हरिप्रभु सजणु सैणी जीउ ॥
हरि आइ मिलिआ जगजीवनु
मेरे गोविंदा
मै सुखि विहाणी रैणी जीउ ॥॥२॥

हे मेरे गोबिन्द ! हे मेरे प्यारे ! (मुझे बताओ) किसी ने हरि प्रभु नेत्रो से, नेत्रों से, (हाँ) नेत्रो से देखा है ? हे मेरे गोबिन्द ! मेरा मन और तन बहुत वैराग्य मे व्याकुल हो रहे हैं। हे हरि ! मैं जीव-स्त्री तेरे बिना कुम्हला रही हूँ भाव उदास हो रही हूँ। सन्तजनो को मिलने से मेरा हरि प्रभु, जो साजन व सम्बन्धी है, प्राप्त होता है। हे मेरे गोबिन्द ! हरि जो जगत का जीवन है, वह आकर मुझ से मिला है, इसलिए मेरी रात सुख मे कट रही है ॥२॥

मै मेलहु संत मेरा हरिप्रभु सजणु
मै मनि तनि भुख लगाईआ जीउ ॥

हे सन्तजनो ! मुझ अपने सज्जन हरि प्रभु से मिलाओ। मेरे मन और तन मे 'उसको' मिलने की भूख(चाहना)लगी हुई है। मैं

हउ रहि न सकउ बिनु देखे
मेरे प्रीतम
मैं अंतरि बिरहु हरि लाइआ जीउ ॥
हरि राइआ मेरा सजणु पिआरा
गुरु मेले मेरा मनु जीवाईआ जीउ ॥
मेरै मनि तनि आसा पूरीआ
मेरे गोविंदा
हरि मिलिआ मनि वाधाईआ जीउ
॥३॥

अपने प्रियतम को देखे बिना रह नहीं सकता क्योंकि मेरे अन्तर्गत हरि ने अपना प्रेम (का तीर) लगा दिया है। हरि राजा जो मेरा सज्जन और प्रियतम है, 'उससे' गुरु ने मुझे मिलाकर मेरा मन जीवित कर दिया है। मेरे मन व तन की(सभी) आशाएँ पूर्ण हुई हैं और हरि से मिलने के कारण मन में बधाईयां मिल रही हैं (अर्थात अब मैं अति प्रसन्न हूँ) ॥३॥

वारी मेरे गोविंदा
वारी मेरे पिआरिआ
हउ तुधु विटड़िअहु सद वारी जीउ ॥
मेरै मनि तनि प्रेमु पिरंम का
मेरे गोविंदा
हरि पूंजी राखु हमारी जीउ ॥
सतिगुरु विसटु मेलि मेरे गोविंदा
हरि मेले करि रैबारी जीउ ॥
हरिनामु दइआ करि पाइआ
मेरे गोविंदा
जन नानकु सरणि तुमारी जीउ ॥
४॥३॥२९॥६७॥

हे मेरे गोबिन्द ! हे मेरे प्यारे ! मैं तुझ पर बलिहारी जाऊँ, बलिहारी जाऊँ, (हाँ) मैं तुझ पर सदैव बलिहारी जाऊँ। हे मेरे गोबिन्द ! मेरे मन और तन में तुझ प्रियतम के लिए प्रेम है। हे हरि ! मेरी श्रद्धा रूपी पूंजी की रक्षा करो। हे मेरे गोबिन्द ! मेरे सत्गुरु मध्यस्थ से मिलाप करा दो जो मेरा मार्ग प्रदर्शन करके तुम हरि के साथ मिला दे। हे मेरे गोबिन्द ! तेरी दया से मैंने हरिनाम प्राप्त किया है। दास नानक तेरी शरण में आकर पड़ा है ॥४॥३॥२९॥६७॥

गउड़ी माझ महला ४॥

"गोबिन्द हरि की विचित्र लीला।"

चोजी मेरे गोविंदा
चोजी मेरे पिआरिआ
हरि प्रभु मेरा चोजी जीउ ॥
हरि आपे कान्हु उपाइदा
मेरे गोविदा
हरि आपे गोपी खोजी जीउ ॥

हे मेरे गोबिन्द ! हे मेरे प्यारे ! तू तीनों कालों में कौतुक करने वाला है (अर्थात सृष्टि रचयिता, पालनहार तथा संहारक है)। (हाँ) हे मेरे हरि प्रभु जी ! तू कौतुकी है। हे हरि ! हे

हरि आपे सभ घट भोगदा
मेरे गोविंदा
आपे रसीआ भोगी जीउ ॥
हरि सुजाणु न भुलई मेरे गोविंदा
आपे सतिगुरु जोगी जीउ ॥१॥

गोबिन्द ! तू स्वयं ही कृष्ण रूप होकर प्रकट होता है, तू स्वयं ही गोपी रूप होकर छुपता है और स्वयं ही गोपी को ढूंढता है। हे हरि ! हे मेरे गोबिन्द ! तू स्वय ही सभी शरीरो को भोगता है, तू स्वयं ही रसिक हो और स्वयं ही भोगी हो। हे हरि ! हे मेरे गोबिन्द ! तू ही सुजान हो और कभी भी नही भूलते। तू स्वयं ही सत्गुरु होकर परमात्मा से मिलने वाले हो ॥१॥

आपे जगतु उपाइदा मेरे गोविंदा
हरि आपि खेलै बहु रंगी जीउ ॥
इकना भोग भोगाइदा मेरे गोविंदा
इकि नगन नंग नंगी जीउ ॥
आपे जगतु उपाइदा मेरे गोविंदा
हरि दानु देवै सभ मंगी जीउ ॥
भगता नामु आधारु है मेरे गोविंदा
हरि कथा मंगहि हरि चंगी जीउ ॥
२॥

हे हरि ! हे मेरे गोबिन्द ! तू स्वयं ही जगत उत्पन्न करता है और स्वय ही नाना प्रकार के खेल खेलता है। हे मेरे गोबिन्द ! कुछ जीवों को तू अनेक प्रकार के भोग भुगवाता है और कुछ जीव नगे ही नगे, (हाँ) वस्त्रहीन फिरते हैं। हे हरि। हे मेरे गोबिन्द ! भक्तो को तेरे नाम का ही आधार है (अर्थात तेरे नाम के कारण जीवित रहते हैं)। हे हरि ! तेरी कथा जो सभी कथाओ में सर्वश्रेष्ठ है, उसका दान ही भक्त माँगते हैं ॥२॥

हरि आपे भगति कराइदा
मेरे गोविंदा
हरि भगता लोच मनि पूरी जीउ ॥
आपे जलि थलि वरतदा मेरे गोविंदा
रवि रहिआ नही दूरी जीउ ॥
हरि अंतरि बाहरि आपि है
मेरे गोविंदा
हरि आपि रहिआ भरपूरी जीउ ॥
हरि आतमरामुपसारिआमेरे गोविंदा
हरि वेखै आपि हदूरी जीउ ॥३॥

हे हरि ! हे गबिन्द ! तू स्वय ही भक्ति करवाता है और तू स्वयं ही भक्ति की मनोकामना पूर्ण करता है। हे मेरे गोबिन्द ! तू ही जल स्थल में वरत रहा है और सत्र में व्यापक हो रहा है, इसलिए सबके निकट है और किससे भी दूर नही है। हे हरि ! हे मेरे गोबिन्द ! तू ही सबके अन्दर चाहे बाहर है और तू ही सब में व्यापक हो रहा है। हे हरि ! हे आत्माराम ! तू ही सब जगह फैला हुआ है। हे मेरे गोबिन्द ! हे हरि ! तू स्वयं ही प्रत्यक्ष होकर देख रहा है ॥३॥

हरि अंतरि वाजा पउणु है
मेरे गोविंदा
हरि आपि वजाए तिउ वाजै जीउ ॥

हे हरि ! हे मेरे गोबिन्द ! तू ही सब देहधारियों के अन्दर में पवन का वाद्य भाव प्राणकला रखते हो। हे हरि ! तू ही जैसे वह बाजा बजाता है तैसे ही बजता है (अर्थात हमारे प्राणों को तेरी

हरि अंतरि नामु निधानु है
मेरे गोविंदा
गुरसबदी हरिप्रभु गाजै जीउ ॥
आपे सरणि पवाइदा मेरे गोविंदा
हरि भगत जना राखु लाजै जीउ ॥
वडभागी मिलु संगती मेरे गोविंदा
जन नानक नाम सिधि काजै जीउ
॥४॥४॥३०॥६८॥

चेतन सत्ता का ही आधार है)। हे हरि ! हे मेरे गोबिन्द ! तेरे हरिनाम का भण्डार अन्दर ही है, किन्तु जो गुरशब्दी है (अर्थात् गुरु के शब्द पर चलने वाला है), वही हरि प्रभु का नाम उच्चारण करता है। हे मेरे गोविन्द ! तू स्वयं ही अपनी शरण में आते हो और अपने भक्तजनो की लज्जा रखते हो। हे मेरे गोबिन्द ! सौभाग्यशाली जीव ही गुरु की सगति में मिलकर तेरा नाम जपकर अपने काम सिद्ध (पूर्ण) करते हैं ॥४॥४॥३०॥६८॥

गउड़ी माझ महला ४॥

"मेरे गुरुदेव की हरि परमात्मा के प्रति उत्कण्ठा।"

मै हरिनामै हरि बिरहु लगाई जीउ ॥
मेरा हरि प्रभु मितु मिलै
सुखु पाई जीउ॥
हरि प्रभु देखि जीवा मेरी माई
जीउ ॥
मेरा नामु सखा हरि भाई जीउ ॥१॥

(हे भाई !) मुझे हरि ने हरिनाम के लिए लगन पैदा की है। हरि प्रभु जो मित्र है, वह काश ! आकर मुझसे मिले तो मैं सुख प्राप्त करूँ। हे मेरी माता ! मैं हरि प्रभु को देखकर जीवित रहता हूँ। 'उसका' नाम मेरा मित्र और भाई है ॥१॥

गुण गावहु संत जीउ
मेरे हरि प्रभ केरे जीउ ॥
जपि गुरमुखि नामु जीउ
भाग वडेरे जीउ ॥
हरि हरि नामु जीउ
प्रान हरि मेरे जीउ ॥
फिरि बहुड़ि न भवजल
फेरे जीउ ॥२॥

हे सन्तजनो जी ! आप मेरे हरि प्रभु के गुण गाओ, क्योंकि जिन्होंने गुरु से शिक्षा ग्रहण करके नाम का जाप किया है, उनके बड़े भाग्य हैं। (हे भाई !) हरि हरि नाम मेरा प्राण है और हरि मेरा जीवन है, उसके' नाम जपने से पुनः भव-जल के चक्र में न पढ़ना पड़ेगा (अर्थात् जीव मुक्त होता है।) ॥२॥

किउ हरिप्रभ वेखा
मेरै मनि तनि चाउ जीउ ॥

मैं कैसे हरि प्रभु को देखूँ ? मेरे मन चाहे तन में 'उसको' देखने के लिए चाहना है। हे सन्तजनो ! मुझे हरि के साथ मिला दो।

हरि मेलहु
संत जीउ मनि लगा भाउ जीउ ।।
गुरसबदी पाईऐ
हरि प्रीतम राउ जीउ ।।
वडभागी जपि नाउ जीउ ।।३।।

मेरे मन में प्रेम लगा है। हरि प्रियतम राजा गुरु के उपदेश द्वारा प्राप्त होता है। हे सौभाग्यशाली पुरुषो ! आप भी 'उसके' नाम का जाप करो ।।३।।

मेरै मनि तनि वडड़ी
गोविंद प्रभ आसा जीउ ।।
हरि मेलहु संत जीउ ।।
गोविद प्रभु पासा जीउ ।।
सतिगुर मति नामु सदा परगासा
जीउ ।।
जन नानक पूरिअड़ी मनि
आसा जीउ ।।४।।५।।३१।।६९।।

(हे भाई !) मेरे मन और तन में गोबिन्द प्रभु को मिलने की तीव्र इच्छा बनी हुई है। हे सन्तजनो ! मुझे हरि गोबिन्द प्रभु के पास ही मिला दो। (हे भाई !) सतुगुरु की शिक्षा द्वारा नाम का प्रकाश होता है। हे दास नानक ! मेरे मन की सभी आशाएँ पूर्ण हुई है ।।४।।५।।३१।।६९।।

गउड़ी माझ महला ४

"हरि प्रियतम को मिलने की तीव्र इच्छा ।"

मेरा बिरही नामु मिलै ता जीवा
जीउ ।।
मन अंदरि अंमृतु
गुरमति हरि लीवा जीउ ।।
मनु हरि रंगि रतड़ा
हरि रसु सदा पीवा जीउ ।।
हरि पाइअड़ा मनि जीवा जीउ ।।१।।

(हे भाई !) वह नाम जिससे मैं बिछुड़ा हुआ हूँ यदि मिल जाये तो जीवित हो जाऊँ (अन्यथा मैं मुर्दे सदृश्य हूँ)। मेरे मन के अन्दर नाम रूपी अमृत है, किन्तु गुरु की शिक्षा द्वारा ही वह हरि नाम रूपी अमृत लेता हूँ (भाव पीता हूँ)। जब मेरा मन हरि के प्रेम रस मे अनुरक्त रहता है, तभी मैं हरि नाम का रस सदैव पीता हूँ। अत: जब मेरा मन हरि को पाता है, तभी मैं जीवित रहता हूँ ।।१।।

मेरै मनि तनि प्रेमु लगा
हरि बाणु जीउ ।।
मेरा प्रीतमु मित्रु
हरि पुरखु सुजाणु जीउ ।।
गुरु मेले संत हरि सुघड़ु सुजाणु
जीउ ।।
हउ नाम विटहु कुरबाणु जीउ ।।२।।

(हे भाई !) मेरे मन और तन को हरि के प्रेम का तीर लगा है। हरि, जो मेरा प्यारा मित्र है, सन्त रूपी गुरु ने मुझे हरि सुजान से, जो सुजान पुरुष है मिलाया है। हरि के नाम पर मैं बलिहारी हूँ ।।२।।

हउ हरि हरि सजणु
हरि मीतु दसाई जीउ ।।
हरि दसहु संतहु जी
हरि खोजु पवाई जीउ ।।
सतिगुरु तुठड़ा दसे हरि पाई जीउ ।।
हरि नामे नामि समाई जीउ ।।३।।

हे प्यारे ! मैं हरि हरि सज्जन हरि मित्र के लिए पूछता हूँ। हे हरि के सन्तजनो ! मुझे हरि बताओ और(मैंने)हरि के लिए खोज करवाई है, (हाँ) पूछताछ की है। जब सत्गुरु प्रसन्न होकर मुझे हरि का मार्ग बताता है, तब मैं हरि को प्राप्त करता हूँ और हरि नाम के प्रताप के कारण नामी परमात्मा में समा जाता हूँ ।।३।।

मै वेदन प्रेमु हरि
बिरहु लगाई जीउ ।।
गुर सरधा पूरि
अंमृतु मुखि पाई जीउ ।।
हरि होहु दइआलु
हरिनामु धिआई जीउ ।।
जन नानक हरिरसु पाई जीउ ।।४
।।६।।२०।।१८।।३२।।७०।।

(हे भाई !) मुझे हरि के विरह ने प्रेम की वेदना (पीडा) लगाई है। हे गुरु ! मेरी यह श्रद्धा पूर्ण कर और मेरे मुख में अमृत-नाम डाल। हे हरि ! तू मुझ पर दया कर कि मैं तेरे नाम का ध्यान करूँ। हे दास नानक ! काश ! मैं हरि नाम का रस प्राप्त कर सकूँ ।।४।।६।।१८।।३२।।७०।।

महला ५ रागु गउड़ी गुआरेरी चउपदे

"जीव कैसे सुखी हो सकता है ?"

किन बिधि कुसलु होत मेरे भाई ।।
किउ पाईऐ हरि राम सहाई ।।१
।।रहाउ।।

(प्रश्न ?) हे मेरे गुरु ! किस विधि से सुख (प्राप्त) होता है ? (प्रश्न :)(२) कैसे (जीव) हरि राम, जो सर्व का सहायक है, प्राप्त कर सकता है ? ।।१।। रहाउ ।।

कुसलु न ग्रिहि मेरी सभ माइआ ॥
ऊचे मंदर सुंदर छाइआ ॥
झूठे लालचि जनमु गवाइआ ॥१॥

उस घर में सुख (कुशलता) नहीं है (जहाँ घर का स्वामी के) यह सारी माया मेरी है। ये ऊँचे महल भी मेरे हैं और ये सुन्दर बगीचे भी मेरे हैं। इस प्रकार झूठी लालच मे यह जीव (अपना अमूल्य मनुष्य) जन्म (व्यर्थ) गँवाता है ॥१॥

हसती घोड़े देखि विगासा ॥
लसकर जोड़े नेब खवासा ॥
गलि जेवड़ी हउमै के फासा ॥२॥

वह अपने हाथी और घोड़े देखकर प्रसन्न होता है, वह लश-कर इक्ट्ठा करता है और वह मन्त्री तथा शाही (खास) नौकर भी रखता है किन्तु उसके गले मे मोह रूपी रस्सी है और अहंकार रूपी फांसी मे फंसा हुआ है ॥२॥

राजु कमावै दहदिस सारी ॥
माणै रंग भोग बहु नारी ॥
जिउ नरपति सुपनै भेखारी ॥३॥

यदि दश दिशाओं और सम्पूर्ण सृष्टि पर जीव का राज्य हो और बहुत स्त्रियो से भोग विलास करके आनन्द का अनुभव भी करता हो, किन्तु वह ऐसा है जैसे कोई राजा स्वप्न मे भिखारी हो जाए (भाव यह है कि उसको यह मान प्रतिष्ठा शीघ्र ही नष्ट हो जाती है और फिर मनुष्य ऐसे पश्चाताप करता है जैसे राजा स्वप्न में अपने को भिखारी बना हुआ देखकर करता था) ॥३॥

एकु कुसलु मो कउ सतिगुरू बताइआ ॥
हरि जो किछु करे
सु हरि किआ भगता भाइआ ॥
जन नानक हउमै मारि समाइआ ॥४॥

(हे भाई !) एक सुख मुझे सत्गुरु ने बताया है कि हरि जो कुछ करे वह हरि के भक्तो को अच्छा लगता है। हे दास नानक ! मैं अहम्भाव को मारकर हरि में समा गया हूँ ॥४॥

इनि बिधि कुसल होत मेरे भाई ॥
इउ पाईऐ हरि राम सहाई ॥१
॥रहाउ दूजा॥

हे मेरे भाई ! इस प्रकार अर्थात् हरि का हुकम मानने से और अहम्भाव का त्याग करने से सुख(प्राप्त)होता है तथा इसी प्रकार हरि परमात्मा, जो सहायक है, वह' (भी) प्राप्त होता है ॥ १॥ रहाउ दूजा ॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"राखे राम तो मारे कौन।"

किउ भ्रमीऐ भ्रमु किसका होई॥
गुरमुखि उबरे मनमुख पति खोई ॥
जा जलि थलि महीअलि रविआ ॥सोई १॥

हे भाई ! क्यों भ्रम में भटकें और किसका भ्रम करे ? जबकि हरि परमात्मा जल, स्थल तना धरती और आकाश के मध्य (अर्थात सर्व स्थानो) में व्याप्त है। गुरुमुख (यह समझकर) भ्रम संशयों से) पार हो गए जबकि मनमुख (अज्ञानता के कारण) अपनी प्रतिष्ठा गवाते हैं ॥१॥

जिसु राखै आपि रामु दइआरा ॥
तिसु नही दूजा को पहुचनहारा ॥१
॥रहाउ॥

(हे भाई !) जिसकी रक्षा स्वयं दयालु राम करता है, अन्य कोई उसके बराबर नही पहुँच सकता (अर्थात उसे कोई हानि नहीं पहुँचा सकता।) ॥१॥ रहाउ ॥

सभ महि वरतै एकु अनंता ॥
ता तूं सुखि सोउ होइ अचिंता ॥
ओहु सभु किछु जाणै जो वरतंता ॥२॥

(हे भाई !) 'वह' अनन्त (दयालु राम) सभी में व्याप्त हो रहा हैं. इसलिए तू निश्चिन्त होकर (सुख से) सो जा (अर्थात् आनन्द में रहो)। जो (राम) सभी में रमण कर रहा है अथवा जो कुछ हो रहा है 'वह (राम) सब कुछ जानता है ॥२॥

मनमुख मुए जिन दूजी पिआसा ॥
बहु जोनी भवहि
धुरि किरति लिखिआसा ॥
जैसा बीजहि तैसा खासा ॥३॥

(हे भाई !) जिन मनमुखो को माया (दूसरी) की प्यास है, वे मुर्दे समान है। (हाँ, वे पूर्व जन्म के कर्मानुसार पहले से ही लिखवाकर आए हैं, इसलिए वे बहुत योनियों में भटकते हैं। वे जैसा (बीज) बोते हैं वैसा ही (फल) खाते हैं ॥३॥

देखि दरसु मनि भइआ बिगासा ॥
सभु नदरी आइआ ब्रहमु परगासा ॥
जन नानक की हरि पूरन आसा
॥४॥२॥७१॥

गुरुमुख दयालु राम का दर्शन देखकर मन में प्रसन्न होते हैं क्योकि उनकी दृष्टि मे परब्रह्म परमात्मा का सभी में प्रकाश है। हे नानक ! हरि की प्राप्ति होने पर सेवको की आशा पूर्ण हुई है ॥४॥२॥७१॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

कई जनम भए कीट पतंगा ॥
कई जनम गज मीन कुरंगा ॥
कई जनम पंखी सरप होइओ ॥
कई जमम हैवर बृख जोइओ ॥१॥

हे भाई ! मनुष्य जन्म मिलने से पहले तू कई जन्म कीडा और पतगा हुआ है और तू कई जन्म हाथी, मछली और हिरण हुआ है, तू कई जन्म पक्षी और सर्प हुआ है और तू कई जन्म घोडा और बैल बनकर जोता गया (अर्थात् इन योनियों मे धकेल दिया गया) है ॥१॥

मिलु जगदीस मिलन की बरीआ ॥
चिरंकाल इह देह संजरीआ ॥१
॥रहाउ॥

(हे भाई !) तू जगत के पति-परमेश्वर को मिल। यह मनुष्य जन्म ही मिलने का अवसर है क्योकि चिरकाल के पश्चात् तुम्हें मानव देही मिली है ॥१॥ रहाउ ॥

कई जनम सैल गिरि करिआ ॥
कई जनम गरभ हिरि खरिआ ॥

(हे भाई !) कई जन्मों में तू पत्थर और पहाड़ हुआ है और कई जन्मो मे तेरा (तेरी माँ का) गर्भ नाश हुआ है। तू कई जन्म

कई जनम साख करि उपाइआ ॥
लख चउरासीह जोनि भ्रमाइआ
॥२॥

शाखाएँ बनाकर उत्पन्न किया गया। इस प्रकार तू चौरासी लाख योनियों में भटक (-भटक) कर (मनुष्य देही में) आया है। ॥२॥

साध संगि भइओ जनमु परापति ॥
करि सेवा भजु हरि हरि गुरमति ॥
तिआगि मानु झूठु अभिमानु ॥
जीवत मरहि दरगह परवानु ॥३॥

(हे भाई !) तुझे मनुष्य जन्म साधु की संगति करने के लिए प्राप्त हुआ है। तू उसकी सेवा कर और गुरु की शिक्षा लेकर हरि, (हाँ) हरि (नाम) का भजन कर। तू मान, झूठ और अभिमान का त्याग कर। यदि तू जीते ही अपने अहम् भाव को मार देगा तो हरि की दरबार मे स्वीकृत होगा ॥३॥

जो किछु होआ सु तुझ ते होगु
अवरु न दूजा करणै जोगु ॥
ता मिलीऐ जा लैहि मिलाइ ॥
कहु नानक हरि हरि गुण गाइ ॥४
॥३॥७२॥

(ऐ हरि !) जो कुछ अब तक हुआ है अथवा जो कुछ आगे होगा, वह सब कुछ तुम्हारे से ही होगा। तुम्हारे बिना दूसरा कोई भी करने योग्य नहीं है। (हे हरि !) यह जीव तुम्हे तभी मिलता है, जब तू (स्वयं कृपा करके अपने साथ) मिलाता है। (हे जीव !) तू हरि के गुण गा (तो तेरा मनुष्य जन्म सफल हो), कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब) ॥४॥३॥७२॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"हे भाई ! हरि का नाम जपकर मनुष्य देही को सफल कर।"

करम भूमि महि बोअहु नामु ॥
पूरन होइ तुमारा कामु ॥
फल पावहि मिटै जम त्रास ॥
नित गावहि हरि हरि गुण जास ॥
१॥

(हे भाई !) यह मनुष्य देही जो कर्म-भूमि है, उसमे तू नाम का बीज बो तभी तुम्हारा काम पूर्ण होगा। जब तू हरि के गुण, (हाँ) हरि-यश नित्य गाएगा तो तू (कर्मों का) फल प्राप्त करेगा और मृत्यु का भय (भी) मिट जाएगा ॥१॥

हरि हरि नामु अंतरि उर धारि ॥
सीघर कारजु लेहु सवारि ॥१॥
रहाउ ॥

(हे भाई !) हरि का नाम हृदय में धारण कर इस प्रकार तू अपना (मनुष्य जन्म का) कार्य शीघ्र ही सिद्ध कर लेगा (अर्थात तेरी मुक्ति होगी।) ॥१॥ रहाउ ॥

अपुने प्रभ सिउ होहु सावधानु ॥
ता तूं दरगह पावहि मानु ॥

(हे भाई !) अपने प्रभु के प्रति सावधान (अर्थात अपनी वृति प्रभु के प्रति लगा) रहो तो तू 'उसकी' दरबार में सम्मान प्राप्त

उकति सिआणप सगली तिआगु ॥
संत जना की चरणी लागु ॥२॥

करेगा। तू युक्ति, दलील व चतुराई, (हाँ) सब छोड़ दे और सन्तजनों के चरणों में लगा रहो ॥२॥

सरब जीअ हहि जाकै हाथि
कदे न विछुड़ै सभ कै साथि ॥
उपाव छोडि गहु तिस की ओट ॥
निमख माहि होवै तेरी छोटि ॥३॥

(हे भाई !) जिसके हाथ में सब जीव हैं, 'वह' प्रभु कभी भी बिछुडता नही और (सदैव) सबके साथ है। इसलिए सभी उपाय छोड कर तू 'उसकी' शरण पकड़, तो क्षण भर में तेरी मुक्ति होगी ॥३॥

सदा निकटि करि तिस नो जाणु ॥
प्रभ की आगिआ सति करि मानु ॥
गुर कै बचनि मिटावहु आपु ॥
हरि हरि नामु नानक जपि जापु
॥४॥४॥७३॥

(हे भाई !) 'उसको' तू सदा निकट करके जानो और 'उस प्रभु की आज्ञा सत्य करके मानो। हे नानक ! गुरु के वचनों द्वारा आपेपन (अहम्भाव) को मिटा दो और हरि, (हाँ) हरि नाम का सदैव जाप करते रहो। ॥४॥४॥७३॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"गुरु का वचन सत्य करके मानो।"

गुर का बचनु सदा अबिनासी ॥
गुर कै बचनि कटी जम फासी ॥
गुर का बचनु जीअ कै संगि ॥
गुर कै बचनि रचै राम कै रंगि
॥१॥

गुरू का वचन सदैव अविनाशी है (अर्थात् सदैव रहने वाला है)। गुरु के वचन (की कमाई) द्वारा यम की फासी कट जाती है। गुरु का वचन सदैव जीव के साथ रहता है (अर्थात् अन्य कोई सगी सहायक नही है)। गुरु के वचन के कारण ही राम के साथ (जीव का) प्रेम लगता है ॥१॥

जो गुरि दीआ सु मन कै कामि ॥
संत का कीआ सति करि मानि ॥१
॥रहाउ॥

(नाम या ज्ञान) जो गुरु ने दिया है, वह मन के काम के लिए है (अर्थात जीव के काम मे आने वाला है)। (हे भाई !) सन्त का किया (दिया) हुआ उपदेश सत्य करके मानो ॥१॥ रहाउ ॥

गुर का बचनु अटल अछेद ॥
गुर कै बचनि कटे भ्रम भेद ॥
गुर का बचनु कतहु न जाइ ॥
गुर कै बचनि हरि के गुण गाइ
॥२॥

गुरू का वचन अटल (अवश्यं भावी) है और अछेद्य भी है (अर्थात वह काटा नही जा सकता)। गुरु के वचन द्वारा भ्रम और भेद अथवा द्वैतभाव काटा जाता है। गुरु का वचन कभी भी व्यर्थ नहीं जाता। गुरु के वचन द्वारा ही हरि के गुण गाये जाते हैं ॥२॥

गुर का बचनु जीअ कै साथ ॥
गुर का बचनु अनाथ को नाथ ॥
गुर कै बचनि नरकि न पावै ॥
गुर कै बचनि रसना अंमृतु रवै ॥३॥

गुरु का वचन जीव के साथ रहता है (अर्थात कष्ट आने पर सहायक होता है)। गुरु का वचन अनाथों का नाथ है। गुरु के वचन द्वारा (जीव) नरक मे नही पड़ता। गुरु के वचन द्वारा (जीव) रसना से अमृत रूपी नाम का उच्चारण करता है ॥३॥

गुर का बचनु परगटु संसारि ॥
गुर कै बचनि न आवै हारि ॥
जिसु जन होए आपि क्रिपाल ॥
नानक सतिगुर सदा दइआल ॥४॥५॥७४॥

गुरु के वचन संसार में प्रकट हैं अथवा गुरु के वचन द्वारा (जीव)संसार में प्रकट(अर्थात प्रसिद्ध)होता है। गुरु के वचन द्वारा (जीव की) कदाचित हार नही होती (सदैव उसकी जय जयकार है)। हे नानक ! जिस (जीव) पर हरि स्वयं कृपालु है, सत्गुरु सदा उस पर दयालु है ॥४॥५॥७४॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"परोपकारी प्रभु के अगणित उपकार।"

जिनि कीता माटी ते रतनु ॥
गरभ महि राखिआ जिनि करि जतनु॥
जिनि दीनी सोभा वडिआई ॥
तिसु प्रभ कउ आठ पहर धिआई ॥१॥

(हे भाई !) जिस प्रभु ने मिट्टी (आदि तत्वो) से (अमूल्य) शरीर रूपी रत्न बना दिया, जिस प्रभु ने (माता के) गर्भ में यत्न करके तेरी रक्षा की, जिस प्रभु ने (संसार मे) तुझे शोभा और बड़ाई दी, 'उसका' तू आठ प्रहर ध्यान कर ॥१॥

रमईआ रेनु साध जन पावउ ॥
गुर मिलि अपुना खसमु धिआवउ ॥१॥रहाउ॥

हे रमईया ! (अभिलाषा है कि मैं)साधुजनो की धूलि प्राप्त करूँ और गुरु से मिलकर अपने खसम प्रभु का ध्यान करूँ ॥१॥ रहाउ ॥

जिनि कीता मूड़ ते बकता ॥
जिनि कीता बेसुरत ते सुरता ॥
जिसु परसादि नवै निधि पाई ॥
सो प्रभु मन ते बिसरत नाही ॥२॥

(हे भाई !) जिस प्रभु ने तुझे मूर्ख से वक्ता कर दिया, जिस प्रभु ने तुझे अज्ञानी से ज्ञानवान् कर दिया तथा जिसकी कृपा से तुमने नव निधियाँ (अर्थात् अमूल्य पदार्थ हाथ पांव, आँखें आदि) प्राप्त की हैं, 'वह' प्रभु मन से विस्मृत नही होता ॥२॥

जिनि दीआ निथावे कउ थानु ॥
जिनि दीआ निमाने कउ मानु ॥

(हे भाई !)जिस प्रभु ने निथावें को जगह दी है और जिसने तुझ निमाने को (मान-हीन) मान दिया है तथा जिसने तेरी सभी

जिनि कीनी सभ पूरन आसा ॥
सिमरउ दिनु रैनि सास गिरासा ॥३॥

आशाएं पूर्ण की है, 'उस' प्रभु को दिन रात श्वास लेते और खाते-पीते स्मरण कर ॥३॥

जिसु प्रसादि माइआ सिलक काटी ॥
गुरप्रसादि अंमृतु बिखु खाटी ॥
कहु नानक इस ते किछु नाही ॥
राखनहारे कउ सालाही ॥४॥६॥७५॥

(फिर हे भाई !) जिसकी कृपा से माया की फांसी काटी गई और गुरु की प्रसन्नता से खट्टी (कड़वी) विष भी अमृत हो गई (जैसे मीरा बाई ने विष का प्याला अमृत करके पीया)। (बाबा) नानक (साहब) कहते है कि इस जीव से कुछ नहीं हो सकता (अर्थात् यह कुछ नहीं कर सकता)। अतः मैं (प्रभु) संरक्षक की स्तुति करता हूं ॥४॥६॥७५॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"एक राम प्रभु की शरण मन मे धारण कर।"

तिस की सरणि नाही भउ सोगु ॥
उस ते बाहरि कछु न होगु ॥
तजी सिआणप बल बुधि बिकार ॥
दास अपने की राखनहार ॥१॥

(हे भाई !) 'उसकी'(प्रभु की) शरण लेने से(यम आदि का)भय और (विरह का) शोक नहीं होता और 'उसके' हुकम से बाहर कुछ भी नहीं होता। जिसने चतुरता, बल एवं बुद्धि का त्याग कर दिया है, प्रभु संरक्षक उस दास की रक्षा करता है ॥१॥

जपि मनि मेरे राम राम रंगि ॥
घरि बाहरि तेरै सद संगि ॥१॥ रहाउ॥

हे मेरे मन ! राम को प्रेम से जप। 'वह' घर में और घर से बाहर, (हाँ) सदैव तेरे साथ है ॥१॥ रहाउ ॥

तिस की टेक मनै महि राखु ॥
गुर का सबदु अंमृत रसु चाखु ॥
अवरि जतन कहहु कउन काज ॥
करि किरपा राखै आपि लाज ॥२॥

हे भाई ! 'उसकी' टेक मन मे रख और गुरु के शब्द द्वारा नाम अमृत रस को चख। (हे भाई !) कहो, (नाम के बिना) अन्य यत्न किस काम के हैं ? प्रभु ही कृपा करके (अपने सेवक की) स्वयं लज्जा रखता है ॥२॥

किआ मानुख कहहु किआ जोरु ॥
झूठा माइआ का सभु सोरु ॥
करण करावनहार सुआमी ॥
सगल घटा के अंतरजामी ॥३॥

(हे भाई !) कहो, मनुष्य क्या (चीज) है और (इसका) क्या जोर है ? माया का सब शोर झूठा है। करने वाला और कराने वाला 'वह' स्वामी स्वयं ही है और 'वह' सबके हृदयों को जानने वाला है ॥३॥

सरब सुखा सुख साचा एहु ॥
गुर उपदेसु मनै महि लेहु ॥
जाकउ रामनाम लिव लागी ॥
कहु नानक सो धंनु वडभागी ॥४
॥७॥७६॥

(हे भाई !) सर्व सुखों का सुख और सच्चा सुख है कि गुरु के उपदेश को मन में बसा ले। जिसकी प्रीति राम नाम के साथ लग गई है, वह धन्य है और भाग्यशाली है, कहते हैं (मेरे गुरुदेव) नानक (साहब) ॥४॥७॥७६॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥

"हरि की कथा और कीर्तन की महिमा ।"

सुणि हरि कथा उतारी मैलु ॥
महा पुनीत भए सुख सैलु ॥
वडै भागि पाइआ साधसंगु ॥
पारब्रहम सिउ लागो रंगु ॥१॥

(हे भाई !) जिन्होने हरि की कथा सुनी है, उन्होंने (अपने मन की) मैल उतारी है। वे महापवित्र हुए हैं और वे अब सुख में विचरने लगे हैं। उत्तम भाग्य के कारण उन्होंने साधु की संगति प्राप्त की है और अब परब्रह्म परमात्मा के साथ उनका प्रेम लगा है ॥१॥

हरि हरि नामु जपत जनु तारिओ ॥
अगनि सागरु गुरि पारि उतारिओ
॥१॥रहाउ॥

जो जीव हरि हरि का नाम जपते हैं, उनको गुरु संसार से, जो अग्नि का सागर है, पार उतार देते हैं ॥१॥रहाउ॥

करि कीरतनु मनु सीतल भए ॥
जनम जनम के किलबिख गए ॥
सरब निधान पेखे मन माहि ॥
अब ढूढन काहे कउ जाहि ॥२॥

(हे भाई !) हरि का कीर्तन करने से मन शीतल होता है और जन्म-जन्मातरो के पाप दूर हो जाते हैं। सब पदार्थों का खजाना (हरि) अन्दर मे ही दीख पड़ता है, ढूँढने के लिए अब वह क्यो कही जाए ॥२॥

प्रभ अपुने जब भए दइआल ॥
पूरन होई सेवक घाल ॥
बंधन काटि कीए अपने दास ॥
सिमरि सिमरि सिमरि गुणतास ॥३॥

(हे भाई !) जब अपना प्रभु दयालु होता है, तब सेवक का परीश्रम सफल होता है। प्रभु जो गुणों का खजाना है, 'वह' बन्धन काट कर अपना सेवक करता है। इसलिए (हे प्यारे !) 'उसे' स्मरण कर, स्मरण कर, (हाँ) (सदैव) स्मरण कर ॥३॥

एको मनि एको सभ ठाइ ॥
पूरन पूरि रहिओ सभ जाइ ॥
गुरि पूरै सभु भरमु चुकाइआ ॥
हरि सिमरत नानक सुखु पाइआ
॥४॥८॥७७॥

(हे भाई !) 'वह' एक ही मन में है और वही सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है। पूर्ण गुरु ने सारा भ्रम दूर कर दिया। हे नानक ! हरि का स्मरण करने से सुख प्राप्त हुआ ॥४॥८॥७७॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"मनमुख की दिन प्रतिदिन माया के प्रति आसक्ति।"

अगले मुए सि पाछै परे ॥
उबरे से बंधि लकु खरे ॥
जिह धंधे महि ओइ लपटाए ॥
उन ते दुगुण दिड़ी उन माए ॥१॥

जो पहले मर गए, वे पीछे पड़ गए (अर्थात उनकी विस्मृति हो गई)। जो बच गए, वे कटिबद्ध हो खड़े हैं। जिन (संसारिक) धंधों में (पीछे के लोग जो मर गए हैं) फंसे हुए थे, उनसे दुगुनी माया इन शेष (बाकी) रहने वालों को चिपटी हुई है ॥१॥

ओह बेला कछु चीति न आवै ॥
बिनसि जाइ ताहू लपटावै ॥१॥
रहाउ॥

वह समय (मृत्यु का) जीव को याद नही आता। जो माया नाश हो जाती है, उसमें आसक्त हो रहा है ॥१॥ रहाउ ॥

आसा बंधी मूरख देह ॥
काम क्रोध लपटिओ असनेह ॥
सिर ऊपरि ठाढो धरमराइ॥
मीठी करि करि बिखिआ खाइ ॥२॥

मूर्ख का शरीर आशा में जकड़ा हुआ है। (कि कभी मरना नहीं) काम, क्रोध और मोह में लिपटा हुआ है। उसके सिर पर धर्मराजा खड़ा हुआ है किन्तु वह विषवत् माया को मीठी समझकर खाता जा रहा है ॥२॥

हउ बंधउ हउ साधउ बैरु ॥
हमरी भूमि कउणु घालै पैरु ॥
हउ पंडितु हउ चतुरु सिआणा ॥
करणैहारु न बुझै बिगाना ॥३॥

अज्ञानी मनुष्य ऐसे कहता है, "मैं (उसको) बाँध लूगा और उससे प्रतिकार (बदल.) लूगा।" हमारी जमीन में कौन पैर रख सकता है? मैं पण्डित हूँ, मैं चतुर हूँ और बुद्धिमान(भी) हूँ। बे-समझ जीव कर्त्ता को नही समझता ॥३॥

अपुनी गति मिति आपे जानै ॥
किआ को कहै कि आखि वखानै ॥
जितु जितु लावहि तितु तितु
लगना ॥
अपना भला सभ काहू मंगना ॥४॥

(प्रभु) स्वयं ही अपनी पहुँच और मर्यादा जानता है। क्या कोई कह सकेगा अथवा 'उसे' बखान कर सकेगा? जिन-जिन कर्मों मे प्रभु जीव को लगाता है, उन्ही कर्मों में जीव लगता है और सब कोई अपने भलाई के लिए (अर्थात सुख के लिए) उससे माँगता है (अर्थात प्रार्थना करता है) ॥४॥

सभ किछु तेरा तूं करणैहारु ॥
अंतु नाही किछु पारावारु ॥
दास अपने कउ दीजै दानु ॥
कबहू न विसरै नानक नामु ॥५
॥९॥७८॥

(हे प्रभु!) सब कुछ तेरा है और तू ही करने वाला है। (हे कर्त्ता!) तेरा अन्त नही और न ही पारावार है। (हे प्रभु!) अपने दास को यह दान दो कि मुझसे तेरा नाम कभी भी न भूले, (विनय करते हैं मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब) ॥५॥९॥७८॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"नाम ही आश्रय है।"

अनिक जतन नही होत छुटारा ॥
बहुतु सिआणप आगल भारा ॥
हरि की सेवा निरमल हेत ॥
प्रभ की दरगह सोभा सेत ॥१॥

(नाम के बिना) अनेक (तीर्थ, यज्ञ, व्रतादि) यत्नों से (योनियों से) छुटकारा नही होता क्योंकि अधिक चतुराईयाँ प्रस्तुत अधिक बोध का कारण है। हरि की सेवा शुद्ध प्रेम से करें तो प्रभु की दरबार मे प्रतिष्ठा पूर्वक जाया जाता है ॥१॥

मन मेरे गहु हरिनाम का ओला ॥
तुझै न लागै ताता झोला ॥१
॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! तू हरिनाम का आश्रय ग्रहण कर फिर तुझे गर्म वायु का झोंका नहीं लगेगा ॥१॥ रहाउ ॥

जिउ बोहिथु भै सागर माहि ॥
अंधकार दीपक दीपाहि ॥
अगनि सीत का लाहसि दूख ॥
नामु जपत मनि होवत सूख ॥२॥

जैसे भयानक समुद्र में जहाज आश्रय है; जैसे अन्धकार मे दीपक प्रकाश करता है; जैसे शीत में अग्नि दुःख की निवृत्ति कर देती है. ऐसे (दुखमय समय में) नाम जपने से सुख प्राप्त होता है ॥२॥

उतरि जाइ तेरे मन की पिआस ॥
पूरन होवै सगली आस ॥
डोलै नाही तुमरा चीतु ॥
अंमृत नामु जपि गुरमुखि मीत॥३॥

(हे भाई !) तेरे मन की तृष्णा मिट जाएगी, तेरी सभी आशाएँ पूर्ण हो जाएँगी और तुम्हारा चित्त भी नही भटकेगा (अर्थात स्थिर हो जाएगा) यदि, हे मित्र ! तू हरि का अमृत-नाम गुरु की शिक्षा लेकर जपेगा ॥३॥

नामु अउखधु सोई जनु पावै ॥
करि किरपा जिसु आपि दिवावै ॥
हरि हरि नामु जाकै हिरदै वसै ॥
दूखु दरदु तिह नानक नसै ॥४
॥१०॥७६॥

किन्तु (कलियुग में) नाम रूपी औषध वही सेवक प्राप्त करता है जिसे प्रभु स्वयं कृपा करके (गुरु से) दिलाता है। जिनके हृदय मे हरि, (हाँ) हरि नाम बसता है, हे नानक ! उनके दुख और दर्द नष्ट हो जाते हैं ॥४॥१०॥७६॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

'माया से प्रीति रखनी है दुखी होकर मरना।"

बहुतु दरबु करि मनु न अघाना ॥
अनिक रूप देखि नह पतीआना ॥

अधिक धन (एकत्र करने) से मन तृप्त नहीं होता। अनेक रूप देखने पर भी (मन) पसीजता (अर्थात् तृप्त नहीं होता)।

पुत्र कलत्र उरझिओ जानि मेरी ॥
ओह बिनसै ओह भसमै ढेरी ॥१॥

पुत्र और स्त्री को अपना जान कर उलझा है, किन्तु उसका धन नाश हो जाएगा और वे (स्त्री और पुत्र भी) राख की ढेरी हो जायेंगे ॥१॥

बिनु हरि भजन देखउ बिललाते ॥
ध्रिगु तनु ध्रिगु धनु माइआ संगि
राते ॥१॥रहाउ॥

(हे भाई !) हरि के भजन के बिना देखो प्रत्येक जीव विरलाप करते हैं (दुखी होकर रोते हैं)। जो जीव माया की संगति मे अनुरक्त हैं, उनका शरीर धिक्कार योग्य, (हाँ) निन्दनीय है ॥ १॥ रहाउ ॥

जिउ बिगारी कै सिरि दीजहि
दाम ॥
ओइ खसमै कै ग्रिहि उन दूख
सहाम ॥
जिउ सुपनै होइ बैसत राजा ॥
नेत्र पसारै ता निरारथ काजा ॥२॥

जैसे बेगार करने वाले के सिर पर धन उठाया जाय तो उसे क्या लाभ है। वह धन मालिक के घर पहुँच जाएगा बेगार करने वाले ने केवल कष्ट ही उठाया है। अथवा जैसे (कोई) स्वप्न के अन्दर राजा बन बैठता है, किन्तु नेत्र खोले तो सम्पूर्ण राज्य के कार्य निष्फल हो जाते हैं ॥२॥

जिउ राखा खेत ऊपरि पराए ॥
खेतु खसम का राखा उठि जाए ॥
उसु खेत कारणि राखा कड़ै ॥
तिस कै पालै कछू न पड़ै ॥३॥

अथवा फिर जैसे पराए खेत पर रक्षक बैठा होता है, खेत तो मालिक का रहता है रक्षक तो उठकर चले जाता है। उसी खेत के लिए रक्षक कष्ट झेलता है किन्तु उसके पल्ले कुछ भी नही पडता ॥३॥

जिस का राजु तिसै का सुपना ॥
जिनि माइआ दीनी
तिनि लाई त्रिसना ॥
आपि बिनाहे आपि करे रासि ॥
नानक प्रभ आगै अरदासि ॥४
॥११॥८०॥

जिस प्रभु का राज्य है, 'उसी' की स्वपन रूप माया है। जिस प्रभु ने माया दी है 'उसी' ने जीव के साथ मायिक पदार्थों के लिए तृष्णा भी लगा दी है। प्रभु स्वय ही (मनमुखों को) नाश करता है और स्वय ही (गुरमुखो को) मुक्त करता है। हे नानक ! प्रभु के आगे प्रार्थना कर कि "तू मेरा मालिक है। मैं तेरी शरण मे आया हूँ" (मायिक पदार्थों की तृष्णा से मुझे दूर कर।) ॥४॥ ११॥८०॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"हरि-कीर्तन में ही परम आनन्द है।"

बहु रंग माइआ बहुबिधि पेखी ॥
कलम कागद सिआनप लेखी ॥

(हे भाई !) बहुत रगो वाली माया कई तरह से मैंने देखी है, लेखनी कागज लेकर लिखी भी हैं स्यानवें (विद्वानों की तरह);

महर मलूक होइ बैखिआ खान ॥
ताते नाही मनु तृपतान ॥१॥

चौधरी, बादशाह एवं खान (उमराव)आदि होकर भी देख लिया है, किन्तु (उन) पदों से मानसिक तृप्ति नहीं होती ॥१॥

सो सुखु मोकउ संत बतावहु ॥
तृसना बूझै मनु तृपतावहु ॥१
॥रहाउ॥

(इसलिए) हे सन्तजनों ! मुझे वह सुख बताओ, जिससे तृष्णा रूपी अग्नि बुझ जाये और मेरा मन तृप्त हो जाए ॥१॥ रहाउ ॥

असु पवन हसति असवारी ॥
चोआ चंदनु सेज सुंदरि नारी ॥
नट नाटिक आखरे गाइआ ॥
तामहि मनि संतोखु न पाइआ
॥२॥

वायु के समान द्रुतगामी घोड़े और हाथी की सवारी, अगर का इत्र, चंदन, शय्या पर सुन्दर स्त्री, अभिनेताओं के नाटक देखे हैं और नृत्यशालाओं में उनका गाना भी सुना, किन्तु उनके मन में भी सन्तोष नहीं आया ॥२॥

तखतु सभा मंडन दोलीचे ॥
सगल मेवे सुंदर बागीचे ॥
आखेड़ बिरति राजन की लीला ॥
मनु न सुहेला परपंचु हीला ॥३॥

राज दरबार में सिंहासन और गलीचों आदि की सजावट देखी; सारे फलों से (सुसज्जित) सुन्दर बगीचे भी देखे; शिकार खेलने का चाव और राजाओं वाली अन्य खेलें भी खेली, किन्तु मन(फिर भी) सुखी नहीं हुआ।(वस्तुतः)यह प्रयत्न सारा ही छल था ॥३॥

करि किरपा संतन सचु कहिआ ॥
सरब सूख इहु आनंदु लहिआ ॥
साध संगि हरि कीरतनु गाईऐ ॥
कहु नानक वडभागी पाईए ॥४॥

(मेरी यह दशा देखकर) सन्तों ने कृपा की और मुझे यह सत्य बताया कि सर्व सुख और आनन्द इसी में प्राप्त हो जायेंगे यदि साधु संगति में बैठकर हरि का कीर्तन गाये, किन्तु यह (देन)उत्तम भाग्यों से ही प्राप्त होती है ॥४॥

जाकै हरि धनु सोई सुहेला ॥
प्रभ किरपा ते साधसंगि मेला ॥१॥
रहाउ दूजा॥१२॥८१॥

हे भाई ! जिनको हरि नाम रूपी धन है, वे ही सुखी हैं और प्रभु की कृपा से ही साधु की संगति प्राप्त हो सकती है ॥१॥ रहाउ॥दूजा॥१२॥८१॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"जीव-पक्षी को माया-जाल से बचाने वाला सत्गुरू है।"

प्राणी जाणै इहु तनु मेरा ॥
बहुरि बहुरि उआहू लपटेरा ॥

(मनमुख) प्राणी समझता है कि यह शरीर मेरा है इसलिए पुनः-पुनः उससे लिपटता है। पुत्र, स्त्री और कुटुम्ब (के मोह)

पुत्र कलत्र बिखिआ का फाहा ॥
होनु न पाईऐ राम के दासा ॥१॥

में फंसा होने के कारण राम का दास होने नहीं पाता ॥१॥

कवन सु बिधि जितु राम गुण गाइ ॥
कवन सु मति जितु तरै इह माइ
॥१॥रहाउ॥

वह कौन-सी विधि है जिससे (जीव) राम के गुण गाए ? वह कौन सी (सु) मति है जिससे वह माया से तैर कर पार हो जाय ? ॥१॥ रहाउ ॥

जो भलाई सो बुरा जानै ॥
साचु कहै सो बिखै समानै ॥
जाणै नाही जीत अरु हार ॥
इहु वलेवा साकत संसार ॥२॥

जिसमें जीव की भलाई है उसको बुड़ा समझता है। यदि कोई (सन्त साधु उसे) सत्य कहते हैं तो वह (मनमुख) उसे विष के समान समझता है। (सन्मुख) वह जीत और हार को नहीं जानता। इस प्रकार माया में आसक्त-शाक्त का संसार में यह व्यवहार है ॥२॥

जो हलाहल सो पीवै बउरा ॥
अंम्रितु नामु जानै करि कउरा ॥
साध संग कै नाही नेरि ॥
लख चउरासी भ्रमता फेरि ॥३॥

(साकत पुरुष) पागल होता है क्योंकि जो विष है उसे पीता है और जो अमृत-नाम है उसे कडवा करके समझता है। वह साधु की संगति के निकट भी नहीं आता इसलिए वह चौरासी लाख योनियो के चक्कर में भ्रमण करता फिरता है॥३॥

एकै जालि फहाए पंखी ॥
रसि रसि भोग करहि बहुरंगी ॥
कहु नानक जिसु भए क्रिपाल ॥
गुरि पूरै ता के काटे जाल ॥४
॥१३॥८२॥

(हे भाई !) एक माया के जाल में सब जीव रूप पक्षी फसते हैं। ये अनके रग के जीव स्वाद लगा-लगा कर आनन्द लेते हैं। (प्रश्न माया जाल से कौन छूटते हैं ? उत्तर:) कहते हैं (गुरु) नानक (साहब) जिस पर प्रभु कृपालु हुए हैं उसकी जाल पूर्ण गुरु ने काट दी है ॥४॥१३॥८२॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"प्रभु की कृपा और जीव की प्रार्थना।"

तउ किरपा ते मारगु पाईऐ ॥
प्रभ किरपा ते नामु धिआईऐ ॥
प्रभ किरपा ते बंधन छुटै ॥
तउ किरपा ते हउमै तुटै ॥१॥

(हे प्रभु !) तुम्हारी कृपा से ठीक मार्ग मिलता है। हे प्रभु ! तुम्हारी कृपा से नाम का ध्यान होता है। हे प्रभु ! तुम्हारी कृपा से (माया के) बन्धन छूटते हैं। (हे प्रभु !) तुम्हारी कृपा से ही हौमैं (अहंकार) टूटती है ॥१॥

तुम लावहु तउ लागह सेव ॥
हम ते कछू न होवै देव ॥१
॥रहाउ॥

(हे प्रभु !) यदि तुम सेवा में लगाओगे तो हम तुम्हारी सेवा में लगेंगे। हे ज्योति स्वरूप प्रभो ! हमसे (अपने आप) कुछ भी नहीं हो सकता ॥१॥ रहाउ ॥

तुधु भावै ता गावा बाणी ॥
तुधु भावै ता सचु वखाणी ॥
तुधु भावै ता सतिगुर मइआ ॥
सरब सुखा प्रभ तेरी दइआ ॥२॥

(हे प्रभो !) यदि तुझे अच्छा लगे या मैं गा पाऊँ तो तेरी वाणी गाऊँगा, यदि तुझे अच्छा लगे तो सत्य स्वरूप को उच्चारण करूँगा, यदि तुझे अच्छा लगे तो सतगुरु की कृपा प्राप्त होगी। (हे प्रभु !) सारे सुख तेरी दया से प्राप्त होते हैं ॥२॥

जो तुधु भावै सो निरमल करमा ॥
जो तुधु भावै सो सचु धरमा ॥
सरब निधान गुण तुम ही पासि ॥
तूं साहिबु सेवक अरदासि ॥३॥

(हे प्रभो !) जो कुछ तुझे अच्छा लगे वही कर्म निर्मल हैं। (हे प्रभो !) जो तुझे अच्छा लगे वही सत्य धर्म है। (हे प्रभो !) सर्व निधि रूप गुण तुम्हारे ही पास हैं। (हे प्रभो !) तू मेरा (साहब) है और (मैं) सेवक ने तो (तुम्हारे समक्ष) प्रार्थना ही करनी है ॥३॥

मनु तनु निरमलु होइ हरिरंगि ॥
सरब सुखा पावउ सतसंगि ॥
नामि तेरै रहै मनु राता ॥
इहु कलिआणु नानक करि जाता ॥४
॥१४॥८३॥

(हे प्रभो !) हरि के प्रेम-रंग द्वारा ही मन और तन निर्मल होते हैं। इस प्रकार सत्संग द्वारा मैं सारे सुख प्राप्त करता हूँ अथवा कर लूं। (काश !) मेरा मन तेरे नाम मे रंगा रहे। हे नानक ! सबसे ऊंची अवस्था मैं नही समझता हूँ (कि तुम्हारे नाम में निरन्तर मेरा मन लगा रहे।) ॥४॥१४॥८३॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"हरि-रस ही सर्वोत्तम रस है।"

आन रसा जेते तै चाखे ॥
निमख न त्रिसना तेरी लाथे ॥
हरिरस का तूं चाखहि सादु ॥
चाखत होइ रहहि बिसमादु

(हे मेरी रसना !) (हरि रस के अतिरिक्त) अन्य रस जो तुमने चखे हैं, उनसे क्षण भर के लिए भी तुम्हारी तृष्णा दूर नहीं होती। (हे रसना !) यदि तू हरि(नाम) रस के रसा स्वादन कर ले तो चखते ही तू विस्मय हो जाय (अर्थात तू स्वयं आश्चर्य चकित हो जायेगी कि हरि नाम का रस कैसा है ?) ॥१॥

अंम्रितु रसना पीउ पिआरी ॥
इह रस राती होइ त्रिपतारी ॥१
॥रहाउ॥

हे (मेरी) प्यारी रसना ! तू हरि रस का अमृत पी। इस रस में रत होने से तू तृप्त हो जाएगी ॥१॥ रहाउ ॥

हे जिहवे तूं राम गुण गाउ ॥
निमख निमख
हरि हरि हरि धिआउ ॥
आन न सुनीऐ कतहूं जाईऐ ॥
साध संगति वडभागी पाईऐ ॥२॥

हे (मेरी) जिह्वे ! तू राम के गुण गा और तू निमिख-निमिख मात्र हरि,(हाँ) हरि नाम का ध्यान कर। हरि-गुण के बिना और कुछ न सुन और साधु संगति के बिना और कहीं न जाओ। किन्तु (हरि-रस) साधु की संगति में उत्तम भाग्यों के कारण ही प्राप्त होता है।॥२॥

आठ पहर जिहवे आराधि ॥
पारब्रहम ठाकुर आगाधि ॥
ईहा ऊहा सदा सुहेली ॥
हरिगुण गावत रसन अमोली ॥३॥

हे (मेरी)जिह्वे ! तू आठ ही प्रहर परब्रह्म ठाकुर, जो अथाह है, 'उसकी' आराधना कर। इस प्रकार तू इसलोक में और परलोक में, (हाँ) सदैव सुखी हो जाएगी। (स्मरण रहे) हरि गुण गाने से रसना बडे मूल्य की हो जाती है॥३॥

बनसपति मउली फल फुल पेडे ॥
इह रस राती बहुरि न छोडे ॥
आन न रस कस लवै न लाई ॥
कहु नानक गुर भए है सहाई ॥४॥१५॥८४॥

(हे रसना !) बनस्पति, वृक्ष, पौधे, फल-फूलो से हरे-भरे दिखाई दे रहे हैं भाव संसार की प्रत्येक वस्तु प्रफुल्लित हुई मालूम होती है। हरि रस का स्वाद पड जाए तो पुनः इसको कभी नहीं छोडेगी और अन्य (मायिक) स्वादों को हरि रस के तुल्य नही समझेगी। कहते हैं(गुरु)नानक(साहब)(कि यह उच्चतम अवस्था उसे प्राप्त होती है) जिसका गुरु सहायक हुआ है ॥४॥१५॥८४॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"नाम-रत्न का व्यापारी गुरु ही है।"

मनु मंदरु तनु साजी बारि ॥
इस ही मधे बसतु अपार ॥
इसही भीतरि सुनीअत साहु ॥
कवनु बापारी जाका ऊहा विसाहु ॥१॥

मन मन्दिर है, जिसकी रक्षा के लिए शरीर का घेरा बनाया हुआ है। इस (मन्दिर) के मध्य अपार वस्तु है। इसी मन्दिर के भीतर (उस अपार वस्तु का) शाह (जो राशि देकर व्यापारी भेजता है) सुनने मे आता है (कि रहता है)। अब बताओ वह व्यापारी कौन सा है जिसका विश्वास वहाँ (उसे शाह के पास) बना हुआ है ? (अर्थात जिसके आधार पर सौदा दिया जाता है ?) ॥१॥

नाम रतन को को बिउहारी ॥
अंमृत भोजनु करे आहारी ॥१॥ रहाउ॥

(हाँ) नाम रूपी रत्न का कौन कौन व्यापारी है जो अमृत भोजन का आहार करता है ? ॥१॥ रहाउ ॥

मनु तनु अरपी सेव करीजै ॥
कवन सु जुगति जितु करि भीजै ॥

वह कौन सी युक्ति है जिस करके यह व्यापारी प्रसन्न हो जाए ? क्या मन तन अर्पण करके सेवा करने से (वह प्रसन्न

साहु समउ तकि मेरा तेरै ॥
कवनु सु जनु जो सउदा जोरै ॥२॥

होगा ?) वह कौन-सा (शाह का) सेवक है जो सौदा करा देवे, मैं अहंकार का परित्याग करके (उसके) चरणों में लग पड़ूँ। २॥

महलु साह का किन बिधि पावै ॥
कवन सु बिधि जितु भीतरि
बुलावै ॥
तूं वड साहु जाके कोटि वणजारे ॥
कवनु सु दाता ले संचारे ॥३॥

(मैं गरीब बनजारा) शाह का महल किस विधि से प्राप्त करूँ ? वह कौन सी विधि है जिससे (शाह) अन्दर बुला लेवे ? (हे शाह !) तू बड़ा शाह है, जिसके करोड़ों बनजारे हैं। वह कौन-सा दाता है जो मुझे उससे मिला दे ? ॥३॥

खोजत खोजत निज घरु पाइआ ॥
अमोल रतनु साचु दिखलाइआ ॥
करि किरपा जब मेले साहि ॥
कहु नानक गुर कै वेसाहि ॥४
॥१६॥८५॥

(इस प्रकार पूछते-पूछते और)ढूँढते-ढूँढते मैंने अपना घर पा लिया। अमूल्य रत्न-सत्य मुझे दिखला दिया गया। (सिद्धान्त तो यह कि) जब कृपा करके शाह (व्यापारी) से मिला दे तो शाह (मिलता है) (हाँ) गुरु की साख (इतबार) पर (हमारा भी शाह प्रभु के साथ मेल हो गया), कहते हैं (बाबा) नानक (साहब) ॥ ४॥१६॥८५॥

गउड़ी महला ५ गुआरेरी ॥

"हरिनाम में अनुरक्त जीव ही हरे भरे रहते हैं।"

रैणि दिनसु रहै इक रंगा ॥
प्रभ कउ जाणै सद ही संगा ॥
ठाकुर नामु कीओ उनि वरतनि ॥
त्रिपति अघावनु हरि कै दरसनि
॥१॥

(हे प्यारे !) सन्तजन रात-दिन एक रंग में (मस्त) रहते हैं और प्रभु को सदा ही अपने साथ जानते हैं। ठाकुर का नाम उन्होंने अपना वर्ताव (व्यवहार) किया है (अर्थात उठते-बैठते, सोते-जागते वे नाम ही जपते हैं)। वे हरि का दर्शन प्राप्त करके पूर्णतः तृप्त रहते हैं ॥१॥

हरि संगि राते मन तन हरे ॥
गुर पूरे की सरनी परे ॥१॥रहाउ॥

वे पूर्ण गुरु की शरण पड़ने पर ही हरि की संगति में रच जाते हैं और वे मन चाहे तन से हरे भरे (प्रसन्न तथा प्रफुल्ल) रहते हैं॥१॥ रहाउ ॥

चरण कमल आतम आधार ॥
एकु निहारहि आगिआकार ॥
एको बनजु एको बिउहारी ॥
अवरु न जानहि बिनु निरंकारी
॥२॥

(उनकी) आत्मा को हरि के चरण कमल का आधार है। वे आज्ञाकारी होकर एक सत्य को ही देखते हैं। उनका एक ही वणज और एक ही व्यापार (नाम जपना और जपाना) है। वे निरंकारी के बिना अन्य किसी को नहीं जानते ॥२॥

हरख सोग दुहहू ते मुकते ॥
सदा अलिपतु जोग अरु जुगते ॥
दीसहि सभ मोहि सभ ते रहते ॥
पारब्रहम का ओइ धिआनु धरते
॥३॥

वे हर्ष और शोक दोनों से स्वतन्त्र हैं। वे सदा निर्लिप हैं और परमेश्वर के साथ जुड़े हुए हैं और युक्ति वाले हैं (अर्थात संसार में युक्ति पूर्वक व्यवहार करते हैं)। वे दीखते हैं सबके बीच किन्तु सबसे अलग रहते हैं। वे परब्रह्म का ध्यान धारण करते हैं ॥३॥

संतन की महिमा कवन वखानउ ॥
अगाधि बोधि
किछु मिति नहीं जानउ ॥
पारब्रहम मोहि किरपा कीजै ॥
धूरि संतन की नानक दीजै ॥४
॥१७॥८६॥

सन्तजनों की महिमा मैं क्या(क्या) वर्णन करूँ। उनकी बुद्धि (ज्ञान) को जानना कठिन है क्योंकि अगाध है उनकी बुद्धि और उनकी सीमा भी कुछ नही जानता। हे परब्रह्म परमेश्वर! मुझ पर कृपा करो और सन्तों की धूलि (मेरे गुरुदेव) नानक को दो। ॥४॥१७॥८६॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"प्रभु साहब के सन्मुख विनय।"

तूं मेरा सखा तूं ही मेरा मीतु ॥
तूं मेरा प्रीतमु तुम संगि हीतु ॥
तूं मेरी पति तू है मेरा गहणा ॥
तुझ बिनु निमखु न जाई रहणा
॥१॥

(हे हरि!) तू ही मेरा साथी है, तू ही मेरा मित्र है, तू ही मेरा प्रियतम है और तेरे साथ ही (मेरा) प्यार है। तू ही मेरी इज्जत है, तू ही मेरा आभूषण (शृंगार) है और तेरे बिना क्षण भर के लिए भी मेरा रहना नही होता ॥१॥

तूं मेरे लालन तूं मेरे प्रान ॥
तूं मेरे साहिब तूं मेरे खान १॥
॥रहाउ॥

(हे हरि!) तू ही मेरा प्रिय है और तुम ही मेरे प्राण हो। तू ही मेरा साहब है और तू ही मेरा सरदार हो ॥१॥रहाउ॥

जिउ तुम राखहु तिव ही रहना ॥
जो तुम कहहु सोई मोहि करना ॥
जह पेखउ तहा तुम बसना ॥
निरभउ नामु जपउ तेरा रसना
॥२॥

(हे प्रभु!) जैसे तुम मुझे रखते हो वैसे ही रहना होता है, जो आज्ञा तुम करते हो, उसी अनुसार मुझे करना होता है। जहाँ देखता हूँ, वहाँ तुम ही बसते हो। हे भय दूर करने वाले (प्रभु)! रसना से मैं तुम्हारा नाम जपता हूँ ॥२॥

तूं मेरी नवनिधि तूं भंडारु ॥
रंग रसा तूं मनहि अधारु ॥
तूं मेरी सोभा तुम संगि रचीआ ॥
तूं मेरी ओट तूं है मेरा तकीआ
॥३॥

(हे हरि !) तुम ही मेरी नौ निधियाँ हो और तुम ही मेरे लिए शुभ गुणों का भण्डार हो। मैं तेरे प्रेम-रंग में रच गया हूँ। (हे प्रभु !) तू ही मेरे मन का आधार है। (हे हरि !) तू ही मेरी शोभा है और मैं तेरे साथ पूरी तरह मिल गया हूँ। (हे हरि !) तू ही मेरी ओट है और तू ही मेरा आश्रय है ॥३॥

मन तन अंतरि तुही धिआइआ ॥
मरमु तुमारा गुर ते पाइआ ॥
सतिगुर ते द्रिड़िआ इकु एकै ॥
नानक दास हरि हरि हरि टेकै ॥
४॥१८॥८७॥

(हे हरि !) मैं मन और तन से तुझे ही ध्याता हूँ, किन्तु तुम्हारा भेद मुझे गुरु से ही प्राप्त हुआ है। (हाँ) सत्गुरु ने एक ही एक हरि को मेरे हृदय में दृढ़ करवाया है। दास नानक को हे हरि ! हे हरि ! हरि (नाम) की ही टेक है ॥४॥१८॥८७॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"प्रभु के प्रिय सन्तो के अतिरिक्त माया ने सबको वशीभूत किया है।"

बिआपत हरख सोग बिसथार ॥
बिआपत सुरग नरक अवतार ॥
बिआपत धन निरधन पेखि सोभा ॥
मूलु बिआधी बिआपसि लोभा ॥१॥

माया का विस्तार हर्ष चाहे शोक में व्याप्त हो रहा है। माया स्वर्ग में, नरक में और अवतारों को भी चिपट्ती (प्रभाव डालती) है। माया धनाढय चाहे निर्धन में व्याप्त हो रही हैं और उनमें भी व्याप्त है जो धनी पुरुषों की शोभा को देखकर (प्रसन्न होते हैं)। दु खों के मूल और लोभ के रूप मे भी (माया) चिपटा करती हैं ॥१॥

माइआ बिआपत बहुपरकारी ॥
संत जीवहि प्रभ ओट तुमारी ॥१
॥रहाउ॥

माया बहुत ही तरीकों से (ससार में) व्याप्त हो रही है। हे प्रभु ! केवल सन्त ही तेरी ओट (टेक) लेकर जीवित रहते हैं (अर्थात माया के प्रभाव से दूर रहते है) ॥१॥रहाउ॥

बिआपत अहंबुधि का माता ॥
बिआपत पुत्र कलत्र संगि राता ॥
बिआपत हसति घोड़े अरु बसता ॥
बिआपत रूप जोबन मद मसता
॥२॥

जो अपनी अहंकार वाली बुद्धि पर मस्त है, (माया) उसको भी चिपटी है। उसको भी व्याप्त हो रही है जो पुत्र और स्त्री की संगति में मोह के कारण अनुरक्त है। जो जीव हाथी, घोड़े और वस्त्रों की ममता मे है, उसमे भी माया व्याप्त है। जो जीव सुन्दरता और यौवन की मस्ती में मस्त हैं, उनको भी माया व्याप्त है ॥२॥

बिआपत भूमि रंक अरु रंगा ॥
बिआपत गीत नाद सुणि संगा ॥
बिआपत सेज महल सीगार ॥
पंच दूत बिआपत अंधिआर ॥३॥

(माया) भूमि पति को, दीन को और आनन्द लेने वाले (भाग धनी) को भी चिपटती है। गीत की ध्वनि में रम जाने वालों को भी माया व्याप्त हो जाती है। यह शय्या, महलों और शृंगार पर भी प्रभाव डालती है, (हाँ) यह पाँच (काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार) विषयो के अंधकार के रूप मे व्याप्त है ॥३॥

बिआपत करम करै हउ फासा ॥
बिआपति गिरसत बिआपत उदासा ॥
आचार बिउहार बिआपत इह जाति ॥
सभ किछु बिआपत बिनु हरिरंग रात ॥४॥

उसे चिपटती है जो अहंकार मे फंसकर शुभ कर्म करता है। यह गृहस्थियों को चिपटती है और उदासियों पर भी प्रभाव डालती है। रहन-सहन, व्यवहार और जाति-पाति की भेद-भावना में भी माया काम कर रही है। सब किसी को माया चिपट रही है, सिवाय उनके जो हरि-प्रेम में रंगे हुए हैं ॥४॥

संतन के बंधन काटे हरि राइ ॥
ताकउ कहा बिआपै माइ ॥
कहु नानक जिनि धूरि संत पाई ॥
ताकै निकटि न आवै माई ॥५॥१६॥८८॥

(हे भाई !) सन्तजनो के बन्धन हरि राजा ने काट दिये हैं, फिर उन्हे माया कैसे व्याप्त हो सकती है ? (सिद्धान्त) (मेरे गुरु-देव गुरु) नानक (साहब) कहते हैं कि जिन्होंने सन्तों की धूलि प्राप्त की हैं, उनके निकट माया (कभी भी) नहीं आती (अर्थात सन्तो की शरण आने से और अहम् भाव विसर्जन करने से ही जीव माया के प्रभाव से बच सकता है) ॥५॥१६॥८८॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"विषय-विकारो के प्रति आसक्ति के कारण अमूल्य मनुष्य जन्म व्यर्थ जाता है।"

नैनहु नीद परदृसटि विकार ॥
स्रवण सोए सुणि निंद बीचार ॥
रसना सोई लोभि मीठै सादि ॥
मनु सोइआ माइआ बिसमादि ॥१॥

वे नेत्र सोये हुए हैं (अर्थात हरि से बेखबर हैं) जो पर-(स्त्री, धन तथा) विषय-विकारों की ओर दृष्टि रखते हैं। वे कान सोये हुए हैं जो पर-निन्दा सुन कर उस पर विचार करते हैं। वह रसना सोई पड़ी है (अर्थात मृतक है) जो मीठे स्वादो रसो के लोभ मे है। वह मन सोया हुआ है (अर्थात प्रभु की ओर से विमुख है) जो माया में मस्त है ॥१॥

इसु गृह महि कोई जागतु रहै ॥
साबतु वसतु ओहु अपनी लहै ॥१॥रहाउ॥

इस घर में (अर्थात इस संसार में) कोई (एकाध ही) जागता है, केवल उनकी ही वस्तु सुरक्षित है। (शेष को तो सोते देखकर चोर लूट कर ले गए हैं।) ॥१॥ रहाउ॥

सगल सहेली अपनै रस माती ॥
ग्रिह अपुने की खबरि न जाती ॥
मुसनहार पंच बटवारे ॥
सूने नगरि परे ठगहारे ॥२॥

सभी सहेलियाँ (अर्थात इन्द्रियाँ) अपने अपने रस (शब्द, स्पर्शादि) में मस्त हैं। उनको अपने घर का ही पता नही कि हमारे घर में श्रेष्ठ गुण रूपी धन लूटा जा रहा है। (प्रश्न कौन यह धन लूटता है ? उत्तर :) लूटने वाले पाँच लुटेरे (काम, क्रोधादि) हैं। वे उस नगर को लूटते हैं जो नाम से सूना है (अर्थात् सूने घर का कोई सरक्षक नही है क्योकि सभी अज्ञान निद्रा में सो रहे हैं) ॥२॥

उन ते राखै बापु न माई ॥
उन ते राखै मीतु न भाई ॥
दरबि सिआणप ना ओइ रहते ॥
साध संगि ओइ दुसट वसि होते ॥३॥

उन (कामादि विकारों से) न पिता, न माता ही रक्षा कर सकते हैं। उनसे न मित्र और न भाई बचा सकते हैं। न किसी धन देने से (अर्थात रखने से) और सयाणप से भी वे (सुरक्षित) नही रहते। केवल साधु की संगति में रहने से वे (पाँच) दुष्ट वश मे होते हैं ॥३॥

करि किरपा मोहि सारिंगपाणि ॥
संतन धूरि सरब निधान ॥
साबतु पूंजी सतिगुर संगि ॥
नानकु जागै पारब्रहम कै रंगि ॥४॥

हे सारगपाणि (विष्णु प्रभु) ! मुझ पर यह कृपा करो कि सन्तो की धूलि, जो सर्व निधियों का खजाना है, (बख्शिश करके) दो। हे नानक ! जो जीव सत्गुरु की सगति मे रहता है और पर-ब्रह्म परमेश्वर के प्रेम में जागता है (अर्थात् सावधान है), उसकी ही वस्तु सुरक्षित रहती है ॥४॥

सो जागै जिसु प्रभु किरपालु ॥
इह पूंजी साबतु धनु मालु ॥१
॥रहाउ दूजा॥२०॥८९॥

(सिद्धान्त) वही (जीव) जागता है जिस पर (मेरे) प्रभु कृपालु होते हैं और उसी की यह पूंजी, (हाँ) धन-माल सुरक्षित रहता है ॥१॥ रहाउ दूजा ॥२०॥८९॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"प्रभु सर्व समर्थ है। 'वह' सत्गुरु की कृपा से प्राप्त होता है।"

जा कै वसि खान सुलतान ॥
जा कै वसि है सगल जहान ॥
जा का कीआ सभु किछु होइ ॥
तिस ते बाहरि नाही कोइ ॥१॥

जिस (प्रभु) के वश में है राजे और महाराजे, जिसके वश मे हैं सगल जहान; जिसके करने पर ही सब कुछ होता है (अर्थात् जो 'वह' करना है, वही होता है), (हाँ) 'उस' प्रभु के बिना अन्य कोई भी नही है ॥१॥

कहु बेनंती अपुने सतिगुर पाहि ॥
काज तुमारे देइ निबाहि ॥१
॥रहाउ॥

(ऐसे सर्वोच्च प्रभु को प्राप्त करने के लिये) अपने सत्गुरु के पास विनय करो तो 'वह' तुम्हारे (समस्त) काम सिद्ध कर देगा ॥१॥ रहाउ ॥

सभ ते ऊच जा का दरबारु ॥
सगल भगत जा का नामु अधारु ॥
सरब बिआपति पूरन धनी ॥
जाकी सोभा घटि घटि बनी ॥२॥

जिस (प्रभु) का दरबार सबसे ऊँचा है; जिसके नाम का आधार सब भक्तों को है और जिसकी शोभा घट-घट में (व्याप्त) हो रही है (भाव जिसकी ज्योति प्रत्येक जीव के हृदय में सुशोभित हो रही है), (हाँ) 'वह' पूर्ण स्वामी (धनी) सर्व में व्यापक हो रहा है ॥२॥

जिसु सिमरत दुख डेरा ढहै ॥
जिसु सिमरतु जमु किछु न कहै ॥
जिसु सिमरत होत सूके हरे ॥
जिसु सिमरत डूबत पाहन तरे ॥३॥

जिस (प्रभु) का स्मरण करने से दुःख का समूह (अथवा मूल) गिर जाता है, 'जिसका' स्मरण करने से यम कुछ भी नहीं कहता; जिसका स्मरण करने से सूखे भी हरे हो जाते हैं, (हाँ) जिसका स्मरण करने से डूबता हुआ पत्थर भी तैर जाता है (भाव बाल्मीक और अजामिल जैसे पापी जीव भी हरि स्मरण के द्वारा भव सागर से पार उतर जाते हैं।) ॥३॥

संत सभा कउ सदा जैकारु ॥
हरि हरि नामु जन प्रान अधारु ॥
कहु नानक मेरी सुणी अरदासि ॥
संत प्रसादि मो कउ नाम निवासि ॥४॥२१॥९०॥

जिन सेवकों (सन्तों) के प्राणो का आधार हरि है, (हाँ) हरिनाम है, उनकी सभा (अर्थात मंडली) को सदैव नमस्कार है। हे नानक! (सन्तो ने) मेरी प्रार्थना सुनी और कृपा करके मुझे नाम में निवास दिया ॥४॥२१॥९०॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"सत्गुरु की महिमा।"

सतिगुर दरसनि अगनि निवारी ॥
सतिगुर भेटत हउमै मारी ॥
सतिगुर संगि नाही मनु डोलै ॥
अंमृत बाणी गुरमुखि बोलै ॥१॥

सत्गुरु के दर्शन करने से (मन में जो तृष्णा रूपी) अग्नि निवृत हो गई। सत्गुरु को मिलने से अहंता मारी गई। सत्गुरु की सगति करने से मन अब नही भटकता अपितु गुरमुख हुआ मन अमृत-वाणी उच्चारण करता है (भाव स्मरण करता है।) ॥१॥

सभु जगु साचा जा सच महि राते ॥
सीतल साति गुर ते प्रभ जाते ॥१॥रहाउ॥

(हे भाई!) जब जीव सत्य स्वरूप परमात्मा में रच जाता है, तभी उसको सारा जगत सत्य दिखाई देता है। जब गुरु (की दया) से प्रभु को जान लिया तो (मन तन) शीतल और शांत हो गये ॥१॥ रहाउ ॥

संत प्रसादि जपै हरिनाउ ॥
संत प्रसादि हरि कीरतनु गाउ ॥

सत की कृपा से हरि नाम का जाप करता है। संत की कृपा स हरि का कीर्तन गाता है। संत की कृपा से सकल दुःख मिट

संत प्रसादि सगल दुख मिटे ॥
संत प्रसादि बंधन ते छुटे ॥२॥

जाता है और संत की कृपा से (मोह माया के)बन्धनों से छुटकारा हो गया है ॥२॥

संत क्रिपा ते मिटे मोह भरम ॥
साध रेण मजन सभि धरम ॥
साध क्रिपाल दइआल गोविंदु ॥
साधा महि इह हमरी जिंदु ॥३॥

संत की कृपा से मोह और भ्रम मिट गये हैं। साधु की चरण धूलि में स्नान करने से सर्व धर्म (का फल) प्राप्त हुआ है। जिस पर साधु कृपालु होता है, उस पर (मेरा) गोबिन्द भी दयाल होता है। इसलिए मेरी यह जिन्दु (मन एवं शरीर) साधु (चरणों) में रहती है ॥३॥

किरपा निधि किरपाल धिआवउ ॥
साध संगि ता बैठणु पावउ ॥
मोहि निरगुण कउ प्रभि कीनी
दइआ ॥
साधसंगि नानक नामु लइआ ॥४
॥२२॥९१॥

(हे भाई!) कृपा का खजाना, जो परमात्मा है, 'उस' कृपालु का ध्यान करो तो ही साधु की संगति में बैठना मिलेगा। हे नानक! जब प्रभु ने मुझ निर्गुण पर दया की, तब मैंने साधु की संगति में मिलकर नाम प्राप्त किया अथवा नाम का जाप किया ॥४॥२२॥९१॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥

"साधु की संगति प्राप्त होते ही नाम का प्रभाव व फल।"

साधसंगि जपिओ भगवंतु ॥
केवल नामु दीओ गुरि मंतु ॥
तजि अभिमान भए निरवैर ॥
आठ पहर पूजहु गुर पैर ॥१॥

(हे भाई!) जब मैंने साधु की संगति द्वारा भगवत प्रभु का जाप किया और गुरु ने भगवत के शुद्ध नाम का मन्त्र दिया तब देह का अभिमान त्याग कर मैं निर्वैर हुआ इसलिए(अब)मैं अपने गुरु के पाँव आठ प्रहर ही पूजता हूँ ॥१॥

अब मति बिनसी दुसट बिगानी ॥
जब ते सुणिआ हरि जसु कानी ॥१
॥रहाउ॥

अब (सत्गुरु की दया से) मेरी बुद्धि, जो विषय-विकारों की ओर लगी थी और भगवान से उपराम थी, वह नाश हो गई है, जब मैंने हरि नाम का यश (सन्तो के द्वारा) अपने कानों से सुना ॥१॥ रहाउ ॥

सहज सूख आनंद निधान ॥
राखनहार रखि लेइ निदान ॥
दूख दरद बिनसे भै भरम ॥
आवण जाण रखे करि करम ॥२॥

राखनहार (नाम)जो सहज सुख और आनन्द का खजाना है, (अन्तत) बचा लिया। अब दुख, दर्द, भय और भ्रम नाश हुए हैं और (विश्वास है कि 'वह)' कृपा करके मुझे जन्म-मरण के चक्र से भी बचाएगा ॥२॥

पेखै बोलै सुणै सभु आपि ॥
सदा सगि ता कउ मन जापि ॥
सत प्रसादि भइओ परगासु ॥
पूरि रहे एकै गुणतासु ॥३॥

(अब पूर्ण निश्चय हुआ है कि भगवंत) स्वयं देख रहा है, बोल रहा है, सब सुन रहा है और वह सदा सगी भी है। ऐसे प्रभु को मैं मन से जपता हूँ। किन्तु यह ज्ञान मुझे सन्तों की कृपा से प्राप्त हुआ है कि वह प्रभु, जो गुणों का समुद्र है, वह सर्वस्व परिपूर्ण हो रहा है ॥३॥

कहत पवित्र सुणत पुनीत ॥
गुण गोविद गावहि नित नीत ॥
कहु नानक जा कउ होहु क्रिपाल ॥
तिसु जन की सभ पूरन घाल ॥४
॥२३॥६२॥

ऐसे प्रभु की स्तुति करने वाले (जीव) पवित्र हैं और सुनने वाले भी पवित्र हैं। सन्तजन गोबिन्द के गुण नित्य गाते हैं। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कहते हैं, जिस पर प्रभु कृपालु होता है, वह सब प्रकार से पूर्ण हो जाता है ॥४॥२३॥६२॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"सत्गुरु कौन ? और सत्गुरु की महिमा।"

बंधन तोड़ि बोलावै रामु ॥
मन महि लागै साचु धिआनु ॥
मिटहि कलेस सुखी होइ रहीऐ ॥
ऐसा दाता सतिगुरु कहीऐ ॥१॥

सत्गुरु ही जीव (मोह आदि) के बन्धन तोडकर राम (नाम) जपाता है। फिर उसके मन मे सत्य स्वरूप राम का ध्यान लगना है, उसके दुख और दर्द मिट जाते हैं और वह (ससार मे) सुखी होकर रहता है। (अत) ऐसे दाता (राम नाम देने वालो) को ही सत्गुरु कहना चाहिए ॥१॥

सो सुखदाता जि नामु जपावै ॥
करि किरपा तिसु संगि मिलावै ॥१
॥रहाउ॥

ऐसा सुख देने वाला दाता सत्गुरु ही है जो कृपा करके नाम जपाता है और परमात्मा की संगति मे मिला देता है ॥१॥ रहाउ ॥

जिसु होइ दइआलु तिसु आपि
मिलावै ॥
सरब निधान गुरू ते पावै ॥
आपु तिआगि मिटै आवण जाणा ॥
साध कै संगि पारब्रहमु पछाणा ॥
२॥

जिस पर प्रभु स्वयं दयालु होता है, उसे स्वयं सत्गुरु से मिलाता है। फिर वह सर्व प्रकार के खजाने (अर्थात् रामनाम) गुरु से प्राप्त करता है। जब साधु की सगति से परब्रह्म की पहचान होती है, तब वह जीव अहम् भाव त्याग देता है और उसका आवागमन मिट जाता है ॥२॥

जन ऊपरि प्रभ भए दइआल ॥
जन की टेक एक गोपाल ॥
एका लिव एको मनि भाउ ॥
सरब निधान जन कै हरि नाउ ॥३॥

जिन दासों पर प्रभु स्वयं दयालु होता है, वे एक गोपाल हरि पर ही अपना आश्रय रखते हैं। उनकी लौ एक में हो है और उनके मन में प्यार भी एक से ही (प्रभु) है। ऐसे दासों के (हृदय) सर्व प्रकार के खज़ाने हरि नाम ही हैं ॥३॥

पारब्रहम सिउ लागी प्रीति ॥
निरमल करणी साची रीति ॥
गुरि पूरै मेटिआ अंधिआरा ॥
नानक का प्रभु अपर अपारा ॥४॥२४॥९३॥

जिनकी प्रीति परब्रह्म परमेश्वर से लगी है, उनके जीवन की करणी भी सच्ची है और उनका (व्यवहार) रहणी भी सच्ची है। हे नानक ! पूर्ण गुरु ने ही अज्ञान रूपी अन्धकार को मिटाया है। मेरा प्रभु अपरम्पार, (हाँ) अपार है ॥४॥२४॥९३॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"पूर्ण गुरु से शिक्षा लेकर परब्रह्म परमेश्वर का ध्यान कर।"

जिसु मनि वसै तरै जनु सोइ ॥
जाकै करमि परापति होइ ॥
दूखु रोगु कछु भउ न बिआपै ॥
अंम्रित नामु रिदै हरि जापै ॥१॥

जिसके मन में (हरि नाम) बसता है, वही इस (भवसागर) से तैर जायेगा। किन्तु जिसके भाग्य में है उसको प्राप्त ही होता है। (हाँ) (जिसको प्राप्त हो जाता है उसको) दुःख रोग और भय कुछ भी नहीं लगता क्योंकि वह अमृत रूपी (हरि) नाम का हृदय में जाप करता है ॥१॥

पारब्रहमु परमेसुरु धिआईऐ ॥
गुर पूरे ते इह मति पाईऐ ॥१॥ रहाउ॥

(हे भाई !) परब्रह्म परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए किन्तु यह शिक्षा (मति) पूर्ण गुरु से ही प्राप्त होनी है ॥१॥ रहाउ ॥

करण करावनहार दइआल ।
जीअ जंत सगले प्रतिपाल ॥
अगम अगोचर सदा बेअंता ॥
सिमरि मना पूरे गुर मंता ॥२॥

(हे भाई !) प्रभु करने वाला, कराने वाला और दयालु भी है। 'वह' सभी जीव-जन्तुओं की प्रतिपालना करता है। 'वह' पहुँच से परे (अगम्य) और इन्द्रियातीत (अगोचर) है एवं सदैव अनन्त है। हे मन ! तू ऐसे प्रभु का स्मरण पूर्ण गुरु से मन्त्र (उपदेश) लेकर कर ॥२॥

जा की सेवा सरब निधानु ॥
प्रभ की पूजा पाईऐ मानु ॥

(हे भाई !) जिसकी (प्रभु) सेवा करने से सर्व पदार्थों का खजाना (प्राप्त) होता है, जिस प्रभु की पूजा करने से

जा की टहल न बिरथी जाइ ॥
सदा सदा हरि के गुण गाइ ॥३॥

सम्मान प्राप्त होता है और जिसकी मेहनत कभी भी निष्फल नही जाती, 'उस' हरि परमात्मा के सदैव गुण गाओ ॥३॥

करि किरपा प्रभ अंतरजामी ॥
सुख निधान हरि अलख सुआमी ॥
जीअ जंत तेरी सरणाई ॥
नानक नामु मिलै वडिआई ॥४॥
२५॥९४॥

हे अन्तर्यामी प्रभु ! अपनी कृपा करो। हे सुखों के खजाने ! हे हरि ! हे अलक्ष्य ! हे स्वामी ! सभी जीव जन्तु तेरे ही शरण मे हैं। (गुरुदेव बाबा) नानक को, काश ! तेरे नाम की बडाई मिले ॥४॥२५॥४९॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"प्रभु स्वयं निर्भय है और जो 'उसे' जपते हैं वे भी निर्भय हो जाते हैं।"

जीअ जुगति जा कै है हाथ ॥
सो सिमरहु अनाथ को नाथु ॥
प्रभ चिति आए सभु दुखु जाइ ॥
भै सभ बिनसहि हरि कै नाइ ॥१॥

जिसके हाथ में जीवों का प्रबन्ध(खाना, पीना, उठना, बैठना, जन्म-मरण आदि) है, 'उस' आश्रयरहित के आश्रय स्वामी का स्मरण करो। प्रभु चित्त मे आने से सभी दुख दूर हो जाते हैं और हरिनाम स्मरण करने से सभी भय नाश हो जाते हैं ॥१॥

बिनु हरि भउ काहे का मानहि ॥
हरि बिसरत काहे सुखु जानहि ॥
१॥रहाउ॥

(हे जीव !) हरि के बिना अन्य किसी का क्या भय मानना है ? हरि विस्मृत होने से तू किन (पदार्थों) में सुख समझता है ? (अर्थात् हरि के भय व स्मरण मे सुख है अन्यथा दुख ही दुख है।) ॥१॥ रहाउ ॥

जिनि धारे बहु धरणि अगास ॥
जा की जोति जीअ परगास ॥
जा की बखस न मेटै कोइ ॥
सिमरि सिमरि प्रभु निरभउ होइ ॥
२॥

जिस प्रभु ने (अपनी शक्ति से) बहुत सी धरती और आकाश धारण किये हुए हैं; जिसकी ज्योति (चेतन सत्ता) सभी जीवों में प्रकाश कर रही है, जिसकी बख्शिश को कोई भी मिटा नही सकता, उस प्रभु का तू निर्भय होकर स्मरण कर (हाँ सदा) स्मरण कर ॥२॥

आठ पहर सिमरहु प्रभ नामु ॥
अनिक तीरथ मजनु इसनानु ॥

(हे भाई !) तू आठ ही प्रहर प्रभु के नाम का स्मरण कर। (क्षण भर के लिये प्रभु नाम जपने से) अनेक तीर्थों पर स्नान करने का फल प्राप्त हो जाता है। इसलिए तू परब्रह्म की

पारब्रहम की सरणी पाहि ॥
कोटि कलंक खिन महि मिटि जाहि ॥३॥

शरण में जाकर पड तो तेरे करोड़ों पाप क्षण भर में मिट जायें ॥३॥

बे मुहताजु पूरा पातिसाहु ॥
प्रभ सेवक साचा वेसाहु ॥
गुरि पूरै राखे दे हाथ ॥
नानक पारब्रहम समराथ ॥४॥२६॥९५॥

(मेरा) प्रभु बेमुहताज(किसी पर निर्भर नही) है। 'वह' पूर्ण बादशाह है। ऐसे (समर्थ) सत्य स्वरूप परमेश्वर में सेवकों का विश्वास है। पूर्ण गुरु ने हाथ देकर (संसार सागर से) बचा लिया है। हे नानक! सत्गुरु (सर्व) समर्थ है और परब्रह्म परमेश्वर का स्वरूप है ॥४॥२६॥९५॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"हरिनाम की महिमा व फल।"

गुर परसादि नामि मनु लागा ॥
जनम जनम का सोइआ जागा ॥
अंमृत गुण उचरै प्रभ बाणी ॥
पूरे गुर की सुमति पराणी ॥१॥

(हे भाई!) गुरु की कृपा से (हरि) नाम मे मन लग गया है और जीव जो जन्म जन्मान्तरों से (अविद्या में) सोया हुआ था, वह (गुरु की कृपा से) जाग उठा है। अब वह प्रभु के गुणों की वाणी, जो अमृत (के समान मीठी) है, उच्चारण करता हूँ। हे प्राणी! यह श्रेष्ठ मत्ति मुझे पूर्ण गुरु से ही प्राप्त हुई हैं अथवा पहचानी है ॥१॥

प्रभ सिमरत कुसल सभि पाए ॥
घरि बाहरि सुख सहज सबाए ॥१॥रहाउ॥

(हे भाई!) प्रभु के स्मरण करने से मैंने सभी सुख प्राप्त किये है। मेरे हृदय में चाहे शरीर मे सहज ही सभो सुख (आकर इकट्ठे) हुए हैं ॥१॥ रहाउ।'

सोई पछाता जिनहि उपाइआ ॥
करि किरपा प्रभि आपि मिलाइआ ॥
बाह पकरि लीनो करि अपना ॥
हरि हरि कथा सदा जपु जपना ॥२॥

(हे भाई!) जिस प्रभु ने यह जगत उत्पन्न किया है, 'उसे' मैं पहचानता हूँ, क्योंकि प्रभु ने स्वय कृपा करके मुझे अपने साथ मिला लिया है। मेरी बाँह पकडकर प्रभु ने मुझे अपना कर लिया है (अर्थात् प्रभु ने मेरी बुद्धि को खीच कर अपनी ओर कर लिया है।) अब मैं सर्व दुखो के हरण करने वाले हरि की कथा का जाप सदा जपता हूँ ॥२॥

मंत्रु तंत्रु अउखधु पुनहचारु ॥
हरि हरि नामु जीअ प्रान अधारु ॥

(हे भाई!) हरि, (हाँ) हरिनाम ही मेरे लिए मन्त्र, तन्त्र, औषध, प्रायश्चित आदि कर्म और मेरे जीवात्मा तथा प्राणों का

साचा धनु पाइओ हरि रंगि ॥
दुतरु तरे साध कै संगि ॥३॥

आधार है। हरि का प्रेम जो सच्चा धन है, वह मैंने प्राप्त किया हैं और साधु जनो की सगति करने से मैं दुष्कर (भव सागर) से पार हुआ हूँ ॥३॥

सुखि बैसहु संत सजन परवारु ॥
हरि धनु खटिआ जा का नाहि सुमारु ॥
जिसहि परापति तिसु गुरु देइ ॥
नानक बिरथा कोइ न हेइ ॥४॥२७॥९६॥

हे सन्त जनों! हे सज्जनों! हे कुटुम्ब परिवार वालो! अब तुम सब सुखपूर्वक बैठो क्योंकि मैंने हरिनाम (खटिआ) रूपी धन प्राप्त किया है जिसका कोई अन्त नही है। जिस जीव को गुरु प्राप्त होता है, उसे वह हरि नाम देता है। हे नानक! गुरु के पास से कोई खाली नही आता है ॥४॥२७॥९६॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"परमेश्वर के बारम्बार स्मरण करने से लाभ ही लाभ।"

हसत पुनीत होहि ततकाल ॥
बिनसि जाहि माइआ जंजाल ॥
रसना रमहु रामगुण नीत ॥
सुखु पावहु मेरे भाई मीत ॥१॥

(हे भाई!) (परमेश्वर और गुरु की सेवा करने से) हाथ तत्क्षण पवित्र हो जाते हैं और माया के बन्धन नाश हो जाते हैं। हे मेरे भाई! हे मित्र! रसना से राम के गुण नित्य गायन करो तो सुख प्राप्त हो ॥१॥

लिखु लेखणि कागदि मसवाणी ॥
राम नाम हरि अंमृत बाणी ॥१॥ रहाउ॥

(हे भाई!) हरि राम नाम की जो अमृत रूप बाणी है, वह लेखनी कागज और दवात लेकर लिखो ॥१॥ रहाउ ॥

इह कारजि तेरे जाहि बिकार ॥
सिमरत राम नाही जम मार ॥
धरम राइ के दूत न जोहै ॥
माइआ मगन न कछूऐ मोहै ॥२॥

इस काम को करने से (अर्थात् हरि नाम लिखने से) तुम्हारे (कामादि) विकार दूर हो जायेंगे और राम (नाम) का स्मरण करने से यम की मार भी नही पड़ेगी। (हे भाई!) धर्म राजा के दूत भी तेरी और आँख उठाकर (मारने के विचार से) नही देखेंगे तथा माया में भी मग्न नही होगा क्योंकि वह (माया) तुझे कुछ भी मोहित नही कर सकेगी ॥२॥

उधरहि आपि तरै संसारु ॥
राम नाम जपि एकंकारु ॥

(हे भाई!) तब भगवंत के राम नाम का जाप करने से तू तो पार हो जायेगा लेकिन तेरे द्वारा सारा संसार भी (नाम

आपि कमाउ अवरा उपदेस ।।
रामनाम हिरदै परवेस ।।३।।

जपकर) पार हो जायेगा। (हाँ) जब राम नाम का निवास तेरे हृदय में हुआ है तो तू नाम की कमाई कर और दूसरों को भी (नाम का) उपदेश दे (कमाई करा) ।।३।।

जा कै माथै एहु निधानु ।।
सोई पुरखु जपै भगवानु ।।
आठ पहर हरि हरि गुण गाउ ।।
कहु नानक हउ तिसु बलि जाउ ।।
४।।२८।।९७।।

किन्तु भगवान का वही पुरुष जाप करता है, जिसके मस्तक पर इस अमूल्य वस्तु का लेख लिखा हुआ होता है। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कहते हैं कि जो पुरुष आठ ही प्रहर, हरि (हाँ) हरि (नाम) के गुण गाता है, उस के ऊपर मैं बलिहारी जाता हूँ ।।४।।२८।।९७।।

रागु गउड़ी गुआरेरी महला ५ चउपदे दुपदे ।।

"परमात्मा से जो विमुख हैं उनकी मत्ति उलटी है।"

जो पराइओ सोई अपना ।।
जो तजि छोडन तिसु सिउ मनु रचना ।।१।।

(हे भाई!) यह शरीर जो पराया है (अर्थात् काल का आहार है) उसे हम अपना मान कर बैठे हैं और जिनको छोड देना है (अर्थात् स्त्री, पुत्र, धनादि) उनके साथ मन रचा हुआ है ।।१।।

कहहु गुसाई मिलीऐ केह ।।
जो बिबरजत तिस सिउ नेह ।।१।। रहाउ।।

(हे भाई!) बताओ, कैसे 'वह' स्वामी मिल सकेगा? जब कि हेय वस्तु (अर्थात् छोड़ने योग्य अथवा निषिद्ध) के साथ हमारा मोह है ।।१।। रहाउ ।।

झूठु बात सा सचु करि जाती ॥
सति होवनु मनि लगै न राती ॥२॥

जो बात झूठ (अर्थात् नाशवान) है उसे सत्य (अर्थात् स्थिर) करके समझा है और जो सत्य है उससे हमारा मन रत्ती भर भी नहीं लगता (अर्थात् मृत्यु जो अवश्य भावी है उसका स्मरण नहीं करते) ॥२॥

बावै मारगु टेढा चलना ॥
सीधा छोडि अपूठा बुनना ॥३॥

दायीं ओर न चलकर हम बायीं ओर चलते हैं (बायीं ओर को बुरा कहा है) ओर टेढ़ा चलते हैं (टेढ़े मार्ग पर) सीधा मार्ग छोड़कर हम विपरीत मार्ग पर चलते हैं ॥३॥

दुहा सिरिआ का खसमु प्रभु सोई ॥
जिसु मेले नानक सो मुकता होई ॥
४॥२६॥६८॥

दोनों ओर का (अर्थात् गुरमुखों चाहे मनमुखों को) चलाने वाला वही एक खसम प्रभु है। हे नानक ! 'वह' जिसको अपने साथ मिलाता है, वही मुक्त होता है ॥४॥२६॥६८॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"सती-साध्वी कौन ?"

कलिजुग महि मिलि आए संजोग ॥
जिचरु आगिआ तिचरु भोगहि भोग ॥१॥

कलियुग में (स्त्री व पुरुष) कर्मों के संयोग से आकर मिले हैं। जितना समय 'उसकी' आज्ञा होती है, उतना समय वे भोग भोगते हैं ॥१॥

जलै न पाईऐ राम सनेही ॥
किरति संजोगि सती उठि होई ॥
१॥ रहाउ॥

हे भाई ! (अग्नि मे) जलने से (यथा सती होने से) वह अपने स्नेही राम (पति) को नही प्राप्त करेगी। (हाँ) किये कर्मों ओर सयोगानुसार सती यहाँ से उठकर चल देती है ॥१॥ रहाउ॥

देखा देखी मन हठि जलि जाईऐ ॥
प्रिअ संगु न पावै बहु जोनि
भवाईऐ ॥२॥

वह देखा देखी और मन के हठ के कारण अपने को जलाती है। वह प्रियतम की संगति नहीं प्राप्त करती, अपितु (आत्म घात के कारण और प्रभु के हुक्म के विरुद्ध चलकर) बहुत योनियों में भटकती है ॥२॥

सील सजमि प्रिअ आगिआ मानै ॥
तिसु नारी कउ दुखु न जमानै ॥३॥

किन्तु जो स्त्री पतिव्रता धर्म वाली और मन और इन्द्रियों को रोकने वाली है तथा पति की आज्ञा मानने वाली है, उस स्त्री को किसी भी समय कोई भी दुःख नहीं है अथवा यमों का दुःख नही है ॥३॥

कहु नानक जिनि प्रिउ परमेसरु करि जानिआ ॥
धंनु सती दरगह परवानिआ ॥४॥३०॥९९॥

कहते हैं (गुरुदेव बाबा) नानक जो स्त्री अपने पति को परमेश्वर रूप समझती है, वह धन्य सती है, वह दरबार में अवश्य स्वीकृत होगी ॥४॥३०॥९९॥

गउड़ी गुआरेरी महला ५॥

"धनी वे हैं जो हरिनाम खजाने को पाते हैं।"

हम धनवंत भागठ सच नाइ ॥
हरिगुण गावह सहजि सुभाइ ॥१॥ रहाउ॥

(हे भाई!) सच्चे नाम से हम धनी हैं, भाग्यवान हैं और अब सहज स्वभाव ही हरि के गुण गाते हैं ॥१॥ रहाउ॥

पीऊ दादे का खोलि डिठा खजाना ॥
ता मेरै मनि भइआ निधाना ॥१॥

हमने अपने पूर्वजो की, जैसे पहले गुरुओं की वाणी का खजाना खोल कर देखा है इसलिए मेरे मन में एक अमूल्य निधि का घर (आत्मानन्द रूप खजाना) प्राप्त हुआ है ॥१॥

रतन लाल जा का कछू न मोलु ॥
भरे भंडार अखूट अतोल ॥२॥

(हे भाई!) इस पोथी मे नाम रूपी रत्न और अमूल्य रत्नों के भण्डार भरे हुए हैं जिनका कोई भी मूल्य पड नहीं सकता। वे कभी भी समाप्त न होने वाले (भण्डार) है और अतुल्य हैं ॥२।

खावहि खरचहि रलि मिलि भाई ॥
तोटि न आवै वधदो जाई ॥३॥

हे भाई! आओ, तो नाम रूपी धन का परस्पर मिलकर उपयोग करे और खर्च करें। यह धन कम होने का नही अपितु वह तो सदैव बढता ही रहता है ॥३॥

कहु नानक जिसु मसतकि लेखु लिखाइ ॥
सु एतु खजानै लइआ रलाइ ॥४॥३१॥१००॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि जिसके मस्तक पर श्रेष्ठ लेख लिखा हुआ है, वही उत्तम पुरुष उसे खजाने में मिला दिया जायेगा (अर्थात् उसी का मन वाणी के भण्डार की ओर आकर्षित होगा) ॥४॥३१॥१००॥

गउड़ी महला ५॥

"यदि चाहते हो सदा सुख तो स्मरण कर हरि का।"

डरि डरि मरते जब जानीऐ दूरि ॥
डरु चूका देखिआ भरपूरि ॥१॥

(हे भाई !) जब हरि को अपने से दूर समझ रहे थे, तब डर डर कर मरते थे, मन ने जब 'उसे' परिपूर्ण देखा तो डर दूर हो गया (क्योकि वह' हमे अवश्य अब हाथ देखकर रखेगा)॥ १॥

सतिगुर अपने कउ बलिहारै ॥
छोडि न जाई सरपर तारै ॥१॥ रहाउ॥

(हे भाई !)अपने सत्गुरु पर बलिहारी जाना चाहिए क्योंकि वह कभी भी नहीं छोडकर जायेगा और अवश्य वह हमें (भवसागर से) पार उतारेगा ॥१॥ रहाउ ॥

दूखु रोगु सोगु बिसरै जब नामु ॥
सदा अनंदु जा हरिगुण गामु ॥२॥

(हे भाई !) दु:ख, रोग व शोक तब लगते हैं जब (हरि) नाम विस्मृत होता है, किन्तु जब हरि के गुण गाते हैं तो सदैव आनन्द रहता है ॥२॥

बुरा भला कोई न कहीजै ॥
छोडि मानु हरि चरन गहीजै ॥३॥

(इसलिए हे भाई !) किसी को बुरा अथवा भला नहीं कहना चाहिए(क्योंकि सभी मे 'वही' परिपूर्ण हो रहा है), अपितु अभिमान का परित्याग करके हरि के चरणों को पकडना चाहिये ॥३॥

कहु नानक गुरमंत्रु चितारि ॥
सुखु पावहि साचै दरबारि ॥४॥ ३२॥१०१॥

कहते हैं(मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि गुरु के मन्त्र(हरि नाम के उपदेश) का स्मरण कर फिर तू सच्ची दरबार मे सुख प्राप्त करेगा ॥४॥३२॥१०१॥

गउड़ी महला ५॥

"भक्तो को एक मात्र प्रभु की ही परवाह है।"

जाका मीतु साजनु है समीआ ॥
तिसु जन कउ कहु का का कमीआ ॥१॥

जिस (प्राणी) का मित्र और साजन समव्यापक प्रभु है, कहो उस दास को किस बात की कमी है ? (अर्थात कमी नही है) ॥१॥

जाकी प्रीति गोबिंद सिउ लागी ॥
दूखु दरदु भ्रमु ता की भागी ॥१॥ रहाउ॥

जिसकी प्रीति गोबिन्द (हरि) के साथ लगी है, उसके दु:ख, दर्द और भ्रम सब भाग जाते हैं ॥१॥ रहाउ ॥

जा कउ रसु हरि रसु है आइओ ॥
सो अन रस नाही लपटाइओ ॥२॥

जिसको रस, (हाँ) हरि का रस होकर आया है, वह (संसार के) अन्य रसो में नही लपटता ॥२॥

जा का कहिआ दरगह चलै ॥
सो किस कउ नदरि लै आवै तलै ॥ ३॥

जिसका कहा हुआ वचन प्रभु के दरबार में चलता है (अर्थात् माना जाता है), वह अपनी दृष्टि के नीचे किसको ले आता है? (अर्थात् किसी की परवाह नहीं करता) ॥३॥

जा का सभु किछु ता का होइ ॥
नानक ता कउ सदा सुखु होइ ॥ ४॥३३॥१०२॥

जिस (गोविन्द) का यह सब कुछ है, जो 'उसका' हो जाता है, हे नानक! उसे सदा सुख (प्राप्त) होता है ॥४॥३३॥१०२॥

गउड़ी महला ५॥

"भक्तजनों को ही सहज आनन्द प्राप्त है होता।"

जा कै दुखु सुखु सम करि जापै ॥
ता कउ काड़ा कहा बिआपै ॥१॥

(हे भाई!) जिस (गुरमुख) को दुःख और सुख एक-जैसा लगता है, उसे शोक (या चिन्ता) क्यों लगेगा? ॥१॥

सहज अनंद हरि साधू माहि ॥
आगिआकारी हरि हरि राइ ॥१॥ रहाउ॥

(हे भाई!) जो हरि, (हाँ) हरि राजा का आज्ञाकारी है, वह हरि का साधु सहज ही आनन्द मे होता है ॥१॥ रहाउ ॥

जा कै अचिंतु वसै मनि आइ ॥
ता कउ चिंता कतहूं नाहि ॥२॥

जिसके मन में अचिन्त हरि आकर बसता है, उसे कदाचित कोई भी चिन्ता नही लगती ॥२॥

जा कै बिनसिओ मन ते भरमा ॥
ता कै कछू नाही डरु जमा ॥३॥

जिसके मन से भ्रम नाश हो गया है, उसे यम का डर कुछ भी नही लगता ॥३॥

जा कै हिरदै दीओ गुरि नामा ॥
कहु नानक ता कै सगल निधाना ॥ ४॥३४॥१०३॥

जिसके हृदय मे गुरु ने नाम दिया है, कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि उसे सकल निधियों का भण्डार प्राप्त हुआ (जानो) ॥४॥३४॥१०३॥

गउड़ी महला ५॥

"सत्सग की महिमा।"

अगम रूप का मन महि थाना ॥
गुर प्रसादि किनै विरलै जाना ॥१॥

(हे भाई!) जिस प्रभु का अगम्य रूप है 'उसका' ठिकाना (मनुष्य के) मन में ही है, किन्तु गुरु की कृपा से कोई विरला ही (इस रहस्य को) जानता है ॥१॥

सहज [illegible] के अमृत कुंटा ॥
जिसहि वरापति तिसु लै मुंचा ॥१ रहाउ॥

परमात्मा की सहज (ज्ञान, शान्त) रूप कथा [illegible] है (अर्थात् अमर करने वाली है),सन्त जन उसी का कुण्ड अर्थात् ताल है। किन्तु (हरि नाम की अमृत कथा) जिसे प्राप्त होती है, वही पीता है॥१॥ रहाउ॥

अनहत बानी थानु निराला ॥
ता की धुनि मोहे गोपाला ॥२॥

(हे भाई !)(सन्तजनों की) वाणी अनाहत है(अर्थात् जो नाश न हो) और उसका स्थान(अर्थात् सत्संग) भी निराला है। (सन्तों के शब्द की) उस ध्वनि से गोपाल भी मोहित हो जाता है॥२॥

तह सहज अखारे अनेक अनंता ॥
पारब्रहम के संगी संता ॥३॥

वहाँ (अर्थात् सन्त सभा में) सहजावस्था वालों के कई संगम-स्थान हैं (अर्थात् प्रभु की कथाएँ और कीर्तन होते हैं) और सन्त परब्रह्म के ही संगी हैं॥३॥

हरख अनंत सोग नही बीआ ॥
सो घरु गुरि नानक कउ दीआ ॥४॥३५॥१०४॥

वहाँ अनन्त खुशियाँ हैं, शोक कलेश तक नहीं। वह स्थान गुरु ने नानक को प्रदान किया है (अर्थात् वह सत्संग रूपी घर गुरु रामदास साहब ने गुरु अर्जन देव को दिया है।)॥४॥३५॥१०४॥

गउड़ी महला ५॥

"सत्गुरु के बिना जीव का गुजारा नही है।"

कवन रूपु तेरा आराधउ ॥
कवन जोग काइआ ले साधउ ॥१॥

(प्रश्न .) (हे प्रभु ! तेरे अनेक रूप हैं) मैं किस रूप की आराधना करूँ? (हे हरि !) मैं कौन सा योग (कर्म) करूँ जिससे इस देही को वश करूँ?॥१॥

कवन गुनु जो तुझु लै गावउ ॥
कवन बोल पारब्रहम रीझावउ ॥१॥रहाउ॥

(प्रश्न) (हे स्वामी !) वह कौन सा गुण है जो लेकर मैं तेरा यश गायन करूँ और वह कौन सा बोल है, जिससे मैं तुझ परब्रह्म को रीझा सकूँ?॥१॥ रहाउ॥

कवन सु पूजा तेरी करउ ॥
कवन सु बिधि जितु भवजल तरउ ॥२॥

(प्रश्न :)(हे प्रभु !)तेरी कौन सी पूजा करूँ? वह कौन उपाय है जिससे संसार-सागर से पार होऊँ?॥२॥

कवन तपु जितु तपीआ होइ ॥
कवन सु नामु हउमै मलु खोइ ॥३॥

(प्रश्न .) (हे भगवंत् !)वह कौन सा तप है, जिससे मैं तपस्वी होऊँ? वह कौन सा नाम है, जिस (नाम का जाप करने) से हौमैं की मैल दूर करूँ?॥३॥

गुण पूजा गिआन धिआन
नानक सगल घाल ॥
जिसु करि किरपा
सतिगुरु मिलै दइआल ॥४॥

(उत्तर :) हे नानक ! (श्रेष्ठ) गुण, पूजा, ज्ञान, ध्यान और सब कमाई के फल उसी को प्राप्त होते हैं जिसको दयालु सत्गुरु 'उसकी' कृपा से मिलता है ॥४॥

तिस ही गुनु तिन ही प्रभु जाता ॥
जिस की मानि लेइ सुखदाता ॥१॥
रहाउ दूजा ॥३६॥१०५॥

(हाँ) ऐसा जीव ही गुण धारण करता है और प्रभु को जानता है तथा उसे ही सुखो के दाता हरि मान लेता है ॥१॥ रहाउ दूजा ॥३६॥ ०५॥

गउड़ी महला ५॥

"नाम के बिना अन्य कोई सगी साथी नहीं है।"

आपन तनु नही जा को गरबा ॥
राज मिलख नही आपन दरबा ॥
१॥

(हे भाई !) जिस शरीर का हम अभिमान करते हैं, वह अपना नहीं है (वह तो काल का भोजन (भक्षय है।) (राज्य,) मलकीयत और धन भी अपने नहीं हैं ॥१॥

आपन नही का कउ लपटाइओ ॥
आपन नामु सतिगुर ते पाइओ ॥१
॥रहाउ॥

यदि ये अपने नही तो फिर जीव क्यो इन के साथ चिपटा हुआ है ? वास्तव में अपना है तो केवल 'नाम', जो सत्गुरु (की कृपा)से मिलता है ॥१॥रहाउ॥

सुत बनिता आपन नही भाई ॥
इसट मीत आप बापु न माई ॥२॥

जैसे पुत्र, स्त्री और भाई अपने नही है, वैसे प्यारे मित्र, पिता और माता भी अपने नही हैं ॥२॥

सुइना रूपा फुनि नही दाम ॥
हैवर गैवर आपन नही काम ॥३॥

स्वर्ण, चाँदी और रुपये भी अपने नहीं हैं और सुन्दर घोडे और अच्छे हाथी भी हमारे किसी भी काम के नहीं हैं ॥३॥

कहु नानक जो गुरि बखसि
मिलाइआ ॥
तिस का सभु किछु जिस का हरि
राइआ ॥४॥३७॥१०६॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि जिसको सत्गुरु बख्शिश करके (हरि से) मिलाता है, उसका सब कुछ है। तथा जिसका हरि राजा (अपना हो गया) है ॥४॥३७॥१०६॥

गउड़ी महला ५॥

"गुरु की अनन्त महिमा।"

गुर के चरण ऊपरि मेरे माथे ॥
ता ते दुख मेरे सगले लाथे ॥१॥

(हे भाई !) गुरु के चरण मेरे माथे पर (लगा रहे) हैं, जिससे मेरे सकल दुःख दूर हो गये हैं ॥१॥

सतिगुर अपुने कउ कुरबानी ॥
आतम चीनि परम रंग मानी ॥१ ॥रहाउ॥

(हे भाई !) मैं अपने गुरु पर कुर्बान जाता हूँ, जिसकी कृपा से अपने स्वरूप को जानकर परमानन्द का अनुभव किया है ॥१ ॥रहाउ॥

चरण रेणु गुर की मुखि लागी ॥
अहंबुधि तिनि सगल तिआगि ॥२॥

(हे भाई !) जिसके मुख पर गुरु के चरणों की धूलि लगी है, उसने अहंकार वाली बुद्धि सारी त्याग दी है ॥२॥

गुर का सबदु लगो मनि मीठा ॥
पारब्रहमु ता ते मोहि डीठा ॥३॥

(हे भाई !) गुरु का शब्द मेरे मन को मीठा (प्रिय) लगा है, जिससे मैंने परमात्मा को ही देखा है ॥३॥

गुर सुखदाता गुरु करतारु ॥
जीअ प्राण नानक गुरु आधारु ॥४ ॥३८॥१०७॥

(हे भाई !) गुरु सुखों का दाता है और गुरु ही कर्त्ता हैं; हे नानक ! गुरु ही जीवों के प्राणों का आधार है ॥४॥३८॥ १०७॥

गउड़ी महला ५॥

"परमेश्वर का स्मरण कर तो सुखी होगा।"

रे मन मेरे तूं ता कउ आहि ॥
जाकै ऊणा कछहू नाही ॥१॥

हे मेरे मन ! तू 'उसकी' इच्छा कर जिसके (घर मे किसी भी वस्तु की) कुछ कमी नही हैं ॥१॥

हरि सा प्रीतमु करि मन मीत ॥
प्रान अधारु राखहु सदचीत ॥१॥ रहाउ॥

हे मेरे मित्र ! हरि जैसा प्रियतम तू कर और सदैव 'उसे' चित्त मे रख क्योकि 'वह' तेरे प्राणों का आधार है ॥१॥रहाउ॥

रे मन मेरे तूं ता कउ सेवि ॥
आदि पुरख अपरंपर देव ॥२॥

हे मेरे मन ! तू 'उसकी' सेवा कर, जो (सबका) आदि है, परिपूर्ण पुरुष है, अपार और ज्योति स्वरूप है ॥२॥

तिसु ऊपरि मन करि तूं आसा ॥
आदि जुगादि जा का भरवासा ॥
३॥

हे मन ! तू 'उसीके' ऊपर आशा रख जिसका आदि काल से और युगों से पहले भरोसा है ॥३॥

जा की प्रीति सदा सुखु होइ ॥
नानकु गावै गुर मिलि सोइ ॥४॥
३६॥१०८॥

जिसकी प्रीति से सदैव सुख होता है, (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक गुरु से मिलकर 'उसके' गुण गा रहा है ॥४॥३६॥१०८॥

गउड़ी महला ५॥

"प्रभु ही मित्र है जिसकी टेक हमें लेनी चाहिए।"

मीतु करै सोई हम माना ॥
मीत के करतब कुसल समाना ॥१॥

प्रभु मित्र जो कुछ करता है उसे हम (स्वीकार कर लेते हैं) मान लेते है, क्योकि मेरे मित्र के कार्य कुशल समान (अर्थात सुखप्रद) हैं ॥१॥

एका टेक मेरै मनि चीत ॥
जिसु किछु करणा सु हमरा मीत ॥
१॥रहाउ॥

मेरे मन में,(हाँ) मेरे चित्त में 'उस' एक की टेक है। जिसने मेरा सब कुछ करना है वही हमारा मित्र है ॥१॥रहाउ॥

मीतु हमारा वेपरवाहा ॥
गुर किरपा ते मोहि असनाहा ॥२॥

हमारा मित्र तो बेपरवाह है किन्तु गुरु की कृपा 'उसे' मैंने स्नेह किया है या मित्र बनाया है ॥२॥

मीतु हमारा अंतरजामी ॥
समरथ पुरखु पारब्रहमु सुआमी ॥
३॥

हमारा मित्र अन्तर्यामी है, समर्थ पुरुष है, परब्रह्म है और स्वामी भी है ॥३॥

हम दासे तुम ठाकुर मेरे ॥
मानु महतु नानक प्रभु तेरे ॥४॥
४०॥१०९॥

हे प्रभु ! तुम मेरे ठाकुर हो और मैं हूँ तुम्हारा दास। हे नानक ! जो सम्मान और महत्त्व प्राप्त हुआ है, वह (सब) तेरा (ही दिया हुआ) है ॥४॥४०॥१०९॥

गउड़ी महला ५॥

"प्रभु मिला तो सब कुछ मिला ।"

जा कउ तुम भए समरथ अंगा ॥
ता कउ कछु नाही कालंगा ॥१॥

हे समर्थ (माधव) ! जिसका तू सहायक है, उसे कोई भी कलंक नहीं लग सकता (अर्थात वह सभी बुराइयों से निसंग रहता है) ॥१॥

माधउ जा कउ है आस तुमारी ॥
ता कउ कछु नाही संसारी ॥१॥ रहाउ॥

हे माधव (मा=माया) का धव (पति=विष्णु) ! जिसको तुम्हारी आशा है, उसकी दृष्टि में संसारी जीव कुछ भी नही हैं (अर्थात वे इसको कुछ भी हानि नही पहुँचा सकते। उसका निश्चय केवल तेरे मे ही है।) ॥१॥रहाउ॥

जा कै हिरदै ठाकुरु होइ ॥
ता कउ सहसा नाही कोइ ॥२॥

हे ठाकुर ! जिसके हृदय में तू (बस रहा) है, उसको कोई भी संशय (भ्रम) नही है ॥२॥

जा कउ तुम दीनी प्रभ धीर॥
ता कै निकटि न आवै पीर ॥३॥

हे प्रभु ! जिसको तुमने धैर्य दिया है, उसके निकट पीडा नही आती ॥३॥

कहु नानक मै सो गुरु पाइआ ॥
पारब्रहम पूरन देखाइआ ॥४॥ ४१॥११०॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि मैंने वह गुरु पाया है, जिसने तुझ परब्रह्म (माधव) को (सभी में) पूर्ण दिखाया है ॥४॥ ४१॥११०॥

गउड़ी महला ५॥

"मनुष्य जन्म दुर्लभ है, उसे व्यर्थ में न गवाओ।"

दुलभ देह पाई वडभागी ॥
नामु न जपहि ते आतमघाती ॥१॥

(हे भाई !) यह मनुष्य देही दुर्लभ है, वह उत्तम भाग्यों से प्राप्त होती है। मनुष्य देही प्राप्त करके जो जीव नाम नहीं जपते वे (अपनी) आत्मा के घातक (मारने वाले) हैं ॥१॥

मरि न जाही जिना बिसरत राम ॥
नाम बिहून जीवन कउन काम ॥१ ॥रहाउ॥

हे भाई ! वे मर क्यों नही जाते जिन्होंने राम को विस्मृत किया है। नाम के बिना जीवन किस काम का ?॥१॥रहाउ॥

खात पीत खेलत हसत बिसथार ॥
कवन अरथ मिरतक सीगार ॥२॥

(नाम के बिना जो हम) खाते हैं, पीते हैं, खेलते हैं, हसते हैं और खुशियों के विस्तार करते हैं। किन्तु ये सब किस काम के हैं ? (हाँ) मृतक शृंगार है (अर्थात व्यर्थ है) ॥२॥

जो न सुनहि जसु परमानंदा ॥
पसु पंखी त्रिगद जोनि ते मंदा ॥३॥

(हे भाई !) जो(जीव) परमानन्द रूप प्रभु का यश नहीं सुनते वे पशु, पंखी और सर्प आदि (नीच जन्तुओं) से भी बुरे हैं ।३॥

कहु नानक गुरि मंत्रु द्रिड़ाइआ ॥
केवल नामु रिद माही समाइआ ॥
४॥४२॥१११॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि गुरु ने (नाम का) मंत्र दृढ़ करवा दिया है, अब केवल नाम ही मेरे हृदय में समाया रहता है ॥४॥४२॥१११॥

गउड़ी महला ५॥

"शारीरिक सम्बन्ध झूठे हैं, सत्य केवल जीवात्मा है।"

का की माई का को बाप ॥
नाम धारीक झूठे सभि साक ॥

हे भाई ! किसकी है माता और किसका है पिता ? ये सब रिश्ते (सम्बन्ध) केवल नाम मात्र ही हैं एवं झूठे हैं ॥१॥

काहे कउ मूरख भखलाइआ ॥
मिलि संजोगि हुकमि तूं आइआ ॥
१॥रहाउ॥

हे मूर्ख ! तू किस लिए बकवास करता है। ईश्वरीय आज्ञानुसार तू आया है और तेरा सयोग हुआ है। १॥रहाउ॥

एका माटी एका जोति ॥
एको पवनु कहा कउनु रोति ॥२॥

(हे भाई ! विचार करके देख सब जीवो में) एक मिट्टी है और एक ज्योति (जीवन सत्ता) है और एक ही प्राणकर्ता है। (अब बताओ मृत्यु कौन सी वस्तु की हुई ?) कौन किसको रोता है ? ॥१॥रहाउ॥

मेरा मेरा करि बिललाही ॥
मरणहारु इहु जीअरा नाही ॥३॥

(हे भाई ! तू बिना विचार के) मेरा मेरा करके विलाप करता है, किन्तु यह जीवात्मा तो मरने का नही ॥३॥

कहु नानक गुरि खोले कपाट ॥
मुकतु भए बिनसे भ्रम थाट ॥४
॥४३॥११२॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक जिनके अविद्या रूपी पर्दे गुरु ने खोले हैं, उनके सब भ्रम तथा आडम्बर (बनावटें) नाश हो गये हैं और वे मुक्त हुए हैं ॥४॥४३॥११२॥

गउड़ी महला ५॥

"सचमुच बड़े कौन हैं ?"

वडे वडे जो दीसहि लोग॥
तिन कउ बिआपै चिंता रोग ॥१॥

(हे भाई !) (दुनिया मे) जो बड़े-बड़े लोग दिखते हैं, उनको चिन्ता का रोग लगा हुआ है ॥१॥

कोऊ न बडा माइआ वडिआई ॥
सो वडा जिनि राम लिव लाई ॥
१॥रहाउ॥

माया के कारण मिली बड़ाई से कौन बड़ा है ? (अर्थात कोई बड़ा नही)। वास्तव में वही बड़ा है जिसकी लौ राम के साथ लगी है ॥१॥रहाउ॥

भूमिआ भूमि ऊपरि नित लुझै
छोडि चलै तृसना नही बुझै ॥२॥

जमीदार (भूमीपति) और अधिक जमीनों के लिए दूसरों से झगडता है। अन्तत (जमीने यहाँ) छोड़कर जाना पड़ता है किन्तु उसकी तृष्णा नही मिटती (शान्त होती) ॥२॥

कहु नानक इहु ततु बीचारा ॥
बिनु हरि भजन नाही छुटकारा ॥
३॥४४॥११३॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि हमने सिद्धान्त की यह बात विचार की है कि हरि के भजन के बिना (तृष्णा से) छुटकारा नही होता ॥३॥४४॥११३॥

गउड़ी महला ५॥

"हरिनाम ही सब उपायों से उत्तम है।"

पूरा मारगु पूरा इसनानु ॥
सभु किछु पूरा हिरदै नामु ॥१॥

(हे भाई !) जिसके हृदय में नाम है, वह (हरि) मार्ग में पूर्ण (सफल) है, उसका (तीर्थ) स्नान पूर्ण हुआ है, (हाँ) उसके सब कर्म (व्रत, दान यज्ञादि) पूर्ण हुए हैं (अर्थात जिसने नाम का जाप किया है उसने सब कुछ किया) ॥१॥

पूरी रही जा पूरै राखी ॥
पारब्रहम की सरणि जन ताकी ॥१
॥रहाउ॥

(हे भाई !)प्रतिष्ठा पूर्ण रह गयी यदि 'उस' पूर्ण हरि ने(मेरी) रख ली। ऐसे दास ने एक परब्रह्म परमेश्वर की ही शरण ढूँढी है ॥१॥रहाउ॥

पूरा सुखु पूरा संतोखु ॥
करै तपु पूरन राजु जोगु ॥२॥

(हे भाई !) (ऐसे दास को) पूर्ण (आत्मा) सुख और पूर्ण सन्तोष प्राप्त हुआ है क्योंकि उसका तप पूर्ण है और राज योग भी पूर्ण है ॥२॥

हरि कै मारगि पतित पुनीत ॥
पूरी सोभा पूरा लोकीक ॥३॥

हे भाई ! हरि मार्ग पर चलते हुए पापी भी पवित्र हो जाते हैं। उनकी शोभा भी पूर्ण (अच्छी) होती है और उनका लौकिक जीवन भी पूर्ण रूप से सफल होता है ॥३॥

करणहारु सद वसै हदूरा ॥
कहु नानक मेरा सतिगुरु पूरा ॥४
॥४५॥११४॥

ऐसा दास करणहार परमात्मा को सदा अपने प्रत्यक्ष बसता हुआ देखता है। कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि मेरा सत्गुरु पूर्ण सर्व कला समर्थ है ॥४॥४५॥११४॥

गउड़ी महला ५॥

"सन्तों के चरण-धूलि की महिमा ॥"

संत की धूरि मिटे अघ कोट ॥
संत प्रसादि जनम मरण ते छोट ॥ १॥

(हे भाई !) सन्तों सन्तजनों के चरणों की धूलि प्राप्त करने से करोड़ों पाप नाश हो जाते हैं। सन्तों की कृपा से जन्म-मरण से छुटकारा हो जाता है ॥१॥

संत का दरसु पूरन इसनानु ॥
संत कृपा ते जपीऐ नामु ॥१॥ रहाउ॥

(हे भाई !) सन्तजनो का दर्शन ही पूर्ण स्नान है, क्योंकि अविद्या रूपी मैल सन्तो के दर्शन करने से उतर जाती है) । सन्तों की कृपा से ही नाम का जाप होता है ॥१॥रहाउ॥

संत कै संगि मिटिआ अहंकारु ॥
वृसटि आवै सभु एकंकारु ॥२॥

(हे भाई !) सन्तों की संगति से अहंकार नाश हो जाता है और सर्वत्र एक ओकार स्वरूप परमात्मा ही दीखता है ॥२॥

संत सुप्रसंन आए वसि पंचा ॥
अंमृतु नामु रिदै लै संचा ॥३॥

(हे भाई !) सन्त जब अच्छी तरह प्रसन्न होते हैं, तो (काम, क्रोधादि विकार) वश हो जाते हैं और हृदय में अमृत रूपी नाम का संचय होता है ॥३॥

कहु नानक जा का पूरा करम ॥
तिसु भेटे साधू के चरन ॥४॥४६ ॥११५॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि जिसके पूर्ण भाग्य हैं, उसने साधु के चरण स्पर्श किये हैं ॥४॥४६॥११५॥

गउड़ी महला ५॥

"साधुजनों की संगति में नाम प्राप्त होता है।"

हरि गुण जपत कमलु परगासै ॥
हरि सिमरत त्रास सभ नासै ॥१॥

(हे भाई !) हरि के गुण जपने से हृदय रूपी कमल विकसित होता है। हरि का स्मरण करने से सब भय नाश होते हैं ॥१॥

सा मति पूरि जितु हरि गुण गावै ॥
वडै भागि साधू संगु पावै ॥१॥ रहाउ॥

(हे भाई !) वही मत्ति (शिक्षा) पूर्ण (ठीक) है, जिस द्वारा हरि के गुण गाते हैं। बड़े भाग्यो के कारण साधु की संगति प्राप्त होती है ॥१॥ रहाउ ॥

साध संगि पाईऐ निधि नामा ॥
साध संगि पूरन सभि कामा ॥२॥

साधु संगति में नाम का खजाना मिलता है। साधु संगति में सभी काम पूर्ण होते हैं ॥२॥

हरि की भगति जनमु परवाणु ॥
गुर किरपा ते नामु वखाणु ॥३॥

हरि की भक्ति करने से यह (मनुष्य) जन्म स्वीकृत होता है और गुरु की कृपा से नाम उच्चारण किया जाता है ॥३॥

कहु नानक सो जनु परवानु ॥
जा कै रिदै वसै भगवानु ॥४॥४७
११६॥

कहते हैं (मेरे गुरु देव बाबा) नानक कि वही दास 'उसकी' (दरबार)ही स्वीकृति है, जिसके हृदय में भगवान बसता है ॥४॥ ४७॥११६॥

गउड़ी महला ५॥

"राम नाम के स्मरण से परायी निन्दा विस्मृत होती है ।"

एकसु सिउ जा का मनु राता ॥
बिसरी तिसै पराई ताता ॥१॥

(हे भाई !) जिसका मन एक परमेश्वर से (रंगा हुआ) है, उसे परायी पचर भूल जाती हैं ॥१॥

बिनु गोबिंद न दीसै कोई ॥
करन करावन करता सोई ॥१॥
रहाउ॥

उसे गोबिन्द के बिना अन्य कोई (गोबिन्द) नहीं दीखता और समझता है कि वही कर्ता ही करने वाला और कराने वाला है ॥१॥रहाउ॥

मनहि कमावै मुखि हरि हरि बोलै ॥
सो जनु इत उत कतहि न डोलै ॥
२॥

(हे भाई !) वह अपने मन से नाम की कमाई करके मुख से 'हरि' 'हरि' बोलता है, ऐसा दास यहाँ (इस लोक में) और वहाँ (परलोक में) कभी नही भटकता ॥२॥

जा कै हरि धनु सो सचु साहु ॥
गुरि पूरै करि दीनो विसाहु ॥३॥

(हे भाई !) जिसके पास(मन में)हरि(नाम) रूपी धन है, वही सच्चा शाहुकार है। पूर्ण गुरु ने हमें (नाम रूपी धन में) निश्चय (बना) दिया है ॥३॥

जीवन पुरखु मिलिआ
हरि राइआ ॥
कहु नानक परमपदु पाइआ ॥४॥
४८॥११७॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि मुझे जीवन पुरुष हरि राजा मिला है, जिसके लिए मैंने परम पद (मोक्ष) प्राप्त किया है ॥४॥ ४८॥११७॥

गउड़ी महला ॥५

"भक्तजनों की महिमा।"

नामु भगत कै प्रान अधारु ॥
नामो धनु नामो बिउहारु ॥१॥

नाम ही भक्तजनों के प्राणों का आधार है, नाम ही (भक्तजनों का) धन है और नाम ही का (भक्तजन) व्यवहार करते हैं ॥१॥

नाम वडाई जनु सोभा पाए ॥
करि किरपा जिसु आपि दिवाए ॥
१॥रहाउ॥

नाम की बड़ाई के कारण (भक्तजन) शोभा प्राप्त करते हैं, किन्तु जिन पर प्रभु कृपा करते हैं (सत्गुरु से नाम) दिलवाते हैं, (उसे ही मिलती है) ॥१॥ रहाउ ॥

नामु भगत कै सुख असथानु ॥
नाम रतु सो भगतु परवानु ॥२॥

नाम भक्तजनों के सुख का स्थान है। जो जीव नाम में अनुरक्त है वही सच्चा भक्त है और हरि (दरबार में) से स्वीकृत है ॥२॥

हरि का नामु जन कउ धारै ॥
सासि सासि जनु नामु समारै ॥३॥

हरि का नाम भक्तों का आश्रय है अथवा हरि के नाम द्वारा राजा जनक ने कईयों का उद्धार किया, इसलिए (भक्तजन) श्वास-प्रश्वास नाम का स्मरण करते हैं ॥३॥

कहु नानक जिसु पूरा भागु ॥
नाम संगि ता का मनु लागु ॥४॥
४९॥११८॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि जिसके पूर्ण भाग्य हैं, उसका मन नाम के साथ ही लगता है ॥४॥४९॥ ११८॥

गउड़ी महला ५॥

"सन्तों की कृपा से हरिनाम में ध्यान लगाना।"

संत प्रसादि हरिनामु धिआइआ ॥
तब ते धावतु मनु त्रिपताइआ ॥१॥

सन्तो की कृपा से जब हरि नाम का ध्यान किया तब से भटकता हुआ मेरा मन तृप्त (स्थिर) हुआ है ॥१॥

सुख बिस्रामु पाइआ गुण गाइ ॥
स्रमु मिटिआ मेरी हती बलाइ ॥१
॥रहाउ॥

(सन्तों की कृपा से) हरि के गुण गाने से सुख और विश्राम प्राप्त हुआ है (अथवा सुखस्वरूप में विश्राम पाया है)। मेरे यत्न (भाग-दौड) मिट गये है और अन्दर में बैठी हुई अविद्या रूपी बला वह भी नष्ट हो गयी है ॥१॥ रहाउ ॥

चरन कमल अराधि भगवंता ॥
हरि सिमरन ते मिटी मेरी चिंता ॥
२॥

भगवत के चरण कमलों की आराधना करने से और हरि के स्मरण से मेरी चिन्ता मिट गई है ॥२॥

सभ तजि अनाथु
एक सरणि आइओ ॥
ऊच असथानु तब सहजे पाइओ ॥
३॥

मैं अनाथ सब तरफ छोड़कर एक की शरण में आया तो अनायास परम-पद की प्राप्ति हो गयी ॥३॥

दूखु दरदु भरमु भउ नसिआ ॥
करणहारु नानक मनि बसिआ ॥४
॥५०॥११९॥

मेर दुःख, दर्द, भ्रम और भय (सब) दौड़ गये। हे नानक! करणहार प्रभु मेरे मन मे बस गया है ॥४॥५०॥११९॥

गउड़ी महला ५॥

"मनुष्य देही दुर्लभ है अतः हरि-स्मरण, सेवा, कीर्तनकर ले।"

कर करि टहल रसना गुण गावउ ॥
चरन ठाकुर कै मारगि धावउ ॥१॥

(हे भाई!) हाथो से (सन्तों की) सेवा और रसना से (हरि के) गुण गा तथा पाँव से ठाकुर के मार्ग पर दौड ॥१॥

भलो समो सिमरन की बरीआ ॥
सिमरत नामु भै पारि उतरीआ ॥
१॥रहाउ॥

हे भाई! यह (कलियुग का) समय भला है और (मनुष्य देही हरि) स्मरण के लिए (शुभ) अवसर है। राम नाम के स्मरण से भव-सागर से पार उतरा जाता है ॥१॥रहाउ॥

नेत्र संतन का दरसनु पेखु ॥
प्रभ अबिनासी मन महि लेखु ॥२॥

(हे भाई!) नेत्रो (आँखों) से सन्तों का दर्शन कर और अविनाशी प्रभु को अपने मन में धारण कर ॥२॥

सुणि कीरतनु साध पहि जाइ ॥
जनम मरण की त्रास मिटाइ ॥३॥

(हे भाई!) साधुओं के पास जाकर हरि का कीर्तन (कानों से) सुन और इस प्रकार जन्म-मरण का भय दूर कर ॥३॥

चरन कमल ठाकुर उरि धारि ॥
दुलभ देह नानक निसतारि ॥४॥
५१॥१२०॥

(हे भाई !) ठाकुर के चरण कमलों को अपने हृदय में धारण कर। इस प्रकार, हे नानक ! दुर्लभ मनुष्य जन्म का उद्धार कर ॥४॥५१॥१२०॥

गउड़ी महला ५॥

"नाम जपने में सदैव सुख है।"

जा कउ अपनी किरपा धारै ॥
सो जनु रसना नामु उचारै ॥१॥

(हे भाई !) जिस पर (प्रभु) अपनी कृपा करता है, वह दास रसना से नाम का उच्चारण करता है ॥१॥

हरि बिसरत सहसा दुखु बिआपै ॥
सिमरत नामु भरमु भउ भागै ॥१॥
रहाउ॥

(हे भाई !) हरि को विस्मृत करने से सशय और दु ख व्याप्त होते हैं, किन्तु नाम का स्मरण करने से भ्रम और भय दौड़ जाते हैं ॥१॥रहाउ॥

हरि कीरतनु सुणै
हरि कीरतनु गावै ॥
तिसु जन दूखु निकटि नही आवै ॥
२॥

जो (जीव) हरि का कीर्तन सुनता है और हरि का कीर्तन गाता है उस दास के निकट दु ख नही आता (अर्थात वह सदैव सुखी हो जाता है क्योकि वह दुःख को दुःख करके नही मानता) ॥२॥

हरि की टहल करत जनु सोहै ॥
ता कउ माइआ अगनि न पोहै ॥३॥

जो (जीव) हरि की सेवा करता है, वह दास शोभायमान होता है और उसे माया रूपी अग्नि स्पर्श भी नही कर सकती (अर्थात दुःख नही दे सकती) ॥३॥

मनि तनि मुखि हरिनामु
दइआल ॥
नानक तजीअले अवरि जंजाल ॥
४॥५२॥१२१॥

जो (जीव) मन, तन और मुख से दयालु हरि का नाम जपता है, हे नानक ! वह और धन्धो को छोड देता है ॥४॥५२॥१२१॥

गउड़ी महला ५॥

"जीवन में पूर्ण गुरू की अति आवश्यकता।"

छाडि सिआनप बहु चतुराई ॥
गुर पूरे की टेक टिकाई ॥१॥

(हे भाई !) हमने (मन की) स्याणप और (रसना की) चतुराई छोड़कर, पूर्ण गुरू की टेक (मन में) टिकाई है ॥१॥

दुख बिनसे सुख हरिगुण गाइ ॥
गुरु पूरा भेटिआ लिव लाइ ॥१॥
रहाउ॥

हरि के गुण गाने से दुःख नाश हो गये हैं और सुख प्राप्त हुए हैं। (हाँ) पूर्ण गुरू को मिलने से हरि से लौ लगी है ॥१॥रहाउ॥

हरि का नामु दीओ गुरि मंत्रु ॥
मिटे विसूरे उतरी चिंत ॥२॥

गुरु ने हरि नाम का मन्त्र दिया, जिससे (जाप से सारे) शोक मिट गये और चिन्ता भी मिट गई ॥२॥

अनद भए गुर मिलत क्रिपाल ॥
करि किरपा काटे जम जाल ॥३॥

गुरु, जो कृपालु है उससे मिलने पर आनन्द हुआ है और (गुरु ने) कृपा करके यम की जाली (बंधन) काट दी ॥३॥

कहु नानक गुरु पूरा पाइआ ॥
ता ते बहुरि न बिआपै माइआ ॥
४॥५३॥१२२॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि मैंने पूर्ण गुरू प्राप्त किया है जिससे (अब) फिर माया प्रभाव नहीं डालती ॥४॥५३॥१२२॥

गउड़ी महला ५॥

"गुरू सहायक है अति कठिनाईयों में भी।"

राखि लीआ गुरि पूरै आपि ॥
मनमुख कउ लागो संतापु ॥१॥

पूर्ण गुरु ने स्वयं बचा लिया है, इस पर मनमुख को महा दु:ख हुआ है ॥१॥

गुरू गुरू जपि मीत हमारे ॥
मुख ऊजल होवहि दरबारे ॥१॥
रहाउ॥

हे मेरे मित्र! तू गुरु, (हाँ) गुरु का (ध्यान रखकर) जाप कर, जिससे तेरा मुख (सच्ची) दरबार में उज्जवल हो ॥१॥
रहाउ॥

गुर के चरण हिरदै वसाइ ॥
दुख दुसमन तेरी हतै बलाइ ॥२॥

(हे प्यारे!) गुरु के चरणों को अपने हृदय में बसा ले तो तेरे दु:ख (देने वाले तेरे) दुश्मन और तुम्हारी बला भी मर जाय ॥२॥

गुर का सबदु तेरै संगि सहाई ॥
दइआल भए सगले जीअ भाई ॥३॥

हे भाई! गुरु का शब्द तेरा संगी और सहायक (हुआ) है, इसलिए सारे जीव तुम्हारे पर दयालु हैं (अर्थात् अब तुम्हें दुःख देने वाला कोई भी नहीं है।) ॥३॥

गुरि पूरै जब किरपा करी ॥
भनति नानक मेरी पूरी परी ॥४
॥५४॥१२३॥

पूर्ण गुरु ने जब कृपा की, तब मेरी (समस्त इच्छाएं) पूर्ण हो गई। कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब) ॥४॥५४॥१२३॥

गउड़ी महला ५॥

"नाम के बिना मनुष्य पशु से भी परे है।"

अनिक रसा खाए जैसे ढोर ॥
मोह की जेवरी बाधिओ चोर ॥१॥

मनुष्य पशु जैसे अनेक पदार्थों के रसों को खाता है, किन्तु वह चोरों जैसे मोह की रस्सी से बाँधा जाता है ॥१॥

मिरतक देह साधसंग बिहूना ॥
आवत जात जोनी दुख खीना ॥१॥
रहाउ॥

साधु संगति के बिना (मानव) शरीर मृतक समान है; वह योनियों में आने-जाने (जन्म-मरण) के दुःख से नाश होता है ॥१
॥रहाउ॥

अनिक बसत सुंदर पहिराइआ ॥
जिउ डरना खेत माहि डराइआ ॥
२॥

(मनमुख) अनेक सुन्दर वस्त्र पहनता है, किन्तु (नाम के बिना) वह भयानक पुतले जैसा है जो खेती में पक्षियों को डराता है ॥२॥

सगल सरीर आवत सभ काम ॥
निहफल मानुखु जपै नही नाम ॥३॥

(और) सभी जीवों के शरीर काम में आते हैं, किन्तु एक मनुष्य ही निष्फल है यदि हरि का नाम नहीं जपता ॥३॥

कहु नानक जा कउ भए दइआला
साधसंगि मिलि भजहि ! गुपाला ॥
४॥५५॥१२४॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि जिस पर 'वह' दयालु होता है, वह जीव साधु की संगति में मिल कर गोपाल हरि का भजन करता है ॥४॥५५॥१२४॥

गउड़ी महला ५॥

"गुरु की महिमा।"

कलि कलेस गुर सबदि निवारे ॥
आवण जाण रहे सुख सारे ॥१॥

(हे भाई!) गुरु के शब्द द्वारा दुःख तथा कलेश (पाप) निवृत कर दिये, जन्म मरण समाप्त हो गये और अब सारे सुख प्राप्त हुए हैं ॥१॥

भै बिनसे निरभउ हरि धिआइआ ॥
साध संगि हरि के गुण गाइआ ॥१॥
रहाउ ॥

(हे भाई!) साधु जनों की संगति से निर्भय हरि का ध्यान किया है और हरि के गुण गाये हैं जिससे (सभी) भय नाश हो गये हैं ॥१॥रहाउ॥

चरन कवल रिद अंतरि धारे ॥
अगनि सागर गुरि पारि उतारे ॥२॥

(हे भाई!) हमने चरण-कमलों को हृदय के अन्दर धारण किया है और गुरु ने तृष्णा रूपी अग्नि-सागर से पार कर दिया है ॥२॥

बूडत जात पूरै गुरि काढे ॥
जनम जनम के टूटे गाढे ॥३॥

हम भवसागर में डूबते जा रहे थे, किन्तु पूर्ण गुरु ने निकाल लिया। (हम) जन्म-जन्मांतरों से हरि से टूटे हुए थे, किन्तु गुरु ने (कृपा करके) जोड़ दिया ॥३॥

कहु नानक तिसु गुरि बलिहारी ॥
जिसु भेटत गति भई हमारी ॥४॥५६॥१२५॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि मैं उस गुरु पर बलिहारी जाता हूँ, जिसको मिलने से हमारी मुक्ति हो गई ॥४॥५६॥१२५॥

गउड़ी महला ५॥

"अमृत-नाम की प्राप्ति केवल साधु-संगति से होती है।"

साध संगि ता की सरनी परहु ॥
मनु तनु अपना आगै धरहु ॥१॥

(हे भाई!) साधु की संगति द्वारा 'उस' प्रभु की शरण में पड़ो और अपना मन तथा तन 'उसके' आगे (समर्पण करके) रखो ॥१॥

अंम्रित नामु पीवहु मेरे भाई ॥
सिमरि सिमरि सभ तपति बुझाई ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे भाई! हरि के अमृतनाम को पी लो, क्योंकि जिन्होंने भी 'उसका' स्मरण,(हाँ)(नाम का)स्मरण किया है, उन्होंने तृष्णा रूपी अग्नि बुझा दी है ॥१॥रहाउ॥

तजि अभिमानु
जनम मरणु निवारहु ॥
हरि के दास के चरण नमसकारहु॥२॥

(हे भाई!) अभिमान का परित्याग करके जन्म-मरण की निवृत्ति करो और हरि के दासों के चरणों को (सदैव) नमस्कार करो ॥२॥

सासि सासि प्रभु मनहि समाले ॥
सो धनु संचहु जो चालै नाले ॥३॥

(हे भाई!) श्वास-प्रश्वास प्रभु को अपने मन में संभालो और वह धन संचय करो जो तेरे साथ (परलोक में) चले ॥३॥

तिसहि परापति
जिसु मसतकि भागु ॥
कहु नानक ता की चरणी लागु ॥४॥५७॥१२६॥

(किन्तु) (हे भाई!) (वह धन उसे प्राप्त होता है) जिसके मस्तक पर (शुभ कर्मों का) भाग्य (लिखा) है। अतः तू उसी के ही चरणों में (जाकर) लग, कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक ॥४॥५७॥१२६॥

गउड़ी महला ५॥

"गुरु परोपकारी है और अनन्त हैं उसके उपकार।"

सूके हरे कीए खिन माहे ॥
अंमृत द्रिसटि संचि जीवाए ॥१॥

(हे भाई !)जो (मन लकड़ के सदृश्य) सूके थे, उन्हें क्षण भर में (मेरे प्रभु) ने हरा (भरा) कर दिया और (जो मृतक समान थे उन्हें भी) अमृत रूप दृष्टि से सींच कर जीवित कर दिया ॥१॥

काटे कसट पूरे गुरदेव ॥
सेवक कउ दीनी अपुनी सेव ॥१॥
रहाउ ॥

पूर्ण गुरुदेव ने अपने सेवक के कष्ट काट दिये और उसे अपनी सेवा में लगा दिया ॥१॥रहाउ॥

मिटि गई चिंत पुनी मन आसा ॥
करी दइआ सतगुरि गुणतासा ॥२॥

पूर्ण सत्गुरु, जो गुणों का खजाना है, जब दया करता है तो समस्त चिंता मिट जाती है और मन की (शुभ) आशा पूर्ण होती है ॥२॥

दुख नाठे सुख आइ समाए ॥
ढील न परी जा गुरि फुरमाए ॥३॥

दु.ख दौड़ जाते हैं और सुख आकर इकट्ठे होते हैं, जब सत्गुरु हुक्म देता है, उस समय देरी नही लगती ॥३॥

इछ पुनी पूरे गुर मिले ॥
नानक ते जन सुफल फले ॥४॥
५८॥१२७॥

(वस्तुत:) पूर्ण गुरु उन्हे मिला है जिनकी इच्छा पूर्ण हुई है, (हाँ) हे नानक ! वे ही श्रेष्ठ फलों से फलीभूत हुए हैं ॥४॥५८॥१२७॥

गउड़ी महला ५॥

"हरि गुण जो गाए, दु:ख दर्द समाधि मिटाए।"

ताप गए पाई प्रभि सांति ॥
सीतल भए कीनी प्रभ दाति ॥१॥

(तीनो) ताप (१)आध्यात्मिक=आन्तरिक विघ्न (२) आदि-भौतिक=बाह्य विघ्न जिन पर जीव का नियन्त्रण हो सकता है या नहीं भी हो सकता है (३)आदिदैविक=बाह्य विघ्न जिन पर जीव का कोई भी नियन्त्रण नही हो सकता, दूर हो गये और प्रभु ने स्वयं शान्ति प्रदान की है। (हाँ)प्रभु ने ऐसी बख्शिश की है कि शीतल हो गये हैं ॥१॥

प्रभ किरपा ते भए सुहेले ॥
जनम जनम के बिछुरे मेले ॥१॥
रहाउ॥

(हाँ), प्रभु की कृपा से (हम) सुखी हुए हैं। चाहे हम जन्म-जन्मान्तरो से बिछुडे हुए थे फिर भी (हमें) मिला दिया है ॥१॥ रहाउ॥

सिमरत सिमरत प्रभ का नाउ ॥ सगल रोग का बिनसिआ थाउ ॥२॥	प्रभु का नाम स्मरण करने से, (हाँ) स्मरण करने से सम्पूर्ण रोगों का पड़ाव (डेरा) नाश हो गया ॥२॥
सहजि सुभाइ बोलै हरि बाणी ॥ आठ पहर प्रभ सिमरहु प्राणी ॥३॥	हम सहज स्वभाव ही हरि की वाणी बोलते हैं, हे प्राणी ! (तू भी) आठ प्रहर प्रभु का स्मरण कर ॥३॥
दूखु दरदु जमु नेड़ि न आवै ॥ कहु नानक जो हरिगुन गावै ॥४॥ ५९॥१२८॥	कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि जो हरि के गुण गाते हैं, उनके निकट दुःख, दर्द और यम नहीं आयेंगे ॥४॥५९॥१२८॥

गउड़ी महला ५॥	"समय सफल कौन सा है ?"
भले दिनस भले संजोग ॥ जितु भेटे पारब्रहम निरजोग ॥१॥	वे दिन श्रेष्ठ हैं, (हाँ) वही संयोग उत्तम है, जब परब्रह्म, जो निलेप है अथवा जिसे मिलना कठिन है आकर मिलता है ॥१॥
ओह बेला कउ हउ बलि जाउ ॥ जितु मेरा मनु जपै हरि नाउ ॥१॥ रहाउ॥	(हे भाई !) उस वेला पर मैं बलिहारी जाता हूँ, जिस समय मेरा मन हरि का नाम जपता है ॥१॥रहाउ॥
सफल मूरतु सफल ओह घरी ॥ जितु रसना उचरै हरि हरी ॥२॥	वह मुहूर्त सफल है, (हाँ) वह घड़ी (भी) सफल है, जिस समय रसना दुःख हर्ता-हरि (नाम) का उच्चारण करती है ॥२॥
सफलु ओहु माथा संत नमसकारसि ॥ चरण पुनीत चलहि हरि मारगि ॥३॥	वह माथा सफल है जो सन्तजनों के आगे नमस्कार करता है और वे चरण पवित्र हैं जो हरि मार्ग में चलते हैं ॥३॥
कहु नानक भला मेरा करम ॥ जितु भेटे साधू के चरन ॥४॥६० ॥१२९॥	कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि वे मेरे कर्म सफल हैं, जिनके प्रताप से साधु के चरण स्पर्श किये हैं ॥४॥६०॥१२९॥

गउड़ी महला ५॥	"हरि रूप गुरु की महिमा"
गुर का सबदु राखु मन माहि ॥ नामु सिमरि चिंता सभ जाहि ॥ १॥	(हे भाई !) गुरु का शब्द मन में रख और उस शब्द रूप नाम का स्मरण कर तो तेरी सारी चिन्ता (मिट) जायेगी ॥१॥
बिनु भगवंत नाही अन कोइ ॥ मारै राखै एको सोइ ॥१॥रहाउ॥	(हे भाई !) बिना भगवंत के अन्य कोई भी सहायक नहीं। मारने वाला और रक्षा करने वाला 'वह' एक ही (भगवंत) है ॥१॥रहाउ॥
गुर के चरण रिदै उरिधारि ॥ अगनि सागरु जपि उतरहि पारि ॥ २॥	(हे भाई !) गुरु के चरणों को हृदय में धारण कर, (नाम) जपने से (तुम) संसार रूपी अग्नि के सागर से पार हो जाओगे ॥२॥
गुर मूरति सिउ लाइ धिआनु ॥ ईहा ऊहा पावहि मानु ॥३॥	(हे भाई !) गुरु की मूर्ति से ध्यान लगा तभी तू यहाँ (इस लोक में) और वहाँ (परलोक में) सम्मान प्राप्त करेगा ॥३॥
सगल तिआगि गुर सरणी आइआ ॥ मिटे अंदेसे नानक सुखु पाइआ ॥ ४॥६१॥१३०॥	हे नानक ! जो (जीव) सब कुछ त्यागकर (अर्थात् निरासक्त होकर) गुरु की शरण में आया है, उसकी चिन्ता मिट गई है और उसे सुख प्राप्त हुआ है ॥४॥६१॥१३०॥
गउड़ी महला ५॥	"हरि नाम और हरि के सम्बन्ध में उपदेश।"
जिसु सिमरत दूखु सभु जाइ ॥ नामु रतनु वसै मनि आइ ॥१॥	जिसका स्मरण करने से सब दुःख चले जाते हैं और नाम रत्न मन में आकर बसता है ॥१॥
जपि मन मेरे गोविंद की बाणी ॥ साधू जन रामु रसन बखाणी ॥१॥ रहाउ॥	हे मेरे मन ! तू (ऐसे) गोबिन्द की वाणी (अर्थात् नाम का) जाप कर, क्योंकि जो साधु जन हैं वे रसना से राम (नाम) का उच्चारण करते हैं ॥१॥रहाउ॥
इकसु बिनु नाही दूजा कोइ ॥ जा की द्रिसटि सदा सुखु होइ ॥२॥	हे भाई ! एक (गोबिन्द) के बिना (संसार में) अन्य कोई भी नही जिसकी कृपा-दृष्टि से सदा सुख (प्राप्त) होता हो ॥२॥

साजनु मीतु सखा करि एकु ॥
हरि हरि अखर मन महि लेखु ॥
३॥

(हे भाई !) एक (गोविन्द) को अपना सज्जन, मित्र और साथी बनाओ और 'हरि हरि' अक्षर को मन में लिख लो ॥३॥

रवि रहिआ सरबत सुआमी ॥
गुण गावै नानकु अंतरजामी ॥४
॥६२॥१३१॥

मेरा स्वामी सर्वत्र रमण कर रहा है (अर्थात् सर्व व्यापक है) । अन्तर्यामिन गोबिन्द के गुण (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक गाता है ॥४॥६२॥१३१॥

गउड़ी महला ५॥

"प्रभु की शरण में आने से भय नही लगता ।"

भै महि रचिओ सभु संसारा ॥
तिसु भउ नाही जिसु नामु अधारा
॥१॥

(हे भयवंत !) सारा संसार भय से व्याप्त है, केवल उसे भय नही जिसको तेरे नाम का आधार है ॥१॥

भउ न विआपै तेरी सरणा ॥
जो तुधु भावै सोई करणा ॥१॥
रहाउ॥

(हे प्रभु !) तुम्हारी शरण में आने से भय नही लगता । (हाँ) (शरण में आए हुए जीव को) वही कुछ करना पडता है जो तुम्हें अच्छा लगता है ॥१॥रहाउ॥

सोग हरख महि आवण जाणा ॥
तिनि सुखु पाइआ जो प्रभ भाणा
॥२॥

(हानि हुई तो) शोक और (लाभ हुआ तो) हर्ष करने मे तो आना-जाना (अर्थात् जन्म-मरण बना रहता) है, किन्तु सुख वह प्राप्त करता है, हे प्रभु ! जो तेरे हुकम मे (प्रसन्न) रहता है ॥२॥

अगनि सागर महा विआपै
माइआ ॥
से सीतल जिन सतिगुरु पाइआ ॥
॥३॥

इस अग्नि के महासागर (भाव संसार) को माया चिपटती है। भाव इस संसार को तृष्णा की अग्नि लगी हुई है। किन्तु इस अग्नि में शान्त और सुखी वे हैं, जिन्हें सत्गुरु की प्राप्ति हुई है ॥३॥

राखि लेइ प्रभु राखनहारा ॥
कहु नानक किआ जंत विचारा ॥४
॥६३॥१३२॥

हे सरक्षक प्रभु ! तू ही मुझे बचा ले । यह बेचारा जीव क्या है (अर्थात् निर्बल है । तू ही रक्षा कर) ॥४॥६३॥१३२॥

गउड़ी महला ५॥	"प्रभु और गुरु की कृपा से ही नाम की प्राप्ति संभव है।"
तुमरी कृपा ते जपीऐ नाउ ॥ तुमरी कृपा ते दरगह थाउ ॥१॥	(हे प्रभु!) तुम्हारी कृपा से नाम जपा जा सकता है और तुम्हारी कृपा से (तेरी) दरबार में प्रतिष्ठा मिलता है ॥१॥
तुझ बिनु पारब्रहम नही कोइ ॥ तुमरी कृपा ते सदा सुखु होइ ॥१॥ रहाउ॥	(हे परब्रह्म!) तुम्हारे बिना अन्य कोई (सहायक) नही। तुम्हारी कृपा से सदा सुख प्राप्त होता है ॥१॥रहाउ॥
तुम मनि वसे तउ दूखु न लागै ॥ तुमरी कृपा ते भ्रमु भउ भागै ॥२॥	(हे हरि!) जब तुम मन में बसते हो तो मुझे (कोई भी) दुख नही लगता और तुम्हारी कृपा से भ्रम और भय (भी) दौड़ जाते हैं (भावः दुविधा नही रहती) ॥२॥
पारब्रहम अपरंपर सुआमी ॥ सगल घटा के अंतरजामी ॥३॥	हे परब्रह्म! हे अपार! हे स्वामी! हे सबके भीतर को जानने वाले (अन्तर्यामिन प्रभो)! ॥३॥
करउ अरदासि अपने सतिगुर पासि॥ नानक नामु मिलै सचु रासि ॥४॥ ६४॥१३३॥	मैं अपने सतगुरु के पास यही प्रार्थना करता हूँ कि हे नानक! मुझे नाम मिले जो ही (एक मात्र)सच्ची पूँजी है (अर्थात् प्रभु का नाम ही सदा रहनेवाला धन है) ॥४॥६४॥१३३॥
गउड़ी महला ५॥	"नाम के बिना मनुष्य शरीर व्यर्थ है।"
कण बिना जैसे थोथर तुखा ॥ नाम बिहून सूने से मुखा ॥१॥	अनाज के दानो के बिना जैसे छिलका थोथा (अर्थात् बेकार) है, उसी प्रकार नाम के बिना जो मुख हैं, वह खाली हैं ॥१॥
हरि हरि नामु जपहु नित प्राणी ॥ नाम बिहून ध्रिगु देह बिगानी ॥१॥ रहाउ॥	हे प्राणी! नित्य प्रति हरि, (हाँ) हरिनाम को जपा कर क्योकि नाम से बिना इस (मनुष्य) देही को धिक्कार है, जो आखिर पराया (अर्थात् मृत्यु का ग्रास) हो जाता है ॥१॥रहाउ॥
नाम बिना नाही मुखि भागु ॥ भरत बिहून कहा सोहागु ॥२॥	नाम के बिना मुख भाग्यवान नही (अर्थात् मुख की शोभा नही)। भला पति के बिना (स्त्री को पति का) सुख कहाँ? ॥२॥
नामु बिसारि लगै अन सुआइ ॥ ताकी आस न पूजै काइ ॥३॥	नाम को भूलकर जो जीव अन्य स्वार्थ या प्रयोजन में लगे हुए हैं उनकी कोई भी आशा पूर्ण नही होती ॥३॥
करि किरपा प्रभ अपनी दाति ॥ नानक नामु जपै दिनु राति ॥४॥ ६५॥१३४॥	हे प्रभु! कृपा करके यह अपनी बख्शिश कर कि (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक दिन रात तेरा नाम जपे ॥४॥६५॥१३४॥

गउड़ी महला ५॥

"हरि नाम के लिये प्रार्थना।"

तूं समरथु तूं है मेरा सुआमी ॥
सभु किछु तुम ते तूं अंतरजामी ॥
१॥

(हे प्रभु !) तू समर्थ है और तू मेरा स्वामी है। यह सब कुछ तुम्हारे से हुआ है और तू ही सब जीवों के अन्दर को जानने वाला है ॥१॥

पारब्रहम पूरन जन ओट ॥
तेरी सरणि उधरहि जन कोटि ॥
१॥रहाउ॥

हे पूर्ण परब्रह्म ! तू ही दासों का सहारा है। तुम्हारी शरण में आने से करोडों दासों का उद्धार होता है ॥१॥रहाउ॥

जेते जीअ तेते सभि तेरे ॥
तुमरी कृपा ते सूख घनेरे ॥२॥

(हे प्रभु !) जितने जीव (जगत में) हैं, वे सब तेरे हैं और तुम्हारी कृपा से ही अत्याधिक सुख प्राप्त करते हैं ॥२॥

जो किछु वरतै सभ तेरा भाणा ॥
हुकमु बूझै सो सचि समाणा ॥३॥

(दुख चाहे सुख) जो कुछ होता है, वह तेरे ही हुकमानुसार होता है, किन्तु जो (जीव) तेरे हुकम को पहचान लेता है, वही सत्य में समा जाता है ॥३॥

करि किरपा दीजै प्रभ दानु ॥
नानक सिमरै नामु निधानु ॥४॥
६६॥१३५॥

हे प्रभु ! कृपा करके मुझे (एक) दान दो कि जो निद्धियो का खजाना नाम है, (बाबा) नानक उसका स्मरण करता रहे ॥४॥६६॥१३५॥

गउड़ी महला ५॥

"हरिजन की महिमा।"

ता का दरसु पाईऐ वडभागी ॥
जा की रामनामि लिव लागी ॥१॥

जिनकी लौ राम नाम के साथ लगी है, उन (हरि के दासों) का दर्शन बडे भाग्य से प्राप्त होता है ॥१॥

जा कै हरि वसिआ मन माही ॥
ता कउ दुखु सुपनै भी नाही ॥१॥
रहाउ॥

जिनके मन में हरि वसता है, उनको स्वप्न में भी (कभी) दुख नही होता ॥१॥रहाउ॥

सरब निधान राखे जन माहि ॥
ता कै संगि किलविख दुख जाहि ॥
२॥

हरि अपने दासों के अन्तर्गत सब निद्धियो (के तत्व अर्थात् नाम) को रखता है तथा उनकी ही संगति से पाप और दुःख दूर हो जाते हैं ॥२॥

जन की महिमा कथी न जाइ ॥
पारब्रहमु जनु रहिआ समाइ ॥३॥

(हरि के) दास की महिमा का कथन नही किया जा सकता क्योंकि परब्रह्म परमात्मा अपने दास में समाया हुआ है ॥३॥

करि किरपा प्रभ बिनउ सुनीजै ॥
दास की धूरि नानक कउ दीजै ॥४॥
६७॥१३६॥

हे प्रभु ! कृपा करके मेरी विनय सुनो, अपने ऐसे दास की (चरणों की) धूलि मुझ नानक को (कृपा करके) दो ॥४॥६७॥ १३६॥

गउड़ी महला ५॥

"हरि-स्मरण कल्याणकारी है ।"

हरि सिमरत तेरी जाइ बलाइ ॥
सरब कलिआण वसै मनि आइ ॥१॥

(हे भाई !) हरि का स्मरण करने से तेरी अविद्या रूपी बला अथवा माया रूपी डायन दूर हो जायेगी और सब आनन्द मंगल तेरे मन मे आकर बसेंगे ॥१॥

भजु मन मेरे एको नाम ॥
जीअ तेरे कै आवै काम ॥१॥
रहाउ॥

हे मेरे मन ! एक (हरि के) नाम का भजन कर क्योंकि (हरिनाम का भजन ही) तेरी आत्मा जीव के काम आएगा । ॥१॥रहाउ॥

रैणि दिनसु गुण गाउ अनंता ॥
गुर पूरे का निरमल मंता ॥२॥

(हे भाई !) पूर्ण गुरु से (हरिनाम का) निर्मल मन्त्र लेकर तू अनन्त प्रभु के गुण रात-दिन गा ॥२॥

छोडि उपाव एक टेक राखु ॥
महा पदारथु अंम्रित रसु चाखु ॥३॥

(हे भाई !) अन्य उपाय छोडकर केवल एक हरि का ही सहारा ले और महा पदार्थ, जो हरि का नाम है उसके अमृतमय रस को चख ॥३॥

बिखम सागरु तेई जन तरे ॥
नानक जा कउ नदरि करे ॥४॥
६८॥१३७॥

ससार रूपी विषम सागर से वही दास पार उतरता है, जिस पर, हे नानक ! 'वह' (स्वय अपनी) कृपा दृष्टि करता है ॥४॥ ६८॥१३७॥

गउड़ी महला ५॥

"गोविन्द के गुण गाना केवल साधु की संगति मे ही संभव है ।"

हिरदै चरन कमल प्रभ धारे ॥
पूरे सतिगुर मिलि निसतारे ॥१॥

(हे भाई !) पूर्ण सत्गुरु को मिलकर मैंने प्रभु के चरण-कमल हृदय मे धारण किये हैं इसलिए सत्गुरु ने मुझे (भव-सागर से) पार कर दिया ॥१॥

गोबिंद गुण गावहु मेरे भाई ॥
मिलि साधू हरि नामु धिआई ॥१॥
रहाउ॥

हे मेरे भाई ! गोविन्द के गुण गा और साधु जनों से मिल-कर हरि नाम का ध्यान कर ॥१॥रहाउ॥

दुलभ देह होई परवानु ॥
सतिगुर ते पाइआ नाम नीसानु ॥ २॥

(हे भाई !) उन जीवों की दुर्लभ (मनुष्य) देही स्वीकृत हुई है जिन्होंने सत्गुरु से नाम का चिन्ह (निशान) अथवा ठिकाना प्राप्त किया है ॥२॥

हरि सिमरत पूरन पदु पाइआ ॥
साधसंगि भै भरम मिटाइआ ॥३॥

(हे भाई !) हरि का स्मरण करने से मुझे पूर्ण पद प्राप्त हुआ है और साधु की संगति से भय और भ्रम को मिटा दिया है ॥३॥

जत कत देखउ तत रहिआ समाइ ॥
नानक दास हरि की सरणाइ ॥४॥ ६९॥१३८॥

अब जहाँ कहीं देखता हूँ, वहाँ 'वह' परमेश्वर व्यापक दिखाई देता है। (हे भाई !) दास नानक हरि की शरण में (आकर पड़ा) है ॥४॥६९॥१३८॥

गउड़ी महला ५॥

"अभिलाषा है कि मैं सत्गुरु की सेवा करूँ।"

गुर जी के दरसन कउ बलि जाउ ॥
जपि जपि जीवा सतिगुर नाउ ॥१॥

(हे भाई !) काश ! मैं अपने गुरु के दर्शनों के ऊपर बलिहारी जाऊँ और सत्गुरु का नाम जप-जपकर जीवित रहूँ ॥१॥

पारब्रहम पूरन गुरदेव ॥
करि किरपा लागउ तेरी सेव ॥१॥ रहाउ॥

हे परब्रह्म रूप पूर्ण गुरुदेव ! कृपा कर कि मैं तेरी सेवा मे लगा रहूँ ॥१॥रहाउ॥

चरन कमल हिरदै उरधारी ॥
मन तन धन गुर प्रान अधारी ॥२॥

(काश !) मैं अपने सत्गुरु के चरण-कमलों को हृदय में धारण करूँ और ऐसे कहूँ कि हे गुरु ! तू ही मेरे मन, तन, धन और प्राणो का आधार है ॥२॥

सफल जनमु होवै परवाणु ॥
गुरु पारब्रहमु निकटि करि जाणु ॥ ३॥

(काश !) मैं गुरु द्वारा परब्रह्म परमेश्वर को अपने निकट करके जानूँ इस तरह मेरा जन्म सफल हो जायेगा और (परमात्मा के दरबार में भी) स्वीकृत हो जायेगा ॥३॥

संत धूरि पाईऐ वडभागी ॥
नानक गुर भेटत हरि सिउ लिव लागी ॥४॥७०॥१३९॥

(हे भाई !) सन्तों के चरणों की धूलि बड़े भाग्यों से प्राप्त होती है। हे नानक ! गुरु से भेंट होने पर (अर्थात् गुरु को मिलकर) ही हरि से लौ लगती है ॥४॥७०॥१३९॥

गउड़ी महला ५ ॥

करै दुहकरम दिखावै होर ॥
राम की दरगह बाधा चोर ॥१॥

"अन्दर से झूठा किन्तु बाहर से पवित्र तो चोर है।"

(हे भाई !) जो जीव दुष्कर्म करता है किन्तु दिखावे के लिए और (अच्छे कर्म करके लोगों को) दिखाता है, वह राम के दरबार में चोर करके बाँधा जाता है ॥१॥

रामु रमै सोई रामाणा ॥
जलि थलि महीअलि एकु समाणा ॥१॥ रहाउ ॥

(हे भाई !) राम का राम परायण (भक्त) वही है, जो जल और स्थल तथा पृथ्वी और आकाश के मध्य अर्थात् सर्वत्र रमण करने वाले राम का जाप करता है ॥१॥रहाउ॥

अंतरि बिखु मुखि अंम्रित सुणावै ॥
जमपुरि बाधा चोटा खावै ॥२॥

(हे भाई !) जिस जीव के अन्तर्गत विष है, किन्तु मुख से अमृतमय वचन सुनाता है, वह यमपुरी में बाँधा जाता है और चोट खाता है ॥२॥

अनिक पड़दे महि कमावै विकार ॥
खिन महि प्रगट होहि संसार ॥३॥

(हे भाई !) जो जीव पर्दे में छिपकर अनेक विकार करता है, थोड़े समय में ही (उसके बुरे कर्म) संसार में प्रकट हो जाते हैं ॥३॥

अंतरि साचि नामि रसि राता ॥
नानक तिसु किरपालु बिधाता ॥४॥७१॥१४० ॥

(किन्तु) जिस (जीव) का अन्तर्गत सत्य नाम के रंग में अनुरक्त है, हे नानक ! उस पर विधाता प्रभु कृपालु होता है ॥४॥७१॥१४०॥

गउड़ी महला ५ ॥

राम रंगु कदे उतरि न जाइ ॥
गुरु पूरा जिसु देइ बुझाइ ॥१॥

"रामनाम का रंग मजीठ है। अतः कदाचित उतरता नहीं।"

(हे भाई !) राम का (प्रेम) रंग कभी भी उतरता नहीं; किन्तु जिसे पूर्ण गुरु समझाकर (इस रंग की बख्शिश करता है वह) प्राप्त करता है ॥१॥

हरि रंगि राता सो मनु साचा ॥
लाल रंग पूरन पुरखु बिधाता ॥१ ॥ रहाउ ॥

जो (मन) हरि के (प्रेम) रंग में अनुरक्त है वह मन सच्चा है क्योंकि पूर्ण पुरुष भाग्य विधाता (हरि) का रंग लाल (सच्चा) है (भाव सच्चे का सच्चा प्रेम लगा है) ॥१॥रहाउ॥

संतह संगि बैसि गुन गाइ ॥
ताका रंगु न उतरै जाइ ॥२॥

(प्रश्न : प्रेम-रंग कैसे पक्का होता है ? उत्तर:) (हे भाई !) जो जीव सन्तजनों की संगति में बैठकर राम के गुण गाता है, उसका प्रेम-रंग कभी भी उतरने वाला नहीं है ॥२॥

बिनु हरि सिमरन
सुखु नहीं पाइआ ॥
आन रंग फीके सभ माइआ ॥३॥

(हे भाई !) बिना हरि के स्मरण के किसी ने भी सुख नहीं पाया है, क्योंकि अन्य मायिक रंग सभी फीके भाव निस्सार हैं ॥३॥

गुरि रंगे से भए निहाल ॥
कहु नानक गुर भए है दइआल ॥
४॥७२॥१४१॥

(हे भाई !) जिन जीवों को गुरु ने प्रेम-रंग में रंगा है, वे ही (इंगित) कृतार्थ हुए हैं, (हाँ) जिन पर गुरु दयालु होते हैं, कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब) ॥४॥७२॥१४१॥

गउड़ी महला ५ ॥

"राम के दास को केवल हरि नाम का ही आश्रय है।"

सिमरत सुआमी किलविख नासे ॥
सूख सहज आनंद निवासे ॥१॥

(हे भाई !) स्वामी का स्मरण करने से पाप नाश हो जाते हैं तथा सुख, सहज(ज्ञान) और आनन्द आकर निवास करते हैं ॥१॥

राम जना कउ राम भरोसा ॥
नामु जपत सभु मिटिओ अंदेसा ॥
१॥रहाउ॥

(हे भाई !) राम के दासों को राम का ही भरोसा है। नाम जपने से उनकी फिक्र (दुविधा) मन से मिट गई है ॥१॥रहाउ॥

साध संगि कछु भउ न भराती ॥
गुण गोपाल
गाईअहि दिनु राती ॥२॥

(हे भाई !)साधु की संगति करने से (उनको) कोई भी भय या भ्रम नही रहता। वे दिन-रात गोपाल के गुण गाते हैं ॥२॥

करि किरपा प्रभ बंधन छोट ॥
चरन कमल की दीनी ओट ॥३॥

(हे भाई !) प्रभु ने कृपा करके (उनके) बन्धन तोड़े हैं और अपने चरण कमलों का सहारा दिया है ॥३॥

कहु नानक मनि भई परतीति ॥
निरमल जसु पीवहि जन नीति ॥
४॥७३॥१४२॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब)कि (उनको) मन में निश्चय हुआ है, इसलिए वे निर्मल यश (रूपी अमृत) को नित्य पीते हैं ॥४ ॥७३॥१४२॥

गउड़ी महला ५ ॥

"नाम की महिमा।"

हरि चरणी जा का मनु लागा ॥
दूखु दरदु भ्रमु ताका भागा ॥१॥

(हे भाई !) जिस (जीव) का मन हरि के चरणों में लगा है, उसके दुःख, दर्द और भ्रमादि दूर हो जाते हैं ॥१॥

हरि धन को बापारी पूरा ॥
जिसहि निवाजे सो जनु सूरा ॥१॥ रहाउ ॥

(हे भाई !)जो (जीव) हरि नाम के धन का व्यापारी है, वह सब गुणों से परिपूर्ण है। जिसको 'वह' मान-प्रतिष्ठा प्रदान करता है, वह दास शूरवीर है ॥१॥रहाउ॥

जा कउ भए क्रिपाल गुसाई ॥
से जन लागे गुर की पाई ॥२॥

(हे भाई !)जिन पर गोसाई परमात्मा कृपालु होता है, वे दास गुरु के पैरों (चरणों) में लगते हैं ॥२॥

सूख सहज सांति आनंदा ॥
जपि जपि जीवे परमानंदा ॥३॥

वे सहज ही सुख, ज्ञान व शान्ति प्राप्त करते हैं और परमानन्द परमात्मा को जप-जपकर जीवित रहते हैं ॥३॥

नाम रासि साध संगि खाटी ॥
कहु नानक प्रभि अपदा काटी ॥४॥७४॥१४३॥

हे भाई ! जिन्हों (जीवों) ने साधु की सगति द्वारा(हरि) नाम रूपी पूँजी कमाई है, प्रभु ने उनकी ही विपत्ति काटी है, कहते हं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब) ॥४॥७४॥१४३॥

गउड़ी महला ५ ॥

"हरि-स्मरण करने से सभी दुःख दूर हो जाते हैं।"

हरि सिमरत सभि मिटहि कलेस ॥
चरण कमल मन महि परवेस ॥१॥

हरि का स्मरण करने से सब पाप व दोष मिट जाते हैं और मन में प्रभु के चरण कमल प्रवेश कर जाते है (भाव बध जाते हैं।) ॥१॥

उचरहु राम नामु लख बारी ॥
अंम्रित रसु पीवहु प्रभ पिआरी ॥ १॥ रहाउ ॥

(इसलिए) हे प्यारी रसना ! तू लाखों बार राम नाम का उच्चारण कर और प्रभु के अमृतमय रस का पान कर ॥१॥ रहाउ॥

सूख सहज रस महा अनंदा ॥
जपि जपि जीवे परमानंदा ॥२॥

(हे भाई !)जो (जीव) परमात्मा प्रभु को(सदैव) जप-जप कर जीवित है, उन्हें सहज ही सुख, (नाम) रस और (प्रभु प्राप्ति का) महा आनन्द प्राप्त होता है ॥२॥

काम क्रोध लोभ मद खोए ॥
साध कै संगि किलबिख सभ धोए ॥३॥

(वस्तुतः)उन्होंने साधु की संगति में(बैठकर अपने) सभी पाप धो लिए है और काम, क्रोध, लोभ तथा अहंकार आदि सब नष्ट कर दिये है ॥३॥

करि किरपा प्रभ दीन दइआला ॥
नानक दीजै साध रवाला ॥४॥ ७५ ॥ १४४ ॥

हे दीनों पर दयालु प्रभु जी ! कृपा करो और नानक को साधु की (चरण) धूलि (का दान) दो ॥४॥७५॥१४४॥

गउड़ी महला ५ ॥

"दाता प्रभु को विस्मृत करना कृतघ्नता है।"

जिस का दीआ पैनै खाइ ॥
तिसु सिउ आलसु
किउ बनै माइ ॥१॥

हे माता ! जिस प्रभु का दिया हुआ हम पहनते व खाते हैं, उससे आलस्य करना कैसे बनता है ? ॥१॥

खसमु बिसारि
आन कंमि लागहि ॥
कउडी बदले रतनु तिआगहि ॥
॥ रहाउ ॥

(हे भाई !) जो (जीव) अपने पति-परमेश्वर को भूलकर अन्य काम में लग जाते हैं, वे अपना रत्न रूपी (अमूल्य) मनुष्य जन्म को कौड़ी (अर्थात् माया के विषय विकारों) के लिए त्याग देते हैं ॥१॥रहाउ॥

प्रभू तिआगि लागत अन लोभा ॥
दासि सलामु करत कत सोभा॥२॥

(हे भाई !) जो (जीव) प्रभु का त्याग करके अन्य (विषय विकारों के) लोभ में लग जाते हैं, वे(स्वामी को छोड़कर) 'उसकी' दासी (माया) को सलाम करके कैसे शोभा पा सकते है ? ॥२॥

अंमृत रसु खावहि खान पान ॥
जिनि दीए तिसहि न जानहि
सुआन ॥३॥

हे (जीव) कुत्ते ! अमृत तुल्य खाने, पीने के रस (युक्त पदार्थ) खाता है, किन्तु (खेद है कि) देने वाले दाता को नही पहचानते ॥३॥

कहु नानक हम लूण हरामी ॥
बखसि लेहु प्रभ अंतरजामी ॥४॥
७६॥१४५॥

कहते है (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि हे अर्न्तयामी प्रभो ! हम नमक खाकर तेरे किए हुए उपकारो को नही जानते हैं(भाव अकृतघ्न है)। (हमें) क्षमा कर दो। ॥४॥७६॥१४५॥

गउड़ी महला ५ ॥

"प्रभु का हृदय में निवास ही सर्वोत्तम फल है।"

प्रभ के चरन मन माहि धिआनु ॥
सगल तीरथ मजन इसनानु ॥१॥

(हे भाई !)मन में प्रभु के चरणों का ध्यान करना ही समस्त तीर्थों और पर्वों का स्नान है ॥१॥

हरि दिनु हरि सिमरनु मेरे भाई ॥
कोटि जनम की मलु लहि जाई ॥१
॥ रहाउ ॥

हे मेरे भाई ! प्रतिदिन हरि का स्मरण करने से करोड़ों जन्मों की मैल दूर हो जाती है ॥१॥रहाउ॥

हरि की कथा रिद माहि बसाई ॥
मन बाछत सगले फल पाई ॥२॥

(हे भाई !) हरि की कथा हृदय में बसाने से मन-वांछित सब फल प्राप्त होते हैं ॥२॥

जीवन मरणु जनमु परवानु ॥
जा कै रिदै वसै भगवानु ॥३॥

(हे भाई !) जिसके हृदय में भगवान बसता है (अर्थात् जिसको भगवान प्रत्यक्ष दिखाई देता है), उसका जीना, मरना और जन्म (सब) सफल है ॥३॥

कहु नानक सेई जन पूरे ॥
जिना परापति साधू धूरे ॥४॥
७७॥१४६ ॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि वे पूर्ण पुरुष हैं, जिनको साधु की धूलि प्राप्त हुई है ॥४॥७७॥१४६॥

गउड़ी महला ५ ॥

"माया शक्ति के उपासक साकत जीव के लक्षण ।"

खादा पैनदा मूकरि पाइ ॥
तिसनो जोहहि दूत धरमराइ
॥१॥

(हे भाई !) जो (जीव प्रभु के दिये सुःख को) खाता और पहनता है, किन्तु (देने वाले प्रभु को इनकार करके) मुकर जाता है, उसे धर्मराजा के दूत देखते हैं (मारने के लिए) ॥१॥

तिसु सिउ बेमुखु
जिनि जीउ पिंडु दीना ॥
कोटि जनम भरमहि बहु जूना ॥
१ ॥ रहाउ ॥

जिसने जीवात्मा और शरीर दिया है, उससे विमुख चलने वाला जीव करोड़ों जन्मों और अनेक योनियों में भटकता फिरता है ॥१॥रहाउ॥

साकत की ऐसी है रीति ॥
जो किछु करै सगल बिपरीति॥२॥

माया-शक्ति के उपासक(साकत) की यही रीति है, (हाँ) वह जो कुछ करता है, सब विपरीत होता है।।२॥

जीउ प्राण जिनि मनु तनु
धारिआ ॥
सोई ठाकुर मनहु विसारिआ ॥३॥

(हे भाई !)'जिसने' जीव, प्राण, मन और तन धारण किए हैं, 'उस' ठाकुर को ही (साकत ने) मन से विस्मृत कर दिया है ॥३॥

बधे बिकार लिखे बहु कागर ॥
नानक उधरु कृपा सुख सागर॥४॥

(हे भाई !) साकत के विकार इतने अधिक बढ़ गये हैं कि कार्यालय लेखे के लिखे गये हैं अर्थात् लेखे से परिपूर्ण हैं। हे नानक ! सुख-निधि हरि की कृपा से पार हो जाओ ॥४॥

पारब्रहम तेरी सरणाइ ॥
बंधन काटि तरै हरिनाइ ॥१॥
रहाउ दूजा ॥७८॥१४७॥

हे परब्रह्म ! तुम्हारी शरण में आया हूँ। मेरे बन्धन तोड़ ताकि मैं हरि नाम जपकर पार हो जाऊँ ॥१॥
॥रहाउ दूजा॥७८॥१४७॥

गउड़ी महला ५ ॥

"उदार चित्त मेरा प्रभु सम्पूर्ण इच्छाएं पूर्ण करने वाला है।"

अपने लोभ कउ कीनो मीतु ॥
सगल मनोरथ मुकति पदु दीतु ॥१॥

(हे भाई !) चाहे किसी ने अपने स्वार्थ के लिए परमेश्वर को अपना मित्र बनाया है, फिर भी उदारचित्त हरि ने उसकी सम्पूर्ण इच्छाएं पूर्ण करके उसे मुक्ति-पद प्रदान कर दिया(सुदामा भक्त के प्रति संकेत) ॥१॥

ऐसा मीतु करहु सभु कोइ ॥
जाते बिरथा कोइ न होइ ॥ ॥
रहाउ ॥

(हे भाई !) ऐसा (उदार चित्त) मित्र सभी कोई करो, जिससे कोई भी (जीव) खाली नही रहता (अर्थात् सभी को मन-वांछित फल प्राप्त होते हैं) ॥१॥रहाउ॥

अपुनै सुआइ रिदै लै धारिआ ॥
दूख दरद रोग सगल बिदारिआ ॥२॥

(हे भाई !) यदि कोई जीव अपने स्वार्थ के लिए प्रभु को हृदय मे भी धारण करता है तो 'वह' उसके सभी दुख, दर्द और रोग नष्ट कर देता है ॥२॥

रसना गीधी बोलत राम ॥
पूरन होए सगले काम ॥३॥

(हे भाई !) जिसकी रसना राम (नाम) के उच्चारण में प्रवृत्त हो गई है, उसके सम्पूर्ण कार्य पूर्ण हो गये हैं ॥३॥

अनिक बार नानक बलिहारा ॥
सफल दरसनु गोबिंदु हमारा ॥४॥७९॥१४८ ॥

हमारा गोबिन्द सफल दर्शन है, (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक 'उस' पर अनेक बार बलिहारी जाता है ॥४॥७९॥१४८॥

गउड़ी महला ५ ॥

"भ्रम संशय के परित्याग से हरि भजन होता है।"

कोटि बिघन हिरे खिन माहि ॥
हरि हरि कथा साधसंगि सुनाहि ॥१॥

(हे भाई !) जो (जीव) साधु की संगति में सर्व दु:खों के हर्त्ता हरि की कथा सुनता है, वह क्षण भर में करोड़ों विघ्न दूर करता है ॥१॥

पीवत राम रसु अंम्रित गुण जासु ॥
जपि हरि चरण मिटी खुधि तासु
॥१॥रहाउ॥

(हे भाई !) जो (जीव) राम के गुणों और यश का अमृतमय रस पान करता है और हरि के नाम का जाप करके 'उसके' चरणों का ध्यान करता है, उसकी भूख और प्यास समाप्त हो जाती है ॥१॥रहाउ॥

सरब कलिआण सुख सहज
निधान ॥
जा कै रिदै वसहि भगवान ॥२॥

(हे भाई !) जिसके हृदय में भगवान का वास है उसको सभी खुशियाँ प्राप्त होती हैं और सहज ही सुखों के खजाने (उसके पास) प्राप्त हो जाते हैं ॥२॥

अउखध मंत्र तंत सभि छारु ॥
करणैहारु रिदे महि धारु ॥३॥

(हे भाई !)सभी दवाईयाँ, मन्त्र, तन्त्र आदि भस्म हैं। (आपा-भाव को तुच्छ समझकर) प्रभु को ही हृदय में धारण कर ॥३॥

तजि सभि भरम भजिओ
पारब्रहमु ॥
कहु नानक अटल इहु धरमु ॥४
॥८०॥१४९॥

सकल भ्रमो को त्याग कर (एक) परब्रह्म का भजन कर, यह मनुष्य का अटल धर्म है, कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब) ॥४॥८०॥१४९॥

गउड़ी महला ५ ॥

"सतगुरु की महिमा।"

करि किरपा भेटे गुर सोई ॥
तितु बलि रोगु न बिआपै कोई
॥१॥

जब प्रभु की कृपा से ऐसे (समर्थ) गुरु से भेंट होती है तो उसके बल (के प्रताप) से (कोई भी) रोग व्याप्त नही होता ॥१॥

राम रमण तरण भै सागर ॥
सरणि सूर फारे जम कागर ॥१॥
रहाउ ॥

(हे भाई !) राम के स्मरण द्वारा भव-सागर से तरना होता है। शरण में आये हुए जीवों के गुरु शूरवीर जैसे सहायक होकर यम के कागज (लेखे) फाड देता है ॥१॥रहाउ॥

सतिगुरि मंत्रु दीओ हरिनाम ॥
इह आसर पूरन भए काम ॥२॥

(हे भाई !) उस सत्गुरु ने हरि नाम का मन्त्र दिया है जिसके आश्रय से सभी काम पूर्ण हुए हैं ॥२॥

जप तप संजम पूरी वडिआई ॥
गुर किरपाल हरि भए सहाई ॥३॥

जप, तप, संयम आदि की पूर्ण बढ़ाई मिल गई जब हरि ने सहायता की और गुरु की कृपा हुई ॥३॥

मान मोह खोए गुरि भरम ॥ पेखु नानक पसरे पारब्रहम ॥४॥ ८१॥१५०॥	(हे भाई !) गुरु ने मान, मोह और भ्रम दूर कर दिये हैं। हे नानक ! (अब)सर्वत्र परब्रह्म को ही व्यापक देख ॥४॥८१॥१५०॥
गउड़ी महला ५ ॥	"वस्तुतः दुख में ही हरि याद आता है।"
बिखै राज ते अंधुला भारी ॥ दुखि लागै रामनामु चितारी ॥१॥	विषयी राजा की अपेक्षा अंधा मनुष्य श्रेष्ठ है, क्योंकि दुख होने पर अन्धा मनुष्य रामनाम का चिन्तन तो करता है ॥१॥
तेरे दास कउ तुही वडिआई ॥ माइआ मगनु नरकि लै जाई ॥ १॥रहाउ॥	(हे भगवन !) जो तेरा दास है उसे तू बडाई (मुक्ति) देता है, किन्तु जो माया मे मस्त है, उसे (माया) नर्क मे ले जाता है ॥१॥रहाउ॥
रोग गिरसत चितारे नाउ ॥ बिखु माते का ठउर न ठाउ ॥२॥	रोग-ग्रस्त मनुष्य परमेश्वर का नाम लेता है, किन्तु विषय लोलुप जीव का कोई ठिकाना ही नही है ॥२॥
चरन कमल सिउ लागी प्रीति ॥ आन सुखा नही आवहि चीति ॥३॥	(हे प्रभु !)जिनको तेरे चरण-कमलों के साथ प्रीति लगी हुई है, उनको अन्य सांसारिक सुख चित्त में (याद) नहीं आते ॥३॥
सदा सदा सिमरउ प्रभ सुआमी ॥ मिलु नानक हरि अंतरजामी ॥४ ॥८२॥१५१॥	हे प्रभु ! हे स्वामी ! इसलिए मैं तेरा सदा सर्वदा स्मरण करता हूँ। हे अन्तर्यामी हरि ! (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक को (आकर) मिलो ॥४॥८२॥१५१॥
गउड़ी महला ५ ॥	"सर्व समर्थ प्रभु ही विषय-विकारों से बचाता है।"
आठ पहर संगी बटवारे ॥ करि किरपा प्रभि लए निवारे॥१॥	(हे भाई !) (काम, क्रोधादि) लुटेरे जो आठ ही प्रहर हमारे साथी थे, प्रभु ने कृपा करके उनसे (हमें) बचा लिया है ॥१॥
ऐसा हरि रसु रमहु सभु कोइ ॥ सरब कला पूरन प्रभु सोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥	(हे भाई !) 'वह' प्रभु सम्पूर्ण शक्तियों से परिपूर्ण है, ऐसा रस जिसका नाम हरिरस है सब कोई उपभोग करे ॥१॥रहाउ॥

महा तपति सागर संसार ॥
प्रभ खिन महि पारि उतारणहार ॥२॥

यह संसार रूपी सागर जिसमें अत्याधिक तप्त गर्मी (अर्थात् विकारों की अग्नि) है, उससे प्रभु क्षण भर में पार उतारने वाला है ॥२॥

अनिक बंधन तोरे नही जाहि ॥
सिमरत नाम मुकति फल पाहि ॥३॥

(हे भाई !) मोह रूपी अनेक बन्धन हैं जो तोड़े नहीं जा सकते, किन्तु (हरि)नाम के स्मरण मात्र से ही (जीव को) मुक्ति रूपी फल प्राप्त हो जाता है ॥३॥

उकति सिआनप
इसते कछु नाहि ॥
करि किरपा नानक गुण गाहि ॥
४॥८३॥१५२॥

युक्तियों और चतुराईयो से कुछ भी नही हो सकता है। हे नानक ! (प्रभु ही)कृपा करे तो (जीव) 'उसके' गुणों का ग्राहक हो जाता है ॥४॥८३॥१५२॥

गउड़ी महला ५ ॥

"हरि की प्रेमा-भक्ति से हरि दरबार में प्रतिष्ठा होती है।"

थाती पाई हरि को नाम ॥
बिचरु संसार पूरन सभि काम ॥१॥

जिन जीवों ने हरि नाम की पूँजी प्राप्त की है, वे संसार में निश्शंक होकर भ्रमण करते हैं, क्योंकि उनके सभी काम (कार्य) पूर्ण हुए हैं ॥१॥

वडभागी हरि कीरतनु गाईऐ ॥
पारब्रहम तूं देहि त पाईऐ ॥१॥
रहाउ ॥

(हे भाई !) बड़े भाग्यों के कारण हरि का कीर्तन गाया जाता है। (प्रभु के आगे यह प्रार्थना करनी चाहिए कि) हे परब्रह्म ! जब तू कृपा करके कीर्तन की बख्शिश करता है तब हम पाते (अर्थात् यश गाते) हैं ॥१॥रहाउ॥

हरि के चरण हिरदै उरिधारि ॥
भवसागरु चड़ि उतरहि पारि ॥२॥

(हे भाई !) हरि के चरणों को हृदय के अन्दर धारण कर। इस प्रकार हरि के चरण रूपी जहाज पर बैठ कर तू भवसागर से पार हो जाएगा ॥२॥

साधू संगु करहु सभु कोइ ॥
सदा कलिआण फिरि दूखु न होइ ॥३॥

(हे भाई !) सब कोई साधु की संगति करें फिर सदा के लिए सुख होगा और दु:ख तो कदाचित नहीं (व्याप्त) होगा ॥३॥

प्रेम भगति भजु गुणी निधानु ॥
नानक दरगह पाईऐ मानु ॥४॥
८४॥१५३॥

(हे भाई !) प्रेमा-भक्ति द्वारा गुणों के खजाने हरि का भजन करें, तो हे नानक ! हरि दरबार में तुझे प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। ॥४॥८४॥१५३॥

गउड़ी महला ५ ॥

"हरि नाम स्मरण की महिमा।"

जलि थलि महीअलि
पूरन हरि मीत ॥
भ्रम बिनसे गाए गुण नीत ॥१॥

(हे भाई !) जल, स्थल और पृथ्वी तथा आकाश के मध्य में हरि परिपूर्ण है। 'उसके' गुण नित्य गाने से भ्रम नाश हो जाते हैं ॥१॥

ऊठत सोवत हरि संगि पहरूआ ॥
जाकै सिमरणि जम नही डरूआ
॥१॥ रहाउ ॥

(हे भाई !) उठते, (बैठते), सोते, (जागते) हरि जो हमारा साथी है और हमारा पहरेदार भी है, जिसका स्मरण करने से यम का भय नहीं रहता ॥१॥रहाउ॥

चरण कमल प्रभ रिदै निवासु ॥
सगल दूख का होइआ नासु ॥२॥

(हे भाई !) प्रभु के चरण-कमलों का मेरे हृदय में निवास है, इसलिए सकल दुःख नाश हो गये हैं ॥२॥

आसा माणु ताणु धनु एक ॥
साचे साह की मन महि टेक ॥३॥

(हे भाई !) मुझे आशा भी 'उस' एक की है, मेरा सम्मान, ताकत और धन भी 'वही' एक है। (हाँ, मुझे 'उस') सच्चे का मन में आश्रय है ॥३॥

महा गरीब जन साध अनाथ ॥
नानक प्रभि राखे दे हाथ ॥४॥
८५॥१५४॥

हे नानक ! हम साधु के सेवक अति दीन निराश्रय थे, किन्तु प्रभु ने वरद(वर देने वाला)हाथ देकर रख लिया ॥४॥८५॥१५४॥

गउड़ी महला ५॥

"हरि नाम का स्नान सर्वोत्तम है,किन्तु 'उसकी' कृपा अनिवार्य है।"

हरि हरि नामि मजनु करि सूचे ॥
कोटि ग्रहण पुंन फल मूचे ॥१॥
रहाउ ॥

(हे भाई !) जो जीव हरि नाम में स्नान करके पवित्र हुए हैं, वे करोड़ो ग्रहणादि में स्नान करने का जो फल है, उससे भी अधिक फल प्राप्त करते हैं ॥१॥रहाउ॥

हरि के चरण रिदे महि बसे ॥
जनम जनम के किलविख नसे
॥१॥

(हे भाई !) जिसके हृदय में हरि के चरण बसते हैं, उसके जन्म-जन्मांतरो के पाप दूर हो जाते हैं ॥१॥

साध संगि कीरतन फलु पाइआ ॥
जम का मारगु द्रिसटि न आइआ ॥२॥

(हे भाई !) साधु की संगति से और हरि का कीर्तन करने से यह फल प्राप्त होता है कि यम का मार्ग दृष्टि में नही आता ॥२॥

मन बच क्रम गोबिंद अधारु ॥
ता ते छुटिओ बिखु संसारु ॥३॥

(हे भाई !) जिसका मनसा, वाचा और कर्मणा गोविन्द ही एक मात्र आश्रय है, उससे विष रूपी संसार छूट जाता है ॥३॥

करि किरपा प्रभि कीनो अपना ॥
नानक जापु जपे हरि जपना ॥४॥८६॥१५५॥

(हे भाई !) प्रभु ने कृपा करके हमें अपना कर लिया है और नानक उस जपने योग्य हरि का जाप कर रहा है ॥४॥८६॥१५५॥

गउड़ी महला ५ ॥

"किसकी शरण ग्रहण करनी चाहिए ?"

पउ सरणाई जिनि हरि जाते ॥
मनु तनु सीतलु चरण हरि राते ॥१॥

(हे भाई !) जिन्होंने (प्यारों) हरि को जान लिया है, उनकी शरण में जाकर पड। वे हरि के चरणों में अनुरक्त हैं और उनका मन और तन शीतल हैं ॥१॥

भै भंजन प्रभ मनि न बसाही ॥
डरपत डरपत जनम बहुतु जाही ॥१॥ रहाउ ॥

(हे भाई !) जो (मनमुख) भय-नाशक प्रभु को मन में नहीं बसाते, वे डरते-डरते कई जन्म व्यर्थ ही गँवा देते हैं ॥१॥रहाउ॥

जा कै रिदै बसिओ हरिनाम ॥
सगल मनोरथ ता के पूरन काम ॥२॥

(हे भाई !) जिनके हृदय मे हरिनाम का वास है, उनके सकल मनोरथ और काम पूर्ण होते हैं ॥२॥

जनमु जरा मिरतु जिसु वासि ॥
सो समरथु सिमरि सासि गिरासि ॥३॥

(हे भाई !) हमारा जन्म लेना, वृद्धावस्था को प्राप्त होना तथा मृत्यु जिस समर्थ हरि के वश में है, 'उसको' श्वास लेते, खाते (पीते सर्वदा) स्मरण करो ॥३॥

मीतु साजनु सखा प्रभु एक ॥
नामु सुआमी का नानक टेक ॥४॥८७॥१५६॥

(हे भाई !) एक प्रभु ही मेरा मित्र, सज्जन और साथी है। हे नानक ! ऐसे स्वामी का नाम ही मेरा सहारा है ॥४॥८७॥१५६॥

गउड़ी महला ५ ॥

"हरि नाम की महिमा।"

बाहरि राखिओ रिदै समालि ॥
घरि आए गोविंदु लै नालि ॥१॥

(हे भाई!) यदि संत किसी कार्य के लिए बाहर निकलता है, तो भी हृदय में हरि नाम को संभाल कर रखता है और फिर जब अपने घर में वापस आता है, तो भी गोबिन्द को अपने साथ ही ले आता है ॥१॥

हरि हरि नामु संतन कै संगि ॥
मनु तनु राता राम कै रंगि ॥१॥ रहाउ ॥

(हे भाई!) सर्व दुःखों का हर्ता हरि नाम ही सन्तजनों का साथी है, क्योंकि उनका मन और तन राम के प्रेम-रंग में अनुरक्त है ॥१॥रहाउ॥

गुर परसादी सागरु तरिआ ॥
जनम जनम के किलविख सभि हिरिआ ॥२॥

गुरु की कृपा से वे संसार-सागर से पार हो जाते हैं और (नाम जपकर) जन्म-जन्मातरों के सब पाप दूर करते हैं ॥२॥

सोभा सुरति नामि भगवंतु ॥
पूरे गुर का निरमल मंतु ॥३॥

(हे भाई!) पूर्ण गुरु का पावन उपदेश यह है कि भगवंत् के नाम द्वारा सुरत (उज्जवल) होती है और (सत्संग मे) शोभा होने लगती है ॥३॥

चरण कमल हिरदे महि जापु ॥
नानकु पेखि जीवै परतापु ॥४॥ ८८॥१५७॥

सन्तजन अपने हृदय में हरि के चरण कमलों का जाप करते हैं। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक उनका प्रताप देखकर जीवित है ॥४॥८८॥१५७॥

गउड़ी महला ५ ॥

"सत्संग, (हाँ) गुरु मन्दिर की महिमा"

धंनु इहु थानु गोविंद गुण गाए ॥
कुसल खेम प्रभि आपि बसाए ॥ १ ॥रहाउ ॥

(हे भाई!) धन्य है यह सत्संग रूपी स्थान जिसमें गोबिन्द के गुण गाये जाते हैं ऐसे स्थान पर प्रभु ने स्वयं ही आनन्द और शांति की वर्षा की है ॥१॥रहाउ॥

बिपति तहा जहा हरि सिमरनु नाही ॥
कोटि अनंद जह हरिगुन गाही ॥ १॥

(हे भाई!) जिस स्थान पर हरि का स्मरण नहीं है वहाँ विपत्ति होती है, किन्तु जहाँ हरि के गुण गाये जाते हैं वहाँ करोड़ो आनन्द आकर बसते हैं ॥१॥

हरि बिसरिऐ दुख रोग घनेरे ॥
प्रभ सेवा जमु लगै न नेरै ॥ ॥

(हे भाई !) हरि को विस्मृत करने से अत्याधिक दुःख और रोग आते हैं, किन्तु प्रभु की सेवा करने से यम निकट नहीं आ सकता ॥२॥

सो वडभागी निहचल थानु ॥
जह जपीऐ प्रभ केवल नामु ॥३॥

(हे भाई !) वही जीव भाग्यशाली है और उसी का स्थान निश्चल है जहाँ केवल प्रभु के नाम का ही जाप होता है ॥३॥

जह जाईऐ तह नालि
मेरा सुआमी ॥
नानक कउ मिलिआ अंतरजामी
॥४॥८९॥१५८॥

(मेरे गुरुदेव बाबा) नानक को ऐसा अन्तर्यामी प्रभु मिल गया है कि जहाँ-तहाँ वह मेरा स्वामी साथ ही साथ होता है ॥४॥ ८९॥१५८॥

गउड़ी महला ५ ॥

"हरि नाम के बिना धन-माल झूठा है।"

जो प्राणी गोविंदु धिआवै ॥
पड़िआ अणपड़िआ
परम गति पावै ॥१॥

(हे भाई !) जो प्राणी गोबिन्द का ध्यान करता है, वह चाहे पढ़ा हुआ है या अनपढ है, तो भी परम गत्ति अर्थात् मुक्ति प्राप्त करता है ॥१॥

साधू संगि सिमरि गोपाल ॥
बिनु नावै झूठा धनु मालु ॥१॥
रहाउ ॥

(हे भाई !) साधु की सगति में तू गोपाल का स्मरण कर। बिना नाम के (मायिक) धन - माल (सब) झूठा (अर्थात् नश्वर) है ॥१॥रहाउ॥

रूपवंतु सो चतुरु सिआणा ॥
जिनि जनि मानिआ
प्रभ का भाणा ॥२॥

(हे भाई !)जो प्रभु का हुकम मानता है(अर्थात् सहर्ष स्वीकार करता है) वह सुन्दर रूप वाला, चतुर और सयाना है ॥२॥

जग महि आइआ सो परवाणु ॥
घटि घटि अपणा सुआमी जाणु
॥३॥

(हे भाई !)ससार में आना उसी का सफल है, जिसने घट-घट (प्रत्येक) में अपना स्वामी व्यापक जाना है ॥३॥

कहु नानक जाके पूरन भाग ॥
हरि चरणी ताका मनु लाग ॥४
॥९०॥१५९॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि जिसके पूर्ण भाग्य हैं, उसी का मन हरि के चरणों में लगता है ॥४॥९०॥१५९॥

गउड़ी महला ५ ॥

"प्रभु-भक्तों एवं संसारी मनुष्यों का परस्पर मेल असंभव है।"

हरि के दास सिउ
साकत नही संगु ॥
ओहु बिखई ओसु राम को रंगु ॥
१ ॥ रहाउ ॥

(हे भाई !) हरि के भक्त के साथ अज्ञानी का मेल नहीं जुड़ता क्योंकि माया में आसक्त पुरुष का मन विषयों में लगा होता है और भक्त के मन में राम का प्रेम होता है ॥१॥रहाउ॥

मन असवार जैसे तुरी सीगारी ॥
जिउ कापुरखु पुचारै नारी ॥१॥

(दृष्टांत) जैसे सुसज्जित घोड़ी पर ख्याली सवार नहीं चढ़ सकता; जैसे खुसरा स्त्री को प्यार करता है (किन्तु रस नही मान सकता), ॥१॥

बैल कउ नेत्रा पाइ दुहावै ॥
गऊ चरि सिंघ पाछै पावै ॥२॥

जैसे बैल को रस्सी डालकर यदि दुहा जाय (तो दूध नही प्राप्त होता), जैसे गऊ पर चढकर शेर के पीछे दौड़े (तो शेर को पकड़ या मार नहीं सकता) ॥२॥

गाडर ले कामधेनु करि पूजी ॥
सउदे कउ धावै बिनु पूंजी ॥३॥

जैसे भेड़ को लेकर कामधेनु के समान समझ कर पूजे (तो कामना पूर्ण नही हो सकती), जैसे (खरीदार) बिना पूंजी के दौडता फिरे (तो सौदा खरीद नही सकता) ॥३॥

नानक राम नामु जपि चीत ॥
सिमरि सुआमी हरि सा मीत ॥४
॥६१॥१६० ॥

हे नानक ! (साकत की संगति का त्याग करके और सन्तो की संगति प्राप्त करके तू) राम नाम का चित्त से जाप कर और हरि जैसे स्वामी मित्र का (सदैव) स्मरण कर ॥४॥६१॥१६०॥

गउड़ी महला ५ ॥

"साधु की चरण-धूलि से राम रसायन प्राप्त होता है।"

सा मति निरमल कहीअत धीर ॥
राम रसाइणु पीवत बीर ॥१॥

(हे भाई !) मति वह निर्मल कही जाती है जिसमें धैर्य हो और जिसके द्वारा शूरवीर (कामादि शत्रुओं को जीत कर) राम (नाम) की औषधि पीते हैं ॥१॥

हरि के चरण हिरदै करि ओट ॥
जनम मरण ते होवत छोट ॥१॥
रहाउ ॥

(प्रश्न ! जो शूरवीर हैं वे विकारों को जीतकर रामनाम अमृत का पान करते हैं, किन्तु मैं क्या करूँ ? उत्तरः)(हे भाई !)तू हरि के चरणों का हृदय मे सहारा रख क्योंकि तेरा जन्म मरण से छुटकारा हो जायेगा ॥१॥रहाउ॥

सो तनु निरमलु
जितु उपजै न पापु ॥
राम रंगि निरमल परतापु ॥२॥

(हे भाई !) तन वह निर्मल है जिसमें पाप उत्पन्न नहीं होता। राम के प्रेम-रंग में जीव का प्रताप निर्मल (मल से रहित) होता है ॥२॥

साध संगि मिटि जात बिकार ॥
सभ ते ऊच एहो उपकार ॥३॥

(उस प्रताप से और) साधु की संगति करने से (कामादि) विकार मिट जाते हैं। (हे भाई !)सब से ऊँचा उपकार यही है (कि विकारी के विकार दूर करने हैं) ॥३॥

प्रेम भगति राते गोपाल ॥
नानक जाचै साध रवाल ॥४॥
६२॥१६१॥

(हे नानक !) मैं उन साधुओं की चरण-धूलि माँगता हूँ, जो गोपाल की प्रेमा-भक्ति में अनुरक्त है ॥४॥६२॥१६१॥

गउड़ी महला ५ ॥

"सच्ची प्रीति है गोबिन्द को आठ प्रहर स्मरण करना।"

ऐसी प्रीति गोबिंद सिउ लागी ॥
मेलि लए पूरन वडभागी ॥१॥
रहाउ ॥

(हे भाई !) जिन जीवों की ऐसी प्रीति है (जो निम्नलिखित पदों में बताई गई है) उनको गोविन्द अपने साथ मिला लेता है और वे (प्रेमी) भाग्यशाली हैं ॥१॥रहाउ॥

भरता पेखि बिगसै जिउ नारी ॥
तिउ हरि जनु जीवै नामु चितारी ॥१॥

जैसे पति को देखकर स्त्री प्रसन्न होती है, उसी प्रकार हरि का सेवक नाम का चिन्तन करके जीवित होता है ॥१॥

पूत पेखि जिउ जीवत माता ॥
ओति पोति जनु हरि सिउ राता ॥२॥

जैसे पुत्र को देखकर माता जीवित (आनन्दित) होती है, उसी प्रकार हरि का सेवक ओत-प्रोत हरि के साथ रँगा हुआ होता है ॥२॥

लोभी अनदु करै पेखि धना ॥
जन चरन कमल सिउ लागो मना ॥३॥

जैसे लोभी (जीव)धन को देखकर आनन्दित होता है, उसी प्रकार (हरि के) सेवक का मन (हरि के) चरण-कमलों के साथ लगा हुआ होता है ॥३॥

बिसरु नही इकु तिलु दातार ॥
नानक के प्रभ प्रान अधार ॥४॥
६३॥१६२॥

(प्रार्थना) हे दाता ! हे प्रभु ! हे नानक के प्राणों के आधार ! एक क्षण भर के लिए (आप) मुझे विस्मृत न हों (यही दान आपसे माँगता हूँ।) ॥४॥६३॥१६२॥

गउड़ी महला ५ ॥

"नाम के बिना अन्य रस भस्म तुल्य हैं।"

राम रसाइणि जो जन गीधे ॥
चरन कमल प्रेम भगती बीधे ॥१ ॥ रहाउ ॥

(हे भाई !) जो राम (नाम) रूपी औषधि(पीकर) रत (मस्त) हुए हैं, वे हरि के चरण कमलों की भक्ति से बिंधे हुए हैं ॥१॥ रहाउ॥

आन रसा दीसहि सभि छारु ॥
नाम बिना निहफल संसार ॥१॥

(उन्हें राम नाम के रसायण के बिना) अन्य सब रस भस्म-वत् दीखते हैं, क्योंकि (वे समझते हैं कि) नाम के बिना संसार मे जीना निष्फल है ॥१॥

अंध कूप ते काढे आपि ॥
गुण गोविंद अचरज परताप ॥२॥

उनको हरि स्वयं अन्ध कूप में से निकालता है। गोबिन्द के गुण गाने का यह आश्चर्यजनक प्रताप है ॥२॥

वणि तृणि त्रिभवणि पूरन गोपाल ॥
ब्रहम पसारु जीअ संगि दइआल ॥३॥

गोपाल (बन) वन में, वण-तृण में और तीनो लोकों (भाव समस्त ससार) में भरपूर है। जिस ब्रह्म का यह (समस्त) विस्तार है (भाव ससार है) 'उस' दयालु प्रभु को वे अपना साथी समझते हैं ॥३॥

कहु नानक सा कथनी सारु ॥
मानि लेतु जिसु सिरजनहारु ॥४ ॥९४॥१६३॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि कथनी उसी की श्रेष्ठ है, जिसकी कर्त्ता मान लेता है अथवा जिसकी कथा को सृष्टा सम्मान देता है ॥४॥९४॥१६३॥

गउड़ी महला ५ ॥

"सत्संग की महिमा सरोवर के रूप में।"

नितप्रति नावणु रामसरि कीजै ॥
झोलि महा रसु हरि अंमृतु पीजै ॥१॥ रहाउ ॥

(हे भाई !) नित्यप्रति राम के सरोवर (अर्थात् सत्सग) में स्नान करना चाहिए। हाथों से (भली भाँति) हिलाकर हरि (नाम)रूपी महारस, जो अमृत है, पीना चाहिए ॥१॥रहाउ॥

निरमल उदकु गोविंद का नामु ॥
मजनु करत पूरन सभि काम ॥१॥

(हे भाई !) (उस सरोवर में) गोबिन्द के नाम का निर्मल जल है, जिसमें स्नान करने से सभी मनोरथ पूरे होते हैं ॥१॥

संत संगि तह गोसटि होइ ॥
कोटि जनम के किलविख खोइ ॥२॥

(फिर) वहाँ सन्तों के साथ (हरिनाम के सम्बन्ध में) गोष्ठी होती है, जिससे करोड़ों जन्मों के पाप दूर हो जाते हैं ॥२॥

सिमरहि साध करहि आनंदु ॥
मनि तनि रविआ परमानंदु ॥३॥

(फिर वहाँ) साधु (मिलते हैं जो हरि का) स्मरण करके आनन्दित होते हैं, जिनके तन मन में परम आनन्द रूपी स्वरूप (हरि) निवास करता है ॥३॥

जिसहि परापति
हरि चरण निधान ॥
नानक दास तिसहि कुरबान ॥४॥९५॥१६४॥

हरि के चरण जो निधियों के घर हैं (भाव सब तरह के सुखों को देने वाले हैं) जिसको प्राप्त होते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक उस पर कुर्बान (जाता) है ॥४॥९५॥१६४॥

गउड़ी महला ५ ॥

"श्रेष्ठ वैष्णव वह है जो विकारों का त्याग करता है।"

सो किछु करि
जितु मैल न लागै ॥
हरि कीरतन महि एहु मनु जागै ॥१॥ रहाउ ॥

(हे भाई!) वह कुछ कर जिससे (तुझे) पाप रूपी मैल न लगे और (तेरा शुद्ध) मन हरि के कीर्तन में जागता रहे ॥१॥रहाउ॥

एको सिमरि न दूजा भाउ ॥
संत संगि जपि केवल नाउ ॥१॥

(हे भाई!) एक हरि का स्मरण कर, (हाँ) 'उसके' बिना किसी) अन्य को प्यार नहीं कर। 'उस' (हरि)का केवल नाम जप किन्तु सन्त की संगति में आकर ॥१॥

करम धरम नेम व्रत पूजा ॥
पारब्रहम बिनु जानु न दूजा ॥२॥

(हे भाई!) कर्म, धर्म, नेम, व्रत, पूजादि तभी सफल हैं, यदि परब्रह्म के बिना किसी अन्य को न जाने ॥२॥

ता की पूरन होई घाल ॥
जा की प्रीति अपुने प्रभ नालि ॥३॥

(हे भाई!) जिसकी प्रीति अपने प्रभु के साथ है, उसी की कमाई (सेवा) पूर्ण हुई है ॥३॥

सो बैसनो है अपर अपारु ॥
कहु नानक जिनि तजे बिकार ॥४॥९६॥१६५॥

(हाँ) वह जीव श्रेष्ठ से श्रेष्ठ (अपरंपार) वैष्णव है, जिसने विकारों का त्याग किया है। कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब) ॥४॥९६॥१६५॥

गउड़ी महला ५ ॥

"रामनाम से जीव का उद्धार होता है।"

जीवत छाडि जाहि देवाने ॥
मुइआ उन ते को वरसाने ॥१॥

हे पागल ! जो सम्बन्धी जीते ही छोड़ जाते हैं, मरने के पश्चात् उनसे कौन लाभ (सुख) प्राप्त कर सकता है ? ॥१॥

सिमरि गोबिंदु मनि तनि
धुरि लिखिआ ॥
काहू काज न आवत बिखिआ ॥१
॥ रहाउ ॥

(अतः तू) गोविन्द का मन और तन से स्मरण कर जिसका अस्तित्व पहले से ही लिखा हुआ है। (जिस माया में तू आजकल है) वह विषवत् माया किसी काम नहीं आती ॥१॥रहाउ॥

बिखै ठगउरी जिनि जिनि खाई ॥
ता की त्रिसना कबहूं न जाई ॥२॥

(हे भाई !) विषवत् माया की उगने वाली जडी बूटी जिस-जिस जीव ने खाई है, उसकी तृष्णा कभी नहीं जाती ॥२॥

दारन दुख दुतर संसारु ॥
रामनाम बिनु कैसे उतरसि पारि
॥३॥

(हे भाई !)यह दुष्कर संसार भयानक दुखों का(मानो सागर) है। रामनाम के बिना तू कैसे (इस भव सागर से) पार हो सकता है ? ॥३॥

साध संगि मिलि दुइ कुल साधि ॥
रामनाम नानक आराधि ॥४॥
६७॥१६६॥

(हे भाई !) साधु की संगति में रहकर तू दोनों कुल (अर्थात् नानके और दादके) का उद्धार कर,(हां) हे नानक ! रामनाम की आराधना करके ॥४॥६७॥१६६॥

गउड़ी महला ५ ॥

"हरि स्वयं अपने सेवक की रक्षा करता है, जबकि निंदक को 'वह' स्वयं ही मारता है।"

गरीबा उपरि जि खिंजै दाड़ी ॥
पारब्रहमि सा अगनि महि साड़ी
॥१॥

(हे भाई !) जो दाड़ी (अहंकार के कारण) गरीबों पर नाराज़ होता है उसे परब्रह्म ने अग्नि मे जला दिया है ॥१॥

पूरा निआउ करे करतारु ॥
अपुने दास कउ राखनहारु ॥१॥
रहाउ ॥

(हे भाई !)मेरा कर्त्ता पूर्ण न्याय करता है क्योंकि 'वह' अपने सेवक की स्वयं रक्षा करने वाला है ॥१॥रहाउ॥

आदि जुगादि प्रगटि परतापु ॥
निंदकु मुआ उपजि वड तापु ॥२॥

'उसका' प्रताप (सृष्टि के) आदि से, (हाँ) युगों के प्रारम्भ से (भाव सदा) से प्रकट है। निन्दक बड़ा दुख उठाकर मरता है ॥२॥

तिनि मारिआ जि रखै न कोइ ॥
आगै पाछै मंदी सोइ ॥३॥

'उस' परमेश्वर ने (स्वयं) मारा है, जिससे कोई बचा नहीं सकता। (इस लोक में अथवा परलोक में) आगे-पीछे उसकी मन्दी शोभा (बदनामी) होती है ॥३॥

अपुने दास राखै कंठि लाइ ॥
सरणि नानक हरिनामु धिआइ ॥४॥६८॥१६७॥

निज अपने सेवक की रक्षा स्वयं (प्रभु) गले से लगाकर करता है, हे नानक! मैं 'उसकी' शरण लेकर हरिनाम का ध्यान करता हूँ ॥४॥६८॥१६७॥

गउड़ी महला ५ ॥

"प्रभु की सच्ची दरबार में झूठा महजरनामा प्रकट हो ही जाता है।"

महजरु झूठा कीतोनु आपि ॥
पापी कउ लागा संतापु ॥१॥

महजरनामा (साक्षीपत्र) (गोबिन्द ने) स्वयं झूठा किया है इस प्रकार उस पापी को वहाँ दुःख लगा है ॥१॥

जिसहि सहाई गोबिदु मेरा ॥
तिसु कउ जमु नही आवै नेरा ॥१॥ रहाउ ॥

(हे भाई!) जिसका सहायक मेरा गोबिन्द है, उसके निकट यम नहीं आ सकता ॥१॥रहाउ॥

साची दरगह बोलै कूड़ ॥
सिरु हाथ पछोड़ै अंधा मूड़ ॥२॥

सच्ची दरबार में जो झूठ बोलता है वह, अन्धा मूर्ख सिर पर हाथ पटक कर पश्चाताप करता है ॥२॥

रोग बिआपे करदे पाप ॥
अदली होइ बैठा प्रभु आपि ॥३॥

(हे भाई!) पाप करने वालों को रोग लगते हैं क्योंकि न्याय कर्त्ता स्वयं सर्वत्र बैठा हुआ है ॥३॥

अपन कमाइऐ आपे बाधे ॥
दरबु गइआ सभु जीअ कै साथै ॥४॥

(हे भाई!) अपने किये अशुभ कर्मों के कारण आप ही बन्धनों में पड़ जाते हैं। धनादि जो पदार्थ थे, (मरने पर) जीव के साथ ही चले गये ॥४॥

नानक सरनि परे दरबारि ॥
राखी पैज मेरै करतारि ॥५॥६९॥१६८॥

(मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (उस सच्ची) दरबार की शरण में पड़ा है। इसलिए मेरे कर्त्ता ने मेरी लज्जा रख ली है ॥५॥६९॥१६८॥

गउड़ी महला ५ ॥

जन की धूरि मन मीठ खटानी ॥
पूरबि करमि लिखिआ धुरि प्रानी
॥१॥ रहाउ ॥

"साधु की धूलि से स्नान कर"

(हे भाई !) मेरे मन को सन्तजनों की (चरण) धूलि मीठी लगती है किन्तु वह उसे प्राप्त होती है जिस प्राणी के (कर्मों) भाग्यों में पहले से ही (लेख) लिखा हुआ है ॥१॥ रहाउ॥

अहंबुधि मन पूरि थिधाई ॥
साध धूरि करि सुध मंजाई ॥१॥

(हे भाई !) जो मन अहंकार की बुद्धि करके चिकनाहट से भरा हुआ था, उसको साधु की धूलि से मांजने से शुद्ध किया है॥१॥

अनिक जला जे धोवै देही ॥
मैलु न उतरै सुधु न तेही ॥२॥

यदि अनेक (तीर्थों पर) जल के साथ देही को साफ किया जाये, न उसकी (अहंकार की) मैल उतरती है और न ही (देही) शुद्ध होती है ॥२॥

सतिगुरु भेटिओ सदा क्रिपाल ॥
हरि सिमरि सिमरि काटिआ भउ
काल ॥३॥

(हे भाई !) हमें सत्गुरु मिला है, जो सदा कृपालु है। सत्गुरु के द्वारा हमने हरि का स्मरण कर-करके मृत्यु का भय काट दिया है ॥३॥

मुकति भुगति जुगति हरि नाउ ॥
प्रेम भगति नानक गुण गाउ ॥४॥
१००॥१६९॥

(हे भाई !) मुक्ति और भुक्ति की युक्ति हरि नाम जपने से प्राप्त होती है। हे नानक ! प्रेमा भक्ति के साथ 'उसके' गुण गाओ ॥४॥१००॥१६९॥

गउड़ी महला ५ ॥

जीवन पदवी हरि के दास ॥
जिन मिलिआ आतम परगासु
॥१॥

"हरि के दास की संगति में बैठकर स्मरण कर।"

हरि के दास (भाव भक्तजन) जीवन पदवी देने वाले हैं, जिनके मिलने से आत्म-प्रकाश प्राप्त होता है ॥१॥

हरि का सिमरनु सुनि मन कानी ॥
सुखु पावहि हरि दुआर परानी ॥
१॥ रहाउ ॥

हे प्राणी ! तू हरि का स्मरण मन से कर और कानों से सुन तब तू हरि के द्वार पर परम सुख प्राप्त करेगा ॥१॥रहाउ॥

आठ पहर धिआईऐ गोपालु ॥
नानक दरसनु देखि निहालु ॥२॥
१०१॥१७०॥

हे नानक ! आठ प्रहर 'उस' गोपाल का ध्यान कर जिसका दर्शन देखने से जीव कृतार्थ हो जाता है ॥२॥१०१॥१७०॥

गउड़ी महला ५ ॥

"रामनाम में सुख, शान्ति और उद्धार है।"

सांति भई गुर गोबिदि पाई ॥
ताप पाप बिनसे मेरे भाई ॥१॥
रहाउ ॥

हे मेरे भाई ! ताप संताप आदि सब दूर हो गए हैं। (अब) शान्ति हुई है। गुरु ने,(हाँ स्वयं) गोबिन्द ने (शान्ति) दी है ॥१॥ रहाउ॥

रामनामु नित रसन बखान ॥
बिनसे रोग भए कलिआन ॥१॥

(हे भाई !) राम का नाम सदा रसना से उच्चारण करने से (सभी) रोग नष्ट हो गये और सुख (प्राप्त) हुआ ॥१॥

पारब्रहम गुण अगम बीचार ॥
साधू संगमि है निसतार ॥२॥

(हे भाई !) परब्रह्म के अगम्य गुणों का तू विचार कर, किन्तु (याद रहे) साधु सगति से छुटकारा (प्राप्त) होता है ॥२॥

निरमल गुण गावहु नित नीत ॥
गई बिआधि उबरे जन मीत ॥३॥

(हे भाई !) गोबिन्द के निर्मल गुण सदा-सर्वदा गाओ (फिर समझो) कि व्याधि(पीड़ा)चली गई और वे दास मित्र(यमराज से) बच गए हैं ॥३॥

मन बच क्रम प्रभु अपना धिआइ ॥
नानक दास तेरी सरणाइ ॥४॥
१०२॥१७१॥

(हे भाई !) मन, वचन, कर्म द्वारा अपने प्रभु का ध्यान कर। हे नानक ! मैं तेरी शरण में आया हूँ ॥४॥१०२॥१७१॥

गउड़ी महला ५ ॥

"चेचक की बीमारी से पूर्णतः तन्दरुस्ती प्राप्त होने पर प्रभु के सम्मुख धन्यवाद।"

नेत्र प्रगासु कीआ गुरदेव ॥
भरम गए पूरन भई सेव ॥१॥
रहाउ ॥

(मेरे)गुरुदेव(गुरु रामदास की कृपा से)गुरु हर गोविन्द साहब ने नेत्र खोले हैं। (क्योंकि उन्हें माता चेचक का रोग हुआ था)। अब भ्रम दूर हो गये हैं और (सेवको की) सेवा भी पूर्ण (सफल) हुई है ॥१॥रहाउ॥

सीतला ते रखिआ बिहारी ॥
पारब्रहम प्रभ किरपाधारी ॥१॥

चेचक के रोग से आनन्द-दाता हरि ने (हरगोबिन्द को) बचा लिया। (हाँ) परब्रह्म प्रभु ने उस पर कृपा की है ॥१॥

नानक नामु जपै सो जीवै ॥
साधसंगि हरि अंम्रितु पीवै ॥ २
॥१०३॥१७२॥

हे नानक ! जो जीव नाम जपता है, वह साधु की सगति में हरि नाम रूपी अमृत को पीता है ॥२॥१०३॥१७२॥

गउड़ी महिला ५ ॥

"हरिनाम की महिमा ।"

धनु ओहु मसतकु धनु तेरे नेत ॥
धनु ओइ भगत जिन तुम संगि हेत ॥१॥

(हे प्रभु !) धन्य वह मस्तक है (जो तेरे चरणों में झुकता है), धन्य वे नेत्र हैं (जो तेरा दर्शन करते हैं) और धन्य वे भक्त हैं जिसको तुम्हारे साथ प्रेम है ॥१॥

नाम बिना कैसे सुखु लहीऐ ॥
रसना रामनाम जसु कहीऐ ॥१॥ रहाउ ॥

(हे भाई !) हरि नाम के बिना कहाँ सुख प्राप्त करें (आप ढूंढे) ? इसलिए रसना से (केवल) राम के नाम का यश उच्चारण करें ॥१॥रहाउ॥

तिन ऊपरि जाईऐ कुरबाणु ॥
नानक जिनि जपिआ निरबाणु ॥ २ ॥ १०४ ॥ १७३ ॥

हे नानक ! जिन्होंने (प्यारों)निर्लेप परमात्मा का जाप किया है, उनके ऊपर (सदा) कुर्बान जाना चाहिए ॥२॥१०४॥१७३॥

गउड़ी महिला ५ ॥

"प्रभु ही भक्तजनों की सार सम्भालने वाला है ।"

तूं है मसलति तूं है नालि ॥
तूं है राखहि सारि समालि ॥१॥

(हे प्रभु !) तू ही भक्तजनों को सलाह, मशविरा देने वाला है, तू ही (उनका) साथी है, तू ही (उनकी खबर) रखता है और तू ही उनकी रक्षा भी करता है ॥१॥

ऐसा रामु दीन दुनी सहाई ॥
दास की पैज रखै मेरे भाई ॥१॥ रहाउ ॥

हे मेरे भाई ! ऐसा है मेरा राम जो (भक्त) जनों की इज्जत रखता है और दीन दुनिया में सहायक होता है ॥१॥रहाउ॥

आगै आपि इहु थानु वसि जाकै ॥
आठ पहर मनु हरि कउ जापै ॥२

आगे भी (परलोक में) 'वह' आप (सहायक) है और इस लोक में भी जिसके वश में (सब कुछ)है । हे (मेरे) मन ! ऐसे हरि को तू आठ प्रहर जपता रह ॥२॥

पति परवाणु सचु नीसाणु ॥
जाकउ आपि करहि फुरमानु ॥३॥

(हे हरि !) जिसको तू अपनी आज्ञा प्रदान करता है उसकी प्रतिष्ठा आपको मान्य है और उसको सत्य का चिन्ह पड़ता है । (अर्थात् 'उसकी' दरबार में स्वीकृति होती है) ॥३॥

आपे दाता आपि प्रतिपालि ॥
नित नित नानक रामनामु समालि ॥४॥१०५॥१७४॥

हे नानक ! (तू भी) सदा सर्वदा राम नाम याद कर क्योंकि प्रभु स्वयं दाता है और स्वय ही पालन पोषण करने वाला है । ॥४॥१०५॥१७४॥

गउड़ी महला ॥ ५ ॥

"हरि कृपा से जाप और सुख।"

सतिगुरु पूरा भइआ क्रिपालु ॥
हिरदै बसिआ सदा गुपालु ॥१॥

जिस पर मेरा पूर्ण सत्गुरु कृपालु हुआ है, उसके हृदय में सदा गोपाल बसता है ॥१॥

रामु रवत सद ही सुखु पाइआ ॥
मइआ करी पूरन हरि राइआ
॥१॥ रहाउ ॥

(हे भाई !) जिस जीव पर पूर्ण हरि राजा ने दया की है, वह राम (नाम) जप कर सुख प्राप्त करता है ॥१॥रहाउ॥

कहु नानक जा के पूरे भाग ॥
हरि हरि नामु असथिरु सोहागु
॥२॥ १०६ ॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक जिसके पूर्ण भाग्य (उदय हुए) हैं वह सर्व दुःखों के हर्त्ता हरि नाम को जपकर स्थिर सुहाग (पति-परमेश्वर) को प्राप्त करता है ॥२॥१०६॥

गउड़ी महला ५ ॥

"सच्चा ब्राह्मण शुद्ध हृदय से हरि का ही विचार करता है।"

धोती खोलि विछाए हेठि ॥
गरधप वांगू लाहे पेटि ॥१॥

(हे दम्भी !) तू धोती खोलकर (अर्थात् नग्न होकर) नीचे बिछाता है और खोते के समान पेट भरता है (अर्थात् तू यह विचार तक नहीं करता कि विवाहोत्सव पर मिला भोजन हलाल का है या हराम का है) ॥१॥

बिनु करतूती मुकति न पाईऐ ॥
मुकति पदारथु नामु धिआईऐ
॥१॥ रहाउ ॥

(हे भाई !) बिना शुभ कर्मों के (सांसारिक बन्धनों से) मुक्ति प्राप्त नहीं होती। मुक्ति का पदार्थ नाम का ध्यान करने से प्राप्त होता है ॥१॥रहाउ॥

पूजा तिलक करत इसनानां ॥
छुरी काढि लेवै हथि दाना ॥२॥

(हे भाई !) तू स्नान भी करता है, पूजा भी करता है और मस्तक पर तिलक भी लगाता है किन्तु, हाथ में छुरी दिखाकर (बलपूर्वक) दान लेता है ॥२॥

बेदु पड़ै मुखि मीठी बाणी ॥
जीआं कुहत न संगै पराणी ॥३॥

तू मुख से मधुर स्वर में वेदों की वाणी पढ़ता है, किन्तु हे प्राणी ! तू जीवों को मारने से संकोच नहीं करता ॥३॥

कहु नानक जिसु किरपा धारै ॥
हिरदा सुधु ब्रहमु बीचारै ॥ ४
॥ १०७ ॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि जिस पर हरि की कृपा है, उसका हृदय शुद्ध है और वह ब्रह्म का विचार करता है ॥४॥
१०७॥

गउड़ी महला ५ ॥

"निज घर में स्थिर होकर बैठना ही श्रेयस्कर है।"

थिरु घरि बैसहु हरिजन पिआरे ॥
सतिगुरि तुमरे काज सवारे ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हे हरि के प्यारे सेवकों ! अपने (निज) घर में टिककर बैठो क्योंकि सत्गुरु ने तुम्हारे कार्य पूर्ण कर दिये हैं ॥१॥रहाउ॥

दुसट दूत परमेसरि मारे ॥
जन की पैज रखी करतारे ॥१॥

(हे भाई !) दुष्ट दुश्मनों को परमेश्वर ने आप मारा है। कर्ता ने इस प्रकार अपने दासों की लज्जा रखी है ॥१॥

बादिसाह साह सभ वसि करि दीने ॥
अंमृतनाम महा रस पीने ॥२॥

(हे भाई !) बादशाह, राजा और अन्य सभी को वश में कर दिया है और अब अमृत-नाम महारस को पी रहा हूँ ॥२॥

निरभउ होइ भजहु भगवान ॥
साधसंगति मिलि कीनो दानु ॥३॥

हे भाई ! (तू भी) निर्भय होकर भगवान का भजन कर और साधू की संगति में मिलकर दान कर ॥३॥

सरणि परे प्रभ अंतरजामी ॥
नानक ओट पकरी प्रभ सुआमी ॥४॥ १०८ ॥

मैं अन्तर्यामी परमेश्वर की शरण में आकर पड़ा हूँ ।(मेरे गुरुदेव बाबा) नानक ने तो प्रभु स्वामी की ओट (टेक) पकड़ी है ॥४॥१०८॥

गउड़ी महला ५ ॥

"हरि-रंग ही सर्वोत्तम रंग है जो नाम जपने से चढ़ता है।"

हरि संगि राते भाहि न जलै ॥
हरि संगि राते माइआ नही छलै ॥
हरि संगि राते नही डूबै जला ॥
हरि संगि राते सुफल फला ॥१॥

(हे भाई!) जो हरि की संगति में अनुरक्त हैं, वे तृष्णा रूपी अग्नि में नहीं जलते, जो हरि की संगति में अनुरक्त हैं, उनको माया नही ठगती, जो हरि की संगति में अनुरक्त हैं, वे (भक्त कबीर, भक्त प्रह्लादादि जैसे) जल में नहीं डूबते और जो हरि की संगति में अनुरक्त हैं, वे श्रेष्ठ फलों से फलीभूत होते हैं ॥१॥

सभ भै मिटहि तुमारै नाइ ॥
भेटत संगि हरि हरि गुन गाइ ॥ रहाउ ॥

(हे भाई !) तुम्हारे सभी भय हरिनाम का ध्यान करने से मिट जायेंगे। इसलिए (तू)साधु की संगति में मिलकर सर्व दुःखों के हर्ता हरि के गुन गाओ ॥रहाउ॥

हरि संगि राते मिटै सभ चिंता ॥
हरि सिउ सो रचै
जिसु साध का मंता ॥
हरि संगि राते जम की नही त्रास ॥
हरि संगि राते पूरन आस ॥२॥

(हे भाई !) जो हरि की संगति में अनुरक्त हैं, उनकी सब चिन्ता मिट जाती है, किन्तु हरि में अनुरक्त वे होते हैं जिनको साधु का मन्त्र (उपदेश) प्राप्त होता है।
जो हरि की संगति में अनुरक्त हैं, उन्हें यम का भय नही होता और जो हरि की संगति में अनुरक्त हैं, उनकी सभी आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥२॥

हरि संगि राते दूखु न लागै ॥
हरि संगि राता अनदिनु जागै ॥
हरि संगि राता सहज घरि वसै ॥
हरि संगि राते भ्रमु भउ नसै ॥३॥

(हे भाई !) जो हरि की संगति मे अनुरक्त हैं, उन्हे दुःख नही लगता, जो हरि की सगति मे अनुरक्त हैं, वे रात-दिन (माया के प्रति) जागते हैं, जो हरि की सगति मे अनुरक्त हैं, वे सहज ही (निज)घर मे बसते हैं और जो हरि की संगति मे अनुरक्त हैं,उनके (सभी)भय और भ्रम दौड जाते हैं (अर्थात नष्ट हो जाते हैं।)॥३॥

हरि संगि राते मति ऊतम होइ ॥
हरि संगि राते निरमल सोइ ॥
कहु नानक तिन कउ बलि जाई ॥
जिन कउ प्रभु मेरा बिसरत नाही
॥४॥ १०६ ॥

(हे भाई !) जो हरि की संगति में अनुरक्त हैं, उनकी बुद्धि उत्तम होती है और जो हरि की सगति मे अनुरक्त हैं,उनकी शोभा निर्मल होती है। कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक मैं उन पर बलिहारी जाऊँ जिन को मेरा प्रभु कभी भी नही भूलता (अर्थात् जो आठ ही प्रहर हरि का स्मरण करते हैं) ॥४॥१०६॥

गउड़ी महला ५ ॥

"स्व-स्वरूप की प्राप्ति साधु-संगति से ही सभव है।"

उदमु करत सीतल मन भए ॥
मारगि चलत सगल दुख गए ॥
नामु जपत मनि भए अनंद ॥
रसि गाऐ गुन परमानंद ॥१॥

(साधु-संगति में जाने का) उद्यम करने से मन (आदि) शीतल हो गए। (सन्त) मार्ग में चलने से सब दुःख दूर हो गये। नाम जपने से मन में आनन्द हुआ है, इसलिए मैं रस से (अर्थात् प्रेम से) परमानन्द प्रभु के गुण गाता हूँ ॥१॥

खेम भइआ कुसल घरि आए ॥
भेटत साध संगि
गई बलाए ॥रहाउ ॥

(हे भाई !) जब स्व स्वरूप (घर) मे आनन्द से प्रवेश किया तो (आत्मिक) सुख प्राप्त हुआ इस प्रकार साधु सगति की प्राप्ति से अविद्या रूपी बला दूर हो गई ॥रहाउ॥

नेत्र पुनीत पेखत ही दरस ॥
धनि मसतक चरन कमल ही
परस ॥

(साधु-सन्तों के) दर्शन करते ही नेत्र पवित्र हो गये और चरण कमलों के स्पर्श मात्र से ही मस्तक धन्य हो गया। गोविन्द की

गोबिंद की टहल
सफल इह कांइआ ॥
संत प्रसादि परम पदु पाइआ ॥२॥

सेवा से यह शरीर सफल हो गया और सन्तों की कृपा से सर्वोत्तम पदवी (मुक्ति) प्राप्त हो गई ॥२॥

जन की कीनी आपि सहाइ ॥
सुखु पाइआ लगि दासहि पाइ ॥
आपु गइआ ता आपहि भए ॥
कृपा निधान की सरनी पए ॥३॥

(हे भाई !) प्रभु ने स्वयं अपने सेवक की सहायता की है। हरि के सेवकों के चरणों में लगने से सुख पाया है। जब अहम्भाव नाश हुआ तो स्वयं हरि का रूप हुए हैं, किन्तु पहले कृपानिधि परमेश्वर की शरण में पड़ा था ॥३॥

जो चाहत सोई जब पाइआ ॥
तब ढूंढन कहा को जाइआ ॥
असथिर भए बसे सुख आसन ॥
गुर परसादि नानक सुख बासन
॥ ४ ॥ ११० ॥

(हे भाई !) जो चाहता था (अर्थात् परमेश्वर), 'वह' जब (गुरु की कृपा से) प्राप्त किया तो फिर बाहर ढूंढने को भला मैं किस लिए जाऊँ ? अब मैं स्थिर हुआ हूँ और सुखासन पर मैं निवास करता हूँ।

हे नानक ! गुरु की कृपा से (अब मैं) सुख में निवास करता हूँ(क्योंकि जो चाहा था वही प्राप्त हुआ भाव · हरि) ॥४॥११०॥

गउड़ी महला ५ ॥

"नाम का जाप सर्वोत्तम है।"

कोटि मजन कीनो इसनान ॥
लाख अरब खरब दीनो दानु ॥
जा मनि वसिओ हरि को नामु
॥१॥

जब हरि का नाम मन में निवास कर जाय, (हे भाई !) तब समझिए करोड़ो ही पर्वों पर डुबकियाँ (गोते) लगा कर स्नान किये गये और लाखों, अरबों, खरबों (रुपयो)के दान दे दिये ॥१॥

सगल पवित गुन गाइ गुपाल ॥
पाप मिटहि साधू सरनि दइआल
॥ रहाउ ॥

(हे भाई !) सब जीव गोपाल के गुण गा कर पवित्र हो गये, याद रहे साधु दयालु की शरण में आने से सभी पाप मिटते हैं ॥रहाउ॥

बहुतु उरध तप साधन साधे ॥
अनिक लाभ मनोरथ लाधे ॥
हरि हरि नाम रसन आराधे ॥२॥

(हे भाई !) जब सर्व दुःखों के हर्ता-हरि नाम की आराधना रसना से करते हैं तो (समझिये) बहुत कठिन तप (उलटे होकर तप करना) हो गये और बहुत लाभ और अभीष्ट (आशय के अनुसार) मनोरथों की सिद्धि हो गई ॥२॥

सिमृति सासत बेद बखाने ॥
जोग गिआन सिध सुख जाने ॥
नामु जपत प्रभ सिउ मन माने ॥३॥

(हे भाई !)जब प्रभु के नाम जपने से मन सन्तुष्ट हो जाता है, तो (समझिये) (२७)स्मृतियों, (६)शास्त्रों और(४)वेदों का वर्णन हो चुका (अर्थात् पढ़ लिये) तथा योग, ज्ञान और सिद्धियों के सुखों को जान लिया (अर्थात् प्राप्त कर लिया) ॥३॥

अगाधि बोधि हरि अगम अपारे ॥
नामु जपत नामु रिदे बीचारे ॥
नानक कउ प्रभ किरपा धारे ॥४॥१११॥

हे अगाध बोध हरि ! हे अगम्य ! हे अपार (प्रभु) ! मैं तेरा नाम जपता हूँ और (तेरे) नाम का हृदय में विचार करता हूँ। हे प्रभु !(मेरे गुरुदेव बाबा)नानक पर कृपा कर ॥४॥१११॥

गउड़ी महला ५ ॥

"गुरु की महिमा।"

सिमरि सिमरि सिमरि सुखु पाइआ ॥
चरन कमल गुर रिदै बसाइआ ॥१॥

(हे भाई !) जब गुरु के चरण कमलों को हृदय में बसाया तो (मन, तन और वाणी से) हरि का स्मरण कर-करके सुख प्राप्त किया ॥१॥

गुर गोबिंदु पारब्रहमु पूरा ॥
तिसहि अराधि मेरा मनु धीरा ॥ रहाउ ॥

गुरु जो गोविन्द का रूप है और पूर्ण परब्रह्म है, 'उसकी' अराधना कर-करके मेरा मन धैर्य वाला हुआ है ॥रहाउ॥

अनदिनु जपउ गुरू गुर नाम ॥
ता ते सिधि भए सगल काम ॥२॥

(इसलिए मैं) रात दिन(अर्थात् आठ प्रहर) गुरु, (हाँ) गुरु का नाम जपता हूँ, क्योंकि उससे मेरे सभी काम सिद्ध (पूर्ण) होते हैं ॥२॥

दरसन देखि सीतल मन भए ॥
जनम जनम के किलबिख गए ॥३॥

गुरु का दर्शन करने से मन शीतल हुआ है और जन्म जन्मांतरों के पाप दूर हो गये हैं ॥३॥

कहु नानक कहा भै भाई ॥
अपने सेवक की आपि पैज रखाई ॥ ४ ॥ ११२ ॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि हे भाई ! अब किसका भय है क्योंकि अपने सेवक (के मनुष्य देही) की इज्जत स्वयं गुरु ने रख ली है ॥४॥११२॥

गउड़ी महला ५ ॥

"प्रभु अपने सेवकों का सदैव सहायक है।"

अपने सेवक कउ आपि सहाई ॥
नित प्रतिपारै बाप जैसे माई ॥१॥

प्रभु अपने सेवकों की आप सहायता करने वाला है। 'वह' नित्य माता-पिता के समान पालन-पोषण भी करता है ॥१॥

प्रभ की सरनि उबरै सभ कोइ ॥
करन करावन पूरन सचु सोइ ॥ रहाउ ॥

(हे भाई!) प्रभु की शरण लेने से सब कोई बच जाता है। 'वह' सत्य स्वरूप परिपूर्ण परमात्मा (स्वयं) करने वाला और कराने वाला है ॥रहाउ॥

अब मनि बसिआ करनैहारा ॥
भै बिनसे आतम सुख सारा ॥२॥

अब मेरे मन में करणहार प्रभु आकर बसा है। मेरा भय दूर हो गया है और यथार्थ सुख (अर्थात् आत्मिक सुख) प्राप्त हुआ है ॥२॥

करि किरपा अपने जन राखे ॥
जनम जनम के किलबिख लाथे ॥३॥

प्रभु (स्वय)कृपा करके अपने सेवको की रक्षा करता है जिससे जन्म-जन्मांतरो के पाप दूर हो गये हैं ॥३॥

कहनु न जाइ प्रभ की वडिआई ॥
नानक दास सदा सरनाई ॥ ४ ॥ ११३ ॥

प्रभु की बड़ाई मुझसे कही नहीं जाती। हे नानक! मैं तेरा दास सदा सर्वदा तेरी शरण में (पडा रहता) हूँ ॥४॥११३॥

रागु गउड़ी बेसी महला ५ दुपदे ॥

"परिपूर्ण राम के सहारे से पीड़ा रहित स्थिति।"

राम को बलु पूरन भाई ॥
ता ते बृथा न बिआपै काई ॥
१॥ रहाउ ॥

(हे भाई !) राम का बल (आश्रय) इतना पूर्ण है कि उससे कोई पीड़ा नहीं लगती अथवा 'उसके' बिना कोई भी वस्तु खाली नहीं है क्योंकि 'वह' परिपूर्ण है ॥१॥रहाउ॥

जो जो चितवै दासु हरि माई ॥
सो सो करता आपि कराई ॥१॥

हे (मेरी) माँ ! जो हरि का दास विचार (संकल्प) करता है, कर्त्ता वह स्वय जो (पूर्ण) करवा देता है ॥१॥

निंदक की प्रभि पति गवाई ॥
नानक हरिगुण निरभउ गाई ॥
२॥११४॥

निंदक की इज्जत प्रभु स्वयं गंवा देता है। हे नानक ! मैं हरि के गुण निर्भय होकर गाता हूँ ॥२॥११४॥

गउड़ी महला ५ ॥

"प्रभु के द्वार पर प्रार्थना।"

भुजबल बीर ब्रहम सुख सागर ॥
गरत परत गहि लेहु अंगुरीआ ॥
१॥ रहाउ ॥

हे भुज बलबीर (बहादुर) ! हे सुखों के सागर ब्रह्म ! मुझे संसार रूप गड्डे (गर्त) में गिरते हुए को अंगुली से पकड़ कर बचा लो ॥ १॥ रहाउ ॥

स्रवनि न सुरति नैन सुंदर नही ॥
आरत दुआरि रटत पिंगुरीआ
॥१॥

मुझे (धर्म ग्रंथादि) कानों से सुनने की सुधि नही, आँखें सुन्दर नही, मैं सर्वथा पंगू सर्वथा दुःखी (विवश) होकर आपके द्वार पर पुकार करता हूँ ॥१॥

दीना नाथ अनाथ करुणामै
साजन मीत पिता महतरीआ ॥
चरण कवल हिरदै गहि नानक
भै सागर संत पारि उतरीआ ॥२॥
२॥११५॥

हे गरीबों के स्वामी ! हे अनाथों पर (दया करने वाले) करुणामय ! हे सज्जन ! हे मित्र ! हे पिता ! हे माता ! सन्तजन (तेरे) चरण कमलों को हृदय में धारण करके भव-सागर से पार उतरते हैं, मुझे भी पार कीजिए, हे नानक ! ॥२॥२॥११५॥

रागु गउड़ी बैरागणि महला ५॥
"जीव की हरि के प्रति विनय।"

दय गुसाई मीतुला
तूं संगि हमारै बासु जीउ ॥१॥रहाउ॥

हे प्रेरक! हे पृथ्वी के मालिक! हे मित्र! तू हमारे साथ सदैव निवास कर जी ॥१॥रहाउ॥

तुझ बिनु घरी न जीवना
ध्रिगु रहणा संसारि ॥
जीअ प्राण सुखदातिआ
निमख निमख बलिहारि जी ॥१॥

हे प्रियतम! तुम्हारे बिना एक घड़ी भी जीवन नहीं है। तुम्हारे बिना संसार में रहना धिक्कार के योग्य है। हे हमारे जीव और प्राणों को सुख देने वाले! मैं तुम पर प्रतिक्षण बलिहारी जाता हूँ जी ॥१॥

हसत अलंबनु देहु प्रभ
गरतहु उधरु गोपाल ॥
मोहि निरगुन मति थोरीआ
तूं सद ही दीन दइआल ॥२॥

हे प्रभो! हाथ का सहारा देकर, हे गोपाल! गड्ढे में से निकालो। मैं गुणों से रहित हूँ, मेरी मति भी थोड़ी है, किन्तु तू सदा ही दीनों पर दयालु है ॥२॥

किआ सुख तेरे संमला
कवन बिधी बीचार ॥
सरणि समाई दास हित
ऊचे अगम अपार ॥३॥

(हे भगवंत्!) मैं तेरे कौन-कौन से सुख याद करूँ और किस ढंग से उनका विचार करूँ? हे शरण में आये समाई (अपने में समा लेने वाले) करने वाले! हे दासों के हितैषी! हे ऊँचे! हे अगम्य! हे अनन्त (प्रभो)! ॥३॥

सगल पदारथ असट सिधि
नाम महारस माहि ॥
सुप्रसंन भए केसवा
से जन हरिगुण गाहि ॥४॥

सारे पदार्थ और आठ सिद्धियाँ नाम के परमानन्द में आ जाती हैं। सुन्दर केशों वाला (विष्णु भगवान) जब प्रसन्न होता है तो वे सेवक हरि के गुण गाते हैं ॥४॥

मात पिता सुत बंधपो
तूं मेरे प्राण अधार ॥
साध संगि नानकु भजै
बिखु तरिआ संसारु ॥५॥१॥११६॥

(हे प्रभो !) तू (मेरी) माता है, (मेरा) पिता है, (मेरा) पुत्र है, (मेरा) सम्बन्धी है और तू ही मेरे प्राणों का आधार है (मुझ पर भी प्रसन्न हो)। साधु की संगति में (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक भजन करते हैं और (इस प्रकार) विष रूप संसार को पार कर लिया है ॥५॥१॥११६॥

गउड़ी बैरागणि रहोए के छंत के घरि म० ५ ॥

"हरि के गुन गाने से सत्य की प्राप्ति।"

विशेष : 'रहोआ' एक प्रकार का पुरातन गीत है जो दीर्घ रहाउ (ठहराव) या दीर्घ स्वर से गाया जाता है। कभी कभी विवाहोत्सव के समय अब भी स्त्रियाँ इस लय पर गाती हुई सुनी जाती हैं।

है कोई राम पिआरो गावै ॥
सरब कलिआण सूख सचु पावै
॥ रहाउ ॥

(हे भाई !) है कोई राम का प्यारा जो 'उसके' गुण गाये ? (यदि है तो वह) सकल मंगल (आनन्द) और सुख निश्चयपूर्वक प्राप्त करता है और सत्य परमात्मा भी उस को प्राप्त हो जाता है ॥रहाउ॥

बनु बनु खोजत फिरत बैरागी ॥
बिरले काहू एक लिव लागी ॥
जिन हरि पाइआ से वडभागी ॥१॥

(हे भाई !) (कोई तो) बैरागी बनकर बन बन में खोजते फिरते हैं, किन्तु उनमे से किसी विरले ही की एक प्रभु से प्रीति लगी हुई है।(इन प्यार करने वालों में से)जिन्होंने हरि को पाया है वे भाग्यशाली हैं ॥१॥

ब्रहमादिक सनकादिक चाहै ॥
जोगी जती सिध हरि आहै ॥
जिसहि परापति सो हरिगुण गाहै॥२॥

ब्रह्मादिक देवते, सनकादि (चार भाई—ब्रह्मा के चार पुत्र—सनक, सनदन, सनातन और सनन कुमार)'उस' (हरि) को चाहते हैं। योगी, यति, और सिद्ध भी हरि को चाहते हैं, किन्तु जिनको यह देन प्राप्त होती है वे ही हरि के गुण गाते हैं ॥२॥

ता की सरणि जिन बिसरत नाही॥
वडभागी हरि संत मिलाही ॥
जनम मरण तिह मूले नाही ॥३॥

(हे भाई !) हमने तो उनकी शरण ग्रहण की है जिनको हरि विस्मृत नहीं होता। भाग्यशाली वे जीव हैं, जो हरि के सन्तों से मिले हुए हैं। फिर वे (सत्संगी) जन्म मरण में बिल्कुल नही आते ॥३॥

करि किरपा मिलु प्रीतम पिआरे॥
बिनउ सुनहु प्रभ ऊच अपारे ॥
नानकु मांगतु नामु अधारे ॥४॥
१॥११७॥

हे सर्वोच्च ! हे प्रियतम ! हे अपार प्रभो ! मेरी विनय सुनो। मैं नानक आपके नाम का आसरा मांगता हूँ, कृपा करके मुझे आकर मिलो ॥४॥१॥११७॥

रागु गउड़ी पूरबी महला ५ ॥
"हरि को प्राप्त करने की अभिलाषा।"

कवन गुन प्रानपति मिलउ मेरी माई ॥१॥ रहाउ ॥

हे मेरी माता (गुरु)! मैं किन गुणों से अपने प्राण-पति-प्रियतम को मिलूं ? ॥१॥रहाउ॥

रूप हीन बुधि बल हीनी
मोहि परदेसनि दूर ते आई ।।१।।

क्योंकि मैं सुन्दरता से खाली हूँ, बुद्धि से और बल से भी विहीन हूँ और (फिर) मैं तो दूर से आई हुई परदेसिन हूँ (इस संसार में जीव रूपी स्त्री प्रवासिनी है) ।।१।।

नाहिन दरबु न जोबन माती
मोहि अनाथ की करहु समाई ।।२।।

न मेरे पास धन है और न यौवन की मस्ती ही है, मुझ अनाथ की (प्रानपति से) समाई (मिलाप) करा दो ।।२।।

खोजत खोजत भई बैरागनि ।।
प्रभ दरसन कउ हउ फिरत तिसाई ।।३।।

ढूंढते-ढूंढते मैं वैरागिन सी हो गई हूँ। प्रभु के दर्शनों के लिए मैं प्यासी फिर रही हूँ ।।३।।

दीन दइआल क्रिपाल प्रभ नानक
साधसंगि मेरी जलनि बुझाई ।।
४।।१।।११८।।

मेरी प्रार्थना सुनकर दीनों पर दया करने वाले कृपालु प्रभु ने साधु की संगति देकर मेरी विरह रूपी अग्नि को बुझा दिया है, हे नानक ! ।। ४।।१।।११८।।

गउड़ी महला ५ ।।

"प्रभु के साथ अत्याधिक प्रीति की झलक।"

प्रभ मिलबे कउ प्रीति मनि लागी ।।
पाइ लगउ मोहि करउ बेनती
कोऊ संतु मिलै बडभागी ।।१।।
रहाउ ।।

प्रभु को मिलने के लिए, मेरे मन मे प्रीति उत्पन्न हुई है (अर्थात् प्रेम उमड आया है)। बड़े भाग्य हो तो कोई सन्त महात्मा मिल जाए जिसके पैरो पर लगकर विनय करूँ (कि मुझे प्रियतम प्रभु से मिला दे) ।।१।।रहाउ।।

मनु अरपउ धनु राखउ आगै
मन की मति मोहि सगल तिआगी ।।
जो प्रभ की हरि कथा सुनावै
अनदिनु फिरउ तिसु पिछै बिरागी
।।१।।

ऐसे सन्त को मैं (अपना) मन अर्पण कर दूं, सारा धन उसके आगे रख लूं और मन की मत्ति (अहंमति) भी त्याग दूं (अर्थात् अपने मन के संकेत पर न चलूं किन्तु सन्त की आज्ञानुसार चलूं)। यदि कोई सन्त मुझे हरि की कथा सुनाये तो मैं रात-दिन उसके पीछे वैरागिन होकर घूमती रहूँ ।।१।।

पूरब करम अंकुर जब प्रगटे
भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी ।।
मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक
जनम जनम की सोई जागी ।।२।।
२।।११९।।

पूर्व-लिखित (शुभ) कर्मों के अंकुर जब प्रकट हुए तो रसिक वैरागी से मेरी भेंट हो गई। हे नानक ! हरि-पति को (सन्त की कृपा से) मिलते ही अज्ञानता का अन्धेरा मिट गया और जन्म-जन्मान्तरों से सोई हुई जीवात्मा रूपी स्त्री जाग पड़ी।।२।।२।।१ १९।।

गउड़ी महला ५ ॥

"एक पक्षी के रूपक से जीव को उपदेश है।"

निकसु रे पंखी सिमरि हरि पांख ॥
मिलि साधू सरणि गहु पूरन राम
रतनु हीअरे संगि राखु ॥१॥
रहाउ ॥

हे जीव रूपी पक्षी! तू हरि का स्मरण करके, अपने पंख निकाल ले (भाव : मोह के घोंसले से स्वतन्त्र हो जा)। तू साधू जनों से मिलकर उनकी पूर्ण शरण ग्रहण कर और रामनाम रूपी रत्न को अपने हृदय में (संभाल कर) रख ॥१॥रहाउ॥

भ्रम की कूई तृसना रस पंकज
अति तीख्यण मोह की फास ॥
काटनहार जगत गुर गोबिद
चरण कमल ता के करहु निवास ॥
१॥

भ्रम रूपी खूही में विषय रूपी रस की तृष्णा मानों कीचड़ है और मोह की फासी (अति) तीक्ष्ण है। ऐसी (मोह की) फासी को काटने वाला (मेरा) गोविन्द है, जो जगत का गुरु है। 'उसके' कमल रूपी चरणों मे तू (जाकर) निवास कर ॥१॥

करि किरपा गोबिंद प्रभ प्रीतम
दीना नाथ सुनहु अरदासि ॥
करु गहि लेहु नानक के सुआमी
जीउ पिंडु सभु तुमरी रासि ॥२॥
३॥१२०॥

हे गोविन्द! हे प्रियतम प्रभो! हे दीनो के नाथ जी! कृपा करो। मेरी प्रार्थना सुनो! हाथ पकड़ लो। हे नानक के स्वामी! मेरी जीवात्मा और शरीर तेरी ही दो हुई पूँजी है (जीवों का अपना कुछ भी नही है। अपनी पूँजी को आप ही संभालो) ॥२॥३॥१२०॥

गउड़ी महला ५ ॥

"हरि प्रियतम को मिलने के लिए सन्तो के प्रति विनय।"

हरि पेखन कउ सिमरत मनु मेरा ॥
आस पिआसी चितवउ दिनु रैनी
है कोई संतु मिलावै नेरा ॥१॥
रहाउ ॥

मेरा मन हरि को देखने के लिए स्मरण कर रहा है। हरि की आशा और दर्शन की प्यास वाली होकर मैं दिन रात 'उसको' याद करती हूँ। है कोई सन्त जो 'उसको' निकट से ही मिला देवे ॥१॥रहाउ॥

सेवा करउ दास दासन की
अनिक भांति तिसु करउ निहोरा॥
तुला धार तोले सुख सगले
बिनु हरि दरस सभो ही थोरा॥
१॥

मैं (ऐसे सन्तों के) दासों के दास की भी सेवा करूँगी और उनके आगे भांति-भांति से विनय करूँगी। मैंने तराजू पर धरकर (संसार के) सारे सुख तोले हैं किन्तु ये सभी हरि के दर्शन के बिना थोड़े (तुच्छ) हैं ॥१॥

संत प्रसादि गाए गुन सागर
जनम जनम को जात बहोरा ॥
आनद सूख भेटत हरि नानक
जनमु क्रितारथु सफलु सवेरा ॥२॥
४॥१२१॥

जब सन्त की कृपा से गुणों के सागर—हरि के गुण गाये तो जन्म-जन्मान्तरों से (जन्म मरण के चक्र में)जाते हुए (जीवत्मा को हरि ने अपनी शरण में) लौटा लिया। हे नानक! हरि को मिलने से आनन्द और सुख हुआ है। मनुष्य जन्म भी कृतार्थ (सफल) हुआ है, (हां) सफल होने की स+वेश=यही वेला थी ॥२॥
४॥१२१॥

रागु गउड़ी पूरबी महला ५ ॥

"जिज्ञासु का सन्त से हरि मार्ग के लिए निवेदन।"

किन बिधि मिलै गुसाई मेरे राम
कोई ऐसा संतु सहज सुखदाता
मोहि मारगु देई बताई ॥१॥रहाउ॥

(प्रश्नः) हे मेरे राम राजा! किस विधि से मुझे पृथ्वी का मालिक-गोसाईं मिले? है कोई ऐसा सन्त जो सहजावस्था वाला सुख देने वाला हो और जो मुझे (हरि) मार्ग भी बतला दे ॥१॥
रहाउ॥

अंतरि अलखु न जाई लखिआ
विचि पड़दा हउमै पाई ॥
माइआ मोहि सभो जगु सोइआ
इहु भरमु कहहु किउ भाई ॥१॥

(उत्तरः) हमारे अन्तर्गत ही 'वह' गुसाईं है। (प्रश्नः) किन्तु 'वह' अलक्ष्य है। 'वह' देखा नहीं जा सकता? (उत्तर.) क्योंकि बीच में अहंकार का पर्दा है जिस करके सारा जगत माया के मोह में सोया हुआ है। (प्रश्नः) यह भ्रम बताओ कैसे दूर हो? ॥१॥

एका संगति इकतु ग्रिहि बसते
मिलि बात न करते भाई ॥

(उत्तरः) एक ही शरीर (घर) में बसते हैं, एक ही उनकी संगति है, (भाव जीवात्मा और परमात्मा इकट्ठे निवास करते हैं) किन्तु, हे भाई! वे परस्पर बात नहीं करते(क्योंकि बीच में अहंकार

एक बसतु बिनु पंच दुहेले
ओह् बसतु अगोचर ठाई ॥२॥

का पर्दा है)। एक वस्तु के बिना पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ दुःखी हैं। (प्रश्न, वह वस्तु बताओ क्या है? उत्तरः) वह वस्तु ज्ञानेन्द्रियों की पहुँच से परे है ॥२॥

जिस का ग्रिहु तिनि दीआ
ताला कुंजी गुर सउपाई ॥
अनिक उपाव करे नही पावै
बिनु सतिगुर सरणाई ॥३॥

जिस हरि का बनाया शरीर (घर) है, 'उसने' 'भ्रम अथवा अज्ञान रूपी ताला लगाया है और ब्रह्म विद्या रूपी ताली उसको खोलने के लिए गुरु को सौंपी है। बिना सत्गुरु की शरण आये हुए चाहे अनेक उपाय करके देखें तो भी यह विद्या रूपी कुँजी प्राप्त नहीं होती (अर्थात् हाथ नहीं आती) ॥३॥

जिन के बंधन काटे सतिगुर
तिन साध संगति लिव लाई ॥
पंच जना मिलि मंगलु गाइआ
हरि नानक भेदु न भाई ॥४॥

जिन जीवों के बन्धन मेरे सत्गुरू ने काटे हैं, उन्होंने साधु की संगति में लौ लगाई है और हे भाई! सन्तजनों के साथ मिलकर उन्होंने मंगल मय गीत गाये हैं, हे नानक! उनमें और हरि मे कोई भेद नहीं है ॥४॥

मेरे राम राइ
इन बिधि मिलै गुसाई ॥
सहजु भइआ भ्रमु खिन महि नाठा
मिलि जोती जोति समाई ॥१॥
रहाउ दूजा ॥१॥१२२॥

(उत्तरः) इस प्रकार मेरा राम राजा, (हाँ)गोसाईं मिलता है। जिस समय ज्ञान प्राप्त हुआ, क्षण भर में भ्रम दौड़ गया और जीव की ज्योति परमात्मा की ज्योति में समा गई (अर्थात आत्मिक स्थिरता प्राप्त होते ही दुनिया एक क्षण में दूर हो गई इस प्रकार ज्योति बक्त ज्योति में लीन हो गई ॥१॥रहाउ दूजा॥१॥१२२॥

गउड़ी महला ५ ॥

"जहाँ देखूँ वहाँ तू ही तू है।"

एसो परचउ पाइओ ॥
करि क्रिपा दइआल बीठुलै
सतिगुर मुझहि बताइओ ॥१॥
रहाउ ॥

(परमेश्वर से) ऐसा परिचय(जानकारी) हो गया है कि 'उस' दयालु बिठल प्रियतम ने दया की और मुझे सत्गुरु का पता बतला दिया (गुरु के मिलाप से क्या-क्या रहस्य (भेद) खुले) ॥१॥ ॥रहाउ॥

जत कत वेखउ तत तत तुम ही
मोहि इहु बिसुआसु होइ आइओ
कै पहि करउ अरदासि बेनती
जउ सुनतो है रघुराइओ ॥१॥

जहाँ कहाँ देखता हूँ वहाँ-वहाँ तू ही है, मुझे यह निश्चय प्राप्त हुआ है। अब मैं और किसके आगे प्रार्थना करूँ, विनय करूँ जब कि रघुवंश का राजा-राम स्वयं सब कुछ सुनता है ॥१॥

लहिओ सहसा बंधन गुरि तोरे
तां सदा सहज सुखु पाइओ ॥
होणा सा सोई फुनि होसी
सुखु दुखु कहा दिखाइओ ॥२॥

जब गुरु ने बन्धन तोड़े, तब सभी संशय दूर हो गये तब सहज सुख प्राप्त किया जो सदैव (स्थिर) रहने वाला है। जो होना था वही पुनः होगा,तो दुख सुख कहाँ दिखाई दे ?(अर्थात अब विश्वास हो गया है कि जो होना है 'उसी' के हुक्म अनुसार होना है ॥२॥

खंड ब्रहमंड का एको ठाणा
गुरि परदा खोलि दिखाइओ ॥
नउ निधि नामु निधानु इक ठाई
तउ बाहरि कैठै जाइओ ॥३॥

खण्ड और ब्रह्माण्ड का एक ही ठिकाना है (अर्थात् परमेश्वर पर ही निर्भर है), गुरु ने अज्ञान रूपी पर्दा खोलकर मुझे 'उसका' दर्शन दिखा दिया है। जब नवनिद्धियों रूपी नाम का खजाना एक ही जगह अर्थात् हृदय में है, तो फिर बाहर कौन से स्थान पर जाऊँ ॥३॥

एकै कनिक अनिक भाति साजी
बहु परकार रचाइओ ॥
कहु नानक भरमु गुरि खोई है
इव ततै ततु मिलाइओ ॥४॥२॥
१२३॥

जैसे स्वर्ण एक है किन्तु उसके आभूषण के रूप अनेक हैं उसी प्रकार एक परमेश्वर ने बहुत ही प्रकार से रचना रची हैं (यदि ब्रह्म दृष्टि से देखें तो सारा प्रपन्च ब्रह्म रूप ही है)। कहते हैं (बाबा) नानक कि गुरु ने (स्वर्ण और गहनो का दृष्टान्त देकर) जब भ्रम दूर कर दिया तो तत्व को (ब्रह्म) तत्व के साथ मिला दिया ॥४॥२॥१२३॥

गउड़ी महला ५ ॥

"गुरु के पास केवल हरिनाम रूपी सौदा ही खरीदना है।"

अउध घटै दिनसु रैना रे ॥
मन गुर मिलि काज सवारे ॥१॥
रहाउ ॥

(याद रखना) तेरी आयु दिन-रात घट (कम हो) रही है। इस लिए हे मन ! गुरु से मिलकर अपने मनुष्य जन्म के कार्य (उद्देश्य) को सफल कर ले (भावापूर्ण कर ले) ॥१॥ रहाउ ॥

करउ बनंती सुनहु मेरे मीता
संत टहल की बेला ॥
ईहा खाटि चलहु हरि लाहा
आगै बसनु सुहेला ॥१॥

हे मेरे मित्रों ! (ध्यान पूर्वक) सुनो। मैं विनती करता हूँ। यह मनुष्य शरीर सन्तों की सेवा करने का समय है। यदि सेवा करोगे तो यहाँ से हरिनाम का लाभ लेकर (अर्थात् मनुष्य देही सफल करके) जाओगे और आगे (परलोक में) भी तुम्हारा निवास सुखद होगा॥१॥

इहु संसारु बिकारु सहसे महि
तरिओ ब्रहमगिआनी ॥
जिसहि जगाइ पीआए हरि रसु
अकथ कथा तिनि जानी ॥२॥

यह संसार विकारों और संशय से भरा हुआ है। कोइ ब्रह्मज्ञानी (ब्रह्म को जानने वाला ही) इस संसार को पार कर सकता है। केवल ब्रह्मज्ञानी ही विकारों में सोये हुए व्यक्ति को जगाकर हरि रस पिलाता है, केवल वही प्रभु की अकथ कथा को जानता है ॥२॥

जा कउ आए सोई बिहाझहु
हरि गुर ते मनहि बसेरा ।।
निजघरि महलु पावहु सुख सहजे
बहुरि न होइगो फेरा ।।३।।

(हे मित्र !) जिस (नाम-पदार्थ को खरीदने) के लिए संसार में आए हो, वही खरीदो। गुरु के उपदेश द्वारा ही (हरिनाम का) मन मे निवास होता है। यदि गुरु की संगति में आओगे तो अपने घट (अन्त:करण) में निजानन्द स्वरूप के अलौकिक सुख को तुम सहज ही प्राप्त कर लोगे और दोबारा (तुम्हारे लिए) जन्म-मरण का चक्कर नहीं होगा ।।३।।

अंतरजामी पुरख बिधाते
सरधा मन की पूरे ।।
नानकु दासु इही सुखु मागै
मो कउ करि संतन की धूरे ।।४।।
३।।१२४।।

हे अन्तर्यामिन ! हे परिपूर्ण (आदि) पुरूष ! हे (भाग्य) विधाते मेरे मन की इच्छा को पूर्ण करो। दास नानक आपसे यही सुख माँगता है कि मुझे सन्तों के चरणों की धूलि बना दो ।।४।।३।।१२४।।

गउड़ी महला ५ ।।

"मुझ गरीब को विकारों से बचा लो।"

राखु पिता प्रभ मेरे ।।
मोहि निरगुनु सभ गुन तेरे ।।१।।
रहाउ ।।

हे मेरे पिता प्रभु ! मुझे रख लो। मैं गुणों से रहित निर्गुण हूँ और तुममें सब गुण हैं ।।१।। रहाउ ।।

पंच बिखादी एकु गरीबा
राखहु राखनहारे ।।
खेदु करहि अरु बहुतु संतावहि
आइओ सरनि तुहारे ।।१।।

मुझे दु:ख देने वाले पाँच (कामादि विकार) हैं और मैं गरीब अकेला हूँ। हे रक्षा करने योग्य प्रभु ! मुझे रख लो। ये मुझे दु:ख देते हैं और बहुत सताते हैं। मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ ।।१।।

करि करि हारिओ
अनिक बहु भाती
छोडहि कतहूं नाही ।।
एक बात सुनि ताकी ओटा
साधसंगि मिटि जाही ।।२।।

(इनसे बचने के लिए) तरह-तरह के अनेक उपाय करके थक गया हूँ, पर ये मझे कभी भी छोड़ते नहीं। मैंने एक बात सुनी है कि साधु की संगति की ओट लेने से (ये विकरादि) मिट जाते हैं ।।२।।

करि किरपा संत मिले मोहि
तिन ते धीरजु पाइआ ।।

हे प्रभु ! जब आपने कृपा की तो मुझे सन्त मिल गए और उनसे मुझे धीरज प्राप्त हुआ। सन्तों ने मुझे (नाम का) मन्त्र

स'ती मंतु दीओ मोहि निरभउ
गुर का सबदु कमाइआ ॥३॥

दिया और जब मैंने उसकी कमाई की तो इन विकारों से मैं निडर (निर्भय) हो गया।॥३॥

जीति लए ओइ महा बिखादी
सहज सु हेली बाणी ॥
कहु नानक मन भइआ परगासा
पाइआ पदु निरबाणी ॥४॥
४॥१२५॥

कामादि विकार जो मुझे बहुत दु:ख दे रहे थे, वे मैंने जीत लिए। सत्गुरु की वाणी स्थिरता और सुख देने वाली है। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कहते हैं कि अब मेरे मन मे प्रकाश हो गया है और मैंने निर्वाण पद प्राप्त कर लिया है ॥४॥४॥१२५॥
(निर्वाण पद : यह वह अवस्था है जहाँ दु:ख क्लेशों से जीव मुक्त हो जाता है और कोई वासना स्पर्श नही करती)

गउड़ी महला ५ ॥

"मेरा प्रभु अनन्त है, हाँ सब कुछ है।"

ओहु अबिनासी राइआ ॥
निरभउ स'गि तुमारै बसते
इहु डरनु कहा ते आइआ ॥१॥
रहाउ ॥

हे अविनासी राजा! जो तुम्हारी सगति में (हे प्रभु! तुम एक)वह राजा हो जो कभी नष्ट होने वाला नहीं। वे निर्भय होकर रहते हैं। यह (यम का) भय कहाँ से आता है? (अर्थात् नही आता है) ॥१॥रहाउ

एक महलि तूं होहि अफारो
एक महलि निमानो ॥
एक महलि तूं आपे आपे
एक महलि गरीबानो ॥१॥

एक शरीर रूपी महल मे तू (आप ही) अहकारी हो रहा है और एकमहल में तू असहाय हो रहा है। एक शरीर मे तू सब कुछ आप है और एक महल में तू गरीब हो रहा है ॥१॥

एक महलि तूं पंडितु बकता
एक महलि खलु होता ॥
एक महलि तूं सभु किछु ग्राहजु
एक महलि कछू न लेता ॥२॥

एक महल में तू (आप हो) पडित होकर (शास्त्रों का) कथन करता है और एक महल में तू सब कुछ ग्रहण करता है (अर्थात् दानादि लेता है) और एक महल में तू (विरक्त बनकर) एक भी नही लेता ॥२॥

काठ की पुतरी कहा करै बपुरी
खिलावनहारो जानै ॥
जैसा भेखु करावै बाजीगरु
ओहु तैसो ही साज आनै ॥३॥

बेचारी काठ की पुतली भला अपने आप क्या कर सकती है? (अर्थात् कुछ नही कर सकती)। उसको खिलाने वाला बाजीगर ही जानता है। बाजीगर जैसा उसका भेष है(अर्थात स्वांग रचाती वैसा ही साज (बनावट) लाती है (अर्थात् वह वैसा ही रचती है ॥३॥

अनिक कोठरी बहुतु भाति करीआ
आपि होआ रखवारा ॥
जैसे महलि राखै तैसे रहना
किआ इहु करै बिचारा ॥४॥

हे प्रभु ! शरीर रूपी अनेक कोठड़ियाँ बहुत ही प्रकार से उत्पन्न की हैं और तू स्वयं उनका रक्षक होकर रहता है। जैसे शरीरों में परमात्मा इसे रखता है, तैसे जीव का रहना पड़ता है। अपने आप यह बेचारा जीव क्या कर सकता है ॥४॥

जिनि किछु कीआ सोई जानै
जिनि इह सभ बिधि साजी ॥
कहु नानक अपरंपर सुआमी
कीमति अपुने काजी ॥५॥
५॥१२६॥

जिस परमेश्वर ने (यह) कुछ रचा है और जिसने यह सारी विधि सृजन की है, वही जनता है। करते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि 'वह' स्वामी अपरम्पार है। 'वह' अपने कार्यों (कामों) का मूल्य आप ही जानता है ॥५॥५॥१२६॥

गउड़ी महला ५ ॥

"विषयानन्द में जीव को मृत्यु भी भूल जाती है।"

छोडि छोडि रे बिखिआ के रसूआ॥
उरझि रहिओ रे बावर गावर
जिओ किरखै हरिआइओ पसूआ ॥
१॥ रहाउ ॥

हे जीव ! तू विषवत् रसों को छोड़ दे, (हाँ) छोड़ दे। अरे पागल ! अरे गवार ! तू विषयो में उलझा हुआ है, जैसे कृषि को (हरी खेती को) देखकर हरुआया (विशेष प्रकार का) पशु खेत को पड़ता है अर्थात हरे खेत में मस्त होता है ॥१॥ रहाउ ॥

जो जानहि तूं अपुने काजै
सो संगि न चालै तेरै तसूआ ॥
नागो आइओ नाग सिधासी
फेरि फिरिओ अरु कालि गरसूआ
॥१॥

जो पदार्थ तू समझता है कि मेरे काम आयेंगे, वे तनिक मात्र तेरे साथ भी नहीं जायेंगे (एक गज में २४वे हिस्से का नाम तसू है)। तू नंगा आया था और नांगा ही जायेगा। तू काल (मृत्यु) ग्रसित हुआ चौरासी के चक्र में घूमेगा अथवा तू (व्यर्थ ही योनियों के) चक्र में फिर रहा है ॥१॥

पेखि पेखि रे कसुंभ की लीला
राचि माचि तिन हूं लउ हसूआ ॥
छीजत डोरि दिनसु अरु रैनी
जीअ को काजु न कीनो कछूआ ॥
२॥

हे जीव ! (स्त्री, पुत्र, धनादि पदार्थों की) लीला कुसुम्भे के कच्चे रंग की तरह है। वह तू देख-देखकर उसी में मस्त होकर प्रसन्न हो रहा है। किन्तु श्वासों की डोरी दिन और रात में कमजोर होकर टूट रही है और तुमने अपनी आत्मा के लिए कोई भक्ति रूपी कार्य नहीं किया ॥२॥

करत करत इवही बिरधानो
हारिओ उकते तनु खीनसूआ ॥
जिउ मोहिओ उनि मोहनी बाला
उस ते घटै नाही रुच चसूआ ॥३॥

दुनिया के धन्धों को करते करते ऐसे ही बूढ़ा हो गया। उक्ति में (अर्थात् बोलने से) रह गया और शरीर कमजोर हो भी गया। जैसे उस मोहिनी माया ने (यौवन के वक्त से) तुझे मोह लिया था उस समय से लेकर अब तक तेरी तनिकमात्र भी प्रीति कम नहीं हुई है ॥३॥

जगु ऐसा मोहि गुरहि दिखाइओ
तउ सरणि परिओ तजि गरबसूआ॥
मारगु प्रभ को संति बताइओ
दृड़ी नानक दास भगति हरि
जसूआ ॥४॥६॥१२७॥

जब गुरु ने मुझे दिखाया कि जगत ऐसा है, तब अहंकार को छोड़कर मैं, हे प्रभु ! तेरी शरण में आकर पड़ा, तब उस सन्त ने मुझे मार्ग बताया और मुझ दास नानक ने हरि की भक्ति और यश दृढ़ कर ली ॥४॥६॥१२७॥

गउड़ी महला ५ ॥

"शुक्र है, हे प्रभु ! शुक्र है, हे सत्गुरु !"

तुझ बिनु कवनु हमारा ॥
मेरे प्रीतम प्रान अधारा ॥१॥
रहाउ॥

हे मेरे प्राणों के आधार प्रियतम ! तेरे बिना मेरा कौन (सहायक) है ? ॥१॥ रहाउ ॥

अंतर की बिधि तुम ही जानी
तुम ही सजन सुहेले ॥
सरब सुखा मै तुझ ते पाए
मेरे ठाकुर अगह अतोले ॥१॥

मेरे अन्दर की हालत तुमने जान ली है तुम्ही मेरे सुखदाता सज्जन हो। हे मेरे अथाह और अतुल ठाकुर ! मैंने सभी सुख तुम्हारे से ही प्राप्त किए हैं ॥१॥

बरनि न साकउ तुमरे रंगा
गुण निधान सुखदाते ॥
अगम अगोचर प्रभ अबिनासी
पूरे गुर ते जाते ॥२॥

हे गुणों के भण्डार ! हे सुखों के दाता ! मैं तुम्हारे कौतुक वर्णन नहीं कर सकता। हे हमारी पहुँच से परे (अगम्य) ! हे हमारी इन्द्रियों से परे (अगोचर) ! हे नाश न होने वाले (अविनाशी) प्रभु ! तुम्हें पूर्ण गुरु के द्वारा ही जाना जा सकता है ॥२॥

भ्रमु भउ काटि कीए निहकेवल
जब ते हउमै मारी॥

जब से मैंने अपने अहम् भाव को मार दिया है तो गुरु ने भ्रम और माया का डर काटकर मुझे शुद्ध स्वरूप कर दिया है। अब

जनम मरण को चूको सहसा
साध स ंगि दरसारी ॥३॥

जन्म मरण का संशय भी नष्ट हो गया है। वह प्राप्ति साधु संगति और उसके दर्शन के कारण हुई है ॥३॥

चरण पखारि करउ गुर सेवा
बारि जाउ लख बरीआ ॥
जिह प्रसादि इहु भउजलु तरिआ
जन नानक प्रिअ स ंगि मिरीआ ॥
४॥७॥१२८॥

मैं गुरु के चरण धोकर सेवा करूँ और लाखों बार उस पर बलिहारी जाऊँ क्योंकि गुरु की प्रसन्नता से ही इस संसार-सागर से पार उतरा हूँ। दास नानक अब प्रियतम के संग मिल गया है ॥४॥७॥१२८॥

गउड़ी महला ५ ॥

"मेरा ठाकुर सर्वव्यापक है।"

तुम बिनु कवनु रीझावै तोही ॥
तेरो रूपु सगल देखि मोही ॥१॥
रहाउ ॥

(हे अनन्त ठाकुर!) तेरा रूप देखकर सारी (जीव-सृष्टि) मोहित (मस्त) हो गई है। तुम्हारे सदृश्य और कोई भी रूप नहीं है। इसलिए तुम्हारे बिना तुम्हें कौन प्रसन्न करे? ॥१॥रहाउ ॥

सुरग पइआल मिरत भूअमंडल
सरब समानो एकै ओही ॥
सिव सिव करत सगल कर जोरहि
सरब मइआ ठाकुर तेरी दोही ॥
१॥

स्वर्ग, पाताल और मत्यु लोक और ब्रह्मांड में 'वह' एक ही ठाकुर व्याप्त है। हे कल्याण स्वरूप! हे कल्याण स्वरूप! सब तेरे आगे हाथ जोड़ते हैं। हे ठाकुर! सर्व पर तेरी दया है। सब तुम्हारी सहायता की माँग करते हैं ॥१॥

पतित पावन नामु तुमरा
सुखदाई निरमल सीतलोही ॥
गिआन धिआन नानक वडिआई
स ंत तेरे सिउ गाल गलोही ॥२
॥८॥१२९॥

हे ठाकुर! तुम्हारा नाम पतितों को पवित्र करने वाला है तुम्हारा निर्मल नाम सुखों को देने वाला है और (मन को) शीतल करने वाला है। हे नानक! तेरे सन्तों से वचन विलास करना, यही ज्ञान, ध्यान एवं बड़ाई (लोक परलोक में प्रतिष्ठा) है ॥२॥८॥१२९॥

गउड़ी महला ५॥

"हरि दर्शन और हरि के सन्तों से मिलने के लिए प्रार्थना।"

मिलहु पिआरे जीआ ॥
प्रभ कीआ तुमारा थीआ ॥१॥ रहाउ॥

हे मेरे जीवात्मा के हार्दिक प्रिय ! मुझे (आकर) मिलो। हे प्रभु ! (जो कुछ हुआ है) सब तुम्हारा ही किया हुआ है ॥१॥ रहाउ॥

अनिक जनम बहु जोनी भ्रमिआ
बहुरि बहुरि दुखु पाइआ ॥
तुमरी कृपा ते मानुख देह पाई है
देहु दरसु हरि राइआ ॥१॥

(हे प्रभु ! इस बेचारे जीव ने तुमको भूलकर) अनेक जन्म प्राप्त किये हैं और बहुत ही योनियों में भटका है तथा बार-बार दुःख पाया है। (अब) तुम्हारी कृपा से इसने मनुष्य देही प्राप्त की है। हे हरि राजा ! तू दया करके (इसे अपना) दर्शन दे (कि फिर न भटके) ॥१॥

सोई होआ जो तिसु भाणा
अवरु न किनही कीता ॥
तुमरै भाणै भरमि मोहि मोहिआ
जागतु नाही सूता ॥२॥

(हे प्रभु !) जो तुम्हे अच्छा लगा है, वही हुआ है और किसी ने नही किया है। तुम्हारी आज्ञानुसार ही (यह जीव) भ्रम और मोह में ठगा हुआ, (हाँ)(अज्ञान निद्रा में) सोया हुआ (जगाने पर भी) नही जागता है ॥२॥

बिनउ सुनहु तुम प्रानपति पिआरे
किरपा निधि दइआला ॥
राखि लेहु पिता प्रभ मेरे
अनाथह करि प्रतिपाला ॥३॥

हे प्राणों के प्रिय पति जी ! हे कृपा के खजाने ! हे दयालु ! तुम मेरी (एक) विनय सुनो। हे मेरे पिता प्रभु जी ! अनाथो की प्रतिपालना करो (और इन जीवों को भ्रम और मोह से बचा लो।) ॥३॥

जिसनो तुमहि दिखाइओ दरसनु
साध संगति कै पाछै ॥
करि किरपा धूरि देहु संतन की
सुखु नानकु इहु बाछै ॥४॥६॥
१३०॥

(हे प्रभु !) (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (तुमसे) यह सुख माँगता है (कि मुझे भी) कृपा करके (उन) सन्तों की (चरणों की) धूलि दो जिनको तुमने साधु सगति के फलस्वरूप अपना दर्शन दिखाया है। ॥४॥६॥१३०॥

गउड़ी महला ५॥

"सन्त जनों की महिमा।"

हउ ता कै बलिहारी ॥
जा कै केवल नामु अधारी ॥१॥
रहाउ॥

(काश !) मैं उन (सन्तों) पर बलिहारी जाऊँ, जिनको केवल नाम का ही आधार है ॥१॥ रहाउ॥

महिमा ता की केतक गनीऐ
जन पारब्रहम रंगि राते ॥
सूख सहज आनंद तिना संगि
उन समसरि अवर न दाते ॥१॥

उन (सन्तों) की महिमा कितनी गिनी जाये ? (अर्थात् उनकी महिमा अकथनीय है), जो जन परब्रह्म के (प्रेम) रंग में रंगे हुए हैं। उनकी संगति में सहज ही सुख और आनन्द प्राप्त होता है, (हाँ) उनके बराबर अन्य कोई भी दाता नहीं है ॥१॥

जगत उधारण सेई आए
जो जन दरस पिआसा ॥
उन की सरणि परै सो तरिआ
संत संगि पूरन आसा ॥२॥

जिन (सन्त) जनों को (हरि) दर्शन की प्यास है, वे जगत का उद्धार करने के लिए आये हैं। जो भी उनकी शरण में आकर पडते हैं वे ही (भव-सागर से) पार उतरते हैं और सन्तों की संगति में उनकी (सम्पूर्ण) आशाएँ पूर्ण होती हैं ॥२॥

ता कै चरणि परउ ता जीवा
जन कै संगि निहाला ॥
भगतन की रेणु होइ मनु मेरा
होहु प्रभु किरपाला ॥३॥

यदि मैं उन (सन्तो) के चरणों में आकर पड़ूँ तो (सुख-पूर्वक) जीवित रहूँगा क्योंकि (सन्त) जनों की संगति ही कृतार्थ करने वाली है। मेरा मन भक्तजनो के चरणो की धूलि तब होकर रहेगा, जब प्रभु कृपालु होगा ॥३॥

राजु जोबनु अवध जो दीसै
सभु किछु जुग महि घाटिआ ॥
नामु निधानु सद नवतनु निरमलु
इहु नानक हरि धनु खाटिआ ॥४॥
१०॥१३१॥

(प्रश्न हे सत्गुरु ! प्रभु से राज्य, यौवनादिक पदार्थ (हम) क्यों नहीं माँगे ? उत्तर.) (हे भाई !) राज्य, यौवन, और आयु (हाँ) जो कुछ भी (इस ससार मे) दिखता है, वह सब कुछ (कलियुग) मे घटता (ही जाता) है। किन्तु नाम का खजाना नित्य नवीन रहता है और वह निर्मल भी है। यह हरि-धन (गुरु अर्जुन देव ने) हे नानक ! (आपसे) प्राप्त किया है। ॥४॥१०॥१३१॥

गउड़ी महला ५॥

"सत्गुरु की दृष्टि मे निर्मल योगी कौन है?"

जोग जुगति सुनि आइओ गुर ते ॥
मो कउ सतिगुर सबदि बुझाइओ ॥१
॥रहाउ॥

(हे भाई !) मैं परमात्मा से मिलने की युक्ति गुरु से सुनकर (पूछ कर) आया हूँ। मुझे सत्गुरु ने शब्द देकर (योग के सम्बन्ध मे) समझाया है ॥१॥रहाउ॥

नउखंड प्रिथमी इसु तनमहि रविआ
निमख निमख नमसकारा ॥

(हे भाई !) जो परमात्मा पृथ्वी के नौ खण्डों और शरीर में व्याप्त है, 'उसे' मैं क्षण-प्रतिक्षण नमस्कार करता हूँ (यह मेरा योग है)। गुरु की शिक्षा द्वारा मैंने एक निरंकार परमात्मा को

दीखिआ गुर की मुंद्रा कानी
दृड़िओ एकु निरंकारा ॥१॥

(अपने हृदय में) दृढ़ किया है, कानों की यह मुंदरा (कुण्डल) मैंने पहनी है ॥१॥

पंच चेले मिलि भए इकत्रा
एकसु कै वसि कीए ॥
दस बैरागनि आगिआकारी
तब निरमल जोगी थीए ॥२॥

(हे भाई !) मैंने काम, क्रोध लोभ, मोह व अहंकार इन पाँच चेलों को इकट्ठा करके एक (शुद्ध मन) के वशीभूत किया है। जब दस इन्द्रियाँ (५ ज्ञानेन्द्रिय और ५ कर्मेन्द्रिय) अपने-अपने (विषयों से) वैराग्य प्राप्त करके मेरी आज्ञा में 'आई' तब मैं निर्मल (शुद्ध) योगी बना हूँ ॥२॥

भरमु जराइ चराई बिभूता
पंथु एकु करि पेखिआ ॥
सहज सूख सो कीनी भुगता
जो ठाकुरि मसतकि लेखिआ ॥३॥

(हे योगी !) मैंने भ्रम को जलाकर यह विभूति लगाई है। मेरा पंथ यह है, जो सबको एक करके समझा है (अर्थात सबको 'उसी' एक कर्तार का रूप करके जानता हूँ)। जो कुछ (विधाता) ठाकुर ने मस्तक में लिखा है वह अवश्य प्राप्त होना है, इस प्रकार जो मेरे ठाकुर ने सुख दिया है उसे सहज ही (सहर्ष स्वीकार करके) भोजन बनाया है ॥३॥

जह भउ नाही तहा आसनु बाधिओ
सिंगी अनहत बानी ॥
ततु बीचारु डंडा करि राखिओ
जुगति नामु मनि भानी ॥४॥

जिस (परब्रह्म) को (प्राप्त करने से जन्म-मरण का) भय नहीं रहता, उस (परब्रह्म) में मैंने (अपना) आसन रखा है। अनहद शब्द, जो अन्तर्गत (सदैव) बज रहा है वह मेरी शृंगी है। (सत् और असत् का) यथार्थ विचार यह मैंने (हाथ में) डंडा रखा है और (हरि) नाम का अच्छा लगना यह मेरी युक्ति (व्यवहार) है अथवा नाम जपने की युक्ति मुझे प्रिय लगी है ॥४॥

ऐसा जोगी वडभागी भेटै
माइआ के बंधन काटै ॥
सेवा पूज करउ तिसु मूरति की
नानकु तिसु पग चाटै ॥५॥११॥
१३२॥

जो जीव बड़े भाग्यों के कारण ऐसे योगी को मिलता है, वह उसके माया के (सभी) बन्धनों को काट देता है। मैं नानक (भाव गुरु अर्जुन देव) उस मूर्ति की सेवा और पूजा करूँ, (हाँ) उसके पाँव भी चाटूँ (भाव विनम्र होकर उसको सदैव प्रेम करता रहूँ) ॥५॥११॥१३२॥

गउड़ी महला ५॥

"हरिनाम अनुपम पदार्थ है जो केवल हरि के हुकम में रहने से प्राप्त होता हैं।"

अनूप पदारथु नामु सुनहु
सगल धिआइले मीता ॥

हे मित्रों ! नाम रूपी पदार्थ, जो अनुपम है उसे (ध्यानपूर्वक) सुनो और फिर सारे मिलकर उसका ध्यान करो क्योंकि जिसको

हरि अउखधु जा कउ गुरि दीआ
ता के निरमल चीता ॥१॥रहाउ॥

गुरु ने हरिनाम रूपी औषध दी है, उसका चित्त निर्मल हुआ है ॥१॥रहाउ॥

अंधकार मिटिओ तिह तन ते
गुरि सबदि दीपकु परगासा ॥
भ्रम की जाली ता की काटी
जा कउ साधसंगति बिसवासा ॥१॥

(जिसके मन में) गुरु ने शब्द द्वारा ज्ञान रूपी दीया जलाया है, उसके अन्तःकरण से अज्ञान रूपी अन्धकार मिट गया है और जिसका विश्वास साधु की संगति में हो गया है, (गुरु ने) उसकी भ्रम की जाली काट दी है ॥१॥

तारी ले भवजलु तारू बिखड़ा
बोहिथ साधू संगा ॥
पूरन होई मन की आसा
गुरु भेटिओ हरि रंगा ॥२॥

साधु सन्तों की सगति रूपी जहाज ने अथवा साधुजनों के समूह ने नाम रूपी जहाज देकर दुष्कर (विषम) और (गहरे) संसार-सागर से पार उतार दिया है, (हाँ) जब हरि के प्रेम वाला गुरु मिला तो (मेरे) मन की आशा पूर्ण हुई ॥२॥

नाम खजाना भगती पाइआ
मन तन तृपति अघाए ॥
नानक हरि जीउ ता कउ देवै
जा कउ हुकमु मनाए ॥३॥१२॥
१३३॥

मैंने नाम रूपी खजाना गुरु से भक्ति रूपी सेवा करके प्राप्त किया है जिससे मेरा मन चाहे तन दोनों तृप्त हुए हैं। हे नानक! (मेरा) हरि जी यह (नाम रूपी खजाना) उसको देता है जिससे (अपना) हुकम मनवाता है ॥३॥१२॥१३३॥

गउड़ी महला ५॥

"भक्त की भगवान के साथ अनन्य प्रीति।"

दइआ मइआ करि प्रानपति मोरे
मोहि अनाथ सरणि प्रभ तोरी ॥
अंध कूप महि हाथ दे राखहु
कछू सिआनप उकति न मोरी ॥
१॥रहाउ॥

हे मेरे प्राणों के पति! मैं अनाथ तेरी शरण में आकर पड़ा हूँ, कृपया दया करके इस संसार रूपी अन्धे कुएँ से मुझे (कृपा का) हाथ देकर रख लो। मुझ में न कोई स्यानप है और नही कोई (बचने की) युक्ति का पता है ॥१॥रहाउ॥

करन करावन सभ किछु तुमही
तुम समरथ नाही अन होरी ॥

(हे प्रभु!) तुम ही सब कुछ करने वाले और कराने वाले हो। तू ही समर्थ है (तुम्हारे बिना) अन्य कोई भी नहीं है। (हे प्रभु!)

तुमरी गति मिति तुमही जानी
से सेवक जिन भाग मथोरी ॥१॥

अपने ज्ञान और सीमा को तुम (स्वयं) ही जानते हो। वे ही तुम्हारे सेवक हैं जिनके माथे पर (श्रेष्ठ) भाग्य लिखे हुए हैं ॥१॥

अपुने सेवक संगि तुम प्रभ राते
ओति पोति भगतन संगि जोरी ॥
प्रिउ प्रिउ नामु तेरा दरसनु चाहै
जैसे द्रिसटि ओह चंद चकोरी ॥२॥

हे प्रभु ! तू अपने सेवकों के साथ ओत-प्रोत भाव पूर्ण रूप से भक्तों के साथ जुड़े (मिले) हुए हो। (भक्त पपीहे पक्षी जैसे) प्रिय प्रिय करता हुआ तुम्हारा नाम उच्चारण करता है और तुम्हारा दर्शन चाहता हैं। जैसे चन्द्रमा को चकोर प्रीति से देखता हैं, वही दृष्टि इस सेवक की है ॥२॥

राम संत महि भेदु किछु नाही
एकु जनु कई महि लाख करोरी ॥
जा कै हीऐ प्रगटु प्रभु होआ
अनदिनु कीरतनु रसन रमोरी ॥३॥

(हे भाई !) राम और सन्त में कोई भेद नहीं है, किन्तु कई लाखों करोड़ों में एक (सन्त) जन है। हे प्रभु ! जिसके हृदय में तू प्रकट हुआ है, वह रात दिन तेरे कीर्तन रूपी आनन्द में रमण करता है अथवा रसना द्वारा कीर्तन उचारण करता है ॥३॥

तुम समरथ अपार अति ऊचे
सुखदाते प्रभ प्रान अधोरी ॥
नानक कउ प्रभ कीजै किरपा
उन संतन कै संगि संगोरी ॥४॥
१३॥१३४॥

(हे प्रभु !) तू समर्थ है, पारावार से रहित है, अति ऊँचा है, सुखों को देने वाला है और प्राणाश्रय दाता है। हे प्रभु ! (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (रूप गुरु अर्जुन देव) पर कृपा करो, उन्हें उन सन्तों (जिनके हृदय में तू प्रकट हुआ है और जो रात दिन तुम्हारे कीर्तन में रमण करते है) की संगति में संगी बनाकर रखो ॥४॥१३॥१३४॥

गउड़ी महला ५॥

"हे सन्तो ! हमें भी परमेश्वर के साथ मिला दीजिए।"

तुम हरि सेती राते संतहु ॥
निबाहि लेहु मो कउ पुरख बिधाते
ओड़ि पहुचावहु दाते ॥१॥रहाउ॥

हे सन्तों ! तुम हरि के साथ रंगे हुए हो। मुझे अपने साथ मिला लीजिए। सारों के दाता पुरुष विधाता जो प्रभु है, 'उसके' पास अथवा अन्तिम पड़ाव पर पहुँचा दो ॥१॥रहाउ॥

तुमरा मरमु तुमाही जानिआ
तुम पूरन पुरख बिधाते ॥
राखहु सरणि अनाथ दीन कउ
करहु हमारी गाते ॥१॥

हे सन्तों ! तुम्हारा भेद तुमने ही जाना है। तुम पूर्ण विधाते पुरुष के स्वरूप हो। मुझ दीन अनाथ को अपनी ही शरण में रखो और मेरी गति (मुक्ति) करो ॥१॥

तरण सागर बोहिथ चरण तुमारे
तुम जानहु अपुनी भाते ॥
करि किरपा जिसु राखहु संगे
तेते पारि पराते ॥२॥

(हे सन्तों)! संसार-सागर से पार उतरने के लिए तुम्हारे चरण जहाज रूप हैं, (कैसे पार उतारते हो, यह) अपनी रीति तुम स्वयं ही जानते हो। जिन पर कृपा करके तुम अपनी संगति में रखते हो, वे ही भव-सागर से पार उतरते हैं ॥२॥

ईत ऊत प्रभ तुम समरथा
सभु किछु तुमरै हाथे ॥
ऐसा निधानु देहु मो कउ
हरिजन चलै हमारै साथे ॥३॥

जहां-जहां (लोक-परलोक में) हे प्रभो ! तुम ही करने कराने में समर्थ हो। सब कुछ तुम्हारे ही हाथ मे है। हे हरि के जन (सन्तों) ! ऐसा (धन का) खजाना मुझे दो जो (परलोक में) मेरे साथ चले ॥३॥

निरगुनीआरे कउ गुनु कीजै
हरिनामु मेरा मनु जापे ॥
संत प्रसादि नानक हरि भेटे
मन तन सीतल ध्रापे ॥४॥१४
॥१३५॥

मुझ निर्गुण को ऐसा गुण प्रदान करो कि मेरा मन हरिनाम को ही (सदा) जपता रहे। हे नानक ! सन्तों की कृपा से मैं हरि को मिला हूँ। अब मेरा मन और तन शीतल हो गये हैं, (हाँ) तृप्त हो गये हैं ॥४॥१४॥१३५॥

गउड़ी महला ५॥

"मेरे गुरुदेव अपनी सहजावस्था का सुन्दर वर्णन करते हैं।"

सहजि समाइओ देव ॥
मो कउ सतिगुर भए दइआल देव
॥१॥रहाउ॥

(हे भाई !) जिस समय (गुरू) देव मेरे ऊपर दयालु हुए तो मैं सहज ही प्रकाश रूप परमात्मा मे समा गया ॥१॥रहाउ॥

काटि जेवरी कीओ दासरो
संतन टहलाइओ ॥
एक नाम को थीओ पूजारी
मो कउ अचरजु गुरहि दिखाइओ
॥१॥

(हे भाई !) सतगुर ने मेरी मोह रूपी रस्सी काट कर मुझे दास बना लिया तथा सन्तों की सेवा में लगा दिया। जब मैं एक नाम का ही पुजारी बन गया तो मुझे गुरु ने एक आश्चर्य रूप दिखा दिया ॥१॥

भइओ प्रगासु सरब उजीआरा
गुर गिआनु मनहि प्रगटाइओ ॥

गुरु का ज्ञान जब मन में प्रगट हुआ तो जिससे सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश हो गया। जब मैंने नामामृत का पान किया तो मन

अमृतु नामु पीओ मनु तृपतिआ
अनभै ठहराइओ ॥२॥

तृप्त हो गया तथा अन्य भय सब छूट गए अथवा अनुभव में आकर (अपने आप को) ठहराया ॥२॥

मानि आगिआ सरब सुख पाए
दूखह ठाउ गवाइओ ॥
जउ सुप्रसंन भए प्रभ ठाकुर
सभु आनद रूपु दिखाइओ ॥३॥

(हे भाई !) सत्गुरु की आज्ञा मान कर मैंने सर्व सुख प्राप्त किये हैं और दुःखों का ठिकाना (अर्थात् अज्ञान) भी निवृत्त किया है)। जब प्रभु ठाकुर प्रसन्न हुए तो मुझे दिखा दिया कि सर्व आनन्द स्वरूप है (अर्थात सब गोबिन्द है गोबिन्द के बिना कुछ भी नही है) ॥३॥

ना किछु आवत ना किछु जावत
सभु खेलु कीओ हरि राइओ ॥
कहु नानक अगम अगम है ठाकुर
भगत टेक हरिनाइओ ॥४॥१५
॥१३६॥

(सच तो यह है कि) न कुछ आता है और न कुछ जाता है। हरि राजा ने यह सब जगत का खेल किया है। कहते हैं (मेरे गुरु देव बाबा) नानक कि मेरा ठाकुर मन और इन्द्रियों की पहुँच से परे (अगम्य) हैं और भक्तों को आश्रय केवल हरि नाम का ही है ॥४॥१५॥१३६॥

गउड़ी महला ५॥

"दीनों के दर्द और दुःखों के विनाशक हरि का नाम जप।"

पारब्रहम पूरन परमेसुर
मन ता की ओट गहीजै रे ॥
जिनि धारे ब्रहमंड खंड हरि
ता को नामु जपीजै रे ॥१॥रहाउ॥

हे मन ! परब्रह्म जो पूर्ण परमेश्वर है 'उसकी' ओट (आसरा) ग्रहण कर। जिस हरि ने (नौ) खण्ड और (सर्व ब्रह्माण्ड (अपने बल से) धारण किये हुए हैं, 'उसके' नाम का जाप कर ॥१॥रहाउ॥

मन की मति तिआगहु हरिजन
हुकमु बूझि सुखु पाईऐ रे ॥
जो प्रभु करै सोई भल मानहु
सुखि दुखि ओही धिआइऐ रे ॥१॥

अरे हरि के दासों से मिलकर अपने मन की मति को त्याग दे। (याद रखो) हुकम को मानोगे तो सुख पाओगे। जो प्रभु करता है उसको भला करके मानो और सुख अथवा दुःख में 'उसी' का ध्यान करो ॥१॥

कोटि पतित उधारे खिन महि
करते बार न लागै रे ॥

अरे ! कर्ता ने करोड़ों पतितों का क्षण भर में उद्धार कर दिया और ऐसा करते हुए 'उसे' देरी भी नहीं लगी। 'वह' स्वामी

दीन दरद दुख भंजन सुआमी
जिसु भावै तिसहि निवाजै रे ॥२॥

दीनों के दर्द तथा दुःखों का नाशक है। 'वह' जिसे चाहता है उसे (बड़ाई) प्रदान करता है ॥२॥

सभ को मात पिता प्रतिपालक
जीअ प्रान सुख सागरु रे ॥
देंदे तोटि नाही तिसु करते
पूरि रहिओ रतनागरु रे ॥३॥

सबका 'वह' माता पिता होकर प्रतिपालना करने वाला है और सबके जीवात्मा और प्राणों का सुख-सागर है। 'उस' कर्त्ता को देते हुए (किसी बात की) त्रुटि नहीं आती। अरे (भाई)! रत्नों का भण्डार परमेश्वर (सर्वत्र) परिपूर्ण हो रहा है ॥३॥

जाचिकु जाचै नामु तेरा सुआमी
घट घट अंतरि सोई रे ॥
नानकु दासु ता की सरणाई
जा ते ब्रिथा न कोई रे ॥४॥१६॥
१३७॥

हे स्वामी! (मैं) याचक आपका नाम माँगता हूँ। अरे (भाई)! 'वह' स्वामी ही घट घट के भीतर (एक जैसा) व्यापक है। दास नानक 'उस' की शरण में आया है, जिससे कोई (याचक) खाली नहीं जाता ॥४॥१६॥१३७॥

रागु गउड़ी पूरबी महला ५॥

हरि हरि कबहू न मनहु बिसारे ॥
ईहा ऊहा सरब सुखदाता
सगल घटा प्रतिपारे ॥१॥रहाउ॥

(हे भाई!) सर्व दुःखों के हर्त्ता हरि को कभी भी मन से नहीं भुलाओ। 'वह' यहाँ-वहाँ (लोक/परलोक में) सर्व सुखों को देने वाला है और सब जीवों को पालने वाला भी है ॥१॥रहाउ॥

महा कसट काटै खिन भीतरि
रसना नामु चितारे ॥
सीतल सांति सूख हरि सरणी
जलती अगनि निवारे ॥१॥

जो अपनी रसना से नाम का चिन्तन करता है, उसके बड़े से बड़े दु:ख (हरि) क्षण में काट देता है और जो हरि की शरण ग्रहण करते हैं उन्हें शीतलता, शान्ति तथा सुख प्राप्त होते हैं एवं तृष्णा रूपी अग्नि, जो जल रही है, उसको भी (हरि) निवृत कर देता है ॥१॥

गरभ कुंड नरक ते राखै
भवजलु पारि उतारे ॥
चरन कमल आराधत मन महि
जम की त्रास बिदारे ॥२॥

'वह' माता के गर्भ के नरक कुण्ड से रक्षा करता है और संसार-सागर से पार करता है। मन में जो (हरि के) चरण कमलों का ध्यान करता है, 'वह' उसका मृत्यु का भय दूर कर देता है ॥२॥

पूरन पारब्रहम परमेसुर
ऊचा अगम अपारे ॥
गुण गावत धिआवत सुख सागर
जूए जनमु न हारे ॥३॥

'वह' परब्रह्म पूर्ण परमेश्वर (सर्व से) ऊँचा है, मन की वाणी की पहुँच से बाहर (अगम्य) है और पार रहित (अपार) है, ऐसे सुखों के सागर (हरि) के गुण जो गाता है वह जूए की हार जैसे व्यर्थ (मनुष्य) जन्म खो नहीं देता ॥३॥

कामि क्रोधि लोभि मोहि मनु लीनो
निरगुण के दातारे ॥
करि किरपा अपुनो नामु दीजै
नानक सद बलिहारे ॥४॥१॥
१३८॥

हे मुझ निर्गुण के दातार प्रभो! मेरा मन काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि में लीन हुआ हुआ है। कृपा करके मुझे अपना नाम दो। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक आपके ऊपर सदा बलिहारी जाता है ॥४॥१॥१३८॥

रागु गउड़ी चेती महला ५॥

सुखु नाही रे हरि भगति बिना ॥ जीति जनमु इहु रतनु अमोलकु साध संगति जपि इक खिना ॥१॥ रहाउ॥	अरे (भाई)! हरि की भक्ति बिना सुख नहीं है। (इसलिए हरि की भक्ति करके) अमूल्य रत्न जैसा यह (मानव) जन्म जीत ले। (प्रश्न: कैसे? उत्तर.) साधु की संगति में बैठकर एक क्षण के लिए ही नाम का जाप कर ले॥१॥रहाउ॥
सुत सम्पति बनिता बिनोद ॥ छोडि गए बहु लोग भोग ॥१॥	(तुम से पहले हे भाई!) पुत्र, सम्पत्ति, स्त्री आमोद-प्रमोद के साधन भोग-भोग कर बहुत लोग (यहाँ) छोड़कर चले गए हैं॥१॥
हैवर गैवर राज रंग ॥ तिआगि चलिओ है मूड़ नंग ॥२॥	अच्छे-अच्छे हाथी, घोड़े और राजसी आनन्द (भोगकर), हे मूर्ख! त्याग कर (अनेक भोगते यहाँ से) नंगे चले गए॥२॥
चोआ चंदन देह फूलिआ ॥ सो तनु धर संगि रूलिआ ॥३॥	चन्दन, इत्यादि शरीर पर लगा कर जो फूला नहीं समाता था, उसका शरीर भी मिट्टी में मिल गया है॥३॥
मोहि मोहिआ जानै दूरि है ॥ कहु नानक सदा हदूरि है ॥४॥ १॥१३९॥	मोह से ग्रस्त मनुष्य (प्रभु को) दूर समझता है। (किन्तु) हे नानक! 'वह' तो सदा (हाजरा) हजूर है, (तुम्हारे ही पास है)॥ ४॥१॥१३९॥

गउड़ी महला ५।।

"हरि नाम की महिमा।"

मन धर तरबे हरि नामनो ।।
सागर लहरि संसा संसारु
गुरु बोहिथु पार गरामनो ।।१।।
रहाउ।।

(हे भाई !) भव-सागर से पार होने के लिए मन में हरिनाम को धारण कर अथवा हे मन ! हरि का नाम पार होने के लिए सहारा है। संसार (एक) समुद्र है और भ्रम उसकी लहरें हैं और पार कराने वाला गुरु जहाज है ॥१॥रहाउ॥

कलि कालख अंधिआरीआ ।।
गुर गिआन दीपक उजिआरीआ ।।
१।।

(हे भाई !) कलियुग में अज्ञानान्धकार की कालिख है, उसमें गुरु के ज्ञान का दीपक प्रकाश करता है ॥१॥

बिखु बिखिआ पसरी अति घनी ।।
उबरे जपि जपि हरि गुनी ।।२।।

(कलियुग में) विषयों रूपी विष बहुत अधिक फैली हुई है (किन्तु इस विष से) हरि रूपी मन्त्र को गुनगुनाने वाले (जीव) जप-जपकर बच गए हैं ।।२॥

मतवारो माइआ सोइआ ।।
गुर भेटत भ्रमु भउ खोइआ ।।३।।

माया मदोन्मत्त मनुष्य सोया हुआ है, (किन्तु) गुरु को मिलने से इसके भ्रम और भय दूर हो गए ॥३॥

कहु नानक एकु धिआइआ ।।
घटि घटि नदरी आइआ ।।४।।२।।
१४०।।

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक एक अद्वितीय परमात्मा का ध्यान करने से 'वह' घट-घट के भीतर देखने में आता है ।।४ ।।२।।१४०।।

गउड़ी महला ५।।

"चाकर के लिए प्रभु का नाम एक मात्र सहारा है।"

दीबानु हमारो तुही एक ।।
सेवा थारी गुरहि टेक ।।१।।रहाउ।।

(हे महाराज !) तू ही एक हमारा आश्रय है, मैं गुरु की ओट (टेक) लेकर तुम्हारी सेवा करता हूँ ॥१॥ रहाउ॥

अनिक जुगति नही पाइआ ।।
गुरि चाकर लै लाइआ ।।१।।

(हे प्रभु !) विविध युक्तियों से भी तुझे नहीं प्राप्त कर सके, किन्तु गुरु ने (सेवकों के सेवक) चाकर को (तेरी सेवा में) लगा दिया ॥१॥

मारे पंच बिखादीआ ॥
गुर किरपा ते दलु साधिआ ॥२॥

पाँच (काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार) [illegible] करने वाले थे उनको मार दिया है। इस प्रकार गुरु की कृपा से उस (विकारों के) दल को जीत लिया है॥२॥

[illegible] एकु नाम ॥
सूख सहज आनंद [illegible] ॥३॥

(मुझे काम!) बख्शिश और तनख्वाह एक नाम की [illegible] क्योंकि सहज सुख, आनन्द और [illegible] संभव) है ॥३॥

प्रभ के चाकर से भले ॥
नानक तिन मुख [illegible] ॥४॥३॥
॥१४१॥

जो प्रभु के (सेवकों के सेवक) चाकर हैं, वे ही भले हैं और हे नानक! उनके मुख (सदैव) उज्ज्वल होते हैं (अर्थात वे सदैव आनन्द में हैं) ॥४॥३॥१४१॥

गउड़ी महला ५॥

"हरिनाम की महिमा।"

जीअ रे ओल्हा नाम का ॥
अवरु जि करन करावनो
तिन महि [illegible] ॥१॥
रहाउ॥

हे जीव! केवल नाम का ही आश्रय (निर्भय करने वाला) है। शेष कार्य करने-कराने में यमों का भय बना रहता है॥१॥रहाउ॥

[illegible] नही पाईऐ ॥
वडै [illegible] हरि [illegible] ॥१॥

अन्य यत्नों से वह प्राप्त नहीं होता, किन्तु बड़े भाग्य के कारण ही हरि का ध्यान होता है॥१॥

लाख हिकमती जानीऐ ॥
आगै तिलु नही [illegible] ॥२॥

(हे भाई!) (नाम के बिना चाहे) लाखों चतुराईयों के ज्ञाता हो, किन्तु हरि के सन्मुख थोड़ी सी भी नहीं मानी जाती॥२॥

अहंबुधि [illegible] ॥
गृह बालू नीरि [illegible] ॥३॥

अहंकार पूर्वक जो कर्म किये जायें, वे तो [illegible] से [illegible] है (अर्थात निष्फल हैं) ॥३॥

प्रभु कृपालु किरपा करै ॥
नामु नानक साधू संगि मिलै ॥४॥
४॥१४२॥

(प्रश्नः वह नाम कहाँ से मिले ? उत्तर:) यदि कृपालु प्रभु कृपा करे तो हे नानक! (वह) नाम [illegible] है ॥४॥४॥१४२॥

गउड़ी महला ५॥

"हे प्राणों के आधार ! [illegible]"

वारनै बलिहारनै लख बरीआ ॥
नामो हो नामु साहिब को
प्रान अधारीआ ॥१॥ रहाउ॥

हे साहब ! बलिहारी हूँ, (हाँ) लाखों बार तुम्हारे ऊपर वारी हूँ, मेरे प्राणों का आधार तेरा नाम, (हाँ, तेरा नाम ही है ॥१॥ रहाउ॥

करन करावन तुही एक ॥
जीअ जंत की तुही टेक ॥१॥

(हे प्रभु !) करने वाले और कराने वाले तुम एक ही हो और (समस्त) जीव-जन्तुओं की तुम (एक) ही टेक (सहारा) हो ॥ ॥

राज जोबन प्रभ तूं धनी ॥
तूं निरगुन तूं सरगुनी ॥२॥

(हे प्रभु !) (जीवों को) राज्य और यौवन देने वाला शाह भी तू है। तू ही निर्गुण है और तू ही सगुण (स्वरूप) है ॥२॥

ईहा ऊहा तुम रखे ॥
गुर किरपा ते को लखे ॥३॥

यहाँ-वहाँ (लोक-परलोक में) तुम ही रक्षक हो, किन्तु कोई विरला ही गुरु की कृपा से (यह बात) समझता है ॥३॥

अंतरजामी प्रभ सुजानु ॥
नानक तकीआ तुही ताणु ॥४
॥५॥१४३॥

हे प्रभु ! तू अन्दर की जानने वाला है और चतुर भी है, (हाँ) (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक का आसरा और बल भी तू (एक) ही है ॥४॥५॥१४३॥

गउड़ी महला ५॥

"सन्तों की संगति और राम की रगत-भक्ति के लिए अनिवार्य है।"

हरि हरि हरि आराधीऐ ॥
संत संगि हरि मनि वसै
भरमु मोहु भउ साधीऐ ॥१॥
रहाउ॥

(हे भाई !) हरि के 'हरि हरि' नाम की आराधना करें, किन्तु (स्मरण रहे कि) सन्तों की संगति से भ्रम मोह और भय को वश में करें तब हरि मन में (आकर) बसता है ॥१॥ रहाउ॥

बेद पुराण सिम्रिति भने ॥
सभ ऊच बिराजित जन सुने ॥१॥

(४) वेद, १८ (पुराण) और (२७) स्मृतियाँ आदि का कथन है कि सर्वोपरि विराजमान (सन्त) जन सुने जाते हैं ॥१॥

सगल असथान भै भीत चीन ॥
राम सेवक भै रहत कीन ॥२॥

(अन्य) सभी स्थान किसी न किसी भय से भयभीत हुए समझें, केवल राम के सेवक ही भय से रहित किये हैं ॥२॥

लख चउरासीह जोनि फिरहि ॥
गोबिद लोक नही जनमि मरहि ॥
३॥

(सम्पूर्ण जीव-सृष्टि) चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करती रही है, किन्तु गोबिन्द के लोग (अर्थात् सन्तजन) जन्म-मरण में नहीं पड़ते ॥३॥

बल बुधि सिआनप हउमै रही ॥
हरि साध सरणि नानक गही ॥४
॥६॥१४४॥

हे नानक ! बल, बुद्धि, स्यानप और अहंकार सब निकल हो चुके हैं। (मैंने) हे नानक ! (गोविन्द के लोग) साधुजनों की शरण पकड़ ली है ॥४॥६॥ १४४॥

गउड़ी महला ५॥

"हरिनाम के लिए अभिलाषा।"

मन राम नाम गुन गाईऐ ॥
नीत नीत हरि सेवीऐ
सासि सासि हरि धिआईऐ ॥१॥
रहाउ॥

हे मन ! राम के नाम और गुणों का गायन कर। सदा सर्वदा हरि की सेवा कर और श्वास-प्रश्वास हरि का ध्यान कर ॥१॥
रहाउ॥

संत संगि हरि मनि वसै ॥
दुखु दरदु अनेरा भ्रमु नसै ॥१॥

जब सन्तों की संगति से हरि मन में बसता है तो दुःख, दर्द, अन्धकार, भ्रमादि (सब) नाश हो जाते हैं ॥१॥

संत प्रसादि हरि जापीऐ ॥
सो जनु दूखि न विआपीऐ ॥२॥

सन्तों की कृपा से जो दास हरि (नाम) को जपता है उसे कोई भी दुःख नही व्याप्त होता (अर्थात वह सदैव सुखी रहता है) ॥२॥

जा कउ गुरु हरि मंत्रु दे ॥
सो उबरिआ माइआ अगनि ते ॥३॥

जिसको गुरु हरि का मन्त्र देता है, वह माया रूपी अग्नि से बच जाता है ॥३॥

नानक कउ प्रभ मइआ करि ॥
मेरै मनि तनि वासै नामु हरि ॥
४॥७॥१४५॥

हे प्रभु ! (मैं) नानक पर कृपा कर ताकि मेरे मन में, तन में हरि नाम बस जावे ॥४॥७॥१४५॥

गउड़ी महला ५॥

"हरि नाम की महिमा॥

रसना जपीऐ एकु नाम ॥
ईहा सुखु आनंदु घना आगै
जीअ कै संगि काम ॥१॥रहाउ॥

(हे भाई!) रसना से एक नाम ही जप, जिससे यहाँ (इस लोक में) बहुत सुख और आनन्द मिलते हैं और आगे (परलोक में भी नाम) जीवात्मा के साथ काम आता है ॥१॥रहाउ॥

कटीऐ तेरा अहं रोगु ॥
तूं गुर प्रसादि करि राज जोगु ॥
१॥

(नाम जपने से) तेरा अहंकार का रोग कट जायेगा और तू गुरु की कृपा से श्रेष्ठ (भक्ति) योग करेगा ॥१॥

हरि रसु जिनि जनि चाखिआ ॥
ता की तृसना लाथीआ ॥२॥

जिस (जीव) ने हरि (नाम) का रस चख लिया है, उसकी तृष्णा दूर हो जाती है (अर्थात् उसे फिर विषयों में से स्वाद नहीं आता। वह आठ प्रहर ही नाम के रस में मग्न रहता है)॥२॥

हरि बिस्राम निधि पाइआ ॥
सो बहुरि न कतही धाइआ ॥३॥

(हाँ) हरि, जो विश्राम का खजाना है, 'उसको' जो जीव प्राप्त करता है, वह फिर कहीं नहीं भटकता (अर्थात वह चौरासी से छूट जाता है) ॥३॥

हरि हरिनामु जा कउ गुरि दीआ ॥
नानक ता का भउ गइआ ॥४॥८
॥१४६॥

सर्व दुखो के हर्त्ता हरि के हरिनाम को जिसको गुरु ने दिया है, हे नानक! उसका (समस्त) भय दूर हो गया है ॥४॥८॥१४६॥

गउड़ी महला ५॥

"हरि नाम की महिमा।"

जा कउ बिसरै रामनाम
ताहू कउ पीर ॥
साध संगति मिलि हरि रवहि
से गुणी गहीर ॥१॥रहाउ॥

(हे भाई!) जिस (मनमुख) को राम नाम भूलता है, उसको जन्म-मरण की पीडा होती है, किन्तु जो साध संगति में मिल कर हरि (नाम) का उचारण करता है, वे गुण करके गहरे (गम्भीर) (अर्थात वे गुण सागर रुप) हो जाते हैं ॥१॥रहाउ॥

जा कउ गुरमुखि रिदै बुधि ॥
ता कै करतल नव निधि सिधि ॥१॥

(हे भाई!) जिसको गुरू द्वारा हृदय में (हरिनाम उचारण करने की) बुद्धि आ गयी है, उसके हाथ की हथेली पर नौ निधियाँ और (१८) सिधियाँ हैं ॥१॥

जो जानहि हरि प्रभु धनी ॥
किछु नाही ता कै कमी ॥२॥

(हे भाई !) जो हरि प्रभु को अपना [illegible] जानता है, उसके (घर में) पास किसी (वस्तु) की कमी नहीं रहती (अर्थात वह शाहों का शाह है) ॥२॥

करणैहारु पछानिआ ॥
सरब सूख रंग माणिआ ॥३॥

(हे भाई !) जिसने करने वाले (हरि प्रभु) की पहचान किया है, उसने ही सब सुखों और आनन्द का अनुभव किया है ॥३॥

हरि धनु जा कै ग्रिहि वसै ॥
कहु नानक तिन संगि दुखु नसै ॥
४॥९॥१४७॥

जिनके हृदय रूपी घर में हरि (के नाम) का [illegible], कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि उनकी संगति में दुःख दौड जाते हैं ॥४॥९॥१४७॥

गउड़ी महला ५॥

"हे भूले हुए जीव ! अहंकार कदाचित मत कर !"

गरबु बडो मूलु इतनो ॥
रहणु नही गहु कितनो ॥१॥रहाउ॥

(हे भूले हुए भाई !) इस शरीर का मूल तो इतना है (अर्थात रक्त वीर्य भाव गन्दा पानी हैं किन्तु शरीर का) अहंकार इतना महान ! यहाँ रहना नहीं है, (किन्तु ममतावश) कितनी वस्तुओं को पकड़ बैठा है ॥१॥रहाउ॥

बेबरजत बेद संतना ॥
उआहू सिउ रे हितनो ॥
हारि जूआर जूआ बिधे ॥
इंद्री वसि लै जितनो ॥१॥

(हे भाई !) वेदों और सन्तों ने वस्तुएं छोड़ने योग्य बतलाई हैं लेकिन तू उसके साथ ही हित (प्यार) करता है। जुआरी के समान जूए में हार रहा है और इन्द्रियाँ भी इसे वश में करके (इस प्रकार भूले हुए जीव को भुला रही हैं) ॥१॥

हरन भरन संपूरना
चरन कमल रंगि रितनो ॥
नानक उधरे साध संगि
किरपा निधि मै दितनो ॥२॥१०॥
१४८॥

(हे भाई !) (जो कर्त्ता पुरुष) रिक्त (खाली) करने और भरने में पूर्ण समर्थ है, 'उसके' चरण कमलों की प्रीति से तु वंचित है। (देखो) कृपा के खजाने प्रभु ने मुझे साधु की संगति प्रदान की है, (और उस सत्संगति द्वारा) नानक (गुरु अर्जन देव कहते हैं) बच गया है ॥२॥१०॥१४८॥

गउड़ी महला ५॥

"हरि ठाकुर के प्रति स्तुति !"

मोहि दासरो ठाकुर को ॥
धानु प्रभ का खाना ॥१॥रहाउ॥

मैं ठाकुर का दास हूँ और प्रभु का दिया हुआ अन्न खाता हूँ ॥१॥रहाउ॥

ऐसो है रे खसमु हमारा ॥
खिन महि साजि सवारणहारा ॥ १॥

(हे भाई !) मेरा मालिक ऐसा (समर्थ) है, 'वह' क्षण में उत्पन्न करके संवारने वाला (सजाने वाला) भी है ॥१॥

कामु करी जे ठाकुर भावा ॥
गीत चरित प्रभ के गुन गावा ॥२॥

जो काम मेरे ठाकुर को भाते (अच्छा लगते) हैं, वे ही मैं करता हूँ और गीतों और चरित्रों द्वारा प्रभु के गुण गाता हूँ ॥२॥

सरणि परिओ ठाकुर वजीरा ॥
तिना देखि मेरा मनु धीरा ॥३॥

(फिर मैं अपने) ठाकुर के मन्त्रियों (सन्तों) की शरण में पड़ा हूँ, जिनको देखकर मेरा मन धैर्य वाला हुआ है ॥३॥

एक टेक एको आधारा ॥
जन नानक हरि की लागा कारा ॥ ४॥११॥१४९॥

(अत: मुझे) एक ही (अपने ठाकुर की) टेक (आश्रय) है, 'उसी' एक का (मन में) आधार है, (हाँ) मैं दास नानक 'उस' हरि की कार (सेवा के काम) में ही लगा हूँ ॥४॥११॥१४९॥

गउड़ी महला ५॥

"साधु की सगति के बिना जीव भटकता है।"

है कोई ऐसा हउमै तोरै ॥
इसु मीठी ते इहु मनु होरै ॥१॥ रहाउ॥

(हे भाई !) कोई ऐसा (समर्थ) है जो अहंकार को तोड़ (निवृत कर) दे और इस मीठी माया से इस मन को रोक देवे ? ॥१॥रहाउ॥

अगिआनी मानुखु भइआ
जो नाही सो लोरै ॥
रैणि अंधारी कारीआ
कवन जुगति जितु भोरै ॥१॥

यह मनुष्य अज्ञानी हो गया है और पदार्थ, जो रहने वाले नहीं हैं, उनको चाहता है। अविद्या रूपी अन्धकार और काली रात है। वह कौन सी युक्ति (उपाय) है जिससे ज्ञान रूपी सबेरा उदय हो (भाव प्रकाश हो) जाए ? ॥१॥

भ्रमतो भ्रमतो हारिआ
अनिक बिधी करि टोरै ॥
कहु नानक किरपा भई
साध संगति निधि मोरै ॥२॥ १२॥१५०॥

(मनुष्य) भटकता-भटकता हार गया है, अनेक ढंगों से खोजता है (कि बुद्धि कैसे उज्जवल हो जाय)। कहते हैं (मेरे गुरु-देव बाबा) नानक कि (मेरे ऊपर तो) कृपा हो गई जो मुझे साधु-संगति द्वारा हरि रूपी खजाना प्राप्त हो गया है ॥२॥१२॥१५०॥

गउड़ी महला ५॥

"चिन्तामणि प्रभु ! कृपा कर कि नाम का स्मरण करूँ।"

चिंतामणि करुणामए ॥१॥रहाउ॥

(मेरा) करुणामय प्रभु चिन्तामणि है (अर्थात् वह मणि जो सम्पूर्ण मनवांछित पदार्थों को देती है) ॥१॥रहाउ॥

दीन दइआला पारब्रहम ॥
जा कै सिमरणि सुख भए॥१॥

परब्रह्म प्रभु दीनों पर ऐसी दया करने वाला है जिसके स्मरण करने से सुख (प्राप्त) होते हैं॥१॥

अकालपुरख आगाधि बोध ॥
सुनत जसो कोटि अघ खए ॥२॥

अकाल पुरुष का बोध (ज्ञान) अथाह है। 'उसका' यश सुनते ही करोड़ो पाप नाश हो जाते हैं॥२॥

किरपा निधि प्रभ मइआ धारि ॥
नानक हरि हरि नामु लए ॥३॥
१३॥१५१॥

हे कृपा के खजाने प्रभु ! मुझ पर भी दया धारण कर कि (बाबा) नानक भी सर्व दु खो के हर्ता हरिनाम का स्मरण करे॥३॥
१३॥१५१॥

गउड़ी पूरबी महला ५॥

"प्रभु कैसे प्राप्त हो सकता है ?"

मेरे मन सरणि प्रभू सुख पाए ॥
जा दिनि बिसरै प्रान सुखदाता
सो दिनु जात अजाए ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन ! प्रभु की शरण मे ही सुख प्राप्त करेगा। जिस दिन प्राणों को सुख देने वाला दाता प्रभु भूल जाये, वह दिन व्यर्थ ही चला जाता है ॥१॥रहाउ॥

एक रैण के पाहुन तुम आए
बहु जुग आस बधाए ॥
गृह मंदर संपै जो दीसै
जिउ तरवर की छाए ॥१॥

(हे भाई !) अतिथि तो एक रात के हो, किन्तु आशाएँ अनेक युगों की बान्धे बैठे हो। (देखो) कच्चे घर, पक्के मन्दिर और सम्पत्ति जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, ये सब कुछ वृक्ष की छाया के समान है (जो स्थिर नही है) ॥१॥

तनु मेरा संपै सभ मेरी बाग
मिलख सभ जाए ॥
देवनहारा बिसरिओ ठाकुरु
खिन महि होत पराए ॥२॥

(तू कहता है कि यह) शरीर मेरा है, यह सारी सम्पत्ति मेरी है, हरे-भरे बाग भी मेरे हैं, जागीरें भी मेरी हैं और सारी जमीन भी मेरी है। ये सब कुछ देने वाला ठाकुर तुझे बिसर गया है, किन्तु (स्मरण रहे कि सारे पदार्थ) एक क्षण में पराये हो जायेंगे ॥२॥

पहिरै बागा करि इसनाना
चोआ चंदन लाए ॥
निरभउ निरंकार नही चीनिआ
जिउ हसती नावाए ॥३॥

तू स्नान करके श्वेत वस्त्र पहनता है और चन्दन का इत्र लगाता है, किन्तु भय से रहित निरंकार को नहीं पहचानता, इसलिए तुम्हारा स्नानादि ऐसे है जैसे हाथी को स्नान कराया जाता है (अर्थात स्नान करने के पश्चात् हाथी धूलि उडाता है और फिर गन्दा हो जाता है इसी प्रकार तुम्हारे अहंकार युक्त कर्म निष्फल हैं।) ॥३॥

जउ होइ क्रिपालु त सतिगुरु मेलै
सभि सुख हरि के नाए ॥
मुकतु भइआ बंधन गुरि खोले
जन नानक हरिगुण गाए ॥४॥
१४॥१५२॥

(वस्तुत.) सारे सुख हरि के नाम में हैं किन्तु जब हरि कृपालु होता है तो जीव को सत्गुरु मिलाता है (जो फिर नाम की बख्शिश करता है)। हे दास नानक! जब जीव हरि के गुण गाता है तो वह मुक्त होता है और गुरु उसके सभी बन्धन तोड़ देता है ॥४॥
१४॥१५२॥

गउड़ी पूरबी महला ५॥

"गुरु को सदा जप तो काम सफल सब।"

मेरे मन गुरु गुरु गुरु सद करीऐ ॥
रतन जनमु सफलु गुरि कीआ
दरसन कउ बलिहारीऐ ॥१॥
रहाउ॥

हे मेरे मन! तू सदा गुरु, गुरु, गुरु (उच्चारण) कर। यह रत्नों के समान (अमूल्य) जन्म गुरु ने सफल कर दिया है इसलिए उसके दर्शन के ऊपर बलिहारी जाना चाहिए ॥१॥रहाउ॥

जेते सास ग्रास मनु लेता
तेते ही गुन गाईऐ ॥
जउ होइ दैआलु सतिगुरु अपुना
ता इह मति बुधि पाईऐ ॥१॥

(हे मन!) जितने श्वास लेता या ग्रास मुख में डालता है उतनी बार हरि-गुण गाने चाहिए। किन्तु जब अपना सत्गुरु दयालु होता है, तब यह शिक्षा (गुन गाने की) बुद्धि मे प्राप्त होती है ॥१॥

मेरे मन नामि लए
जम बंध ते छूटहि
सरब सुखा सुख पाईऐ ॥
सेवि सुआमी सतिगुरु दाता
मन बंछत फल आईऐ ॥२॥

हे मेरे मन! (हरि) नामोच्चारण से यम के बन्धनो से छूटेगा और जो सम्पूर्ण सुखों का (श्रेष्ठ आत्मिक) सुख है, वह प्राप्त करेगा। इसलिए तू अपने स्वामी सत्गुरु दाता की सेवा कर तो तुझे मन-वांछित फल (हाथ) आवें ॥२॥

नामु इसटु मीत सुत करता मन संगि तुहारै चालै ॥ करि सेवा सतिगुर अपुने की गुर ते पाईऐ पालै ॥३॥	हे (मेरे) मन ! जो सबका कर्ता है 'उसके' नाम को अपना इष्ट, मित्र और पुत्र समझ, क्योंकि 'वह' तुम्हारे साथ (परलोक में) भी चलेगा किन्तु अपने सत्गुरु की सेवा कर क्योंकि गुरु द्वारा नाम हृदय रूपी पल्ले में प्राप्त करेगा ॥३॥
गुरि किरपालि क्रिपा प्रभि धारी बिनसे सरब अंदेसा ॥ नानक सुखु पाइआ हरि कीरतनि मिटिओ सगल कलेसा ॥४॥२५॥ १५३॥	जब गुरु कृपालु हुए तो प्रभु ने भी कृपा की जिससे सारे संशय नाश हो गये । (हाँ) हरि कीर्तन से (सारे) सुख (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक को प्राप्त हुए हैं और (सब) कलेश (कष्ट) मिटे हैं ॥४॥ २५॥१५३॥

रागु गउड़ी महला ५॥

"तृष्णा की अग्नि किसी विरले की ही बुझती है।"

तृसना बिरले ही की बुझी हे ॥१॥ रहाउ॥	(हे भाई !) किसी विरले (भाग्यशाली जीव) की तृष्णा बुझी है ॥१॥रहाउ॥
कोटि जोरे लाख क्रोरे मनु न होरे ॥ परै परै ही कउ लुझी हे ॥१॥	(यह जीव) कई किले बनाता है और उसमें लाखों बल्कि करोडो पदार्थ इकट्ठे करता है किन्तु अपने मन को नहीं रोकता, प्रत्युत और अधिक से अधिक संग्रह करने के लिए लालायित रहता है ॥१॥

सुंदर नारी अनिक परकारी
परगृह बिकारी ॥
बुरा भला नही सुझै हे ॥२॥

(अपने पास) नाना प्रकार की सुन्दर स्त्रियाँ होते हुए भी पर घर मे जा कर व्यभिचार करता है, क्योंकि (अज्ञान के कारण) इसे बुरे और भले की समझ नही है ॥२॥

अनिक बंधन माइआ भरमतु
भरमाइआ
गुण निधि नही गाइआ ॥
मन बिखै ही महि लुझै हे ॥३॥

वह बन्धन रूप जो माया है उसका भटकाया हुआ अनेकों तरफ भटकता है, किन्तु गुणो के खजाने हरि को नही गाता इस-लिए उसका मन विषयो में ही आसक्त (फंसा) रहता है ॥३॥

जा कउ रे किरपा करै
जीवत सोई मरै
साध संगि माइआ तरै ॥
नानक सो जनु दरि हरि सिझै हे ॥
४॥१॥१५४॥

(हे भाई !) जिस पर परमात्मा कृपा करता है, वह जीते ही मर जाता है (अर्थात् अहंकार नही करता) और साधु की संगति के द्वारा माया रूपी नदी से पार हो जाता है। हे नानक ! वह जीव हरि के द्वार पर सफल (मुक्त) होता है ॥४॥ १॥१५४॥

गउड़ी महला ५॥

"हरि भक्ति सब से प्रिय है।"

सबहू को रसु हरि हो ॥१॥रहाउ॥

(हे भाई !) हरि ही सबके लिए रस है। (सभी रसों के इच्छुक अपने-अपने आनन्द का लक्ष्य 'हरि' को बनाते हैं) ॥१॥रहाउ॥

काहू जोग काहू भोग
काहू गिआन काहू धिआन ॥
काहू हो डंड धरि हो ॥१॥

किसी को योग में, किसी को भोग में और किसी को ज्ञान में रस आता है। किसी को तो दण्डा धारण करने मे (अर्थात् (संन्यासी) दण्डधारी बनने में रस आता है। (गोरख पन्थी साधु हाथों में डण्डा रखते हैं, जिसमें बहुत सी कड़ियाँ जड़ी हुई होती) हैं ॥१॥

काहू जाप काहू ताप
काहू पूजा होम नेम ॥
काहू हो गउनु करि हो ॥२॥

किसी को जाप में, किसी को ताप में, किसी को पूजा में, किसी को हवन में और किसी को नेम में रस आता है ॥२॥

काहू तीर काहू नीर
काहू बेद बीचार ॥
नानका भगति प्रिअ हो ॥३॥२॥
१५५॥

किसी को (तीर्थों के) किनारे पर, किसी को (तीर्थों के) पानी में और किसी को वेदों के विचार में रस आता है। किन्तु (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक को भक्ति प्रिय (लग रही) है ॥३॥२॥१५५॥

गउड़ी महला ५॥

"प्रभु सब कुछ है यदि 'उसके' साथ लौ हो।"

गुन कीरति निधि मोरी ॥१॥
रहाउ॥

(हे गुणी निधान प्रभु!) आपके गुणों की कीर्ति मेरे लिए खजाना है ॥१॥रहाउ॥

तूं ही रस तू ही जस
तू ही रूप तू ही रंग ॥
आस ओट प्रभ तोरी ॥१॥

हे प्रभु! मुझे तेरी ही आशा है, तेरी ही ओट (टेक) है। तू ही रस रूप है तू ही यश रूप है, तू ही मेरी सुन्दरता है और तू ही मेरा आनन्द है ॥१॥

तू ही मान तू ही धान
तू ही पति तू ही प्रान ॥
गुरि तूटी लै जोरी ॥२॥

(हे प्रभु!) तू ही मेरा मान है, तू ही मेरा धन है, तू ही मेरी इज्ज़त है और तू ही मेरा प्राण (जीवन) भी है। धन्य है गुरु जिसने टूटी हुई वृत्ति को लेकर जोड़ा है अथवा मेरी टूटी हुई लौ को तेरे साथ जोड़ा है ॥२॥

तू ही ग्रिहि तू ही बनि
तू ही गाउ तू ही सुनि ॥
है नानक नेर नेरी ॥३॥३॥१५६॥

(हे प्रभु!) तू ही घर में है, तू ही वन में है, तू ही ग्राम में है और तू ही शून्य रूप (अर्थात निर्जन में) भी है। (हाँ), हे नानक! तू मेरे निकट से निकट है ॥३॥३॥१५६॥

गउड़ी महला ५॥

"अटूट मस्ती है हरि के प्रेम में।"

मातो हरि रंगि मातो ॥१॥
रहाउ॥

(हे भाई!) मस्त हूँ, किन्तु हरि के (प्रेम) रंग (रस) में मस्त हूँ ॥१॥रहाउ॥

ओुही पीओ ओुही खीओ
गुरहि दीओ दानु कीओ ॥
उआहू सिउ मनु रातो ॥१॥

(हाँ) वही हरि रस मैंने पिया है, उसी से मैं मस्त हुआ हूँ; यह हरि रस मुझे गुरू ने दान करके दिया है और उसी से मेरा मन अनुरक्त है ॥१॥

ओही भाठी ओही पोचा
उही पिआरो उही रूचा ॥
मनि ओहो सुखु जातो ॥२॥

वही (हरि) रस मेरे लिए भटठी है, वही मेरे लिए (भाप को ठंडा करने के लिए ठडे जल का) लेप है, वही प्याला है और उसी हरि रस से मेरी रुची है तथा मन में उसी हरि के रस को सुख रूप जाना है ॥२॥

सहज केल अनद खेल
रहे फेर भए मेल ॥
नानक गुर सबदि परातो ॥३॥
४॥१५७॥

हे नानक ! जिस समय गुरु के शब्द में पिरोये गये तो सहज आनन्द और क्रीड़ा का खेल करने वाला जो हरि है 'उससे' मिलाप हो गया और (चौरासी लाख योनियों के) चक्र से रहित हो गया ॥३४॥१५७॥

रागु गौड़ी मालवा महला ५॥

"हरिनाम की महिमा।"

हरिनामु लेहु मीता लेहु ॥
आगै बिखमपंथु भैआन ॥१॥रहाउ॥

हे मित्र ! तू हरि का नाम ले, (हाँ) (हरि का नाम ले) क्योंकि आगे (परलोक में) यम का मार्ग विषम और भयानक है ॥१॥रहाउ॥

सेवत सेवत सदा सेवि
तेरै संगि बसतु है कालु ॥
करि सेवा तूं साध की
हो काटीऐ जम जालु ॥१॥

सेवक बनकर सेवा करने योग्य हरि की तू सदा सेवा कर क्योंकि मृत्यु हर समय तुम्हारे सिर पर है। (हाँ) तू साधु की सेवा कर तो तेरा यम का फंदा कट जाय ॥१॥

होम जग तीरथ कीए
बिचि हउमै बधे बिकार ॥
नरकु सुरगु दुइ भुंचना
होइ बहुरि बहुरि अवतार ॥२॥

(चाहे तुमने) हवन, यज्ञ, तीर्थादि किये हैं, किन्तु अहंकार आदि के विकार बढ़ जाते हैं। फिर इनके फलस्वरूप जो दो नर्क और स्वर्ग हैं इनसे दुःख सुख भोगने पड़ते हैं और पुन. पुनः जन्म होता है ॥२॥

सिव पुरी ब्रहम इंद्र पुरी
निहचलु को थाउ नाहि ॥
बिनु हरि सेवा सुखु नही
हो साकत आवहि जाहि ॥३॥

शिवपुरी, ब्रह्मपुरी, इन्द्रपुरी इनमें से कोई भी स्थान निश्चल नहीं है। (हे भाई!) बिना हरि की सेवा के (अटल) सुख (प्राप्त) नही होता इसलिए (माया-शक्ति का उपासक) साकत योनियों में बार-बार आता जाता (अर्थात् जन्मता-मरता) है ॥३॥

जैसो गुरि उपदेसिआ
मै तैसो कहिआ पुकारि ॥
नानकु कहै सुनि रे मना
करि कीरतनु होइ उधारु ॥४॥
१॥१५८॥

(हे भाई!) जिस तरह गुरु ने उपदेश दिया है, मैं (ठीक) उसी तरह पुकार कर कहता हूँ। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कहते हैं कि हे मन! सुन। हरि का कीर्तन कर तो तेरा उद्धार हो ॥४॥१॥१५८॥

रागु गउड़ी मालवा महला ५॥
"गुरु की कृपा।"

पाइओ बाल बुधि सुखु रे ॥
हरख सोग हानि मिरतु दूख सुख
चिति समसरि गुर मिले ॥१॥
रहाउ॥

हे भाई! बाल बुद्धि धारण करने से सुख पाया है। जिस समय गुरु मिला तो हर्ष-शोक, जन्म-मरण, लाभ-हानि और सुख-दु.ख चित में एक-से (बराबर) लगे हैं ॥१॥रहाउ॥

जब लगु हउ किछु सोचउ चितवउ
तब लगु दुखनु भरे ॥
जउ क्रिपालु गुरु पूरा भेटिआ
तउ आनद सहजे ॥१॥

जब तक मैं सोच विचार (फिक्रों) में रहता था तब तक दुःख पाता रहता था, किन्तु जब पूर्ण कृपालु गुरु से भेंट हुई तब से सहजानन्द का अनुभव कर रहा हूँ ॥१॥

जेती सिआनप करम हउ कीए
तेते बंध परे ॥
जउ साधू कर मसतकि धरिओ
तब हम मुकत भए ॥२॥

(हे भाई !) जितने भी कर्म चतुराई (स्यानप) से मैंने किये हैं उतने ही बन्धन पडे हैं। किन्तु जब साधु ने मेरे मस्तक पर हाथ रखा, तब हम मुक्त हो गये ॥२॥

जउ लउ मेरो मेरो करतो
तउ लउ बिखु घेरे ॥
मनु तनु बुधि अरपी ठाकुर कउ
तब हम सहजि सोए ॥३॥

जब तक मैं 'मेरा' 'मेरा' करता था, तब तक (मुझे) अहम् रूप विष ने घेर कर रखा था, किन्तु जब से मैंने अपना मन, तन और बुद्धि को ठाकुर के आगे अर्पण कर दिया है तब से मैं सहज ही सोता हूँ (अर्थात् निश्चिन्त हो गया हूँ) ॥३॥

जउ लउ पोट उठाई चलिअउ
तउ लउ डान भरे ॥
पोट डारि गुरु पूरा मिलिआ
तउ नानक निरभए ॥४॥१॥१५६॥

जब तक मैं (अहंता व ममता की) पोटली (जीवन में) उठाकर चलता रहा, तब तक मानों दण्ड भरता रहा, किन्तु जब पूर्ण गुरु मिल गया तो पोटली फेंक दी और हे नानक ! (मैं) निर्भय हो गया ॥४॥१॥१५६॥

गउड़ी माला महला ५॥

"गुरु की संगति का प्रभाव ।"

भावनु तिआगिओ री तिआगिओ ॥
तिआगिओ मै गुर मिलि
तिआगिओ ॥
सरब सुख आनंद मंगल
रस मानि गोबिंदै आगिओ ॥१॥
रहाउ॥

(हे सखि !) द्वैत-भावना तो त्यागने योग्य थी 'वह' गुरु के साथ मिलकर त्याग दी है, फिर उसके त्याग भाव को भी मैंने त्याग दिया है। गोबिन्द की आज्ञा मानने में सब सुख, आनन्द, मंगल और रस हैं ॥१॥रहाउ॥

मानु अभिमानु दोऊ समाने
मसतकु डारि गुर पागिओ ॥
संपत हरखु न आपत दूखा
रंगु ठाकुरै लागिओ ॥१॥

(हे सखी !) गुरु के चरणों पर मस्तक रख कर मान और अभिमान दोनों को एक सा जाना है। ठाकुर के साथ प्रेम बढ़ा है, इसलिए यदि सम्पत्ति प्राप्त हो तो हर्ष नहीं होता यदि आपत्ति पड़े तो दुःख नहीं होता ॥१॥

बास बासरी एकै सुआमी
उदिआन द्रिसटागिओ ॥
निरभउ भए संत भ्रमु डारिओ
पूरन सरबागिओ ॥२॥

मन्दिरों के भीतर एवं मन्दिरों में रहने वालों (जीवों) में एक ही स्वामी है और उद्यान(जंगलों) में भी 'वही' एक है। जब सन्त ने भ्रम दूर कर दिया तो मुझे 'वह' सर्वत्र परिपूर्ण दीख पड़ा और मैं निर्भय हो गया ॥२॥

जो किछु करतै कारणु कीनो
मनि बुरो न लागिओ ॥
साध संगति परसादि संतन कै
सोइओ मनु जागिओ ॥३॥

(हाँ) जो कुछ (मेरे) कर्त्ता ने किया है, मेरे मन को बुरा नहीं लगता। (उन) साधु संगति और सन्तों की कृपा से अविद्या में सोया हुआ मन (अब) (ज्ञान से) जाग पड़ा है ॥३॥

जन नानक ओड़ि तुहारी परिओ
आइओ सरणागिओ ॥
नाम रंग सहज रस माणे
फिरि दूखु न लागिओ ॥४॥
२॥१६०॥

मैं दास नानक, (हे प्रभु !) तेरी ओट में आकर पड़ा हूँ और तेरी ही शरण मे आया हूँ। तेरे नाम रंग (प्रेम) के कारण सहज आनन्द का (रस) अनुभव कर रहा हूँ। अब मुझे फिर कोई दुःख नही लगता ॥४॥२॥१६०॥

गउड़ी माला महला ५॥

"नाम रत्न प्राप्त करने वालों की अवस्था ।"

पाइआ लालु रतनु मनि पाइआ ॥
तनु सीतलु मनु सीतलु थीआ
सतगुर सबदि समाइआ ॥१॥
रहाउ॥

(हे भाई !) जब मैं सत्गुरु के शब्द में समा गया तब मुझे मन मे एक (अमूल्य) लाल प्राप्त हुआ, एक रत्न प्राप्त हुआ जिससे मेरा तन शीतल हो गया, (हाँ) मन भी शीतल हो गया ॥१॥ रहाउ॥

लाथी भूख तृसन सभ लाथी
चिंता सगल बिसारी ॥
करु मसतकि गुरि पूरै धरिओ
मनु जीतो जगु सारी ॥१॥

(अब पदार्थों के खाने की) भूख (चाहना) उतर गई है और (पदार्थों को इकट्ठा करने की) तृष्णा भी उतर गई है तथा सारी चिन्ता भी बिसर गई है। जब पूर्ण गुरु ने मस्तक पर हाथ रखा तो मन जीत लिया और साथ ही सारे जगत को भी जीत लिया ॥१॥

तृपति अघाइ रहे रिद अंतरि
डोलन ते अब चूके ॥
अखुटु खजाना सतिगुरि दीआ
तोटि नही रे मूके ॥२॥

और फिर (स्वयं) अन्दर तृप्त हो गया, (हाँ) तृप्त हो गया और अब विचलित होने से भी रह गया भाव स्थिर हो गया। (हे भाई!) सत्गुर ने ऐसा तो अनन्त खजाना दिया है कि उसमें त्रुटि नहीं आती और न ही वह (बाँटने पर) कम होता है ॥२॥

अचरजु एकु सुनहु रे भाई
गुरि ऐसी बूझ बुझाई ॥
लाहि परदा ठाकुरु जउ भेटिओ
तउ बिसरी ताति पराई ॥३॥

हे भाई! एक और आश्चर्य की बात सुनो कि गुरु ने एक ऐसी समझ और बूझ दी है कि जब उसने अज्ञान का पर्दा उठाकर मुझे ठाकुर के साथ मिला दिया तो परायी ईर्ष्या (जलन) भूल गई ॥३॥

कहिओ न जाई एहु अचंभउ
सो जानै जिनि चाखिआ ॥
कहु नानक सच भए बिगासा
गुरि निधानु रिदै लै राखिआ ॥४
॥३॥१६१

(किन्तु हे भाई!) यह (प्रत्यक्ष दर्शन और पुन मिलन का) अचम्भा ऐसा (आश्चर्यजनक) है कि कहा नहीं जा सकता। (इस अवस्था को तो) वही जानता है जिसने चख कर देखा है (भाव 'उसका' दर्शन किया है)। कहते हैं (बाबा) नानक जब गुरु से नाम का खजाना लेकर हृदय में रख लिया तो सत्य का प्रकाश हुआ अथवा सच प्राप्त करके आनन्दित हो गया ॥४॥३॥१६१॥

गउड़ी माला महला ५॥

"हरि नाम का जाप सारे सुखों का सार सुख है।"

उबरत राजा राम की सरणी ॥
सरब लोक माइआ के मंडल
गिरि गिरि परते धरणी ॥१॥
रहाउ॥

(हे भाई!) राजा राम की शरण में जो रहते हैं, वे ही (भवसागर से) बचते हैं। माया के जितने लोक और मण्डल हैं भाव सम्पूर्ण सृष्टि जहाँ-जहाँ माया फैली हुई हैं, वे पृथ्वी पर बार-बार गिर पड़ते हैं (भाव-समय समय पर धरती पर जन्म लेते हैं) ॥१॥रहाउ॥

सासत सिम्रिति बेद बीचारे
महा पुरखन इउ कहिआ ॥
बिनु हरि भजन नाही निसतारा
सूखु न किनहूं लहिआ ॥१॥

महापुरुषों ने (४) वेद, (६) शास्त्र और (२७) स्मृतियों को विचार कर यह कहा है कि हरि भजन के बिना माया से छुटकारा नही हो सकता और न ही किसी को सुख की प्राप्ति हो सकती है ॥१॥

तीनि भवन की लखमी जोरी
बूझत नाही लहरे ॥
बिनु हरि भगति कहा थिति पावै
फिरतो पहरे पहरे ॥२॥

जीव चाहे तीनों लोकों (स्वर्ग, पाताल व मृत्यु लोक) की माया इकट्ठी करे तो भी लोभ रूपी लहरें समाप्त नही होतीं। बिना हरि की भक्ति के जीव कहां (मुक्ति की) स्थिति प्राप्त कर सकता है ? वह प्रहर-प्रहर मे (अर्थात हर समय भाव दिन-रात) भटकता रहता है ॥२॥

अनिक बिलास करत मन मोहन
पूरन होत न कामा ॥
जलतो जलतो कबहू न बूझत
सगल बृथे बिनु नामा ॥३॥

जीव चाहे अनेक प्रकार के मन मोहक पदार्थों के आनन्द भोग करता रहे, किन्तु उसकी कामना पूर्ण नहीं होती। 'नाम' के बिना सब (भोग) विलास व्यर्थ हैं। इसमे मनुष्य (सदैव) जलता ही जलता रहता है और कभी भी शान्त नहीं होता ॥३॥

हरि का नामु जपहु मेरे मीता
इहै सार सुखु पूरा ॥
साध संगति जनम मरणु निवारै
नानकु जन की धूरा ॥४॥४॥१६२॥

हे मेरे मित्रो ! हरि का नाम जपो, यही है (सारे सुखो का) सार सुख (हा) पूर्ण सुख है। साधु सगति ही जन्म-मरण की निवृति करती है इसलिए (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक हरि के सेवको की धूलि हो गया हैं ॥४॥४॥१६२॥

गौड़ी माला महला ५॥

"रचनहार प्रभु स्वयं अपने कार्य जानता है।"

मोकउ इह बिधि को समझावै ॥
करता होइ जनावै ॥१॥रहाउ॥

मुझे इस विधि से कोई समझाए। किन्तु जो समर्थ परमेश्वर रूप हो वह ही मुझे समझाए। यदि जीव करने वाला (समर्थ) हो तो समझा सके। (जीव तो कुछ करने वाला है ही नही। कर्त्ता तो एक परमेश्वर ही है। ईश्वर जैसा जीव से कराता है वह वैसा ही करता है।) ॥१॥ रहाउ॥

अनजानत किछु इनहि कमानो
जप तप कछू न साधा ॥
दह दिसि लै इहु मनु बउराइओ

इस (जीव) ने बिना जाने ही कुछ कर्म किए (जिससे यह बंधा गया अथवा इसने) जप तप (आदि) कुछ नही किया (अथवा इसने) दसो दिशाओं में मन को लेकर दौड़ाया (फिराया) है अब स्वय निर्णय करके बताओ कि किन कर्मो से यह जीव बंधा

कवन करम करि बाधा ॥१॥

पड़ा है ? (उत्तर आगे पंक्ति में है।) ॥१॥

मन तन धन भूमि का ठाकुरु
हउ इसका इहु मेरा ॥
भरम मोह कछु सूझसि नाही
इह पैखर पए पैरा ॥२॥

(अहंकार ही रोग का मूल कारण है।) मेरा तन, मन और धन हैं, मैं पृथ्वी का स्वामी हूँ यह मेरा है, मैं उसका हूँ। इस भ्रम में पडकर जीव परमार्थ तत्त्व को नही समझता और इस प्रकार उसके पाँवों में भ्रम और मोह की रस्सी पडी हुई है (अर्थात अहंता ममता के कारण जीव बन्धन मे पड़ गया है।

तब इहु कहा कमावन परिआ
जब इहु कछू न होता ॥
जब एक निरंजन निरंकार प्रभ
सभु किछु आपहि करता ॥३॥

जब जीव का अस्तित्व नही था और जब (केवल) एक निरंजन निरंकार प्रभु ही सब कुछ करन करावन था तब कर्म कौन करता था ?॥३॥

अपने करतब आपे जानै
जिनि इहु रचनु रचाइआ ॥
कहु नानक करणहारु है आपे
सतिगुरि भरमु चुकाइआ ॥४॥
५॥१६३॥

(हे भाई !) जिस प्रभु ने यह रचना रची है 'वही' अपने काम स्वय ही जानता है। हे नानक ! तू (निर्भय होकर) कह कि (सब कुछ) करने वाला वह (कर्ता) स्वय ही है। सतगुरु ने तो (यह बात समझाकर कर) भ्रम दूर कर दिया है ॥४॥५॥१६३॥

गउड़ी माला महला ५॥

"हरि नाम के बिना कर्मादि निष्फल हैं।"

हरि बिनु अवर क्रिआ बिरथे ॥
जप तप संजम करम कमाणे
इहि ओरै मूसे ॥१॥रहाउ॥

(हे भाई !) हरि (नाम) के बिना अन्य कर्मादि व्यर्थ हैं क्योकि जप, तप संयमादि कर्म करते हुए भी यहाँ लूटे जाते हैं (अर्थात् कर्म करते हुए भी अहकार से मुक्त नही होते) ॥१॥रहाउ॥

बरत नेम संजम महि रहता
तिन का आढु न पाइआ ॥
आगै चलणु अउरु है भाई
ऊंहा कामि न आइआ ॥१॥

(हरिनाम के बिना) व्रत, नेम, संयमादि में जो रहता है, उसको आधी दमडी का भी फल प्राप्त नही होता। हे भाई ! आगे (परलोक मे) चलने के लिए अन्य वस्तु की आवश्यकता है, वहाँ ये सकाम कर्म, काम नही आते (भाव परलोक के लिए तो तोशा (यात्रा का सामान) नाम का चाहिए) ॥१॥

तीरथि नाइ अरु धरनी भ्रमता
आगै ठउर न पावै ॥

(इसी प्रकार हरिनाम के बिना) तीर्थों पर जो स्नान करता है और धरती पर जो भ्रमण ही करता रहता है, वह आगे (परलोक में) ठिकाना नही पाता। वहाँ यह युक्ति काम नही आती और

कहा कामि न आवै इह बिधि
ओहु लोगन ही पतीआवै ॥२॥

वहाँ के लोगों को (इन कर्मों पर) निश्चय भी नहीं होता (अर्थात् इन कर्मों से यद्यपि यहाँ लोग प्रसन्न होते हैं किन्तु आगे जाकर इन बातों से कुछ नहीं बनता) ॥२॥

चतुर बेद मुख बचनी उचरै
आगै महलु न पाईऐ ॥
बूझै नाही एकु सुधाखरु ओहु
सगली झाख झखाईऐ ॥३॥

(और फिर हरिनाम के बिना) चारों वेद चाहे कोई मौखिक उच्चारण करता हो तभी भी आगे (परलोक में) महल नहीं प्राप्त कर सकता। (हाँ) यदि वह एक शुद्धाक्षर (रामनाम) नहीं समझता, तो उसका सारा पाठ पठन व्यर्थ का खपना (बकवाद) ही है ॥३॥

नानकु कहतो इहु बीचारा
जि कमावै सु पारगरामी ॥
गुरु सेवहु अरु नामु धिआवहु ॥
तिआगहु मनहु गुमानी ॥४॥
६॥१६४॥

(मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कह रहे हैं कि जो यह (उत्तम) विचार की कमाई करता है, वही संसार रूपी ग्राम से पार होता है। (उत्तम विचार हैं जिनकी कमाई करनी है अर्थात अमल करना है। यथा) गुरु का और (हरि) नाम का ध्यान (किंतु ये तभी संभव हैं जब) मन से गुमान को भी त्याग दोगे (ये तीन उत्तम विचार भक्ति के साधन हैं) ॥४॥६॥१६४॥

गउड़ी माला ५॥

"हे हरि ! कृपा करो कि तेरा नाम जपूँ।"

माधउ हरि हरि हरि मुखि कहीऐ ॥
हम ते कछू न होवै सुआमी
जिउ राखहु तिउ रहीऐ ॥१॥
रहाउ॥

हे माया-पति ! हे दुःख हर्ता हरि ! कृपा करो कि मुख से हरि हरि उच्चारण करूँ। हे स्वामी ! मुझसे कुछ भी नहीं होता। जैसे तुम रखते हो वैसे ही (सहर्ष) रहता हूँ ॥१। रहाउ॥

किआ किछु करै कि करणैहारा
किआ इसु हाथि बिचारे ॥
जितु तुम लावहु तित ही लागा
पूरन खसम हमारे ॥१॥

यह जीव क्या कर सकता है और क्या करने वाला है तथा इस बेचारे के हाथ में क्या है ? हे मेरे पूर्ण स्वामी ! जिस काम में तू(जीव को) उसे लगाता है, उसी काम में वह जीव लगता है ॥१॥

करहु क्रिपा सरब के दाते
एक रूप लिव लावहु ॥
नानक की बेनंती हरि पहि
अपुना नामु जपावहु ॥२॥
७॥१६५॥

हे सब जीवों के दाता ! कृपा करो। एक अपने स्वरूप से मेरी लौ लगाओ। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक के हरि जी ! आपके पास यह बेनती है कि (मुझसे) अपना नाम जपाओ ॥२
॥७॥१६५॥

रागु गउड़ी माझ महला ५॥

"जिसने साधु संगति द्वारा नाम की प्राप्ति की है, वह सहज ही परमात्मा में समा जाता है।"

दीन दइआल दमोदर राइआ जीउ ॥
कोटि जना करि सेव लगाइआ जीउ ॥
भगत वछलु तेरा बिरदु रखाइआ जीउ ॥
पूरन सभनी जाई जीउ ॥१॥

हे दामोदर जी ! तू दीन दयाल है और सबका राजा भी है। तुमने करोड़ों भक्तजनो को रचकर अपनी सेवा में लगाया है। हे महाराज जी ! तू भक्तों को प्यार करने वाला है और उनकी रक्षा करनी (भक्त-वत्सल) आपका विरुद्ध (बड़ाई) है। तू सभी जगह परिपूर्ण है जी ॥१॥

किउ पेखा प्रीतमु कवण सुकरणी जीउ ॥
संता दासी सेवा चरणी जीउ ॥
इहु जीउ वताई बलि बलि जाई जीउ ॥
तिसु निवि निवि लागउ पाई जीउ ॥२॥

(प्रश्न :) हे प्रियतम ! वह कौन सी उत्तम करनी है, जिससे तुम्हारा दर्शन कर सकूं ? (उत्तर :) तुम्हारे सन्तों की दासी होऊँ और उनके चरणो की सेवा करूं। यह (अपना) जीव तुम्हारे सन्तों के ऊपर कुर्बान करूं, उनके ऊपर बलिहारी जाऊँ तथा उनके चरणो में निव-निव कर पडा रहूँ जी ॥२॥

पोथी पंडित बेद खोजंता जीउ ॥
होइ बैरागी तीरथि नावंता जीउ ॥

कोई पंडित बनकर पोथियाँ और वेद खोजते हैं; कोई बैरागी बनकर तीर्थों पर स्नान करते हैं; कोई गीत और कीर्तन स्वर में

गीत नाद कीरतनु गावंता जीउ ॥
हरि निरभउ नामु धिआई जीउ ॥
३॥

गाते हैं, किन्तु हे हरि ! मैं तो एक निर्भय परमेश्वर के नाम का ध्यान करता हूँ जी ॥३॥

भए क्रिपाल सुआमी मेरे जीउ ॥
पतित पवित लगि गुर के पैरे
जीउ ॥
भ्रमु भउ काटि कीए निरवैरे जीउ ॥
गुर मन की आस पूराई जीउ ॥४॥

हे स्वामी ! जब तू मुझ पर कृपालु हुआ जी तब मैं पापी निर्मल गुरु के चरणों को लग कर पवित्र हुआ। गुरु ने मेरे भ्रम और भय निवृत्त करके मुझे निर्वैर कर दिया और मेरी सभी आशाएँ पूर्ण कर दी हैं जी ॥४॥

जिनि नाउ पाइआ सो धनवंता
जीउ ॥
जिनि प्रभु धिआइआ सु सोभावंता
जीउ ॥
जिसु साधू संगति तिसु सभ
सुकरणी जीउ ॥
जन नानक सहजि समाई जीउ ॥५॥
१॥१६६॥

हे प्यारे ! जिसने तुम्हारा नाम प्राप्त किया है, वही धनाढ्य है जी। हे प्रभु ! जिसने तुम्हारे नाम का ध्यान किया है, वही शोभायान है जी। जिसने साधु संगति की है उसकी सम्पूर्ण करनी श्रेष्ठ है। हे नानक ! ऐसे (जीव) सहज ही, स्वरूप परमात्मा मे समा जाते हैं ॥५॥१॥१६६॥

गउड़ी महला ५ माझ ॥

"सन्तों के प्रति मेरे गुरुदेव के हृदय के उद्‌गार।"

आउ हमारै राम पिआरे जीउ ॥
रैणि दिनसु सासि सासि चितारे
जीउ ॥
संत देउ संदेसा पै चरणारे जीउ ॥
तुधु बिनु कितु बिधि तरीऐ जीउ
॥१॥

हे मेरे राम के प्यारे (सन्त जी) ! आप मेरे पास आओ। मैं रात-दिन श्वास-प्रश्वास तुम्हें स्मरण करता हूँ। हे सन्तजनों ! आप परमात्मा के चरणों मे गिरकर मेरा यह सन्देश देना कि (हे प्रभु !) तुम्हारे बिना (भवजल से) कैसे पार हो सकूँगा ? ॥१॥

संगि तुमारै मै करे अनंदा जीउ ॥
वणि तिणि त्रिभवणि सुख
परमानंदा जीउ ॥
सेज सुहावी इहु मनु बिगसंदा
जीउ ॥
पेखि दरसनु इहु सुखु लहीऐ
जीउ ॥२॥

(हे प्रियतम !) तुम्हारी संगति से मैं आनन्द करता हूँ जी। तू वन, तृण भाव सम्पूर्ण वनस्पति में और तीनों लोकों में, समस्त संसार में व्याप्त है और तू सुख और परम आनन्द देता है जी। मेरी अन्तःकरण रूपी शय्या सुखी है (क्योंकि तू वहाँ बसता है)। तुम्हे देखकर मेरा मन विकसित होता है और तेरा दर्शन करके मुझे सुख प्राप्त होता है जी ॥२॥

चरण पखारि करी नित सेवा
जीउ ॥
पूजा अरचा बंदन देवा जीउ ॥
दासनि दासु नामु जपि लेवा जीउ ॥
बिनउ ठाकुर पहि कहीऐ जीउ ॥
३॥

(हे प्रभु !) मैं तुम्हारे चरण धो (धो) कर नित्य सेवा करूँगा और तुम्हारी पूजा, अर्चना और तुम्हें नमस्कार करूँगा और तुम्हारे दासों का दास होकर तुम्हारा नाम (सदैव) जपूँगा। (हे सन्त जनों !) यह (मेरी) विनय ठाकुर स्वामी को जाकर कहो जी ॥३॥

इछ पुंनी मेरी मनु तनु हरिआ
जीउ ॥
दरसन पेखत सभ दुख परहरिआ
जीउ ॥
हरि हरि नामु जपे जपि तरिआ
जीउ ॥
इहु अजरु नानक सुखु सहीऐ जीउ
॥४॥२॥१६७॥

इस प्रकार मेरी इच्छा पूर्ण हो जायेगी और मेरा मन तन हरा-भरा भी हो जायेगा जी। (प्रभु) दर्शन देखकर सब दुख दूर हो जायेंगे जी। दुख हर्त्ता हरिनाम को जप-जपकर (भव-सागर से) पार हो जाऊँगा जी। हे नानक ! (प्रभु नाम जपने से जो आत्म-सुख प्राप्त होता है) वह असह्य है; किन्तु इस सुख को भी सहन करूँगा ॥४॥२॥१६७॥

गउड़ी माझ महला ५॥

"प्रभु परमात्मा की स्तुति।"

सुणि सुणि साजन मन मित पिआरे
जीउ ॥
मनु तनु तेरा इहु जीउ भि वारे
जीउ ॥

हे (मेरे) सज्जन! हे मित्र! हे प्यारे! तू मेरी विनय सुनो जी। मेरा मन चाहे तन तुम्हारे ही हैं। मैं अपना जीव भी तुम्हारे ऊपर कुर्बान करता हूँ। हे प्रभु! हे (मेरे) प्राणों के आधार जी!

बिसरु नाही प्रभ प्राण अधारे
जीउ ॥
सदा तेरी सरणाई जीउ ॥१॥

(काश !) मुझ से तू न भूले। (हाँ काश !) मैं सदैव तुम्हारी शरण में रहूँ जी ॥१॥

जिसु मिलिऐ मनु जीवै भाई जीउ ॥
गुर परसादि सो हरि हरि पाई
जीउ ॥
सभ किछु प्रभ का प्रभ कीआ जाई
जीउ ॥
प्रभ कउ सद बलि जाई जीउ ॥२॥

हे भाई ! जिस (हरि) के मिलने से मन जीवित होता है जी, वह (हाँ) हरि हरि गुरु की कृपा से प्राप्त होता है। सब कुछ 'उस' प्रभु का है, (हाँ) सभी जगह 'उसी' प्रभु की है जी। 'उस' प्रभु के ऊपर मैं सदैव बलिहारी जाता हूँ ॥२॥

एहु निधानु जपै वडभागी जीउ ॥
नाम निरंजन एक लिव लागी
जीउ ॥
गुरु पूरा पाइआ सभु दुखु मिटाइआ
जीउ ॥
आठ पहर गुण गाइआ जीउ ॥३॥

(प्रभु के नाम का) यह खजाना (कोई) भाग्यशाली (जीव) ही जपता है जी। 'वह' निरंजन परमात्मा के एक नाम से लौ लगाता है जी। वह पूर्ण गुरु प्राप्त करके अपने सब दुःख मिटाता है जी और आठ प्रहर (प्रभु के) गुण गाता है जी ॥३॥

रतन पदारथ हरि नामु तुमारा
जीउ ॥
तूं सचा साहु भगतु वणजारा जीउ ॥
हरि धनु रासि सचु वापारा जीउ ॥
जन नानक सद बलिहारा जीउ ॥
४॥३॥१६८॥

हे हरि ! तुम्हारा नाम (अमूल्य) रत्न पदार्थ है जी। तू सच्चा साहूकार है और यही (तेरे) भक्त (सच्चे) व्यापारी हैं। हरि नाम रूपी धन उनकी पूंजी है और सच्चा व्यापार (भक्त) करते है। मैं दास नानक उनके ऊपर सदैव बलिहारी जाता हूँ ॥४॥३॥१६८॥

रागु गउड़ी माझ महला ५॥

"हरिनाम का प्यासा कोई विरला पुरुष ही होता है।"

नोट: माझ शब्द के नीचे जो '२' अंक हैं, ऐसा विचार है कि यह दूसरे प्रकार का माझ है।

तूं मेरा बहु माणु करते
तूं मेरा बहु माणु ॥
जोरि तुमारै सुखि वसा
सचु सबदु नीसाणु ॥१॥रहाउ॥

हे कर्त्तार! तू ही मेरा (इस लोक में) बडा मान है और (हाँ) (परलोक में भी) तू ही मेरा बडा मान है। तुम्हारे बल (आश्रय) पर ही मैं सुख से बस रहा हूँ। तू सच्चे गुरु के शब्द द्वारा ही प्रकट होता है॥ ॥रहाउ॥

सभे गला आतीआ सुणि कै चुप
कीआ ॥
कद ही सुरति न लधीआ
माइआ मोहड़िआ ॥१॥

(मनमुख) सभी बातें जानते हैं कि शुभ कर्म करना अच्छा है किन्तु करते नहीं है और (परमेश्वर का नाम) सुनकर भी चुप रहते हैं (अर्थात् जपते नहो हैं)। वे किसी समय भी परमेश्वर के नाम की सुरति नही लगाते हैं क्योंकि उनको माया ने मोहित कर लिया है॥१॥

देइ बुझारत सारता
से अखी डिठड़िआ ॥
कोई जि मूरखु लोभीआ
मूलि न सुणी कहिआ ॥२॥

(धर्म ग्रन्थ मरने का) संकेत देते हैं (अर्थात् कहते हैं कि मरना अनिवार्य है) और सन्तजन भी मरने के संकेत देते हैं और हम आँखो से भी देखते हैं (कि मृत्यु अवश्यभावी है), किन्तु यदि कोई मूर्ख लोभी होगा तो वह बिल्कुल उपदेश नहीं सुनेगा (मानेगा)॥२॥

इकसु दुहु चहु किआ गणी
सभ इकतु सादि मुठी ॥
इकु अधु नाइ रसीअड़ा
का विरली जाइ वुठी ॥३॥

एक को चार की गणना क्या करूँ, सम्पूर्ण जीव-सृष्टि माया के एक स्वाद में ठगी जा रही है। जहाँ एक आध नाम का रसिक है, वह कोई विरला ही स्थान बस रहा है ॥३॥

भगत सचे दरि सोहदे
अनद करहि दिन राति ॥
रंगि रते परमेसरै
जन नानक तिन बलि जात ॥४॥
१॥१६९॥

जो ऐसे नाम के रसिक भक्त हैं वे सच्चे परमात्मा के दरबार में सुशोभित होते हैं और दिन रात आनन्द करते हैं। वे परमेश्वर के प्रेम-रंग में अनुरक्त हैं। हे नानक ! मैं उनके ऊपर बलिहारी जाता हूँ ॥४॥१॥१६९॥

गउड़ी महला ५ मांझ ॥

"गुरु और परमेश्वर एक रूप हैं। हरिनाम सर्व दुःखनाशक है।"

दुख भंजनु तेरा नामु जी
दुख भंजनु तेरा नामु ॥
आठ पहर आराधीऐ
पूरन सतिगुर गिआनु ॥१॥रहाउ॥

हे (प्रभु) जी ! तुम्हारा नाम दुःखों को नाश करने वाला है, (हाँ) (निश्चय ही) तुम्हारा नाम दुःखों को नाश करने वाला है। पूर्ण सत्गुरु का यही ज्ञान है कि आठ प्रहर 'उसकी' ही आराधना करो ॥१॥रहाउ॥

जितु घटि वसै पारब्रहमु
सोई सुहावा थाउ ॥
जम कंकरु नेड़ि न आवई
रसना हरिगुण गाउ ॥१॥

जिस हृदय में परब्रह्म बसता है वही स्थान सुन्दर है। यम के दूत भी उसके निकट नहीं आ सकते जो रसना से हरि के गुण गाता है ॥१॥

सेवा सुरति न जाणीआ
ना जापै आराधि ॥
ओटि तेरी जगजीवना
मेरे ठाकुर अगम अगाधि ॥२॥

मुझे तुम्हारी सेवा की समझ नहीं है और न ही जाप तथा आराधना करना ही जानता हूँ। हे जगत के जीवन ! हे मेरे अगम्य अगाध ठाकुर ! मैंने तुम्हारा सहारा लिया है ॥२॥

भए कृपाल गुसाईआ
नठे सोग संताप ॥
तती वाउ न लगई
सतिगुरि रखे आपि ॥३॥

हे पृथ्वी के स्वामी! जिस पर आप कृपालु होते हैं, उसके शोक और संताप भाग जाते हैं। (दु:खों की) गर्म हवा उसे नहीं लग सकती जिसकी सत्गुरु स्वयं रक्षा करते हैं ॥३॥

गुरु नाराइणु दयु गुरु
गुरु सचा सिरजणहारु ॥
गुरि तुठै सभ किछु पाइआ
जन नानक सद बलिहार ॥४॥२॥
१७०॥

गुरू नारायण है, गुरू देवता (पूज्य देव) है और गुरू ही सत्य सृजक (सृष्टा) है। गुरू के प्रसन्न होने पर सब कुछ पाया जाता है। दास नानक सदा 'उस' पर बलिहारी जाता है ॥४॥२॥१७०॥

गउड़ी माझ महला ५॥

"हरिनाम सर्वोत्तम पदार्थ है।"

हरि राम राम राम रामा ॥
जपि पूरन होए कामा ॥१॥रहाउ॥

हे भाई! राम जो सर्वव्यापक है, 'उसका' नाम हरि राम राम जपने से सब काम (कार्य) पूर्ण हो जाते हैं ॥१॥रहाउ॥

राम गोबिंद जपेदिआ होआ मुखु
पवित्रु ॥
हरि जसु सुणीऐ जिस ते
सोई भाई मित्रु ॥१॥

हे भाई! राम और गोबिन्द के नाम को जपने वालों के मुख पवित्र होते हैं। जिससे हरि का यश सुना जाता है, वह भाई है, (हाँ) (वही) मित्र भी है ॥१॥

सभि पदारथ सभि फला
सरब गुणा जिसु माहि ॥
किउ गोबिंदु मनहु विसारीऐ
जिसु सिमरत दुख जाहि ॥२॥

(हे भाई)! जिसके पास सब पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष), सब सुख और सब गुण (विवेक वैराग्यादि) हैं और जिसका स्मरण करने से (सब) (आदि, व्याधि) दु:ख दूर हो जाते हैं, 'उस' गोबिन्द को मन से भला क्यों विस्मृत करते हो? ॥२॥

जिसु लड़ि लगिऐ जीवीऐ
भवजलु पईऐ पारि ॥
मिलि साधू संगि उधारु होइ
मुख ऊजल दरबारि ॥३॥

(हे भाई)! जिसके नाम रूपी पल्ले लगने से जीवन सफल होता है और संसार-सागर से भी जीव पार हो जाता है। (किन्तु कैसे?) साधु की संगति में मिलकर उद्धार होता है और (हरि) दरबार में मुख भी उज्ज्वल होता है ॥३॥

जीवन रूप गोपाल जसु संत जना की रासि ॥ नानक उबरे नामु जपि दरि सचै साबासि ॥४॥३॥१७१॥	हे भाई ! गोपाल परमात्मा का यश जीवन रूप है और सन्त जनों की पूँजी है। हे नानक ! जो नाम जपते हैं, वे (भवजल से) बच जाते हैं और सच्चे दरबार में उनको शाबाश (वाह-वाही) मिलता है ॥४॥३॥१७१॥
गउड़ी माझ महला ५॥	"हरि नाम सर्वोत्तम दान है।"
मीठे हरि गुण गाउ जिंदू तूं मीठे हरि गुण गाउ ॥ सचे सेती रतिआ मिलिआ निथावे थाउ ॥१॥रहाउ॥	हे प्राणी ! तू हरि के मीठे गुण गा, (हाँ) हरि के मीठे गुण गा। सत्य स्वरूप परमात्मा में अनुरक्त रहने वाले निराश्रित को भी आश्रय मिल जाता है जिसे शायद कोई भी आश्रय नहीं मिलता ॥१॥रहाउ॥
होरि साद सभि फिकिआ तनु मनु फिका होइ ॥ विणु परमेसर जो करे फिटु सु जीवणु सोइ ॥१॥	(नाम के बिना) अन्य सब स्वाद फीके हैं। तन और मन मायिक पदार्थों के स्वादन करने से फीके हो जाते हैं। परमेश्वर के बिना जो (औरों से प्रीति) करता है, उसका जीवन धिक्कार योग्य बन जाता है ॥१॥
अंचलु गहि कै साध का तरणा इहु संसारु ॥ पारब्रहमु आराधीऐ उधरै सभ परवारु ॥२॥	(हे भाई !) साधु का पल्ला पकड़कर इस संसार-सागर से पार उतरा जा सकता है। परब्रह्म की आराधना करने से सारे परिवार का भी उद्धार हो जाता है ॥२॥
साजनु बंधु सुमित्रु सो हरिनामु हिरदै देइ ॥ अउगण सभि मिटाइकै परउपकारु करेइ ॥३॥	(हे भाई !) वही (साधु) साजन है, सम्बन्धी है और मित्र भी है, जो हरिनाम को हृदय में (रखने के लिए) देता है। (हाँ) वह सारे अवगुण मिटाकर (हमारे पर) परोपकार करता है ॥३॥
मालु खजाना थेहु घरु हरि के चरण निधान ॥ नानकु जाचकु दरि तेरै प्रभ तुध नो मंगै दानु ॥४॥४॥१७२॥	हे हरि ! तुम्हारे चरण ही मेरे लिए माल है, खजाना है, ग्राम है, घर है और सारी निधियाँ हैं। हे प्रभु ! (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक तेरे द्वार का भिखारी है और तुमसे तुझे ही दान में माँगता है ॥४॥४॥१७२॥

रागु गउड़ी महला ९॥

"विकारों से दूर रहो तो सुख प्राप्त करोगे।"

साधो मन का मानु तिआगउ ॥
काम क्रोधु संगति दुरजन की
ता ते अहिनिसि भागउ ॥१॥रहाउ॥

हे साधो ! मन का अभिमान त्याग दो। काम, क्रोध, (जो विकार है) तथा दुर्जनों की संगति से दिन रात (आठ ही प्रहर) दूर भागो ॥१॥रहाउ॥

सुखु दुखु दोनो सम करि जानै
अउरु मानु अपमाना ॥
हरख सोग ते रहै अतीता
तिनि जगि ततु पछाना ॥१॥

सुख-दु:ख और मान-अपमान दोनों को जो सम्मान(एक जैसा करके) जानता है और हर्ष और शोक से जो अप्रभावित (निर्लेप) रहता है उसी ने ही इस जगत के मर्म को पहचाना है ॥१॥

उसतति निंदा दोऊ तिआगै ॥
खोजै पदु निरबाना ॥
जन नानक इहु खेलु कठनु है
किनहू गुरमुखि जाना ॥२॥१॥

स्तुति और निन्दा दोनो का जिसने (बन्धनों से रहित) परित्याग किया है, वह ही निर्वाण (अर्थात् मोक्ष) पद को खोजता है। किन्तु हे नानक ! (मान-अपमान, हर्ष-शोक को एक जैसा करके मानना) यह खेल कठिन है, किसी विरले गुरमुख ने ही इसे जाना है ॥२॥१॥

गउड़ी महला ९॥

"मेरे राम की रचना नश्वर है। केवल 'वह' रचनहार ही सत्य है।"

साधो रचना राम बनाई ॥
इकि बिनसै इक असथिरु मानै
अचरजु लखिओ न जाई ॥१॥
रहाउ॥

हे साधो ! राम ने रचना ऐसी बनाई है, कोई इसे नाशवान (झूठी) मानता है तो कोई इसे स्थिर (सच्ची)। यह आश्चर्य की बात है और इसकी समझ भी नही पड़ती ॥१॥रहाउ॥

कामु क्रोधु मोह बसि प्रानी
हरि मूरति बिसराई ॥
झूठा तनु साचा करि मानिओ
जिउ सुपना रैनाई ॥१॥

काम, क्रोध तथा मोह के वशीभूत होकर प्राणी ने हरि की (अति सुन्दर) मूर्ति को विस्मृत कर दिया है। उसने झूठे शरीर को रात्रि के स्वप्न की भाँति सच्चा मान लिया है ॥१॥

जो दीसै सो सगल बिनासै
जिउ बादर की छाई ॥
जन नानक जगु जानिओ मिथिआ
रहिओ राम सरनाई ॥२॥२॥

जो भी दृश्यमान है वह सब बादल की छाया जैसे नश्वर है। (मेरे गुरुदेव बाबा) दास नानक ने तो जगत को मिथ्या जाना है, इसलिए राम की शरण मे (अब सदा) रहता है ॥२॥२॥

गउड़ी महला ९॥

"करोड़ों में एकाध ही राम भजन करने वाला भक्त है।"

प्रानी कउ हरि जसु मनि नही
आवै ॥
अहिनिसि मगनु रहै माइआ मै
कहु कैसे गुन गावै ॥१॥रहाउ॥

हरि का यश प्राणी के मन मे (याद) नही आता। आह! जो मन दिन रात माया में मस्त रहता है, अब बताओ वह हरि के गुण कैसे गा सकता है? ॥१॥रहाउ॥

पूत मीत माइआ ममता सिउ
इह बिधि आपु बंधावै ॥
म्रिग त्रिसना जिउ झूठो इहु जग
देखि तास उठि धावै ॥१॥

पुत्र, मित्र एवं माया की ममता में उसने अपने आपको बँधवा लिया है। मृग तृष्णा जैसे झूठे जगत को देखकर उसके पीछे उठकर भागा फिरता है ॥१॥

भुगति मुकति का कारनु सुआमी
मूड़ ताहि बिसरावै ॥
जन नानक कोटन मै कोऊ
भजनु राम को पावै ॥२॥३॥

'वह' स्वामी जो भुक्ति और मुक्ति का कारण (भाव देने वाला) है, मूर्ख प्राणी ने उसे विस्मृत कर दिया है। हे दास नानक! (देखो) करोड़ो में कोई एक (आध ही) होता है, जो राम का भजन प्राप्त करता है ॥२॥३॥

गउड़ी महला ९॥

"हरि की दया दृष्टि से ही मन और क्रोध वश में आते हैं।"

साधो इहु मनु गहिओ न जाई ॥
चंचल त्रिसना संगि बसतु है ॥
या ते थिरु न रहाई ॥१॥रहाउ॥

हे साधो ! यह मन पकड़ा नही जाता (अर्थात मन वश में नही रहता)। यह मन चंचल रहता है क्योंकि तृष्णा की संगति में (सदा) बसता है इसलिए स्थिर नही रहता ॥१॥रहाउ॥

कठिन क्रोध घट ही के भीतरि
जिह सुधि सभ बिसराई ॥
रतनु गिआनु सभ को हिरि लीना
ता सिउ कछु न बसाई ॥१॥

प्राणी के घट के भीतर इतना भयकर क्रोध विद्यमान है जिसने उसकी सारी स्मृति (स्मरण शक्ति) भ्रमित (अस्त-व्यस्त) कर दी है। (उस चंचल मन ने) सबके ज्ञान रूपी रत्न को चुरा लिया है। इस (क्रोध) के आगे किसी का वश नही चलता ॥१॥

जोगी जतन करत सभ हारे
गुनी रहे गुन गाई ॥
जन नानक हरि भए दइआला
तउ सभ बिधि बनि आई ॥२॥४॥

सभी योगी यत्न करके और गुणीवान गुणों का गान करके हार गए। किन्तु जब हरि आप दयालु हो जाते हैं तो सब काम सिद्ध हो जाते हैं तथा सारी बात सरल हो जाती है (अन्यथा मन को पकडना और विकारो का दमन करना बेचारे कलियुगी जीव के वश में है ही नही।) ॥२॥४॥

गउड़ी महला ९॥

"मोक्ष के लिए अनिवार्य है गोबिन्द की शरण में आकर गुणों का गायन करना।"

साधो गोबिंद के गुन गावउ ॥
मानस जनमु अमोलकु पाइओ
बिरथा काहि गवावउ ॥१॥रहाउ॥

हे साधो ! गोबिन्द के गुण गाओ। मनुष्य जन्म अमूल्य है जो आपको मिला है। आप इसे व्यर्थ क्यों गँवाते हो ? ॥१॥रहाउ॥

पतित पुनीत दीन बंधु हरि
सरनि ताहि तुम आवउ ॥
गज को त्रासु मिटिओ जिह सिमरत
तुम काहे बिसरावउ ॥१॥

हरि, जो पापियो को पवित्र करने वाला है तथा दीन-दुखियों का सखा सहायक है, तुम 'उसकी' शरण मे जाओ। जिसके स्मरण मात्र से गज (पापी हाथी) का भी भय दूर हो गया, (ऐसे दयालु हरि को भला) तुमने क्यो विस्मृत किया है ? ॥१॥

तजि अभिमानु मोहु माइआ फुनि
भजन राम चितु लावउ ॥

अभिमान तथा माया मोह को त्याग करके राम के भजन में चित्त लगाओ। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कहते हैं कि मुक्ति का

नानक कहत मुकति पंथु इहु
गुरमुखि होइ तुम पावउ ॥२॥५॥

एक मार्ग (यथा : गुण गाना, शरण में आना और माया का अभिमान व मोह त्यागना) यही है किन्तु इसे आप गुरमुख होने पर ही प्राप्त कर सकते हो ॥२॥५॥

गउड़ी महला ९॥

"मुक्त है वह जो राम का स्मरण करे।"

कोऊ माई भूलिओ मनु समझावै ॥
बेद पुरान साध मग सुनि करि
निमख न हरि गुन गावै ॥१॥रहाउ॥

हे भाई ! है कोई जो इस भूले-भटके मन को समझाए ? वेदों, पुराणों और साधु जनों की मत्ति सुन कर भी यह (मन) क्षण मात्र के लिए भी हरि के गुण नही गाता है ॥१॥रहाउ॥

दुरलभ देह पाइ मानस की
बिरथा जनमु सिरावै ॥
माइआ मोह महा संकट बन
ता सिउ रुच उपजावै ॥१॥

मनुष्य की दुर्लभ देही प्राप्त करके भी यह (मनमुख) इसे व्यर्थ गँवा रहा है। माया का मोह जो महा-संकट रूप बन है, उसके साथ उसने अपनी रूचि उत्पन्न कर ली है ॥१॥

अंतरि बाहरि सदा संगि प्रभु
ता सिउ नेहु न लावै ॥
नानक मुकति ताहि तुम मानहु
जिह घटि रामु समावै ॥२॥६॥

जो प्रभु अन्दर-बाहर सदा संगी है (अर्थात् जो सदैव हमारे साथ रहता है) उसके साथ (यह मन)स्नेह नही लगाता। (किन्तु) हे नानक ! उसे ही मुक्त मानो जिसके हृदय अन्दर राम समा रहा है ॥२॥६॥

गउड़ी महला ९॥

"मुक्त है वह जो आसक्त नही विकारो में।"

साधो राम सरनि बिसरामा ॥
बेद पुरान पड़े को इहु गुन
सिमरे हरि को नामा ॥१॥रहाउ॥

हे साधो ! राम की शरण में ही विश्राम है। वेद पुराण (आदि धर्म ग्रन्थो को) पढकर कोई विरला ही हरि नाम स्मरण के गुण गाता है ॥१॥रहाउ॥

लोभ मोहु माइआ ममता फुनि
अउ बिखअन की सेवा ॥
हरखु सोगु परसै जिह नाहिन
सो मूरति है देवा ॥१॥

लोभ, मोह और माया से जो (प्राणी निर्लिप्त) रहता है और विषयो की सेवा नही करता (अर्थात उनका सेवन नहीं करता) तथा हर्ष व शोक जिसे स्पर्श नहीं करते, वही (प्राणी)देव-मूर्ति है ॥१॥

सुरग नरक अंम्रितु बिखु ए सभ
तिउ कंचन अरु पैसा ॥
उसतति निंदा ए सम जा कै
लोभु मोहु फुनि तैसा ॥२॥

(हाँ) जिसके लिए स्वर्ग तथा नर्क, अमृत तथा विष एवं सोना तथा (ताम्बे का) पैसा एक समान है, (अतएव) स्तुति तथा निन्दा, लोभ (तथा सन्तोष) एवं मोह (तथा वैराग्य) जिसके लिए एक समान है ॥२॥

दुखु सुखु ए बाधे जिह नाहनि
तिह तुम जानहु गिआनी ॥
नानक मुकति ताहि तुम मानउ
इह बिधि को जो प्रानी ॥३॥७॥

(अतः) जो दुःख तथा सुख के बन्धनों में नहीं बन्धा है, उसे ही तुम ज्ञानी जानो। हे नानक ! ऐसी विधि को कमाने वाला जो प्राणी है उसे तुम मुक्त मानो ॥३॥७॥

गउड़ी महला ९॥

'अरे बावरे ! जाग कर देख तुम्हारी आयु कम हो रही है।"

मन रे कहा भइओ तै बउरा ॥
अहिनिसि अउध घटै नही जानै
भइओ लोभ संगि हउरा ॥१॥
रहाउ॥

अरे मानव ! तुम बावरे क्यों बने हो ? तुम यह नहीं जानते कि दिन रात तुम्हारी आयु कम हो रही है किन्तु लोभ की संगति करके तुम तुच्छ (हलके-फूलके) हो गये हो ॥१॥रहाउ॥

जो तनु तै अपनो करि मानिओ
अरु सुंदर ग्रिह नारी ॥
इन मै कछु तेरो रे नाहनि
देखहु सोच बिचारी ॥१॥

जिस शरीर को तुमने अपना करके माना है और घर की सुन्दर स्त्री को भी (अपनी समझ बैठा है), वस्तुतः इनमें से कोई भी तेरा नहीं है। इस बात को तुम (भली-भांति) सोच विचार कर देख लो ॥१॥

रतन जनमु अपनो तै हारिओ
गोबिंद गति नही जानी ॥
निमख न लीन भइओ चरनन
सिउ
बिरथा अउध सिरानी ॥२॥

तुम मनुष्य जन्म रूपी अनमोल रत्न को हार बैठे हो, क्योंकि तुमने गोबिन्द की गति (प्राप्ति की युक्ति) नहीं जानी। तुम हरि के चरणों में निमिष मात्र भी लीन नहीं हुए और इस प्रकार तुम्हारी आयु व्यर्थ में (निष्फल) ही चली गई है ॥२॥

कहु नानक सोई नरु सुखीआ राम नाम गुन गावै ॥ अउर सगल जगु माइआ मोहिआ निरभै पदु नही पावै ॥३॥८॥	कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि वही नर सुखी है जो रामनाम के गुण गाता है। शेष समस्त जगत माया ने मोहित (वशीभूत) कर लिया है, जिस कारण (बावरा मनुष्य) निर्भय पद नही पाता है ॥३॥८॥
गउड़ी महला ९॥	"पाप करने से डर, केवल भजन करने से छुटकारा होगा।"
नर अचेत पाप ते डरु रे ॥ दीन दइआल सगल भै भंजन सरनि ताहि तुम परु रे ॥१॥रहाउ॥	हे विवेकहीन नर ! पापों से डर। तू 'उसकी' शरण में जाकर पड जो दीन-दुखियो पर दयालु है तथा सब प्रकार के भयों को नाश करने वाला है ॥१॥रहाउ॥
बेद पुरान जास गुन गावत ता को नामु हीऐ मो धरु रे ॥ पावन नामु जगति महि हरि को सिमरि सिमरि कसमल सभ हरु रे ॥१॥	जिस (प्रभु) के गुणों को वेद, पुराणादि (धर्म ग्रन्थ) गाते हैं, 'उसका' नाम हृदय में धारण कर ले। जगत में हरि का नाम ही पवित्र करने वाला है, 'उसका' स्मरण कर-करके अपने सब पापो को दूर कर ले, रे (नर) ! ॥१॥
मानस देह बहुरि नह पावहि ॥ कछू उपाउ मुकति का करु रे ॥ नानक कहत गाइ करुनामै भव सागर कै पारि उतरु रे ॥२ ॥९॥२५१॥	(स्मरण रहे) मनुष्य देही दोबारा प्राप्त नही होगी इसलिए मुक्ति प्राप्त करने के लिए कुछ तो उपाय कर ले। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कहते हैं कि 'उस' करुणामय हरि के गुण गायन करके भव-सागर को पार कर ले, रे (नर) ! ॥२॥९॥२५१॥

नोट कुल मिलाकर चउपदे २५१ हुए।

महला	१	(गुरु नानक साहब) के	२०	चउपदे
महला	३	(गुरु अमरदास साहब) के	१८	चउपदे
महला	४	(गुरु रामदास साहब) के	३२	चउपदे
महला	५	(गुरु अर्जन देव साहब) के	१७२	चउपदे
महला	९	(गुरु तेगबहादुर साहब) के	९	चउपदे
			२५१	

रागु गउड़ी असटपदीआ महला १ गउड़ी गुआरेरी ॥

निधि सिधि निरमल नामु बीचारु ॥
पूरन पूरि रहिआ बिखु मारि ॥
त्रिकुटी छूटी बिमल मझारि ॥
गुर की मति जीइ आई कारि ॥१॥

(हे सिद्धो !) (परमात्मा के) निर्मल नाम का विचार ही (मेरे लिए) अष्ट निद्धियाँ और नव सिद्धियाँ हैं। विष रूप माया को मार कर ही परमेश्वर, जो सर्वत्र परिपूर्ण है (दिखाई दे रहा है)। पवित्र हरि में लीन होने से माया की त्रिगुणात्मक प्रकृति (त्रिकुटी-सत्व, रजस्, तमस्) निवृत्त हो गई है। गुरु की मत्ति आत्मा के लिए (अब) लाभप्रद सिद्ध हुई है ॥१॥

इन बिधि राम रमत मनु मानिआ ॥
गिआन अंजनु गुर सबदि पछानिआ ॥१॥रहाउ॥

(हे सिद्धो !) इस प्रकार राम के रमने से मन ने मान लिया है (अर्थात मन सन्तुष्ट हुआ है), (हाँ) गुरु के शब्द द्वारा ज्ञान रूपी सुरमा प्राप्त करके हरि को पहचान लिया है ॥१॥रहाउ॥

इकु सुखु मानिआ सहजि मिलाइआ ॥
निरमल बाणी भरमु चुकाइआ ॥
लाल भए सूहा रंगु माइआ ॥
नदरि भई बिखु ठाकि रहाइआ ॥२॥

(हे सिद्ध पुरुषो !) (वास्तविक ज्ञान द्वारा) सहज (ज्ञान रूप हरि) से मिला दिया गया हूँ, इसलिए एक (सहज) सुख मान लिया है। गुरु के निर्मल वाणी ने भ्रम को दूर कर दिया है। माया के रंग को कुसुम्भा की भान्ति लाल जाना है (जो शीघ्र हो उतर जाता है) अतएव उसे त्याग कर हरि के मजीठ (प्रेम) रंग में लाल हो गया हूँ। (हरि अथवा गुरु की) कृपा दृष्टि से माया (विष) को रोक दिया है ॥२॥

उलट भई जीवत मरि जागिआ ॥
सबदि रवे मनु हरि सिउ लागिआ ॥

(हे सिद्धो !) जीवन उलटा हो गया और जीवित ही (माया की ओर से) मरकर (अपने आत्मिक प्रकाश) में जाग पड़ा। शब्द

रसु संग्रहि बिखु परहरि तिआगिआ ॥
भाइ बसे जम का भउ भागिआ ॥३॥

द्वारा आप जैसे (कर)के मन हरि के साथ लग गया। (हरि के नाम का) रस संग्रह करके (माया का विष) त्याग दिया। हरि का प्रेम (मन में) बस गया और यम का भय भाग गया ॥३॥

साद रहे बादं अहंकारा ॥
चितु हरि सिउ राता हुकमि अपारा ॥
जाति रहे पति के आचारा ॥
द्रिसटि भई सुखु आतम धारा ॥४॥

(हे सिद्धो !) स्वाद, झगड़े और अहंकार समाप्त हो गये हैं। चित्त हरि और 'उसकी' महान आज्ञा मे अनुरक्त हो गया है। जाति एवं लोक लज्जा के लिए किये काम (अचार) सब रह गये। 'उसकी' कृपा-दृष्टि हुई और आत्म-सुख में स्थित हो गया ॥४॥

तुझ बिनु कोइ न देखउ मीतु ॥
किसु सेवउ किसु देवउ चीतु ॥
किसु पूछउ किसु लागउ पाइ ॥
किसु उपदेसि रहा लिव लाइ ॥५॥

(हे गुरुदेव !) तुम्हारे बिना (मैं) कोई अन्य मित्र नहीं देखता हूँ। किसकी सेवा करूँ? और किसको अपना चित्त दूँ? किससे पूछूँ? और किसके पैर लगूँ? किसके उपदेश द्वारा परमात्मा में लौ (एकनिष्ठ ध्यान) लगाऊँ? ॥५॥

गुर सेवी गुर लागउ पाइ ॥
भगति करी राचउ हरि नाइ ॥
सिखिआ दीखिआ भोजन भाउ ॥
हुकमि संजोगी निजघरि जाउ ॥६॥

(हे सिद्धो !) गुरू की सेवा करो, (हाँ) गुरू के ही पाँव मे लगो। (हरि की) भक्ति करो 'उसके' नाम में अनुरक्त रहो। (हरि का) प्रेम ही शिक्षा-दीक्षा एवं भोजन हो, 'उसके' हुक्म से युक्त होकर अपने आत्म स्वरूप रूपी घर में जाओ (अर्थात स्थिर हो) ॥६॥

गरब गतं सुख आतम धिआना ॥
जोति भई जोती माहि समाना ॥
लिखतु मिटै नही सबदु नीसाना ॥
करता करणा करता जाना ॥७॥

(हे सिद्धो !) प्रभु के ध्यान करने से जब आत्म सुख प्राप्त हो तो गर्व दूर ही जाता है फिर ज्योति परमात्मा की ज्योति मे समा जाती है। यदि भाग्य में हरि की प्राप्ति लिखी है, तो वह लिखावट मिट नहीं सकती और गुरु के शब्द द्वारा ही जीव प्रकट होता है ॥७॥

नह पंडितु नह चतुरु सिआना ॥
नह भूलो नह भरमि भुलाना ॥

(हे सिद्धो !) न तो मैं अपने को पंडित समझता हूँ, न चतुर और स्याना ही, न तो मैं अब भूलता हूँ और न भ्रम में भटकता

कथउ न कथनी हुकमु पछाना ॥
नानक गुरमति सहजि समानां ॥८॥१॥

हूँ। हे नानक! मैंने प्रभु के हुकम को पहचान लिया है, व्यर्थ कथनी नहीं कथन करता (कहता) हूँ, (हाँ) गुरु की मति द्वारा सहज पद में समा गया हूँ ॥८॥१॥

गउड़ी गुआरेरी महला १॥

"सत्गुरु की अति आवश्यकता।"

मनु कुंचरु काइआ उदिआनै ॥
गुरु अंकसु सचु सबदु नीसानै ॥
राज दुआरै सोभ सु मानै ॥१॥

शरीर रूपी जंगल मे मन हाथी की तरह बिना रुके घूमता फिरता है। गुरु ही उस हाथी का अकुश है। सच्चा शब्द ही उस हाथी का निशान है(राजा-महाराजा के हाथी पर विशेष प्रकार का निशान लगा रहता है)। राजा के द्वार पर वह हाथी शोभा पाता है ॥१॥

चतुराई नह चीनिआ जाइ ॥
बिनु मारे किउ कीमति पाइ ॥१॥ रहाउ॥

(हे भाई!) चतुराई से परमात्मा नही पहचाना जा सकता। बिना (मन को) मारे (हरि की) किस प्रकार कीमत पाई जा सकती है? ॥१॥रहाउ॥

घर महि अंमृतु तसकरु लेई ॥
नंनाकारु न कोइ करेई ॥
राखै आपि वडिआई देई ॥२॥

(हे भाई!) घर (शरीर) मे ही परमात्मा रूपी अमृत रखा हुआ है किन्तु उस अमृत को कामादि विकार रूपी चोर चुरा रहे हैं। कोई उन चोरो को रोकता-थामता भी नहीं। किन्तु जो (चोरो से इस अमृत की) रक्षा करता है, परमात्मा उसे स्वयं बडाई देता है ॥२॥

नील अनील अगनि इक ठाई ॥
जलि निवरी गुरि बूझ बुझाई ॥
मनु दे लीआ रहसि गुण गाई ॥३॥

दस खरब और असंख्य (तृष्णा की) अग्नि जो एक जगह इकट्ठी हुई थी अब वह गुरु के शुद्ध विचार जल से बुझ गई। मैं अपना मन गुरु को सौंप कर हरि से मिला हूँ और अब चावपूर्वक (उमग और उत्साह से) गुण गाता हूँ ॥३॥

जैसा घरि बाहरि सो तैसा ॥
बैसि गुफा महि आखउ कैसा ॥
सागरि डूगरि निरभउ ऐसा ॥४॥

परमात्मा जैसे घर मे है वैसे ही बाहर भी 'वह' है। गुफा में (अकेले) बैठकर मैं 'उसका' वर्णन कैसे करूँ? समुद्रों और पर्वतों (सभी स्थानो)में 'वह' निर्भय हरि एक समान व्याप्त है ॥४॥

मूए कउ कहु मारे कउनु ॥
निडरे कउ कैसा डरु कवनु ॥
सबदि पछानै तीने भउन ॥५॥

(भला) बताओ जीवित भाव से मरे हुए को (अर्थात् अहंकार की निवृत्ति करने वाले को) कौन मार सकता है ? जो परमात्मा के डर को धारण करके यमकाल से निडर हुआ है उसको कैसा डर है और उसे डर देने वाला कौन है ?॥५॥

जिनि कहिआ तिनि कहनु वखानिआ ॥
जिनि बूझिआ तिनि सहजि पछानिआ ॥
देखि बीचारि मेरा मनु मानिआ ॥६॥

जो कथन करता है वह यो ही कथन द्वारा ('उस' प्रभु का) वर्णन करता है, किन्तु जिन्होंने गुरु के शब्द द्वारा समझ लिया है उन्होने सहज पद को पहचान लिया है. । 'उस' प्रभु का वर्णन करके, विचार करके मेरा मन भलीभाँति मान गया है (स्थिर हो गया है) ॥६॥

कीरति सूरति मुकति इक नाई ॥
तही निरंजनु रहिआ समाई ॥
निज घरि बिआपि रहिआ निज ठाई ॥७॥

एक हरि के नाम में कीर्ति, सुरति (ध्यान) अथवा सुन्दर आकृति (सूरत), मोक्ष (सभी कुछ) है । उसी नाम मे 'वह' निरंजन व्याप्त हो रहा है. (हाँ) स्वय निवास कर रहा है एवं स्वरूप में, अपने स्थान पर व्याप्त हो रहा है ॥७॥

उसतति करहि केते मुनि प्रीति ॥
तनि मनि सूचै साचु सु चीति ॥
नानक हरि भजु नीता नीति ॥८॥२॥

कितने ही मुनिगण प्रेमपूर्वक 'उसकी' स्तुति करते हैं । जो तन और मन (दोनों से) पवित्र हैं, उनके सुन्दर चित्त में सत्य स्वरूप परमात्मा स्थित है । हे नानक ! (तू भी) नित्य-प्रति (ऐसे) हरि का भजन कर ॥८॥२॥

गउड़ी गुआरेरी महला १॥

"मन मारने से भक्ति का कार्य सिद्ध होता है ।"

ना मनु मरै न कारजु होइ ॥
मनु वसि दूता दुरमति दोइ ॥
मनु मानै गुर ते इकु होइ ॥१॥

न तो मन मरता है और न (आत्मा का) कार्य सिद्ध होता है । यह मन कामादिक दूतो, खोटी बुद्धि तथा द्वैतभाव के वशीभूत है । यदि मन को गुरु द्वारा मनवाये (अर्थात् गुरु के वचनों में निश्चय रखे। तो वह हरि के स्वरूप से एक हो जाता है ॥१॥

निरगुण रामु गुणह वसि होइ ॥
आपु निवारि बीचारे सोइ ॥१॥ रहाउ॥

निर्गुण राम (दैवी) गुणों के वश में होता है, जो आपापन निवृत्त करता है, वही इस बात का विचार करता है ॥१॥रहाउ॥

मनु भूलो बहु चितै विकारु ॥
मनु भूलो सिरि आवै भारु ॥
मनु मानै हरि एकंकारु ॥२॥

मन अनेक (विषय) विकारों की ओर देखकर भटक जाता है और मन के भटकने से (सिर पर) पाप का बड़ा बोझा लद जाता है। एकंकार हरि (के सानिध्य में आने) से मन मान जाता है अथवा मन में मनन करने से हरि निरकार की प्राप्ति होती है ॥२॥

मनु भूलो माइआ घरि जाइ
कामि बिरूधउ रहै न ठाइ ॥
हरि भजु प्राणी रसन रसाइ ॥३॥

मन के भूलने पर, घर में (माया) चली जाती है। कामासक्त हुआ जीव स्थिर नहीं रहता। हे प्राणी ! रसना द्वारा रस से हरि का भजन कर ॥३॥

गैवर हैवर कंचन सुत नारी ॥
बहु चिंता पिड़ चालै हारी ॥
जूऐ खेलणु काची सारी ॥४॥

श्रेष्ठ हाथी, श्रेष्ठ घोड़े, सोना, पुत्र और नारी की बड़ी चिंता मे पड़कर मनुष्य (जीवन बाजी) हारता है। जीवन रूपी जूए में वह कच्ची बाजी खेलता है (अर्थात् जीवन नष्ट कर देता है)॥४॥

संपउ संची भए विकार ॥
हरख सोक उभे दरवारि ॥
सुखु सहजे जपि रिदै मुरारि ॥५॥

सम्पत्ति संग्रह करने से अनेक विकार उत्पन्न होते हैं। हर्ष और शोक भाव सुख-दुःख दोनो हरि की दरबार में खड़े रहते हैं। सुख इसी मे है कि सहज ही हृदय में मुरारि हरि का नाम जपा जाय ॥५॥

नदरि करे ता मेलि मिलाए ॥
गुण संग्रहि अउगण सबदि जलाए॥
गुरमुखि नामु पदारथु पाए ॥६॥

यदि प्रभु कृपा करता है, तो (शिष्य को) गुरु से मिला लेता है फिर वह गुणो का संग्रह करके (गुरु के) शब्द द्वारा अवगुणों को जला डालता है। इस प्रकार गुरु द्वारा शिष्य नाम पदार्थ को पा लेता है ॥६॥

बिनु नावै सभ दूख निवासु ॥
मनमुख मूड़ माइआ चित वासु ॥
गुरमुखि गिआनु धुरि करमि
लिखिआसु ॥७॥

बिना नाम के (मनुष्य के अन्तर्गत) सभी प्रकार के दुःखों का निवास रहता है। मूढ मनमुख का मन माया मे ही निवास करता है किन्तु यदि पहले से ही भाग्य मे लिखा हो तो गुरु द्वारा ज्ञान मिलता है ॥७॥

मनु चंचलु धावतु फुनि धावै ॥
साचे सूचे मैलु न भावै ॥
नानक गुरमुखि हरि गुण गावै ॥८
॥३॥

चंचल मन बार-बार (मायिक पदार्थों के पीछे) दौड़ता रहता है। सच्चे और पवित्र परमात्मा को मैल अच्छी नही लगती अथवा सच्चे हरि को पवित्रता ही अच्छी लगती है गन्दापन नहीं। हे नानक! गुरु की शिक्षा द्वारा गुरमुख हरि के गुण गाते है ॥८॥३॥

गउड़ी गुआरेरी महला १॥

"अहंकार दु.ख रूप है पूर्ण गुरु से ही यह बुद्धि प्राप्त होती है।"

हउमै करतिआ नह सुखु होइ ॥
मनमति झूठी सचा सोइ ॥
सगल बिगूते भावै दोइ ॥
सो कमावै धुरि लिखिआ होइ ॥१॥

(हे भाई !) अहंकार करते रहने से सुख नहीं प्राप्त होता। मन की मति झूठी है, 'वही' (अकेला) सच्चा है। (इसलिए झूठ का सत्य से मिलाप नही होता है)। जिन्हें द्वैतभाव(अच्छा लगा) है, वे खराब हुए। (परमेश्वर के नाम को) वही कमाता है जिसके (मस्तक पर) पहले से ही (श्रेष्ठ लेख) लिखा हुआ होता है ॥१॥

ऐसा जगु देखिआ जूआरी ॥
सभि सुख मागै नाम बिसारी ॥१॥
रहाउ॥

(हे भाई !) मैंने जगत (के लोगों) को इस प्रकार का जुआरी देखा है कि सुख तो सभी कोई मांगते हैं, किन्तु नाम भुला देते हैं ॥१॥रहाउ॥

अदिसटु दिसै ता कहिआ जाइ ॥
बिनु देखे कहणा बिरथा जाइ ॥
गुरमुखि दीसै सहजि सुभाइ ॥
सेवा सुरति एक लिव लाइ ॥२॥

जो दीखता नही यदि उसे ज्ञान-नेत्रों से देखा जाय तो तभी (ठीक-ठाक से) कथन किया जा सकता है। बिना देखे कथन करना व्यर्थ होता है। 'वह' परमात्मा गुरु द्वारा स्वाभाविक ही दीख पड़ता है। यदि (शब्द) (गुरु की) सेवा एकनिष्ठ (सुरति) ध्यान लगाकर एक प्रभु से लौ लगाये ॥२॥

सुख मांगत दुखु आगल होइ ॥
सगल विकारी हारु परोइ ॥
एक बिना झूठे मुकति न होइ ॥
करि करि करता देखै सोइ ॥३॥

(हे भाई !) सुख मांगने पर और अधिक दुःख होता है, (ऐसा ज्ञात होता है कि सासारिक लोगो ने) समस्त विकारों की माला गूँथकर पहनी है। एक के बिना समस्त (विकारी मनुष्य) झूठे है, उनकी मुक्ति नही होती। कर्त्ता पुरुष हो सृष्टि रच-रचकर उसे देखता (पालन-पोषण करता) है ॥३॥

त्रिसना अगनि सबदि बुझाए ॥
दूजा भरमु सहजि सुभाए ॥
गुरमती नामु रिदै वसाए ॥
साची बाणी हरिगुण गाए ॥४॥

(हे भाई !) (गुरु के) शब्द द्वारा तृष्णा की अग्नि को बुझा दे फिर द्वैत का भ्रम स्वाभाविक ही निवृत्त हो जायेगा। गुरु की शिक्षा द्वारा हरि का नाम हृदय मे बसा ले और सच्ची वाणी द्वारा हरि के गुणो का गायन कर ॥४॥

तन महि साचो गुरमुखि भाउ ॥
नाम बिना नाही निज ठाउ ॥
प्रेम पराइण प्रीतम राउ ॥
नदरि करे ता बूझै नाउ ॥५॥

(हे भाई !) जिनको गुरु द्वारा प्रेम उत्पन्न हुआ है, उनके शरीर मे 'वह' सत्य है। नाम के बिना (जीव) अपने वास्तविक स्थान (आत्म स्वरूप) मे टिक नही सकता। प्रियतम राजा (हरि)(भी) प्रेम के आश्रय (वश में) है। यदि 'उसकी' कृपा दृष्टि हो तो (यह जीव) नाम (की महिमा) को समझता है ॥५॥

माइआ मोहु सरब जंजाला ॥
मनमुख कुचील कुछित बिकराला ॥
सतिगुरु सेवे चूकै जंजाला ॥
अंम्रित नामु सदा सुखु नाला ॥६॥

माया के प्रति मोह ही सारे जंजालों का मूल कारण है। अपने मन के अनुसार चलने वाला (मनमुख) गन्दा, निन्दनीय तथा भयानक है। सत्गुरु की सेवा करने से जंजाल समाप्त हो जाते हैं किन्तु जिसको (मुख में) अमृत रूपी नाम है, उसके साथ सदैव ही सुख है ॥६॥

गुरमुखि बूझै एक लिव लाए ॥
निजघरि वासै साचि समाए ॥
जंमणु मरणा ठाकि रहाए ॥
पूरे गुर ते इह मति पाए ॥७॥

गुरुदेव की शिक्षा द्वारा (गुरमुख) एक (परमात्मा से) लौ लगाकर उसे समझ लेता है, फिर वह वास्तविक घर (आत्म-स्वरूप) में रहने लगता है और सच्चे परमात्मा में समा जाता है। (ऐसा गुरमुख) जन्म-मरण को रोक देता है किन्तु यह मति पूर्ण गुरु से ही प्राप्त होती है ॥७॥

कथनी कथउ न आवै ओरु ॥
गुर पुछि देखिआ नाही दरु होरु ॥
दुखु सुखु भाणै तिसै रजाइ ॥
नानकु नीचु कहै लिव लाइ ॥८॥
४॥

कथन करने से 'उस' परमात्मा का अन्त नहीं पाया जा सकता। गुरु से पूछकर मैंने देख लिया है कि परमात्मा को छोड़ कर कोई अन्य द्वार नहीं है। 'उसी' की आज्ञा और इच्छा से दु:ख-सुख (प्राप्त होते) हैं। (मेरा गुरुदेव) नीच नानक ध्यान लगा कर यह बात कहता है ॥८॥४॥

गउड़ी महला १॥

'एको सत्य द्वितीया नास्ति।"

दूजी माइआ जगत चित वासु ॥
काम क्रोध अहंकार बिनासु ॥१॥

(हे भाई!) माया ने जगत के चित्त में वास किया है जो (भ्रम के कारण) दूसरी (होकर प्रतीत हो रही) है। माया ने काम, क्रोध अहंकार का वेष धारण किया है, ये विनाश के कारण हैं ॥१॥

दूजा कउणु कहा नही कोई ॥
सभ महि एकु निरंजनु सोई ॥१॥
रहाउ ॥

(हे भाई!) दूसरा किसे कहूँ, जब है नहीं, सभी में एक 'वही' निरंजन व्याप्त है ॥१॥रहाउ॥

दूजी दुरमति आखै दोइ ॥
आवै जाइ मरि दूजा होइ ॥२॥

(हे भाई!) द्वैतभाव वाली दुर्मति ही द्वैत कथन करती है। द्वैतबुद्धि के कारण ही जीव आता (जन्मता) है और जाता (मरता) है और इस प्रकार मरकर द्वैत ही हो जाता है ॥२॥

धरति गगनि नह देखउ दोइ ॥
नारी पुरख सबाई लोइ ॥३॥

धरती और आकाश में मुझे कहीं द्वैत नहीं दिखाई पड़ता। नारी-पुरुष और सभी लोगों में 'वही' (अकेला प्रभु दिखाई पड़ रहा) है ॥३॥

रवि ससि देखउ दीपक उजिआला ॥
सरब निरंतरि प्रीतमु बाला ॥४॥

(मैं) सूर्य और चन्द्रमा को प्रभु के प्रकाशमान दीपक के रूप में देखता हूँ। सब में सभी के भीतर सदा (नूतन) नवीन शरीर वाला मेरा प्रभु वास कर रहा है ॥४॥

करि किरपा मेरा चितु लाइआ ॥
सतिगुरि मो कउ एकु बुझाइआ ॥
५॥

प्रभु ने कृपा करके मेरा चित्त अपने में [illegible] लिया है। सद्गुरु ने मुझे एक तत्व का बोध करा दिया है ॥५॥

एकु निरंजनु गुरमुखि जाता ॥
दूजा मारि सबदि पछाता ॥६॥

गुरु की शिक्षा द्वारा मैंने एक निरंजन प्रभु को जान लिया है। गुरु शब्द की पहचान कर द्वैतभाव को मार दिया है ॥६॥

एको हुकमु वरतै सभ लोई ॥
एकसु ते सभ ओपति होई ॥७॥

परमात्मा का एक हुक्म सारे लोकों में बरत रहा है। एक 'उसी' परमात्मा से समस्त उत्पत्ति हुई है ॥७॥

राह दोवै खसमु एको जाणु ॥
गुर कै सबदि हुकमु पछाणु ॥८॥

मार्ग तो दो दीखते हैं किन्तु उन दोनों के बीच एक परमात्मा को ही जानो। गुरु के शब्द द्वारा 'उस' प्रभु के हुक्म को पहचानो ॥८॥

सगल रूप वरन मन माही ॥
कहु नानक एको सालाही ॥९॥५॥

(मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कहते हैं 'उसी' एक (हरि) की स्तुति करो, जो सारे रूप, रंग तथा (सबके) मन में है ॥९॥५॥

गउड़ी महला १॥

"सच्चा योगी कौन ? (वही) जो पाँच विकारों को मारता है।"

अधिआतम करम करे ता साचा ॥
मुकति भेदु किआ जाणै काचा ॥१॥

जो आध्यात्मिक कर्म करता है, वही सच्चा (योगी) है, कच्चा (अज्ञानी) मनुष्य मुक्ति के भेद को क्या जान सकता है ॥१॥

ऐसा जोगी जुगति बीचारै ॥
पंच मारि साचु उरिधारै ॥१॥
रहाउ॥

जो पाँच (कामादिकों) को मारता और अपने हृदय में सत्य धारण करता है, ऐसा (वास्तविक) योगी (योग की ठीक) युक्ति विचार करता है ॥१॥रहाउ॥

जोगी कउ कैसा डरु होइ ॥
रूखि बिरखि गृहि बाहरि सोइ ॥१
॥रहाउ॥

(भला बताओ) योगी को किस प्रकार डर लग सकता है ? वह तो वृक्षों तथा घर-बाहर एक परमात्मा को ही (सर्वत्र) देखता है ॥१॥रहाउ॥

निरभउ जोगी निरंजनु धिआवै ॥
अनदिनु जागै सचि लिव लावै ॥
सो जोगी मेरै मनि भावै ॥२॥

जो योगी निर्भय है, वह निरंजन (माया से रहित हरि) का ही ध्यान करता है। वह रात-दिन जागता है और सत्य परमात्मा में अपनी लौ लगाता है। ऐसा योगी मेरे मन को अच्छा (प्रिय) लगता है ॥२॥

कालु जालु ब्रहम अगनी जारे ॥
जरा मरण गतु गरबु निवारे ॥
आपि तरै पितरी निसतारे ॥३॥

(ऐसा निर्भय योगी) काल के समूह को अथवा काल के जाल को ब्रह्मज्ञान की अग्नि से जला डालता है और जन्म-मरण विषयक अभिमान का निवारण कर देता है। वह स्वयं (भव सागर से) तरता ही है किन्तु अपने पितरों का भी निस्तार कर देता है ॥३॥

सतिगुरु सेवे सो जोगी होइ ॥
भै रचि रहै सु निरभउ होइ ॥
जैसा सेवै तैसो होइ ॥४॥

जो सत्गुरु की सेवा करता है, वही योगी होता है। जो परमात्मा के भय से अनुरक्त रहता है, वही निर्भय होता है। जिस प्रकार जो जैसी सेवा करता है, वैसा ही (फल प्राप्त) होता है ॥४॥

नर निहकेवल निरभउ नाउ ॥
अनाथह नाथ करे बलि जाउ ॥
पुनरपि जनमु नाही गुण गाउ ॥५॥

परम स्वरूप तथा निर्भय नाम वाला (केवल परमात्मा) है। (हरि) अनाथों को नाथ बना देता है। (काश !)मैं 'उस' पर बलिहारी जाऊँ। (चूँकि) 'उसका' गुणगान करता हूँ अतएव पुन (मेरा) जन्म नहीं होगा ॥५॥

अंतरि बाहरि एको जाणै ॥
गुर कै सबदे आपु पछाणै ॥
साचै सबदि दरि नीसाणै ॥६॥

जो गुरु के शब्द द्वारा अपने आपको पहचानता है और अन्दर तथा बाहर एक परमात्मा को जानता है, उस पर सच्चे शब्द के द्वारा (हरि के) दरवाजे पर निशान पड़ता है (प्रकट होता है) ॥६॥

सबदि मरै तिसु निजघरि वासा ॥
आवै न जावै चूकै आसा ॥
गुर कै सबदि कमलु परगासा ॥७॥

जो गुरु के शब्द द्वारा जीवित भाव से मरता है, वह अपने वास्तविक घर में (आत्मस्वरूप में) निवास करता है। वह न आता (जन्मता) है और न जाता (मरता) है। उसकी (समस्त) आशाएँ समाप्त हो जाती हैं। गुरु के शब्द द्वारा उसका हृदय रूपी कमल विकसित हो जाता है ॥७॥

जो दीसै सो आस निरासा ॥ काम क्रोध बिखु भूख पिआसा ॥ नानक बिरले मिलहि उदासा ॥८ ॥७॥	जो भी (व्यक्ति इस संसार में) दिखाई पड़ता है वह (या तो) आशा में है या निराशा में है और (वह) काम, क्रोधादि के विषयों के कारण, भूखा और प्यासा रहता है। हे नानक ! (संसार में) कोई विरले ही मिलते हैं जो (माया से) उदासीन हैं ॥८॥७॥
गउड़ी महला १॥	**"सन्त की महिमा।"**
ऐसो दासु मिलै सुखु होई ॥ दुखु विसरै पावै सचु सोई ॥१॥	ऐसा दास मिलने से परम सुख प्राप्त होता है और दुःख विस्मृत हो जाते हैं तथा 'उस' सत्य स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति होती है ॥१॥
दरसनु देखि भई मति पूरी ॥ अठसठि मजनु चरनह धूरी ॥१॥ रहाउ॥	जिस हरि के दर्शन से मति पूर्ण होती है और जिसकी चरण-धूलि ६८ तीर्थों के स्नान तुल्य है ॥१॥रहाउ॥
नेत्र संतोखे एक लिव तारा ॥ जिहवा सूची हरिरस सारा ॥२॥	एक (हरि) में लौ की ताड़ी (समाधि) लगाने से उनके नेत्र सन्तुष्ट हो गए हैं। हरि रस ग्रहण करने से उनकी जिह्वा पवित्र हो गई है ॥२॥
सचु करणी अभ अंतरि सेवा ॥ मनु तृप्तासिआ अलख अभेवा ॥३॥	आभ्यान्तरिक सेवा ही (ऐसे भक्तों की) सच्ची करणी है। अलक्ष्य और अभेद्य (छेदा न जाने वाला अर्थात् हरि) परमात्मा का साक्षात्कार करके उनके मन तृप्त हो गए हैं ॥३॥
जह जह देखउ तह तह साचा ॥ बिनु बूझे झगरत जगु काचा ॥४॥	मैं जहाँ-जहाँ देखता हूँ, वहाँ-वहाँ सच्चा परमात्मा (हरि दिखाई पड़ता) है। इस भेद को समझने बिना कच्चा (अज्ञानी) जीव जगत में (प्रत्येक के साथ) झगड़ा करता है ॥४॥
गुरु समझावै सोझी होई ॥ गुरमुखि विरला बूझै कोई ॥५॥	जिसको गुरु समझाता है, उसको समझ आती है। कोई विरला ही व्यक्ति गुरु की शिक्षा द्वारा (इस भेद को) समझता है ॥५॥
करि किरपा राखहु रखवाले ॥ बिनु बूझे पसू भए बेताले ॥६॥	हे (मेरी) रक्षा करने वाले (प्रभु) ! कृपा करके मेरी रक्षा करो। बिना आपको समझे (लोग) पशु और भूत हो रहे हैं ॥६॥

गुरि कहिआ अवरु नही दूजा ॥
किसु कहु देखि करउ अन पूजा ॥
॥७॥

गुरु ने मुझे यह कह दिया है कि (परमात्मा के सिवाय) और कोई दूसरा नहीं है। मैं किसे देखकर अन्य पूजा करूँ ॥७॥

संत हेति प्रभि त्रिभवण धारे ॥
आतमु चीनै सु ततु बीचारे ॥८॥

सन्तों के निमित्त प्रभु ने तीनों लोकों को धारण कर रखा है। जो आत्मा को पहचानता है, वही (परम) तत्त्व का विचार करता है ॥८॥

साचु रिदै सचु प्रेम निवास ॥
प्रणवति नानक हम ता के दास ॥९
॥८॥

सच्चे अन्त करण में सच्चे प्रेम का निवास होता है। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक विनयपूर्वक कहते हैं कि हम ऐसे (भक्तों के) दास हैं ॥९॥८॥

गउड़ी महला १॥

"गर्व करना बुरा है। गुरु ही अभिमान की निवृत्ति करता है।"

ब्रहमै गरबु कीआ नही जानिआ ॥
बेद की बिपति पड़ी पछुतानिआ ॥
जह प्रभ सिमरे तही मनु मानिआ
॥१॥

ब्रह्मा ने अभिमान किया(अर्थात् हठ किया की कि सृष्टि मैंने उत्पन्न की है) इसलिए परमेश्वर को नहीं जान सका। तब वेदों की विपत्ति पड़ी (वेद चुरा लिए गए) तो वे पछताने लगे। पुनः जब ब्रह्मा ने प्रभु स्मरण किया तब ही उसके मन को दृढ़ विश्वास हुआ (कि मैं कुछ भी नहीं करने वाला हूँ) ॥१॥

ऐसा गरबु बुरा संसारै ॥
जिसु गुरु मिलै तिसु गरबु निवारै
॥१॥रहाउ॥

ऐसा गर्व करना संसार में बुरा है, किन्तु जिसे गुरु प्राप्त होता है, उसका ही गर्व (गुरु) दूर कर देता है ॥१॥रहाउ॥

बलि राजा माइआ अहंकारी ॥
जगन करै बहु भार अफारी ॥
बिनु गुर पूछे जाइ पइआरी ॥२॥

बलि राजा अपनी माया (धन-सम्पत्ति-ऐश्वर्य) में बहुत अहंकारी हो गया था। वह बहुत अहंभाव से यज्ञादि करता था। बिना गुरु (शुक्राचार्य) के पूछे, उसे (बँधकर) पाताल लोक जाना पड़ा ॥२॥

नोट : बलि एक महान् प्रतापवान् राजा हुआ है। विष्णु भगवान उसको छलने के लिए वामन का रूप धारण कर आए और उससे ढाई कदम पृथ्वी माँगी। वामन भगवान ने [illegible] दो कदमों से पृथ्वी और आकाश माप लिये, तीसरे अर्ध कदम में बलि का शरीर ले लिया। भक्त वत्सल विष्णु ने बलि को पाताल का राजा बना दिया और स्वयं उसकी भक्ति पर प्रसन्न होकर उसका

हरीचंदु दानु करै जसु लेवै ॥
बिनु गुर अंतु न पाइ अभेवै ॥
आपि भुलाइ आपे मति देवै ॥३॥

(राजा) हरिश्चन्द्र दान करते थे और यश लेते थे, किन्तु उन्होंने बिना (वसिष्ठ) गुरु के अभेद(भेदा न जाने वाला अर्थात् हरि) परमात्मा का अन्त नहीं पाया। वस्तुतः परमात्मा स्वयं ही जीवों को भुलाकर (अपने से पृथक् करता है) और स्वयं ही जीवों को बुद्धि देकर (अपने आप में मिला लेता है) ॥३॥

दुरमति हरणाखसु दुराचारी ॥
प्रभु नाराइणु गरब प्रहारी ॥
प्रहलाद उधारे किरपा धारी ॥४॥

दुर्बुद्धि एवं दुराचारी हिरण्यकश्यप के गर्व पर प्रभु नारायण ने प्रहार किया। (भक्त) प्रहलाद के ऊपर कृपा करके प्रभु ने 'उसका' उद्धार किया ॥४॥

नोट : हिरण्यकश्यप राजा दैत्य था, वह अपने आपको परमेश्वर मानता था। उसका पुत्र भक्त प्रहलाद ही विद्रोही हो गया। राजा ने पुत्र के साथ असह्य अत्याचार किये, तपाया हुआ लोह-स्तम्भ से भी बाँधा, किन्तु नारायण भगवान ने भक्त की रक्षा की। नरसिंह रूप धारण करके स्तम्भ तोड़कर निकला और हिरण्यकश्यप राजा का नखों से वध किया।

भूलो रावणु मुगधु अचेति ॥
लूटी लंका सीस समेति ॥
गरबि गइआ बिनु सतिगुर हेति ॥५॥

मूर्ख और विवेक हीन रावण (अपने अहंभाव में) भूल गया। इसी कारण उसकी (सोने की) लंका उसके (दसों) सिरों सहित लूटी गई। बिना सत्गुरु में प्रेम करने से उसका सारा गर्व चूर-चूर हो गया ॥५॥

सहस बाहु मधु कीट महिखासा ॥
हरणाखसु ले नखहु बिधासा ॥
दैत संघारे बिनु भगति अभिआसा ॥६॥

सहस्त्रबाहु, मधुकैटभ, महिषासुर (आदि अपने अहंभाववश एवं गुरु को न मानने के कारण मारे गये), हिरण्यकश्यप को (नरसिंह भगवान ने अपनी गोदी में) लेकर अपने नखों से विध्वंस कर डाला। बिना अभ्यास भक्ति के (सारे) दैत्य संहार किए गये ॥६॥

जरासंधि कालजमुन संघारे ॥
रकतबीजु कालुनेमु बिदारे ॥
दैत संघारि संत निसतारे ॥७॥

जरासंध, कालजमुन संहार किये गये। रक्तबीज और काल-नेमि भी विदीर्ण किये गये। इस प्रकार परमात्मा ने दैत्यों का संहार किया और सन्तों का निस्तार (उद्धार) किया ॥७॥

नोट : मधु और कैटभ दो दैत्य, भगवान विष्णु जी के कान से उत्पन्न हुए। जब ब्रह्मा जी नाभि-कमल से निकले तब ये दोनों उन्हें खाने के लिए बढ़े। विष्णु जी ने दोनों को मार डाला।

आपे सतिगुरु सबदु बीचारे ॥
मूई भाइ दैत संघारे ॥
गुरमुखि साचि भगति निसतारे ॥८॥

प्रभु आप ही सत्गुरु होकर शब्द विचारता है और द्वैतभाव से दैत्य का संहार करता है। सत्य और भक्ति के कारण 'वह' गुरमुखों को तारता है ॥८॥

बूडा दुरजोधनु पति खोई ॥
रामु न जानिआ करता सोई ॥
जन कउ दूखि पचै दुखु होई ॥९॥

दुर्योधन प्रतिष्ठा खोकर डूब गया। (अहंकार के कारण) उसने राम को 'कर्ता' के रूप में नहीं जाना। परमात्मा के भक्तों को जो दुःख देता है, वह दुःखी होकर नष्ट हो जाता है ॥९॥

नोट धृतराष्ट्र का बडा पुत्र दर्योधन पाण्डवो का विरोधी था। छल से जुआ खेल कर पाण्डवो से राज और उनकी स्त्री द्रोपदी को जीत लिया और उन्हे बनवास भेज दिया। उसने द्रोपदी का अपमान राज्य सभा में करने का प्रयास किया। बाद में कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र में भीमसेन और दुर्योधन की लड़ाई हुई, जिसमें दुर्योधन मारा गया।

जनमेजै गुर सबदु न जानिआ ॥
किउ सुखु पावै भरमि भुलानिआ ॥
इकु तिलु भूले बहुरि पछुतानिआ ॥ १०॥

जन्मेज्य ने भी गुरु के शब्द पर ध्यान नहीं दिया। अतएव भ्रम के कारण भ्रमित होकर भटकता रहा। (वस्तुतः बिना गुरु शब्द पर विचार किए) कैसे सुख प्राप्त हो सकता है? एक तिलमात्र भूल करने से (जन्मेजय को) बहुत पछताना पड़ा ॥१०॥

कंसु केसु चांडूरु न कोई ॥
रामु न चीनिआ अपनी पति खोई ॥
बिनु जगदीस न राखै कोई ॥११॥

कस, केशी तथा चाण्डूर में से किसी ने भी राम को नही समझा। अत उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा गँवा दी (और मारे गए)। बिना जगदीश के कोई भी रक्षा नहीं कर सकता ॥११॥

बिनु गुर गरबु न मेटिआ जाइ ॥
गुरमति धरमु धीरजु हरिनाइ ॥
नानक नामु मिलै गुण गाइ ॥१२॥ ६॥

बिना गुरु के गर्व नही मेटा जा सकता है। गुरु के उपदेश द्वारा हरि नाम (जपने) से धैर्य और धर्म प्राप्त होते हैं। हे नानक! हरि के गुण गाने से नाम मिल जाता है ॥१२॥६॥

गउड़ी महला १॥

"बाह्य आडंबर तो झूठे दिखावे हैं।"

चोआ चंदनु अंकि चड़ावउ ॥
पाट पटंबर पहिरि हढावउ ॥
बिनु हरिनाम कहा सुखु पावउ ॥
१॥

यदि मैं शरीर में चन्दन का तेल (इत्र) मलूं, रेशम तथा रेशमी वस्त्र पहन कर (प्रसन्न) रहूँ, फिर भी बिना हरि नाम के कहाँ सुख पा सकता हूँ ॥१॥

किआ पहिरउ किआ ओढि
दिखावउ ॥
बिनु जगदीस कहा सुखु पावउ ॥
१॥रहाउ॥

मैं क्या पहनूँ और क्या ओढ़ कर (दूसरों को) दिखाऊँ? बिना जगदीश के कहाँ सुख पा सकता हूँ ॥१॥ रहाउ ॥

कानी कुंडल गलि मोतीअन की
माला ॥
लाल निहाली फूल गुलाला ॥
बिनु जगदीस कहा सुखु भाला ॥२॥

यदि मैं कानों मे कुण्डल तथा गले में मोतियों की माला पहने होऊँ, लाल रजाई ओढ़े होऊँ और लाल फूलों से सुसज्जित होऊँ, किन्तु बिना जगदीश के कहाँ सुख ढूँढू ? ॥२॥

नैन सलोनी सुंदर नारी ॥
खोड़ सीगार करै अति पिआरी ॥
बिनु जगदीस भजे नित खुआरी
॥३॥

यदि सुन्दर आँखों वाली सुन्दर स्त्री हो और वह सोलह शृंगार करके बड़ी लुभावनी बनी हो, किन्तु बिना जगदीश के नित्य बरबादी ही होती है ॥३॥

दर घर महला सेज सुखाली ॥
अहिनिसि फूल बिछावै माली ॥
बिनु हरिनाम सु देह दुखाली ॥४॥

यदि दरवाजे, घर और महल हो, सुखदायिनी सेज हो, माली अहर्निश (सेज पर) फूल बिछाता हो, किन्तु बिना हरिनाम के देह दुखी रहती है ॥४॥

हैवर गैवर नेजे वाजे ॥
लसकर नेब खवासी पाजे ॥
बिनु जगदीस झूठे दिवाजे ॥५॥

यदि श्रेष्ठ घोड़े, श्रेष्ठ हाथी, भाले तथा सहायक (विविध प्रकार के) बाजे, सेना, शाही नौकर (तथा अन्य) दिखाने वाली वस्तुएँ भी हों, किन्तु बिना जगदीश के (सभी ऐश्वर्य) झूठे दिखावे हैं ॥५॥

सिधु कहावउ रिधि सिधि
बुलावउ ॥
ताजा कुलहु सिरि छत्रु बनावउ ॥
बिनु जगदीस कहा सचु पावउ ॥
६॥

चाहे मैं सिद्ध कहलाऊँ और रिद्धियों-सिद्धियों को बुला लूँ; सिर पर मुकुट की टोपी पहनूँ एवं छत्र सजाऊँ, किन्तु बिना जगदीश के कहाँ सुख पा सकता हूँ ॥६॥

खानु मलूकु कहावउ राजा ॥
अबे तबे कूड़े है पाजा ॥
बिनु गुर सबद न सवरसि काजा
॥७॥

चाहे मैं खान, बादशाह और राजा कहलाऊँ और 'अबे तबे' (कहकर नौकरों पर हुकम चलाऊँ) किन्तु यह सब झूठे दिखावे हैं। बिना गुरु के शब्द के कोई कार्य नहीं सँवरता ॥७॥

हउमै ममता गुर सबदि विसारी ॥
गुरमति जानिआ रिदै मुरारी ॥
प्रणवति नानक सरणि तुमारी ॥८॥
॥१०॥

गुरु के शब्द द्वारा मैंने अहं भाव और ममता को निवृत्त किया है तथा गुरु के उपदेश द्वारा (मुर दैत्य को मारने वाले) कृष्ण जी को अपने हृदय में विराजमान समझ लिया है। नानक विनय-पूर्वक कहते हैं (हे प्रभु ! मैं) तुम्हारी शरण में आया हूँ ॥८॥१०॥

गउड़ी महला १॥

सेवा एक न जानसि अवरे ॥
परपंच बिआधि तिआगै कवरे ॥
भाइ मिलै सचु साचै सचु रे ॥१॥

जो एक (प्रभु) की सेवा करता है, वह अन्य को नहीं जानता है और कड़वे (सांसारिक) प्रपंचों तथा व्याधियों को त्याग देता है। अरे भाई ! वह प्रेमपूर्वक विशुद्ध सत्य स्वरूप प्रभु से मिलता है ॥१॥

ऐसा राम भगतु जनु होई ॥
हरिगुण गाइ मिलै मलु धोई ॥१॥
रहाउ॥

(मेरे) राम का ऐसा भक्त कोई (विरला ही) जन होता है। (ऐसा भक्त) हरि के गुणगान करके, समस्त मलों को धोकर 'उससे' मिल जाता है ॥१॥ रहाउ ॥

ऊंधो कवलु सगल संसारै ॥
दुरमति अगनि जगत परजारै ॥
सो उबरै गुर सबदु बीचारै ॥२॥

सारे संसार का हृदय कमल उलटा है (अर्थात् प्रभु से विमुख है)। दुर्मति की अग्नि सारे जगत को अच्छी तरह से जला रही है। किन्तु वही बचता है, जो गुरु के शब्द पर विचार करता है ॥२॥

भृंग पतंगु कुंचरु अरु मीना ॥
मिरगु मरै सहि अपुना कीना ॥
तृसना राचि ततु नही बीना ॥३॥

भंवरा, पतंग हाथी, मछली तथा मृग (ये पाँचों क्रमशः गन्ध, रूप, स्पर्श, रस, शब्द के अधीन हैं) ये अपने किये हुए के सहन करते हैं और मरते हैं। इन सबों ने तृष्णा में अनुरक्त होकर तत्व (असलियत) नहीं पहचाना है ॥३॥

कामु चितै कामणि हितकारी ॥
क्रोधु बिनासै सगल विकारी ॥
पति मति खोवहि नामु विसारी ॥
४॥

जिस प्रकार स्त्री का प्रेमी काम का चिन्तन करता है और जिस प्रकार सब विकारियों को क्रोध नाश करता है उसी प्रकार लोग नाम को भुलाकर प्रतिष्ठा और बुद्धि खो बैठते हैं ॥४॥

पर घरि चीतु मनमुखि डोलाइ ॥
गलि जेवरी धंधै लपटाइ ॥
गुरमुखि छूटसि हरि गुण गाइ ॥५॥

मनमुख दूसरों की स्त्री में चित्त अकुलाता है, उसके गले में रस्सी पड़ी रहती है और (सांसारिक) धन्धों में लिपटा रहता है। किन्तु गुरु की शिक्षा द्वारा हरि का गुनगान करके वह (संसार से) छूटता है ॥५॥

जिउ तनु बिधवा पर कउ देई ॥
कामि दामि चितु पर वसि सेई ॥
बिनु पिर तृपति न कबहूं होई ॥६॥

जिस भांति विधवा अपना शरीर दूसरे को दे देती है, वह काम और धन के निमित्त अपना चित्त पराये के वश करती है, किन्तु बिना अपने पति के उसे कभी तृप्ति नहीं होती। (उसी भांति जीव-स्त्री पति-परमेश्वर को भूलकर माया में आसक्त होने के कारण सुखी (तृप्त) नहीं होती) ॥६॥

पड़ि पड़ि पोथी सिमृति पाठा ॥
बेद पुराण पड़ै सुणि थाटा ॥
बिनु रस राते मनु बहु नाटा ॥७॥

(सांसारिक व्यक्ति) (धार्मिक) ग्रन्थ पढ़ते हैं तथा स्मृतियों का पाठ करते हैं और ठाठ से वेद-पुराण पढ़ते और सुनते हैं किन्तु चित्त वृत्ति बहिर्मुखी होने के कारण उनके अन्तर्गत प्रभु के लिये प्रीति नहीं उत्पन्न होती। (उन्हें यह स्मरण रहे कि) बिना हरि रस अनुरक्त हुए, उनका मन (नट की भांति) नाचता रहता है ॥७॥

जिउ चात्रिक जल प्रेम पिआसा ॥
जिउ मीना जल माहि उलासा ॥
नानक हरि रसु पी तृपतासा ॥८
॥११॥

जिस प्रकार चातक (स्वाति नक्षत्र के) जल से प्रेम की निमित्त प्यासा रहता है और जिस प्रकार मछली जल में उल्लसित रहती है, (ठीक उसी प्रकार) (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक भी हरि रस को पीकर तृप्त हो गया है ॥८॥११॥

गउड़ी महला १॥

"नाम के बिना पछतावा होता।"

हठु करि मरै न लेखै पावै ॥
वेस करै बहु भसम लगावै ॥
नामु बिसारि बहुरि पछुतावै ॥१॥

हठ करके मरने वाला (मनमुख) (परमात्मा के यहाँ) लेखा नहीं पाता (अर्थात उसकी वहाँ न तो पूछ होती है और न गणना)। वह अनेक वेश धारण करता है और शरीर पर भस्म लगाता है, किन्तु नाम को भूल कर पुनः पछताता है ॥१॥

तूं मनि हरि जीउ तूं मनि सूख ॥
नामु बिसारि सहहि जम दूख ॥१॥ रहाउ॥

हे जीव ! तू हरि को मन में बसा और मन ही में सुख ले। यदि तू नाम को विस्मृत न रेगा तो यमों के दुःखों को सहेगा ॥१॥रहाउ॥

चोआ चंदन अगर कपूरि ॥
माइआ मगन परम पदु दूरि ॥
नामि बिसारिऐ सभु कूड़ो कूरि ॥२॥

चोआ, चंदन, अगर कपूर (इत्यादि सुगंधित द्रव्यों को लगाने मे तू रत है), माया में निमग्न है अत परम पद (मोक्ष) तुमसे दूर है। नाम के भुलाने पर सारी (मायिक वस्तुएँ) झूठी ही (सिद्ध होती) हैं ॥२॥

नेजे वाजे तखति सलामु ॥
अधकी त्रिसना विआपै कामु ॥
बिनु हरि जाचे भगति न नामु ॥३॥

भाले, (हाँ) बाजे हो और तख्त (सिंहासन) पर लोग सलाम करते हो, इन सबसे तृष्णा अधिक होती है, बढती है और काम आ चिपटता है। बिना हरि के माँगने के (भाव हरि की आवश्कता अनुभव किये बिना) भक्ति एवं नाम की प्राप्ति नही होती ॥३॥

वादि अहंकारि नाही प्रभ मेला ॥
मनु दे पावहि नामु सुहेला ॥
दूजै भाइ अगिआनु दुहेला ॥४॥

वादों और अहंकार से प्रभु का मिलाप नही होता है। मन देने पर ही सुखप्रद नाम की प्राप्ति होती है। द्वैतभाव में दुख-दायी अज्ञान ही (बना रहता) है ॥४॥

बिनु दम के सउदा नही हाट ॥
बिनु बोहिथ सागर नही वाट ॥
बिनु गुर सेवे घाटे घाटि ॥५॥

जैसे बिना रुपयों के दुकान से सौदा नही मिलता जैसे; बिना जहाज के समुद्र में मार्ग नहीं प्राप्त होता, उसी प्रकार गुरु की सेवा किये बिना घाटा ही घाटा (रहता) है ॥५॥

तिस कउ वाहु वाहु जि वाट
दिखावै ॥
तिस कउ वाहु वाहु जि सबदु
सुणावै ॥
तिस कउ वाहु वाहु जि मेलि
मिलावै ॥६॥

वह धन्य है, धन्य है, जो (परमात्मा की प्राप्ति) का मार्ग दिखाता है। धन्य है धन्य है, जो गुरु प्राप्ति का शब्द सुनाता है। वह धन्य है. धन्य है जो परमात्मा से मेल मिलाता है ॥६॥

वाहु वाहु तिस कउ जिस का इहु
जीउ ॥
गुर सबदी मथि अंम्रितु पीउ ॥
नाम वडाई तुधु भाणै दीउ ॥७॥

'वह' धन्य है, धन्य है, जिसका यह जीव है। मैं गुरु के शब्द द्वारा मन्थन करके नाम रूपी अमृत (निकाल कर) पीता हूँ। (हे प्रभु!) नाम की बड़ाई तुम अपनी इच्छा से देते हो ॥७॥

नाम बिना किउ जीवा माइ ॥
अनदिनु जपतु रहउ तेरी सरणाइ ॥
नानक नामि रते पति पाइ ॥८॥
१२॥

हे (गुरुदेव) माँ ! नाम के बिना मैं कैसे जीवित रहूँ ? तेरी शरण में रहकर प्रतिदिन तेरा नाम जपता हूँ। हे नानक ! नाम में रत होने पर ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥८॥१२॥

गउड़ी महला १॥

"अहंकार के कारण सत्य परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती।"

हउमै करत भेखी नही जानिआ ॥
गुरमुखि भगति विरले मनु मानिआ
॥१॥

जो अहंकार करता है और वेश बनाता है, उसके द्वारा हरि नहीं जाना जाता। गुरु की शिक्षा द्वारा भक्ति (का आश्रय) ग्रहण कर किसी विरले (जीव) का ही मन मानता है ॥१॥

हउ हउ करत नही सचु पाईऐ ॥
हउमै जाइ परम पदु पाईऐ ॥१॥
रहाउ॥

'मैं मैं' करने से (अहंकार करने से) सत्य परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। अहंकार के जाने से ही परम पद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है ॥१॥ रहाउ ॥

हउमै करि राजे बहु धावहि ॥
हउमै खपहि जनमि मरि आवहि
॥२॥

अहंकार करने से राजागण विषयों में अत्याधिक दौड़ते हैं। वे अहंकार में खप जाते हैं, फिर जन्म लेते हैं, फिर मरते हैं और (फिर जन्म धारण करके संसार में) आते हैं, (इस प्रकार उनके आवागमन का चक्र कुम्हार के चक्र जैसे निरन्तर चलता रहता है।) ॥२॥

हउमै बिनसै गुर सबदु बीचारै ॥
चंचल मति तिआगै पंच संघारै ॥
३॥

गुरु के शब्द पर विचार करने से अहंकार दूर होता है, (शब्द पर विचार करने से गुरमुख) चंचल बुद्धि का त्याग करता है और पाँच कामादिकों का सहार करता है ॥३॥

अंतरि साचु सहज घरि आवहि ॥
राजनु जाणि परम गति पावहि ॥
४॥

जिसके अन्तःकरण में सत्य परमात्मा है, उसके घर में सहजावस्था आ जाती है। वह राजा परमेश्वर को जान कर परमगति पाता है ॥४॥

साचु करणी गुरु भरमु चुकावै ॥
निरभउ कै घरि ताड़ी लावै ॥५॥

सत्य करनी करने से गुरु उसका भ्रम दूर कर देता है और निर्भय परमात्मा के घर में (उसकी) ताड़ी (गम्भीर ध्यान) लगवा देता है ॥५॥

हउ हउ करि मरणा किआ पावै
पूरा गुरु भेटे सो झगरु चुकावै ॥६॥

'मैं मैं' करके मरने से क्या प्राप्त होता है ? जो पूर्ण गुरु से मिलता है, वही (आन्तरिक) झगड़ों को समाप्त करता है ॥६॥

जेती है तेती किछु नाही ॥
गुरमुखि गिआन भेटि गुण
गाही ॥७॥

जितनी भी (दृश्यमान वस्तुएँ) हैं, वे वास्तव में कुछ भी नहीं हैं (क्षणभंगुर हैं)। (शिष्य) गुरु द्वारा ज्ञान प्राप्त कर प्रभु के गुण गाते हैं ॥७॥

हउमै बंधन बंधि भवावै ॥
नानक राम भगति सुखु पावै ॥८
॥१३॥

अहंकार जीवो को बन्धन में बान्ध कर भटकाता है। हे नानक ! (केवल) राम की भक्ति से ही उन्हें सुख प्राप्त होता है ॥८॥१३॥

गउड़ी महला १॥

"काल-घर का प्रकरण।"

प्रथमे ब्रहमा कालै घरि आइआ ॥
ब्रहम कमलु पइआलि न पाइआ ॥
आगिआ नही लीनी भरमि
भुलाइआ ॥१॥

(सर्व) प्रथम ब्रह्मा ही काल (मृत्यु) के घर (वश) मे आया। ब्रह्म-कमल (विष्णु की नाभि से उत्पन्न हुआ कमल जो ब्रह्मा की उत्पत्ति का स्थान है) का अन्त लगाने के लिए वे पाताल में चले गए, किन्तु उसका अन्त नही पा सके। 'उसकी' आज्ञा नहीं मानी (उनकी इच्छा के अनुसार न रहे, अतः) भ्रम में भटकते रहे ॥१॥

जो उपजै सो कालि संघारिआ ॥
हम हरि राखे गुर सबदु बीचारिआ
॥१॥रहाउ॥

(संसार में) जो भी उत्पन्न हुआ है, काल ने उसका संहार किया है। गुरु के शब्द पर विचार करने से हरि ने हमारी रक्षा की है ॥१॥ रहाउ ॥

माइआ मोहे देवी सभि देवा ॥
कालु न छोडै बिनु गुर की सेवा ॥
ओहु अबिनासी अलख अभेवा ॥
२॥

माया ने सभी देवी-देवताओं को मोहित कर लिया है। बिना गुरु की सेवा किए काल किसी को भी नहीं छोड़ता। एक मात्र 'वह' परमात्मा ही अविनाशी, अलक्ष्य और अभेद्य है ॥२॥

सुलतान खान बादिसाह नही
रहना ॥
नामहु भूलै जम का दुखु सहना ॥
मै धर नामु जिउ राखहु रहना ॥
३॥

सुलतान, खान, बादशाह (किसी को भी यहाँ) नहीं रहना है। (हरि) नाम भुला देने पर सभी को यम का दुःख सहना पड़ता है। मेरा आश्रय तो नाम ही है, जैसे (हे प्रभु !) रखोगे (मैंने) रहना है ॥३॥

चउधरी राजे नही किसै मुकामु ॥
साह मरहि संचहि माइआ दाम ॥
मै धनु दीजै हरि अंम्रित नामु ॥४॥

चौधरी चाहे राजा किसी का भी (यहाँ) मुकाम (स्थिरता) नही है। जो साहूकार (अत्यधिक) माया और दाम (पैसे) संचय करते हैं, वे भी मर जाते हैं। हे हरि ! मुझे तो (अपने) अमृत नाम का ही धन प्रदान करो (क्योंकि हरि नाम-धन ही अक्षय और शाश्वत है) ॥४॥

रयति महर मुकदम सिकदारै ॥
निहचलु कोइ न दिसै संसारै ॥
अफरिउ कालु कूड़ु सिरि मारै ॥
५॥

प्रजा, मुखिया, चौधरी और सरदार (आदि में से) इस संसार में कोई भी निश्चल नही दिखाई पड़ता। अमिट काल झूठे मनुष्य के सिर पर चोट मारता है ॥५॥

निहचलु एकु सचा सचु सोई ॥
जिनि करि साजी तिनहि सभ गोई ॥
ओहु गुरमुखि जापै तां पति होई ॥
६॥

'वही' एक सत्य (परमात्मा) निश्चल और शाश्वत है, जिसके द्वारा सारी सृष्टि रची जाती है, उसी के द्वारा समस्त सृष्टि लय (नष्ट) भी की जाती है। (जीव की) यदि गुरु की कृपा द्वारा 'वह' जान लिया जाता है, तभी प्रतिष्ठा होती है ॥६॥

काजी सेख भेख फकीरा ॥
वडे कहावहि हउमै तनि पीरा ॥
कालु न छोडै बिनु सतिगुर की
धीरा ॥७॥

काजी, शेख, वेषधारी, फ़कीर बड़े कहलाते हैं, किन्तु उनके शरीर में अहंकार की पीड़ा (बनी हुई) है। बिना सत्गुरु के धैर्य दिए काल किसी को भी नहीं छोड़ता है ॥७॥

कालु जालु जिहवा अरु नैणी ॥
कानी कालु सुणै बिखु बैणी ॥
बिनु सबदै मूठे दिनु रैणी ॥८॥

काल रूपी जाल जिह्वा, नेत्र, (कान, नासिका, त्वचा के विषयों के द्वारा जाना गया है)। विषवत् वचनों को सुनना ही कानो का काल है। बिना (गुरु के) शब्द के (मनमुख) लूटे जा रहे हैं ॥८॥

हिरदै साचु वसै हरि नाइ ॥
कालु न जोहि सकै गुण गाइ ॥
नानक गुरमुखि सबदि समाइ ॥९
॥१४॥

जिसके हृदय में सत्य हरि का नाम बसता है. (हरि के) गुण गाने से काल उसकी ओर देख भी नहीं सकता। हे नानक! (ऐसे प्यारे) गुरु के शब्द द्वारा हरि में समा जाते हैं ॥९॥१४॥

गउड़ी महला १॥

"सत्य घर का भव्य चित्रण।"

बोलहि साचु मिथिआ नही राई ॥
चालहि गुरमुखि हुकमि रजाई ॥
रहहि अतीत सचे सरणाई ॥१॥

(सच्चे भक्त) सत्य ही बोलते हैं, राई भर भी मिथ्या नहीं बोलते, गुरु के आदेशानुसार वे परमात्मा के आदेश और इच्छा-नुकूल चलते हैं। सत्य (हरि) की शरण में पड़कर वे माया से अतीत (परे) रहते हैं ॥१॥

सच घरि बैसै कालु न जोहै ॥
मनमुख कउ आवत जावत
दुखु मोहै ॥१॥रहाउ॥

सत्य के घर में बैठने से काल देख भी नही सकता। मनमुख को मोह के कारण दुःख है और वह (सदैव) आता (जन्मता) और जाता (मरता) रहता है ॥१॥ रहाउ ॥

अपिउ पीअउ अकथु कथि रहीऐ ॥
निज घरि बैसि सहज घरु लहीऐ ॥
हरि रसि माते इहु सुखु कहीऐ ॥
२॥

(हे साधक!) नाम रूपी अमृत पियो और अकथनीय हरि का कथन करते रहो। अपने वास्तविक घर में बैठकर (आत्म-स्वरूप में स्थित होकर) सहजावस्था के घर को प्राप्त करो। हरि-रस में मतवाले होकर इसी सुख का कथन करो ॥२॥

गुरमति चाल निहचल नही डोलै ।।
गुरमति साचि सहजि हरि बोलै ।।
पीवै अंमृतु ततु विरोलै ।।३।।

गुरु द्वारा (दिखाई गई) परम्परा-रीति में (सच्चा साधक) निश्चल रहता है। (वहाँ से) वह (तनिक भी) नहीं डोलता। गुरु की शिक्षा द्वारा सत्य में स्थित होकर सहज भाव से हरि का उच्चारण करता है। वह तत्व को मथ कर अमृत का पान करता है (अर्थात असलियत की छानबीन करता है।) ॥३॥

सतिगुरु देखिआ दीखिआ लीनी ।।
मनु तनु अरपिओ अंतरगति कीनी ।।
गति मिति पाई आतमु चीनी ।।४।।

जिसने सत्गुरु को देखकर उससे दीक्षा ले ली और अपना तन मन अर्पित कर (उस दीक्षा को) हृदयङ्गम कर लिया, उसने 'उसकी' गति की मिति (अर्थात परम गति) प्राप्त कर ली और अपने आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लिया ॥४॥

भोजनु नामु निरंजन सारु ।।
परम हंसु सचु जोति अपार ।।
जह देखउ तह एकंकारु ।।५।।

निरजन हरि का श्रेष्ठ नाम ही (उत्तम) भोजन है। उस गुरमुख रूप परमहस को सत्य परमेश्वर की ज्योति दीखती है। मैं जहाँ देखता हूँ, वहाँ एकंकार (परमात्मा ही दिखाई पड़ता) है ॥५॥

रहै निरालमु एका सचु करणी ।।
परम पदु पाइआ सेवा गुर चरणी ।।
मन ते मनु मानिआ चूकी अहं
भ्रमणी ।।६।।

(वह गुरमुख) निर्लेप रहता है और केवल एक सत्य ही उसकी करनी है। गुरु के चरणो की सेवा द्वारा परम पद (मोक्ष) प्राप्त कर लिया गया। मन से ही मन मान गया है भाव अन्दर से ही सान्त्वना (तसल्ली) हो गई है और अहकार करके जो भटकना लगी थी वह भी निवृत हो गई ॥६॥

इन बिधि कउणु कउणु नही
तारिआ ।।
हरि जसि संत भगत निसतारिआ ।।
प्रभ पाए हम अवरु न भारिआ ।।
७।।

इस विधि से कौन-कौन (इस संसार से) नही तर गए? हरि के यश का गुणगान करके सन्तो और भक्तों का निस्तार हो गया। हमने प्रभु को पा लिया है और अब औरो को नहीं खोजते ॥७॥

साच महलि गुरि अलखु लखाइआ
निहचल महलु नही छाइआ
माइआ ।।
साचि संतोखे भरमु चुकाइआ ।।८।।

गुरु के सच्चे महल में (पवित्र अन्त:करण से) अलक्ष्य परमात्मा का दर्शन करा दिया। 'उसका' महल निश्चल है, इसमें माया की छाया (लेशमात्र भी) नही है। सच्चे सन्तोष से (अज्ञान जनित) भ्रम समाप्त हो गया ॥८॥

जिन कै मनि वसिआ सचु सोई ॥
तिन की संगति गुरमुखि होई ॥
नानक साचि नामि मलु खोई ॥९॥१५॥

जिसके मन में सत्य नारायण हरि निवास करता है, उसकी संगति में पड़कर मनमुख गुरमुख हो जाता है। हे नानक! सच्चे नाम से मल का नाश हो जाता है ॥९॥१५॥

गउड़ी महला १॥

"राम नाम जपने वालों के दर्शन से सुख प्राप्त होता है।"

रामि नामि चितु रापै जा का ॥
उपजंपि दरसनु कीजै ता का ॥१॥

जिसका चित्त राम नाम में रंगा है, सूर्योदय होते ही उसका दर्शन करना चाहिए ॥१॥

राम न जपहु अभागु तुमारा ॥
जुगि जुगि दाता प्रभु रामु हमारा ॥१॥रहाउ॥

यदि तुम राम नाम नहीं जपते हो तो यह तुम्हारा दुर्भाग्य है। हमारा प्रभु राम युग-युगान्तरों से दाता रहा है ॥१॥रहाउ॥

गुरमति रामु जपै जनु पूरा ॥
तितु घट अनहत बाजे तूरा ॥२॥

जो गुरु की शिक्षा द्वारा राम को जपता है, वह पूर्ण (भक्त) है और उसके घट में (निरन्तर) अनाहत की तुरही बजती है (तुरही – एक प्रकार का बाजा है जो फूककर बजाया जाता है, यह आगे से चौड़ा और मुख के पास से पतला होता है।) ॥२॥

जो जन राम भगति हरि पिआरि ॥
से प्रभि राखे किरपा धारि ॥३॥

जो (भक्त) जन राम की भक्ति तथा हरि के प्रेम में (अनुरक्त) हैं, प्रभु (अपनी) कृपा करके उनकी रक्षा करता है ॥३॥

जिन कै हिरदै हरि हरि सोई ॥
तिन का दरसु परसि सुखु होई ॥४॥

जिनके हृदय में 'वह' हरि है, उनके दर्शन और सेवा से (सदा) सुख प्राप्त होता है ॥४॥

सरब जीआ महि एको रवै ॥
मनमुखि अहंकारी फिरि जूनी भवै ॥५॥

सभी प्राणियों में एक (हरि ही) रम रहा है, किन्तु मनमुख और अहंकारी (व्यक्ति इस तथ्य को न जानकर और अहंभाव में निमग्न होकर) बार-बार (अनेक) योनियों में भटकता है ॥५॥

सो बूझै जो सतिगुरु पाए ॥
हउमै मारे गुर सबदे पाए ॥६॥

जिसे सतगुरु की प्राप्ति होती है, वही (इस तथ्य को) जानता है। गुरु के शब्द द्वारा जो अहंकार को मारता है, वही 'उसको' पाता है ॥६॥

अरध उरध की संधि किउ जानै ॥
गुरमुखि संधि मिलै मनु मानै ॥७॥

नीचे और ऊपर की संधि किस प्रकार जानी जावे ? (अर्थात् जीव और परमात्मा के मिलाप का ज्ञान कैसे हो ?) (हाँ) गुरु की शिक्षा द्वारा ही यह संधि मिलती है (अर्थात् जीवात्मा-परमात्मा का मिलन होता है), जिसके फलस्वरूप मन शान्त हो जाता है ॥७॥

हम पापी निरगुण कउ
गुणु करीऐ ॥
प्रभ होइ दइआलु
नानक जन तरीऐ ॥८॥१६॥

(हे प्रभु !) हम जैसे पापियों एव गुणविहीन को गुणी बना दो। हे प्रभु ! यदि तुम दयालु हो जाओगे तो तुम्हारा दास नानक तर जायेगा ॥८॥१६॥

सोलह असटपदीआ
गुआरेरी गउड़ी कीआ ॥

सोलह अष्टपदिआं गौड़ी गुआरेरी की (महले पहिले की समाप्त हुई) ॥

गउड़ी बैरागणि महला १॥

"हे दीन दयालु ! मुझ शरणागत की रक्षा करो।"

जिउ गाई कउ गोइली
राखहि करि सारा ॥
अहिनिसि पालहि राखि लेहि
आतम सुखु धारा ॥१॥

जिस प्रकार ग्वाला (चरवाहा) गायो को खोज खबर लेकर उनकी रक्षा करता है, उसी प्रकार परमात्मा भी जीवो का पालन (सभाल) करता है, रक्षा करता है और आत्मिक सुख प्रदान करता है ॥१॥

इत उत राखहु दीन दइआला ॥
तउ सरणागति नदरि निहाला ॥
१॥रहाउ॥

हे दीन दयालु ! (तू मेरी) यहाँ-वहाँ (इस लोक में, परलोक में) रक्षा कर। (हे प्रभु !) जो तेरी शरण में आता है, वह तेरी कृपा-दृष्टि से धन्य (कृतार्थ) हो जाता है ॥१॥रहाउ॥

जह देखउ तह रवि रहे
रखु राखनहारा ॥
तूं दाता भुगता तूं है
तूं प्राण अधारा ॥२॥

मैं जहाँ देखता हूँ, वहीं तू रम रहा है। हे रक्षा करने वाले (प्रभु) ! तू मेरी रक्षा कर। (हे प्रभु !) तू ही दाता है, तू ही भोक्ता है और तू ही (मेरे) प्राणों का आधार है ॥२॥

किरतु पइआ अध ऊरधी
बिनु गिआन बीचारा ॥
बिनु उपमा जगदीस की
बिनसै न अंधिआरा ॥३॥

बिना ज्ञान और विचार के अपने किये कर्मों के अनुसार (जीव) ऊँचे-नीचे पड़ता है (अर्थात् स्वर्ग और नरक में पड़ता है)। बिना जगदीश प्रभु की स्तुति किये (अज्ञान का) अंधकार नष्ट नहीं होता ॥३॥

जगु बिनसत हम देखिआ
लोभे अहंकारा ॥
गुर सेवा प्रभु पाइआ
सचु मुकति दुआरा ॥४॥

लोभ और अहंकार में हमने जगत को नष्ट होते हुए देखा है। गुरु की सेवा द्वारा प्रभु तथा मोक्ष का सच्चा द्वार प्राप्त कर लिया गया है ॥४॥

निज घरि महलु अपार को
अपरंपरु सोई ॥
बिनु सबदै थिरु को नही
बूझै सुखु होई ॥५॥

'उस' अपार हरि का महल निज घर (आत्मस्वरूप) में है। 'वह' सर्वोपरि है। बिना गुरु के शब्द के कोई भी स्थिर नहीं है। उसी को समझने से (वास्तविक) सुख होता है ॥५॥

किआ लै आइआ ले जाइ किआ
फासहि जम जाला ॥
डोलु बधा कसि जेवरी
आकासि पताला ॥६॥

(जीव संसार में) क्या लेकर आया है और जब यम के जाल में फंसता है, तो क्या लेकर जायेगा। कस कर बाँधी गई रस्सी का डोल (कुएँ में) जैसे जैसे आकाश में (ऊपर) जाता है और कभी पाताल में (नीचे) जाता है, उसी भाँति यह जीव भी माया की रस्सी से बँधा है। शुभ कर्मों से स्वर्ग और मन्द कर्मों से नरक की ओर जाता है। इस प्रकार आवागमन का चक्र निरन्तर चलता रहता है ॥६॥

गुरमति नामु न विसरै
सहजे पति पाईऐ ॥
अंतरि सबदु निधानु है
मिलि आपु गवाईऐ ॥७॥

गुरु की शिक्षा द्वारा (हरि का) नाम नही भूलता और स्वा-भाविक ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती है अथवा स्वाभाविक ही पति-परमेश्वर प्राप्त होता है। भीतर ही (गुरु के) शब्द का भण्डार (हरि) है, आपा (अभिमान) को गँवाकर 'उससे' मिलो ॥७॥

नदरि करे प्रभु आपणी
गुण अंकि समावै ॥
नानक मेलु न चूकई
लाहा सचु पावै ॥८॥१॥१७॥

जिसके ऊपर प्रभु कृपा-दृष्टि करता है, वह अपने गुणों सहित 'उसकी' गोदी में समा जाता है। हे नानक ! यह मिलाप (फिर) समाप्त नही होता क्योकि, यह सयोग अटूट है और इस प्रकार वह सच्चा लाभ पा जाता है ॥८॥१॥१७॥

गउड़ी महला १॥

"बिना गुरु के अन्धकार है।"

गुर परसादी बूझि ले
तउ होइ निबेरा ॥
घरि घरि नामु निरंजना
सो ठाकुरु मेरा ॥१॥

यदि कोई गुरु की कृपा से परमात्मा को समझ ले, तभी झगड़ा समाप्त होता है। जो नाम निरजन घर-घर में (प्रत्येक शरीर में व्याप्त हो रहा) है, वही मेरा ठाकुर है ॥१॥

बिनु गुर सबद न छूटीऐ
देखहु वीचारा ॥
जे लख करम कमावही
बिनु गुर अंधिआरा ॥१॥रहाउ॥

बिना गुरु के शब्द (पर आचरण करने) से कोई भी मुक्त नही होता, इसे विचार करके देख लो। बिना गुरु के यदि लाखों शुभ कर्म भी किए जायँ, फिर भी अन्धकार ही (बना रहता) है ॥१॥ रहाउ॥

अंधे अकली बाहरे
किआ तिन सिउ कहीऐ ॥
बिनु गुर पंथु न सूझई
कितु बिधि निरबहीऐ ॥२॥

जो अन्धे हैं, अकल से रहित हैं, उनसे क्या कहा जाय ? बिना गुरु के हरि की प्राप्ति का मार्ग नही सुझाई पड़ता, किस विधि से निर्वाह हो ?॥२॥

खोटे कउ खरा कहै
खरे सार न जाणै ॥
अंधे का नाउ पारखू
कली काल विडाणै ॥३॥

खोटी (वस्तु) को तो खरी कहा जाता है और खरी (वस्तु) का पता ही नही है। कलिकाल में यह आश्चर्यजनक बात है कि अन्धे (अज्ञानी) को लोग पारखी (गुणज्ञ) कहते हैं ॥३॥

सूते कउ जागतु कहै
जागत कउ सूता ।।
जीवत कउ मूआ कहै
मूए नही रोता ।।४।।

(कलिकाल की आश्चर्यजनक बात यह है कि) जो मायावश मे सोया है, उसे लोग जागता कहते हैं और जो ज्ञान के प्रकाश मे जग रहा है, उसे सोता हुआ कहते है, जो जीवित है उसे मृतक कहते हैं और जो मर चुका है, उसके निमित्त नही रोते हैं ।।४।।

आवत कउ जाता कहै
जाते कउ आइआ ।।
पर की कउ अपुनी कहै
अपुनो नही भाइआ ।।५।।

जो परमात्मा के प्रेम की ओर आया है उसे गया गुजरा कहते हैं और जो 'उससे' विमुख हो गया है उसे आया हुआ कहते हैं। (मायिक पदार्थों जैसी) परायी वस्तु को अपनी कहते हैं और जो (आत्मिक वस्तु) हरि नाम है, वह अच्छा ही नहीं लगता ।।५।।

मीठे कउ कउड़ा कहै
कड़ूए कउ मीठा ।।
राते की निंदा करहि
ऐसा कलि महि डीठा ।।६।।

(हरिनाम रस) जो मीठा है उसे तो लोग कड़ुवा कहते हैं और (मायिक पदार्थों के भोग) जो वास्तव में कड़ुवे हैं, उन्हें मीठा कहते हैं। कलियुग में ऐसा ही देखा जाता है कि लोग प्रभु में अनुरक्त प्यारों की निन्दा करते हैं ।।६।।

चेरी की सेवा करहि
ठाकुरु नही दीसै ।।
पोखरु नीरु विरोलीऐ
माखनु नही रीसै ।।७।।

(कलियुगी जीव की बुद्धि ऐसी तो भ्रष्ट हुई है कि परमात्मा की) दासी—माया की तो सेवा करते हैं और (सच्चा) ठाकुर उन्हे दिखलाई नही देता। किन्तु जिस प्रकार पोखर का जल मथने से मक्खन नही निकलता (उसी प्रकार माया की सेवा से सच्चा सुख नही मिलता) ।।७।।

इसु पद जो अरथाइ लेइ
सो गुरू हमारा ।।
नानक चीनै आप कउ
सो अपर अपारा ।।८।।

इस पद का जो (व्यक्ति) अर्थ निकाल ले, वही हमारा गुरू है। हे नानक ! जो अपने आपको पहचान लेता है वह परे से परे अनन्त है ।।८।।

सभु आपे आपि वरतदा
आपे भरमाइआ ।।
गुर किरपा ते बूझीऐ
सभु ब्रहमु समाइआ ।।१।।२।।१८।।

प्रभु आप ही सब कुछ हैं और आप ही सब में विराजमान है। गुरु की कृपा से ही यह समझा जाता है कि सर्वत्र (जड़-चेतन में) ब्रह्म समाया हुआ (व्याप्त) है ।।१।।२।।१८।।

रागु गउड़ी गुआरेरी महला ३॥ असटपदीआ ॥

मन का सूतकु दूजा भाउ ॥
भरमे भूले आवउ जाउ ॥१॥

हे भाई ! मन को द्वैत-भाव का सूतक(अपवित्रता) लगा हुआ है जिससे भ्रम मे भूला हुआ जीव (योनियों मे) आता (जन्मता) और जाता (मरता) है ॥१॥ (आसा की वार की १८वी पौड़ी देखें)

मनमुखि सूतकु कबहि न जाइ ॥
जिचरु सबदि न भीजै
हरि कै नाइ ॥१॥रहाउ॥

मनमुख का सूतक कभी भी दूर नही होता, जब तक गुरु के शब्द द्वारा हरि के नाम में प्रेमपूर्वक रच नहीं जाता ॥१॥ रहाउ॥

सभो सूतकु जेता मोहु आकारु ॥
मरि मरि जमै वारो वार ॥२॥

जितना भी मोह का आकार है वह सब सूतक है, इसी मोह-रूपी सूतक के कारण जीव मर-मरकर बारम्बार जन्मता है ॥२॥

सूतकु अगनि पउणै पाणी माहि ॥
सूतकु भोजनु जेता किछु खाहि ॥
३॥

फिर अग्नि, वायु और पानी में भी सूतक है तथा जो भोजन हम खाते हैं उसमे भी सूतक है (क्योंकि इन सब में अनेक जीव-जन्तु जन्मते और मरते हैं) ॥३॥

सूतकि करम न पूजा होइ ॥
नामि रते मनु निरमलु होइ ॥४॥

पूजा आदि कर्मों में भी सूतक है (क्योंकि हिंसा होती है। फल-फूल आदि को पूजा में चढाते है)। किन्तु नाम में रत रहने से ही मन निर्मल होता है ॥४॥

सतिगुरु सेविऐ सूतकु जाइ ॥
मरै न जनमै कालु न खाइ ॥५॥

सत्गुरु की सेवा करने से द्वैतभाव रूपी सूतक दूर हो जाता है, फिर यह जीव न मरता है, न जन्मता है और न (इसे फिर) यमकाल ही खाता है ॥५॥

सासत सिंमृति सोधि देखहु कोइ ॥
बिनु नावै को मुकति न होइ ॥६॥

(हे भाई !) कोई भी शास्त्र, स्मृतियाँ खोजकर देख लें (सभी धर्म ग्रन्थ कहते हैं कि) बिना (हरि) नाम के कोई भी जीव मुक्त नहीं हो सकता ॥६॥

जुग चारे नामु उतमु सबदु बीचारि ॥
कलि महि गुरमुखि उतरसि पारि ॥७॥

चारों युगो में नाम और गुरु के शब्द पर विचार उत्तम है। कलियुग में गुरमुख (नाम जपकर भव-सागर से) पार होता है ॥७॥

साचा मरै न आवै जाइ ॥
नानक गुरमुखि रहै समाइ ॥८॥१॥

सच्चा परमात्मा न मरता है, न जाता है और न आता है। हे नानक ! गुरुदेव 'उस' सच्चे प्रभु में समाये रहते हैं ॥८॥१॥

गउड़ी महला ३॥

"गुरमुखो की महिमा।"

गुरमुखि सेवा प्रान अधारा ॥
हरि जीउ राखहु हिरदै उरधारा ॥
गुरमुखि सोभा साच दुआरा ॥१॥

गुरमुख प्राण आधार परमात्मा की सेवा करते हैं और हरि जी को अपने हृदय मे धारण करके रखते हैं। गुरमुख सच्चे परमात्मा के द्वार पर शोभा प्राप्त करते हैं ॥१॥

पंडित हरि पड़ु तजहु विकारा ॥
गुरमुखि भउजलु उतरहु पारा ॥ १॥रहाउ॥

हे पडित जी ! विकारों का त्याग करके तू हरि (का नाम) पढ़ और गुरमुखों की संगति करके ससार-सागर से पार हो ॥१॥ रहाउ॥

गुरमुखि विचहु हउमै जाइ ॥
गुरमुखि मैलु न लागै आइ ॥
गुरमुखि नामु वसै मनि आइ ॥२॥

गुरुमुखो के हृदय से अहंकार चला जाता है। गुरमुखों को (पाप अथवा अविद्या की) मैल नही लगती। गुरमुखों के मन में नाम आकर बसता है॥२॥

गुरमुखि करम धरम सचि होई ॥
गुरमुखि अहंकारु जलाए दोई ॥
गुरमुखि नामि रते सुखु होई ॥३॥

(हे पंडित जी !) गुरमुखो के सारे कर्म-धर्म सच्च में ही होते हैं। गुरमुख अहकार और द्वैत-भाव को (नाम अग्नि से) जला देते हैं। जो गुरमुख नाम में अनुरक्त हैं सुख प्राप्त करते हैं ॥३॥

आपणा मनु परबोधहु बूझहु सोई ॥
लोक समझावहु सुणे न कोई ॥
गुरमुखि समझहु सदा सुखु होई ॥
४॥

(हे पंडित जी !) पहले अपने मन को समझाओ और फिर 'उस' परमात्मा की सूझ-बूझ रखो। मन को समझाने के बिना तू लोगों को समझता है इसलिए तुझे कोई भी नही सुनता। गुरु द्वारा इस भेद को समझ ले तभी तुम्हे सदा सुख (प्राप्त) होगा ॥४॥

मनमुखि डंफु बहुतु चतुराई ॥
जो किछु कमावै सु थाइ न पाई ॥
आवै जावै ठउर न काई ॥५॥

मनमुख पाखण्ड और बहुत चतुराई दिखाता है, किन्तु जो कुछ करता है, (वह प्रभु द्वार पर) स्वीकृत नहीं होता। वह चौरासी में आता (जन्मता) और जाता (मरता) है और कोई भी ठिकाना नहीं प्राप्त करता ॥५॥

मनमुख करम करे बहुतु अभिमाना॥
बग जिउ लाइ बहै नित धिआना॥
जमि पकड़िआ तब ही पछुताना॥
६॥

मनमुख कर्म भी करता है किन्तु बहुत अभिमान में वह बगुले की तरह ध्यान लगाकर बैठता है। जब यम उसे पकड़ता है तो वह पछताता है ॥६॥

बिनु सतिगुर सेवे मुकति न होई ॥
गुर परसादी मिलै हरि सोई ॥
गुरु दाता जुग चारे होई ॥७॥

बिना सत्गुरु की सेवा के मुक्ति नही होती। गुरु की कृपा से उसे 'वह' हरि मिलता है। (याद रहे) चारो युगो मे गुरु ही मुक्ति का दाता है॥ ७॥

गुरमुखि जाति पति नामे
वडिआई ॥
साइर की पुत्री बिदारि गवाई ॥
नानक बिनु नावै झूठी चतुराई ॥
८॥२॥

गुरमुख की जाति, पाति, सम्मान और बढाई नाम के कारण है। गुरमुखो ने समुद्र की पुत्री-माया को मार कर दूर कर दिया है। हे नानक ! नाम के बिना (मनमुखों की) चतुराई झूठी है ॥८॥२॥

गउड़ी म० ३॥

"नाम जपने और विचार करने से मुक्ति प्राप्त होती है।"

इसु जुग का धरमु पड़हु तुम भाई॥
पूरै गुरि सभ सोझी पाई ॥
ऐथै अगै हरि नामु सखाई ॥१॥

हे भाई ! कलियुग का धर्म (नाम) है वह तू पढ (अर्थात् जप और विचार कर)। पूर्ण गुरु द्वारा ही मैंने यह समझ प्राप्त की है कि इस लोक मे चाहे परलोक मे हरि का नाम ही (जीव का) सहायक है ॥१॥

रामु पड़हु मनि करहु बीचारु ॥
गुर परसादी मैलु उतारु ॥१॥
रहाउ॥

(हे भाई !) राम का नाम पढ़ो (अर्थात् जपो) और उस पर विचार करो और गुरु की कृपा से पाप रूपी मैल उतारो ॥१॥ रहाउ

वादि विरोधि न पाइआ जाइ ॥
मनु तनु फीका दूजै भाइ ॥
गुर कै सबदि सचि लिव लाइ ॥२॥

(हे भाई !) वाद-विवादों (झगड़ों-विरोधों) में पड़कर परमात्मा प्राप्त नहीं हो सकता। द्वैत-भाव के कारण मन और तन फीका होता है इसलिए गुरु के शब्द द्वारा सच्चे परमात्मा में लौ लगाओ ॥२॥

हउमै मैला इहु संसारा ॥
नित तीरथि नावै न जाइ अहंकारा ॥
बिनु गुर भेटे जमु करे खुआरा ॥३॥

(हे भाई !) इस संसार के लोग अहंकार के कारण मैले हैं। वे नित्य स्नान भी करते हैं किन्तु अहंकार फिर भी नहीं जाता। सत्गुरु को मिलने के बिना यम उन्हें खराब करता है ॥३॥

सो जनु साचा जि हउमै मारै ॥
गुर कै सबदि पंच संघारै ॥
आपि तरै सगले कुल तारै ॥४॥

(हे भाई !) जो जीव गुरु का उपदेश लेकर अहंकार को मारता है और पाँच कामादि विकारों को मारता है, वही सच्चा सेवक है। वह स्वयं तो पार होता है किन्तु अपना सारा कुल भी (भव-सागर से) तार देता है ॥४॥

माइआ मोहि नटि बाजी पाई ॥
मनमुख अंध रहे लपटाई ॥
गुरमुखि अलिपत रहे लिव लाई ॥
५॥

(हे भाई !) बाजीगर हरि ने माया के मोह के द्वारा यह बाजी पाई है (खेल रचाया है)। अन्धे मनमुख अज्ञानता के कारण इससे लिपटे हुए हैं। गुरमुख ही इस बाजी से निर्लेप हैं और बाजीगर से लौ लगाये रहते हैं ॥५॥

बहुते भेख करै भेखधारी ॥
अंतरि तिसना फिरै अहंकारी ॥
आपु न चीनै बाजी हारी ॥६॥

जो वेशधारी बहुत वेश धारण करता है और हृदय के अन्दर पदार्थों की तृष्णा रखता है और अहंकार में फिरता है वह अपने स्वरूप को नहीं पहचानता और जीवन रूपी बाजी हार कर जाता है ॥६॥

कापड़ पहिरि करे चतुराई ॥
माइआ मोहि अति भरमि भुलाई ॥
बिनु गुर सेवे बहुतु दुखु पाई ॥७॥

मनमुख सुन्दर कपड़े पहन कर चतुराई (दिखावा) करता है, वह अधिक भ्रम के कारण माया के मोह में भ्रमित है। बिना गुरु की सेवा के वह बहुत दुःख प्राप्त करता है ॥७॥

नामि रते सदा बैरागी ॥
गृही अंतरि साचि लिव लागी ॥
नानक सतिगुरु सेवहि से वडभागी
॥८॥३॥

जो (नामी के) नाम में अनुरक्त हैं वे सदा संसार में वैरागी होकर रहते हैं। गृहस्थ में रहते हुए भी सत्य में उनकी लौ लगी हुई होती है। हे नानक ! जो सत्गुरु की सेवा करते हैं वे ही भाग्य शाली हैं ॥८॥३॥

गउड़ी महला ३॥

"सत्गुरु की सहायता के बिना हरि दर्शन दुर्लभ है।"

ब्रहमा मूलु वेद अभिआसा ॥
तिस ते उपजे देव मोह पिआसा ॥
त्रै गुण भरमे नाही निजघरि वासा
॥१॥

ब्रह्मा, जो जगत का कारण है वह तो वेदों के अभ्यास में लगा हुआ है। उसमें से जो देवी देवताएँ उत्पन्न हुए हैं, उनको मोह और तृष्णा लगी हुई है। जो जीव तीन गुणो (रज्, तम्, सत्) में भटकते हैं, वे अपने स्वरूप में निवास नही करते (अर्थात् उनको आत्मिक आनन्द की सूझ-बूझ नहीं होती) ॥१॥

हम हरि हरि राखे
सतिगुरू मिलाइआ ॥
अनदिनु भगति हरिनामु दृड़ाइआ
॥१॥रहाउ॥

(हे भाई !)मुझे हरि ने (मोह, तृष्णा व त्रैगुणी माया से) बचा लिया है, क्योंकि मुझे हरि ने सत्गुरु से मिलाया है। मुझे सत्गुरु ने रात-दिन (आठ ही प्रहर) भक्ति और हरिनाम का उपदेश दृढ़ कराया है ॥१॥रहाउ॥

त्रै गुण बाणी ब्रहम जंजाला ॥
पड़ि वादु वखाणहि
सिरि मारे जमकाला ॥
ततु न चीनहि बंनहि पंड पराला ॥
२॥

ब्रह्मा की बाणी त्रिगुणात्मक झंझटो वाली है। पंडित वह पढ़ कर (भक्ति नहीं करते) झगड़े की बात करते हैं जिससे यमकाल उनके सिर पर चोट मारता है। वे तत्व स्वरूप को (सार वस्तु को) नहीं पहचानते इसलिये मानो वे भूसे की गट्ठर बांधते हैं (अर्थात् व्यर्थ ही काम करते हैं और समय गँवाते हैं) ॥२॥

मनमुख अगिआनि कुमारगि पाए ॥
हरिनामु बिसारिआ बहु करम
दृड़ाए ॥
भवजलि डूबे दूजै भाए ॥३॥

मनमुख, जो अज्ञानी है, वह दूसरों को भी कुमार्ग में डालता है। वह स्वयं तो हरि नाम को भूलता है किन्तु दूसरों को (यथार्थ वस्तु को छोड़कर) बहुत बुरे कर्म कराता है। वह द्वैत भाव के कारण संसार-सागर में डूबता है ॥३॥

माइआ का मुहताजु पंडितु कहावै ॥
बिखिआ राता बहुतु दुखु पावै ॥
जम का गलि जेवड़ा नित कालु
संतावै ॥४॥

(मनमुख) माया का दास है, किन्तु अपने आप को कहलाता है पंडित। वह विषयों में अनुरक्त है जिससे अधिक दु:ख पाता है। (मनमुख) के गले मे सदा यमकाल की रस्सी पड़ी है और काल उसे नित्य दु:खी करता है ॥४॥

गुरमुखि जमकालु नेड़ि न आवै ॥
हउमै दूजा सबदि जलावै ॥
नामे राते हरिगुण गावै ॥५॥

किन्तु जो गुरमुख है, उसके निकट काल नहीं आ सकता वह गुरु के उपदेश के कारण अहकार और द्वैत-भाव को जला देता है। वह नाम मे अनुरक्त है और (सदा) हरि के गुण गाता है ॥५॥

माइआ दासी भगता की कार
कमावै ॥
चरणी लागै ता महलु पावै ॥
सद ही निरमलु सहजि समावै ॥६॥

जिन भक्तों की दासी होकर माय सेवा करती है, उनके चरणों में लगने से जिज्ञासु (निज) स्वरूप को पाते हैं। वे सदैव पवित्र होते हैं और सहजावस्था मे अथवा शान्ति स्वरूप मे समा जाते हैं ॥६॥

हरि कथा सुणहि
से धनवंत दिसहि जुग माही ॥
तिन कउ सभि निवहि
अनदिनु पूज कराही ॥
सहजे गुण रवहि साचे मन माही
॥७॥

जो (जीव) हरि की कथा सुनते हैं वे इस कलियुग में धनी देखे जाते हैं। उनको सभी नमस्कार करते है और उनकी सभी रात-दिन पूजा भी करते हैं क्योंकि वे सहज ही सत्य स्वरूप हरि के गुणो को मन मे धारण करते हैं ॥७॥

पूरै सतिगुरि सबदु सुणाइआ ॥
त्रै गुण मेटे चउथै चितु लाइआ ॥
नानक हउमै मारि ब्रहम मिलाइआ
॥८॥४॥

जिसको पूर्ण सत्गुरु ने अपना उपदेश सुनाया है, उसने त्रिगुणातीत होकर चौथे—तुरियावस्था में चित्त लगाया है। हे नानक ! जिसने अहकार को मारा है, उसको ब्रह्म ने अपने साथ मिला लिया है ॥८॥४॥

गउड़ी महला ३॥

"सत्गुरु की सेवा से हौमै की निवृति।"

ब्रहमा बेदु पड़ै वादु वखाणै ॥
अंतरि तामसु आपु न पछाणै ॥
ता प्रभु पाए गुर सबदु वखाणै ॥१॥

हे भाई ! ब्राह्मण वेद पढ़ते हैं किन्तु वाद-विवाद करते हैं। उनके अन्तर्गत तमोगुण भाव क्रोध का प्रभाव है जिससे वे अपने स्वरूप को नही पहचानते। (हाँ) यदि वे भी गुरु से उपदेश लेकर उसका आचरण करें तो प्रभु को प्राप्त कर लेंगे॥१॥

गुर सेवा करउ
फिरि कालु न खाइ ॥
मनमुख खाधे दूजै भाइ ॥१॥रहाउ॥

(हे भाई !) गुरु की सेवा करो तो काल नही खायेगा (अर्थात् मुक्त हो जाओगे)। (देखो) मनमुख द्वैत-भाव के कारण काल के द्वारा (नित्य) खाये जा रहे है॥१॥रहाउ॥

गुरमुखि प्राणी अपराधी सीधे ॥
गुर कै सबदि अंतरि सहजि रीधे ॥
मेरा प्रभु पाइआ गुर कै सबदि
सीधे ॥२॥

(देखो) अपराधी प्राणी भी गुरु द्वारा स्वीकृत हो गये हैं। गुरु के शब्द द्वारा वे अन्तर्गत ही ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। (हे भाई !) जो गुरु के उपदेश द्वारा गुरु के सन्मुख होते हैं, वे ही मेरे प्रभु को प्राप्त करते हैं॥२॥

सतिगुरि मेले प्रभि आपि मिलाए ॥
मेरे प्रभ साचे कै मनि भाए ॥
हरिगुणि गावहि सहजि सुभाए ॥३॥

(हे भाई !) जिनको सत्गुरु ने अपने साथ मिलाया है, उनको प्रभु अपने साथ मिलाता है। फिर वे मेरे सच्चे प्रभु को मन से भाते हैं और सहज स्वभाव से हरि के गुण गाते है॥३॥

बिनु गुर साचे भरमि भुलाए ॥
मनमुख अंधे सदा बिखु खाए ॥
जम डंडु सहहि सदा दुखु पाए ॥
४॥

(हे भाई !) जो गुरु के बिना हैं, उन्हे सच्चा परमात्मा भ्रमों में भुलाता है। मनमुख अन्धे (अज्ञानी) हैं इसलिए सदा विषयों रूपी विष ही खाते हैं, अतएव वे यम की पीडा सहन करते हैं और सदैव दुःख पाते हैं॥४॥

जमूआ न जोहै हरि की सरणाई ॥
हउमै मारि सचि लिव लाई ॥
सदा रहै हरिनामि लिव लाई ॥५॥

किन्तु जो अपने अहंकार को मारकर सच्चे परमात्मा के साथ लौ लगाते हैं और हरि की शरण लेते हैं उनको यम देख भी नही सकता, क्योकि वे सदा हरि नाम में लौ लगाये रहते हैं॥५॥

सतिगुरु सेवहि से जन निरमल पविता ॥
मन सिउ मनु मिलाइ सभु जगु जीता ॥
इन बिधि कुसलु तेरै मेरे मीता ॥६॥

(हे भाई !) जो सत्गुरु की सेवा करते हैं, वे निर्मल व पवित्र हैं। वे गुरु के मन से अपना मन मिलाकर सारे जगत को जीत लेते हैं। हे मित्र ! इस प्रकार तुझे भी आनन्द (प्राप्त) होगा (यदि अपने सत्गुरु की सेवा करके गुरु के मन से अपना मन मिलाओगे।) ॥६॥

सतिगुरु सेवे सो फलु पाए ॥
हिरदै नामु विचहु आपु गवाए ॥
अनहद बाणी सबदु वजाए ॥७॥

(हे भाई !) जो सत्गुरु की सेवा करता है, वह मुक्ति रूपी फल प्राप्त करता है। वह अपने हृदय मे नाम बसाकर अपने हृदय से आपा भाव की निवृत्ति करता है और वह ब्रह्म, जो अनहद है 'उसे' अपने बाणी द्वारा प्रकट करता है अथवा अनहद बाणी जो शब्द रूप है उसे उच्चारण करता है ॥७॥

सतिगुर ते कवनु कवनु न सीधो मेरे भाई ॥
भगती सीधे दरि सोभा पाई ॥
नानक रामनामि बडिआई ॥८॥८॥

हे मेरे भाई ! सत्गुरु द्वारा कौन-कौन पवित्र अथवा मुक्त नही हुए ? जो जीव गुरु और परमेश्वर की भक्ति मे सम्मुख हैं, उन्होंने हरि के दरबार में शोभा प्राप्त की है। हे नानक ! राम के नाम जपने से ऐसी बडाई प्राप्त करते हैं अथवा यह सब राम-नाम की ही बड़ाई है ॥८॥८॥

गउड़ी महला ३॥

"राम नाम के बिना भ्रम दूर नही होता।"

त्रै गुण वखाणै भरमु न जाइ ॥
बंधन न तूटहि मुकति न पाइ ॥
मुकति दाता सतिगुरु जुग माहि ॥१॥

(हे भाई !) त्रिगुणात्मक माया के प्रसंगों का केवलमात्र व्याख्यान करने से भ्रम दूर नही होता। न उनके बन्धन टूटते हैं और न मुक्ति ही प्राप्त होती है। चारो युगो में मुक्ति का दाता तो (केवल) सत्गुरु ही है ॥१॥

मनमुखि प्राणी भरमु गवाइ ॥
सहज धुनि उपजै हरि लिव लाइ ॥१॥रहाउ॥

हे प्राणी ! तू गुरु के द्वारा अपना भ्रम दूर कर। तू हरि मे लौ लगा तो तुमसे सहज ध्वनि उत्पन्न हो(भाव ज्ञान की ध्वनि प्रकट होने से आत्मिक नाम की प्राप्ति) ॥१॥रहाउ॥

त्रै गुण काले की सिरि कारा ॥
नामु न चेतहि उपावणहारा ॥
मरि जंमहि फिरि वारो वारा ॥
२॥

(हे भाई !) जो तीन गुणों वाले हैं, उनके सिर पर काल की रेखा है। वे उपायनहार प्रभु के नाम का चिन्तन नहीं करते; जिससे वे बार-बार जन्मते मरते रहते हैं ॥२॥

अंधे गुरू ते भरमु न जाई ॥
मूलु छोडि लागे दूजै भाई ॥
बिखु का माता बिखु माहि समाई
॥३॥

अन्धे अज्ञानी गुरु के मिलने पर भ्रम दूर नहीं होता। वे मूल प्रभु को छोडकर द्वैत भाव में लगे हुए हैं। वे विषयों का रस भोगकर विषयो में ही समाये हुए हैं ॥३॥

माइआ करि मूलु जंत्र भरमाए ॥
हरि जीउ विसरिआ दूजै भाए ॥
जिसु नदरि करे सो परम गति पाए
॥४॥

हे भाई ! वे माया को अपना मूल समझकर (मन्त्रों और) जन्त्रों मे भ्रमित हो जाते हैं। उनको द्वैत-भाव के कारण हरि विस्मृत हो गया है। किन्तु जिन पर हरि कृपा-दृष्टि करता है, वे ही परमगति (मोक्ष) प्राप्त करते हैं ॥४॥

अंतरि साचु बाहरि साचु वरताए ॥
साचु न छपै जे को रखै छपाए ॥
गिआनी बूझहि सहजि सुभाए ॥५॥

(हे भाई !) जो भीतर से सच्चे हैं वे बाहर से भी सच्च का ही व्यवहार करते हैं (अर्थात् सच्चा उपदेश करते हैं)। यदि कोई सत्य को छुपाकर रखते हैं, तो भी सच्च छुपने वाला नहीं है। ज्ञानी सहज स्वभाव से यह सब कुछ समझते हैं ॥५॥

गुरमुखि साचि रहिआ लिवलाए ॥
हउमै माइआ सबदि जलाए ॥
मेरा प्रभु साचा मेलि मिलाए ॥६॥

(हे भाई !) जिन गुरुमुखों ने सच्चे परमात्मा से लौ लगाई है और माया का अहंकार गुरु के उपदेश द्वारा जला दिया है, उन्हें मेरा सच्चा प्रभु अपने साथ मिला लेता है ॥६॥

सतिगुरु दाता सबदु सुणाए ॥
धावतु राखै ठाकि रहाए ॥
पूरे गुर ते सोझी पाए ॥७॥

(हे भाई !) जिनको सत्गुरु दाता उपदेश सुनाता है वे अपने दौडते मन को (विषयों से) रोककर रखते हैं और पूर्ण गुरु से सूझ-बूझ प्राप्त करते हैं ॥७॥

आपे करता स्रिसटि सिरजि जिनि
गोई ॥
तिसु बिनु दूजा अवरु न कोई ॥
नानक गुरमुखि बूझै कोई ॥८॥६॥

(हे भाई !) जिस कर्ता ने स्वयं सृष्टि सृजन की है और स्वयं ही प्रलय (नाश) करता है, उस प्रभु के बिना दूसरा कोई नहीं है। हे नानक ! कोई विरला ही गुरमुख इस रहस्य को समझता है ॥८॥६॥

गउड़ी महला ३ ॥

"नाम अमूल्य पदार्थ है।"

नामु अमोलकु गुरमुखि पावै ॥
नामो सेवे नामि सहजि समावै ॥
अंम्रितु नामु रसना नित गावै ॥
जिस नो क्रिपा करे सो हरिरसु पावै ॥१॥

नाम, जो अमूल्य पदार्थ है, उसे गुरमुख ही प्राप्त करता है। वह नाम की सेवा करके नामी परमात्मा में सहज स्वभाव समा जाता है। वह रसना से परमात्मा का अमृत नाम नित्य गाता है। किन्तु जिस पर प्रभु कृपा करता है, वही हरि का रस पाता है ॥१॥

अनदिनु हिरदै जपउ जगदीसा ॥
गुरमुखि पावउ परम पदु सूखा ॥१॥रहाउ॥

(हे भाई!) रात-दिन हृदय में जगदीश्वर को जपो और गुरु द्वारा मुक्ति रूपी परम पद पाओ, जिसमें ही सुख है ॥१॥ रहाउ ॥

हिरदै सूखु भइआ परगासु ॥
गुरमुखि गावहि सचु गुणतासु ॥
दासनिदास नित होवहि दासु ॥
ग्रिह कुटंब महि सदा उदासु ॥२॥

(हे भाई!) गुरमुखो के हृदय में आत्मिक आनन्द रूपी सुख प्रकट होता है। गुरमुख निश्चय करके गुणो के समुद्र परमात्मा को गाते हैं। गुरमुख, जो परमात्मा के दासों के दास हैं, उनके भी सदैव दास होते हैं। वे ग्रहस्थ और कुटुम्ब मे सदैव उदास (रहते) हैं (अर्थात् उनकी किसी सम्बन्धी के प्रति आसक्ति नही होती) उनका प्यार एक मात्र हरि से ही होता है) ॥२॥

जीवन मुकतु गुरमुखि को होई ॥
परम पदारथु पावै सोई ॥
त्रै गुण मेटे निरमलु होई ॥
सहजे साचि मिलै प्रभु सोई ॥३॥

(हे भाई!) जो गुरमुख जीवन-मुक्त है, वह परम पदार्थ (मुक्ति) को प्राप्त करता है। गुरमुख तीन गुणो को दूर करके पवित्र होना है और वह सत्य स्वरूप परमात्मा से सहज स्वभाव ही मिलता है ॥३॥

मोह कुटंब सिउ प्रीति न होइ ॥
जा हिरदै वसिआ सचु सोइ ॥
गुरमुखि मनु बेधिआ असथिरु होइ ॥
हुकमु पछाणै बूझै सचु सोइ ॥४॥

जब सत्य स्वरूप परमात्मा गुरमुख के हृदय में आकर बसता है, तब उसे कुटुम्ब के प्रति प्रीति नही होती (अर्थात वह सब को विनश्वर समझ कर एक सत्य स्वरूप से ही सच्ची प्रीति लगाता है)। गुरमुख का मन परमेश्वर से मिला हुआ है और उसका चित्त स्थिर है। वह परमेश्वर के हुक्म को समझता है और सत्य स्वरूप हरि को जानता है ॥४॥

तूं करता मै अवरु न कोइ ॥
तुधु सेवी तुझ ते पति होइ ॥
किरपा करहि गावा प्रभु सोइ ॥
नाम रतनु सभ जग महि लोइ ॥५॥

(गुरमुख परमेश्वर के प्रति नित्य यही प्रार्थना करता है कि हे महाराज !) तू ही कर्तार है। मैं और को नहीं पहचानता। (काश !) मैं तुम्हारी ही सेवा करूँ क्योंकि तुम्हारे फलस्वरूप ही मेरी प्रतिष्ठा रहती है। हे प्रभु ! मुझ पर यह कृपा करो कि मैं तेरी महिमा गाऊँ। (हे हरि !) तुम्हारा नाम रूपी रत्न सारे जगत में प्रकाश करने वाला है॥५॥

गुरमुखि बाणी मीठी लागी ॥
अंतरु बिगसै अनदिनु लिव लागी ॥
सहजे सचु मिलिआ परसादी ॥
सतिगुरु पाइआ पूरै वडभागी ॥६॥

गुरमुखों को गुरुओं के मुख से उच्चरित वाणी मीठी लगती है। उनका हृदय-कमल विकसित होता है और रात-दिन उनकी लौ प्रभु से लगी रहती है। जिन गुरमुखों ने पूर्ण भाग्य के कारण सत्गुरु प्राप्त किया है, उनको सब पर कृपा करने वाला सच्चा परमेश्वर सहज स्वभाव ही मिलता है॥६॥

हउमै ममता दुरमति दुख नासु ॥
जब हिरदै राम नामु गुणतासु ॥
गुरमुखि बुधि प्रगटी प्रभ जासु ॥
जब हिरदै रविआ चरण निवासु ॥७॥

(हे भाई !) जब हृदय में राम-नाम, जो गुणों का समुद्र है, प्राप्त होता है, तब अहंता, ममता, दुर्बुद्धि और दुख नाश हो जाते हैं। जब हृदय में हरि, जो सर्व व्यापक हैं, के चरणों का निवास होता है, तब गुरु द्वारा प्रभु का यश उच्चारण करने वाली बुद्धि प्रकट होती है॥७॥

जिसु नामु देइ सोई जनु पाए ॥
गुरमुखि मेले आपु गवाए ॥
हिरदै साचा नामु वसाए ॥
नानक सहजे साचि समाए ॥८॥७॥

(हे भाई !) जिसको सत्गुरु नाम देता है, वही दास हरि को प्राप्त करता है। जिसने गुरु के उपदेश द्वारा अपना आपा भाव निवृत किया है, उसे ही परमात्मा अपने साथ मिलाता है। हे नानक ! जिसने अपने हृदय में नाम को बसाया है, वही सहज स्वभाव सत्य स्वरूप परमात्मा में समा जाता है॥८॥७॥

गउड़ी महला ३॥

"सत्गुरु की सेवा से गोविन्द की प्राप्ति।"

मन ही मनु सवारिआ भै सहजि सुभाइ॥
सबदि मनु रंगिआ लिव लाइ ॥
निज घरि वसिआ प्रभ की रजाइ ॥१॥

हरि के भय द्वारा सहज ही मन ठीक हो गया। (मन से भाव जब मन को प्रबोध किया, वही मन अपने मूल तत्व की पहचान करके शुद्ध हो गया)। (कैसे ?) गुरु के शब्द द्वारा जब मन को (नाम-) रंग में रंग दिया, प्रभु से लौ लगा दी तथा प्रभु का हुकम माना तो अपने प्रभु के स्वरूप में बस गया (भाव प्रभु प्राप्त किया)॥१॥

सतिगुर सेविऐ जाइ अभिमानु ॥
गोविदु पाईऐ गुणी निधानु ॥१॥
रहाउ॥

(हे भाई !) सत्गुरु की (दास भावना से) सेवा करने से अभिमान चला जाता है और गोविन्द, जो गुणों का भण्डार है, प्राप्त होता है ॥१॥ रहाउ ॥

मनु बैरागी जा सबदि भउ खाइ॥
मेरा प्रभु निरमला सभतै रहिआ
समाइ ॥
गुर किरपा ते मिलै मिलाइ ॥२॥

(हे भाई !) जब यह मन गुरु के उपदेश द्वारा प्रभु का भय खाता है (अर्थात धारण करता है), तब वह बैरागी होता है (अर्थात सासारिक पदार्थों से निर्लिप्त रहता है)। वह समझता है कि मेरा प्रभु निर्मल है और सब में समाया हुआ है, किन्तु गुरु की कृपा मिलने पर ही परमात्मा मिलता है ॥२॥

हरि दासन को दासु सुखु पाए ॥
मेरा हरिप्रभु इन बिधि पाइआ
जाए ॥
हरि किरपा ते रामगुण गाए ॥३॥

(हे भाई !) जो हरि के दासों का भी दास है, वह सुख पाता है। मेरा प्रभु इस विधि से भाव दास भावना से ही प्राप्त होता है, किन्तु (याद रहे) हरि की कृपा से ही राम के गुण गाये जा सकते हैं ॥३॥

ध्रिगु बहु जीवणु
जितु हरिनामि न लगै पिआरु ॥
ध्रिगु सेज सुखाली
कामणि मोह गुबारु ॥
तिन सफलु जनमु जिन नामु अधारु
॥४॥

(हे भाई !) धिक्कार है उस अधिक जीने को, जिसमें हरि के नाम से प्यार नहो लगता। वह सुख रूपी शय्या धिक्कार योग्य है, जहाँ स्त्री के मोह का अन्धकार है। सफल जन्म तो उसका ही है, जिनको नाम का ही आधार है ॥४॥

ध्रिगु ध्रिगु ग्रिहु कुटंबु
जितु हरि प्रीति न होइ ॥
सोई हमारा मीतु
जो हरिगुण गावै सोइ ॥
हरि नाम बिना मै अवरु न कोइ
॥५॥

(हे भाई !) धिक्कार है उस घर को और धिक्कार है उस कुटुम्ब को, जिसके सम्बन्ध के कारण हरि के साथ प्रीति नही होती। मेरा तो मित्र वही है, जो हरि के गुण गाता है। मैं तो हरि के नाम के बिना अन्य किसी को भी नहीं पहचानता ॥५॥

सतिगुर तें हम मति पति पाई ॥
हरिनामु धिआइआ दूखु सगल मिटाई ॥
सदा अनंदु हरिनामि लिव लाई ॥६॥

(हे भाई !) सत्गुरु के फलस्वरूप मैंने यह अच्छी दशा और प्रतिष्ठा प्राप्त की है। गुरु के सम्बन्ध के कारण मैंने हरि के नाम का ध्यान किया है और हरिनाम के प्रताप के कारण मैंने अपने समस्त दुख निवृत किये हैं। मुझे सदैव आनन्द है, क्योंकि मैंने हरिनाम में लौ लगाई है ॥६॥

गुरि मिलिऐ हम कउ सरीर सुधि भई ॥
हउमै तृसना सभ अगनि बुझई ॥
बिनसे क्रोध खिमा गहि लई ॥७॥

(हे भाई !) सत्गुरु को मिलने से मुझे शरीर की सुध (चेतना) हुई (अर्थात् शरीर विनश्वर है, अत. उससे मोह नही रखना है); सत्गुरु को मिलने से अहकार नाश हुआ और तृष्णा रूपी अग्नि सारी बुझ गई। क्रोधादि रूपी विकार सब नाश हो गये और मैंने क्षमा (गुण को) ग्रहण कर ली ॥७॥

हरि आपे कृपा करे नामु देवै ॥
गुरमुखि रतनु को विरला लेवै ॥
नानक गुण गावै हरि अलख अभेवै ॥८॥८॥

(हे भाई !) जिस पर हरि स्वय कृपा करता है, उसे ही नाम रूपी रत्न देता है, किन्तु यह नाम रूपी रत्न गुरु के उपदेश द्वारा कोई विरला लेता है। हे नानक ! फिर वह गुरमुख अलक्ष्य और अनन्त हरि के गुण गाता है ॥८॥८॥

राग गौड़ी बैरागणि महला ३॥

सतिगुर ते जो मुहु फेरे ते वेमुख बुरे दिसंनि ॥
अनदिनु बधे मारीअनि फिरि वेला ना लहंनि ॥१॥

(हे भाई !) जो जीव अपने सत्गुरु से मुख फेर लेते हैं, वे विमुख हैं. (हाँ) वे बुरे देखने में आते हैं। वे रात-दिन बाँधकर मार खाते हैं (अर्थात अनेक दुख भोगते हैं)। वे फिर मनुष्य जन्म का समय प्राप्त नही करते (अर्थात वे नीच योनियो मे भटकते रहते हैं) ॥१॥

हरि हरि राखहु कृपा धारि ॥ सतसंगति मेलाइ प्रभ हरि हिरदै हरि गुण सारि ॥१॥रहाउ॥	हे हरि ! (अपनी) कृपा करके मुझे रख लो। हे प्रभु ! मुझे अपने सन्तजनो की सगति में मिलाओ, जिससे हे हरि ! मैं तुम्हारे गुणों को हृदय मे सभाल कर रखूँ अथवा याद करूँ ।।१।। रहाउ ।।
से भगत हरि भावदे जो गुरमुखि भाइ चलंनि ॥ आपु छोडि सेवा करनि जीवत मुए रहंनि ॥२॥	(हे भाई !) वे भक्त हरि जी को प्रिय हैं, जो गुरु के उपदेशानुसार चलते हैं। वे आपाभाव को छोडकर (गुरु की) सेवा करते हैं और जीते ही मरे रहते हैं (अर्थात अपने आपको कुछ भी नहीं समझते अथवा जचाते) ।।२।।
जिस दा पिंडु पराण है तिस की सिरि कार ॥ ओहु किउ मनहु विसारीऐ हरि रखीऐ हिरदै धारि ॥३॥	(हे भाई !) जिस प्रभु के ये शरीर और प्राण दिये हुए हैं, उसी की सारी दुनिया प्रजा है अथवा 'उसी' की सब के सिर ऊपर हुकम रूपी कार है। वे परमात्मा को मन से कैसे विस्मृत करेंगे ? वे हरि को हृदय मे धारण करके रखते हैं ।।३।।
नामि मिलिऐ पति पाईऐ नामि मंनिऐ सुखु होइ ॥ सतिगुर ते नामु पाईऐ करमि मिलै प्रभु सोइ ॥४॥	(हे भाई !) नाम प्राप्त होने से प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और नाम का मनन करने से सुख प्राप्त होता है, किन्तु सतगुरु से ही नाम प्राप्त होता है और प्रभु की कृपा से वह सतगुरु मिलता है ।।४।।
सतिगुर ते जो मुहु फेरे ओइ भ्रमदे ना टिकंनि ॥ धरति असमानु न झलई विचि विसटा पए पचंनि ॥५॥	(हे भाई !) जो अपने सत्गुरु से मुँह फेर लेते हैं (अर्थात विमुख होते हैं) वे विमुख जीव (ससार मे) भटकते हुए नही टिकते। धरती और आकाश भी ऐसे विमुखो को रखते नही (अर्थात उन पापियो का भार सहारन नही कर सकते)। वे विष्ठा मे कीड़े होकर दुःखी होते हैं ।।५।।
इहु जगु भरमि भुलाइआ मोह ठगउली पाइ ॥ जिना सतिगुरु भेटिआ तिन नेड़ि न भिटै माइ ॥६॥	(हे भाई !) यह जगत मोह रूपी ठगमूड़ी पाकर (खा कर) भ्रम मे भूला हुआ है, किन्तु जो सत्गुरु से मिले हैं, उनके निकट माया नहीं आती अथवा मोह की ठगमूड़ी पाने वाली माया उन्हें स्पर्श भी नही करती ।।६।।

सतिगुरु सेवनि से सोहणे
हउमै मैलु गवाइ ॥
सबदि रते से निरमले
चलहि सतिगुर भाइ ॥७॥

(हे भाई !) जो अहंकार की निवृति करके अपने सत्गुरु की सेवा करते हैं, वे शोभायमान हैं और जो जीव सत्गुरु की आज्ञा-नुसार चलते हैं, वे जीव पवित्र होकर शब्द (अर्थात ब्रह्म) में अनुरक्त रहते हैं ॥७॥

हरिप्रभ दाता एकु तूं
तूं आपे बखसि मिलाइ ॥
जनु नानकु सरणागती
जिउ भावै तिवै छडाइ ॥८॥१॥९॥

हे हरि ! हे प्रभु ! तू ही एक समर्थ दाता है। तू स्वयं ही पाप क्षमा करके हमें अपने साथ मिलाते हो। हे नानक ! मैं दास तुम्हारी शरण में आया हूँ (अब) जैसे आपको अच्छा लगे वैसे मुझे (संसार के बन्धनों से) छुड़ा दो ॥८॥१॥९॥

करहले

कुछ श्रद्दालु प्रेमियों ने 'करहले' का अर्थ 'उद्यम कर' अथवा "पुरुषार्थ कर" किया है। (कर-हले=कर=तू कर और हले-- हला=उद्यम, पुरुषार्थ।) इन दो अष्टपदियों में मेरे गुरुदेव मन को पर-बोध करते है कि "हे मन तू राम नाम जपने का बराबर उद्यम कर तो तुम्हारा छुटकारा हो।"

'करहल' (सिंधी 'करहो') 'ऊँट को कहते हैं।' 'जैसे करहलू बेलि रीझाई' (आसावरी) मदोन्मत्त ऊँट अर्थात मस्त ऊँट। यह शब्द मन से लगता है क्योकि मन, मस्त ऊँट जैसे हमारे कहने में नही चलता और जहाँ चाहता है, वहीं भटकता है। चौथी पातशाही, गुरु रामदास साहब ने इन अष्टपदीओं में मन को ऊँट सम्बोधन करके जगत को उपदेश दिया है। मन के किसी गुण या अवगुण को लेकर उस गुण-अवगुण वाले जीव-जन्तु के साथ सद्रश्यता देख कर गुरबाणी में कई स्थानों पर सम्बोधन किया गया है। यथा—
हिरन—'सचु कहै नानकु चेति रे मन मरहि हरणा कालिआ।' (म १, छन्त ५ पृष्ठ ४३९)
भंवरा—'सचु कहै नानकु चेति रे मन मरहि भंवरा कालिआ।' (म १, छन्त ५ पृष्ठ ४३९)
हाथी—'मनु मैगलु साकतु देवाना।' (म. १ अष्टपदीआ पृष्ठ ४१५)
बैल—'मनु करि बैलु सुरति करि पैडा गिआन गोनि भरि डारी॥ (भक्त कबीर पृष्ठ ११२३)

ऊँटों पर माल (सामग्री) लाद कर दूर देशो में फिरते हैं, साथ-साथ एक विशेष स्वर वाला गीत भी गाते हैं। यहाँ भटकने वाले प्रदेशी जीव को ऊँट कह कर उपदेश किया है, जो योनियों के मार्ग पर कर्मों कि बोझ उठाये सदा चलता ही रहता है। इस वाणी का नाम 'करहले' रखा है, जैसे 'पहरा' पद आने पर उस बाणी का नाम ही 'पहरे' रखा।

रागु गउड़ी पूरबी महला ४ करहले ॥

करहले मन परदेसीआ
किउ मिलीऐ हरि माइ ॥
गुरु भागि पूरै पाइआ
गलि मिलिआ पिआरा आइ ॥१॥

हे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन ! तू प्रदेशी है अर्थात तू अपने देश से बिछुड़ा हुआ है। (अतएव हे भाई !) तू कैसे हरि रूपी माता से मिलेगा ? (उत्तर :) जब मैंने पूर्ण भाग्यों के कारण अपने सत्गुरु को प्राप्त किया तो मेरा प्यारा प्रियतम आकर मुझे गले मिला ॥१॥

मन करहला सतिगुरु पुरखु धिआइ ॥१॥ रहाउ॥

हे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त प्रदेशी मन ! तू सत्गुरु पुरुष का ध्यान कर ॥१॥ रहाउ ॥

नोट - मेरे गुरुदेव मनुष्य के मन को प्रेम पूर्वक सम्बोधन करके समझाते हैं। कभी परदेशी, कभी विचारवान और कभी निर्मल, मित्र, प्यारे, सज्जन आदि शब्दों से बुलाते हैं। विचारवान या निर्मल कह कर उसे अपने निज स्वरूप की याद कराते हैं।

मन करहला वीचारीआ
हरि राम नाम धिआइ ॥
जिथै लेखा मंगीऐ
हरि आपे लए छडाइ ॥२॥

हे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन ! तू विचारशील बन कर हरि राम के नाम का ध्यान कर क्योंकि जहाँ पर तुम्हारे कर्मों का लेखा माँगा जायेगा, वहाँ हरि तुझे स्वयं छुड़ा लेगा ॥२॥

मन करहला अति निरमला
मलु लागी हउमै आइ ॥

हे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन ! तू किसी समय बहुत ही पवित्र था, किन्तु अब तुझे अहंकार की मैल आकर लगी है। प्रियतम प्रभु प्रत्यक्ष रूप से तेरे हृदय रूपी घर में उपस्थित है,

परतखि पिरु घरि नालि पिआरा
बिछुड़ि चोटा खाइ ।।३।।

किन्तु (अहम् की मैल के कारण) तू 'उस' से बिछुड़ कर चोटें खा रहा है ।।३।।

मन करहला मेरे प्रीतमा
हरि रिदै भालि भालाइ ।।
उपाइ कितै न लभई
गुरु हिरदै हरि देखाइ ।।४।।

हे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन मेरे प्यारे ! तू हरि को हृदय में ढूँढ कर देख। अन्य किसी उपाय से (हरि) उपलब्ध नहीं होता। वह तो केवल गुरु ही है जो (हरि को) हृदय मे दिखा देता है ।।४।।

मन करहला मेरे प्रीतमा
दिनु रैणि हरि लिव लाइ ।।
घरु जाइ पावहि रंग महली
गुरु मेले हरि मेलाइ ।।५।।

हे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मेरे प्रियतम मन ! तू दिन-रात हरि से लौ लगा ले। जब तू गुरु द्वारा हरि से मिलेगा तब तू घर की जगह पर (अर्थात हृदय में) हरि, जो अनेक रंगो और अनेक महलों वाला है, 'उसे' जाकर मिलेगा ।।५।।

मन करहला तूं मीतु मेरा
पाखंड लोभु तजाइ ।।
पाखंडि लोभी मारीऐ
जम डंडु देइ सजाइ ।।६।।

हे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन और मित्र ! तू पाखंड और लोभ का त्याग कर दे। पाखडी और लोभी जीव को मार पड़ती है और यम भी अपने डँडे से सजा देता है ।।६।।

मन करहला मेरे प्रान
तूं मैलु पाखंडु भरमु गवाइ ।।
हरि अंमृतसरु गुरि पूरिआ
मिलि संगती मलु लहि जाइ ।।७।।

हे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन ! तू मुझे प्राणो जैसा प्यारा है, तू पाखड और भ्रम की मैल अन्दर से गंवा दे (निकाल दे)। पूर्ण गुरु ने हरिनाम का अमृत-सरोवर भर रखा है। सत्संगति में मिल कर सरोवर में स्नान करने से अहंकार की मैल कट जाती है ।।७।।

मन करहला मेरे पिआरिआ
इक गुर की सिख सुणाइ ।।
इहु मोहु माइआ पसरिआ
अंति साथि न कोई जाइ ।।८।।

हे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन ! मेरे प्यारे, तू एक ही गुरु की शिक्षा सुन ले। यह मोह माया का फैलाव है, किन्तु अन्त में तुम्हारे साथ कोई भी (सहायता करने) नही जायेगा ।।८।।

मन करहला मेरे साजना
हरि खरचु लीआ पति पाइ ।।

हे मेरे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन ! मेरे सज्जन, तू हरि नाम रूपी खर्च अपने पास बाँध ले तो तू (प्रभु के दरबार में)

हरि दरगह पैनाइआ
हरि आपि लइआ गलि लाइ ॥९॥

आदर सम्मान प्राप्त करेगा। तुझे हरि के दरबार में प्रतिष्ठा की सिरोपाव पहनायी जायेगी और हरि स्वयं तुम्हें अपने गले से लगायेगा ॥९॥

मन करहला गुरि मंनिआ
गुरमुखि कार कमाइ ॥
गुर आगै करि जोदड़ी
जन नानक हरि मेलाइ ॥१०॥
॥१॥

हे मेरे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन ! जो गुरु को मानता है, वह गुरु के उपदेश द्वारा अपना काम करता है अथवा जिन्होंने गुरमुखों जैसे कार्य किये हैं, गुरु ने उन्हें अपना मान लिया है। हे नानक ! हे मेरे मन ! तू गुरु के आगे हाथ जोड़-जोड़कर विनय कर तो वह तुम्हें हरि के साथ मिला देगा ॥१०॥१॥

गउड़ी महला ४॥

"प्रदेशी मन को परबोध।"

मन करहला वीचारीआ
वीचारि देखु समालि ॥
बन फिरि थके बनवासीआ
पिरु गुरमति रिदै निहालि ॥१॥

हे मेरे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन ! तुम्हे जो विचारशक्ति है, वह विचार करके सभाल कर देख कि जो बनवासी बन में घूमते-फिरते हैं, वे थकते हैं, किन्तु अपना प्रियतम नहीं प्राप्त करते। तू गुरु की शिक्षा लेकर अपने हृदय में अपना प्रियतम देख (और प्राप्त कर) ॥१॥

मन करहला गुर गोविंदु समालि॥
१॥रहाउ॥

हे मेरे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन ! तू गुरु के द्वारा गोविन्द को सदैव याद कर ॥१॥ रहाउ ॥

मन करहला वीचारीआ
मनमुख फाथिआ महा जालि ॥
गुरमुखि प्राणी मुकतु है
हरि हरि नामु समालि ॥२॥

हे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन ! तू विचार शक्ति (से देख कि) मनमुख (मोह-माया के) महाजाल में फंसे हुए हैं, किन्तु गुरमुख प्राणी दु:ख-हर्ता हरि नाम को याद करके मुक्त होते हैं ॥२॥

मन करहला मेरे पिआरिआ
सतसंगति सतिगुरु भालि ॥
सतसंगति लगि हरि धिआईऐ
हरि हरि चलै तेरै नालि ॥ ॥३॥

हे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन ! हे प्यारे, तू (सतगुरु की) सत्सगति ढूँढ। तू (सतगुरुकी) सत्सगति में लग कर हरि का ध्यान कर तो 'वह' सर्व दु:ख हर्ता हरि तुम्हारे साथ (परलोक में) चलेगा ॥३॥

मन करहला वडभागीआ
हरि एक नदरि निहालि ॥
आपि छडाए छुटीऐ ॥
सतिगुर चरण समालि ॥४॥

हे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन ! तू भाग्यशाली होने का उद्यम कर अथवा भाग्यशाली जीव वे हैं, जिनको एक हरि अपनी कृपा दृष्टि से देखता है। यदि परमात्मा तुम्हे छुडाएगा तो तू छूटेगा। तू सत्गुरु के चरणो की सभाल कर (सेवा कर) ॥४॥

मन करहला मेरे पिआरिआ
विचि देही जोति समालि ॥
गुरि नउनिधि नामु विखालिआ ॥
हरि दाति करी दइआलि ॥५॥

हे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन ! मेरे प्यारे, ज्योति स्वरूप प्रभु जो तुम्हारी देही मे बसता है, 'उसे' तू याद कर। जिन पर हरि दयालु बख्शिश करता है, उनको गुरु नवनिधि रूपी नाम दिखाता है ॥५॥

मन करहला तूं चंचला
चतुराई छडि विकरालि ॥
हरि हरि नामु समालि तूं
हरि मुकति करे अंतकालि ॥६॥

हे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन ! तू चंचल है, तू चतुराई छोड दे। तू दुख हर्ता हरि नाम को याद कर क्योकि अन्तकाल मे हरि तुम्हे मुक्त करेगा ॥६॥

मन करहला वडभागीआ
तूं गिआनु रतनु समालि ॥
गुर गिआनु खड़गु हथि धारिआ
जमु मारिअड़ा जमकालि ॥७॥

हे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन ! तू उत्तम भाग्यों वाला होगा यदि तू ज्ञान का रत्न भीतर सभालेगा। जिन्होने गुरु द्वारा ज्ञान रूपी तलवार हाथ में धारण की है, उन्होने यमकाल को भी मार दिया है ॥७॥

अंतरि निधानु मन करहले
भ्रमि भवहि बाहरि भालि ॥
गुरु पुरखु पूरा भेटिआ
हरि सजणु लधड़ा नालि ॥८॥

हे ऊँट वृति वाले मदोन्मत मन ! तुम्हारे अन्तर्गत परमात्मा रूपी भण्डार है। तू भ्रम वश 'उसे' बाहर ढूंढ रहा है इसलिये भटक रहा है। जिन लोगो की पूर्ण गुरु से भेंट हो गई है, उन्होने हरि प्रियतम को अपने साथ ही (अपने हृदय मे) प्राप्त कर लिया है ॥८॥

रंगि रतड़े मन करहले
हरि रंगु सदा समालि ॥
हरि रंगु कदे न उतरै
गुर सेवा सबदु समालि ॥९॥

हे ऊँट वृति वाले मदोन्मत्त मन ! तू विषयो के प्रेम-रग में अनुरक्त हुआ पडा है, तू हरि के प्रेम-रग को सदा सभाल कर रख। गुरु की सेवा करने से और गुरु के उपदेश को याद करने से हरि का प्रेम-रंग कभी भी नही उतरता ॥९॥

हम पंखी मन करहले
हरि तरवरु पुरखु अकालि ॥
वडभागी गुरमुखि पाइआ
जन नानक नामु समालि ॥१०॥२॥

हे ऊँट वृति वाले मदमस्त मन ! हम जीव रूपी पक्षी हैं और हरि अकाल पुरुष वृक्ष है (अर्थात हरि हमारे जीवन का सहारा है)। हे (बाबा) नानक ! भाग्यशाली जीवों ने गुरु द्वारा नाम का स्मरण करके अकाल पुरुष रूपी वृक्ष को पाया है ॥१०॥२॥

रागु गउड़ी गुआरेरी महला ५ असटपदीआ ॥

"अभिमान रहित जीवन से सहजावस्था की प्राप्ति।"

जब इहु मन महि करत गुमाना ॥
तब इहु बावरु फिरत बिगाना ॥
जब इहु हूआ सगल की रीना ॥
ता ते रमईआ घटि घटि चीना
॥१॥

(हे भाई !) जब यह जीव (अज्ञानता के कारण) मन में अहंकार करता है, तब वह बावला होकर भगवंत् से बिछुड़ कर चौरासी में भटकता है। किन्तु जब यह (सन्तों की संगति से) सब जीवों की (चरण) धूलि होकर रहता है, तब वह रमईआ प्रभु को घट-घट मे (देखता; जानता है ॥१॥

सहज सुहेला फलु मसकीनी ॥
सतिगुर अपुनै मोहि दानु दीनी ॥
१॥रहाउ॥

(हे भाई !) (मेरा मन) सहज स्वभाव ही सुखी हुआ है, किन्तु यह फल गरीबी धारण करने से मिला है। गरीबी मुझे सत्गुरु ने दान करके दी है ॥१॥ रहाउ ॥

जब किस कउ इहु जानसि मंदा ॥
तब सगले इसु मेलहि फंदा ॥
मेर तेर जब इनहि चुकाई ॥
ता ते इसु संगि नही बैराई ॥२॥

(हे भाई !) जब यह जीव किसको बुरा समझता है, तब-सब इसके लिये जाल फैलाते हैं। किन्तु जब वह मेरा-पन तेरा-पन (अर्थात द्वैत-भाव) दूर करता है, तब उससे कोई भी वैर नही रखता ॥२॥

जब इनि अपुनी अपनी धारी ॥
तब इस कउ है मुसकलु भारी ॥
जब इनि करणैहारु पछाता ॥
तब इस नो नाही किछु ताता ॥३॥

(हे भाई !) जब यह जीव 'मेरी' 'मेरी' करता है (अर्थात ममता ग्रस्त होता है कि यह देही भी मेरी, यह धन भी मेरा), तब इसको अति कठिनाई आती है। किन्तु जब वह (अहंता और ममता छोड़कर) करनहार प्रभु को पहचानता है, तब उसे किसी प्रकार की जलन नहीं होती ॥३॥

जब इनि अपुनो बाधिओ मोहा ॥
आवै जाइ सदा जमि जोहा ॥
जब इस ते सभ बिनसे भरमा ॥
भेदु नाही है पारब्रहमा ॥४॥

(हे भाई !) जब इस जीव ने अपने आपको मोह में बान्ध लिया, तो वह आवागमन में आता (जन्मता) और जाता (मरता) है और यम ने भी उसकी ओर (नाश करने के विचार से) दृष्टि रखी हुई होती है। किन्तु जब इसके (मन से) सब भ्रम नाश हो जाते हैं, तब उसमें और परब्रह्म मे कोई भेद नही रहता ॥४॥

जब इनि किछु करि माने भेदा ॥
तब ते दूख डंड अरु खेदा ॥
जब इनि एको एकी बूझिआ ॥
तब ते इस नो सभु किछु सूझिआ ॥५॥

(हे भाई !) जब से यह जीव कुछ भेद समझता है, उस समय से लेकर वह दुःख, सजा और खराबी सहारन करता है। किन्तु जिस समय से वह केवल एक ही ईश्वर को जानता है, तब से उसे सब कुछ समझ आ जाती है (अर्थात ज्ञान प्राप्त होता है) ॥५॥

जब इहु धावै माइआ अरथी ॥
नह त्रिपतावै नह तिस लाथी ॥
जब इस ते इहु होइओ जउला ॥
पीछै लागि चली उठि कउला ॥६॥

(हे भाई !) जब यह (जीव) माया का गरजमद (इच्छुक) होकर भटकता है, तब वह न तृप्त होता है और न उसकी तृष्णा उतरती है। किन्तु जब वह (माया के प्रभाव से बचने के लिए) दौड़ता है (अलग होता है) तब कमला भाव लक्ष्मी (जिसका निवास कमल में माना है इसलिए कमला या कमल माया के लिए प्रयुक्त होता है) उसके पीछे लग कर (उठाकर) चलती है ॥६॥

करि क्रिपा जउ सतिगुरु
मिलिओ ॥
मन मंदर महि दीपकु जलिओ ॥
जीत हार की सोझी करी ॥
तउ इसु घर की कीमति परी ॥
७॥

(हे भाई !) जब कृपा करके सत्गुरु मिल गया तब मन रूपी मन्दिर में ज्ञान रूपी दीपक जल पड़ा। किन्तु जब उसे वास्तविक विजय पराजय का ज्ञान हो गया, तब उसने इस मनुष्य जन्म रूप गृह का महत्व जाना ॥७॥

करन करावन सभु किछु एकै ॥
आपे बुधि बीचारि बिबेकै ॥
दूरि न नेरै सभ कै संगा ॥
सचु सालाहणु नानक हरि रंगा ॥८
॥१॥

(हे भाई !) एक परमात्मा ही सब कुछ करने और कराने वाला है। 'वह' स्वयं ही समझ, विचार और विवेक बुद्धि (जीव को देने वाला) है। 'वह' दूर नहीं है किन्तु निकट है और सबके संग है। हे नानक ! ऐसा हरि, जो सत्य स्वरूप है, 'उसकी' स्तुति प्रेम से करो ॥८॥१॥

गउड़ी महला ५॥

"गुरु सेवा से नाम प्राप्ति जिससे सकल मनोरथ पूर्ण होते हैं।"

गुर सेवा ते नामे लागा ॥
तिस कउ मिलिआ जिसु मसतकि
भागा ॥
तिस कै हिरदै रविआ सोइ ॥
मनु तनु सीतलु निहचलु होइ ॥१॥

जिसके मस्तक मे (श्रेष्ठ) भाग्य है, उसे ही सत्गुरु मिलता है और उसका ही मन गुरु की सेवा करके नाम में लगता है। उसके हृदय में ही वह परमात्मा समाया हुआ है। उसका मन निश्चल और शरीर भी शीतल होता है ॥१॥

ऐसा कीरतनु करि मन मेरे ॥
ईहा ऊहा जो कामि तेरै ॥१॥
रहाउ॥

हे मेरे मन ! तू भी ऐसा कीर्तन कर, जो यहाँ (इस लोक में) और वहाँ (परलोक में) तुम्हारे काम आवे ॥१॥ रहाउ ॥

जासु जपत भउ अपदा जाइ ॥
धावत मनूआ आवै ठाइ ॥
जासु जपत फिरि दूखु न लागै ॥
जासु जपत इह हउमै भागै ॥२॥

जिसका नाम जपने से भय और आपत्ति चली जाती है तथा दौड़ता हुआ (चचल) मन (अपने) स्थान पर आ जाता है (अर्थात स्थिर हो जाता है), जिसका नाम जपने से फिर कोई दु:ख नहीं लगता है और जिसका नाम जपने से यह अहंता ममता भाग जाते हैं ॥२॥

जासु जपत वसि आवहि पंचा ॥
जासु जपत रिदै अंम्रितु संचा ॥
जासु जपत इह त्रिसना बुझै ॥
जासु जपत हरि दरगह सिझै ॥३॥

जिसका नाम जपने से (कामादि) पाँच विकार वश में आते हैं और जिसका नाम जपने से हृदय में अमृत रूप आनन्द इकट्ठा होता है। जिसका नाम जपने से (सासारिक पदार्थों के प्रति) तृष्णा बुझ जाती है और जिसका नाम जपने से (हरि) दरबार में स्वीकृत (मुक्त) होता है ॥३॥

जासु जपत कोटि मिटहि अपराध ॥
जासु जपत हरि होवहि साध ॥
जासु जपत मनु सीतलु होवै ॥
जासु जपत मलु सगली खोवै ॥४॥

जिसका नाम जपने से करोड़ों अपराध मिट जाते हैं और जिसका नाम जपने से यह जीव हरि का साधु बन जाता है। जिसका नाम जपने से मन शीतल हो जाता है और जिसका नाम जपने से सम्पूर्ण अहकार की मैल दूर हो जाती है ॥४॥

जासु जपत रतनु हरि मिलै ॥
बहुरि न छोडै हरि संगि हिलै ॥
जासु जपत कई बैकुंठ वासु ॥
जासु जपत सुख सहजि निवासु ॥५॥

जिसका नाम जपने से हरि रूपी रत्न मिलता है और हरि की सगति मे यह जीव ऐसा हिल जाता है, उस हरि रत्न को फिर छोड़ता ही नही। जिसका नाम जपने से कईयो (नाम जपने वालो) का बैकुन्ठ मे निवास होता है और जिसका नाम जपने से स्वाभाविक ही सुख मे निवास मिलता है ॥५॥

जासु जपत इह अगनि न पोहत ॥
जासु जपत इहु कालु न जोहत ॥
जासु जपत तेरा निरमल माथा ॥
जासु जपत सगला दुखु लाथा ॥६॥

जिसका नाम जपने से माया रूपी अग्नि स्पर्श नही कर सकती और जिसका नाम जपने से उसे काल भी देख नही सकता (अर्थात नाम जपने वाले जन्म-मरण से रहित हैं)। जिसका नाम जपने से तुम्हारा मस्तक निर्मल होगा। (भाव-बुरे कर्मों का लेख मिट जाता है) और जिसका नाम जपने से तुम्हारे सब दु:ख दूर हो जायेंगे ॥६॥

जासु जपत मुसकलु कछू न बनै ॥
जासु जपत सुणि अनहत धुनै ॥
जासु जपत इह निरमल सोइ ॥
जासु जपत कमलु सीधा होइ ॥७॥

जिसका नाम जपने से किसी प्रकार की भी कठिनाई नही होगी और जिसका नाम जपने से अनहद नाम शब्द की ध्वनि सुनने में आयेगी। जिसका नाम जपने से इस जीव की शोभा निर्मल होती है और जिसका नाम जपने से हृदय कमल सीधा हो जाता है (माया की ओर से उलट कर) ॥७॥

गुरि सुभ द्रिसटि सभ ऊपरि करी ॥
जिस कै हिरदै मंत्र दे हरी ॥
अखंड कीरतनु तिनि भोजनु चूरा ॥
कहु नानक जिसु सतिगुरु पूरा ॥८॥
२॥

(चाहे) गुरु सब पर कृपा दृष्टि करते है, किन्तु जिसके हृदय मे हरि नाम का मन्त्र देते हैं, उसे अखण्ड कीर्तन रूपी भोजन प्राप्त होता है (खाना है)। (यह उत्तम अवस्था उस भाग्यशाली को प्राप्त होती है) कहते है (बाबा) नानक, जिसके (जीवन मे) पूर्ण सत्गुरु (प्राप्त) है ॥८॥२॥

गउड़ी महला ५॥

"ज्ञानवान की सहजावस्था का सुन्दर वर्णन।"

गुर का सबदु रिद अंतरि धारै ॥
पंच जना सिउ संगु निवारै ॥
दस इंद्री करि राखै वासि ॥
ता कै आतमै होइ परगासु ॥१॥

(हे भाई !) जो जीव गुरु का शब्द हृदय में धारण करता है, वह पाँच (कामादिक विकारों) की संगति निवृत करता है और दस इन्द्रियों को वश में रखता है तथा उसके अन्तःकरण में ज्ञान का प्रकाश होता है ॥१॥

ऐसी द्रिड़तता ता कै होइ ॥
जा कउ दइआ मइआ प्रभ सोइ॥
१॥रहाउ॥

(हे भाई !) जिस (जीव) पर दयालु प्रभु की कृपा होती है, उसे ही ऐसी दृढ़ता होती है (अर्थात वह स्थिर रहता है और अपने मन व इन्द्रियों को वशीभूत करता है) ॥१॥ रहाउ ॥

साजनु दुसटु जा कै एक समानै ॥
जेता बोलणु तेता गिआनै ॥
जेता सुनणा तेता नामु ॥
जेता पेखनु तेता धिआनु ॥२॥

(हे भाई !) (ऐसी दृढ़ता वाले मन में) सज्जन और दुश्मन समान हैं, वह जितना बोलता है, वह ज्ञान ही ज्ञान है, वह जितना सुनता है, वह (नाम ही) नाम है तथा वह जितना देखता है, वह (ध्यान ही) ध्यान है (अर्थात वह सर्व में ईश्वर को ही देखता है। यही उसका नाम और ध्यान है) ॥२॥

सहजे जागणु सहजे सोइ ॥
सहजे होता जाइ सु होइ ॥
सहजि बैरागु सहजे ही हसना ॥
सहजे चूप सहजे ही जपना ॥३॥

(हे भाई !) ज्ञानी का जागना सहज स्वभाव है और सोना भी सहज ही है। जो सहज स्वभाव से हो रहा है, उसको वह ठीक मानता है। सहज मे ही उसका बैराग्य (रोना) और सहज में ही उसका हँसना है। सहज में ही उसका मौन (चुप मे रहना) है और सहज में ही (राम नाम को) जपता है ॥३॥

सहजे भोजनु सहजे भाउ ॥
सहजे मिटिओ सगल दुराउ ॥
सहजे होआ साधू संगु ॥
सहजि मिलिओ पारब्रहमु निसंगु ॥
४॥

सहज ही में वह भोजन खाता है और सहज मे ही प्रेम करता है। सहज में ही वह अपना छुपा हुआ कपट मिटा देता है, सहज में ही उसे साधु की संगति (प्राप्त) होती है तथा सहज में ही परब्रह्म को प्रत्यक्ष मिलता है ॥४॥

सहजे ग्रिह महि सहजि उदासी ॥
सहजे दुबिधा तन की नासी ॥
जा कै सहजि मनि भइआ अनंदु ॥
ता कउ भेटिआ परमानंदु ॥५॥

सहज में ही वह गृहस्थ अथवा घर में रहता है और सहज में ही वह उदासी (होकर बन) में रहता है। उसके शरीर में जो दुविधा है वह सहज ही में नाश हो जाती है। जिसके मन में सहज ही आनन्द होता है, उसे परब्रह्म रूप परमात्मा मिलता है ॥५॥

सहजे अंम्रितु पीओ नामु ॥
सहजे कीनो जीअ को दानु ॥
सहज कथा महि आतमु रसिआ ॥
ता कै संगि अबिनासी वसिआ ॥६॥

वह सहज में ही नाम रूपी अमृत पीता है और सहज ही में वह (गुरु के समक्ष) जीव का दान करता है (अर्थात स्वयं को अर्पित करता है)। जिसका मन सहज ही में भगवंत की कथा में रच गया है, उसकी संगति में ही हरि अविनासी प्रभु रहता है ॥६॥

सहजे आसणु असथिरु भाइआ ॥
सहजे अनहत सबदु वजाइआ ॥
सहजे रुणझुणकारु सुहाइआ ॥
ता कै घरि पारब्रहमु समाइआ ॥७॥

उसका सहज में ही स्थिर स्वरूप में आसन होता है (अर्थात स्वरूप में स्थित होता है) और सहज मे ही वह (भीतर) अनहद शब्द बजाता है (अर्थात जपता है)। जो जीव सहज ही एक रस शब्द में शोभायमान है, उसके हृदय घर में परब्रह्म समाया हुआ है ॥७॥

सहजे जा कउ परिओ करमा ॥
सहजे गुरु भेटिओ सचु धरमा ॥
जा कै सहजु भइआ सो जाणै ॥
नानक दास ता कै कुरबाणै ॥८॥३॥

(हे भाई !) सहज ही जिसके मस्तक में शुभ कर्मों का लेख (लिखा) हुआ है उसे सहज ही सच्चे धर्म वाला गुरु मिला है। जिसके हृदय मे ज्ञान (प्राप्त) हुआ है वही उसका आनन्द (अर्थात् परमात्मा को) जानता है। (काश !) मैं दास नानक ! उस (भाग्यशाली जीव) के ऊपर कुर्बान जाऊँ ॥८॥३॥

गउड़ी महला ५॥

"सब कुछ नाशवंत है।"

प्रथमे गरभ वास ते टरिआ ॥
पुत्र कलत्र कुटंब संगि जुरिआ ॥
भोजनु अनिक प्रकार बहु कपरे ॥
सरपर गवनु करहिगे बपुरे ॥१॥

(सर्व) प्रथम (हे मनुष्य ! जब तू) (माता के गर्भवास से निकला तो तुम्हें भजन पाठ करना चाहिए था, किन्तु) तू पुत्र, स्त्री, कुटुबादि से मिल गया और नाना प्रकार के भोजन तथा बहुत कपडे (जिन मे) हे बेचारे (मनुष्य ! तू लग रहा है) अवश्य ही (एक दिन तुम्हे) छोड जायेगे ॥१॥

कवनु असथानु जो कबहु न टरै ॥
कवनु सबदु जितु दुरमति हरै ॥१॥ रहाउ ॥

(प्रश्न : हे मेरे गुरुदेव ! वह) कौन सा स्थान है, जो कभी भी नाश नही होता ? (अर्थात अटल है) और वह कौन सा उपदेश है, जिससे दुर्बुद्धि दूर हो जाती है ? ॥१॥ रहाउ ॥

इंद्रपुरी महि सरपर मरणा ॥
ब्रहमपुरी निहचलु नही रहणा ॥

(हे भाई !) इन्द्रपुरी मे भी अवश्य मरना है। ब्रह्मपुरी में भी निश्चल होकर नही रहना है। शिवपुरी का भी काल हो जायेगा।

सिवपुरी का होइगा काला ॥
त्रै गुण माइआ बिनसि बिताला ॥
२॥

(हाँ) त्रिगुणात्मक माया में (फँसे) बेताले (अज्ञानी) जीव नाश हो जायेंगे ॥२॥

गिरि तर धरणि गगन अरु तारे ॥
रवि ससि पवणु पावकु नीरारे ॥
दिनसु रैणि बरत अरु भेदा ॥
सासत सिम्रिति बिनसहिगे बेदा ॥
३॥

(हे भाई !) पर्वत, वृक्ष, धरती, आकाश और तारे; सूर्य, चन्द्रमा, हवा, अग्नि और पानी का घर भाव समुद्र एवं दिन-रात, नाना प्रकार के व्रत-नियम और उनके पारस्परिक भेद तथा शास्त्र, स्मृतियाँ और वेदादि सब नाश हो जायेंगे ॥३॥

तीरथ देव देहुरा पोथी ॥
माला तिलकु सोच पाक होती ॥
धोती डंडउति परसादन भोगा ॥
गवनु करै गो सगलो लोगा ॥४॥

(हे भाई !) तीर्थ, देवते, मन्दिर, पोथियाँ, मालाएँ, तिलक और पवित्र रसोई, यज्ञ कर्ता, धोती (आदि कपड़े) नमस्कार और प्रसादो के भोग ये सभी लोको सहित चले (नाश) हो जायेंगे ॥४॥

जाति वरन तुरक अरु हिंदू ॥
पसु पंखी अनिक जोनि जिंदू ॥
सगल पासारु दीसै पासारा ॥
बिनसि जाइगो सगल आकारा ॥
५॥

(हे भाई !) जातियाँ और वर्ण, मुसलमान और हिन्दू, पशु और पक्षी एव अनेक योनियो वाले जीव-जन्तु तथा समस्त विस्तार (दृश्यमान जगत्), जो देखने मे आता है, (हाँ) सब कुछ नाश हो जायेगा ॥५॥

सहज सिफति भगति ततु
गिआना ॥
सदा अनंदु निहचलु सचु [illegible]ना ॥
तहा संगति साध गुण रसै ॥
अनभउ नगरु तहा सद वसै ॥६॥

(इस पंक्ति में प्रथम प्रश्न का उत्तर है।) सत्संगति रूपी सच्चा स्थान निश्चल है, जिस स्थान पर सहज ही परमात्मा की स्तुति, भक्ति और यथार्थ ज्ञान का उच्चारण हो रहा है और सदा ही आत्मिक आनन्द बना रहता है ऐसा सत्सग रूपी स्थान निश्चल है। वहाँ साधुजनों की संगति मे जिज्ञासु गुणों से भरपूर हो जाते हैं और उसी नगर में निर्भय परमात्मा बसता है ॥६॥

तह भउ भरमा सोगु न चिंता ॥
आवणु जावणु मिरतु न होता ॥

(हे भाई !) वहाँ न भय, न भ्रम, न शोक और न कोई चिन्ता है, न वहाँ आवागमन और जन्म-मरण हो है। वहाँ सदैव आनन्द

तह सखा अनंद अनहत आखारे ॥
भगत वसहि कीरतन आधारे ॥७॥

है और (सन्तों की) बेहद मंडलियां हैं अथवा वहां सर्वदा अनाहद शब्द के आनन्दप्रद स्थान हैं। वहां भक्त बसते हैं, जिनका आधार कीर्तन ही है ॥७॥

पारब्रहम का अंतु न पारु ॥
कउणु करै ता का बीचारु ॥
कहु नानक जिसु किरपा करै ॥
निहचल थानु साध संगि तरै ॥८॥
४॥

(हे भाई !) परब्रह्म परमेश्वर का न अन्त है और न कोई पार है। 'उसका' विचार कौन कर सकता है ? हे नानक ! जिन पर 'वह' कृपा करता है, वे ही साधुओं की सत्संगति द्वारा निश्चल स्थान प्राप्त करके इस भव-सागर से पार हो जाते हैं ॥८॥४॥

गउड़ी महला ५॥

"जो जीव द्वैत-भाव नाश करता है, वही मुक्त होता है।"

जो इसु मारे सोई सूरा ॥
जो इसु मारे सोई पूरा ॥
जो इसु मारे तिसहि वडिआई ॥
जो इसु मारे तिस का दुखु
जाई ॥१॥

(हे भाई !) जो दुविधा को मार देता है वही (वास्तविक) शूरवीर है। जो दुविधा को मार देता है, वही पूर्ण ज्ञानी है। जो दुविधा को मार देता है, उसी की बड़ाई होती है और जो इस (दुविधा) को मार देता है, उसके सब दुख दूर हो जाते हैं ॥१॥

ऐसा कोइ जि दुबिधा मारि गवावै ॥
इसहि मारि राज जोगु कमावै
॥१॥रहाउ॥

(हे भाई !) ऐसा कोई विरला ही (जीव) है जो दुविधा को मार कर राज्य-योग कमाता है (अर्थात संसार में राज्य करता हुआ भी हरि से मिलन करता रहता है) ॥१॥ रहाउ ॥

जो इसु मारे तिस कउ भउ नाहि ॥
जो इसु मारे सु नामि समाहि ॥
जो इसु मारे तिस की त्रिसना बूझै ॥
जो इसु मारे सु दरगह सिझै ॥२॥

(हे भाई !) जो इस दुविधा को मार देता है, उसे कोई भी भय नहीं रहता (क्योंकि वह सब में अपना स्वरूप ही देखता है फिर भला भय किससे ?) जो इस दुविधा को मार देता है, वह नाम में समा जाता है। जो इस दुविधा को मार देता है उसकी तृष्णा रूपी अग्नि बुझ जाती है और जो इस दुविधा को मार देता है, वह ही हरि की दरबार में स्वीकृत होता है ॥२॥

जो इसु मारे सो धनवंता ॥
जो इसु मारे सो पतिवंता ॥

(हे भाई !) जो इस दुविधा को मार देता है, वही धनी पुरुष है और जो इस दुविधा को मार देता है, वही सम्मान व प्रतिष्ठा

जो इसु मारे सोई जती ॥ जो इसु मारे तिसु होवै गती ॥ ३॥	वाला है। जो इस दुविधा को मार देता है, वही [illegible] है और जो इस दुविधा को मार देता है, उसी की ही मुक्ति होती है ॥३॥
जो इसु मारे तिस का परवाणु गनी ॥ जो इसु मारे सु निहचलु धनी ॥ जो इसु मारे सो वडभागा ॥ जो इसु मारे सु अनदिनु जागा ॥४॥	(हे भाई !) जो इस दुविधा को मार देता है, उसका संसार में आया गिना जाता है (अर्थात [illegible]) और जो इस दुविधा को मार देता है, वह निश्चल धनी (जिसका [illegible]) धन कम नहीं होने वाला है)। जो इस दुविधा को मार देता है, वह बड़े भाग्यों वाला है और जो इस दुविधा को मार देता है, वह रात-दिन (सदा माया से) सचेत रहता है ॥४॥
जो इसु मारे सु जीवन मुकता ॥ जो इसु मारे तिस की निरमल जुगता ॥ जो इसु मारे सोई सुगिआनी ॥ जो इसु मारे सु सहज धिआनी ॥५॥	(हे भाई !) जो इस दुविधा को मार देता है, वही जीवन-मुक्त है और जो इस दुविधा को मार देता है, उसकी जीवन की युक्ति (रहन-सहन) पवित्र होती है। जो इस दुविधा को मार देता है, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है और जो इस दुविधा को मार देता है, वह वास्तविक ध्यान लगाने वाला (ध्यानी) है ॥५॥
इसु मारी बिनु थाइ न परै ॥ कोटि करम जाप तप करै ॥ इसु मारी बिनु जनमु न मिटै ॥ इसु मारी बिनु जम ते नही छुटै ॥ ६॥	(हे भाई !) इस दुविधा को मारने के बिना जीव (हरि-दरबार में) स्वीकृत नहीं होता, चाहे वह जप, तप जैसे करोड़ों कर्म करे। इस दुविधा को मारने के बिना जन्म-मरण (आना जाना) समाप्त नहीं होता और इस दुविधा को मारने के बिना यम से जीव (कदाचित) नहीं छूटता ॥६॥
इसु मारी बिनु गिआनु न होई ॥ इसु मारी बिनु जूठि न धोई ॥ इसु मारी बिनु सभु किछु मैला ॥ इसु मारी बिनु सभु किछु जउला ॥ ७॥	(हे भाई !) इस दुविधा को मारने के बिना [illegible] नहीं होता और इस दुविधा को मारने के बिना अपवित्रता नहीं धोई जा सकती। इस दुविधा को मारने के बिना सब कुछ अपवित्र है और इस दुविधा को मारने के बिना (जो कुछ जीव इकट्ठा कर रहा है साथ नहीं जाता क्योंकि वह) सब कुछ जाने वाला (चलायमान) है ॥७॥

जा कउ भए क्रिपाल क्रिपा निधि ॥
तिसु भई खलासी होई सगल
सिधि ॥
गुरि दुबिधा जा की है मारी ॥
कहु नानक सो ब्रहम बीचारी ॥८
॥५॥

(जिन्हु) जिस पर कृपा का सागर—प्रभु कृपा करता है, उसकी ही इस दुविधा से मुक्ति होती है और उसे सकल सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि (दयालु) गुरु ने जिसकी दुविधा मार दी है, वही (गुरमुख) ब्रह्म का विचार करता है ॥८॥५॥

गौड़ी महला ५॥

"हरि के दास सदैव सुखी हैं।"

हरि सिउ जुरै त सभु को मीतु ॥
हरि सिउ जुरै त निहचलु चीतु ॥
हरि सिउ जुरै न विआपै काड़्हा ॥
हरि सिउ जुरै त होइ निसतारा ॥
१॥

(हे भाई!) जो हरि के साथ मेल करे (अर्थात मन को हरि में लगाये रखे) तो सभी कोई उसका मित्र हो जाता है। जो हरि के साथ मेल करे तो उसका चित्त निश्चल (एकाग्र) हो जाता है। जो हरि के साथ मेल करे तो उसे कोई चिन्ता (शोक) नहीं होती है। जो हरि के साथ मेल करे तो उसका छुटकारा होजाता है ॥१॥

रे मन मेरे तूं हरि सिउ जोरु ॥
काजि तुहारै नाही होरु ॥१॥रहाउ॥

हे मेरे मन! तू हरि के साथ मेल (प्रीति) कर। अन्य कोई कार्य तुम्हारा (इस संसार में) नहीं है ॥१॥ रहाउ ॥

वडे वडे जो दुनीआदार ॥
काहू काजि नाही गावार ॥
हरि का दासु नीच कुलु सुणहि ॥
तिस कै संगि खिन महि उधरहि ॥
२॥

हे मूर्ख! जो बड़े बड़े दुनियादार हैं, वे तुम्हारे किसी भी काम नहीं आते। जो हरि के दास (भक्त रविदास आदि) नीच जाति के सुने जाते हैं, (उनसे मेल कर क्योंकि) उनकी संगति में तेरा क्षण भर में उद्धार हो जावेगा ॥२॥

कोटि मजन जा कै सुणि नाम ॥
कोटि पूजा जा कै है धिआन ॥
कोटि पुंन सुणि हरि की बाणी ॥
कोटि फला गुर ते बिधि जाणी ॥३॥

परमात्मा का नाम सुनना करोड़ो तीर्थों के स्नान के बराबर है। परमात्मा का ध्यान करना करोड़ों पूजाओं के बराबर हैं। हरि की बाणी (अर्थात नाम) सुनना करोड़ो दान के बराबर है। ऐसे हरि को जानने का मार्ग, जिसने गुरु से प्राप्त किया है, वह करोड़ों (यज्ञादि के) फलों के बराबर है। ३॥

मन अपुने महि फिरि फिरि चेत ॥
बिनसि जाहि माइआ के हेत ॥
हरि अबिनासी तुमरै संगि ॥
मन मेरे रचु राम कै रंगि ॥४॥

इसलिए हे मेरे (प्यारे) मन ! तू अपने आप में बार-बार हरि का चिन्तन कर तो फिर मोह माया के प्रति (सारे) प्यार नाश हो जायेंगे। हरि, जो अविनाशी है वह तुम्हारे अंग-संग है। हे मेरे मन ! तू राम के प्रेम में रंग (रच) जा ॥४॥

जा कै कामि उतरै सभ भूख ॥
जा कै कामि न जोहहि दूत ॥
जा कै कामि तेरा वड गमरु ॥
जा कै कामि होवहि तूं अमरु ॥५॥

(हाँ) जिस (प्रभु) के भजन रूप काम करने से सारी भूख दूर हो जायेगी। जिस (प्रभु) के भजन रूप काम करने से यम दूत भी (बुरी दृष्टि से) तुम्हे देख नही सकेंगे। जिस (प्रभु) के भजन रूप काम करने से तुम्हारा बड़ा प्रताप होगा और जिस (प्रभु) के भजन रूप काम करने से तू अमर हो जायेगा (अर्थात जन्म-मरण से मुक्त हो जायेगा) ॥५॥

जा के चाकर कउ नही डान ॥
जा के चाकर कउ नही बान ॥
जा कै दफतरि पुछै न लेखा ॥
ता की चाकरी करहु बिसेखा ॥६॥

जिस प्रभु के सेवक को कोई दण्ड नही भरना पड़ता, जिसके सेवक को कोई भी बान्ध नहीं सकता अथवा कोई घाटा नहीं पड़ता, जिसके दरबार में सेवक से कोई भी लेखा नहीं पूछता, (हे मन !) तू ऐसे प्रभु की विशेष रूप से (अच्छी तरह से) सेवा कर ॥६॥

जा कै ऊन नाही काहू बात ॥
एकहि आपि अनेकहि भाति ॥
जा की द्रिसटि होइ सदा निहाल ॥
मन मेरे करि ता की घाल ॥७॥

जिस प्रभु के घर मे किसी बात की कमी नही है और जो एक होता हुआ भी अनेक रूपों में प्रकट हो रहा है। जिसकी कृपा दृष्टि से (सेवक) निहाल (कृतार्थ) हो जाता है हे मेरे प्यारे मन ! तू 'उसकी' ही सेवा कर ॥७॥

ना को चतुरु नाही को मूड़ा ॥
ना को हीणु नाही को सूरा ॥
जितु को लाइआ तित ही लागा ॥
सो सेवकु नानक जिसु भागा ॥८॥
६॥

(वस्तुतः अपने बल से) न कोई चतुर है और न कोई मूर्ख है तथा न कोई दुर्बल (कमजोर) है और न ही कोई शूरवीर है। (हाँ) (मेरे प्रभु द्वारा) जहाँ भी कोई लगाया गया है, वहाँ ही लगा हुआ है, किन्तु सेवक वही है, जिसके श्रेष्ठ भाग्य हैं ॥८॥६॥

गउड़ी महला ५॥

"हरिनाम के बिना मनुष्य जन्म निष्फल है।"

बिनु सिमरन जैसे सरप आरजारी ॥
तिउ जीवहि साकत नामु बिसारी ॥
१॥

(हरि नाम) स्मरण के बिना (माया-शक्ति के पुजारी) साकत (पुरुष) की आयु साँप जैसे (जहरीली) है। (वह नाम को भूलकर विषवत् विषयों में) अपना जीवन (व्यर्थ) व्यतीत करता है ॥१॥

एक निमख जो सिमरन महि
जीआ ॥
कोटि दिनस लाख सदा थिरु थीआ
॥१॥रहाउ॥

किन्तु जो एक निमिष् मात्र के लिए भी (हरि) स्मरण में जीता है, वह लाखों करोड़ों दिनों के लिए ही नही बल्कि वह तो सदैव स्थिर हो जाता है ॥१॥ रहाउ ॥

बिनु सिमरन ध्रिगु करम करास ॥
काग बतन बिसटा महि वास ॥२॥

(हरिनाम) स्मरण के बिना जो भी कर्म किये जाते हैं, वे धिक्कार योग्य हैं। (हाँ) वे कौआ के मुख वाले हैं, जिसका (सदैव) विष्ठा (मल) मे वास है (अर्थात स्मरण के बिना जीव विष्ठा-रूपी अहकार में प्रवृत होता है) ॥२॥

बिनु सिमरन भए कूकर काम ॥
साकत बेसुआ पूत निनाम ॥३॥

(हरिनाम) स्मरण के बिना (साकत) कुत्ते के कामों वाले हो जाते हैं अथवा कुत्तें जैसे कामी हो जाते हैं। (हाँ) वेश्या के पुत्र जैसे (साकत) पिता के नाम के बिना (निगुरे) होते हैं ॥३॥

बिनु सिमरन जैसे सीङ छतारा ॥
बोलहि कूड़ साकत मुखु कारा ॥
४॥

(हरिनाम) स्मरण के बिना (साकत ऐसा है) जैसे सींगों वाला भेड़ा होता है क्योंकि वह झूठ बोलता है और उसका मुख काला होता है ॥४॥

बिनु सिमरन गरधभ की निआई ॥
साकत थान भरिसट फिराही ॥५॥

(हरिनाम) स्मरण के बिना (विमुख जीव) गधे की तरह (डावांडोल) फिरते हैं, वैसे साकत लोग मलिन स्थानों में फिरते हैं ॥५॥

बिनु सिमरन कूकर हरकाइआ ॥
साकत लोभी बंधु न पाइआ ॥६॥

(हरिनाम स्मरण) के बिना कई साकत लोभी अपने आपको रोक कर नहीं रखते और पागल कुत्ते की तरह हर एक को काटते फिरते हैं ॥६॥

बिनु सिमरन है आतम घाती ॥
साकत नीच तिसु कुलु नही जाती
॥७॥

(हरिनाम स्मरण) के बिना साकत स्वयं अपनी आत्मा का घात (खुदकशी) करने वाला है। ऐसे नीच की न कोई जाति है और न कोई कुल ही है ॥७॥

जिसु भइआ क्रिपालु तिसु सतसंगि
मिलाइआ ॥
कहु नानक गुरि जगतु तराइआ ॥
८॥७॥

(किन्तु) जिस जीव पर (मेरा हरि प्रभु) कृपालु हो जाता है, उसे सत्संगति में मिला देता है। कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (ऐसे भाग्यशाली जीव को) गुरु (नाम रूपी जहाज पर बैठा कर) जगत रूपी सागर से पार कर देता है ॥८॥७॥

गउड़ी महला ५॥

'गुरु के वचन [illegible]'

गुर कै बचनि मोहि परमगति पाई ॥
गुरि पूरै मेरी पैज रखाई ॥१॥

(हे भाई !) गुरु के वचनों के कारण मैंने परमगति (मुक्ति) प्राप्त की है। पूर्ण गुरु ने मेरी (मनुष्य देही की) लज्जा रख ली ॥१॥

गुर कै बचनि धिआइओ मोहि नाउ ॥
गुर प्रसादि मुहि मिलिआ थाउ ॥१॥ रहाउ ॥

हे भाई ! गुरु के वचनों के कारण मैंने हरिनाम का ध्यान किया है। गुरु की कृपा से (हरि रूप अविनाशी) स्थान मिला है ॥१॥ रहाउ ॥

गुर कै बचनि सुणि रसनि वखाणी ॥
गुर किरपा ते अंम्रित मेरी बाणी ॥२॥

गुरु के वचनों को सुनकर मैं रसना से (हरिनाम) उचारण करता हूँ। गुरु की कृपा से मेरी वाणी अमृत रूप हुई है ॥२॥

गुर कै बचनि मिटिआ मेरा आपु ॥
गुर की दइआ ते मेरा वड परतापु ॥३॥

गुरु के वचनों के कारण मेरा आपाभाव (अर्थात अहंकार) मिट गया है। गुरु की दया से मेरा बहुत प्रताप हुआ है (अर्थात सभी विकार मेरे वशीभूत हुए हैं) ॥३॥

गुर कै बचनि मिटिआ मेरा भरमु ॥
गुर कै बचनि पेखिओ सभु ब्रहमु ॥४॥

गुरु के वचनों के कारण मेरा भ्रम मिट गया है। गुरु के वचनों के कारण मैंने सब, ब्रह्म रूप देखा है ॥४॥

गुर कै बचनि कीनो राजु जोगु ॥
गुर कै संगि तरिआ सभु लोगु ॥५॥

गुरु के वचनों के कारण मैंने राज-योग किया है (अर्थात संसार में रहता हुआ भी हरि से जुड़ा रहता हूँ)। गुरु की संगति से सभी लोग (संसार-सागर से) पार हो गये हैं ॥५॥

गुर कै बचनि मेरे कारज सिधि ॥
गुर कै बचनि पाइआ नाउ निधि ॥६॥

गुरु के वचनों के कारण मेरे (सभी) कार्य सिद्ध (पूर्ण) हो गये हैं। गुरु के वचनों के कारण मैंने नवनिधि रूप परमेश्वर का नाम प्राप्त किया है ॥६॥

जिनि जिनि कीनी मै गुर की आसा ॥ तिन की कटीऐ जम की फासा ॥७॥	हे भाई ! जिन-जिन्हों (प्राणी) ने मेरे (समर्थ) गुरु की आशा रखी है, उनकी यम की फांसी कट गई है ॥७॥
गुर के बचनि बसिआ मेरा मनूआ ॥ नानक गुर [illegible] पारब्रहमु ॥८॥८॥	गुरु के वचनों (अर्थात शिक्षा) द्वारा मेरा [illegible] [illegible] ऐसा [illegible] हुआ है कि हे नानक ! मुझे (अब) परब्रह्म रूप गुरु [illegible] है ॥८॥८॥
[illegible] महला ५ ॥	"गुरु अत्याधिक परोपकारी है। काश ! मैं उस पर बलिहारी जाऊँ।"
तिसु गुर कउ सिमरउ सासि सासि ॥ गुरु मेरे प्राण सतिगुरु मेरी रासि ॥ १॥रहाउ॥	उस गुरु का श्वास-प्रश्वास मैं स्मरण करता हूँ। गुरु ही मेरा प्राण है, (हाँ) सच्चा गुरु ही मेरी पूँजी (सम्पत्ति) है ॥१॥ रहाउ॥
गुर का दरसनु देखि देखि जीवा ॥ गुर के चरण धोइ धोइ पीवा ॥१॥	(अपने) गुरु का दर्शन देख-देख कर ही मैं जीवित रहता हूँ और अपने सत्गुरु के चरणो को मैं धो-धो कर पीता हूँ ॥१॥
गुर की रेणु नित मजनु करउ ॥ जनम जनम की हउमै मलु हरउ ॥ २॥	(अपने) गुरु के चरणो की धूलि में मैं नित्य स्नान करता हूँ जिससे जन्म-जन्मान्तरो के अहंकार रूपी मैल को दूर करता हूँ ॥२॥
तिसु गुर कउ झूलावउ पाखा ॥ [illegible] ते हाथु दे राखा ॥३॥	उस गुरु को (गर्मी में) मैं पँखा झुलाता हूँ, जिसने माया रूप महाग्नि से हाथ देकर मुझे बचा कर रखा है ॥३॥
तिसु गुर कै ग्रिहि ढोवउ पाणी ॥ जिसु गुर ते [illegible] ॥४॥	उस गुरु के घर में मैं पानी भरता हूँ, जिस गुरु की कृपा से अकल (अखण्ड) परमात्मा की गति को मैंने जाना है ॥४॥
तिसु गुर कै ग्रिहि पीसउ नीत ॥ जिसु प्रसादि वैरी सभ मीत ॥५॥	उस गुरु के घर में मैं नित्य चक्की पीसता हूँ, जिस गुरु की कृपा से सब दुश्मन मेरे मित्र हो गये हैं ॥५॥

जिनि गुरि मो कउ दीना जीउ ॥
आपुना दासरा आपे मुलि लीउ ॥६॥

जिस गुरु ने मुझे जीवन दान दिया है और (फिर) अपना छोटा दास करके स्वय मूल्य ले लिया है (अर्थात् उपदेश देकर अपनी सेवा में लगा दिया है।) ॥६॥

आपे लाइओ अपना पिआरु ॥
सदा सदा तिसु गुर कउ करी नमसकारु ॥७॥

(फिर उस गुरु ने) अपना प्यार (भी मेरे मन में)स्वयं लगाया है उस गुरु को मैं सदा सर्वदा नमस्कार करता हूँ ॥७।

कलि कलेस भै भ्रम दुख लाथा ॥
कहु नानक मेरा गुरु समराथा ॥८॥९॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि मेरा गुरु ऐसा समर्थ है कि (जिसकी कृपा द्वारा) कल्पना, कलेश, भय, भ्रम आदि दुःख दूर हो गये हैं ॥८॥९॥

गउड़ी महला ५॥

"हरिनाम को भूलने वाले की दुर्दशा।"

मिलु मेरे गोबिंदा अपना नामु देहु ॥
नाम बिना ध्रिगु ध्रिगु असनेहु ॥१॥ रहाउ॥

हे मेरे गोविन्द ! मुझे मिल और अपना नाम दे क्योंकि (तेरे) नाम के बिना शेष सब (मोह) प्यार जो है, वह धिक्कार (योग्य हैं, (हाँ) धिक्कार योग्य है ॥१॥ रहाउ ॥

नाम बिना जो पहिरै खाइ ॥
जिउ कूकरु जूठन महि पाइ ॥१॥

जो (जीव) नाम के बिना खाता और पहनता है, वह ऐसा है जैसे कुत्ता झूठे (पदार्थों) मे (जाकर) पड़ता है ॥१॥

नाम बिना जेता बिउहारु ॥
जिउ मिरतक मिथिआ सीगारु ॥२॥

नाम के बिना जितना भी व्यवहार (करना) है, ऐसे है जैसे मृतक को शृंगार करना जो (निसंदेह) मिथ्या (व्यर्थ) है ।।२॥

नामु बिसारि करे रस भोग ॥
सुखु सुपनै नही तन महि रोग ॥३॥

जो (जीव) नाम को भूलकर रसों वाले भोग भोगता है, उसको सार सुख तो स्वप्न में भी नहीं होता बल्कि शरीर में रोग (उत्पन्न) होता है ॥३॥

नामु तिआगि करे अन काज ॥
बिनसि जाइ झूठे सभि पाज ॥४॥

जो (जीव) नाम का त्याग कर अन्य कार्य करता है, उसके सभी कार्य झूठे आडम्बर की तरह नाश हो जायेंगे ॥४॥

नाम संगि मनि प्रीति न लावै ॥
कोटि करम करतो नरकि जावै ॥ ५॥

जो (जीव) नाम के साथ मन में प्रीति नहीं लगाता, वह करोड़ों कर्म करता हुआ भी (अन्ततः) नर्क में ही जायेगा ॥५॥

हरि का नामु जिनि मनि न आराधा ॥
चोर की निआई जमपुरि बाधा ॥ ६॥

जिसने हरि के नाम की आराधना मन से नहीं की है, वह चोर की तरह यमपुरी में बाँध कर लाया जायेगा ॥६॥

लाख अडंबर बहुतु बिसथारा ॥
नाम बिना झूठे पासारा ॥७॥

लाखों बाह्याडम्बर और बड़े फैलाव, नाम के बिना झूठे विस्तार हैं ॥७॥

हरि का नामु सोई जनु लेइ ॥
करि किरपा नानक जिसु देइ ॥८ ॥१०॥

(किन्तु) हे नानक ! हरि का नाम वही दास लेता है, जिसको कृपा करके (हरि स्वयं नाम की देन) देता है ॥८॥१०॥

गउड़ी महला ५॥

"हरि प्रभु प्रत्येक जीव की संभाल करता है।"

आदि मधि जो अंति निबाहै ॥
सो साजनु मेरा मनु चाहै ॥१॥

मेरा मन 'उस' सज्जन(हरि प्रभु)को चाहता है, जिसने आदि (माता के गर्भ) में, मध्य (मृत्युलोक) मे और अन्त मे (मृत्यु के पश्चात्) भी रक्षा करता है ॥१॥

हरि की प्रीति सदा संगि चालै ॥
दइआल पुरख पूरन प्रतिपालै ॥१॥ रहाउ॥

हरि की प्रीति सदैव जीव के साथ चलने वाली है। 'वह' सर्वत्र परिपूर्ण, दयालु पुरुष (सभी की)प्रतिपालना करता है ॥१॥ रहाउ ॥

बिनसत नाही छोडि न जाइ ॥
जह पेखा तह रहिआ समाइ ॥२॥

'वह' न नाश होता है और न छोडकर ही जाता है। जहाँ मैं देखता हूँ, वहाँ 'वह' समाया हुआ है ॥२॥

सुंदरु सुघड़ु चतुर जीअ दाता ॥
भाई पूतु पिता प्रभु माता ॥३॥

'वह (सब से) सुन्दर है, (सब प्रकार से) निपुण अथवा कुशल है, चतुर है और जीवन दाता है। 'वह' प्रभु पिता है, माता है, भाई है और पुत्र (वाला प्यार करने वाला) भी 'वही' है ॥३॥

जीवन प्रान अधार मेरी रासि ॥
प्रीति लाई करि रिदै निवासि ॥४॥

'वह' मेरे जीवन और प्राणों का आधार है और मेरी पूंजी (सम्पत्ति) भी है। जब मैंने 'उससे' प्रीति लगाई, तब 'उसने' मेरे हृदय में आकर निवास किया ॥४॥

माइआ सिलक काटी गोपालि ॥
करि अपुना लीनो नदरि निहालि ॥५॥

गोपाल प्रभु ने माया की फाँसी (रस्सी) काट दी और अपनी कृपा दृष्टि से निहाल (कृतार्थ) करके मुझे अपना बना लिया ॥५॥

सिमरि सिमरि काटे सभि रोग ॥
चरन धिआन सरब सुख भोग ॥६॥

'उस' (गोपाल) का स्मरण कर करके मेरे सभी रोग कट गये हैं और 'उसके' चरणों का ध्यान करने के कारण सभी सुखों का भोग किया है ॥६॥

पूरन पुरखु नवतनु नित बाला ॥
हरि अंतरि बाहरि संगि रखवाला ॥७॥

'वह' परिपूर्ण पुरुष है, नित्य नया-नया है और सदा युवक है भाव कभी वृद्ध नहीं होता, (हाँ) 'वह' हरि (प्रभु) अन्दर और बाहर सब जगह (सर्वत्र) है, (सदा) संगी है और (सदैव) रक्षक भी है ॥७॥

कहु नानक हरि हरि पदु चीन ॥
सरबसु नामु भगत कउ दीन ॥८॥११॥

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि मैंने 'उस' हरि, (हाँ) हरि की पदवी को समझा है जिस हरि ने अपने भक्त को नाम (दान) दे दिया है जो (मेरे लिये अब) सब कुछ है ॥८॥११॥

राग गउड़ी माझ महला ५॥

"सतगुरु की कृपा से ही भव-सागर से पार उतरना है, किन्तु कृपा केवल सेवक पर ही होती है।"

खोजत फिरे असंख
अंतु न पारीआ ॥
सेई होए भगत जिना किरपारीआ
॥१॥

अगणित (जीव) परमेश्वर को ढूंढते फिरते हैं किन्तु किसी ने भी 'उसका' अन्त नहीं पाया। (हाँ) जिन पर 'उसकी' कृपा हुई है, वे ही परमेश्वर के भक्त हुए हैं ॥१॥

हउ वारीआ हरि वारीआ ॥१॥
रहाउ॥

मैं बलिहारी जाता हूँ, (हाँ) मैं 'उस' हरि के ऊपर बलिहारी जाता हूँ ॥१॥ रहाउ ॥

सुणि सुणि पंथु डराउ
बहुतु भै हारीआ ॥
मै तकी ओट संताह लेहु उबारीआ
॥२॥

(यम का) भयानक मार्ग सुन सुन कर मैं बहुत भयभीत होने के कारण हार गई हूँ। मैंने सन्तों का सहारा देख कर (जा कर उन्हे विनय की है कि) हे सन्तों ! मुझे बचा लें ॥२॥

मोहन लाल अनूप
सरब साधारीआ ॥
गुर निवि निवि लागउ पाइ
देहु दिखारीआ ॥३॥

हे गुरु ! परमात्मा, जो मन को मोहने वाला है, (सबका) प्यारा है, उपमा से रहित (अनुपम) है और सब का आधार भी है, 'वह' मुझे दया करके दिखाओ। मैं निव-निव कर आपके चरणों में लगता हूँ ॥३॥

मै कीए मित्र अनेक
इकसु बलिहारीआ ॥
सभ गुण किस ही नाहि
हरि पूर भंडारीआ ॥४॥

(हे गुरु !) मैंने अनेक मित्र कीए, किन्तु (अब मैं) केवल एक हरि के ऊपर बलिहारी जाता हूँ क्योंकि (उपरोक्त) सभी गुण अन्य किसी में भी नही हैं। हरि ही शुभ गुणों का पूर्ण भण्डार है ॥४॥

चहु दिसि जपीऐ नाउ
सूखि सवारीआ ॥
मै आही ओड़ि तुहारि
नानक बलिहारीआ ॥५॥

(हे हरि !) चारों ओर (भाव सर्वत्र) तुम्हारा नाम ही जपा जा रहा है और जपने वाले सुख मे सँवारे हुए हैं भाव पूर्ण सुखी हैं। मैने भी तुम्हारी ओट (टेक) चाही है। मैं तुम्हारे ऊपर बलिहारी जाऊँ कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब) ॥५॥

गुरि काढिओ भुजा पसारि
मोह कूपारीआ ॥
मै जीतिओ जनमु अपारु
बहुरि न हारीआ ॥६॥

(मेरी यह विनय सुनकर) गुरु ने मुझे मोह रूपी कूप में से हाथ देकर निकाल लिया। मैंने (अमूल्य) जन्म, जो अपार था, जीत लिया और अब मैं फिर नहीं हारूँगी (अर्थात जन्म-मरण के चक्र में पुनः नहीं आऊँगी) ॥६॥

मै पाइओ सरब निधानु
अकथु कथारीआ ॥
हरि दरगह सोभावंत बाह लुडारीआ
॥७॥

मैंने (सतुरु की कृपा से) 'उस' हरि को प्राप्त कर लिया है जो सभी गुणों का भण्डार है और जिसकी कथा अकथनीय है। अब मैं हरि की दरबार में शोभा पाऊँगी और बाजू बुलाते (अर्थात प्रसन्नता पूर्वक निर्भय होकर) जाऊँगी ॥७॥

जन नानक लधा रतनु
अमोलु अपारीआ ॥
गुर सेवा भउजलु तरीऐ
कहउ पुकारीआ ॥८॥१२॥

हे दास नानक ! मैंने अपरिमित अमूल्य (नाम) रत्न प्राप्त किया है। (हे भाई !) मैं पुकार कर यह बात कहता हूँ कि गुरु की सेवा करने से ही संसार समुद्र से पार होना होता है ॥८॥१२॥

गउड़ी महला ५॥

"परमेश्वर के प्यार में अपने मन को रंगना है। उपदेशक वाणी।"

नाराइण हरि रंग रंगो ॥
जपि जिहवा हरि एक मंगो ॥१॥
रहाउ ॥

(हे भाई ! मनुष्य देही अवसर है।) नारायण हरि के प्रेम-रंग में अपना मन (स्वयं) रंग लो (कैसे ?) रसना से हरि का नाम जपो और 'उस' एक (नारायण) से ही माँगो ॥१॥ रहाउ ॥

तजि हउमै गुर गिआन भजो ॥
मिलि संगति धुरि करम लिखिओ
॥१॥

(हे भाई ! फिर) अहंकार का त्याग करके गुरु के ज्ञान का अभ्यास करो, किन्तु (याद रहे) गुरु की संगति तभी मिलेगी यदि पहले से ही हमारे मस्तक में शुभ कर्मों का लेख लिखा हुआ हो ॥१॥

जो दीसै सो संगि न गइओ ॥
साकतु मूड़ु लगे पचि मुइओ ॥२॥

(हे भाई !) जो देखने में आता है, वह हमारे साथ नहीं चलता (अर्थात सभी सम्बन्धी यहीं छोड़ने हैं)। (माया-शक्ति का उपासक) साकत मूर्ख है क्योंकि (हरि नाम के कारण) विमुख होने के कारण वह (विनश्वर पदार्थों में आसक्त होने से) जल कर मरता है ॥२॥

मोहन नामु सदा रवि रहिओ ॥
कोटि मधे किनै गुरमुखि लहिओ ॥३॥

जो (नारायण) 'मोहन' के नाम से पुकारा जाता है और जो सर्वव्यापक है, 'उसका' नाम करोड़ों में कोई विरला गुरमुख ही लेता (जपता) है ॥३॥

हरि संतन करि नमो नमो ॥
नउनिधि पावहि अतुलु सुखो ॥४॥

(हे भाई !) हरि के सन्तों को नमस्कार करो, (हाँ) नमस्कार करोगे तो नव-निधियाँ और अतुलनीय सुख पाओगे ॥४॥

नैन अलोवउ साध जनो ॥
हिरदै गावहु नाम निधो ॥५॥

(हे भाई !) नेत्रों से साधु जनों का दर्शन करो और हरि का नाम, जो एक खजाना है, उसे हृदय से गाओ ॥५॥

काम क्रोध लोभु मोहु तजो ॥
जनम मरन दुहु ते रहिओ ॥६॥

(हे भाई !) काम, क्रोध, लोभ, मोह (और अहंकार) को त्याग दो, (इस त्याग से) जन्म-मरण दोनों (के चक्र) से बच जाओगे ॥६॥

दूखु अंधेरा घर ते मिटिओ ॥
गुर गिआनु द्रिड़ाइओ दीप बलिओ ॥७॥

जब गुरु ने उपदेश दृढ़ करा के ज्ञान रूपी दीपक प्रकाशित किया, तब दुखदायक अज्ञान रूपी अन्धेरा अन्तःकरण से मिट गया ॥७॥

जिनि सेविआ सो पारि परिओ ॥
जन नानक गुरमुखि जगतु तरिओ ॥८॥१॥१३॥

(हे भाई !) जिन्होंने सेवा की है, वे संसार-सागर से पार हुए हैं। हे नानक ! गुरु के द्वारा ही वे गुरमुख जन जगत से पार हुए हैं ॥८॥१॥१३॥

गउड़ी महला ५॥

"हरि और गुरु का नाम जपने से भ्रम दूर होता है।"

हरि हरि गुर गुर करत भरम गए ॥
मेरै मनि सभि सुख पाइओ ॥१॥ रहाउ॥

(हे भाई !) हरि हरि और गुरु गुरु का नाम उच्चारण करने से (सब) भ्रम दूर हो गये और मेरे मन ने (अब) सारे सुख प्राप्त कर लिये हैं ॥१॥ रहाउ ॥

बलतो जलतो तउकिआ
गुर चंदनु सीतलाइओ ॥१॥

मैं तृष्णा रूपी अग्नि में जल रहा था, किन्तु गुरु रूप चन्दन ने नाम का छींटा दिया तो तप्त हृदय (चन्दन समान) शीतल हो गया ॥१॥

अगिआन अंधेरा मिटि गइआ
गुर गिआनु दीपाइओ ॥२॥

जब गुरु ने ज्ञान रूपी दीपक जलाया तो अज्ञान रूपी अन्धकार दूर हो गया ॥२॥

पावकु सागरु गहरो
चरि संतन नाव तराइओ ॥३॥

विषयों रूपी अग्नि का समुद्र, जो संसार है, वह गहरा है, उससे मैं सन्तों की नाव, जो भक्ति है, उस पर चढ़कर पार हो गया ॥३॥

ना हम करम न धरम सुच
प्रभि गहि भुजा आपाइओ ॥४॥

न मुझ में (कोई) कर्म है और न धर्म है और न मुझ में कोई पवित्रता ही है। किन्तु (दयालु) प्रभु ने मेरी भुजा पकड़ कर अपना बना लिया ॥४॥

भउ खंडनु दुख भंजनो
भगति वछल हरि नाइओ ॥५॥

भय को खंडन करने वाला, दुःख को तोड़ने वाला और भक्त-जनों का प्यारा तथा रक्षक, ये नाम हरि परमात्मा के हैं ॥५॥

अनाथह नाथ क्रिपाल दीन
संम्रिथि संत ओटाइओ ॥६॥

हे अनाथों के स्वामी ! हे दीनों पर कृपा करने वाले ! हे समर्थ ! हे सन्तों के आश्रय ! ॥६॥

निरगुनीआरे की बेनती
देहु दरसु हरि राइओ ॥७॥

हे हरि राजा ! मुझ निर्गुण की यह विनय है कि (आप) दर्शन दो ॥७॥

नानक सरनि तुहारी ठाकुर
सेवकु दुआरै आइओ ॥८॥२॥१४॥

हे ठाकुर ! (यह) सेवक नानक आप के द्वार पर, (जो) आप की शरण में आया है ॥८॥२॥१४॥

गउड़ी महला ५॥

"मनमुखों की दुर्दशा।"

रंग संगि बिखिआ के भोगा
इन संगि अंध न जानी ॥१॥

(कलियुगी जीव) विषवत् विषयों के भोगों में रंगा हुआ है। उन विषयों की संगति करने से अज्ञानी जीव (परमात्मा के स्वरूप को) नहीं जानता ॥१॥

हउ संचउ हउ खाटता
सगली अवध बिहानी ॥१॥रहाउ॥

मैं संग्रह करता हूँ और कमाता हूँ। इसी तरह (करते कहते) सम्पूर्ण आयु व्यतीत हो गई ॥१॥ रहाउ ॥

हउ सूरा परधानु हउ
को नाही मुझहि समानी ॥२॥

मैं शूरवीर हूँ, मैं प्रधान हूँ और मेरे बराबर कोई भी नहीं है ॥२॥

जोबनवंत अचार कुलीना
मन महि होइ गुमानी ॥३॥

मैं जवान हूँ, श्रेष्ठ कर्मों वाला हूँ और ऊँचे कुल वाला भी हूँ। (ऐसा समझ कर) मन में अहंकारी हुआ रहता हूँ ॥३॥

जिउ उलझाइओ बाध बुधि का
मरतिआ नही बिसरानी ॥४॥

जैसे मिथ्या बुद्धि के घेर मे आया हुआ अज्ञानी जीव, मरण पर्यन्त यह समझ नहीं भूलती (अर्थात उस समय भी माया वाली रुचि नही जाती) ॥४॥

भाई मीत बंधप सखे
पाछे तिन हू कउ संपानी ॥५॥

भाईओं, मित्रो, बन्धुजनो (सम्बन्धियो) और साथियों को पीछे (मरने के पश्चात्) अपनी माया सौंप देता है (भाव कर्म, धर्म, (हाँ) परोपकार के लिये कदाचित नहीं छोड़ता) ॥५॥

जितु लागो मनु बासना
अंति साई प्रगटानी ॥६॥

(बात यह है कि माया लोलुप जीव का मन) जिस वासना में (जीवन भर) लगा रहता है, अन्त समय मे वही प्रकट होती है॥६॥

अहंबुधि सुचि करम करि
इहु बंधन बंधानी ॥७॥

अहम्वाली बुद्धि मे शारीरिक सफाई वाले कर्म भी करता है फिर भी बन्धनो मे बधा फिरता है ॥७॥

दइआल पुरख किरपा करहु
नानक दास दसानी ॥८॥३॥१५॥
४४॥ जुमला

(जगत की ऐसी दयनीय दुर्दशा को देख कर मेरे गुरुदेव की प्रार्थना है कि) हे दयालु पुरुष (हरि जी)! कृपा करो कि मैं नानक तुम्हारे दासो का दास होऊँ ॥८॥३॥१५॥

विशेष : जुमला =कुल योग। यहाँ पीछे आई सम्पूर्ण अष्टपदियो का योग (जोड़) कर दिया है, जो निम्नलिखित ४४ बनता है।

गुरु नानक साहब की गउड़ी गुआरेरी मे	अष्टपदीआं	१६
गउड़ी बैरागिण में	अष्टपदीआं	२
गुरु अमर दास साहब की	अष्टपदीआं	६
गुरु रामदास साहब की	करहले	२
गुरु अर्जन देव की	अष्टपदिआं	१५
	—कुल जोड़	४४

रागु गउड़ी पूरबी छंत महला १॥

"पति रूप परमेश्वर के वियोग एवं सयोग का भव्य वर्णन।"

मुंध रैणि दुहेलड़ीआ जीउ
नीद न आवै ॥
सा धन दुबलीआ जीउ पिर कै हावै ॥
धन थीई दुबलि कंत हावै
केव नैणी देखए ॥
सीगार मिठ रसि भोग भोजन
सभु झूठु कितै न लेखए ॥
मै मत जोबनि गरबि गाली
दुधा थणी न आवए ॥
नानक सा धन मिलै मिलाई
बिनु पिर नीद न आवए ॥१॥

ऐ जी! (जीव रूपी) स्त्री (आयु रूपी) रात्रि में (अत्यन्त) दुखी है, उसे (शान्ति रूपी) निद्रा नही आती। ऐ जी! प्रियतम के शोक में वह (अत्यन्त) दुबली हो गई है, (हाँ) प्रियतम के शोक मे स्त्री दुबली हो गई है, वह नेत्रो से कैसे देखेगी?

(प्रियतम के विछुडने से (सारे) शृंगार, मीठे रस और भोग, भोजनादि सभी कुछ झूठे हैं, वे (सब) किसी भी लेखे में नही हैं। वह (स्त्री) यौवन मे मदमत्त है और उसने गर्व में अपने आप को गला दिया है।

उसके थनों में दूध भी नहीं आता है और हे नानक! वह स्त्री (गुरु के) मिलने पर ही (अपने पति-परमेश्वर से) मिलती है, बिना प्रियतम के मिले उसे रात्रि में नीद नही आती ॥१॥

मुंध निमानड़ीआ जीउ
बिनु धनी पिआरे ॥
किउ सुखु पावैगी बिनु उरधारे ॥

ऐ जी! बिना धनी प्रियतम के स्त्री मान-विहीन रहती है। बिना प्रियतम को हृदय में धारण किए वह कैसे सुख पायेगी? बिना प्रियतम के घर बसता नहीं, भाव: घर आबाद नहीं होता

साह बिनु घर वासु नाही
पुछहु सखी सहेलीआ ॥
बिनु नाम प्रीति पिआरु नाही
वसहि साचि सुहेलीआ ॥
सचु मनि सजन संतोखि मेला
गुरमती सहु जाणिआ ॥
नानक नामु न छोडै सा धन
नामि सहजि समाणीआ ॥२॥

यह बात सखी-सहेलियों (अर्थात सन्तजनों) से पूछ लो।

बिना (हरि के) नाम के प्रीति-प्यार नही हो सकता जिससे सत्य स्वरूप परमेश्वर में निवास किया जाय। सत्य मन तथा सन्तोष से सज्जन हरि का मिलाप होता है, गुरु की शिक्षा द्वारा पति-परमेश्वर जाना जाता है।

हे नानक ! जो (स्त्री) नाम नही छोडती, वह नाम के द्वारा सहज ही पति-परमेश्वर मे समा जाती है ॥२॥

मिलु सखी सहेलड़ीहो
हम पिरु रावेहा ॥
गुर पुछि लिखउगी जीउ
सबदि सनेहा ॥
सबदु साचा गुरि दिखाइआ
मनमुखी पछुताणीआ ॥
निकसि जातउ रहै असथिरु
जामि सचु पछाणिआ ॥
साच की मति सदा नउतन
सबदि नेहु नवेलओ ॥
नानक नदरी सहजि साचा
मिलहु सखी सहेलीहो ॥३॥

ऐ सखी और सहेलियों ! हमसे मिलो, हम सब प्रियतम के संग रमण करेंगी। ऐ प्रिय (सखियों) ! गुरु से पूछकर शब्द द्वारा (प्रियतम को) मैं सन्देश लिखूँगी।

गुरु ने सच्चे शब्द को दिखा दिया है, किन्तु मनमुख स्त्री (उस शब्द पर आचरण न करने से) पछताती है। जिस समय सत्य पहचान लिया जाता है, उस समय निकल-भागने वाला (चंचल मन) स्थिर हो जाता है। सत्य की बुद्धि सदैव नवीन (बनी रहती) है। गुरु के शब्द का प्रेम सदैव नया बना रहता है।

हे नानक ! कृपा करने वाला सच्चा हरि सहज मार्ग द्वारा ही मिलता है, (अतएव) हे सखि-सहेलियों ! (आओ मुझे आकर) मिलो ॥३॥

मेरी इछ पुनी जीउ
हम घरि साजनु आइआ ॥
मिलि वर नारी मंगलु गाइआ ॥
गुण गाइ मंगलु प्रेमि रहसी
मुंध मनि ओमाहओ ॥
साजन रहंसे दुसट विआपे
साचु जपि सचु लाहओ ॥

ऐ जी ! मेरी इच्छा पूरी हो गई है, मेरा प्रियतम मेरे घर आ गया है। स्त्री पति से मिल कर (अब) आनन्द के गीत गाती है।

स्त्री मंगलमय गुण गायन करके प्रेम मे आनन्दित हो गई है और उसके मंगलमय गुण गाकर प्रेम के कारण अब वह (अत्याधिक) उत्साह में है। मेरा साजन प्रसन्न हो गया है, (कामादिक) दुष्ट ग्रास लिए गए हैं, इस प्रकार सत्य परमात्मा को जप कर सत्य प्राप्त कर लिया है। प्रियतम के

राग गउड़ी पूरबी छंत महला ३॥

"जीव रूपी स्त्री की पति रूपी परमेश्वर के सम्मुख विनय।"

सा धन बिनउ करे जीउ
हरि के गुण सारे ॥
खिनु पलु रहि न सकै जीउ
बिनु हरि पिआरे ॥
बिनु हरि पिआरे रहि न साकै
गुर बिनु महलु न पाईऐ ॥
जो गुरु कहै सोई पर कीजै
तिसना अगनि बुझाईऐ ॥
हरि साचा सोई
तिसु बिनु अवरु न कोई
बिनु सेविऐ सुखु न पाए ॥
नानक सा धन मिलै मिलाई
जिस नो आपि मिलाए ॥१॥

ऐ जी ! जीव रूपी स्त्री हरि के आगे विनय करती है और 'उसके' गुणों का स्मरण करती है। ऐ जी ! वह हरि प्यारे के बिना एक क्षण भर के लिए भी रह नहीं सकती। बिना हरि प्यारे के वह रह नही सकती बिना गुरु के पति-परमेश्वर का स्वरूप वह प्राप्त नही कर सकती। इसलिए जो कुछ गुरु कहे उसे भली भांति किया जाय और तृष्णा रूपी अग्नि को भी बुझा देनी चाहिए। हरि ही सच्चा है 'उसके' बिना अन्य कोई भी सत्य नही है, किन्तु बिना (गुरु की) सेवा के (हरि मिलन का)सुख नहीं प्राप्त होता। हे नानक ! जिस जीव रूपी स्त्री को (गुरु) मिलता है, वह हरि रूपी पति से मिलती है। किन्तु (गुरु भी) उसे ही मिलता है, जिसे (हरि) स्वय (कृपा करके) मिलाता है ॥१॥

धन रैणि सुहेलड़ीए जीउ
हरि सिउ चितु लाए ॥
सतिगुरु सेवे भाउ करे जीउ
विचहु आपु गवाए ॥

ऐ जी ! जीव रूपी स्त्री हरि के साथ चित्त लगाती है, उसकी आयु रूपी रात्रि सुखपूर्वक व्यतीत होती है। ऐ जी ! वह सत्गुरु की सेवा प्रेमपूर्वक करती है और अपने अन्तर से अपने-पन की भावना दूर करती है। वह (स्त्री) अन्तर से अपने-पन (अहंकार) की

विचहु आपु गवाए हरि गुण गाए
अनदिनु लागा भाओ ॥
सुणि सखी सहेली जीअ की मेली
गुर कै सबदि समाओ ॥
हरि गुण सारी ता कंत पिआरी
नामे धरी पिआरो ॥
नानक कामणि नाह पिआरी
राम नामु गलि हारो ॥२॥

भावना को दूर करती है और हरि के गुण गाती है, जिससे (हरि के साथ) रात-दिन प्रेम लगा हुआ है। हे प्रिय सखि-सहेली ! हे दिली मेल वाली ! गुरु के शब्द द्वारा ही वह (पति-परमात्मा) उसमें समा जाती है। जब जीव रूपी स्त्री हरि के गुण याद करती है, तब पति (परमात्मा) को वह प्रिय लगती है और नाम के साथ प्रीति लगाती है। हे नानक ! वह जीव रूपी स्त्री परमात्मा को प्रिय है, जिसने अपने कंठ में रामनाम का हार पहना है ॥२॥

धन एकलड़ी जीउ
बिनु नाहि पिआरे ॥
दूजै भाइ मुठी जिउ
बिनु गुर शबद करारे ॥
बिनु शबद पिआरे कउणु दुतरु तारे
माइआ मोहि खुआई ॥
कूड़ि विगुती ता पिरि मुती
सा धन महलु न पाई ॥
गुर सबदे राती सहजे माती
अनदिनु रहै समाए ॥
नानक कामणि सदा रंगि राती
हरि जीउ आपि मिलाए ॥३॥

ऐ जी ! यह जीव-स्त्री पति-प्यारे के बिना अकेली (अर्थात दु:खी) है और गुरु के प्रभावशाली शब्द के बिना वह द्वैत-भाव के कारण ठगी गई है। प्यारे (गुरु) शब्द रूपी जहाज के बिना संसार-समुद्र जो दुष्कर है (अर्थात जिसे पार करना कठिन है), उससे कौन पार उतार सकेगा ? माया के मोह ने इस जीव रूपी स्त्री को भुला दिया है। जब जीव रूपी स्त्री झूठ के कारण (अर्थात विषय विकारों में) खराब हो गई तब परमात्मा रूपी-पति ने उसे त्याग दिया, फिर वह स्त्री स्वरूप अथवा परम धाम को नहीं प्राप्त कर सकती। किन्तु जो जीव रूपी स्त्री (गुरु के) शब्द में अनुरक्त है और जो ज्ञान में मस्त है, वह रात-दिन अपने स्वामी में समाई हुई है। हे नानक ! जो स्त्री प्रेम-रंग में सदैव अनुरक्त रहती है, हरि जी उसी को अपने साथ मिला लेता है ॥३॥

ता मिलीऐ हरि मेले जीउ
हरि बिनु कवणु मिलाए ॥
बिनु गुर प्रीतम आपणे जीउ
कउणु भरमु चुकाए ॥
गुरु भरमु चुकाए इउ मिलीऐ माए
ता सा धन सुखु पाए ॥

ऐ जी ! हरि से तब मिलन होता है, जब हरि स्वयं अपने साथ मिलाता है। (हाँ) हरि के बिना अन्य कौन मिला सकेगा ? ऐ जी ! अपने प्रियतम गुरु के बिना अन्य कौन है, जो भ्रम को दूर कर दे ? हे माता ! जब गुरु भ्रम दूर करता है, तब वह पति रूपी परमात्मा से मिलती है और जब वह मिलती है, तब वह सुख प्राप्त करती है। गुरु की सेवा के बिना घोर अन्धकार है और गुरु के बिना मुक्ति का मार्ग प्राप्त नहीं होता। जो जीव

गुर सेवा बिनु घोर अंधारु
बिनु गुर मगु न पाए ॥
कामणि रंगि राती सहजे माती
गुर कै सबदि वीचारे ॥
नानक कामणि हरि वरु पाइआ
गुर कै भाइ पिआरे ॥४॥१॥

रूपी कामिनी हरि के प्रेम में रंगी हुई है, वह गुरु के शब्द के विचार द्वारा ही सहज ही मस्त हो गई है। हे नानक ! उसी जीव रूपी स्त्री ने गुरु के साथ प्रेम रखने के कारण प्यारे हरि-पति को प्राप्त किया है ॥४॥१॥

गउड़ी महला ३॥

"जीव रूपी स्त्री की पति-प्रियतम के प्रति विनय।"

पिर बिनु खड़ी निमाणी जीउ
बिनु पिर किउ जीवा मेरी माई ॥
पिर बिनु नीद न आवै जीउ
कापड़ु तनि न सुहाई ॥
कापरु तनि सुहावै जा पिर भावै
गुरमती चितु लाईऐ ॥
सदा सुहागणि जा सतिगुरु सेवे
गुर कै अंकि समाईऐ ॥
गुर सबदै मेला ता पिरु रावी
लाहा नामु संसारे ॥
नानक कामणि नाह पिआरी
जा हरि के गुण सारे ॥१॥

ऐ जी ! मैं अपने प्रियतम के बिना अत्याधिक मानहीन हूँ। हे मेरी माता ! बिना प्रियतम के भला मैं कैसे जीवित रह सकती हूँ ? ऐ जी ! प्रियतम के बिना मुझे नीद नही आती और कपड़े भी शरीर पर सुन्दर नही लगते। (हाँ) जब प्रियतम परमात्मा को जीव रूपी स्त्री अच्छी लगती है तब शरीर पर कपड़े सुन्दर लगते हैं, (अतएव) गुरु की शिक्षा लेकर (प्रियतम परमात्मा से) चित्त लगाना चाहिए। वह स्त्री ही सदैव सुहागिन है जो सत्गुरु की सेवा करती है और गुरु के हृदय में समा जाती है (अर्थात गुरु को प्रिय लग जाती है)। जब गुरु के शब्द से मिलाप होता है, तब जीव रूपी स्त्री प्रभु पति में रमण करती है और संसार से (नाम का) लाभ लेकर जाती है। हे नानक ! जीव रूपी स्त्री पति रूपी परमेश्वर को तभी प्यारी लगती है, जब हरि के गुण याद करती है अथवा संभाल करती है ॥१॥

सा धन रंगु माणे जीउ
आपणे नालि पिआरे ॥
अहिनिसि रंगि राती जीउ
गुर सबदु वीचारे ॥
गुर सबदु वीचारे हउमै मारे
इन बिधि मिलहु पिआरे ॥
सा धन सोहागणि सदा रंगि राती
साचै नामि पिआरे ॥

ऐ जी ! वह जीव रूपी स्त्री अपने प्यारे के साथ रंग माणती है, जो दिन-रात गुरु का शब्द विचार कर प्रेम में रंगी हुई है। वह गुरु का शब्द विचार करती है और अहंभाव को निवृत करती है। इस प्रकार वह अपने प्यारे को मिलती है। वह सुहागिन है, क्योंकि वह सदैव प्रेम रंग में रंगी हुई है और उसे सच्चे नामी के नाम में प्यार लगा है। इसलिए अपने गुरु के साथ मिल कर रहना चाहिए और अमृत (रूप उपदेश) ग्रहण करना चाहिए क्योंकि (सत्गुरु का उपदेश) द्वैत-भाव को मार कर

अपने गुर मिलि रहीऐ अंम्रितु
गहीऐ दुबिधा मारि निवारे ॥
नानक कामणि हरि वरु पाइआ
सगले दूख विसारे ॥२॥

(अन्तर से) मेरे-तेरे की भावना निवृत करता है। हे नानक! उस जीव रूपी स्त्री (गुरु के साथ मिलकर) ने हरि सुहाग को प्राप्त करके अपने सब दुःख भुला दिये है ॥२॥

कामणि पिरहु भुली जीउ
माइआ मोहि पिआरे ॥
झूठी झूठि लगी जीउ
कूड़ि मुठी कूड़िआरे ॥
कूड़ु निवारे गुरमति सारे
जूऐ जनमु न हारे ॥
गुर सबदु सेवे सचि समावै
विचहु हउमै मारे ॥
हरि का नामु रिदै वसाए
ऐसा करे सीगारो ॥
नानक कामणि सहजि समाणी
जिसु साचा नामु अधारो ॥३॥

ऐ जी! जो जीव रूपी स्त्री माया से मोह और प्यार करती है, वह अपने प्रियतम से भूली रहती है। ऐ जी! वह झूठे ससार, जो मिथ्या है, से लगी रहती है जिससे झूठी झूठ के द्वारा ही ठगी जाती है। तब वह गुरु की शिक्षा को याद करती है और झूठ (अर्थात् विषय-विकारों) को दूर करती है, तथा (अमूल्य) जन्म जूआ मे नही हारती (अर्थात् निष्फल नही करती)। जब वह (गुरु के) शब्द की सेवा (अर्थात् कमाई) करती है और अन्तर मे अहंभाव को निवृत करती है तब वह सत्य स्वरूप परमात्मा में समा जाती है। हरि का नाम हृदय मे बसाती है, ऐसा वह (शुभ) शृंगार करती है। हे नानक! वह जीव रूपी स्त्री सहज स्वरूप मे समा जाती है, जिसे सच्चे नाम का आधार है ॥३॥

मिलु मेरे प्रीतमा जीउ
तुधु बिनु खरी निमाणी ॥
मै नैणी नीद न आवै जीउ
भावै अंनु न पाणी ॥
पाणी अंनु न भावै मरीऐ हावै
बिनु पिर किउ सुखु पाईऐ ॥
गुर आगै करउ बिनंती
जे गुर भावै जिउ मिलै
तिवै मिलाईऐ ॥
आपे मेलि लए सुखदाता
आपि मिलिआ घरि आए ॥
नानक कामणि सदा सुहागणि
ना पिरु मरै न जाए ॥४॥२॥

ऐ मेरे प्रियतम जी! मुझे आकर मिलो क्योंकि तुम्हारे बिना मैं अत्याधिक मानहीन हूँ। ऐ जी! मुझे नेत्रो मे नींद नही आती और मुझे न अन्न अच्छा लगता है और न पानी ही। (हाँ) मुझे अन्न और पानी अच्छा नही लगता और पति वियोग मे मैं मरती हूँ। हे पति (जी)! तुम्हारे बिना मै कैसे सुख पाऊँगी? इसलिए सतगुरु के आगे तुम्हारे साथ मिलाप के लिए विनती करती हूँ, कि हे गुरु! यदि तुम्हे मेरी विनती प्रिय लगे तो फिर जैसे अच्छा लगे मुझे पति परमेश्वर से मिला दो। गुरु जो सुख देने वाला है, स्वय ही जब आकर मिला तो प्रभु भी स्वय घर में आकर मिला। हे नानक! वह जीव रूपी स्त्री सदैव सुहागिन है क्योंकि उसका पति न (कभी) मरता है और न (कहीं) जाता है ॥४।२॥

गउड़ी महला ३॥

"आनन्दमय मिलन की अवस्था।"

कामणि हरि रसि बेधी जीउ
हरि कै सहजि सुभाए ॥
मनु मोहनि मोहि लीआ जीउ
दुबिधा सहजि समाए ॥
दुबिधा सहजि समाए
कामणि वरु पाए
गुरमती रंगु लाए ॥
इहु सरीरु कूड़ि कुसति भरिआ
गल ताई पाप कमाए ॥
गुरमुखि भगति
जितु सहज धुनि उपजै
बिनु भगती मैलु न जाए ॥
नानक कामणि पिरहि पिआरी
विचहु आपु गवाए ॥१॥

ऐ जी! जो जीव रूपी स्त्री हरि (के नाम) में बिंधी हुई है, वह स्वाभाविक ही हरि के सहजावस्था में (स्थिर) है। ऐ जी! जिसका मन, मोहन प्रभु ने मोहित कर लिया है, उसका द्वैत-भाव सहज ही नाश हो गया है। जीव रूपी स्त्री ने गुरु के उपदेश द्वारा द्वैत-भाव को सहज ही दूर करके और अपने पति को प्राप्त करके, आनन्द का अनुभव किया है। (गुरु की शिक्षा के बिना) यह शरीर झूठ और कुत्सित (असत्य) से गले तक भरा हुआ है और गलतान होकर पाप कमाता है। इसलिए गुरु द्वारा भक्ति करनी ही श्रेष्ठ है, जिससे शान्त रूप प्रवृति अन्तर में उत्पन्न होती है, किन्तु (स्मरण रहे कि) भक्ति के बिना अहंभाव की मैल नहीं जाती।

हे नानक! जो जीव रूपी स्त्री अपने अन्तर से अपने-पन (अहंकार) को गँवाती है, वही स्त्री प्रियतम परमात्मा को प्यारी लगती है ॥१॥

कामणि पिरु पाइआ जीउ
गुर कै भाइ पिआरे ॥
रैणि सुखि सुती जीउ
अंतरि उरि धारे ॥
अंतरि उरि धारे मिलीऐ पिआरे
अनदिनु दुखु निवारे ॥
अंतरि महलु पिरु रावे कामणि
गुरमती वीचारे ॥
अंमृतु नामु पीआ दिन राती
दुबिधा मारि निवारे ॥
नानक सचि मिली सोहागणि
गुर कै हेति अपारे ॥२॥

ऐ जी! जो जीव रूपी स्त्री गुरु के साथ प्रेम करके पति-परमेश्वर प्राप्त करती है, ऐ जी! वह जीवन रूपी रात्रि सुख-पूर्वक व्यतीत करती है और हृदय के अन्दर प्यारे पति को धारण करती है। (हाँ) वह अपने प्यारे प्रियतम को हृदय अन्तर मे धारण करती है और प्रियतम को मिलती है, जिससे रात-दिन अपने दुःख निवृत करती है। ऐसी जीव रूपी स्त्री गुरु की शिक्षा का विचार करके अपने स्वरूप में प्रियतम पति से रमण करती है। वह दिन-रात अमृत रूपी नाम पीती है और द्वैत-भाव को मारकर दूर करती है। हे नानक! जो जीव रूपी स्त्री गुरु के साथ अपार प्रेम करके, सच्चे प्रियतम में अनुरक्त है, वही (स्त्री) सुहागिन है ॥२॥

आवहु दइआ करे जीउ
प्रीतम अति पिआरे ॥
कामणि बिनउ करे जीउ
सचि सबदि सीगारे ॥
सचि सबदि सीगारे हउमै मारे
गुरमुखि कारज सवारे ॥
जुगि जुगि एको सचा सोई
बूझै गुर बीचारे ॥
मनमुखि कामि विआपी
मोहि संतापी
किसु आगै जाइ पुकारे ॥
नानक मनमुखि थाउ न पाए
बिनु गुर अति पिआरे ॥३॥

ऐ मेरे अत्याधिक प्रिय प्रियतम जी ! दया करके (मेरे) हृदय-घर में) आओ। ऐ जीव ! ऐसी विनय जीव रूपी स्त्री करती है और गुरु के सच्चे शब्द द्वारा शृंगार करती है। (हाँ) वह गुरू के पढ़े शब्द द्वारा शृंगार करती है और अहंभाव को निवृत करती है तथा गुरमुख बनकर (अपनी आत्मा का) कार्य सँवारती है। युग-युगान्तर से 'वह' एक सच्चा परमात्मा है 'उसे' वह गुरु के विचार द्वारा समझती है। किन्तु जो जीव रूपी स्त्री मनमुख है उसे काम व्याप्त हो गया है और मोह के कारण दुःखी है। वह किसके आगे जाकर पुकारेगी ?

हे नानक ! गुरु से अत्याधिक प्यार करने के बिना (बेचारी) मनमुख रूपी जीव-स्त्री (अटल) स्थान को प्राप्त नहीं कर सकती ॥३॥

मुंध इआणी भोली निगुणीआ जीउ
पिरु अगम अपारा ॥
आपे मेलि मिलीऐ जीउ
आपे बखसणहारा ॥
अवगण बखसणहारा
कामणि कंतु पिआरा
घटि घटि रहिआ समाई ॥
प्रेम प्रीति भाइ भगती पाईऐ
सतिगुरि बूझ बुझाई ॥
सदा अनंदि रहै दिन राती
अनदिनु रहै लिव लाई ॥
नानक सहजे हरि वरु पाइआ
सा धन नउनिधि पाई ॥४॥३॥

ऐ जी ! यह जीव रूपी स्त्री नासमझ, भोली और गुणहीन है किन्तु प्रियतम परमात्मा अगम्य और अपार है। ऐ जी ! 'वह' अवगुण क्षमा करने वाला है और कृपा करके स्वय ही अपने साथ मिला देता है। (हाँ) 'वह' अवगुण क्षमा करने वाला प्रियतम जीव रूपी स्त्री को प्यारा है जो घट-घट मे समाया हुआ है। सतुगुरु ने यह समझ (शिक्षा) समझाई है कि 'वह' मन के प्रेम, तन की प्रीति और वाणी की प्रेमाभक्ति से प्राप्त होता है। जो जीव रूपी स्त्री हरि-पति प्राप्त करती है, वह रात-दिन आनन्द में लौ लगाये रहती है।

हे नानक ! ऐसी स्त्री सहज ही हरि पति प्राप्त करके नवनिधियाँ प्राप्त करती है ॥४॥३॥

गउड़ी गुआरेरी महला ३॥

माइआ सरु सबलु वरतै जीउ
किउ करि दुतरु तरिआ जाइ ॥
राम नामु करि बोहिथा जीउ
सबदु खेवटु विचि पाइ ॥
सबदु खेवटु विचि पाए हरि आपि
लघाए इन बिधि दुतरु तरीऐ ॥
गुरमुखि भगति परापति होवै
जीवतिआ इउ मरीऐ ॥
खिन महि राम नामि
किल विख काटे
भए पवितु सरीरा ॥
नानक राम नामि निसतारा
कंचन भए मनूरा ॥१॥

"माया रूपी बलयुक्त सरोवर से हे जीव ! पार हो !"

(प्रश्न:) ऐ (सत्गुरु) जी ! (इस संसार) सरोवर में माया बलपूर्वक अपना बल बरत रही है, इसलिए इस कठिन संसार-सागर से कैसे पार उतरा जाय ? (उत्तर:) ऐ (भाई) जी ! राम नाम का जहाज कर और (गुरु के) शब्द को उस जहाज का मल्लाह कर। (हाँ) जब तू (गुरु के) शब्द को मल्लाह करेगा, तब हरि स्वयं आकर तुझे (दुष्कर संसार-सागर से) पार उतारेगा और इस प्रकार तू कठिन भव-सागर से पार उतर जायेगा। गुरु द्वारा ही हरि की भक्ति प्राप्त होती है और उसके प्रताप से ही यह जीव मर जाता है (अर्थात अपना आपाभाव दूर करके मल हीन होता है)। क्षण भर में राम नाम (जन्म जन्मान्तरों के) पाप काट देता है और यह शरीर पवित्र हो जाता है।

हे नानक ! राम नाम के कारण छुटकारा होता है और यह संसारी जीव, जो लोहे की मैल सदृश है, वह भी स्वर्ण हो जाता है (अर्थात बुरा भी अच्छा हो जाता है) ॥१॥

इसतरी पुरख कामि विआपे जीउ
राम नाम की बिधि नही जाणी ॥
मात पिता सुत भाई खरे पिआरे
जीउ बूडि मुए बिनु पाणी ॥
बूडि मुए बिनु पाणी
गति नही जाणी
हउमै धातु संसारे ॥
जो आइआ सो सभु को जासी
उबरे गुर वीचारे ॥
गुरमुखि होवै राम नामु वखाणै
आपि तरै कुल तारे ॥
नानक नामु वसै घट अंतरि
गुरमति मिले पिआरे ॥२॥

ऐ जी ! (कलियुग में) स्त्री पुरुष काम वासना में व्याप्त हो रहे हैं, जिसके फलस्वरूप रामनाम जपने की विधि नहीं जानी है। ऐ जी ! माता, पिता, पुत्र भाई उसे अत्याधिक प्यारे लग गये हैं। (अतएव माया के समुद्र में) बिना पानी के वे डूब कर मर गये हैं। (हाँ) बिना पानी के वे डूब कर मरते हैं, क्योंकि उन्होंने (मोह-माया से बचने की) रीति नही जानी और अहंकार के कारण संसार में भटकते फिरते हैं। (हे भाई !) जो (इस संसार में) आये हैं, वे सब चले जायेंगे, किन्तु जो गुरमुख होकर गुरु के वचनों पर विचार करते हैं, वे ही माया के समुद्र से पार उतरते हैं। वे राम नाम का उच्चारण करते हैं। वे स्वयं तो पार होते हैं, किन्तु अपना समस्त कुटुम्ब भी पार करते हैं।

हे नानक ! गुरमुखों के अन्तर में नाम बसता है और वे गुरु की शिक्षा द्वारा अपने प्यारे परमेश्वर से (जाकर) मिलते हैं ॥२॥

राम नाम बिनु को थिरु नाही जीउ
बाजी है संसारा ॥
द्रिड़ु भगति सची जीउ
रामु नामु वापारा ॥
राम नामु वापारा अगम अपारा
गुरमती धनु पाईऐ ॥
सेवा सुरति भगति इह साची
विचहु आपु गवाईऐ ॥
हम मति हीण मूरख मुगध अंधे
सतिगुरि मारगि पाए ॥
नानक गुरमुखि सबदि सुहावे
अनदिनु हरि गुण गाए ॥३॥

ऐ जी ! रामनाम के बिना कोई भी स्थिर नहीं है। यह संसार एक बाजी (खेल) है। ऐ जी ! तू सच्ची भक्ति दृढ़ करके रामनाम का व्यापार कर। (हाँ) तू रामनाम का व्यापार कर, जो अगम्य और अपार है। यह राम नाम का धन गुरु की शिक्षा से ही प्राप्त होता है। सेवा ध्यान और भक्ति यह सच्ची तब होगी, जब अपने भीतर से आपाभाव को दूर करेगा। मैं मति से हीन, मूर्ख, अनजान और अन्धा (अज्ञानी) था, किन्तु (मेरे) सत्गुरु ने ही (सच्चे मार्ग पर) लगाया है।

हे नानक ! गुरमुख ही (सत्गुरु के उपदेश के कारण) शोभायमान होते हैं और रात दिन (आठ ही प्रहर) हरि के गुण गाते हैं ॥३॥

आपि कराए करे आपि जीउ
आपे सबदि सवारे ॥
आपे सतिगुरु आपि सबदु जीउ
जुगु जुगु भगत पिआरे ॥
जुगु जुगु भगत पिआरे
हरि आपि सवारे
आपे भगती लाए ॥
आपे दाना आपे बीना
आपे सेव कराए ॥
आपे गुणदाता अवगुण काटे
हिरदै नामु वसाए ॥
नानक सद बलिहारी सचे विटहु
आपे करे कराए ॥४॥५॥

ऐ जी ! (प्रभु) स्वयं करता है और स्वयं ही कराता है तथा स्वयं ही (प्रभु) (गुरु के) शब्द द्वारा सँवारता है। ऐ जी ! फिर (प्रभु) स्वयं ही सत्गुरु है और स्वयं ही शब्द है। (प्रभु को) युग-युगान्तरों से भक्त प्यारे हैं। (हाँ) युग युगान्तरों से भक्त हरि को प्यारे हैं। वह हरि स्वयं ही उन्हें सँवारता है और स्वयं ही उन्हें अपनी भक्ति में लगाता है। (हरि) स्वयं ही जानने वाला है और स्वयं ही (हमारे कर्म) देखने वाला है तथा स्वयं ही जीवों से सेवा कराने वाला है। 'वह' स्वयं गुणों का दाता हृदय में नाम बसाकर अवगुणों को काटता है।

हे नानक ! मैं ऐसे सत्य स्वरूप हरि के ऊपर बलिहारी जाता हूँ, जो स्वयं ही सब कुछ करता है और (स्वयं ही) कराता है ॥४॥५॥

गउड़ी महला ३॥

"शुभ मन को उपदेश"

गुर की सेवा करि पिरा जीउ
हरि नामु धिआए ॥
मंञहु दूरि न जाहि पिरा जीउ
घरि बैठिआ हरि पाए ॥
घरि बैठिआ हरि पाए
सदा चितु लाए
सहजे सति सुभाए ॥
गुर की सेवा खरी सुखाली
जिस नो आपि कराए ॥
नामो बीजे नामो जंमै
नामो मंनि वसाए ॥
नानक सचि नामि वडिआई
पूरबि लिखिआ पाए ॥१॥

ऐ प्रिय (पति) जी ! (शुद्ध मन को उपदेश है।) तू गुरु की सेवा करके हरि के नाम का ध्यान कर। ऐ प्रिय जी ! तू मुझसे दूर न जा (अर्थात् मेरा कहना मान)। तू घर बैठे ही हरि को प्राप्त करेगा। (हाँ) घर बैठे ही हरि प्राप्त होगा यदि तू हरि के साथ चित्त लगायेगा। (यह मेरा कहना यदि मानेगा तो फिर) सहज ही सत्य स्वरूप को प्राप्त करके शोभायमान होगा। गुरु की सेवा अत्यन्त सुखद है, किन्तु यह सेवा जिससे 'वह' स्वयं कराता है वही करता है। नाम को (मन में) बो (अर्थात श्रवण कर), नाम को ही (मन में) उत्पन्न कर (अर्थात मनन कर) और नाम को ही (मन में) बसा (अर्थात निध्यासन कर)।

हे नानक ! इस प्रकार सत्य नाम (जपने) से (सदैव) बड़ाई मिलती है, किन्तु पूर्वकर्म के लिखे (श्रेष्ठ लेख) अनुसार ही नाम पाया जाता है ॥१॥

हरि का नामु मीठा पिरा जीउ
जा चाखहि चितु लाए ॥
रसना हरि रसु चाखु मुये जीउ
अन रस साद गवाए ॥
सदा हरि रसु पाए जा हरि भाए
रसना सबदि सुहाए ॥
नामु धिआए सदा सुखु पाए
नामि रहै लिव लाए ॥
नामे उपजै नामे बिनसै
नामे सचि समाए ॥
नानक नामु गुरमती पाईऐ
आपे लए लवाए ॥२॥

ऐ प्रिय (पति) जी ! हरि का नाम (अति) मीठा है, यदि तू चित्त लगाकर चखे। ऐ जी ! (विषयों के) अन्य रस और स्वाद दूर करके, ऐ मरण योग्य ! (प्यार से डाँट कर कहा है) तू हरि नाम का रस रसना से चख। हे रसना ! जब हरि भा जायेगा और जब शब्द उच्चारण करके शोभायमान होगी, तभी तू हरि रस (आनन्द) प्राप्त करेगी। (हे भाई !) तू नाम का ध्यान करेगा और नाम से ही लौ लगाकर रहेगा, तब तू सदैव सुख प्राप्त करेगा। (हाँ) नाम के कारण ही (श्रेष्ठ) गुण (अर्थात् सत्य, सन्तोष, धैर्य, वैराग्यादि) उत्पन्न होते हैं और नाम के कारण ही (सब अवगुण अर्थात् काम, क्रोध, पाखंड, ईर्ष्यादि) नाश होते हैं तथा नाम के कारण ही सत्य स्वरूप में समाया जा सकता है।

हे नानक ! गुरु की भक्ति द्वारा ही (हरि) नाम प्राप्त होता है, किन्तु जिनसे प्रभु स्वयं नाम जपाता है, वे ही नाम जपते हैं ॥२॥

एह विडाणी चाकरी पिरा जीउ
धन छोडि परदेसि सिधाए ॥
दूजै किनै सुखु न पाइआ पिरा जीउ
बिखिआ लोभि लुभाए ॥
बिखिआ लोभि लुभाए
भरमि भुलाए
ओहु किउ करि सुखु पाए ॥
चाकरी विडाणी खरी दुखाली
आपु वेचि धरमु गवाए ॥
माइआ बंधन टिकै नाही
खिनु खिनु दुखु संताए ॥
नानक माइआ का दुखु तदे चूकै
जा गुर सबदी चितु लाए ॥३॥

ऐ (जीव रूपी प्रिय) पति जी ! यह परायी (दूसरों की) नौकरी है, जो तू मुझ स्त्री को छोडकर प्रदेश में जाता है (अर्थात बहि-मुखी होकर सकाम कर्मों में लगा रहता है)। ऐ जीव रूपी पति जी ! द्वैत-भाव मे लगकर और विषयों के लोभ में लुभायमान होकर किसी ने भी सुख नहीं पाया है। (हाँ) जो जीव विषयों के लोभ में लोभायमान होकर भ्रम में भूल गया है, वह कैसे सुख प्राप्त कर सकेगा ? एक प्रभु को छोड़कर दूसरो की नौकरी बहुत दुखदायक है, मानों स्वयं अपने आपको बेचकर अपना धर्म गँवाना है। माया के बन्धन (जो विनश्वर हैं) टिकते नही। प्रतिक्षण वे बदलते हैं इसलिए दुख उसको तग करते हैं।

हे नानक ! माया का दुःख तभी निवृत होगा जब, हे जीव ! तू गुरु के शब्द में (अपना) चित्त लगायेगा ॥३॥

मनमुख मुगध गावारु पिरा जीउ
सबदु मनि न वसाए ॥
माइआ का भ्रमु अंधु पिरा जीउ
हरि मारगु किउ पाए ॥
किउ मारगु पाए बिनु सतिगुर भाए
मनमुखि आपु गणाए ॥
हरि के चाकर सदा सुहेले
गुर चरणी चितु लाए ॥
जिस नो हरि जीउ करे किरपा
सदा हरि के गुण गाए ॥
नानक नामु रतनु जगि लाहा
गुरमुखि आप बुझाए ॥४॥५॥७॥

ऐ (जीव रूपी प्रिय) पति जी ! तू मनमुख, बेसमझ और मूर्ख है क्योंकि (गुरु का) शब्द तू मन में नही बसाता। ऐ (जीव रूपी प्यारे) पति जी ! तू माया के भ्रम के कारण (भटकता हुआ) अन्धकार मे है कैसे हरि का मार्ग प्राप्त कर सकेगा ? (हाँ) सत्गुरु को भाये बिना तू कैसे हरि का मार्ग प्राप्त कर सकेगा ? तू मनमुखता के कारण अपने आपको किसी गिणती में प्रकट करता है। किन्तु जो हरि के (सेवको के सेवक का) चाकर है, वह सदा सुखी है। वह गुरु के चरणों में चित्त लगाता है। जिस पर हरि जी स्वयं कृपा करता है, वही सदैव हरि के गुण गाता है ।

हे नानक ! जिस (जीव) को हरि गुरु द्वारा समझाता है, उसे ही नाम रूपी रत्न का लाभ इस जगत में प्राप्त होता है ॥४॥५॥७॥

रागु गौड़ी छंत महला ५॥

"एक प्रभु के दर्शन की उत्कंठा।"

मेरै मनि बैरागु भइआ जीउ
किउ देखा प्रभ दाते ॥
मेरे मीत सखा हरि जीउ
गुर पुरख बिधाते ॥
पुरखो बिधाता एकु स्रीधरु
किउ मिलह तुझै उडीणीआ ॥
कर करहि सेवा सीसु चरणी
मनि आस दरस निमाणीआ ॥
सासि सासि न घड़ी विसरै
पलु मूरतु दिनु राते ॥
नानक सारिंग जिउ पिआसे
किउ मिलीऐ प्रभ दाते ॥१॥

ऐ (महाराज) जी ! मेरे मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ है कि तुम प्रभु दातार को मैं कैसे देखूं ? हे मेरे मित्र साथी हरि जी ! तू बडे कर्मों का फल देने वाला (विधाता) पुरुष है। हे लक्ष्मी के पति (विष्णु जी) ! तू कर्मों का फल देने वाला पुरुष है और तू ही (केवल) एक है।

(हे प्यार !) मैं उदास (व्याकुल) तुमको कैसे मिलूं ? मैं तेरी प्रतीक्षा कर रही हूँ। मैं हाथों से तुम्हारी सेवा करती हूँ और अपना सिर तुम्हारे चरणों पर रखती हूँ। मुझ मानहीन के मन में तुम्हारे दर्शन की आशा है। (हे प्रभु !) (यह कृपा करो कि) एक घड़ी, दो घड़ीआं (मुहूर्त), पल मात्र, रात दिन, (हाँ) स्वास-प्रश्वास तुम्हें जपती रहूँ। मैं तुझे कभी भी न भूलूं।

हे नानक ! प्यासे पपीहे (पक्षी) जैसे (मैं पीयू पीयू कर रही हूँ) · हे प्रभु दातार ! कैसे (तुमको) मिलूं ?॥१॥

इक बिनउ करउ जीउ
सुणि कंति पिआरे ॥
मेरा मनु तनु मोहि लीआ जीउ
देखि चलत तुमारे ॥

ऐ प्रिय पति जी ! मैं एक विनय करती हूँ। सुनो। तुम्हारे चरित्र को देखकर मेरा मन तन मोहित हो गया है। (हाँ) तुम्हारे चरित्रों को देखकर मैं मोहित हो गई हूँ। अब (मुझ) उदास स्त्री को कैसे धैर्य आये ?

[illegible]
उदास मन किउ धीरए ॥
गुणवंत नाह दइआलु बाला
सरब गुण भरपूरए ॥
पिर दोसु नाही सुखह दाते
हउ विछुड़ी बुरिआरे ॥
बिनवंति नानक दइआ धारहु
घरि आवहु नाह पिआरे ॥२॥

हे गुणीवान पति (जी) ! हे दयालु (प्रभु) ! तुम नित्य यौवन सम्पन्न हो और समस्त गुणों से परिपूर्ण हो।

हे सुखदायी दाता (जी) ! आपका कोई दोष नही है। मैं ही बुरी होने के कारण आपसे बिछुड़ी हूँ।

हे नानक ! मैं अब विनय करती हूँ। दया (दृष्टि) धारण करके हे प्यारे पति (जी) ! अब (मेरे) घर आ जाओ ॥२॥

हउ मनु अरपी सभु तनु अरपी
अरपी सभि देसा ॥
हउ सिरु अरपी तिसु मीत पिआरे
जो प्रभ देइ सदेसा ॥
अरपिआ त सीसु सुथानि गुर पहि
संगि प्रभू दिखाइआ ॥
खिन माहि सगला दूखु मिटिआ
मनहु चिंदिआ पाइआ ॥
दिनु रैणि रलीआ करै कामणि
मिटे सगल अंदेसा ॥
बिनवंति नानकु कंतु मिलिआ
लोड़ते हम जैसा ॥३॥

(हे प्रभु जी !) मैं तुझे अपना मन अर्पण करती हूँ, तुझे अपना सारा शरीर अर्पण करती हूँ और सारा (अपना) देश अर्पण करती हूँ (अर्थात इन्द्रिय, प्राणादि सब अर्पण करती हूँ)। मैं उस प्यारे मित्र को (अपना) सिर भी अर्पण करती हूँ, जो मुझे तुझ प्रभु (की प्राप्ति) के लिए सन्देश देता है। (हाँ) अर्पण करती हूँ अपना सिर सत्संग रूपी स्थान पर जाकर जिस गुरु ने मुझे तुझ प्रभु को अपने साथ दिखा दिया है। इसलिए क्षण भर मे (विछोह के सारे) दुःख मिट गये और मन-वांछित फल मुझे प्राप्त हो गये। अब मैं स्त्री दिन रात आनन्द मगल करती हूँ। (खुशियाँ मनाती हूँ) क्योंकि मेरे सारे सशय मिट गए हैं।

(मेरे गुरुदेव बाबा) नानक विनती करते हैं कि मुझे (अपना प्रिय) पति मिल गया जैसा मैं चाहती थी ॥३॥

मेरै मनि अनदु भइआ जीउ
वजी वाधाई ॥
घरि लालु आइआ पिआरा
सभ तिखा बुझाई ॥
मिलिआ त लालु गुपालु ठाकुरु
सखी मंगलु गाइआ ॥
सभ मीत बंधप हरखु उपजिआ
दूत थाउ गवाइआ ॥

ऐ (महाराज) जी ! (तुम पति को मिलने से) मेरे मन में आनंद हुआ है और वाधाई प्रकट हुई है। हे प्यारे लाल ! तू मेरे हृदय रूपी घर में आया है, जिससे सारी प्यास बुझ गई है। (हाँ) हे प्यारे लाल ! हे गोपाल ! जब तू मुझे मिला तभी सखियों ने) (खुशी के) मंगलमय गीत गाये। सभी मित्रों और सम्बन्धियों (अर्थात सत्, सन्तोष आदि को शरीर में) हर्ष उत्पन्न हुआ और (काम, क्रोधादि) दुष्ट का स्थान मैंने जड़ से उखाड़ दिया (अर्थात उनको पास नही रहने दिया)। अब मेरे हृदय रूपी घर में अनाहत बाजे बजे हैं क्योंकि तुम पति को अपने अंग-संग

अनहत वाजे वजहि घर महि
पिर संगि सेज विछाई ॥
बिनवंति नानकु सहजि रहै
हरि मिलिआ कंतु सुखदाई ॥४॥१॥

समझ कर मैंने तुम्हारे लिए श्रद्धा रूपी शय्या बिछाई है।

(मेरे गुरुदेव बाबा) नानक विनय करते हैं कि अब सुख-दायी पति मुझे सहज स्वभाव ही मिला है (घर आया है अर्थात् अब मैं आत्मिक स्थिरता में टिकी रहती हूँ) ॥४॥१॥

विशेष : बाबा मोहन, गुरु अमरदास साहब के ज्येष्ठ पुत्र थे। आप गोइन्दवाल एक मकान में एकाकी रहते और सदा ईश्वर के ध्यान में मग्न रहते थे। इस मकान के चौबारे के नीचे गली में बैठकर गुरु अर्जन देव ने यह शब्द सरदे के साथ गायन किया और बाबाजी को प्रसन्न करके उससे पहले गुरुओं की एकत्र वाणी की पुस्तकें (पोथियाँ) ले आये। इनसे श्री गुरु ग्र थ साहब का संकलन किया गया।

गउड़ी महला ५॥

"विनय पद बाबा मोहन जी के प्रति।"

मोहन तेरे ऊचे मंदर
महल अपारा ॥
मोहन तेरे सोहनि दुआर जीउ
संत धरमसाला ॥
धरमसाल अपार दैआर ठाकुर
सदा कीरतनु गावहे ॥
जह साध संत इकत्र होवहि
तहा तुझहि धिआवहे ॥
करि दइआ मइआ दइआल सुआमी
होहु दीन क्रिपारा ॥
बिनवंति नानक दरस पिआसे
मिलि दरसन सुखु सारा ॥१॥

हे (बाबा) मोहन (जी)! तुम्हारा मन्दिर (चौबारा) ऊँचा है और महल भी अपार है। हे (बाबा) मोहन (जी)! तुम्हारी धर्मशाला के द्वार पर (उदासी) सन्त सुशोभित हो रहे हैं।

(हाँ) तुम्हारी धर्मशाला में सन्त अनन्त और दयालु ठाकुर की सदैव कीर्ति (स्तुति) करते हैं। जहाँ साधु-सन्त एकत्र होते हैं, वहाँ तुम्हे ध्याते है। हे दयालु स्वामी (जी)! दया और रहम कर। दीनो पर कृपा कर।

(मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (रूप गुरु अर्जनदेव) विनय करते हैं कि मैं तो तुम्हारे दर्शन का प्यासी हूँ। तुम्हारा दर्शन प्राप्त करके ही सारा सुख प्राप्त होगा ॥१॥

नोट : बाबा मोहन जी ने मीठे मनमोहित शब्द का आलाप सुनकर द्वार खोलकर गली में शान्त-स्वरूप सतुगुरु को बैठे देखकर शिकायत रूप में कुछ निम्नलिखत शब्द कहे—यथा: "आपने हमारी अमूल्य वस्तु हमारे पिताजी से ले ली। अब और क्या लेना है? अब सतुगुरुओ के वचन भी हमारे पास नही रहने देोगे? मेरे गुरुदेव ने इस पर कोई भी प्रत्युत्तर नहीं किया बल्कि सरंदा उठाकर इस छन्त का दूसरा पद उच्चारण करने लगे। यथा:

मोहन तेरे बचन अनूप
चाल निराली ॥
मोहन तूं मानहि एकु जी
अवर सभ राली ॥
मानहि त एकु अलखु ठाकुर
जिनहि सभ कल धारीआ ॥
तुधु बचनि गुर कै वसि कीआ
आदि पुरखु बनवारीआ ॥
तूं आपि चलिआ आपि रहिआ
आपि सभ कल धारीआ ॥
बिनवंति नानक पैज राखहु
सभ सेवक सरनि तुमारीआ ॥२॥

हे (बाबा) मोहन (जी)! तुम्हारे बचन अनुपम हैं और तुम्हारी (रहन सहन की) चाल निराली है (एकान्त रहन सहन की ओर संकेत है)। हे (बाबा) मोहन (जी)! तुम अपने हृदय में एक परमात्मा को ही मानते हो तथा अन्य सबको तुमने मिट्टी के समान समझा है। (हाँ) तुम एक को ही अलक्ष्य ठाकुर करके मानते हो, जिसने सारी शक्ति धारण की हुई है। तुमने गुरु के वचनों के द्वारा बनवारी (कृष्ण भगवान), जो आदि पुरुष परमात्मा है 'उसको' वश में कर लिया है। (गुरु अमरदास जी रूप होकर) तुम संसार से चले गए (अर्थात ज्योती ज्योति समाये हो और मोहन जी रूप होकर आप संसार में) स्थित हो रहे हो। सब शक्ति तुमने ही धारी हुई हैं। (बाबा) नानक (रूप गुरु अर्जनदेव) विनय करते हैं कि मेरी लज्जा रखो (क्योंकि कहीं बाबा बुढा जी और भाई गुरदास जी जैसे मुझे भी खाली नहीं जाना पड़े)। सारे सेवक तुम्हारी शरण में आए हैं ॥२॥

नोट : बाबा मोहन जी यह पद सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए और मन में विचार उठा कि चारों आदि गुरुओं की पवित्र ज्योति गुरु अर्जनदेव में ही है। क्रोध और ईर्ष्या तो इनमें कदाचित नहीं है। मैंने कठोर अक्षर कहे किन्तु गुरुदेव ने सन्तोष ही धारण किया। बाबा जी प्रेम सहित चौबारे से बाहर आए और आकर मेरे गुरुदेव के दर्शन किए तथा कहने लगे "धन्य हो आप, आप अवश्य ही क्षमा के सागर हो।" गुरुदेव ने छन्त का तीसरा पद उच्चारण किया। *यथा :*

मोहन तुधु सत संगति धिआवै
वरस धिआना ॥
मोहन जमु नेड़ि न आवै
तुधु जपहि निदाना ॥
जमकालु तिन कउ लगै नाही
जो इक मनि धिआवहे ॥
मनि बचनि करमि जि तुधु अराधहि
से सभे फल पावहे ॥
मल मूत मूड़ जि मुगध होते
सि देखि दरसु सुगिआना ॥
बिनवंति नानक राजु निहचलु
पूरन पुरख भगवाना ॥३॥

हे (बाबा) मोहन (जी)! तुम्हें सत्संगति ध्याती है और विचार करती है कि तुम्हारा दर्शन कैसे प्राप्त हो? हे (बाबा) मोहन (जी)! जो जीव तुम्हें अन्त के समय जपते हैं उनके निकट यम नहीं आता। (हाँ) यमकाल उनको नहीं लगता जो एकाग्र मन से तुम्हें ध्याते हैं। जो जीव मन, वचन और कर्मों से तुम्हारी आराधना करते हैं वे सभी फल प्राप्त करते हैं। जो जीव मलीन, गन्दे, मूर्ख और अनजान हैं वे भी तुम्हारा दर्शन करके श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करते हैं।

(मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (रूप गुरु अर्जनदेव) विनय करते हैं कि तुम्हारा राज्य निश्चल है और तुम पूर्ण स्वरूप भगवान हो ॥३॥

नोट : तीसरा पद सुनकर बाबा मोहन जी अपने चौबारे से नीचे उतर कर सत्गुरु के चरणों में आकर गिर पड़े और हाथ जोड़कर विनती की कि मेरे अपराध क्षमा करो। मेरे गुरुदेव ने कहा "मैं छोटा हूँ, मेरे आगे मस्तक नही झुकाओ। यह योग्य नही। आप हमारे माता जी के भाई हैं और बड़े गुरु के ज्येष्ठ पुत्र हैं। आप योग, वैराग्य और ज्ञान से परिपूर्ण हैं। मुझे आपके आगे नमस्कार करनी चाहिए।" बाबा मोहन जी यह विनम्र वचन सुनकर बोल उठे "आप मे वही ज्योति है। दया करके मेरी अविद्या क्षमा करो। मैंने अपने पिता की महिमा को नही जाना और उनका कहना नहीं माना। जब उन्होंने गुरगद्दी गुरु रामदासजी को दी, तब मुझे कहा कि उसको माथा टेको, किन्तु मुझे हठ था कि मैं तो गुरु का पुत्र हूँ। अतः मैंने पिता की आज्ञा नही मानी। फिर मेरे भाई मोहरी जी को हुक्म दिया। उसने सहर्ष सत्गुरु का हुक्म माना जिस पर सत्गुरु ने मोहरी जी को आशीर्वाद दी कि "तू बड़ा भाग्यशाली होगा, तुझे रिद्धियाँ, सिद्धियाँ और नव-निद्धियाँ प्राप्त होगी, तू सदा सुखी रहेगा और अन्त में आकर मुझे मिलेगा।" फिर गुरु रामदास साहब गुरगद्दी पर बैठे और उनकी महिमा चारों दिशाओं में फैल गई। पिताजी के अन्तरध्यान के बाद मुझे विचार उठा कि मैंने अयोग्य किया है इसलिए मैंने बहुत पश्चात्ताप् किया है। अब मैंने निश्चय किया है कि पोथियाँ आपको देकर अपनी भूल क्षमा कराऊँ। आज ऐसा अवसर मुझे प्राप्त हुआ है। बाबा मोहन जी के नम्रतापूर्वक शब्दो को सुनकर मेरे गुरुदेव प्रसन्न हुए और वर दिया कि आपको 'चौथे पद' की प्राप्ति होगी और छन्त का चतुर्थ पद उच्चारण किया। यथा :

मोहन तूं सुफलु फलिआ
सणु परवारे ॥
मोहन पुत्र मीत भाई कुटंब
सभि तारे ॥
तारिआ जहानु लहिआ अभिमानु
जिनी दरसनु पाइआ ॥
जिनी तुधनो धंनु कहिआ
तिन जमु नेड़ि न आइआ ॥
बेअंत गुण तेरे कथे न जाही
सतिगुर पुरख मुरारे ॥
बिनवंति नानक टेक राखी
जितु लगि तरिआ संसारे ॥४॥२॥

हे (बाबा) मोहन (जी)! तू कुटुम्ब सहित श्रेष्ठ गुण करके फलीभूत है। हे (बाबा) मोहन (जी)! तुमने पुत्र, मित्र, भाई सारे कुटुम्ब को पार किया है। (हाँ) जिन्होंने तुम्हारा दर्शन पाया है, उनका अभिमान दूर हुआ है और उनको तुमने संसार-सागर से पार किया है। जिन्होंने तुमको धन्य कहा है कि धन्य "बाबा मोहन जी" उनके निकट यमकाल नहीं आयेगा। हे (बाबा) मोहन (जी)! तुम्हारे गुण अनन्त हैं, कुछ भी कथन नही किये जा सकते। तू सत्गुरु और मुरारी पुरुष के रूप हो। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (रूप गुरु अर्जनदेव) विनयपूर्वक कहते हैं कि पोथियाँ देकर तुमने हमारी टेक (लज्जा) रखी है, जिस वाणी के सहारे लगकर (समस्त) ससार ने पार होना है (याद रहे, इन दो पोथियो की भी सहायता से गुरु ग्रन्थ साहब का सकलन किया गया।) ॥४॥२॥

चतुर्थ पद के उच्चारण के पश्चात् मेरे गुरुदेव ने कहा कि "हे बाबा जी! आपने महान उपकार किया है, जो सत्गुरुओ की वाणी एकत्रित करके सुरक्षित रखी है जिससे समस्त ससार का कल्याण होगा।" बाबा जी ने यह पोथियाँ मेरे गुरुदेव को श्रद्धा व प्यार सहित दी।। मेरे गुरुदेव ने रामसर के किनारे, अमृतसर मे आकर श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का सकलन और सम्पादन प्रारम्भ कर दिया।

नोट : "मोहन तू सुफलु फलिआ संगु परवारे ॥" अर्थात् "ऐ मोहन! तू अपने परिवार सहित फूलो-फलो।" से यही प्रतीत होता है कि उपर्युक्त छन्त बाबा मोहन के लिए कहा गया है। गुरबाणी में परमात्मा की स्तुति किसी भी स्थल पर इस ढग से नहीं की गई है। अतएव प्रो० साहिब सिंह जी के मत में अभी विद्वानो के परीक्षण की अधिक आवश्यकता है।

गउड़ी महला ५॥

सलोकु ॥ पतित असंख पुनीत करि
पुनह पुनह बलिहार ॥
नानक राम नामु जपि पावको
तिन किलविख दाहनहार ॥१॥

"जप मन ! तू राम नारायण गोविंद हरि माधव।"

(हे मन !) असंख्य पापियों को जो पवित्र करने वाला (गोविन्द) है, उसके ऊपर पुनः पुनः बलिहारी जाना चाहिए। हे नानक ! रामनाथ को जपना एक अग्नि समान है यह (राम नाम रूपी अग्नि) पापों रूपी तिनकों को (क्षण भर में) जला देने वाली है ॥१॥

छंत ॥ जपि मना तूं
राम नराइण गोविंदा हरि माधो ॥
धिआइ मना मुरारि मुकंदे
कटीऐ काल दुख फाथो ॥
दुख हरण दीन सरण स्रीधर
चरन कमल अराधीऐ ॥
जम पंथु बिखड़ा अगनि सागरु
निमख सिमरत साधीऐ ॥
कलि मलह दहता सुधु करता
दिनसु रैणि अराधो ॥
बिनवंति नानक करहु किरपा
गोपाल गोबिंद माधो ॥१॥

हे मन ! तू राम, नारायण, गोविन्द, हरि, माधव को जप। हे मन ! तू मुरारी और मुकुन्द भगवान का ध्यान कर जिससे तुम्हारी काल की दुखदायक फासी कट जायेगी। जो दुख-हर्त्ता है, दीनों (और दुखियों) को शरण देने वाला है, और लक्ष्मी को धारण करने वाले-विष्णु भगवान के चरण कमलों की आराधना कर। यम का मार्ग जो कठिन है और अग्नि-सागर जो ससार है, ये दोनों परमात्मा का नाम निमिष मात्र भी स्मरण करने से पार किये जाते है। (हे मन !) (हरि का नाम) जो पापों को जलाने वाला है और (मन को) शुद्ध करने वाला है, उसकी तू दिन रात आराधना कर। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक विनय करते हैं कि हे गोपाल ! हे गोविन्द ! हे माधव ! (हम सब पर) कृपा कर ॥१॥

सिमरि मना दामोदरु
दुख हरु भै भंजन हरि राइआ ॥
स्री रंगो दइआल मनोहरु
भगति वछलु बिरदाइआ ॥
भगति वछल पुरख पूरन
मनहि चिंदिआ पाईऐ ॥
तम अंध कूप ते उधारै
नामु मंनि वसाईऐ ॥

हे मन ! जो दामोदर (श्री कृष्ण) दुख निवृत करने वाला है और भय दूर करने वाला है उस हरि राजा का तू स्मरण कर। जो परमात्मा लक्ष्मी से प्रेम करने वाला (आनन्द देने वाला) है, जो दयालु, मनोहर (प्रभु) भक्तों को प्यार और रक्षा करने वाला है और जिसका बिरद (नित्य का नियम अथवा स्वभाव) है भक्तों के मनोरथ पूर्ण करना। (हाँ) भक्तों को प्यार व रक्षा करने वाले पूर्ण पुरुष का स्मरण करने से मन-वाछित फल प्राप्त होते हैं। (हे मन !) ऐसे हरि का नाम मन में बसाने से, 'वह' अन्धकार रूपी कुएँ से भी निकालता है। (हे मन !) देवगणों, सिद्धों, गधर्वो (देवलोक के गायक), मुनिजनों ने और

सुर सिध गण गंधरब मुनिजन
गुण अनिक भगती गाइआ ॥
बिनवंति नानक करहु किरपा
पारब्रहम हरि राइआ ॥२॥

भक्ति करने वाले कई भक्तों ने ऐसे प्रभु के गुण गाए हैं।

(मेरे गुरुदेव बाबा) नानक विनयपूर्वक कहते हैं कि हे परब्रह्म ! हे हरि राजा ! (मुझ पर भी यही) कृपा करो (ताकि मैं भी तुम्हारा भक्त बनकर प्रेम-भक्ति करूँ) ॥२॥

चेति मना पारब्रहमु परमेसरु
सरब कला जिनि धारी ॥
करुणामै समरथु सुआमी
घट घट प्राण अधारी ॥
प्राण मन तन जीअ दाता
बेअंत अगम अपारो ॥
सरणि जोगु समरथु मोहनु
सरब दोख बिदारो ॥
रोग सोग सभि दोख बिनसहि
जपत नामु मुरारी ॥
बिनवंति नानक करहु किरपा
समरथ सभ कल धारी ॥३॥

हे मन ! तू परब्रह्म परमेश्वर को याद कर जिसने सबमें अपनी शक्ति धारण की है। 'वह' समर्थ स्वामी करुणामय है और घट-घट के प्राणों का आश्रय है। (हाँ) जो (प्रत्येक जीव के) प्राण, मन, तन और जीवन का दाता है फिर अनन्त है, अगम्य है और अपार भी है। फिर जो शरण देने के योग्य है, समर्थ है, मोहित करने वाला है और सर्व दु:खों को दूर करने वाला भी है।

(हाँ) 'उस' मुरारी का नाम जपने से रोग, शोक और सब दु:ख नाश हो जाते हैं।

(मेरे गुरुदेव बाबा) नानक विनयपूर्वक कहते हैं कि हे सर्व शक्तियों को धारण करने वाले समर्थ (प्रभु) जी ! (मुझ पर भी अपनी) कृपा करो (ताकि मैं भी तुम्हारा भक्त बनकर प्रेम-भक्ति करूँ) ॥३॥

गुण गाउ मना अचुत अबिनासी
सभ ते ऊच दइआला ॥
बिसंभरु देवन कउ एकै
सरब करै प्रतिपाला ॥
प्रतिपाल महा दइआल दाना
दइआ धारे सभ किसै ॥
कालु कंटकु लोभु मोहु नासै
जीअ जा कै प्रभु बसै ॥
सुप्रसंन देवा सफल सेवा
भई पूरन घाला ॥
बिनवंत नानक इछ पुनी
जपत दीन दैआला ॥४॥३॥

हे मन ! 'उस' (प्रभु) के गुण गाओ, जो सदा स्थिर रहनेवाला (अच्युत) है, अविनाशी है, सबसे ऊँचा है और दयालु भी है। 'वह' विश्व को पालने वाला-विश्वम्भर है, (सबको) देने वाला 'वह' एक है और सब की प्रतिपालना करता है। (हाँ) 'वह' प्रतिपालना करता है, महा दयालु है और (सब कुछ) जानने वाला 'वह' है। सब किसी पर दया करता है। ऐसा प्रभु जिसके मन में बस जाय (उसके मन से) लोभ और मोह दूर हो जाते हैं और काँटे के समान दु:खद काल भी नाश हो जाता है। जिस पर (हरि) देव अच्छी तरह प्रसन्न होता है, उसकी सेवा सफल होती है और उसका परिश्रम भी पूर्ण होता है। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक विनयपूर्वक कहते हैं कि दीनों पर दया करने वाले प्रभु को जपने से (मेरी सब) इच्छाएँ पूर्ण हुई हैं ॥४॥३॥

गउड़ी महला ५॥

"वियोगावस्था तत्पश्चात् मिलनावस्था का वर्णन।"

सुणि सखीए मिलि उदमु करेहा
मनाइ लैहि हरि कंतै ॥
मानु तिआगि करि भगति ठगउरी
मोहह साधू मंतै ॥
सखी वसि आइआ फिरि छोडि न
जाई इह रीति भली भगवंतै ॥
नानक जरा मरण भै नरक निवारै
पुनीत करै तिसु जंतै ॥१॥

हे सखि ! सुनो। आओ मिलकर उद्यम करें और हरि रूपी पति को मना लेवें। साधु (सन्तों) के उपदेश रूपी मन्त्र के द्वारा मान अभिमान का त्याग करें और भक्ति रूपी ठगमूड़ी से अपने प्रियतम को मोहित कर ले। हे सखि ! यदि एक बार पति-परमात्मा अपने वश में आ गया तो हमें पुनः छोड़कर 'वह' नहीं जाएगा क्योंकि भगवंत की यह उत्तम रीति है। हे नानक ! (जिसके वश में भगवंत है) उसका बुढ़ापा, जन्म-मरण और नर्क का भय (मेरा परमात्मा) निवृत करके उस को पवित्र करता है ॥१॥

सुणि सखीए इह भली बिनंती
एहु मतांतु पकाईऐ ॥
सहजि सुभाइ उपाधि रहत होइ
गीत गोविंदहि गाईऐ ॥
कलि कलेस मिटहि भ्रम नासहि
मनि चिंदिआ फलु पाईऐ ॥
पारब्रहम पूरन परमेसर
नानक नामु धिआईऐ ॥२॥

हे सखि ! यह मेरी उत्तम विनती सुनो। हम आपस में बैठकर यह सिद्धान्त पक्का कर लें (अर्थात पक्की सलाह कर लें) और सब छल आदि से रहित होकर सरल स्वभाव से गोविन्द के गीत गाएँ, जिससे सब कल्पनाएं एवं दुख मिट जायेंगे और भ्रम भी नाश हो जायेगा तथा मन-वांछित फल भी प्राप्त करेंगी।

(इसलिए) हे नानक ! (आओ तो) परब्रह्म परिपूर्ण परमेश्वर के नाम का ध्यान करें (यह मेरी उत्तम विनती सुनो) ॥२॥

सखी इछ करी नित सुख मनाई
प्रभ मेरी आस पुजाए ॥
चरन पिआसी दरस बैरागनि
पेखउ थान सबाए ॥
खोजि लहउ हरि संत जना संगु
संम्रिथ पुरख मिलाए ॥
नानक तिन मिलिआ सुरि जनु
सुखदाता से वडभागी माए ॥३॥

हे सखि ! मैं सदा (यही) इच्छा करती हूं, (हां) नित्य सुख मनाती हूँ कि (कान्त) प्रभु स्वयं मेरी आशा पूर्ण करे। मैं बैरागिन 'उसके' चरणों के दर्शनों की प्यासी हूँ। मैं सर्वत्र 'उसके' चरणों को ढूंढ रही हूँ। हरि के सन्तजनों का संग, जो समर्थ पति (पुरुष) को मिला देता है, मैं खोजती हूँ। (जिसको सन्तजन मिले हैं) हे नानक ! उसको सुखदाता श्रेष्ठ पुरुष (पति-परमात्मा) मिला है और हे माता ! वही बड़े (श्रेष्ठ) भाग्यों वाले हैं ॥३॥

सखी नालि बसा अपुने नाह पिआरे
मेरा मनु तनु
हरि संगि हिलिआ ॥
सुणि सखीए मेरी नींद भली
मै आपनड़ा पिरु मिलिआ ॥
भ्रमु खोइओ सांति सहजि सुआमी
परगासु भइआ कउलु खिलिआ ॥
वरु पाइआ प्रभु अंतरजामी
नानक सोहागु न टलिआ ॥४॥४॥
२॥५॥११॥

हे सखि ! अब मैं अपने प्यारे पति-परमेश्वर के साथ बस रही हूँ। मेरा मन तन हरि के संग हिल-मिल गया है। हे सखि ! सुनो। मेरी नींद (अब) अच्छी हो गई है क्योंकि मुझे अपना प्रियतम (प्रति) मिल गया है। स्वामी को पाते ही (सभी) भ्रम खो गए हैं और स्वभावतः (अब) शान्ति प्राप्त हो गई है तथा प्रकाश के होते ही (मेरा) हृदय कमल खिल गया है। मैंने अन्तर्यामी प्रभु-पति को पा लिया है।

हे नानक ! मेरा सुहाग (सदा) अटल है। (मेरे सुहागिन रूप गुरुदेव ने अटल प्रभु स्वामी को प्राप्त करके अपनी आनन्दमय मिलनावस्था का सुन्दर वर्णन किया है) ॥४॥४॥२॥५॥११॥

बावन अखरी मेरे विचार में

गुरमुखी में "पैंतीस" (३५ अक्षरों वाली), फारसी में 'सीहरदी' (३० अक्षरों वाली) और संस्कृत की (५२ अक्षरों वाली) वर्णमाला को "बावन अखरी" कहते हैं। इस बावन अखरी में मेरे गुरुदेव ने अक्षरों का क्रम संस्कृत की लिपि जैसे नही रखा है, अपितु उस समय जैसे पाठशालाओ में पांदा (शिक्षक) लोग विद्यार्थियो से १२ खड़ी के रूप में उच्चारण करवाते थे उस रीति अनुसार ही यह बावन अखरी की रचना हुई है।

प्रथम विचार—पचम पातशाही, गुरु अर्जुन देव के पास एक पण्डित ने आकर विनय की कि संस्कृत में जो ५२ अक्षर हैं, उनका सिद्धान्त क्या है? उस पण्डित को उत्तर रूप में बावन अखरी का उच्चारण किया।

द्वितीय विचार—जिस समय गुरु अर्जुन देव ने संवत् १६४७ में तरन तारन सरोवर की रचना करके वरदान दिया कि जो भी श्रद्धा भाव से यहाँ आकर स्नान करेगा उसकी मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी और कोढी-कोढ़ियों के कोढ भी दूर होंगे। बहुत से श्रद्धालु प्रेमी वहाँ जाने लगे। मेरे गुरुदेव की धर्म-पत्नी, माता गगा जी ने भी वहाँ स्नान करने के लिए तैयारियाँ कीं। कुछ धनाढ्य स्त्रियाँ भी वहाँ चलने को तैयार हो गई जिन्होंने गले में सुन्दर अमूल्य आभूषण डाले हुई थी। मार्ग में उन स्त्रियों ने माता गंगा से पूछा कि आप इतने महान् हैं, गुरु अर्जन देव जो की धर्म पत्नी हैं, किन्तु गले में कोई हार नहीं डाला है। माता जी ने वापस आकर गुरुदेव से चर्चा को। मेरे गुरुदेव ने प्यार सहित आग्रह किया कि इन झूठी बाह्य मालाओं

से क्या बनता है। स्त्री की सुन्दरता विनश्वर आभूषणों से कदाचित् नही बनती। सुहागिन स्त्री को तो सत्य स्वरूप परमात्मा के नाम, भक्ति, वैराग्य, ज्ञान, सन्तोष, सहनशीलता रूपी मोतियों की पवित्र माला पहननी चाहिए जो गुरु अर्जुन देव ने अपनी धर्मपत्नी माता गंगा जी को बावन अखरी के द्वारा प्रदान की।

तीसरा विचार—किसी श्रद्धालु शिष्य ने विनय की कि आप कोई ऐसी सुन्दर माला प्रदान करें जिसको प्राप्त करके हमारी लोक-परलोक में प्रतिष्ठा हो। सत्गुरु ने उसकी सच्ची श्रद्धा व भावना को देख-कर बावन अखरी की रचना की।

जैसे सच्चे अमूल्य मोतियों की माला बनाने के समय पहले उसके रखने के लिए किसी सुन्दर डिब्बे को बनाया जाता है, उसी प्रकार इस माला के लिए "गुरुदेव माता" वाला प्रथम श्लोक डिब्बा है। बीच में आई वाणी माला है और अन्तिम श्लोक पुन. "गुरुदेव माता" इसका ढक्कन है।

इस वाणी को सत्संग मे गायन करने की मर्यादा नही है, किन्तु इसके गायन करने की मनाही भी नही है। गुरुदेव ने इस वाणी के ऊपर गउडी राग' लिखा है और इसके प्रथम पद के अन्त मे तथा दूसरे पद के प्रारम्भ के बीच में 'रहाउ' दिया है। यथा—

"करि किरपा प्रभ दीन दयाला।
तेरे संतन की मनु होइ रवाला॥"

संपूर्ण वाणी में यह एक ही 'रहाउ' है। जैसे 'सुखमनी' साहिब मे एक 'रहाउ' है जिसका भाव यह है कि इसकी प्रत्येक पौडी के पश्चात् गायन के समय इस 'रहाउ' का गायन हो। शेष एक-एक श्लोक और एक-एक पौड़ी का योग गुरुदेव ने स्वय ही रखा है। प्रत्येक श्लोक में पीछे आने वाली पौड़ी का सामूहिक भाव इसमें दिया गया है।

प्राणी की मृत्यु के पश्चात् भी परिवार के सदस्य अपने सम्बन्धियो एव मित्रो सहित मिलकर जैतसिरी और बावन अखरी के पाठ करने की मर्यादा है।

बावन अखरी के अन्तिम श्लोक के अन्त मे गुरुदेव ने आज्ञा की है कि "गुरुदेव माता गुरुदेव पिता"······वाला "एहु सलोकु आदि अति पडणा"। अति शब्द से कुछ प्रेमियो का यह भी विचार है कि जीव के जन्म और मृत्यु के समय यह श्लोक अवश्य पढना चाहिए। (हाँ) यदि अन्त के समय प्राण न निकलते हों तो भी सम्पूर्ण बावन अखरी की वाणी का पाठ प्राणी के निकट बैठकर करना चाहिए। ऐसी धारणा सन्त महापुरुष करते हैं।

गउड़ी बावन अखरी महला ५॥

सलोकु ॥

गुरदेव माता गुरदेव पिता
गुरदेव सुआमी परमेसुरा ॥
गुरदेव सखा अगिआन भंजनु
गुरदेव बंधिप सहोदरा ॥
गुरदेव दाता हरिनामु उपदेसै
गुरदेव मंतु निरोधरा ॥
गुरदेव सांति सति बुधि मूरति
गुरदेव पारस परस परा ॥
गुरदेव तीरथु अंम्रित सरोवरु
गुर गिआन मजनु अपरंपरा ॥
गुरदेव करता सभि पाप हरता
गुरदेव पतित पवित करा ॥
गुरदेव आदि जुगादि जुगु जुगु
गुरदेव मंतु हरि जपि उधरा ॥
गुरदेव संगति प्रभ मेलि करि किरपा
हम मूड़ पापी जितु लगि तरा ॥
गुरदेव सतिगुरु पारब्रहमु परमेसरु
गुरदेव नानक हरि नमसकरा ॥१॥

"गुरुदेव की महिमा।"

गुरुदेव ही मेरी माता है, गुरुदेव ही मेरा पिता है, गुरुदेव ही मेरा स्वामी है, (हाँ) परमेश्वर भी है। गुरुदेव ही मेरा मित्र है, जो अज्ञान को दूर करने वाला है। गुरुदेव ही मेरा सम्बन्धी और सगा भाई भी है। गुरुदेव ही दाता है, जो हरिनाम (जैसे अमूल्य वस्तु) का उपदेश देने वाला है, और गुरुदेव का मन्त्र भी (पूर्ण रूप से) उद्धार करने वाला है।

गुरुदेव ही शान्ति, सत्य और बुद्धि की मूर्ति है। गुरुदेव ही वह पारस है जिसका स्पर्श पारस से उत्कृष्ठ है (अर्थात पारस लोहे को स्वर्ण बनाता है, किन्तु पारस नही बना सकता। किन्तु गुरु अपने जैसा पारस बना लेता है। यथा --' पारस में और सन्त मे बडो अन्तरो जान। वह लोहा कंचन करे यह करे आप समान" ॥१६॥ (विचार माला)

गुरुदेव ही तीर्थ है और अमृत का सरोवर है। गुरुदेव के ज्ञान रूपी तालाब में स्नान करने से परमात्मा जो परे से परे अनन्त है, प्राप्त किया जा सकता है अथवा गुरु द्वारा अपरपार ज्ञान प्राप्त होना ही उसमें स्नान करना है। गुरुदेव (ही शुभ गुणों को) उत्पन्न करने वाला है और सब पापों को दूर करने वाला है। गुरुदेव ही पापियो को पवित्र करने वाला भी है।

गुरुदेव (की महिमा) आदि से है, युगो के प्रारम्भ से है, (हाँ) प्रत्येक युग में है। गुरुदेव के मन्त्र द्वारा हरि (नाम) जपने से उद्धार होता है। हे प्रभु ! कृपा करके मुझे (ऐसे) गुरुदेव की संगति से मिलाओ, जिसकी संगति में लगने से मैं मूर्ख पापी भी पार हो जाऊँ।

गुरुदेव ही सत्गुरु है, परब्रह्म है और परमेश्वर है। हे नानक ! हरि रूप गुरुदेव को मेरी (सदैव) नमस्कार है ॥१॥

सलोकु ।।

आपहि कीआ कराइआ
आपहि करनै जोगु ।।
नानक एको रवि रहिआ
दूसर होआ न होगु ।।१।।

"हरि परमात्मा की स्तुति।"

(परमेश्वर ने) स्वयं ही (जगत की) रचना रची है और स्वयं ही जीवों से कर्म कराता है अथवा परमेश्वर ने स्वय ही ब्रह्मा जी की रचना रची है और फिर स्वयं ही उससे सारी उत्पत्ति करवाता है तथा स्वयं ही (सब कुछ) करने के योग्य (समर्थ) है। हे नानक ! एक परमेश्वर ही (सर्वत्र) व्यापक हो रहा है। 'उस' जैसा न दूसरा कोई हुआ है और न ही (भविष्य मे) होगा ।।१।।

पउड़ी ।।

ओअं साध सतिगुर नमसकारं ।।
आदि मधि अंति निरंकारं ।।
आपहि सुंन आपहि सुख आसन ।।
आपहि सुनत आप ही जासन ।।
आपनि आपु आपहि उपाइओ ।।
आपहि बाप आप ही माइओ ।।
आपहि सूखम आपहि असथूला ।।
लखी न जाई नानक लीला ।।१।।

"प्रभु अनन्त है।"

ओकार स्वरूप परमात्मा, साधु और सतगुरु को मेरी नमस्कार है। आदि, मध्य और अन्त (तीनों कालो मे) निरकार (सत्य स्वरूप) है। 'वह' स्वय ही शून्य (निर्गुण ब्रह्म) है और वह स्वय ही सुखासन (सगुण रूप) है (अर्थात् वह' अपनी रचना रचकर शान्ति से देख रहा है)। वह' स्वय ही अपना यश कर रहा है और स्वय ही सुन रहा है। 'उसने' स्वय ही अपने मे से (जगत) उत्पन्न किया है अथवा 'उसने' अपने आपको स्वय ही उत्पन्न किया है। (भाव निर्गुण से सगुण होना)। 'वह' स्वय ही जगत का पिता है और स्वय ही माता है। 'वह' स्वयं ही सूक्ष्म (छोटे मे छोटा) और स्वयं ही स्थूल (बड़े मे बड़ा) है। हे नानक ! 'उसकी' लीला लखी (जानी) नही जा सकती ।।१।।

करि किरपा प्रभ दीन दइआला ।।
तेरे संतन की मनु होइ रवाला
।। रहाउ ।।

हे दीनों पर दया करने वाले प्रभु ! कृपा कर कि मेरा मन तेरे सन्तो (के चरणो) की धूलि हो ।।रहाउ।।

सलोकु ।।

निरंकार आकार आपि
निरगुन सरगुन एक ।।
एकहि एक बखाननो
नानक एक अनेक ।।१।।

"निर्गुण भी 'वही' और सगुण भी 'वही' है।"

परमेश्वर रूप बिना भी स्वय है और रूप में (भाव रचना में) भी 'वह' स्वयं ही है इसलिए निर्गुण चाहे सगुण 'वह' एक ही स्वयं है। 'वह' एक ही एक कहा जाता है और हे नानक ! वह एक ही अनेक हो जाता है ।।१।।

पउड़ी ॥

'प्रभु स्वयं रचना का रचनहार है, किन्तु रचना से असंग है।'

ओअं गुरमुखि कीओ अकारा ॥
एकहि सूति परोवनहारा ॥
भिंन भिंन त्रैगुण बिसथारं ॥
निरगुन ते सरगुन द्रिसटारं ॥
सगल भाति करि करहि उपाइओ ॥
जनम मरन मन मोहु बढाइओ ॥
दुहू भाति ते आपि निरारा ॥
नानक अंतु न पारावारा ॥२॥

'ओअं', (द्वारा कथन करते हैं अथवा) गुरमुख को निश्चय है कि ओंकार स्वरूप परमात्मा ने ही (सम्पूर्ण) आकार किया है। 'वह' स्वयं ही (जगत को) एक सूत्र (हुक्म) में पिरोने वाला है और फिर तीनों गुणों (सत् रज्, तम्) का विस्तार कर दिया तथा निर्गुण रूप से सगुण रूप में दिखलाया है। (हाँ) 'उसने' सभी तरह की रचना उत्पन्न की है। मन में मोह बढाने के लिए जन्म-मरण रच दिया (अर्थात जब तक जीव को माया का मोह है तब तक जन्म-मरण के चक्कर मे पडा रहता है।) किन्तु 'वह' स्वयं जन्म-मरण दोनों से निर्लेप है। हे नानक! 'उसके' आर पार का कोई अन्त नहीं है॥२॥

सलोकु ॥

"सन्तजनों के पास ही नाम और पवित्रता है।"

सेई साह भगवंत से
सचु संपै हरि रासि ॥
नानक सचु सुचि पाईऐ
तिह संतन कै पासि ॥१॥

वे ही शाहूकार हैं, वे ही भाग्यवान् हैं जिनके पास सत्य रूपी सम्पति और हरि (नाम) की पूँजी है। हे नानक! सत्य और पवित्रता (की सम्पत्ति) सन्तों से प्राप्त होती है॥१॥

पवड़ी ॥

"ऐसा सन्त कौन?"

ससा सति सति सति सोऊ ॥
सति पुरख ते भिंन न कोऊ ॥
सोऊ सरनि परै जिह पायं ॥
सिमरि सिमरि गुन गाइ सुनायं ॥
संसै भरमु नही कछु बिआपत ॥
प्रगट प्रतापु ताहू को जापत ॥
सो साधू इह पहुचनहारा ॥
नानक ता कै सद बलिहारा ॥३॥

'ससे', (द्वारा उपदेश है कि) 'वह' (प्रभु) सत्य है, (हाँ) सत्य है। 'उस' सत्य (स्वरूप) परिपूर्ण परमात्मा से पृथक (अलग) कोई नही है (अर्थात परमात्मा सर्वव्यापक है)। किन्तु 'उसकी' शरण में वही पडता है जिसको (हरि स्वय) (शरण में) डालता है। (ऐसा जीव) परमात्मा का स्मरण करता है, (हाँ) स्मरण करता है, 'उसके' गुण गाता है और (दूसरो को) सुनाता है। उसको भ्रम और संशय कुछ नही व्यापता क्योंकि उसको परमेश्वर का प्रताप प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है। जो इस पद (अवस्था) को प्राप्त करता है, वह साधु है। हे नानक! मैं ऐसे (साधु) पर बलिहारी जाता हूँ॥३॥

सलोकु ॥

धनु धनु कहा पुकारते
माइआ मोह सभ कूर ॥
नाम बिहूने नानका
होत जात सभु धूर ॥१॥

"माया का मोह झूठा।"

जिन्होंने माया के समस्त मोह को झूठा जाना है, वे (सन्त-जन) धन (प्राप्त हो) धन (प्राप्त हो) कहाँ पुकारते हैं ? (अर्थात नही पुकारते हैं) । हे नानक ! नाम से विहीन (खाली) (जीव) सारे मिट्टी होते जाते हैं ॥१॥

पवड़ी ॥

धधा धूरि पुनीत तेरे जनूआ ॥
धनि तेऊ जिह रुच इआ मनआ ॥
धनु नही बाछहि सुरग न आछहि ॥
अति प्रिअ प्रीति
साध रज राचहि ॥
धंधे कहा बिआपहि ताहू ॥
जो एक छाडि
अन कतहि न जाहू ॥
जा कै होऐ दीओ प्रभ नाम ॥
नानक साध पूरन भगवान ॥४॥

"सन्तों के चरण-धूलि की महिमा।"

'धधा', (द्वारा उपदेश है कि हे प्रभु !) तेरे (सन्त) जनो की (चरण) धूलि पवित्र है। धन्य हैं वे जिनका मन इसमे (धूलि मे) मग्न हुआ है (लगा है)। वे (सांसारिक) धन नही चाहते बल्कि स्वर्ग की भी इच्छा नही करते। वे साधु (जनो के चरणो) की धूलि से अत्यन्त प्रीति में मग्न होते हैं। (हाँ) जो एक परमात्मा को छोडकर अन्य कही भी नही जाते उनको भला धन्धे कैसे व्याप्त होगे ? (अर्थात वे सांसारिक धन्धो की ओर नहीं जाते और न ही उन पर साँसारिक धन्धो का प्रभाव होता है)। जिसके हृदय मे प्रभु ने (कृपादृष्टि करके) नाम (का दान) दिया है, हे नानक ! वे ही पूर्ण भगवान के साधु हैं ॥४॥

सलोकु ॥

अनिक भेख अरु ङिआन धिआन
मन हठि मिलिअउ न कोइ ॥
कहु नानक किरपा भई
भगतु ङिआनी सोइ ॥१॥

"बाह्य भेष रखने से प्रभु नही प्राप्त होता।"

अनेक भेष धारण करने से या ज्ञान कथन या ध्यान लगाने से अथवा मन के हठ करके कोई भी (प्रभु को) नही मिला है। कहते हैं (बाबा) नानक (रूप) (गुरु अर्जनदेव) कि जिस पर उसकी कृपा होनी है, वह भक्त है, (हाँ) वह ज्ञानी भी है ॥१॥

पउड़ी ॥

ङंङा ङिआनु नही मुख बातउ ॥
अनिक जुगति सासत्र करि भातउ ॥

"मौखिक ज्ञानी नही किन्तु युक्ति वाला ज्ञानी।"

'ङङा', (द्वारा साहिबा उपदेश करते हैं कि) मौखिक बातो से ज्ञान नही होता और न ही नाना प्रकार की शास्त्रीय युक्तियो से

गिआनी सोइ जा कै द्रिड़ सोऊ ॥ कहत सुनत कछु जोगु न होऊ ॥ गिआनी रहत आगिआ द्रिड़ु जा कै ॥ उसन सीत समसरि सभ ता कै ॥ गिआनी ततु गुरमुखि बीचारी ॥ नानक जा कउ किरपा धारी ॥५॥	ही ज्ञान (प्राप्त) होता है। ज्ञानी सचमुच वही है, जिसके हृदय में 'वह' प्रभु स्थित (दृढ़) है। कहने सुनने से ज्ञान के योग्य नहीं हो सकता। जिसके हृदय में हरि की आज्ञा दृढ़ रहती है, ज्ञानी वही है उसके लिए (सब) शीत और गर्मी (सुख-दुख) बराबर है। हे नानक! जिस पर (हरि ने) कृपा की है, वही ज्ञानी है और वही गुरु के उपदेश द्वारा परमात्मा का विचार करता है ॥५॥
सलोकु ॥	'परमात्मा को समझने बिना जीव पशु तुल्य है।"
आवन आए स्रिसटि महि बिनु बूझे पसु ढोर ॥ नानक गुरमुखि सो बुझै जा कै भाग मथोर ॥१॥	जीव सृष्टि में आने के लिए (केवल कहने मात्र) आए हैं (अर्थात जिस उद्देश्य से आए हैं वे ऐसे कर्म नहीं करते)। परमात्मा को जानने के बिना वे ढोर पशुवत् हैं। हे नानक! जिनके मस्तक पर (श्रेष्ठ) भाग्य (का लेख लिखा) है वे ही गुरु के उपदेश द्वारा (परमात्मा को) जानते हैं ॥१॥
पउड़ी ॥	"मोहनी माया ने जीव को जन्म से ही मोहित किया है।"
या जुग महि एकहि कउ आइआ ॥ जनमत मोहिओ मोहनी माइआ ॥ गरभ कुंट महि उरध तप करते ॥ सासि सासि सिमरत प्रभु रहते ॥ उरझि परे जो छोडि छडाना ॥ देवनहारु मनहि बिसराना ॥ धारहु किरपा जिसहि गुसाई ॥ इत उत नानक तिसु बिसरहु नाही ॥६॥	(हे जीव!) तू इस कलियुग में एक (हरि प्राप्ति) के लिए आया है, किन्तु (अफसोस है कि) जन्मते ही मोहिनी माया ने तुझे मोहित कर लिया है। (माता के) गर्भ कुण्ड में उलटा होकर तुमने तप किया था और वहाँ तुम श्वास-प्रश्वास प्रभु का स्मरण करते रहे। किन्तु तू उलझा पड़ा है उस मार्ग में जिसे (एक दिन) छोड़ जाना है, (हाय! तुमने) देने वाले प्रभु को मन से विस्मृत कर दिया है। हे गोसाई (प्रभु)! जिस पर तू कृपा करता है, उसे तू यहाँ (इस लोक में) और वहाँ (परलोक में) भूलते नहीं हो कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब) ॥६॥
सलोकु ॥	"सब 'उसके' हुकम अन्दर है।"
आवत हुकमि बिनास हुकमि आगिआ भिंन न कोइ ॥	जीव का आना (अर्थात जन्म) 'उसके' हुकम से होता है और मरना भी 'उसके' हुकम से ही होता है। उसके हुकम के बाहर

आवन जाना तिह मिटै
नानक जिह मनि सोइ ॥१॥

कोई भी नहीं है। हे नानक ! जिसके मन में (प्रभु) है, उसी का ही आना (जन्म) और जाना (मरण) मिटता है ॥१॥

पउड़ी ॥

"मोह-ममता से छुटकारा।"

एऊ जीअ बहुतु भ्रम बासे ॥
मोह मगन मीठ जोनि फासे ॥
इनि माइआ त्रै गुण बसि कीने ॥
आपन मोह घटे घटि दीने ॥
ए साजन कछु कहहु उपाइआ ॥
जा ते तरउ बिखम इह माइआ ॥
करि किरपा सत संगि मिलाए ॥
नानक ता कै निकटि न माए ॥७॥

इस जीव ने बहुत ही योनियों में निवास किया है (अर्थात अनेक जन्म धारण किये हैं)। मीठे मोह में (जीव) मस्त होकर योनियों में फँसता है। इस माया ने सभी को तीन गुणों के अधीन किया है और अपना मोह प्रत्येक शरीर में डाल दिया है। हे सज्जन (सन्तजनों) ! ऐसा कोई उपाय बताओ जिससे इस कठिन माया से पार हो जाऊँ (बच जाऊँ)। (उतर) जिसको (प्रभु) कृपा करके सत्संगति में मिलाता है, हे नानक ! उसके निकट माया नहीं आती (अर्थात माया के प्रभाव से दूर रहने के लिए सत्संग ही कलियुग में एक मात्र उपाय है) ॥७॥

सलोकु ॥

"प्रभु स्वयं सब कुछ करने वाला और कराने वाला है।"

किरत कमावन सुभ असुभ
कीने तिनि प्रभि आपि ॥
पसु आपन हउ हउ करै
नानक बिनु हरि कहा कमाति ॥१॥

शुभाशुभ कर्मों का करना 'उस' प्रभु' ने ही स्वयं किया है। पशुवत् जीव 'मैं, 'मैं' (अहकार) करता है, (किन्तु) हे नानक ! हरि के बिना यह (बेचारा जीव स्वयं) क्या कर्म कर सकता है ? ॥१॥

पउड़ी ॥

"प्रभु ही कर्मों का प्रेरक है।"

एकहि आपि करावनहारा ॥
आपहि पाप पुंन बिसथारा ॥
इआ जुग जितु जितु आपहि
लाइओ ॥

एक ही (प्रभु) स्वयं (कर्म) कराने वाला है। स्वयं ही पाप और पुण्य का विस्तार (करने वाला) है। इस युग में जिस काम में (जीव को) (प्रभु ने) स्वयं लगाया है, (उसी काम मे से) उतना ही जीव को मिलता है जितना 'वह' स्वय दिलाता है। 'उस' (प्रभु)

सो सो पाइओ जु आपि दिवाइओ ॥
उआ का अंतु न जानै कोऊ ॥
जो जो करै सोऊ फुनि होऊ ॥
एकहि ते सगला बिसथारा ॥
नानक आपि सवारनहारा ॥८॥

का कोई भी अन्त नही जानता है। जो कुछ (प्रभु) करता है, (अवश्य) होगा फिर 'उसी' एक (प्रभु) से ही सारा विस्तार हुआ है। हे नानक! 'वह' स्वयं ही सँवारने वाला है ॥८॥

सलोकु ॥

राचि रहे बनिता बिनोद
कुसम रंग बिख सोर ॥
नानक तिह सरनी परउ
बिनसि जाइ मै मोर ॥१॥

"सांसारिक खुशियां विषवत् हैं।"

(कलियुगी जीव) स्त्री आदि की खुशियों में मस्त है, किन्तु यह विषयों का शोर कुसुम्भे के रंग के समान कच्चा है अथवा कुसुम्भे रंग के समान कच्चे है, विष के समान मारने वाले हैं और शोरे के समान गला देने वाले हैं। हे नानक! 'उस' (प्रभु) की शरण में पड़ो तो 'मैं' और 'मेरा' (अहंता और ममता) नाश हो जाय ॥१॥

पउड़ी ॥

रे मन बिनु हरि जह रचहु
तह तह बंधन पाहि ॥
जिह बिधि कतहू न छूटीऐ
साकत तेऊ कमाहि ॥
हउ हउ करते करम रत
ता को भारु अफार ॥
प्रीति नही जउ नाम सिउ
तऊ एउ करम बिकार ॥
बाधे जम की जेवरी
मीठी माइआ रंग ॥
भ्रम के मोहे नह बुझहि
सो प्रभु सद हू संग ॥
लेखै गणत न छूटीऐ
काची भीति न सुधि ॥
जिसहि बुझाए नानका
तिह गुरमुखि निरमल बुधि ॥९॥

'अहंकार के कर्म बन्धन-रूप हैं।"

हे मन! हरि के (नाम जपने के) बिना तू जिस-जिस काम मे लगेगा, उस उस काम मे तुमको बन्धन पड़ेंगे। (हाय!) जिस ढग से किसी प्रकार भी बचाव नही होता, (माया-शक्ति का उपासक) साकत वही ढग प्रयोग करता है (वही काम करता है)। जो जीव 'मैं' 'मैं' करके कर्मों मे अनुरक्त हैं, उनके लिए सिर पर न सहारा करने वाला भार (सदा रहता) है। यदि नाम से प्रीति नही है, तो ये (सारे) कर्म विकार रूप हैं। जिनको माया के रंग मीठे लगते हैं, वे यम की रस्सी से बन्धे हुए हैं। भ्रम से मोहित जीव समझते ही नही हैं कि 'वह' प्रभु सदैव ही संगी (साथी) है। कर्मों का लेखा एवं गणना करने से छुटकारा नहीं हो सकता, क्योकि मिट्टी की कच्ची दीवार की शुद्धि नही हो सकती। (अर्थात गणना वाले कर्म जल के समान हैं और हमारा शरीर मिट्टी की दीवार के समान है। ज्यो-ज्यों जल से दीवार को धोएं, मिट्टी उतरनी समाप्त नही होगी। (यथाः जलि धोवै बहु देह अनीति। सुध कहा होइ काची भीति।) (सुखमनी)। हे नानक! जिस जीव को प्रभु स्वय समझाता है उस गुरुमुख की बुद्धि शुद्ध होती है (अर्थात गुरु के सन्मुख रहने वाले जीव ही नाम जपकर कर्मों से मुक्त होते हैं। शेष सम्पूर्ण जीव-सृष्टि कर्म-पाश में बन्धी रहती है) ॥९॥

सलोकु ॥

टूटे बंधन जासु के
होआ साधू संगु ॥
जो राते रंग एक कै
नानक गूड़ा रंगु ॥१॥

"साधु की संगति से लाभ।"

जिसको साधु की संगति प्राप्त हुई है, उसके बन्धन टूट गये हैं। हे नानक ! जो एक (परमात्मा) के प्रेम (रंग) में रंगे हैं, उनका रंग पक्का है (अर्थात् उनका आनन्द शाश्वत है) ॥१॥

पउड़ी ॥

रारा रंगहु इआ मनु अपना ॥
हरि हरि नामु जपहु जपु रसना ॥
रे रे दरगह कहै न कोऊ ॥
आउ बैठु आदरु सुभ देऊ ॥
उआ महली पावहि तू बासा ॥
जनम मरन नह होइ बिनासा ॥
मसतकि करमु लिखिओ
धुरि जा कै ॥
हरि संपै नानक घरि ता कै ॥१०॥

"नाम जपने से हरि की दरबार में निवास।"

ररे, (द्वारा उपदेश है कि) अपने इस मन को (हरि के प्रेम-रंग में) रंग ले। हरि के नाम का जाप रसना से जप। (ऐसा करने से) कोई भी तुम्हे हरि दरबार में 'अरे' 'अरे नही कहेगा (अर्थात अनादर सूचक सम्बोधन से नही बुलायेगा), बल्कि (कहेगे) आकर बैठो और श्रेष्ठ (अर्थात अच्छी तरह) आदर देंगे और तेरा वासा उस महल (हरि दरबार) में होगा जहाँ जन्म मरण नही होता और विनाश भी नही होता। हे नानक ! जिसके मस्तक पर पहले से ही कृपा लिखी है उसके (हृदय) घर मे ही हरि (के नाम) की सम्पति है ॥१०॥

सलोकु ॥

लालच झूठ बिकार मोह
बिआपत मूड़े अंध ॥
लागि परे दुरगंध सिउ
नानक माइआ बंध ॥१॥

"अज्ञानी जीव माया में सदा फंसा हुआ।"

मूर्ख और अन्धे (अज्ञानी) जीव लालच, झूठ, विकार और मोह में व्याप्त (मस्त रहते) हैं। हे नानक ! ऐसे जीव दुर्गन्ध (विषयो) मे लगे रहते हैं, इसलिए वे माया के बन्धनो में फसे हुए हैं ॥१॥

पउड़ी ॥

लला लपटि बिखै रस राते ॥
अहंबुधि माइआ मद माते ॥

"शक्ति देने वाला भी 'वह' स्वय और निर्लेप भी 'वह' स्वयं।"

लला, (द्वारा उपदेश है कि) जीव माया रूप विष मे चिपके कर अनुरक्त हो रहे हैं। वे अहंकार वाली बुद्धि और माया के नशे

इआ माइआ महि जनमहि मरना ॥
जिउ जिउ हुकमु
तिवै तिउ करना ॥
कोऊ ऊन न कोऊ पूरा ॥
कोऊ सुघरु न कोऊ मूरा ॥
जितुजितु लावहु तितुतितु लगना ॥
नानक ठाकुर सदा अलिपना ॥११॥

में मस्त हो रहे हैं। इस माया में रहबे (बने रहने) से जन्म मरण होता है। जैसे जैसे परमात्मा का हुकम है तैसे तैसे जीव (कर्म) करता है। न कोई खाली है और न कोई पूर्ण है। न कोई कुशल (निपुण) है और न कोई मूर्ख है। (हे प्रभु !) जहाँ जहाँ (आप) जीव को लगाते हो, वहाँ वहाँ (जीव) लगता है। (किन्तु) हे नानक ! (मेरा) ठाकुर (स्वयं) निर्लेप है ॥११॥

सलोकु ॥

"गोपाल गोविन्द की महिमा।"

लाल गुपाल गोबिंद प्रभ
गहिर गंभीर अथाह ॥
दूसर नाही अवर को
नानक बेपरवाह ॥१॥

(मेरा) प्रिय प्रभु पृथ्वी को पालने वाला (गोपाल) है, इन्द्रियों को प्रकाश देने वाला (गोविन्द) है, गहरा हे, (अति) गम्भीर है और अनन्त भी है। हे नानक ! 'उस' जैसा अन्य कोई भी नही है, (हाँ) 'वह' बेपरवाह (बादशाह) है ॥१॥

पउड़ी ॥

"परमात्मा की स्तुति।"

लला ता कै लवै न कोऊ ॥
एकहि आपि अवर नह होऊ ॥
होवनहारु होत सद आइआ ॥
उआ का अंतु न काहू पाइआ ॥
कीट हसति महि पूर समाने ॥
प्रगट पुरख सभ ठाऊ जाने ॥
जा कउ दीनो हरि रसु अपना ॥
नानक गुरमुखि हरि
हरि तिह जपना ॥१२॥

'लला', (द्वारा उपदेश है कि) 'उसके' बराबर (अन्य) कोई भी नही है, (हाँ) एक ही स्वयं 'वह' है, अन्य कोई भी नही है, जो सदा रहने वाला है और जो पीछे भी सदा होता आया है (भाव जिसका अस्तित्व सदा से चला आया है)। 'उसका' अन्त किसी ने भी नही पाया है। कीडे और हाथी में एक जैसा पूर्ण हो रहा है (भाव समाया हुआ है)। सर्वव्यापक परमात्मा (जहाँ कहाँ) प्रत्यक्ष है और सभी जगह में जाना जाता है। जिसको हरि ने अपना (नाम का) रस दिया है, हे नानक ! वही गुरु के उपदेश द्वारा हरि, (हाँ) हरि (नाम) को (सदैव) जपता है ॥१२॥

सलोकु ॥

आतम रसु जिह जानिआ
हरि रंग सहजे माणु ॥
नानक धनि धनि धंनि जन
आए ते परवाणु ॥१॥

"आत्मा का आनन्द फलदायक।"

जिन्होंने (सेवकों ने) आत्मा का आनन्द जाना है, वे हरि का रंग सहज स्वभाव ही अनुभव करते हैं (अर्थात किसी भी यत्न के बिना पूर्ण आनन्द प्राप्त करते हैं)। हे नानक ! वे जन (सेवक) धन्य हैं, धन्य हैं, (हाँ) धन्य हैं और (संसार में) उनका आना प्रमाणित (सफल) है ॥१॥

पउड़ी ॥

आइआ सफल ताहू को गनीऐ ॥
जासु रसन हरि हरि जसु भनीऐ ॥
आइ बसहि साधू कै संगे ॥
अनदिनु नामु धिआवहि रंगे ॥
आवत सो जनु नामहि राता ॥
जा कउ दइआ मइआ बिधाता ॥
एकहि आवन
फिरि जोनि न आइआ ॥
नानक हरि कै
दरसि समाइआ ॥१३॥

"नाम जपने वालों की अपार महिमा।"

(इस ससार में) आना उसी का सफल गिना जाता है जिसकी रसना हरि हरि का यश उचारण करती है। वह (पहले) साधु की सगति में आकर बैठता है। वह दिन-रात प्रेम से नाम अराधन करता है और 'उसके' रंग में रग जाता है। वही दास (सफल) है जो (साधु की सगति में) आकर नाम रंग में रंग जाता है। जिस पर विधाता प्रभु की दया और मेहर होती है वह एक ही बार (ससार में) आता है फिर योनियो मे (कदाचित्) नही आता। हे नानक ! वह हरि के दर्शन मे समा जाता है ॥१३॥

सलोकु ॥

जासु जपत मनि होइ अनंदु
बिनसै दूजा भाउ ॥
दूख दरद त्रिसना बुझै
नानक नामि समाउ ॥१॥

"गुरु की महिमा।"

जिस (नाम) को जपने से मन में आनन्द होता है, द्वैत भाव नाश हो जाता है और दु ख, दर्द तथा तृष्णा बुझ जाती है। (अत-एव) हे नानक ! 'उस' नामी परमात्मा में (तुम सदा) समाये रहो ॥१॥

पउड़ी ॥

यया जारउ दुरमति दोऊ ॥
तिसहि तिआगि सुख सहजे सोऊ ॥

"गुरु की शरण लेने की आवश्यकता।"

'यये', (द्वारा उपदेश है कि हे मन !) दुर्बुद्धि और द्वैत भाव को जला दो। इनको त्याग दो तो सहज ही सुख में सो जाओगे

सलोकु ॥

[illegible]
[illegible]
मिरतक कहीअहि नानका
जिह प्रीति नही भगवंत ॥१॥

"प्रेम बिना यह जीवन कैसा ?"

(चाहे जीव) अति सुन्दर, उच्च कुल वाला, चतुर, मुख्य ज्ञानी और धनी भी हो, (किन्तु) यदि उसकी प्रीति भगवंत के साथ नहीं है तो, हे नानक ! उसको मुर्दे तुल्य कहना चाहिए ॥१॥

पउड़ी ॥

ङंङा खटु सासत्र होइ ङिआता ॥
पूरकु कुंभक रेचक करमाता ॥
गिआन धिआन तीरथ इसनानी ॥
सोमपाक अपरस उदिआनी ॥
राम नाम संगि मनि नही हेता ॥
जो कछु कीनो सोऊ अनेता ॥
उआ ते ऊतमु गनउ चंडाला ॥
नानक जिह मनि
बसहि गुपाला ॥१६॥

"प्रभु की प्रीति के बिना सब गुण व्यर्थ ।"

'ङङा', (द्वारा उपदेश है कि चाहे कोई) छः शास्त्रों का ज्ञाता हो; (चाहे) ईरा, पिंगला और सुखमना (प्राणायाम के इन तीनों अंगों) करने में मस्त हो (अर्थात पूर्ण योगाभ्यास किया हो, 'ईरा'— बायें नासिका द्वारा प्राण ऊपर उठाने "पिंगला"— दायें नासिका द्वारा प्राण उतारने और "सुखमना"— प्राणों को रोककर अन्दर रखना) ; (चाहे) ज्ञानवान ध्यानवान और तीर्थों पर स्नान करने वाला हो; (चाहे) स्वयं भोजन बनाने वाला हो अथवा चन्द्रमा को देखकर भोजन खाने वाला हो; (चाहे) किसे भी स्पर्श नहीं करता हो और जंगलों में रहने वाला हो, (किन्तु यदि) राम नाम के साथ मन में प्रीति नहीं है तो जो कुछ भी (उसने) किया है वह (सब) निष्फल है। (हां) उससे तो वह चंडाल ही उत्तम जानो, जिसके मन में, हे नानक ! गोपाल (प्रभु) बसता है ॥१६॥

सलोकु ॥

कुंट चारि दह दिसि भ्रमे
करम किरति की रेख ॥
सूख दूख मुकति जोनि
नानक लिखिओ लेख ॥१॥

"दुःख सुख कर्मानुसार ।"

जीव (पूर्व जन्म में) किये कर्म की रेखा अनुसार चारों ही कोनों में और दसों दिशाओं में भटकते हैं। हे नानक ! सुख-दुःख, मुक्ति और योनियाँ (पूर्व) कर्मों के लेखानुसार (प्राप्त) होती हैं ॥१॥

पउड़ी ॥

कका कारन करता सोऊ ॥
लिखिओ लेखु न मेटत कोऊ ॥

"प्रभु का किया हुआ मिटता नहीं ।"

'कके', (द्वारा उपदेश है कि) 'वह' कर्ता (करने वाला) [illegible] रूप है [illegible] वह कारण का भी कर्ता है। [illegible] द्वारा लिखित

नही होत कछु दोऊ बारा ॥
करनैहारु न भूलनहारा ॥
काहू पंथु दिखारै आपै ॥
काहू उदिआन भ्रमत पछुतापै ॥
आपन खेलु आप ही कीनो ॥
जो जो दीनो
सु नानक लीनो ॥१७॥

लेख को कोई भी मिटा नहीं सकता। दूसरी बार 'वह' कुछ नहीं करता जो कुछ किया है एक बार ही कर दिया है क्योंकि कर्त्ता अभूल है। किसी को (कर्त्ता) स्वयं (मुक्ति का) मार्ग दिखाता है, और किसी को(प्रभु) स्वयं जंगलों में घुमा कर [illegible] है। 'उसने' अपना खेल स्वयं (किसी की सहायकता के बिना) किया है। जो जो (कुछ 'उसने' जिस जिस को) दिया है, हे नानक! (उस उस ने) वही (कुछ) लिया है ॥१७॥

सलोकु ॥

खात खरचत बिलछत रहे
टूटि न जाहि भंडार ॥
हरि हरि जपत अनेक जन
नानक नाहि सुमार ॥१॥

"हरि नाम का भण्डार अटूट है।"

हरि, हरि (नाम) को अनेक जन जपते हैं, जिनकी गणना नही हो सकती अथवा 'उस' हरि की गणना नहीं हो सकती। हे नानक! (नाम के) भण्डारे (अटूट हैं, वे कभी) टूटते नही, (चाहे जपने वाले स्वयं) खाते हैं, (अधिकारी पुरुषों को नाम देकर) खर्चते हैं और (आम लोगों में भी) बाँटते रहते हैं अथवा खाते, खर्चते भी प्रसन्न रहते हैं क्योकि नाम के भण्डार अटूट हैं ॥१॥

पउड़ी ॥

खखा खूना कछु नही
तिसु संम्रथ कै पाहि ॥
जो देना सो दे रहिओ
भावै तह तह जाहि ॥
खरचु खजाना नाम धनु
इआ भगतन की रासि ॥
खिमा गरीबी अनद सहज
जपत रहहि गुणतास ॥
खेलहि बिगसहि अनद सिउ
जा कउ होत क्रिपाल ॥
सदीव गनीव सुहावने
राम नाम ग्रिहि माल ॥

"सन्तो के सभी कार्य पूर्ण।"

'खखे', (द्वारा उपदेश है कि) 'उस' समर्थ (प्रभु) के पास कुछ भी कमी नही है। जो जीव को देना है, 'वह' दे रहा है (चाहे जीव को जहाँ) अच्छा लगे वहाँ जाय (अर्थात जीव कितना भी परिश्रम करे मिलना उतना ही है जो उसे मिलना है)। भक्तजन नाम रूपी धन के खजाने से खर्चा करते है और यह धन ही है उनकी पूँजी। वे क्षमा, गरीबी, आनन्द और ज्ञान अथवा शान्ति (प्राप्त) करके गुणों के खजाने परमात्मा को जपते रहते हैं। जिनपर प्रभु कृपालु होता है, वे (इस) आनन्द से खेलते व विकसित होते हैं। वे सदैव साहुकार और सुन्दर है, जिनके घर मे राम नाम का धन है। उनको न खेद है, न दुःख है और न (यम का) दण्ड है। जिन पर

खेदु न दूखु न डंडु तिह
जा कउ नदरि करी ॥
नानक जो प्रभ भाणिआ
पूरी तिना परी ॥१८॥

(प्रभु) कृपा दृष्टि करता है। हे नानक ! जो प्रभु को अच्छे लगते हैं अथवा जो प्रभु के हुकम में (चले) हैं, उनकी पूरी पड़ती है (अर्थात वे सफल हुए हैं।)॥१८॥

सलोकु ॥

मनि मिनि देखहु मनै माहि
सर पर चलनो लोग ॥
आस अनित गुरमुखि मिटै
नानक नाम अरोग ॥१॥

"आशाऐं-उमीदें मिटाने के लिए गुरु का उपदेश आवश्यक।"

अपने मन में गिन कर और माप कर (भाव अच्छी प्रकार विचार करके) देख लो कि अन्ततः लोगों को (ससार से) अवश्य चलना होगा। नाशवान पदार्थों की आशा गुरु द्वारा मिट जाती है। हे नानक ! नाम औषध से जीव अहंकार के रोग से अरोग्य हो जाता है ॥१॥

पउड़ी ॥

गगा गोबिद गुण रवहु
सासि सासि जपि नीत ॥
कहा बिसासा देह का
बिलम न करिहु मीत ॥
नह बारिक नह जोबनै
नह बिरधी कछु बंधु ॥
ओह बेरा नह बूझीऐ
जउ आइ परै जम फंधु ॥
गिआनी धिआनी चतुर पेखि
रहनु नही इह ठाइ ॥
छाडि छाडि सगली गई
मूड़ तहा लपटाहि ॥
गुर प्रसादि सिमरत रहै
जाहू मसतकि भाग ॥
नानक आए सफल ते
जा कउ प्रिअहि सुहाग ॥१९॥

"देही पर भरोसा क्या करना है, नाम जप ले।"

('ग' अक्षर से गुरुदेव का उपदेश है कि) गगा गोबिन्द के गुणों का उच्चारण करो। श्वास-प्रश्वास, (हाँ) नित्य नाम जपो। इस शरीर का क्या विश्वास है ? हे मित्र ! जरा भी देरी मत करो। न बालक अवस्था का, न जवानी का, न ही बुढ़ापे का कुछ बन्धन है भाव नियम है। (अर्थात मृत्यु जब चाहे आ जाती है)। जब यमराज का फंदा आ पड़ता है, उस समय का कोई पता नहीं चलता। देखो ज्ञानी, ध्यानी, चतुर किसी ने भी यहाँ (इस संसार मे) नही रहना है। जिस (वस्तु) को सम्पूर्ण (जीव सृष्टि) छोड़-छोड कर जाती है, उसी के साथ मूढ जीव चिपट रहे हैं।

गुरु की कृपा से वे ही प्रभु का स्मरण करते हैं जिनके मस्तक में (उत्तम) भाग्य (लिखे हुए) हैं।

हे नानक ! उनका ही इस ससार में आना सफल है, जिनको प्रियतम प्रभु सुहाग रूप में (प्राप्त हुआ) है ॥१९॥

सलोकु ॥

पोथी सासत्र बेद सभ
आन न कथतउ कोइ ॥
आदि जुगादी हुणि होवत
नानक एकै सोइ ॥१॥

"परमेश्वर सदैव [illegible]"

सारे शास्त्र और वेद भी विचार [illegible] हैं, कोई भी (हरि नाम के बिना) अन्य कथन नहीं करता।
आदि (काल) से, युग-युगान्तर से पहले, अब भी तथा (भविष्य में भी), हे नानक ! 'वह' एक ही है ॥१॥

पउड़ी ॥

घघा घालहु मनहि एह
बिनु हरि दूसर नाहि ॥
नह होआ नह होवना
जत कत ओही समाहि ॥
घूलहि तउ मन जउ आवहि सरना ॥
नाम ततु कलि महि पुनहचरना ॥
घालि घालि अनिक पछुतावहि ॥
बिनु हरि भगति कहा थिति पावहि ॥
घोलि महारसु अंम्रितु तिह पीआ ॥
नानक हरि गुरि
जा कउ दीआ ॥२०॥

"भक्ति के बिना [illegible]?"

('घ', अक्षर से गुरुदेव का उपदेश है कि) [illegible] यह बात दृढ़ कर कि हरि के बिना अन्य कोई नहीं। न (अन्य) कोई हुआ है और न होगा, जहाँ-कहाँ 'वही' समाया हुआ है। हे मन ! (जन्म-मरण से) तभी छूटेगा, जब प्रभु की शरण आयेगा। (हरि) नाम कलियुग में पुरश्चरण करने के लिए (उपाय) है।
पुरश्चरण=किसी कार्य की सिद्धि के लिए [illegible] उपाय सोचना और प्रबन्ध करना)। अनेक (जीव) [illegible] धन्धों में) मेहनत करते करते पछताते हैं। बिना हरि-भक्ति के (जीव) कैसे स्थिरता प्राप्त करेंगे ?
घोल-घोलकर उन्होंने ही (नाम के) महारस और अमृत को पिया है जिनको, हे नानक ! हरि रूप गुरु ने (कृपा करके नाम का महारस) दिया है ॥२०॥

सलोकु ॥

ङणि घाले सभ दिवस सास
नह बढन घटन तिलु सार ॥
जीवन लोरहि भरम मोह
नानक तेऊ गवार ॥१॥

"मोह करने वाले मूर्ख हैं।"

(आयु के) सब दिवस और श्वास प्रभु ने गिन कर भेजे (डाले) हैं। तिल मात्र घटते-बढ़ते नहीं हैं।
जो भ्रम और मोह में (लगकर) जीना चाहते हैं वे, हे नानक ! मूर्ख हैं ॥१॥

पउड़ी ॥

ङंङा ग्रासै कालु तिह
जो साकत प्रभि कीन ॥
अनिक जोनि जनमहि मरहि
आतम रामु न चीन ॥
गिआन धिआन ताहू कउ आए ॥
करि किरपा जिह आपि दिवाए ॥
गणती गणी नही कोऊ छूटै ॥
काची गागरि सरपर फूटै ॥
सो जीवत जिह जीवत जपिआ ॥
प्रगट भए नानक नह छपिआ
॥२१॥

"कर्मों का लेखा उतारना कठिन है।"

('ङ', अक्षर के द्वारा गुरुदेव का उपदेश है) ङङा उसको (अपना) ग्रास बना लेता है, जिसको प्रभु ने (माया-शक्ति में लम्पट) साकत बनाया है। वे अनेक योनियों में जन्मते और मरते हैं, क्योंकि वे अपनी आत्मा में राम को नही देखते।

ज्ञान और ध्यान उसी को प्राप्त होता है, जिसे प्रभु स्वयं (कृपा करके गुरु से) मिलवाते हैं। (शुभाशुभ कर्मों की) गणना से कोई भी (यम से) नही छूटता। कच्ची गागर अवश्य टूटेगी (अर्थात शरीर विनश्वर है)। वही जीता है जिसने जीते जी जीवन में (प्रभु नाम को) जपा है। हे नानक! (हरि नाम जपने वाला जीव संसार में) प्रकट हो जाता है और (कभी भी छुपाने पर भी) छुपता नहीं है ॥२१॥

सलोकु ॥

चिति चितवउ चरणारबिंद
ऊध कवल बिगसांत ॥
प्रगट भए आपहि गोबिंद
नानक संत मतांत ॥१॥

"हरि-स्मरण से हृदय में ज्ञान-प्रकाश होता है।"

हरि के चरण कमलो का चित में चिन्तन (ध्यान) करता हूं, तब मेरा हृदय-कमल (जो प्रभु से विमुख होकर) उलटा हो गया था, वह प्रफुल्लित हो जाता है। हे नानक! सन्तों के मतानुसार (मिलने पर) गोविन्द (जी) स्वयं ही (मेरे हृदय में) प्रकट हो गये ॥१॥

पउड़ी ॥

चचा चरन कमल गुर लागा ॥
धनि धनि उआ दिन
संजोग सभागा ॥
चारि कुंट दहदिसि भ्रमि आइओ ॥
भई क्रिपा तब दरसनु पाइओ ॥
चार बिचार बिनसिओ सभ
दूआ ॥

"गुरु की शरण में ही जीव की रक्षा।"

('च', अक्षर द्वारा गुरुदेव का उपदेश है कि) चचा गुरु के चरण कमलों से लगो। वह दिन धन्य है, धन्य है, (हां) सौभाग्यवान है, जब जीव का मिलाप (परमात्मा से) हुआ। मैं चारों ही कोनों और दसों-दिशाओं मे भटककर (सतगुरु के पास) आया हूं। जब (मुझ पर परमेश्वर ने) कृपा की तभी मैंने (सतगुरु का) दर्शन प्राप्त किया। श्रेष्ठ विचार के कारण मेरी सारी द्वैत-भावना नाश हो गई। मेरा मन साधु-संगति के कारण निर्मल

साध संगि मनु निरमल हूआ ॥
चित बिसारी एक द्रिसटेता ॥
नानक गिआन अंजनु जिह नेत्रा
॥२२॥

हुआ है।

हे नानक ! जिसकी (बुद्धि की) आँखों में ज्ञान का सुरमा (गुरु ने डाला) है, उसी (ज्ञानी) ने चिन्ताएँ भूलकर "उस" एक को ही देखा है ॥२२॥

सलोकु ॥

छाती सीतल मनु सुखी
छंत गोबिंद गुन गाइ ॥
ऐसी किरपा करहु प्रभ
नानक दास दसाइ ॥१॥

"गोविन्द के गुण गाने से जीव सुखी होता है।"

गोविन्द के छन्द और गुण गाने से छाती शीतल होती है और मन भी सुखी होता है। हे प्रभु ! ऐसी कृपा करो (कि तेरे गुण गाने वाले) दासों के दास हम हो जाएँ। कहते हैं (बाबा) नानक (साहब) ॥१॥

पउड़ी ॥

छछा छोहरे दास तुमारे ॥
दास दासन के पानीहारे ॥
छछा छार होत तेरे संता ॥
अपनी क्रिपा करहु भगवंता ॥
छाडि सिआनप बहु चतुराई ॥
संतन की मन टेक टिकाई ॥
छार की पुतरी परमगति पाई ॥
नानक जा कउ संत सहाई ॥२३॥

"सन्तों की शरण पड़ने से परमगति।"

('छ', अक्षर द्वारा गुरुदेव विनती करते हैं कि हे प्रभु !) छछा छोडा मैं तेरा दास हूँ। तेरे दासों के दासों का पानी भरने वाला हूँ। छछे (द्वारा) तेरे सन्तों के चरणों की धूल बनता हूँ।

हे भगवंत् ! मुझ पर अपनी कृपा करो। बहुत बुद्धिमता और चतुराईयाँ छोडकर, (हे मन !) सन्तो के टेक में मन को टिकाए रखो।

राख की पुतली (भाव शरीर) भी परम गति प्राप्त कर लेती है। हे नानक ! (यह अवस्था उसे प्राप्त होती है) जिसे सन्त सहायक हुए हैं ॥२३॥

सलोकु ॥

जोर जुलम फूलहि घनो
काची देह बिकार ॥
अहंबुधि बंधन परे
नानक नाम छुटार ॥१॥

"पापियो का भी नाम से छुटकारा।"

जीव (जबरदस्ती) अत्याचार करके बहुत फूलते (घमंड करते) हैं, किन्तु यह काची देह व्यर्थ है। अहंकार वाली बुद्धि के बन्धन पड़े हुए हैं।

हे नानक ! नाम द्वारा (अहंकार से) छुटकारा होता है ॥१॥

पउड़ी ॥

"अहंकार का त्याग कर।"

जजा जानै हउ कछु हूआ ॥
बाधिओ जिउ नलिनी भ्रमि सूआ ॥
जउ जानै हउ भगतु गिआनी ॥
आगै ठाकुरि तिलु नही मानी ॥
जउ जानै मै कथनी करता ॥

('ज', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) जजा (जीव) जब समझता है कि मैं भी कुछ हूँ, तब वह (माया मे) ऐसे फसता है जैसे तोता भ्रम के कारण नली के धोखे में बाधा जाता है। यथा:

नोट : तोते को पकडने के लिए एक खाली नली लोहे की शलाका में पिरो कर पानी के बर्तन के ऊपर रखी जाती है। जब तोता आकर उस पर बैठता है तो वह घूम जाती है और तोता उलट कर लटकता है तथा पानी में रूप देखकर नली को छोडता नहीं और पकडा जाता है।

बिआपारी बसुधा जिउ फिरता ॥
साध संगि जिह हउमै मारी ॥
नानक ता कउ मिले मुरारी
॥२४॥

जब यह जीव जानता है कि मैं भक्त और ज्ञानी हूँ, तब उसे आगे (परलोक में) तिल मात्र भी मान-प्रतिष्ठा नहीं मिलती। जब यह जीव समझता है कि मैं कथा करने वाला हूँ, तब वह व्यापारी जैसे (धन प्राप्ति के लिए) धरती पर (देश-विदेश) घूमता-फिरता है। (अर्थात वह घुमकर वस्तुएँ बेचने के लिए आवाज देता फिरता है किन्तु स्वय उन वस्तुओ से सुख प्राप्त नही करता)। किन्तु जो साधु की संगति में अहंकार को मार देता है, हे नानक! उसे ही मुरारी (प्रभु) मिलता है ॥२४॥

सलोकु ॥

"अमृतवेले नाम जपने से सभी दुःख दूर।"

झालाघे उठि नामु जपि
निसि बासुर आराधि ॥
कारा तुझै न बिआपई
नानक मिटै उपाधि ॥१॥

(हे भाई!) प्रातःकाल उठकर नाम जप और रात-दिन (भाव आठ प्रहर) आराधना कर। फिर तुम्हें चिन्ता नही लगेगी और हे नानक (दु.ख के समान) उपद्रव भी मिट जायेंगे ॥१॥

पउड़ी ॥

"सन्तों की संगति मन की मैल को दूर करने वाली।"

झझा झूरनु मिटै तुमारो ॥
राम नाम सिउ करि बिउहारो ॥

('झ', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) झझा (तुम्हारी) पीड़ा (जलन) मिट जायेगी, यदि तू राम नाम के साथ व्यवहार

झूरत झूरत साकत मूआ ॥
जा कै रिदै होत भाउ बीआ ॥
झरहि कसमल पाप तेरे मनूआ ॥
अंमृत कथा संत संगि सुनुआ ॥
झरहि काम क्रोध द्रुसटाई ॥
नानक जा कउ क्रिपा गुसाई
॥२५॥

करेगा। (माया-शक्ति का उपासक) साकत झूड़-झूड़ कर मरता है, जिसके हृदय में द्वैत-भाव है। तुम्हारे मन से दोष और पाप (रूपी पत्ते) झड़ (कर नष्ट हो) जायेंगे यदि तू सन्तों की संगति में अमृत कथा सुनेगा। काम, क्रोधादि (विकार) जो दुष्ट (भाव बुरे) हैं, वे भी झड़ (कर नष्ट हो) जायेंगे, (हाँ) जिस पर हे नानक ! (प्यारे) गोसाईं (जी) की कृपा होती है ॥२५॥

सलोकु ॥

"नाम जपने से ही जीव सदा जीवित है।"

ञतन करहु तुम अनिक बिधि
रहनु न पावहु मीत ॥
जीवत रहहु हरि हरि भजहु
नानक नाम परीति ॥१॥

हे मित्र ! चाहे तू (अनेकानेक) यत्न भी कर ले तो भी इस ससार में (हमेशा के लिए जीवित) नही रहेगा। हे नानक ! यदि हरि का भजन करेगा और नाम से प्रीति रखेगा तो फिर तू सदा जीवित (अमर) रहेगा ॥१॥

पवड़ी ॥

"सब कुछ विनश्वर है, अतएव परमेश्वर को याद कर।"

ञंञा ञाणहु द्रिड़ु सही
बिनसि जात एह हेत ॥
गणती गणउ न गणि सकउ
ऊठि सिधारे केत ॥
ञो पेखउ सो बिनसतउ
का सिउ करीऐ संगु ॥
ञाणहु इआ बिधि सही चित
झूठउ माइआ रंगु ॥
ञाणत सोई संतु सुइ
भ्रम ते कीचत भिंन ॥
अंध कूप ते तिह कढहु
जिह होवहु सुप्रसंन ॥

('ञ', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) ञंञा निश्चय करके जानो तो (इस देही का) मोह नाश हो जायेगा। यदि मैं गणना गिनूं (करूँ) तो गणना नही कर सकता कि कितने चले गये हैं।

जो मैं देखता हूँ, वह नाशवान है। फिर भला (कहो) किसके साथ संगति करूँ ? चित्त में इस प्रकार निश्चय करो कि माया का रग झूठा है। (किन्तु) इस बात को वही जानता है, जिसने (अपने मन को) भ्रम से अलग कर दिया और वही सन्त गया है। हे प्रभु ! अन्धेरे कूएँ से उसी को निकालते हो, जिस पर तुम बहुत प्रसन्न होते हो। जिसके हाथ में (सब कुछ) है 'वह' समर्थ है, जो सबका करने (ध्यान) वाला है, जो सब कुछ करने के

जा कै हाथि समरथ ते
कारन करनै जोग ॥
नानक तिह उसतति करउ
जाहू कीआ संजोग ॥२६॥

योग्य है और जो (जीव का अपने साथ) मिलाप करता है अथवा जिसने शरीर का संयोग किया है, 'उसकी', हे नानक ! (तू सदैव) स्तुति कर ॥२६॥

सलोकु ॥

टूटे बंधन जनम मरन
साध सेव सुखु पाइ ॥
नानक मनहु न बीसरै
गुण निधि गोबिद राइ ॥१॥

"साधुजनों की सेवा से लाभ।"

जन्म-मरण के बन्धन उनके टूटते हैं, जो साधु की सेवा करके सुख पाते हैं।

हे नानक ! गुणों के भण्डार गोविन्द राजा (काश ! हमारे) मन से (कदाचित) विस्मृत न हो ॥१॥

पउड़ी ॥

टहल करहु तउ एक की
जउ ते बृथा न कोइ ॥
मनि तनि मुखि हीए बसै
जो चाहहु सो होइ ॥
टहल महल ता कउ मिलै
जा कउ साध क्रिपाल ॥
साधू संगति तउ बसै
जउ आपन होहि दइआल ॥
टोहे टाहे बहु भवन
बिनु नावै सुखु नाहि ॥
टलहि जाम के दूत तिह
जु साधू संग समाहि ॥
बारि बारि जाउ संत सदके ॥
नानक पाप बिनासे कदि के ॥२७॥

"सन्तों की संगति अनेकों पाप मिटाने वाली।"

टहल (सेवा) करनी है तो (केवल) एक (परमात्मा) की कर, जिससे कोई भी खाली नही जाता (अर्थात जिसकी सेवा से सब कुछ प्राप्त होता है, 'उसकी' सेवा कर)। (यदि तुम्हारे) तन, तन, मुख और हृदय में प्रभु बस जाय, तो फिर जो चाहेगा वही होगा। महल की टहल उसको मिलती है, जिस पर साधु कृपालु होते हैं। साधुजनों की संगति मे तभी कोई बसता है जब 'वह (प्रभु) स्वय दयालु होता है।

बहुत से भवन (स्थान) देखे हैं, (हाँ) ढूंढे भी हैं, किन्तु हरि नाम के बिना (कहीं भी) सुख नहीं है। यम के दूत उसी से दूर हो जाते हैं, जो साधु की संगति में समा जाते हैं। (इसलिए) बार-बार सन्तो के ऊपर कुर्बान जाना चाहिए।

हे नानक ! उनकी (सन्तो की) संगति से कब के (अर्थात् कई जन्मो के) पाप नाश हो जाते हैं ॥२७॥

सलोकु ॥

ठाकि न होती तिनहु दरि
जिह होवहु सुप्रसंन ॥
जो जन प्रभि अपुने करे
नानक ते धनि धंनि ॥१॥

"सन्त हरि दरबार में"

(हे प्रभु !) जिस पर तू अच्छी तरह प्रसन्न होता है, उनको (तुम्हारी दरबार के) द्वार पर रुकावट नहीं होती। जिन जीवों को प्रभु अपना (दास) कर लेता है, हे नानक ! वे धन्य हैं, (वे) धन्य हैं ॥१॥

पउड़ी ॥

ठठा मनूआ ठाहहि नाही ॥
जो सगल तिआगि
एकहि लपटाही ॥
ठहकि ठहकि माइआ संगि मूए ॥
उआ कै कुसल न कतहू हूए ॥
ठांढि परी संतह संगि बसिआ ॥
अंमृत नामु तहा जीअ रसिआ ॥
ठाकुर अपुने जो जनु भाइआ ॥
नानक उआ का मनु सीतलाइआ
॥२८॥

"किसी का मन दु:खी न कर तथा साधुजनों की संगति कर।"

('ठ', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) ठठा (वे जीव) किसी के भी मन को दुखाते नहीं, जो सभी (पदार्थ) त्याग कर एक (परमात्मा) को ही लिपट पड़ते हैं। जो जीव माया से मस्त-मस्त कर (अर्थात् उसके धक्के खाकर) मरते हैं, उनका कल्याण कभी भी नहीं होगा। (माया के धक्के हैं : कभी स्त्री आदि और कभी कोई सम्बन्धी मर गया और कभी धन चला गया)। सन्तों की संगति में जो निवास करता है उसको ठंड पड़ी है क्योंकि वहाँ (सत्संग में) उसकी आत्मा ने अमृत-नाम का रसास्वादन किया है।

जो जन (सेवक) अपने ठाकुर को अच्छा लगता है, हे नानक ! उसी का मन शीतल होता है ॥२८॥

सलोकु ॥

डंडउति बंदन अनिक बार
सरब कला समरथ ॥
डोलन ते राखहु प्रभू
नानक दे करि हथ ॥१॥

"परमात्मा के समक्ष विनय।"

(हे प्रभु !) कई बार मेरा दडवत (साष्टांग प्रणाम) और वंदना (नमस्कार) तुम्हें है। तू सभी शक्तियों में (परिपूर्ण) है और समर्थ है। हे प्रभु ! (बाबा) नानक को अपना हाथ देकर (आवागमन के) भटकने से रख लो ॥१॥

पउड़ी ॥

डडा डेरा इहु नही
जह डेरा तह जानु ॥
उआ डेरा का संजमो
गुर कै सबदि पछानु ॥

"प्रभु, गुरु के शब्द द्वारा मिलता है।"

('ड', अक्षर द्वारा उपदेश है कि हे जीव !) डडा यह (संसार) तुम्हारे रहने का ठिकाना नहीं है। जो तुम्हारा (सच्चा, वास्तविक) ठिकाना है, उसी को जानो। उसी ठिकाने पर पहुँचने

इआ डेरा कउ स्रमु करि घालै ॥
जा का तसू नही संगि चालै ॥
उआ डेरा की सो मिति जानै ॥
जा कउ द्रिसटि पूरन भगवानै ॥
डेरा निहचलु सचु साधसंगपाइआ ॥
नानक ते जन नह डोलाइआ ॥२१॥

के लिए गुरु के शब्द को ही उपाय समझ अथवा उस ठिकाने तक पहुँचने का जो ढग है, उसे गुरु के शब्द द्वारा समझ। (हे जीव !) कष्ट करके उद्यम करता है इस ठिकाने का, जो थोड़ा सा भी साथ नहीं चलता। किन्तु उस ठिकाने का अनुमान वही जानता है, जिस पर पूर्ण भगवान की (कृपा) दृष्टि है। जो निश्चल और सत्य ठिकाना साधु की संगति द्वारा प्राप्त करते हैं, वे, हे नानक ! (पुन·) भटकते नही ॥२१॥

सलोकु ॥

ढाहन लागे धरम राइ
किनहि न घालिओ बंध ॥
नानक उबरे जपि हरी
साध संगि सनबंध ॥१॥

'साधु की सगति ही यम से छुटाने वाली।"

जब (जीव को अथवा उसके शरीर रूपी ठिकाने को) धर्म-राजा (के दूत) गिराने लगते हैं, उस समय (जीव के सम्बन्धी) रोक नही सकते। हे नानक ! जो हरि को जपते हैं और साधु संगति से सम्बन्ध (भाव मिलाप) रखते हैं, वे ही (यम के दूतों से) बचते हैं ॥१॥

पउड़ी ॥

ढढा ढूढत कह फिरहु
ढूढनु इआ मन माहि ॥
संगि तुहारै प्रभु बसै
बनु बनु कहा फिराहि ॥
ढेरी ढाहहु साध संगि
अहंबुधि बिकराल ॥
सुखु पावहु सहज बसहु
दरसनु देखि निहाल ॥
ढेरी जामै जमि मरै
गरभ जोनि दुख पाइ ॥
मोह मगन लपटत रहै
हउ हउ आवै जाइ ॥

'अपने हृदय मे परमेश्वर को ढूंढ।"

('ढ', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि हे जीव !) ढढा परमेश्वर को ढूँढने के लिए कहाँ (घूमते) फिरते रहते हो ? मन में ही 'उसको' ढूँढो। प्रभु तुम्हारे सग-साथ बसता है, (फिर भला) क्यों बन-बन में (घूमते) फिरते (रहते) हो ?

इस भयानक अहंकार की बुद्धि के ढेर को साधु की संगति द्वारा गिराओ (ऐसा करने से) तो सुख प्राप्त करेगा और परमात्मा में अथवा सहजावस्था मे तुम्हारा निवास होगा और 'उसका' दर्शन देखकर तू कृतार्थ होगा।

इस अहंकार के ढेर के कारण ही जीव जन्मता है और जन्म कर पुन· मरता है, (इस प्रकार आवागमन में बारम्बार) दुःख झेलता (रहता) है। वह मग्न होकर मोह में लम्पट रहता है और मैं 'मैं' के कारण (जन्म मरण में) आता जाता है। (अतएव)

ढहत ढहत अब ढहि परे
साध जना सरनाइ ॥
दुख के फाहे काटिआ
नानक लीए समाइ ॥३०॥

गिरते-गिरते अब साधुजनों की शरण में आकर गिरा हूँ।
(साधुजनों ने) मेरे दुःख के फंदे काट दिये और मुझे अपने साथ मिला लिया है, हे नानक ! ॥३०॥

सलोकु ॥

"यमराज की आज्ञा अपने दूतों को।"

जह साधू गोबिद भजनु
कीरतनु नानक नीत ॥
णा हउ णा तूं णह छुटहि
निकटि न जाईअहु दूत ॥१॥

(यमराज अपने दूतों को कहता है कि) जहाँ साधु (जन) हों, और (गोविन्द) का भजन तथा कीर्तन नित्य हो, हे नानक ! वहाँ, हे दूतो ! तुम निकट नहीं जाना, वहाँ से न मैं और न तुम छूट सकोगे ॥१॥

पउड़ी ॥

"मन को जीतना सच्ची बहादुरी।"

णाणा रण ते सीझीऐ
आतम जीतै कोइ ॥
हउमै अन सिउ लरि मरै
सो सोभा दू होइ ॥
मणी मिटाइ जीवत मरै
गुर पूरे उपदेस ॥
मनूआ जीतै हरि मिलै
तिह सूरतण वेस ॥
णा को जाणै आपणो
एकहि टेक अधार ॥
रैणि दिनसु सिमरत रहै
सो प्रभु पुरखु अपार ॥
रेण सगल इआ मनु करै
एऊ करम कमाइ ॥
हुकमै बूझै सदा सुखु
नानक लिखिआ पाइ ॥३१॥

('ण', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) णा संसार रूपी युद्ध के मैदान में वही जीत कर जाता है, जो अपने आप पर जीत पाता है (भाव कोई विरला ही जीव कामादि विकारों को जीतता है और मन को मारता है)। जो अहंकार और द्वैत-भाव से जूझकर मरता है, उसकी शोभा दुगिनी होती है अथवा वह (दोनो जहानों में) शोभा वाला होता है। जो अहम् (खुदी) मिटाकर गुरु के उपदेश द्वारा जीते ही मर कर हरि को मिलता है, उसे ही सचमुच बहादुरों वाला भेष है। जो किसी(अपने) को भी अपना नहीं समझता और जिसको एक (परमात्मा) की ही टेक और आधार है, वह अपार और सर्व व्यापक प्रभु का रात-दिन स्मरण करता रहता है। वह ऐसे कर्म करता है जो (वह अपने) मन को सबके (चरणों) की धूलि करता है। वह परमात्मा का हुकम समझता है जिसमें सदैव सुख है।

हे नानक ! जिसके (प्रारब्ध में पहले से ही सुख) लिखा है, वही (सुख) प्राप्त करता है ॥३१॥

सलोकु ॥

तनु मनु धनु अरपउ तिसै
प्रभू मिलावै मोहि ॥
नानक भ्रम भउ काटीऐ
चूकै जम की जोह ॥१॥

"गुरु के प्रति स्वयं को अर्पण करने का लाभ।"

मैं तन, मन और धन उसको अर्पण करूं, जो मुझे प्रभु से मिला देवे।

हे नानक ! फिर मेरे भ्रम और भय (सब) कट जायेंगे और यमों का (मेरी ओर) तकना भी समाप्त हो जायेगा॥१॥

पउड़ी ॥

तता ता सिउ प्रीति करि
गुण निधि गोबिद राइ ॥
फल पावहि मन बाछते
तपति तुहारी जाइ ॥
त्रास मिटै जम पंथ की
जासु बसै मनि नाउ ॥
गति पावहि मति होइ प्रगास
महली पावहि ठाउ ॥
ताहू संगि न धनु चलै
गृह जोबन नह राज ॥
संत संगि सिमरत रहहु
इहै तुहारै काज ॥
ताता कछू न होई है
जउ ताप निवारै आप ॥
प्रतिपालै नानक हमहि
आपहि माई बापु ॥३२॥

"परमात्मा से प्रीति करने का लाभ।"

('त', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) तता 'उसी' प्रभु से प्रीति कर, जो गोविन्द राजा गुणों का खजाना है। (ऐसा करने से) तू मनवाछित फल प्राप्त करेगा और तुम्हारी तपत (जलन) नाश हो जायेगी। जिसके मन में (गोविन्द राजा का) नाम बसता है, उसके यम-मार्ग का भय दूर हो जाता है। ऐसा जीव (परम) गति (मोक्ष) प्राप्त करता है, उसकी बुद्धि प्रज्जवलित (निर्मल) होती है और वह निज स्वरूप मे ठिकाना पाता है। वहां (अर्थात परलोक में) तुम्हारे साथ न धन, न घर, न यौवन और न ही राज्य चलेगा। इसलिए सन्तों की सगति में (हरिनाम) स्मरण करते रहो। यही तुम्हारा (मुख्य) काम है। जलन तिल मात्र भी नही होगी यदि स्वय (परमात्मा) तुम्हारे दु:ख निवृत करे अथवा जो आपा भाव रूपी ताप को दूर करता है उसे फिर कुछ भी जलन नही होती।

क्योकि 'वह' (गोविन्द राजा) स्वय ही, हे नानक ! माता-पिता की तरह हमें पालता है, ॥३२॥

सलोकु ॥

थाके बहु बिधि घालते
त्रिपति न त्रिसना लाथ ॥
संचि संचि साकत मूए
नानक माइआ न साथ ॥१॥

"तृष्णा कदाचित शान्त नहीं होती।"

(माया में आसक्त) साकत अनेक प्रकार के परिश्रम करते थक गये। न वे तृप्त हुए और न उनकी तृष्णा की ही निवृति हुई। (माया) संग्रह करते करते साकत मर गये (किन्तु), हे नानक! (माया) उनके साथ नहीं गई॥१॥

पउड़ी ॥

थथा थिरु कोऊ नही
काइ पसारहु पाव ॥
अनिक बंच बल छल करहु
माइआ एक उपाव ॥
थैली संचहु स्रमु करहु
थाकि परहु गावार ॥
मन कै कामि न आवई
अंते अउसर बार ॥
थिति पावहु गोबिद भजहु
संतह की सिख लेहु ॥
प्रीति करहु सद एक सिउ
इआ साचा असनेहु ॥
कारन करन करावनो
सभ बिधि एकै हाथ ॥
जितु जितु लावहु तितु तितु लगहि
नानक जंत अनाथ ॥३३॥

"माया किसी के संग साथ नहीं चलती।"

('थ', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) यहाँ (इस संसार में) सदा स्थिर रहने वाला कोई नहीं इसलिए पाँव किस लिए फैलाते हो? एक माया को इकट्ठी करने के लिए तुम अनेक प्रकार की ठगीआं और कपट करते हो। माया की थैली संग्रह करने के लिए (भाव भरने के लिए) परिश्रम करते हो, किन्तु हे मूर्ख! तू इकट्ठी करता करता थक कर (गिर) पड़ेगा। अन्त के समय (माया) मन के काम नही आयेगी, (अर्थात इससे आत्मिक सुख प्राप्त नहीं होगा)। यदि स्थिरता प्राप्त करना चाहते हो तो गोविन्द का भजन करो और सन्तों की शिक्षा लो। सदा एक (गोविन्द) के साथ प्रीति करो, यह है सच्चा स्नेह। सभी कामों का कारण और कराने वाला (गोविन्द) है, सारी विधियाँ 'उस' एक के हाथ में हैं। (हे प्रभु!) जहाँ-जहाँ जीवों को लगाते हो, वहाँ-वहाँ वे लगते हैं।

हे नानक! (बेचारे) जीव-जन्तु (सब) अनाथ हैं ॥३३॥

सलोकु ॥

दासह एकु निहारिआ
सभु कछु देवनहार ॥
सासि सासि सिमरत रहहि
नानक दरस अधार ॥१॥

"भक्तो को प्रभु का ही सहारा।"

दासों ने एक परमेश्वर को सब कुछ देने वाला देखा है। वे श्वास-प्रश्वास परमेश्वर का स्मरण करते हैं।

हे नानक! उनको (परमेश्वर के) दर्शन का ही आधार है ॥१॥

पउड़ी ॥

ददा दाता एकु है
सभ कउ देवनहार ॥

"प्रभु के भण्डार अटूट हैं।"

('द', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) सदा दाता एक ही (प्रभु) है जो सबको देने वाला है। 'उसको' देने में कभी त्रुटि

देदे तोटि न आवई
अगनत भरे भंडार ॥
दैनहार सद जीवनहारा ॥
मन मूरख किउ ताहि बिसारा ॥
दोसु नही काहू कउ मीता ॥
माइआ मोह बंधु प्रभि कीता ॥
दरद निवारहि जा के आपे ॥
नानक ते ते गुरमुखि ध्रापे ॥३४॥

नहीं आती क्योंकि 'उसके' अगणित भण्डार हैं। (फिर) 'वह' देने वाला सदा जीने वाला (भाव स्थिर) है। (फिर भला इस) मूर्ख मन ने 'उसको' क्यों विस्मृत कर दिया है? हे मित्र! किसी का भी दोष नहीं है क्योंकि प्रभु ने स्वयं माया के मोह का बन्धन बनाया है।

जिनके दर्द (प्रभु) स्वय निवृत करता है, वे ही, हे नानक! तृप्त होते हैं (अर्थात वे ही हरि-स्मरण करके (सदैव) प्रसन्न रहते हैं) ॥३४॥

सलोकु ॥

धर जीअरे इक टेक
तू लाहि बिडानी आस ॥
नानक नामु धिआईऐ
कारजु आवै रासि ॥१॥

"नाम की टेक ग्रहण करो।"

(हे जीव!) तू एक (प्रभु) की टेक धारण कर और पराई आशा उतार दे (भाव दूर कर दे)।

हे नानक! 'उसके' नाम का ध्यान करने से (सारे) कार्य सिद्ध (पूर्ण) हो जाते हैं ॥१॥

पउड़ी ॥

धधा धावत तउ मिटै
संत संगि होइ बासु ॥
धुर ते किरपा करहु आपि
तउ होइ मनहि परगासु ॥
धनु साचा तेऊ सच साहा ॥
हरि हरि पूंजी नाम बिसाहा ॥
धीरजु जसु सोभा तिह बनिआ ॥
हरि हरि नामु स्रवन जिह सुनिआ ॥
गुरमुखि जिह घटि रहे समाई ॥
नानक तिह जन मिली वडाई
॥३५॥

"सन्त सच्चे व्यापारी।"

('ध', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) धधा (तुम्हारे मन की) भटकना तब मिटेगी जब तुम्हारा सन्तो की सगति में वासा होगा। (हे प्रभु!) जब तुम स्वय पहले से ही कृपा करते हो तब मन में (संत द्वारा) प्रकाश होता है। सच्चा धन उनके पास है और सच्चे शाहुकार वे हैं, जिनके पास हरि नाम रूपी पूंजी है तथा जो नाम का व्यापार करते हैं अथवा जो नाम का सौदा खरीदते हैं। धैर्य, यश और शोभा उनकी बनती (होती) है, जिन्होने हरि, (हाँ) हरिनाम को कानो से श्रवण किया है।

जिस गुरमुख के हृदय में (प्रभु) समाया रहता है, उस दास को, हे नानक! (सदैव) बड़ाई मिलती है ॥३५॥

सलोकु ॥

नानक नामु नामु जपु जपिआ
अंतरि बाहरि रंगि ॥
गुरि पूरै उपदेसिआ
नरकु नाहि साध संगि ॥१॥

"नाम जपने से नर्क नहीं है।"

हे नानक ! पूर्ण गुरु ने यह उपदेश दिया है कि जो अन्दर और बाहर प्रेम से साधु की संगति में (बैठकर) (हरि) नाम, (हाँ) नाम का जाप करते हैं, उनके लिए नर्क नही है (अर्थात वे जन्म-मरण में पुनः नहीं भटकते) ॥१॥

पउड़ी ॥

नंना नरकि परहि ते नाही ॥
जा कै मनि तनि नामु बसाही ॥
नामु निधानु गुरमुखि जो जपते ॥
बिखु माइआ महि ना ओइ खपते ॥
नंनाकारु न होता ता कहु ॥
नामु मंत्रु गुरि दीनो जा कहु ॥
निधि निधान हरि अंम्रित पूरे ॥
तह बाजे नानक अनहद तूरे ॥३६॥

"नाम जपने वालों का हरि दरबार में निवास।"

('न', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) नना वे (जीव) नरक अन्दर नहीं पड़ेंगे, जिनके मन और तन में नाम बसता है। वे नाम रूपी खजाना गुरु से शिक्षा लेकर जपते हैं, वे माया के विष में नाश नहीं होंगे। उनको ही (दरबार में आने से) इनकार नहीं होता अथवा निरादर नहीं होता, जिनको गुरु ने नाम का मन्त्र दिया है।

जिनके अन्दर हरिनाम रूप अमृत के भण्डार परिपूर्ण हैं, उनके लिए ही वहाँ, हे नानक ! (स्वागत के लिए) अनाहत बाजे बजते हैं ॥३६॥

सलोकु ॥

पति राखी गुरि पारब्रहम
तजि परपंच मोह बिकार ॥
नानक सोऊ आराधीऐ
अंतु न पारावारु ॥१॥

"परब्रह्म परमात्मा गुरमुखों की प्रतिष्ठा रखता है।"

जिन्होंने पाखण्ड, मोह और विकार त्याग दिये हैं, उनकी परब्रह्म रूप गुरु ने प्रतिष्ठा (इज्जत) रखी है। हे नानक ! 'उसी' (परब्रह्म रूप गुरु) की आराधना करनी चाहिए, जिसका न अन्त है और न आर-पार ही है (अर्थात् जो अनन्त है) ॥१॥

पउड़ी ॥

पपा परमिति पारु न पाइआ ॥
पतित पावन अगम हरि राइआ ॥
होत पुनीत कोट अपराधू ॥

"परमात्मा की महिमा।"

('प', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) पपा अपरिमित परमात्मा का अन्त किसी ने भी नहीं पाया है। (वह) 'अगम्य' हरि राजा पापियों को पवित्र करने वाला है। करोड़ों अपराधी

अंम्रित नामु जपहि मिलि साधू ॥
परपंच ध्रोह मोह मिटनाई ॥
जा कउ राखहु आपि गुसाई ॥
पातिसाहु छत्र सिर सोऊ ॥
नानक दूसर अवर न कोऊ ॥३७॥

पवित्र होते हैं, जो साधुजनों को मिलकर अमृत रूपी नाम जपते हैं। पाखण्ड, धोखा और मोह उनके मिट जाते हैं, जिनको, हे गोसांई! तू स्वयं रखता है (रक्षा करता है)। परमात्मा ही सच्चा बादशाह है जिसके सिर पर छत्र है। हे नानक! 'उसके' बिना अन्य कोई नहीं है ॥३७॥

सलोकु ॥

फाहे काटे मिटे गवन
फतिह भई मनि जीत ॥
नानक गुर ते थित पाई
फिरन मिटे नित नीत ॥१॥

"गुरु जन्म-मरण की फाँसी काटने वाला।"

मन को जीतने से जन्म-मरण की फाँसी कट जाती है, आवागमन मिट जाता है और जीत होती है। हे नानक! जिन्होंने गुरु के द्वारा स्थिरता प्राप्त की है, उनका (आवागमन के चक्र में) फिरना नित्य के लिए मिट जाता है ॥१॥

पउड़ी ॥

फफा फिरत फिरत तू आइआ ॥
दुर्लभ देह कलिजुग महि पाइआ ॥
फिरि इआ अवसरु चरै न हाथा ॥
नामु जपहु तउ कटीअहि फासा ॥
फिरि फिरि आवन जानु न होई ॥
एकहि एक जपहु जपु सोई ॥
करहु क्रिपा प्रभ करनै हारे ॥
मेलि लेहु नानक बेचारे ॥३८॥

"मनुष्य जन्म व्यर्थ मत गँवाओ।"

('फ', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश देते हैं कि हे जीव!) फफा तू (कई जन्म) भटकते-भटकते (इस संसार में) आया है यह(मनुष्य) देही (अति) दुर्लभ है, जो तुमने कलियुग में प्राप्त की है। फिर ऐसा अवसर हाथ नहीं आता। (इसीलिए) नाम जप ले, तो (योनियों की) फाँसी कट जाये। (इस संसार में) फिर-फिर तुम्हारा आना-जाना नहीं होगा। इसलिए 'उस' एक ही एक अद्वितीय परमात्मा का जाप कर, यही (सच्चा) जप है। हे रचनहार प्रभु! (अपनी) इन बेचारों (जीवों) पर कृपा करो और (अपने साथ)इनको मिला लो (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (विनयपूर्वक) कहते हैं ॥३८॥

सलोकु ॥

बिनउ सुनहु तुम पारब्रहम
दीन दइआल गुपाल ॥
सुख स्मपै बहु भोग रस
नानक साध रवाल ॥१॥

"साधुजनों की धूलि मिलने के लिए बिनती।"

हे परब्रह्म! हे दीनों पर दया करने वाले। हे पृथ्वी के पालने वाले! तुम दास नानक की (एक) विनय सुनो। साधुजनों की धूलि मेरे लिए सुख, सम्पत्ति और भोगों का स्वाद है ॥१॥

पउड़ी ॥

बबा ब्रहमु जानत ते ब्रहमा ॥
बैसनो ते गुरमुखि सुच धरमा ॥
बीरा आपन बुरा मिटावै ॥
ताहू बुरा निकटि नही आवै ॥
बाधिओ आपन हउ हउ बंधा ॥
दोसु देत आगह कउ अंधा ॥
बात चीत सभ रही सिआनप ॥
जिसहि जनावहु सो जानै नानक
॥३९॥

"प्रभु को वही जानता है जिसे प्रभु स्वयं ज्ञान देता है।"

('ब', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) बबा, जो परमात्मा को जानते हैं वे ही (सच्चे) ब्राह्मण हैं। (सच्चे) वैष्णव वे हैं, जो गुरु के उपदेश द्वारा पवित्र धर्म (के नियमों) पर चलते हैं। (सच्चे) शूरवीर वे हैं, जो अपनी (मन से) बुराईयाँ मिटाते हैं। फिर उनके निकट कोई भी बुराई नहीं आती। (जीव) अहंकार के बन्धनों में स्वय ही बंधे हुए हैं, किन्तु अन्धे (लोग) दोष दूसरों को देते हैं (अर्थात पुत्र, स्त्री आदि को)। बात चीत एवं सारी चतुराई यहीं रह जाती है (अर्थात परलोक के लिए वे काम नहीं आती)।

(हे प्रभु !) जिनको तुम स्वयं ज्ञान कराते हो, वही तुम्हें जानते हैं ॥३९॥

सलोकु ॥

भै भंजन अघ दूख नास
मनहि अराधि हरे ॥
संत संग जिह रिद बसिओ
नानक ते न भ्रमे ॥१॥

"हरि को जप, हे मन ! ॥"

(हे मित्र !) भय नाशन और पापों तथा दुःखों को नाश करने वाले हरि की मन में आराधना कर। सन्तों की संगति के द्वारा जिनके हृदय में (हरि) बसता है, हे नानक ! वे (जन्म मरण के चक्र में पुनः) नहीं भटकते ॥१॥

पउड़ी ॥

भभा भरमु मिटावहु अपना ॥
इआ संसारु सगल है सुपना ॥
भरमे सुरि नर देवी देवा ॥
भरमे सिध साधिक ब्रहमेवा ॥
भरमि भरमि मानुख डहकाए ॥
दुतर महा बिखम इह माए ॥
गुरमुखि भ्रम भै मोह मिटाइआ ॥
नानक तेह परमसुख पाइआ
॥४०॥

"माया में गुरमुख नहीं भटकते ॥"

('भ', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि हे भाई !) भभा अपने भ्रम को दूर कर। यह सारा संसार स्वप्नवत् है। देवतागण, मनुष्य, देवी और देवताएँ भी भ्रम में हैं। सिद्ध साधनाएँ करने वाले तथा ब्रह्मादि भी (सब) भ्रम में (फिरते) हैं। (इस माया ने) भरम भरम में मनुष्य को खराब खुआर किया है। इस कठिन माया से पार होना महा दुष्कर है। जिन गुरमुखों ने भ्रम (मिथ्या ज्ञान), भय और मोह को मिटाया है, उन्होंने ही, हे नानक ! सच्चा सुख प्राप्त किया है ॥४०॥

सलोकु ॥

माइआ डोलै बहु बिधी
मनु लपटिओ तिह संग ॥
मागन ते जिह तुम रखहु
सु नानक नामहि रंग ॥१॥

"माया में लम्पट जीव नाम से निराश।"

माया अनेक विधियों से जीव को भटकाती है, तो भी मन उस (माया) की संगति में लिपटा हुआ है। (हे प्रभु !) जिसको तुम (माया के सुख) माँगने से रख लेते हो, वही, हे नानक ! नाम के रंग में अनुरक्त है ॥१॥

पउड़ी ॥

ममा मागनहार इआना ॥
देनहार दे रहिओ सुजाना ॥
जो दीनो सो एकहि बार ॥
मन मूरख कह करहि पुकार ॥
जउ मागहि तउ मागहि बीआ ॥
जा ते कुसल न काहू थीआ ॥
मागनि माग त एकहि माग ॥
नानक जा ते परहि पराग ॥४१॥

"नाम के बिना अन्य कुछ नही माँगना।"

('म', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) ममा (माया को) माँगने वाले मूर्ख हैं, क्योंकि जो देने वाला है, 'वह' (हरि) सुजान है, 'वह' (कर्मानुसार) दे रहा है। जो देना था उसे एक बार ही कर्मानुसार दे दिया है, फिर, हे मूर्ख मन ! भला क्यों पुकार कर रहा है ? (अर्थात पुकार करने से और अधिक तुम्हें नही मिलेगा)। (हाय !) जब तुम माँगते हो, तब (नाम के बिना) अन्य वस्तुएँ (अर्थात सांसारिक पदार्थ) माँगते हो जिससे किसी का भी कल्याण नहीं होता। (हे भाई !) यदि तूने माँग माँगनी है, तो एक ही वस्तु (अर्थात नाम) माँग, जिससे, हे नानक ! (इस संसार-सागर से) तुम पार हो जाओगे ॥४१॥

सलोकु ॥

मति पूरी परधान ते
गुर पूरे मन मंत ॥
जिह जानिओ प्रभु आपुना
नानक ते भगवंत ॥१॥

"गुरु का मन्त्र जपने वाला सबसे श्रेष्ठ।"

पूर्ण बुद्धि वाले और प्रधान वे हैं, जो गुरु का मन्त्र मन में (धारण करके) रखते हैं। जिन्होंने अपने (स्वामी) को जाना है, वे, हे नानक ! भाग्यवान हैं अथवा वे भगवंत प्रभु के रूप हैं ॥१॥

पउड़ी ॥

ममा जाहू मरमु पछाना ॥
भेटत साध संग पतीआना ॥
दुःख सुख उआ कै समत बीचारा ॥
नरक सुरग रहत अउतारा ॥

"ज्ञानवान माया के प्रभाव से दूर।"

('म', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) ममा जिस जीव ने (परमात्मा का) भेद जाना है, उसको साधु-संगति में मिलकर रहने के कारण पूर्ण निश्चय हुआ है। ऐसा (ज्ञानवान) दुःख और सुख को एक जैसा समझता है, वह नरक और स्वर्ग में

ताहू संग ताहू निरलेपा ॥
पूरन घट घट पुरख बिसेखा ॥
उआ रस महि
उआहू सुखु पाइआ ॥
नानक लिपत नही तिह माइआ ॥ ४२॥

उतरने (पड़ने) से रहित हो गया। वह (माया के) साथ है, तो भी उससे निर्लेप है। वह घट-घट में पूर्ण और श्रेष्ठ पुरुष परमात्मा का स्वरूप है। परमेश्वर के रस में (रहकर) ऐसे पुरुष ने ही सुख पाया है। हे नानक! ऐसे पुरुष पर माया का प्रभाव (असर) नहीं है (अर्थात् अब माया उस पर सम्पट नहीं होती) ॥४२॥

सलोकु ॥

यार मीत सुनि साजनहु
बिनु हरि छूटनु नाहि ॥
नानक तिह बंधन कटे
गुर की चरनी पाहि ॥१॥

"माया के बन्धनों से छूटने का उपाय।"

हे यारो, मित्रो और सज्जनों! सुनो। हरि के नाम के बिना छुटकारा नहीं (मिलता)। हे नानक! बन्धन उनके ही कटते हैं, जो गुरु के चरणों पर (जाकर) पड़ते हैं ॥१॥

पउड़ी ॥

यया जतन करत बहु बिधीआ ॥
एक नाम बिनु कह लउ सिधीआ ॥
याहू जतन करि होत छुटारा ॥
उआहू जतन साध संगारा ॥
या उबरन धारै सभु कोऊ ॥
उआहि जपे बिनु उबर न होऊ ॥
याहू तरन तारन समराथा ॥
राखि लेहु निरगुन नर नाथा ॥
मन बच क्रम जिह आपि जनाई ॥
नानक तिह मति प्रगटी आई ॥ ४३॥

"नाम के बिना उद्धार नहीं होगा।"

('य', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) यया (हे जीव! तू) बहुत विधियों से यत्न करते हो, किन्तु बताओ एक नाम के बिना सिद्धि कहाँ से अथवा कैसे प्राप्त करोगे? (अर्थात नाम बिना मुक्ति कैसे प्राप्त करोगे?) जिस यत्न करने से छुटकारा होता है, वह यत्न साधु की संगति में (प्राप्त होता) है। इस (संसार) से बचने के लिए सब कोई (इच्छा) रखता है, किन्तु 'उस' परमात्मा को जपने बिना बचाव नहीं होता। इस (संसार) से तरने के लिए जहाज और समर्थ स्वयं ही (प्रभु) है। हे नरों के नाथ (स्वामी)! मुझ निर्गुण जीव को रख लो। मन, वचन और कर्म करके जिस को स्वयं परमेश्वर ने समझाया है, उसकी बुद्धि, हे नानक! प्रकाशवान होती है ॥४३॥

सलोकु ॥

रोसु न काहू संग करहु
आपन आपु बीचारि ॥
होइ निमाना जगि रहहु
नानक नदरी पारि ॥१॥

"गुस्सा छोड़ कर सबकी धूलि हो।"

(हे भाई!) सब को अपने जैसा विचार करके किसी के साथ गुस्सा न कर अथवा अपनी भूल का विचार कर। माणहीन होकर जगत में रहो। हे नानक! (ऐसा करने से तू) परमात्मा की कृपा दृष्टि से पार हो जाएगा ॥१॥

पउड़ी ॥

रारा रेन होत सभ जा की ॥
तजि अभिमानु छुटै तेरी बाकी ॥
रणि दरगहि तउ सीझहि भाई ॥
जउ गुरमुखि राम नाम लिव लाई ॥
रहत रहत रहि जाहि बिकारा ॥
गुर पूरे कै सबदि अपारा ॥
राते रंग नाम रस माते ॥
नानक हरि गुर कीनी दाते ॥४४॥

'माणहीन होकर नाम जपने से कर्मों का लेख समाप्त।"

('र', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) रारा सबकी धूलि हो जा, अभिमान को छोड़ दे तो (तुम्हारे कर्मों का) लेखा छूट जाएगा। हे भाई! (इस ससार रूपी) रणक्षेत्र में जीत कर तभी हरि दरबार में पहुँचेगा, जब गुरु के उपदेश द्वारा तू रामनाम के साथ लौ लगायेगा। गुरु के उपदेश द्वारा वास्तविक जीवन में रहने से तुम्हारे विकारो की निवृति हो जाएगी। प्रेम में अनुरक्त और नाम रस मे मस्त वे हैं, जिन पर, हे नानक! हरि रूप गुरु ने नाम की बख्शिश की है ॥४४॥

सलोकु ॥

लालच झूठ बिखै बिआधि
इआ देही महि बास ॥
हरि हरि अंमृतु गुरमुखि पीआ
नानक सूखि निवास ॥१॥

"विकारों का औषध नाम है।"

लालच, झूठ और विषयों की बीमारियो का इस देही में निवास है। जिन्होने हरि (के नाम) का अमृत गुरु के उपदेश द्वारा पान किया किया है उनका, हे नानक! (आत्मिक)सुख में निवास होता है ॥१॥

पउड़ी ॥

लला लावउ अउखध जाहू ॥
दूख दरद तिह मिटहि खिनाहू ॥
नाम अउखधु जिह रिदै हितावै ॥
ताहि रोगु सुपनै नही आवै ॥

"नाम औषध लगाने की विधि गुरु द्वारा ही प्राप्त।"

('ल', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि हे प्रभु!) लला जिसको तू नाम रूप औषध लगाते हो, उसके दुःख और दर्द क्षण भर में मिट जाते हैं। जिसको नाम रूप औषध हृदय में होता है, उसको स्वप्न में भी (कामादि) बीमारियाँ नहीं आती। हे भाई!

हरि अउखधु सभ घट है भाई ॥
गुर पूरे बिनु बिधि न बनाई ॥
गुरि पूरै संजमु करि दीआ ॥
नानक तउ फिरि दूख न थीआ ॥
॥४५॥

हरि (के नाम) का औषध सभी के हृदय में है। किन्तु पूर्ण गुरु के बिना (नाम जपने की) विधि कभी भी नहीं बन पाएगी। जब पूर्ण गुरु संयम से (अर्थात पूर्ण विधि से) उपदेश देता है, तो फिर हे नानक ! (आवागमन का) दुःख नहीं होता ॥४५॥

सलोकु ॥

वासुदेव सरबत्र मै
ऊन न कतहू ठाइ ॥
अंतरि बाहरि संगि है
नानक काइ दुराइ ॥१॥

"परमात्मा से कोई भी पाप छिप नहीं सकता"

वासुदेव परमात्मा समस्त सृष्टि में परिपूर्ण है। 'उससे' खाली स्थान कोई नहीं है। 'वह' अन्दर-बाहर (सब के) साथ है, 'उससे' हे नानक ! क्या छिपा सकोगे ? ॥१॥

पउड़ी ॥

ववा वैरु न करीऐ काहू ॥
घट घट अंतरि ब्रहम समाहू ॥
वासुदेव जल थल महि रविआ ॥
गुर प्रसादि विरलै ही गविआ ॥
वैर विरोध मिटे तिह मन ते ॥
हरि कीरतनु गुरमुखि जो सुनते ॥
वरन चिहन सगलह ते रहता ॥
नानक हरि हरि
गुरमुखि जो कहता ॥४६॥

"वैर किसी से भी नहीं रखना चाहिए।"

('व', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते है कि) ववा वैर किसी से भी नहीं रखना चाहिए, क्योंकि प्रभु प्रत्येक घट में समाया हुआ है।

वासुदेव परमात्मा जल स्थल में व्याप्त है किन्तु किसी विरले ने ही गुरु की कृपा से ऐसा समझा है अथवा किसी विरले जीव ने ही गुरु की कृपा से 'उसकी (स्तुति) गाई है। वैर, विरोध (आदि विकार) उनके मन से मिटते हैं जो गुरु के उपदेश द्वारा हरि का कीर्तन सुनते हैं। वर्ण (रंग) और जाति-पाति के भेद से वे रहित हैं, जो, हे नानक ! गुरु के उपदेश द्वारा हरि (का नाम) उच्चारण करते हैं ॥४६॥

सलोकु ॥

हउ हउ करत बिहानीआ
साकत मुगध अजान ॥
ड़ड़कि मूए जिउ त्रिखावंत
नानक किरति कमान ॥१॥

"मनमुखों की दुर्दशा।"

मूर्ख, अज्ञानी और साकत (माया का उपासक) की आयु मैं 'मैं' (किये कर्मानुसार) (अहंकार) के अधीन होती है। वे प्यासे जीवों की तरह मरते हैं क्योंकि उन्होंने, हे नानक ! पापों रूपी कर्मों की कमाई की है ॥१॥

पउड़ी ॥

ड़ाड़ा ड़ाड़ि मिटै संगि साधू ॥
करम धरम ततु नाम अराधू ॥
रूड़ो जेह बसिओ रिद माही ॥
उआ की ड़ाड़ि मिटत बिनसाही ॥
ड़ाड़ि करत साकत गावारा ॥
जेह हीऐ अहंबुधि बिकारा ॥
ड़ाड़ा गुरमुखि ड़ाड़ि मिटाई ॥
निमख माहि नानक समझाई
॥४७॥

"तृष्णा साधु-संगति करने से मिटती है।"

('ड़', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) ड़ाड़ा तृष्णा रूपी जलन उनकी मिटती है जो साधु की संगति करते हैं और कर्म, धर्म का तत्व (सार), जो नाम है उनकी आराधना करते हैं। जिनके हृदय में सुन्दर परमात्मा बसता है, उनकी तृष्णा रूपी जलन मिटकर नाश हो जाती है। साकत जो गँवार (मूर्ख) है, जिसके हृदय में अहबुद्धि का विकार है, वह झगड़ा करता है अथवा चिल्लाता है। ड़ाड़ा जो गुरमुख झगड़ा दूर करता है, हे नानक! उसको निमिष मात्र में (तत्व स्वरूप की) समझ आ गई है ॥४७॥

सलोकु ॥

साधू की मन ओट गहु
उकति सिआनप तिआगु ॥
गुर दीखिआ जिह मनि बसै
नानक मसतकि भागु ॥१॥

"गुरु की शिक्षा भाग्यशालियों को प्राप्त।"

हे मन! तू साधु की टेक पकड़ और युक्ति तथा चतुराई को त्याग दे। गुरु की शिक्षा जिसके मन में बसती है, हे नानक! उसके मस्तक पर भाग्य है (भाव वह सौभाग्यवान है अर्थात् सुखी और खुशनसीब है) ॥१॥

पउड़ी ॥

ससा सरनि परे अब हारे ॥
सासत्र सिम्रिति बेद पुकारे ॥
सोधत सोधत सोधि बीचारा ॥
बिनु हरि भजन नही छुटकारा ॥
सासि सासि हम भूलनहारे ॥
तुम समरथ अगनत अपारे ॥
सरन परे की राखु दइआला ॥
नानक तुमरे बाल गुपाला ॥४८॥

"परमात्मा की शरण ग्रहण कर।"

('स', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि हे प्रभु!) ससा (मैं) अब (अनेक साधनाएँ करके) हार कर तुम्हारी शरण में आकर पड़ा हूँ। (६) शास्त्र, (२७) स्मृतियाँ और (४) वेद भी पुकार कर कहते हैं कि (प्रभु की शरण ग्रहण करो)। (शास्त्रादि) अच्छी तरह खोज-खोज कर विचार भी किया है कि बिना हरि भजन के छुटकारा नही होता। (हे प्रभु!) मैं श्वास-प्रश्वास (हर समय) भूलने वाला हूँ, किन्तु तू समर्थ है, अगणित है और अपार है। हे दयालु! शरण पड़े की लज्जा रखो। (मैं दास) नानक तुम्हारा बाल गोपाल हूँ ॥४८॥

सलोकु ॥

खुधी मिटी तब सुख भए
तन मन भए अरोग ॥
नानक द्रिसटी आइआ
उसतति करनै जोगु ॥१॥

"खुदी मिटने पर सच्चा सुख प्राप्त होता है।"

जब अहंकार मिट जाता है, तब सुख (आनन्द) होता है तथा मन और तन अरोग्य होते हैं। हे नानक! फिर स्तुति करने योग्य (प्रभु सर्वत्र) देखने में आता है ॥१॥

पउड़ी ॥

खखा खरा सराहउ ताहू ॥
जो खिन महि ऊने सुभर भराहू ॥
खरा निमाना होत परानी ॥
अनदिनु जापै प्रभ निरबानी ॥
भावै खसम त उआ सुखु देता ॥
पारब्रहमु ऐसो आगनता ॥
असंख खते खिन बखसनहारा ॥
नानक साहिब सदा दइआरा ॥४९॥

"प्रभु को जपने से आत्मिक सुख की प्राप्ति।"

('ख', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) सदा 'उस' प्रभु की सुचारु रूप से स्तुति कर जो क्षण भर में रिक्त को लबालब भर देता है। जब प्राणी ठीक-ठीक (झूठे मान से) माणहीन होता है, तब वह रात-दिन निर्लेप प्रभु को जपता है। यदि पति-परमेश्वर को अच्छा लगे तो उसको सुख देता है। (किसे? जो झूठे मान से माणहीन होता है)। (मेरा) परब्रह्म ऐसा अगणित है (अर्थात क्षमाशील है, जो नाम जपने वाले के साथ हिसाब-किताब नहीं रखता)। असंख्य अपराध क्षण भर में 'वह' क्षमा करने वाला है। हे नानक! 'वह' साहब सदा दयालु है ॥४९॥

सलोकु ॥

सति कहउ सुनि मन मेरे
सरनि परहु हरि राइ ॥
उकति सिआनप सगल तिआगि
नानक लए समाइ ॥१॥

"शरण पड़ने से प्रभु-मिलाप।"

हे मेरे मन! सुनो। सत्य कहता हूँ कि हरि राजा की शरण जाकर पड़ो। युक्ति और सब चतुराई त्याग दो। (ऐसा करने से) हे नानक! 'वह' अपने साथ (तुम्हें) मिला लेगा ॥१॥

पउड़ी ॥

ससा सिआनप छाडु इआना ॥
हिकमति हुकमि
न प्रभु पतीआना ॥

"चतुराई छोड़कर तू नाम जप।"

('स', अक्षर द्वारा गुरुदेव उपदेश करते हैं कि) ससा हे मूर्ख! चतुराई छोड़ दे। चतुराइयों और हुक्म से प्रभु संतुष्ट नहीं होता। चाहे तू हजारों प्रकार की चतुराइयाँ करे, एक भी तुम्हारे साथ नहीं चलेगी। दिन रात 'उसको' ही जप

सहस भाति करहि चतुराई ॥
संगि तुहारै एक न जाई ॥
सोऊ सोऊ जपि दिन राती ॥
रे जीअ चलै तुहारै साथी ॥
साध सेवा लावै जिह आपै ॥
नानक ता कउ दूखु न बिआपै
॥५०॥

हे जीव ! जो तुम्हारे साथ (सहायक होकर) चलेगा। साधुजनों की सेवा में जिनको (प्रभु) स्वयं लगाता है, हे नानक ! उनको दुःख नहीं व्यापता (अर्थात् साधुजनों की सेवा में वे इतने द्रवीभूत हो जाते हैं कि दुःख उनको दुःखी नहीं कर पाता क्योंकि वे 'उसके' हुक्म को भी सहर्ष स्वीकार करते हैं।) ॥५०॥

सलोकु ॥

हरि हरि मुख ते बोलना
मनि वूठै सुखु होइ ॥
नानक सभ महि रवि रहिआ
थान थनंतरि सोइ ॥१॥

"हरि नाम जपने से सुख की प्राप्ति।"

हरि का नाम मुख से बोलने से और मन में बसाने से सुख (प्राप्त) होता है। हे नानक ! 'वह' (प्रभु) सब में व्यापक हो रहा है (हाँ) छोटे-बड़े सभी स्थानों पर 'वही' है (एक) ॥१॥

पउड़ी ॥

हेरउ घटि घटि सगल कै
पूरि रहे भगवान ॥
होवत आए सब सदीव
दुख भंजन गुर गिआन ॥
हउ छुटकै होइ अनंदु
तिह हउ नाही तह आपि ।
हते दूख जनमह मरन
संत संग परताप ॥
हित करि नामु द्रिड़ै दइआला ॥
संतह संगि होत किरपाला ॥
ओरै कछू न किनहू कीआ ॥
नानक सभ कछु प्रभ ते हूआ
॥५१॥

"अहंकार का परित्याग करें तो प्रभु मिले।"

देखो ! भगवान घट-घट (प्रत्येक शरीर) मे परिपूर्ण हो रहा है। दुःख-हर्ता भगवान सदा सर्वदा से ऐसे परिपूर्ण होता आया है, (किन्तु) यह ज्ञान गुरु से ही प्राप्त होता है। अहंकार की निवृति से आनन्द होता है। जहां अहकार नहीं है, वहां परमेश्वर आप है। सन्तों की संगति के प्रताप के कारण जन्म-मरण का दुःख नाश होता है। जो प्रेम-पूर्वक दयालु (प्रभु) का नाम दृढ़ करता है और सन्तों की संगति (सदैव) करता है, उस पर (मेरा प्रभु) कृपालु होता है। 'उसके' (प्रभु के) बिना और किसी ने कुछ नहीं किया।

हे नानक ! (यह) सब कुछ प्रभु से ही हुआ है अथवा हो रहा है ॥५१॥

सलोकु ॥

लेखै कतहि न छूटीऐ
खिनु खिनु भूलनहार ॥
बखसनहार बखसि लै
नानक पारि उतार ॥१॥

"लेखे से छुटकारा नहीं।"

(कर्मों का) लेखा करने से कभी भी (जीव) नहीं छूटेगा क्योंकि जीव क्षण-क्षण में भूलने वाला है। हे क्षमा करने वाले (प्रभु)! तू (जीवों के अपराध) क्षमा कर ले और उनको (संसार-सागर से) पार उतार। विनय करते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब)॥१॥

पउड़ी ॥

लूण हरामी गुनहगार
बेगाना अलप मति ॥
जीउ पिंडु जिनि सुख दीए
ताहि न जानत तत ॥
लाहा माइआ कारने
दहदिसि ढूढन जाइ ॥
देवनहार दातार प्रभ
निमख न मनहि बसाइ ॥
लालच झूठ बिकार मोह
इआ संपै मन माहि ॥
लंपट चोर निंदक महा
तिनहू संगि बिहाइ ॥
तुधु भावै ता बखसि लैहि
खोटे संगि खरे ॥
नानक भावै पारब्रहम
पाहन नीरि तरे ॥५२॥

"दाता प्रभु के समक्ष विनय।"

जीव (अपने स्वामी का नमक खा कर 'उसे' भूल जाने वाला) कृतघ्न है, पापी है बेसमझ और अल्प बुद्धि वाला है। जिसने जीव और शरीर दिया है, 'उस' तत्व स्वरूप को नहीं जानता। मायिक लाभ के कारण दशों दिशाओं में ढूंढने जाता है, किन्तु जो देने वाला दाता प्रभु है 'उसे' (एक) निमिष मात्र के लिए भी मन में नहीं बसाता। लालच, झूठ, विकार और मोह यह (आसुरी) सम्पत्ति उसके मन में (रखी हुई) है। वह व्यभिचार (विषयी), चोर और महा निन्दकों के साथ (अपनी आयु) व्यतीत करता है। हे परब्रह्म (प्रभु!) यदि तुम्हें अच्छा लगे तो पापियों को भी (शुद्ध पुरुषों की संगति में) मिलाकर उनको (अपराध) क्षमा कर देते हो।

हे परब्रह्म (प्रभु)! यदि तुम्हें अच्छा लगे तो पत्थर रूप (निर्दयी) जीव भी पार हो जाते हैं, विनय करते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब)॥५२॥

सलोकु ॥

खात पीत खेलत हसत
भरमे जनम अनेक ॥
भवजल ते काढहु प्रभू
नानक तेरी टेक ॥१॥

'संसार-सागर से बचाने वाला एक प्रभु ही है।"

(प्रार्थना) खाते, पीते, खेलते, हँसते अनेक जन्मों से भटकते रहे हैं। हे प्रभु! हमें संसार-सागर से निकाल लो (बचा लो)। हमें तुम्हारी ही टेक है, विनय करते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब)॥ १॥

पउड़ी ॥

डोलत डोलत आइओ
अनिक जोनि दुख पाइ ॥
दोख मिटे साधू मिलत
सतिगुर बचन समाइ ।
खिमा गही सचु संचिओ
खाइओ अंमृतु नाम ॥
खरी कृपा ठाकुर भई
अनन्द सूख बिस्राम ।
खेप निबाही बहुतु लाभ
घरि आए पतिवंत ॥
खरा दिलासा गुरि दीआ
आइ मिले भगवंत ॥
आपन कीआ करहि आपि
आगे पाछै आपि ॥
नानक सोऊ सराहीऐ
जि घटि घटि रहिआ बिआपि
॥५३॥

"सत्गुरु की कृपा से परमेश्वर के साथ मिलाप।"

(हे प्रभु!) मैं अनेक योनियों का दु:ख भोग कर, भटक कर (मनुष्य जन्म में) आया हूँ। (अब) साधुजनों को मिलने से मेरे (सभी, दु:ख मिट गये हैं क्योंकि सत्गुरु के वचन (मेरे हृदय में) समा गये है। (सुना हूं) जो क्षमा ग्रहण करता है, सत्य इकट्ठा करता है और अमृत रूपी नाम खाता है, उस पर ठाकुर की ठीक-ठीक कृपा होती है और उसे आनन्द सुख व विश्राम (प्राप्त) होता है। जिनकी (नाम की) खेप (परमात्मा ने) पूरी कर दी (भाव जन्म सफल कर दिया) उन्होंने बहुत लाभ प्राप्त किया है और प्रतिष्ठा वाले होकर अपने घर मे आते हैं। जिनको गुरु ने पूर्ण दिलासा दिया, वे ही भगवंत के साथ (पुन:) आकर मिले (भाव जो जीव नाम जपने के कारण अपने श्वास सफल करते हैं, वे हरि दरबार में प्रतिष्ठा प्राप्त करते है और वे सत्गुरु का उपदेश ग्रहण करके परमात्मा से पुन: मिल जाते हैं)। स्वयं (प्रभु ने) सब कुछ किया है और करता है, आगे पीछे (चारो ओर) 'वह' आप ही है।

हे नानक! 'उसकी' श्लाघा (स्तुति) करो, जो घट-घट (प्रत्येक जीव) में व्यापक हो रहा है ॥५३॥

सलोकु ॥

आए प्रभ सरनागती
किरपा निधि दइआल ॥
एक अखरु हरि मनि बसत
नानक होत निहाल ॥१॥

"प्रभु की शरण लेने से जीव कृतार्थ होता है।"

जो कृपा के समुद्र और दयालु प्रभु की शरण आते हैं, उनके मन में हरि का एक अक्षर बसता है (अर्थात् नाम) और वे, हे नानक! कृतार्थ होते हैं (अर्थात् उन पर प्रभु की दयादृष्टि होती है। वे सदैव सदैव के लिए 'उसमे' समा जाते हैं। हाँ उन्हें शाश्वत आनन्द की प्राप्ति होती है) ॥१॥

पउड़ी ॥

अखर महि त्रिभवन प्रभि धारे ॥
अखर करि करि बेद बीचारे ॥

"जिनि एहि लिखे तिसु सिरि नाहि।"

प्रभु ने जो तीन लोक धारण किए हैं वे सब अक्षरों के अन्तर्गत हैं। वेदों का विचार करना भी अक्षरों के अन्दर है।

अखर सासत्र सिम्रिति पुराना ॥
अखर नाद कथन वख्याना ।
अखर मुकति जुगति भै भरमा ॥
अखर करम किरति सुच धरमा ॥
द्रिसटिमान अखर है जेता ॥
नानक पारब्रहम निरलेपा ॥५४॥

शास्त्र, स्मृति और पुराण सब अक्षरों में हैं। बाजों का बजाना और व्याख्यानो का कथन करना सब अक्षरों में है। मुक्ति, युक्ति भय, भ्रम सब अक्षरों में हैं। कर्मों का करना, पवित्रता और धर्म सब अक्षरों में है। जितना भी दृश्यमान प्रपंच है यह सारा अक्षरों में है, (किन्तु) हे नानक ! इन अक्षणों से परे केवल परब्रह्म है। (भाव तीनों लोकों की वस्तुओं को अक्षरों द्वारा ही वर्णन किया जा सकता है, केवल परब्रह्म अक्षरों से परे होने के कारण अक्षरों द्वारा कथन नहीं किया जा सकता क्योंकि 'वह' अनन्त है) ॥५४॥

सलोकु ॥

हथि कलम अगंम
मसतकि लिखावती ॥
उरझि रहिओ सभ संगि
अनूप रूपावती ॥
उसतति कहनु न जाइ
मुखहु तुहारीआ ॥
मोही देखि दरसु
नानक बलिहारीआ ॥१॥

"परमात्मा की स्तुति।"

हे अगम्य (प्रभु) ! तुम्हारे हाथ में (हुकम रूपी) कलम है (जिससे जीवों के) मस्तक पर लेख लिखा है।

हे अनुपम रूपवाले (प्रभु जी) ! तू सब में समाया हुआ है। तुम्हारी स्तुति मुख से कही नही जा सकती।

हे नानक ! मैं तुम्हारा दर्शन देखकर मोहित हो गई हूँ। मैं तुम्हारे ऊपर (सदैव) बलिहारी जाती हूँ ॥१॥

पउड़ी ॥

हे अचुत हे पारब्रहम
अबिनासी अघनास ॥
हे पूरन हे सरब मै
दुखभंजन गुणतास ॥
हे संगी हे निरंकार
हे निरगुण सभ टेक ॥
हे गोबिद हे गुण निधान
जा कै सदा बिबेक ॥

"प्रभु परमात्मा की स्तुति।"

हे (सदा) अटल ! हे परब्रह्म ! हे नाश रहित ! हे पापों को नाश करने वाले (प्रभु) ! हे पूर्ण ! हे सब में व्यापक ! हे दुःखों का नाश करने वाले ! हे गुणों के समुद्र (प्रभु) ! हे सबके संगी ! हे आकार रहित ! हे तीनो गुणों से अतीत ! हे सबके सहारे (प्रभु) ! हे पृथ्वी के पालने वाले ! हे गुणों के भण्डार सदा विवेकवान !

हे परे से परे ! हे पाप हरने वाले ! जो है भी होगा भी। हे सन्तों के सदा संगी ! हे आधारहीन के आधार !

हे अपरंपर हरि हरे
हहि भी होवन हार ।।
हे संतह कै सदा संगि
निधारा आधार ।।
हे ठाकुर हउ दासरो
मै निरगुन गुनु नही कोइ ।।
नानक दीजै नाम दानु
राखउ हीऐ परोइ ।।५५।।

हे ठाकुर ! मैं दास हूँ। मैं निर्गुण हूँ। मुझ में कोई गुण नही है। मुझे नाम की दान दो जिसे मैं हृदय में (सदैव) पिरोकर रखूं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब) विनय करते हैं ।।५५।।

नोट · दादा बेलाराम जी आश्रम निर्गुंन बलिक सपरून (सोलन) में प्रतिदिन गुरुबाणी स्टडी क्लासिज की प्रारंभिक प्रार्थना इस पौड़ी से होती है ।।५५।।

नोट : यह श्लोक फुनहे के प्रारम्भ में भी पृष्ठ १३६१ पर लिखा हुआ है।

सलोकु ।।

गुरदेव माता गुरदेव पिता
गुरदेव सुआमी परमेसुरा ।।
गुरदेव सखा अगिआन भंजनु
गुरदेव बंधिप सहोदरा ।।
गुरदेव दाता हरिनामु उपदेसै
गुरदेव मंतु निरोधरा ।।
गुरदेव सांति सति बुधि मूरति
गुरदेव पारस परस परा ।।
गुरदेव तीरथु अंमृत सरोवरु
गुर गिआन मजनु अपरंपरा ।।
गुरदेव करता सभि पाप हरता
गुरदेव पतित पवित करा ।।
गुरदेव आदि जुगादि जुगु जुगु
गुरदेव मंतु हरि जपि उधरा ।।
गुरदेव संगति प्रभ मेलि करि
किरपा हम मूड़ पापी
जितु लगि तरा ।।
गुरदेव सतिगुरु पारब्रहमु परमेसरु
गुरदेव नानक हरि नमसकरा ।।१।।
एहु सलोकु आदि अंति पड़णा ।।

"गुरुदेव की महिमा।"

गुरुदेव ही माता है, गुरुदेव ही मेरा पिता है, गुरुदेव ही स्वामी है, (हाँ) परमेश्वर भी है। मेरा गुरुदेव ही मेरा मित्र है, जो अज्ञान को दूर करने वाला है, गुरुदेव ही मेरा सम्बन्धी और सगा भाई भी है। गुरुदेव ही दाता है, जो हरिनाम (जैसे अमूल्य वस्तु) का उपदेश देने वाला है और गुरुदेव का मन्त्र भी (पूर्ण रूप से) उद्धार करने वाला है।

गुरुदेव ही शान्ति, सत्य और बुद्धि की मूर्ति है, गुरुदेव ही वह पारस है जिसका स्पर्श पारस से उत्कृष्ट है (अर्थात् पारस लोहे को स्वर्ण बनाता है, किन्तु पारस नही बना सकता। किन्तु गुरु अपने जैसा शिष्य को पारस बना लेता है।) यथा—पारस में और सन्त में बडो अन्तरो जान। वह लोहा कंचन करे यह करे आप समान ।।१६।। (विचार माला)

गुरुदेव ही तीर्थ है और अमृत का सरोवर है, गुरुदेव के ज्ञान रूपी तालाब में स्नान करने से, जो परमात्मा परे से परे अनन्त है, प्राप्त किया जा सकता है अथवा गुरु द्वारा अपरंपार ज्ञान प्राप्त होना ही उसमें स्नान करना है। गुरुदेव (ही शुभ गुणों को) उत्पन्न करने वाला है, सब पापों को दूर करने वाला है। (मेरा) गुरुदेव ही पापियो को पवित्र करने वाला भी है।

गुरुदेव (की महिमा) आदि से है, युगो के प्रारम्भ से है, (हाँ) प्रत्येक युग में है। गुरुदेव के मन्त्र द्वारा हरि (नाम) जपने से उद्धार होता है। हे प्रभु ! कृपा करके मुझे (ऐसे) गुरदेव की संगति से मिलाओ जिसकी संगति में लगने से मैं मूर्ख पापी भी पार हो जाऊँ। गुरुदेव ही सत्गुरु हैं, परब्रह्म है और परमेश्वर है। हे नानक ! हरि रूप गुरुदेव को मेरी (सदैव) नमस्कार है ।।१।।

(मेरे गुरुदेव का हुक्म है कि) यह श्लोक आदि में और अन्त में (अवश्य) पढ़ना (क्योंकि यह सलोक मंगलरूप कल्याणकारी है)।

सुखमनी मेरे विचार में

पंचम पातशाही, गुरु अर्जनदेव ने यह अमृतमयी वाणी ३२५ वर्ष पूर्व अमृतसर में रामसर के किनारे पर, जहां बेड़ी का वृक्ष है, वहां उच्चारण की। स्मरण रहे कि गुरु ग्रंथ साहब का संकलन मेरे गुरुदेव ने रामसर के तट पर ही किया था। तारीख खालसा में सुखमनी के उच्चारण का समय संवत् १६५७ लिखा हुआ है। जब मेरे गुरुदेव बाबा नानक साहब के ज्येष्ठ सुपुत्र बाबा श्रीचन्द अमृतसर से होकर चले गए तब गुरु अर्जनदेव फिरते-फिरते बारन ग्राम में पहुँचे जहां गुरुदेव ने बाबा श्रीचन्द को सुखमनी की १६ अष्टपदीआं सुनाई जिसकी रचना पहले ही कर चुके थे। तब बाबा जी ने आग्रह किया कि और आठ अष्टपदीआं रच कर २४ पूर्ण करें ताकि जीव के प्रतिदिन के २४००० श्वास इस पाठ से सफल हों। मेरे गुरुदेव ने कहा 'आप ही कृपा करें।' तब बाबा जी ने गुरु नानक साहब का श्लोक "आदि सचु जुगादि सचु" उच्चारण करके कहा कि "(हे सुन्दर मानमोहक गुरूजी! शेष आप ही दया करें आप ही गुरु गद्दी पर विराजमान हैं।" इस प्रकार गुरुदेव ने शेष आठ अष्टपदीओं की रचना वहीं की। बाबा जी ने आशीर्वाद दिया कि आप की यह वाणी कल्याणकारी होगी और जगत मे बहुत सम्मान पाएगी।

वस्तुत: सुखमनी समस्त विश्व के लिए नाम योग अथवा भक्ति योग का धर्म शास्त्र है। यह संप्रदाय की संकीर्णता के दायरे से परे है, बाह्य कियाकाण्ड से परे है, इसमे वह उपदेश है जिसका सम्बन्ध हमारे प्रत्यक्ष आन्तरिक जीवन से है। भाषा अति सरल व स्पष्ट है और शब्द अति मधुर और मोहक हैं। इस वाणी ने अगणित श्रद्धालु प्रेमियो को सहायता दी है। इसका नाम तो देखो—'सुखमनी'—मन को सुख देने वाली, (हाँ) सुख रूपी रत्नो की दात्री है। १६वी सदी की वाणी! किन्तु इस २०वी सदी में भी इसकी मधुर मोहक ध्वनि सबके हृदय को, मन को विश्राम, शान्ति व सुख प्रदान कर रही है। सभी दु:खों की औषधि है नाम (भक्ति), (हाँ) सभी रोगों की औषधि है नाम। नाम के बिना सभी कर्म धर्म निषफल हैं। आह! नाम में कितनी शक्ति है! कलियुग मे नाम की कितनी आवश्यकता है। इस वाणी मे नाम की ही महिमा गाई गई है और उन भाग्यशालियो की भी बडाई वर्णन की गई है जो नाम जपते हैं तथा नाम का प्रचार व प्रसार करते हैं। जहाँ पर भी 'सुखमनी' शब्द आता है, वहाँ 'नाम' शब्द भी साथ ही आता है। प्रथम अष्टपदी की पहली पौडी में 'रहाउ' वाली तुक में 'नाम' वाचक है और न 'सुखमनी'। 'सुखमनी' सुखद प्रभु का नामामृत है जो सुख देता है और जिसका निवास भक्तजनों के मन मे है। २४ अष्टपदी की अन्तिम २ पोडियो मे जो फल अथवा गुण बताए गए हैं, वे नाम के हैं और न पाठ पढ़ने के। 'एहु निधान जपे मन कोइ'; 'नानक एहु गुण नाम सुखमनी।' इन पदों मे 'निधान' और 'गुण' शब्द नाम के साथ सम्बन्ध रखते हैं जो नाम मुख की ज्वलित मणि है।

सुखमनी मे २४ श्लोक हैं और २४ अष्टपदीआं हैं। प्रत्येक अष्टपदी में आठ पद अर्थात् पौड़ीआं हैं और प्रत्येक पौडी में १० तुकें हैं। किन्तु प्रथम अष्टपदी की पहली पौड़ी में १२ तुकें हैं। 'रहाउ' वाली तुक में सम्पूर्ण वाणी की बड़ाई निहित है। भाव एक मात्र 'रहाउ' वाली तुक में सम्पूर्ण वाणी का सारांश है। प्रत्येक अष्टपदी का सामूहिक भाव उसके प्रथम आने वाले श्लोक में दिया गया है।

इस वाणी की सुन्दरता, शोभा और बड़ाई कौन कथन कर सकता है? यदि समझने के बिना भी पाठ की दृष्टि से इसका पठन हो तो भी शरीर में कुछ समय के लिए शीतलता का अनुभव होता है। यदि

यह वाणी कीर्तन में गाई जाय तो भी वही आनन्द आता है। यदि इस वाणी को अपने गुरुदेव का उपदेश जान कर इस पर विचार किया जाय तो गूढ़ दर्शन का ज्ञान होता है और यदि सौभाग्यवश इस वाणी को सत्गुरु का हुक्म मानकर जीवन में अनुसरण किया जाय तो पूर्ण त्याग और प्रेमा-भक्ति प्राप्त होती है।

विनयपूर्वक मेरी प्रार्थना है कि हे प्रभु के प्यारो! यदि हृदय में प्रभु परमात्मा के लिए स्नेह चाहिए तो सुखमनी का पाठ करें, किन्तु न समझने के बिना। एक-एक शब्द का अर्थ समझकर प्रेम व श्रद्धा से बैठकर पाठ पढ़ें, (हाँ) एकान्त में बैठकर विचार भी करें। हो सकता है मेरे गुरुदेव की कृपा से इस अमृतमयी वाणी की जीवन में कमाई भी हो जाय। बस फिर तो जन्म-जन्मान्तरों के पाप दूर हो जायेंगे और पुनः अपने पति-प्रियतम से मिलन संभव होगा।

यह है 'सुखमनी' का कुछ शब्दों में विचार। जिन पर भी मेरे गुरुदेव की कृपादृष्टि होती है, वे ही कलियुग में नाम जप कर भव-सागर से पार होते हैं और पुनः परमात्मा में अभेद हो जाते हैं। शेष बेचारे जीव माया-मोह में फंसकर नाम को भूल जाते हैं और बार-बार जन्म-मरण के चक्र में आकर अत्यन्त दुःखी होते हैं।

गउड़ी सुखमनी म० ५॥

"परमात्मा और सत्गुरु की स्तुति"

**सलोकु ॥ आदि गुर ए नमह ॥
जुगादि गुर ए नमह ॥
सतिगुर ए नमह ॥
स्री गुरदेव ए नमह ॥१॥**

नमस्कार है परमेश्वर को जो आदि से गुरु था। नमस्कार है परमेश्वर को जो युग-युगान्तर से पहले गुरु था। नमस्कार है परमेश्वर को जो ही केवल सत्य, अटल और पवित्र (भाव: त्रिकालवाधित गुरु है) और नमस्कार है श्री गुरुदेव (जी) को ॥१॥

असटपदी ॥

"नाम जपने की महिमा ।"

सिमरउसिमरिसिमरि सुखु पावउ ॥
कलि कलेस तन माहि मिटावउ ॥
सिमरउ जासु बिसुंभर एकै ॥
नामु जपत अगनत अनेकै ॥
बेद पुरान सिम्रिति सुधाख्यर ॥
कीने राम नाम इक आख्यर ॥
किनका एक जिसु जीअ बसावै ॥
ता की महिमा गनी न आवै ॥
कांखी एकै दरस तुहारो ॥
नानक उन संगि मोहि उधारो ॥
॥१॥

मैं अपने प्रभु का स्मरण करता हूँ और स्मरण करते-करते सुख प्राप्त करता हूँ तथा शरीर में जो दुःख और दर्द (पीड़ा) है उसे भी दूर करता हूँ। मैं 'उस' एक परमेश्वर का स्मरण करता हूँ जो (समस्त) विश्व का पालनहार है और जिसका नाम अनगिनत अनेक जीव जपते हैं। वेदों, पुराणों और स्मृतियों ने भी केवल एक रामनाम अक्षर को ही शुद्ध (अक्षर) ठहराया है। ऐसे पवित्र नाम का यदि एक कण भी (अर्थात् थोड़ा सा भी) जिसके हृदय में बस जाए तो उसकी महिमा गणना (गिनती) नहीं की जा सकती (अर्थात् अनन्त है उसकी महिमा)। (अभिलाषा है, हे प्रियतम !) जो तेरे दर्शन के प्यासी (आकांक्षी) हैं, हे नानक ! उनकी संगति में (रखकर) मेरा भी उद्धार करो ॥१॥

सुखमनी सुख अंमृत प्रभ नामु ॥
भगत जना कै मनि बिस्राम
॥रहाउ॥

प्रभु का नाम सुख की चमकने वाली मणि है, (हाँ राम नाम) सुखद एवं अमृतमय है तथा भक्तजनों के मन में इसका (सदैव) निवास रहता है ॥ रहाउ॥

प्रभ कै सिमरनि गरभि न बसै ॥
प्रभ कै सिमरनि दूखु जमु नसै ॥
प्रभ कै सिमरनि कालु परहरै ॥
प्रभ कै सिमरनि दुसमनु टरै ॥
प्रभ सिमरत कछु बिघनु न लागै ॥
प्रभ कै सिमरनि अनदिनु जागै ॥
प्रभ कै सिमरनि भउ न बिआपै ॥
प्रभ कै सिमरनि दुखु न संतापै ॥
प्रभ का सिमरनु साध कै संगि ॥
सरब निधान नानक हरिरंगि ॥२॥

प्रभु का स्मरण करने से जीव (फिर) गर्भ में नहीं बसता (आता)। प्रभु का स्मरण करने से यम का दुःख दूर हो जाता है। प्रभु का स्मरण करने से काल रूपी दुश्मन टल जाता है। प्रभु का स्मरण करने से (जीवन में) कुछ भी विघ्न नहीं लगता। प्रभु का स्मरण करने से (जीव) रात दिन (विकारों से) जाग्रत (सावधान) रहता है। प्रभु का स्मरण करने से (कोई भी) भय नहीं व्याप्त होता। प्रभु का स्मरण करने से (कोई) दुःख नहीं सताता। (किन्तु कलियुग में) प्रभु का स्मरण साधु की संगति में ही संभव है। (अतएव) हे नानक ! सभी (सुख के) खजाने हरि के प्रेम-रंग में ही है (इसलिए) तू साधु की संगति प्राप्त करके प्रभु का सदैव स्मरण कर इसी में तेरी बुद्धिमत्ता (समझदारी) है।२॥

प्रभकैसिमरनिरिधिसिधिनउनिधि ॥
प्रभ कै सिमरनि गिआनु
धिआनु ततु बुधि ॥
प्रभ कै सिमरनि जप तप पूजा ॥
प्रभ कै सिमरनि बिनसै दूजा ॥
प्रभ कै सिमरनि तीरथ इसनानी ॥
प्रभ कै सिमरनि दरगह मानी ॥
प्रभ कै सिमरनि होइ सु भला ॥
प्रभ कै सिमरनि सुफल फला ॥
से सिमरहि जिन आपि सिमराए ॥
नानक ता कै लागउ पाए ॥३॥

प्रभु का स्मरण करने से ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ और नौ निद्धियाँ प्राप्त होती हैं। प्रभु का स्मरण करने से ज्ञान, ध्यान और तत्व-(मिथ्या का विवेचन करने वाली) बुद्धि प्राप्त होती है। प्रभु के स्मरण करने से जप, तप और पूजा के फल प्राप्त होते हैं। प्रभु के स्मरण करने से द्वैत-भाव नाश हो जाता है। प्रभु का स्मरण करने से (मानो जीव) सब तीर्थों का स्नान करने वाला हो जाता है। (अर्थात् उसने मानो सब तीर्थ-स्नान कर लिए)।

प्रभु का स्मरण करने से जीव हरि की दरबार में मान-प्रतिष्ठा वाला होता है। प्रभु का स्मरण करने से जीव से जो कुछ होता है भला ही होता है अथवा प्रभु जो कुछ करता है उसे वह भला ही समझता है। प्रभु का स्मरण करने से जीव सुन्दर फलों से फलता-फूलता है। (किन्तु कलियुग में) वे ही (प्यारे प्रभु का) स्मरण करते हैं, जिनसे 'वह' प्रभु स्वय स्मरण करवाता है। हे नानक! मैं उन (भाग्यशाली स्मरण करने वालो) के चरणों में लगता हूँ ॥३॥

प्रभ का सिमरनु सभ ते ऊचा ॥
प्रभ कै सिमरनि उधरे मूचा ॥
प्रभ कै सिमरनि तृसना बुझै ॥
प्रभ कै सिमरनि सभु किछु सुझै ॥
प्रभ कै सिमरनि नाही जम त्रासा ॥
प्रभ कै सिमरनि पूरन आसा ॥
प्रभ कै सिमरनि
मन की मलु जाइ ॥
अंमृत नामु रिद माहि समाइ ॥
प्रभ जी बसहि साध की रसना ॥
नानक जन का दासनिदसना ॥४॥

प्रभु का स्मरण सभी (कर्मों, धर्मों, साधनों आदि) से ऊँचा (श्रेष्ठ) है। प्रभु का स्मरण करने से बहुत से पार हुए हैं। प्रभु का स्मरण करने से (मायिक पदार्थों की) तृष्णा समाप्त हो जाती है। प्रभु का स्मरण करने से सभी कुछ दीख पड़ता है (अर्थात् स्मरण करने वाला भाग्यशाली जीव दिव्य-दृष्टि वाला हो जाता है)।

प्रभु का स्मरण करने से यमों का भय नहीं रहता। प्रभु का स्मरण करने से (आत्मा की परमात्मा प्रियतम से मिलने की) आशा पूर्ण होती है। प्रभु का स्मरण करने से मन से (विकारों की) मैल दूर हो जाती है और अमृतमय नाम हृदय में आकर समाता है। मेरा (प्यारा) प्रभु जी साधु की रसना पर (सदैव) निवास करता है अथवा साधु के उपदेश से प्रभु के नाम की प्राप्ति होती है। हे नानक! मैं ऐसे (स्मरण करने वाले भाव साधुजनों) सेवको के दासो का भी दास हूँ ॥४॥

प्रभ कउ सिमरहि से धनवंते ॥
प्रभ कउ सिमरहि से पतिवंते ॥

जो प्रभु का स्मरण करते हैं वे ही (असली) धनाढ्य हैं। जो प्रभु का स्मरण करते हैं वे ही (सच्ची) मान-प्रतिष्ठा (इज्ज़त)

प्रभ कउ सिमरहि से जन परवान ॥
प्रभ कउ सिमरहि से पुरख प्रधान ॥
प्रभ कउ सिमरहि सि बेमुहताजे ॥
प्रभ कउ सिमरहि
सि सरब के राजे ॥
प्रभ कउ सिमरहि से सुखवासी ॥
प्रभ कउ सिमरहि सदा अबिनासी ॥
सिमरन ते लागे
जिन आपि दइआला ॥
नानक जन की मंगै रवाला ॥५॥

वाले हैं। जो प्रभु का स्मरण करते हैं वे ही सेवक प्रामाणिक हैं। जो प्रभु का स्मरण करते हैं वे ही पुरुष प्रधान (मुखिये) हैं। जो प्रभु का स्मरण करते हैं वे किसी के भी मुहताज (निर्भर) नहीं रहते हैं। जो प्रभु का स्मरण करते हैं वे सर्व के राजे हैं अथवा वे ही सांसारिक सभी पदार्थों से तृप्त हैं। जो प्रभु का स्मरण करते हैं वे सुखवासी हो जाते हैं (अर्थात् उनका निवास सुख में होता है)। जो प्रभु का स्मरण करते हैं वे सदा नाश रहित भावः स्वयं अविनाशी प्रभु का रूप हो जाते हैं।

(किन्तु कलियुग में) प्रभु के स्मरण में वे ही जीव लगते हैं, जिन पर प्रभु आप दयालु होता है। हे नानक ! ऐसे सेवकों की (चरण) धूलि मैं मांगता हूँ (अर्थात् जो जीव स्मरण करके स्वयं अविनाशी प्रभु का रूप हो गए हैं) ॥५॥

प्रभ कउ सिमरहि से परउपकारी ॥
प्रभ कउ सिमरहि
तिन सद बलिहारी ॥
प्रभ कउ सिमरहि से मुख सुहावे ॥
प्रभ कउ सिमरहि
तिन सूखि बिहावै ॥
प्रभ कउ सिमरहि
तिन आतमु जीता ॥
प्रभ कउ सिमरहि
तिन निरमल रीता ॥
प्रभ कउ सिमरहि
तिन अनद घनेरे ॥
प्रभ कउ सिमरहि
बसहि हरि नेरे ॥
संत क्रिपा ते अनदिनु जागि ॥
नानक सिमरनु पूरै भागि ॥६॥

जो प्रभु का स्मरण करते हैं वे ही परोपकारी जीव हैं। जो प्रभु का स्मरण करते हैं उन पर सदैव बलिहारी जाना चाहिए। जो प्रभु का स्मरण करते हैं वे मुख सुन्दर हैं। जो प्रभु का स्मरण करते हैं उनका (जीवन) सुखपूर्वक व्यतीत होता है। जो प्रभु का स्मरण करते हैं वे मन (आपाभाव) जीतने वाले हैं। जो प्रभु का स्मरण करते हैं उनका व्यवहार (रीति) निर्मल है। जो प्रभु का स्मरण करते हैं उनको बहुत आनन्द होता है क्योंकि जो प्रभु का स्मरण करते हैं वे आनन्द स्वरूप हरि के निकट बसते हैं। (स्मरण रहे केवल) सन्त की कृपा से ही जीव रात दिन माया से जागृत (सचेत) रहते हैं।

(किन्तु कलियुग में) हे नानक ! स्मरण (की बख्शिश भी) पूर्ण भाग्य होने पर ही प्राप्त होता है (याद रहे, अपने परिश्रम से हम कुछ समय प्रभु का स्मरण कर सकते हैं। किन्तु आठ ही प्रहर 'उसका' स्मरण करना कलियुग में तभी संभव है जब सन्त की कृपा हो। इसलिए प्रभु और सन्त की कृपा प्राप्त करने के लिए हमें अपने ऊपर पहले कृपा करनी होगी। अर्थात् हमें अधिकारी बनना पड़ेगा ताकि प्रभु और सन्त दोनों की कृपा हम पर हो।)॥६॥

प्रभ कै सिमरनि कारज पूरे ॥
प्रभ कै सिमरनि कबहु न झूरे ॥
प्रभ कै सिमरनि हरि गुन बानी ॥
प्रभ कै सिमरनि सहजि समानी ॥
प्रभ कै सिमरनि निहचल आसनु ॥
प्रभ कै सिमरनि कमल बिगासनु ॥
प्रभ कै सिमरनि अनहद झुनकार ॥
सुखु प्रभ सिमरन का अंतु न पार ॥
सिमरहि सेजनजिनकउप्रभमइआ ॥
नानक तिन जन सरनीपइआ ॥७॥

प्रभु का स्मरण करने से सभी कार्य पूर्ण (सिद्ध) होते हैं। प्रभु का स्मरण करने से जीव कभी भी चिन्ता नहीं करते। प्रभु का स्मरण करने से उनकी वाणी हरि गुणों वाली हो जाती है (अर्थात् जब भी बोलते हैं तब हरि गुणो की ही बात करते हैं)। प्रभु का स्मरण करने से जीव सहजावस्था में ही लीन रहते हैं। प्रभु का स्मरण करने से जीव स्थिर आसन प्राप्त करते हैं (अर्थात् मन स्थिर होता है)। प्रभु का स्मरण करने से हृदय रूपी कमल विकसित होकर प्रफुल्लित व आनन्दित होता है। प्रभु का स्मरण करने से जीव अनहद शब्द की झकार में तल्लीन रहते हैं। प्रभु स्मरण के सुख का न अन्त है और न पार ही है।

(किन्तु कलियुग मे प्रभु) स्मरण वे ही जीव करते हैं जिन पर प्रभु की कृपा होती है। हे नानक ! मैं ऐसे सेवकों की शरण में पडता हूँ ॥७॥

हरि सिमरनु करि भगत प्रगटाए ॥
हरि सिमरनि लगि बेद उपाए ॥
हरि सिमरनि भए सिध जती दाते ॥
हरि सिमरनि नीच चहु कुंट जाते ॥
हरि सिमरनि धारी सभ धरना ॥
सिमरिसिमरि हरि कारन करना ॥
हरिसिमरनि कीओ सगल अकारा ॥
हरि सिमरनि महि
आपि निरंकारा ॥
करि किरपा जिसु
आपि बुझाइआ ॥
नानक गुरमुखि हरि सिमरनु
तिनि पाइआ ॥८॥१॥

हरि का स्मरण करने के लिए ही भक्त प्रकट किये गये (ताकि उनकी संगति मे अन्य जीव भी स्मरण कर सकें)। हरि के स्मरण के लिए ही वेद उत्पन्न किए गए (ताकि उनके उपदेश को सुनकर जीव बुरे मार्ग से हटें)। हरि के स्मरण के लिए ही सिद्ध, यति और दातार हुए। हरि के स्मरण के कारण ही जो नीच थे वे भी चारों कानो (भावः जगत) मे जाने गये। हरि के स्मरण के लिए ही यह सृष्टि बनाई गई अथवा हरि के स्मरण के आधार पर ही धरती स्थित है। स्मरण के लिए. (हाँ) स्मरण के लिए ही हरि ने यह कार्य किया है (अर्थात् रचना रची है) अथवा हरि जो सभी कार्यों का कारण है, 'उसका' स्मरण कर। हरि के स्मरण के लिए ही यह सकल आकार बनाये हैं। हरि के स्मरण में स्वयं निरंकार (प्रकट होता) है। (किन्तु कलियुग में) हे नानक ! जिस पर हरि स्वयं कृपा करता है, वही गुरमुख बन कर स्मरण (की बख्शिश) पाता है ॥८॥१॥

श्लोक एवं अष्टपदी (१) का सारांश

श्लोक—प्रभु, जो आदि युगादि सदा से सत्गुरु है, हे जीव ! तू 'उसे' सदैव नमस्कार कर, (हाँ) अपने गुरुदेव को भी सदा नमस्कार कर ॥१॥

अष्टपदी—आदि गुरु, युगादि गुरु, सत्गुरु को नमस्कार करके, हे नानक ! तू 'उस' एक विश्वंभर सत्य स्वरूप परमात्मा का सदैव स्मरण कर जो सर्वत्र व्याप्त है और जिसके दर्शन के लिए तुम्हारी आत्मा जन्म जन्मान्तरों से आकांक्षित है। हे दासों के दास ! भक्तजनों एवं साधुजनों की संगति प्राप्त करके तू अपने आप को 'उस' राम के नाम से रंग ले, जिसको ४ वेदों ने, १८ पुराणों ने और २७ स्मृतियों ने शुद्ध अक्षर ठहराया है। इस प्रकार राम नाम का स्मरण करते-करते, प्रभु परमात्मा के गुण गाते-गाते; तू 'उस' एक परमात्मा के निकट आयेगा; कमल फूल की भान्ति विकसित होगा; तुम्हारी तृष्णा रूपी अग्नि शान्त होगी; तुम्हारा गर्व-अभिमान तथा मन की मल एवं यम का भय भी समाप्त होगा। तू परोपकारी बनकर निर्मल युक्ति एवं व्यवहार द्वारा हरिनाम प्राप्त करके सर्व निद्धियाँ प्राप्त करेगा तथा सभी तुम्हारे कार्य सिद्ध होंगे। फिर तुम्हे कोई भी विघ्न नहीं होगा, कोई भी दुःख डाँवाडोल नहीं करेगा। तुम्हारे शत्रु भी मित्र बन जायेंगे; तुम्हारे लिए काल हट जाएगा; अमृत नाम तुम्हारे अन्दर आकर बसेगा और तू सदा धनवंत, सदैव पतवंत, सर्वदा प्रामाणित, सदा प्रधान, सदा सुखवासी और सदा अविनाशी होगा। इसलिए हे नानक ! तू 'उस' एक परमेश्वर का नाम स्मरण कर, (हाँ) सदैव स्मरण कर और कदाचित 'उसको विस्मृत न करना तभी तुम्हारे ऊपर 'उसकी' कृपा दृष्टि होगी जिसका नाम अनेक अगणित जीव जपते हैं ॥१॥

सलोकु ॥

दीन दरद दुख भंजना
घटि घटि नाथ अनाथ ॥
सरणि तुमारी आइओ
नानक के प्रभ साथ ॥१॥

"विनय।"

हे दीनों के दुःख और दर्द नष्ट करने वाले ! हे प्रत्येक शरीर में व्यापक ! हे अनाथों के नाथ (स्वामी) ! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। हे प्रभो ! (अभिलाषा है कि आप) नानक के साथ (सदैव) रहीए ॥१॥

असटपदी ॥

जह मात पिता सुत मीत न भाई ॥
मन ऊहा नामु तेरै संगि सहाई ॥
जह महा भइआन दूत जम दलै ॥
तह केवल नामु संगि तेरै चलै ॥
जह मुसकल होवै अति भारी ॥
हरि को नामु खिन माहि उधारी ॥

"नाम जैसा भी कोई सच्चा संगी साथी है ?"

(मृत्यु के मार्ग में) जहाँ न माता, न पिता, न पुत्र, न मित्र और न भाई होंगे, वहाँ, हे मन ! (हरि) नाम ही तेरा सगी और सहायक होगा। जहाँ महा भयानक यमदूतों के समूह होंगे, वहाँ केवल (हरि) नाम तेरे साथ चलेगा। जहाँ अति भारी कठिनाई होगी, वहाँ हरि का नाम क्षण भर में तेरा उद्धार कर देगा। अनेक प्रायश्चित (कर्म) करने से भी पापी जीव (भव-सागर से) तैर नहीं

अनिक पुनह चरन करत नही तरै ॥
हरि को नामु कोटि पाप परहरै ॥
गुरमुखि नामु जपहु मन मेरे ॥
नानक पावहु सूख घनेरे ॥१॥

सकता। (कलियुग में केवल) हरि का नाम ही है जो करोड़ों पापों को दूर करता है।

(इसलिए) हे मेरे मन ! तू गुरु के उपदेश द्वारा नाम जप, हे नानक ! (हरिनाम स्मरण से) बहुत ही सुख प्राप्त करोगे ॥१॥

सगल स्रिसटि को राजा दुखीआ ॥
हरि का नामु जपत होइ सुखीआ ॥
लाख करोरी बंधु न परै ॥
हरि का नामु जपत निसतरै ॥
अनिकमाइआरंगि तिख न बुझावै ॥
हरि का नामु जपत आघावै ॥
जिह मारगि इहु जात इकेला ॥
तह हरिनामु संगि होत सुहेला ॥
ऐसा नामु मन सदा धिआईऐ ॥
नानक गुरमुखि परम गति
पाईऐ ॥२॥

सकल सृष्टि का(यदि कोई)राजा (बन भी जाय तो भी वह) दुःखी है। किन्तु हरि का नाम जपने से वह सुखी हो सकता है। लाखों करोड़ों रुपयों के होते हुए भी तो (तृष्णा रूपी नदी को) बन्ध नही पड़ता, किन्तु हरि का नाम जपने से (इस नदी से) पार उतर जाता है। माया की अनेक खुशियाँ होने पर भी तृष्णा समाप्त नहीं होती,(हाँ) वह (तृष्णालु) हरि का नाम जपने से ही तृप्त होता है। जिस (मृत्यु के) मार्ग पर जीव ने अकेला जाना है, वहाँ हरि का नाम उसका साथी और सुखद होगा। ऐसे नाम का (नाम जपकर) हे मन ! तू सदा ध्यान कर। हे नानक ! गुरु के उपदेश द्वारा तू उत्तम गति (मुक्ति) प्राप्त करेगा ॥२॥

छूटत नही कोटि लख बाही ॥
नामु जपत तह पारि पराही ॥
अनिक बिघन जह आइ संघारै ॥
हरि का नामु ततकाल उधारै ॥
अनिक जोनि जनमै मरि जाम ॥
नामु जपत पावै बिस्राम ॥
हउ मैला मलु कबहु न धोवै ॥
हरि का नामु कोटि पाप खोवै ॥
ऐसा नामु जपहु मन रंगि ॥
नानक पाईऐ साध कै संगि ॥३॥

जहाँ लाखों करोड़ों बाहु (सहायकों) के होते हुए भी जीव का छुटकारा नही होता, वहाँ नाम जपने से पार हो जायेगा। जहाँ अनेक प्रकार के विघ्न आकर मारते (सताते) हैं, वहाँ हरि का नाम तुरन्त ही उद्धार कर देगा। (पापी जीव)अनेक योनियों में जन्मता मरता और फिर जन्मता है, किन्तु नाम जपने से विश्राम प्राप्त कर लेता है। अहम् भाव के कारण जीव मैला है और इस मैल को जीव अन्य किसी (विधि से) कभी भी धो नही सकता।

(किन्तु कलियुग मे) हरि का नाम करोड़ो पापों (की मैल, को (धोकर) दूर करता है। ऐसा (पवित्र) नाम, हे मन ! तू प्रेम से जप। हे नानक ! (याद रहे) यह नाम तू (केवल) साधु की संगति में ही प्राप्त करेगा ॥३॥

जिहमारगके गने जाहि न कोसा ।।
हरि का नाम ऊहा संगि तोसा ।।
जिह पैडै महा अंध गुबारा ।।
हरि का नामु संगि उजीआरा ।।
जहां पंथि तेरा को न सिञानू ।।
हरि का नामु तह नालि पछानू ।।

जिस (मृत्यु के) मार्ग के कोस गिने नही जा सकते, (उस यात्रा पर) हरि का नाम (जीव का) खाद्यपदार्थ होगा। जिस मार्ग पर महा अन्धकार और गुबार है, वहाँ हरि का नाम तेरे साथ प्रकाश करने के लिए होगा। जिस (मृत्यु के) मार्ग पर तेरा कोई भी (पहचानने वाला) नहीं होगा, वहाँ हरि का नाम परिचित होकर तेरे साथ चलेगा।

जह महाभइआन तपति बहु घाम ।।
तह हरिकेनामकी तुमऊपरि छाम ।।
जहा तृखा मन तुझु आकरखै ।।
तिहनानकहरिहरिअंमृतु बरखै ।।४।।

जिस मार्ग पर महा भयानक ताप और गर्मी है, वहाँ हरि के नाम की तेरे ऊपर छाया होगी। जहाँ हे मन! तृषा (प्यास) तेरे श्वास खीचकर तुझे सतायेगी, वहाँ हे नानक! हरि (हाँ), हरि, का नाम (तुम्हारे ऊपर महा भयानक ताप और गर्मी 'में') अमृत होकर बरसता रहेगा।।४।।

भगत जना की बरतनि नामु ।।
संत जना कै मनि बिस्रामु ।।
हरि का नामु दास की ओट ।।
हरि कै नामि उधरे जन कोटि ।।
हरि जसु करत संत दिनु राति ।।
हरि हरि अउखधु साध कमाति ।।
हरि जन कै हरि नामु निधानु ।।
पारब्रहमि जन कीनो दान ।।
मन तन रंगि रते रंग एकै ।।
नानक जनकै बिरति बिबेकै ।।५।।

भक्तजनों का नित्य व्यवहार है नाम (का जाप)। सन्तजनों के मन में निवास है (नाम का)। हरि का नाम ही सेवकों के लिए सहारा है। हरि का नाम जपने से ही करोड़ों सेवको का उद्धार होता है। सन्तजन दिन-रात हरि का यशोगान करते रहते हैं। वे हरि, (हाँ) हरि (नाम) को (सभी बीमारियों की) औषधि समझकर इसकी कमाई करते हैं।

हरि के सेवको के लिए हरिनाम ही (सच्चा) खजाना है। वह दान परब्रह्म परमेश्वर स्वय आकर सेवकों को देता है। सेवकों का मन चाहे तन एक प्रियतम के प्रेम-रंग मे ही अनुरक्त रहता है। हे नानक। उन सेवको की वृति विवेकानुसार ही होती है (अर्थात् यथार्थ=सत्य ज्ञान वाली वृति होती है।) ।।५।।

हरि कानामु जनकउ मुकति जुगति।।
हरि कैनामि जनकउतृपति भुगति ।।
हरि का नामु जन का रूप रंगु ।।
हरि नामु जपत कब परै न भंगु ।।

सेवको के लिए मुक्ति एव जीवन की रहन सहन (युक्ति) है हरि का नाम (का जाप)। ऐसे सेवको के लिए तृप्त होने के लिए जल भोजन है हरि का नाम (जपना)। हरि का नाम है सेवकों के लिए सुन्दरता और शोभा। हरि का नाम जपने से (सेवकों को) कभी भी विघ्न नहीं पड़ता।

हरि का नामु जन की वडिआई ॥
हरि कै नामि जन सोभा पाई ॥
हरि का नामु जनकउ भोगु जोग ॥
हरिनामु जपत कछु नाहि बिओगु ॥
जनु राता हरि नाम की सेवा ॥
नानक पूजै हरि हरि देवा ॥६॥

हरि के नाम में ही है सेवकों की बड़ाई। हरि के नाम द्वारा ही सेवकों ने शोभा प्राप्त की। सेवकों के लिए हरि का नाम ही है सासारिक पदार्थों की खुशी और हरि मिलन का आनन्द। वे हरि नाम जपते हैं, इसलिए उनके लिए कोई भी वियोग (का दु:ख) नही है। सेवक हरि नाम की सेवा में सदा अनुरक्त हैं। हे नानक ! स्वयं विष्णु, (हाँ) हरि के देव-देवताएँ भी आकर उनकी (उन संतजनों की) पूजा करते हैं ॥६॥

हरि हरि जन कै मालु खजीना ॥
हरि धनु जनकउ आपिप्रभि दीना ॥
हरि हरि जन कै ओट सताणी ॥
हरि प्रतापि जन अवर न जाणी ॥
ओति पोति जन हरि रस राते ॥
सुंन समाधि नामि रस माते ॥
आठ पहर जनु हरि हरि जपै ॥
हरि का भगतु प्रगट नही छपै ॥
हरि की भगति मुकति बहु करे ॥
नानक जन संगि केते तरे ॥७॥

हरि के सेवकों के लिए हरि (नाम) ही माल खजाना है। प्रभु ने हरि (नाम-) धन स्वयं आकर सेवकों को दिया है। हरि के सेवको के लिए स्वयं हरि ही प्रबल सहारा है। वे सेवक हरि के प्रताप के बिना अन्य किसी (की बडाई) को नही जानते। हरि के सेवक ओत-प्रोत (अर्थात् पूर्ण रूप से) हरि के प्रेम रस में अनुरक्त (भीगे) रहते हैं। वे नाम रस में मस्त हैं।

यही है उनके लिए योगियों वाली निर्विकल्प समाधि (अर्थात् शून्य समाधि)। हरि का दास आठ ही प्रहर हरि, (हाँ) हरि (नाम) का जाप करता है। हरि का वह भक्त प्रकट हो जाता है और छिपा नही रहता। हरि की भक्ति बहुतों को मुक्त करती है। हे नानक ! (ऐसे भक्तजनो की) संगति मे कितने ही (भव-सागर से) पार उतर जाते हैं ॥७॥

पारजातु इहु हरि को नाम ॥
कामधेन हरि हरि गुण गाम ॥
सभ ते ऊतम हरि की कथा ॥
नामु सुनत दरद दुख लथा ॥
नाम की महिमा संत रिद वसै ॥
संत प्रतापि दुरतु सभु नसै ॥
संत का संगु वडभागी पाईऐ ॥
संत की सेवा नामु धिआईऐ ॥
नाम तुलि कछु अवरु न होइ ॥
नानक गुरमुखि नामु पावै जनु कोइ ॥८॥२॥

यह हरि का नाम ही पारजात है और हरि के गुण गाने ही कामधेनु है। (कल्पवृक्ष. इन्द्र के नन्दन वन का वृक्ष है जो सम्पूर्ण मानसिक कामनाएँ पूर्ण करता है। कामधेनु देवासुर ने मिलकर समुद्र मथन करके १४ रत्न निकाले थे जिनमे से यह एक सर्वोच्छाओं को पूर्ण करने वाली गऊ थी)। सब कथाओ से उत्तम हरि की कथा ही है। नाम सुनने से(सब)दु:ख व दर्द उतर जाते हैं। (हरि) नाम की महिमा सन्त के हृदय मे बसती है। ऐसे सन्त के प्रताप से (मन के अन्दर) सब दुर्बुद्धि नष्ट हो जाती है। (किन्तु कलियुग मे) सन्त की सगति कोई भाग्यशाली जीव ही प्राप्त करता है।

सन्त की सेवा में ही(हरि)नाम का ध्यान करना(जीव सीखता) है। नाम के बराबर अन्य कुछ भी (वस्तु अमूल्य) नही है। हे नानक ! गुरु के उपदेश द्वारा नाम की प्राप्ति होती है, (किन्तु ऐसा सच्चा) सेवक कोई विरला ही (कलियुग मे होता) है ॥८॥२॥

श्लोक एवं अष्टपदी (२) का सारांश

श्लोक—प्रभु, जो दीन दुखियों का दर्द एवं दुःख-भंजन है, अनाथों का नाथ है और घट-घट का स्वामी है, हे नानक ! 'उसकी' शरण लेने से 'वह' प्रभु अवश्य सहायक होता है ।।२।।

अष्टपदी – हरिनाम के बराबर कुछ भी नहीं है । इसलिए, हे मन ! तू 'उस' दीन-दयालु एवं दुःख-भंजन परमात्मा को सदैव याद कर और प्रत्येक क्षण 'उसका' ध्यान कर । 'वही तुम्हारा नाथ है; 'वही' तुम्हारे काम आयेगा । याद रहे, जहाँ न माता, न पिता, न पुत्र, न सम्बन्धी, न भाई, और न बन्धुजन ही तुम्हारी सहायता करेंगे, हे जीव ! जहाँ यमकाल के दूत समूह के समूह आकर घेरा डालेंगे और जहाँ अति कठिनाईयाँ, विघ्न और बाधाएं आकर पड़ेंगी, वहाँ हरि का नाम ही तुम्हारा सहायक होकर तुम्हारा उद्धार करेगा । जिस मार्ग मे, हे प्राणी ! तू अकेला ही अकेला जायेगा, जहाँ कोई भी पहचानने वाला नहीं होगा, वहाँ केवल हरि का नाम ही तुम्हारे साथ चलेगा और तुम्हारी यात्रा का तोषा—यात्रा के लिए खाद्य पदार्थ बनेगा, (हाँ) वही तुम्हारा प्रकाश और पहचानने वाला होगा । इसलिए, हे नानक ! तू अपने मन तन को राम नाम के साथ रंग ले; उसे ही अपनी सुन्दरता, (हाँ) अपनी बड़ाई, अपना रूप, अपना रस, अपनी जीवन युक्ति और मुक्ति बना ले । उसका नाम भयानक तप्त के अन्दर छाया बनता है और प्यास के अन्दर अमृत-वर्षा करता है । वही औषध है, (हाँ) वही सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली कामधेनु है तथा वही कल्पवृक्ष भी है । एक वही है भक्तों की टेक और सन्तों का विश्राम । 'उसी' के साथ भक्तजन तृप्त होते हैं और 'उसी' के साथ भक्तजन साक्षात्कार होते हैं । अतएव 'उसी' एक को, हे मन ! गुरमुख बनकर तू आठ प्रहर जप और समाविस्थ होकर 'उसके' नाम रस का पान कर फिर तुम्हें कदाचित वियोग नहीं होगा ।।२।।

सलोकु ।।

बहु सासत्र बहु सिम्रिती
पेखे सरब ढढोलि ।।
पूजसि नाही हरि हरे
नानक नाम अमोल ।।१।।

"नाम सभी शास्त्रों का मूल ।"

चाहे कोई जीव सब शास्त्र और स्मृतियाँ कई बार देखे (अर्थात् पढ़े) और उनकी जाँच पड़ताल भी करे, तो भी, हे नानक ! हरि और हरि के अमूल्य नाम की पूजा वह नहीं कर रहा है (अर्थात् पाठ, पूजाएँ, धार्मिक जाँच पड़ताल आदि करनीं नाम जपना नहीं है ।) ।।१।।

असटपदी ।।

जाप ताप गिआन सभि धिआन ।।
खट सासत्र सिम्रिति वखिआन ।।
जोगअभिआस करम ध्रम किरिआ ।।
सगल तिआगि बन मधे फिरिआ ।।

"नाम ही सभी कर्मों में श्रेष्ठ है ।"

चाहे कोई सभी (बाह्य) जप, तप, ज्ञान और ध्यान तथा ६ शास्त्र एवं २७ स्मृतियों का कथन करे, चाहे कोई योगाभ्यास, कर्म, धार्मिक क्रियाएँ करे, चाहे कोई सारे (काम) त्यागकर वन के बीच फिरता रहे, चाहे कोई अनेक प्रकार के और भी यत्न बहुत करे; चाहे

अनिक प्रकार कीए बहु जतना ॥
पुंन दान होमे बहु रतना ॥
सरीरु कटाइ होमै करि राती ॥
वरत नेम करै बहु भाती ॥
नही तुलि राम नाम बीचार ॥
नानक गुरमुखि नामु जपीऐ
इक बार ॥१॥

कोई हवन और पूजा के अनेक कर्मों के पुण्य दान करे, चाहे कोई अपना शरीर रत्ती-रत्ती करके हवन कर दे तथा चाहे कोई भान्ति-भान्ति के बहुत व्रत रखे और (खास-खास) नियम भी पालन करे तो भी (उपर्युक्त) ये सभी कर्म हरि नाम के विचार की तुलना (बराबरी) नहीं कर सकते।

हे नानक! गुरु के उपदेशानुसार एक बार ही नाम जप (क्योंकि कलियुग में सब कर्मों में श्रेष्ठ कर्म और सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म नाम जपना ही है) ॥१॥

नउ खंड प्रिथमी फिरै चिरु जीवै ॥
महा उदासु तपीसरु थीवै ॥
अगनि माहि होमत परान ॥
कनिक अस्व हैवर भूमि दान ॥
निउली करम करै बहु आसन ॥
जैन मारग संजम अति साधन ॥
निमख निमख करि सरीरु कटावै ॥
तउ भी हउमै मैलु न जावै ॥
हरि के नाम समसरि कछु नाहि ॥
नानक गुरमुखि नामु जपत गति
पाहि ॥२॥

चाहे कोई नौ खण्ड पृथ्वी (भाव सम्पूर्ण पृथ्वी) पर भ्रमण करे और चिरकाल तक जीवित रहे; चाहे कोई महान् उदास तपस्वी हो जाए; चाहे कोई अपने प्राण भी अग्नि में हवन कर दे; चाहे कोई सोना, सुन्दर घोड़े, हाथी और भूमियाँ भी दान करे; चाहे कोई (योग क्रियाओं में) निउली क्रिया को और (योगियों वाले) बहुत आसन भी लगाए; चाहे कोई जैन मतानुसार इन्द्रिय निग्रह एवं अन्य कई अति कठिन साधनाएं करे; चाहे कोई रत्ती-रत्ती करके अपना शरीर भी कटा दे, तो भी (उपर्युक्त युक्तियों से) अहम् भाव की मैल नही जाती। (वस्तुतः) हरि के नाम के तुल्य कुछ भी नहीं है। हे नानक! गुरु के उपदेश द्वारा नाम जपकर जीव (सद्) गति (मुक्ति) प्राप्त करता है (क्योंकि नाम के बिना केवलमात्र सात्विक कर्म करने से भी अहंकार से मुक्ति नही होती प्रत्युत: 'मैं' की भावना और भी अधिक मजबूत हो जाती है।) ॥२॥

मन कामना तीरथ देह छुटै ॥
गरबु गुमानु न मन ते हुटै ॥
सोच करै दिनसु अरु राति ॥
मन की मैलु न तन ते जाति ॥
इसु देही कउ बहु साधना करै ॥
मन ते कबहू न बिखिआ टरै ॥
जलि धोवै बहु देह अनीति ॥
सुध कहा होइ काची भीति ॥

चाहे कोई अपनी इच्छानुसार (जहाँ मन चाहे) तीर्थों पर शरीर छोड़ दे, तो भी अहंकार और अभिमान मन से नहीं छूटता, चाहे कोई शुद्धि के लिए दिन रात शौच करता रहे, तो भी मन की मलीनता शारीरिक शुद्धि से नहीं जाती; चाहे कोई इस शरीर सम्बन्धी अनेक साधनाएँ भी करे; तो भी मन से विष रूप माया का प्रभाव नही जाता; चाहे कोई अपने अनित्य—नाशवान् शरीर को बहुत बार धोता रहे) तो (बताओ) कच्ची दीवार (अर्थात् शरीर रूप मिट्टी की दीवार) केवलमात्र धोने से कैसे शुद्ध

मन हरि के नाम की महिमा ऊच ।।
नानक नामि उधरे
पतित बहु मूच ।।३।।

हो सकती है ? हे मन ! (कलियुग में) हरि के नाम की महिमा (इन सभी कर्मों से)अत्यन्त ऊँची है । (याद रहे)हे नानक ! नाम जपने से बड़े बड़े (महा) पापी भी तर गए हैं(अर्थात् जिन्होंने नाम का जाप किया है वे पापी भी क्यों न हो तो भी भव-सागर से पार हो जाते हैं । जैसे अजामिल, गणिका आदि) ।।३।।

बहुतु सिआणप जम का भउबिआपै ।।
अनिकजतन करि त्रिसन ना ध्रापै ।।
भेख अनेक अगनि नही बुझै ।।
कोटि उपाव दरगह नही सिझै ।।
छूटसि नाही ऊभ पइआलि ।।
मोहि बिआपहि माइआ जालि ।।
अवर करतूति सगली जमु डानै ।।
गोविंद भजनबिनु तिलु नहीमानै ।।
हरि का नामु जपत दुखु जाइ ।।
नानक बोलै सहजि सुभाइ ।।४।।

बहुत चतुराई करने से बल्कि यम का भय आकर व्याप्त हो हो जाता है,(क्योंकि चतुराई के) अनेक 'यत्न' करने से भी तृष्णा तृप्त नही होती । अनेक वेष धारण करने से भी तृष्णा रूपी अग्नि समाप्त नही होती। करोडों उपाय करने पर भी जीव (हरि की) दरबार मे स्वीकृत नही होता। चाहे कोई आकाश की ओर उड़े या पाताल मे (दौड़कर, जाए तो भी माया के प्रसारित जाल से, (हाँ) मोह रूपी जाल से वह कभी नही छूटता। अन्य सभी कर्मों को (जो माया मोह के प्रभाव हेतु हैं) यम डंडा लगाता है, गोविन्द के भजन के बिना वह जरा भी नही मानता (अर्थात नाम के बिना अन्य सभी कर्म योनियो के कारण बनते हैं)। हरि के नाम जपने से ही (जन्म मरण का) दुःख निवृत होता है। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब) यह बात सहज स्वभाव ही कहते हैं (अर्थात जो सच है वह निर्भय होकर बोल रहे हैं।) ।।४।।

चारि पदारथ जे को मागै ।।
साध जना की सेवा लागै ।।
जे को आपुना दूखु मिटावै ।।
हरि हरि नामु रिदै सद गावै ।।
जे को अपुनी सोभा लोरै ।।
साध संगि इह हउमै छोरै ।।
जे को जनम मरण ते डरै ।।
साध जना की सरनी परै ।।
जिसु जनकउ प्रभदरसपिआसा ।।
नानक ता कै बलि बलि जासा
।।५।।

यदि कोई(धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)चार पदार्थ (का सुख)माँगता है तो वह विनम्र साधुजनो की सेवा में जाकर लगे(अर्थात साधुओं की सेवा में नाम द्वारा जो सुख प्राप्त होता है वह इन चार पदार्थों से उत्तम है) । यदि कोई अपना दुःख निवृत करना चाहता है तो उसे चाहिए कि वह हरि, (हाँ) हरि का नाम हृदय अन्दर सदैव गाता रहे । यदि कोई अपनी सच्ची शोभा चाहता है तो उसे चाहिए कि वह साधु की संगति मे अहम् भाव को छोड़ दे । यदि कोई जन्म-मरण के चक्र से डरता है तो वह जाकर विनम्र साधु जनो की शरण मे पड़े । जिस सेवक को भी (कलियुग मे) प्रभु के दर्शन की प्यास है, (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब) कहते हैं हैं कि मैं उनके ऊपर बलिहारी जाऊँगा ।।५।।

सगल पुरख महि पुरखु प्रधानु ॥
साध संगि जा का मिटै अभिमानु ॥
आपस कउ जो जाणै नीचा ॥
सोऊ गनीऐ सभ ते ऊचा ॥
जाका मनु होइ सगल की रीना ॥
हरिहरिनामुतिनिघटिघटि चीना ॥
मन अपुने ते बुरा मिटाना ॥
पेखै सगल स्रिसटि साजना ॥
सूख दूख जन सम द्रिसटेता ॥
नानक पाप पुंन नही लेपा ॥६॥

सर्व पुरुषों में वह शिरोमणि पुरुष है, जिसका अभिमान साधु की संगति द्वारा मिट गया है। जो अपने आप को विनम्र जानता है, उसे सब से ऊँचा गिनना चाहिए। जिसका मन सब की (चरण) धूलि हो जाता है, उसने हरि हरि नाम को सब के हृदय में (सर्व स्थानों पर) देखा है। जिसने अपने मन से (औरों के सम्बन्ध में) बुरा भाव मिटा(बुड़ाई)दिया है, वह सारी सृष्टि को अपना सज्जन करके देखता है (हरि के) जो सेवक हैं वे सुख-दुःख को एक समान देखते हैं। हे नानक ! उनको पाप व पुण्य का लेप (प्रभाव) नही लगता (अर्थात् सुख अथवा दु.ख आने पर वे विच-लित नही होते क्योंकि सुख-दु.ख 'उस' की दी हुई देन समझते हैं। ऐसा उनको निश्चय है) ॥६॥

निरधन कउ धनु तेरो नाउ ॥
निथावे कउ नाउ तेरा थाउ ॥
निमाने कउ प्रभ तेरो मानु ॥
सगल घटा कउ देवहु दानु ॥
करन करावनहार सुआमी ॥
सगल घटा के अंतरजामी ॥
अपनी गति मिति जानहु आपे ॥
आपन संगि आपि प्रभ राते ॥
तुमरी उसतति तुम ते होइ ॥
नानक अवरु न जानसि कोइ ॥७॥

(हे प्रभु !) निर्धनों के लिए तेरा नाम ही (सच्चा) धन है और जिनको स्थान नही उनके लिये तेरा नाम ही (सुरक्षा और विश्राम के लिए) स्थान है (अर्थात नाम जपने वाले सच्चे धनाढ्य और स्थिर स्थान वाले हैं)। हे प्रभु ! तू ही सर्व जीवों को दान देते हो। हे स्वामी ! तू ही सभी कार्यों को करने वाले और कराने वाले हो। तू ही सर्व हृदयों को जानने वाले हो। (हे प्रभु !) तू स्वय ही अपनी पहुच और सीमा जानते हो। तू ही, हे प्रभु ! अपने प्रेमियो की संगति मे अनुरक्त रहते हो। तुम्हारी स्तुति, (हे मेरे प्यारे प्रभु जी) ! तू स्वय ही कर सकते हो। अन्य कोई भी (तुम्हारी सम्पूर्ण स्तुति अथवा महानता) नही जानता, हे नानक ! ॥७॥

सरब धरम महि स्रेसट धरमु ॥
हरि को नामु जपि निरमल करमु ॥
सगल क्रिआ महि ऊतम किरिआ ॥
साध संगि दुरमति मलु हिरिआ ॥
सगल उदम महि उदमु भला ॥
हरि का नामु जपहु जीअ सदा ॥
सगल बानी महि अंम्रित बानी ॥
हरि को जसु सुनि रसन बखानी ॥
सगल थान ते ओहु ऊतम थानु ॥
नानक जिह घटि वसै हरिनामु ॥८॥३॥

स र्व धर्मों में श्रेष्ठ धर्म और कर्मों में निर्मल कर्म है हरि का नाम जपना। सभी क्रियाओं में उत्तम क्रिया है साधु की संगति में रहकर मन से दुर्बुद्धि की मैल को दूर करना। सभी उद्यमों में अच्छे में अच्छा उद्यम है यदि जीव सदैव हरि का नाम जपता रहे। सभी वाणियो मे अमृतमयी वाणी है, हरि का यश (कानों से) सुनना और रसना से उसे उच्चारण करना। सभी स्थानो में वही (तीर्थ)स्थान उत्तम है, जिसके हृदय मे हरि का नाम निवास करता है (अर्थात् हरि नाम जपने के लिए कलियुग में हमें वह स्थान ढूंढना होगा जो उत्तम हो और वह है केवल सन्त-हृदय जहाँ हरि नाम का वास होता है) ॥८॥३॥

श्लोक एवं अष्टपदी (३) का सारांश

श्लोक—हरि के नाम का जाप, हे नानक ! वेद, शास्त्रादि धर्मग्रन्थों के पाठ-पठन एवं धार्मिक शोभायें करने से सर्वोत्तम है ॥३॥

अष्टपदी—सांसारिक व्यवहार से, हे नानक ! तुम्हारा क्या काम ? नियम, व्रत, दान, होमादि से क्या होगा ? तीर्थों पर जाने से क्या ? छ: शास्त्रों को समझने से क्या ? स्मृतियों को पढ़ने से क्या ? तपस्या करने से क्या ? वन में जाने से क्या ? संन्यास धारण करने से क्या ? योगाभ्यास करने से क्या ? ज्ञान कथन करने से क्या ? ध्यान लगाने से क्या ? तू तो एक सत्य स्वरूप परमात्मा की शरण ग्रहण करके श्रेष्ठ पुरुषों की संगति द्वारा दुर्बुद्धि का नाश करके, सत्य नाम को चित्त में धारण करके, गोबिन्द हरि का नाम श्रद्धा व भावना सहित गाकर मन की तुच्छ कामनाओं को तथा गर्व-अभिमान के घोर अन्धकार एवं विषय-विकारों की मल को धो कर, (हाँ) अन्तर्गत तृष्णा की अग्नि को शान्त करके, माया मोह से रहित होकर अपनी आत्मा की प्यास को पूर्ण कर, जो जन्म-जन्मान्तरों से दर्शनाभिलाषी है। हे नानक ! सुख-दु:ख में विचलित न होकर एवं श्रेष्ठ पुरुषों की संगति में बैठकर मिट्टी होने से पहले अपने मन को मिट्टी बनाकर प्रभु परमात्मा की शरण ग्रहण कर। इस प्रकार समस्त जीव-सृष्टि को अपना सज्जन, अपना हितैषी बनाकर तू 'उस' एक का नाम जप जो निर्धन का धन है और निआश्रय का आश्रय है। याद रहे सत्य नाम का जाप ही सर्व धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है, (हाँ) सर्व कर्मों में निर्मल कर्म भी हरि-नाम का जाप ही है ॥३॥

सलोकु ॥

निरगुनीआर इआनिआ
सो प्रभु सदा समालि ॥
जिनि कीआ तिसु चीति रखु
नानक निबही नालि ॥१॥

"हे बेसुध इन्सान ! प्रभु को मत भूल।"

हे गुणों से विहीन ! हे अनजान (जीव) ! 'उस' प्रभु को सदैव याद कर जिसने तुझे रचा है (पैदा किया है), 'उसे' चित्त में (पिरो) रख तो हे नानक ! 'वही' (यहाँ वहाँ सदा तेरा) साथ निभाएगा ॥१॥

असटपदी ॥

रमईआ के गुन चेति परानी ॥
कवन मूल ते कवन द्रिसटानी ॥
जिनि तूं साजि सवारि सीगारिआ ॥
गरभ अगनि महि जिनहि उबारिआ ॥
बार बिवसथा तुझहि पिआरै दूध ॥

"प्रभु ही सब सुखों को देने वाला है।"

हे प्राणी ! राम, जो सर्व व्यापक है तू 'उसके' गुणों का चिंतन कर। (देखो) किस मूल (कारण) से तुझे क्या बना कर दिखाया है (चाहे मलमूत्र से बना है किन्तु कितना तू सुन्दर है) ! जिस (रमईआ) ने तुझे रचकर, संवार कर तेरा शृंगार किया और जिसने (माता की) जठराग्नि से भी तुझे बचा लिया, फिर जिसने बाल्यावस्था में तुझे दूध पिलाया, जिसने तुझे युवावस्था में भोजन तथा सर्व सुखों की समझ (ज्ञान) दी और फिर वृद्धावस्था

भरि जोबन भोजन सुख सूख ॥
बिरधि भइआ ऊपरि साक सैन ॥
मुखि अपिआउ बैठ कउ दैन ॥
इहु निरगुनु गुनु कछू न बूझै ॥
बखसि लेहु तउ नानक सीझै ॥१॥

मैं तुझे सम्बन्धी, मित्र और रिश्तेदार तेरी सेवा और रक्षा के लिए दे दिए और तुझे बैठे ही मुख में भोजन देता रहा।

(किन्तु हाय!) गुणों से रहित यह (वेशुक) जीव रमईया के किये हुये उपकार को नहीं समझता। हे नानक! तू ही उसे क्षमा कर ले तभी वह सफल हो सकता है (अर्थात् मुक्त हो सकता है) ॥१॥

जिह प्रसादि धर ऊपरि सुखि बसहि ॥
सुत भ्रात मीत बनिता संगि हसहि ॥
जिह प्रसादि पीवहि सीतल जला ॥
सुखदाई पवनु पावकु अमुला ॥
जिह प्रसादि भोगहि सभि रसा ॥
सगल समग्री संगि साथि बसा ॥
दीने हसत पाव करन नेत्र रसना ॥
तिसहि तिआगि अवरसंगि रचना ॥
ऐसे दोख मूड़ अंध बिआपे ॥
नानक काढि लेहु प्रभ आपे ॥२॥

जिसकी कृपा या प्रसन्नता से तू धरती पर सुखपूर्वक निवास करता है और पुत्रों, भाईयों, मित्रों, स्त्री के साथ हँसता (अर्थात् खुशियाँ मनाता) है। जिसकी कृपा या प्रसन्नता से तुझे शीतल जल पीने को मिलता है और सुख देने वाली हवा और अग्नि का अमूल्य सुख इस्तेमाल करता है। जिसकी कृपा व प्रसन्नता से तू सारे स्वाद भोगता है और सभी सुख देने वाली आवश्यक वस्तुओं के साथ रहता है। जिस कृपालु प्रभु ने, हे प्राणी! तुझे हाथ, पैर, कान, आँख, जिह्वा आदि दिए है, ऐसे दयालु प्रभु का त्याग करके तू औरों में जाकर आसक्त हुआ है (यह आश्चर्यमय बात है)।

(हाँ) ऐसे दोष (सदैव) मूर्खों और अन्धों को ही लगते हैं। हे प्रभु! तू स्वयं ही उनको (इन दोषों से) निकाल ले (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक विनय करते हैं ॥२॥

आदि अंति जो राखनहारु ॥
तिस सिउ प्रीति न करै गवारु ॥
जा की सेवा नव निधि पावै ॥
ता सिउ मूड़ा मनु नही लावै ॥
जो ठाकुरु सद सदा हजूरे ॥
ता कउ अंधा जानत दूरे ॥
जा की टहल पावै दरगह मानु ॥
तिसहि बिसारै मुगधु अजानु ॥
सदा सदा इहु भूलनहारु ॥
नानक राखनहारु अपारु ॥३॥

जो परमेश्वर आदि (जन्म) से अन्त (मृत्यु) तक तेरी रक्षा करने वाला है, 'उससे' (कलियुगी) जीव प्रीति नहीं करता। कैसा न गँवार है।

जिस परमेश्वर की सेवा करने से नौ निधियों की खुशी प्राप्त होती है, 'उससे' जीव अपना मन नहीं लगाता। कैसा न मूर्ख है!

जो ठाकुर सदा सर्वदा प्रत्यक्ष बस रहा है, उसे जीव दूर (बैठा) समझता है। कैसा न अन्धा है!

जिस परमेश्वर की सेवा करने से प्रभु की दरबार में सम्मान प्राप्त होता है, 'उसे' यह जीव विस्मृत कर बैठा है। कैसा न मूढ़ है! (हाँ) कैसा न अनजान है! (कलियुगी) जीव तो सदा सर्वदा भूलचूक (गलतियाँ) करने वाला है। हे नानक! 'वह' अपार प्रभु हो (सदैव) रक्षा करने वाला है (भाव: दयालु प्रभु दया करता ही जा रहा है चाहे कलियुगी जीव आज 'उससे' विमुख हो चुका है) ॥३॥

रतनु तिआगि कउडी संगि रचै ॥
साचु छोडि झूठ संगि मचै ॥
जो छडना सु असथिरु करि मानै ॥
जो होवनु सो दूरि परानै ॥
छोडि जाइ तिस का स्रमु करै ॥
संगि सहाई तिसु परहरै ॥
चंदन लेपु उतारै धोइ ॥
गरधब प्रीति भसम संगि होइ ॥
अंध कूप महि पतित बिकराल ॥
नानक काढि लेहु प्रभ दइआल ॥४॥

(यह भूलचूक करने वाला अज्ञानी जीव नाम) रत्न का त्याग करके (माया) कोड़ी की सगति में रच रहा है। (हरि) सत्य को छोड़कर (विनश्वर मायिक पदार्थ जो) झूठ है उनकी संगति में मस्त हो रहा है। जो कुछ छोड़ना (अर्थात झूठ) है उसे जीव स्थिर (अटल) मानता है और जो होने वाली है (अवश्यंभावी है जैसे मृत्यु) उसे यह प्राणी दूर पहचानता (समझता) है।

जो कुछ यहाँ छोड़कर जाना है उसके (संग्रह के लिये) जीव परिश्रम कर रहा है और जो (परमेश्वर सदा) संगी सहायक है 'उसे' धक्का देकर छोड़ देता है। जैसे गधे की प्रीति भस्म के साथ होती है यदि (उस पर) चन्दन का (सुगन्धित) लेप लगा दिया जाय तो भी वह उसे उतार देता है। (इसी प्रकार कलियुगी जीव को चन्दन रूप मनुष्य देही प्राप्त हुई है, किन्तु गधे के समक्ष मायिक पदार्थ जो राख के सदृश हैं उनके साथ प्रीति होने के कारण गँवा देता है) अरे! पापी जीव अपने पाप के प्रभाव के कारण भयानक बनकर अन्धे कूँए मे गिर पडा है। हे दयालु प्रभु! तू स्वय आकर उसे (इस अन्धकूप से) निकाल ले (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब) विनय करते हैं ॥४॥

करतूति पसू की मानस जाति ॥
लोक पचारा करै दिनु राति ॥
बाहरि भेख अंतरि मलु माइआ ॥
छपसि नाहि कछु करै छपाइआ ॥
बाहरि गिआन धिआन इसनान ॥
अंतरि बिआपै लोभु सुआनु ॥
अंतरि अगनि बाहरि तनु सुआह ॥
गलि पाथर कैसे तरै अथाह ॥
जा कै अंतरि बसै प्रभु आपि ॥
नानक ते जन सहजि समाति ॥५॥

यह जाति तो है मनुष्य की किन्तु इसकी करतूत है पशु वाली क्योकि यह दिन रात लोगो की निन्दा करता रहता है अथवा लोगो को ऊपर से संतुष्ट करता फिरता है। बाहर से तो (साधु का) वेष है और अन्तर्गत माया की मैल (बस रही) है। यह पाखड वह छिपा नही सकेगा चाहे कितना भी छिपाने का यत्न करे। (याद रहे मन की मैल कदाचित छिपाने पर भी छिपाई नही जा सकती है)।

बाहर से ध्यान और स्नान करने वाला लगता है, किन्तु उसके अन्दर लोभ रूपी कुत्ता व्याप्त है। अन्तर्गत तो तृष्णा रूपी अग्नि है और बाहर (शरीर पर) विभूति जैसे शीतल बनकर ससार मे विचरण करता है। अरे! जिसके गले में पाप रूपी पत्थर बन्धे हुए हैं, वह भला अथाह ससार-सागर से कैसे पार हो सकता है? (किन्तु) जिसके अन्तर्गत स्वयं प्रभु आकर निवास करता है, हे नानक! वह सहज ही सहजावस्था में (अथवा प्रभु मे) समा जाता है ॥५॥

सुनि अंधा कैसे मारगु पावै ॥
करु गहि लेहु ओड़ि निबहावै ॥
कहा बुझारति बूझै डोरा ॥

अन्त (मंजिल) तक अन्धा केवलमात्र सुनकर कैसे (सुरक्षित) रास्ता प्राप्त कर सकता है? (हाँ) यदि हाथ पकड़ लो तो पहुँच जायेगा। (बेचारा) बहरा सांकेतिक बात कैसे समझ सकता है?

निसि कहीऐ तउ समझै भोरा ॥
कहा बिसन पद गावै गुंग ॥
जतन करै तउ भी सुर भंग ॥
कहु पिंगुल परबत पर भवन ॥
नही होत ऊहा उसु गवन ॥
करतार करुणामै दीनु बेनती करै ॥
नानक तुमरी किरपा तरै ॥६॥

यदि उसे रात कहें तो दिन समझता है, (क्योंकि बहरा है), गूंगा भला किस तरह विशनपद (विष्णु जी का पद जैसे मीरा बाई ने गाया था) गा सकता है? यदि गाने का प्रयास करेगा तो भी स्वर भंग होगा। पगु कैसे पर्वत पर (फिर सकता है) अथवा कैसे पर्वत पर घर बना सकता है? उसका तो वहाँ जाना भी नहीं हो सकता। हे दयालु कृपालु कर्त्ता (प्रभु)! मै गरीब (दास) नानक विनय करता हूँ कि (केवल) तुम्हारी कृपा से ही यह जीव (भव-सागर से) पार हो सकता है ॥६॥

संगि सहाई सु आवै न चीति ॥
जो बैराई ता सिउ प्रीति ॥
बलूआ के ग्रिह भीतरि बसै ॥
अनद केल माइआ रंगि रसै ॥
द्रिड़ु करि मानै मनहि परतीति ॥
कालु न आवै मूड़े चीति ॥
बैर बिरोध काम क्रोध मोह ॥
झूठ बिकार महा लोभ ध्रोह ॥
इआहू जुगति बिहाने कई जनम ॥
नानक राखि लेहु
आपन करि करम ॥७॥

जो प्रभु संगी है और सहायक (भी) है, 'वह' तो चित्त में नहीं आता, किन्तु (विषयी वृति) जो वैरी है उसके साथ (जीव की) प्रीति है। रेत के घर में बसता है (अर्थात नाशवान् शरीर में रहता है) किन्तु माया के खेल के आनन्द और रगो का रसास्वादन करता है। मन के विश्वानुसार दृढ़ करके मान रहा है (कि यह शरीर रूपी घर सदैव रहने वाला है)। किन्तु (अफसोस) मूर्ख अज्ञानी जीव के चित्त में मृत्यु की स्मृति भी नही आती।

(इस प्रकार मृत्यु को) भूलते ही वैर, विरोध, कामवासना क्रोध, मोह, झूठ, विकार, महा लोभ, द्रोहादि, (हाँ) इसी ढंग से (अर्थात इन विकारो मे ही) उसके अनेक जन्म व्यतीत हो चुके हैं। (हे कर्त्तार!) अपनी कृपा दृष्टि द्वारा (सब को) बचा लो ॥७॥

तू ठाकुरु तुम पहि अरदासि ॥
जीउ पिंडु सभु तेरी रासि ॥
तुम मात पिता हम बारिक तेरे ॥
तुमरी क्रिपा महि सूख घनेरे ॥
कोइ न जानै तुमरा अंतु ॥
ऊचे ते ऊचा भगवंत ॥
सगल समग्री तुमरै सूत्रि धारी ॥
तुम ते होइ सु आगिआकारी ॥
तुमरी गति मिति तुम ही जानी ॥
नानकदास सदा कुरबानी ॥८॥४॥

(हे कर्त्तार!) तू ठाकुर है। तेरे पास ही प्रार्थना है, (हमारा) जीवात्मा और शरीर सब तेरी ही (दी हुई) पूंजी है। तू हमारा माता है और पिता है और हम तेरे बालक हैं। तुम्हारी कृपा में ही (हमे) अधिक सुख प्राप्त (हो रहे) हैं। हे भगवन! तेरा अन्त कोई भी नही जानता। तू ऊँच से भी ऊँचा (सर्वोच्च) है। सब सामग्री तुम्हारे ही हुक्म रूपी धागे से बाँधी हुई है। (यह समस्त) जीव सृष्टि तुमसे हुई है (रची गई है) और (तुम्हारी ही) आज्ञाकारी है (अर्थात आज्ञा में चल रही है)। तुम्हारी गति और सीमा का अनुमान तुम स्वय ही जानते हो।

दास नानक तो (तुम्हारे ऊपर) सदैव कुर्बान जाता है ॥८॥४॥

श्लोक एवं अष्टपदी (४) का सारांश

श्लोक—प्रभु, जो करणहार कर्ता है और जो जीव के साथ सदा रहता है तथा अन्त समय में भी सर्वदा सहायक होता है, हे गुणों से रहित मूढ़ जीव ! तू 'उसका' सदैव स्मरण कर और सदा अपने चित्त में दृढ़ता पूर्वक रख ॥१॥

अष्टपदी—तू सदैव 'उस' रमईये प्रभु को याद कर, हे प्राणी ! जिसने संवार कर, श्रृंगार कर तुम्हें सृजन किया है तथा तुम्हे गर्भाग्नि से बचाया, बालावस्था में दुग्ध पिलाया, यौवनावस्था में स्वाद दिए और वृद्धावस्था में तुम्हारी संभाल की। हे गुणहीन ! हे मूर्ख ! तू 'उसी' के गुणों का विचार कर जिसके प्रसाद (कृपा) से तू सुन्दर घर में निवास करता है और पुत्रों, भाईयों, मित्रों तथा सुन्दर स्त्री के साथ बसता है एवं शीतल जल, सुखद पवन और मीठे रसों का रसास्वादन करता है। हे मूढ़ मत्ति ! तू 'उस' अपार प्रभु की सेवा कर जो करुणामय है और जो आदि अन्त में तुम्हारा रक्षक होगा। हे भूले जीव ! क्यों ऐसे दाता प्रभु को अपने से दूर समझता है ? 'उसको' छोड़कर औरों की संगति करता है, ; रत्न रूप परमात्मा एवं 'उसके' नाम का त्याग करके कौड़ियों के प्रति रुचि रखता है ? सत्य का परित्याग करके झूठ के साथ मस्त रहता है ? और जो छोड़ जाना है उसके लिए परिश्रम करता है ? हे भाग्यहीन जीव ! भला क्यों तू दिन रात औरों की निन्दा करता रहता है। ,अन्त:करण को शुद्ध नही करता केवल बाह्य वेष ही धारण करके, लोभ का कुत्ता अन्दर पाल कर अपने आप को तीर्थवासी, ज्ञानी और ध्यानी कहलाता है। अब बताओ विषयो का पत्थर जो तेरे गले में हार बन कर पड़ा है वह तो तुझे भव-सागर में डुबो देगा। अतएव। जागकर हे मूढ़ ! मनुष्य बन, पशुवत् कर्मों का त्याग कर और गधे की भान्ति ,इस मनुष्य देही रूप चन्दन लेप को मिट्टी में लम्पट होकर मत गंवा।

हे अन्धे ! काश ! प्रभु तुम्हें अन्धे कूंए से निकाल कर अपने मार्ग में लगाए। हे बहरे ! काश ! तुम्हें कुछ यथार्थ ज्ञान का भेद समझाए। हे गूंगे ! काश ! प्रभु तुम्हारे से अपनी स्तुति के गीत का गान कराए। हे पिंगुले ! काश ! प्रभु तुम्हें जीवन-मार्ग में हाथ देकर रक्षा करे। हे भगवंत ! तू ही हम अन्धों, बहरों, गूंगों, पिंगुलों पर दया करने वाले हो। तू ही है ठाकुर तू ही है जीवन की पूंजी; तू ही है माता, तू ही है पिता। हम तुम्हारे बालक हैं; तू ही समस्त सामग्री का सूत्रधारी और समस्त सृष्टि तुम्हारी आज्ञाकारी हैं। तू ही सर्वोच्च तू ही कृपालु और तू ही है सुखदायक। तुम्हारी गति-मिति, तुम्हारा अन्त किसी ने भी नहीं जाना है। हे नानक ! काश ! मैं तुम्हारे ऊपर बलिहारी जाऊँ। यही मुझ दास की तुझ परम ज्योति परमेश्वर के आगे प्रार्थना है ॥४॥

सलोकु ॥

देनहारु प्रभ छोडि कै
लागहि आन सुआइ ॥
नानक कहू न सीझई
बिनु नावै पति जाइ ॥१॥

"दाता प्रभु को भूलने वालों का बुरा हाल।"

(सब पदार्थों को) देने वाले प्रभु को छोड़ कर जो अन्य प्रयोजनों की ओर अथवा (मायिक पदार्थों एवं इन्द्रियों के) स्वादों में (संलग्न) है, हे नानक ! वह जीव किसी प्रकार भी (प्रभु दरबार में) स्वीकृत (मुक्त) नही होता, अपितु (नाम रहे) नाम के बिना (मनुष्य देही की) मान-प्रतिष्ठा चली जाती है ॥१॥

असटपदी ॥

"दाता प्रभु के उपकारों को कदाचित न भूल ।"

दस बसतू ले पाछै पावै ॥
एक बसतु कारनि बिखोटि गवावै ॥
एकभी न देइ दस भी हिरि लेइ ॥
तउ मूड़ा कहु कहा करेइ ॥
जिसु ठाकुर सिउ नाही चारा ॥
ता कउ कीजै सद नमसकारा ॥
जा कै मनि लागा प्रभु मीठा ॥
सरब सूख ताहू मनि वूठा ॥
जिसु जन अपना हुकमु मनाइआ ॥
सरबथोकनानकतिनिपाइआ ॥१॥

दस वस्तुएं (अर्थात अनेक पदार्थ प्रभु से) लेकर एक ओर कर लेता है (अर्थात संभाल लेता है), किन्तु यदि एक वस्तु न मिले तो उस एक के लिए अपना विश्वास खो लेता है। यदि 'वह' प्रभु यह एक भी न दे और इसके अतिरिक्त अन्य दी हुई दस वस्तुएं भी वापस ले ले तो बतलाओ यह मूर्ख क्या कर सकता है ? (जीव को तो सदा सन्तोष और आज्ञा में रहना चाहिए इसी में उसकी समझदारी है)। जिस ठाकुर से वश (जोर) न चल सकता हो (पेश न आती हो) 'उसे' तो सदैव नमस्कार ही करना चाहिए। जिसके मन में प्रभु मीठा लगता है, उसी के मन मे सभी सुख आकर बसते हैं। (किन्तु) जिस सेवक से (प्रभु ने स्वयं) अपना हुकम मनवाया है, हे नानक ! सभी पदार्थ उसी ने प्राप्त कर लिए हैं ॥१॥

अगनत साहु अपनी दे रासि ॥
खात पीत बरतै अनदि उलासि ॥
अपुनीअमानकछुबहु रिसाहु लेइ ॥
अगिआनी मनि रोस करेइ ॥
अपनी परतीति आप ही खोवै ॥
बहुरि उस का बिस्वासु न होवै ॥
जिस की बसतु तिसु आगै राखै ॥
प्रभ की आगिआ मानै माथै ॥
उस ते चउगुन करै निहालु ॥
नानक साहिबु सदा दइआलु ॥२॥

अगणित (बेशुमार) राशि (हरि) शाह ने (प्रत्येक जीव को) दी है कि वह आनन्द उल्लास के साथ खाये, पीये और बरते। किन्तु यदि शाह (व्यापारी) अपनी अमानत में से कुछ वापिस ले ले तो अज्ञानी जीव नाराज हो जाता है। इस प्रकार वह जीव अपना विश्वास स्वयं ही गँवा देता है और दोबारा 'उस (शाह) का भी विश्वास नही होता। (वस्तुतः भलाई तो इसी में है कि जीव को चाहिए कि) जिस (शाह) की वस्तु है उसी के आगे (मांगने पर) रख दे और प्रभु की आज्ञा सिर पर (सहर्ष) मान ले (तो शाह उसको) चार गुना अधिक कृतार्थ (खुश) करता है। क्योंकि हे नानक ! मेरा साहब प्रभु तो सदैव दयालु और कृपालु है ॥२॥

अनिक भाति माइआ के हेत ॥
सरपर होवत जानु अनेत ॥
बिरख की छाइआ सिउ रंगु लावै ॥
ओह बिनसै उहु मनि पछुतावै ॥
जो दीसै सो चालनहारु ॥
लपटि रहिओ तह अंध अंधारु ॥
बटाऊ सिउ जो लावै नेह ॥
ता कउ हाथि न आवै केह ॥
मन हरि के नाम की प्रीति सुखदाई ॥
करि किरपा नानक आपि लए लाई॥३॥

अनेक प्रकार के माया के प्रेम को अनित्य जानो, क्योंकि अवश्य ही नाश हो जायेंगे। (देखो) जो वृक्ष की छाया से प्रेम लगा बैठता है वह छाया तो अवश्य नाश हो जाती है और फिर वह (जीव) मन में पछताता है। जो कुछ दीख रहा है, वह (सारा) चलनहार (विनश्वर) है, किन्तु (आश्चर्य है कि) अति अन्धा उससे (माया में) लम्पट हो रहा है। (इसी प्रकार) जो यात्री के साथ प्रेम लगाता है उसके हाथ में कुछ भी नहीं आता। हे मन ! हरि के नाम की प्रीति ही सुख देने वाली (वस्तु) है। किन्तु, हे नानक ! हरि स्वयं अपनी कृपा द्वारा जीव को (अपनी प्रेम भक्ति) लगाता है ॥३॥

मिथिआ तनु धनु कुटंबु सबाइआ ॥
मिथिआ हउमै ममता माइआ ॥
मिथिआ राज जोबन धन माल ॥
मिथिआ काम क्रोध बिकराल ॥
मिथिआ रथ हसती अस्व बसत्रा ॥
मिथिआ रंग संगि माइआ पेखि हसता ॥
मिथिआ ध्रोह मोह अभिमानु ॥
मिथिआ आपस ऊपरि करत गुमानु ॥
असथिरु भगति साध की सरन ॥
नानक जपि जपि जीवै
हरि के चरन ॥४॥

(हे जीव ! तेरा) शरीर, धन, कुटुम्ब, (हाँ) सब कुछ विनश्वर (अस्थिर) है। (तरी) हउमै, ममता और माया भी विनश्वर है। राज्य, यौवन, धन और माल भी विनश्वर है। काम और भयानक क्रोध भी अस्थिर है। रथ, हाथी, घोड़े और वस्त्र भी झूठे हैं। माया के साथ प्रेम करके और उसको देख कर हँसता है। किन्तु (याद रहे) यह (सब कुछ) अस्थिर है। द्रोह (ठगी), मोह और अभिमान भी मिथ्या हैं और अपने ऊपर गुमान करना भी मिथ्या है। साधु की शरण में आकर भक्ति करनी ही केवल स्थिर है।

(मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब तो) हरि के चरणों का जाप कर-करके जीवित हैं ॥४॥

मिथिआ स्रवन पर निंदा सुनहि ॥
मिथिआ हसतपरदरबकउहिरहि ॥
मिथिआ नेत्रपेखतपरत्रिअरूपाद ॥
मिथिआ रसना भोजन अनस्वाद ॥
मिथिआचरनपरबिकारकउधावहि ॥
मिथिआ मन पर लोभ लुभावहि ॥
मिथिआ तन नही परउपकारा ॥
मिथिआ बासु लेत बिकारा ॥
बिनु बूझे मिथिआ सभ भए ॥
सफल देह नानक हरि हरि
नाम लए ॥५॥

निश्फल हैं कान जो पराई निन्दा सुनते हैं। निश्फल हैं हाथ जो पर-धन को चुराते हैं। निश्फल हैं नेत्र जो पर-स्त्री के रूपादि की ओर देखते हैं। निश्फल है रसना जो (नाम के बिना) अन्य स्वाद रसास्वादन करती है। निश्फल हैं चरण जो पराए नुकसान और विकारों की ओर दौड़ते हैं। निश्फल हैं मन जो पराये (पदार्थों के) लोभ मे लुभायमान रहते हैं। निश्फल हैं वह शरीर जो परोपकार नही करते। निश्फल है (नाक) जो विकारों की सुगन्ध लेता है। बिना समझे सब (अंग प्रत्यंग) निश्फल हे नानक! (केवल) हरि, (हाँ) हरि (नाम) लेने से (मनुष्य) देही (अर्थात् मनुष्य के अंग-प्रत्यंग) सफल होती है ॥५॥

बिरथी साकत की आरजा ॥
साच बिना कह होवत सूचा ॥
बिरथा नाम बिना तनु अंध ॥
मुखि आवत ता कै दुरगंध ॥
बिनुसिमरन दिनुरैनिब्रिथाबिहाइ ॥
मेघ बिना जिउ खेती जाइ ॥
गोबिद भजन बिनु ब्रिथे सभ
काम बिहाइ ॥
जिउ किरपन के निरारथ दाम ॥
धंनि धंनि ते जन जिह घटि
बसिओ हरि नाउ ॥
नानक ता कै बलि बलि जाउ ॥६॥

(माया में आसक्त) साकत की आयु व्यर्थ है। सच्चे परमेश्वर के बिना वह कैसे पवित्र हो सकता है? (अर्थात् माया जो झूठ है उसमें वह आशक्त है और परमात्मा जो सत्य है उससे वह विमुख है)। (उसका) शरीर नाम के बिना (प्रकाश न होने के कारण) अन्धा है और व्यर्थ जा रहा है। उसके मुख से दुर्गन्ध आती है। बिना (हरि) स्मरण के उसकी आयु दिन रात व्यर्थ जा रही है, जैसे बादल (वर्षा) के बिना खेती व्यर्थ ही चली जाती है। गोबिन्द के भजन के बिना जीव के सारे काम व्यर्थ ही चले जाते हैं, जैसे कजूस (कृपण) के पैसे व्यर्थ (भाव: किसी के काम नहीं आते)। धन्य हैं, (हाँ) धन्य हैं वे जिनके हृदय में हरिनाम बस रहा है। मैं नानक उनके ऊपर (सदैव) बलिहारी, (हाँ) बलिहारी जाता हूँ ॥६॥

कहत अवर कछु अवर कमावत ॥
मनि नहीप्रीति मुखहुगंढलावत ॥
जाननहार प्रभू परबीन ॥
बाहरि भेख न काहू भीन ॥
अवर उपदेसै आपि न करै ॥
आवत जावत जनमै मरै ॥
जिस कै अंतरि बसै निरंकारु ॥
तिस की सीख तरै संसारु ॥
जो तुम भाने तिन प्रभु जाता ॥
नानक उन जन चरन पराता ॥७॥

(लोगों को दिखाने के लिए जीव भी बाहर से) कहता कुछ और है, किन्तु (अन्दर से अथवा कर्मों में) कुछ और कमाता है। मन में प्रीति नहीं केवल मुख से गठ-बन्धन (मिलाप) की बातें करता है। (अर्थात ऊपर-ऊपर से मीठी बातें करता है)। 'वह' (अन्दर की) जानने वाला प्रभु बहुत प्रवीण (चतुर) है इसलिए 'वह' किसी बाह्य वेश से प्रसन्न नहीं होता। जो औरों को उपदेश देता है किन्तु स्वयं वह (कर्म) नहीं करता, वह आता-जाता और जन्मता-मरता रहता है।

किन्तु जिसके अन्दर निरंकार बसता है, उसकी शिक्षा द्वारा संसार तैरता है (भाव: मुक्त होता है)। (हे प्रभु !) जो तुम्हें भाते हैं, उन्होंने ही आपको (निश्चय करके) पहचाना है। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक उन सेवकों के चरणों में पड़ता है ॥७॥

करउ बेनती पारब्रहमु सभु जानै ॥
अपना कीआ आपहि मानै ॥
आपहि आप आपि करत निबेरा ॥
किसैदूरिजनावतकिसैबुझावत नेरा॥
उपाव सिआनप सगल ते रहत ॥
सभु कछु जानै आतम की रहत ॥
जिसु भावै तिसु लए लड़ि लाइ ॥
थान थनंतरि रहिआ समाइ ॥
सो सेवकु जिसु किरपा करी ॥
निमख निमख जपि नानक हरी ॥
८॥५॥

(हाँ मैं उसी) परब्रह्म को विनय करता हूँ जो (हमारा) सब कुछ जानता है और जो अपने उत्पन्न किये को आप ही बड़ाई देता है। 'वह' (सब कुछ) आप ही आप है और आप ही न्याय करता है।

(अपने न्याय अनुसार) किसे 'वह' आप दूर जनाता है और किसे (अपने आप) निकट बुलाता है। वह (हमारे) सभी उपायों और चतुराईयों से (बहुत बहुत) दूर है। 'वह' हमारी आत्मस्थिति को स्वयं (अनायास ही) जान लेता है। (फिर) 'वह' जिसको चाहे उसको अपने पल्ले लगा लेता है।

(भाव: 'उसके' हुकम से ही जीव शरण प्राप्त कर लेता है)। 'वह' सर्व स्थानों में समाया रहता है। 'उसका' सेवक वह है जिस पर प्रभु (स्वयं) कृपा करता है। हे नानक ! 'उस' हरि का प्रतिक्षण स्मरण कर (अर्थात् आठ ही प्रहर 'उस' हरि को विनय कर ताकि 'उसकी' कृपा से 'उसी' एक का निरन्तर जाप हो) ॥८॥५॥

श्लोक एवं अष्टपदी (५) का सारांश

श्लोक—दाता प्रभु को छोड़कर, हे जीव ! तू अन्य झूठे स्वादों में जाकर क्यों आसक्त हुआ है ? याद रखे नाम के बिना तू यहाँ से प्रतिष्ठा गँवा कर जाएगा ॥५॥

अष्टपदी—भला क्यों, हे मन ! तू दस वस्तुएँ प्राप्त करके ग्यारहवीं वस्तु के न मिलने पर उस प्रभु से विश्वास गँवाता है ? सभी वस्तुएँ तुम्हारे पास 'उसकी' धरोहर है, इसलिए 'उसकी' दी हुई वस्तुओं को वापस लौटाने में तुम्हें विरोध नहीं करना चाहिए। अतः इस प्रकार अपना विश्वास भी नहीं गँवाना चाहिए। वह' दाता प्रभु अगणित पूँजी का स्वामी है 'वह' सच्चा साहब सदा दयालु है। यदि 'उसकी' आज्ञा को तू संहर्ष स्वीकार करेगा तो 'वह' तुझे चौगुना कृतार्थ करेगा। इस जगत में हरि परमात्मा के बिना, हे प्राणी ! कोई भी काम नही आता। सारा कुटुम्ब, यौवन, राज्य, धन, हाथी, वस्त्र, रूप-रंग, कामादि विकार, निन्दादि सब मिथ्या (विनश्वर) हैं। ज्ञान व कर्म इन्द्रियां सब व्यर्थ हैं यदि बुराई की ओर तत्पर रहती हैं। हे मन ! तू वृक्ष की छाया से मोह न कर। इसी माया मोह में हरि के चरणों को ढूंढ और श्रेष्ठ पुरुषो की शरण आकर प्रेम-भक्ति द्वारा 'उसके' पवित्र नाम का जाप कर। धनाढ्य व धन्यवाद के पात्र वे हैं जिनके अन्तर्गत परब्रह्म का नाम बसता है। केवल महापुरुषों की शिक्षा से संसार का उद्धार होता है और न उनकी शिक्षा से जो कहते कुछ औरहैं और करते कुछ और हैं—'अवर उपदेसै आपि न करै।' अतएव तू बार-बार यह प्रार्थना कर कि हे प्रभु ! तू सर्व व्यापक है, तू ही सब कुछ है। मुझे तुझ सत्य स्वरूप प्रभु की ही कृपा-द्रष्टि चाहिए ॥५॥

सलोकु ॥

काम क्रोध अरु लोभ मोह
बिनसि जाइ अहंमेव ॥
नानक प्रभ सरणागती
करि प्रसादु गुरदेव ॥१॥

"हे प्रभु ! मुझे विकारो से बचाओ।"

हे गुरुदेव ! (मेरे ऊपर) कृपा कर। (मैं) काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार से (दुःखी होकर आपकी) शरण में आया हूँ। हे प्रभु ! (ये विकार) नाश हो जायें, कहते हैं (बाबा) नानक (साहब) ॥१॥

असटपदी ॥

जिह प्रसादि छतीह अंम्रित खाहि ॥
तिसु ठाकुर कउ रखु मन माहि ॥
जिह प्रसादि सुगंधत तनि लावहि ॥
तिसकउ सिमरतपरमगति पावहि ॥
जिह प्रसादि बसहि सुख मंदरि ॥
तिसहि धिआइ सदा मन अंदरि ॥
जिह प्रसादि ग्रिह संगि सुख बसना ॥
आठ पहर सिमरहु तिसु रसना ॥
जिह प्रसादि रंग रस भोग ॥
नानकसदाधिआइऐधिआवनजोग ॥
१॥

"दाता प्रभु को श्वास-प्रश्वास याद करो।"

(हे भाई !) जिस परमेश्वर की कृपा से तू छत्तीस प्रकार के (रसीले) भोजन खाता है, 'उस' ठाकुर को अपने मन में रख। जिसकी कृपा से तू अपने शरीर पर सुगन्धियाँ लगाता है, 'उस' का स्मरण करने से परम गति (मुक्ति) प्राप्त होती है। जिसकी कृपा से (आराम वाले) घर में तू सुख पूर्वक निवास करता है, 'उसका' (हे भाई !) सदैव तू अपने मन में ध्यान कर।

जिसकी कृपा से (हे भाई !) तू अपने गृह के वासियों सहित सुख से बसता है, 'उसका तू आठ ही प्रहर रसना से स्मरण कर। जिसकी कृपा से (हे भाई !) तू (सांसारिक) खुशियाँ, रस और भोग भोगता है,

हे नानक ! 'उस' ध्यान करने योग्य (ध्येय) परमेश्वर का तू (सदैव) ध्यान कर॥१॥

जिह प्रसादि पाट पटंबर हढावहि ॥
तिसहितिआगिकतअवरलुभावहि ।।
जिस प्रसादि सुखि सेज सोईजै ॥
मन आठपहर ताकाजसुगावीजै ॥
जिह प्रसादि तुझु सभु कोऊ मानै ॥
मुखि ता को जसु रसन बखानै ॥
जिह प्रसादि तेरो रहता धरमु ॥
मन सदा धिआइ केवलपारब्रहमु ॥
प्रभजी जपत दरगह मानु पावहि ॥
नानक पति सेती घरिजावहि ॥२॥

(हे भाई !) जिस परमेश्वर की कृपा से तू रेशम और रेशमी वस्त्र पहनता है, 'उसको' छोड़कर किस लिए तू औरों में लुभायमान होता है ? जिसकी कृपा से तू शय्या पर सुख से सो जाता है,

हे मन ! (तुम्हे चाहिए कि) आठ ही पहर 'उसका' यश गायन करो। जिसकी कृपा से सब कोई तुम्हारा सम्मान करता है, (तुम्हे चाहिए कि) मुख द्वारा जिह्वा से तू 'उसका' यश उच्चारण करो। जिसकी कृपा से तुम्हारे धर्म (नियम या प्रतिज्ञा) का निर्वाह होता है,

हे मन ! (तुम्हें चाहिए कि) केवल 'उस' परब्रह्म का तू सदा ध्यान करे (याद करे)। 'उस' प्रभु जी के दरबार में तू सम्मान प्राप्त करेगा और हे नानक ! तू अपने घर अर्थात निज स्वरूप (महल) में भी प्रतिष्ठा सहित जायेगा ॥२॥

जिह प्रसादि अरोग कंचन देही ॥
लिव लावहु तिसु राम सनेही ॥
जिह प्रसादि तेरा ओला रहत ॥
मन सुखुपावहि हरिहरि जसुकहत ॥
जिह प्रसादि तेरे सगलछिद्र ढाके ॥
मन सरनी परु ठाकुर प्रभ ताकै ॥
जिह प्रसादि तुझु को न पहूचै ॥
मन सासिसासि सिमरहु प्रभऊचे ॥
जिह प्रसादि पाई दुर्लभ देह ॥
नानक ता की भगति करेह ॥३॥

जिसकी कृपा से तुम्हे स्वर्ण जैसे (सुन्दर) अरोग्य देही मिली है, (तुम्हे चाहिए कि) 'उस' प्रिय राम के साथ लौ लगाओ। (फिर देखो) जिसकी कृपा से (भूल-चूक करने पर भी) तुम्हारा पर्दा ढका रहता है, 'उस' हरि का यश उच्चारण करने से, हे मन ! तू सुख प्राप्त करेगा।

जिसकी कृपा से तुम्हारे सभी दोष (ऐब) ढके रहते हैं, 'उस' (ढकने वाले) ठाकुर प्रभु की, हे मन ! जाकर शरण पड़। जिसकी कृपा से तुम्हारे तुल्य कोई भी पहुँच नही सकता (बराबरी नहीं कर सकता),

'उस' ऊँचे प्रभु का हे मन ! तू श्वास-प्रश्वास स्मरण कर। जिसकी कृपा से तुमने यह दुर्लभ (मनुष्य) देही प्राप्त की है, 'उसकी' हे नानक ! तू (सदैव) भक्ति कर ॥३॥

जिह प्रसादि आभूखन पहिरीजै ॥
मन तिसु सिमरत किउ आलसु कीजै ॥
जिहप्रसादि अस्व हसति असवारी ॥
मन तिसु प्रभ कउ कबहू न बिसारी ॥
जिह प्रसादि बाग मिलख धना ॥
राखु परोइ प्रभु अपुने मना ॥
जिनि तेरी मन बनत बनाई ॥
ऊठत बैठत सद तिसहि धिआई ॥
तिसहि धिआइ जो एकु अलखै ॥
ईहा ऊहा नानक तेरी रखै ॥४॥

जिसकी कृपा से (हे भाई !) तू आभूषण पहनता है, 'उसके' स्मरण करने से, हे मन ! तू क्यों आलस्य करता है। जिसकी कृपा से तुम्हें घोड़ों और हाथियों की सवारी मिलती है 'उस' प्रभु को, हे मन ! तू कभी भी न भूलना।

जिसकी कृपा से बाग (बगीचों) और भूमियों से तुम्हें प्रभुत्व और धन प्राप्त होता है, उस' प्रभु को, हे मन ! अपने मन में पिरो कर रख। जिसने हे मन ! तेरी (सारी) साजना साजी (सृजन की) है, 'उस' प्रभु का उठते, बैठते, (हाँ) सदैव ध्यान कर।

'उस' एक परमात्मा का ही ध्यान कर, जो अलक्ष्य है। हे नानक ! (याद रहे) 'वही' तुम्हारी यहाँ-वहाँ भाव, इस लोक व परलोक में (सर्वत्र) रक्षा करेगा ॥४॥

जिह प्रसादि करहि पुंन बहु दान ॥
मन आठ पहर करि तिसका धिआन ॥
जिह प्रसादि तू आचार बिउहारी ॥
तिसु प्रभ कउ सासि सासि चितारी ॥
जिह प्रसादि तेरा सुन्दर रूपु ॥
सो प्रभु सिमिरहु सदा अनूप ॥
जिह प्रसादि तेरी नीकी जाति ॥
सो प्रभु सिमिरि सदा दिन राति ॥
जिह प्रसादि तेरी पति रहै ॥
गुर प्रसादि नानक जसु कहै ॥५॥

जिसकी कृपा से (हे जीव !) तू बहुत पुण्य और दान करता है, 'उसका' हे मन ! तू आठ ही प्रहर ध्यान कर। जिसकी कृपा से (हे इन्सान !) तू (धर्म और संसार के कर्तव्यों की पालना) आचार-व्यवहार करता है, 'उस' प्रभु को श्वास-प्रश्वास तू याद कर। जिसकी कृपा से (हे इन्सान !) तुम्हारा सुन्दर रूप है, 'उस' अनुपम प्रभु का तू सदैव स्मरण कर।

जिसकी कृपा से तुम्हारी सुन्दर जाति है, 'उस' प्रभु का तू दिन रात (हाँ) सदैव स्मरण कर। जिसकी कृपा से (हे भाई !) तेरी (संसार में) इज्जत रहती आ रही है, 'उसका' यश मैं गुरु की कृपा से उच्चारण करता हूँ कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब) ॥५॥

जिह प्रसादि सुनहि करन नाद ॥
जिह प्रसादि पेखहि बिसमाद ॥

जिसकी कृपा से तू कानों द्वारा नाद (रागादि) सुनता है; जिसकी कृपा से (हे जीव !) (प्रभु के) विस्मय (अद्भुत कौतुक देखता है।

जिह प्रसादि बोलहि अंम्रित रसना ॥
जिह प्रसादि सुखि सहजे बसना ॥
जिह प्रसादि हसत कर चलहि ॥
जिह प्रसादि संपूरन फलहि ॥
जिह प्रसादि परम गति पावहि ॥
जिहप्रसादि सुखि सहजिसमावहि ॥
ऐसाप्रभु तिआगि अवरकतलागहु ॥
गुर प्रसादि नानक मनि जागहु ॥६॥

जिसकी कृपा से (हे जीव !) तू रसना से अमृत (वाणी अर्थात् नाम) बोलता है; जिसकी कृपा से (हे जीव !) तू आनन्द से सहजा-वस्था में बसता है, जिसकी कृपा से (हे जीव !) तुम्हारे हाथ और पैर चलते हैं; जिसकी कृपा से (प्रत्येक जीव का जीवन) पूर्णरूप से फलीभूत होता है अथवा (जीव) फलता-फूलता है; जिसकी कृपा से (हे जीव !) तू उत्तम में उत्तम गति (अर्थात मुक्ति) प्राप्त करता है; जिसकी कृपा से (हे जीव!) तू सुखपूर्वक सहज (अर्थात प्रभु) में समा जाता है अथवा परम शांति एवं सहजावस्था के सुख में समा जाता है।

ऐसा प्रभु त्याग कर के (हे जीव !) तू कहाँ और किस ओर लग रहा है ! (हे भाई !) गुरु की प्रसन्नता से हे नानक ! मन से जागो (अर्थात माया के प्रति सदा सावधान और सचेत रहो) ॥६॥

जिह प्रसादि तू प्रगटु संसारि ॥
तिसु प्रभकउ मूलि नमनहु बिसारि ॥
जिह प्रसादि तेरा परतापु ॥
रे मन मूढ़ तू ता कउ जापु ॥
जिह प्रसादि तेरे कारज पूरे ॥
तिसहि जानु मन सदा हजूरे ॥
जिह प्रसादि तू पावहि साचु ॥
रे मन मेरे तू ता सिउ राचु ॥
जिह प्रसादि सभ की गति होइ ॥
नानक जापु जपै जपु सोइ ॥७॥

जिसकी कृपा से (हे जीव !) तू संसार में प्रसिद्ध (जाहिर) है, 'उस' प्रभु को अपने मन से कदाचित विस्मृत न कर। जिसकी कृपा से (हे भाई !) तुम्हारा इतना प्रताप हुआ है, 'उस' (प्रभु) का हे मूढ़ मन ! तू (सदैव) जाप कर। जिसकी कृपा से तुम्हारे (सभी) कार्य पूर्ण होते हैं, 'उसको' हे मन ! तू सदैव प्रत्यक्ष जान (समझ)। जिसकी कृपा से तू सत्य को प्राप्त कर सकता है, 'उससे' हे मेरे मन ! तू तन्मय हो। जिसकी कृपा से सभी की गति (मुक्ति) होती है, 'उसके' जप का जाप हे नानक ! तू जप अथवा (बाबा) नानक 'उसका' जाप जपता है, (जिसकी कृपा अनन्त है), तू भी 'उसको' जप ॥७॥

आपि जपाए जपै सो नाउ ॥
आपि गावाए सु हरिगुन गाउ ॥
प्रभ किरपा ते होइ प्रगासु ॥
प्रभू दइआ ते कमल बिगासु ॥

(किन्तु याद रहे) जिसको (प्रभु) स्वयं जपाता है, वही (कलियुग में) नाम जपता है। जिससे 'वह' स्वयं गायन कराता है, वही हरि के गुण गाता है। प्रभु की कृपा से ही (इस जीव के अन्दर ज्ञान का) प्रकाश होता है। प्रभु की दया से ही (इस जीव का) हृदय रूपी कमल विकसित होता है।

प्रभ सुप्रसंन बसै मनि सोइ ॥
प्रभ दइआ ते मति ऊतम होइ ॥
सरब निधान प्रभ तेरी मइआ ॥
आपहु कछू न किनहू लइआ ॥
जितुजितुलावहुतितुलगहिहरिनाथ॥
नानक इनकै कछू न हाथ ॥८॥६॥

(जब) प्रभु अत्यन्त प्रसन्न होता है, तब उस (भक्त) के मन में आकर बसता है। प्रभु की दया से ही मत्ति उत्तम होती है। हे प्रभु ! तुम्हारी कृपा से ही सब खजाने प्राप्त होते हैं।

(हाँ इतना अवश्य है कि किसी ने)अपने उद्यम से कुछ भी नहीं प्राप्त किया है। हे हरि ! हे (सृष्टि के) स्वामी ! जहाँ-जहाँ तुम लगाते हो, वहाँ-वहाँ (जीव) लगते हैं। हे नानक ! इन जीवों के अपने हाथ में कुछ भी नही है ॥८॥६॥

श्लोक एवं अष्टपदी (६) का सारांश

श्लोक—गुरु की प्रसन्नता से, हे जीव ! तू प्रभु की शरण ग्रहण कर तो काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार ये पाँच विकार तुम्हारे जीवन से नाश हो जाएगे ॥६॥

अष्टपदी—तू एक प्रभु की शरण ग्रहण करके हे मूढ मन ! दिन-रात, ऊठते-बैठते, श्वास-प्रश्वास 'उसका' स्मरण कर; 'उसका' यश गा; 'उसका' जाप कर; 'उसका' ध्यान कर; 'उसके' साथ स्नेह लगा और 'उसी' की भक्ति कर जिसके प्रसाद (कृपा) से यह सकल संसार प्रकट हुआ है, मन की बणत बनी है, सुन्दर रूप देखने को मिलते हैं, अमृत बोल बोलते हैं, सुन्दर शब्द सुनते हैं, हाथ-पाँव हिलते हैं, सुगंधित पदार्थ लगाते हैं, सुन्दर आभूषण पहनते हैं, शय्या पर सुख से सोते हैं। घर मे सुख से बसते हैं एवं बाग, धन, रग, रस, प्रताप, मान आदि का अनुभव करते हैं, दानादि पुण्य कर्म करते हैं और मन-प्रतिष्ठा प्राप्त होती है तथा धर्म का अनुसरण करके परमगत्ति प्राप्त करते हैं। याद रहे, प्रभु जैसा अन्य कोई भी नही है। तुम्हारे अन्तर्गत काश ! 'उसका' प्रकाश हो, 'उसकी' दया दृष्टि तुम्हारे हृदय को कमलवत् विकसित करे, (हाँ) 'उसकी' कृपा-दृष्टि तुम्हें सर्वनिधान भावः नाम प्रदान करे ॥६॥

सलोकु ॥

'परमात्मा और सन्त की स्तुति।"

अगम अगाधि पारब्रहमु सोइ ॥
जो जो कहै सु मुकता होइ ॥
सुनि मीता नानकु बिनवंता ॥
साध जना की अचरज कथा ॥१॥

'वह' परब्रह्म मन वाणी की पहुँच से परे और अथाह है। जो-जो ऐसे (अगम्य अगाध परब्रह्म के सम्बन्ध में)कहता है, वह(वह) मुक्त हो जाता है। रे (मेरे) मित्र ! सुन। (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक प्रार्थना करता है कि साधुजनो की आश्चर्यमय (विस्मय) कथा (महिमा) को सुनो ॥१॥

असटपदी ॥

"साधु संगति की महिमा ।"

साध कै संगि मुख ऊजल होत ॥
साध संगि मलु सगली खोत ॥
साध कै संगि मिटै अभिमानु ॥
साध कै संगि प्रगटै सुगिआनु ॥
साध कै संगि बुझै प्रभु नेरा ॥
साध संगि सभु होत निबेरा ॥
साध कै संगि पाए नाम रतनु ॥
साध कै संगि एक ऊपरि जतनु ॥
साध कीमहिमा बरनै कउनु प्रानी ॥
नानक साध की सोभा प्रभ
माहि समानी ॥१॥

साधु संगति में मुख उज्ज्वल (पवित्र) होता है। साधु संगति में सब मलिनता निवृत हो जाती है। साधु संगति में अभिमान मिट जाता है। साधु संगति में श्रेष्ठ ज्ञान (मन में) प्रकट होता है।साधु संगति में प्रभु जो निकट है यह समझ आ जाती है। साधु की संगति मे (जन्म-जन्मान्तरों के) सभी (कर्मों) का फैसला हो जाता है (किन्तु यह सब प्राप्ति नाम से ही होती है)। साधु की संगति में ही नाम रूपी रत्न प्राप्त होता है। साधु की संगति में जीव के (सभी) यत्न 'उस' एक (प्रभु-प्राप्ति) के लिए हो जाते हैं। साधु की महिमा कौन (प्राणी) वर्णन कर सकता है? हे नानक! साधु की शोभा स्वयं प्रभु की शोभा में ही समाई हुई हैं (अर्थात् साधु की शोभा ऐसी है जैसी प्रभु की)॥१॥

साध कै संगि अगोचरु मिलै ॥
साध कै संगि सदा परफुलै ॥
साध कै संगि आवहि बसि पचा ॥
साध संगि अंमृत रसु भुंचा ॥
साध संगि होइ सभ की रेन ॥
साध कै संगि मनोहर बैन ॥
साध कै संगि न कतहूं धावै ॥
साध संगि असथिति मनु पावै ॥
साध कै संगि माइआ ते भिंन ॥
साध संगि नानक प्रभ सुप्रसंन ॥२॥

साधु संगति में 'वह' (अगोचर) जिसका ज्ञान इन्द्रियों से न हो सके मिल जाता है। साधु संगति में जीव प्रफुल्लित होता है। साधु संगति में पाँचों ही विकार वश मे आ जाते हैं। साधु संगति में जीव (नाम) अमृत रस का रसास्वादन करता है। साधु संगति में जीव सभी की धूलि हो जाता है। साधु की संगति में जीव सुन्दर वचन अथवा मन को हरने वाले वचन बोलता है। साधु संगति में (मन) कहीं भी नही भटकता। साधु संगति मे मन स्थिति (एकाग्रता) प्राप्त करता है। साधु संगति में (जीव) माया से निर्लेप रहता है। साधु संगति में, हे नानक! मेरा प्रभु अत्यन्त प्रसन्न होता है॥२॥

साध संगि दुसमन सभि मीत ॥
साधू कै संगि महा पुनीत ॥

साधु संगति मे सभी दुश्मन मित्र (दिखाई देने लगते) हैं। साधु संगति में यह जीव महा पवित्र हो जाता है। साधु

साध संगि किस सिउ नाही बैरु ॥
साध कै संगि न बीगा पैरु ॥
साध कै संगि नाही को मंदा ॥
साध संगि जाने परमानंदा ॥
साध कै संगि नाही हउ तापु ॥
साध कै संगि तजै सभु आपु ॥
आपे जानै साध बडाई ॥
नानक साध प्रभू बनि आई ॥३॥

संगति मे (जीव का) किसी से भी बैर नही (रहता)। साधु संगति में टेढ़ा पैर (अर्थात् कुमार्ग पर) नहीं चलता। साधु संगति में (यह जीव) किसी को भी बुरा नही समझता। साधु संगति में (जीव) परमानन्द को जान लेता है। साधु सगति में (इस जीव के मन) मे अहकार का ताप (गर्मी) अथवा बुखार नही रहता। साधु सगति मे (जीव) तमाम अहम्भाव को त्याग देता है। (प्रभु) स्वय ही साधु की बडाई (महिमा) जानता है। हे नानक! साधु की प्रभु से बन आई है (अर्थात् साधु और प्रभु का प्रेम परस्पर बन आता है ॥३॥

साध कै संगि न कबहू धावै ॥
साध कै संगि सदा सुखु पावै ॥
साध संगि बसतु अगोचर लहै ॥
साधू कै संगि अजरु सहै ॥
साध कै संगि बसै थानि ऊचै ॥
साधू कै संगि महलि पहूचै ॥
साध कै संगि द्रिड़ै सभि धरम ॥
साध कै संगि केवल पारब्रहम ॥
साध कै संगि पाए नाम निधान ॥
नानक साधू कै कुरबान ॥४॥

साधु सगति में (जीव) अथवा मन कभी नही भटकता। साधु सगति मे (जीव) सदैव सुख प्राप्त करता है। साधु संगति में (जीव) वह वस्तु प्राप्त करता है, जो इन्द्रियो की पहुँच से परे है (भाव आत्म वस्तु)। साधु सगति में (जीव) वह दशा सहारन करता है जो सहन नही की जा सकती। (आत्मिक शक्ति की ओर सकेत)। साधु सगति मे (यह जीव) ऊँचे स्थान पर बसता है। साधु सगति मे (यह जीव) परमेश्वर के महल तक पहुँच जाता है (अर्थात् सहजावस्था मे बसकर परमेश्वर के स्वरूप को प्राप्त करता है)। साधु सगति में (यह जीव) सभी धर्मों के तत्व (अर्थात् भक्ति) मे दृढ रहता है। साधु सगति मे (इस जीव के लिए) केवल (एक) परब्रह्म के बिना (दूसरा कोई) है ही नही। साधु संगति में (यह जीव) नाम का खजाना पाता है। हे नानक! इसलिए मैं साधु के ऊपर कुर्बान जाता हूँ ॥४॥

साध कै संगि सभ कुल उधारै ॥
साध संगि साजन मीत कुटंब निसतारै ॥
साधू कै संगि सो धनु पावै ॥
जिसु धन ते सभु को वरसावै ॥
साध संगि धरम राइ करे सेवा ॥
साध कै संगि सोभा सुरदेवा ॥
साधू कै संगि पाप पलाइन ॥
साध संगि अंम्रित गुन गाइन ॥

साधु सगति मे (यह जीव) सारे कुलो का उद्धार कर देता है। साधु सगति मे (यह जीव) अपने सज्जनो, मित्रो और कुटुम्ब को (ससार सागर से) पार कर देता है। साधु की संगति मे (यह जीव) वह धन प्राप्त करता है, जिस धन से सब कोई लाभ उठाता है। साधु सगति मे (स्वयं) धर्म राजा भी (इस जीव की) सेवा (आकर) करता है। साधु सगति में (इस जीव की) शोभा (स्वय) देव-देवताएँ भी करते हैं।

साधु सगति मे पाप दूर हो जाते हैं। साधु संगति में (यह जीव परमेश्वर के) अमृतमय गुण गाता है। साधु संगति में (इस

साध कै संगि सभ थान गंमि ॥
नानक साधकै संगि सफलजनम ॥५॥

जीव की) सभी (आध्यात्मिक) अवस्थाओं तक पहुँच हो जाती है। हे नानक ! साधु संगति में (यह मनुष्य) जन्म सफल हो जाता है ॥५॥

साध कै संगि नही कछु घाल ॥
दरसनु भेटत होत निहाल ॥
साध कै संगि कलूखत हरै ॥
साध कै संगि नरक परहरै ॥
साध कै संगि ईहा ऊहा सुहेला ॥
साध संगि बिछुरत हर मेला ।
जो इछै सोई फलु पावै ॥
साध कै संगि न बिरथा जावै ॥
पारब्रहमु साध रिद बसै ॥
नानक उधरै साध सुनि रसै ॥६॥

साधु संगति में इस जीव को (प्राप्ति के लिए) कोई (कठिन) परिश्रम नहीं करना पड़ता। वहाँ तो केवल दर्शन करते ही कृतार्थ हो जाता है। साधु संगति में पापों की मैल नाश हो जाती है। साधु संगति मे (यह जीव) नर्क को भी दूर कर देता है। साधु संगति में यहाँ (इस लोक में) और वहाँ (परलोक में) सुखी हो जाता है। साधु संगति में यह बिछुड़ा हुआ जीव (दोबारा) हरि को मिल जाता है। (साधु संगति में यह जीव) जो भी इच्छा करता है, वह फल पाता है। साधु संगति में (कोई भी) जीव खाली नही जाता। परब्रह्म परमात्मा साधु के हृदय में बसता है। हे नानक ! (जीव) साधु के (वचन) सुनकर रसयुक्त हो जाता है और उसका उद्धार हो जाता है अथवा साधु की रसना से उपदेश सुनने (वाला जीव ससार-समुद्र से) बच जाता है ॥६॥

साध कै संगि सुनउ हरि नाउ ॥
साध संगि हरि के गुन गाउ ॥
साध कै संगि न मन ते बिसरै ॥
साध संगि सरपर निसतरै ॥
साध संगि लगै प्रभु मीठा ॥
साधू कै संगि घटि घटि डीठा ॥
साध संगि भए आगिआकारी ॥
साध संगि गति भई हमारी ॥
साध कै संगि मिटे सभि रोग ॥
नानक साध भेटे संजोग ॥७॥

साधु संगति में (मैं भी) हरि का नाम सुनता हूँ। साधु संगति में (मैं भी) हरि के गुन गाता हूँ। साधु संगति मे (हरि) (मेरे) मन से नहीं भूलता। साधु संगति में अवश्य ही (संसार-सागर से) (जीव) तर जाता है। साधु सगति में प्रभु (मुझे) मीठा लगता है।

साधु संगति में (मैंने प्रभु को) घट-घट में (प्रत्येक शरीर में) देखा है। साधु सगति में (मैं ईश्वर की) आज्ञा को मानने वाला हो गया हूँ। साधु संगति में (मेरी) गति (मुक्ति) हुई। साधु संगति में सारे रोग मिट गए। हे नानक ! सौभाग्य से मुझे साधु मिला (अर्थात् मस्तक में यदि श्रेष्ठ लेख लिखा हो तो ही जीव साधु प्राप्त करके उसके वचनों की कमाई करके अपना जीवन सफल करता है) ॥७॥

साध की महिमा बेद न जानहि ॥
जेता सुनहि तेता बखिआनहि ॥

साधु की महिमा वेद भी नहीं जानते हैं। वे जितना सुनते हैं, उतना ही कथन करते हैं (पूर्ण रूप से वर्णन नहीं कर सकते क्योंकि

साध की उपमा तिहु गुण ते दूरि ॥
साध की उपमा रही भरपूरि ॥
साध की सोभा का नाहीं अंत ॥
साध की सोभा सदा बेअंत ॥
साध की सोभा ऊच ते ऊची ॥
साध की सोभा मूच ते मूची ॥
साध की सोभा साध बनि आई ॥
नानकसाधप्रभ भेदु न भाई ॥८॥७॥

ये भी तीनों गुणों के भीतर ही रहते हैं)किन्तु साधु की उपमा त्रिगुणातीत-चतुर्थ अवस्था (तुरीयावस्था) वाली है। साधु की उपमा तो (सर्वत्र) प्रकट हो ही रही है अथवा (समस्त सृष्टि में) परिपूर्ण है। साधु की शोभा का अन्त नहीं है। साधु की शोभा सदा (सर्वदा) अनन्त है। साधु की शोभा ऊँच से ऊची (सर्वोच्च) है। साधु की शोभा अधिक से अधिक है। साधु की शोभा साधु को ही बनती है (अर्थात् सभी साधु एक सी शोभा वाले हैं)। कहते हैं (बाबा) नानक, हे भाई! साधु और प्रभु में कोई अन्तर नही है ॥८॥॥७॥ यथा रविदास भणै जो जाणै सो जाणु ॥
संत अनतहि अतरु नाही ॥ (भक्त रविदास, आसा पृ० ४८६)

श्लोक एवं अष्टपदी (७) का सारांश

श्लोक—जो भी जीव मेरे अगम्य, अगाध, परब्रह्म प्रभु का नाम उच्चारण करते हैं, मेरे गुरुदेव उनको साधु कहते हैं और केवल नाम जपने वाले साधु ही जीवन-मुक्त होते हैं। इसलिए उनकी शोभा आश्चर्यमय होती है ॥७॥

अष्टपदी—श्रेष्ठ और निर्मल पुरुषो की सगति कर, हे मित्र! तू भी उनकी सगति से श्रेष्ठ और पवित्र बनेगा, पाँच शत्रु—काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहकार तुम्हारे वशीभूत हो जाएगे, दु ख कष्टादि सहारन कर पाओगे, (हाँ) तुम्हारा पैर बुराई की ओर नही जाएगे, पाप नही करोगे, अपने कर्त्तव्यों की पालना करोगे, सर्व की धूलि बनकर तुम्हारा मन स्थिर होगा, शरीर आरोग्य होगा, जिह्वा मनोहर होगी, अहम्भाव की अग्नि बुझाकर 'मैं' 'मैं' की जगह 'तू' 'तू' कहोगे, और आज्ञाकारी बनकर प्रभु के निकट आकर वह धन प्राप्त करोगे जो तुम्हारा जन्म सफल करेगा। इस प्रकार ससार का भी भला करोगे। साधुजनों की सगति से नाम प्राप्त होता है, प्रभु प्रसन्न होता है फिर प्रभु कदाचित विस्मृत नही होता तथा 'उसका' आदेश सदैव मीठा लगता है। ऐसी संगति में मुख उज्ज्वल होता है. अमृत रस की अनुभूति होती है। यह लोक और परलोक सुखद होता है और बिछुड़ी हुई जीवात्मा का पुन मिलन होता है। अतएव हे मित्र! साधुजनों की संगति प्राप्त करके प्रभु की प्रीति द्वारा 'उसको' सुन कर, गा कर तथा माया के तीनो गुणों से परे हट कर सर्वोत्तम पदवी — नाम की प्राप्त कर।

सलोकु ॥

"ब्रह्मज्ञानी के लक्षण।"

मनि साचा मुखि साचा सोइ ॥
अवरु न पेखै एकस बिनु कोइ ॥
नानकइहलछणब्रहमगिआनीहोइ॥१॥

मन में हो सत्य स्वरूप परमात्मा, मुख मे भी हो 'वह' सत्य स्वरूप ईश्वर और 'उस' एक (परमात्मा) के बिना वह अन्य किसी को भी नही देखता हो। हे नानक! ब्रह्मज्ञानी के ये हैं लक्षण ॥१॥
यथा : "नानक का पातिसाहु दिसै जाहरा।"

असटपदी ॥

ब्रहमगिआनी सदा निरलेप ॥
जैसे जल महि कमल अलेप ॥
ब्रहमगिआनी सदा निरदोख ॥
जैसे सूरु सरब कउ सोख ॥
ब्रहमगिआनी कै द्रिसटि समानि ॥
जैसे राजरंक कउ लागै तुलिपवान ॥
ब्रहमगिआनी कै धीरजु एक ॥
जिउबसुधाकोऊखोदैकोऊचंदनलेप ॥
ब्रहमगिआनी का इहै गुनाउ ॥
नानक जिउ पावक का सहज
सुभाउ ॥१॥

"ब्रह्मज्ञानी की महिमा।"

ब्रह्मज्ञानी सदा निर्लेप है (अर्थात् ससार में रहता हुआ भी माया से असग है) जैसे कमल (फूल) जल से निर्लिप्त रहता है। ब्रह्मज्ञानी सदा निर्दोष है, जैसे सूर्य सब (सुगन्धित अथवा दुर्गन्धित पदार्थों को) एक जैसा सुखाता है (किन्तु स्वय उनसे निर्लेप रहता है)। ब्रह्मानी की दृष्टि एक जैसी है, जैसे राजा और प्रजा पर हवा एक जैसी लगती है। ब्रह्मज्ञानी धैर्य मे दृढ़ रहता है, जैसे पृथ्वी को कोई खोदता है और कोई चन्दन लेप करता है, (किन्तु उसका वर्ताव दोनों से एक जैसा है)। ब्रह्मज्ञानी का यह गुण है, जैसे हे नानक! अग्नि का सहज स्वभाव है। (अग्नि का प्राकृतिक स्वभाव यह है कि वह एक जैसी आँच देती है एव जग को दूर करती है। किन्तु स्वय आग के प्रभाव से दूर रहती है) ॥१॥

ब्रहमगिआनी निरमल ते निरमला ॥
जैसे मैलु न लागै जला ॥
ब्रहमगिआनी कै मनि होइ प्रगासु ॥
जैसे धरि ऊपरि आकासु ॥
ब्रहमगिआनी कै मित्र सत्रु समानि ॥
ब्रहमगिआनी कै नाही अभिमान ॥
ब्रहमगिआनी ऊच ते ऊचा ॥
मनि अपनै है सब ते नीचा ॥
ब्रहमगिआनी से जन भए ॥
नानक जिन प्रभु आपि करेइ ॥२॥

ब्रह्मज्ञानी निर्मल मे निर्मल होता है, जैसे जल को मैल नही लगती (रसायण विद्या बताती है कि जल मे मैल लटकती है जल को मैला नही करती, जल स्वय जल ही रहता है)। ब्रह्मज्ञानी के मन मे (ज्ञान का) प्रकाश होता है, जैसे पृथ्वी आकाश सर्वत्र व्यापक हो रहा है। ब्रह्मज्ञानी को मित्र शत्रु एक सम्मान हैं। ब्रह्मज्ञानी को (ब्रह्मज्ञान होने का) अभिमान नही है। ब्रह्मज्ञानी ऊँचो से भी ऊँचा (सर्वोच्च) है, किन्तु मन से वह (सदा) सबसे नीचा (होकर) रहता है। ब्रह्मज्ञानी वे दास बनते हैं, जिनको, हे नानक! प्रभु स्वयं (ब्रह्मज्ञानी) बनाता है ॥२॥

ब्रहमगिआनी सगल की रीना ॥
आतम रसु ब्रहमगिआनी चीना ॥
ब्रहमगिआनी की सभ ऊपरि मइआ ॥
ब्रहमगिआनीते कछु बुरा न भइआ ॥
ब्रहमगिआनी सदा समदरसी ॥
ब्रहमगिआनीकीद्रिसटि अंम्रितुबरसी ॥
ब्रहमगिआनी बंधन ते मुकता ॥
ब्रहमगिआनी की निरमल जुगता ॥
ब्रहमगिआनी का भोजनु गिआनु ॥
नानक ब्रहमगिआनी का
ब्रहम धिआनु ॥३॥

ब्रह्मज्ञानी सब (के चरणों) की धूलि होकर रहता है। उस ब्रह्मज्ञानी ने आत्म रस का अनुभव किया है। ब्रह्मज्ञानी की सब पर कृपा ही कृपा होती है, इसलिए ब्रह्मज्ञानी से कुछ भी (किसी के लिए) बुरा नहीं होता। ब्रह्मज्ञानी सदा समदर्शी (अर्थात् सब को एक जैसा देखने वाला) है। ब्रह्मज्ञानी की दृष्टि से (सब पर) अमृत की वर्षा होती है। ब्रह्मज्ञानी (सभी) बन्धनों से मुक्त होता है और ब्रह्मज्ञानी की (जीवन) युक्ति निर्मल होती है। ब्रह्मज्ञानी का भोजन ज्ञान होता है।

हे नानक ! ब्रह्मज्ञानी का ध्यान ब्रह्म में ही होता है (अर्थात् ब्रह्मज्ञानी की सुरति ब्रह्म में ही जुड़ी रहती है) ॥३॥

ब्रहमगिआनी एक ऊपरि आस ॥
ब्रहमगिआनी का नही बिनास ॥
ब्रहमगिआनी कै गरीबी समाहा ॥
ब्रहमगिआनी परउपकार उमाहा ॥
ब्रहमगिआनी कै नाही धंधा ॥
ब्रहमगिआनी ले धावतु बंधा ॥
ब्रहमगिआनी कै होइ सु भला ॥
ब्रहमगिआनी सुफल फला ॥
ब्रहमगिआनी संगि सगल उधारु ॥
नानक ब्रहमगिआनी जपै सगल
संसारु ॥४॥

ब्रह्मज्ञानी एक परमात्मा पर आस रखता है। ब्रह्मज्ञानी का (कभी भी) विनाश नहीं होता। ब्रह्मज्ञानी (के हृदय) में गरीबी का भाव समाया रहता है। ब्रह्मज्ञानी में परोपकार का उत्साह रहता है। ब्रह्मज्ञानी को कोई भी सांसारिक धन्धा नहीं है (अर्थात् वह कोई भी काम झंझाल समझ कर नहीं करता)। ब्रह्मज्ञानी दौड़ते हुए मन को बांध लेता है। ब्रह्मज्ञानी से जो होता है, वह भला (श्रेष्ठ) ही होता है। ब्रह्मज्ञानी अच्छी तरह से फलता-फूलता है। ब्रह्मज्ञानी की संगति में सबका उद्धार होता है। हे नानक ! ब्रह्मज्ञानी को संसार जपता (पूजता) है अथवा ब्रह्मज्ञानी के द्वारा सारा जगत ही प्रभु का नाम जपने लगता है ॥४॥

ब्रहमगिआनी कै एकै रंग ॥
ब्रहमगिआनी कै बसै प्रभु संग ॥

ब्रह्मज्ञानी एक परमेश्वर के रंग में (सदा) अनुरक्त रहता है इसलिए प्रभु ब्रह्मज्ञानी के साथ आकर बसता है। ब्रह्मज्ञानी को

ब्रहमगिआनी कै नामु अधारु ॥
ब्रहमगिआनी कै नामु परवारु ॥
ब्रहमगिआनी सदा सद जागत ॥
ब्रहमगिआनी अहंबुधि तिआगत ॥
ब्रहमगिआनी कै मनि परमानंद ॥
ब्रहमगिआनी कै घरि सदा अनंद ॥
ब्रहमगिआनी सुख सहज निवास ॥
नानक ब्रहमगिआनी का
नही बिनास ॥५॥

नाम का ही आधार है। ब्रह्मज्ञानी के लिए उसका नाम ही परिवार है। ब्रह्मज्ञानी (माया से) सदा सर्वदा सचेत रहता है। ब्रह्मज्ञानी अहंकार युक्त बुद्धि का त्याग कर देता है। ब्रह्मज्ञानी के मन में परमानन्द परमात्मा बसता है।

ब्रह्मज्ञानी के घर में सदा आनन्द होता है। ब्रह्मज्ञानी का निवास सहज सुख अथवा शान्ति मे होता है। हे नानक ! ब्रह्मज्ञानी का (कदाचित्) नाश नही होता ॥५॥

ब्रहमगिआनी ब्रहम का बेता ॥
ब्रहमगिआनी एक संगि हेता ॥
ब्रहमगिआनी कै होइ अचिंत ॥
ब्रहमगिआनी का निरमल मंत ॥
ब्रहमगिआनी जिसु करै प्रभु आपि ॥
ब्रहमगिआनी का बड परताप ॥
ब्रहमगिआनी का दरसु
वडभागी पाईऐ ॥
ब्रहमगिआनी कउ बलिबलि जाईऐ ॥
ब्रहमगिआनी कउ खोजहि महेसुर ॥
नानक ब्रहमगिआनी आपि
परमेसुर ॥६॥

ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म को जानने वाला होता है। ब्रह्मज्ञानी एक (ब्रह्म) के साथ प्रेम करने वाला होता है। ब्रह्मज्ञानी (के हृदय) मे निश्चिन्तता (बेफिक्री) होती है।

ब्रह्मज्ञानी के मन के भाव पवित्र होते हैं अथवा ब्रह्मज्ञानी का मन्त्र पवित्र करने वाला होता है।

ब्रह्मज्ञानी वह है जिसको प्रभु स्वय (ब्रह्मज्ञानी) बनाता है। ब्रह्मज्ञानी का प्रताप बडा है। ब्रह्मज्ञानी का दर्शन बड़े भाग्यो से प्राप्त होता है। (हे भाई !) ब्रह्मज्ञानी के ऊपर बलिहारी, (हाँ) (सदा) बलिहारी जाएँ।

ब्रह्मज्ञानी को स्वय शिव (जी भाव देवगण) भी ढूँढ रहे है। हे नानक ! ब्रह्मज्ञानी स्वयं परमेश्वर (का रूप) है ॥६॥

ब्रहमगिआनी की कीमति नाहि ॥
ब्रहमगिआनी कै सगल मन माहि ॥
ब्रहमगिआनी का कउन जानै भेदु ॥
ब्रहमगिआनी कउ सदा अदेसु ॥

ब्रह्मज्ञानी की कीमत आँकी नही जा सकती। ब्रह्मज्ञानी के मन में सब कुछ है (अर्थात् सब गुण हैं)। ब्रह्मज्ञानी का भेद कौन जान सकता है ? ब्रह्मज्ञानी को सदा (हमारी) नमस्कार है। ब्रह्मज्ञानी (की महिमा) का आधा अक्षर भी कथन

ब्रहमगिआनी का कथिआ न
जाइ अधाख्यरु ॥
ब्रहमगिआनी सरब का ठाकुर ॥
ब्रहमगिआनीकीमितिकउनबखानै ॥

नहीं किया जा सकता (क्योंकि उसकी महिमा अनन्त है)। ब्रह्मज्ञानी सब का ठाकुर है (अर्थात् सारे जीवों का पूज्य है)। ब्रह्मज्ञानी की सीमा का अनुमान कौन लगा सकता है?

ब्रहमगिआनी की गति
ब्रहमगिआनी जानै ॥
ब्रहमगिआनी का अंतु न पारु ॥

ब्रह्मज्ञानी की गति भावः गम्यता (पहुँच, अर्थात् अवस्था) कहाँ तक है, यह वह स्वयं ही जानता है। ब्रह्मज्ञानी का न अन्त है और न कोई पार है।

नानक ब्रहमगिआनी कउ
सदा नमसकारु ॥७॥

हे नानक! ब्रह्मज्ञानी को (मेरा) सदा नमस्कार है ॥७॥

ब्रहमगिआनीसभ स्रिसटि का करता ॥
ब्रहमगिआनी सदजीवै नही मरता ॥

ब्रह्मज्ञानी समस्त सृष्टि का कर्त्ता है। ब्रह्मज्ञानी सदैव जीवित है, कभी भी मरता नही। भाव जन्म-मरण के चक्र मे नही आता।

ब्रहमगिआनी मुकति जुगति
जीअ का दाता ॥
ब्रहमगिआनी पूरनपुरखु बिधाता ॥
ब्रहमगिआनी अनाथ का नाथु ॥
ब्रहमगिआनी का सभऊपरिहाथु ॥

ब्रह्मज्ञानी जीवों को मुक्ति और युक्ति को देने वाला है (अर्थात मुक्ति का मार्ग बताने वाला)तथा उच्च आत्मिक जिन्दगी का देनेवाला है। ब्रह्मज्ञानी पूर्ण पुरुष, (हाँ) विधाता भी है। ब्रह्मज्ञानी आश्रयहीनों का आश्रय अर्थात् उसका होना है ब्रह्मज्ञानी का हाथ सबके ऊपर होता है।

ब्रहमगिआनी का सगल अकारु ॥
ब्रहमगिआनी आपि निरंकारु ॥
ब्रहमगिआनी की सोभा
ब्रहमगिआनी बनी ॥
नानक ब्रहमगिआनी सरब
का धनी ॥८॥८॥

यह सारा गोचर जगत ब्रह्मज्ञानी का (अपना) है। ब्रह्मज्ञानी तो स्वयं ही प्रत्यक्ष निरंकार है। ब्रह्मज्ञानी की शोभा ब्रह्मज्ञानी से ही बनती है अथवा ब्रह्मज्ञानी की महिमा कोई ब्रह्मज्ञानी ही कर सकता है। (अर्थात् और कोई उसको शोभा के योग्य नही है)। हे नानक! ब्रह्मज्ञानी स्वय सबका मालिक है ॥८॥८॥

सलोक एवं अष्टपदी (८) का सारांश

श्लोक—जिनके मन में, मुख में और नेत्रों में केवल सत्य स्वरूप परमात्मा का निवास है, वे ही जीव ब्रह्मज्ञानी हैं और केवल ब्रह्मज्ञानी ही जीवन-मुक्त हैं ॥८॥

अष्टपदी—हे नानक ! अपना मन सच्चा कर तो तुम्हारा मुख अपने आप सच्चा होगा। फिर मन तथा मुख सच्चा करके तू एक परमात्मा के बिना अन्य कुछ भी न देख तभी तू सच्चा ब्रह्मज्ञानी बनेगा। याद रहे, जो ब्रह्मज्ञानी है वह कभी भी कोई बुराई नहीं करता, वह अपने आपको तुच्छ समझता है। वस्तुतः ऐसा ब्रह्मज्ञानी ही ऊचों से ऊचा (सर्वोच्य) है। वह राम नाम का रसास्वादन करता है, उसका भोजन ज्ञान है, उसका ध्यान केवल ब्रह्म ही में है, उसका आनन्द परोपकार में है, उसकी आशा केवल एक में है और एक ही एक के साथ उसकी प्रीति है। वह सदैव जागृत होकर अपने चंचल मन को एकाग्र करके उसे विस्मय वाली अवस्था देकर परम सुख प्राप्त करता है। वह जल जैसे निर्मल है, अग्नि जैसे उज्ज्वल है, धरती जैसे धैर्यवान है पवन जैसे समदर्शी है, सूर्य जैसे निर्दोष है और वह माया मे कमलवत् जैसे निर्लिप्त होकर रहता है। वस्तुतः ब्रह्मज्ञानी निआश्रय जीवो का आश्रय है, मुक्ति-युक्ति का दाता है। ब्रह्मज्ञानी और परमेश्वर में कोई भेद नहीं है। ब्रह्मज्ञानी का न कोई अन्त है और न कोई पारावार है। ऐसे ब्रह्मज्ञानी के दर्शन के लिये स्वयं देव-देवताएँ भी तरसते हैं। हे नानक ! ब्रह्मज्ञानी को मेरी सदैव नमस्कार है, (हाँ) सदैव नमस्कार है ॥८॥

सलोकु ॥ "सच्चे 'अपरस' के लक्षण।"

उरिधारै जो अंतरि नामु ॥	जो जीव हृदय मे (हरि) नाम को धारण करता है, जो
सरब मै पेखै भगवानु ॥	सब में भगवान को देखता है और जो निमिष-निमिष (अर्थात्
निमख निमख ठाकुर नमसकारै ॥	हर समय) ठाकुर को नमस्कार करता है, हे नानक ! वही वास्तविक 'अपरस' (अर्थात् माया के स्पर्श से परे, निर्लिप्त अथवा बेदाग)
नानकओहुअपरसुसगलनिसतारै॥१॥	है और वही सब को (संसार-समुंद्र से) तार लेता है ॥१॥

नोट: 'अपरस' वस्तुतः उसको कहते हैं जो किसी भी धातु को स्पर्श नहीं करते हैं। किन्तु यहाँ 'अपरस' शब्द वैष्णव, कर्मोती पंडित, रामदास और जीवन-मुक्त वालो के लिए शायद प्रयोग हुआ है। कई अपने आपको दूसरों से उत्तम मान कर संसार में विचरण करते हैं। किन्तु वे हरि की दरबार में तभी स्वीकृत होंगे जब नाम से प्रीति करेंगे और बिना द्वैत-भाव के नाम जपेंगे। ऐसे पुरुष ही सचमुच माया से अपरस अथवा निर्लिप्त हैं।

असटपदी ॥ "सच्चे 'अपरस' की महिमा।"

मिथिआ नाही रसना परस ॥	(वास्तविक 'अपरस' की) रसना झूठ को स्पर्श नहीं करती
मन महि प्रीति निरंजन दरस ॥	(अर्थात् झूठ से वे रहित है)। उसके मन में निरंजन परमात्मा के

पर त्रिअ रूपु न पेखै नेत्र ॥
साध की टहल संत संगि हेत ॥
करन न सुनै काहू की निंदा ॥
सभ ते जानै आपस कउ मंदा ॥
गुर प्रसादि बिखिआ परहरै ॥
मन की बासना मन ते टरै ॥
इंद्री जित पंच दोख ते रहत ॥
नानककोटिमधेकोऐसा अपरस ॥१॥

दर्शनों की प्रीति है। उसके नेत्र पराई स्त्री का रूप नहीं देखतीं। उसका प्रेम साधु की सेवा और सन्त की संगति से है। उसके कान किसी की भी निन्दा नही सुनते तथा अपने आप को सबसे बुरा समझता है। गुरु की कृपा से वह विषवत् विषयों को धक्का देकर दूर कर देता है। मानसिक वासनाएँ वह मन से दूर करता है। वह इन्द्रियों को जीतकर (अर्थात् जितेन्द्रिय होकर) (कामादि) पाँच दोषो से रहित हो जाता है।

हे नानक ! ऐसा 'अपरस' करोडों में कोई (एकाधि ही) होता है ॥१॥

बैसनो सो जिसु ऊपरि सु प्रसंन ॥
बिसन की माइआ ते होइ भिंन ॥
करम करत होवै निहकरम ॥
तिसु बैसनो का निरमल धरम ॥
काहू फल की इछा नही बाछै ॥
केवल भगति कीरतन संगि राचै ॥
मन तन अंतरि सिमरन गोपाल ॥
सभ ऊपरि होवत किरपाल ॥
आपि द्रिड़ै अवरह नामु जपावै ॥
नानकओहुबैसनोपरमगतिपावै ॥२॥

वास्तव में वैष्णव वह है, जिस पर (परमेश्वर) अति प्रसन्न है। वह विष्णु की माया से अलग (अर्थात् निर्लेप रहता) है। (माया ईश्वर की ही है, किन्तु जो प्रेम-भक्ति के द्वारा ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करता है, उसको माया स्पर्श नहीं कर सकती। तभी वह सच्चा वैष्णव है)।

वह कर्म करता है किन्तु कर्म से रहित (अर्थात् निष्कामी) है (भाव कर्म करता हुआ भी फल की इच्छा नहीं रखता। इस लिए कर्मों से अप्रभावित है)। उस वैष्णव का धर्म निर्मल है (अर्थात् उसके सब कर्त्तव्य विकारो से रहित हैं)। वह किसी भी फल की इच्छा या चाहना नही करता। वह केवल परमेश्वर की भक्ति और कीर्तन मे रचा रहता है।

उसके मन और तन में गोपाल का ही स्मरण है। वह सबके ऊपर कृपालु है। वह स्वय भी (अपने मन मे) नाम दृढ़ रखता है और दूसरो को भी नाम जपाता है।

हे नानक ! वह वैष्णव ही परम गति (अर्थात् मुक्ति) प्राप्त करता है ॥२॥

भगउती भगवंत भगति का रंगु ॥
सगल तिआगै दुसट का संगु ॥
मन ते बिनसै सगला भरमु ॥
करि पूजै सगल पारब्रहमु ॥

(भगवान का भक्त अथवा रासधारी) भगौती वह है, जिसको भगवान की भक्ति का रग चढ़ा है। वह सभी दुष्टों (अर्थात् कामादि विकारों) का संग छोड़ देता है। उसके मन से सारा भ्रम नाश हो जाता है। वह सर्व में परब्रह्म परमात्मा को व्यापक समझकर 'उसकी' पूजा करता है।

साध संगि पापा मलु खोवै ॥
तिसु भगउती की मति ऊतम होवै ॥
भगवंत की टहल करै नित नीति ॥
मनु तनु अरपै बिसन परीति ॥
हरि के चरन हिरदै बसावै ॥
नानक ऐसा भगउती
भगवंत कउ पावै ॥३॥

वह साधु की संगति में पापों की मैल को दूर करता है। उस भगौती की बुद्धि पवित्र होती है। वह भगवंत की नित्य प्रति सेवा करता है। वह मन तन को परमात्मा के प्रति अर्पण कर देता है। वह हरि के चरणों को अपने हृदय में बसाता है।

हे नानक ! ऐसा भगौती ही भगवंत प्रभु को प्राप्त करता है ॥३॥

सो पंडितु जो मनु परबोधै ॥
राम नामु आतम महि सोधै ॥
राम नाम सारु रस पीवै ॥
उसु पंडित कै उपदेसि जगु जीवै ॥
हरि की कथा हिरदै बसावै ॥
सो पंडितु फिरि जोनि न आवै ॥
बेद पुरान सिमृति बूझै मूलु ॥
सूखम महि जानै असथूलु ॥
चहु वरना कउ दे उपदेसु ॥
नानक उसु पंडित कउ
सदा अदेसु ॥४॥

(वास्तव में) पंडित वह है, जो पहले (अपने) मन को (ज्ञान का उपदेश देता है और अपनी आत्मा (मन) में रामनाम दृढ़ अथवा निश्चय करता है। वह रामनाम का, जो (सब वेद-शास्त्रों का) साराश है रस पीता है (अर्थात् नाम जपकर महा आनन्द प्राप्त करता है)। ऐसे पंडित के उपदेश से जगत जीवित हो जाता है। अथवा जगत जीवित है। वह हरि की कथा अपने हृदय मे बसाता है। वह पडित फिर योनियों मे नही आता। वह वेदों, पुराणों और स्मृतियों के मूल परमात्मा को जान लेता है और जान लेता है कि सूक्ष्म (परब्रह्म) मे स्थूल (दृश्य संसार)। वह (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) इन चारो जातियों को (सांझा) उपदेश देता है।

हे नानक ! मेरा 'उस' (प्रभु) पंडित को सदैव नमस्कार है ॥४॥

बीज मंत्रु सरब को गिआनु ॥
चहु वरना महि जपै कोऊ नाम ॥
जो जो जपै तिस की गति होइ ॥
साध संगि पावै जनु कोइ ॥
करि किरपा अंतरि उरधारै ॥
पसु प्रेत मुघद पाथर कउ तारै ॥
सरब रोग का अउखदु नामु ॥
कलिआण रूप मंगल गुण गाम ॥

बीज मन्त्र (अर्थात् नाम) और उसका ज्ञान (सामान्य रूप से) सब को देना चाहिए। (याद रहे) चार वर्णों में से कोई भी नाम जप सकता है। (इसलिए नीच समझकर नाम के उपदेश से किसी को भी वंचित नही रखना चाहिए)। जो भी नाम जपता है उसकी गति होती है। किन्तु कोई विरला ही दास साधु की संगति के द्वारा (नाम) प्राप्त करता है। जिस पर परमेश्वर की कृपा होती है, वह प्रभु के नाम को हृदय में धारण करता है। (नाम ऐसा समर्थ है कि) पशु, प्रेत, मूर्ख तथा पत्थरों जैसे अति कठोर (स्वभाव वालो) को भी भव-सागर से पार कर देता है। सर्व रोगों की औषधि नाम है। 'उसके गुण गाने कल्याण और मंगल

काहू जुगति कितै न पाईऐ धरमि ॥
नानक तिसु मिलै जिसु लिखिआ
धुरि करमि ॥५॥

रूप हैं (अर्थात् हरि के गुण गाने से जीव का कल्याण होता है और सुख-आनन्द प्राप्त होता है)। किसी भी (ब्राह्य) युक्ति एवं धार्मिक रसम द्वारा (हरि नाम) प्राप्त नहीं होता। हे नानक ! (हरिनाम) उसे प्राप्त होता है जिसके (माथे में) पहले से (प्रभु के दरबार से) ही कृपा का लेख लिखा हुआ है ॥५॥

जिसकै मनि पारब्रहम का निवासु ॥
तिस का नामु सति राम दासु ॥
आतम रामु तिसु नदरी आइआ ॥
दास दसंतण भाइ तिनि पाइआ ॥
सदा निकटि निकटि हरि जानु ॥
सो दासु दरगह परवानु ॥
अपुने दास कउ आपि किरपा करै ॥
तिसु दास कउ सभ सोझी परै ॥
सगल संगि आतम उदासु ॥
ऐसी जुगति नानक राम दासु ॥६॥

जिसके मन मे परब्रह्म का निवास है, राम का असली दास वही है। ऐसे प्यारे को आत्म राम (सबकी आत्मा मे रमण करने वाला राम) दिखाई पडता है। दासो के दास होने के भाव से उसने हरि को प्राप्त किया है। वह हरि को सदैव अति निकट जानता है। वह (राम का) दास (हरि) दरबार मे प्रामाणित (स्वीकृत) होता है। अपने दास पर (हरि) स्वय कृपा करता है। (तब) उस दास को सारी सूझ हो जाती है (अर्थात सभी रहस्यो की सूझ-बूझ हो जाती है)। वह सबके साथ, (हाँ) ग्रहस्थ मे रहकर भी सबसे (अपने) मन में उदास रहता (अर्थात् भीतर से निर्लिप्त रहता है। हे नानक ! ऐसी (जीवन) युक्ति वाला राम का दास है ॥६॥

प्रभ की आगिआ आतम हितावै ॥
जीवन मुकति सोऊ कहावै ॥
तैसा हरखु तैसा उसु सोगु ॥
सदा अनंदु तह नहीं बिओगु ॥
तैसा सुवरनु तैसी उसु माटी ॥
तैसा अंमृतु तैसी बिखु खाटी ॥
तैसा मानु तैसा अभिमानु ॥
तैसा रंकु तैसा राजानु ॥
जो वरताए साई जुगति ॥
नानक ओहु पुरखु कहीऐ
जीवन मुकति ॥७॥

प्रभु की आज्ञा जिसे प्रिय लगती है, (वास्तव में) वही (केवल) अपने आप को जीवन-मुक्त कहलवा सकता है। उसको जैसा (होता) है हर्ष, वैसा ही (होता) है शोक। उसको सदा आनन्द है। कोई भी (साँसारिक) वियोग उसे (दु खी) नही करता। उसके लिए जैसा है स्वर्ण और तैसी है मिट्टी। जैसे उसको अमृत है वैसा ही है कटु विष। उसके लिए जैसा है सम्मान और तैसा है अपमान। उसकी दृष्टि मे जैसा है कगाल (गरीब) और तैसा है राजा। (अर्थात् सबके साथ समानता का भाव रखता है)। उसके लिए परमात्मा जो कुछ करता है। उसी को वह योग्यता अथवा पूर्ण युक्ति समझता है। हे नानक ! उस पुरुष को (बेशक) जीवन मुक्त कहो ॥७॥

पारब्रहम के सगले ठाउ ॥
जितुजितुघरिराखै तैसा तिननाउ ॥
आपे करन करावन जोगु ॥
प्रभ भावै सोई फुनि होगु ॥
पसरिओ आपि होइ अनत तरंग ॥
लखे न जाहि पारब्रहम के रंग ॥
जैसी मति देइ तैसा परगास ॥
पारब्रहमु करता अबिनास ॥
सदा सदा सदा दइआल ॥
सिमरि सिमरि नानक
भए निहाल ॥८॥९॥

परब्रह्म (परमात्मा) के सब स्थान हैं (अर्थात् परब्रह्म का सभी जगह निवास है) और जिस जिस घर में 'वह' जिस जिस को रखता है, वैसा उनका नाम पड़ जाता है। 'वह' स्वय ही (सब कुछ) करने और कराने योग्य है। प्रभु को जो भाता है वही पुन. (अवश्य) होता है। 'वह' स्वयं अनन्त लहरें बनकर फैला हुआ है। परब्रह्म परमात्मा के कौतुक जाने नही जा सकते। (अर्थात् जैसे सागर अनन्त लहरों में फैला हुआ है, वैसे परब्रह्म सर्वत्र परिपूर्ण है)। जैसी मत्ति (बुद्धि) 'वह' (जीव को) देता है, वैसा उसको प्रकाश (ज्ञान) होता है। 'वह' अवि-नाशी परब्रह्म (परमात्मा) ही सब (कुछ) करने वाला है। 'वह' सदा सर्वदा, (हाँ) सदैव दयालु है।

हे नानक !(ऐसे अविनाशी कर्त्ता दयालु परब्रह्म का) स्मरण, (हाँ) (सदैव) स्मरण करते-करते कितने ही जीव कृतार्थ हो गए अथवा जो जीव 'उसका' स्मरण करते हैं, वे फूल के समान खिले हुए हैं ॥८॥९॥

श्लोक और अष्टपदी (९) का सारांश

श्लोक—जो हृदय के अन्दर नाम बसाते हैं, वे सब मे 'उसी' एक प्रभु को देखते हैं और सदैव 'उस' एक प्रभु को नतमस्तक होकर उसकी आज्ञा मे रहते है। वे माया से भी निलिप्त हैं। ऐसे सौभाग्यशालियो की संगति मे सबका उद्धार सभव है ॥९॥

अष्टपदी—हे नानक ! अनेक पंडित, अनेक वैष्णव, अनेक भगवती के भक्त, अनेक राम के दास, अनेक अपरस पुरुष और अनेक जीवन मुक्त अपने आप को कहाते है। किन्तु सच्चा पंडित वह है जो वेदो पुराणो, स्मृतियो का सिद्धान्त समझता है, अपने चचल मन को गुरू के द्वारा विकारो से रोकता है, हरि की कथा अपने हृदय मे धारण करता है तथा रामनाम का विचार अन्तर्गत धारण करके सारभूत हरिरस का रसास्वादन करता है। सच्चा वैष्णव वह है जो विष्णु की माया से अप्रभावित रहता है, निष्काम भावना से कर्म करता है, मन तन मे प्रभु के नाम का स्मरण करता है और 'उसी' एक को स्नेह देकर 'उसको' प्रसन्न करने की सदैव चेष्ठा करता है। सच्चा भक्त भगवती का वह है जो विषय विकारो को त्याग कर श्रेष्ठ पुरुषों की सगति मे पाप-मल को दूर करके एक भगवत की भक्ति के रग मे अपने जीवन को रग लेता है। 'उसी' एक की सेवा करता है और अपने हृदय में 'उसी' को धारण करके अपने आप को अर्पित करता है। राम का सच्चा दास वह है जो प्रभु को सदव निकट करके जानता है और 'उसके' दर्शन के बिना सदा उदास रहता है।

सच्चा 'अपरस' पुरुष वह है जिसकी जिह्वा कभी भी (झूठ) स्पर्श नहीं करती, जिसके नेत्र पराई स्त्री का रूप नहीं देखते, जिसके सभी श्वास उसकी आज्ञा मे है, जिसके मन मे सांसारिक वासनाएं नहीं उठती और जो निरंकार प्रभु के लिये सदैव व्याकुल रहता है।

सच्चा जीवन-मुक्त वह है जिसको प्रभु की आज्ञा प्रिय लगती है और जिसे सदैव आनन्द है। ऐसे जीवन-मुक्त पुरुष के लिये जैसा स्वर्ण है वैसी ही मिट्टी, जैसा सम्मान है वैसा ही अपमान, जैसा हर्ष है वैसा ही शोक; जैसा अमृत है वैसा ही विष; जैसा राजा है वैसी ही प्रजा।

हे नानक ! तू भी ऐसे सज्जनों की भाँति नाना प्रकार जीव-सृष्टि में 'उस' एक प्रभु को देख और 'उसके' कल्याणकारी नाम को अपने हृदय में बारम्बार जप। स्मरण रहे, 'वह' प्रभु किसी भी युक्ति या क्रिया से प्राप्त नही होता। केवल 'उसका' स्मरण करने से, 'उसके' नाम का जाप करने से प्राप्त होता है। मेरा प्रभु, हे जीव ! दयालु और कृपालु है ॥८॥

सलोकु ॥

उसतति मनहि अनेक जन
अंतु न पारावार ॥
नानक रचना प्रभि रची
बहु बिधि अनिक प्रकार ॥१॥

"अनेक प्रकार की रचना रचने वाले प्रभु की स्तुति कर।"

अनेक भक्त जन 'उसकी' स्तुति करते हैं, (किन्तु वे पूर्णत: 'उसको' वर्णन नही कर पाते, क्योंकि) न 'उसका' अन्त है और न है 'उसका' पारावार।

हे नानक ! 'उस' (अनन्त प्रभु ने) बहुत विधियों से और अनेक प्रकार से (यह अनन्त) रचना रची है ॥१॥

असटपदी ॥

कई कोटि होए पूजारी ॥
कई कोटि आचार बिउहारी ॥
कई कोटि भए तीरथ वासी ॥
कई कोटि बन भ्रमहि उदासी ॥
कई कोटि बेद के स्रोते ॥
कई कोटि तपीसुर होते ॥
कई कोटि आतम धिआनु धारहि ॥
कई कोटि कबि काबि बीचारहि ॥
कई कोटि नवतन नाम धिआवहि ॥
नानक करते का अंतु न पावहि ॥
१॥

"प्रभु की रचना अनन्त है।"

(इस नाना प्रकार की रचना में) कई करोड़ (बन्दे कर्त्तार की) पूजा करनेवाले (पूजारी) हुए हैं। कई करोड धार्मिक और सांसारिक कर्म करने वाले (व्यवहारी) हुए हैं। कई करोड तीर्थों पर निवास करने वाले(तीर्थवासी)हो रहे हैं। कई करोड़ उदासी होकर बन में (आज भी) भ्रमण कर रहे हैं। कई करोड वेदों को सुनने वाले (श्रोते) होकर सुन रहे हैं। कई करोड तप करने वाले (तपीश्वर) हुए हैं। कई करोड अपने स्वरूप का ध्यान धारण करते हैं। भाव. अपने अन्दर सुरति जोड़ रहे है। कई करोड़ कवि कविताओं द्वारा(कर्त्तार का) विचार कर रहे है। कई करोड ऐसे हैं जो (कर्त्तार के नित्य) नये से नये नाम का ध्यान करते हैं (शेषनाग के सम्बन्ध में विचार है कि वह नित्य नये से नये नाम से प्रभु को याद करता है)। किन्तु (वे सभी) हे नानक ! कर्त्तार (प्रभु) का अन्त नही प्राप्त कर सकते हैं (क्योंकि मेरा कर्त्तार अनन्त है) ॥१॥

कई कोई भए अभिमानी ॥
कई कोटि अंध अगिआनी ॥
कई कोटि किरपन कठोर ॥
कई कोटि अभिग आतम निकोर ॥
कई कोटि पर दरब कउ हिरहि ॥
कई कोटि पर दूखना करहि ॥
कई कोटि माइआ स्रम माहि ॥
कई कोटि परदेस भ्रमाहि ॥
जितुजितु लावहु तितुतितु लगना ॥
नानक करते की जानै
करता रचना ॥२॥

(माया ग्रस्त लोगों के प्रति संकेत इस नाना प्रकार की रचना में।) कई करोड़ अभिमानी जीव हैं। कई करोड़ घोर अज्ञानी (मूर्ख) हैं। कई करोड़ (पत्थरवत् शुष्क) कठोर मन रखने वाले कृपण(कंजूस)हैं। कई करोड़ न भीगने वाले हैं जो कभी दूसरों का दु:ख देखकर द्रवीभूत नहीं होते और आत्मा के प्रति कोरे रहने वाले रूखे हैं जिनपर कभी प्रेम-रंग नहीं चढ़ता। कई करोड़ दूसरों का धन चुराते हैं। कई करोड़ दूसरों की निन्दा करते हैं अथवा दूसरों के दोष निकालते हैं। कई करोड़ माया (संग्रह करने) के उद्यम में रहते हैं। कई करोड़ प्रदेशों में भ्रमण कर (भटक) रहे हैं। जहाँ-जहाँ (हे कर्त्तार ! आप) लगाते हो वहाँ-वहाँ (जीवों ने) लगना है अथवा लग रहे हैं।

हे नानक ! कर्त्ता की रचना का भेद (स्वय) कर्त्ता ही जानता है ॥२॥

कई कोटि सिध जती जोगी ॥
कई कोटि राजे रस भोगी ॥
कई कोटि पंखी सरप उपाए ॥
कई कोटि पाथर बिरख निपजाए ॥
कई कोटि पवण पाणी बैसंतर ॥
कई कोटि देस भू मंडल ॥
कई कोटि ससीअर सूर नख्यत्र ॥
कई कोटि देव दानव
इंद्र सिरि छत्र ॥
सगल समग्री अपनै सूति धारै ॥
नानक जिसु जिसु भावै
तिसु तिसु निसतारै ॥३॥

कई करोड़ हैं सिद्ध, यति और योगी। कई करोड़ हैं आनन्द करने वाले, (हाँ) भोग-विलास में (नृत्य करने वाले) राजे। कई करोड पक्षी और नाग उत्पन्न किये हैं। कई करोड़ पत्थर और वृक्ष (कर्त्ता ने) उगाए हैं। कई करोड पवन, पानी और अग्नि या पदार्थ) उत्पन्न किए हैं। कई करोड देश, पृथ्वी और मडल(बनाये) हैं। कई करोड़ चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र (रचे) हैं। कई करोड देवगन और दैत्य (राक्षस) तथा इन्द्र हैं जिनके सिर पर छत्र है। यह समस्त रचना (सामग्री) (अपने हुक्म के) प्रबंध में चला रहा है (अर्थात् अपने नियम रूपी धागे मे पिरोयी हुई है)।

हे नानक ! जो-जो जीव 'उसे' अच्छा लगता है, (कर्त्ता प्रभु) उसे पार कर लेता है ॥३॥

कई कोटि राजस तामस सातक ॥
कई कोटि बेद पुरान
सिमृति अरु सासत ॥

कई करोड़ हैं सत् रज, और तम (गुणों वाले)। कई करोड़ हैं वेद, पुराण, स्मृति और शास्त्रादि (पढ़ने वाले)। कई करोड़ रत्न समुद्र में उत्पन्न किये हैं और कई करोड़ नाना प्रकार के जन्तु पैदा किए है। कई करोड़ लम्बी उम्र वाले जीव-जन्तु

कई कोटि कीए रतन समुंद ॥
कई कोटि नाना प्रकार जंत ॥
कई कोटि कीए चिर जीवे ॥
कई कोटि गिरी मेर सुवरन थीवे ॥
कई कोटि जख्य किंनर पिसाच ॥
कई कोटि भूत प्रेत सूकर मृगाच ॥
सभ ते नेरै सभहू ते दूरि ॥
नानक आपि अलिपतु
रहिआ भरपूरि ॥४॥

उत्पन्न किए हैं। कई करोड़ (साधारण) पर्वत और स्वर्ण के पर्वत (सुमेरु जैसे) बन गए हैं। कई करोड़ यक्ष, किन्नर और पिशाच (उत्पन्न किए गए) हैं। (धन समृद्धि के स्वामी-कुबेर की सभा में किन्नर नृत्य करते हैं। किन्नर और यक्ष देवताओं की जातियां हैं। पिशाच भी देवताओं की एक जाति है। किन्नरों का मुंह घोड़े जैसा और नीचे का हिस्सा मनुष्य का माना जाता है)। कई करोड़ भूत प्रेत सूअर और (मृग को खाने वाला) मृगाशन (भाव शेर) हैं। परमेश्वर सबके निकट होते हुए भी 'वह' सबसे दूर है।

हे नानक! 'वह' स्वयं निर्लिप्त भी है और (फिर सब में) परिपूर्ण (व्याप्त) भी है ॥४॥

कई कोटि पाताल के वासी ॥
कई कोटि नरक सुरग निवासी ॥
कई कोटि जनमहि जीवहि मरहि ॥
कई कोटि बहु जोनि फिरहि ॥
कई कोटि बैठत ही खाहि ॥
कई कोटि घालहि थकि पाहि ॥
कई कोटि कीए धनवंत ॥
कई कोटि माइआ महि चिंत ॥
जह जह भाणा तह तह राखे ॥
नानक सभु किछु प्रभ के हाथे ॥५॥

कई करोड़ जीव पाताल में बसने वाले हैं। कई करोड़ नरकों और स्वर्गों में रहने वाले हैं। कई करोड़ जीव जन्मते हैं, जीवन व्यतीत करते हैं और फिर मर जाते हैं। कई करोड़ जीव कई योनियों में फिरते रहते हैं। कई करोड़ बैठे ही खाते हैं (अर्थात् बिना परिश्रम किये हुए खाते-पीते हैं)। कई करोड़ हैं जो रोटी के लिए परिश्रम करते हैं और थक कर (टूट) जाते हैं। कई करोड़ धनवान बनाये हैं। कई करोड़ माया (का भरमार) पास होने से चिन्ता में रहते हैं। जहाँ-जहाँ परमेश्वर को भाता है, वहीं-वहीं (प्रत्येक जीव को) रखता है।

हे नानक! यह सब कुछ प्रभु के अपने ही हाथ में है ॥५॥

कई कोटि भए बैरागी ॥
राम नाम संगि तिनि लिव लागी ॥
कई कोटि प्रभ कउ खोजंते ॥
आतम महि पारब्रहमु लहंते ॥
कई कोटि दरसन प्रभ पिआस ॥
तिन कउ मिलिओ प्रभु अबिनास ॥

कई करोड़ जीव वैरागी हुए हैं जिनको माया से वैराग्य हो गया है क्योंकि उनकी लौ रामनाम के साथ लगी है। कई करोड़ प्रभु (प्यारे) को खोजते हैं और अपनी आत्मा में परब्रह्म (परमात्मा) को ढूंढते हैं (प्राप्त करते हैं)। कई करोड़ प्रभु के दर्शन के लिए प्यासे जैसे तड़फ रहे हैं और उन्हें प्रभु अविनाशी मिल पड़ता है। कई करोड़ सन्तों का संग (अर्थात सत्संग) माँगते हैं क्योंकि वहाँ उन्हें परब्रह्म प्रभु का प्रेम-रंग लगता है।

कई कोटि भगवहि सतसंगु ॥
पारब्रहम तिन लागा रंगु ॥
जिन कउ होए आपि सुप्रसंन ॥
नानक ते जन सदा धनि धंनि ॥६॥

जिन पर (प्रभु) स्वयं अति प्रसन्न होता है, हे नानक ! वे सेवक (जन) सदा धन्य हैं, (हाँ) (सर्वदा) धन्य हैं (अर्थात् भाग्य-शाली जीव वे हैं जिन पर प्रभु आप प्रसन्न होकर उन्हें सत्संग देकर प्रेम-रंग लगा लेता है) ॥६॥

कई कोटि खाणी अरु खंड ॥
कई कोटि अकास ब्रहमंड ॥
कई कोटि होए अवतार ॥
कई जुगति कीनो बिसथार ॥
कई बार पसरिओ पासार ॥
सदा सदा इकु एकंकार ॥
कई कोटि कीने बहु भाति ॥
प्रभ ते होए प्रभ माहि समाति ॥
ता का अंतु न जानै कोइ ॥
आपे आपि नानक प्रभु सोइ ॥७॥

कई करोड़ खानियाँ और खंड हैं (समस्त जीव चार खानों (१) अण्डज, (२) जरायुज, (३) स्वेदज, (४) उदभिज में विभक्त किये गये हैं और सम्पूर्ण रचना को भौगोलिक आधार पर नौ भागों में बाँटा है)। कई करोड आकाश और ब्रह्माण्ड हैं। कई करोड़ अवतार हुए हैं। (जगत रचना का यह) विस्तार कई युक्तियो से भाव: अनेक प्रकार से (प्रभु ने) किया है। (हाँ) कई बार यह पसारा प्रसारित हुआ है (अर्थात ससार की रचना रची गई है)। (किन्तु) 'वह' स्वय एक ही निरकार और आकार रूप सदा सर्वदा (अपने स्वरूप मे स्थित रहता) है। (इस रचना में) कई करोड जीव बहुत प्रकार के (प्रभु ने) पैदा किए हैं, जो प्रभु से उत्पन्न होकर (पुन) प्रभु में ही लीन हो जाते हैं। 'उस' (प्रभु) का अन्त कोई नही जानता, क्योंकि हे नानक ! 'वह' प्रभु स्वयं है और स्वयं (ही) है (अर्थात् अपने जैसा आप ही है)॥७॥

कई कोटि पारब्रहम के दास ॥
तिन होवत आतम परगास ॥
कई कोटि तत के बेते ॥
सदा निहारहि एको नेत्रे ॥
कई कोटि नाम रसु पीवहि ॥
अमर भए सद सद ही जीवहि ॥
कई कोटि नाम गुन गावहि ॥
आतम रसि सुखि सहजि समावहि ॥
अपुने जन कउ सासि सासि समारे ॥
नानकओइपरमेसुरकेपिआरे ॥८॥
१०॥

कई करोड़ परब्रह्म के दास हैं, उनको आत्मा का प्रकाश (भाव: ज्ञान प्राप्त) होता है। कई करोड यथार्थ सिद्धांत को जानने वाले हैं जो आँखों से (केवल) एक परमेश्वर को ही (सर्वत्र) सदा देखते हैं। कई करोड नाम का (अमृत) रस पीते हैं, (नाम-अमृत रस पीने वाले ऐसे प्यारे) अमर हो जाते हैं और सदा सर्वदा जीवित (अमर) रहते हैं। कई करोड (परमेश्वर के) नाम और गुण गाते हैं, वे आत्मानन्द एव सहजावस्था वाले सुख मे समा जाते हैं (अर्थात् स्थिर अवस्था मे टिके रहते हैं)।

(परमात्मा) अपने भक्तजनों को श्वास-प्रश्वास संभालता है (ध्यान रखता है) क्योंकि वे (भक्त)

हे नानक ! परमेश्वर के प्यारे होते हैं (जिनकी 'वह' देख-भाल मेरा प्रभु स्वय करता है।)॥८॥१०॥

श्लोक एवं अष्टपदी (१०) का सारांश

श्लोक—जिस अनन्त प्रभु ने यह अनेक प्रकार वाली रचना रची है, उसकी' स्तुति अनेक जीव करके गये है तथा आज भी अनेक जीव कर रहे हैं। हे भाई ! तू भी 'उसको' अनन्त अनन्त कहकर, 'सदैव उसकी' स्तुति कर ॥१०॥

अष्टपदी—हे बन्दे ! तू भी 'उस' प्रभु की स्तुति कर जिसका न अन्त है और न पारावार ही है। (हाँ) स्तुति कर 'उस' कर्त्ता की जिसने यह अनेक प्रकार वाली रचना रची है। करोड़ों के करोड़ 'उसके' पूजारी, करोड़ों के करोड़ आचार व्यवहारी, करोड़ों के करोड़ तीर्थवासी करोड़ो के करोड़ उदास-बनवासी, करोड़ो के करोड़ सत्यवादी, तपस्वी, कवि आदि किन्तु इनमे से एक ने भी 'उसका' अन्त नहीं पाया है। यही नहीं इसी जीव सृष्टि में कई हैं अभिमानी कन्जूस, रूखे स्वभाव वाले, कोरे रहने वाले जिन पर प्रेम-रंग नहीं चढ़ता। रचना में पर धन चुराने वाले पर निन्दा करने वाले, माया संग्रह करने वाले और भोग बिलास करने वाले भी अगणित हैं। यही नहीं कई हैं पाताल, नरक, स्वर्ग जन्म लेने वाले, मरने वाले। किन्तु मेरे कर्त्ता की रचना का कोई भी अन्त नहीं जानता। कई हैं वृक्ष, पत्थर, पक्षी, सर्प, देवगण, भू-मण्डल, आकाश, ब्रह्मांड, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, देवता और दैत्य, इन्द्र, पुराण, शास्त्रादि। परन्तु अपने आपमे सब दुर्बल एवं असमर्थ हैं। सारी शक्ति परमेश्वर के अधीन है। सब कुछ, हे नानक ! 'उसके' हाथ मे है। किन्तु इसी सृष्टि मे अनेक 'उसके' दास हैं, जिनको वह' अपना प्रकाश देता है। अनेक उसके प्यारे हैं जिनको 'वह' श्वास-प्रश्वास संभालता है। धन्य है, धन्य हैं वे भक्त जिन पर मेरा दयालु प्रभु प्रसन्न होता है और उन भक्तजनों की ही इस अनन्त रचना मे स्वय देखभाल करता है।

सलोकु ॥

एक "परमेश्वर ही रचनहार है"

करण कारण प्रभु एकु है
दूसर नाही कोइ ॥
नानक तिसु बलिहारणै
जलि थलि महीअलि सोइ ॥१॥

(सभी) कार्यों का (मूल) कारण एक ही प्रभु है अथवा कारण भी एक प्रभु है और करने वाला भी 'वही' (स्वय) है, कोई दूसरा नही है। हे नानक ! 'उस' प्रभु के ऊपर बलिहारी जाओ अथवा मैं बलिहारी जाता हूँ, जो जल में, पृथ्वी में एवं पृथ्वी और आकाश के मध्य में (सर्वत्र) व्याप्त है ॥१॥

असटपदी ॥

"प्रभु ही सबल और समर्थ है। शेष सब दुर्बल और असमर्थ हैं।"

करन करावन करनै जोगु ॥
जो तिसु भावै सोई होगु ॥
खिन महि थापि उथापन हारा ॥
अंतु नही किछु पारावारा ॥

(सभी) कार्य (प्रभु स्वय) करता है और स्वय ही दूसरों से कराता है, क्योकि 'वही' (केवल) करने के योग्य है (एव समर्थ) है। जो कुछ 'उसको' अच्छा लगता है, वही होता है। 'वह' क्षण भर में बनाकर नाश (समाप्त) करने वाला है। 'उसका' न अन्त

हुकमे धारि अधर रहावै ॥
हुकमे उपजै हुकमि समावै ॥
हुकमे ऊच नीच बिउहार ॥
हुकमे अनिक रंग परकार ॥
करि करि देखै अपनी वडिआई ॥
नानक सभ महि रहिआसमाई ॥१॥

है और न ही पारावार है। निराश्रय सृष्टि को (प्रभु ने अपने) हुकम के आसरे पर ही टिकाए रखा है। (जीव-सृष्टि) 'उसके' हुकम से उत्पन्न होती है और 'उसके' हुकम से ही (उसमें) लीन हो जाती है। 'उसके' हुकम से ही (जीवों की ओर से) (अनेक प्रकार के) ऊँचे और नीचे व्यवहार हो रहे हैं और 'उसके' हुकम से ही (जीव) अनेक रगों के एवं विविध(नाना)प्रकार के होते हैं। (प्रभु अपनी महान) रचना रचकर अपनी बड़ाई (स्वयं ही) देख रहा है। हे नानक ! 'वह' (रचनहार प्रभु ही) सब में समा रहा है ॥१॥

प्रभ भावै मानुख गति पावै ॥
प्रभ भावै ता पाथर तरावै ॥
प्रभ भावै बिनु सास ते राखै ॥
प्रभ भावै ता हरि गुण भाखै ॥
प्रभ भावै ता पतित उधारै ॥
आपि करै आपन बीचारै ॥
दुहा सिरिआ का आपि सुआमी ॥
खेलै बिगसै अंतरजामी ॥
जो भावै सो कार करावै ॥
नानक दृसटी अवरु न आवै ॥२॥

(यदि) प्रभु को भाए तो मनुष्य गति(मुक्ति)प्राप्त करता है। (यदि) प्रभु को भाए तो पत्थर(जैसे कठोर दिलों को भी भवसागर से) पार कर देता है। (यदि) प्रभु को भाए तो श्वासों के बिना (हो गये मनुष्य को भी) बचा लेता है। (यदि) प्रभु को भाए तो (जीव) हरि के गुण गाता है। (यदि) प्रभु को भाए तो गिरे हुए (पापियों) का भी उद्धार कर देता है। 'वह' स्वयं ही (सब कुछ) करता है और विचार भी स्वयं ही करता है। दोनों (अर्थात लोक-परलोक) का स्वामी 'वह' आप ही है। 'वह' अन्तर्यामी (स्वामी) स्वयं ही (जगत रचना का खेल) खेलकर (अपनी शाश्वत मस्ती में सदैव) प्रसन्न रहता है। जो 'उसे' भाता है, वही कार्य करता है और (जीवों से) कराता है।

हे नानक ! (हमको) 'उस' जैसा दूसरा कोई दिखाई नही देता ॥२॥

कहु मानुख ते किआ होइ आवै ॥
जो तिसु भावै सोई करावै ॥
इस कै हाथि होइ
ता सभु किछु लेइ ॥
जो तिसु भावै सोई करेइ ॥
अनजानत बिखिआ महि रचै ॥
जे जानत आपन आप बचै ॥

कहो, मनुष्य से क्या हो आ सकता है ? (अर्थात मनुष्य अपने बल से (सचमुच) कर ही क्या सकता है ?) (भाव: कुछ भी नहीं कर सकता क्योंकि वह असमर्थ है)। जो 'उस'(परमेश्वर)को भाता है, वही (मनुष्य से कार्य) कराता है। यदि इस(मनुष्य)के हाथ में (अर्थात वश में) हो तो वह सब कुछ(आप सँभाल लें)।(किन्तु) जो 'उस' (प्रभु) को भाता है, वही कुछ जीव करता है। (जीव परमेश्वर के हुकम की) अज्ञानता के कारण विषयों में (अर्थात विषय रूपी माया में) अनुरक्त रहता है, यदि जानता हो (अर्थात कुछ ज्ञानवान् हो) तो स्वयं (विषयो से) बचा रहे। (जीव का

भरमे भूला दह दिसि धावै ॥
निमखमाहि चारिकुंट फिरि आवै ॥
करि किरपा जिसु अपनीभगतिदेइ ॥
नानक ते जन नामि मिलेइ ॥३॥

अज्ञानी मन) भ्रम में भूलकर दशों-दिशाओं में दौड़ता फिरता है। निमिष मात्र (आँख के पलक गिरने तक के समय) में (मन) चारों कोनों में भाग-(दौड़) आता है। (किन्तु मेरा प्रभु) कृपा करके जिन-जिन को अपनी भक्ति (का दान) देता है !

हे नानक ! वे सेवक ही नाम के द्वारा (परमेश्वर से जाकर) मिलते हैं ॥३॥

खिन महि नीच कीट कउ राज ॥
पारब्रहम गरीब निवाज ॥
जा का द्रिसटि कछू न आवै ॥
तिसु ततकाल दहदिस प्रगटावै ॥
जा कउ अपुनी करै बखसीस ॥
ता का लेखा न गनै जगदीस ॥
जीउ पिंडु सभ तिस की रासि ॥
घटि घटि पूरन ब्रहम प्रगास ॥
अपनी बणत आपि बनाई ॥
नानक जीवै देखि बडाई ॥४॥

(यदि मेरा प्रभु चाहे तो) क्षण में कीट जैसे तुच्छ जीव को राज्य (बडाई) दे सकता है। ऐसा (मेरा) परब्रह्म (परमेश्वर) गरीबों को मान देने वाला है। जिस जीव का कुछ भी (गुण किसी को) दिखाई नही देता (अर्थात जो जीव किसी गिनती में नही) उसको भी तत्काल दशो दिशाओ मे (सर्वत्र) प्रकट कर देता है। जिस (जीव) पर जगदीश्वर अपनी बख्शिश करता है, उसका वह (कर्मों का) लेखा फिर गिनकर नहीं लेता। जीवात्मा और शरीर सब 'उसकी' दी हुई पूँजी हैं, घट-घट (प्रत्येक शरीर) में (सर्वत्र) परिपूर्ण ब्रह्म का प्रकाश है। अपनी (रचना) जगत परमेश्वर ने स्वयं ही बनाई है।

(मेरे गुरुदेव बाबा) नानक 'उसकी' बडाई को देखकर ही जीवित है ॥४॥

इसका बल नाही इसु हाथ ॥
करन करावन सरब को नाथ ॥
आगिआकारी बपुरा जीउ ॥
जो तिसु भावै सोई फुनि थीउ ॥
कबहू ऊच नीच महि बसै ॥
कबहू सोग हरख रंगि हसै ॥
कबहू निंद चिंद बिउहार ॥
कबहू ऊभ अकास पइआल ॥
कबहू बेता ब्रहम बीचार ॥
नानक आपि मिलावणहार ॥५॥

(देखो) इस (जीव) का बल है, (किन्तु) इसके (अपने) हाथ मे नही है। करने वाला और कराने वाला 'वह' (एक) सबका स्वामी (मालिक) है। यह बेचारा जीव तो 'उसकी' आज्ञा मे चलने वाला है। जो कुछ 'उस' (प्रभु) को भाता है, वही पुनः होता है। कभी यह जीव ऊच (कभी) नीच (अवस्था) मे बसता है; कभी शोक मे तो कभी हर्षोल्लास मे हँसता है, कभी (यह जीव) दूसरो की निन्दा का चिन्तन करते रहना अपना व्यवहार ही बना लेता है, कभी ऊँचे आकाश की ओर (उड़ता रहता) है और कभी नीचे पाताल तक चला जाता है; (भाव: ऊँची-नीची वृति रखता है, कभी तो (यह जीव अपने आपको) ब्रह्म के विचार को जानने वाला समझता है) (किंतु) हे नानक ! 'वह' (परमात्मा) स्वयं ही (जीवों को अपने साथ) मिलाने वाला है।५॥

कबहू निरति करै बहु भाति ॥
कबहू सोइ रहै दिनु राति ॥
कबहू महा क्रोध बिकराल ॥
कबहू सरब की होत रवाल ॥
कबहू होइ बहै बड राजा ॥
कबहू भेखारी नीच का साजा ॥
कबहू अपकीरति महि आवै ॥
कबहू भला भला कहावै ॥
जिउ प्रभु राखै तिव ही रहै ॥
गुर प्रसादि नानक सचु कहै ॥६॥

कभी (यह जीव पदार्थों की प्रसन्नता में) नाना प्रकार के नृत्य करता है; कभी (अज्ञानता में) दिन-रात सोया रहता है। कभी (यह जीव) महा क्रोध के प्रभाव हेतु डरावना हो जाता है; कभी (यह जीव) सबकी चरण-धूलि हो जाता है; कभी (यह जीव) बड़ा राजा (बनकर) बैठ जाता है, कभी (यह जीव) नीच भिखारी का स्वांग बना लेता है। कभी (यह जीव) अपयश में आ जाता है; कभी (यह जीव) भला भला कहलवाता है (अर्थात कभी उसकी निन्दा होती है और कभी स्तुति)। (किंतु सच तो यह कि) जैसे प्रभु रखता है, वैसे ही (यह जीव) रहता है (क्योंकि बेचारा असमर्थ है)।

हे नानक! (ऐसा जीव) (केवल) गुरु की कृपा से ही सच्च बोलता है (अर्थात 'उस' सत्य स्वरूप परमात्मा का नाम जपना गुरु की कृपा से ही संभव है) अथवा (यह) सच (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक गुरु की कृपा से कहता है ॥६॥

कबहू होइ पंडित करे बख्यानु ॥
कबहू मोनि धारी लावै धिआनु ॥
कबहू तट तीरथ इसनान ॥
कबहू सिध साधिक मुखि गिआन ॥
कबहू कीट हसति पतंग होइ जीआ ॥
अनिक जोनि भरमै भरमीआ ॥
नाना रूप जिउ स्वागी दिखावै ॥
जिउ प्रभ भावै तिवै नचावै ॥
जो तिसु भावै सोई होइ ॥
नानक दूजा अवरु न कोइ ॥७॥

कभी (यह जीव) पंडित हो कर व्याख्यान करता है; कभी (यह जीव मौन) व्रतधारी होकर (परमेश्वर में) ध्यान लगाता है कभी (यह जीव) तीर्थों के किनारे पर (जाकर) स्नान करता है, कभी (यह जीव) सिद्ध और अभ्यासी होकर मुख से ज्ञान (कथन) करता है और कभी (यह) जीव कीड़े, हाथी, पतंगा होकर अनेक योनियों में भरमाया हुआ भटकता रहता है। जैसे (कुशल) स्वांगी अनेक प्रकार के रूप दिखाता है, वैसे

यह जीव कई प्रकार के रूप दिखा रहा है। (हाँ) जैसे प्रभु को अच्छा लगता है। वैसे (ही जीवों को) नचाता है।

हे नानक! 'उस' एक परमेश्वर के बिना अन्य कोई नहीं है (जिसका हुकम जीव पर चल सके) अथवा 'उस' जैसा कोई दूसरा नहीं है ॥७॥

कबहू साध संगति इहु पावै ॥
उसु असथान ते बहुरि न आवै ॥
अंतरि होइ गिआन परगासु ॥
उसु असथान का नही बिनासु ॥
मन तन नामि रते इक रंगि ॥
सदा बसहि पारब्रहम कै संगि ॥

कभी (यह जीव अन्ततः) साधु की संगति प्राप्त कर लेता है, फिर उस (साधु संगति-सत्संग) स्थान से पुनः लौटता नहीं (अर्थात योनियों में भटकता नहीं), क्योंकि (साधु की संगति में) उसके अन्तर्गत ज्ञान का प्रकाश होता है, (अरे!) उस स्थान (भाव. उस अवस्था) का नाश कदाचित नहीं होता। (फिर यही जीव) मन और तन से 'उसके' नाम के प्रेम-रंग में (सदा) अनुरक्त रहता है और सदैव अपने आप को परब्रह्म परमेश्वर के साथ बसा हुआ जानता है। जैसे जल में जल आकर मिल जाता है,

[illegible] ज्योति [illegible] ॥
[illegible] ॥
मिटि गए गवन पाए बिस्राम ॥
नानक [illegible] ॥८॥११॥

[illegible] (परमात्मा की) ज्योति से वह (ज्योति एक होकर) लीन हो जाती है। (इस प्रकार) योनियों में [illegible] भटकना मिट जाता है और विश्राम वाली स्थिति प्राप्त होती है। (कहे गुरदेव बाबा) नानक ऐसे (तारनहार) परमेश्वर के ऊपर सदैव कुर्बान जाता है ॥८॥११॥

श्लोक एवं अष्टपदी (११) का सारांश

श्लोक—प्रभु के बिना अन्य कोई भी करण कारण समर्थ नहीं है। 'वह' [illegible] समर्थ स्वामी के ऊपर, हे भाई ! तू भी अपने आप को अर्पित कर।

अष्टपदी—हे नानक ! केवल 'वही' एक है, अन्य कोई भी नही है। 'वही दाता है, स्वामी है और अन्तर्यामी भी है। उसकी' आज्ञा से सब कोई उत्पन्न होते हैं, 'उसी' की आज्ञा द्वारा योनियाँ प्राप्त होती हैं और जीव अनेक वेष धारण करता है। कभी जीव नाच रहा है और कभी सो रहा है। कभी क्रोधी [illegible] है तो कभी शान्त, कभी राजा है तो कभी भिखारी है, कभी [illegible] है तो कभी स्नानी है, कभी आकाश से ऊपर है तो कभी पाताल से नीचे। हे जीव ! अज्ञानता के कारण विषयो [illegible] 'उस' सत्य स्वरूप परमात्मा की पहचान जो प्रत्येक में प्रकाश कर रहा है, इसलिए साधु की संगति में [illegible] गरीब निवाज की कृपा की याचना करके अपने मन तन को नाम-रंग मे रंग ले। इस प्रकार ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करके अपनी ज्योति को परम ज्योति से मिला ले जैसे पानी पानी में मिल जाता है ॥११॥

सलोकु ॥

सुखी बसै मसकीनीआ
आपु निवारि तले ॥
बडे बडे अहंकारीआ
नानक गरबि गले ॥१॥

"गरीब स्वभाव वाला सदैव सुखी है।"

सुखी बसता है विनम्र (गरीबी धारण करने वाला) जो आपा भाव निवृत (दूर) करके सबके नीचे रहता है। (किन्तु) जो अहकार करने वाले बडे-बडे (अहंकारी) हैं वे, हे नानक ! (रावण और दुर्योधन जैसे) अहंकार मे गलते हैं अथवा योनियो मे (सर) गल कर नाश हो जाते हैं ॥१॥

असटपदी ॥

"हे प्राणी ! अभिमान किसका करता है ?"

जिसकै अंतरि राज अभिमानु ॥
सो नरक पाती होवत सुआनु ॥

जिस पुरुष के (मन) अन्दर राज्य का अभिमान है, वह नरकों में पड़ने वाला कुत्ता होता है। जो जानता है कि मैं यौवन

जो जानै मैं जोबनवंतु ॥
सो होवत बिसटा का जंतु ॥
आपस कउ करमवंतु कहावै ॥
जनमि मरै बहु जोनि भ्रमावै ॥
धन भूमि का जो करै गुमानु ॥
सो मूरखु अंधा अगिआनु ॥
करि किरपा जिसकै
हिरदै गरीबी बसावै ॥
नानकईहामुकतुआगैसुखपावै ॥१॥

वाला भाव: अत्यन्त सुन्दर हूँ, वह बिष्ठा(पाखाना)का ही कीड़ा होता है। जो अपने आपको(शुभ)कर्मों का करने वाला कहलाता है, वह जन्मता है, मरता है और बहुत योनियों में (बारम्बार) भटकता रहता है। जो धन और भूमि का गर्व करता है, वह मूर्ख है, अन्धा है और अज्ञानी है। (किन्तु) जिसके हृदय में (प्रभु) कृपा करके विनम्रता (गरीबी का भाव) बसाता है, (वह गरीब और मसकीन) हे नानक ! यहाँ (इस लोक में) मुक्त है और आगे जाकर, (वहाँ परलोक में भी) सुख प्राप्त करता है ॥१॥

धनवंता होइ करि गरबावै ॥
तृण समानि कछु संगि न जावै ॥
बहु लसकर मानुख
ऊपरि करे आस ॥
पल भीतरि ता का होइ बिनास ॥
सभ ते आप जानै बलवंतु ॥
खिन महि होइ जाइ भसमंतु ॥
किसै न बदै आपि अहंकारी ॥
धरमराइ तिसु करे खुआरी ॥
गुरप्रसादिजाकामिटैअभिमानु ॥
सो जनु नानक दरगहपरवानु ॥२॥

धनवान होकर जो(धन का) अभिमान करता है,(अरे जीव ! याद रहे) तिनके के तुल्य भी (हाँ) कुछ भी नहीं मरने के बाद (तुम्हारे) साथ जायेगा। बहुत लश्कर और मनुष्यों के ऊपर जो कोई आशा या भरोसा करता है, (अरे जीव !) पल भर में उसका नाश हो जाएगा। जो (जीव) अपने आप को सब से बलवान जानता है, वह क्षण भर में भस्म हो जाएगा। जो जीव अहंकारी है और अपने बराबर किसी की परवाह नहीं करता, धर्मराज (अन्त में) उसकी खुआरी (बदनामी) करता है (अर्थात उसको दण्ड देता है)। (किन्तु) जिसका अभिमान गुरु की कृपा से मिट गया है, हे नानक ! वही सेवक, हरि की दरबार में प्रामाणित (स्वीकृत) होता है ॥२॥

कोटि करम करै हउ धारे ॥
स्रमु पावै सगले बिरथारे ॥
अनिक तपसिआ करे अहंकार ॥
नरक सुरग फिरि फिरि अवतार ॥
अनिकजतन करि आतम नही द्रवै ॥
हरि दरगाह कहु कैसे गवै ॥

(चाहे कोई) करोड़ो (शुभ) कर्म अहंकार धारण करके करे तो जितना वह परिश्रम करता है, सब व्यर्थ है। (चाहे कोई) अनेक (कठिन) तपस्याएँ करे, किन्तु यदि (उसका) अहंकार करता है, तो वह नरक या स्वर्ग भोग कर बारम्बार जन्म धारण करता है। (यदि कोई) अनेक यत्न करने से भी अपना हृदय द्रवीभूत (नर्म) नहीं करता है, तो कहो वह कैसे हरि की दरबार की ओर जाएगा ? जो अपने आपको भला कहलवाता है, उसके

आपस कउ जो भला कहावै ॥
तिसहि भलाई निकटि न आवै ॥
सरब की रेन जा का मनु होइ ॥
कहु नानक ताकी निरमलसोइ ॥३॥

निकट भलाई आतीही नहीं ।(क्योंकि उसकी अन्तवृति स्वार्थमयी होती हैं)। जिसका मन सब की धूलि हो जाता है भावः नम्रता धारण करता है, कहो, हे नानक ! उसी की शोभा निर्मल (अहम रूपी मल से रहित) होती है ॥३॥

जब लगु जानै मुझ ते कछु होइ ॥
तब इस कउ सुखु नाही कोइ ॥
जब इह जानै मैं किछु करता ॥
तब लगु गरभ जोनि महि फिरता ॥
जब धारै कोऊ बैरी मीतु ॥
तब लगु निहचलु नाही चीतु ॥
जब लगु मोह मगन संगि माइ ॥
तब लगु धरमराइ देइ सजाइ ॥
प्रभ किरपा ते बंधन तूटै ॥
गुर प्रसादि नानक हउ छूटै ॥४॥

जब तक (यह 'मैं' 'मैं' वाला मनुष्य) जानता है कि मुझ से (सब) कुछ होता है (अर्थात मैं सब कुछ कर सकता हूँ), तब तक इसको कोई सुख प्राप्त नही होता है। जब तक (यह अहकारी मनुष्य) जानता है कि 'मैं' कुछ करता हूँ, तब तक वह गर्भ योनियों में भटकता फिरता है। जब तक (यह वैरी मनुष्य) किसी को (शत्रु और किसी को मित्र समझकर ऐसा भाव) धारण करके रखता है, तब तक उसका चित्त निश्चल नही होता। जब तक (यह मायाग्रस्त मनुष्य) माया मोह में मस्त है, तब तक धर्मराज इसे दण्ड देता है। (किन्तु) जब प्रभु की कृपा होती है तो (ऐसे अहंकारी, वैरी, मायाधारी मनुष्य के) बन्धन टूटते हैं।
(पर) हे नानक ! (केवल) गुरु की कृपा से अहंकार छूटता है (भावः प्रभु की कृपा से ही गुरु मिलता है, गुरू की कृपा से अहंकार छूटता है और अहंकार निवृत होते ही दोनो की कृपा से परम पदवी प्राप्त होती है) ॥४॥

सहस खटे लख कउ उठि धावै ॥
तृपति न आवै माइआ पाछै पावै ॥
अनिक भोग बिखिआ के करै ॥
नह तृपतावै खपि खपि मरै ॥
बिना संतोख नही कोऊ राजै ॥
सुपन मनोरथ ब्रिथे सभ काजै ॥
नाम रंगि सरब सुखु होइ ॥
बडभागी किसै परापति होइ ॥
करन करावन आपे आपि ॥
सदा सदा नानक हरि जापि ॥५॥

(मायाग्रस्त मनुष्य) जब हजारों (रुपये) कमा लेता है, तब लाखों (रुपये) कमाने के लिए उठ दौडता है। (इस प्रकार) माया इकट्ठी करता जाता है, फिर भी (इसको) तृप्ति नहीं होती (अर्थात तृष्णा कम नहीं होती। (फिर यह इसी माया से)विषयों के अनेक भोग भोगता है (अर्थात विषयानन्द में लगा रहता है)। (देखो) (भोगो के होते हुए भी यह) तृप्त नही होता, (अपितु और भोग-भोगकर अन्तत) नष्ट-भ्रष्ट होकर मर जाता है। (याद रहे) बिना सन्तोष के कोई भी (जीव) तृप्त नही होता। उसके सभी मनोरथ और सम्पूर्ण कार्य स्वप्न के समान व्यर्थ जाते हैं। (हाँ केवल)नाम के(प्रेम-) रंग में ही सारा सुख प्राप्त होता है, (किन्तु) नाम का यह (प्रेम) रंग किसी विरले भाग्यशाली को प्राप्त होता है। (सब कुछ) करने कराने वाला 'वह' (हरि) स्वयं ही है। (अतएव)हे नानक ! तू 'उस' हरि को ही सदा सर्वदा जप ॥५॥

करन करावन करनैहारु ॥
इस कै हाथि कहा बीचारु ॥
जैसी द्रिसटि करे तैसा होइ ॥
आपे आपि आपि प्रभु सोइ ॥
जो किछु कीनो सु अपनै रंगि ॥
सभ ते दूरि सभहू कै संगि ॥
बूझै देखै करै बिबेक ॥
आपहि एक आपहि अनेक ॥
मरै न बिनसै आवै न जाइ ॥
नानक सद ही रहिआ समाइ ॥६॥

करने वाला और कराने वाला 'वह' करणहार प्रभु ही है। इस (जीव) के हाथ में क्या है? विचार करके देखो। (इस (जीव) के हाथ में क्या है?) आप ही विचार कर लो। जीव! कुछ भी नहीं है। (प्रभु) (जीव पर) जैसी दृष्टि करता है, वह वैसा ही हो जाता है। 'वह' प्रभु सब कुछ स्वयं ही आप है, (हाँ) वह' (सब कुछ) आप है। जो कुछ 'उसने' किया है, (वह) अपनी मौज में किया है। 'वह' सब से न्यारा (दूर) है और सब के संग भी है। 'वह' समझता है, देखता है और विचार (निर्णय) भी करता है। 'वह' स्वयं ही एक है और स्वयं ही अनेक (हो रहा) है। 'वह' न मरता है, न विनाश होता है, न आता है और न (कभी) जाता है।

हे नानक ! 'वही' प्रभु सदा ही (निरन्तर) समा रहा है।।६।।

आपि उपदेसै समझै आपि ॥
आपे रचिआ सभ कै साथि ॥
आपि कीनो आपन बिसथारु ॥
सभु कछु उस का ओहु करनैहारु ॥
उस ते भिंन कहहु किछु होइ ॥
थान थनंतरि एकै सोइ ॥
अपुने चलित आपि करणैहार ॥
कउतक करै रंग आपार ॥
मन महि आपि मन अपुने माहि ॥
नानक कीमति कहनु न जाइ ॥७॥

'वह' (प्रभु) स्वयं ही (गुरु रूप होकर) उपदेश करता है और स्वयं ही (शिष्य रूप होकर) समझता है, क्योंकि 'वह' स्वयं ही सबके साथ (व्यापक रूप में) व्याप्त हो रहा है। यह समस्त रचना 'उसी' का ही विस्तार अथवा पसारा है जो 'उसने' स्वयं किया है। (हाँ) करने वाला (रचने वाला) 'वही' है तथा (रचा हुआ) सब कुछ 'उसी' का है 'उसके' बिना बताए, अन्य कुछ है ?

(देश-प्रदेश) सभी जगह 'वही' एक (परिपूर्ण) है। अपने कौतुक (खेल) 'वह' स्वयं करने वाला है, (हाँ) वही कौतुक करता है जिसके रंग अपार हैं। (सब जीवों के) मनों में 'वह' स्वयं (बस रहा) है और सब (जीवों) के मन 'उसमें' (बस रहे) हैं।

हे नानक ! 'उसकी' कीमत कही नहीं जा सकती (अर्थात् 'उसका' मूल्यांकन नहीं किया जा सकता)।।७।।

सति सति सति प्रभु सुआमी ॥
गुर परसादि किनै वखिआनी ॥
सचु सचु सचु सभु कीना ॥
कोटि मधे किनै बिरलै चीना ॥
भला भला भला तेरा रूप ॥
अति सुंदर अपार अनूप ॥

'वह' प्रभु, 'वह' (हमारा) स्वामी सत्य है, (हाँ) सत्य है। (यह बात भी) किसी (विरले) ने ही वर्णन की है (किन्तु जिसने की है) गुरु की कृपा से (की है)।

(जो कुछ) 'उसने' किया है, वह भी सब सत्य है, सत्य है, (हाँ) सत्य है। ('उस' सत्य स्वरूप स्वामी को) करोड़ों में किसी विरले ने ही जाना है (अनुभव किया है)।

(हे सत्य स्वरूप प्रभु !) भला है, भला है, (हाँ) भला है तेरा रूप जो अति सुन्दर है, पार से रहित है और उपमा से भी रहित

निरमल निरमल निरमल तेरी बाणी ॥	(हे अति सुन्दर प्रभु !) निर्मल है, निर्मल है, (हाँ) निर्मल है
घटि घटि सुनी स्रवन बख्याणी ॥	तेरी वाणी (अनाहत शब्द) जो प्रत्येक शरीर में (सर्वत्र) सुनी जाती है और फिर सुनाई जाती है, वर्णन की जाती है, उनको
पवित्र पवित्र पवित्र पुनीत ॥	जिनके कान सुनते हैं (अर्थात् अधिकारी पुरुष)। पवित्र है, पवित्र
नामु जपै नानक मनि प्रीति ॥८॥	है, (हाँ) पवित्र है और पावन हो गया है वह, जो (ऐसे सत्य स्वरूप
१२॥	प्यारे सुन्दर प्रभु का) नाम मन में प्रेम पूर्वक जपता है ॥८॥१२॥

श्लोक एव अष्टपदी (१२) का सारांश

श्लोक — अहंकार का विसर्जन करके हे जीव ! तू प्रभु का सेवक बन तभी सुखी होगा। अहंकारी जीव अहंकार के मद में चूर हो कर नष्ट हो जाते हैं ॥१२॥

अष्टपदी – हे नानक ! तुम्हारा स्वामी सबके निकट है किन्तु सबसे दूर भी। वह एक है और अनेक भी 'वही' है। सब स्थान 'उसी' से परिपूर्ण है। 'उसकी' आज्ञा से ही सब कुछ हुआ करता है। फिर भला हे प्राणी ! अभिमान तू किसका करता है ? यह धन माल तुम्हारा नहीं है। स्वय तुम्हारा बल क्षण भर में नष्ट हो जाएगा। तू केवल अपने आप को [illegible] कहलाता है। दूसरो को भी अपने जैसा समझ। क्रियाओं, [illegible] आदि करने से क्या होगा यदि अहंकार है और माया में मग्न है। ऐसे तो तुम्हारे बन्धन नहीं कटेंगे। तुम्हें नरक स्वर्ग का चक्र बार-बार लगाना होगा। स्मरण रहे, चाहे तू हजारों भी इकट्ठे कर ले तो भी तू लाखों के लिए दौड़ेगा और यदि लाखों भी मिल जाए तो भी तू तृप्त नहीं होगा। हे भाई ! तृप्ति तो केवल सन्तोष धारण करने में है। निर्मल वे हैं जो सबके चरणों की धूलि हैं और चित्तवृति को स्थिर करके 'उस' प्रभु की भक्ति करते हैं। हे प्रभु ! मुझ पर भी कृपा करो। तू ही एक मात्र सत्य है। तुम्हारा रूप अति सुन्दर है। तुम्हारी वाणी अति निर्मल है। तू पवित्र है। हे नानक ! जो प्रभु के नाम को मन में प्रेम पूर्वक जपता है, वह पावन ही पावन हो जाता है।

सलोकु ॥	"सन्त की शरण और सन्त की निन्दा का फल।"
संत सरनि जो जनु परै	जो सन्तों की शरण में आकर पड़ता है, वह सेवक उद्धार
सो जनु उधरनहार ॥	(बचने) योग्य है (भावः छूट जाता है, किन्तु) हे नानक ! जो सन्तों
संत की निंदा नानका	की निन्दा करता है, वह बारम्बार जन्म (मरण) में (आता-
बहुरि बहुरि अवतार ॥१॥	जाता) है ॥१॥

असटपदी ॥

"सन्तों के निन्दकों की दुर्दशा ।"

संत कै दूखनि आरजा घटै ॥
संत कै दूखनि जम ते नही छुटै ॥
संत कै दूखनि सुखु सभु जाइ ॥
संत कै दूखनि नरक महि पाइ ॥
संत कै दूखनि मति होइ मलीन ॥
संत कै दूखनि सोभा ते हीन ॥
संत के हते कउ रखै न कोइ ॥
संत कै दूखनि थान भ्रसटु होइ ॥
संत क्रिपाल क्रिपा जे करै ॥
नानक संत संगि निंदकु भी तरै॥१॥

सन्तों पर दोष लगाने से (निन्दक की) आयु कम होती है। सन्तों पर दोष लगाने से वह यमों से नहीं छूटता। सन्तों पर दोष लगाने से उसका सारा सुख चला जाता है। सन्तों पर दोष लगाने से वह नरक में डाला जाता है। सन्तों पर दोष लगाने से उसकी मति मलीन हो जाती है। सन्तों पर दोष लगाने से वह शोभा से विहीन हो जाता है। सन्त के मारे हुए (अर्थात निन्दक) को कोई भी नही रखता है (अर्थात उसको कोई भी शरण नहीं देता)। सन्तों पर दोष लगाने से जो भी स्थान वह (दोषी) स्पर्श करता है, भ्रष्ट (अर्थात गदा) हो जाता है।

(किन्तु) हे नानक ! कृपालु सन्त यदि कृपा करे तो सन्तों की सगति द्वारा निन्दक भी तर जाता है (निन्दा से बच जाता है) ॥१॥

संत कै दूखन ते मुखु भवै ॥
संतन कै दूखनि काग जिउ लवै ॥
संतन कै दूखनि सरप जोनि पाइ ॥
संत कै दूखनि त्रिगद
जोनि किरमाइ ॥
संतन कै दूखनि त्रिसना महि जलै ॥
संत कै दूखनि सभु को छलै ॥
संत कै दूखनि तेजु सभु जाइ ॥
संत कै दूखनि नीचु नीचाइ ॥
संत दोखी का थाउ को नाहि ॥
नानक सन्त भावै ता ओइ भी
गति पाहि ॥२॥

सन्तों पर दोष लगाने से (दोष लगाने वाले का) मुख तिरछा हो जाता है। सन्तों पर दोष लगाने से वह कौए के समान व्यर्थ बोलता है। सन्तों पर दोष लगाने से वह सर्प की योनि में पाया जाता है। सन्तों पर दोष लगाने से वह (निम्न) योनि कृमि आदि को पाता है। सन्तों पर दोष लगाने से वह तृष्णा रूपी अग्नि में जलता है। सन्तों पर दोष लगाने से वह सभी को छलता रहता है। (अर्थात धोखा देता रहता है) अथवा उसको (काम, क्रोधादि) सारे (विकार) छल लेते हैं। सन्तों पर दोष लगाने से उसका सारा प्रताप चला जाता है। सन्तों पर दोष लगाने से वह नीचों से भी नीच हो जाता है। सन्तों पर दोष लगाने वाले का कोई स्थान विश्राम के लिए नही है (अर्थात कोई भी उसे शरण नहीं देता)।

(किन्तु) हे नानक ! यदि सन्त भाए तो वह (सन्त का दोषी भाव. निन्दक) भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥२॥

संत का निंदकु महा अतताई ॥
संत कानि दिकु खिनु
टिकनु न पाई ॥

सन्तों का निन्दक महा अत्याचारी अथवा पापी होता है। सन्तों का निन्दक क्षण भर के लिए भी विश्राम नहीं पाता है (भाव: भटकता रहता है)। सन्तों का निन्दक महा हत्या करने वाला (भाव खूनी) होता है। सन्तों का निन्दक (स्वयं) परमेश्वर द्वारा मारा

संत का निंदकु महा हतिआरा ॥
संत का निंदकु परमेसुरि मारा ॥
संत का निंदकु राज ते हीनु ॥
संत का निंदकु दुखीआ अरु दीनु ॥
संत के निंदक कउ सरब रोग ॥
संत के निंदक कउ सदा बिजोग ॥
संत की निंदा दोख महि दोखु ॥
नानक संत भावै ता
उस का भी होइ मोखु ॥३॥

हुआ (अर्थात तिरस्कृत) होता है। सन्तों का निन्दक राज्य(भाव तेज प्रताप) से हीन होता है। सन्तों का निन्दक दुःखी और आतुर रहता है। सन्तों के निन्दक को सब रोग(आकर लगते) हैं। सन्तों के निन्दक को सदैव विछोह रहता है। सन्तों की निन्दा(भाव: सब पापों में) महा पाप भाव दोष है। (अर्थात् सन्तों की निन्दा करनी नीचता है)।

(किन्तु) हे नानक! यदि सन्त भाए तो उसका (निन्दक का) भी मोक्ष हो जाता है (अर्थात सन्त की कृपा हो तो निन्दक भी निन्दा से बच जाता है) ॥३॥

संत का दोखी सदा अपवितु ॥
संत का दोखी
किसै का नही मितु ॥
संत के दोखी कउ डानु लागै ॥
संत के दोखी कउ सभ तिआगै ॥
संत का दोखी महा अहंकारी ॥
संत का दोखी सदा बिकारी ॥
संत का दोखी जनमै मरै ॥
संत की दूखना सुख ते टरै ॥
संत के दोखी कउ नाही ठाउ ॥
नानक संत भावैतालएमिलाइ ॥४॥

सन्तो का दोषी सदैव अपवित्र रहता है (अर्थात निन्दा करनी दूसरे को मैल धोनी और लेनी है)। सन्तों का दोषी किसी का मित्र नही बन सकता। सन्तो के दोषी को दण्ड लगता (मिलता) है। सन्तों के दोषी को सभी त्याग देते हैं। सन्तों का दोषी महा अहंकारी होता है। सन्तों का दोषी सदैव विकारी होता है। सन्तों का दोषी (सदैव) जन्मता और मरता रहता है (अर्थात बारम्बार जन्म-मरण के चक्कर में आता जाता रहता है)। सन्तों का दोषी सुखो से हटाया जाता है, (अर्थात सुखों से दूर हो जाता है) सन्तों के दोषी को (कोई भी स्थिर) ठिकाना नही मिलता (अर्थात सहारा नही मिलता)।

(किन्तु) हे नानक! यदि सन्त भाए तो उसको (निन्दक) भी (अपने साथ अथवा परमात्मा के साथ) मिला लेता है ॥४॥

संत का दोखी अध बीच ते टूटै ॥
संत का दोखी
कितै काजि न पहूचै ॥
संत के दोखी
कउ उदिआन भ्रमाईऐ ॥
संत का दोखी उझड़ि पाईऐ ॥

सन्तों का दोषी अर्ध मार्ग, (हाँ) बीच मे से ही टूट जाता है। सन्तों का दोषी किस कार्य में भी पूर्णत. नही उतरता (अर्थात सांसारिक व्यवहार) अथवा कार्य करते हुए भी बीच में ही रह जाता हैं)। सन्तो के दोषी को बियावान (जंगलों) में भटकाया जाता है (अर्थात उसकी समस्त आयु भटकते व्यर्थ चली जाती है)। सन्तो के दोषी को कुमार्ग (गलत) में डाला जाता है। सन्तों का दोषी अन्दर से खाली होता है, जैसे श्वासों के बिना

संत का दोखी अंतर ते थोथा ॥
जिउ सास बिना मिरतक की लोथा ॥
संत के दोखी की जड़ किछु नाहि ॥
आपन बीजि आपे ही खाहि ॥
संत के दोखी कउ अवरु न राखनहारु ॥
नानक संत भावै ता लए उबारि ॥५॥

मृतक की लोथ (काया) होती है (अर्थात मृतक शरीर से कोई भी इच्छा रखनी व्यर्थ है। सन्तो के दोषी की जड़ कुछ भी नहीं (अर्थात उसके जीवन रूप वृक्ष को गिरते हुये विलम्ब नहीं लगता)। वह अपना बोया हुआ बीज आप ही खाता है। सन्तों के दोषी को सन्तों के बिना और कोई भी रखने वाला (बचाने वाला) नहीं है। (किन्तु) हे नानक! यदि सन्तों भाए तो उसको भी (निन्दा से) बचा लेता है ॥५॥

संत का दोखी इउ बिललाइ ॥
जिउ जल बिहून मछुली तड़फड़ाइ ॥
संत का दोखी भूखा नही राजै ॥
जिउ पावकु ईधनि नही ध्रापै ॥
संत का दोखी छुटै इकेला ॥
जिउ बूआड़ु तिलु खेत माहि दुहेला ॥
संत का दोखी धरम ते रहत ॥
संत का दोखी सद मिथिआ कहत ॥
किरतु निंदक का धुरि ही पइआ ॥
नानक जो तिसु भावै सोई थिआ ॥६॥

सन्तों का दोषी ऐसे विलाप (रोता) करता है, जैसे जल के बिना मछली तडपती है। सन्तों का दोषी (सदैव) भूखा है (तृष्णा-ग्रस्त रहता है), (हाँ) वह कभी भी तृप्त नहीं होता जैसे अग्नि ईंधन से तृप्त नहीं होती। सन्तो का दोषी अकेला छोड़ा (फेंका) जाता है, जैसे तिलों की खेती में (पैदा) हुआ तिल का पौधा (व्यर्थ जान कर किसान द्वारा छोडा जाता है) वह खसम के बिना दु:खी होता है। अर्थात निन्दक की कोई भी सहायता नहीं करता कोई भी उसको सुख नही देता वह अकेला परित्यक्त होकर पड़ा रहता है उसकी आयु अकेली और दु:खी व्यतीत होती है) सन्तो का दोषी धर्म से रहित (भाव खाली) होता है। सन्तों का दोषी सदैव झूठ कहता (बोलता) है। निन्दक का यह कर्म (भाव निन्दा करनी) पहले से ही उसके भाग्य में (लिखा) पड़ा है।
हे नानक! जो 'उस' (प्रभु) को भाता है, वही होता है ॥६॥

संत का दोखी बिगड़ रूपु होइ जाइ ॥
संत के दोखी कउ दरगह मिलै सजाइ ॥

सन्तो का दोषी विकराल रूप वाला (अर्थात कुरूप) हो जाता है। सन्तों के दोषी को (हरि की) दरबार में सजा मिलती है। सन्तों के दोषी को सदैव तरसाया जाता है (अर्थात दु:खी किया जाता है)। सन्तों का दोषी न मरता है और न जीवितों में होता है।

संत का दोखी सदा सहकाईऐ ॥
संत का दोखी न मरै न जीवाईऐ॥
संत के दोखी की पुजै न आसा ॥
संत का दोखी उठि चलै निरासा॥
संत कै दोखि न त्रिसटै कोइ ॥
जैसा भावै तैसा कोई होइ ॥
पइआ किरतु न मेटै कोइ ॥
नानक जानै सचा सोइ ॥७॥

(अर्थात जन्म-मरण में ही लटकता रहता है)। सन्तों के दोषी की आशा (कदाचित) पूर्ण नहीं होती। सन्तों का दोषी (संसार से) निराश ही चला जाता है। सन्तों पर दोष लगाने से कोई भी स्थिति नही पाता, (भाव टिकता नहो), क्योंकि जैसी भावना होती है, वैसा ही हो जाता है।(नियम है जैसी नीयत होगी वैसा स्वभाव बन जाता है) जैसे निन्दक को निन्दा प्रिय लगती है तो वह निन्दक बन जाता है)। जो कर्मों में पड़ा (लिखा) हुआ है उसे कोई भी मिटा नहीं सकता है। हे नानक ! 'वह' सत्य स्वरूप (विधाता ही इस भेद को) जानता है ॥७॥

सभ घट तिस के ओहु करनैहारु ॥
सदा सदा तिस कउ नमसकारु ॥
प्रभ की उसतति करहु दिनु राति ॥
तिसहि धिआवहु सासि गिरासि ॥
सभु कछु वरतै तिसका कीआ ॥
जैसा करे तैसा को थीआ ॥
अपना खेलु आपि करनैहारु ॥
दूसर कउनु कहै बीचारु ॥
जिसनोकृपाकरैतिसुआपननामुदेइ ॥
बडभागी नानक जनसेइ ॥८॥१३॥

सभी शरीर (भाव जीव) 'उस' प्रभु के (उत्पन्न किये हुए) हैं। 'वही' (सब कुछ) करने वाला है। (अतएव) हे जीव ! तू सदा सर्वदा 'उसको' नमस्कार कर। (हे प्यारे !) प्रभु की स्तुति तू दिन रात (अर्थात आठ ही प्रहर) कर। श्वास लेते हुए और भोजन खाते हुए 'उसका' ध्यान कर, क्योंकि सब कुछ 'उसका' किया हुआ बरत् (हो) रहा है। जैसा 'वह' है, वैसा ही हो जाता है। (जगत) 'उसका' अपना खेल (कौतुक) है, 'वह' आप ही (उस खेल को) करने वाला है। (भाव: रचना रचने वाला है)। दूसरा कौन 'उसके' विषय में विचार कर (कथन कर) सकता है ? 'वह' जिस पर कृपा करता है, उसको अपना नाम रूपी दान दे देता है अत: हे नानक ! वे (नाम जपने वाले) सेवक बड़े भाग्य-शाली हो जाते हैं ॥८॥१३॥

श्लोक एव अष्टपदी (१३) का सारांश

श्लोक —सन्तजनों की शरण ग्रहण कर तो हे नानक ! नाम की प्राप्ति हो और तेरा उद्धार भी हो। स्मरण रहे सन्त की निन्दा तो कभी भी नही करनी चाहिए अन्यथा योनियों के चक्कर मे बारम्बार आना पड़ेगा ॥१३॥

अष्टपदी— हे भाई ! तत्ववेत्ता ब्रह्मज्ञानी सन्तों की निन्दा कदाचित नही करना, क्योंकि सन्तों को सताने वाले, निन्दा करने वाले की बुद्धि मलिन होती है, ऊँचे आसन से गिर पड़ता है, सुखो से दूर हो जाता है, धर्म भ्रष्ट हो जाता है, तृष्णा में जलता है, उसकी कोई आशा पूर्ण नहीं होती तथा निराश होकर यहाँ से जाता है और विष्ठा का कीडा होता है। किन्तु प्रभु की कृपा द्वारा सन्तों की संगति में आने से ऐसे निन्दक भी भव-सागर से पार हो जाते हैं, (हाँ) उनका भी उद्धार हो जाता है। हे मेरे कृपालु प्रभु ! सब जीव तुम्हारे हैं। तू ही करणहार है। सदा सर्वदा तुमको नमस्कार है। काश ! मैं प्रतिदिन तुम्हारी स्तुति करूँ, श्वास-प्रश्वास तुम्हारा ध्यान धारण करूँ। हे कृपालु प्रभु ! कृपया मुझ दीन पर भी अपनी कृपा द्रष्टि करो।

सलोकु ॥

तजहु सिआनप सुरि जनहु
सिमरहु हरि हरि राइ ॥
एक आस हरि मनि रखहु
नानक दूखु भरमु भउ जाइ ॥१॥

"परमेश्वर के बिना किसी पर आस न रख।"

हे भले पुरुषों ! चतुराईयां छोड़ो और हरि हरि राजा का स्मरण करो। केवल 'उस' हरि की मन में आस रखो (तभी तुम्हारे) हे नानक ! दुःख, भ्रम और भय दूर हो जायेंगे ॥१॥

असटपदी ॥

मानुख की टेक ब्रिथी सभ जानु ॥
देवन कउ एकै भगवानु ॥
जिस कै दीऐ रहै अघाइ ॥
बहुरि न त्रिसना लागै आइ ॥
मारै राखै एको आपि ॥
मानुख कै किछु नाही हाथि ॥
तिस का हुकमु बूझि सुखु होइ ॥
तिस का नामु रखु कंठि परोइ ॥
सिमरि सिमरि सिमरि प्रभु सोइ ॥
नानक बिघनु न लागै कोइ ॥१॥

"मनुष्य की टेक व्यर्थ जानकर मन में केवल एक हरि का आधार रख।"

मनुष्य की टेक (सहारा) सब व्यर्थ जानो (क्योंकि मनुष्य स्वयं भिखारी है, दाता नहीं है)। देने वाला एक (दाता) भगवान ही (समर्थ) है। जिसके देने से (जीव ऐसा) तृप्त हो जाता है कि फिर उसे तृष्णा नहीं लगती। मारता भी एक 'वही' (भगवान) आप है और रक्षा भी वही (एक) करता है। मनुष्य के हाथ में कुछ भी नहीं है। (अतएव हे जीव !) 'उसका' हुकम पहचानो तो (तुम्हें सदैव) सुख प्राप्त हो। 'उस' (भगवान) का नाम गले में (हृदय में) पिरोकार रखो (अर्थात नाम ऐसा जापे कि फिर विस्मृत न हो)।

'उस' प्रभु का (बैठते-ऊठते, सोते-जागते) सदैव स्मरण करो, (हाँ) स्मरण करो। इस प्रकार हे नानक ! स्मरण करने से (जीवन की यात्रा में) कोई भी विघ्न नहीं पड़ता ॥१॥

उसतति मन महि करि निरंकार ॥
करि मन मेरे सति बिउहारु ॥
निरमल रसना अंम्रितु पीउ ॥
सदा सुहेला करि लेहि जीउ ॥
नैनहु पेखु ठाकुर का रंगु ॥
साध संगि बिनसै सभ संगु ॥
चरन चलउ मारगि गोबिंद ॥
मिटहि पाप जपीऐ हरि बिंद ॥
कर हरि करम स्रवनि हरि कथा ॥
हरि दरगह नानक ऊजल मथा ॥२॥

मन में निराकार (परमात्मा) की स्तुति कर। अरे मेरे मन ! तू यह सत्य व्यवहार कर। नाम रूपी अमृत पी और (अपनी) रसना को निर्मल रख। (इस प्रकार) तू अपनी जीवात्मा को सुखी कर ले। आँखों से तू ठाकुर का रंग (जगत-तमाशा) देख। साधु की संगति द्वारा बुरी संगति सब नाश हो जाती है। चरणों से गोबिन्द के मार्ग पर चल। (हे भाई !) हरि का नाम थोड़ा सा भी जपने से पाप मिट जाते हैं। हाथों से हरि के (भाव: सेवा) कर्म कर और कानों से हरि की कथा (भाव: यश) सुन।

ऐसा (व्यवहार जीवन में) करने से हे नानक ! (तुम्हारा) माथा (मुख) हरि की दरबार में उज्ज्वल होगा ॥२॥

वडभागी ते जन जग माहि ।।
सदा सदा हरि के गुन गाहि ।।
राम नाम जो करहि बीचार ।।
से धनवंत गनी संसार ।।
मनि तनि मुखि बोलहि हरि मुखी ।।
सदा सदा जानहु ते सुखी ।।
एको एकु एकु पछानै ।।
इत उत की ओहु सोझी जानै ।।
नाम संगि जिस का मनु मानिआ ।।
नानक तिनहि निरंजनु जानिआ ।।३।।

(इस) जगत में बड़े भाग्य वाले (सौभाग्यशाली) हैं वे सेवक जो सदा सर्वदा हरि के गुण गाते हैं। (हाँ) जो रामनाम की विचार करते हैं, उन्हें (इस) संसार में (असली) धनवान गिनो। प्रमुख व्यक्ति (उत्तम पुरुष) हैं वे जो मन, तन एवं मुख से हरि हरि उच्चारण करते हैं अथवा जो प्रमुख (प्रभु) का नाम उच्चारण करते हैं (अर्थात जो विचारों, वचनों और कर्मों में ईश्वर का ध्यान करते हैं), उनको ही सदा सर्वदा सुखी और मुखी (श्रेष्ठ) जान लो। जो केवल एक अद्वितीय परमेश्वर को ही (समस्त रचना में) पहचान लेता है, वह पुरुष लोक परलोक की, (हाँ) सब सोझी (ज्ञान) पा लेता है। जिसका मन नाम के साथ विश्वस्त हो गया है, हे नानक! उसी (जन) ने माया से रहित निरंजन परमात्मा को जान लिया है ।।३।।

गुर प्रसादि आपन आपु सुझै ।।
तिस की जानहु त्रिसना बुझै ।।
साध संगि हरि हरि जसु कहत ।।
सरब रोग ते ओहु हरि जनु रहत ।।
अनदिनु कीरतनु केवल बख्यानु ।।
गृहसत महि सोई निरबानु ।।
एक ऊपरि जिसु जन की आसा ।।
तिसकी कटीऐ जम की फासा ।।
पारब्रहम की जिसु मनि भूख ।।
नानक तिसहि न लागहि दूख ।।४।।

गुरु की कृपा से जो अपने आप को समझ लेता है, उसकी सब तृष्णा जानो (मानो) मिट गई है। जो (जीव) साधु की संगति में (बैठकर) हरि हरि का यश कहता है, वह हरि का सेवक विकारों रूपी सब रोगों से रहित हो जाता है। जो रात-दिन (प्रतिदिन) केवल हरि संकीर्तन का उच्चारण करता है वही (ग्रहस्थी) गृहस्थ में माया से निर्लिप्त (मुक्त) है। जिस सेवक की एक अद्वितीय परमेश्वर के ऊपर आस है, उसकी यम (मार्ग) की फांसी कट जाती है। जिसके मन में परब्रह्म के दर्शन की भूख है, हे नानक! उसको (ग्रहस्थ में) कोई भी दुःख नहीं लगता (अर्थात वह हर अवस्था में 'उसका' हुकम मानकर गृहस्थ में रहता हुआ कर्तव्यों की पालना करता है) ।।४।।

जिस कउ हरि प्रभु मनि चिति आवै ।।
सो संतु सुहेला नही डुलावै ।।
जिसु प्रभु अपुना किरपा करै ।।
सो सेवकु कहु किस ते डरै ।।
जैसा सा तैसा द्रिसटाइआ ।।
अपुने कारज महि आपि समाइआ ।।

जिस (जन) के मन में, (हाँ) चित्त में हरि प्रभु आकर बसता है, वही सन्त है; वही सुखी है और वह (कभी भी) चलायमान नहीं होता (अर्थात उसका मन सदा स्थिर हो जाता है)। (जिस (जन) पर प्रभु अपनी कृपा करता है, वह सेवक बताओ किससे डरेगा? (उसको तो) जैसा (प्रभु) था, वैसा ही दिखाई पड़ा है, (अर्थात उसको परमेश्वर) अपने (सांसारिक) कार्य में स्वयं समाहित दिखाई पड़ गया है। ऐसा सेवक ढूंढते, विचारते, निर्णय करते-करते (भाव खोज में) सफल हो गया है। (हाँ) गुरु की कृपा से उसने सब

सोचत सोचत सोचत सीझिआ ॥
गुर प्रसादि ततु सभु बूझिआ ॥
जब देखउ तब सभु किछु मूलु ॥
नानक सो सूखमु सोई असथूलु ॥५॥

तत्व भाव: सिद्धांत रूप प्रभु को जान लिया है। जब भी वह देखता हैं तब उसे ऐसा प्रतीत होता है कि 'वह' (प्रभु ही) समस्त सृष्टि का मूलाधार या कारण है।

हे नानक ! 'वही' (एक) सूक्ष्म (भाव: चैतन्य रूप निर्गुण) है और वही स्थूल (भाव: सूक्ष्म रूप सगुण) है (अर्थात 'वही' बीज है और 'वही' हरा-भरा वृक्ष है) ॥५॥

नह किछु जनमै नह किछु मरै ॥
आपन चलितु आप ही करै ॥
आवनु जावनु द्रिसटि अनद्रिसटि ॥
आगिआकारी धारी सभ स्रिसटि ॥
आपे आपि सगल महि आपि ॥
अनिक जुगति रचि थापि उथापि ॥
अबिनासी नाही किछु खंड ॥
धारण धारि रहिओ ब्रहमंड ॥
अलख अभेव पुरख परताप ॥
आपि जपाए त नानक जाप ॥६॥

(वास्तव में) न कुछ जन्मता है और न कुछ मरता है। (परमेश्वर)अपना कौतुक आप ही कर रहा है। आना-जाना भाव: जन्म-मरण, दृश्यादृश्य (स्थूल, सूक्ष्म वस्तुएं) और सारी (जीव) सृष्टि (प्रभु ने) अपनी आज्ञा में धारण कर रखी है (अर्थात सम्पूर्ण सृष्टि प्रभु ने अपने हुकम में रखी हुई हैं)। 'वह' स्वयं तो अपने (सहारे) है किन्तु सब में (व्यापक भी) आप ही हैं। 'वह' अनेक युक्तियों से बना कर, टिका कर और पुन: लय करता है। किन्तु स्वयं नाश रहित—अविनाशी है और न 'उसका' कोई खण्ड ही खण्डन किया जा सकता है। 'उसने' सारे ब्रह्मांड को धारण कर रखा है। 'वह' आदि पुरुष अलक्ष्य है क्योंकि 'वह' देखा नहीं जा सकता।(हाँ)'उसका' भेद पाया नही जा सकता क्योंकि अभेद है। 'वह' अपने प्रताप से प्रज्जवलित हो रहा है अथवा 'उसका' प्रताप जाना नही जा सकता।

(हे नानक ! अपना नाम भी जब 'वह' स्वयं जपाता है, तो (जीव से) जपा जाता है ॥६॥

जिन प्रभु जाता सु सोभावंत ॥
सगल संसारु उधरै तिन मंत ॥
प्रभ के सेवक सगल उधारन ॥
प्रभ के सेवक दूख बिसारन ॥
आपे मेलि लए किरपाल ॥
गुर का सबदु जपि भए निहाल ॥
उन की सेवा सोई लागै ॥
जिस नो क्रिपा करहि बड भागै ॥
नामु जपत पावहि बिस्रामु ॥
नानक तिन पुरख कउ
ऊतम करि मानु ॥७॥

जिन्होंने (मेरे) प्रभु को जान लिया है, वे शोभायमान हुए हैं और केवल उनके वचनों द्वारा ही समस्त संसार का उद्धार होता है। प्रभु के (ऐसे) सेवक सभी का उद्धार करने वाले होते हैं (क्योंकि प्रभु का नूर उनमें होता है)। प्रभु के सेवक (जीवों के) दु:ख दूर करने वाले होते हैं। (अपने सेवकों को) कृपालु (प्रभु स्वयं) अपने साथ मिला लेता है और (वे सेवक) गुरु का शब्द (जप) जपकर कृतार्थ हो गये हैं (अर्थात इस आनन्द वाली अवस्था वाले हो गये हैं। भाव: स्वयं भवसागर से पार उतरते हैं और अन्य जीवों को भी पार उतारते हैं।) उन(सौभाग्यशाली सेवकों) की सेवा में वे भाग्यशाली लगते हैं, जिन पर (मेरा प्रभु) आप कृपा करता है। (हाँ) नाम जपकर वे विश्राम प्राप्त करते हैं।

हे नानक ! उन पुरुषों को (भाव: नाम जपने वालों को) (सब से) उत्तम करके मानो ॥७॥

जो किछु करै सु प्रभ कै रंगि ॥
सदा सदा बसै हरि संगि ॥
सहज सुभाइ होइ सो होइ ॥
करणैहारु पछाणै सोइ ॥
प्रभ का कीआ जन मीठ लगाना ॥
जैसा सा तैसा द्रिसटाना
जिस ते उपजे तिसु माहि समाए ॥
ओइ सुख निधान उनहू बनि आए ॥
आपस कउ आपि दीनो मानु ॥
नानक प्रभजनु एकोजानु ॥८॥१४॥

वे (उत्तम पुरुष) जो कुछ करते हैं अपने प्रभु के प्रेम-रंग में ही करते हैं। वे अपने हरि (प्रभु) के साथ सदा सर्वदा बसते हैं। उनसे जो कुछ होता है स्वाभाविक ही होता है तथा जो कुछ हो रहा है करने वाले (उत्तम पुरुष) 'उस' (प्रभु) को पहचान लेते हैं। प्रभु का किया हुआ (भाव हुकम) ऐसे सेवकों को मीठा लगता है। क्योंकि प्रभु जैसा है वैसा ही उन (सेवकों) को दिखता है। (यह सब कुछ यथार्थ रूप में उन्हें दिखाई देने लगता है)। वे जिस (परमेश्वर) से उत्पन्न हुए हैं, 'उसी' में समाए (लीन) रहते हैं। वे सुखों के भंडार हो जाते हैं अथवा वे सुखों के भंडार—परमेश्वर से उनकी बन आती है (अर्थात यह पदवी उनको ही शोभा देती है)। अपने सेवकों को सम्मान देकर परमेश्वर ने स्वयं ही अपने आपको बड़ाई दी है। हे नानक! प्रभु और प्रभु के सेवक को एक ही करके जानो ॥८॥१४॥

श्लोक एवं अष्टपदी (१४) का सारांश

श्लोक—सब चतुराइयों का त्याग करके, हे भद्र पुरुष! तू केवल हरि परमात्मा का स्मरण कर। सभी आशाओं को छोड़कर केवल हरि की आस अपने मन में रख। ऐसा करने से तुम्हारे सब दुःख भ्रम, भयादि नष्ट हो जायेंगे ॥१४॥

अष्टपदी—जिनको परमात्मा की भूख है, उनको कोई भी दुःख नहीं है। वे 'उस' एक से विमोहित हैं, वे 'उस' एक ही की आस रखते हैं, एक का जाप करते हैं और 'उस' एक के अनेक रूप-रंग देखकर 'उसकी' आज्ञा मानकर, 'उसके' मार्ग पर चलकर सत्य व्यवहार करते हैं। वे अपने मन में 'उसका' विचार रखते हैं, 'उसका' नाम मन में पिरो कर रखते हैं और जिह्वा से निर्मल नाम का अमृत पीते हैं। ऐसे सेवक दूसरा सब संग त्याग देते हैं, इसलिए वे किसी भी मनुष्य पर टेक नहीं रखते।

वे समस्त सृष्टि को 'उस' एक की आज्ञाकारी देखते हैं। इस प्रकार वे भ्रम, विघ्न, दुःख, भय, पाप, तृष्णादि को मिटाकर अपने आप को शक्तिमान परमेश्वर के प्रति अर्पण करते हैं। ऐसे विनीत प्रेमीजन यम की फाँसी काट देते हैं और सदैव सुखी और कृतार्थ होकर एक अलक्ष्य, निरंजन परमात्मा के सहवास में विश्राम प्राप्त करते हैं।

सलोकु ॥

सरब कला भरपूर प्रभ
बिरथा जाननहार ॥
जा के सिमरनि उधरीऐ
नानक तिसु बलिहार ॥१॥

"प्रभु सर्व-कला सम्पन्न है। 'उसके' स्मरण मात्र से जीव का उद्धार होता है।"

प्रभु सब शक्तियों से भरपूर है और (सबके मन की) पीड़ा (हार्दिक दुःख) को जानने वाला है। जिस (शक्ति सम्पन्न प्रभु) के स्मरण करने से उद्धार हो जाता है,

हे नानक! 'उसके' ऊपर (सदैव) बलिहारी जाना चाहिये। ॥१॥

असटपदी ॥

"प्रभु के बिना अन्य सब कूड़ है"

टूटी गाढनहार गोपाल ॥
सरब जीआ आपे प्रतिपाल ॥
सगल की चिंता जिसु मन माहि ॥
तिस ते बिरथा कोई नाहि ॥
रे मन मेरे सदा हरि जापि ॥
अबिनासी प्रभु आपे आपि ॥
आपन कीआ कछू न होइ ॥
जे सउ प्रानी लोचै कोइ ॥
तिसु बिनु नाही तेरै किछु काम ॥
गति नानक जपि एकहरिनाम ॥१॥

जो टूटे हुए जीव हैं, उनको जोड़ने वाला (मेरा) गोपाल है। सब जीवों की प्रतिपालना करने वाला भी 'वही' (एक) है। जिस (प्रभु) के मन में सब (जीवों) की (सार संभाल करने की) चिन्ता है, 'उससे' कोई भी खाली नहीं (लौटता) है। (इसलिये) हे मेरे मन! तू सदैव 'उस' हरि (गोपाल) का जाप कर जो अविनाशी प्रभु है और आप ही आप है (भावः और कोई उसके बराबर नहीं है)। 'उस' (प्रभु की सहायता) के बिना जो भी यह प्राणी स्वयं करता है, उससे कुछ भी नहीं होता, चाहे वह सैकड़ों बार इच्छा करे। 'उस' (की सहायता) के बिना अन्य कोई भी सम्बन्धी तुम्हारे कुछ काम नहीं आयेगा।

हे नानक ! यदि अपनी गति (मुक्ति) चाहता है तो (हे प्राणी !) तू एक अद्वितीय हरि के नाम को (सदैव) जप ॥१॥

रूपवंतु होइ नाही मोहै ॥
प्रभ की जोति सगल घट सोहै ॥
धनवंता होइ किआ को गरबै ॥
जा सभु किछु तिसका दीआ दरबै ॥
अति सूरा जे कोऊ कहावै ॥
प्रभ की कला बिना कह धावै ॥
जे को होइ बहै दातारु ॥
तिसु देनहारु जानै गावारु ॥
जिसु गुरप्रसादि तूटै हउ रोगु ॥
नानक सो जनु सदा अरोगु ॥२॥

(यदि कोई) रूप वाला (सुन्दर) हो, तो वह यह न समझे कि मै (अपनी सुन्दरता द्वारा जगत को) मोहित कर रहा हूँ, बल्कि वह यह समझे (कि मेरी सुन्दरता नही) प्रभु की ज्योति है, क्योंकि सभी जीवो में 'उसी' की ज्योति (सुन्दरता) सुशोभित है। (अतः सुन्दरता का फिर भला कैसा अभिमान)? धनाढ्य होकर भला अहंकार कोई क्यों करे, जब कि सब कुछ, सारा धन ही 'उस' प्रभु का दिया हुआ है। यदि कोई अपने आपको अति शूरवीर कहलाता है, तो 'वह' प्रभु की शक्ति के बिना कहां दौड़ सकता है? (अर्थात 'उसी' की चेतन-सत्ता (आत्मा के कारण) से हम चल फिर सकते हैं। यदि कोई (दानी पुरुष अपने आप में) दाता बनकर बैठ जाता है, तो (वास्तविक) दाता (भावः प्रभु) उसको मूर्ख जानता है। गुरु की कृपा से जिसका अहंकार रूपी रोग नाश हो जाता है, हे नानक ! वह सेवक सदैव निरोग रहता है ॥२॥

जिउ मंदर कउ थामै थंमनु ॥
तिउ गुरका सबदु मनहि असथंमनु ॥

जैसे किसी मन्दिर (मकान) को स्तम्भ (थंबा) रोककर रखता है, वैसे (इन्सान के) मन को गुरु का शब्द रोककर रखता

जिउ पाखाणु नाव चड़ि तरै ॥
प्राणी गुर चरण लगतु निसतरै ॥
जिउ अंधकार दीपक परगासु ॥
गुरदरसनु देखि मनि होइ बिगासु ॥
जिउ महाउदिआनमहि मारगुपावै ॥
तिउ साधूसंगिमिलि जोतिप्रगटावै ॥
तिन संतन की बाछउ धूरि ॥
नानक की हरि लोचा पूरि ॥३॥

है (अर्थात गुरु का शब्द मन के लिये खंबा है)। जैसे पत्थर बेड़ी में चढ़ने से तर जाता है, वैसे प्राणी गुरु के चरणों में लगकर (भव-सागर से) पार हो जाता है। जैसे अन्धकार में दीपक (सब कुछ) प्रकाशित कर देता है, वैसे गुरु का दर्शन इस (जीव के) मन को (अज्ञानता और चिन्ताओं से मुक्त करके) विकसित (आनन्दित) कर देता है। जैसे महा जंगल में कोई मार्ग ढूंढ ले, वैसे साधु संगति में मिलकर आत्मज्ञान का साक्षात प्रकाश हो जाता हैं, (भाव: उसका जीवन मार्ग सीधा, साफ और प्रकाशित हो जाता है)। मैं उन (उपरोक्त गुणों वाले) सन्तों की (चरण) धूलि चाहता हूँ हे हरि ! (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक की (यह) इच्छा पूर्ण कर ॥३॥

मन मूरख काहे बिललाईऐ ॥
पुरब लिखे का लिखिआ पाईऐ ॥
दूख सूख प्रभ देवनहारु ॥
अवर तिआगि तू तिसहि चितारु ॥
जो कछु करै सोई सुखु मानु ॥
भूला काहे फिरहि अजान ॥
कउन बसतु आई तेरै संग ॥
लपटि रहिओ रसि लोभी पतंग ॥
राम नाम जपि हिरदे माहि ॥
नानक पति सेती घरि जाहि ॥४॥

हे मूर्ख मन ! तू क्यों विलाप करता है ?(जबकि जो कुछ-कुछ प्राप्त होता है वह) पहले का लिखा हुआ प्राप्त होता है। दुःख और सुख देने वाला प्रभु आप है इसलिए (दुःख निवृति के लिये) दूसरे आसरे छोड़कर, तू उसी (एक) को याद कर। जो कुछ 'वह' (प्रभु) करता है, उसी को सुख करके मान। (फिर भला) मूर्ख बनकर क्यो भूले (भटकते) रहते हो ? कौन सी वस्तु (इस ससार मे) तेरे साथ आई थी, जो तू लोभी पतगे की तरह उसके स्वाद में आसक्त हो रहा है ?

(हे भाई !) (एक) राम के नाम को (अपने) हृदय में जप, ताकि तू अपने घर में मान-प्रतिष्ठा सहित जा सके, हे नानक ! ॥४॥

जिसु वखर कउ लैनि तू आइआ ॥
राम नामु संतन घरि पाइआ ॥
तजि अभिमानु लेहु मन मोलि ॥
राम नामु हिरदे महि तोलि ॥
लादि खेप संतह संगि चालु ॥
अवर तिआगि बिखिआ जंजाल ॥
धंनि धंनि कहै सभु कोइ ॥
मुख ऊजल हरि दरगह सोइ ॥

जिस सौदे को लेने के लिये तू (इस ससार में) आया है, वह राम नाम रूपी सौदा सन्तो के घर में मिलता है। (इसलिए) अभिमान का त्याग कर और मन के मूल्य मे (अर्थात मन के बदले में) तू राम नाम को हृदय मे तोल (परख) ले अथवा मन का मूल्य देकर तू राम नाम ले ले, फिर तू राम नाम (सदैव अपने) हृदय मे तोलता रहेगा। यह बोझा (अर्थात राम नाम रूपी सौदा) यहाँ से लेकर तू सन्तों के संग चल और अन्य सब (कुछ) त्याग दे। (क्योंकि राम नाम के बिना) शेष (सब कुछ) विष रूप और जजाल रूप हैं, (जिनसे छुटकारा दुष्कर होगा)। ऐसा करने से सब कोई तुम्हे धन्य धन्य कहेंगे और तेरा मुख भी हरि की दरबार में उज्ज्वल होगा।

इहु बापारु विरला वापारै ॥
नानक ता कै सद बलिहारै ॥५॥

(किन्तु याद रहे) यह (राम नाम का) व्यापार कलियुग में कोई बिरला ही जीव करता है।

हे नानक ! ऐसे व्यापारी के ऊपर सदैव बलिहारी जाना चाहिए अथवा मैं नानक राम नाम का व्यापार करने वाले व्यापारी के ऊपर सदा बलिहारी जाता हूँ ॥५॥

चरन साध के धोइ धोइ पीउ ॥
अरपि साध कउ अपना जीउ ॥
साध की धूरि करहु इसनानु ॥
साध ऊपरि जाईऐ कुरबानु ॥
साध सेवा वडभागी पाईऐ ॥
साध संगि हरि कीरतनु गाईऐ ॥
अनिक बिघन ते साधू राखै ॥
हरि गुनि गाइ अंम्रित रसु चाखै ॥
ओट गही संतह दरि आइआ ॥
सरब सूख नानक तिह पाइआ ॥६॥

(क्योंकि राम नाम का सौदा केवल साधु-सन्तों के घर में ही प्राप्त होता है, इसलिये हे जीव !)तूस ाधु के चरणों को धो-धोकर (इस अमृत रुपी जल का) पान कर और अपना मन भी साधु को अर्पण कर। साधु की धूलि में (सदा) स्नान कर और साधु के ऊपर सदैव कुर्बान जा।

(किन्तु कलियुग में) साधु की सेवा (का गुण) किसी भाग्य-शाली (जीव) को ही प्राप्त होती है। साधु की संगति में (आकर) हरि का कीर्तन गा। (याद रहे केवल ऐसे सेवक को) साधु अनेक विघ्नों से बचा लेता है और (उसकी संगति में ही) वह फिर हरि के गुण गाता है तथा (हरि नाम का) अमृत रस का रसास्वादन करता है। जिसने सन्तों की ओट (आश्रय) ली है और उसके द्वार पर आकर गिरा है, हे नानक ! उसने ही सारे सुख प्राप्त कर लिए हैं ॥६॥

मिरतक कउ जीवालन हार ॥
भूखे कउ देवत अधार ॥
सरब निधान जा की द्रिसटी माहि ॥
पुरब लिखे का लहणा पाहि ॥
सभु किछु तिस का ओहु करनै जोगु॥
तिसु बिनु दूसर होआ न होगु ॥
जपि जन सदा सदा दिनु रैणी ॥
सभ ते ऊच निरमल इह करणी ॥
करि किरपा जिसकउ नाम दीआ ॥
नानक सो जनु निरमलु थीआ ॥७॥

मृतक को जीवित करने वाला 'वही' (एक मालिक) है और 'वही' भूखे को भी आश्रय देने वाला है। सब सुखों के भण्डार जिसकी दृष्टि के अन्तर्गत हैं, 'उससे जीव पूर्व लिखित कर्मानुसार (कुछ) प्राप्त करता है। सब कुछ 'उसका' है, 'वही' (सब कुछ) करने योग्य है। 'उसके' बिना और कोई (ऐसा समर्थ) न हुआ है और न कभी होगा। हे जन ! तू सदा सर्वदा, (हाँ) दिन रात 'उसको' (नाम को) जप। यह करनी सब साधनों से सर्वोच्च और निर्मल है।

हे नानक ! जिसको 'उस'(परमेश्वर) ने कृपा करके (अपना) नाम दिया है, वही (करनी वाला) सेवक निर्मल हो गया ॥७॥

जा कै मनि गुर की परतीति ॥
तिसु जन आवै हरि प्रभु चीति ॥

जिसके मन में गुरु के लिये (पूर्ण) विश्वास है, उस सेवक के चित्त में हरि प्रभु आकर बसता है। जिसके हृदय में 'वह' एक

भगतु भगतु सुनीऐ तिहु लोइ ॥
जा कै हिरदै एको होइ ॥
सचु करणी सचु ता की रहत ॥
सचु हिरदै सति मुखि कहत ॥
साची द्रिसटि साचा आकारु ॥
सचु वरतै साचा पासारु ॥
पारब्रहमु जिनि सचु करि जाता ॥
नानकसोजनुसचिसमाता ॥८॥१५॥

परमेश्वर बसता है, वह तीनों लोको में भक्त भक्त करके सुना जाता है। (भाव: प्रसिद्ध हो जाता है)। (ऐसे भक्त की) करणी सत्य हो जाती है और रहणी भी सत्य हो जाती है। (अर्थात् उसकी व्यावहारिक जिन्दगी और बाह्य कर्म भी सत्य हो जाते हैं)। उसके हृदय में सच्चा प्रभु बसता है, इसलिये उसके मुख से कहे हुए वचन भी सत्य हो जाते हैं। (ऐसे भक्त की) दृष्टि सच्च वाली है और उसका आकार सत्यरूप है अथवा उसको यह सारा आकार सत्य दिखाई देता, वह सच्च में वरतदा है (अर्थात् लेन-देन का व्यवहार सब सच्च है) और उसका विस्तार भी सच्चा है। जिसने परब्रह्म परमेश्वर को सत्य करके जाना है, हे नानक! वह(भक्त) जन सत्य स्वरूप परमात्मा में समा जाता है। ॥८॥१५॥

श्लोक एवं अष्टपदी (१५) का सारांश

श्लोक—प्रभु, जो सभी शक्तियो में परिपूर्ण है और जो प्रत्येक जीव के दुःख को जानता है, 'उसका' स्मरण करने से, हे भाई! तेरा उद्धार होगा। ऐसे प्रभु के ऊपर तू भी अपना जीवन न्योछावर कर दे ॥१५॥

अष्टपदी—हे नानक! प्रभु सर्व शक्तियों से परिपूर्ण है, सब हृदयों का ज्ञाता है, सब टूटे हुओं को जोडने वाला है, सर्व मृतको को जीवित करने वाला है तथा सर्व जीवों को पालने वाला भी है। 'वही' प्रभु भूखो का आश्रय है, वही सर्व की चिंता करता है और किसी को निष्फल नही छोडता। हे मेरे मन! ऐसे हरि का जाप कर। सब कुछ 'उसका' है। 'उसके' बराबर अन्य कोई भी नही हुआ, न वर्तमान मे है और न भविष्य में ही होगा। हे प्यारे! 'उसी' एक के साथ तेरा काम है। स्मरण रहे, तुम्हारे करने से कुछ भी नही होता। 'वही' एक प्रभु करने कराने वाला है।

हे मूर्ख! अहंकार रूपी रोग का परित्याग करके तू निरोग बन। सुन्दर रूप को देखकर अहकार कदाचित न करना, क्योकि यह सुन्दरता तुझे प्रभु द्वारा दी गई है। धन को देखकर भी गर्व न करना क्योकि सारा धन प्रभु का दिया हुआ है। अपनी शक्ति को देखकर प्रभु को अनन्त शक्ति को न भूलना। दाता केवल 'वही' एक है। अत हे मन! तू प्रभु का स्मरण कर 'उसी' एक को अपना सर्वस्व अर्पण कर, जो इस भवसागर में डूबते हुए जीव के लिये जहाज है और घोर अन्धकार मे दीपक है। फिर भला विषयो मे लोलुप जीव! तू लोभी पतग की तरह क्यो जल रहा है? जो भी प्रभु करे उसको सुख रूप करके मान। जीवन में हरि नाम की खेप लादकर सन्त महापुरुषों की चाल में चल, हरि नाम का सच्चा व्यापार कर जिस लिए यह मनुष्य देही तुझे प्राप्त हुई है।

सलोकु ॥

रूप न रेख न रंगु किछु
त्रिहु गुण ते प्रभ भिंन ॥
तिसहि बुझाए नानका
जिसु होवै सुप्रसंन ॥१॥

"निरंकार की प्राप्ति कैसे होगी ?"

जिस (प्रभु) का न (कोई) रूप है, न (कोई) रेखा है और न (कोई) रंग ही है, पुन. 'वह' प्रभु (रज, तम व सत् इन) तीनों गुणों से भिन्न (पृथक) है।

हे नानक ! ऐसा प्रभु जिसके ऊपर प्रसन्न होता है, उसे अपने आप का स्वरूप अथवा अपना ज्ञान समझा देता है ॥१॥

असटपदी ॥

अबिनासी प्रभु मन महि राखु ॥
मानुख की तू प्रीति तिआगु ॥
तिस ते परै नाही किछु कोइ ॥
सरब निरंतरि एको सोइ ॥
आपे बीना आपे दाना ॥
गहिर गंभीरु गहीरु सुजाना ॥
पारब्रहम परमेसुर गोबिंद ॥
क्रिपा निधान दइआल बखसंद ॥
साध तेरे की चरनी पाउ ।
नानक कै मनि इहै अनराउ ॥१॥

"प्रभु सर्वशक्तिमान है।"

अविनाशी प्रभु, जो कभी भी नाश नहीं होता, (हे जीव !) 'उसे' तू अपने मन में (याद) रख और मानव की प्रीति (मन से) त्याग दे (भाव विस्मृत कर दे)। 'उस' (प्रभु) से परे न कुछ (पदार्थ या वस्तु) है, और न कोई (चेतन सत्ता वाला अस्तित्व) है। 'वह' सबमें एक रस प्रभु (स्वय ही) है। 'वह' स्वय ही देखने वाला है और स्वयं ही जानने वाला है। 'वह' बुद्धिमान है, गहरा है, (अति) गम्भीर और अगाध अथवा समुद्र जैसा है। हे परब्रह्म ! हे परमेश्वर ! हे गोविन्द ! हे दया के भण्डार ! हे क्षमाशील प्रभु !

(मेरे गुरुदेव बाबा) नानक के मन मे यह अनुराग (प्रेम) है कि (काश ! मैं) तेरे साधु जनो के चरणो में (जाकर) पड़ूँ ॥१॥

मनसा पूरन सरना जोग ॥
जो करि पाइआ सोई होगु ॥
हरन भरन जा का नेत्र फोरु ॥
तिस का मंत्रु न जानै होरु ॥
अनद रूप मंगल सद जा कै ॥
सरब थोक सुनीअहि घरि ताकै ॥
राज महि राजु जोग महि जोगी ॥
तप महि तपीसरु गृहसत महि भोगी ॥
धिआइ धिआइ भगतह सुखु पाइआ ॥
नानक तिसु पुरख का
किनै अंतु न पाइआ ॥२॥

(मेरा) प्रभु इच्छा पूर्ण करने वाला है और शरण देने के योग्य है। जो 'उस' ने हाथ पर लिख दिया है, वही होता है। (अर्थात जो कुछ जीव के कर्मानुसार लेख लिखा है, वही होगा)। जो आँख के उन्मेष (भाव: थोड़े समय) में (सृष्टि को) नाश और उत्पन्न कर सकता है, उसके मन्त्र (गुप्त रहस्य) को 'उसके' (बिना) अन्य कोई भी नही जानता। 'वह' आनन्दरूप है और 'उस' के (घर मे) सदा खुशियाँ हैं। उसके घर में सभी पदार्थ सुने जाते हैं। वह राजाओं में राजा, योगियों में (महान) योगी, तपीश्वरों में (पूर्ण) तपीश्वर और गृहस्थियों में (बड़ा) गृहस्थी है। 'उसका' ध्यान कर-करके भक्तों ने सुख पाया है।

(किन्तु) हे नानक ! 'उस' (पूर्ण) पुरुष का किसी ने भी अन्त नही पाया है ॥२॥

जाकी लीला की मिति नाहि ॥
सगल देव हारे अवगाहि ॥
पिता का जनमु कि जानै पूतु ॥
सगल परोई अपुनै सूति ॥
सुमति गिआनु धिआनु जिन देइ ॥
जन दास नामु धिआवहि सेइ ॥
तिहु गुण महि जा कउ भरमाए ॥
जनमि मरै फिरि आवै जाए ॥
ऊच नीच तिस के असथान ॥
जैसा जनावै तैसा नानक जान ॥३॥

जिस (प्रभु) की (सृष्टि रूपी) लीला (खेल) का अनुमान नहीं (लगाया जा सकता) है। (मनुष्य बेचारे क्या हैं) सब देवगण विचार कर करके हार गये हैं (पर अन्त किसी ने भी नहीं पाया)। (भला) पिता का जन्म पुत्र कैसे जान सकता है? सपूर्ण रचना (कर्ता ने) अपने नियम (हुकम) रूप सूत्र में पिरो रखी है। जिनको 'वह' (प्रभु) श्रेष्ठ बुद्धि (दैवी) ज्ञान और ध्यान देता है, वे 'उसके' दास (भाव में रहते हैं और) नाम ध्याते हुये 'उसके (अपने) सेवक (कहलवाते) है। (किन्तु) जिनको (रज, तम, सत) तीनों गुणों (भाव माया) के भीतर भटकाता रहता है, वे जन्म-मरण (के चक्कर) में फिर (बार-बार) आते-जाते हैं। (अत) ऊँच एवं नीच (सब) स्थान 'उसी' प्रभु के हैं। (अर्थात ऊपर जो दो प्रकार के दृष्टिकोण कथन किये हैं, एक उत्तम (सुमति ज्ञान ध्यान वाला) जहाँ ज्ञानवान् पुरुष स्थित होकर परमेश्वरीय रचना का विस्तार देखता हुआ प्रभु के नाम में लग जाता है। दूसरा निकृष्ट (नास्तिकों वाला) जहाँ से सम्पूर्ण सृष्टि केवल पाँच तत्वों का मेल दृष्टि गोचर होती है जिसमें त्रिगुण कार्य कर रहे हैं। ये दोनों वृत्तियाँ प्रभु की ओर से मिली है।

हे नानक ! जैसा वह' जनाता (समझाता) है, तैसा ही वह जानता है ॥३॥

नाना रूप नाना जा के रंग ॥
नाना भेख करहि इक रंग ॥
नाना बिधि कीनो बिसथारु ॥
प्रभु अबिनासी एकंकारु ॥
नाना चलित करे खिन माहि ॥
पूरि रहिओ पूरनु सभ ठाइ ॥
नाना बिधि करि बनत बनाई ॥
अपनी कीमति आपे पाई ॥
सभघट तिसके सभ तिसके ठाउ ॥
जपिजपि जीवै नानकहरिनाउ ॥४॥

जिस (प्रभु) के अनेक रूप हैं और (कई) रंग हैं, 'वह' कई प्रकार के वेष धारण करता हुआ भी एक रंग मे रहता है। चाहे 'उसने' अनेक विधियो से (सृष्टि रचना का) विस्तार किया है (किन्तु) 'वह' अविनाशी प्रभु विनाश से रहित है और एक ओंकार अद्वैत स्वरूप ब्रह्म है। 'वह' अनेक प्रकार के कौतुक क्षण भर में कर देता है क्योंकि 'वह' पूर्ण (प्रभु) सभी जगह पर परिपूर्ण हो रहा है। चाहे 'उसने' अनेक विधियो से (सृष्टि की) रचना रची है किन्तु 'उसकी' कीमत कोई भी नही आंक सकता है। (हाँ) अपनी कीमत उसने आप ही प्राप्त की है। (वस्तुतः) सब शरीर 'उसके' हैं और सारे ठिकाने भी 'उसी' (एक) के हैं।

(मेरे गुरुदेव बाबा) नानक 'उस' हरि का नाम जप-जप कर जीवित रहता है ॥४॥

नाम के धारे सगले जंत ॥
नाम के धारे खंड ब्रहमंड ॥

सब जीव-जन्तु (नामी के) नाम के आधार पर स्थिर किये हुए हैं। (सारे) ब्रह्मांड और (उनके) खण्ड (नामी के) नाम के

नाम के धारे सिमृति बेद पुरान ॥
नाम के धारे सुननगिआनधिआन ॥
नाम के धारे आगास पाताल ॥
नाम के धारे सगल आकार ॥
नाम के धारे पुरीआ सभ भवन ॥
नाम कै संगि उधरे सुनि स्रवन ॥
करिकिरपा जिसुआपनै नामिलाए ॥
नानक चउथे पद महि
सो जनु गति पाए ॥५॥

आधार पर स्थिर किये हुये हैं। (२७) स्मृतियाँ (४) बेद और (१८) पुराण सब (नामी के) नाम के आधार पर स्थिर किये हुए हैं। ज्ञान (के साधन), श्रवण (मनन, निध्यासन और हठ योग के साधन), ध्यानादि (सब) (नामी के) नाम के आधार पर स्थिर किये हुए हैं। आकाश, पाताल सब (नामी के) नाम के आधार पर स्थिर किये हुए हैं। (इनमें बसने वाले) सारे स्वरूप (नामी के) नाम के आधार पर स्थिर किये हुये हैं। सारी पुरीआं और भवन (लोक) (नामी के) नाम के आधार पर स्थिर किये हुये हैं। (नामी के) नाम को सुनकर और नाम की संगति में रह-कर (अनेक जीव) तर गये हैं (पार हो गये) हैं। अतः (तू भी) हे जीव! नाम को कानो से श्रवण कर। कृपा करकें जिस जीव को (मेरा प्रभु) अपने नाम (स्मरण) में लगाता है वह पुरुष चौथे पद—त्रिगुणातीत (तुरीय पद) में पहुँचकर मुक्ति प्राप्त करता है, हे नानक ! ॥५॥

रूप सति जा का सति असथानु ॥
पुरखु सति केवल परधानु ॥
करतूति सति सति जा की बाणी ॥
सति पुरख सभ माहि समाणी ॥
सति करमु जा की रचना सति ॥
मूलु सति सति उतपति ॥
सति करणी निरमल निरमली ॥
जिसहि बुझाए तिसहि सभ भली ॥
सति नामु प्रभ का सुखदाई ॥
बिस्वासुसति नानक गुरते पाई ॥६॥

सत्य है जिस (प्रभु) का स्वरूप और सत्य है जिस (परमेश्वर) का स्थान। केवल 'वही' पुरुष ही सत्य और प्रधान है। सत्य है जिस (सत्य पुरुष) की करणी और सत्य है जिस (प्रधान पुरुष) की वाणी केवल 'वही' सत्य पुरुष (परमेश्वर) सब मे समा रहा है। सत्य है जिस (सर्वव्यापक परमेश्वर) का कर्म और सत्य है जिसकी रचना केवल 'वही' मूल कारण (प्रभु) सत्य है और 'उससे' उत्पन्न सृष्टि भी सत्य है। सत्य है, (हाँ) पवित्र से पवित्र है 'उसकी' यह करणी, (किन्तु) जिसको 'वह' समझाता है, उसको (यह सारी बात) भली-भाँति समझ आ जाती है। 'उस' सत्य स्वरूप प्रभु का 'सत्यनाम' सुखो का दाता है (किन्तु) इस सत्यनाम पर (अटल) (विश्वास का उपदेश केवल) गुरु से ही प्राप्त होता है, हे नानक ॥६॥

सति बचन साधू उपदेस ॥
सति ते जन जा कै रिदै प्रवेस ॥
सति निरति बूझै जे कोइ ॥
नामु जपत ता की गति होइ ॥
आपि सति कीआ सभु सति ॥

सत्य है साधु के वचन तथा उपदेश और सत्य हैं वे दास जिनके हृदय में (इन वचनों का) प्रवेश हुआ है। यदि कोई सत्य-(असत्य) का निर्णय समझ ले तो नाम जपते ही उसकी मुक्ति हो जाती है। (प्रभु) स्वयं सत्य है और 'उसकी' सब रचना भी सत्य है। (प्रभु) स्वयं ही अपनी मर्यादा (हद) और अवस्था (दशा) को जानता है। जिसकी (सृजन की हुई)

आपे जानै अपनी मिति गति ॥
जिस की सुसटि सु करणैहारु ॥
अवर न बूझि करत बीचारु ॥
करते की मिति न जानै कीआ ॥
नानक जो तिसु भावै
सो वरतीआ ॥७॥

सृष्टि है, 'वह' आप इसे बनाने वाला प्रभु अन्य किसी से पूछकर बनने का (सृष्टि रचना का) विचार नहीं करता, (क्योंकि अन्य सभी जीव-जन्तु 'उसके' बनाए हुये हैं अतः कोई भी) किया हुआ (भावःजीव हरि) कर्ता का अनुमान नही जान सकता (अर्थात् कर्ता का अनुमान उसका सीमित जीव क्या लगा सकता है ?)

(वस्तुतः) जो 'उस'(कर्ता) को भाता(अच्छा लगता) है, वही कुछ होता है, हे नानक ! ॥७॥

बिसमन बिसम भए बिसमाद ॥
जिन बूझिआ तिसु आइआ स्वाद ॥
प्रभ कै रंगि राचि जन रहे ॥
गुर कै बचनि पदारथ लहे ॥
ओइ दाते दुख काटनहार ॥
जा कै संगि तरै संसार ॥
जन का सेवकु सो वडभागी ॥
जन कै संगि एक लिव लागी ॥
गुन गोबिदु कीरतनु जनु गावै ॥
गुरप्रसादि नानकफलुपावै ॥८॥१६॥

जिन्होने (साधु के उपदेश द्वारा नाम जप कर सत्य को) समझ लिया है उनको (ऐसा) स्वाद आया कि वे आश्चर्य से आश्चर्यचकित होते हुए हैरान हो गये अथवा जिनका मन विषयों से रहित हुआ है, वे आश्चर्य रूप हुए हैं। ऐसे दास फिर प्रभु के प्रेम में ही रचे रहते हैं। उन्होने ऐसे पदार्थ गुरु के उपदेश द्वारा ही प्राप्त कर लिए।

(ऐसे सत्य पुरुष ही) दाता हैं और वे ही (जगत के) दुःख को काटने वाले हैं और उनकी संगति से संसार(के जीव)तैर जाते हैं। (ऐसी सेवको) का जो सेवक बनता है, वह भाग्यशाली होता है क्योकि ऐसे दासों की सगति में एक (प्रभु) से लौ लगती है। ऐसा दास कीर्तन करता है और गोविन्द के गुण गाता है तथा गुरु की कृपा द्वारा वह (पूर्ण आत्मिक) फल सब प्राप्त करता है (अर्थात मुक्ति प्राप्त करता है), हे नानक ! ॥८॥१६॥

श्लोक एवं अष्टपदी (१६) का सारांश

श्लोक—मेरा प्रभु जी रूप, रंग और चिन्हों से न्यारा है, त्रिगुणातीत है और माया से निर्लिप्त हैं। हे जीव ! तू 'उसकी' प्रसन्नता प्राप्त कर तो तुझे अपने आप को समझने की सूझ-बूझ प्राप्त होगी ॥१६॥

अष्टपदी —हे अविनाशी प्रभु ! तुम्हारा रूप, रेखा और रंग कुछ भी नही हैं। तू तीनो गुणो—रज, तम, सत् से भिन्न है। हे जीव ! त 'उसकी' प्रसन्नता प्राप्त कर जो राजाओं में राजा, गृहस्थियो मे गृहस्थी योगियों मे योगी तपस्वियों मे तपस्वी है। हे त्रिगुणातीत प्रभो ! सभी जीव तुम्हारे सभी स्थान तुम्हारे ! तू दृष्टा तू ही स्रष्टा, तू ही भीना तू ही दाना, तू ही आधार तू ही उद्धार; तू ही परब्रह्म गोविंद तू ही कृपालु तू ही क्षमाशील है। हे दुःख नाशक प्रभु ! नाना प्रकार के तुम्हारे विस्तार। तुम्हारा रूप सत्य, तुम्हारा नाम सत्य, तुम्हारी वाणी सत्य तुम्हारी करणी सत्य !

हे अनन्त परिपूर्ण परमेश्वर ! भला पुत्र अपने पिता का जन्म कैसे जान सकता है ? हे प्रभो ! जो तुम्हे भाता है वही होता है। हे मेरे स्वामिन ! विचित्र लीला है तुम्हारी (हाँ) सब कोई तुम्हारे सूत्र में बन्धे हुए है। मैं दास तुम्हारी शरण में आया हूँ। तुम्हारा ध्यान करके ही मैं जीवित रहता हूँ। कृपया मुझे अपने रंग में रंग लो, मेरा मन तन निर्मल कर लो ताकि तुम्हारे साथ सच्चा स्नेह करके तुम्हारे आनन्दमय रूप का आकर दर्शन करूँ।

सलोकु ॥

"परमात्मा ही केवल सत्य है।"

आदि सचु जुगादि सचु ॥
है भि सचु
नानक होसी भि सचु ॥१॥

जो (अकाल पुरुष) आदि काल से सत्य था, युग-युगान्तर से पहले सत्य था, अब (वर्तमान में) भी सत्य है तथा हे नानक ! (भविष्य में भी) सत्य ही होगा ॥१॥

असटपदी ॥

"प्रभु सर्वकला समर्थ है !"

चरन सति सति परसनहार ॥
पूजा सति सति सेवदार ॥
दरसनु सति सति पेखनहार ॥
नामु सति सति धिआवनहार ॥
आपि सति सति सभ धारी ॥
आपे गुण आपे गुणकारी ॥
सबदु सति सति प्रभु बकता ॥
सुरति सति सति जसु सुनता ॥
बुझनहार कउ सति सभ होइ ॥
नानक सति सति प्रभु सोइ ॥१॥

चरण (प्रभु के) सत्य हैं और (उन चरणों को) स्पर्श करने वाले भी सत्य हैं। (उन चरणों की) पूजा सत्य है और सत्य हैं वे सेवक जो उनकी सेवा करते हैं। दर्शन(प्रभु का)सत्य है और सत्य है और सत्य हैं वे दर्शक जो यह दर्शन करते हैं। नाम (प्रभु का) सत्य है और सत्य हैं वे ध्यानी जो नाम का ध्यान धारण करते हैं। स्वयं 'वह' सत्य है और जो कुछ 'उसने' धारण करके रखा है (अर्थात सृष्टि) वह भी सत्य है। स्वयं 'वह' गुण (वाला) है और स्वयं गुणों का दाता(अर्थात् गुण देने वाला)भी है। अनाहद शब्द (प्रभु का) सत्य है क्योंकि उच्चारण करने वाला प्रभु (स्वयं) सत्य है। सत्य हैं सुरति (ध्यान शक्ति) जो सुनती है सत्य है यश अथवा प्रभु के यश को सुनने वाला (जीव) और (सुनने वाले की) सुरति भी (सब) सत्य है। जो (ज्ञानवान्) समझ लेता है उसके लिए सब (कुछ) सत्य है।

हे नानक ! 'वह' प्रभु सत्य है, (हां) 'वह' प्रभु (सदैव) सत्य है ॥१॥

सति सरूपु रिदै जिनि मानिआ ॥
करनकरावन तिनिमूलु पछानिआ ॥
जा कै रिदै बिस्वासु प्रभ आइआ ॥
ततु गिआनु तिसु मनि प्रगटाइआ ॥

जिसने हृदय में सत्य स्वरूप परमात्मा का अनुभव कर लिया है, उसने करन करावन (प्रभु) को (सब कार्यों का) मूल रूप करके पहचाना है। जिसके हृदय में प्रभु के लिए (पूर्ण) विश्वास आ गया है, उसी के मन में तत्व (यथार्थ)ज्ञान प्रकट हो गया है। वह फिर भय से निर्भय होकर (संसार में) रहता है अथवा निर्भय

भै-भै निरभउ होइ बसाना ॥
जिस ते उपजिआ तिसुमाहि समाना ॥
बसतु माहि ले बसतु गडाई ॥
ता कउ भिन न कहना जाई ॥
बूझै बूझनहारु बिबेक ॥
नारइन मिले नानक एक ॥२॥

वाली अवस्था में विचरण करता है। जिस (सत्य स्वरूप प्रभु) से उत्पन्न हुआ था वह 'उसी' मे आकर समा जाता है; जैसे यदि किसी वस्तु में उसी प्रकार की वस्तु मिला दी जाए तो फिर उसे पृथक नही कर सकते (अभेदता का वर्णन किया है), वैसे, हे नानक ! नारायण (और नारायण मे लीन हुए जीव) को अलग नहीं कहा जा सकता। इस यथार्थ ज्ञान (भाव विचार) को कोई बुद्धिमान ही जानता है (कि पूर्वोक्त, उदाहरण के समान नारायण के साथ मिलकर 'उसका' भक्त एक रूप हो जाता है) ॥२॥

ठाकुर का सेवकु आगिआकारी ॥
ठाकुर का सेवकु सदा पूजारी ॥
ठाकुर के सेवक कै मनि परतीति ॥
ठाकुर के सेवक की निरमलरीति ॥
ठाकुर कउ सेवकु जानै संगि ॥
प्रभ का सेवकु नाम कै रंगि ॥
सेवकु कउ प्रभ पालनहारा ॥
सेवक की राखै निरंकारा ॥
सो सेवकु जिसु दइआ प्रभु धारै ॥
नानक सो सेवकु सासि
सासि समारै ॥३॥

ठाकुर का सेवक (अपने ठाकुर की सदा) आज्ञा मानने वाला होता है ठाकुर का सेवक सदैव (अपने ठाकुर की) पूजा करने वाला होता है। ठाकुर के सेवक के मन अन्दर (ठाकुर के लिए पूर्ण) विश्वास अथवा भरोसा होता है। ठाकुर के सेवक की रहनी निर्मल होती है। सेवक अपने ठाकुर को (सदैव) अपना संगी (साथी) जानता है, क्योंकि प्रभु का सेवक नाम के रंग में अनुरक्त रहता है। ऐसे सेवक का (माता-पितावत्) पालनहार प्रभु (स्वय) होता है। (ऐसे) सेवक की लज्जा निरकार (स्वय) रखता है। (किन्तु) सेवक वही है जिस पर प्रभु (स्वय अपनी) कृपा करता है।

हे नानक ! (ऐसा) सेवक (प्रभु को अथवा प्रभु के नाम को) श्वास-प्रश्वास (प्रेम सहित) याद करता है अथवा सभाल करता है ॥३॥

अपुने जन का परदा ढाकै ॥
अपने सेवक की सरपर राखै ॥
अपने दास कउ देइ वडाई ॥
अपने सेवक कउ नामु जपाई ॥
अपने सेवक की आपि पति राखै ॥
ता की गति मिति कोइ न लाखै ॥
प्रभ के सेवक कउ को न पहूचै ॥
प्रभ के सेवक ऊच ते ऊचे ॥
जो प्रभि अपनी सेवा लाइआ ॥
नानक सो सेवकु दहदिसि
प्रगटाइआ ॥४॥

(प्रभु) अपने सेवक (के अवगुणो) का पर्दा (स्वय) रखता है। (प्रभु) अपने सेवक की रक्षा (अथवा लज्जा) अवश्य ही करता है। (प्रभु) अपने दासो को बडाई देता है। (प्रभु) अपने सेवक से नाम जपाता है। (प्रभु) अपने सेवक की स्वय (मान) प्रतिष्ठा रखता है। ऐसे (सेवक) की अवस्था का अनुमान कोई भी नहीं जानता (अर्थात् कथन कर सकता है। प्रभु के सेवक की बराबरी कोई भी नही कर सकता, (क्योकि) प्रभु के सेवक ऊँचे से भी ऊँचे (भाव. सर्वोच्चय) होते हैं।

हे नानक ! जिस सेवक को प्रभु अपनी सेवा में लगा देता है, वह सेवक दशों-दिशाओ मे (भाव. सर्वत्र) प्रकट हो जाता है ॥४॥

नीकी कीरी महि कल राखै ॥
भसम करै लसकर कोटि लाखै ॥
जिस का सासु न काढत आपि ॥
ताकउ राखत दे करि हाथ ॥
मानस जतन करत बहु भाति ॥
तिस के करतब बिरथे जाति ॥
मारै न राखै अवरु न कोइ ॥
सरब जीआ का राखा सोइ ॥
काहे सोच करहि रे प्राणी ॥
जपिनानक प्रभ अलख विडाणी ॥५॥

(यदि प्रभु) छोटी सी कीड़ी में भी(अपनी)शक्ति रख देवे, तो वह लाखों करोड़ों के लश्करों को भी भस्म कर सकती है। जिसका श्वास (प्रभु) स्वयं नहीं निकालना चाहता (अर्थात मारना न चाहे), उसको 'वह'(स्वयं) हाथ देकर रख लेता है। चाहे (जीव बहुत प्रकार के यत्न (स्वयं) करता है, पर प्रभु यदि सहायता न करे, तो उसके कार्य व्यर्थ जाते हैं। (बिना प्रभु के) न कोई मार सकता है और न कोई रख सकता है। सब जीवों को रखने वाला 'वह' आप है। (फिर भला) हे प्राणी ! क्यों सोच (फिक्र) करता है ?

हे नानक ! अलक्ष्य और आश्चर्यमय प्रभु को जप (अर्थात अन्य सोच विचार करने की बजाय, हे प्राणी !) तू 'उसका' जाप कर जो आश्चर्य रूप अलक्ष्य प्रभु हैं ॥५॥

बारंबार बार प्रभु जपीऐ ॥
पी अंम्रितु इहु मनु तनु ध्रपीऐ ॥
नाम रतनु जिनि गुरमुखि पाइआ ॥
तिसु किछु अवरु नाही द्रिसटाइआ ॥
नामु धनु नामो रूपु रंगु ॥
नामो सुखु हरि नाम का संगु ॥
नाम रसि जो जन त्रिपताने ॥
मन तन नामहि नामि समाने ॥
उठत बैठत सोवत नाम ॥
कहु नानक जन कै सद काम ॥६॥

(हे प्राणी !) तू बार (बार) (हाँ), बारंबार प्रभु (के नाम) को जप, इस (नाम) अमृत को (सदा) पीकर (अपने) मन तन को तृप्त कर। नाम रत्न जिस गुरमुख ने प्राप्त कर लिया है, उसको फिर अन्य कुछ नहीं दिखाई देता (अर्थात नाम जपने वालों की दृष्टि मे प्रभु नाम के बिना अन्य सभी सांसारिक पदार्थ तुच्छ हैं)। (ऐसे गुरमुख के लिये) नाम ही (उसका) धन है, नाम ही रूप (सौन्दर्य) है, नाम ही रंग (प्यार) है, नाम ही सुख है और हरि नाम ही उसकी (सत्) संगति है। जो (गुरमुख) नाम रूपी रस का पान करके तृप्त हुए हैं, वे मन और तन से नाम में ही समाहित रहते हैं अथवा नामी के नाम मे ही लीन हो जाते हैं।

हे नानक ! (ऐसा) कहो कि (प्रभु के) सेवको का यह काम हो जाता है कि वे उठते-बैठते, सोते-जागते (सदैव) (हरि) नाम का ही जाप करते हैं ॥६॥

बोलहु जसु जिहबा दिनु राति ॥
प्रभि अपनै जन कीनी दाति ॥
करहि भगति आतम कै चाइ ॥
प्रभ अपने सिउ रहहि समाइ ॥
जो होआ होवत सो जानै ॥
प्रभ अपने का हुकमु पछानै ॥

हे जिह्वा ! तू (अपने स्वामी का) दिन-रात यश बोलो। यह देन प्रभु ने (स्वयं) अपने सेवकों पर ही की है (अर्थात् प्रभु के सेवक को यही हुकम है कि सदैव 'उसको' याद करो)। (ऐसे भक्त जन प्रभु की)भक्ति आत्मिक उत्साह से अथवा प्रसन्नता से करते हैं (भाव: निष्काम भक्ति), और वे अपने प्रभु में समाये रहते हैं। जो (परमेश्वर की ओर से) होता है, वही (ठीक) हुआ मानते हैं और वे यह भी पहचानते हैं कि सब (कोई) हमारे प्रभु के हुकम

तिस की महिमा कउन बखानउ ॥
तिस का गुनु कहि एक न जानउ ॥
आठ पहर प्रभ बसहि हजूरे ॥
कहु नानक सेई जन पूरे ॥७॥

के अन्दर है। उस(भक्तजन)की मैं कौन सी बडाई वर्णन करूँ ? मैं तो उसका एक गुण भी कह कर नही जानता।

हे नानक ! (ऐसा) कहो — जो भक्तजन आठ ही प्रहर प्रभु के प्रत्यक्ष बसते हैं, वे ही पूर्ण (पुरुष) हैं (भावः पूर्ण और कामल पुरुष वे हैं जो प्रभु परमात्मा को हाजरा हजूर समझकर संसार में रहते हैं।) ॥७॥

मन मेरे तिन की ओट लेहि ॥
मनु तनु अपना तिन जन देहि ॥
जिनि जनि अपना प्रभू पछाता ॥
सो जनु सरब थोक का दाता ॥
तिस की सरनि सरब सुख पावहि ॥
तिसकै दरसि सभपाप मिटावहि ॥
अवर सिआनप सगली छाडु ॥
तिसु जन की तू सेवा लागु ॥
आवन जानु न होवी तेरा ॥
नानकतिसु जनकेपूजहु सदपैरा ॥८॥
१७॥

हे मेरे मन ! (तू जाकर) उन की ओट (सहारा) ले(जो आठ प्रहर प्रभु को प्रत्यक्ष देखने हैं) और अपना मन तथा तन उन दासों को अर्पित कर दे। (याद रहे कि) जिस-जिस (दास) ने अपना प्रभु पहचान लिया है, वह पुरुष सकल पदर्थों का दाता होता है। उस (दाता) की शरण ग्रहण करने से (तू भी) सुख प्राप्त करेगा, (हाँ) उसके दर्शन मात्र ही (तू अपने) सारे पाप भी मिटा लेगा। कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि अन्य सारी चतुराई छोड दे, उस (भक्त) जन की सेवा मे लग जा, (हाँ) उस (भक्त) जन के सदैव तू चरण पूज ताकि तुम्हारा आना-जाना (जन्म-मरण) (पुन) न हो (भावः आवागमन समाप्त हो जायेगा) ॥८॥१७॥

श्लोक एवं अष्टपदी (१७) का सारांश

श्लोक—प्रभु ही आदि युगादि से सत्य था, अब भी सत्य है। शेष सब झूठ है। इसलिए, हे भाई ! तू झूठ छोडकर सत्य स्वरूप परमेश्वर का स्मरण कर ॥१७॥

अष्टपदी—भला सोच क्या रहा है ! हे प्राणी ! एक मात्र सृजन करने वाला, पालन करने वाला, और मारने वाला 'वही' है। अन्य कोई भी नही है। 'वही' अपने सेवको पर पर्दा रखता है, 'वही' अपने सेवको की प्रतिष्टा रखता है, 'वही' अपने सेवको का धन है, रूप है, रग है, सुख है, गुण है और जीवन भी है। 'उसी' एक सत्य पुरुष परमात्मा पर विश्वास रखकर 'उसको' अपने हृदय मे धारण कर तो तुझे सच्चा ज्ञान प्राप्त हो और तू अपने मूल को पहचान सके। भक्ति मार्ग मे सभी चतुराईयो का परित्याग करना होगा केवल 'उसी' का ऊठते बैठते, सोते-जागते, अन्दर-बाहर, रात-दिन सदैव स्मरण करके आज्ञाकारी बनकर तथा 'उसके' नाम जपनेवाले भक्तों की तू सगति प्राप्त कर।

॥ सलोकु ॥

सति पुरखु जिनि जानिआ ॥
सतिगुरु तिस का नाउ ॥
तिस कै संगि सिखु उधरै ॥
नानक हरि गुन गाउ ॥१॥

"सत्गुरु कौन है ?"

जिसने सत्य पुरुष परमात्मा को जाना है, उसका नाम सत्गुरु है। उसी (सत्गुरु) की संगति में सिख का उद्धार होता है (अर्थात मुक्ति होती है)। (इसलिए) हे नानक ! (तू भी उसकी संगति में) हरि के गुण गा ॥१॥

असटपदी ॥

सतिगुरु सिख की करै प्रतिपाल ॥
सेवक कउ गुरु सदा दइआल ॥
सिख की गुरु दुरमति मलु हिरै ॥
गुर बचनी हरि नामु उचरै ॥
सतिगुरु सिख के बंधन काटै ॥
गुर का सिखु बिकार ते हाटै ।
सतिगुरु सिख कउ नाम धनु देहि ॥
गुर का सिखु वडभागी हे ॥
सतिगुरुसिखकाहलतुपलतु सवारै ॥
नानक सतिगुरु सिख कउ
जीअ नालि समारै ॥१॥

"सत्गुरु की महिमा।"

(जैसे सेवक का प्रभु पालनहार है वैसे) सत्गुरु भी सिख की प्रतिपालना करता है। गुरु (अपने) सेवक पर सदैव दयालु (होता) है। गुरु (अपने) शिष्य की दुर्बुद्धि रूपी मैल दूर करता है और (सिख) गुरु के उपदेश द्वारा हरि के नाम का उच्चारण करता है। सत्गुरु सिख के (मोह माया के) बन्धनों को काटता है। गुरु का सिख (गुरु के उपदेश द्वारा) विकारों से हट जाता है। सत्गुरु सिख को नाम का धन देता है, (इस धन से) गुरु का सिख बड़े (उत्तम) भाग्यों वाला हो जाता है। सत्गुरु (अपने) सिख का लोक परलोक सँवार देता है।

कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक कि सत्गुरु अपने सिख को अपने जीव(आत्मा) के साथ संभालता है (अर्थात हार्दिक प्रेम से देख-भाल करता है) ॥१॥

गुर कै ग्रिहि सेवकु जो रहै ॥
गुर की आगिआ मन महि सहै ॥
आपस कउ करि कछु न जनावै ॥
हरि हरि नामु रिदै सद धिआवै ॥
मनु बेचै सतिगुर कै पासि ॥
तिसु सेवक के कारज रासि ॥
सेवा करत होइ निहकामी ॥

जो भी सेवक गुरु के घर में (शिक्षा लेने के लिए) रहता है (अर्थात गुरु का सिख कहलाता है, वह गुरु की आज्ञा) मन मे (अवश्य) सहन करे भाव: मन से माने (अर्थात सिख को अपनी मति मार कर गुरु की मति लेनी चाहिए फिर चाहे उसे गुरु का हुकम अच्छा लगे या न लगे)। अपने आपको कुछ भी न जनाये (अर्थात घमंड न करे बल्कि विनम्र रहे) और हरि हरिनाम का सदैव हृदय में ध्यान करता रहे। जो अपना मन सत्गुरु के पास बेच देता है (अर्थात 'मैं' 'मैं' नहीं करता), उस सेवक के (सारे) काम पूर्ण हो होते हैं। जो सेवक गुरु की सेवा करता हुआ इच्छा से रहित हो जाता है, उसको (प्रभु) स्वामी प्राप्त होता है।

सिख कउ होइ परापति सुआमी ॥
अपनी क्रिपा जिसु आपि करेइ ॥
नानक सोसेवकु गुरकीमतिलेइ ॥२॥

(किन्तु), हे नानक ! (प्रभु) अपनी कृपा जिस पर करता है, वही सेवक गुरु की शिक्षा लेता है। (अर्थात गुरु के वचन सत्य मान कर कमाई करता है।) ॥२॥

बीस बिसवे गुर का मनु मानै ॥
सो सेवकु परमेसुर की गति जानै ॥
सो सतिगुरु जिसु रिदै हरि नाउ ॥
अनिक बार गुर कउ बलि जाउ ॥
सरब निधान जीअ का दाता ॥
आठ पहर पारबहम रंगि राता ॥
बहममहि जनु जनमहि पारबहमु ॥
एकहि आपि नही कछु भरमु ॥
सहस सिआनअ लइआ न जाईऐ ॥
नानकऐसागुरु बडभागी पाईऐ ॥३॥

जो बीस (ही) बिस्वे (अर्थात पूर्ण रूप से) गुरु का मन प्रसन्न करता है, वह सेवक परमेश्वर की अवस्था को जान लेता है। (एक बीघे में बीस बिस्वे होते हैं। जैसे यह सोलह आने सच्च है का भाव होता है कि पूर्णतया ठीक है)। सतगुरु वह है जिसके हृदय में हरि का नाम (बसता) है, मैं ऐसे गुरु के ऊपर अनके बार बलिहारी जाता हूँ। वह (गुरु) सब खजानो का भण्डार है, और जिन्दगी देने वाला दाता भी है। वह आठ ही प्रहर परब्रह्म परमेश्वर के रंग में अनुरक्त रहता है। (हरि का) दास ब्रह्म में समाहित रहता है और परब्रह्म परमात्मा (अपने) दास में (प्रकट) बसता है। इसमें कुछ भी भ्रम नहीं (दोनों रूपो में) 'वह' एक आप ही हैं। (अभेदता का यहाँ वर्णन है)।

(किन्तु), हे नानक ! हजारो चतुराइयों से (ऐसा गुरु) प्राप्त नहीं हो सकता, (केवल) बड़े भाग्यों से ही प्राप्त होता है ॥३॥

सफल दरसनु पेखत पुनीत ॥
परसत चरन गति निरमल रीति ॥
भेटत संगि राम गुन रवे ॥
पारबहम की दरगह गवे ॥
सुनि करि बचन करन आघाने ॥
मनि संतोखु आतम पतीआने ॥
पूरा गुरु अख्यउ जा का मंत्र ॥
अंमृत दृसटि पेखै होइ संत ॥
गुण बिअंत कीमति नही पाइ ॥
नानकजिसुभावैतिसुलए मिलाइ ॥४॥

(ऐसे गुरु का दर्शन) सफल दर्शन है क्योंकि उसको देखते ही (सिख) पवित्र हो जाता है और उसके चरण स्पर्श करते ही (सिख की) रहनी निर्मल हो जाती है। उसकी सगति (अर्थात गुरु के वचनो की कमाई करने) से (सिख) राम के गुण गाने लगता है, (जिससे वह)परब्रह्म की दरबार में पहुँच जाता है(अर्थात स्वीकृत होता है)।(उसके) वचन सुनकर (सिख के)कान तृप्त हो जाते हैं मन मे सन्तोष आ जाता है और आत्मा भी विस्वग्थ हो जाता है। (हाँ यही है) वह पूर्ण गुरु जिसका मन्त्र कभी नाश नही होता। और जिसे (गुरु अपनी) अमृत-दृष्टि से देखता है, वही सन्त हो जाता है (क्योंकि गुरु की दृष्टि से अमृत वृष्टि होती है)। (ऐसे गुरु के) गुण अनन्त हैं (जिनका) मूल्य नही पाया जा सकता।

हे नानक ! (परब्रह्म परमेश्वर) जिसको भाए उसको (ऐसे गुरु के साथ) मिला लेता है भाव. जो जीव गुरु को भाता लगता है प्रभु उसे गुरु से मिला लेता है ॥४॥

जिहवा एक उसतति अनेक ॥
सति पुरख पूरन बिबेक॥
काहू बोल न पहुचत प्रानी ॥
अगम अगोचर प्रभ निरबानी ॥
निराहार निरवैर सुखदाई ॥
ता की कीमति किनै न पाई ॥
अनिक भगत बंदन नित करहि ॥
चरन कमल हिरदै सिमरहि ॥
सद बलिहारी सतिगुर अपने ॥
नानकजिसुप्रसादिऐसाप्रभुजपने॥५॥

(सच्चे प्रभु की) स्तुति अनेक (प्रकार की) है, किन्तु (मेरी) जिह्वा एक है (जो समस्त गुणों का गायन करने में असमर्थ है)। 'वह' सत्य है, परिपूर्ण है और पूर्ण ज्ञान स्वरूप है, किसी भी बोल (कथन)द्वारा प्राणी 'उसको' पहुँच नहीं सकता(अर्थात् 'उसे' प्राप्त नही कर सकता)। 'वह' प्रभु अगम्य है, इन्द्रियातीत है और निर्लेप भी है। 'वह' निराहार प्रभु भोजन के बिना रहता है, वैर से रहित है (बल्कि सब को) सुख देने वाला है। (किन्तु) उसकी कीमत किसी ने नही प्राप्त की है। (हाँ) अनेक भक्त हैं जो नित्य 'उसको' वदना (नमस्कार) करते हैं और 'उसके' चरण कमलों का हृदय में स्मरण करते हैं।

(अतएव) हे नानक ! मैं अपने सत्गुरु के ऊपर सदैव बलिहारी हूँ जिसकी कृपा से ऐसे प्रभु का जाप (मैं सदा) कर रहा हूँ अथवा जो प्रभु जपा जा सकता है ॥५॥

इहु हरि रस पावै जनु कोइ ॥
अंमृतु पीवै अमरु सो होइ ॥
उसु पुरख का नाही कदे बिनास ॥
जा कै मनि प्रगटे गुन तास ॥
आठ पहर हरि का नामु लेइ ॥
सचु उपदेसु सेवक कउ देइ ॥
मोह माइआ कै संगि न लेपु ॥
मन महि राखै हरि हरि एकु ॥
अंधकार दीपक परगासे ॥
नानकभरममोहदुख तह ते नासे ॥६॥

हरि का यह रस कोई विरला दास प्राप्त करता है, (किन्तु जो प्राप्त कर लेता है) वह इस अमृत (रस) को पी कर अमर हो जाता है। फिर उस पुरुष का कभी नाश नही होता जिसके मन में गुणों के समुद्र-परमात्मा आकर प्रकट होता है। (ऐसा महा पुरुष स्वयं) हरि का नाम लेता (जपता) है तथा (अपने) सेवकों को (नाम का ही) सच्चा उपदेश देता है। वह मोह माया की संगति में रहता हुआ भी निर्लेप है, (क्योंकि) वह (अपने) मन में एक हरि हरि (नाम) को ही रखता है तथा (दूसरो के लिए वह) अन्धकार मे (मानो) दीपक जला देता है।

हे नानक ! (श्रद्धालु सेवकों के) भ्रम, मोह एव दुख उस (अन्धेरे में दीपक जलाने वाले सत्य पुरुष) से दूर हो जाते हैं ॥६॥

तपति माहि ठाढि वरताई ॥
अनदु भइआ दुख नाठे भाई ॥
जनम मरन के मिटे अंदेसे ॥
साधू के पूरन उपदेसे ॥
भउ चूका निरभउ होइ बसे ॥
सगल बिआधि मन ते खै नसे ॥

हे भाई ! (ऐसे गुरु ने मेरे) तप्त हृदय में ठंड (शीतलता) वरिष्ठ कर दी है, दुख भाग गये हैं और आनन्द हो गया है तथा जन्म-मरण के भय (चिन्ता) मिट गए हैं। (हाँ) उस साधु के पूर्ण उपदेश के फलस्वरूप भय दूर हो गया और अब भय रहित होकर (सुखी) बस रहा हूँ। (यही नही) सब रोग भी मन से नाश हो कर भाग गये हैं। जिस (प्रभु) का (मैं) था 'उसने' (स्वयं ही) कृपा कर दी है। यह सब साधु की सगति में मुरारि प्रभु के नाम जपने से (संभव)हुआ। उसको अब(सदा के लिए)स्थिति (टिकाउ)प्राप्त

जिसका सा तिनि किरपा धारी ॥
साध संगि जपि नामु मुरारी ॥
थिति पाई चूके भ्रम गवन ॥
सुनि नानकहरिहरिजसु स्रवन ॥७॥

हुई, और (जन्म-मरण के चक्र में) भटकते फिरना तथा भ्रम (दुविधाएँ) और आवागमन भी समाप्त हो गया।

यह सब, हे नानक ! (गुरु द्वारा) कानों से हरि-यश सुनने से हुआ ॥७॥

निरगुनु आपि सरगुनु भी ओही ॥
कलाधारि जिनि सगली मोही ॥
अपने चरित प्रभि आपि बनाए॥
अपुनी कीमति आपे पाए ॥
हरि बिनु दूजा नाही कोइ॥
सरब निरंतरि एको सोइ॥
ओति पोति रविआ रूप रंग ॥
भए प्रगास साध कै संग ॥
रचि रचना अपनी कल धारी ॥
अनिकबारनानकबलिहारी॥८॥१८॥

स्वयं (प्रभु)निर्गुण है और सगुण भी 'वह'(आप ही)है। जिसने अपनी शक्ति के द्वारा सब सृष्टि को मोह लिया है। अपने चरित्र (कौतुक-आश्चर्यमय खेल) प्रभु ने स्वय ही बनाये हैं, इसलिए अपनी रची हुई रचना की और अपनी कीमत स्वय ही जान सकता है।

'उस' हरि के बिना अन्य कोई दूसरा नही है, एक 'वही' (अपनी रचित रचना में) निरन्तर (मौजूद) है। (हाँ) ओत-प्रोत (ताने-बाने) की तरह (दीख रहे समस्त) रूप और रगों में परिपूर्ण हो रहा है।(किन्तु इस ज्ञान का)प्रकाश तभी होता है यदि साधु का सग किया जाए। (अतएव) हे नानक ! मैं 'उस' पर अनेक बार बलिहारी हूँ, जिस प्रभु ने (सृष्टि की) रचना रच कर अपनी शक्ति से इसको स्थित (टिका) कर रखा है ॥८॥१८॥

श्लोक एवं अष्टपदी (१८) का सारांश

श्लोक—सत्गुरु की संगति में, हे भाई ! तू हरि प्रभु के गुण गा। जिसने भी सत्य पुरुष परमात्मा को जाना है वह महापुरुष सत्गुरु है ॥१८॥

अष्टपदी—क्या तुम्हे ज्ञात है, हे मेरे प्यारे ! कि सत्गुरु किसका नाम है ? याद रहे, सत्गुरु उस महापुरुष का नाम है जो सत्यपुरुष परमात्मा को जानता है, जिसका हृदय आठ ही प्रहर परमात्मा के नाम में अनुरक्त है, जिसका मन सन्तोषी जिसकी बुद्धि पवित्र, जिसके दर्शनमात्र ही सफलता और पवित्रता प्राप्त हो जाए, जो उष्ण मे शीतल वर्षा करता हो, जो सिख की दुर्बुद्धि दूर करे, जो विकारों से दूर रखे, जो हरि नाम का हृदय में ध्यान कराए, जो जन्म-मरण के चक्र को निवृत्त कर दे जो बन्धन काट कर जीवन-मुक्त कर दे, जो नाम का सच्चा धन और ज्योति प्रदान करे, जो तुम्हारी सदा प्रतपालना करे, जो तुम पर सदा दयालु हो और जो तुम्हारे सभी कार्य सिद्ध करे।

बलिहारी जाऊँ मैं ऐसे सत्गुरु पर जिसके प्रसाद (प्रसन्नता) से मैं सत्य स्वरूप परमात्मा के गुन गाता हूँ। उसी सत्गुरु ने कृपा करके मेरे भटकते हुए मन को एकाग्र किया है। मेरा प्रभु अगम्य, अगोचर, सगुण, निर्गुण, स्वरूप है, जिसकी स्तुति अनेक जीव करते हैं। किन्तु किसी भी भाषा से प्राणी 'उसके' पास नहीं पहुँचता है। (हाँ) यदि सत्यगुरु की कृपा हो तो तू भी मेरे साथ मिलकर यह शब्द बोल—

'हरि बिन दूजा नाही कोइ।
सकल निरंतर एको सोइ॥'

सलोकु ॥

साथि न चालै बिनु भजन
बिखिआ सगली छारु ॥
हरि हरि नामु कमावना
नानक इहु धनु सारु ॥१॥

"श्रेष्ठ धन हरिनाम है, बाकी धन विष और राख है।"

(हे प्राणी !) (हरि के) भजन (प्रेम-भक्ति) के बिना (पर-लोक में) कुछ भी साथ नहीं चलता (जाता), (इस लिये) अन्य (जो छोडकर जानी है) सारी विष और राख (निस्सार) है। हरि का नाम रूपी धन श्रेष्ठ (असली) धन है (जो साथ जायेगा अत:) इसको कमाना चाहिए (अर्थात इकट्ठा करना चाहिए)॥१॥

असटपदी ॥

संत जना मिलि करहु बीचारु ॥
एकु सिमरि नाम आधारु ॥
अवरि उपाव सभि मीत बिसारहु॥
चरन कमल रिद महि उरिधारहु ॥
करन कारन सो प्रभु समरथु ॥
दृड़ु करि गहहु नामु हरि वथु ॥
इहु धनु संचहु होवहु भगवंत ॥
संत जना का निरमल मंत ॥
इक आस राखहु मन माहि ॥
सरब रोग नानक मिटि जाहि ॥१॥

"हरिनाम धन की प्राप्ति केवल सन्तों की संगति में।"

सन्तजनों के साथ मिलकर विचार करो (वे बताएँगे कि श्रेष्ठ वस्तु नाम है इसलिए) एक नाम का ही स्मरण करो और (इसी को ही अपने जीवन का) आश्रय बनाओ। हे मित्रों ! अन्य सभी यत्न भूल जाओ (छोड दो) और एक परमेश्वर के चरण-कमलों को (ही) हृदय में धारण करो। 'वह' प्रभु करने और कराने में समर्थ है, (इसलिए) 'उस' हरि (हाँ) हरि के नाम रूपी वस्तु को दृढ़ता पूर्वक पकडो। इस (हरि) धन को ही एकत्रित (इकट्ठा) करो और भाग्यशाली हो जाओ। सन्तजनों का निर्मल मन्त्र (उपदेश) यही है (जो ऊपर बताया गया है)।

एक आस (प्रभु की) मन में रखो तो तुम्हारे सभी रोग मिट जाएंगे। कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब जी) ॥१॥

जिसुधनकउ चारिकुंट उठिधावहि ॥
सो धनु हरि सेवा ते पावहि ॥
जिसु सुख कउ नित बाछहि मीत ॥
सो सुखु साधू संगि परीति ॥
जिसुसोभाकउ करहि भली करनी॥
सा सोभा भजु हरि की सरनी ॥
अनिक उपावी रोगु न जाइ ॥
रोगु मिटै हरि अवखधु लाइ ॥
सरब निधानमहि हरिनामु निधानु॥
जपि नानक दरगाहि परवानु ॥२॥

जिस धन को (प्राप्त करने के लिए तू) उठ कर चारों कोनों में दौड़ रहा है, वह धन (हे भाई !) हरि की सेवा द्वारा ही तू प्राप्त कर सकेगा। जिस सुख को हे मित्र ! नित्य चाहता है, वह सुख साधु की संगति से प्रीति द्वारा ही तू प्राप्त कर सकेगा। जिस शोभा (अर्थात ख्याति) के लिये तू भले कर्म करता है, वह शोभा प्राप्त करने के लिये दौड़कर हरि की शरण में (आकर) पड़। अनेक उपाय करने से भी पाप रूपी रोग दूर नहीं होता, (किन्तु) हरि (नाम) रूप औषध लगाने से यह रोग मिट जाता है। सारे (अमूल्य) खजानों में हरि का नाम ही श्रेष्ठ खजाना है।

ऐसे (नाम) को जप, कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक ताकि तू (हरि) दरबार में प्रामाणित होकर स्वीकृत हो अथवा तुझे प्रमाणित पुरुष गिना जावे ॥२॥

मनु परबोधहु हरि कै नाइ ॥
दह दिसि धावत आवै ठाइ ॥
ता कउ बिघनु न लागै कोइ ॥
जा कै रिदै बसै हरि सोइ ॥
कलि ताती ठांढा हरि नाउ ॥
सिमरि सिमरि सदा सुख पाउ ॥
भउ बिनसै पूरन होइ आस ॥
भगति भाइ आतम परगास ॥
तितु घरि जाइ बसै अबिनासी ॥
कहु नानक काटी जम फासी ॥३॥

हरि के नाम द्वारा ही (अपने) मन को समझाओ ताकि दसों दिशाओं में दौड़ता (मन) स्थिर हो जाय। उस मनुष्य को कोई भी विघ्न नहीं पड़ता जिसके हृदय में 'वह' हरि (प्रभु) बसता है। कलियुग अग्नि के समान उष्ण है और हरिनाम शीतल है। (अतः हरिनाम का) स्मरण कर, (हाँ) स्मरण कर।

(हे प्राणी !) (स्मरण करने से तू) सदैव (अटल) सुख प्राप्त करेगा, भय (सब) नाश हो जाएँगे और (जीवात्मा की मिलने की) आशा भी पूर्ण हो जाएगी। (किन्तु याद रहे) भक्ति भाव से आत्मा का प्रकाश होता है, (फिर यह जीव) 'उस' अविनाशी (परमात्मा के) घर मे जा कर बसता है (अर्थात उस अवस्था में पहुँच कर, स्थिर और निर्भर हो जाता है)। (उसके लिये) यम की फांसी (सदा के लिये कट जाती है), कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहिब जी) ॥३॥

ततु बीचारु कहै जनु साचा ॥
जनमि मरै सो काचो काचा ॥
आवागवनु मिटै प्रभ सेव ॥
आपु तिआगि सरनि गुरदेव ॥
इउ रतन जनम का होइ उधारु ॥
हरि हरि सिमरि प्रान आधारु ॥
अनिक उपाव न छूटनहारे ॥
सिम्रिति सासत बेद बीचारे ॥
हरि की भगति करहु मनु लाइ ॥
मनि बंछत नानक फल पाइ ॥४॥

जो तत्व विचार (अर्थात ईश्वरीय नाम) कहता है, वह जन सच्चा है, किन्तु जो जन्म-मरण मे आता है भाव जन्म लेकर व्यर्थ आयु व्यतीत करके मर जाता है, वह बिल्कुल कच्चा है। (हाँ यह) आवागमन (जन्म-मरण का चक्कर) मिटता है प्रभु की सेवा (अर्थात प्रेमा-भक्ति) द्वारा और (प्रेमा-भक्ति मिलती है आपा त्यागकर गुरु की शरण मे पडने से)। इस प्रकार (भक्ति द्वारा) इस (अमूल्य) रत्न जन्म का उद्धार होता है। (अतएव हे जीव ! तू) उस' हरि हरि का स्मरण कर जो प्राणाश्रय है। अनेक प्रयत्न करने से भी (यह जीव आवागमन से) छूट नहीं सकेगा चाहे स्मृतियों, शास्त्रों और वेदों पर (बैठकर) विचार करे।

(हे भाई !) (तू केवल) हरि की भक्ति मन लगाकर कर तो मन वाँछित फल प्राप्त करोगे, कहते है (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहिब जी) ॥४॥

संगि न चालसि तेरै धना ॥
तूं किआ लपटावहि मूरख मना ॥
सुत मीत कुट्मब अरु बनिता ॥
इन ते कहहु तुम कवन सनाथा ॥
राज रंग माइआ बिसथार ॥
इन ते कहहु कवन छुटकार ॥

हे मूर्ख मन ! (यह सांसारिक) धन तुम्हारे साथ नहीं जायेगा (फिर भला) तू क्यों (कैसे) लम्पट हो रहा है (अर्थात जकड़े बैठा है)। पुत्र, मित्र कुटुम्ब और स्त्री इनमे से तू ही बता कौन रक्षा करने वाले हुए हैं अथवा इन पर आसक्त होने से तू स्वामी भक्त कैसे हो सकता है ? राज्य, रंग-रलियाँ (खुशियाँ) और माया के आडम्बर में (फँसा) बताओ कौन कब छूटा है ? अथवा इन में से (तुम्हें) छुटकारा कैसे मिलेगा ? (देखो) घोड़े, हाथी

असु हसती रथ असवारी ॥
झूठा डंफु झूठु पासारी ॥
जिनि दीए तिसु बुझै न बिगाना ॥
नामु बिसारि नानक पछुताना ॥५॥

और रथ (आदि) सवारियां, झूठा दिखावा—बाह्याडम्बर यह झूठा प्रसार है। जिस (स्वामी) ने (तुम्हें यह सब कुछ) दिया है, 'उसे' (तू) जानता ही नही, हे अज्ञानी !

(मेरे गुरुदेव बाबा नानक) कहते हैं कि यदि तू नाम को विस्मृत करेगा तो (अन्तत) तुझे पछताना पड़ेगा ॥५॥

गुर की मति तूं लेहि इआने ॥
भगति बिना बहु डूबे सिआने ॥
हरि की भगति करहु मन मीत ॥
निरमल होइ तुमारो चीत ॥
चरन कमल राखहु मन माहि ॥
जनम जनम के किलबिख जाहि ॥
आपि जपहु अवरा नामु जपावहु ॥
सुनत कहत रहत गति पावहु ॥
सार भूत सति हरि को नाउ ॥
सहजि सुभाइ नानक गुन गाउ ॥६॥

हे मूर्ख ! तू गुरु की मत्ति (शिक्षा) ले, (क्योंकि) मत्ति के बिना बहुत स्याने चतुर व्यक्ति (इस माया रूपी सागर में) डूब गए। (इस लिये) हे मित्र मन ! (तू) हरि की भक्ति कर जो तुम्हारा चित्त निर्मल हो। (हाँ) (हरि के) चरण कमलो को (अपने) मन में रख, तुम्हारे जन्म-जन्मान्तरो के पाप नाश हो जायेंगे। (कैसे ?) स्वय नाम जप और दूसरो को भी नाम जपा। (यह नाम) सुनते, कहते और पवित्र आचरण में रहते हुए तुम मुक्ति प्राप्त करोगे। (निष्कर्ष) (सर्व धर्मों का) सारभूत सिद्धान्त एव सत्य रूप हरि का नाम है।

(इसलिये) (तू) सहज स्वभाव से हरि के गुन गा। कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहिब जी) ॥६॥

गुन गावत तेरी उतरसि मैलु ॥
बिनसि जाइ हउमै बिखु फैलु ॥
होहि अचिंतु बसै सुख नालि ॥
सासि ग्रासि हरि नामु समालि ॥
छाडि सिआनप सगली मना ॥
साध संगि पावहि सचु धना ॥
हरि पूंजी संचि करहु बिउहारु ॥
ईहा सुखु दरगह जैकारु ॥
सरब निरंतरि एको देखु ॥
कहु नानक जाकै मसतकि लेखु ॥७॥

(हे मन ! हरि के) गुण गाने से तुम्हारी (अन्दर की सारी) मैल उतर जायेगी और (अन्तर्गत जो) अहंकार विष का विस्तार भी नाश हो जाएगा। (गुण गाने के साथ-साथ तू) श्वास लेते हुए और आहार खाते हुए हरि नाम को याद कर, (तब तू) निश्चिन्त हो कर (इसी दु:खमय ससार में) सुख सहित बसेगा। (अतएव) हे मन ! सारी (मन की मत्ति) चतुराई छोड़ दे, साधु की सगति कर (इस सगति से तू फिर) सच्चा धन (हरि नाम का) प्राप्त करेगा। (यह) हरिनाम रूपी पूँजी इकट्ठी करके (तू उसी का) व्यापार कर, तब जाकर (तुम्हें) इस (दु:खमय संसार) में (सच्चा) सुख मिलेगा और (आगे परलोक में) (हरि) दरबार में जय-जयकार होगी। (किन्तु यह भी अवस्था तभी सभव होगी) जब तू सर्वत्र, सबके भीतर एक परमात्मा को निरन्तर देखेगा। (पर ऐसा वही जीव देख सकेगा) जिसके मस्तक में (उत्तम) लेख (लिखा हुआ) है, कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहिब जी) ॥७॥

एको जपि एको सालाहि ॥
एकु सिमरि एको मन आहि ॥
एकस के गुन गाउ अनंत ॥
मनि तनि जापि एक भगवंत ॥
एको एकु एकु हरि आपि ॥
पूरन पूरि रहिओ प्रभु बिआपि ॥
अनिक बिसथार एक ते भए ॥
एकु अराधि पराछत गए ॥
मन तन अंतरि एकु प्रभु राता ॥
गुर प्रसादि नानक इकु जाता ॥८॥१९॥

(हे जीव !) एक (प्रभु के नाम) को जप। एक (प्रभु) की (ही) स्तुति कर। एक (प्रभु) का ही स्मरण कर और मन में एक (प्रभु) की (ही) चाहना (इच्छा) कर। 'उस' एक अनन्त (प्रभु) के (ही) गुण गा अथवा 'उस' एक के गुण अनन्त हैं। मन तन से 'उस' एक भगवंत का (ही) जाप कर। 'वह' एक (ही) एक हरि (अपने) आप है, जो प्रभु पूर्ण हो कर सारे जगत में परिपूर्ण हो रहा है (व्याप्त हो रहा है)। 'ये' अनेक विस्तार 'उसी' एक से हुए हैं। 'उस' एक की अराधना करने से (सब) पाप मिट जाते हैं। जब तू मन तन के अन्दर एक प्रभु के रंग में अनुरक्त रहेगा, तब (तू) एक (प्रभु) को (सर्वत्र) जानेगा। (किन्तु) गुरु की कृपा से (ही यह सब कुछ संभव है) कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहिब जी) ॥८॥१९॥

श्लोक एवं अष्टपदी (१९) का सारांश

श्लोक—हरि नाम के बिना शेष सब कुछ विष और राख है। हे भाई ! तू भी हरि नाम की कमाई कर क्योंकि नाम ही श्रेष्ठ और सारभूत धन है ॥१९॥

अष्टपदी—गुरु की कृपा से मैं एक परमात्मा को ही पहचानता हूँ, एक की ही स्तुति करता हूँ, एक को ही मन में बसाता हूँ, एक को ही सर्वत्र परिपूर्ण देखता हूँ, और 'उसी' एक की ही आशा सदा मन में रखता हूँ। हे मित्रवर ! अन्य सभी सांसारिक उपाय एवं आशाएँ छोड दे। स्मरण रहे, तुम्हारा धन, तुम्हारे पुत्र, तुम्हारे सम्बन्धी, तुम्हारा कुटुम्ब, स्वयं तुम्हारी स्त्री भी तुम्हारे साथ नहीं चलेंगे। तुम्हारे यह सब राज-रंग तथा माया के विस्तार तुम्हे जन्म-मरण से नही छुडाएंगे। यह सब हाथी, घोड़े, पालकियाँ आदि समस्त वैभव यहीं रह जाएँगे और हे मूर्ख अज्ञानी जीव ! तू आँखो मे आँसू लेकर पश्चाताप करता हुआ इस विनश्वर ससार से अकेला जाएगा। अतैव अपने मन को समझाकर हे जीव ! तू श्रेष्ठ पुरुषों की सगति प्राप्त करके हरि परमात्मा की शरण ग्रहण कर और 'उसी' एक की सेवा कर तथा अपने अन्तर्गत आपा (अहंकार) को त्याग दे तभी तुम्हें हरि नाम का सर्वोत्तम और सच्चा धन प्राप्त होगा। तुम्हारे लिए पुन: आवागमन नही होगा। इसलिए हे मित्रवर ! सच्ची भक्ति करके अपना चित्त निर्मल कर, हरि के चरण कमल अपने हृदय में रख और अपने मन तन को एक नाम के रंग में रंग दे। स्मरण रहे भक्ति मार्ग मे चतुराई काम नहीं आती। केवल हरि नाम की कमाई ही अति आवश्यक है।

सलोकु ॥

फिरत फिरत प्रभ आइआ ॥
परिआ तउ सरनाइ ॥
नानक की प्रभ बेनती ॥
अपनी भगती लाइ ॥१॥

"प्रार्थना।"

हे प्रभु ! (मैं कई जन्म) भटकता, भटकता (अब) तुम्हारी शरण मे आकर पड़ा हूँ।

(मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहिब) की यही विनती है कि हे प्रभु ! मुझे अपनी भक्ति में लगा लो ॥१॥

असटपदी ॥

"हरि नाम के लिए याचना।"

जाचक जनु जाचै प्रभ दानु ॥
करि किरपा देवहु हरि नामु ॥
साध जना की मागउ धूरि ॥
पारब्रहम मेरी सरधा पूरि ॥
सदा सदा प्रभ के गुन गावउ ॥
सासि सासि प्रभ तुमहि धिआवउ ॥
चरन कमल सिउ लागै प्रीति ॥
भगति करउ प्रभ की नित नीति ॥
एक ओट एको आधारु ॥
नानकु मागै नामु प्रभ सारु ॥१॥

मैं याचक (माँगता) हूँ, कृपा करके हे हरि ! (मुझे अपना) नाम दो। (हाँ) साधुजनों की (चरण) धूलि माँगता हूँ। हे परब्रह्म ! मेरी यह इच्छा (भी) पूर्ण करो। (मुझे एक वरदान और भी दो कि मैं उन साधुजनों की संगति में बैठकर) सदा सर्वदा (तुम अनन्त) प्रभु के गुन गाऊँ और श्वास-प्रश्वास हे प्रभु ! तुम्हारा (ही) ध्यान करूँ। (एक ओर भी कृपा करना कि तुम्हारे) चरण-कमलो से (मेरी) प्रीति लगे और नित्य-नित्य हे प्रभु ! (तुम्हारी मैं) भक्ति करता रहूँ। एक तू ही मेरी ओट (टेक) होवे और एक तू ही मेरा आधार होवे।

हे प्रभु ! मैं नानक (तुम्हारा) नाम, जो श्रेष्ठ तत्व वस्तु है (तुम्हारे से) माँगता हूँ ॥१॥

प्रभ की द्रिसटि महा सुखु होइ ॥
हरि रसु पावै बिरला कोइ ॥
जिन चाखिआ से जन त्रिपताने ॥
पूरन पुरख नही डोलाने ॥
सुभर भरे प्रेम रस रंगि ॥
उपजै चाउ साध कै संगि ॥
परे सरनि आन सभ तिआगि ॥
अंतरि प्रगास अनदिनु लिव लागि ॥
बडभागी जपिआ प्रभु सोइ ॥
नानक नामि रते सुखु होइ ॥२॥

प्रभु की (अमृत रूप) दृष्टि प्राप्त हो जाने से महान सुख (प्राप्त) होता है, (किन्तु) हरि के (प्रेम) रस को कोई विरला ही (दास) प्राप्त करता है। जिन्होने हरि (नाम के प्रेम) रस का रसास्वादन किया है वे ही दास तृप्त हो गए है। (हाँ) वे पूर्ण पुरुष हो गए और (फिर वे कभी भी बडाई की ओर) डाँवाडोल नही हुए हैं। वे प्रेम रस के रग से (मुख तक) पूर्ण रूप से भरे हैं। (प्रभु को मिलने की) चाहना (केवल) ऐसे साधु जनो की सगति मे उत्पन्न होती हे। जब वे (साधु की) शरण मे आकर पडते हैं, और सब कुछ छोड देते हैं, तब उनके अन्तर (आध्यात्मिक) प्रकाश होता है और रातदिन उनकी प्रीति हरि के साथ लगी रहती है। (हाँ) जिन्होंने 'उस' प्रभु का जाप किया है, वे भाग्य-शाली हैं।

हे नानक ! नाम में अनुरक्त होने से ही (यह) सुख (प्राप्त) होता है ॥२॥

सेवक की मनसा पूरी भई ॥
सतिगुर ते निरमल मति लई ॥
जन कउ प्रभु होइओ दइआलु ॥
सेवक कीनो सदा निहालु ॥

(अतएव) जिसने सत्गुरु से (हरि नाम स्मरण की) निर्मल मति (शिक्षा) ली (अर्थात् ग्रहण की), उस सेवक के मन की इच्छा पूर्ण हो गई। (सेवक ने नाम का जाप किया) फिर सेवक पर प्रभु दयालु हो गया और 'उसने सेवक को सदा (के लिए)

बंधन काटि मुकति जनु भइआ ॥
जनम मरन दूखु भ्रमु गइआ ॥
इछ पुंनी सरधा सभ पूरी ॥
रवि रहिआ सद संगि हजूरी ॥
जिस का सा तिनि लीआ मिलाइ ॥
नानक भगती नामि समाइ ॥३॥

कृतार्थ कर दिया। (इस प्रकार) वह सेवक बन्धनों को काट कर मुक्त हो गया (साथ ही) उसका जन्म-मरण तथा दुःख भ्रम भी दूर हो गया। सेवक की (मुक्ति की) इच्छा भी पूर्ण हुई और श्रद्धा भी (प्रभु मिलन की) सारी सफल हो गई, क्योंकि (अब) उसको व्यापक प्रभु सदा संग दिखाई देता है और 'उसको प्रत्यक्ष प्रतीत करता है। जिसका वह सेवक बना था, 'उसने (अपने) सेवक को अपने साथ मिला लिया। (अतएव) (अब यह निश्चय कर के जाना है कि) भक्ति द्वारा ही सेवक नामी (प्रभु) में समाहित होता है, हे नानक ! ॥३॥

सो किउ बिसरै जि घाल न भानै ॥
सो किउ बिसरै जि कीआ जानै ॥
सो किउ बिसरै जिनि सभु किछु दीआ ॥
सो किउ बिसरै जि जीवन जीआ ॥
सो किउ बिसरै जि अगनि महि राखै ॥
गुर पसादि को बिरला लाखै ॥
सो किउ बिसरै जि बिखु ते काढै ॥
जनम जनम का टूटा गाढै ॥
गुरि पूरै ततु इहै बुझाइआ ॥
प्रभु अपना नानक जन धिआइआ ॥४॥

'वह' प्रभु (हमें) क्यों विस्मृत हो जाए, जो किसी के परिश्रम को भंग नहीं करता, (भाव परिश्रम का फल अवश्य देता है)। 'वह' प्रभु (हमे) क्यो विस्मृत हो जाए जो किए हुए कर्म को जानता है (अर्थात् अच्छे काम की कद्र को जानता है)। वह' प्रभु (हमे) क्यो विस्मृत हो जाए जिसने सब कुछ दिया है। 'वह' प्रभु (हमे) क्यों विस्मृत हो जाए जो हमारे जीवन का भी जीवन (दाता) है। 'वह' प्रभु (हमें) क्यों विस्मृत हो जाए जो (माता के पेट मे) जठराग्नि मे रक्षा करता। गुरु की कृपा से यह बात कोई विरला ही समझता है। 'वह' प्रभु (हमें) क्यो विस्मृत हो जाए जो विष रूपी माया से अथवा विषय-विकारो के विष से निकाल देता है और जन्म-जन्मांतरों के टूटे हुए जीव को अपने साथ बाध लेता है (अर्थात् मिला लेता है)। पूर्ण गुरु ने यह (असली) सिद्धान्त समझा दिया है। हे नानक ! दासों ने अपने प्रभु का ही ध्यान किया है ॥४॥

साजन संत करहु इहु कामु ॥
आन तिआगि जपहु हरि नामु ॥
सिमरि सिमरि सिमरि सुख पावहु ॥
आपि जपहु अवरह नामु जपावहु ॥
भगति भाइ तरीऐ संसारु ॥
बिनु भगती तनु होसी छारु ॥

हे सज्जनो ! हे सन्तो ! प्रभु ध्याने का ऐसा काम करो कि अन्य उपाय छोडकर केवल हरि का नाम जपो। स्मरण करके, स्मरण करके (हाँ) स्मरण करके सुख प्राप्त करो। आप नाम जपो और औरो को भी नाम जपाओ (ताकि वे भी सुखी हो)। प्रेम भक्ति द्वारा (अर्थात् भक्ति भाव से) ही यह ससार रूपी सागर तैर कर पार होगे। भक्ति के बिना हमारी देही मिट्टी हो जाएगी। कल्याण, सुख और सब खजाने हरि नाम में (निहित) हैं।

सरब कलिआण सूख निधि नामु ॥
बूडत जात पाए बिस्रामु ॥
सगल दूख का होवत नासु ॥
नानक नामु जपहु गुन तासु ॥५॥

संसार (सागर) में डूबता हुआ जीव भी नाम जपकर विश्राम प्राप्त कर लेता है। (नाम के प्रताप से) सारे दुःख नाश हो जाते हैं। इसलिए हे सज्जनों ! हे सन्तों ! तुम भी 'उसका' नाम जपो, जो गुणों का कोष समुद्र है। कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहिब जी) ॥५॥

उपजी प्रीति प्रेम रसु चाउ ॥
मन तन अंतरि इही सुआउ ॥
नेत्रहु पेखि दरसु सुखु होइ ॥
मनु बिगसै साध चरन धोइ ॥
भगत जना कै मनि तनि रंगु ॥
बिरला कोऊ पावै संगु ॥
एक बसतु दीजै करि मइआ ॥
गुर प्रसादि नामु जपि लइआ ॥
ताकी उपमा कही न जाइ ॥
नानक रहिआ सरब समाइ ॥६॥

(मेरे अन्दर प्रभु के लिए) प्रीति, प्रेम-रस और (प्रभु-दर्शन के लिये) चाहना (उत्कंठा) उत्पन्न हुई है। (अब तो) मन तन अन्दर यही एक रस है। यही एक मनोरथ (प्रयोजन) है कि(काश !) मैं यह प्रीति निभाऊँ। नेत्रों से (रसीले) साधुजनों का दर्शन करके सुख (प्राप्त) होता है और उनके चरण धोकर (मेरा) मन विकसित होता है। (हरि के) भक्तजनों का मन तन प्रेम-रंग में अनुरक्त है, (किन्तु) कोई विरला ही उनकी संगति प्राप्त करता है। (हे प्रभो!) कृपा करके एक ही वस्तु (मुझे) दो कि गुरु की कृपा से (मैं) नाम जपूं अथवा नाम जपकर उस रस और चाहना को प्राप्त करूँ। 'उस' (प्रभु) की (अनन्त) उपमा कही नही जा सकती। (किन्तु) हे नानक ! 'वह' सब में समा रहा है ॥६॥

प्रभ बखसंद दीन दइआल ॥
भगति वछल सदा किरपाल ॥
अनाथ नाथ गोबिद गुपाल ॥
सरब घटा करत प्रतिपाल ॥
आदि पुरख कारण करतार ॥
भगत जना के प्रान अधार ॥
जो जो जपै सु होइ पुनीत ॥
भगति भाइ लावै मन हीत ॥
हम निरगुनीआर नीच अजान ॥
नानक तुमरी सरनि पुरख भगवान ॥७॥

हे (मेरे अवगुणों को) क्षमा करने वाले ! हे दीनों (और गरीबों)पर दया करने वाले प्रभु ! हे भक्तों को प्यार व रक्षा करने वाले तथा सदा कृपा करने वाले (प्रभु) ! हे अनाथों के नाथ (स्वामी) !

हे सब (जीवों) की पालन करने वाले (प्रभु)! हे आदि पुरुष ! हे आदि कारण ! हे सब कुछ करने वाले कर्त्ता (प्रभु)! हे भक्त जनों के प्राणाश्रय ! जो जो आप को जपता है और भक्ति-भाव से मानसिक प्यार लगाता है, वह (वह) पवित्र हो जाता है। (हे गुणनिधान प्रभु !) हे पुरुष भगवान ! हम सब गुणों से रहित निर्गुण हैं, नीच हैं और अज्ञानी (मूर्ख) हैं, किन्तु हम तुम्हारी शरण में आये हैं। (हमें बचा लो) (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक की यह प्रार्थना है ॥७॥

सरब बैकुंठ मुकति मोख पाए ॥
एक निमख हरि के गुन गाए ॥

(यदि) एक निमिष मात्र भी हरि के गुण गाऊं तो (मानो) सारे बैकुण्ठ, (सारी) मुक्तियों और मोक्ष (की आनन्द) प्राप्त हो

अनिक राज भोग बडिआई ॥
हरि के नाम की कथा मनि भाई ॥
बहु भोजन कापर संगीत ॥
रसना जपती हरि हरि नीत ॥
भली सु करनी सोभा धनवंत ॥
हिरदै बसे पूरन गुर मंत ॥
साध संगि प्रभ देहु निवास ॥
सरब सूख नानक परगास ॥८॥२०॥

जाते हैं। (यदि) हरि के नाम की कथा मन में भा गई तो (मानो) अनेक राज्य, (राज्य के) भोग और बड़ाई प्राप्त कर ली। (यदि) रसना हरि हरि निरन्तर जपने लग जाये, तो (मानो) (अनेक) भोजन, कपड़े, रागादि प्राप्त हो गये। (यदि) हृदय में गुरु का मन्त्र (उपदेश) पूर्णरूप से बस जाए, तो (मानो) वह शुभ करनी (बहुत) भली है, यही (वास्तविक) शोभा है, और यही धनाढ्य होना है।

हे प्रभो! (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहिब) की प्रार्थना है कि साधुजनों की सगति में (हमें) निवास दो ताकि सब सुखों का प्रकाश (हमारे जीवन में प्राप्त) हो ॥८॥२०॥

श्लोक एवं अष्टपदी (२०) का सारांश

श्लोक — जब प्रभु को विनय करो तो केवल भक्ति ही माँगना क्योंकि भक्ति के बिना हे जीव ! तू अनेक योनियो में भटकता आया है और मरने के बाद भी पुनः भटकता ही रहेगा।

अष्टपदी — कई स्थानों पर घूमते-फिरते हे प्रभु ! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। हे कृपालु प्रभु ! मेरी विनय सुनो। मुझे अपनी भक्ति में लगाओ और अपने नाम का ध्यान कराओ। मैं भिखारी यह दान माँगता हूँ। हे दाता ! कृपा कर कि मैं तुम्हारे साधु जनों की धूलि माँगू। हे पारब्रह्म प्रभु ! मेरी यह श्रदा पूर्ण करो। तू किसी भी जीव का परिश्रम तोडने वाला नहीं है अर्थात् तू प्रत्येक कर्म का फल देता है। तू सर्वव्यापक है और तू सर्व की ज्योति है। तू अग्नि में रक्षा करता है, तू विष से निकालता है और तू बिछुड़े हुओं को मिलाता है। हे प्यारे ! सब कुछ त्याग करके एक प्रभु के नाम का जाप कर, अपने अहकार को त्याग दे तभी तुम्हारे सभी दुःख, दर्द, सब भ्रम आदि दूर हो जाएंगे और भव सागर से तू पार हो जाएगा। मेरे प्रभु प्रियतम के सदृश्य अन्य कोई भी नही है ! हे दीन दयालु! हे सदा कृपालु! हे सर्व प्रतिपालक !हे अनाथो के नाथ ! हे आदि पुरुष ! हे कारण कर्त्ता ! हे भक्त जनों के प्राण आधार ! मैं निर्गुण, नीच, अज्ञानी तुम्हारी शरण मे आया हूँ। हे प्रभो ! मेरी लज्जा रखो।

सलोकु ॥

"मेरा प्रभु सगुण और निर्गुण रूप है।"

सरगुन निरगुन निरंकार
सुंन समाधी आपि ॥
आपन कीआ नानका
आपे ही फिरि जापि ॥१॥

हे निरंकार ! तू ही सगुण है और तू ही निर्गुण है। (भाव: तू ही प्रकृति में सर्वव्यापक है और तू ही प्रकृति से परे है। तू ही सब गुणों वाला है और तू ही तम, रज, सत् तीनों गुणों से रहित है)। तू ही निर्विकलप समाधि में निश्चिल है। हे नानक ! यह जो कुछ किया है सब तुमने ही किया है और फिर तुम ही यह सब अपने में समा लोगे ॥१॥

असटपदी ॥

"निर्गुण अवस्था ।"

जब अकारु इहु कछु न द्रिसटेता ॥
पाप पुंन तब कह ते होता ॥
जब धारी आपन सुंन समाधि ॥
तब बैरबिरोध किसु संगि कमाति ॥
जब इस का बरनुचिहनु न जापत ॥
तब हरखसोग कहुकिसहिबिआपत ॥
जब आपन आप आपि पारब्रहम ॥
तब मोह कहा किसु होवत भरम ॥
आपन खेलु आपि वरतीजा ॥
नानक करनैहार न दूजा ॥१॥

जब यह आकार कुछ नही दीखता था, (भाव: जब यह सृष्टि बनी नहीं थी) तब पाप और पुण्य किससे होता था ? जब (हे प्रभो !) तुमने अपने आप निर्विकल्प समाधि धारण की हुई थी तब वैर विरोध कौन किसके संग करता था ? जब इस (आकारमय रचना) का रंग और चिह्न ही नहीं दिखाई देता था, तब बताओ हर्ष शोक किसको लगते थे ? (भाव : 'उसके' अतिरिक्त तो और कुछ था ही नही) । जब पारब्रह्म अकेला आप ही आप था, तब (बताओ) मोह कहाँ था और भ्रम किसको होता था ? हे नानक ! (यह रचना) 'उसका' अपना खेल है जो उसने आप ही किया है, (भाव. उसमें आप भी रहता है, (हाँ) 'उसके' बिना दूसरा करने वाला (और कोई) है ही नहीं । ॥१॥

जब होवत प्रभ केवल धनी ॥
तब बंध मुकति कहु किसकउ गनी ॥
जब एकहि हरि अगम अपार ॥
तब नरकसुरग कहुकउनअउतार ॥
जब निरगुन प्रभ सहज सुभाइ ॥
तब सिव सकति कहहु किसु ठाइ ॥
जब आपहि आपिअपनीजोति धरै ॥
तब कवन निडरु कवन कतिडरै ॥
आपन चलित आपकर नैहार ॥
नानक ठाकुर अगम अपार ॥२॥

जब, हे प्रभो ! तू ही (मालिक) केवल (अकेला) स्वय ही था, तो बताओ बंधा और मुक्त किसको गिन सकता था ? जब, हे अगम्य ! हे अपार हरि ! तू (अकेला) ही एक था, तो बताओ नरक स्वर्ग मे कौन जन्म लेता था ? जब, हे प्रभो ! तू निर्गुण अचल अस्फुट स्वरूप में (निश्चल) स्थित था, तो बताओ जीव और माया किस स्थान पर थे ? (भाव. इनका अस्तित्व ही नही था) । जब, (हे प्रभो !)तुमने अपने आप में ही अपनी ज्योति धारण कर रखी थी, तो (बताओ) कौन निर्भय और कौन किससे डरता था ? (वस्तुत: ये सब) तुम्हारे ही कौतुक हैं जिनको करने वाला (रचनहार) तू ही स्वय है ।

हे अगम्य अपार ठाकुर ! (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहब जी विनम्र भाव से यह) प्रार्थना करते हैं ॥२॥

अबिनासी सुख आपन आसन ॥
तह जनम मरन कहु कहाबिनासन ॥
जब पूरन करता प्रभु सोइ ॥
तब जमकीत्रास कहहु किसु होइ ॥
जब अबिगत अगोचर प्रभ एका ॥
तब चित्र गुपत किसु पूछत लेखा ॥

जब, हे अविनाशी (प्रभो)! तू अपने सुखासन मे स्थिति था, तब बताओ जन्म-मरण और विनाश कहाँ थे ? जब, हे कर्ता ! हे प्रभो ! तुम्हारी ही पूर्ण शोभा थी, तब बताओ यम(काल)का भय किसको होता था ? जब, हे नाश रहित(अविगत)! हे इन्द्रियातीत (अगोचर) प्रभो ! था ही एक तू, तो (बताओ) चित्रगुप्त लेखा किस से पूछते थे ? जब, हे नाथ (स्वामी) ! तू आप ही आप अंजन (दाग) से रहित, इन्द्रियातीत और थाह (हद) से रहित था, तो

जब नाथनिरंजन अगोचर अगाधे ॥
तब कउन छुटे कउन बंधन बाधे ॥
आपन आप आप ही अचरजा ॥
नानकआपनरूपआपहीउपरजा ॥३॥

(बताओ) कौन बन्धनों से छूटे हुए थे ? कौन बन्धनो में बन्धा था ? (हाँ) तू आप ही अपनी आश्चर्य अवस्था मे (बस रहा) है।

ये (सब) तुम्हारे ही रूप है और तुमने ही उत्पन्न किये हैं। अथवा अपना आप स्वय ही उत्पन्न किया है ॥३॥

जह निरमलपुरखु पुरखुपतिहोता ॥
तह बिनु मैलु कहहु किआ धोता ॥
जह निरंजन निरकार निरबान ॥
तह कउनकउमान कउनअभिमान ॥
जह सरूप केवल जगदीस ॥
तह छल छिद्र लगत कहु कीस ॥
जह जोतिसरूपी जोतिसंगि समावै ॥
तह किसहि भूख कवनु तृपतावै ॥
करन करावन करनैहारु ॥
नानक करते का नाहि सुमारु ॥४॥

जहाँ 'वह' निर्मल पुरुष (परमात्मा),(न माया का)पति, पर अपना पति स्वय था, तब बताओ वहाँ मैल तो थी ही नही, क्या धोया जाता था ? जहाँ माया रहित (निरजन), आकार रहित (निराकार), निर्लेप अथवा मुक्त रूप अथवा निर्मोही (निरवाण) परमेश्वर था, तो बताओ वहाँ किसको सम्मान और किसका अपमान होता था ? जहाँ 'वही (केवल) जगत का स्वामी अपने स्वरूप में समाहित था, वहाँ बताओ पाप किसको लगता था ? जहाँ 'उसके' स्वरूप की ज्योति 'उसी' ज्योति मे समाहित थी, (अर्थात जब ज्योति स्वरूप अपनी ज्योति मे ही लीन था), तो (बताओ) वहाँ किस को भूख (तृष्णा) लगती थी और कौन तृप्त होता था ? (हाँ) करने कराने वाला करणहार (तू स्वय ही)है।

हे नानक ! 'उस' करने वाले (कर्ता) का कोई अन्त है ही नही ('वह' तो अनन्त है) ॥४॥

जब अपनी सोभा आपनसंगिबनाई ॥
तब कवन माइबाप मित्र सुत भाई ॥
जह सरब कला आपहि परबीन ॥
तह बेद कतेब कहा कोऊ चीन ॥
जब आपन आपु आपि उर धारै ॥
तउ सगन अपसगन कहा बीचारै ॥
जह आपन ऊच आपन आपि नेरा ॥
तह कउन ठाकुरुकउन कहीऐ चेरा ॥
बिसमन बिसम रहे बिसमाद ॥
नानक अपनीगति जानहुआपि ॥५॥

जब (हे प्रभो !) अपनी शोभा (केवल) अपने साथ ही बना कर रखी हुई थी (भाव . जब तू अपने निजात्म स्वरूप मे शोभायमान था), तो (बताओ) माता, पिता, मित्र, पुत्र, भाई (आदि) कौन थे ? जहाँ तू सर्व गुणों अथवा शक्तियो सहित प्रवीण आप ही था, तब वहाँ वेद, कतेब (धर्मग्रन्थ) कहाँ थे और कौन विचारता था ? जब अपने हृदय मे तुमने अपने आपको धारण कर रखा था (भावः व्यक्त नही हुआ था), तो (बताओ) कहाँ कोई विचारता था ? जहा तू स्वय अपने आप में ऊँचा और अपने आप मे निकट था, तब वहाँ कौन स्वामी और कौन सेवक कहा जाता था ? हे आश्चर्य रूप (परमात्मा) ! (जीव तो आनन्दावस्था प्राप्त करके) आश्चर्य मे आश्चर्य चकित हो कर विस्मय हो रहा हैं। हे (प्रभो !) तू अपनी अवस्था (गति) आप ही जानता है ॥५॥

जह अछल अछेद अभेद समाइआ ॥
ऊहा किसहि बिआपत माइआ ॥

जहाँ केवल तू ही स्थित (समाया हुआ) था, हे अछल ! (जो छला नही जाता), हे अछेद्य ! (जो छेदा नही जाता), हे अभेद !

आपस कउ आपहि आदेसु ॥
तिहु गुण का नाही परवेसु ॥
जह एकहि एक एक भगवंता ॥
तह कउनुअचिंतु किसुलागै चिंता ॥
जह आपन आपु आपि पतीआरा ॥
तह कउनु कथै कउनु सुननै हारा ॥
बहु बेअंत ऊच ते ऊचा ॥
नानकआपसकउ आपहिपहूचा ॥६॥

(जो खंड न किया जाता), वहाँ माया किसको व्याप्त हो सकती थी ? जब (हे प्रभो !) तुम अपने आप को स्वयं ही नमस्कार करते थे, तब (वहाँ) तीन गुणों (तम् रज सत्, का प्रवेश नहीं था। जहाँ हे भगवन्त ! तू एक (हाँ) एक ही एक (भाव : अकेला बसता) था, (हाँ) चिन्ता से रहित था, तब किसको चिन्ता लगती थी ? जहाँ तू (सन्तुष्ट) अपने आप से स्वयं ही सन्तुष्ट होता था, तो (बताओ) वहाँ कथन करने वाला कौन था और सुनने वाला कौन था ? (हाँ) तू बहुत अनन्त है। तू उँचे से भी ऊँचा (सर्वोच्च) है।

हे नानक ! अपने आप को तू स्वयं ही पहुँचता है (अर्थात तू अद्वितीय है। कोई अन्य तुम्हारी समानता नहीं कर सकता) ॥६॥

जह आपि रचिओ परपंचु अकारु ॥
तिहु गुण कीनो बिसथारु ॥
पापु पुंनु तह भई कहावत ॥
कोऊ नरक कोऊ सुरग बंछावत ॥
आल जाल माइआ जंजाल ॥
हउमै मोह भरम भै भार ॥
दूख सूख मान अपमान ॥
अनिक प्रकार कीओ बख्यान ॥
आपन खेलु आपि करि देखै ॥
खेलु संकोचै तउ नानक एकै ॥७॥

(पर) जहाँ, (हे निरंकार प्रभु ! तुमने) स्वयं (यह) द्रश्यमान संसार की रचना की, वहाँ तीनों गुणों में प्रसार भी कर दिया। वहाँ पाप पुण्य (के नाम) का कथन चला (कि यह कर्म पाप है और यह कर्म पुण्य है)। (अब वहाँ) कोई (भाव : पापी) नरक (प्राप्ति) की, कोई (भाव : पुनी) स्वर्ग की इच्छा करने लगा, इस प्रकार माया के (सारे) झंझाल, घरों के झंझट, अहंकार, मोह, भ्रम, भय का भार तथा दु.ख, सुख, आदर, अनादर (जीवों मे) अनेक प्रकार से वर्णन करना आरम्भ कर दिया। (किन्तु) हे नानक ! (यह) तुम्हारा अपना खेल(कौतुक)हैं, (हाँ) इस खेल को तू स्वयं ही करता है और स्वय ही देखता है।

इस प्रकार जब तू यह ससार का खेल सकोच सा लेता है, तब तू ही एक (आप ही आप) रह जाता है ॥७॥

जह अबिगतु भगतु तह आपि ॥
जह पसरै पासारु संत परतापि ॥
दुहू पाख का आपहि धनी ॥
उन की सोभा उनहू बनी ॥
आपहि कउतक करै अनद चोज ॥
आपहि रस भोगन निरजोग ॥
जिसु भावै तिसु आपन नाइ लावै ॥

जहाँ अविनाशी परमेश्वर है, वहाँ भक्त है और जहाँ भक्त है वहाँ 'वह' आप है (अर्थात अद्रश्य भाव: निर्गुण अवस्था में जहाँ तुम्हारा भक्त है, वहाँ तू प्रत्यक्ष है)। जहाँ तुम्हारा यह प्रसार प्रसारित है (अर्थात सगुण अवस्था में भी अपने) सन्त के प्रताप से प्रकट हो जाता है। दोनों पक्षों (भाव: निर्गुण और सगुण अवस्थाओं) का तू आप ही स्वामी है। एक की शोभा दूसरे पर आधारित है। (भाव: दोनों अवस्थाएं तुम्हारी शोभा प्रकट करती हैं) इसलिये उन की शोभा उन को ही सुशोभित होती हैं। कौतुक (खेलें, लीलायें) तू आप ही अपने आनन्द में कर रहा

जिसु भावै तिसु खेल खिलावै ॥
बेसुमार अथाह अगनत अतोलै ॥
जिउबुलावहु तिउनानकदासबोलै ॥
८॥२१॥

है। ये रस तू आप ही भोग रहा है (रस भोक्ता) फिर भी निर्लेप तू आप ही है। जिसको भाता है उसको तू अपने नाम में लगा लेता है। जिसको भाता है उसको (संसार का) खेल खिलाता है।

(हे प्रभु !) तू अगणित, अतुल्य है जैसे तू बुलवाता है, वैसे तुम्हारा दास नानक बोलता है।८॥२१॥

श्लोक और अष्टपदी (२१) का सारांश

श्लोक—प्रभु निर्गुण है, (हाँ) सगुण भी है। निराकार भी 'वही' है। 'वह' अपनी शून्य समाधी में स्थित है। यह 'सब' कुछ प्रभु का ही विस्तार है जो समयानुसार 'उसी' में लीन हो जाएगा। प्रभु के बिना अन्य कुछ भी नहीं। इसीलिए हे जीव ! तू 'उसी' एक का स्मरण कर।

अष्टपदी—सगुण निर्गुण निरकार अन्य कोई भी नहीं है। जब कोई भी रूप, कोई भी वर्ण, कोई भी चिह्न नहीं था, तब पाप कहाँ था, पुण्य कहाँ था, हर्ष कहाँ था, शोक कहाँ था, बुद्धि कहाँ थी, और मोह कहा था ? जब 'वह' आप ही आप शून्य समाधी मे स्थित था तब भलाई कौन करता था और वैर-विरोध कौन करता था ? जब 'वह' आप ही निरजन स्वामी था तब बन्धा हुआ कौन था और मुक्त कौन था ? जब एक ही एक अगम्य अपार प्रभु था तब स्वर्ग किसको मिला था और नरक किसको ? जब सत्य स्वभाव से 'वह' निर्गुण था तब अवतार कहाँ थे, ऋषि कहाँ थे, शिव कहाँ था और शक्ति कहाँ थी ? जब अविनाशी अगोचर परिपूर्ण प्रभु एक से अनेक नही हुआ था तब जन्म कहाँ था, मरण कहाँ था और हिसाब-किताब कहाँ था ? जब निर्मल पुरुष वही था तब मलिन कौन था और पवित्र कौन था ? जब निरंकार 'वही' था तब मान किसको था और अभिमान किसको था ? जब केवल 'वही' जगदीश स्वरूप था तब छल-छिद्र किसको लगता था ? जब ज्योति स्वरूप अपनी ज्योति में था तब भूख कहाँ थी, तृप्ति कहाँ थी, माता कहाँ थी और पिता कहाँ था ? जब वहीं एक ज्ञानी था तब वेद कहाँ थे, किताब कहाँ थे, ठाकुर कहाँ थे, चेले कहाँ थे, वक्ता कहाँ थे और श्रोता कहाँ थे? जब 'वही' एक निश्छल, अभेद्य, और अभेद्य था तब माया कहाँ थी और लीला कहाँ थी ? प्रभु आप ही आश्चर्यमयी लीला करता है और आप ही अपनी गति जानता है। 'उसकी' प्रकृति अतुलनीय, अटूट, अनन्त, असीम, अगणित, अपार है। 'वही' दोनों ओर स्वामी है। 'उसकी' सुन्दरता 'उसी' के साथ बन आती है। 'वही' सब भोगों में निर्लिप्त है। 'उसी' ने तीन गुणों से यह सारा विस्तार किया है और 'वही' इन तीनों गुणों से ऊपर है। हे नानक ! 'उसी' से लौ लगा और 'उसी' की कृपा माँग।

सलोकु ॥

"प्रभु सर्वव्यापक है।"

जीअजंतकेठाकुरा आपेवरतणहार ॥
नानक एको पसरिआ
दूजा कह द्रिसटार ॥१॥

हे जीव-जन्तुओं के स्वामी ! तू आप ही सब में वरत रहा है। हे नानक ! एक तू ही सब में रम रहा है। दूसरा कहाँ दिखाई देता है ?॥१॥

असटपदी ॥

"परिपूर्ण प्रभु सर्वशक्तिमान और दीन दयालु है।"

आपि कथै आपि सुननैहारु ॥
आपहि एकु आपि बिसथारु ॥
जा तिसु भावै ता स्रिसटि उपाए ॥
आपनै भाणै लए समाए ॥
तुम ते भिंन नही किछु होइ ॥
आपन सूति सभु जगतु परोइ ॥
जा कउ प्रभ जीउ आपि बुझाए ॥
सचु नामु सोई जनु पाए ॥
सो समदरसी तत का बेता ॥
नानक सगल स्रिसटि का जेता ॥१॥

(हे प्रभो !) कथन भी तू आप करता है और सुनता भी तू आप ही है। तू एक है और तू ही अनेक (विस्तार) है। जब तू चाहता है तब सृष्टि उत्पन्न करता है और फिर अपनी इच्छा से अपने में लय कर लेता है। (हे प्रभु !) तुम से भिन्न कुछ भी नही है (अर्थात् तुम्हारी आज्ञा के बिना कुछ भी नही होता)। तुमने अपने सूत्र मे सारा जगत पिरोकर रखा है। हे प्रभु जी ! जिसको तू आप समझाता है, वही दास सत्य नाम प्राप्त करता है। वह दास सबको एक दृष्टि से देखने वाला है, तत्ववेत्ता है और हे नानक ! सम्पूर्ण सृष्टि को जीतने वाला भी वही दास है ॥१॥

जीअ जंत सभ ता कै हाथ ॥
दीन दइआल अनाथ को नाथु ॥
जिसु राखै तिसु कोइ न मारै ॥
सो मूआ जिसु मनहु बिसारै ॥
तिसु तजि अवर कहा को जाइ ॥
सभ सिरि एकु निरंजन राइ ॥
जीअ की जुगति जा कै सभ हाथि ॥
अंतरि बाहरि जानहु साथि ॥
गुन विधान बेअंत अपार ॥
नानक दास सदा बलिहार ॥२॥

जीव-जन्तु सब 'उस' प्रभु के हाथ (वशीभूत) हैं। 'वह' (दयालु) दीनों (गरीबों) पर दया करने वाला है और अनाथो का नाथ है। जिसको 'वह' रखता है उसको कोई भी नहीं मार सकता। वह जीव मर गया (समझो) जिसको प्रभु मन से विस्मृत करता है। उस (प्रभु) को छोड़कर कोई कहाँ जाये अर्थात दूसरी कौन-सी जगह है जहाँ कोई जाये ? सब के सिर पर 'वह' एक (निरजन) राजा माया से रहित है।

(हे भाई !) जिस (निरजन प्रभु) के हाथो में जीवो की सब युक्ति है (अर्थात उत्पन्न करने वाला, पालन करने वाला और सहार करने वाला वही है), 'उसको' तू अन्दर-बाहर अपने अंग सग समझो। 'वह' गुणो का कोष है, अनन्त है, (हाँ) अनन्त है और पार रहित है।

मैं दास नानक सदैव 'उसके' ऊपर बलिहारी जाऊँ ॥२॥

पूरनि पूरि रहे दइआल ॥
सभ ऊपरि होवत किरपाल ॥
अपने करतब जानै आपि ॥
अंतरजामी रहिओ बिआपि ॥
प्रतिपालै जीअन बहु भाति ॥

'वह' दयालु और पूर्ण परमेश्वर (सब जगह) पूर्ण रूप से रम रहा है और 'वह' सबके ऊपर कृपा करता है। अपने कर्तव्यों को 'वह' आप ही जानता है। 'वह' अन्तर्यामी (परिपूर्ण प्रभु सर्वत्र) व्यापक हो रहा है। 'वह' जीवो की नाना प्रकार से पालना करता है। जो जो जीव उसने रचे हैं, 'उसी' को याद करते हैं। जिसको चाहे 'उसको' 'वह' अपने साथ मिला लेता है। वह (फिर) हरि

जो जो रचिओ सुतिसहिधिआति ।।
जिसु भावै तिसु लए मिलाइ ।।
भगति करहि हरि के गुण गाइ ।।
मनअंतरि बिसवासुकरि मानिआ ।।
करनहार नानक इकुजानिआ ।।३।।

के गुण गा-गाकर उसकी भक्ति करता है। (अपने) मन के अन्दर पूर्ण विश्वास धारण करके वह (परमात्मा को) मानता है और हे नानक! (वह यह भी) जानता है कि 'वह' एक परमात्मा ही सब कुछ करने वाला है ।।३।।

जनु लागा हरि एकै नाइ ।।
तिस की आस न बिरथी जाइ ।।
सेवक कउ सेवा बनि आई ।।
हुकमु बूझि परम पदु पाई ।।
इस ते उपरि नही बीचारु ।।
जा कै मनि बसिआ निरंकारु ।।
बंधन तोरि भए निरवैर ।।
अनदिनु पूजहि गुर के पैर ।।
इह लोक सुखीए परलोक सुहेले ।।
नानक हरिप्रभि आपहि मेले ।।४।।

जो दास हरि के एक नाम में (सलग्न) रहता है, उसकी आशा कभी भी व्यर्थ नहीं जाती। सेवक को तो (हरि की) सेवा ही बन आती है। (अर्थात सेवा से सेवक जाना जाता है और सेवा से उसकी शोभा होती है) और प्रभु की आज्ञा समझने पर ही परम पद (उत्तम में उत्तम पद नाम का) प्राप्त होता है। इस से अधिक (ऊँचा और) विचार (सेवक के लिए कोई) नहीं है जिनके मन में निरंकार (प्रभु) बस रहा है। वे (माया के) बन्धन तोड़कर वैर से रहित(निर्वैर)हो जाते हैं। वे रात दिन(अपने) गुरु के चरण पूजते हैं। (नाम जपने वाले ऐसे सेवक) इस लोक में भी सुखी होते हैं, और परलोक में भी सुखी होते हैं।

हे नानक! हरि प्रभु ने उनको अपने आप ही (अपने साथ) मिला लिया है ।।४।।

साध संगि मिलि करहु अनंद ।।
गुन गावहु प्रभ परमानंद ।।
राम नाम ततु करहु बीचारु ।।
दुलभ देह का करहु उधारु ।।
अंम्रित बचन हरि के गुन गाउ ।।
प्रान तरन का इहै सुआउ ।।
आठ पहर प्रभ पेखहु नेरा ।।
मिटै अगिआन बिनसै अंधेरा ।।
सुनि उपदेसु हिरदै बसावहु ।।
मन इछे नानक फल पावहु ।।५।।

(अतएव हे भाई!, तू भी साधु की संगति में मिलकर आनन्द कर (कैसे?) परमानन्द प्रभु के गुण गा और राम राम जो तत्व (सार) वस्तु है, उसका विचार कर। इस प्रकार दुर्लभ (मनुष्य) देही का उद्धार कर। (साधु की संगति में) अमर करने वाले (हरि यश के) वचन सुन और हरि के गुण (सदैव) गा अथवा साधु-जनों के अमर करने वाले (स्तुतिवाचक) वचनों द्वारा हरि के गुण गा। प्राणों के उद्धार का यही साधन है(अर्थात जीवन को सार्थक करने का यही लाभ है)। आठ ही प्रहर अपने प्रभु को निकट देख भाव. 'उसको' प्रत्यक्ष करके समझो। इस प्रकार अन्धकार (अज्ञानता) मिट जायेगा और (सब प्रकार का) अन्धेरा भी नाश हो जायेगा। यह उपदेश (जो मेरे गुरुदेव ने दिया है) सुनकर (अपने) हृदय में बसाओ, तब हे नानक! मन वांछित फल प्राप्त करोगे ।।५।।

हलतु पलतु दुइ लेहु सवारि ॥
रामु नामु अंतरि उरिधारि ॥
पूरे गुर की पूरी दीखिआ ॥
जिसुमनिबसै तिसुसाचु परीखिआ ॥
मनि तनि नामु जपहु लिवलाइ ॥
दूखु दरदु मन ते भउ जाइ ॥
सचु वापारु करहु वापारी ॥
दरगह निबहै खेप तुमारी ॥
एका टेक रखहु मन माहि ॥
नानक बहुरि न आवहिजाहि ॥६॥

(हे भाई !) राम के नाम को (अपने) हृदय के अन्दर धारण करके (अपना) लोक परलोक दोनों सँवार ले। पूर्ण गुरु की शिक्षा पूर्ण है। जिसके मन में(यह शिक्षा) बस जाती है, उसने सत्य की परीक्षा कर ली है अथवा सत्य स्वरूप परमात्मा को परख लिया है। (अतएव हे भाई ! तू भी) मन तन से लौ लगाकर नाम जप ताकि दुःख, दर्द और मन से भय (सब कुछ) दूर हो जाए। हे व्यापारी ! (यह) सच्चा व्यापार (नाम का) कर, तब तुम्हारे जीवन की खेप (वहाँ हरि) दरबार में स्वीकृत होगी (अर्थात परलोक में तुम्हारे जीवन की कमाई सफल हो जाएगी)। (हे भाई !) एक (नाम) की टेक (आश्रय) मन में रख अथवा मन में एक ईश्वर का ही आधार मान तो फिर हे नानक ! पुनः (योनियों में) न आना होगा (अर्थात बारम्बार जन्म-मरण समाप्त हो जायेगा)।।६॥

तिस ते दूरि कहा को जाइ ॥
उबरै राखनहारु धिआइ ॥
निरभउ जपै सगल भउ मिटै ॥
प्रभ किरपा ते प्राणी छुटै ॥
जिसु प्रभु राखै तिसु नाही दूख ॥
नामु जपत मनि होवत सूख ॥
चिंता जाइ मिटै अहंकारु ॥
तिसु जन कउ कोइ न पहुचनहारु ॥
सिर ऊपरि ठाढा गुरु सूरा ॥
नानक ता के कारज पूरा ॥७॥

'उस' (प्रभु) से दूर होकर कौन कहाँ जाएगा ? जब कि 'उस' रक्षक (प्रभु) का ध्यान करके ही (जीव का) उद्धार हो जाता है। जब (प्राणी) निर्भय परमात्मा जपता है तब उसके सम्पूर्ण भय मिट जाते है और प्रभु की कृपा से वह प्राणी छूट जाता है। जिसको प्रभु रखता है उसको दुःख नही होता। नाम जपने से मन सुखी होता है, चिन्ता दूर हो जाती है, अहंकार मिट जाता है। किन्तु उस(प्रभु के)दास तक कोई भी पहुँच नही सकता (भाव: उसकी बराबरी कोई भी नही कर सकता, उसको दु.ख नही दे सकता) जिसके सिर पर शूरवीर गुरु खड़ा है (भाव: हर समय रक्षा के लिये तैयार है),

हे नानक ! उसके सारे काम पूर्ण हो जाते हैं।।७॥

मति पूरी अंम्रित जाकी द्रिसटि ॥
दरसनु पेखत उधरत स्रिसटि ॥
चरन कमल जा के अनूप ॥
सफल दरसनु सुंदर हरि रूप ॥
धंनु सेवा सेवकु परवानु ॥
अंतरजामी पुरखु प्रधानु ॥

जिस (हरि)की बुद्धि पूर्ण है और जिसकी दृष्टि अमर (भाव. देखने से ही अमर कर देता) है 'उसका' दर्शन करने से (सम्पूर्ण जीव) सृष्टि का उद्धार हो जाता है। जिस (हरि) के चरण-कमल अनुपम हैं. 'उस' हरि का दर्शन फलदायक है। (इसे अमोघ दर्शन भी कहते है) और सुन्दर है हरि का रूप, धन्य है सेवा 'उस' अन्तर्यामी परिपूर्ण श्रेष्ठ (प्रधान) परमात्मा की भी। धन्य है वह सेवक जिसकी सेवा (वहाँ) स्वीकृत हुई है। जिसके मन में 'वह'

जिसु मनि बसै सु होत निहालु ॥
ता कै निकटि न आवत कालु ॥
अमर भए अमरा पदु पाइआ ॥
साधसंगि नानक हरि धिआइआ ॥
८॥२२॥

(हरि) बसता है, वह कृतार्थ हो जाता है, (फिर) उसके निकट काल (मृत्यु) भी नहीं आता। वह तो अमर पदवी को प्राप्त करके अमर हो जाता है। (अविनाशी पद-मृत्यु से रहित)।

हे नानक ! (यह सब) साधु की संगति में हरि का ध्यान करने से हुआ ॥८॥२२॥

श्लोक और अष्टपदी (२२) का सारांश

श्लोक—सभी जीव-जन्तुओं का एक 'वही' प्रभु स्वामी है। सब में 'वही' परिपूर्ण हो रहा है। 'उसके' बिना दूसरा कुछ भी नहीं है। इसलिए हे भाई ! तू उसी एक का स्मरण कर। अष्टपदी—यदि सत्य स्वरूप परमात्मा के नाम का सच्चा व्यापार करना चाहता है तो हे प्राणी ! तू अपना चाल-चलन ठीक कर, राम-नाम रूपी सौदे को अपने हृदय में धारण कर, मन तन से केवल नाम का ही ध्यान कर और पूर्ण पुरुष के साथ लौ लगा। इस सच्चे व्यापार से तुम्हारे जीवन की खेप सच्ची दरबार में स्वीकृत होगी, तुम दु:ख दर्द आदि से निवृत हो जाओगे तथा इस लोक में और परलोक में भी सुखी होओगे। हे सज्जन ! तू निर्भय प्रभु को जप तो तुम्हारे सभी भय नाश हो जाएंगे। तू आठ प्रहर प्रभु को अपने समक्ष देख तो तुम्हारा अज्ञान नाश हो जायेगा। तू एक पर ही टेक रख, तू एक पर ही विश्वास रख तो सच्चा निरंकार तुम्हारे मन में आकर निवास करे। 'वही' सबके ऊपर एक निरंजन ही राजा है, 'उससे' भला तू कैसे दूर दौड सकेगा ? 'उसको' छोड कर कहां जाएगा ? सब जीव जन्तु उसी' के हुक्म में हैं। जिसको 'वह' रखता है उसे कौन मार सका है ? जिसको 'वह' विस्मृत करता है उसे कौन जीवित कर सकता है ? 'वही' अन्दर है और 'वही' बाहर है। 'वही' उत्पन्न करता है; 'वही' लय करता है, और 'वही' अपने कार्य आप ही जानता है। हाँ 'वही' आप है, दूसरा कोई भी नही है।

सलोकु ॥

"गुरु ही अज्ञानता को दूर करने वाला है।"

गिआन अंजनु गुरि दीआ
अगिआन अंधेर बिनासु ॥
हरि किरपा ते संत भेटिआ
नानक मनि परगासु ॥१॥

हरि ने (मुझे) गुरु के द्वारा ज्ञान रूपी सुरमा (मन रूपी आँखों में डाल) दिया तो अन्धेरा नाश हो गया। हरि की कृपा से (मुझे) सन्त या गुरु मिला। हे नानक ! (अब) मेरे मन में ज्ञान का प्रकाश हो गया है ॥१॥

असटपदी ॥

संत संगि अंतरि प्रभु डीठा ॥
नामु प्रभू का लागा मीठा ॥
सगल समिग्री एकसु घट माहि ॥
अनिक रंग नाना द्रिसटाहि ॥
नउ निधि अंम्रितु प्रभ का नामु ॥
देही महि इसका बिस्रामु ॥
सुन समाधि अनहत तह नाद ॥
कहनु न जाई अचरज बिसमाद ॥
तिनि देखिआ जिसु आपि दिखाए ॥
नानक तिसु जन सोझी पाए ॥१॥

"सर्व व्यापक प्रभु हमारे अंग-संग है।"

सन्त की संगति द्वारा (मैंने अपने) अन्दर ही प्रभु को देखा और प्रभु का नाम (तब से) मीठा लगा। (और क्या मैंने देखा) अनेक रंगों (रूपों) वाली और नाना प्रकार दिखाई देने वाली (सारी) रचना रूपी सामग्री 'उस' एक परमेश्वर के हृदय में समाहित है। (फिर क्या देखा) प्रभु का नाम (जो गुरु ने दिया वह) नव निद्धियाँ (अमूल्य खजाना) है और अमृत भी है। (और इसी नाम ने मेरे) तन (मन) में (सन्त की सगति से आकर निवास किया), (तब मैंने अपने भीतर अपने आपको) निर्विकल्प समाधि में देखा जहाँ शून्य ही शून्य था। वहाँ अनहद शब्द के मधुर नाद सुनें। वहाँ आश्चर्यमय और विस्मय वाली अवस्था थी। उस अवस्था का कथन (वर्णन) नही किया जा सकता। किन्तु (वह हैरान करने वाली अवस्था) वही देखता है जिसको 'वह' (प्रभु) स्वय दिखाता है।

और हे नानक! समझ (सोझी) भी (देखने वाले) सेवक मे ही डाल देता है ॥१॥

सो अंतरि सो बाहरि अनंत ॥
घटि घटि बिआपि रहिआ भगवंत ॥
धरनि माहि आकास पइआल ॥
सरब लोक पूरन प्रतिपाल ॥
बनि तिनि परबति है पारब्रहमु ॥
जैसी आगिआ तैसा करमु ॥
पउण पाणी बैसंतर माहि ॥
चारि कुंट दहदिसि समाहि ॥
तिस ते भिंन नही को ठाउ ॥
गुर प्रसादि नानक सुखु पाउ ॥२॥

'वह' अनन्त परमेश्वर अन्दर है और 'वही' भगवत घट-घट (प्रत्येक शरीर) में व्यापक हो रहा है। धरती में, आकाश मे, पाताल मे और सब लोको मे 'वही' प्रतिपालन करने वाला पूर्ण हो रहा है। बन में, तृण में और पर्वत में, 'वही' परब्रह्म परमेश्वर (रम रहा) है। जैसी 'उस' (प्रभु) की आज्ञा होती है, जीव वही कर्म करता है। हवा, पानी, अग्नि में, चारों कोनों और दसों-दिशाओं मे 'वही एक प्रभु (सर्वत्र) समाया हुआ है, 'उसके' बिना कोई स्थान खाली नही है।

हे नानक! यह (दृष्टि) गुरु की कृपा से (प्राप्त) होती है और (इस दिव्य दृष्टि से ही) सुख प्राप्त होता है ॥२॥

बेद पुरान सिम्रिति महि देखु ॥
ससीअर सूर नख्यत्र महि एकु ॥
बाणी प्रभ की सभु को बोलै ॥

(४) वेद, (१८) पुराण और (२७) स्मृतियों में जाकर देख (अन्वेषण कर ये धर्म-ग्रन्थ भी तुम्हें यही बतायेंगे) कि चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रों में 'वही' एक है। (भाव: इन में 'उसी' का प्रकाश है)। (सम्पूर्ण रचना में) सब कोई प्रभु को वाणी बोलते है (अर्थात

आपि अडोलु न कबहू डोलै ॥
सरब कला करि खेलै खेल ॥
मोलि न पाईऐ गुणह अमोल ॥
सरब जोति महि जा की जोति ॥
धारि रहिओ सुआमी ओति पोति ॥
गुर परसादि भरम का नासु ॥
नानक तिन महि एहु बिसासु ॥३॥

सम्पूर्ण जीव प्रभु के हुकम से कर्म करके मानो 'उस' प्रभु की स्तुति में ही बोल रहे हैं) । वेदादि धर्म ग्रन्थ परमात्मा का निरूपण करते और यश वर्णन करते हैं । चन्द्रमा, सूर्य आदि विचित्र प्राकृतिक दृष्यों द्वारा मानो एक प्रभु की बोली बोल रहे हैं ।

(किन्तु) 'वह' (निरकार प्रभु) स्वयं निश्चल (स्थिर) रहता है और कभी भी चलायमान (चंचल) नही होता (चाहे) 'वह' (स्वयं ही) सम्पूर्ण शक्ति से (अपने) खेल खेल रहा है । अमूल्य गुणों वाला मूल्य से प्राप्त नही होता अथवा उसके अमूल्य गुणों का मूल्य प्राप्त नही होता । जिसकी ज्योति सब ज्योतियो में हैं (अर्थात सब ज्योंतियो में 'उसी का प्रकाश है) वह' स्वामी ही ओत-प्रोत होकर सम्पूर्ण रचना को धारण कर रहा है ।

(किन्तु) गुरु की कृपा से जिन का भ्रम दूर होता है, हे नानक! उनमें ही (उपर्युक्त) विश्वास होता है (ज्ञान अजन की ओर सकेत है जो इस अष्टपदी के श्लोक में वर्णन किया है) ॥३॥

संत जना का पेखनु सभु ब्रहम ॥
संत जना कै हिरदै सभि धरम ॥
संत जना सुनहि सुभ बचन ॥
सरब बिआपी राम संगि रचन ॥
जिनि जाता तिस की इह रहत ॥
सति बचन साधू सभि कहत ॥
जो जो होइ सोई सुखु मानै ॥
करन करावनहारु प्रभु जानै ॥
अंतरि बसे बाहरि भी ओही ॥
नानक दरसनु देखि सभ मोही ॥४॥

(जिनको ज्ञान अजन प्राप्त होता है, वे हैं) सन्तजन और जिनका देखना सब ब्रह्म (ही ब्रह्म) है (अर्थात वे केवल ब्रह्म को ही सर्वत्र देखते हैं) । सन्तजनो के हृदय में सम्पूर्ण धर्म ही होता है (अर्थात उनके हृदय मे अधर्मी विचार उठता ही नही है) । सन्तजन (जो सुनते हैं वह सब) शुभ वचन सुनते हैं । वे सर्व व्यापक राम मे ही तन्मय रहते है । जिस (सन्त) ने (प्रभु को) जान लिया है, उसकी यह रहनी है । फिर जो जो कुछ (उनके साथ) होता है, उसको (वे) सुख (अर्थात भला) करके मानते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि प्रभु (यह) सब कुछ कर रहा है और (प्रत्येक से) करा भी रहा है और समझते है कि हमारे अन्दर भी और बाहर भी 'वही' बस रहा है ।

हे नानक ! यह दर्शन जिन्होने देखा है वे सब मोहित हो जाते हैं अथवा ऐसे सन्तजनो का दर्शन देखकर सब (कोई), मोहित हो जाते हैं ॥४॥

आपि सति कीआ सभु सति ॥
तिसु प्रभ ते सगली उतपति ॥
तिसु भावै ता करे बिसथारु ॥
तिसु भावै ता एकंकारु ॥
अनिक कला लखी नह जाइ ।

(प्रभु) स्वय सत्य है, 'उसने' जो (कुछ) उत्पन्न किया है, वह सब सत्य है । (हाँ) सम्पूर्ण उत्पति (रचना) 'उस (सत्य स्वरूप परमेश्वर) से हुई है । 'उसको' भाए तो प्रसार कर देता है (अर्थात ससार रूपी विस्तार करता है) यदि उसको भाए तो (सब कुछ लय करके) अकेला आप ही एक रह जाता है ! 'उसकी' अनेक प्रकार की शक्तियाँ हैं जो जानी नही जा सकती । (इस सकल

जिसु भावै तिसु लए मिलाइ ॥
कवन निकटि कवन कहीऐ दूरि ॥
आपे आपि आप भरपूरि ॥
अंतर गति जिसु आपि जनाए ॥
नानक तिसु जन आपि बुझाए ॥५॥

ब्रह्मांड रूपी विस्तार में) जिसको चाहे 'वह' (अपने साथ) मिला लेता है ।(इसलिये) किसको 'उसके' निकट और किसको दूर कहें जबकि सर्वत्र (मेरा प्रभु) आप ही परिपूर्ण हो रहा है। जिसको 'वह' स्वयं अपने अन्दर ही अपना ज्ञान देता है,

हे नानक ! उस दास को ही 'वह' स्वयं (सर्वव्यापकता का ज्ञान) समझा देता है ॥५॥

सरब भूत आपि वरतारा ॥
सरब नैन आपि पेखनहारा ॥
सगल समग्री जा का तना ॥
आपन जसु आप ही सुना ॥
आवन जानु इकु खेलु बनाइआ ॥
आगिआकारी कीनी माइआ ॥
सभ कै मधि अलिपतो रहै ॥
जो किछु कहणा सु आपे कहै ॥
आगिआ आवै आगिआ जाइ ॥
नानक जा भावै ता लए समाइ ॥६॥

(सब प्राणी भिन्न-भिन्न दीखते हैं, पर)सब में निवास करने वाला 'वह' आप ही है। सब नेत्र हैं, पर देखने वाला 'वह' आप ही है। सम्पूर्ण रचना 'उसका' शरीर है। अपना यश 'वह' आप ही सुन रहा है। आना (बनाना) जाना (मरना) 'उसने' एक खेल बनाया है। (इस खेल को चलाने के लिये) 'उसने' आज्ञाकारी माया की रचना की है (अर्थात् माया को अपनी आज्ञा में चलाने के लिये दासी बनाकर रखा है)। 'वह' सब (खिलाड़ियों) के मध्य निर्लेप रहता है और जो कुछ कहना होता है वह कहता है पर आप ही कहता है। (ये जीव रूपी खिलाड़ी उसकी) आज्ञा से आता है और 'उस' की आज्ञा से चला जाता है।

हे नानक ! जब 'उस' की यह इच्छा होती है (भाव: भाता है कि खेल को लय कर दू) तो (सब खिलाड़ियों को) अपने में समा लेता है ॥६॥

इस ते होइ सु नाही बुरा ॥
ओरै कहहु किनै कछु करा ॥
आपि भला करतूति अति नीकी ॥
आपे जानै अपने जी की ॥
आपि साचु धारी सभ साचु ॥
ओति पोति आपन संगि राचु ॥
ता की गति मिति कही न जाइ ॥
दूसर होइ त सोझी पाइ ॥
तिस का कीआ सभु परवानु ॥
गुर प्रसादि नानक इहु जानु ॥७॥

इस (प्रभु)से जो(कुछ) होता है वह बुरा नहीं होता। बताओ 'उस' के बिना और किसी ने (इतना) कुछ किया है ? फिर देखो 'वह' प्रभु आप भला है और 'उस' की (सब)करनी भी बहुत भली है। किन्तु अपने मन की गति 'वह' आप ही जानता है। आप सत्य है और सत्य है 'उसकी' रचना जिसको 'उसने' धारण किया हुआ है और उसको भी ओत-प्रोत (ताना-बाना) की तरह अपने साथ रच लिया है। 'उसकी' अवस्था कही नहीं जा सकती, दूसरा कोई 'उस' जैसा हो तो 'उसकी' गति मिति को समझ सके।

हे नानक ! गुरु की कृपा से यह(निश्चय करके) जानो कि जो प्रभु करता है, वह सब प्रमाणिक है (अर्थात उसे) प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए और 'उस' पर कदाचित किन्तु नहीं करना चाहिए ॥७॥

जो जानै तिसु सदा सुखु होइ ॥
आपि मिलाइ लए प्रभु सोइ ॥
ओहु धनवंतु कुलवंतु पतिवंतु ॥
जीवन मुकति जिसु रिदै भगवंतु ॥
धंनु धंनु धंनु जनु आइआ ॥
जिसु प्रसादि सभु जगतु तराइआ ॥
जन आवन का इहै सुआउ ॥
जन कै संगि चिति आवै नाउ ॥
आपि मुकतु मुकतु करै संसारु ॥
नानक तिसु जन कउ सदा नमसकारु ॥८॥२३॥

जो पुरुष (उपरोक्त रहस्य को) जान लेता है उसको सदैव सुख (ही सुख प्राप्त) होता है। उसे 'वह' प्रभु आप अपने साथ मिला लेता है। वह धनाढ्य है, वह कुलीन है, वह प्रतिष्ठा वाला है और वह जीवन-मुक्त भी है जिसके हृदय में भगवत (प्रभु) बसता है। वह पुरुष धन्य है, (उसका जीवन) धन्य है, (हाँ) धन्य है जिसकी कृपा से सारा जगत (भव सागर से) तैर जाता है (पार हो जाता है)। ऐसे दास का (यहाँ) इस लोक में आने का यही प्रयोजन अथवा लाभ है कि उस जन के संग मे और जीवों के चित्त में नाम का निवास हो जाये।

हे नानक ! उस (हरि के) दास को मेरी सदैव नमस्कार है जो (नाम जपकर) स्वयं तो मुक्त होता ही है, किन्तु संसार को भी (नाम जपाकर) मुक्त करता है ॥८॥२३॥

श्लोक और अष्टपदी (२३) का सारांश

श्लोक—हरि की कृपा से, हे प्यारे ! तू गुरु से भेंट कर तो ज्ञान का सुरमा मिले। याद रहे तुम्हारी सारी अज्ञानता ज्ञान उपलब्ध होते ही दूर हो जायेगी।

अष्टपदी— मेरा प्रभु सबके बीच और सबसे पृथक्, माया में व्याप्त और माया से भिन्न है। कोई कहे निकट और कोई कहे दूर। 'वह' आप ही आप सर्वव्यापक है। जैसे 'उसकी' आज्ञा वैसे उसके' कर्म, भा जाए तो 'वह' विस्तार करता है और भा जाए तो लय भी करता है। अनन्त प्रभु का अन्त 'वह' अनन्त प्रभु ही जानता है। चारों ही कोने, दसों ही दिशाएं धरती, आकाश, पाताल, पवन, पानी, अग्नि, चाँद, सूर्य, नक्षत्र आदि सभी उसी' मे समाए हुए हैं जैसे एक बूँद दरिया मे। सभी वेद-पुराण स्मृतियां यही विचार रखते हैं। मेरे सत्गुरु ने भी यही ज्ञान-अंजन दिया है। (हाँ) 'उसकी कृपा से प्रभु का नाम मुझे मीठा लगा और अपने अर्न्तगत मैंने उसे देखा, तथा शून्य समाधी मे अनाहद शब्द भी सुना।

सलोकु ॥

पूरा प्रभु आराधिआ
पूरा जा का नाउ ॥
नानक पूरा पाइआ
पूरे के गुन गाउ ॥१॥

"परिपूर्ण प्रभु कैसे प्राप्त होता है ?"

प्रभु पूर्ण है जिस (पूर्ण) का नाम (भी) पूर्ण है, 'उस' पूर्ण प्रभु के पूर्ण नाम द्वारा अराधना (भक्ति) की है। (इस प्रकार मेरे गुरुदेव बाबा) नानक ने 'वह' पूर्ण (प्रभु) प्राप्त कर लिया है (और अब उस प्राप्ति के आनन्द में मैं 'उस') पूर्ण (प्रभु) के गुण गा रहा हूँ ॥१॥

असटपदी ॥

पूरे गुर का सुनि उपदेसु ॥
पारब्रहमु निकटि करि पेखु ॥
सासि सासि सिमरहु गोबिंद ॥
मन अंतर की उतरै चिंद ॥
आस अनित तिआगहु तरंग ॥
संत जना की धूरि मन मंग ॥
आपु छोडि बेनती करहु ॥
साध संगि अगनि सागरु तरहु ॥
हरि धन के भरि लेहु भंडार ॥
नानक गुर पूरे नमसकार ॥१॥

"सतगुरु का उपदेश ।"

(हे प्यारे ! पूर्ण प्रभु की प्राप्ति के लिये तू भी) पूर्ण गुरु का उपदेश सुनकर पारब्रह्म (प्रभु) को (अपने) अति समीप देख (समझ) । श्वास-प्रश्वास गोबिन्द (प्रभु) का स्मरण कर, इस प्रकार मन के अन्दर से चिन्ता दूर हो जायेगी । अनित्य पदार्थों की आशा की लहरों को त्याग दे (छोड़ दे) और हे मन ! तू सन्तजनों (के चरणों) की धूलि (परमेश्वर से) माँग । आपा (अर्थात अहंकार)को छोडकर तू (गुरु अथवा प्रभु के समक्ष)विनय कर । साधु की संगति से (हे जीव तू) तृष्णाग्नि रूपी (संसार) सागर से तैर जाओगे (पार हो जाओगे) । (वहां साधु सन्त गुरु के पास) हरि (नाम) धन के भंडार भर ले । (जिसकी संगति में यह सब कुछ प्राप्त होता है उस) पूर्ण गुरु को (सदैव) नमस्कार कर, कहते हैं (मेरे गुरुदेव बाबा) नानक (साहिब जी) ॥१॥

खेम कुसल सहज आनंद ॥
साध संगि भजु परमानंद ॥
नरक निवारि उधारहु जीउ ॥
गुन गोबिंद अंम्रित रसु पीउ ॥
चिति चितवहु नाराइण एक ॥
एक रूप जा के रंग अनेक ॥
गोपाल दामोदर दीन दइआल ।
दुख भंजन पूरन किरपाल ॥
सिमरि सिमरि नामु बारंबार ॥
नानक जीअ का इहै अधार ॥२॥

(हे जिज्ञासु रूप जीव ! यदि तू चाहता है कि जीवन में) कल्याण (मुक्ति), सुख, शान्ति अथवा ज्ञान, सहज पदऔर आनन्द (प्राप्त) हो तो साधु की संगति द्वारा परमानन्द (प्रभु) का भजन कर (अर्थात् प्रेम कर) और नरकों की निवृति करके अपने आपका (जीवात्मा का) उद्धार कर तथा गोविन्द के गुण गाने का अमृत रस पी । (अतएव) अपने चित्त में एक नारायण (प्रभु) को याद कर जिस का रूप एक है किन्तु रंग अनेक हैं (अर्थात् जो रचना के अन्दर नाना प्रकार से अपने आप को प्रकट करता है) । 'वह' (दामोदर) दीनो पर दया करने वाला (दीन दयालु) है, दु:खो को नाश करने वाला (दु:ख नाशक) है, परिपूर्ण है और कृपालु भी है । ऐसे प्रभु के नाम का (हे जीव !) तू बारम्बार स्मरण कर (हाँ) स्मरण कर । हे नानक ! जीवात्मा का (हरि के नाम का स्मरण) यही आधार है ॥२॥

उतम सलोकु साध के बचन ॥
अमुलीक लाल एहि रतन ॥
सुनत कमावत होत उधार ॥
आपि तरै लोकह निसतार ॥

साधु के वचन हैं उत्तम श्लोक । ये (जिज्ञासु के लिए) अमूल्य लाल रत्न हैं जिनको सुनने और कमाने से उद्धार होता है । (इस प्रकार कमाई करने वाला स्वय तो भवसागर से) पार होता है, (किन्तु अन्य) लोगों का भी निस्तार (उद्धार) करता है । (ऐसे पुरुष का) जीवन सफल है और सफल है उसका संग (साथ)

सफल जीवनु सफलु ता का संगु ॥
जा कै मनि लागा हरि रंगु ॥
जै जै सबदु अनाहदु वाजै ॥
सुनि सुनि अनद करे प्रभु गाजै ॥
प्रगटे गुपाल महांत कै माथे ॥
नानक उधरे तिन कै साथे ॥३॥

जिसके मन में हरि रंग का (प्रेम)रंग लगा हुआ है अथवा लगता है (ऐसे भक्त के लिये) अनाहत शब्द उसके 'जय' 'जय' कार के लिये बजता है, जिसे सुन सुनकर आनन्द में आ जाता है और वह (प्रेम) से पुकारता है – 'प्रभु !' 'प्रभ !' अथवा वह स्वयं जय-जय-कार करके अपने प्रभु को गाता है। ऐसे महात्माओ के मस्तक से गोपाल परमेश्वर का प्रकाश प्रकट होता है (अर्थात जिनके दर्शन से हरि के दर्शन की झलक पडती है)।

हे नानक ! (तुम्हारा) उद्धार भी एँसे (भक्तों) की सगति में ही होगा। (माथे शब्द का दसम् द्वार अर्थ भी हो सकता है) ॥३॥

सरनि जोगु सुनि सरनी आए ॥
करि किरपा प्रभ आप मिलाए ॥
मिटि गए बैर भए सभ रेन ॥
अंम्रित नामु साध संगि लैन ॥
सुप्रसंन भए गुरदेव ॥
पूरन होई सेवक की सेव ॥
आल जंजाल बिकार ते रहते ॥
राम नाम सुनि रसना कहते ॥
करि प्रसादु दइआ प्रभि धारी ॥
नानक निबही खेप हमारी ॥४॥

यह सुनकर कि प्रभु शरण देने के समर्थ है, जब मैं 'उसकी शरण में आया तो प्रभु ने (अति) कृपा करके (मुझे) अपने साथ मिला लिया। मेरे वैर (विरोध सारे) मिट गये। सब के चरणों की धूलि हो गया जब मैंने साधुजनो की सगति में आकर अमृत नाम का उच्चारण किया अथवा करने लगा। इस प्रकार (मेरे) गुरुदेव मुझ पर अति प्रसन्न हुए और सेवक की सेवा भी पूर्ण (सफल) हुई। अतएव (गुरुदेव की प्रसन्नता से) घर के झझटों एवं विकारो से मैं रहित हो गया (अर्थात बच गया)। (अब मैं प्रतिदिन) रामनाम सुनता हूँ और रामनाम कहता रहता हूँ। (अतएव मैं) प्रभु ने ही प्रसन्न(सन्तुष्ट) होकर (यह) दया की है, जिस से हे नानक ! (मेरे) जीवन का लक्ष्य पूर्ण हुआ (अर्थात सौदा लाभदायक हुआ भावः जीवन की फेरी (चक्कर) सफल हुई ॥४॥

प्रभ की उसतति करहु संत मीत ॥
सावधान एकागर चीत ॥
सुखमनी सहज गोबिंद गुन नाम ॥
जिसु मनि बसै सु होत निधान ॥
सरब इछा ता की पूरन होइ ॥
प्रधान पुरखु प्रगटु सभ लोइ ॥
सभ ते ऊच पाए असथानु ॥

हे सन्तो ! हे मित्रो ! सावधान होकर एकाग्र चित्त से प्रभु की स्तुति करो। नाम है सुख की मणि जिसके अन्तर्गत गोबिन्द के गुण स्वाभाविक ही अथवा ज्ञान द्वारा गाये जाते हैं अथवा सुख-मनी गोबिन्द के सहज गुण और उसका नाम है। जिसके मन में नाम का निवास है वह स्वय गुणो का भडार (खजाना) हो जाता है। उसकी सब इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। वह पुरुष (सब जीवों में) प्रधान होकर सर्व लोको में (सर्वत्र) प्रकट हो जाता है। वह सब से ऊँचा स्थान (निज पाँउ) प्राप्त करता है और पुनः उसके लिये आना जाना (जन्म-मरण) नही होता। (किन्तु), हे

बहुरि न होवै आवन जानु ॥
हरि धनु खाटि चलै जनु सोइ ॥
नानक जिसहि परापति होइ ॥५॥

नानक ! जिसको हरि (नाम) का धन प्राप्त होता है, वह नानक यहाँ से (मनुष्य देही) जीतकर (चलता) जाता है (शेष सब जीव अमूल्य देही को जूए में हार कर नाम धन को गँवा कर खाली हाथ चले जाते हैं) ॥५॥

खेम सांति रिधि नव निधि ॥
बुधि गिआनु सरब तह सिधि ॥
बिदिआ तपु जोगु प्रभ धिआनु ॥
गिआनु स्रेसट ऊतम इसनानु ॥
चारि पदारथ कमल प्रगास ॥
सभ कै मधि सगल ते उदास ॥
सुंदर चतुर तत का बेता ॥
समदरसी एक द्रिसटेता ॥
इह फल तिसु जन कै मुखि भने ॥
गुरनानक नाम बचनमनि सुने ॥६॥

मुक्ति, शान्ति, ऋद्धि (धन-सम्पत्ति), नव निधि (चमत्कारिक शक्तियाँ), बुद्धि, ज्ञान, और सब सिद्धियाँ (करामाती शक्तियाँ) वहाँ हैं और (फिर) विद्या, तपस्या, योग प्रभु का ध्यान, श्रेष्ठ ज्ञान और उत्तम स्नान उसके लिये हैं, चार ही पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) और हृदय रूपी कमल का विकास (अर्थात् हृदय में आध्यात्मिक प्रकाश) उसके पास है, सब के बीच रहता हुआ भी सबसे निर्लेप वह है, सुन्दर, चतुर तत्ववेत्ता, समदर्शी और (अनेकता में) एक को देखनेवाला वह है,

जो हे नानक ! गुरु के द्वारा नाम के बचन मन से सुनता है और मुख से उच्चारण करता है, उसको ही (उपर्युक्त सब फल प्राप्त होते हैं ॥६॥

इहु निधानु जपै मनि कोइ ॥
सभ जुग महि ता की गति होइ ॥
गुण गोबिंद नाम धुनि बाणी ॥
सिम्रिति सासत्र बेद बखाणी ॥
सगल मतांत केवल हरि नाम ॥
गोबिंद भगत कै मनि बिस्राम ॥
कोटि अप्राध साध संगि मिटै ॥
संत क्रिपा ते जम ते छुटै ॥
जा कै मसतकि करम प्रभि पाए ॥
साध सरणि नानक ते आए ॥७॥

यह नाम रूपी कोष (खजाना) कोई भी यदि मन लगा कर जपेगा तो सब युगों में (अर्थात् नाम जपनेवाला किसी भी युग में हो तो) उसकी मुक्ति होगी। वेद शास्त्र और स्मृतियों की वाणी की व्याख्या करने से गोबिन्द (प्रभु) के गुण और नाम की धुनि लग जाती है, यह बात स्मृतियों, शास्त्रों और वेदो ने भी कथन की है। सर्व मतों का सिद्धान्त (तत्व) केवल नाम ही है जो गोबिन्द भक्त के मन मे विश्राम करता है। (ऐसे गोबिन्द की भक्ति वाले) साधु की संगति से करोड़ों अपराध (पाप) मिट जाते हैं। ऐसे सन्त की कृपा से जीव यम से छूट जाता है। (किन्तु) जिसके मस्तक पर प्रभु ने (स्वय) कृपा करके (नाम जपना) लिखा है, हे नानक ! वे ही साधु की शरण में आते हैं ॥७॥

जिह मनि बसै सुनै लाइ प्रीति ॥
तिसु जन आवै हरि प्रभु चीति ॥
जनम मरन ताका दूखु निवारै ॥
दुलभ देह ततकाल उधारै ॥
निरमलसोभा अंम्रित ताकी बानी ॥
एकु नामु मन माहि समानी ॥
दूख रोग बिनसे भै भरम ॥
साध नाम निरमल ताके करम ॥
सभ ते ऊच ताकी सोभा बनी ॥
नानक इहगुणि नामु सुखमनी ॥८॥
२४॥

जो प्रीति लगाकर (प्रेम से नाम) सुनता है और 'जिसके मन अन्दर' (यह नाम) निवास करता है, उस दास के चित्त में हरि प्रभु (स्वयं) आकर निवास करता है। उसके जन्म मरण का दुःख 'वह' (प्रभु) नाश कर देता है और इस दुर्लभ (मनुष्य) देही का तुरन्त उद्धार कर देता है (अर्थात् शीघ्र सफल कर लेता है)। मन में (केवल) एक नाम समा जाने से उसकी शोभा निर्मल हो जाती है और उसकी वाणी (वचन) भी अमृतमयी बन जाती है। उसके दुख और रोग तथा भय और भ्रम नाश हो जाते हैं। (नाम के पुजारी) साधु के कर्म सब निर्मल (पवित्र) हैं अथवा साधु नाम उसका पड जाता है और उसके कर्म भी निर्मल हो जाते हैं तथा उसकी शोभा सबसे ऊंची हो जाती है।

हे नानक! इन गणो के कारण ही नाम सुखो की एक प्रज्वलित मणि है। अथवा इन (उपर्युक्त) गुणों के कारण ही इस वाणी का नाम 'सुखमनी' रखा है ॥८॥२४॥

श्लोक और अष्टपदी (२४) का सारांश

श्लोक— उस' एक परिपूर्ण प्रभु की, हे भाई! तू अराधना कर जिसका नाम पूर्ण है। ऐसे परिपूर्ण प्रभु के गुण गाने से तुझे 'वह' पूर्ण प्रभु प्राप्त होगा।

अष्टपदी— हे प्यारे! अपने गुरु का उपदेश सुन और परब्रह्म को निकट करके देख। एक नारायण को अपने चित्त में रख और श्वास-प्रश्वास गोबिन्द का स्मरण कर। त्याग दे मन की सब तरंगें। पूर्ण पुरुषों की तू धूली मांग और सदा साधू के संग अनुरक्त रह। परमानन्द प्रभु का तू हृदय से भजन कर और हरि-धन से अपना भण्डार भर। इस प्रकार तू अग्नि सागर से पार होगा, नरक से भी निवृत होगा, जीवात्मा का उद्धार होगा, कुशलता, कल्याण, सहजानन्द प्राप्त होगा और गोबिन्द का अमृत रस पीएगा। हे सन्तों! हे मित्रों! प्रभु की स्तुति करो। सभी मत-मतान्तरों का मूल हरिनाम है और गोबिद की भक्ति में ही विश्राम है। जिसके मन में 'वह' बसता है, उसको दु ख कैसा, राग कैसा, भय कैसा, और भ्रम कैसा? करोडों अपराध उसके मिटते हैं। ऐसे भाग्यशाली पुरुष के साथ शान्ति, मुक्ति, निधिया, सिद्धिआ, आत्मिक बुद्धि, अलौकिक ज्ञान, ध्यान, योगादि प्राप्त होता है। 'उसी' के पास है धर्म, अर्थ काम और मोक्ष। वही समदर्शी वही एकदर्शी, उसका पुनः आवागमन नहीं है और उसकी सब इच्छाएं पूर्ण होती हैं। वह सर्व लोकों में प्रकट होता है। उसका स्थान सबसे ऊंचा, वह पुरुष प्रधान निर्मल उसकी शोभा, अमृत उसकी वाणी, 'उसके' अन्तर्गत अनाहद शब्द की झुकार, माथे पर दिव्य-ज्योति और हृदय मे कमल विकसित होता है। जब अमूल्य नाम को गुरु के वचनो द्वारा हृदय मे सम्भाल कर रखा और शरणागत वत्सल प्रभु की शरण में गया और पूर्ण प्रभु की अराधना की तो मन को हरि रंग लगा, वैर-विरोध सब मिट गए। सन्तों के चरणों की धूलि हुआ और अमृत नाम साधु की संगति में प्राप्त किया। प्रभु ने अपनी दया-दृष्टि करके अपने पास (हाँ) अपने साथ मिला लिया। सेवक की सेवा पूर्ण हुई, भयानक विकारों से छूटा और जीवन की क्षेम स्वीकृत हुई।

यह है कुछ शब्दों में २४ श्लोकों और २४ अष्टपदियों का सारांश। गुरु की सेवा द्वारा नाम का स्मरण करना क्या इसके बिना कोई अन्य हुकम भी है ? ७, ८, ६, १२, १३, और २३वें श्लोकों के बिना अन्य सभी श्लोक नाम का ही वर्णन करते हैं। इन ६ श्लोकों में मेरे गुरुदेव उपदेश देते हैं कि हे भाई ! जो जीव नाम जपते हैं वे ब्रह्म रूप हैं, वे ही मुक्ति प्राप्त करते हैं, उनको ही साधु, ब्रह्मज्ञानी, निर्लेप, हरिजन, सन्त, या गुरु कहकर बुलाएं।

अतएव इस संसार को मिथ्या मानकर, हे मेरे भाई ! तू साधु सन्त अथवा गुरु के चरणों में समर्पित होकर केवल सत्य स्वरूप परमात्मा का नाम जप। याद रहे, अन्य सभी कर्म, धर्म आदि नाम के आगे तुच्छ हैं। इसलिए आठों ही प्रहर प्रियतम प्रभु को अपने हृदय में याद कर, 'उसकी' प्रशंसा में बैठकर 'उसके' गुणानुवाद कर अन्यथा माया-मोह के बन्धनों में जकड़ कर तू जन्म-मरण के चक्कर में सदैव भटकता फिरेगा।

समाप्तम

उपसंहार

मेरी अपने प्रिय पाठकों से विनम्र निवेदन है कि एक सिन्धी परिवार में जन्म होने के कारण मुझे हिन्दी भाषा पर पूर्ण अधिकार नही है। अत इस पुनीत आदि ग्रंथ में हिन्दी अनुवाद करते समय कई भाषिक अशुद्धियों का रह जाना स्वाभाविक है। निस्सन्देह मैंने इसे पर्याप्त रूप से शुद्ध रूप देने का प्रयास तो किया है परन्तु यथा गुरु श्रुति है .—"भुलण अ दरि सभको अभुलु गुरू करतारु।(गु० ग्र० सा० पृष्ठ ६१)

कुछ सत्संगियों के योगदान द्वारा इस पावन ग्रंथ का अनुदित रूप आपके समक्ष प्रस्तुत करके हर्षित हो रहा हूं। मेरी आपसे यह विनय है कि आप त्रुटियों की ओर ध्यान न देते हुए गुरवाणी के व्यापक भावों का ही मूल्यांकन करें। भक्ति एवम् ज्ञान के इस सरोवर में से केवल अमूल्य मोतियों का ही चयन करें। इस भावना से मुझे भरपूर संतोष होगा कि मेरे प्रिय पाठकों ने मेरे किंचित श्रम से कुछ लाभ उठाया।

प्रचार और प्रसार के कारण ही मैंने इस भक्ति और ज्ञान के छीटे सर्वत्र बिखराने की आकांक्षा की है। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि सभी जन इस अमृत रस का पान करके आनन्दाभूति करें।

द्वितीय संचय के प्रकाशित होने के लिए मैं आप सबकी मगल कामनाओं का इच्छुक हूं। मैं आशा करता हूं मेरे सब पाठकगण इस कृति की पूर्णता पर मेरा उत्साह वर्धित करेंगे ताकि अन्य सैंचियों का शेष कार्य समुचित रूप से सम्पन्न में समर्थ हो सकू। मेरे गुरुदेव इस वृहद् कार्य की पूर्ति के लिए मुझ पर कृपा करें।

मुद्रक : गौतम आर्ट प्रेस, १/१०५६५, मोहन पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२ से मुद्रित।